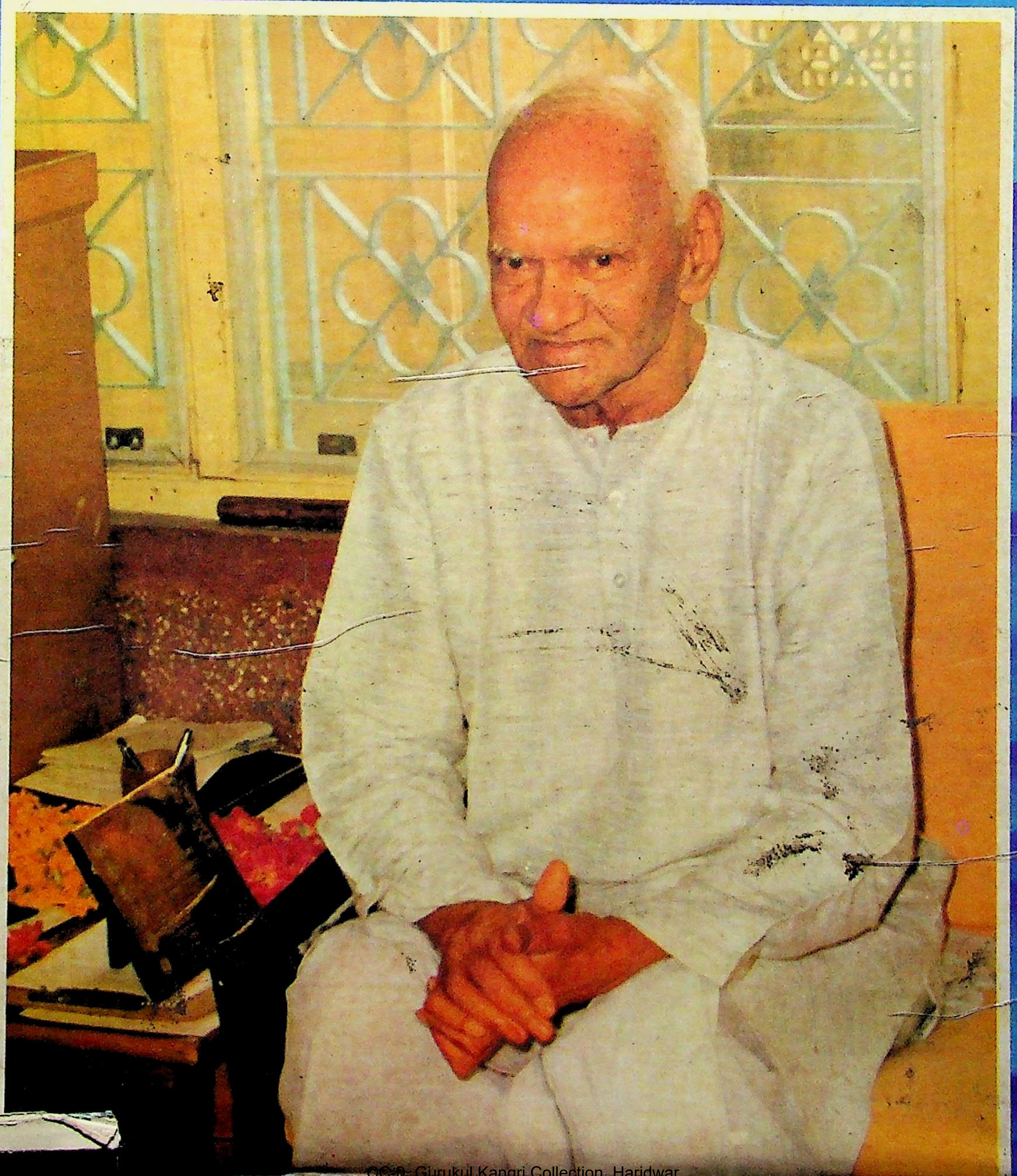
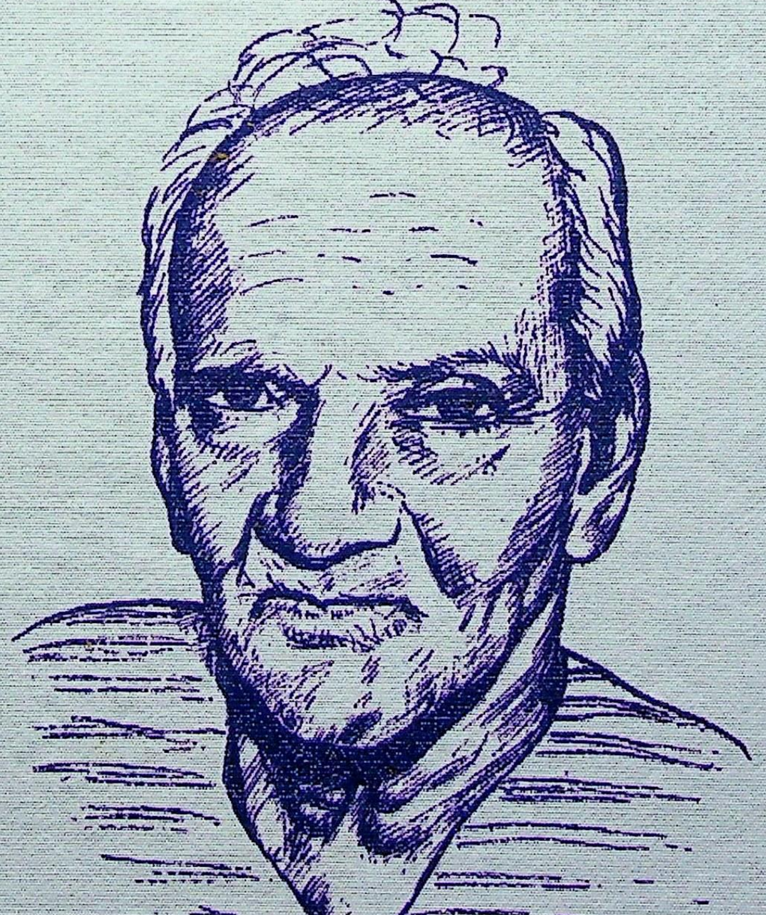
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

# गायत्री की साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि



पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय-१४

# गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि



## कुछ शब्द वाङ्मय के विषय में

प्रस्तुत वाङ्मय एक प्रयास है, इस युग के व्यास परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के जीवन-दर्शन को जन-जन तक पहुँचाने का। आज से ८५ वर्ष पूर्व आगरा के आँवलखेड़ा ग्राम में जन्मा वेदमूर्ति तपोनिष्ठ की उपाधि प्राप्त भारतीय संस्कृति के उन्नयन को समर्पित एवं सच्चे अर्थों में ब्राह्मणत्व को जीवन में उतारने वाला यह राष्ट्र-संत अपने अस्सी वर्ष के आयुष्य में (१९११ से १९९०) आठ सौ वर्ष से अधिक का कार्य कर गया। सादगी की प्रतिमूर्ति, ममत्व, स्नेह से लबालब अंतःकरण एवं समाज की हर पीड़ा जिनकी निज की पीड़ा थी, ऐसा जीवन जीने वाले युगदृष्टा ने जीवन भर जो लिखा, अपनी वाणी से कहा, औरों को प्रेरित कर उनसे जो संपन्न करा लिया, उस सबको विषयानुसार इस वाङ्मय के खण्डों में बाँधना एक नितान्त असम्भव कार्य है। यदि यह सफल बन पड़ा है तो मात्र उस गुरुसत्ता के आशीष से ही, जिनकी हर श्वास गायत्री यज्ञमय थी एवं समिधा की तरह जिनने अपने को संस्कृति-यज्ञ में होम कर डाला।

उनकी जीवनावधि के अस्सी वर्षों में से प्रारंभिक तीस वर्ष जन्मस्थली आँवलखेड़ा, आगरा जनपद एवं नगर में एक साधक, समाज-सुधारक, प्रखर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की तरह बीते। इसके बाद के तीस वर्ष मथुरा में एक विलक्षण कर्मयोगी, संगठन निर्माता, भविष्य दृष्टा, सारी मानव-जाति को एक सूत्र में पिरो कर युग निर्माण सत्संकल्प के रूप में मिशन का 'मैनिफेस्टो' सतयुगी समाज का आधार बताकर प्रस्तुत करते दृष्टिगोचर होते हैं। इस पूरी अवधि में एवं आयुष्य के अंतिम बीस वर्षों में परमवंदनीया माताजी का

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

# गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि



सम्पादक
**ब्रह्मवर्चस**



प्रकाशक
**अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा**

❒
प्रकाशक
**अखण्ड ज्योति संस्थान**
मथुरा - २८१००३

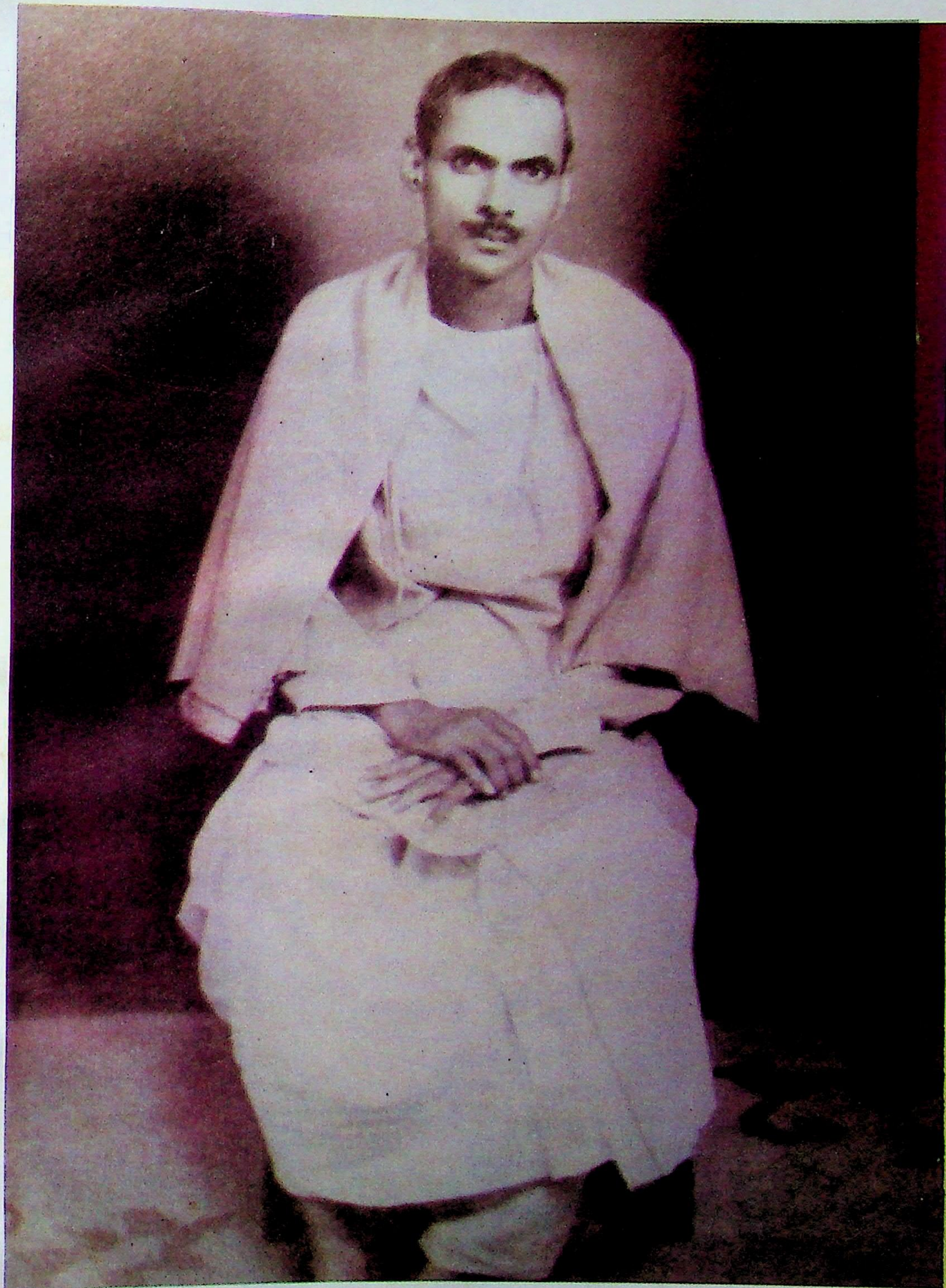




❒
प्रथम संस्करण १९९५

❒
**मूल्य १२५ )**
**सत्तर खण्डों के सैट का मूल्य ७००० )**

❒
मुद्रक
**जनजागरण प्रेस, मथुरा**



गायत्री महामंत्र को जन-जन के लिए सुगम बनाकर
इस युग के विश्वामित्र कहलाए



ब्राह्मणत्त्व को सच्चे अर्थों में जीवन में उतार कर जिनने सादगी का शिक्षण दिया–
माता भगवती देवी

# समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

**त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।**

# विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे। छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

'युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप:पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

# भूमिका

शब्द शक्ति से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा जाता है । गायत्री महामंत्र प्रणव नाद से प्रकटा व इस धरती की विश्व ब्रह्माण्ड की अनादि कालीन सर्वप्रथम ऋचा है जिससे वेदों की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा जाता है । गायत्री महामंत्र का ज्ञान-विज्ञान वाला पक्ष इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि उसे भली प्रकार समझे बिना यह नहीं जाना जा सकता कि इस साधना के लाभ किसी को क्यों व कैसे मिलते हैं । मंत्र तो अनेकानेक हैं । अनेक मत-सम्प्रदायों में भी ढेरों मंत्र ऐसे मिलते हैं जिनका जप करने का विधान बताया गया है एवं उनके माहात्म्य से समग्र धर्म शास्त्र भरे पड़े हैं । किन्तु छन्दों में मंत्र गायत्री छन्द के रूप में, मंत्र शक्ति के रूप में परमात्मा की सत्ता विद्यमान है, यह गीताकार ने **"गायत्री छन्दसामहम्"** के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है । इस मंत्र की विलक्षणता के पीछे वैज्ञानिक आधार क्या है, यह परमपूज्य गुरुदेव के वाङ्मय के इस खण्ड को पढ़कर समझा जा सकता है ।

यों तो गायत्री में असंख्यों शक्तियाँ, दैवी स्फुरणाएँ हैं किन्तु इसकी श्रेष्ठता का मूल आधार मंत्र विज्ञान के आधार पर इसका सर्वश्रेष्ठ होना है । इस मंत्र का अरबों-खरबों बार इस धरती पर उच्चारण हो चुका है । इसके कम्पन अभी भी सूक्ष्म जगत में विद्यमान हैं । मात्र इसका सविता के ध्यान के साथ भाव विह्वल होकर जप करने से वे सारे "वाइब्रेशन्स" सूक्ष्म जगत के कम्पन आकर व्यक्ति के प्रभामंडल को घेर लेते हैं एवं उसकी अनगढ़ताओं को मिटाकर उसे एक सुव्यवस्थित व्यक्ति बना देते हैं । गायत्री महामंत्र की संरचना में जिस प्रकार विभिन्न शक्ति बीजों को गुंफित किया गया है वह "साइंस आफ एकास्टिक्स" ध्वनि विज्ञान पर आधारित है । एक-एक अक्षर व्यष्टि और समष्टि के विभिन्न अक्षरों को प्रभावित कर वांछित सत्परिणाम पैदा करता चला जाता है । मंत्र जप में जिह्वा से उच्चारण होता है किन्तु इस प्रक्रिया में सारा स्नायु संस्थान नियोजित हो जाता है । मस्तिष्क में स्वर-कण्ठ से संबंधित हिस्सों-तालू आदि का तथा हाथों की ऊँगलियों का एक बहुत बड़े भाग में प्रतिनिधित्व है । यह मात्र संयोग नहीं है कि साठ प्रतिशत सेरिबल कार्टेक्स का हिस्सा इन्हीं के अधिकार क्षेत्र में है व उच्चारक के साथ जप चलते ही—जैसे १०८ दानों वाली माला पर विशिष्ट मुद्रा में हाथ की उँगलियाँ चलने लगती हैं, एक "न्यूरोनल साइकल" विद्युत्यक स्नायु संस्थान में बन जाता है एवं पूरे मस्तिष्क को पूर्ण चैतन्यता की स्थिति में ले आता है । यही उस मंत्र की चमत्कारी शक्ति का आधार है कि तुरंत अंदर की सभी चक्र उपत्यिकाएँ—नाड़ी गुच्छक प्रभावित हो जागृत होने लगते हैं- अनेकानेक हारमोन्स का उत्सर्जन होने लगता है जो अनन्त आनन्द के दीर्घायुष्य—नीरोग बनाने वाली प्रक्रिया के मूल आधार हैं ।

मंत्र विज्ञान का—ध्वनि विज्ञान का "साइंस आफ हारमोनी आफ सिम्बल्स" शब्दों का समवेत विशिष्ट राग या उतार चढ़ाव के साथ उच्चारण क्या प्रभाव डालता है, यह पक्ष जानने के बाद पता चलता है कि इस मंत्र को विशिष्टता क्यों प्राप्त है । यह एक जानी-मानी बात है कि मात्र मुँह से किया गया उच्चारण बिना भावनात्मक नियोजन या इष्ट के साथ तादात्म्यता के निष्प्रभावी होता है । मंत्र में मूल शक्ति ही उस समर्पण भाव से आती है जिसमें इष्ट के साथ अपनी सत्ता को एकाकार किया जाता है । यह समझना अत्यन्त अनिवार्य है कि सूर्य की साधना का मंत्र होने के नाते, सूर्य जगती के प्राणों का आधार होने के नाते उसके उदीयमान रूप पर केन्द्रित हो किया गया जप शब्दों में विस्फोटक शक्ति पैदा कर इसे एक चमत्कारी — विशिष्ट मंत्र की पदवी विज्ञान सम्मत आधार पर ही प्रदान करता है ।

अध्यात्म एक विज्ञान है जिसमें हमेशा गणितीय आधार होता है । इसमें कभी भी २ X २ = ३.६ या ४.१ नहीं होता, होता सिर्फ चार है । इसी प्रकार गायत्री मंत्र का परिणाम, यदि वह विज्ञान सम्मत ढंग से उच्चारित किया गया है तो सुनिश्चित मिलना ही चाहिए—यदि भाव संवेदना को खाद—पानी देकर इस बीज मंत्र को पल्लवित किया गया है तो परिणाम मिलना ही चाहिए । इतना दावे के साथ कोई ऋषि सत्ता ही कह सकती है ।

प्रस्तुत वाङ्मय में शिखा व सूत्र के विज्ञानपरक आधार की भी बड़ी सुन्दर व्याख्या है । गायत्री भारतीय संस्कृति का प्राण है एवं उसके दो प्रतीक यज्ञोपवीत व शिखा को धारण करने वाले को गायत्री महाविद्या के लाभ अति शीघ्र अधिकाधिक परिमाण में मिलते हैं, ऐसा स्पष्ट कर पूज्यवर ने देवसंस्कृति को पुनर्जीवित कर अपने मूल्यों को जागृत—जीवन्त बनाए रखने का प्रतिपादन इस खंड में किया है । निश्चित ही गायत्री साधक, वैज्ञानिक, शास्त्रों के मर्मज्ञ प्रत्येक के लिए यह खण्ड पढ़ने योग्य व अत्यधिक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ के समान है ।

— ब्रह्मवर्चस

# विषय-सूची

# गायत्री की शक्ति और सिद्धि

## गायत्री की असंख्य शक्तियाँ

संसार में जितना भी वैभव, उल्लास दिखाई पड़ता है या प्राप्त किया जाता है । वह शक्ति के मूल्य पर ही मिलता है । जिसमें जितनी क्षमता होती है, वह उतना ही सफल होता है और उतना ही वैभव उपार्जित कर लेता है। जीवन में शक्ति का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है कि उसके बिना कोई आनंद नहीं उठाया जा सकता । यहाँ तक कि अनायास उपलब्ध हुए भोगो को भी नहीं भोगा जा सकता । इंद्रियों में शक्ति रहने तक ही विषय भोगों का सुख प्राप्त किया जा सकता है । ये किसी प्रकार अशक्त हो जाएँ तो आकर्षक से आकर्षक भोग भी उपेक्षणीय और घृणास्पद लगते हैं । नाड़ी संस्थान की क्षमता क्षीण हो जाय तो शरीर का सामान्य क्रियाकलाप भी ठीक तरह नहीं चल पाता । मानसिक शक्ति घट जाने पर मनुष्य की गणना विक्षिप्तों और उपहासास्पदों में होने लगती है । धन-शक्ति न रहने पर दर-दर का भिखारी बनना पड़ता है । मित्र-शक्ति न रहने पर एकाकी जीवन सर्वथा निरीह और निरर्थक होने लगता है । आत्म-बल न होने पर प्रगति के पथ पर एक कदम भी यात्रा नहीं बढ़ती । जीवनोद्देश्य की पूर्ति आत्म-बल से रहित व्यक्ति के लिए सर्वथा असंभव ही है ।

अतएव शक्ति का संपादन भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए नितांत आवश्यक है । इसके साथ यह भी जान ही लेना चाहिए कि भौतिक जगत में पंचभूतों को प्रभावित करने तथा आध्यात्मिक जगत विचारात्मक, भावात्मक तथा संकल्पात्मक जितनी भी शक्तियाँ हैं उन सब का मूल उद्‌गम एवं असीम भांडागार वह महत्तत्त्व ही है जिसे गायत्री के नाम से संबोधित किया जाता है ।

भारतीय मनीषियों ने विभिन्न शक्तियों को देवनामों में संबोधित किया है । यह समस्त देव-शक्तियाँ उस परम शक्ति की किरणें ही हैं, उनका अस्तित्व इस महत्त्व के अतंर्गत ही है । विद्यमान सभी देव शक्तियाँ उस महत्त्व के ही स्फुलिंग हैं, जिसे अध्यात्म की भाषा में गायत्री कहकर पुकारते हैं । जैसे जलते हुए अग्निकुण्ड में से चिंगारियाँ उछलती हैं, उसी प्रकार विश्व की महान् शक्ति सरिता गायत्री की लहरें उन देव-शक्तियों के रूप में देखने में आती हैं । संपूर्ण देवताओं की सम्मिलित शक्ति को गायत्री कहा जाय तो यह उचित होगा ।

इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो प्रतीत होगा कि हमारे महान् पूर्वजों के चरित्र को उज्ज्वलपत्र तथा विचारों को उत्कृष्ट रखने के अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व को महानता के शिखर तक पहुँचाने के लिए उपासना मोहात्मक सम्बल गायत्री महम्मंत्र को ही पकड़ा था और इसी सीढ़ी पर चढ़ते हुए वे देव पुरुषों में गिने जाने योग्य स्थिति प्राप्त कर सके थे। देवदूतों, अवतारों, गृहस्थियों, महिलाओं, साधु, ब्राह्मणों, सिद्ध पुरुषों का ही नहीं, साधारण सद्‌गृहस्थों का उपास्य भी गायत्री ही रही है और उस अवलम्बन के आधार पर न केवल आत्म-कल्याण का श्रेय साधन किया है, वरन् भौतिक सुख-सम्पदाओं की सांसारिक आवश्यकताओं को भी आवश्यक मात्रा में उपलब्ध किया है ।

वेद, उपनिषद्, से लेकर पुराणशास्त्रों और रामायण, महाभारत आदि तक ऐसा कोई भी आगम निगम ग्रन्थ नहीं है, जिसमें गायत्री महाशक्ति की अभिवन्दना न की गई हो। ऋग्वेद में ६ ।६२ ।१०, सामवेद में २ ।८ ।१२, यजुर्वेद वा. सं. में ३ ।३५- ।२२ ।९-३० ।२-३६ ।३, अथर्ववेद में १९ ।७१ ।१ में गायत्री की महिमा विस्तार-पूर्वक गाई गई है । ब्राह्मण ग्रन्थों में गायत्री मंत्र का उल्लेख अनेक स्थानों पर है । यथा—ऐतरेयब्राह्मण ४ ।३२ ।२-५ ।५ ।६-१३ ।८-१९ ।८, कौशतकी ब्राह्मण २३ ।३-२६ ।१०, गोपथ ब्राह्मण १ ।१ ।३४, दैवत ब्राह्मण ३ ।२५, शतपथ ब्राह्मण २ ।३ ।४ ।३९-२३ । ६ ।२ ।९-१४ ।९ ।३ ।११, तैत्तरीय सं. में १ ।५ । ६ । ४-४ ।१ ।११ ।१, मैत्रायणी सं. ४ ।१० ।३-१४९ ।१४ । आरण्यकों में गायत्री का उल्लेख इन स्थानों पर है— तैत्तरीय आरण्यक १ ।११ ।२१० ।२७ ।१, वृहदारण्यक ६ ।३ ।११ । ४ ।८, उपनिषदों में इस महामन्त्र की चर्चा निम्न प्रकरणों में—नारायण उपनिषद् ६५-२, मैत्री उपनिषद् ६ ।७ ।३५, जैमिनी उपनिषद् ४ ।२८ ।१, श्वताश्वर उपनिषद् ४ ।१८ । सूत्र ग्रन्थों में गायत्री का विवेचन निम्न प्रसंगों में आया है— आश्वालायन श्रौत सूत्र ७ । ६ ।६-८ ।१ ।१८ शरंखायन श्रौत सूत्र २ ।१० ।

२-१२। ७-५। ५।२-१०। ६।१०-९।१६ आप स्तम्भ श्रौत सूत्र ६।१८।१ शांखायन गृह्य सूत्र २।५।१२,७।१९,६।४।८ कौशीतकी सूत्र ९१।६ गृह्य सूत्र २।४।२१ आपस्तम्भ गृह्य सूत्र २।४।२१ बोधायन घ. शा. २।१०।१७।१४ मान. ध. शा. २।७७ ऋग्विधान १।१२।५ मान. गृ. स. १।२।३-४।४ ८-५।२

गायत्री का महत्त्व बताते हुए महर्षियों ने एक स्वर से गाया है—

'गायत्री वेद मातरम्'

अर्थात् गायत्री वेदों की माता ज्ञान का आदि कारण है।

इस उक्ति में ही गायत्री को समस्त ज्ञान-विज्ञान का शक्ति-साधनों का, व्यक्तित्व और समाज संस्कृति को ऊँचा उठाने के उपाय हैं, उन सब की गंगोत्री बना दिया गया है ।

कहा जा चुका है कि संसार में कुछ भी प्राप्त करने का एकमेव मार्ग शक्ति साधन है और परम कारुणिक ईश्वरीय भक्ति ने इस निखिल् ब्रह्माण्ड में अपनी अनन्त शक्तियाँ बिखेर रखी हैं । उनमें से जिनकी आवश्यकता होती है, उन्हें मनुष्य अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर सकता है । विज्ञान द्वारा प्रकृति की अनेकों शक्तियों को मनुष्य ने अपने अधिकार में कर लिया है । विद्युत, ताप, प्रकाश, चुम्बक, शद्ब, अणु-शक्ति जैसी प्रकृति की कितनी ही अदृश्य और अविज्ञात शक्तियों को उसने ढूँढ़ा और करतलगत किया है, पर ब्रह्म की चेतनात्मक शक्तियाँ भी कितनी ही हैं, उन्हें आत्मिक प्रयासों द्वारा करतलगत किया जा सकता है । मनुष्य का अपना चुम्बकत्व असाधारण है। वह उसी क्षमता के सहारे भौतिक जीवन में अनेकों को प्रभावित एवं आकर्षित करता है । उसी आधार पर वह साधन जुटाता, सम्पन्न बनता और सफलतायें उपलब्ध करता है । इसी चुम्बक शक्ति के सहारे वह व्यापक ब्रह्म-चेतना के महासमुद्र में से उपयोगी चेतन तत्वों को आकर्षित एवं करतलगत कर सकता है ।

इन सभी शक्तियों में सर्वप्रमुख और सर्वाधिक प्रभावशाली प्रज्ञा-शक्ति है । प्रज्ञा की अभीष्ट मात्रा विद्यमान हो तो फिर और कोई ऐसी कठिनाई शेष नहीं रह जाती जो नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने से वंचित रख सके । श्रम और मनोयोग तो आत्मिक प्रगति में भी उतना ही लगाना पर्याप्त होता है, जितना कि भौतिक समस्याऐं हल करने में आये दिन लगाना पड़ता है । महामानवों को उससे अधिक कष्ट नहीं सहने पड़ते, जितने कि सामान्य जीवन में आये दिन हर किसी को सहने पड़ते हैं । लोभ और मोह की पूर्ति में जितना पुरुषार्थ और साहस करना पड़ता है, उससे कम में ही उत्कृष्ट आदर्शवादी जीवन का निर्माण निर्धारण किया जा सकता है । मूल कठिनाई एक ही है—प्रज्ञा-प्रखरता की । वह प्राप्त हो सके तो समझना चाहिए कि जीवन को सच्चे अर्थों में सार्थक बनाने वाली, ऋद्धि-सिद्धियों की उपलब्धियों से भर देने वाली संभावनाओं को प्राप्त कर सकने में अब कोई कठिनाई शेष नहीं रह गई ।

गायत्री महाशक्ति को तत्त्व ज्ञानियों ने सर्वोपरि दिव्य क्षमता कहा है । उसका अत्यधिक माहात्म्य बताया है । गायत्री-प्रज्ञातत्त्व का ही दूसरा नाम है । इसे दूरदर्शी विवेकशीलता एवं आत्मोत्कर्ष के लिये अभीष्ट बल प्रदान करने वाली साहसिकता भी कह सकते हैं । आत्मिक प्रगति के लिये किये जाने वाले अभीष्ट पुरूषार्थों में गायत्री उपासना को अग्रिणी माना गया है । यह विशुद्ध रूप से प्रज्ञा को प्राप्त करने की वैज्ञानिक पद्धति है ।

'प्रज्ञा' शक्ति मनुष्य को आत्मिक दृष्टि से सुविकसित एवं सुसम्पन्न बनाती है । वह अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाकर महामानवों के उच्च स्तर तक पहुँचाता है और सामान्य जीवात्मा न रहकर महात्मा, देवात्मा एवं परमात्मा स्तर की क्रमिक प्रगति करता चला जाता है । जहाँ आत्मिक सम्पन्नता होगी, वहाँ उसकी अनुचरी भौतिक समृद्धि की भी कमी न पड़ेगी । यह बात अलग है कि आत्मिक क्षमताओं का धनी व्यक्ति उन्हें उद्धत प्रदर्शन में खर्च न करके किसी महान् प्रयोजन में लगाने के लिए नियोजित करता रहे और सांसारिक दृष्टि से निर्धनों जैसी स्थिति में बना रहे । इसमें दूसरों को दरिद्रता प्रतीत हो सकती है, पर आत्मिक पूँजी का धनी अपने आप में संतुष्ट रहता है और अनुभव करता है कि वह सच्चे अर्थो में सुसम्पन्न है ।

गायत्री उपासना उस 'प्रज्ञा'को आकर्षित करने और धारण करने की अनुभूत प्रक्रिया है, जो परब्रह्म की विशिष्ट अनुकम्पा, दूरदर्शी, विवेकशीलता और सन्मार्ग अपना सकने की प्रखरता के रूप में साधक को प्राप्त होती है । इस अनुदान को पाकर वह स्वयं धन्य बनता है और

समूचे वातावरण में मलय पवन का संचार करता है । उसके व्यक्तित्व से सारा सम्पर्क क्षेत्र प्रभावित होता है और सुखद सम्भावनाओं का प्रवाह चल पड़ता है ।

**सं उतत्वःपश्यन्नददर्शवाचमुतत्तःश्रृवन्नशृणोत्येनाम्।**
**उतो त्वस्मैतन्वां विसस्रेजायेपत्यवउशतीसुवासाः ॥**

*—सरस्वती रहस्योपनिषद्*

हे भगवती वाक् ! तुम्हारी कृपा से ही सब लोग बोलते हैं । तुम्हारी कृपा से ही विचार करना संभव होता है । तुम्हें जानते हुए भी जान नहीं पाते । देखते हुए भी देख नहीं पाते । जिस पर तुम्हारी कृपा होती है, वही तुम्हें समझ पाता है ।

यह दृश्य जगत पदार्थमय है । इसमें जो सौन्दर्य, वैभव, उपभोग सुख दिखाई पड़ता है, वह ब्रह्म की अपरा प्रकृति का अनुदान है । यह सब गायत्रीमय है । सुविधा की दृष्टि से इसे सावित्री नाम दे दिया गया है, ताकि पदार्थ क्षेत्र में उसके चमत्कारों को समझने में सुविधा रहे । गायत्री की स्थूल धारा सावित्री को जो जितनी मात्रा में धारण करता है, वह भौतिक क्षेत्र में उतना ही समृद्ध सम्पन्न बनता जाता है । इस विश्व में बिखरी हुई शोभा सम्पन्नता को उसी महाशक्ति का इन्द्रियों से अनुभव किया जा सकने वाला स्वरूप कह सकते हैं ।

गायत्री की चेतनात्मक धारा सद्बुद्धि के—ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में काम करती है और जहाँ उसका निवास होता है, वहाँ ब्राह्मणत्व एवं देवत्व का अनुदान बरसता चला जाता है, साथ ही आत्म-बल के साथ जुड़ी हुई दिव्य विभूतियाँ भी उस व्यक्ति में बढ़ती चली जाती हैं । इस तथ्य का उल्लेख शास्त्रों में इस प्रकार हुआ है—

**भूलोकस्यास्य गायत्री कामधेनुर्मता बुधैः ।**
**लोक आश्रायणे नामुं सर्व मेवाधि गच्छति ॥**

*—गायत्री मंजरी*

"विद्वानों ने गायत्री को भूलोक की कामधेनु माना है । उसका आश्रय लेकर हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं ।"

**तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतयसि धामनायसि ।**
**प्रियं देवा नायना धृष्ट देव यजनयसि**
**गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि**
**नहि पद्यते नमस्ते तुरीयाय दर्शनाय पदाय**
**परोरजसेऽसा वदो मा प्रापत् ।**

*वृ. ५ /१४ /७*

हे गायत्री ! तुम तेज रूप हो, निर्मल प्रकाश रूप हो, अमृत एवं मोक्ष रूप हो, चित्तवृत्तियों का विरोध करने वाली हो, देवों की प्रिय आराध्या हो, देव पूजन का सर्वोत्तम साधन हो ।

हे गायत्री ! तुम इस विश्व ब्रह्माण्ड की स्वामिनी होने से एक पदी, वेद विद्या की आधारशिला होने से द्विपदी, समस्त प्राण-शक्ति का संचार करने से त्रिपदी और सूर्य-मण्डल के अन्तर्गत परम तेजस्वी पुरुषों की आत्मा होने से चतुष्पदी हो । रज से परे हे भगवती ! श्रद्धालु साधक सदा तुम्हारी उपासना करते हैं ।

**मेधासि देवि विदिता खिंल शास्त्र साराः ।**

जिससे समस्त शास्त्रों के सार तत्त्व को जाना जाता है, वह मेधा शक्ति आप ही हैं ।

**विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां**
**शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव ।**
**त्वं कीर्तिकांतिकमलामलतुष्टिरूपा**
**मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके ॥**
**गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव**
**स्वाहा स्वधा भगवती सगुणाऽर्धमात्रा ।**
**आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्यं**
**संजीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम् ॥**

*—देवी भागवत्*

आप ही बुद्धिमानों में बुद्धि, बलवानों में शक्ति हैं । आप ही कमला, निर्मला, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि और मुक्ति प्रदान करने वाली हैं ।

वेद की प्रधान शक्ति गायत्री आप ही हैं । स्वाहा, स्वधा, सगुण, अर्धमात्रा आप ही को कहते हैं । देवता और प्राणियों का निस्तार आप ही करती हैं । आपने ही वेद और तन्त्र—आगम और निगम रचे हैं ।

**स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धिः**
**जरापुष्टितुष्टी धृतिः कांतिशांती ।**
**सुविधा सुलक्ष्मीर्गति कीर्तिमेधे**
**त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम् ॥**
**उषसीं चैव गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम् ।**
**वेदानां मातरम् पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम् ।**

*—देवी भागवत्*

तुम्हीं स्मृति, घृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, विद्या, लक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और विश्व बीज तुम्हीं हो । उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, पृथ्वी, अजा, कौशिकी उसे वेदमाता कहते हैं ।

**स्वस्ति श्रद्धति मेधा मधुमति मधुरासंशयः प्रज्ञकांतिः ।**
**विद्या बुद्धिर्बलं श्रीरतुलधनमति सौम्यवाक्यावतीश्च ॥**

अर्थात् वह स्वस्ति, श्रद्धा, अतिमेधा, मधुमती, मधुरा, असंशया, प्रज्ञक्रान्ति, विद्या, बुद्धि, बल, श्री अतुलधन वाली है और अत्यन्त सौम्य वचनों वाली है ।

**मेधा प्रज्ञा प्रतिष्ठा मृदुमधुरगिरा पूर्णविद्या प्रपूर्ण ।**
**प्राप्ताप्रत्यूषचिन्ता प्रणवपश्वशात् प्राणिनां नित्यकर्म ॥**

अर्थात् वह मेधा की प्रज्ञा प्रतिष्ठा-मृदु और मधुर वाणी वाली पूर्ण से अपूर्णा प्राप्त प्रत्यूष काल में चिन्ता और प्रणव के परवशा तथा प्राणियों का नित्य कर्म स्वरूपी है ।

प्रज्ञा तत्त्व का प्रधान कार्य मनुष्य में सत्-असत् निरूपिणी बुद्धि का विलास परिष्कार करना है । इसके मिलने का प्रथम चमत्कार यह होता है कि मनुष्य वासना, तृष्णा की प्रवृत्तियों से ऊँचा उठकर मनुष्योचित कर्म, धर्म को समझने और तदनुसार उत्कृष्टवादी रीतिनीति अपनाने के लिए अन्तः प्रेरणा प्राप्त करता है और साहसपूर्वक आदर्शवादी जीवन जीने की दिशा में चल ही पड़ता है । ऐसे व्यक्ति स्वभावतः दुष्कर्मों से विरत हो जाते हैं और उनके क्रियाकलाप में से फिर अवांछनीयताएँ एक प्रकार से चली ही जाती हैं । इस परिवर्तन को धर्म स्थापना और अधर्म निवारण के रूप में देखा जा सकता है ।

**य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्व गुणान्विताम् ।**
**तत्वेन भरत श्रेष्ठ सि लोके प्रणश्यति ।**

*(महाभारत भी.प.१ । ४ ।१६)*

हे राजन् ! जो इस सर्वगुण सम्पन्न परम पुनीत गायत्री के तत्त्व ज्ञान को समझकर उसकी उपासना करता है, उसका संसार में कभी पतन नहीं होता ।

मस्तिष्क को, सिर को गायत्री का केन्द्र संस्थान बताया गया है । इस प्रतिपादन का तात्पर्य गायत्री को दूसरे शब्दों में विवेक युक्त बुद्धिमत्ता ही ठहराया गया है । सिर उसी का तो स्थान है । कहा भी है—

**अस्याश्च बुद्धिर्महत्त्वं स्वेतर सकल कार्य व्यापकत्वाद् महैश्वर्याच्च मन्तव्यम् ।**

*(सांख्य दर्शन २ ।१३) विज्ञानचक्षु मापक*

यह बुद्धि ही संसार के समस्त कार्यों में प्रकाशित है । इसी की बड़ी सामर्थ्य है ।

मस्तिष्क की तीक्ष्णता-चतुरता, सूझबूझ, स्मरण क्षमता, व्युत्पन्न मति को आमतौर से बुद्धिमत्ता समझा जाता है । पर आध्यात्म के चर्चा प्रसंग में दूरदर्शी विवेकशीलता को प्रसा कहा जाता है । यही आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता है। गायत्री महा शक्ति का अवतरण इसी प्रज्ञा शक्ति के रूप में होता है । साधक को प्रत्यक्ष उपहार यही मिलता है कि वह अपनी चिन्तन क्षमता को निकृष्ट प्रयोजनों से विरत करके, उस तरह सोचना आरम्भ करता है, जिससे जीवनचर्या का सारा ढाँचा ही बदल जाय और मात्र आदर्शवादी गतिविधियों को कार्यान्वित करने की ही सम्भावना शेष रहे ।

सद्बुद्धि से प्रेरित सुव्यवस्थित क्रिया पद्धति और उत्कृष्ट रीति-नीति अपनाने वाला निश्चित रूप से सर्वतोमुखी प्रगति के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है । जिन ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिए लोग लालायित रहते हैं, वे प्रबल पुरुषार्थ के आधार पर ही पाये जा सकते हैं । देवता किसी को छप्पर फाड़कर अशर्फियों का घड़ा नहीं दे जाते । वे मात्र ऐसी सत्प्रेरणा उल्लसित करते हैं, जिससे चिन्तन और कर्त्तव्य के दोनों ही क्षेत्र सद्ज्ञान एवं सत्कर्म से ओतप्रोत हो चलें । प्रबल पुरुषार्थ से तात्पर्य इसी क्षेत्र में आगे बढ़ने से है, अन्यथा सामान्य पुरुषार्थ तो दुष्ट, दुर्गुणी भी करते ही हैं । जहाँ सद्बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म परायणता का प्रबल पुरुषार्थ जगेगा, वहाँ किसी को, किसी वस्तु का, किसी बात का अभाव नहीं रहेगा ।

**गायत्रं हि शिरः । शिरो गायत्र्यः ।**
**अर्कवतीषु गायत्रीषु शिरो भवति ।**

*—ताण्डव ब्राह्मण*

सूर्य के समान तेजस्वी गायत्री का स्थान सिर है ।

**बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि ।** *(गीता ७ ।१०)*

—बुद्धिमानों में बुद्धि मैं ही हूँ ।

**अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्ति स्मृतिस्तथा ।**
**श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥**

*—देवी भागवत्*

अर्थात् मैं ही बुद्धि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, प्यास, क्षमा हूँ ।

**न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपाल वत् यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तम् ।**

ग्वाला जिस प्रकार लाठी लेकर पशुओं की रक्षा करते हैं, उस तरह देवता किसी की रक्षा नहीं करते । वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को सन्मार्ग पर नियोजित कर देते हैं ।

गायत्री का निवास शिरो भाग में बताया गया है । देवताओं का निवास ब्रह्म रन्ध्र में, मस्तक में बताया गया है । सैकड़ों दिव्य शक्तियों का केन्द्र होने के कारण उस केन्द्र को शतदल कमल कहते हैं । यह संख्या हजारों असंख्यों में है । इसलिए उसे सहस्त्र दल कमल कहते हैं ।

कलाष और कल्मषों का निराकरण होने पर आत्मा के भीतर की दिव्य विशेषताएँ सहज ही प्रकट होती और प्रखर बनती हैं । अंगारे पर चढ़ी राख की पर्त को हटा देने पर उसकी धूमिल आभा पुनः प्रकट होती है और उसका वर्चस्व सहज ही दृष्टिगोचर होने लगता है । यही वह स्थिति है, जिसमें कई प्रकार की दिव्य विशेषताओं का आभास मिलता है । दिव्य जीवन स्वभावतः रहस्यमय सिद्धियों का भण्डार होता है । वह अन्तःक्षेत्र में स्वर्ग और मुक्ति जैसा आनन्द उठाता है और अपने साथ-साथ अनेकों को धन्य बनाता है । शंख स्मृति का वचन है—

**अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममभीप्सितम् ।**
**गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥**
**गायत्र्या परमं नास्ति दिवि चेहन पावनम् ।**
**हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥**
**तस्मांत्तासभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।**
**गायत्रीजाप्यनिहरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥**
**तस्मिन्न तिष्ठते पापमेवबिन्दुरिव पुष्करे ॥**
**जपे नैच तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।**
**कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥**
**उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।**
**नोच्चैर्जपं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥**
**सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ।**
**गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ।**
**गायत्री तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥**

*—शंख स्मृति १२ /२४ से ३१*

गायत्री का जप करने वाला अभीष्ट लोकों को प्राप्त होता है और उसकी अभीप्सित कामनायें पूर्ण होती हैं ।

गायत्री वेद जननी है, पापों का नाश करने वाली है । इससे बड़ी पवित्र करने वाली शक्ति न इस लोक में है, न स्वर्ग लोक में । नरक रूपी समुद्र में गिरे हुए को वह हाथ का सहारा देकर उबारती है । अतएव गायत्री की नित्य उपासना करनी चाहिए और हवन करना चाहिए । गायत्री जप करने वाला कमल पत्रवत् रहता है । इसके ऊपर पाप नहीं चढ़ सकता ।

गायत्री जप से निःसन्देह समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । अन्य कोई साधना न भी करे तो भी ब्राह्मण गायत्री का आश्रय लेकर पार हो जाता है । इस उपासना से स्वर्ग भी मिलता है और मोक्ष भी । अतएव नित्य नियमित रूप से गायत्री की भक्तिपूर्वक जप साधना करनी चाहिए ।

गायत्री मंत्र में जिस प्रज्ञा को धियः शब्द से संबोधित किया है और अन्तः चेतना के कण-कण में ओत-प्रोत करने की घोषणा की है, उसी की शास्त्रकारों ने अन्यत्र ऋतम्भरा प्रज्ञा 'भूमा' आदि नामों से चर्चा की है । यह शब्द सामान्य व्यवहार बुद्धि के लिए प्रयुक्त नहीं होता । चतुरता, कुशलता एवं जानकारी की जो शिक्षा स्कूलों, कारखानों एवं बाजार में सीखने को मिलती है, 'प्रज्ञा' उससे सर्वथा भिन्न है । जिस विद्या के आधार पर आत्म-बोध होता है, जीवन का महत्त्व, स्वरूप, लक्ष्य एवं उपयोग विदित होता है । सत्-असत् का, उचित-अनुचित का भेद कर सकने वाली नीर-क्षीर विवेचनी वृत्ति विकसित होती है, उसी को गायत्री कहा जा सकता है ।

गायत्री उपासना के द्वारा प्रज्ञा शक्ति प्राप्त करने के साथ-साथ साधक को वे सभी विशिष्ट क्षमताएँ प्राप्त होती हैं, जिनका वर्णन विद्या-विधा के अवगाहन तथा योग तप आदि के साधना-विधान के साथ जुड़ा हुआ है । गायत्री उपासक की आत्मिक पूँजी निरन्तर बढ़ती चली जाती है और वह यदि धैर्य और साहस के साथ आत्म-संशोधन करते हुए अपने मार्ग पर बढ़ता ही चले तो एक दिन नर से नारायण स्तर पर पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष बनकर रहता है । कहा भी है —

**योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् ।**
**सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धियोगिनी ॥**
**विद्याविद्यावतांत्वञ्च बुद्धिर्बुद्धिमतांसताम् ।**
**मेधास्मृतिस्वरूपाचप्रतिभाप्रतिभावताम् ॥**

**वन्द्या पूज्या स्तुतात्वञ्चब्रह्मदीनाञ्च सर्वदा ।**
**ब्राह्मण्यरूपाविप्राणां तपस्याचतपस्विनाम् ॥**

*—ब्रह्म वैवर्त पुराण*

आप योग निद्रा, योग रूपा-योगदात्री हैं जो कि योगियों को योग प्रदान किया करती हैं । आप सिद्धों को सिद्धियों की देने वाली हैं । आप सिद्धिज्ञ और सिद्धियों की योगिनी हैं ।

आप विद्वानों की विद्या और बुद्धिमान सत्पुरुषों की बुद्धि हैं । जो प्रतिभा वाले पुरुष हैं उनकी आप मेधा, स्मृति और प्रतिभा के स्वरूप वाली हैं ।

आप ब्रह्म आदि समस्त देवताओं द्वारा पूजित हैं । ब्राह्मणों में ब्रह्मणत्व और तपस्वियों में तप आप ही हैं ।

वृहदारण्यक उपनिषद् में गायत्री को ब्रह्म विद्या का, वेद विद्या का, परब्रह्म शक्ति का स्वरूप बताया गया है और कहा गया है कि इस महाशक्ति का आश्रय लेकर साधक ब्रह्म तेज का अधिकारी बनता है और वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है, जो इस संसार में पाने योग्य है ।

संसार में जितने भी अभाव और कष्ट हैं, जितनी भी आधि-व्याधियाँ हैं, उन सब को शक्ति की न्यूनता का प्रतिफल ही समझा जाना चाहिए । आत्म-शक्ति के अभाव में मनुष्य की विचारणा निकृष्ट बनती है और प्रतिभा के अभाव में सुख, साधनों से वंचित रहना पड़ता है, अस्तु शक्ति संचय के निरन्तर प्रयत्न करने चाहिए । भौतिक समर्थता किस प्रकार प्राप्त होती है, इसे सब जानते हैं, पर आत्मिक तेजस्विता किस प्रकार पायी जा सकती है इसका मार्ग अध्यात्म विज्ञान में बताया गया है । गायत्री साधना उसी के लिए की जाती है । शक्ति के अभाव में दुर्बलता और दुर्गति होने की चर्चा इस प्रकार आती है ।

**अनुमानमिदं राजन्कर्त्तव्य सर्वथा बुधैः ।**
**दृष्टा रोगयुतान्दोनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान् ॥**
**जनानार्तास्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा ।**
**दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ ।**
**अतृप्तान्भोजने भोगे सदार्तानजितेन्द्रियान् ।**
**तृष्णाधिकानंशक्तांश्च सदाधिपरिपीडितान् ॥**

*— देवी भागवत*

हे राजन् । तुम कहीं पर लोगों को रोगी, दीन दरिद्र, भूखे, प्यासे, शठ, आर्त, मूर्ख, पीड़ित, पराधीन, क्षुद्र, विकल, विह्वल, अतृप्त, असन्तुष्ट, इन्द्रियों के दास, अशक्त और मनोविकारों से पीड़ित देखो, तो समझना इन्होंने शक्ति का महत्त्व नहीं समझा और उसकी उपेक्षा अवहेलना की है ।

यों गायत्री उपासना से मिलने वाले भौतिक, आध्यात्मिक लाभ अगणित प्रकार के हैं । उनमें ऋतंभरा प्रज्ञा की प्राप्ति, सद्बुद्धि का विकास ही अपने आप में इतना बड़ा लाभ है कि अकेले उस आधार पर ही गायत्री को सर्वश्रेष्ठ मंत्र कहा जा सकता है । प्राचीन महापुरुषों के अनुसार भी यह सत्य है । गायत्री का जप विविध फलों का प्रदाता बताया गया है ।

यों गायत्री बिल्कुल छोटा सा मन्त्र है, इसके तीन पाद या चरण होने से इसे त्रिपदा भी कहा गया है । गायत्री मंत्र का सीधा सादा अर्थ है, भगवान् सविता के श्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं । वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दें । इस मंत्र के अंतिम चरण में (धियो यो न प्रचोदयात्) इस बुद्धि की माँग है । सद्बुद्धि से बढ़कर कौन-सी वस्तु हो सकती है ।

मानव-जीवन की महत्ता बुद्धि के उत्कर्ष में है । उस बुद्धि को यदि भगवान् सूर्य जैसे तेजस्वी तत्त्व से प्रेरणा मिल जाय, तो उससे सब प्रकार के साधन-सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं । केवल सांसारिक ही नहीं किन्तु आध्यात्मिक उन्नति भी बुद्धि को योग्य प्रकार से प्रेरणा मिलने पर ही प्राप्त होती है । स्वर्ग, आत्मा, ईश्वर पुनर्जन्म को न मानने वाले नास्तिक बुद्धि के आधार पर अपना विवेचन करते हैं, अर्थात् बुद्धि का आदर उनको भी अनिवार्य है । ऐसी सर्वमान्य तथा सबको माननीय 'बुद्धि' को प्रेरणा मिले, इस प्रकार की प्रार्थना का प्रतिवाद नास्तिक भी नहीं कर सकते । स्वर्ग, मोक्षादि गूढ़ वस्तुओं में विश्वास न होने के कारण नास्तिक उनका खण्डन कर सकते हैं । स्वर्ग, मोक्षादि का हर एक के अनुभव में आना भी असम्भव नहीं है । मानो यही संकट देखकर ऋषि ने गायत्री मन्त्र में 'बुद्धि' की ऐसी माँग रख दी है, जिसका विरोध या प्रतिवाद कोई भी नहीं कर सकता ।

इस मन्त्र में 'धियः' अर्थात् बुद्धि का प्रयोग बहुवचन में किया है । "अनेक प्रकार की बुद्धि" ऐसा अर्थ उससे निकलता है । हिन्दू संस्कृति केवल आध्यात्मिकता का विचार करती है, ऐसा मानकर व्यक्ति आधिभौतिक की उपेक्षा करना अपना आदर्श बतलाते हैं । परन्तु "धियः" शब्द के प्रयोग से उसका खण्डन हो जाता है । केवल आध्यात्मिक ही नहीं, किन्तु भौतिक, आर्थिक, राजकीय— सब प्रकार की बुद्धि बढ़ जाय, यह गायत्री मन्त्र की प्रार्थना

है । भूत विद्या, मनुष्य विद्या वाकोवाक्य, राशि, क्षात्र विद्या, नक्षत्र विद्या, जन विद्या इत्यादि नाम उपनिषदों में पाये जाते हैं । अर्थात् अनेक प्रकार की बुद्धि । यह अर्थ 'धियः' से लिया जाय तो उसमें अनौचित्य का कुछ भी संदेह नहीं होना चाहिए ।

नास्तिक युग में भी बुद्धि की श्रेष्ठता जिस प्रकार निर्विवाद है, उसी प्रकार सूर्य देवता की श्रेष्ठता भी त्रिकाल बाधित है । सूर्य को चाहे कोई देवता न माने, परन्तु उसका जागतिक जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध मानना सबको अनिवार्य है । दो दिन बादल घिरे रहें और सूर्य का दर्शन न हो तो वायु दूषित बन जाती है, बीमारियाँ फैलती हैं । अतएव सूर्य का महत्त्व सुस्पष्ट है । नास्तिक भी इससे इनकार नहीं कर सकता । गायत्री मन्त्र का प्रभाव निरपवाद होने से इस विषय में भी शंका होना असम्भव है । आदमी जिस-जिस चीज का ध्यान करता है उसी प्रकार की उसकी वृत्ति बन जाती है, यह प्राकृतिक सिद्धान्त है । 'सूर्य भगवान् के भास्वर तेज का हम ध्यान करते हैं—ऐसा गायत्री मन्त्र के प्रथम चरण का अर्थ है । ऐसे तेजस्वी पदार्थ का ध्यान करने वाले स्वयं तेजस्वी बनेंगे यह मानस शास्त्र अथवा मनोविज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध हो चुका है । किसी से न दबते हुए, तेजस्वी रहने की किसकी इच्छा न होगी ?

**प्रब्रवाम शरदः शतम् । अदीन स्याम शरदः शतम् ।**

"सौ वर्ष तक अधिकारपूर्ण वाणी से बोलते रहेंगे । सौ वर्ष तक हम दैन्य रहित जीवन बितायेंगे ।" इस प्रकार की आकाँक्षायें वेद में (वाजसनेय संहिता ३६-२४) भी स्पष्ट हैं । सूर्य तेजस्विता का प्रतीक है । वही गायत्री मन्त्र का देवता है । यह सराहनीय सर्वोच्च देवता का ध्यान मानवीय उन्नति का साधन मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । गायत्री मन्त्र का देवता इस प्रकार सब के लिये सराहनीय है ।

आजकल गायत्री मन्त्र का पठन गुप्तता से किया जाना आवश्यक बताया जाता है । एकान्त में इस मन्त्र का जप अकेले-दुकेले किया करते हैं, परन्तु ऊपर दिये हुए मंत्रार्थ पर ध्यान देने से सत्य बात कुछ और ही मालूम पड़ती है । इस मन्त्र में "धीमहि"(हम ध्यान करते हैं) और "नः" (हमारी) ये बहुबचन युक्त प्रयोग इस मन्त्र की सामुदायिकता पर प्रकाश डालते हैं, वास्तव में देखा जाय तो गायत्री मन्त्र सामुदायिक प्रार्थना मन्त्र है । अकेले-दुकेले में भी इस मन्त्र का जप करना हानिकर नहीं, किन्तु उस समय में भी जपकर्त्ता को चाहिये कि वह अपने को व्यक्तिगत रूप में न मानकर समाज का एक घटक समझ कर जप करे । इस प्रकार गायत्री जप जैसे बने वैसे करने की शास्त्राज्ञा है —

**यथा कथचिज्जप्तैषा देवी परम पावनी ।**
**सर्वकामप्रदा प्रोक्ता विधिना कि पुनर्नृप ॥**

*—विष्णु धर्मोत्तरे १-१६५-१५*

इस श्लोक में मार्कण्डेय ऋषि ने वज्र राजा से निश्चयपूर्वक कहा है कि "गायत्री जप जैसे बने वैसे करने से भी' मनुष्य को पवित्र कर उसकी सब कामनायें सफल बना देता है, फिर वैध रीति से जपानुष्ठान करने वाले के विषय में कहना ही क्या ?" अर्थात् जीवन व्यवसाय में फँसे हुए आदमी को भी इस मन्त्र से लाभ उठाना सहज है । बड़ा विधि-विधान और आडम्बर करने पर ही गायत्री का फल मिलता हो और जैसे तैसे तप कर लेने से पाप होता हो, सर्वसाधारण में फैली हुई यह धारणा गलत है, शिक्षित, अशिक्षित सभी के लिए समान रूप से फलप्रद है ।

इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है— बुद्धि-विवेक । गायत्री मंत्र इसी सामर्थ्य को बढ़ाने वाला होने के कारण सभी स्तर के व्यक्तियों के लिए उपयोगी और आवश्यक है । पूर्वोक्त श्लोक में गायत्री मन्त्र की बुद्धि विवेकदायी क्षमता को ध्यान में रखते हुए ही शास्त्रकार ने हर वर्ग के, हर स्तर के व्यक्तियों को गायत्री मंत्र करने का निर्देश दिया है ।

## गायत्री की गुप्त शक्ति

गायत्री सनातन एवं अनादि मन्त्र है । पुराणों में कहा गया है कि —"सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को आकाशवाणी द्वारा गायत्री मन्त्र प्राप्त हुआ था । इसी की साधना का तप करके उन्हें सृष्टि-निर्माण की शक्ति प्राप्त हुई । गायत्री के चार चरणों की व्याख्या स्वरूप ही ब्रह्माजी ने चार मुखों से चार वेदों का वर्णन किया । गायत्री को वेदमाता कहते हैं । चारों वेद गायत्री की व्याख्या मात्र हैं ।" गायत्री को जानने वाला, वेदों को जानने का लाभ प्राप्त करता है ।

गायत्री के २४ अक्षर अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं के प्रतीक हैं । वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् आदि में जो शिक्षायें मनुष्य जाति को दी गई हैं, उन सबका सार इन २४ अक्षरों में मौजूद है । इन्हें अपना कर मनुष्य प्राणी

व्यक्तिगत तथा सामाजिक सुख शांति को पूर्णरूप से प्राप्त कर सकता है ।

गायत्री, गीता, गंगा और गौ यह भारतीय संस्कृति की चार आधारशिला हैं, इन सबमें गायत्री का स्थान सर्व-प्रथम है । जिसने गायत्री के छिपे हुए रहस्यों को जान लिया, उसके लिए कुछ जानना शेष नहीं रहता ।

समस्त धर्म ग्रन्थों में गायत्री की महिमा एक स्वर से कही गई है । समस्त ऋषि, मुनि मुक्त कण्ठ से गायत्री का गुणगान करते हैं । शास्त्रों में गायत्री की महिमा बताने वाला इतना साहित्य भरा है कि उसका संग्रह किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ ही बन सकता है । गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है—'गायत्री छन्दसामहम' अर्थात् 'गायत्री मन्त्र मैं स्वयं ही हूँ ।'

गायत्री उपासना के साथ-साथ अन्य कोई उपासना करते रहने में कोई हानि नहीं। सच तो यह है कि अन्य किसी भी मन्त्र का जप करने में यदि देवता की उपासना में तभी सफलता मिलती है, जब पहले गायत्री द्वारा उस मन्त्र या देवता को जागृत कर लिया जाय ।

गायत्री सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम मन्त्र है । जो कार्य संसार में किसी अन्य मन्त्र से हो सकता है, गायत्री से भी अवश्य हो सकता है । इस साधना में कोई भूल रहने पर भी किसी का अनिष्ट नहीं होता, इससे सरल स्वल्प श्रम साध्य और शीघ्र फलदायिनी साधना दूसरी नहीं है ।

गायत्री की साधना द्वारा आत्मा पर जमे हुए मल विक्षेप हट जाते हैं, तो आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रगट होता है और अनेक ऋद्धि-सिद्धियाँ परिलक्षित होने लगती हैं । दर्पण मांज देने पर उसका मैल छूट जाता है व उसी प्रकार गायत्री साधना से आत्मा निर्मल एवं प्रकाशवान् होकर ईश्वरीय गुणों, सामर्थ्यों एवं सिद्धियों से परिपूर्ण बन जाती है ।

आत्मा के कल्याण की अनेक साधनाएँ हैं । सभी का अपना-अपना महत्त्व है और उसके परिणाम भी अलग-अलग हैं । 'स्वाध्याय' से सन्मार्ग की जानकारी होती है । सत्संग से स्वभाव और संस्कार बनते हैं । कथा सुनने से सद्भावनाएँ जागृत होती हैं । 'तीर्थयात्रा' से भावाँकुर पुष्ट होते हैं । 'कीर्त्तन' से तन्मयता का अभ्यास होता है । 'दान पुण्य' से सौभाग्यों की वृद्धि होती है । पूजा अर्चना से आस्तिकता बढ़ती है । इस प्रकार यह सभी साधन ऋषियों ने बहुत सोच-समझ कर प्रचलित किये हैं, पर तप का महत्त्व इन सबसे अधिक है । तप की अग्नि में पड़कर ही आत्मा के मल विक्षेप और पाप ताप जलते हैं । तप के द्वारा ही आत्मा में वह प्रचण्ड बल पैदा होता है, जिसके द्वारा सांसारिक तथा आत्मिक जीवन की समस्यायें हल हो सकती हैं । तप की सामर्थ्य से ही नाना प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ और दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । इसीलिए 'तप' साधन को सबसे अधिक शक्तिशाली माना गया है । तप के बिना आत्मा में अन्य किसी भी साधन से तेज, प्रकाश, बल एवं पराक्रम उत्पन्न नहीं होता ।

गायत्री उपासना प्रत्यक्ष तपश्चर्या है, इससे तुरन्त आत्मबल बढ़ता है । गायत्री साधना एक बहुमूल्य दिव्य सम्पत्ति है । इस संपत्ति को इकट्ठी करके साधक उसके बदले में सांसारिक सुख एवं आत्मिक आनन्द भली प्रकार प्राप्त कर सकता है ।

गायत्री मन्त्र से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है । इस महामन्त्र की उपासना आरम्भ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे आत्मिक क्षेत्र में एक नई हलचल एवं रद्दोबदल आरम्भ हो गई है । सतोगुणी तत्वों की अभिवृद्धि होने से दुर्गुण, कुविचार दुःस्वभाव एवं दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं और प्रेम, नम्रता, पवित्रता, उत्साह, स्फूर्ति, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शांति, सेवाभाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन-व-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है । फलस्वरूप लोग उसके स्वभाव एवं आचरण से सन्तुष्ट होकर बदले में प्रशंसा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव रखते हैं और समय-समय पर उसकी अनेक प्रकार से सहायता करते रहते हैं । इसके अतिरिक्त सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में उनका निवास होता है, वहीं आत्मसन्तोष की परम शान्तिदायक शीतल निर्झणी सदा बहती रहती है । ऐसे लोग सदा स्वर्गीय सुख का आस्वादन करते हैं । गायत्री साधना से साधक के मनःक्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है । विवेक, दूरदर्शिता, तत्त्वज्ञान और ऋतम्भभरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञानज्न्य दुःखों का निवारण हो जाता है । प्रारब्धवश, अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं । हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विभिन्न परिस्थितियों से जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग, मृत्यु तुल्य कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्म-बल सम्पन्न गायत्री साधक

अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, सन्तोष, संयम और ईश्वर विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है । बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी वह अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ़ निकालता है और मस्ती, प्रसन्नता एवं निराकुलता का जीवन बिताता है ।

प्राचीन काल में ऋषियों ने बड़ी-बड़ी तपस्याएँ और योग साधनाएँ करके अणिमा, महिमा आदि चर्मसिद्धियाँ प्राप्त की थीं । उनके शाप और वरदान सफल होते थे तथा वे कितनी अद्‌भुत एवं चमत्कारी सामर्थ्यो से भरे पूरे थे, इनका वर्णन इतिहास पुराणों में भरा पड़ा है । वह तपस्याएँ और योग साधनाएँ गायत्री के आधार पर ही होती थीं । गायत्री महाविद्या से ही ८४ प्रकार की महान् योग साधनाओं का उद्‌भव हुआ है ।

गायत्री उपासना एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम है, जिसका परिणाम जीवन और शरीर को पुष्ट, बलवान एवं सुव्यवस्थित बनाना है । सकाम कामना के लिए की हुई गायत्री साधना से अभीष्ट परिणाम प्राप्त न भी हों तो भी उसका शुभ परिणाम अन्य मार्ग से अवश्य प्राप्त हो जाता है । कोई बड़ी कुश्ती पछाड़ने के लिए कोई व्यक्ति अखाड़े में आया करे तो उसका शरीर दिनोंदिन अवश्य मजबूत होगा । वह मनोवांछित कुश्ती पछाड़ने में असफल भी हो तो यह नहीं सोचना चाहिए कि उसका व्यायाम तथा पौष्टिक आहार व्यर्थ चला गया । कुश्ती वह भले ही हार जाय पर निरोगता जीवन शक्ति, दीर्घजीवन, कमाने की क्षमता, बलवान संतान, शत्रुओं से निबट लेने की सामर्थ्य आदि अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं, जिन्हें कुश्ती पछाड़ने से कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझना चाहिए । इसी प्रकार गायत्री उपासना कभी असफल नहीं होती । अटल प्रारब्ध निविचन रूप से न टल सके तो भी अन्य अनेकों रीतियों से उपासना साधन के लिए शुभ परिणाम का आयोजन करती है ।

वशिष्ठ, याज्ञयलक्य, अत्रि, विश्वामित्र, पाराशर, भारद्वाज, गौतम, व्यास, शुकदेव, नारद, दधीचि, बाल्मीकि, च्यवन, शंख, लोमस, तैत्तिरेय, जावालि, शृंङ्गी, उद्दालक, वैशम्पायन, दुर्वासा, परशुराम, पुलस्त्य, दत्तात्रेय, अगस्त्य, सनत्कुमार, कण्व, शौनक आदि ऋषियों के जीवन वृत्तान्त जिन्होंने पढ़े हैं, वे जानते हैं कि उनकी महानता, शक्तियाँ एवं सिद्धियाँ जिस आधारशिला पर अवस्थित थीं, वह गायत्री ही है ।

प्राचीन काल की भाँति अब भी वही मार्ग है । यद्यपि यवन राज्य के पिछले अज्ञानान्धकार युग में अगणित सम्प्रदाय मत मतान्तर उपज पड़ें और उनने अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार नाना प्रकार के साधना पन्थ बना लिए । फिर भी ऐसी साधना जो पूर्ण सिद्धावस्था तक साधक को पहुँचा सके, गायत्री के अतिरक्त और कोई सिद्ध न हो सकी । जिसने भी पूर्णतः एवं परम सिद्धावस्था पायी है, उसने गायत्री माता का आश्रय अवश्य लिया है । मध्यकाल में महाभारत से लेकर अब तक के सभी सिद्ध पुरुष प्रायः इसी राजमार्ग से चले हैं । उनका मत, ग्रन्थ तथा विशेष साधन चाहे पृथक् भले ही रहे हों, पर मूल आश्रय को किसी ने भी नहीं छोड़ा है । वर्तमान काल में भी जिनने आत्मिक दृष्टि से कुछ विकास किया है, उन्हें वेदमाता का पय पान करने का सौभाग्य अवश्य मिला है ।

गायत्री भगवान् का नारी रूप है । भगवान् की माता के रूप में उपासना करने से दर्पण के प्रतिबिम्ब एवं कुएँ की आवाज की तरह वे भी हमारे लिए उसी प्रकार प्रत्युत्तर देते हैं । संसार में सबसे अधिक स्नेहमूर्ति माता होती है। भगवान् की माता के रूप में उपासना करने से प्रत्युत्तर में उनका अपार वात्सल्य प्राप्त होता है । मातृ पूजा में नारी जाति के प्रति पवित्रता, सदाचार एवं आदर के भाव बढ़ते हैं, जिनकी मानव जाति को आज अत्यधिक आवश्यकता है।

गायत्री को भूलोक की कामधेनु कहा गया है, क्योंकि यह आत्मा की समस्त क्षुधा पिपासाएँ शान्त करती हैं । गायत्री को 'सुधा' कहा गया है — क्योंकि जन्म मृत्यु के चक्र से छुड़ा कर सच्चा अमृत प्रदान करने की शक्ति से वह परिपूर्ण है । गायत्री को पारसमणि कहा गया है, क्योंकि उसके स्पर्श से लोहे के समान कलुषित अन्तःकरणों का शुद्ध स्वर्ण जैसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है । गायत्री को 'कल्प वृक्ष' कहा गया है, क्योंकि इसकी छाया में बैठकर मनुष्य उन सब कामनाओं को पूर्ण कर सकता है, जो उसके लिए उचित एवं आवश्यक हैं ।

श्रद्धापूर्वक गायत्री माता का अंचल पकड़ने का परिणाम सदा कल्याणकारक ही होता है । गायत्री को 'ब्रह्मास्त्र' कहा गया है, क्योंकि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती । इसका प्रयोग कभी भी व्यर्थ नहीं होता ।

## १.१० गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

गायत्री उपासना से मनुष्य की अनेक कठिनाइयाँ हल होती हैं । ऐसे अनेकों उदाहरण मौजूद हैं कि जो लोग आरंभ में दरिद्रता का अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते थे, अपने मामूली गुजारे की भी व्यवस्था जिनके पास न थी, कर्ज के बोझ से दबे हुए थे, व्यापार में घाटा जा रहा था, उन्होंने गायत्री की उपासना की और अर्थ संकट को पार करके ऐसी स्थिति पर पहुँच गए कि जिससे अनेकों को ईर्षा होती है । कम पढ़े और छोटी नौकरियों पर काम करने वालों की ऊँचे पद पर पहुँचने के उदाहरण मौजूद हैं । जिनकी बुद्धि बड़ी ही भौंडी और मन्द थी, वे चतुर तीक्ष्ण बुद्धि और विद्वान बने हैं । जिनकी परीक्षा में उत्तीर्ण होने की आशा नहीं करता था, ऐसे विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से पास हुए हैं । झगड़ालू, चिड़चिड़े, क्रोधी, व्यसनी, बुरी आदतों में फँसे हुए, आलसी एवं मूढ़मति लोगों के स्वभाव में ऐसा परिवर्तन हुआ है, कि लोग दाँतों-तले उँगली दबाये रह गए ।

गायत्री साधना के चमत्कारी लाभ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगट होते रहते हैं । जिनके दाम्पत्य जीवन बड़े कर्कश थे, पति पत्नी में कुत्ता-बिल्ली का सा बैर रहता था, वहाँ प्रेम की निर्झरणी बहती देखी गई । भाई-भाई जो एक दूसरे के जानी दुश्मन बने हुए थे, उनमें भरत मिलाप हुआ । जो कुटुम्ब, परिवार क्लेश और कलह की अग्नि में झुलस रहे थे, वहाँ शाँति की वर्षा हुई । फौजदारी, मुकदमेबाजी, कत्ल, चोरी, डकैती की आशंका से जहाँ हर घड़ी भय रहता था, वहाँ निर्भयता का एकक्षत्र राज हुआ। शत्रुओं के आक्रमण में जो लोग घिरे हुए थे, वे इन आपत्तियों से बाल-बाल बच गए ।

बीमारी से कितने ही साधकों का पिंड छूटा है । कई तो तपैदिक की मृत्यु शैया पर पड़े-पड़े यमराज से लड़े हैं और उनकी डाढ़ों में से वापस लौटे हैं । भूतोन्माद, दुःस्वप्न, मूर्च्छा, हृदय की निर्बलता, गर्भाशय का विषैला होना और रोगों से कितनों ने ही मुक्ति पायी है । कोढ़ी शुद्ध हुए हैं, असंयत जीवन कम और कुविचारों से उत्पन्न होने वाले स्वप्न दोष, प्रमेह आदि रोगों का मन शुद्धि के साथ-साथ तुरन्त ही कम होना आरम्भ हो जाता है । दुर्बल जीर्ण रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को वेद माता की गोद में पहुँच कर बड़ी शान्ति मिलती देखी है । सन्निपात, शीतला, हैजा, प्लेग, मोतीझरा, निमोनियाँ आदि कठिन रोगों में गायत्री ने चक्र सुदर्शन की तरह रक्षा की है ।

चिन्ताओं के दबाव से जो मस्तिष्क फटते रहते थे, उन्हें निश्चिन्तता और सन्तोष की साँस लेते हुए देखा गया है । मृत्यु, शोक, सम्पत्ति का नाश, ऋण-ग्रस्तता, बात बिगड़ जाने का भय, कन्या विवाह का खर्च, प्रियजनों का बिछोह, जीविका का आश्रय टूट जाना, अपमान, असाध्य रोग, दरिद्रता, शत्रुओं का प्रकोप, बुरे भविष्य की आशंका आदि कारणों से जिन्हें हर घड़ी चिन्ता घेरे रहती थी उन्हें माता की कृपा से पूर्ण निश्चिन्तता प्राप्त हुई है, उन्हें आकस्मिक सहायता मिली है या भीतर से प्रेरणा द्वारा कोई उपाय सूझ पड़ा है या अन्तःकरण में ऐसा विवेक और आत्म-बल प्रगट हुआ है जिससे उस अवश्यम्भावी अटल प्रारब्ध को हँसते-हँसते वीरतापूर्वक सहन कर लिया ।

पुरुषों की ही भाँति स्त्रियाँ भी प्रसन्नतापूर्वक गायत्री उपासना कर सकती हैं । विधवाएँ आत्म-संयम, इन्द्रिय निरोध, मनोनिग्रह एवं सात्विकता की वृद्धि करने में गायत्री की सहायता से सफल होती हैं । वे घर में रहकर इस तपस्या द्वारा आत्म-कल्याण, प्रभु प्राप्ति एवं जीवन मुक्ति प्राप्त कर सकती हैं । कुमारी कन्याओं की गायत्री साधना उनको घर पर तथा अनन्त सौभाग्य प्राप्त करने में सहायक होती है । सधवाएँ गायत्री साधना द्वारा दम्पत्ति जीवन में प्रेम, घर में सुख-शान्ति एवं समृद्धि, बालको का कुशलक्षेम प्राप्त करती हैं । गर्भवती स्त्रियाँ वेद माता की उपासना करके स्वस्थ, तेजस्वी, बुद्धिमान, दीर्घ-जीवी एवं भाग्यवान बालक प्राप्त करती हैं ।

गृही-विरक्त स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी अपनी स्थिति और सुविधा के अनुसार गायत्री माता का आश्रय लेकर अपने भीतर और बाहर फैले हुए अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न कर सकते हैं । अविश्वासी व्यक्ति परीक्षा की दृष्टि से कुछ समय गायत्री उपासना करके देखें तो उनका अविश्वास विश्वास में परिणित होकर रहता है ।

गायत्री जप एक आवश्यक नित्य कर्त्तव्य है । इस धर्म-कर्त्तव्य की उपेक्षा करने वालों को शास्त्रकारों ने 'शूद्र' कहा है । मनुष्य का हाड़माँस का शरीर माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, किन्तु आध्यात्मिक जीवन गायत्री माता के द्वारा ही मिलता है । यह दूसरा जन्म होने पर कोई व्यक्ति द्विज कहलाता है । जहाँ गायत्री की नियमित साधना होती है, वहाँ कल्याण की निरन्तर वर्षा होती रहती है ।

# गायत्री से सद्बुद्धि और सुमति

गायत्री सद्बुद्धि का मन्त्र है । इस महामंत्र में कुछ ऐसी विलक्षण शक्ति है कि उपासना करने वाले के मस्तिष्क और हृदय पर बहुत जल्दी आश्चर्यजनक प्रभाव परिलक्षित होता है । मनुष्य के मनः क्षेत्र में समाए हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, चिन्ता, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, पाप, कुविचार आदि चाहे कितनी ही गहरी जड़ जमाए बैठे हों, मन में तुरन्त ही हलचल आरम्भ होती है और उनका उखड़ना, घटना तथा मिटना प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगता है ।

संसार में समस्त दुःखों की जननी कुबुद्धि ही तो है । जितने भी दुःखी मनुष्य इस विश्व में दीख पड़ते हैं, उनके दुःखों का एकमात्र कारण उनके आज के अथवा भूतकाल के कुविचार ही हैं । परमात्मा का युवराज मनुष्य दुःख के निमित्त नहीं, अपने पिता के इस पुण्य उपवन — संसार में आनन्द की क्रीड़ा करने के लिए आता है । इस स्वर्गादपि 'गरीयसी' धरती माता पर वस्तुतः दुःख का अस्तित्व नहीं है । कष्टों का कारण तो केवल 'कुबुद्धि' है । यदि दुष्ट बुद्धि हमें आनन्द से वंचित करके नाना प्रकार के क्लेशों, भयों एवं शोक सन्तापों में फँसा देती है । जब तक यह कुबुद्धि मन में रहती है, तब तक कितनी ही सुख सामिग्री प्राप्त होने पर भी चैन नहीं मिलता । कोई न कोई क्लेश सामने खड़ा ही रहता है । एक चिंता दूर नहीं हो पाती कि दूसरी सामने आ खड़ी होती है । इस विषम स्थिति से छुटकारा पाने के लिए सुबुद्धि की स्थापना आवश्यक होती है । इसके बिना शांति मिलना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं । सद्बुद्धि की अजस्र धारा गायत्री माता का पय पान करने से प्राप्त होती है । इसे पाकर मनुष्य आधिदैविक, आधिदैहिक, आधिभौतिक त्रिपापों से छुटकारा पाकर सच्ची शांति का अधिकारी बनता है ।

संसार में जितने दुःख हैं, कुबुद्धि के कारण हैं । लड़ाई, झगड़ा, आलस्य, दरिद्रता, व्यसन, व्यभिचार, आवारागिर्दी, कुसंग, कटु भाषण, चोरी, स्वार्थपरता, ज्वारी, छल, निष्ठुरता, अन्याय, अत्याचार, असंयम आदि के पीछे मनुष्य की बुद्धि ही काम करती है । इन्हीं कारणों से रोग, अभाव, चिन्ता, कलह आदि का ही प्रादुर्भाव होता है और इन्हीं से नाना प्रकार की पीड़ाएँ, सहनी पड़ती हैं । कर्म का फल निश्चित है । बुरे कर्म का फल बुरा ही होता है । कुबुद्धि से बुरे विचार बनते हैं । इसलिये कुबुद्धि को पापों की जननी कहा गया है । पूर्व जन्म के प्रारब्धगत पाप भी पूर्व जन्मों की कुबुद्धि के परिणाम हैं । इसलिए यही मालूम पड़ता है कि जो भी कठिनाई हमारे सामने आती है, वर्तमान काल की व भूतकाल की कुबुद्धि ही मूल कारण है । गायत्री मन्त्र का प्रधान कार्य इस कुबुद्धि को हटाना है । उपासना के फलस्वरूप मस्तिष्क में सद्विचार और हृदय में सद्भाव उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके कारण मनुष्य का जीवन क्रम ही बदल जाता है । सद्भावना की वृद्धि के साथ-साथ उसे अनायास अनेक प्रकार के सुख-सौभाग्य उपलब्ध होते हैं, साथ ही उसके समीप रहने वाले, पड़ोसी एवं सम्बन्धी भी उसकी समीपता से सुख तथा संतोष लाभ करते हैं । ऐसे व्यक्ति जहाँ भी रहते हैं, वहाँ सुखद वातावरण उत्पन्न करते हैं ।

जिनकी स्मरण शक्ति शिथिल है, बुद्धि मन्द है । मस्तिष्क जल्दी थक जाता है, उन्हें गायत्री उपासना करके थोड़े ही समय में इस महान् शक्ति के चमत्कार देखने को मिलते हैं । कीमती दवाएँ जो कार्य नहीं कर सकतीं वह इससे पूरा होता है । ब्राह्मी तेल लगाने और बादाम पाक सेवन से मस्तिष्क को उतना बल नहीं मिल सकता, जितना इस उपासना से मिलता है । सिर में दर्द, चक्कर, निद्रा न आना, कभी आये दिन नाना प्रकार के रोगी की शिकायतें जिन्हें बनी रहती हैं, उन्हें गायत्री उपासना का अवलम्बन लेना चाहिये । इससे मस्तिष्क के सभी कल पुर्जे बलवान, सजीव, चैतन्य और निरोग बनते हैं । बुद्धि की अधिष्ठावी देवी जिसके मनःक्षेत्र में प्रवेश करेगी, उसका मानसिक विकास होना स्वाभाविक है । मस्तिष्क के अन्तर्गत जो नाना प्रकार की शक्तियाँ सन्निहित हैं, उनका धीरे-धीरे विकास होता है और मनुष्य बुद्धिमान, विवेकशील एवं प्रतिभावान बनता चलता है ।

जिनके घर में कुबुद्धि का साम्राज्य छाया रहता है, आपस में द्वेष, असहयोग, मनमुटाव, कलह, दुराव, एवं दुर्भाव रहता है, आये दिन झगड़े रहते हैं, आपाधापी और स्वार्थपरता में प्रवृत्ति रहती है, गृह-व्यवस्था को ठीक रखने, समय का सदुपयोग करने, योग्यताएँ बढ़ाने, कुसंग से बचने, श्रमपूर्वक आजीविका कमाने, मन लगाकर विद्या-अध्ययन करने में प्रवृत्ति न होना आदि दुर्गुण कुबुद्धि के प्रतीक हैं । जहाँ यह बुराइयाँ भरी रहती हैं, वे परिवार कभी भी उन्नति नहीं कर सकते हैं, अपनी प्रतिष्ठा को कायम नहीं रख सकते, इसके विपरीत उनका पतन होना आरम्भ हो जाता है । बिखरी हुई बुहारी की सीकों

की तरह छिन्न भिन्न होने पर वर्तमान स्थिति भी स्थिर नहीं रहती । दरिद्रता, हानि, घाटा, शत्रुओं का प्रकोप, मानसिक अशांति की अभिवृद्धि आदि बातें दिन-व-दिन बढ़ती हैं और वे घर कुछ ही समय में अपना सब कुछ खो बैठते हैं । कुबुद्धि ऐसी अग्नि है कि वह जहाँ भी रहती है वहीं की वस्तुओं को जलाने और नष्ट करने का कार्य निरन्तर करती रहती है ।

जहाँ उपरोक्त प्रकार की स्थिति हो वहाँ गायत्री उपासना का आरम्भ होना एक अमोघ अस्त्र है । अंगीठी जलाकर रख देने से जिस प्रकार कमरे की सारी हवा गरम हो जाती है और उसमें बैठे हुए सभी मनुष्य सर्दी से छूट जाते हैं, उसी प्रकार घर के थोड़े से व्यक्ति भी यदि सच्चे मन से माता की शरण लेते हैं तो उन्हें स्वयं तो शान्ति मिलती ही है, साथ ही उनकी साधना का सूक्ष्म प्रभाव घर भर पर पड़ता है और चिन्ता-जनक मनोविकारों का शमन होने तथा सुमति, एकता, प्रेम, अनुशासन तथा सद्भाव की परिवार में बढ़ोत्तरी होती हुई, स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । साधना निर्बल हो तो प्रगति धीरे-धीरे होती है, पर होती अवश्य है ।

सद्बुद्धि एक शक्ति है जो जीवन क्रम को बदलती है। उस परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य की परिस्थितियाँ भी बदलती हैं । रेडियो की सुई घुमा देने से कोई दूसरा प्रोग्राम सुनाई पड़ने लगता है । कुबुद्धि के मीटर से सद्बुद्धि की ओर सुई घुमाई जाती है तो पहले गाने बन्द होकर मंगलमय नवीन सन्देश सुनाई पड़ते हैं । गायत्री माता की ओर उन्मुख होने वाला व्यक्ति सद्बुद्धि तथा सुख-शान्ति का वरदान प्राप्त करता है ।

## गायत्री से शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति

जीभ में जो शब्द निकलते हैं उनका उच्चारण कण्ठ, ताल, मूर्धा, ओष्ठ दन्त, जिव्हा, कण्ठमूल आदि-आदि सुख के विभिन्न अंगों द्वारा होता है । इस उच्चारण काल में मुख के भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं, इस फैलाव क्षेत्र में कई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन पर उस उच्चारण का दबाव पड़ता है । शरीर में अनेक छोटी बड़ी दृश्य-अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं । योगी लोग जानते हैं कि उन कोषों में कोई विशेष शक्ति भण्डार छिपा रहता है । सुषुम्ना के सम्बन्ध में षटचक्र प्रसिद्ध हैं । ऐसी अगणित अनेकों ग्रन्थियाँ शरीर में हैं । विभिन्न शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन ग्रन्थियों का शक्ति भण्डार जागृत होता है । मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है । गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं । इनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रन्थियों से है जो जागृत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं । गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झंकार देता है और उससे एक ऐसी स्वर लहरी उत्पन्न होती है, जिसका अदृश्य प्रभाव जगत के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर पड़ता है । यह प्रभाव ही गायत्री साधना के फलों का प्रधान हेतु है ।

जिस प्रकार टाइप-राइटर यन्त्र की कुंजियों पर उंगली रखते ही उससे सम्बन्धित अक्षर की तीली कागज पर लगती है और अक्षर छप जाता है, वैसे ही अमुक अक्षर के उच्चारण से मुँह में जो क्रिया उत्पन्न होती है, उसके कारण कुछ ऐसी नाड़ियाँ विभिन्न स्थानों में अवस्थित बड़ी ही महत्त्वपूर्ण गुप्त ग्रन्थियों पर चोट करके उन्हें जगाती हैं । इस जागरण से वे ग्रन्थियाँ अपने अन्दर बड़ी ही महत्त्वपूर्ण ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न करती हैं, जिन्हें शक्तियाँ या सिद्धियाँ कहते हैं । योगी लोग अन्य योगाभ्यासों द्वारा जिन ग्रन्थियों को जागृत करके सिद्धियाँ एवं शक्तियाँ प्राप्त करते हैं, वे ही ग्रन्थियाँ गायत्री मन्त्र के विधिवत् उच्चारण करते रहने से —जप से स्वमेव जागृत होती हैं, इस प्रकार की योग साधना ही सिद्ध होती है । सितार में कई तार होते हैं, इनके कई क्रम होते हैं । अमुक नम्बर के स्वर के बाद अमुक नम्बर का, फिर अमुक नम्बर का इतना हल्का सा-जोर से बजने पर अमुक प्रकार की स्वर लहरी निकलती है । इस क्रम को बदल कर कोई और प्रकार के क्रम से उन तारों को बजाया जाय तो दूसरी स्वर लहरी निकलती है । इसी प्रकार मन्त्रों में जो अक्षर हैं उनके उच्चारण का क्रम भी शरीर में विशेष प्रकार की शक्तियों का संचार करता है । गायत्री मन्त्र के अक्षरों का अर्थ साधारण है, उसमें भगवान् से सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है । ऐसे मन्त्र और भी अनेकों हैं, पर गायत्री मन्त्र की विशेषता इसलिए अधिक है, कि इसमें अक्षरों का गुंथन बड़े ही चमत्कारी एवं शक्तिशाली ढंग से बन पड़ा है । एक के बाद एक अक्षर ऐसे क्रम से गुथा है कि इनके उच्चारण से सितार के तार की तरह अनायास ही एक आध्यात्मिक संगीत भीतर ही भीतर गूँजता है । जिस गुंजन से आध्यात्मिक जगत के अनेकों पत्ते अपने आप

कमल पुष्प की तरह खुलते चले जाते हैं और उसका परिणाम जप करने वाले के लिए उच्चकोटि के योगाभ्यास की तरह बहुत ही मंगलमय होता है ।

दीपक राग गाने से बुझे हुए दीपक जल उठते हैं, मेघ मल्हार गाने से वर्षा होने लगती है, वेणुनाद सुनकर सर्प लहराने लगता है, मृग सुधि-बुधि भूल जाते हैं, गाएँ अधिक दूध देने लगती हैं । कोयल की बोली सुनकर काम भाव जागृत हो आते हैं । सैनिकों के कदम मिलाकर चलने की शब्द ध्वनि से लोहे के पुल तक गिर सकते हैं, इसलिए पुलों को पार करते समय सेना को कदम मिलाकर न चलने की हिदायत कर दी जाती है । अमेरिका के डाक्टर हचिंसन ने विविध संगीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की है । भारतवर्ष में तांत्रिक लोग थाली को घड़े पर रखकर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प, बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए, कंठमाला, विषवेल, भूतोन्माद आदि के रोगी बहुत करके अच्छे हो जाते हैं । कारण यह कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का परिभ्रमण करते हुए अब अपने उद्गम केन्द्र पर कुछ ही क्षणों में लौट आते हैं तो उनमें अपने प्रकार की विशेष विद्युत शक्तियाँ भरी होती हैं और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उन शक्तियों का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है । मंत्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है । गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आविर्भाव होता है । मन्त्रोच्चारण में मुख के सौ अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों के नाड़ी तन्तु कुछ विशेष ग्रंथियों को गुदगुदाते हैं, उनमें स्फुरण होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक संगीत प्रभाव 'ईथर' तत्त्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में पूरी होने वाली विश्व परिक्रमा से वापस आते-आते एक स्वजातीय तत्त्वों की सेना वापस ले आता है जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती है । शब्द संगीत के शक्तिमय कम्पनों का पंचभौतिक प्रवाह और आत्म-शक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की भावना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया सम्बन्ध, यह दोनों ही कारण गायत्री शक्ति को ऐसी बलवान बनाते हैं, जो साधकों के लिए दैवी वरदान सिद्ध होती है ।

गायत्री मन्त्र को और भी अधिक सूक्ष्म बनाने वाला कारण है साधक का 'श्राद्धमय विश्वास ।' विश्वास की शक्ति से भी मनोवैज्ञानिक वेत्ता परिचित हैं । केवल विश्वास के आधार पर लोग भय की बजह से अकारण काल के मुख में गये और विश्वास के कारण मृत प्रायः लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया । रामायण में तुलसीदासजी ने "भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपणौ" गाते हुए श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आराधना की है । शब्द-विज्ञान और आत्म-सम्बन्ध दोनों महत्ताओं से संयुक्त गायत्री का प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है और वह एक अद्वितीय शक्ति सिद्ध होती है ।

गायत्री २४ शक्तियों को साधक में जागृत करती है। वह गुण इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इनके जागरण के साथ अनेक प्रकार की सफलताएँ, सिद्धियाँ और सम्पन्नता प्राप्त होना आरम्भ हो जाता है । कई लोग समझते हैं कि यह लाभ अनायास कोई देवता दे रहा है । कारण यह है कि अपने अन्दर हो रहे, सूक्ष्म तत्त्वों की प्रगति और परिणित को वे देख और समझ नहीं पाते, यदि वे समझ पावें कि उनकी साधना से क्या-क्या सूक्ष्म प्रक्रियायें हो रही हैं तो यह समझने में देर न लगेगी कि यह सब कुछ कहीं से अनायास दान नहीं मिल रहा है वरन् अध्यात्म विद्या की सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया का यह परिणाम है । गायत्री साधना कोई अन्धविश्वास नहीं एक ठोस वैज्ञानिक कृत्य है और उसके द्वारा लाभ भी सुनिश्चित् ही होते हैं ।

गायत्री-साधना का प्रत्यक्ष परिणाम है —सात्विक आत्म-बल की अभिवृद्धि । सात्विक आत्म-बल के दस लक्षण हैं —उत्साह, सतत् परिश्रम, कर्त्तव्य परायणता, संयम, मधुर स्वभाव, धैर्य, अनुद्वेग, उदारता, अपरिग्रह, तत्त्वज्ञान । यदि कोई व्यक्ति सच्ची गायत्री-साधना कर रहा है, तो उसमें अवश्य ही वैसे जीवन की कठिनाइयों का समाधान होता चलेगा ।

योगी लोग अनेक प्रकार की साधनाओं द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीर में अवस्थित जिन गुप्त शक्तियों को जागृत करते हैं, वे गायत्री जप से अनायास ही जागृत होने लगती हैं । इस प्रकार यह साधना सरल होते हुए भी अत्यन्त उच्च कोटि की योग साधनाओं जैसी महान् फलदायक है । इससे सरल, स्वल्प श्रम साध्य, हानि रहित तथा शीघ्र फलदायिनी साधना और कोई नहीं । कभी कोई भूल हो जाने पर या साधना में कुछ त्रुटि रहने पर भी इससे कभी किसी को, किसी प्रकार की हानि नही होती ।

# गायत्री की दिव्य शक्ति

गायत्री साधना करने वालों को अनेक लाभों से लाभान्वित होते हुए देखा और सुना है । चौबीस अक्षरों के एक संस्कृत भाषा के पद्य (मन्त्र) को जपने या साधना करने से किस प्रकार इतने लाभ होते हैं । यह एक आश्चर्यजनक पहेली है । इस पहेली को ठीक प्रकार न समझ सकने के कारण कई लोग गलत धारणाएँ बना लेते हैं ।

गायत्री एक ऐसा विश्व-व्यापी दिव्य तत्त्व है, जिसे ह्रीं-बुद्धि, श्रीं-समृद्धि, और क्लीं-शक्ति, इन त्रिगुणात्मक विशेषताओं का उद्गम कहा जा सकता है । यह महा चैतन्य दैवी शक्ति जब विश्व-व्यापी पंच तत्त्वों से आलिंगन करती है तो उसकी बड़ी ही रहस्मयी प्रतिक्रियाएँ होती हैं । ईश्वरीय दिव्य शक्ति गायत्री की पंच भौतिक प्रकृति-सावित्री से सम्मिलन पाने के समय जो स्थिति होती है, उसे ऋषियों ने अपनी सूक्ष्म दिव्य दृष्टि से देख कर साधना के लिए मूर्तिमान कर दिया है । विश्व-व्यापिनी गायत्री शक्ति जब आकाश तत्त्व से टकराकर शब्द तन्मात्रा में प्रतिध्वनित होती है, तब उस समय चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मन्त्र के समान ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं । हम उसे अपने स्थूल कानों से नहीं सुन सकते पर ऋषियों ने अपनी दिव्य कर्णेन्द्रियों से सुना कि सृष्टि के अन्तराल में एक दिव्य ध्वनि लहरी गुंजित हो रही है । उसी ध्वनि लहरी को उन्होंने चौबीस अक्षर गायत्री के रूप में पकड़ लिया । इसी प्रकार अग्नि तत्त्व के साथ इस सूक्ष्म शक्ति का सम्बन्ध होते समय, रूप तन्मात्रा में जो आकृति उत्पन्न हुई, वह गायत्री का रूप मान लिया । इसी प्रकार वायु, जल, पृथ्वी की तन्मात्राओं में जो उस सम्मिलित की प्रतिक्रिया हुई उस स्पर्श, रस और गन्ध का गायत्री के साथ सम्बन्ध किया गया ।

मनुष्य का शरीर और मन पंच तत्त्वों का बना हुआ है । पंच तत्त्वों से गायत्री शक्ति का सम्मिलन होते समय सूक्ष्म जगत में जो प्रतिक्रिया होती है, उसी के अनुरूप मानसिक प्रतिक्रिया यदि हम अपनी ओर से अपने मन: क्षेत्र में उत्पन्न करें, तो आसानी से उस दैवी शक्ति गायत्री तक पहुँच सकते हैं । पञ्च भौतिक जगत और सूक्ष्म दैवी जगत के बीच एक नसेनी, रस्सी, पुल, सम्बन्ध सूत्र, ऋषियों को दिखायी दिया था । उसे ही उन्होंने गायत्री-उपासना के रूप में उपस्थित कर दिया है । मन्त्रोच्चारण, ध्यान, तपश्चर्या, व्यवस्था आदि के साथ किये हुए साधन लटकती हुई रस्सियाँ हैं, जिन्हें पकड़ कर हमारी भौतिक चेतना, गायत्री की सर्व शक्तिमान दिव्य चेतना से जा मिलती हैं । जैसे नन्दन वन में पहुँचने पर भूख, प्यास और थकान मिटाने के सब साधन मिल जाते हैं, वैसे ही गायत्री का सान्निध्य प्राप्त कर लेने से आत्मा की सभी त्रुटियाँ, वासनाएँ, तृष्णाएँ, मलीनताएँ दूर हो जाती हैं और स्वर्गीय सुख के आस्वादन का अवसर मिलता है ।

गायत्री साधना का प्रभाव सबसे प्रथम साधक के अन्तःकरण पर होता है । उसकी आत्मिक भूमिका में सतोगुणी तत्त्वों की अभिवृद्धि होनी आरम्भ हो जाती है । किसी पानी के भरे कटोरे में यदि कंकड़ डालना शुरू किया जाय तो पहले का भरा हुआ पानी नीचे गिरने और घटने लगेगा । इसी प्रकार सतोगुण बढ़ने से दुर्गुण, कुविचार, दुस्वभाव, दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं । इसी परिवर्तन के कारण साधक में ऐसी अनेक विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो जीवन को सरल, सफल और शान्तिमय बनाने में सहायक होती हैं । दया, करुणा, प्रेम, मैत्री, त्याग, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता, सत्य, निष्ठा, ईमानदारी, संयम, नम्रता, पवित्रता, श्रमशीला, धर्मपरायणता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन पर दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है । फलस्वरूप संसार में उसके लिए प्रशंसा, कृतज्ञता, प्रत्युपकार, श्रद्धा, सहायता एवं सम्मान के भाव बढ़ते हैं और लोग उस प्रत्युपकार से संतुष्ट करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होगा, वहाँ आत्म-सन्तोष की शीतल निर्झरिणी सदा बहती रहेगी । ऐसे लोग चाहे जीवित अवस्था में हों, चाहे मृत अवस्था में सदा स्वर्गीय सुख का आस्वादन करते रहेंगे ।

गायत्री साधना से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के चतुष्टय में असाधारण हेर-फेर होता है । विवेक, दूरदर्शिता, तत्त्वज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि का विशेष रूप से उत्पन्न होने के कारण अनेक अज्ञानजन्य दुःखों का निवारण हो जाता है । प्रारब्धवश विपरीत, कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं । हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विपन्न परिस्थितियों में जहाँ साधारण मनोभूमि में लोग मृत्यु तुल्य मानसिक कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्म-बल सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस,

आशा, धैर्य, सन्तोष और ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है । बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ़ निकालता है और मस्ती, प्रसन्नता एवं निराकुलता का जीवन बिताता है ।

संसार में समस्त दुःखों के तीन कारण हैं-(१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव । अन्तःकरण में सतोगुण बढ़ने से इन तीनों का ही निवारण होता है । सद्ज्ञान के बढ़ने से दुःखदायी भ्रान्त धारणाएँ, कल्पनाएँ और इच्छाएँ समाप्त होकर सद्गुण बढ़ते हैं । इन गुणों के कारण आहार-विहार एवं जीवन-क्रम संयमपूर्ण एवं सुव्यवस्थित हो जाता है । फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ बढ़ती हैं । स्वस्थता, स्वच्छता और सुरक्षा रहती है । लोगों का सहयोग बढ़ता है । योग्यताएँ बढ़ने, आवश्यकताएँ संयमित होने और व्यवस्था शक्ति तीक्ष्ण होने से साधारण आर्थिक स्थिति में भी कोई अभाव नहीं रहता । उसे सब दिशाओं में अपना भण्डार भरा-भरा ही दिखाई पड़ता है । जैसे उत्तम भूमि में उगे हुए पौधे के सभी भाग, सभी अंग-प्रत्यंग परिपुष्ट और सुविकसित रहते हैं, वैसे ही गायत्री भूमिका से सम्बन्धित मनुष्य का मानसिक, शारीरिक एवं सांसारिक जीवन सदा शान्त, स्वस्थ्य एवं समृद्ध बना रहता है ।

प्राचीन काल में प्रायः सभी योगी, तपस्वी, ऋषि-मुनि गायत्री को माध्यम बना कर योग साधना करते थे । इस महाशक्ति का अवलम्बन करके वे अनेकों ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करते हुए आत्म-साक्षात्कार का, ब्रह्म-निर्वाण का परमानन्द उपलब्ध करते थे । गायत्री को भूलोक की कामधेनु कहा जाता है, क्योंकि उसकी उपासना करने से सभी तृष्णाएँ शान्त हो जाती हैं । असम्भव, अनावश्यक, अवांछनीय लालसाओं का शमन हो जाने से अपने आप ही वह स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिसे "मनोकामना पूर्ति" कहते हैं । कामधेनु का दूध पीकर समस्त पाप-ताप दूर हो जाते हैं । गायत्री का दिव्य रस पान करने वाला भी वैसा ही तृप्ति अनुभव करता है । गायत्री को ब्रह्मास्त्र भी कहते हैं । यह लोहे से बनी वह साधारण तोप, तलवार नहीं है जो केवल किसी का प्राण हरण करने मात्र की शक्ति रखती है, वरन् इस शास्त्र में वह शक्ति है जिससे जीवन की दुःखमय बनाये रखने वाली उलझनें सुलझ जाती हैं, कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं । डाइनामाइट की सुरंग लगाकर बड़े-बड़े पर्वत उड़ा दिये जाते हैं । गायत्री के ब्रह्मास्त्र की शक्ति भी ऐसी ही है । इसके द्वारा उत्पन्न की हुई अग्नि में मनुष्य भी, पदार्थ भी, प्रदेश भी, समूह भी और पाप-ताप तथा दुःख-दारिद्र के पुंज भी जलकर खाक हो सकते हैं । इसी कामधेनु को लेकर, इसी ब्रह्मास्त्र को पाकर ऋषियों ने यह बल प्राप्त किया था जिसके आगे चक्रवर्ती राजा भी नत-मस्तक होते थे ।

इन दो तीन शताब्दियों में भी कितने ही सन्त-महात्मा ऐसे हुए हैं जिनने गायत्री की साधना करके महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त की थी । आज भी उच्चकोटि के तपस्वियों में अधिकांश ऐसे हैं जो अपना तप गायत्री द्वारा ही कर रहे हैं । ऐसे कितने ही ग्रहस्थ और विरक्त सन्तों को हम जानते हैं जो वेदमाता का अञ्चल पकड़ कर उसकी गोदी में पहुँच गये हैं और आनन्द की किलोलें कर रहे हैं । जो सांसारिक सम्पदाओं की अपेक्षा आत्मिक सम्पदाओं को अधिक महत्त्व देते हैं, उन्हें अपनी अभीष्ट मनोभिलाषाएँ पूरी करने में वेदमाता से भारी सहायता मिलती है ।

आत्मा ईश्वर का अंश होने से वह उन सब शक्तियों को बीज रूप से अपने अन्दर छिपाये रहता है, जो ईश्वर में होती हैं । मानसिक पापों-तापों के, विषय-विकारों के, दोष-दुर्गुणों के ढेर में दबी हुई वे प्रसुप्त एवं अज्ञात् अवस्था में पड़ी रहती हैं । अग्नि के ऊपर राख ढक दी जाय तो वह छिप जाती है, पर जब राख को हटा दिया जाय तो वह फिर दहकता हुआ अङ्गार प्रगट हो जाता है । यह छोटा अङ्गार अनुकूल अवसर पावे तो प्रचण्ड दावानल के रूप में परिणित हो सकता है । गायत्री साधना करने से आत्मा पर पड़ा हुआ विकारों का मलीन आवरण हट जाता है और यह पर्दा फटते ही तुच्छ मनुष्य, महान् आत्मा, महात्मा, परम आत्मा, परमात्मा बन जाता है । चूँकि आत्मा में अनेकों ज्ञान-विज्ञान, साधारण-असाधारण, अद्भुत आश्चर्यजनक शक्तियों के भण्डार छिपे पड़े हैं, वे जब खुल जाते हैं तो साधक, सिद्ध योगी के रूप में दिखाई पड़ता हैं । सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए बाहर से कुछ लाना नहीं पड़ता, किसी देव दानव की कृपा की जरूरत नहीं पड़ती, केवल अन्तःकरण पर पड़े हुए आवरणों को हटाना पड़ता है । साधना रूपी सूर्य से, अयोग्ताओं का, तुच्छताओं का पर्दा हट जाता है और आत्मा का यह निर्मल रूप स्वभावतः सभी ऋद्धि-सिद्धियों से परिपूर्ण होता है ।

गायत्री को मन्त्र राज कहा गया है । जो कार्य संसार के अन्य किसी मन्त्र से हो सकता है, वह गायत्री द्वारा भी अवश्य हो सकता है । लोग अपने विविध कष्ट निवारण

के लिए अनेक मन्त्र, तन्त्र, जप, साधन, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि का विनियोग करते हैं । यह सभी कार्य केवल गायत्री से पूरे हो सकते हैं । प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान को समझने वाले जानते हैं, कि शरीर में विष या विकारों के भर जाने का नाम ही रोग है और उपवास, फलाहार, ऐनीमा, मिट्टी पानी का उपचार आदि द्वारा सब रोग दूर हो जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक सब रोगों का एक ही कारण मानते हैं और एक ही चिकित्सा से उन सबका ठीक होना सम्भव सिद्ध करते हैं । गायत्री विद्या के आचार्यों का कहना भी यही है कि आत्मिक भूमिका में सतोगुण का घट जाना ही नाना प्रकार के कष्टों और क्लेशों का हेतु है। सत् तत्त्व के बढ़ने के साथ-साथ ही दोष घटते हैं और दोषों की कमी होना, दुःखों को घटाने का प्रत्यक्ष उपाय है।

पाप से, बुराई से, बुरी आदतों से, असंयम से, अपव्यय से, स्वार्थपरता से, सङ्कीर्णता से, दुर्बुद्धि से, समस्त प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं । गायत्री से जो सतोगुण शक्ति बढ़ती है उसके कारण इन सब विष-वृक्षों की जड़ कटनी शुरू हो जाती हैं । फलस्वरूप नाना प्रकार के कष्ट, दुःख, भय, शोक अपने आप शमन हो जाते हैं । गायत्री के उपासक देखते हैं कि साधना ने हमारी अमुक विपत्तियों को दूर कर दिया । यह लाभ आकस्मिक या अनायास प्राप्त दैवी वरदान जैसे प्रतीत होते हैं, पर वस्तुतः इनके पीछे एक वैज्ञानिक प्रक्रिया रहती है । भीतर का सुधार बाहर के सुधार से प्रकट होता है । जिस कोठरी में पहले गन्दगी और दुर्गन्ध रहती थी तब उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, पर जब उसकी सफाई करके इत्र के पीपे भर दिये गये तो उस कोठरी की ओर सभी को आकर्षण होता है । गायत्री साधक के विरोधी, शत्रु, दुःखदायी, व्यक्ति यदि मित्र, समर्थक, सहयोगी और सुखदायकों में बदल जाएँ तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

यह सभी लोग जानते हैं कि संसार दर्पण की तरह है जिसमें हमें अपनी ही भली-बुरी छाया दिखाई पड़ती है । जैसी भी भली-बुरी परिस्थितियाँ सामने हैं उन सबके जन्मदाता हम स्वयं हैं, हमारे गुण, कर्म और स्वभाव ही चारों ओर का वातावरण तैयार करते हैं, हम स्वयं ही अपने शत्रु हैं । आत्म-निर्माण का कार्य गायत्री द्वारा बड़ी ही उत्तमता, सरलता एवं सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ होता है । यह परिवर्तन हमारे अज्ञान, अशक्ति और अभाव को मिटाता है । फलस्वरूप हमारे सभी प्रकार के बाह्य और आन्तरिक दुःख-दारिद्र मिटते जाते हैं ।

गायत्री अनन्त सुख-शान्ति की जननी है । उससे इस जन्म की कठिनाइयाँ दूर होकर सुविधाएँ सम्पत्तियाँ तो बढ़ती ही हैं साथ ही आत्मिक भूमिका की विचारधारा और कार्यप्रणाली का ऐसा सुन्दर परिवर्तन हो जाता है कि दूसरा जन्म समग्र मोक्ष तक न पहुँच सका तो भी स्वर्गीय सुख-सम्पदाओं से परिपूर्ण अवश्य होता है ।

## साधना और कामना की विवेचना

जब गायत्री महाशक्ति को निखिल अन्तरिक्ष में से साधना की वैज्ञानिक विधि द्वारा खींच कर अपने अन्दर धारण करते हैं तो शरीर और मस्तिष्क के अन्दर छिपे हुए कितने ही शक्ति केन्द्र जागृत होने लगते हैं । सूखी हुई दूब पर वर्षा का पानी पड़ते ही उसमें चैतन्यता दौड़ जाती है और वह मनोरम हरियाली के रूप में परिणित हो जाती है । गायत्री शक्ति का आह्वान एक अमृत वर्षा है, जिससे अनेकों गुप्त शक्तियों के गुप्त उद्गम, चैतन्य, प्रस्फुटित, पल्लवित एवं प्रफुल्लित होने लगते हैं । यही प्रक्रिया मङ्गलमयी दैवी कृपा या सिद्धि के रूप में परिलक्षित होती है।

दीर्घकाल से हम गायत्री उपासना की ब्राह्मणोचित तपश्चर्या कर रहे हैं । अपने व्यक्तिगत प्रयोगों में हमें जितने आश्चर्यजनक अनुभव हुए हैं, उनसे शास्त्रकारों के इस वचन पर हमें पूर्ण श्रद्धा हो गई है कि—गायत्री भूलोक की कामधेनु है । थोड़े से जीवन काल में इतनी अधिक विद्या का प्राप्त होना, जितना कि हिसाब लगाने पर सौ वर्ष में भी सम्भव नहीं हो सकता है, वेदमाता का ही चमत्कार है । योग विद्या के पारंगत सिद्ध पुरुषों का अनुग्रह, आशीर्वाद एवं वात्सल्य अनायास ही प्राप्त होना, माता की कृपा के बिना हमारे लिए किसी प्रकार सम्भव न था । जिन मनोविकारों, वासनाओं, तृष्णाओं एवं भ्रान्तियों से मानव प्राणी अशान्त और मायाबद्ध बना रहता है उनका शमन होकर अन्तःज्योति का साक्षात्कार होना बिना माता के विशेषज्ञ अनुग्रह के किस प्रकार सम्भव हो सकता था? प्राण घातक संकटों के अवसरों पर आकस्मिक सहायताएँ प्राप्त होना, पर्वत के समान दुर्ल्लघनीय प्रतीत होने वाली कई कठिनाइयों का आश्चर्य की तरह हल हो जाना आदि, इतने आश्चर्यजनक अवसर

हमारे सामने आये हैं कि व्यक्तिगत रूप से हमें गायत्री की महत्ता के सम्बन्ध में अटूट विश्वास हो गया है ।

इस प्रकार का सौभाग्य हर व्यक्ति को मिल सकता है । शर्त एक ही है कि उसका मन शङ्का, सन्देहों, अविश्वासों, आशंकाओं, उद्वेगों से भरा हुआ न हो । अडिग श्रद्धा और अटूट विश्वास के साथ जो उपासना की जाती है, उसमें ही वह चुम्बकत्व एवं आकर्षण बल उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा उस महाशक्ति को खींचा जा सके । कितने ही अविश्वासी स्वभाव के लोग कहीं कुछ प्रशंसा सुनकर अधूरे मन से अविधिपूर्वक शंका और अविश्वास की भावनाओं के साथ साधना का लंगड़ा-लूला कर्मकाण्ड पूरा करते हैं । भक्ति-भावना और विश्वासी श्रद्धा ही साधना की रीढ़ है, उसके अभाव में कर्मकाण्ड केवल एक बाह्यपचार मात्र, निष्प्राण आधार रह जाता है, जो साधक अगाध मातृ-भक्ति को उत्पन्न तो कर नहीं पाते, इसके लिए त्याग और प्रयत्न भी नहीं करते, परन्तु अपनी मनोकामना, वासना एवं स्वार्थ साधन का लाभ मिलने की ही बात उतावली पूर्वक सोचते रहते हैं । ऐसे लोगों की उपासना माता को नहीं पहुँचती वरन् उस लालसा में ही उलझी रहती है । दस बीस दिन यह विडम्बना करने पर भी जब उन्हें मन-मोदक मिलते नहीं दीखते तो खीज कर अपने लंगड़ें प्रयत्न को भी छोड़ बैठते हैं । ऐसे स्वभाव के लोगों को किसी आशाजनक सफलता का मिलना असंभव है । परन्तु जो जानते हैं कि अडिग श्रद्धा और असंदिग्ध विश्वास ही साधना का मेरुदण्ड है, वे लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल नहीं होते।

कितने ही व्यक्तियों ने हमारे पथ-प्रदर्शन का सहारा लेकर गायत्री उपासनाएँ की हैं । हमारा अनुभव है कि उनकी कितनी कठिनाइयाँ हल होती हैं, गुत्थी सुलझती हैं, और आपत्तियाँ मिट जाती हैं । कितने ही रोगी, पीड़ित, अभावग्रस्त, सताये हुए, क्लेश मग्न, शोक संतप्त, कुटेबों में जकड़े हुए, निराश, भयभीत, चिन्तातुर, स्त्री-पुरुषों ने माता की शरण लेकर अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिणित किया है । उन्होंने अन्धकार में भटकते समय प्रकाश और डूबते समय उबारने वाला सहारा पाया है । इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें केवल मन्त्र जप के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना पड़ा और जादू की छड़ी घुमाने की तरह मनोवांछा पूरी हो गई । ऐसा नहीं होता, न ऐसा होना ही चाहिए । अन्यथा ईश्वर प्रदत्त आपत्ति, जिसका एकमात्र उद्देश्य उस व्यक्ति की चैतन्यता, जागरूकता, प्रयत्नशीलता बढ़ाना है, अपना उद्देश्य पूरा कैसे कर पावेगी ? यदि माता बच्चे को गोदी में ही लिए रहे, उसे खड़े होने, चलने का कष्ट न सहने दे तो वह बालक निष्क्रिय और लुंज-पुंज हो जायगा । कोई बालक ऐसा आलस्य करे भी तो माता उससे सहमत नहीं हो सकती ।

आरम्भ में ही यह बताया जा चुका है कि साधना कोई आकस्मिक उपहार नहीं वरन् विशुद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया है । इससे साधक में सतोगुण बढ़ता है । जैसे दीपक जलाते ही कमरे में चारों ओर उजाला छा जाता है वैसे ही सतोगुण की अभिवृद्धि होते ही शरीर और मन के वे गुप्त प्रगट दोष घटने आरम्भ हो जाते हैं, जिनके कारण आये दिन बीमारियाँ, कठिनाइयाँ, पीड़ाएँ, असफलताएँ उपस्थित होती रहती हैं । जड़ पर कुठाराघात होगा तो पत्र-पल्लवों का नाश भी हो ही जायेगा । सतोगुण एक शक्ति है जिसकी अभिवृद्धि के कारण नई-नई योग्यताएँ बढ़ती हैं और उनके कारण उन वस्तुओं का प्राप्त होना सुगम हो जाता है, जो अयोग्यों को प्राप्त नहीं हुआ करतीं ।

अनेक व्यक्तियों को अनेक प्रकार के लाभ गायत्री उपासना द्वारा होते हैं । बीमारी, कमजोरी, बेकारी, घाटा, गृह-कलह, मनोमालिन्य, मुकद्दमा, शत्रुओं का आक्रमण, दाम्पत्य-सुख का अभाव, मस्तिष्क की निर्बलता, चित्त की अस्थिरता, सन्तान सम्बन्धी दुःख, कन्या के विवाह की कठिनाई, बुरे भविष्य की आशंका, परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का भय, बुरी आदतों के बन्धन, जैसी कठिनाइयों से ग्रसित व्यक्तियों ने गायत्री-आराधना करके अपने दुःखों से छुटकारा पाया है । इन कठिनाइयों के पीछे जड़ में निश्चयपूर्वक कुछ न कुछ अपनी त्रुटियाँ, अयोग्यताएँ, खराबियाँ रहती हैं, सतोगुण की वृद्धि के साथ-साथ आहार-विहार, विचार, दिनचर्या, दृष्टिकोण, स्वभाव एवं कार्यक्रम में परिवर्तन होता है । यह परिवर्तन ही सुख-शान्ति का, आपत्ति निवारण का, राज मार्ग बन जाता है । कई बार हमारी इच्छाएँ, तृष्णाएँ, लालसाएँ, कामनाएँ ऐसी होती हैं जो अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों से मेल नहीं खातीं । मस्तिष्क शुद्ध होने पर बुद्धिमान व्यक्ति इन शेखचिल्ली की मृगतृष्णाओं को त्याग देता है और अनुकूल इच्छाएँ करने लगता है । इस प्रकार अवांछनीय तृष्णाओं से दुःखी रहने का जंजाल अनायास ही छूट जाता है । अवश्यंभावी न टल सकने वाले प्रारब्ध का भोग जब

सामने आता है तो साधारण व्यक्ति बुरी तरह रोते और चिल्लाते हैं, किन्तु गायत्री-साधक में इतना आत्म-बल और साहस बढ़ जाता है कि अन्हें हँसते-हँसते झेल लेता है । सत्कर्म-परायण, धर्म-सङ्गत, लोक-सेवी, तपस्वी जीवन बिताने में जो कष्ट होता है, उसे आत्म-बल सम्पन्न व्यक्ति कभी गिनता ही नहीं । धर्म-लाभ के साथ इतने मामूली कष्ट भी मिलना उसे गुलाब के साथ रहने वाले काँटे के समान स्वाभाविक मालूम देते हैं ।

गायत्री-साधना का प्रत्यक्ष परिणाम है—सात्विक आत्म-बल की अभिवृद्धि । सात्विक आत्म-बल के दश लक्षण हैं— उत्साह, सतत् परिश्रम, कर्त्तव्यपरायणता, संयम, मधुर स्वभाव, धैर्य, अनुद्वेग, उदारता, अपरिहार, तत्त्वज्ञान । यदि कोई व्यक्ति सच्ची गायत्री-साधना कर रहा है, तो उसमें अवश्य ही यह गुण बढ़ेंगे और जैसे-जैसे यह बढ़ोतरी आगे चलेगी, वैसे ही वैसे जीवन की कठिनाइयों का समाधान होता चलेगा । जब साधक की आत्मा गायत्री-शक्ति से परिपूर्ण हो जाती है तो उसे किसी भी प्रकार का कोई कष्ट, अभाव या दुःख नहीं रह जाता । वह निरन्तर पूर्ण परमानन्द का, ब्रह्मानन्द का अलौकिक रसास्वादन करता रहता है ।

भ्रान्त, पथ-भ्रष्ट, अश्रद्धालु, लालची गायत्री को मुफ्त में ठगाने का षड़यन्त्र करने वाले धूर्त सच्ची साधना नहीं कर सकते । करना तो दूर, उसे ठीक तरह समझ भी नहीं सकते । वे जिह्वा के अग्र भाग से चौबीस अक्षरों की तोता रटन्त करते हैं, पर अन्तःकरण में श्रद्धा-विश्वास का नाम भी नहीं होता, मातृ-भक्ति का प्रेमांकुर कहीं दीख नहीं पड़ता । जितने मिनट चौबीस अक्षर रटते हैं, उतने समय अपनी अवांछनीय अनैतिक अवास्तविक मृग तृष्णाओं में ही मन को लपलपाते रहते हैं । दस-पाँच दिन जप करने पर भी यदि उनकी सब तृष्णाएँ पूरी नहीं हो गईं तो उनका साहस टूट जाता है और साधना को छोड़ बैठते हैं । साधना-विधि के छोटे-छोटे नियम बन्धनों तक को गवारा नहीं करना चाहते । स्नान करके ही जप किया जाय इसकी क्या जरूरत है ? बिना स्नान के ही साधन क्यों नहीं किया जा सकता ? ऐसे-ऐसे तर्क प्रायः रोज ही हमारे सामने रखे जाते हैं । किसी को पथ-प्रदर्शक या गुरु मानते हुए उन्हें अपनी तौहीन मालूम देती है । दान पुण्य के नाम पर एक कौड़ी खर्च करना बज्र उठाने के समान भारी मालूम पड़ता है । ऐसे लोगों की साधना बिडम्बना प्रायः निष्फल रहती है । कई बार तो वह पहले की अपेक्षा भी घाटे में रहते हैं । वे सोचने लगते हैं कि हमारे सब काम गायत्री करके रख जायगी इसलिए हमें अब कुछ करना नहीं है, वे अपने रहे बचे प्रयत्न को भी छोड़ बैठते हैं । आलस्य, अकर्मण्यता और परावलम्बन की मनोवृत्ति में केवल कार्य नाश ही हो सकता है । ऐसी दशा में उनका लङ्गड़ा-लूला विश्वास भी नष्ट हो जाता है और भविष्य में आत्म-विद्या के दुरुपयोग से कोई लाभ उठाने का उनमें उत्साह भी नहीं रहता ।

इन खतरों से हम अपने पाठकों को भली प्रकार आगाह कर देना चाहते हैं । उपरोक्त प्रकार की छछोरी बुद्धि के साथ, बाल-क्रीड़ा के साथ साधना करना निष्प्रयोजन है । कभी-कभी तत्काल आश्चर्यजनक परिणाम भी होते अवश्य हैं, पर सदा ही वैसी आशा नहीं की जा सकती । वेदमाता की आराधना एक प्रकार का आध्यात्मिक कायाकल्प करना है । जिन्हें कायाकल्प कराने की विद्या मालूम है वे जानते हैं कि इस महा अभियान को करते समय कितने धैर्य और संयम का पालन करना होता है, तब कहीं शरीर की जीर्णता दूर होकर नवीनता प्राप्त होती है । गायत्री आराधना का आध्यात्मिक कायाकल्प और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । उसके लाभ केवल शरीर तक ही सीमित नहीं हैं वरन् शरीर, मस्तिष्क, चित्त, स्वभाव, दृष्टिकोण सभी का नव-निर्माण होता है और स्वास्थ्य, मनोबल एवं सांसारिक सुख सौभाग्यों में वृद्धि होती है । ऐसे असाधारण महत्त्व के अभियान में समुचित श्रद्धा, सावधानी, रुचि एवं तत्परता रखनी पड़े तो इसे कोई बड़ी बात न समझना चाहिये । केवल शरीर को पहलवानी के योग्य बनाने में काफी समय तक धैर्यपूर्वक व्यायाम करते रहना पड़ता है । दण्ड, बैठक, कुश्ती आदि के कष्ट-साध्य कर्मकाण्ड करने होते हैं ।

दूध, घी, मेवा, बादाम, आदि में काफी खर्च होता रहता है, तब कहीं जाकर पहलवान बना जा सकता है । क्या आध्यात्मिक कायाकल्प करना पहलवान बनने से भी कम महत्त्व का है ? बी. ए. की उपाधि लेने वाले जानते हैं कि उनने कितना धन, समय, श्रम और अध्यवसाय लगाकर तब उस उपाधि पत्र को प्राप्त कर पाया है । गायत्री की सिद्धि प्राप्त करने में यदि पहलवान या ग्रेजुएट के समान प्रयत्न करना पड़े तो यह कोई घाटे की बात नहीं है । प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने जो आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, उसका उन्होंने समुचित मूल्य

चुकाया था । हर एक लाभ की उचित कीमत देनी होती है। गायत्री-साधना का आध्यात्मिक कायाकल्प यदि अपना उचित मूल्य चाहता है तो उसे देने में किसी भी ईमानदार साधक को आनाकानी न करनी चाहिए ।

यह सत्य है कि कई बार जादू की तरह गायत्री-उपासना का लाभ होता है । आई हुई विपत्ति अति शीघ्र दूर हो जाती है और अभीष्ट मनोरथ आश्चर्यजनक रीति से पूरे हो जाते हैं, पर कई बार ऐसा भी होता है कि अकाट्य प्रारब्ध-भोग न टल सके और अभीष्ट मनोरथ पूरा न हो । राजा हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डव, राम, मोरध्वज जैसे महापुरुषों को होनहार भवतव्यता का शिकार होना पड़ा था । इसीलिए सकाम उपासना की अपेक्षा निष्काम उपासना ही श्रेष्ठ है । गीता में भगवान् ने निष्काम कर्मयोग का ही उपदेश दिया है । साधना कभी निष्फल नहीं जाती । उसका तो परिणाम मिलेगा ही, पर हम अल्पज्ञ होने के कारण अपना प्रारब्ध और वास्तविक हित नहीं समझते । माता सर्वज्ञ होने से सब समझती है और वह वही फल देती है, जिसमें हमारा वास्तविक लाभ होता है । साधना-काल में एक ही काम हो सकता है या तो मन भक्ति में तन्मय रहे या कामनाओं के मनमोदक खाता रहे । मनमोदकों में उलझे रहने से भक्ति नहीं रह पाती, फलस्वरूप अभीष्ट लाभ नहीं हो पाता । यदि कामना को हटा दिया जाय तो उस ओर से निश्चिन्त होकर समग्र मन भक्ति पूर्वक साधना में लग जाता है, तदनुसार सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है ।

कोई युवक किसी दूसरे युवक को कुश्ती में पछाड़ने के लिए व्यायाम और पौष्टिक भोजन द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाने की उत्साहपूर्वक तैयारी करता है । पूरी तैयारी के बाद भी कदाचित् वह कुश्ती पछाड़ने में असफल रहता है तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि उसकी तैयारी निरर्थक चली गई । वह तो अपना लाभ दिखावेगी ही । शरीर की सुदृढ़ता, चेहरे की कान्ति, अंगों की सुडौलता, फेफड़ों की मजबूती, बलवीर्य की अधिकता, निरोगता, दीर्घजीवन, कार्यक्षमता, बलवान सन्तान आदि अनेकों लाभ उस बढ़ी हुई तन्दुरुस्ती से प्राप्त होकर रहेंगे । कुश्ती की सफलता से वंचित रहना पड़ा ठीक, पर शरीर को बलवृद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले अन्य लाभों से उसे कोई वञ्चित नहीं कर सकता । गायत्री-साधक अपने काम्य प्रयोजन में सफल न हो सके तो भी उसे अन्य अनेकों मार्गों से ऐसे लाभ मिलेंगे, जिनकी आशा बिना साधना किये नहीं की जा सकती ।

बालक अनेकों चीजें माँगता है पर माता उसे वह चीजें नहीं देती । रोगी की सब माँगें भी बुद्धिमान परिचर्या करने वाले पूरी नहीं करते । ईश्वर की सर्वज्ञता की तुलना में मनुष्य बालक और रोगी के समान ही है । जिन अनेकों कामनाओं को हम नित्य करते हैं, उनमें से कौन हमारे लिए वास्तविक लाभ और हानि करने वाली है इसे हम नहीं जानते पर ईश्वर जानता है । यदि हमें ईश्वर की दयालुता और भक्त वत्सलता पर सच्चा विश्वास है तो कामनाओं को पूरा करने की बात उसी पर छोड़ देनी चाहिये और अपना सारा मनोयोग साधना पर लगा देना चाहिए । ऐसा करने से हम घाटे में नहीं रहेंगे वरन् सकाम साधना की अपेक्षा अधिक लाभ में ही रहेंगे ।

इतिहास जानता है कि अकबर रास्ता भूल कर एक निर्जन वन में भटक रहे थे, वहाँ एक अपरिचित वनवासी ने उनका उदार आतिथ्य किया । उसकी रूखी-सूखी रोटी का अकबर ने कुछ दिन बाद विपुल धन-राशि में बदला दिया। यदि उस वनवासी ने अपनी रोटी की कीमत उसी वक्त माँग ली होती तो वह राजा का प्रीति-भाजन नहीं बन सकता था । सकाम साधना करने वाले मतलबी भक्तों की अपेक्षा माता को निष्काम भक्तों की श्रद्धा अधिक प्रिय लगती है । वे उसका प्रतिफल देने में अकबर से भी अधिक उदारता दिखाती हैं ।

हमारा दीर्घकालीन अनुभव है कि कभी किसी की गायत्री-साधना निष्फल नहीं जाती और न उलटा परिणाम ही होता है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम धैर्य, स्थिरता, विवेक और मनोयोगपूर्वक कदम बढ़ावें । इस मार्ग में छछोरपन से नहीं, सदृढ़ आयोजन से ही लाभ होता है । इस दिशा में किया हुआ सच्चा पुरुषार्थ अन्य किसी भी पुरुषार्थ से अधिक लाभदायक सिद्ध होता है ।

## गायत्री-साधना से शक्ति कोषों का उद्‌भव

गायत्री ब्रह्मा की स्फुरणा से उत्पन्न हुई आद्य शक्ति है, जो संसार के प्रत्येक पदार्थ का मूल कारण है और उसी के द्वारा जड़ चेतन सृष्टि में गति, शक्ति, प्रगति, प्रेरणा एवं परिणति होती है । जैसे घर में रखे हुए रेडियो यन्त्र का सम्बन्ध विश्व व्यापी ईथर तरंगों में स्थापित करके देश विदेशों में होने वाले प्रत्येक ब्राडकास्ट को सरलतापूर्वक सुन सकते हैं, उसी प्रकार आत्म-शक्ति का विश्वव्यापी गायत्री-शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करके सूक्ष्म प्रकृति की

सभी हलचलों को जान सकते हैं और सूक्ष्म शक्ति को इच्छानुसार मोड़ने की कला विदित हो जाने पर सांसारिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्र में प्राप्त हो सकने वाली सभी सम्पत्तियों को प्राप्त कर सकते हैं । जिस मार्ग से यह सब हो सकता है, उसका नाम है—साधना ।

कई व्यक्ति सोचते हैं—'हमारा उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति, आत्म-दर्शन और जीवन-मुक्ति है, हमें गायत्री के सूक्ष्म प्रकृति के चक्कर में पड़ने से क्या प्रयोजन ? हमें तो केवल ईश्वराधना करनी चाहिए ।' ऐसा सोचने वालों को जानना चाहिए कि ब्रह्म सर्वथा निर्विकार, निर्लेप, निरन्जन, निराकार गुणातीत है । वह न किसी से प्रेम करता है, न द्वेष । वह केवल दृष्टा एवं कारण रूप है, उस तक सीधी पहुँच नहीं हो सकती, क्योंकि जीव और ब्रह्म के बीच में सूक्ष्म प्रकृति (energy) का सघन आच्छादन है। इस आच्छादन को पार करने के लिए प्रकृति के साधनों से ही कार्य करना पड़ेगा । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कल्पना, ध्यान, सूक्ष्म शरीर, षटचक्र, इष्टदेव की ध्यान प्रतिमा भक्ति, भावना, उपासना, व्रत, अनुष्ठान साधन यह सब भी तो मायानिर्मित ही हैं । इन सबको ब्रह्म-प्राप्ति किस प्रकार होनी सम्भव है ? जैसे ऊपर आकाश में पहुँचने के लिए वायुयान की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही ब्रह्म-प्राप्ति के लिये भी प्रतिमूलक आराधना का ही आश्रय लेना पड़ता है । गायत्री के आचरण में होकर पार जाने पर ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है । सच तो यह है कि साक्षात्कार का अनुभव गायत्री के गर्भ में ही होता है । इससे ऊपर पहुँचने पर सूक्ष्म इन्द्रियाँ और उनकी अनुभव-शक्ति भी लुप्त हो जाती है । इसलिये मुक्ति और ईश्वर-प्राप्ति चाहने वाले भी गायत्री मिश्रित ब्रह्म की—राधेश्याम, सीताराम, लक्ष्मीनारायण की ही उपासना करते हैं । निर्विकार ब्रह्म का सायुज्य तो तभी होगा, जब ब्रह्म 'बहुत से एक होने' की इच्छा करेगा और सब आत्माओं को समेट कर अपने में धारण कर लेगा । उससे पूर्व सब आत्माओं का सविकार ब्रह्म में ही सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य आदि हो सकता है । इस प्रकार गायत्री मिश्रित सविकार ब्रह्म ही हमारा उपास्य रह जाता है । उसकी प्राप्ति के साधन जो भी होंगे, वे सभी सूक्ष्म प्रकृति गायत्री द्वारा ही होंगे । इसलिए ऐसा सोचना उचित नहीं कि ब्रह्म-प्राप्ति के लिए गायत्री अनावश्यक है । वह तो अनिवार्य है । नाम से कोई उपेक्षा या विरोध करें यह उनकी इच्छा, पर गायत्री तत्त्व से बचकर अन्य मार्ग से जाना असम्भव है ।

कई व्यक्ति कहते हैं कि हम निष्काम साधना करते हैं। हमें किसी फल की कामना नहीं, फिर सूक्ष्म प्रकृति का आश्रय क्यों लें ? ऐसे लोगों को जानना चाहिये कि निष्काम साधना का अर्थ—भौतिक लाभ न चाह कर आत्मिक साधना करना है । बिना परिणाम सोचे या चाहे तो किसी कार्य में प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती, यदि कुछ किया भी जाय तो उनसे समय एवं शक्ति अपव्यय के अतिरिक्त और कुछ परिणाम नहीं निकलता । निष्काम कर्म का तात्पर्य दैवी, सतोगुणी, आत्मिक कामनाओं से है। ऐसी कामनाएँ भी गायत्री के प्रथम पाद में, 'ह्रीं' तत्त्व में सरस्वती भाग में आती हैं । इसलिए निष्काम भाव की उपासना भी गायत्री-क्षेत्र से बाहर नहीं है ।

मन्त्र-विद्या के वैज्ञानिक जानते हैं कि जीभ से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कण्ठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दंत, जिह्वा, मूल आदि मुख के विभिन्न अंगों द्वारा होता है । इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं । इस फैलाव क्षेत्र में कई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन पर उस उच्चारण का दबाव पड़ता है । जिन लोगों की कोई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ रोगी या नष्ट हो जाती हैं, उनके मुख से कुछ खास शब्द अशुद्ध या रुक-रुककर निकलते हैं, इसी को हकलाना या तुतलाना कहते हैं । शरीर में अनेकों छोटी-बड़ी दृश्य-अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं । योगी लोग जानते हैं कि उन कोषों में कोई विशेष शक्ति-भंडार छिपा रहता है । सुषुम्ना से सम्बद्ध षट्चक प्रसिद्ध हैं, ऐसी अगणित अनेकों गन्थियाँ शरीर में हैं । विविध शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन ग्रन्थियों का शक्ति-भण्डार जागृत होता है । मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है । गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं । इनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रन्थियों से है, जो जागृत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं । गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झन्कार देता है और उससे एक ऐसी स्वर लहरी उत्पन्न होती है, जिसका प्रभाव अदृश्य जगत के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर पड़ता है । यह प्रभाव ही गायत्री-साधना के फलों का प्रभाव हेतु है ।

शब्दों का ध्वनि प्रवाह तुच्छ चीज नहीं है । शब्द विद्या के आचार्य जानते हैं कि शब्द में कितनी शक्ति है और उसकी अज्ञात गतिविधि के द्वारा क्या-क्या परिणाम

उत्पन्न हो सकते हैं ? शब्द को ब्रह्म कहा गया है । ब्रह्म की स्फुरणा कम्पन उत्पन्न करती है । वह कम्पन ब्रह्म से टकराकर 'ॐ' ध्वनि के साथ बार-बार ध्वनित होता रहता है । जैसे दीवाल घड़ी का लटकन घंटा पैण्डूलम झूलता हुआ घड़ी के पुर्जों में चाल पैदा करता रहता है, इसी प्रकार वह 'ॐ' कार ध्वनि प्रवाह सृष्टि को चलाने वाली गति पैदा करता है । आगे चल कर उस प्रवाह में ह्रीं, श्रीं, क्लीं की तीन प्रधान सत्, रज, तममयी धाराएँ बहती हैं । तदुपरान्त उसकी और भी शाखा-प्रशाखाएँ हो जाती हैं, जो बीजमंत्र के नाम से पुकारी जाती हैं । यह ध्वनियाँ अपने-अपने क्षेत्र में सृष्टि-कार्यों का संचालन करती हैं । इस प्रकार सृष्टि का संचालन कार्य शब्द तत्त्व द्वारा होता है । ऐसे तत्त्व को तुच्छ नहीं कहा जा सकता । गायत्री की शब्दावली ऐसे चुने हुए श्रृंखलाबद्ध शब्दों से बुनाई गई है, जो क्रम और गुम्फन की विशेषता के कारण अपने ढंग की एक अद्‌भुत ही शक्ति-प्रवाह उत्पन्न करती है ।

दीपक-राग गाने से बुझे हुए दीपक जल उठते हैं, मेघ मल्हार गाने से वर्षा होने लगती है, वेणु-नाद सुनकर सर्प लहराने लगते हैं, मृग सुधि-बुधि भूल जाते हैं, गौएँ अधिक दूध देने लगती हैं । कोयल की बोली सुनकर काम-भाव जागृत हो आते हैं । सैनिकों के कदम मिलाकर चलने की शब्द-ध्वनि से लोहे के पुल तक गिर सकते हैं, इसलिये पुलों को पार करते समय सेना को कदम मिलाकर न चलने की हिदायत कर दी जाती है । अमेरिका के डाक्टर हचिंसन ने विविध संगीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की है । भारतवर्ष में तांत्रिक लोग थाली को घड़े पर रख कर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प बिच्छु आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए कण्ठमाला, विषवेल, भूतोन्माद आदि के रोगी बहुत करके अच्छे हो जाते हैं । कारण यह है कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का परिभ्रमण करते हुए जब अपने उद्‌गम-केन्द्र पर ही कुछ ही क्षणों में लौट आते हैं, तो उनमें अपने प्रकार की एक विशेष विद्युत शक्ति भरी होती है और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उस शक्ति का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है । मन्त्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है । गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आविर्भाव होता है । मंत्रोच्चारण में मुख के जो अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों के नाड़ी-तन्तु कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं । उनमें स्फुरणा होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक संगीत प्रवाह ईथर तत्त्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में पूरी होने वाली विश्व परिक्रमा से वापस आते-आते एक स्वजातीय तत्त्वों की सेना वापस ले आता है, जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी सहायक होती है । शब्द संगीत के शक्तिमय कम्पनों का पंचभौतिक प्रवाह और आत्मशक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की भावना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया सम्बन्ध, यह दोनों ही कारण गायत्री-शक्ति को ऐसी बलवान बनाते हैं, जो साधकों के लिये दैवी वरदान सिद्ध होती है ।

गायत्री मन्त्र को और भी अधिक सूक्ष्म बनाने वाला कारण है साधक का 'श्रद्धामय विश्वास'। विश्वास की शक्ति से सभी मनोविज्ञानवेत्ता परिचित हैं । हम अपनी पुस्तकों और लेखों में ऐसे असंख्य उदाहरण अनेकों बार दे चुके हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि केवल विश्वास के आधार पर लोग केवल भय की बजह से अकारण काल के मुख में चले गये और विश्वास के कारण मृत प्राय: लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया । रामायण में तुलसीदासजी ने 'भवानी शंकरौ बन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ' गाते हुए श्रद्धा और विश्वास को भवानी शंकर की उपमा दी है । झाड़ी को भूत, रस्सी को सर्प, मूर्ति को देवता बना देने की क्षमता विश्वास में है । लोग अपने विश्वासों की रक्षा के लिये धन, आराम तथा प्राणों तक को हँसते-हँसते गँवा देते हैं । एकलव्य, कबीर आदि के ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनसे प्रगट है कि गुरु द्वारा नहीं, केवल अपनी श्रद्धा के आधार पर गुरु द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा से भी अधिक विज्ञ बना जा सकता है । हिप्नोटिज्म का आधार रोगी को अपने वचन पर विश्वास कराके उससे मनमाने कार्य करा लेना ही तो है । तांत्रिक लोग मन्त्र-सिद्धि की कठोर साधना द्वारा अपने मन में इस मंत्र के प्रति अगाध श्रद्धा जमाते हैं । आमतौर पर जिसके मन में जितनी गहरी श्रद्धा जमी होती है, उस तांत्रिक का मन्त्र भी उतना ही काम करता है । जिस मन्त्र से श्रद्धालु तांत्रिक चमत्कारी कर दिखाता है, उसी मंत्र को अश्रद्धालु साधक चाहें सौ बार बकें, कुछ लाभ नहीं होता । गायत्री मंत्र के सम्बन्ध में भी यह तथ्य बहुत हद तक काम करता

है । जब साधक श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आराधना करता है, तो शब्द-विज्ञान और आत्म-सम्बन्ध दोनों महता से संयुक्त गायत्री का प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है और वह एक अद्वितीय शक्ति सिद्ध होती है ।

## गायत्री-साधना का अधिकार

गायत्री मन्त्र का अधिकार केवल द्विजों को ही है । जिनका दूसरा जन्म नहीं हुआ है, उनके लिए गायत्री व्यर्थ है । अनाधिकारी होने के कारण न तो उनका इस महान् साधना में मन लगता है न विश्वास होता है और न वे तद्नुकूल आचरण कर पाते हैं । आयुर्वेद पढ़ना हो तो आरम्भ में हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान होना आवश्यक है । अशिक्षित व्यक्ति आज कॉलेज में नाम लिखाने जाय तो प्रिंसिपल को यही कहना पड़ेगा कि आपको प्रविष्ट नहीं किया जा सकता ।

द्विजत्व का अर्थ है—दूसरा जन्म । एक जन्म माता-पिता से होता है । पशु-पक्षियों का जन्म भी इसी प्रकार होता है । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद मानव शरीर पाने पर भी उसमें पिछले पाशविक संस्कार ही प्रधान रहते हैं । पेट भरना, कामवासना, लोभ, स्वार्थ एवं अहंकार आदि की पाशविक वृत्तियों से प्रेरित होकर वह सोचता है, इच्छा करता है और कार्य-प्रवृत्त होता है । यदि यही गतिविधि जारी रहे तो वह नर पशु ही बना रहता है ।

पशु की विचारधारा और कार्य-प्रणाली से ऊँचा उठ कर मनुष्यता की जिम्मेदारियों को कन्धें पर लेना मानवोचित इच्छाएँ करना, विचार एवं कार्यों का अपनाना दूसरा जन्म है । पशु का आदर्श इन्द्रिय भोग और स्वार्थ है । मनुष्य का आदर्श आत्मोन्नति और परमार्थ है । पशु अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि की परवाह नहीं करता, मनुष्य दूसरे की सेवा के लिए अपने सुख और स्वार्थ को बलिदान कर देता है । शूद्र का तात्पर्य है—नर पशु । ऐसे व्यक्तियों को शास्त्रों में श्वान समान पर तिरष्कृत और वहिष्कृत किया है । गायत्री से भी उन्हें उनकी आत्मिक अयोग्यता के कारण ही वञ्चित रखा गया है ।

पानी नीचे की ओर अपने आप बहता है । जितनी अधिक निचाई होगी उतना ही बहाव तेज होगा, पर यदि पानी को ऊपर की ओर, ऊँचाई की ओर चढ़ाना हो तो कितने ही कष्टसाध्य प्रयत्न करने पड़ते हैं । पशुता की ओर, पतन की ओर, भोग और स्वार्थ की ओर मनुष्य की स्वाभविक प्रवृत्ति होती है, इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण करके धर्म की ओर, संयम की ओर, कल्याण की ओर, अग्रसर होने के लिए जो विशेष अवरोध करना पड़ता है, उसका नाम है द्विजत्व का वृत, यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु दीक्षा ।

पहला स्थूल जन्म माता-पिता के रज वीर्य से होता । दूसरा सूक्ष्म जन्म माता गायत्री और पिता गुरु के संयोग से होता है । रोगी अपना इलाज आप नहीं कर सकता, अपने दोषों को समझना, अपनी मानसिक स्थिति को तोलना और आत्म-निर्माण का कार्यक्रम बनाना इस महान् योजना को बिना अनुभवी पथ-प्रदर्शक के पूरा नहीं किया जा सकता । जैसे सभी बीमारों को दवा नहीं दी जाती उनकी अनेक सूक्ष्म परिस्थितियों को समझ कर अनुभवी वैद्य पृथक्-पृथक् प्रकार की औषधियों और अनुपानों का विधान करता है । ऐसे ही हर व्यक्ति की भिन्न मनोभूमि के अनुरूप ही आत्मोन्नति की योजना बनाई जाती है । यह कार्य दिव्य दर्शी, सूक्ष्म बुद्धि, स्वार्थ रहित, सदाचारी, ज्ञान वृद्ध महापुरुष ही कर सकते हैं । ऐसे ही लोगों को गुरु कहा जाता है । बगीचे का व्यवस्थित विकास करने के लिए ऐसे माली का संरक्षण आवश्यक है, जो ठीक समय पर बोना, जोतना, सींचना एवं काट-छाँट करना जानता है । इस प्रकार नियुक्ति हो जाने पर द्विजत्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग पूरा हो जाता है ।

गायत्री के चौबीस अक्षर जीवन की गति-विधि का निर्णय करने में कसौटी का काम देते हैं । प्रत्येक अक्षर एक-एक स्वर्ण शिक्षा का प्रतीक है । 'ॐ' की शिक्षा है कि-सर्वत्र परमात्मा को व्यापक समझकर कहीं भी गुप्त या प्रगट रूप से बुराई न करो । 'भूः' की शिक्षा है कि—अपने अन्दर सम्पूर्ण उत्थान-पतन के हेतुओं को ढूँढ़ो । 'भुवः'का अर्थ है— कर्त्तव्य कर्म में तत्परता से प्रवृत्त रहो और फल के लालच में अधिक न उलझो । 'स्वः' का सन्देश है कि—स्थिर रहो, हर्ष शोक में उद्विग्न न बनो । 'तत्'का तात्पर्य है कि—इस शरीर के क्षणिक सुखों को ही सब कुछ मत समझो, जन्म जन्मान्तरों के स्थायी सुखों का महत्त्व समझो । 'सवितुः' का भावार्थ है कि—अपने को विद्या, बुद्धि, स्वास्थ्य, धन, यश, मैत्री, साहस आदि शक्तियों से अधिकाधिक सुसम्पन्न करना । 'वरेण्यं'का सन्देश है कि—इस दुरंगी दुनिया में से केवल श्रेष्ठता का ही स्पर्श करो । 'भर्गो' का उपदेश है कि—शरीर, मन, मकान, वस्त्र तथा व्यवहार को स्वच्छ रखना । 'देवस्य'

का अर्थ है कि—उदारता, दूरदर्शिता । 'धीमहि' अर्थात् सद्‌गुण, उत्तम स्वभाव, दैवी सम्पदाएँ, उच्च विचार । 'धियो' का तात्पर्य है कि—किसी व्यक्ति, ग्रन्थ या सम्प्रदाय का अन्धानुयायी न होकर विवेक के आधार पर केवल उचित को ही स्वीकार करना। 'योन:' की शिक्षा है—संयम, तप, ज्ञान, सहिष्णुता, तितीक्षा, कठोर श्रम, मितव्ययता, शक्तियों का संयम और सदुपयोग । 'प्रचोदयात्' अर्थात् प्रेरणा देना, गिरे हुओं को ऊँचा उठाना, उत्साहित करना, प्रफुल्लित, सन्तुष्ट एवं सेवा परायण रहना ।

सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में अनेक शिक्षाएँ अपने-अपने ढंग से दी गई हैं, उन सब का सार भाग उपरोक्त पंक्तियों में आ गया है । उतनी बातें भली प्रकार हृदयंगम करली जायें तो समझ लीजिये कि चारों वेदों के पण्डित हो गये। गायत्री के २४ अक्षरों में दिव्य जीवन की समस्त योजना, नीति, विचारधारा, कार्य-प्रणाली सन्निहित है, इस पर चलने में व्यावहारिक सहयोग देना, पथ-प्रदर्शन करना, गुरु का काम है । इस प्रकार गायत्री माता और गुरु पिता द्वारा हमारे आदर्शवादी जीवन का जन्म होता है । यही द्विजत्व है ।

यज्ञोपवीत में तीन लड़ें होती हैं । प्रत्येक लड़ में तीन-तीन धागे होते हैं । जैसे देवताओं की मूर्ति पाषाण या धातुओं की होती है, वैसे ही हर घड़ी छाती से लगाये रहने योग्य गायत्री की मूर्ति यज्ञोपवीत रूपी बनाई गई है। गायत्री में तीन पद और नौ शब्द हैं । यज्ञोपवीत में तीन लड़ें और नौ सूत्र हैं । तीन व्याहृतियों की प्रतीक तीन ग्रन्थियाँ हैं । ॐकार ब्रह्म ग्रन्थि है । यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है—"गायत्री से सन्निहित शिक्षाओं को जीवन व्यवहार में क्रियात्मक रूप से चरितार्थ करने का उत्तरदायित्व कन्धे पर उठाना ।" जिम्मेदारी को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा लेना ही यज्ञोपवीत संस्कार या द्विजत्व में प्रवेश कहलाता है ।

यज्ञोपवीत का धारण का अर्थ उसी दिन इन सब गुणों से परिपूर्ण हो जाना एवं पुराने कुसंस्कारों से तत्क्षण मुक्त हो जाना नहीं है । यह पूर्ण सिद्धावस्था तो अन्तिम लक्ष्य है । "हम सच्चे हृदय से गायत्री में निर्धारित जीवन नीति की उत्तमता को स्वीकार करेंगे ।" इस प्रतिज्ञा के साथ द्विजत्व का आरम्भ होता है । जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार एक दिन में नहीं छूट जाते, वरन् उन्हें हटाने के लिए काफी लम्बा धर्म-युद्ध करना पड़ता है । कई बार हम कुसंस्कारों पर विजय पाते हैं, कई बार कुसंस्कारों की जीत होती है । यह लड़ाई निरन्तर जारी रहनी चाहिए । पाप एवं पतन के सामने कभी भी आत्म-समर्पण न करना चाहिये । उसके प्रति घृणा और प्रतिरोध के भाव सदा जारी रहें । कोई बुराई अपने में हो और वह छूट न पा रही हो तो भी उसे उपनी कमजोरी या भूल समझकर पश्चाताप ही करें और उससे छुटकारा पाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न जारी रखें, बुराई को भलाई के रूप में स्वीकार करना, उसका समर्थन करना, उसका विरोध छोड़ देना, उसमें रस लेना, यह शूद्रत्व का चिन्ह है । हम पाप के प्रतिरोध में अपनी अन्त:चेतना को सूक्ष्म रखें तो हम द्विजत्व की प्रतिज्ञा पर दृढ़ कहे जा सकते हैं । चाहे पूर्ण विशुद्ध होने में, पूर्ण सफलता मिलने में, पूर्ण विजय प्राप्त होने में, कितनी ही देर क्यों न लग जाय ।

पशुत्व का विरोध और मनुष्यता का समर्थन करने की प्रतिज्ञा लेना, द्विजत्व का व्रत स्वीकार करना, आत्मोन्नति का सर्वप्रथम एवं उत्यन्त आवश्यक धर्मकृत्य है । इसे करने के उपरान्त आदर्शवाद के अनुयायियों में अपनी गणना करा लेने के पश्चात् ही हमें वह अधिकार मिलता है कि गायत्री-साधना द्वारा दैवी शक्ति को प्राप्त करें । अनाधिकारी व्यक्ति किसी प्रकार उसे प्राप्त भी करलें तो उसका दुरुपयोग ही करेंगे इसलिए शास्त्रकारों ने प्रतिज्ञा-हीन, व्रत-हीन, यज्ञोपवीत-हीन व्यक्तियों को शूद्र संज्ञा देकर गायत्री का अनाधिकारी ठहरा दिया है । यह प्रतिबन्ध सर्वथा उचित एवं दूरदर्शिता पूर्ण ही है ।

शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि बिना गुरु का मंत्र निष्फल होता है । किसी को पथ-प्रदर्शक नियुक्त किये बिना अपनी स्थिति के अनुकूल साधना विधि को मालूम कर लेना और समय-समय पर अपनी मनोभूमि के परिवर्तनों को ध्यान में रखकर अपने आप साधना में परिवर्तन करते रहना कठिन है । किसी बड़े औषधालय की चाबी मिल जाने पर भी रोगी अपने आप अपने मर्ज के लिए उपयुक्त औषधि लेकर निरोग नहीं हो सकता । यदि उसे बीमारी से पीछा छुड़ाना है तो किसी अनुभवी वैद्य की सलाह अवश्य लेनी पड़ेगी । "औषधि में भारी शक्ति है" यह सत्य है, पर यह भी सत्य है कि बिना वैद्य की सलाह के कीमती रस, भस्में भी निरर्थक होती हैं और कई बार तो वे उलटा परिणम भी उपस्थित करती हैं ।

कहा गया है कि गायत्री को वशिष्ठ और विश्वामित्र का शाप लगा हुआ है, इसलिये शापमोचन किये बिना गायत्री साधना निष्फल होती है । वशिष्ठ कहते

हैं—विशिष्ट गुणवान् अनुभवी विद्वान को और विश्वामित्र कहते हैं—संसार का हित चाहने वाले सच्चरित्र तपस्वी को । यह दोनों गुण जिनमें हों—जो वशिष्ठ और विश्वामित्र तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करता हो, ऐसे गुरु का अनुवर्ती होना ही शापमोचन है । जो शापमुक्त गायत्री जपता है—गुरु के आदर्श और नियंत्रण में साधना करता है, उसकी सफलता में कोई शंका नहीं रह जाती ।

आजकल गुरु-शिष्य की एक उपहासास्पद विडम्बना चल रही है । जिन व्यक्तियों को आत्म-निर्माण के भारतीय मनोविज्ञान (योग) का समुचित ज्ञान नहीं है, जो अपना तक भी आत्म-निर्माण नहीं कर पाये हैं, ऐसे लोग भी गुरु बनने का दुस्साहस करते हैं । चिकित्सा-शास्त्र का परिचय प्राप्त किए बिना डाक्टर बन बैठने वाला व्यक्ति जितना खतरनाक होता है, उससे भी अधिक खतरनाक यह गुरु होते हैं । "निगुरा" कहलाने के पातक से छूटने के लिए लोग किसी भी पोथीपांड़े को गुरु बना लेते हैं और हर साल कुछ दान-पुण्य मिलते रहने के लोभ से गुरुजी भी चेले के कान फूँक देते हैं । इस प्रकार की चिन्ह पूजा के गुरुदीक्षा का महान् उद्देश्य पूरा हो सकना कठिन है ।

ईश्वरीय शक्तियों को पकड़ने, आकर्षित करने का एकमात्र अवलम्बन जो मनुष्य के पास है, वह है—श्रद्धायुक्त प्रेम । इसी को भक्ति कहते हैं । 'भगवान् भक्त के वश में होते आये' की उक्ति इसी महासत्य का समर्थन करती है । प्रगाढ़ प्रेम से परिपूर्ण मनोभावना में एक ऐसा दैवी चुम्बकत्व हो जाता है, जिससे मनुष्यों और दैवी शक्तियों को अपने पक्ष में द्रवित एवं आकर्षित किया जा सकता है । कोई चतुराई, बुद्धिमत्ता, विधि-व्यवस्था ऐसी नहीं है, जिससे श्रद्धायुक्त प्रेम (भक्ति) के समान चुम्बकत्व, आकर्षण पैदा होता हो और यह आकर्षण ही समस्त आत्मिक लाभों का उद्गम स्रोत है ।

अपने में भक्ति-भावना बढ़ाने का अभ्यास पहले पहल किसी मनुष्य को माध्यम बनाकर किया जाता है । ईश्वर-भक्ति का प्रारम्भिक अभ्यास गुरु-भक्ति से होता है । आरम्भ में छोटे तालाब में तैरना सीख कर तब समुद्र को तैर जाने में सफलता मिलती है । माता-पिता, मित्र, पति-पत्नी, पुत्र आदि को माध्यम बनाकर भक्ति का अभ्यास करने में यह कठिनाई है कि इनके साथ सांसारिक व्यावहारिक सम्बन्ध रहने से कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल भावनायें आती रहती हैं । दूसरे इनमें ज्ञान, सदाचार, विद्या, दिव्य दृष्टि, सात्विकता एवं निस्वार्थता आदि विशेषताओं की उनकी मात्रा न होने से स्वाभाविक श्रद्धा भी अधिक मात्रा में उत्पन्न नहीं होती । सद्गुरु के सम्बन्ध में यह कठिनाइयाँ नहीं आती । इसलिये उनको माध्यम बनाकर अपने अन्तःकरण में श्रद्धा, सात्विकता एवं पवित्रता से परिपूर्ण प्रेम का अभ्यास करना सरल होता है। हमारी प्रेम-भावना जितनी ही प्रगाढ़ होती जाती है, उतना ही ईश्वर-प्राप्ति की सफलता के निकट पहुँचते जाते हैं । गुरु-भक्ति का दूसरा लाभ यह है कि उनके आदेशानुसार गायत्री शिक्षाओं को व्यवहार रूप में लाने के लिए उनका प्रभाव विशेष उपयोगी सिद्ध होने लगता है ।

यों सभी मनुष्य समान हैं, सभी ईश्वर के पुत्र होने से भाई-भाई हैं, सभी में दोष हैं, कोई भी पूर्ण निर्दोष नहीं है, गुरु भी यदि पूर्ण निर्दोष होते तो उन्हें संसार में रहने की आवश्यकता ही क्यों होती, अपूर्णता के कारण ही तो हम सब इस स्कूल की विभिन्न कक्षाओं में पढ़ रहे हैं । इतना होते हुए भी किसी अपेक्षाकृत सत्पुरुष को माध्यम बनाकर गुरु-भक्ति की जा सकती है । रबड़ की गेंद को जितने जोर से फेंक कर दीवार पर मारते हैं वह टकराकर उतने ही जोर से वापस लौट आती है । गुरु-भक्ति रूपी साधना से हमारी आध्यात्मिक भक्ति-भावना तेजी से समुन्नत होती है, तदनुसार ईश्वर की गायत्री शक्ति को शीघ्रता एवं अधिक मात्रा में प्राप्त करना सुगम हो जाता है ।

प्रत्येक गायत्री-साधक को आदर्शवादी विचारधारा का अनुयायी होने की, द्विजत्व का अवलम्बन करने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए । तुच्छ, स्वार्थपूर्ण, भोगवादी, पाशविक दृष्टिकोण रखकर जो व्यक्ति गायत्री की उपासना करना चाहता है, उस अनाधिकरी के लिए द्वार बन्द है । साधक को अपने आत्म-निर्माण के लिए गायत्री में सन्निहित नीति-योजना और कार्यप्रणाली को अपनाना चाहिए । गायत्री माता है, माता ही जीवन निर्माता होती है। हमारा आध्यात्मिक जीवन गायत्री शिक्षा के अनुरूप होना चाहिए । प्रत्येक साधक को एक सुयोग्य, अनुभवी, सूक्ष्म बुद्धि, पथ-प्रदर्शक होना चाहिए, जो मार्ग बताने, भूल सुधारने, सुप्त शक्तियों को जगाने एवं भक्ति-भावना को बढ़ाने में सहायक हो सके ।

स्मरण रखना चाहिए कि द्विज ही गायत्री के अधिकारी है । गुरु, पिता और गायत्री-माता के अनुसरण की धर्म-प्रतिज्ञा लेना ही दीक्षा है । आत्मिक उन्नित के लिए दूसरा जन्म होना आवश्यक है । यज्ञोपवीत उस जन्म का प्रमाण-पत्र है । यह मूर्तिमान प्रतिज्ञा हर समय कन्धे और छाती पर अवस्थित रहनी चाहिए, ताकि बार-बार, घड़ी-घड़ी वह हमारी प्रतिज्ञा का स्मरण करती रहे । स्त्री और बालक कण्ठी के रूप में या कण्ठ में पड़े रहने वाले तृतीयांश सूत्र का यज्ञोपवीत धारण कर सकते हैं ।

जो लोग मल-मूत्र आदि के समय कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने के नियम को ठीक प्रकार पालन नहीं कर पाते उनके लिए एक तिहाई लम्बाई का छोटा यज्ञोपवीत बना दिया जाता है, जो कण्ठ में पड़ा रहता है । जो लोग यज्ञोपवीत बनाना नहीं जानते वे गायत्री की शिक्षाओं को एक डोरे में गाँठ लगाकर बाँध लेते हैं । ९ लड़ें, ३ गाँठें, १ ब्रह्म गाँठ तथा १ पूर्ण यज्ञोपवीत के अभाव को पूर्ण करना, इस प्रकार १४ गाँठें लगे हुए डोरे को यज्ञोपवीत के स्थान पर धारण करते हैं । अनन्त चतुर्दशी को पहने जाने वाले १४ गाँठ का अनन्त सूत्र, बालकों के गले में ओझा लोगों द्वारा बाँधे गये १४ ग्रन्थि वाले गण्डासूत्र, स्त्रियों की सोने, चाँदी या काँच की कण्ठियाँ इस प्रकार के आंशिक यज्ञोपवीत के ही प्रतीक हैं ।

गायत्री के प्रत्येक उपासक को यज्ञोपवीत पहनना अवश्य चाहिए, क्योंकि यह उसकी विधिवत् ली हुई धर्म-प्रतिज्ञा-दीक्षा का न त्यागने योग्य उत्तरदायित्व है । यह धारणा उसके उद्देश्य को प्राप्त करने में बड़ी सहायक होती है । नौ धागे का यज्ञोपवीत नव रत्नों का हार है, इसका महत्त्व रत्नजटित आभूषण से अधिक ही है, कम नहीं ।

● ● ●

# गायत्री के दो पुण्य प्रतीक : शिखा और यज्ञोपवीत

## शिखा-सूत्र भारतीय संस्कृति के प्रतीक चिह्न

यज्ञोपवीत और शिखा—भारतीय संस्कृति के दो प्रतीक हैं । इन्हें भारतीय संस्कृति की जननी गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा तथा धर्मध्वजा भी कहा जा सकता है । यज्ञोपवीत को गायत्री की मूर्ति-एक प्रतिमा कहना चाहिए, अन्य देवी-देवता तो ऐसे हैं जिनका प्रतिमा दर्शन कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है, पर गायत्री को भारतीय धर्मानुयायी के जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है कि उसकी प्रतिमा को हर घड़ी छाती से लगाये रखना, हृदय पर धारण किये रहना आवश्यक है । इसका अर्थ है कि गायत्री की ऋतम्भरा प्रज्ञा को अपने जीवन, कर्म, व्यक्तित्व की अधिष्ठात्री घोषित करना ।

हर महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व संभालने वाले व्यक्ति को उस उत्तरदायित्व तथा अपने कर्त्तव्य का स्मरण बनाये रखने के लिए प्रतीक चिह्न दिये जाते हैं । पुलिस, मिलेटरी, वकील, डाक्टर आदि हरेक के साथ उसके कर्त्तव्यों का स्मरण दिलाने वाले, उसका महत्त्व घोषित करने वाले चिह्न-पोषाक के साथ जुड़े रहते हैं । भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य के चिन्तन और कर्त्तव्य को पशुता की दिशा में जाने से रोककर मनुष्यत्व तथा देवत्व की ओर बढ़ाते रहने का उत्तरदायित्व भी एक अति महान् उत्तरदायित्व माना जाता है । इस महत्कार्य के प्रति आस्थावान हर व्यक्ति उसके प्रतीक चिह्नों को गौरव के साथ धारण करता रहा है । यह चिह्न हैं (१) शिखा अथवा चोटी तथा (२) यज्ञोपवीत जिसे संक्षेप में सूत्र भी कहते हैं ।

मध्यकाल में एक ऐसा अन्धकार युग भी आया था जिसमें सती प्रथा, बाल-विवाह आदि मजबूरियाँ पनपीं । उन्हीं दिनों जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच की प्रथा पनपी और इसके लिए प्रतीकों के धारण पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये । शूद्र वर्ण वाले जनेऊ न पहनें, ब्राह्मण ही पहनें । अधिक से अधिक कोई क्षत्रिय वैश्य भी उसे मनमर्जी हो तो पहन लें । स्त्रियों पर भी शूद्रों की तरह यज्ञादि कार्यों में भाग न लेने, गायत्री जप न करने आदि का प्रतिबन्ध लग गया । स्त्रियों के चेहरे पर तो पर्दे का नकाब तक लगा दिया गया । देवताओं के आगे पशुबलि, बहु विवाह जैसी कुप्रथाएँ उसी काल के ध्वंसावशेष हैं जो कहीं-कहीं पिछड़े क्षेत्रों में अभी भी देखे जा सकते हैं । अच्छा ही हुआ कि प्रगतिशीलता और मानवी अधिकारों के उठते माहौल से अवांछनीयताओं में से बहुतों को तोड़-मरोड़कर फेंक दिया । अब दास-दासी भी नहीं बिकते ।

शिखा, सूत्र न केवल हिन्दू धर्म का प्रतीक चिह्न है वरन् यह उद्देश्यों और आदर्शों का भी प्रतिनिधित्व करता है । हिन्दू मान्यता है कि जन्म से सभी पशु स्तर के होते हैं और उनमें भी स्वार्थ की, ईर्षा की, युद्ध की अनेकों पिछड़ी आदतें पाई जाती हैं । बड़े होने पर उन्हें मानवी सभ्यता से परिचित और अभ्यस्त कराया जाता है । नवजात शिशु नंग-धड़ंग पैदा होता है पर वह स्थिति आगे नहीं रहने दी जाती । उसे कपड़ा पहनना सिखाया जाता है । सर्दी-गर्मी से बचने के लिए ही नहीं मानवी सभ्यता के प्रतीक रूप में भी । जो नहीं पहनते उन्हें आदिम कालीन या आदिवासी कहा जाता है । अफ्रीका में अभी भी बहुत से ऐसे इलाके हैं जहाँ नर ही नहीं नारियाँ भी किसी तरह की पोशाक नहीं पहनतीं ।

शिखा और सूत्र को द्विजत्व अपनाने, मानवी सभ्यता को स्वीकार करने के रूप में धारण कराया जाता है । मुण्डन संस्कार सभी जातियों में प्रचलित है । इसे वस्तुतः शिखा की स्थापना का हर्षोत्सव कहा जाता है । यह मस्तिष्क के ऊपर शालीनता का ध्वज लहराने के समान है। यह चिह्न किसी सम्प्रदाय विशेष से जुड़े हुए भले ही मान लिए गये हों, किन्तु वस्तुतः यह इस भावना और संकल्प के द्योतक ही हैं कि इन्हें धारण करने वाला अपने विचारों और आचारों को निकृष्टता से बचाकर उत्कृष्टता की ओर ले जाने के लिए सतत् प्रयासरत है । बीच में इन चिह्नों का महत्त्व भुला दिया गया और उन्हें हठधर्मी तथा अन्धविश्वास जैसा हीन रूप दे दिया गया, यह हमारा दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए । मानवीय गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने का सतत् उद्बोधन देने वाले प्रतीकों को जन-साधारण के स्तर पर समझा और महत्त्व दिया जाना निश्चित रूप से लाभप्रद है ।

भारतीय संस्कृति का—भारतीय आदर्शों पर चलने के लिए कृत संकल्प आस्थावानों का प्रथम अनिवार्य प्रतीक चिह्न शिखा है । यह हमारे मस्तिष्क रूपी किले पर गढ़ा हुआ धर्म-ध्वज है। जिस प्रकार आजकल

सरकारी इमारत पर तिरंगा झण्डा फहराता है, वैसे ही हर भारतीय मस्तिष्क रूपी दुर्ग पर अपनी संस्कृति की विजय पताका शिखा के रूप में फहराती है । संध्या वन्दन आदि धर्मकृत्यों में शिखा बन्धन की क्रिया की जाती है, इसका प्रयोजन एक प्रकार से "झण्डाभिवादन" जैसा ही है । इस संस्थापन का प्रयोजन यह है कि हर भारतीय संस्कृति के अनुयायी का मस्तिष्क उच्च विचारणा, विवेकशीलता, उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता का ही केन्द्र रहना चाहिए । उसमें निकृष्ट, ओछे, स्वार्थी, संकीर्ण और अनैतिक आकांक्षाओं को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए । जिस राजा का किला होता है उसमें उसी की सेना या प्रजा निवास करती है । शत्रु सैनिकों को उसमें एक कदम भी नहीं रखने दिया जाता । उसी प्रकार जिस मस्तिष्क दुर्ग पर सद्विचार की धर्म ध्वजा शिखा के रूप में फहराती है उसके संरक्षकों का आवश्यक कर्त्तव्य है कि दुष्ट मनोविचार को अपने विचार क्षेत्र में प्रवेश न करने दें और अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता को सदाचरण को सर्वथा अक्षुण्ण बनाये रखें ।

शिखा रखते समय हर व्यक्ति को इसके मूल प्रयोजनों का ध्यान रखना चाहिए । मस्तिष्क में उन्हीं विचारणाओं, मान्यताओं और आकांक्षाओं को स्थान मिले जो विवेकशीलता, नैतिकता, मानवता, सामाजिकता की कसौटी पर खरी उतरती हों । दुर्बुद्धि, दुर्भावना और दुष्टता की जो दुष्प्रवृत्तियाँ चारों ओर फैली हैं उनका उन्मूलन करने के लिए हमें शिखा रूपी धर्म ध्वजा फहराते हुए उन्हें पराजित करने को कटिबद्ध होना चाहिए ।

शिखा को ध्वज की तरह ही शरीर के सर्वोच्च भाग पर स्थान दिया गया है । यही नहीं योग विज्ञान के अनुसार जहाँ सूक्ष्म शक्तियों का केन्द्र सहस्रार चक्र है उसी स्थान पर शिखा स्थापित की जाती है । उसका तात्पर्य यह मर्म ध्यान में रखने का है कि सद्विचारणा मनुष्य के अन्दर के दिव्य शक्ति केन्द्रों को जागृत कर सकती है तथा शक्ति केन्द्रों पर सद्विचारों की स्थापना अवश्य करनी चाहिए ताकि उनका उपयोग कल्याणकारी ढंग से हो सके । अन्यथा शक्तियों का गलत उपयोग समस्त मानवता को संकट में डालने वाला सिद्ध हो सकता है ।

इस प्रकार शिखा के साथ सद्विचारणा का यह कल्याणकारी मर्म और महत्त्व जुड़ा है, जिसके आधार पर मनुष्य अपने जीवन में स्वर्ग की अनुभूति कर सकता है । शिखा स्थापना को इसीलिए अत्यिधक महत्त्व दिया जाता रहा है तथा उस हेतु एक विशेष संस्कार, चूड़ा कर्म अथवा मुण्डन के नाम से कराने की व्यवस्था है । इस प्रतीक को धारण करके उसका उद्देश्य भूल न जायें इसीलिए नित्य संध्या अथवा हर धर्म कृत्य के साथ शिखा बन्धन का कर्मकाण्ड जोड़ा गया है । शिखा का यह महत्त्व हर मानवता प्रेमी के समझने और जीवन में धारण करने योग्य है ।

भारतीय संस्कृति का दूसरा प्रतीक है यज्ञोपवीत । यज्ञोपवीत धारण का अर्थ है— इस शरीर ने प्रज्ञीय जीवन जीने का फैसला किया है, अब कोई ऐसा क्रिया कृत्य न किया जायेगा जो आत्मा के देवत्व को कलंकित कर सके । यज्ञीय जीवन अर्थात्— संयमी, सज्जनतापूर्ण, उदात्त एक लोक मङ्गल के लिए जिया जाने वाला जीवन । जिन्दगी ऐसी ही रीति-नीति और गतिविधि अपनाने से बनती है । यज्ञोपवीत ऐसी ही रीति-नीति को अपनाने की प्रतिज्ञा लेकर जीने की घोषणा है ।

भारतीय धर्मानुयायी अपने आपको 'द्विज' कहते हैं । द्विज अर्थात् दो बार जन्म लेने वाले । माता के पेट से तो शरीर मात्र पैदा होता है । यह अवतरण मनुष्य और पशु का एक रहा है । दुबारा जन्म— आदर्शों के लिए जीने की प्रतिज्ञाओं से सम्पन्न होने के साथ आरम्भ होता है । यज्ञोपवीत धारण द्विजत्व की प्रतिज्ञा— घोषणा एवं आस्था है । जनेऊ पहनने के साथ ही द्विजत्व-देव जन्म आरम्भ होता है । भारतीय संस्कृति की यह महान् परम्परा मनुष्य को दैवी आदर्शों के अनुरूप जीने की प्रेरणा देती है ।

यज्ञोपवीत में तीन लड़ें होती हैं और हर लड़ में ९ धागे होते हैं । तीन लड़ें जीवन में ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वय द्वारा अज्ञान, अभाव तथा अशक्ति का निवारण करके श्रेष्ठ, समृद्ध तथा सशक्त जीवन जीने की प्रतीक हैं ।

यज्ञोपवीत के ९ धागे नौ सद्गुणों के प्रतीक हैं । इन गुणों को थोड़े विस्तार के साथ इस प्रकार समझा जा सकता है (१) हृदय में प्रेम, (२) वाणी में माधुर्य, (३) व्यवहार में सरलता, (४) नारी मात्र के प्रति पवित्र भावना, (५) कर्म में कला और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, (६) सबके प्रति उदारता और सेवा भावना, (७) शिष्टाचार और अनुशासन, (८) स्वाध्याय एवं सत्संग, (९) स्वच्छता,

व्यवस्था और निरालस्यता । ये सद्‌गुण मानव जीवन की सच्ची शोभा और विभूति हैं । यज्ञोपवीत धारण करने वालों की आस्था इस बात पर जमाई जानी चाहिए कि ये इन सद्‌गुणों को अपने में बढ़ाते चलने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहें ।

यज्ञोपवीत गायत्री महाशक्ति का स्वरूप और यज्ञ भगवान् का प्रतीक है । गायत्री मन्त्र के ९ शब्द—यज्ञोपवीत के ९ धागे - ४ गाँठें तीन व्याहतियाँ और बड़ी ग्रन्थि ॐ की प्रतीक है । गायत्री रूपी परमात्मा को कन्धे पर, हृदय पर, कलेजे पर, पीठ पर धारण करने वाले प्रत्येक जनेऊधारी को यह विश्वास करना चाहिए कि वह चारों ओर से भगवान् द्वारा घिरा बँधा है । इसलिए उसे ऐसा उत्कृष्ट जीवन जीना चाहिये जो भगवान् की इच्छा, प्रसन्नता एवं रचना के अनुरूप हो । यज्ञोपवीत गले में बँधा हुआ एक धर्म रस्सा है जो प्रकट करता है कि व्यक्ति को नीति, धर्माचार, सदाचार और कर्त्तव्य के बन्धनों में स्वेच्छापूर्वक बँधे रहकर मानवीय मर्यादाओं के अन्तर्गत ही जीवनयापन करना चाहिये ।

मन को—विचारों को पवित्र रखने की प्रेरणा शिखा में है और शरीर के—कर्म के पवित्र रखने की निष्ठा यज्ञोपवीत उत्पन्न करता है । वैचारिक और क्रियात्मक-उत्कृष्टता उत्पन्न करने, सुरक्षित रखने और बढ़ाने का तत्त्व ज्ञान शिखा-सूत्र के पुण्य प्रतीकों में सन्निहित है । यज्ञोपवीत जहाँ गायत्री की कर्म प्रतिमा है, वहीं शिखा गायत्री की ज्ञान प्रतिमा है । कर्म और ज्ञान के समन्वय से ही श्रेष्ठ मानव का व्यक्तित्व ढलता है । प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी के लिए गायत्री की इन दो मूर्तिमान प्रतिमाओं की स्थापना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बताई गई है । इनमें सन्निहित सन्देशों, प्रेरणाओं को हृदयंगम करने वाला व्यक्ति लघु से महान्, नर से नारायण बन सकता है ।

## शिखा का महत्त्व

शिखा शब्द "शिख् जाने अर्थ धातु से बनता है जिसका अर्थ शिखा यानी ब्रह्मरन्ध्रस्थ वालों के द्वारा जीवन शक्ति का आना और जाना बतलाया है । "तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत" इसमें बतलाया गया है, कि मनुष्य शरीर में ब्रह्मरन्ध्र के शिखा भाग द्वारा परमात्मा का प्रवेश होता है । जिस परमात्मा को जीवात्मा कहते हैं । यही नियम है, कि मनुष्य या प्राणी मात्र गर्भ स्थिति में रहता है, तो प्रथम शिर की रचना होती है, बाद में दूसरे अंग प्रत्यंगों की । हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों का यह अनुभूत सिद्धान्त है, कि प्राणों का गमन यदि ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से हो तो अवश्य इस संसार में आवागमन छूट जाता है, क्योंकि "गो-गोचर जहँ लग मन जाई । सो सब माया जानहु भाई ।" अब जहाँ तक मन की दौड़ है वहाँ सर्वत्र माया भासित होगी । माया से "आब्रह्म भुवना लोका: पुनरावर्तिनोऽर्जुन" के सिद्धान्त से आवागमन तो निश्चय ही है । सब वर्णो यानी अंगों में "मुखं श्रेष्ठतमं मतम्" माना है । शिखा रखने का रहस्यमय कारण यह है, कि जो मस्तक की माँस पेशियाँ हैं, वे प्राय: बहुत कोमल होती हैं । उनमें जितनी शीघ्रता से सर्दी और गर्मी प्रवेश कर सकती है, उतनी किसी स्थान में नहीं कर सकती । सिक्ख लोग जटा (शिखा) आदि पञ्च केशों के रखने से कितने स्वस्थ और सुन्दर प्रतीत होते हैं ? यह बाल वीर्य रक्षा के लिये अत्युपयोगी साधन हैं । बारम्बार मुण्डनादि कृत्यों से मनुष्य की विषय-वासनाएँ उत्तेजित हो उठती हैं और विषय-वासना ही अधोगति का कारण है । नारी समाज की ओर दृष्टि कीजिये, उन्हें केश रखने का कितनी चाव है, वही उनकी शिखा है जिसकी बदौलत नारियों में अपूर्व सौन्दर्य, सहनशीलता और कार्यक्षमता की विशेषता पुरुषों से अधिक पाई जाती है । हमारे ऋषि-मुनि शिखाधारी होने के कारण ही प्राय: दीर्घजीवी होते थे, क्योंकि उनके वीर्य की रक्षा और इन्द्रियों की शांति केशों के द्वारा सरलता से हो जाती थी । आजकल का नर समाज विलासिता की ओर इतना अग्रसर क्यों हो रहा है? केवल केशों की ओर ध्यान न देने देने से ! शिखा की गति प्राय: ऊर्ध्व हुआ करती है, जैसे दीपक की शिखा को लीजिये । जिस प्रकार दीपक अपनी शिखा के द्वारा धुएँ के रूप में अपनी कालिमा को फेंकता जाता है, उसी भाँति यह जीवात्मा रूपी दीपक भी अपनी शिखा द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से सब पाप रूपी धुएँ को निकालता हुआ अन्त में अपने यथेष्ट स्थान को पहुँच जाता है । इसी शिखा के द्वारा "चिद्रूपिणि ! महामाये, दिव्य तेज: समन्विते । तिष्ठदेवि ! शिखा बन्धे तेजो वृद्धि कुरुष्व मे ।" तेजो वृद्धि का आवाहन किया जाता है । शिखा बाहर की सर्दी या गर्मी को मस्तिष्क में प्रविष्ट नहीं होने देती, क्योंकि केशों में ऊन के सभी गुण विद्यमान होते हैं । जैसे ऊन के ऊपर पानी कम ठहरता है, वैसे ही बालों में भी पानी नहीं ठहर पाता । ऊन के तन्तु जैसे पशु-पक्षियों की

शारीरिक-गर्मी को बाहर नहीं निकलने देते वैसे ही हमारे बाल भी शारीरिक गर्मी और सर्दी का बचाव करते रहते हैं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि बाल रखने से बल, आयु आरोग्य की वृद्धि और न रखने से इनका ह्रास होता है । वेद मन्त्रों में देखिये—"दीर्घायुष्टवाय बलाक वच से । शक्त्यै शिखाये वषट्" इत्यादि पहले कैदियों को सबसे बड़ा दण्ड उनका मुण्डन कराना ही समझा जाता था, क्योंकि उनमें कष्ट सहने की वह शक्ति नहीं रहने पाती थी, जिससे वे यातनायें भोग सकें । मुण्डन हो जाने से अपराधी अपना दोष भी शीघ्र स्वीकार कर लेते थे । ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं । शिखा आर्य धर्म का एक चिह्न भी है । जैसे आजकल प्रत्येक संस्था अपनी-अपनी समाज का अलग-अलग चिह्न रखती है, उसी प्रकार हमारे समाज का शिखा प्रधान चिह्न है । एक झण्डे के लिए जैसे सेनानी अपने प्राणों की बाजी लगा देता है वैसे ही नर समाज के प्रधान अंग मस्तिष्क-राज्य की ध्वजा शिखा की रक्षा में कोई कसर नहीं रखना चाहिये । इसी शिखा और धर्म की रक्षा के लिये शिवाजी, गोविन्दसिंह जी जैसे वीरों ने अपने प्राणों की बाजियाँ लगा दी थीं ।

'शास्त्रों में कहा गया है—'देहो देवालयः प्रोक्तः' यानी देह एक देवालय है जिसमें जीवात्मा रूपी देव का निवास है, उसका निशान शिखा है । जैसे दूसरे देवालयों में ध्वजादि निशान हुआ करते हैं वैसे ही हमारे देह—रूपी मन्दिर की ध्वजा शिखा है । क्योंकि बिना ध्वजा 'झण्डा' के यह नहीं जाना जा सकता है कि यह किस समुदाय का व्यक्ति या कौन-सी संस्था है ? भारत की प्रधान संस्था कांग्रेस का शिखा (चिह्न) तिरंगा झण्डा है, जिसके लिये महात्मा गाँधी, पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्तियों ने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया है । अभी हाल ही में एक पत्र में यह देखा है कि पोलैण्ड देश की एक देश भक्त रमणी ने और एक बालक ने अपने देश के झण्डे को न झुकाने के अपराध में जर्मन सैनिकों के मार्मिक आघातों को सहन करते हुए संसार से कूँच तो कर दिया, किन्तु अपनी ध्वजा का अपमान अपने जीते जी न होने दिया । वाह री ! वीरात्माओं ! यदि तुम्हारे जैसा ज्ञान इस अभागी आर्य जाति को हो जाय, तो उन्नति होने में कोई सन्देह न रहे । क्योंकि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यह नियम अटल है । आपने धर्म के वास्ते यदि कुछ त्याग दिखाये हों, तो धर्म आपकी रक्षा करे । आज हम देखते हैं, ब्रिटिश और जर्मन जैसे शक्तिशाली राज्यों के महायुद्ध में हजारों सैनिक अपनी जान दे रहे हैं । यह क्यों ? उन्हें न तो अपने साथ धन, न जन, न वैभव से कुछ मोह नहीं । केवल वे चाहते हैं, तो अपने झण्डे की शान । जहाँ एक किसी भी शक्तिशाली राज्य का झण्डा दूसरे राज्य पर चढ़ गया, फिर लड़ाई बन्द । वही सैनिक, वही सब बातें मौजूदा होंगी, मगर एक झण्डे के न रहने से शक्ति का द्वार अपने आप बन्द हो जायेगा । यही बात तो हमारी इस ध्वजा (शिखा) पर लागू होती है । जब इस आर्य भूमि में शिखा, सूत्र, मूँछ का ख्याल था, तब किसी की दम न थी कि अत्याचार कर ले । यदि करता भी था, तो हम लोगों में शिखा के द्वार वह तेज आया करता था कि एक सोलह वर्षीय बालक अभिमन्यु भी अपार कौरव (दुष्ट) दल को कुछ न गिनता था । आज हमने अपने आर्यत्व के निशान शिखा को पाश्चात्य प्रणाली की बू में रंग कर तिलांजलि दे दी है । तभी तो शक्ति का नाम नहीं रहा । भूषण कवि ने यदि शिवाजी की विजय के लिये उनकी शिखा और मूँछों को महत्त्व देते हुए उनका उत्साह न बढ़ाया होता, तो उन्हें इतना साहस भी शायद न बढ़ता ? पुरातन ऋषि-महर्षियों की ओर ध्यान दीजिये । किसी ने जटाओं से राक्षसी पैदा कर दी, तो किसी ने अपने दिव्य जटापाशों में सूर्य और इन्द्र को मोहन मन्त्र द्वारा बाँध लिया ।

महारानी द्रौपदी के केश (शिखा) तेरह वर्ष तक वैसे ही छिन्न-भिन्नावस्था में रहे, किन्तु उन्होंने उनका परिष्कार न किया । यदि वे परिष्कार कर लेतीं तो सम्भव था कि भीम जैसे वीर को वीर-शक्ति का जोश भी इतना न बढ़ता । आप में से कितनों ही ने यह देखा और सुना भी होगा कि जब कभी किसी औरत या मर्द को कोई भूत या पिशाच सताता है तो प्रायः तद्विषयक जानकार यही सलाह देते हैं कि—चोटी काट लो । चोटी काटने पर पिशाच भी प्रायः भाग जाता है । कई खाकी सम्प्रदाय के साधुओं में जब किसी बनावटी साधु या ढोंगी सन्तों से वाद-विवाद होकर झगड़ा हो जाता है, तो प्रायः उनका सब से भारी अपमान उनके बालों के काटने में ही समझा जाता है । भस्मासुर को भस्म करने में विष्णु भगवान् का सच्चा साथ किसने दिया था ?इन्हीं सुषमा पूरित केश पाशों ने, इसी तेज जननी शिखा ने । न उस भस्मासुर का हाथ उस शिखा पर जाता, न भस्म होता । वहाँ मामला यह हुआ कि कुछ तो वरदत्त वलय की गर्मी का तेज और कुछ

उसकी दूषित मनोमालिन्यता का विषैला तेज, यह दोनों संघर्ष को प्राप्त कर गये । दो चीजों के संघर्ष में तीसरी का विनाश निश्चित ही है— जैसे प्रस्तर लोहे की लड़ाई में रुई का नाश ।

ब्रह्म तेज क्यों विलीन है ? शिखा के धर्म को न समझने से । एक कवि ने ठीक ही तो कहा है कि—

**हरि ने शिर पर क्यों दिये, इतने भारी बाल ।**
**रक्षा करने तेज की, आयु, बुद्धि तन पाल ॥१॥**
**रुद्र तेज या शक्ति को, ठहरत चुटिया मांहि ।**
**याते शिखा जु राखिये, और हेतु कछु नाहिं ॥२॥**

इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि शिखा में तेज का स्थान सम्यक् रीति से निहित है ।

सोलह संस्कारों में "मुण्डन" संस्कार भी शामिल है— उस मुण्डन संस्कार का रहस्य मेरी समझ में तो यही हो सकता है कि माता के उदर में रहने से जीव को प्राक्तन-कर्मों का ख्याल आता रहा, उसे उसने कर्म का भोग समझ छुटकारा पाना, अभीष्ट समझा । जब उस दुःख सागर से उसका बहिरागमन हुआ, मस्तिष्क में सांसारिक वायु मण्डल ने प्रवेश किया, तथापि उसे उस मुण्डन संस्कार के पूर्व तक अपने पुरातन कर्मों का ध्यान रहा । वासना निर्मूल हो नहीं सकती, अतः हमारे पूर्वजों ने सोचा— इसके रोम में (बालों में) जो पूर्व वासनाएँ समाविष्ट हैं, उनका अस्तित्व इसे न ज्ञात रहे, अतः मुण्डन संस्कार कराने की प्रथा चालू की । जब तक बच्चे का मुण्डन संस्कार नहीं हुआ था, तब तक तो वह अपने कर्त्तव्य यानी प्रारब्ध और ध्येय को कुछ न कुछ रूप में समझता रहा और उसी पूर्व जन्म कृत-कर्मों की याद में उसे अपने माँ, बाप, बन्धु और परिवार की प्रेमग्रन्थि नहीं लग पाई । हालांकि उसे खिलाने-पालने का भार माँ-बाप पर ही था । मगर वह बिल्कुल निश्चिन्त था । कभी अपने कर्मों पर रोता, तो कभी हँसता रहा । जब मुण्डन संस्कार हुआ, या यों कहिये कि प्राक्तन कर्मों का शिरोहस्थ तेज समाप्त हुआ और नया केशारोहण कार्य प्रारम्भ हुआ, तो उसके मस्तिष्क में, मन में यही अधिक तेज मोहमयी शक्ति समाविष्ट हुई । माँ-बाप का ख्याल हुआ । प्राक्तन ज्ञान भूला और करणीय कार्यों का मोह पल्ले में पड़ गया । किन्तु बार बार मुण्डन कराने से वह पूर्व संचित अनुभूतियों को बिल्कुल ही न भूल जाय, इसलिये आचार्यों ने कम से कम थोड़े से बाल तो अवश्य ही शिखा स्थान पर रखे जाने का आदेश किया है ।

मुण्डन का एक विशेष वैज्ञानिक प्रयोजन है, अब तक चल रही विचारधारा में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करना हो तो उसके लिए विचार संस्थान को विशेष रूप से प्रभावित करना पड़ता है । चूँकि केश मस्तिष्क पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों को रोकते हैं इसलिए उन्हें हटाकर यह सुविधा उत्पन्न करली जाती है कि शिर के रोमकूपों द्वारा कोई विशिष्ट प्रेरणा मस्तिष्क के अन्तराल विचार-संस्थान तक पहुँचाई जा सके । ऐसे मुण्डन किन्हीं विशेष अवसरों पर ही कराये जाते हैं । चूड़ाकर्म संस्कार के अवसर पर इसलिये कि अब तक चले आ रहे जन्म-जन्मान्तरों के पशु स्वार्थ में ग्रस्त विचारों को, बदलकर मानवीय आदर्शों को अपनाने के लिए मस्तिष्क प्रशिक्षित किया जाय, यज्ञोपवीत वेदारम्भ संस्कार के अवसर पर इसलिए कि जिस ज्ञान को मस्तिष्क में धारण किया जा रहा है उसका प्रयोजन एवं लक्ष्य समझ लिया जाय । मरणोत्तर संस्कार में उत्तराधिकारी तथा कुटुम्बीजन इसलिये मुण्डन कराते हैं कि प्रियजन के स्वर्गवास से जो आघात लगा है, जो शोक और मोह उत्पन्न हुआ है उसे जीवन क्रम में अब तक चली आ रही व्यक्तिवादी विचारधारा को बदलकर विश्वात्मा के साथ अपने तादात्म्य की नई भाव चेतना को विकसित किया जा सके । बंगाल आदि प्रान्तों में विधवायें भी इसी प्रयोजन के लिए सिर मुंडाती हैं कि वे गृहस्थ निर्माण सम्बन्धी अपने सपनों को मिटाकर उसके स्थान पर आत्म-निर्माण, विश्व-निर्माण के परिष्कृत दृष्टिकोण को अपना सकें ।

तात्पर्य यह है कि जीवन क्रम के प्रचलित ढर्रे को बदल डालने का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक माध्यम मुण्डन माना गया है । वैज्ञानिक इसलिए कि संस्कार विधान के अवसर पर होने वाले मन्त्रोच्चार, यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की अध्यात्म विद्या के आधार पर बनी हुई पद्धति का प्रयोग करके शिर संस्थान के तन्तुओं को अमुक दिशा में चलने के लिए प्रभावित किया जाता है । इस माध्यम से मस्तिष्क के गहन अन्तराल में भी हलचल मचती है और उससे अभीष्ट प्रयोजन भावनात्मक परिवर्तन सरल हो जाता है ।

मनोवैज्ञानिक इसलिए कि किसी विचार का कार्य के साथ सम्बन्ध जोड़ देने से वह अपना एक प्रभाव एवं

संस्कार बनाकर चिरस्थाई हो जाता है । चोटी रखने से व्यक्ति यह विश्वास जमा लेता है कि वह हिन्दू है । मुसलमानों में सुन्नत का रिवाज इसलिए भी है कि वह व्यक्ति सदा यह समझता रहे कि वह मुस्लिम धर्म में दीक्षित है । भावरें फिर लेने से यह मान लेता है कि विवाह हो गया । दुपट्टे में गाँठ बाँध लेने से उस बात के भूल जाने की सम्भावना नहीं रहती । गलती का प्रायश्चित करते हुए भविष्य में उसे न करने का स्मरण बनाये रखने के लिए कान पकड़कर उठक-बैठक करने का दण्ड मिलता है । किसी परास्त पराजित से उसका गर्व समाप्त करने और दीनता अनुभव कराने के लिए लोग मूँछें मुड़ाने की शर्त लगाते हैं । नाक छिदा देने से लड़की को अपने नारीत्व का बोध होता है । अन्यथा यदि वेश-विन्यास, बोलचाल, रीति-रिवाजों का अन्तर जहाँ न हो वहाँ रहने पर लड़का-लड़की में कोई विशेष अन्तर न रहेगा । नारी से नर में जो भिन्नता दिखाई देती है यह उसकी संस्कृति बदल जाने के कारण ही होती है । कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ शारीरिक क्रिया कृत्य या वेश-विन्यास में हेर-फेर के साथ भावनात्मक परिवर्तन का तारतम्य भी छिपा रहता है । मुण्डन जैसे संस्कारों का यह भी प्रयोजन है कि इस प्रदर्शन घोषणा के आधार पर व्यक्ति स्वयं वैसा ही अनुभव करें और दूसरे भी वैसा ही समझें जैसा कि उस कृत्य का मूल प्रयोजन था । मनोवैज्ञानिक दृष्टि में मुण्डन एक सार्वजनिक घोषणा प्रदर्शन है जिसका प्रयोजन अब तक चली आ रही मान्यता—कार्य पद्धतियों को बदल देना है ।

## अन्य योनियों के संस्कार

चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने के कारण मनुष्य कितने ही ऐसे पाशविक संस्कार, विचार एवं मनोभाव अपने भीतर धारण किये रहता है जो मानव-जीवन में अनुपयुक्त एवं अवांछनीय होते हैं । इन्हें हटाने और उस स्थान पर मानवतावादी आदर्शों के प्रतिष्ठापित किये जाने का कार्य इतना महान् एवं आवश्यक है कि वह पूरा न हो सका तो यही कहना होगा कि आकृतिमात्र मनुष्य की हुई, प्रवृत्ति तो पशु की ही बनी रही । ऐसे नर पशुओं की संसार में कमी नहीं जो चलते, बोलते, खाते, पहनते तो मनुष्य की तरह ही हैं पर उनके आदर्श और मनोभाव पशुओं जैसे होते हैं । ऐसे लोग मानव-जीवन को कलंकित ही करते हैं । ईश्वर की अनुपम देन को निरर्थक गँवाने वाले इन लोगों को अभागा ही कहना पड़ता है ।

जीव साँप की योनि में रहते हुए भी बड़ा क्रोधी होता है, अपने बिल के आस-पास किसी को निकलते देख ले तो उसपर क्रुद्ध होकर प्राण हरण करने वाला आक्रमण करने से नहीं चूकता । कितने ही मनुष्य उन क्रूर संस्कारों को धारण किये रहते हैं और छोटा-सा कारण भी होने पर इतने क्रुद्ध, कुपित होते हैं कि उस आवेश में सामने वाले का प्राण हरण कर लेना भी उनके लिए कुछ कठिन नहीं रहता । जिन जीवों को शूकर की योनि के अभ्यास बने हुए हैं वे अभक्ष्य खाने में कोई संकोच नहीं करते । मल, मूत्र, रक्त, माँस, कुछ भी वे रुचि पूर्वक खा सकते हैं, वरन् फल, मेवा, दूध, घी जैसे सात्विक पदार्थों की अपेक्षा करते हुए वे उन अभक्ष्यों में ही अधिक रुचि एवं तृप्ति अनुभव करते हैं । कुत्ते की तरह दुम हिलाने वाले, लकड़बग्घे की तरह निष्ठुर, लोमड़ी की तरह चालाक, मधु मक्खियों की तरह जमाखोर, बिच्छुओं की तरह दुष्ट, छिपकली की तरह घिनौने कितने ही मनुष्य होते हैं । किसी का भी खेत चरने में संकोच न हो ऐसे साँड कम नहीं । जिन्होंने कामुकता के उफान में लज्जा और मर्यादा को तिलांजलि दे दी हो ऐसे श्वान प्रकृति नर पशुओं की कमी नहीं । दूसरों के घोंसले में अपने अण्डे पालने के लिए रख जाने वाली हरामखोर कोयलें कम नहीं, जो आरामतलबी के लिए अपने शिशु पोषण जैसे महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों को भुलाये हुए दूसरों का मनोरंजन करने के लिए फूल वाली डालियों पर गाती, नाचती फिरती हैं । ऐसे लोभी भौंरे जो फूल के मुरझाते ही बेवफाई के साथ मुँह मोड़ लेते हैं मनुष्य समाज में कम नहीं हैं । शुतुरमुर्ग की तरह अदूरदर्शी, भैंस की तरह आलसी, खटमल और मच्छरों की तरह परपीड़क, मकड़ी और मक्खियों की तरह निरर्थक मनुष्य की यहाँ कुछ कमी नहीं । यही प्रकृति मनुष्य में भी रहे तो उसका मनुष्य शरीर धारण करना निरर्थक ही नहीं मानवता को कलंकित करने वाला ही कहा जायेगा ।

शिखा स्थापना का मुख्य प्रयोजन यही है कि जन्म-जन्मान्तरों से अनेकानेक पशु योनियों में भटकते हुए जो कुसंस्कार अपनी अन्तः चेतना पर छा गये हैं, उन्हें निरस्त किया जाय । इन कुसंस्कारों को निरस्त करते हुए मस्तिष्क में ऋतम्भरा प्रज्ञा के सुसंस्कारों की स्थापना की जाय ।

शिखा रखने का और प्रयोजन यह भी है कि जब यज्ञादि के द्वारा अमोघ तेज प्राप्त होता है, तो शरीर-गत उष्णता (ऊष्मा) प्रबल हो जाती है, उसे तो बाहर जाना ही

चाहिये । उसे निष्क्रमण मार्ग देने के लिये शिखा आवश्यक है । जिस तरह तालाबों के पानी की रक्षा के लिए उनके किनारे, बाँध वगैरह बाँधे जाते हैं और जल की स्वच्छता के लिये पानी जाने को नाली या नहर वगैरह बनाई जाती है, उसी प्रकार "शिखा-बन्धन" के समय वह तेज कुछ समय तक रुक जाता है और शिखा खोलने से प्रवाहित बनता है । यह अर्थ सातवें गण के परस्मैपदी 'शिख्' धातु के शेष रखना या रहना, वसना या पृथक् होना, इस अर्थ को बताने वाली धातु से निकलता है । जब इच्छा सहित त्रिगुणात्मक क्रिया शक्ति पर जप प्राप्त हो जाय, तब जटा या शिखा का त्याग करना चाहिये । जैसे सरोवर के जल को स्वच्छ रखने के हेतु नहर या नाली के निकालने की आवश्यकता रहती है, ताकि सरोवर का पानी स्वच्छ और निरोगताप्रद बना रहे । इसी प्रकार हमारे इस मानस-सरोवर के बुरे विचार रूपी जल से हमारा सारा-मानस सरोवर गदला न हो जाय, इसीलिये शिखा द्वारा उस कुविचार-रूपी-जल का बहिर्निष्कासन आवश्यक है । प्राचीन समय में ब्रह्मचारी, यती, वानप्रस्थ, मुनि, महात्मा लोग अपने सिर पर टोपी या पगड़ी नहीं रखते थे, उनके वीर्य की रक्षा उनकी प्राकृतिक टोपी या पगड़ी जिन्हें केश ही समझिये, करते थे । The Harmonial man पुस्तक में अमेरिकन डाक्टर 'एण्ड्रोजेक्शन डेविस' बतलाते हैं कि सिर, दाढ़ी, मूँछ के बालों को ईश्वर ने वीर्य-रक्षा के लिये ही बनाया है । इनका यह दृढ़ कथन है कि जिनके सिर और दाढ़ी, मूँछ के बाल बड़े होते हैं, उनके शारीरिक-वीर्य की वृद्धि इतर मनुष्यों से अच्छी पाई जाती है । बालों से वीर्य रक्षा में जो सहायता मिलती है, वह अन्य कृत्रिम-उपायों से नहीं हो सकती है । यह बातें ऋषि-महर्षियों को अच्छी तरह मालूम थीं, इसीसे उन्होंने अपने ग्रन्थों में जटा आदि रखने का उपदेश दिया है । हारीत-मुनि ने कहा है कि—

**स्त्री शूद्रौ तु शिखां छिन्वा क्रोधाद् वैराग्यतोऽपि वा।**

**प्राज्ञापत्यं प्रकुर्व्वीत निष्कृति र्नात्यथा भवेत् ॥**

जब क्रोध या वैराग्य से स्त्री और शूद्र-जाति तक के लिए प्राजापत्य प्रायश्चित्त बतलाया है, तो अन्य वर्णों की प्रतिक्रिया या प्रायश्चित्त क्रिया क्या हो सकती है ? यह धार्मिक, वैज्ञानिक, नैतिक समाजी स्वयं सोच सकते हैं। हाँ ! यह बात दूसरी है कि आप अपने शिर पर पूरे बाल नहीं रख सकते, तो न सही किन्तु महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की भाँति अर्द्धकेश यानी गो-खुर बराबर शिखा तो अवश्य ही रखना चाहिये । इससे मार्मिक-स्थल की रक्षा ही न होगी, साथ-साथ आयु वृद्धि होते हुए आपकी धर्म-प्रियता का महान् चिह्न भी होगा । श्री एमसे इजरेल कहते हैं—"जिस समय सब लोग मुण्डन कराने लगेंगे, उस वक्त प्रत्येक व्यक्ति निर्बल बन जायेगा । इसलिये मनुष्यों को मूँड़ मुँड़ा कर दुर्बल नहीं होना चाहिये । मृत व्यक्तियों की क्रियादि में भी ऐसा नहीं करना चाहिये ।"

वास्तव में यह कथन भी यथार्थ है— जब से हमने मुण्डन को महत्त्व दे दिया, तभी से हम कमजोर से बन गये हैं । प्राचीन पुरुषों जैसी हम में मानसिक, शारीरिक या नैतिक शक्ति भी नहीं रही । "हाथ कंगन को आरसी क्या ?" हमारे सामने सिखों का उदाहरण ही मौजूद है । उनमें जितना सौन्दर्य, बल, सहनशीलता आदि होते हैं, उतनी मूँड मुँड़ाने वाले रईसों में भला कहाँ से आ सकती है । धीर हकीकत राय से जिस समय नवाब ने यह कहा कि "तुम मुसलमानी गिलास से एक गिलास पानी पी लो, तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा और फाँसी से मुक्त कर दूँगा, किन्तु-हकीकत राय ने उस पानी पीने से मरना ही श्रेयस्कर समझा और अपने धर्म के लिए मर कर अपना नाम अमर कर लिया । एक समय ऐसा था कि कितनी ही जातियों में शिखा रखने की प्रथा थी । उसका सम्बन्ध वे काल रक्षा के साथ मानते हुए अपना धर्म समझते थे । किन्तु आज "समयमेव करोति बलाबलम्" की उक्ति चरितार्थ हो रही है, जिससे हम उसके रहस्य को ही भूल बैठे हैं । शिखा रखने की महत्ता को हमारे आर्य-वैदिक ग्रन्थ-शास्त्रों ने ही नहीं मानी है, वरन् पाश्चात्य विद्वानों ने भी शिखा की महत्ता मानी है और वह कई जातियों में प्रचलित भी थी ।

पुरुषों के क्यों बाल विशेष होते हैं, और स्त्रियों के क्यों कम होते हैं ? इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों की राय है कि— स्त्री और पुरुष के जीवन में जिस समय युवावस्था का आगमन होता है उस समय पुरुष शक्ति का विकास मुख, छाती इत्यादि स्थानों से होता है यानी पुरुषों की छाती और मुखादि अंगों पर केश उगने लगते हैं, लेकिन स्त्रियों में इन स्थानों पर बाल उगना नहीं देखा जाता है । स्त्रियों की शक्ति का विकास मासिक ऋतु धर्म, स्तनों में दुग्धागमन और जरायु की वृद्धि द्वारा होता है । उनके नाम अंग्रेजी में क्रमशः "केटेबॉलिक" और 'एजेबॉलिक' हैं । इन्हीं दोनों भेदों से स्त्री-पुरुषों की प्रकृति में विशेष अन्तर पाया जाता है । पुरुष स्वयं क्रियाशील और

अपनी सहचरी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाला तथा दूसरों के लिए अपनी शक्ति का ह्रास करने वाला है, लेकिन स्त्रियों में स्वयं क्रियाशीलता नहीं है । वे अपने सहचर के लिए निश्चेष्ट होकर मार्ग प्रतीक्षा करने वाली होती हैं । अपनी शक्ति को वे अन्तः स्थिर ही रखती हैं, पुरुषों में क्रियाशीलता होने से ज्ञान-विज्ञान के विषयों में अधिक प्रवेश कर सकते हैं और कर भी जाते हैं । उनके मस्तिष्क में बाह्य संसार के संस्कार बहुत जल्दी प्रविष्ट हो जाते हैं । इसी से वे विचारधारा पर चलते-चलते अपने सिद्धान्त की सिद्धि पर पहुँच जाते हैं । किन्तु स्त्रियों में स्वकर्तृत्व न होने से उनमें धैर्य का बाहुल्य रहता है, इसी से वे अपने विश्वासपात्र मनुष्य पर अपनी आत्मा स्वयं खुली रख देती हैं, यानी उन्हें अपने आन्तरिक विचारों के बताने में अपने प्रेमी से कोई दुराव नहीं होता है । इसीसे उनमें पुरुषों की अपेक्षा प्राकृतिक प्रेरणा और मनोवेग ज्यादा पाया जाता है । इस प्रकार स्त्री और पुरुष के स्वभाव में भेद देखा और पाया जाता है । यह विषय केश निर्गमन के सम्बन्ध में है । जब यौवन विकास के साथ ही साथ केश वृद्धि का सम्बन्ध है, तब जिस प्रकार किसी वृक्ष की शाखा के काट डालने पर उसमें नई शाखाओं के निकलने का वेग बढ़ता है, ठीक उसी तरह ही प्रतिदिन या बारम्बार बाल बनवाने से या हजामत कराने से आन्तरिक काम शक्ति का आविर्भाव स्नायुओं में प्राचुर्यता के साथ होता है इसी से तो ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी आदि पुरुषों के लिए केश धारण विधि शास्त्रों में प्रतिपादित की गई है । केश-वृद्धि से ही काम सम्बन्धी नसों की शक्ति का स्वाभाविक ह्रास होता है । मनुष्य इसी से सहज में ही संयमी बन सकता है । संन्यासी कुटीचक और बहूदक अवस्थाओं का अतिक्रमण करके जब "हंस" अवस्था पर पहुँच जाता है तब 'सोऽहम्' भाव में उसे काम विषयक चिन्ता ही नहीं रहती है । इसी से दण्डी संन्यासी केश मुण्डन करा लेते हैं । गृहस्थ दशा में सम्पूर्ण बालों का रखना असम्भव-सा है इसीलिये तो "गोखुर" के बराबर शिखा मस्तक पर रखवा कर बाकी के बालों को मुण्डन कराने की शास्त्रों में आज्ञा दी गई है । इसमें भी बहुत लाभ है । इतनी शिखा के रखाने से शिर के अग्र भाग और पीछे का थोड़ा-थोड़ा भाग क्रमशः ढका रहता है । यहाँ मस्तक के ऊपर शिखा कहलाती है । योग शास्त्र के सिद्धान्तानुसार सिर पर ब्रह्मरन्ध और ब्रह्मरन्ध के बराबर सहस्रदल कमल में परमात्मा का केन्द्र स्थान है और डाक्टरों के सिद्धान्त से शिर के उस शिखा भाग में Brain Cell या मस्तिष्क भाग में काम का स्थान यानी केन्द्र है । इसलिये इन दोनों अंशों में शिखा रहने से पूर्व लेखानुसार आत्मिक शक्ति स्थायी बन जाती है तथा चिन्ता शक्ति दबी रहती है, यह निश्चय है ।

## शिखा की प्रेरणा और उपयोगिता

यज्ञोपवीत की तरह शिखा भी भारतीय धर्मानुयायी के लिए अनिवार्य रूप से धारण करने योग्य प्रतीक है । यज्ञोपवीत के बारे में तो फिर भी यह विवाद हो सकता है कि स्त्रियों और शूद्रों को इसका अधिकार नहीं है, पर शिखा के सम्बन्ध में यह निर्विवाद है कि यह हर जाति, हर वर्ण के स्त्री पुरुषों को धारण करना चाहिए । इसे गायत्री की ज्ञान प्रतिमा कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा । गायत्री की एक प्रतिमा तो वह है जो कन्धे, छाती कैनु, हृदय पर यज्ञोपवीत के रूप में धारण की जाती है । उसे बनाना, तैयार करना पड़ता है, पर शिखा को तो प्रकृति ने स्वयं ही निर्मित किया है । आवश्यक इतना भर है कि उसे सिर पर धारण किया जाय ।

**मुण्डन—** चूड़ाकर्म संस्कार के समय सिर के सभी बाल उतारे जाते हैं । भाव भरे वातावरण में कर्मकाण्ड के माध्यम से अभिभावकों को यह प्रेरणा दी जाती है कि वे बालक में विगत जन्मों के ज्ञात-अज्ञात योनियों के संस्कारों से बचाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था बनाये रहें । उसी समय शिखा स्थापना संस्कार भी करा दिया जाता है, जिसका अर्थ है—बालक आजीवन प्रज्ञा विवेक के अधीन रहता हुआ कार्य करे ।

शिखा स्थापना की यह प्रेरणा है कि समझदार व्यक्ति सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि उनकी सन्तानें संस्कारवान बनें । संस्कारों की प्रतिस्थापना बचपन में होती है, कदाचित उसी को अपने माता-पिता से वैसी सहायता न मिली हो पर उन्हें चाहिए कि वे अपनी सन्तानों के सम्बन्ध में वैसी भूल कदापि न करें ।

अन्य संस्कारों के समान ही माता-पिता इस संस्कार के समय भी बालक के साथ मण्डप में उपस्थित रहते हैं । मस्तक लेपन, शिखा बन्धन, छुरा पूजन आदि इस संस्कार में मुख्य कृत्य हैं । इन कर्मकाण्डों की प्रेरणाओं का विवेचन प्रस्तुत पुस्तक का विषय नहीं है, वह अन्य

पुस्तकों में उपलब्ध है । फिर भी शिखा बन्धन जैसे कृत्य की विवेचना अप्रासंगिक न होगी । मस्तक लेपन से बालों के गीले हो जाने पर कुशाओं से शिखा बाँधते हुए ॐ ब्रह्मज्ञानं———— विष्णुर्विचक्रमे————' तथा ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव————' आदि पढ़े जाते हैं ।

यह तीनों मन्त्र क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के हैं । तीनों देवताओं का मस्तिष्क में आह्वान स्थापना करने का प्रयोजन यह है कि मस्तिक में देवत्व के भाव भरे रहें, असुरता के लिए उसके किसी कोने में गुंजाइश न रहे । ब्रह्मा उत्पादन के, विष्णु पोषण के और रुद्र संहार के देवता हैं । हमें निर्माणात्मक कार्यों में लगना चाहिए । जो बनाया जा चुका है, जो अनुपयुक्त हो उसे हटा मिटा देना चाहिए । यह तीनों ही बातें हमारे स्वभाव का अंग बनें तो समझना चाहिए कि उपर्युक्त तीनों ही देवताओं का निवास मनोभूमि में रहने लगा । सत्, रज, तम ये तीन गुण ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश के प्रतीक हैं । हमारा जीवन इस प्रकार विकसित होना चाहिए कि इन तीनों तत्वों के सदुपयोग की उचित अनुचित सम्भावना बढ़ती रहे । हम अन्तःकरण से सद्गुणी बनें, अपनी भावना, आकांक्षा तथा प्रकृति सौम्य सात्विक रखें । सन्तों जैसी पवित्र, कोमल और उदार मनोवृत्ति का परिचय देते रहें । भौतिक जीवन में समृद्ध, सम्पन्न एवं सुविकसित बनें । रजोगुण का अर्थ समृद्धि है । दीन, दरिद्र, व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से भी गुजरे रहते हैं । कहते हैं कि "खाली बोरा सीधा खड़ा नहीं रह सकता । " अर्थात् अभावग्रस्त देर तक ईमानदारी पर कायम नहीं रह पाता । सुस्थिर जीवन एवं स्वस्थ विकास के लिए मनुष्य की आमदनी इतनी होनी ही चाहिए जिससे कोई आवश्यक काम न रुका रहे । तमोगुण का अर्थ है—तेजस्विता, संघर्ष, शक्ति एवं अनुपयुक्त तथ्यों को परास्त कर सकने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक एवं संगठनात्मक बलों की आवश्यकता पड़ती है । इसी से शिव की पत्नी शक्ति कहलाती है । संघर्ष भयानक होता है, इसलिए शिव का रुद्र-रूप धारी-भयानक भी कहते हैं । विष्णु की पत्नी लक्ष्मी है । लक्ष्मी पति विष्णु रजोगुण के प्रतीक हैं । रजोगुणी अर्थात् लक्ष्मीवान् । ब्रह्मा वेद के सृष्टा माने जाते हैं । उनकी पत्नी-गायत्री अर्थात् सद्बुद्धि, सद्भावना, ऋतम्भरा प्रज्ञा है । मस्तिष्क में तीनों देवताओं की स्थापना का अर्थ जीवन-विकास की तीनों आवश्यकताओं सद्भावना, समृद्धि और शक्ति को प्रचुर मात्रा में निरन्तर बढ़ाते रहना ही है । बालक जब बड़ा हो जाय तब उसे इन महती आवश्यकताओं की पूर्ति में लगना चाहिए । वह इस योग्य बन सके इसके लिए अभिभावकों को आवश्यक साधन सुविधा जुटानी चाहिए । जो लोग बालकपन छोड़कर बड़े हो चुके हैं पर इन अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभी समुचित ध्यान नहीं दिया है, उन्हें इसके लिए अब प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए । चूड़ा-कर्म के उद्देश्यों को सभी उपस्थित व्यक्ति हृदयंगम करें, यही उचित है ।

बड़े होने पर जिस तरह तीन धागे वाला यज्ञोपवीत पहनते हैं और तीनों लड़ों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ बटुक को देते हैं, उसी प्रकार इन तीन शिक्षाओं का समावेश है माता, पिता, गुरु इन तीनों के अनुशासन में रहना, तीनों के प्रति कृतज्ञता एवं श्रद्धा की भावनाएँ रखना, उन्हें प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना तीन शिखाओं का संदेश है ।

दुःखों के तीन कारण हैं, अज्ञान, अशक्ति और अभाव । इन तीनों को अपने जीवन में से तथा समाज में से हटाने के लिए प्रयत्न करते रहने का व्रत लेना, इन तीन शिक्षाओं का संदेश है । विद्या, समृद्धि और शक्ति इन तीनों को निरन्तर बढ़ाते रहने से ही उपर्युक्त तीन कष्टों की निवृत्ति हो सकती है । इन तीन महाशक्तियों को सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में पूजा का अर्थ है—उन्हें प्राप्त करना ।

शैशव, यौवन और वृद्धावस्था इन तीनों अवस्थाओं का समुचित सदुपयोग करना ये तीन शिखाएँ बताती हैं । बालकपन शारीरिक एवं मानसिक बल संग्रह करना, यौवन में समृद्धि बढ़ाना तथा वृद्धावस्था सद्ज्ञान साधना के लिए समर्पित करना ही तीन अवस्थाओं का सदुपयोग है ।

भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के सम्बन्ध में समुचित सतर्कता रखना तीन शिखाओं का संदेश है । जो कुछ हो रहा है, हुआ है तथा होने वाला है, उस पर समान रूप से ध्यान रखा जाय । बीते दिन के इतिहास से शिक्षा ग्रहण करें, वर्तमान के कठोर कर्त्तव्यों का पालन करें, अपनी समस्त शक्तियों को सदुपयोग के लिए नियोजित रखें और भविष्य को उज्ज्वल बनाने की चेष्टा करें तथा आशा रखें यही गायत्री की इस ज्ञान ध्वजा की प्रेरणा है ।

भारत के राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे में हरा, सफेद और केसरिया तीन रंग हैं, इन तीनों रंगों की तीन प्रेरणाएँ हैं, उसी प्रकार त्रिपदा गायत्री के हवन की भी त्रिविधि प्रेरणाएँ हैं । शिखा स्थापना वस्तुतः मस्तिष्क में सद्बुद्धि के साम्राज्य की परिचायक धर्म ध्वजा-पताका है । हर

व्यक्ति को जानना चाहिए कि मस्तिष्क मानव शरीर में दिव्य चेतना के निवास का उसी प्रकार मर्मस्थल है, जिस प्रकार के उच्च अधिकारियों को ठहरने के लिए डाक बंगले रहते हैं। शरीर रूपी मन्दिर में यह प्रतिमा-प्रतिष्ठापन, ध्वजा-रोहण इस बात का प्रतीक है कि इसमें केवल शुभ संकल्प और उत्कृष्ट विचारों को ही स्थान मिलना चाहिए। आसुरी, नीच, निकृष्ट, स्वार्थ और दुष्टतापूर्ण विचारणाओं को इस पुण्य स्थली में क्षण भर के लिए भी स्थान नहीं मिलना चाहिए। आग की चिनगारी यदि थोड़ी देर के लिए भी ठहर जाती है तो भी वहाँ सब कुछ भस्म करने का सत्यानाशी संकट उपस्थित कर देती है। इसी प्रकार मस्तिष्क में यदि कुविचारों को स्थान मिलने लगे तो वे जीवन प्रक्रिया को भी नष्ट-भ्रष्ट कर डालने की प्रक्रिया उपस्थित कर देते हैं।

मस्तिष्क सार्वजनिक सम्पत्ति है। कुएँ, तालाब आदि की तरह इसका लाभ व्यक्ति विशेष को नहीं वरन् समस्त समाज को मिलना चाहिए। शरीर की कमाई मजदूरी-श्रम से शरीर का गुजारा होना चाहिए, मस्तिष्क को जो शिक्षा, प्रतिभा, सूझबूझ मिली है, उसे ईश्वर का विशेष अनुमान मानकर सार्वजनिक उपयोग में लाना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है—

**मस्तिष्क नास्ति संपत्ति व्यक्तिरेवा कस्यचित्।**
**अपि त्वेतद्धि विश्वस्त कुर्या द्यत्न तदुन्नतेः॥**
**इदं संचालक केन्द्र जीवनस्य निसंगतः।**
**केन्द्र बिन्दुं मिभ लब्ध्वा तास्सुरासुरशक्तयः॥**
**संचालनं चिकिषति मानव जीवनस्य व।**
**सम्यग विविच्य मेधावौ दिव्यत्द प्रति संचरेत्॥**

मस्तिष्क इस संसार में किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है, यह विश्व की सम्पत्ति है। अतः इसे श्रेष्ठतम बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह स्वाभाविक ही जीवन का संचालन केन्द्र है। इस केन्द्र बिन्दु को प्राप्त कर दैवी आसुरी शक्तियाँ मानव जीवन के संचालन की इच्छा करती हैं, अतः बुद्धिमान भली प्रकार विचार कर दैवी प्रवृत्ति की ओर संचरण करें।

**ध्यान काग्रतयोः शान्ते निष्कामत्वसमत्वयोः।**
**तथा प्रसाद भावस्य केन्द्रीकरणमेव च**
**तथा भवति मस्तिष्कमात्म दिव्यगुणन्वितम्**
**पुष्टं च सबलं तस्मात्कुर्यात् केन्द्रित सदा**
**लक्ष्येणानेन सघयत्नै बुद्धिमदभिज नेर्हितम्**
**नित्यावहित चितैश्च रक्षणीयामिदं धनम्॥**

अर्थात्— ध्यान, एकाग्रता, शान्ति, समता, निष्कामता प्रसाद तथा वृत्तियों के केन्द्रीयकरण की दशा में यह मस्तिष्क दिव्य गुणों से भर जाता है, इसलिए इसे सदा केन्द्रित रखें। इसी उद्देश्य से सत्प्रयत्नों द्वारा सावधान चित्त वाले बुद्धिमान पुरुषों को सदा इस धन की रक्षा करनी चाहिए।

इन गुणों को धारण करते हुए इस तरह की रीति-नीति अपनाई जानी चाहिए कि अपने बुद्धिबल का लाभ समस्त समाज की प्रगति के लिए प्रयुक्त होना चाहिए। जिसके पास जितना अधिक बुद्धि का मनोबल हो वह उसका उतना ही अधिक सार्वजनिक उपयोग करे तभी उसकी सार्थकता है। संसार के सच्चे बुद्धिमानों ने, महापुरुषों ने किया भी यही है। अपनी मानसिक प्रतिभा का लाभ स्वयं ही नहीं उठाया वरन् उसे लोकमंगल में ही लगाये रखकर इस ईश्वरीय विशेष अनुदान का प्रयोजन पूर्ण किया।

मस्तिष्क की श्रेष्ठता इस बात में नहीं, कि वह अधिक भौतिक सफलताएँ प्राप्त करके अधिक समृद्धिवान् बन जाय और अधिक ऐश्वर्य का उपयोग करे, वरन् उसकी सार्थकता इस बात में है कि अपने गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार कर उत्कृष्ट स्तर का व्यक्तित्व विकसित करे। सादगी, नम्रता, प्रसन्नता, पवित्रता, सन्तोष, उदारता आदि सद्गुणों की पूँजी को जितनी अधिक कमा सके उस मस्तिष्क को उतना ही अधिक सार्थक और सफल माना जायेगा। साहसी, सन्तुलित, गम्भीर, धैर्यवान, निडर मनोवृत्ति का उपार्जन जो कर सके वस्तुतः उसे ही सच्चा ज्ञानी कहा जायेगा।

कुशाग्र बुद्धि, परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए अधिक नम्बर लाने वालों को ही नहीं कहना चाहिए। सच्चे बुद्धिमान वे हैं जो विवेकशीलता के धनी हैं, उचित अनुचित का नीर-क्षीर विवेक कर सकते हैं। अनुचित को त्यागने और उचित को अपनाने के लिए बड़े से बड़े भय एवं प्रलोभन की परवाह नहीं करते। जो आज के छोटे से प्रलोभन के लिए भविष्य को अन्धकारमय नहीं बनाते, वस्तुतः उन्हें ही बुद्धिमान कहा जाना चाहिए। जो निन्दनीय कुमार्ग से बचे रहने और सन्मार्ग पर चल सकने का मनोबल एकत्रित कर सका, उसी की बुद्धि कुशाग्र एवं प्रशंसनीय कही जायेगी।

मस्तिष्क एक प्रकार का विद्युत-प्रवाह यन्त्र ट्रान्समीटर है। इसमें जो विचार उठते हैं, वे स्वमेव ईश्वर-तत्त्व की सहायता से विस्तृत होकर समस्त संसार

में भ्रमण करते हैं और दूसरों के मस्तिष्कों से टकराकर उन्हें सन्मार्ग या कुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा देते हैं, हमारे मस्तिष्क में यदि कुविचार उत्पन्न होंगे तो वे वायुमण्डल में अपनी तरंगें बहाते हुए अन्य असंख्य मस्तिष्कों को वैसी ही स्फुरणा देंगे और वैसी ही प्रवृत्ति उत्पन्न करेंगे, यही बात सद्विचारों के सम्बन्ध में भी है । इसीलिए शुभ विचारों को धारण करने वाला व्यक्ति परोपकार का पुण्य लाभ करता है और मन में भरा रहने वाला दुर्भाव प्रत्यक्ष पाप न करते हुए भी असंख्य मनुष्यों को कुमार्ग की प्रेरणा देने का निमित्त बनने के कारण निरन्तर पापी बनता रहता है और कुविचार करने वाला ही ईश्वरीय दण्ड कोप का भागी बनता है अतएव मस्तिष्क का श्रेष्ठतम उपयोग करना ही बुद्धिमत्ता है, यही शिखा धारण करने की प्रेरणा है ।

शिखा सद्बुद्धि को, प्रज्ञा विवेक को अपना अधिष्ठाता मानने की सफल घोषणा है । एक प्रकार से इसे संकल्प और व्रत का प्रतीक भी कहा जा सकता है । प्राचीन काल में जब लोग कोई प्रतिज्ञा करते थे तो शिखा का स्पर्श करते थे । चाणक्य के सम्बन्ध में तो विख्यात है कि उन्होंने जब तक नंदवंश का नाश न हो जाय तब तक शिखा में गाँठ न लगाने की प्रतिज्ञा की थी । किसी पवित्र कार्य का संकल्प करते समय आज भी लोग शिखा का स्पर्श करते हैं । सम्मान प्राप्त करते या तिलक लगवाते समय शिखा स्थान पर हाथ रखने का प्रचलन आज भी सर्वत्र है, इस प्रकार शिखा पवित्र, शुभ एवं बुद्धिमत्तापूर्वक आरम्भ किये प्रयासों की प्रकरान्तर से अब भी प्रेरणा जननी बनी हुई है ।

## शिखा धारण के लाभ

### मस्तिष्क के हृदय की सुरक्षा

मस्तिष्क विद्या के आचार्यों का कथन है कि शिखा स्थान मस्तिष्क की नाभि है । दूसरे शब्दों में इसे मस्तिष्क का हृदय भी कह सकते हैं । उस केन्द्र से उन सूक्ष्म तन्तुओं का संचालन होता है जिनका प्रसार समस्त मस्तिष्क में हो रहा है और जिनके बल पर अनेकों मानसिक शक्तियों का पोषण तथा विकास होता है ।

इस केन्द्र स्थान से सम्बन्धित चार दिशाओं में पाँच शक्तियाँ रहती हैं— (१) विवेक शक्ति (२) दृढ़ता शक्ति (३) दूरदर्शिता शक्ति (४) प्रेमशक्ति (५) संयम शक्ति । इन पाँचों की जड़ शिखा मूल में है । शिखा मस्तिष्क का हृदय होने तथा पाँच महत्त्वपूर्ण शक्तियों का केन्द्र होने के कारण इस स्थान का महत्त्व शरीर के सब स्थानों से अधिक है ।

ऐसे मर्म स्थान की सब प्रकार रक्षा की जानी चाहिए । इस स्थान को स्वस्थ एवं सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम तरीका 'केशाच्छादित' रखना है । उस जगह पर बड़े-बड़े बाल रहने से उसी प्रकार सुरक्षा हो जाती है जैसे छप्पर या वृक्ष की छाया के नीचे हम सर्दी-गर्मी आदि से अपनी रक्षा कर लेते हैं । बालों में बाहरी प्रभाव को रोकने की शक्ति है । ऊनी कम्बल में लपेट देने पर बर्फ बहुत कम गलती है । कम्बल बाहर की गर्मी को बर्फ तक जाने से रोकता है । इसी प्रकार कम्बल बाहर की सर्दी को रोक कर जाड़े के दिनों में हमारे शरीर को गरम रखता है । शिखा-स्थान पर बाल रहने से बाहरी अनावश्यक सर्दी-गर्मी का प्रभाव मस्तिष्क पर नहीं होता और उसकी सुरक्षा सदा बनी रहती है जिससे उस मर्म-स्थान में कोई विकार उत्पन्न नहीं हो पाता ।

**मानसिक शक्तियों का पोषण**—बाल एक नियत मर्यादा तक बढ़ते हैं, इसके बाद उनका बढ़ना बन्द हो जाता है । बाल कटने पर केशों की जड़ें अपने निकटवर्ती स्थान से रक्त लेकर उसके द्वारा बाल बढ़ाती हैं । इस दृष्टि से बाल कटाने का अर्थ हुआ उस स्थान के रक्त का खर्च । यह सर्वविदित बात है कि जब एक वस्तु को दो भागों में बाँटा जायेगा तो शक्ति कम हो जायेगी, किन्तु जब बाल काटे नहीं जाते तो एक नियत सीमा पर पहुँच कर उनका बढ़ना बन्द हो जाता है । जब बढ़ना बन्द हो गया तो केशों की जड़ों को बाल बढ़ाने के लिए रक्त लेकर खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । फलस्वरूप वह बचा हुआ रक्त उन पाँचों शक्तियों का पोषण करने में खर्च होता है, जिससे उनकी वृद्धि और विकास भली प्रकार होता है । इससे मनुष्य विवेकशील, दृढ़ स्वभाव, दूरदर्शी, प्रेमी एवं संयमी बनता है । विचारपूर्वक देखा जाय तो यह लाभ अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है ।

**वासना की कमी**—शिखा स्थान के बाल कटवाने से मस्तिष्क की जड़ों में एक प्रकार की हलचल मचती है, यह एक प्रकार की सूक्ष्म खुजली होती है, यह खुजली मस्तिष्क से सम्बद्ध वासना तन्तुओं में उतर जाती है । फलस्वरूप काम-वासना भड़क उठती है । इस अनिष्ट से परिचित होने के कारण ऋषि, मुनि पंच-केश रखते थे । शिर पर जटा, दाढ़ी, मूँछ, बगल तथा गुप्त स्थानों के बाल

वे लोग रखते थे जिससे इन्द्रियों पर काबू पाने से बड़ी सहायता मिलती है । ब्रह्मचारी भी इसी उपाय का अवलम्बन करते हैं । आजकल दाढ़ी-मूँछ मुँड़ाने तथा जल्दी-जल्दी बाल कटाने का फैशन चल पड़ा है इससे इन्द्रिय विकार भड़कते हैं और लोग भोग-विलास में अवांछनीय उत्तेजना के साथ प्रवृत्त होते हैं ।

आयुर्वेद के ज्ञाता जानते हैं कि नपुंसकों की चिकित्सा में गुप्त स्थान के बालों को जल्दी-जल्दी बनाते रहने का विधान है जिससे उत्तेजना की वृद्धि हो । मस्तिष्क में भी बाल काटने से ऐसी ही उत्तेजना होती है । इसलिये अच्छा तो यह है कि शिर के सभी बाल रखाये जायें । पर शिखा-स्थान के बाल तो विशेष रूप से रक्षणीय हैं, क्योंकि वह मस्तिष्क का हृदय होने से वासना का केन्द्र भी है । शिखा रखाने से काम-वासना संयम में रहती है ।

**तेज की वृद्धि—** स्त्रियाँ लम्बे बाल रखती हैं, उनके चेहरे पर एक लावण्य एवं चमक दृष्टिगोचर होती है । पूर्वकाल में महापुरुषों एवं देवताओं के चित्र देखने से पता चलता है कि उस समय में पुरुष भी बाल रखाया करते थे और वे तेजस्वी होते थे । अब भी दाढ़ी-मूँछ वाले मनुष्यों के चेहरे पर अपेक्षाकृत अधिक तेज दिखाई पड़ता है । यों तो सभी स्थानों के बालों का इस तेज वृद्धि से सम्बन्ध है पर शिखा स्थान के बालों का सम्बन्ध तो विशेष रूप से है । इसलिए तेजस्विता एवं सौन्दर्य को स्थिर रखने के इच्छुकों को शिखा तो अवश्य ही रखनी चाहिए ।

**शक्ति का प्रतिनिधित्व—** शक्तिमार्गी साधकों ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों से बताया है कि ब्रह्मरन्ध्र के—शिव हृदय के ऊपर अवस्थित शिखा कृष्णवर्णा भगवती कालिका की प्रतिनिधि है । चाणक्य ने शिखा को हाथ में लेकर अर्थात् दुर्गा को साक्षी बनाकर नन्द-वंश के नाश की प्रतिज्ञा की थी और वह पूरी हुई । शिखास्पर्श से शक्ति का संचार होता है । ओझा लोग भूत-प्रेत भगाने में शिखा (शिवा) की सहायता प्राप्त करते हैं । शक्ति ग्रन्थों में ऐसे अभिवचन भी प्राप्त होते हैं । जैसे—

**(१) चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेज समन्विते ।**
**तिष्ठ देवि शिखा मध्ये, तेजो वृद्धि कुरुष्वमे ॥**
**(१) दीर्घायुष्ट वाय बलाय वर्चसे ।**
**शक्त्यै शिखायै वषट् ॥**

इन वचनों में शिखा को शक्ति-रूपिणी बताया है । ज्वालामुखी पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर पर जैसे भगवती ज्वाला की अग्नि शिखा के दर्शन होते हैं, वैसे ही शरीर पर्वत के सर्वोच्च स्थान पर शिखा ऊपर की ओर उठ रही है । शक्तिरूपी शिखा को श्रद्धापूर्वक धारण करने से मनुष्य शक्ति सम्पन्न बनता है ।

**धर्म-ध्वज—**जैसे राष्ट्र का एक ध्वज-झंडा-होता है वैसा ही शरीर राष्ट्र का भी एक ध्वज है जिसे शिखा कहते हैं । यह शिखा किले के सबसे ऊपरी भाग पर सदैव ऊपर फहराती रहती है । हर किले पर झंडा उड़ता है । जीवात्मा के सुदृढ़ किले—ब्रह्मरंध्र के ऊपर भी शिखा ध्वज फहराती रहनी चाहिए । हिन्दू धर्म की, हिन्दू राष्ट्र की, हिन्दू संस्कृति की ध्वजा मस्तक पर स्थायी रूप से धारण करना हर हिन्दू का धर्म कर्त्तव्य है । हम सबको शिखा रखनी चाहिए और उसके सांस्कृतिक महानता में श्रद्धा करनी चाहिए ।

**केन्द्रीय सत्ता की रक्षा—**हर चीज का एक केन्द्र होता है । यह उसका मर्म स्थान कहलाता है । इस केन्द्र की बनावट चक्करदार होती है । पृथ्वी का केन्द्र उत्तरी ध्रुव है, फल जिस स्थान पर डण्ठल से जुड़ा होता है वह उसका केन्द्र है । बालक और माता के शरीर को जोड़ने वाला नालमूल नाभिकेन्द्र है । जड़ और चैतन्य सभी में एक केन्द्र होता है और उसी के ऊपर उसकी सत्ता निर्भर रहती है । मस्तिष्क का केन्द्र शिखास्थल है इस पर चक्कर जैसी आकृति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । यह केन्द्र अदृश्य सत्ताओं के साथ व्यक्ति की चेतना को उसी प्रकार सम्बन्धित करता है जैसे फल-डण्ठल का सम्बन्ध रहता है। इस केन्द्रीय सत्ता को किसी प्रकार चोट, सर्दी, गर्मी आदि के कारण हानि न पहुँचे इसलिए शिखा रखना आवश्यक है।

**आत्मा का निवास स्थान—** योगी लोग बताते हैं कि आत्मा की अखण्ड-ज्योति का प्रधान स्थान मस्तिष्क केन्द्र में है । इसी स्थान को सहस्त्रदल कमल एवं ब्रह्मरंध कहते हैं । अनाहत ध्वनि इसी स्थान से उत्पन्न होती है । इस्लाम धर्म की पुस्तकों में खुदा का निवास सातवें आसमान पर बताया है । शरीर में सबसे ऊपर सातवाँ स्थान यह शिखा केन्द्र ही है । सर्वव्यापी आत्मा का मनुष्य शरीर में जो प्रधान स्थान है वह शिखा-मूल ही है। इस स्थान पर शिखारूपी मन्दिर बनाना ईश्वर प्राप्ति में सहायक होता है ।

**आकाश से जीवन ग्रहण करना**—पेड़ में लगी हुई पत्तियाँ उसमें से प्राण वायु खींचती हैं । बरगद की जटाएँ उसे दिन-दिन परिपुष्ट बनाती हैं । इसी प्रकार मनुष्य शरीर पर जो बाल हैं वे छिद्रयुक्त हैं और आकाश में से प्राण वायु खींचते हैं, जिससे मस्तिष्क चैतन्य, पुष्ट और निरोग रहता है । पशु-पक्षी अपने बालों को खुले और सुरक्षित रखते हैं, फलस्वरूप वे बीमार नहीं पड़ते । मनुष्य अधिक कपड़े लाद कर बालों को शुद्ध वायु खींचने से रोकता है, फलस्वरूप बीमार पड़ता है । शरीर में अन्य स्थानों की अपेक्षा शिर के बालों का महत्त्व अधिक है। क्योंकि मस्तिष्क का पोषण अधिक आवश्यक है । उचित तो यही है कि सारे शिर के बालों को रखाया जाय पर यदि यह न हो सके तो उस केन्द्रस्थान पर, जो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है, शिखा अवश्य रखनी चाहिए ।

**मनोबल की वृद्धि**—अनुष्ठान काल में क्षौर कर्म वर्जित है । किसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए बाल रखाने की प्रथा है । इसके सूक्ष्म कारणों पर विचार करने से विदित होता है कि बाल रखाने से मनोबल की वृद्धि होती है और दृढ़ता आती है । उस दृढ़ता के कारण अनुष्ठान करने वाले साधक अपने कार्यक्रम पर दृढ़ रहते हैं और उसे निर्विघ्न पूरा कर लेते हैं । प्रतिज्ञा पालन या किसी को परास्त करने के संकल्पस्वरूप जब बाल रखाये जाते हैं तो मनोबल सतेज रहता है जिसके कारण संकल्प पूरा होने का मार्ग सुगम हो जाता है । पितृ-पक्ष में धार्मिक वृत्तियाँ विशेष रूप से दृढ़ रहें, इसलिए उन दिनों क्षौर नहीं बनाया जाता । शिखा केशों का केन्द्रबिन्दु है । मनोबल की निरन्तर वृद्धि के लिए कम से कम शिखा स्थान के बाल रखाने ही चाहिए ।

**अवसाद से बचाव**—प्राचीन समय में जिसे तिरस्कृत, लज्जित, अपमानित करना होता था, उस अपराधी का शिर मुड़ा कर घुमाया जाता था । शिर मुँड़ा देने से अध्यात्म शास्त्र के अनुसार मन गिर जाता है, जोश ठण्डा हो जाता है, नाड़ी-तन्तु शिथिल हो जाते हैं । ऐसा होने से अपराधी का उत्साह ठण्डा होकर मन गिर जाता है जिससे भविष्य में वैसा करने को उसका जी नहीं करता । प्रायश्चित्त में शिर मुँड़ाने का विधान है । किसी स्वजन की मृत्यु हो जाने पर मुँडन कराया जाता है । इसका अर्थ मन को शिथिल करके, पाप, अपराध, शोक आदि की भावनाओं को ढीला करना है । यदि अकारण मुँडन कराया जाय तो उत्साह, स्फूर्ति, काम में रुचि आदि की कमी हो जाती है और आलस्य आ घेरता है । केशों के केन्द्र शिखा को मुँड़ाने से तो यह दोष विशेष रूप से पैदा होते हैं इसलिए अवसाद से बचने के लिए हमें शिखा रखानी चाहिए ।

**शिखा प्रधान सिख धर्म**—सिख लोग स्वभावतः वीर होते हैं, उनका स्वास्थ्य और शौर्य प्रसिद्ध है । सिखों के धर्म में पाँच शिखाएँ रखना कर्त्तव्य है । कुछ लोग कहते हैं शिष्य का अपभ्रंश सिख है । कुछ लोगों का कथन है कि उनके धर्म में शिखा का महत्त्व बहुत अधिक है इसलिए 'सिख' नाम रखा गया है । जो भी हो, गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं ने अपने अध्यात्म बल से शिखा के असाधारण लाभों को समझ कर अपने सम्प्रदाय वालों को पंच शिखाएँ—पाँचों स्थानों के बाल—रखाने का आदेश दिया है ।

**ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा**—योग शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार शिर पर ब्रह्मरन्ध्र है और ब्रह्मरन्ध्र के बराबर सहस्त्र दल कमल में आत्मा का केन्द्र स्थान है । यहाँ उच्च, सात्विक, आध्यात्मिक शक्तियाँ निवास करती हैं । उनकी रक्षा करने के लिए गौ-खुर की बराबर बाल (शिखा) रखना योगशास्त्र की दृष्टि से आवश्यक है । इससे आत्मिक उन्नति तथा परमात्मा की प्राप्ति में सहायता मिलती है ।

**धार्मिकता एवं आस्तिकता**—शिखा को शिर पर स्थान देने का अर्थ धार्मिकता को स्वीकार करना है । आस्तिकता का धर्म भावना से प्रधान सम्बन्ध है । जबतक मनुष्य धर्म या आस्तिकता को स्वीकार नहीं करता तब तक उसे शिखा पर श्रद्धा नहीं होती । किन्हीं विश्वासों और भावनाओं को स्वीकार कर लेने से लोग उसी समूह में प्रविष्ट होते हैं । हिन्दू संस्कृति, हिन्दू धर्म और हिन्दू आस्तिकता को स्वीरकार करके उसकी दीक्षा एवं स्वीकृति स्वरूप शिखा को धारण किया जाता है । एक विश्वास कायम कर लेने पर ही उस मार्ग पर श्रद्धा बढ़ती है । श्रद्धा की वृद्धि से ही मनुष्य सच्चा धार्मिक और आस्तिक बनता है । इस प्रकार शिखा हमें धार्मिक एवं आस्तिक बनाने में सहायता करती है ।

**अनिष्टकर प्रभावों से रक्षा**—बड़ी इमारतों के ऊपरी भाग पर एक लोहे की छड़ खड़ी की जाती है, ताकि आकाश की बिजली गिर कर मकान को हानि न पहुँचावे, वरन् उस छड़ में होकर नीचे जमीन में चली जावे । शिखा भी उसी प्रकार की एक आध्यात्मिक छड़ है,

जिसके द्वारा ग्रह-नक्षत्रों के तथा अन्य अदृश्य शक्तियों के अनिष्टकर प्रभाव नीचे उतर जाते हैं और शरीर तथा मन को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं ।

## दैवी संकेतों की प्राप्ति

अन्तरिक्ष में कई प्रेरणाएँ अहर्निश तरंगित होती रहती हैं । योग विद्या के आचार्यों का कहना है कि जिसके सिर पर शिखा होती है, वह इन प्रेरणाओं को सरलतापूर्वक ग्रहण कर सकता है । रेडियो के एरियल जिस प्रकार आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारित होने वाली ध्वनि तरंगें पकड़ लेते हैं । टेलीविजन जिस प्रकार ऐन्टिना से प्रकाश फिल्में ग्रहण कर उन्हें टी. वी. के पर्दे पर हू-बहू चित्रित कर देता है, कुछ इसी प्रकार शिखा ईश्वरीय प्रेरणाओं, दिव्य शक्तियों को ग्रहण कर मस्तिष्क के केन्द्र ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचा देते हैं । इस प्रकार शिखा रखने का यह भी लाभ बताया जाता है कि उसके द्वारा मनुष्य अधिक सुगमता-पूर्वक दैवी शुभ संकेतों को प्राप्त करते हुए धार्मिक मार्ग पर अग्रसर होते जाते हैं ।

इन आध्यात्मिक लाभों के अतिरिक्त शिखा के कई मानसिक लाभ भी बताये गये हैं । यह तो कहा ही जा चुका है कि यह स्थान मस्तिष्क का केन्द्र है और इसकी रक्षा के लिए प्रकृति ने पूरे सिर पर बाल उत्पन्न किये हैं । सिर ही क्यों, शरीर के प्रत्येक कोमल और मर्म स्थलों की सुरक्षा के लिए शरीर पर बाल उगाने की व्यवस्था प्रकृति ने निर्धारित कर रखी है । मुँह दाढ़ी, मूँछ, छाती, बगल, जननेन्द्रिय आदि स्थानों पर बाल आते हैं, क्योंकि ये स्थान कोमल हैं । इसलिए प्राचीनकाल में पंचकेश पाँचों स्थानों पर बाल रखने की परम्परा थी, पर अब वैसा सम्भव नहीं है तो सिर के बाल भी कटाये-छँटाये जायें परन्तु शिखा स्थान पर तो बालों को बिल्कुल ही न काटना चाहिए ।

**सद्गति**—ईश्वर न करे किसी को कहीं अपरिचित स्थान में दुर्घटना में या किसी अन्य कारण से शरीर त्याग का अवसर आ जाय तो शिखा देख कर उसे हिन्दू पहचान लिया जायेगा और या तो उदार हिन्दू समाज की ओर से उसकी अन्त्येष्टि कर दी जायेगी अथवा सरकारी कानून के अनुसार पुलिस भी उस लावारिस लाश का हिन्दू पद्धति से दाह संस्कार करावेगी । इस प्रकार शिखा रखाने का एक लाभ यह भी है कि जीवन-भर जिन सिद्धान्तों पर विश्वास किया है उन्हीं के अनुसार अन्त समय में उसकी अन्त्येष्टि भी हो सकती है ।

इन सब बातों पर विचार करते हुए हर एक विवेकशील व्यक्ति को शिर पर अवश्य शिखा रखानी चाहिए ।

## दिव्य शक्ति, संवेदना और तेज की संग्राहक-शिखा

हिन्दू के जीवन में आस्तिकता को जितना महत्त्व मिला है शिखा (चोटी) को उससे कहीं अधिक । शिखा प्रत्येक हिन्दू के लिए एक अत्यन्त पवित्र और अनिवार्य प्रतीक होता था । प्राण दिये जा सकते थे शिखा नहीं । गुरु गोविन्द सिंह के पुत्रों ने जीवित बलि दे दी पर चोटी न कटाई । इतिहास इस बात का साक्षी है । प्राण जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु हँसते-हँसते दे देना पर हिन्दूत्व के प्रतीक शिखा को न कटवाना यह संकेत करता है कि चोटी रखने का बड़ा भारी रहस्य हिन्दू-तत्त्व-दर्शन में है—अन्यथा उस पर मनीषियों ने इतना जोर नहीं दिया होता ।

आर्ष ग्रन्थों में लिखा है—

**चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेज समन्विते ।**
**तिष्ठ देवि शिखा मध्ये तेजो वृद्धि कुसष्वमे ॥**

चेतना स्वरूप, महान् महिमा वाली तथा दिव्य तेज प्रदान करने वाली, हे शक्ति ! तुम हमारी शिखा में आओ बैठो और हमारे अन्दर तेजस्विता की वृद्धि करो ।

**दीर्घायुष्ट वाय बलाय वर्च से ।**
**शक्तयै शिखायै वषट् ॥**

तुम दीर्घ जीवन बल, ब्रह्मवर्चस्व और शक्ति का संवर्धन करने वाली हो ।

इन मंत्रों में शिखा के सूक्ष्म रहस्यों और उसके महान् महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है । सर्वप्रथम यह मानवीय चेतना का सम्बन्ध सृष्टि की अनादि शक्तियों से जोड़ती है । किसी रेडियो स्टेशन से संदेश प्रसारित करने हों तो उसे विद्युत तरंगों द्वारा किसी शक्तिशाली ट्रान्समीटर द्वारा निक्षेपित करना पड़ता है । अन्तःकरण की भाव तरंगें किन्हीं देव-शक्तियों को पहुँचाने का वैसा ही कार्य शिखा करती है । बाहरी सन्देश और रेडियो तरंगों को ग्रहण कर आवाज में बदलने के लिए प्रारम्भिक आवश्यकता "एरियल" की होती है । मनुष्य शरीर जैसे दिव्य रेडियो और टेलिविजन सेट में वह कार्य शिखा से ही सम्पन्न होता है । इस तरह बाह्य और आन्तरिक शक्तियों का मूल बिन्दु शिखा को ही मानना चाहिए ।

बरगद की जटायें और पेड़ों की पत्तियाँ अपने सूक्ष्म छिद्रों से हवा और प्रकाश के कण खींचती हैं, जिससे उनमें "प्रकाश संश्लेषण" की क्रिया होती है और वे अपना विकास करते रहते हैं । मनुष्य के बाल भी देखने में अत्यन्त बारीक दिखाई देते हैं पर वे भी छिद्र युक्त होते हैं। इस दृष्टि से तो शरीर के सभी बालों का महत्त्व है । पुराने जमाने में पंच केश रखने की प्रथा भी थी, सिर, मूँछ, दाढ़ी, बगल और शरीर के गुप्त अंगों के बाल न कटवाने से इन सूक्ष्म संस्थानों की विद्युत शक्ति उत्तेजित और अस्तव्यस्त नहीं होने दी जाती थी जिससे वह शक्ति स्वास्थ्य रक्षा, आत्म-बल आदि के विकास में काम आती थी । आज भी सिख लोग पंचकेश रखते हैं तो उनकी शक्ति तेजस्विता और नेतृत्व वाले गुण भी इस देश के अन्य प्रान्तों के निवासियों से पृथक् स्पष्ट देखे जा सकते हैं। दूसरी ओर जिन जातियों और लोगों में हमेशा दाढ़ी मूँछ कटाते रहने और बारबार बाल बनाने की अधिकता है वे प्रायः कामुक और निम्न प्रवृत्तियों वाले देखे जाते हैं । पाश्चात्य देशों के लोगों ने गरिष्ठ भोजन पद्धति के अनुसार अपने शरीर में चर्बी और फैट्स चाहे कितने बढ़ा लिये हों उनमें शील, सज्जनता और मानवीय सद्‌गुण की मात्रा अत्यल्प ही मिलेगी । यौन उच्छृंखलताएँ और उसके दुष्परिणाम पश्चिम के लिए अपनी भुखमरी की तरह संकट बने हुए हैं, उसमें बालों को महत्त्व न देने का भी हाथ है ।

शरीर के अन्य भागों के बाल जहाँ शरीर के विभिन्न अंगों को पोषण और प्रकृति के परिवर्तन से होने वाले तापमान की घट-बढ़ से सुरक्षा रखते हैं वहाँ सिर के बाल मस्तिष्क की शक्तियों को प्रबुद्ध और प्रखर बनाते हैं । स्त्रियाँ लम्बे बाल इसीलिये रखती हैं, क्योंकि उससे उनके मुखमण्डल को तेजस्व की प्राप्ति होती रहती है और वे देखने में सुन्दर आकर्षक लगती हैं । अनिष्टकारी प्रभावों से रक्षा, अवसाद से रक्षा 'मनोबल की वृद्धि' वासना की कमी तथा मानसिक शक्तियों के पोषण में यों सिर के सभी बालों का महत्त्व है पर शिखा-स्थान का महत्त्व इन सबसे अधिक है । जिस तरह शरीर के प्रत्येक अंग के विकास में शक्ति खर्च होना आवश्यक है, उसी प्रकार बालों को बार-बार काटने से शारीरिक शक्तियों को बालों के "टिशूज" (कोश जाल या अत्मक) भी बनाने पड़ते हैं, जिस तरह शरीर के प्रत्येक अंग की एक सीमा होती है, उसी प्रकार बालों की लम्बाई की भी एक सीमा होती है । उससे आगे उनका बढ़ना बन्द हो जाता है । शिखा चूँकि शक्तियों को खींचने और प्रेषण करने का सबसे संवेदनशील स्थान है इसलिये यहाँ से स्वभावतः अधिक ही शक्ति खर्च होती है । बार-बार बाल कटवाने से उनके बढ़ने के लिये बार-बार शक्ति खर्च होती है पर यदि शिखा रखाकर उस शक्ति का अपव्यय रोक देते हैं तो उसी से मानसिक शक्तियों का पोषण होने लगता है । वही शक्ति मनुष्य की (१) विवेक शक्ति (२) दूरदर्शिता (३) दृढ़ता (४) संयम और प्रेम शक्ति के रूप में विकसित होकर मनुष्य जीवन में शक्ति और सफलता सुख और शान्ति के द्वार खोलने में मदद करती है ।

शिखा रखना अब तक श्रद्धा और विश्वास का विषय था । हम हिन्दू लोग हमेशा से उसी आधार पर चोटी रखते आये और उसके दिव्य लाभों से लाभान्वित होते रहे हैं । धर्म-ध्वजा की तरह उसकी रक्षा को जातीय गौरव और प्रतिष्ठा का चिह्न मानते रहे हैं, पर आज जबकि लोगों में सूक्ष्म बौद्धिक क्षमता का अभाव हो चला है, लोगों की कल्पना और विचार शक्ति स्थूल जानकारियों तक ही सीमित हो गई हैं, यह प्रश्न उठाया जाने लगा है कि आखिर शिखा रखने का वैज्ञानिक अर्थ क्या है ? श्रद्धा-पोषित सीधे-सादे पुरोहित उसका भला क्या उत्तर दें ? लेकिन सच यह है कि आज विज्ञान भी मानने लगा है कि शिखा-स्थान का मानव जीवन से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है । एक समय था जब हमारे बच्चे प्राण दे सकते थे पर चोटी नहीं, एक दिन आज है जब कि हमारे ही बच्चे स्वेच्छा से चोटियाँ कटवाते चले जा रहे हैं । चोटी उनके लिए उपहास की वस्तु है । कोई पढ़ा-लिखा चोटी रखता है तो उसे अपने मित्रों द्वारा उपहास का भय और लाज लगती है। एक दिन कल वह आने वाला है जबकि भारतवर्ष से चोटी बिल्कुल ही उठ सकती है, पर एक वैज्ञानिक सत्य है कि जिस तरह धीरे-धीरे हमारे बच्चे चोटी कटाते चले जायेंगे दूसरे देशों के लोग उसके वैज्ञानिक महत्त्व को समझते चले जायेंगे । कल के विदेशी चोटी रखने वाले हों तो इस भविष्यवाणी को अत्युक्ति न समझा जाये ।

मस्तिष्क पर हुई वैज्ञानिक शोधों ने शिखा-स्थान की वही महत्ता प्रतिपादित की है जो हम हिन्दुओं ने उसे श्रद्धावश प्रदान की थी । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक नेल्सन ने अपनी विश्व ख्याति की पुस्तक "ह्यूमन मशीन" में तंत्रिका जाल (रेटीक्युलर फार्मेशन) पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बताया है कि शरीर में सतर्कता के सारे कार्य-क्रमों का नियमन उसी स्थान से होता है । अपने आस-पास के

वातावरण जल-वायु आदि में तनिक भी परिवर्तन आता है तो उसे समझता, ग्रहण करता और परिवर्तन के अनुसार शरीर में समायोजित (एडजस्ट) करता है । उदाहरण के लिए गर्मी या सर्दी का बढ़ना, हवा में पानी की मात्रा बढ़ना आदि। फिजियोलाजिस्ट (शरीर-रचना विज्ञान-वेत्ता) ने पता लगाया है कि इस क्रिया का सम्बन्ध तंतु जाल से है । हमारे मस्तिष्क के पार्श्वभाग में तृतीय शून्यस्थान (थर्ड वेन्ट्रिकल) की सतह मेडुला आब्लाँगेटा (सुषुम्ना शीर्ष) से लेकर हाइपोथैलमस (थर्ड वेन्ट्रिकल की सतह से नीचे वाले भाग) तक एक रचना पाई जाती है, जिसका नाम "रेटीकुलर फार्मेशन है" रेटीकुलर का अर्थ है जाल । यह जाल सारे रीढ़धारी जानवारों में पाया जाता है ।

इस जाल का निर्माण बहुत से नाड़ी तन्तुओं के समानान्तर रूप से एक ही केन्द्र की ओर जाने से होता है यह रचना दो भागों में बँटी है—(१) जब सभी नाड़ी तन्तु अलग-अलग इन्द्रियों जैसे आँख, कान, नाक, स्पर्शेन्द्रियों, संकुचन और प्रसरण वाली मांस-पेशियों से निकल कर ऊपर बढ़ते हैं तो वे सब मध्य मस्तिष्क में नाड़ी गुच्छक की तरह एक स्थान पर मिल जाते हैं । इसे "सेन्ट्रीफ्युगल" फार्मेशन कहते हैं । (२) पुनः उसी भाग से नाड़ी जाल ऊपर की ओर सेन्ट्रीपीटल रूप (फार्म) में ऊपर की ओर "सेरेब्रल कारटेम्स" जो शरीर की सम्पूर्ण संवेदनाओं को ग्रहण, नियमन और नियंत्रण करने वाला आश्चर्यजनक मस्तिष्क का भाग है उधर की ओर चलता है और उसमें सर्वत्र फैल जाता है । दोनों नाड़ी जाल जिस बिन्दु तक पहुँचते हैं उससे ९० डिग्री का कोण बनाते हुए एक रेखा ऊपर को खींची जाये तो यही भाग चोटी का होगा । इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि बाह्य परिवर्तनों का संग्राहक और व्यवस्थापक ही नहीं अनेक विलक्षण अनुभूतियों का मार्ग भी यह चोटी वाला स्थान है इसे ही सूक्ष्म रेडियो तरंगें प्रभावित करती हैं इसलिये यदि यह कहा जाये कि समाधि अवस्था के अतीन्द्रिय ज्ञान, ध्यान द्वारा आकाश स्थित सूक्ष्म शक्तियों का आकर्षण का मूल बिन्दु है तो उससे किसी को आश्चर्य न होना चाहिए ।

दीमक दिन भर काम करती रहती है और पानी बरसने को हुआ वह एक घण्टे पहले ही जान जाती है और अपना कारोबार समेट कर बिल में घुस जाती है । यह जानकारी उन्हें तन्त्रिका जाल (रेटीकुलर फार्मेशन) से ही मिलती है । चींटी और मकड़ी भी इसी तरह मौसम के प्रत्येक परिवर्तन को अनुभव करती हैं । यदि इस क्षेत्र की संवेदनशीलता को बढ़ा दिया जाये तो और भी सूक्ष्म अनुभूतियाँ होते पाया है । इंग्लैण्ड में छपने वाली साइंस पत्रिका 'नेचर' के पिछले एक अंक में दो अमेरिकी वैज्ञानिकों का एक लेख छपा है जिसमें एक प्रयोग का हवाला देकर यह सिद्ध किया है कि यदि मस्तिष्क के इस केन्द्र को अत्यधिक संवेदनशील बना लिया जाये जो सभी ज्ञानेन्द्रियों की संवेदनाओं को ग्रहण करता और उनके अनुरूप अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो जो कार्य आँखें, नाक, त्वचा आदि करती हैं वह अपने आप (अतीन्द्रिय) के रूप में किया जा सकता है । अर्थात् तब देखने के लिए आँखें आवश्यक न रहें, सुनने के लिए कानों की जरूरत न रह जाये आदि । समाधि अवस्था का यथार्थ ज्ञान और स्वप्नों की सत्य अनुभूतियाँ इसी संवेदन-शीलता का परिणाम होती हैं । राजा रणजीत सिंह और जनरल वेन्टुरा की उपस्थिति में संत हरदास ने एक माह की समाधि लगाई थी जब वे बाहर निकले थे तब डाक्टरों ने उनकी जाँच करते समय पाया था कि उनकी चोटी वाले स्थान का तापमान इतना अधिक था कि उसे छुआ भी नहीं जा सकता था इससे उन्होंने अनुमान लगाया था कि समाधि की स्थिति में साँस लेने और शरीर के कोषों की उत्सर्जन क्रिया (शरीर के हर सेल बदलते रहते हैं उसे उत्सर्जन क्रिया कहते हैं ।) रोक कर उन्हें यथावत् स्थिति में रखने का काम तक इस संस्थान द्वारा किया जा सकता है । इस अवस्था में शरीर का सारा पोषण सूक्ष्म आकाश से होता है साथ ही आत्म-चेतना का बाह्य जगत से मुक्त सम्बन्ध तक जुड़ जाता है । यह इस बात के प्रमाण हैं कि अनन्त शक्तियों से सम्पर्क और दुरानुभूतियों का केन्द्र भी शिखा-स्थान ही है । इस स्थान को भारतीय उपासना पद्धति में बहुत संवेदनशील बनाने का इसीलिये अनिवार्य विधान रखा गया है ।

इन दोनों अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक बिल्ली के 'रेटिक्यूलर फार्मेशन' नामक तन्त्रिका जाल वाले बिन्दु पर स्टेनलेस स्टील के महीन तार जोड़ दिये और उसकी छाती पर गीगर काउन्टर (यह एक यंत्र है जिससे विकिरण की माप की जाती है) बाँध दिया इसके बाद कमरे के एक कौने में एक छोटा-सा विकिरण स्रोत लगा दिया जब तक बिल्ली उस विकिरण यंत्र से दूर रही, तब तक उसकी स्थिति सामान्य रही, पर जैसे ही वह इस स्रोत से पाँच फुट की दूरी पर आई कि उसे एकाएक झटका लगा और वह पीछे डर कर हट गई । इस प्रयोग से इन वैज्ञानिकों ने भी

यही निष्कर्ष निकाला कि मस्तिष्क की आँख सूक्ष्म विकिरण तक देख सकने में समर्थ है । योग शास्त्रों में उसे ही सहस्रार कमल में बैठे हुए भगवान् शिखा-शक्ति (आत्मा) कहा है वही देखता-सुनता, चलता-फिरता और समस्त कार्यों का कर्माध्यक्ष है । इसलिये इस केन्द्र को जितना अधिक संवेदनशील बना सकते हैं, संसार के रहस्यों, आत्मा के रहस्यों, भूत और भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की सत्य जानकारियों को उतना ही अधिक स्पष्ट और सच-सच देख-सुन एवं अनुभव कर सकते हैं । शुद्ध हुए इस संस्थान की सहायता से ही योगी एक-एक दिन की भविष्यवाणी कर सकने में समर्थ होते हैं । चूँकि यह कार्य शिखा के बालों के माध्यम से ही होता है । ब्रह्माण्ड के लिए एरीयल और ट्रान्समीटर वही है, इसलिये इसे आध्यात्मिकता का मूल बिन्दु मानकर इतना महत्त्व दिया गया । आज चूँकि लोग इसके महत्त्व को भूल गये हैं, इसीलिये हमारी बौद्धिक क्षमताएँ कुण्ठित पड़ी हैं । हमारी दूरदर्शिता हमें छोड़कर न जाने कहाँ भाग गई । लोग मानवेतर जीवों की भाँति ही स्थूल इन्द्रियों के चक्कर में पड़े रहते हैं ।

प्रसिद्ध जीवशास्त्री जेम्स ओल्डस के शिष्य डा. डब्लू. जी. पेनफील्ड ने एक बार एक चूहे के मस्तिष्क के इसी भाग में इलेक्ट्रोड से हल्की विद्युत प्रवाहित कर एक नाड़ी को छुआया तो चूहे में प्रसन्नता के लक्षणों का विकास हुआ, वह एक यंत्र का पैण्डल चलाने में मस्त हो गया, सामने रखा खाना उसने छुआ भी नहीं, एक इसकी नस में विद्युत प्रवाहित करके सामने बिल्ली आने दी तो भी चूहा डरा नहीं, एक अन्य केन्द्र पर विद्युत प्रवाहित करते ही चूहा एक चींटी को देखकर ही डर गया । ऐसे अनेक परीक्षण फ्रान्सीसी वैज्ञानिक प्रो. डेल्गाडो ने भी करके यह सिद्ध करके दिखा दिया कि समस्त सुख-दुःखों का केन्द्र मस्तिष्क के इसी भाग से सम्बन्ध रखता है, जिसे हम शिखा-स्थान कहते हैं और वैज्ञानिक रेटीकुलर फार्मेशन ।

"हारमोन विज्ञान" ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की प्रसन्नता ही नहीं शारीरिक स्वास्थ्य तक भावनाओं और विचारों के अच्छे-बुरे होने पर निर्भर है । नीच विचार कुत्सित भावनाओं से शरीर में दूषित रसायनों का स्राव होता है जबकि पवित्र और अच्छी भावनाओं से अच्छे हारमोन जो कि शरीर को स्वस्थ और संतुलित रखते एवं जीवन को सुखी बनाते हैं इस सब का केन्द्र भी तंत्रिका जाल ही है । इसकी विशेषता यह है कि हम लगातार एक ही विषय के सैकड़ों तरह के विचार एकत्रित कर सकते हैं । प्रयोग से देखा गया है कि यदि रक्त में कार्बन डाइ-ऑक्साइड या एड्रिनलीन की मात्रा बढ़ा दी जाये तो इस जाल की क्रियाओं पर असर पड़ता है उससे इसकी गति तीव्र हो उठती है, जिससे चित्त की चंचलता और अस्थिरता बढ़ जाती है तथा समाचार जल्दी-जल्दी आने-जाने लगते हैं । नेलन्सन ने इस जाल की गति-विधियों को उत्तेजना की गति का समानुपाती माना है अर्थात् यह भाग जितना अधिक सूक्ष्म संवेदनशील होगा बाह्य जगत की सूक्ष्म संवेदनओं से भी हम उतने ही अधिक प्रभावित होंगे । यह प्रभाव केवल मस्तिष्क पर ही नहीं पड़ता जैसा कि ऊपर बता चुके हैं कि इस केन्द्र से मस्तिष्क और शरीर की सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं मांस पेशियों से सीधा सम्बन्ध है अतएव यह केन्द्र सारे शरीर को प्रभावित कर सकने और इन्द्रियों व शरीर की सामर्थ्य बढ़ाने में समर्थ है ।

शिखा व्यक्ति को ब्रह्म से, व्यष्टि से, समष्टि और अपनी सूक्ष्म क्षमताओं को अनन्त क्षमताओं से जोड़कर लाभान्वित होने का माध्यम है । उसकी जितनी महिमा गायी जाये कम है और आज जो लोग इस महत्त्व को भूलते जा रहे हैं । शिखाएँ कटाकर अहिन्दू होते जा रहे हैं इसके लिए जितना दुःख किया जाये वह उतना ही कम है।

# यज्ञोपवीत का रहस्य

## यज्ञोपवीत की महान् उपयोगिता

यज्ञोपवीत का भारतीय धर्म में सर्वोपरि स्थान है । इसे द्विजत्व का प्रतीक माना गया है । द्विजत्व का अर्थ है—मनुष्यता के उत्तरदायित्व को स्वीकार करना । जो लोग मनुष्यता की जिम्मेदारियों को उठाने के लिए तैयार नहीं, पाशविक वृत्तियों में इतने जकड़े हुए हैं कि महान् मानवता का भार वहन नहीं कर सकते, उनको "अनुपवीत" शब्द से शास्त्रकारों ने तिरस्कृत किया और उनके लिए आदेश किया है कि वे आत्मोन्नति करने वाली मण्डली से अपने को पृथक्, बहिष्कृत, निकृष्ट समझें । ऐसे लोगों को वेद पाठ, यज्ञ, तप अदि सत्साधनाओं का भी अनधिकारी ठहराया गया है, क्योंकि जिसका आधार ही मजबूत नहीं वह स्वयं खड़ा नहीं रह सकता, जब स्वयं

खड़ा नहीं हो सकता तो इन धार्मिक कृत्यों का भार वहन किस प्रकार कर सकेगा ?

भारतीय धर्म शास्त्रों की दृष्टि से मनुष्य का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह अनेक योनियों में भ्रमण करने के कारण सञ्चित हुए पाशविक संस्कारों का परिमार्जन करके मनुष्योचित संस्कारों को धारण करे । इस धारणा को ही उन्होंने द्विजत्व के नाम से घोषित किया है । कोई व्यक्ति जन्म से द्विज नहीं होता, माता के गर्भ से तो सभी शूद्र उत्पन्न होते हैं, शुभ संस्कारों को धारण करने से वे द्विज बनते हैं । महर्षि अत्रि का वचन है—"जन्मना जायते शूद्र संस्कारत् द्विज उच्यते ।" जन्म-जात पाशविक संस्कारों को ही यदि कोई मनुष्य धारण किये रहे तो उसे आहार, निद्रा, भय, मैथुन की वृत्तियों में ही उलझा रहना पड़ेगा । कंचन कामिनी से अधिक ऊँची कोई महत्त्वाकांक्षा उसके मन में न उठ सकेगी । इस स्थिति से ऊँचा उठना प्रत्येक मनुष्यताभिमानी के लिए आवश्यक है । इस आवश्यकता को ही हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने अपने शब्दों में "उपवीत धारण करने की आवश्यकता" बताया है ।

किसी भी दृष्टि से विचार कीजिए, मनुष्य जीवन की महत्ता सब प्रकार असाधारण है । कहते हैं कि चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद नर-देह मिलती है, यदि इसे व्यर्थ गँवा दिया जाय तो पुनः कीट-पतंगों की चौरासी लाख यानियों में भटकने के लिए जाना पड़ता है । कहते हैं कि गर्भस्थ बालक जब रौरव नरक की यातना से दुःखी होकर भगवान् से छुटकारे की याचना करता है, तो इस शर्त पर छुटकारा मिलता है कि संसार में जाकर जीवन का सदुपयोग किया जायेगा । कहते हैं कि मनुष्य की रचना परमात्मा ने इस उद्देश्य से की है कि वह मेरा सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारी राजकुमार सिद्ध हो और ऐसे कार्य करे जो मेरी महिमा प्रकट करते हों । कहते हैं कि आत्मा का सर्वश्रेष्ठ विकास मानव प्राणी में होता है, इसलिए उसका आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे ईश्वर अंश जीव की महानता प्रकट हो ।

हमारे पूर्वजों ने इस तथ्य को अपनी दूर-दृष्टि से, अपने योगबल से, पहले ही भली प्रकार समझ लिया था। उन्होंने चिर-कालीन विचार-मन्थन और सूक्ष्म दृष्टि से सृष्टि की प्रत्येक बात का गम्भीर परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला था कि—जन्म से मनुष्य भी अन्य पशु-पक्षियों के समान शिश्नोदर परायण होता है, पेट भरने और क्रीड़ा करने की ही इच्छाएँ उसे प्रधान रूप से सताती हैं, यदि कोई विशेष प्रयत्न करके उसे ऊँचा न उठाया जाय तो वह कितना ही चतुर क्यों न कहलावे, पाशविक वृत्तियों के आधार पर ही जीवन व्यतीत करेगा । चूँकि इस प्रकार की जीवनचर्या अत्यन्त ही तुच्छ और अदूरदर्शितापूर्ण है, इसलिए यही कल्याणकर है कि मनुष्यों को इस निम्न धरातल से ऊँचा उठ कर उस भूमिका में अपना स्थान बनाना चाहिए, जो उच्च है, आदर्शपूर्ण है, धर्ममयी है और अनेक सत्परिणामों को उत्पन्न करने वाली है । चूँकि यह स्थिति जन्म-जात पशु-वृत्तियों की क्रिया-शैली से बहुत भिन्न है, दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है, इसलिए इस एक स्थिति से दूसरी स्थिति में पदार्पण करने की परिवर्तन-पद्धति को "उपनयन" कहा गया है ।

देखने में यज्ञोपवीत कुछ लड़ों का एक सूत्र मात्र है, जो दाहिने कन्धे पर पड़ा रहता है । इसमें स्थूल रूप से कोई विशषता नहीं मालूम पड़ती । बाजार में दो-दो, चार पैसे के जनेऊ बिकते हैं । स्थूल दृष्टि से यही उसकी कीमत है तथा मोटे तौर से वह इस बात की पहचान है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों में से किसी वर्ण में इस जनेऊ पहनने वाले का जन्म हुआ है । पर वस्तुतः केवल मात्र इतना ही प्रयोजन उसका नहीं है । उसके पीछे एक जीवित जागृत दर्शन-शास्त्र छिपा पड़ा है, जो मानव-जीवन का उत्तम रीति से गठन, निर्माण और विकास करता हुआ उस स्थान तक ले पहुँचता है जो जीवधारी का चरम लक्ष्य है ।

स्थूल दृष्टि से देखने में कई वस्तुएँ बहुत ही साधारण प्रतीत होती हैं, पर उनका सूक्ष्म महत्त्व अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण होता है, पुस्तकें स्थूल दृष्टि से देखने में छपे हुए कागजों का एक बण्डल मात्र हैं, जो रद्दी में बेचने पर दो-चार पैसे की ठहरती हैं, पर उस पुस्तक में जो ज्ञान भरा हुआ है वह इतना मूल्यवान है कि उसके आधार पर मनुष्य कुछ से कुछ बन जाता है । 'विक्टोरिया क्रास' जो अंग्रेजी सरकार की ओर से बहादुरी का प्रतिष्ठित पदक दिया जाता था, वह लोहे का बना होता था और उसकी बाजारू कीमत मुश्किल से एकाध रुपया होगी, पर जो उसे प्राप्त कर लेता था, वह अपने आपको धन्य समझता था । परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर जो प्रमाण-पत्र मिलते हैं, उनके कागज का मूल्य एक-दो पैसे ही होगा, पर वह कागज कितना मूल्यवान है—इसको वह परीक्षोत्तीर्ण छात्र ही जानता है । सरकारी कर्मचारियों के पद की पहचान के

लिए धातु के बने अक्षर मिलते हैं जो कि कन्धे या सीने पर कपड़ों में लगा लिये जाते हैं । यह धातु के अक्षर बाजारू कीमत से दो-चार आने के ही हो सकते हैं, पर वे कर्मचारी जानते हैं कि उन्हें लगा लेने पर और उतार देने पर उनको जनता कितने अन्तर से पहचानती है । यज्ञोपवीत भी एक ऐसा ही प्रतीक है जो बाजारू कीमत से भले ही दो-चार पैसे का हो, पर उसके पीछे एक महान् तत्त्वज्ञान जुड़ा हुआ है, इसलिए ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि जनेऊ पहनना कन्धे पर एक डोरा लटका लेना है, वरन् इस प्रकार सोचना चाहिए कि मनुष्य की दैवी जिम्मेदारियों का एक प्रतीक हमारे कन्धे पर अवस्थित है ।

पत्थर की प्रतिमा को मध्यस्थ बनाकर हम सर्वव्यापी, अनन्त शक्तियों और गुणों से सम्पन्न परमात्मा को अपने सम्मुख उपस्थित देखते हैं । उस मूर्ति को देखकर हमारी अन्तःचेतना ऐसा अनुभव करती है मानो साक्षात् भगवान् से हमारा मिलन हो रहा है । यद्यपि इस प्रकार की प्रभु पूजा में भावना प्रधान और प्रतिमा गौण है, तो भी प्रतिमा को ही यह श्रेय देना पड़ेगा कि वह भगवान की भावनाओं का उद्रेक और संचार विशेष रूप से हमारे अन्तःकरण में करती है । यों कोई चाहे तो चाहे जब, चाहे जहाँ, भगवान् को स्मरण कर सकता है, इसमें कोई रोकटोक नहीं, पर मन्दिर में जाकर प्रभु प्रतिमा के सम्मुख अनायास ही जो आनन्द प्राप्त होता है वह बिना मंदिर में जाये, चाहे जब कठिनता से ही प्राप्त होगा । गंगा तट पर बैठकर जो पवित्र भावनाएँ उत्पन्न होती हैं वे हर स्थान पर मुश्किल से ही हो सकती हैं । इसी प्रकार यद्यपि बिना यज्ञोपवीत धारण किये हुए भी दैवी भावनाएँ कोई मनुष्य बेरोक टोक अपने मन में उत्पन्न कर सकता है, पर इस परम पवित्र दिव्य भावना सम्पन्न सूत्र को माध्यम बनाकर, हर समय कंधे पर धारण किये रह कर, जितना अपने उत्तरदायित्व को स्मरण रखना सुगम है, उतना उसे बिना धारण किये सुगम नहीं । इसी दृष्टि से हमारे आचार्यों ने प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को यह आदेश किया था कि वह द्विजत्व की जिम्मेदारी का बोझ अपने कंधे पर अनुभव करें और जिस प्रकार किसी बात को याद रखने के लिए कपड़े में गाँठ लगा कर स्मरण रखने का माध्यम नियुक्त कर लेते हैं, उसी प्रकार कंधे पर यज्ञोपवीत धारण करके सदा इस बात का स्मरण रखें कि हमने शपथपूर्वक द्विजत्व की जिम्मेदारी को कंधे पर धारण किया हुआ है ।

यह पूछा जाता है कि मन में कोई बात हो तो उसी से सब कुछ हो सकता है, इसके लिए बाह्य-चिह्न धारण करने की क्या आवश्यकता ? जब मन में द्विजत्व ग्रहण करने के भाव मौजूद हों तो उसका होना ही पर्याप्त है । फिर यज्ञोपवीत क्यों पहिनें ? और यदि मन में उस प्रकार की भावना नहीं है, तो जनेऊ पहनने से भी कुछ लाभ नहीं ।

मोटे तौर से यह तर्क ठीक प्रतीत होता है, परन्तु जिन्होंने मनुष्य की प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि इस तर्क में कितना कम तथ्य है । बुराई की ओर, अधर्म की ओर, पाशविक भोगों की ओर मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति होती है । इस ओर मन अपने आप चलता है, पर उसे त्याग के, संयम के, धर्म के मार्ग पर ले चलने के लिए बड़े-बड़े कष्टसाध्य प्रयत्न करने पड़ते हैं । पानी को बहाया जाय तो वह जिधर नीची भूमि होगी, वह बिना किसी प्रयत्न के अपने आप अपना रास्ता बनाता हुआ बहेगा । निचाई जितनी अधिक होगी, उतना ही पानी का बहाव तेज होता जायेगा, परन्तु यदि पानी को ऊपर चढ़ाना है तो यह कार्य अपने आप नहीं हो सकता, इसके लिए तरह-तरह के साधन जुटाने पड़ेंगे । नल, पम्प, टंकी आदि का कोई माध्यम लगाकर उसके पीछे ऐसी शक्ति का संयोग करना पड़ता है, जिसके दबाव से पानी ऊपर चढ़े । दबाव देने वाली शक्ति तथा पानी को ऊपर ले जाने वाले साधन यदि अच्छे हुए तो वह तेजी से और अधिक मात्रा में ऊपर चढ़ता है, यदि वह साधन निर्बल हुए तो पानी के चढ़ने की गति भी मन्द हो जायेगी । यही बात जीवन को उच्च मार्ग में लगाने के सम्बन्ध में है । यदि धर्म-मार्ग में, सिद्धान्तमय उच्चपथ में प्रगति करनी है, तो उसके लिए ऐसे प्रयत्न करने पड़ते हैं जैसे कि पानी को ऊपर चढ़ाने के लिए करने होते हैं । सोलह संस्कार, नाना प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड, व्रत, जप, पूजा, अनुष्ठान, तीर्थयात्रा, दान, पुण्य, स्वाध्याय, सत्संग ऐसे ही प्रयोजन हैं, जिनके द्वारा मन को प्रभावित, अभ्यस्त और संस्कृत बनाकर दिव्यत्व की ओर—द्विजत्व की ओर—बढ़ाया जाता है । इन सबका उद्देश्य केवल मात्र इतना ही है कि मन पाशविक वृत्तियों से मुड़कर दिव्यत्व की ओर अग्रसर हो, यदि ऐसा करना अपने आप ही, सरलतापूर्वक हुआ तो यज्ञोपवीत को व्यर्थ बताने वाले तक को स्वीकार करने में किसी को कुछ आपत्ति न होगी । उस दशा में यह पृथ्वी ब्रह्मलोक होती और वैसा समय सतयुग कहा जाता, पर

आज तो वैसा नहीं है । हमारे मनों की कुटिलता इतनी बढ़ी हुई है कि आध्यात्मिक साधना करने वाले भी बार-बार पथ भ्रष्ट हो जाते हैं, तब ऐसी आशा रखना कहाँ तक उचित है कि अपने आप ही सब कुछ ठीक हो जायेगा ।

यज्ञोपवीत धारण करना इसलिए आवश्यक है कि उससे एक प्रेरणा नियमित रूप से मिलती है । जिनके जिम्मे संसार के बड़े-बड़े कार्य हैं, जिनका जीवन व्यवस्थित है वे सवेरे ही अपना कार्यक्रम बनाकर मेज के सामने लटका लेते हैं और उस तख्ती पर बार-बार निगाह डालकर अपने कार्यक्रम को यथोचित बनाते रहते हैं । यदि वह याद दिलाने वाली तख्ती न हो तो उनके कार्यक्रम में गड़बड़ पड़ सकती है यद्यपि उस तख्ती का स्वतः कोई बड़ा मूल्य नहीं है पर उसके आधार पर काम करने वाले का अमूल्य समय व्यवस्थित रहता है । इसलिए उसका लाभ असाधारण महत्त्वपूर्ण है और उस महान् लाभ का श्रेय उस तख्ती को कम नहीं है । जनेऊ ऐसी ही तख्ती है जो हमारे जीवनोद्देश्य और जीवन-क्रम को व्यवस्थित रखने की याद हर घड़ी दिलाती रहती है ।

जिन उच्च-भावनाओं के साथ, वेदमन्त्र के माध्यम से, अग्नि और देवताओं की साक्षी में यज्ञोपवीत धारण किया जाता है उससे मनुष्य के गुप्त मानस पर एक विशेष छाप पड़ती है । "यह सूत्र यज्ञमय एवं अत्यन्त पवित्र है । इसके धारण करने से मेरा शरीर पवित्र है, इसलिए इसे सब प्रकार की अपवित्रताओं से बचाना चाहिए । शारीरिक और मानसिक गन्दगियों से इस दैवी पवित्रता की रक्षा की जानी चाहिए ।" यह भावना उस व्यक्ति के मन में उठनी ही चाहिए, जो जनेऊ धारण करता है । जहाँ इस प्रकार की सात्विक आकांक्षा होगी वहाँ दैवी शक्तियाँ उसके संकल्प को पूर्ण करने में सहायक होंगी, उसे प्रेरणा और साहस देंगी, जहाँ वह फिसलेगा उसे रोकेंगी और यदि गिरेगा भी तो उसे फिर उठायेंगी । इस प्रकार यज्ञ की प्रतिमा-यज्ञोपवीत-धारण करने वाला जब यह समझता रहेगा कि मैंने अपने कन्धे और छाती पर यज्ञ भगवान् को सुसज्जित कर रखा है तो निश्चित रूप से वह यज्ञमय जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा करेगा । इस प्रकार की आकांक्षा चाहे कितनी ही मन्द क्यों न हो, प्रभु के प्रेरक आशीर्वाद के समय मनुष्य के लिए सदा कल्याणकारी ही होती है और इससे दिन-व-दिन सन्मार्ग में कल्याण-पथ में ही प्रगति होती है । यह प्रगति चूँकि ईश्वरीय प्रगति है, इसके द्वारा प्राणी सब प्रकार की सुख-शान्ति का अधिकारी बनता जाता है ।

श्रेष्ठता का आवरण पहन लेना, अपने आपको ऐसे पवित्र बन्धनों में बाँध लेना है जिनके कारण पतन के गर्त में गिरते-गिरते मनुष्य अनेक बार बच जाता है । बाह्य-वेष को देखकर लोग किसी व्यक्ति के बारे में अपना मत बनाते हैं, लोकमत की दृष्टि में कोई व्यक्ति यदि अच्छा बन गया तो उसे अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल रहता है । मन विचलित होकर जब कुमार्गगामी होने को तैयार हो जाता है, तब लोक-लाज एक ऐसा बन्धन सिद्ध होती है जो उसे गिरते-गिरते बचा लेती है । जिस व्यक्ति ने ब्राह्मण या साधु का वेष बना रखा है, तिलक, जनेऊ, माला, कमण्डल आदि धारण कर रखे हैं वह सबके सामने निर्भीकतापूर्वक मद्य-मांस का सेवन, जुआ, चोरी, व्यभिचार आदि कुकर्म करने में समर्थ न हो सकेगा । करेगा तो बहुत डरता-डरता, छिप कर, अल्प मात्रा में, पर जिन्होंने अपने को प्रत्यक्ष रूप से मद्य-मांस विक्रेता तथा पाप व्यवसाई घोषित कर रखा है उनको इन सब बातों में तनिक भी झिझक नहीं होती, वह इन कर्मों को अधिक मात्रा में करना अपनी अधिक बहादुरी समझते हैं । रामायण में पतिव्रता होने का कारण लोक-लाज को भी बताया है । असंख्यों, स्त्री-पुरुष मानसिक व्यभिचार में लीन रहते हैं, पर लोक-लाज वश वे कुमार्गगामी होने से बच जाते हैं । यज्ञोपवीत श्रेष्ठता का, द्विजत्व का, आदर्शवादी होने का प्रतीक है वह एक साइनबोर्ड है, जो घोषित करता है कि इस जनेऊ पहनने वाले ने कर्त्तव्यमय, धर्ममय जीवन बिताने की प्रतिज्ञा ली हुई है जो इस प्रकार का साइनबोर्ड कन्धे पर धारण किये हुए है, उसे अपने मार्ग से विचलित होते हुए झिझक लगेगी, सोचेगा-दुनिया मुझको क्या कहेगी, इस प्रकार की लोक-लाज बहुत हद तक उसे कुमार्गगामी होने से रोकेगी । वह भूल या पाप करेगा तो भी झिझकते हुए कम मात्रा में करेगा । उतना नहीं कर सकेगा, जितना स्वतन्त्र होने पर निर्भय और निर्लज्ज मनुष्य निरंकुशतापूर्वक अकर्म किया करते हैं ।

कई व्यक्ति कहते सुने जाते हैं कि हम आदर्श जीवन द्विजत्व ग्रहण तो करना चाहते हैं, पर इस समय तक हम द्विज नहीं रह सके हैं, इसलिए हम द्विजत्व के प्रतीक यज्ञोपवीत को धारण क्यों करें ? यह आशंका भी उचित नहीं, क्योंकि यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ द्विजत्व में

प्रवेश करना आदर्श जीवन व्यतीत करने का व्रत लेना, दिव्यता में प्रवेश करना है । इसका अर्थ यह नहीं कि जिस दिन व्रत लिया उसी दिन वह साधना पूर्ण भी हो जानी चाहिए । इस संसार में सभी प्राणी अपूर्ण और दोषयुक्त हैं । उन दोषों और अपूर्णताओं के कारण ही तो उन्हें शरीर धारण करना पड़ता है । जिस दिन वह अपूर्णता दूर हो जायेगी, उस दिन शरीर धारण करने की आवश्यकता ही न रहेगी । कोई व्यक्ति चाहे वह कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो किसी न किसी अंश में अपूर्ण एवं दोषयुक्त है । फिर क्या हम यह कहें कि—"जब सारा संसार ही पापी है, तो हमारे अकेले धर्मात्मा बनने से क्या लाभ ?"

हमें इस प्रकार विचार करना चाहिए कि श्रेष्टता की पाठशाला में प्रवेश करना द्विजत्व का व्रत लेना ही यज्ञोपीत धारण करना है । पाठशाला में प्रवेश करने के दिन "पट्टी पूजा" होती है, इसका अर्थ है कि अब उस बालक की नियमित शिक्षा आरम्भ हो गई । विद्या प्राप्त करने का उसने व्रत ले लिया । यदि कोई विद्यार्थी कहे कि—"सरस्वती पूजा का अधिकार तो उसे है जो सरस्वतीवान् हो, पूर्ण विद्वान हो हम तो अभी दो-चार अक्षर ही जानते हैं फिर सरस्वती पूजा क्यों करें ?" तो उसका यह प्रश्न असंगत है । क्योंकि वह सरस्वती पूजा का अर्थ यह समझा है कि जो पूर्ण सरस्वतीवान् हो जाय उसे ही पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार तो संसार के किसी भी काम को कोई भी व्यक्ति करने का अधिकारी नहीं है, क्योंकि चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न जानता हो तो भी किसी न किसी अंश में वह अनजान अवश्य होगा । ऐसे तो कोई भी वकील, डाक्टर, पण्डित, शिल्पकार, गायक तथा अध्यापक न मिलेगा, तो क्या उनके द्वारा किये जाने वाले सब काम रुके ही पड़े रहेंगे ?

व्रत लेने का अर्थ ही यह है कि—अभी यह नहीं किया जा सका था—आगे यह करेंगे । कोई व्रत लेता है कि मैं नियमित रूप से व्यायाम किया करूँगा, इसका अर्थ है कि वह अब तक ऐसा नहीं करता रहा है, आगे करेगा जो व्यक्ति सदा से ही नियमित व्यायाम करता है, उसके लिए तो वह एक साधारण स्वाभाविक दैनिक क्रिया है उसका व्रत लेने की उसे क्या आवश्यकता ? इसी प्रकार जो व्यक्ति द्विजत्व में पारंगत नहीं हो सके हैं, उन्हें ही यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है । जब उनका द्विजत्व पुष्ट, परिपक्व और पूर्ण हो जायेगा तब फिर उन्हें इसकी कुछ आवश्यकता भी न रहेगी । संन्यास आश्रम में जनेऊ का त्याग कर दिया जाता है, क्योंकि उस स्थिति में पहुँचे हुए व्यक्ति के लिए वह निष्प्रयोजन है । जिस कार्य के लिए उसे धारण किया गया था वह पूरा हो चुका तो व्यर्थ का बोझ क्यों लादा जाय ? जो लोग शंका करते हैं कि हम द्विज नहीं हैं इसलिए हम जनेऊ पहनने का साहस क्यों करें । उन्हें समझना चाहिए कि—"उन्हें इसी कारण यज्ञोपवीत अवश्य पहनना चाहिए क्योंकि उनमें द्विजत्व का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है । इस विकास के लिए ही तो उपवीत धारण कराया जाता है ।" क्या कोई पहलवानी का विद्यार्थी ऐसी शंका करता है कि "मैं पूर्ण पहलवान नहीं हूँ, इसलिए अखाड़े में क्यों उतरुँ ? मुगदर क्यों उठाऊँ ?" उसे अखाड़े में उतरने और मुगदर उठाने की इसलिए आवश्यकता है कि वह अभी पूर्ण पहलवान नहीं हो पाया जब वह पूर्ण पहलवान हो जायेगा तो उसे इन अभ्यासों से छुटकारा भी मिल सकता है । यही बात उपवीत धारण के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है ।

यज्ञोपवीत धारण करना इस बात का प्रतीक नहीं है कि इस व्यक्ति का पूर्ण आध्यात्मिक विकास हो गया । वरन् इस बात का प्रतीक है कि— इस व्यक्ति ने आदर्श-जीवन, धर्ममय जीवन व्यतीत करने का संकल्प किया है और यह अपनी परिस्थिति के अनुसार यथासाध्य अधिक से अधिक प्रयत्न करता हुआ लक्ष्य तक पहुँचने की ईमानदारी के साथ चेष्टा करेगा । ऐसी दशा में यह झिझक करना व्यर्थ है कि हम इस योग्य नहीं कि उपवीत धारण करें । इस अयोग्यता का निवारण उसके धारण करने से ही तो होगा । जो यह कहता है कि मैं तैर नहीं सकता इसलिए पानी में नहीं घुसूँगा, उसे जानना चाहिए कि पानी में घुसे बिना तैरना नहीं आ सकता । जो कहता है कि—मैं घोड़े पर चढ़ना नहीं जानता इसलिए नहीं चढूँगा, उसे जानना चाहिए कि घोड़े की पीठ पर बैठे बिना घुड़सवार नहीं बन सकता । यह ठीक है कि आरम्भ में काफी कठिनाई प्रतीत होती है, आरम्भ में काफी गलतियाँ भी होती हैं, पर उनका संशोधन तो धीरे-धीरे अभ्यास करने से, उस कार्य में लगने से ही तो होगा । ऐसा कोई कायदा इस संसार में नहीं है कि आप किसी कार्य में पूर्ण पारंगत हो जावें तब उस कार्य को आरम्भ करें । कार्य को आरम्भ करने से ही उसमें कुशलता प्राप्त होती है । जनेऊ धारण करके, जब आप द्विजत्व प्राप्त करने के लिए आगे

बढ़ेंगे तो आप धीरे-धीरे इस मन्जिल को पार करते हुए एक दिन सच्चे अर्थों में द्विज कहने योग्य बनेंगे, तभी तो आपको पूर्ण द्विजत्व की प्राप्ति होगी ।

## उपवीत की आवश्यकता

**उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेषः सनातनः ।**

—*वशिष्ठ स्मृति*

"सदा उपवीती होकर रहे यह सनातन विधि है ।"

आर्य जीवन, उद्देश्यमय जीवन है । जो लोग जीते हैं, खाते, पीते, सोते, कमाते, स्त्री-सेवन करते तथा मर जाते हैं, ऐसे लोगों का जीवन पशु-तुल्य है । हिन्दू धर्म ऐसे जीवन को घृणा की दृष्टि से देखता है और उपदेश करता है कि हर व्यक्ति सदा उपवीती होकर रहे । अर्थात् उद्देश्यमय जीवन व्यतीत करे । यह सनातन विधि है—ईश्वरीय आज्ञा है—आत्मा का स्वाभाविक कर्त्तव्य है । उद्देश्यमय जीवन में प्रवेश कराने के लिए ही यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है ।

**यज्ञोपवीतस्योत्पत्तिं यो न जानाति वै द्विजः ।**
**स मूढ़ो भारवाही च वृषभो नास्तिको यथा ॥**
**निष्फलं वहते भारं यो न जानाति लक्षणाम् ।**
**कर्मबाहो द्विजो नूनमपूज्यो लोकनिन्दितः ॥**

अर्थात्—जो द्विज यज्ञोपवीत की उत्पत्ति और लक्षण को नहीं जानता वह बोझ ढोने वाले बैल की तरह व्यर्थ ही कन्धे पर बोझ धरे हुए है । ऐसे मूर्ख, नास्तिक, द्विज-कर्म से वहिष्कृत तथा लोक-निन्दित होने योग्य हैं ।

तीन लड़ों का डोरा गले में डाल लेना एक नया बोझ लादने के समान ही है, यदि हम उसका उद्देश्य, कारण, तात्पर्य, रहस्य न जानें । रूढ़ि परम्परा से गले में उसे डालने के इतने मात्र कार्य को ही यज्ञोपवीत धारण नहीं कहते । जिन तथ्यों की ओर, जिन धर्म-कर्त्तव्यों की ओर, विचार एवं भावों की ओर, यज्ञोपवीत संकेत करता है उन्हें भली प्रकार जानना, उनका महत्त्व स्वीकार करना, एवं उसी धर्म मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना, यह उपवीत धारण है। जो इस सच्चे उपवीत धारण की ओर ध्यान नहीं देता उसका द्विजत्व का अहंकार मिथ्या है । वह मूर्ख कहे जाने योग्य तथा वहिष्कृत एवं लोक-निन्दित किये जाने योग्य है ।

**सूचनाद् ब्रह्मतत्वस्य वेदतत्वस्य सूचनात् ।**
**तत्सूत्रमुपवीतत्वाद् ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम् ॥**

अर्थात्—ब्रह्मतत्त्व की सूचना स्वरूप वेदतत्त्व की सूचना स्वरूप वह यज्ञोपवीत पहना जाता है । इसे ब्रह्म-सूत्र भी कहते हैं । यज्ञोपवीत वेदाध्ययन एवं ब्रह्म साधना का प्रतिज्ञा चिन्ह माना जाता है ।

**यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते यै होर्तृभिः ।**
**उपवीतं यतोस्येदं तस्माद्यज्ञोपवीतनम् ॥**

—*पारिजात स्मृति सारः*

अर्थात्— यज्ञ-रूपी परमात्मा के लिये जो (प्रतिज्ञा सूत्र) धारण किया जाता है उसे यज्ञोपवीत कहते हैं ।

यज्ञोपवीत परमात्मा की प्राप्ति के लिए जीवन अर्पण करने की प्रतिज्ञा का भी प्रतीक है । परमात्मा को प्राप्त करने योग्य शुभ कर्मों को, धर्म साधनों को अपनाना यज्ञोपवीतधारी का आवश्यक कर्त्तव्य है । उसे नीच स्वार्थों की माया से पृथक् रहकर नर-नारायण की पूजा का, विश्व-मानव की सेवा का, आत्मा के शुभ सन्देशों को अपनाने का मार्ग ग्रहण करना चाहिए ।

## यज्ञोपवीत के महान् लाभों का कारण

**उपवीतिने पुष्टानां पतये नमः**

—*यजुर्वेद १६-१७*

"उपवीत वाले पुष्ट-बलवान् के लिए नमस्कार है ।"

इससे प्रकट है कि उपवीत वाले पुष्ट, बलवान् और नमस्कार योग्य होते हैं ।

**प्राणानां ग्रन्थरसि मा वित्रसोऽन्तक इदं ते परिददाम्यहम् ।**

अर्थात्—तू (यज्ञोपवीत) प्राणों की ग्रन्थि है, तू दुःख नाशक होकर इस शरीर पर प्रतिष्ठित हो । मैं तुझे धारण करता हूँ ।

यही मन्त्र थोड़े शब्दों के लौट-फेर से नारायणोपनिषद् में इस तरह आता है—

**"प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रोमा विशान्तकः तेनान्नेनाप्यायस्व ।"**

इसका भावार्थ भी वही है जो उपरोक्त ब्राह्मण वाले मन्त्र का है ।

इन दोनों वचनों से प्रकट है कि यज्ञोपवीत प्राणों की गाँठ को बाँधे रहने वाला (दीर्घ जीवन देने वाला)-दुःख नाशक और प्रतिष्ठा योग्य है ।

**येनेन्द्राय बृहस्पतिर्व्यासः पर्यदधादमृतं तेन त्वा परिदधाम्यायुष्मे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ।**

—*पा. गृ. २ /२ /७*

"जिस तरह इन्द्र को बृहस्पति ने यज्ञोपवीत दिया था, उसी तरह आयु, बल और बुद्धि की चिर-वृद्धि के लिये मैं उस यज्ञोपवीत की धारणा करता हूँ ।"

**यज्ञोपवीतमसि यसस्यत्वा यज्ञोपवीते नोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय वलाय वर्चसे ।**

—*कौषीतकी ब्राह्मण*

आचार्य ब्रह्मचारी से कहता है—मैं तुझे यज्ञोपवीत धारण कराता हूँ, क्योंकि यह दीर्घ आयु, बल और तेज के देने वाला है ।

कौषितकी ब्राह्मण उपनिषद् में आया है—

**सर्वजिद्धस्य कौषीतकी रुद्यन्के आदित्यमुपतिष्ठते यज्ञोपवीतं कृत्वोदकमानीय त्रिः प्रसिच्योदपात्रम् ।**

अर्थात्—सबको जीतने वाले कौषीतकी भी यज्ञोपवीत धारण कर सूर्य की उपासना करते थे ।

यह सब अभिवचन यज्ञोपवीत की महत्ता प्रकट करते हैं, इनके ऊपर विचार करने से प्रतीत होता है कि इससे दीर्घायु, स्वस्थता, तेज, बल, बुद्धि, प्रतिष्ठा एवं सुख की प्राप्ति होती है । सांसारिक सभी सुखों के बीज उसमें छिपे हुए हैं । यज्ञोपवीत धारण करने वाले को सब प्रकार की समृद्धि, सुख-शान्ति एवं सम्पन्नता प्राप्त होनी चाहिए ।

कौ. सू. १ ।८ ।६७ तथा महा भा. ३ ।१५८ में, "यज्ञोपवीति देवानाम्" पद आता है । इसमें यज्ञोपवीत-धारी देवों का वर्णन है । इससे प्रतीत होता है कि देवत्व के चिह्नों में एक यज्ञोपवीत भी है एवं यज्ञोपवीत और देवत्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

केवल सांसारिक ऐश्वर्य ही नहीं वरन् देवत्व से भी यज्ञोपवीत का निकट सम्बन्ध है । उपवीत के नियमों पर आचरण करने से देवत्व प्राप्त होता है, मनुष्य देव पद पर पहुँच सकता है । स्वर्ग के सुखों का देवता लोग आस्वादन करते हैं, उन सुखों को भी यज्ञोपवीत के प्रभाव से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।

अब आइये विचार करें कि इतना महान् माहात्म्य इस तीन तार के सूत्र में किस प्रकार सन्निहित है ? इसमें ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण मनुष्य बाह्य और आन्तरिक, लौकिक और पारलौकिक सुखों को प्राप्त करता है ? इस प्रश्न का उत्तर वेद भगवान् ने बड़े ही स्पष्ट रूप में दे दिया है । कहा है—

**देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋष्ययस्तपसे ये निषेदुः ।**

**भीमाजाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।**

—*ऋग्वेद १० / १०९ / ४*

अर्थात्—प्राचीन तपस्वी सप्त ऋषि तथा देवगण ऐसा कहते हैं कि इस ब्राह्मण की यज्ञोपवीत महान् शक्ति है । वह शक्ति अत्यन्त शुद्ध-चरित्रा एवं कठिन कर्म परायणा है । इसके धारण से नीच जन भी परम पद को पहुँचता है ।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले के अन्तःकरण पर यह प्रभाव पड़ता है कि वह ब्रह्मसूत्र धारण किये हुए है । जीवन को उद्देश्यमय बनाने की प्रतिज्ञा लिये हुए है । खाने-पीने और मौज करने के लिए नहीं वरन् वह अपने जीवन को तीन ऋणों के चुकाने में योग, यज्ञ, तप की साधना में व्यतीत करना आवश्यक समझता है । जीवन का दृष्टिकोण ब्रह्म-परायण, आध्यात्मिक बना लेने से, मनुष्य की कार्य-प्रणाली एवं विचारधारा धर्मानुकूल हो जाती है ।

मन और कर्म को धर्मानुकूल रखने वाला सत्यनिष्ठ व्यक्ति सच्चा ब्राह्मण है । ब्राह्मण की शक्ति महान् होती है । महान् शक्ति यज्ञोपवीत से ही उत्पन्न होती है । यज्ञोपवीत वाली उच्च भावनाओं की सात्विक प्रेरणा के कारण वह शक्ति पुंज बन जाता है । ऋग्वेद के उपरोक्त मन्त्र में आगे चलकर इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया गया है । "वह शक्ति अत्यन्त शुद्ध चरित्र एवं कठिन कर्म परायण है ।" इस उपवीत शक्ति को धारण करने वाला मनुष्य स्वभावतः अत्यन्त शुद्ध चरित्र नम्र, सुशील, दयालु, सेवाभावी, सदाचारी, सद्ज्ञानी होता है साथ ही उसे कठिन कर्म परायणता में बड़ी प्राप्ति होती है, कष्टसाध्य कार्यों को करने में उसे बड़ा रस आता है । उद्योग, पुरुषार्थ, साहस, उत्साह, निर्भयता, धैर्य, दृढ़ता, लगन आदि वीरोचित गुण उसके स्वभाव में शामिल हो जाते हैं । अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से लड़ने को तैयार हो जाता है और भयंकर समय में भी अविचल भाव से आगे बढ़ता रहता है ।

शुद्ध पवित्रता और धर्मपरायणता इन दोनों महान् गुणों के कारण निश्चय ही ब्रह्म-परायण व्यक्ति महान्

शक्तिशाली बन सकता है । 'शक्ति' के द्वारा सम्पूर्ण लौकिक और पारलौकिक सिद्धियाँ, सम्पन्नताएँ मिलती हैं, यह सर्व विदित तथ्य है । इसी तथ्य के अनुसार यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण अपने विचार और कार्यों के बल पर निरन्तर उच्च स्थिति की ओर बढ़ता चलता है । नीच जन भी ऊँचे उठते चलते हैं और भौतिक ही नहीं वरन् स्वर्ग तथा परम-पद भी उसके करतलगत हो जाते हैं ।

यज्ञोपवीत भावना से इस प्रकार लाभों का होना कल्पना मात्र नहीं है । ऋग्वेद का कथन है कि प्राचीन तपस्वी, सप्त ऋषि तथा देवतागण ऐसा कहते हैं । ऋषि, तपस्वी और देवता वही बात कहते हैं, जो अनुभव सिद्ध होती है । वेद भगवान्, ऋषि, तपस्वी और देवताओं की साक्षी के साथ यज्ञोपवीत से सुख-प्राप्ति का होना सिद्ध करते हैं । यह अभिवचन सर्वथा विश्वसनीय है ।

पारसी लोग अपने बालकों को अपने धर्म के अनुसार यज्ञोपवीत की भाँति का ही एक सूत्र समारोहपूर्वक धारण कराते हैं । उस सूत्र को धारण कराने का मन्त्र यह है—

**फ्राते मज्जदाओ बरत् पौरवनीम् एयाओं धनिमस्ते हर पाये संर्घम मैन्युस्तेम् बंधु हिम् दयेनीम् मज्दवास्नाम्।**

*—जेन्द अव ३ /२३८*

अर्थात्—हे सूत्र ! तू महान् है, उज्ज्वल है और आयु तथा बल का देने वाला है । तुझे ईश्वर ने बनाया है। मैं तुझे धारण करता हूँ ।

यह पारसी धर्म ग्रन्थों का मन्त्र यज्ञोपवीत के महान् लाभों की पुष्टि करता है ।

ऐसे सर्व सुखकारी, महत्त्वपूर्ण, ब्रह्मसूत्र को श्रद्धा और आस्था के साथ हम सबको धारण करना चाहिये ।

## कुछ मनोरंजक लाभ

जनेऊ के कई भौतिक लाभ भी हैं । जैसे तालियों का गुच्छा बाँधना, कसम खाने के लिये उसको साक्षी बनाकर दूसरे को विश्वास दिलाना । कुएँ में रस्सी छोटी पड़ जाने पर उसमें जोड़ लेना । मृच्छकटिक में वर्णित एक मनोरंजक उच्छ्वास नीचे दे रहे हैं—

**यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणं द्रव्यं विशेषतोऽस्मद् विधिस्थस्य (चौरस्य) कुतः, एतेन मापयति भित्तिषु कर्म मार्गम्, एतेन मोचयति भूषण सम्प्रयोगान् । उद्घाटनं भवति यंत्र दृढे कपाटे दृष्टम्य कीट भुजङ्गैपरिबेष्टनञ्च ।**

*—मृच्छकटिक ३ /१६*

मृच्छकटिक में एक शार्बलिक नामक ब्राह्मण चोर की कथा आती है । जब उसने अँधेरी रात में चारुदत्त के घर में सेंध लगाई और नापने के लिये फीता ढूँढ़ने लगा तो मालूम हुआ कि फीता घर ही छूट गया है, तब उसने जनेऊ की सहायता से अपना प्रयोजन सिद्ध किया और कहा—"यह यज्ञोपवीत ब्राह्मण के बड़े काम की चीज है और विशेषकर मेरे जैसे चोर के लिए । क्योंकि इससे नाप कर दीवार में सेंध लगाई जा सकती है, सोती हुई स्त्रियों और बच्चों के कसे हुए आभूषण इसकी सहायता से ढीले करके निकाले जा सकते हैं । बन्द तालों को खोलने में यह खूब काम देता है । यदि कोई साँप, बिच्छू आदि काट खाय तो उसे कस देने से पीड़ा और विष से रक्षा होती है ।"

## उपवीत और द्विजत्व

**मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जि बन्धनम् ।**

अर्थात्—पहला जन्म माता के पेट से होता है और दूसरा यज्ञोपवीत धारण करने से होता है ।

**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।**

**तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनम् ॥**

"ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों द्विजाति कहलाते हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत धारण करने पर उनका दूसरा जन्म होता है ।"

**आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणां कुणुते गर्भमन्तः ।**

**त रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति, तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ॥**

*—अथर्व ११ / ३ / ५ / ३*

अर्थात्—गर्भ में बस कर माता और पिता के सम्बन्ध से मनुष्य का पहला जन्म होता है, दूसरा जन्म विद्यारूपी माता के गर्भ में आचार्य रूप पिता द्वारा गुरुकुल में उपनयन और विद्याभ्यास से होता है ।

माता के गर्भ से जो जन्म होता है वह पशु जन्म है, क्योंकि वह शरीर मात्र का जन्म है । जब मनुष्य ज्ञान क्षेत्र में प्रवेश करता है तो वह दूसरा जन्म कहलाता है । सद्गुरु, उत्तम शिक्षक की शिक्षा से विचार, विश्वास, संस्कार, स्वभाव तथा चरित्र का निर्माण होता है । यों तो उल्टी-सीधी, भली-बुरी शिक्षा प्रायः सभी बालकों को मिलती है, परन्तु जो शिक्षा धर्मानुकूल, शास्त्र-सम्मत, उद्देश्यमय एवं ब्रह्ममार्गी होती है, उसका विधिपूर्वक

पवित्रता और विश्वास के साथ प्राप्त करना द्विजत्व कहलाता है ।

इस द्विजत्व में उपवीत संस्कार के साथ बालक को प्रवेश कराया जाता है । यज्ञोपवीत द्विजत्व में प्रवेश करने का प्रमाण-पत्र है । कहा गया है कि—

**जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते ।**
**वेदपाठी भवेद् विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥**

अर्थात्— जन्म से तो मनुष्य शूद्र होता है, संस्कार (यज्ञोपवीत) हो जाने पर वह द्विज कहा जाता है । जो वेदपाठी है वह विप्र और जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है ।

यज्ञोपवीत धारण करके बालक इस विश्वास को अपनाता है कि मैंने आचार्य द्वारा दूसरा जन्म लिया है, द्विजत्व प्राप्त किया है । इस विश्वास के साथ ही विद्याध्ययन सफल होता है ।

**कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशञ्च कथ्यते ।**
**ब्राह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥**

*—मनुस्मृति २ ।१७३*

"यज्ञोपवीत होने के उपरान्त व्रत आदेश और नियमपूर्वक ब्रह्म ग्रहण (वेदाध्ययन) का अधिकार प्राप्त होता है ।"

आर्य धर्म में ऐसी परम्परा है कि द्विजत्व जिन्होंने नहीं प्राप्त किया है, उन्हें गुरुकुल में प्रवेश होने का, वेद-विद्याध्ययन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता । इसका कारण यह है कि वेद (ज्ञान) एक शक्ति है । उसे प्राप्त करके मनुष्य उसका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही प्रयोग कर सकता है । शस्त्र हाथ में धारण करने का अधिकार उसे ही दिया जाता है जो उसका पात्र होता है । बालकों, पागलों या आततायिओं को निःशस्त्र रहने का शास्त्रीय विधान है । यही बात विद्या के ऊपर भी लागू होती है । आज हम देखते हैं कि विद्या का बड़ा दुरुपयोग होता है । कितने ही वकील, विज्ञापनबाज, घासलेटी लेखक, अपनी विद्या का दुरुपयोग करके स्वल्प श्रम से धनवान बनने के प्रयत्न में समाज में अनैतिकता फैलाते हैं। बिना पढ़ा-लिखा बदमाश संसार में उतनी अनीति नहीं फैला सकता जितना कि पढ़ा-लिखा । शस्त्ररहित लुटेरा उतनी हानि नहीं कर सकता जितनी कि हथियारबन्द डाकू । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दुष्ट मनोवृत्ति के, नीच स्वभावों के लोगों का बौद्धिक निःशस्त्रीकरण करने के उद्देश्य से ऋषियों की यह परम्परा है कि केवल द्विजों को ही ज्ञानवान बनाया जाय । जिसका उद्देश्य ऊँचा है और जो जीवन को परमार्थमय, ब्रह्मपरायण बनाने की प्रतिज्ञा कर चुका है । प्रतिज्ञा का प्रत्यक्ष प्रमाण यज्ञोपवीत जिन्होंने श्रद्धापूर्वक धारण किया है, उन्हें ही महत्त्वपूर्ण ज्ञान-दान दिया जाय तो इससे उनका भी भला होगा और संसार में भी सुख-शान्ति की वृद्धि होगी । दुष्ट प्रकृति वाले लोग तो विद्या के दुरुपयोग द्वारा अपना और दूसरों का नाश ही करेंगे । इसी दृष्टि से बालकों के गुण, कर्म, स्वभाव की परख करके उनमें द्विजत्व के चिह्न हों तो उन्हें यज्ञोपवीत दिया जाता है या दिया जाना चाहिए ।

**अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम् ।**
**देवतानां पितृणां च भागो येन प्रदीयते ॥**

*—मृच्छकटिक १० । १८*

"यज्ञोपवीत मोतियों का नहीं है, स्वर्ण का नहीं है तो भी ब्राह्मणों का आभूषण है । इसके द्वारा देवता और ऋषियों का ऋण चुकाया जाता है ।"

दुनिया में मोती, सोना, चाँदी, धन-धान्य आदि का महत्त्व समझा जाता है । इन चीजों से अधिक बड़प्पन एवं गौरव प्राप्त होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य का सच्चा गौरव सच्चा सम्मान ही है । कर्त्तव्य पालन और धर्म साधन से बढ़कर आदमी का कोई बड़प्पन नहीं हो सकता । यज्ञोपवीत ब्राह्मण का आभूषण है । उसमें डोरे को आभूषण नहीं कहा गया है वरन् उन भावों को और कार्यों को आभूषण कहा गया है जिनसे तीनों ऋण चुकाये जाते हैं ।

**नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती, नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी । सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन् न ब्राह्मणः च्यवते ब्रह्मलोकात्**

*—महाभारत उद्योग पर्व, अ. ४०*

"नित्य जल का उपयोग करने वाला, नित्य यज्ञोपवीत धारण करने वाला, नित्य स्वाध्याय करने वाला, पतित के अन्न से दूर रहने वाला, सत्यवादी, गुरु-कर्म में परायण ऐसा ब्राह्मण ब्रह्मलोक से च्युत नहीं होता ।"

ब्राह्मण के लिए उपवीत का धारण करना एवं उसके उद्देश्यों के अनुसार कार्य करना आवश्यक है ।

शास्त्रों में यज्ञोपवीत की महिमा बड़े विस्तार से वर्णन की गई है । उसे प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी बताया गया है । देखिए—

**कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।**
**यज्ञोपवीतमात्रेण पलायन्ते न संशयः ॥**

—पद्मपुराण कौशल खण्ड

"करोड़ों जन्म के ज्ञान-अज्ञान में किये हुए पाप यज्ञोपवीत धारण करने से नष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ।"

**त्रिरस्यता परमा सन्ति सत्यास्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्ने ।**
**अनंते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्होरोरुचानः ॥**

—ऋग्वेद ४/७/१

"इस यज्ञोपवीत के परम श्रेष्ठ तीन लक्ष्य हैं । सत्य व्यवहार की आकांक्षा, अग्नि के समान तेजस्विता और दिव्य गुणों की पवित्रता इसके द्वारा भली प्रकार प्राप्त होती है ।"

**नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानि नयनादृते ।**
**शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ॥**

"यज्ञोपवीत होने से पहले बालक को वेद पढ़ायें, क्योंकि जब तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता, तब तक ब्राह्मण का बालक भी शूद्र समान है ।"

**तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिन्हितम् ।**
**तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥**

"यज्ञोपवीत-मेखला-धारण करने से मनुष्य का ब्रह्म जन्म होता है । उस जन्म में गायत्री माता है और आचार्य पिता है ।"

**वेद प्रदानाचार्यं पितरं परिचक्षते ।**
**नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात ॥**

"वेद पढ़ाने वाले आचार्य को पिता कहते हैं । जब बालक का यज्ञोपवीत संस्कार हो जाता है, तब उसे धार्मिक कर्मों को करने का अधिकार मिलता है, इससे पूर्व नहीं ।"

यज्ञोपवीत सबके लिए बड़ा सरल है, फिर भी उसे धारण करके आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न यदि न किया जाय तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि वे लोग पशु-स्थिति में ही पड़े रहना पसन्द करते हैं । ऐसे लोगों को विरोध द्वारा, सामाजिक तिरस्कार द्वारा सीधे रास्ते पर लाने के कटु उपायों का प्रयोग करने का भी शास्त्रकारों को आदेश देना पड़ा है ।

## यज्ञोपवीत न धारण करने का दण्ड

जो लोग आलस्य, प्रमाद या अज्ञानवश उपवीत धारण नहीं करते । 'हम से जनेऊ सधेगा नहीं, ऐसी बे सिर-पैर की आशंकाएँ और दलीलें गढ़ कर, इस महान् धर्म धारणा से बचते हैं उनकी मूर्खता के प्रति शास्त्रकारों ने प्रातः स्मरणीय ऋषियों का अत्यन्त क्रोध प्रदर्शित किया है, उनकी बुरे से बुरे शब्दों में निन्दा की है और स्पष्ट शब्दों में उनका सामाजिक वहिष्कार करने का आदेश दिया है । ईश्वर ने यज्ञोपवीत को सबके लिए बड़ा सरल बनाया है, फिर भी उसे धारण करके आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न यदि नहीं किया जाता तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि वे लोग पशु स्थिति में ही पड़े रहना पसन्द करते हैं । ऐसे लोगों को विरोध द्वारा, सामाजिक तिरस्कार द्वारा सीधे रास्ते पर लाने के कटु उपायों का प्रयोग करने का भी शास्त्रकारों को आदेश देना पड़ा है । उनको शूद्र कह कर एक प्रकार की गाली दी गई है और ऐसे लोगों के साथ दुर्व्यवहार करके, क्रोध और घृणा प्रदर्शित करके, दण्ड देकर भी ऐसा प्रयत्न करने के लिए कहा गया है ताकि वे अपनी भूल स्वीकार करके जीवन का सदुपयोग करने के लिए, प्रतिज्ञामय जीवन बिताने के लिए सदुपयोग धारण करने के लिए तैयार हो जायें । नीचे कुछ ऐसे प्रमाण दिये जाते हैं, जिनमें यज्ञोपवीत न पहनने वालों के सामाजिक वहिष्कार का विधान है । शास्त्रों में इस सन्दर्भ में अनेकों उल्लेख मिलते हैं । यथा—

**शिशुपनयनं ये तु न कुर्वन्ति द्विजातयः ।**
**सोपाध्यायास्तु ते सर्वे ध्रुवं निरयगामिनः ॥**

—नारद संहिता

"जो द्विजाति अपने बालकों का जनेऊ नहीं करते वे अपने पुरोहित के साथ निश्चय नरक में जाते हैं ।"

**यज्ञोपवीत संस्कारं बिना ये हि द्विजातयः ।**
**पादोदकं सुरा तुल्यं कर्पटं तुलसीदलम् ॥**
**काकविष्ठा समं तस्य पिंड दानं पितृर्मुखे ।**
**गोमासं भोजनं तस्य जलं शूकररक्तवत् ॥**

—नारद संहिता

"यज्ञोपवीत रहित द्विज के हाथ का दिया हुआ चरणामृत मदिरा के तुल्य और तुलसी पत्र कर्पट के समान

है । उसका दिया हुआ पिण्ड दान उसके पिता के मुख में काक विष्ठा के समान है । उसके यहाँ भोजन करना गोमांस के समान और जल पीना शूकर का रक्त पीने के समान है ।"

**यज्ञोपवीतं हीनेन देवि श्रणु महेश्वरी ।**
**अन्नं विष्ठा समंतस्य जलं मूत्रसमं स्मृतम् ॥**
**तत्कृतं तस्य वा श्राद्धं सर्वे संयात्यधोगतिम् ॥**

*—मत्स्य सूक्त ।*

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि "हे देवी ! सुनो, यज्ञोपवीत न पहनने वाले द्विज का अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान है । उसका दिया हुआ श्राद्ध सबको अधोगति में ले जाता है ।"

**यज्ञोपवीत-संस्कार बिना ये हि द्विजातयः,**
**वेदमन्त्रा न विरतं जप तप कृत बुद्धयः ।**
**तेषां तु स जपो व्यर्थो विपरीतभलो भवेत्,**
**असंस्कृतेन नो जप्या अतो मंत्रा द्विजन्मना ॥**

*—वेदान्त रामायण*

"जो द्विजाति जनेऊ संस्कार किए बिना मन्दबुद्धि से मन्त्र जपते और पूजा-पाठादि करते हैं, उनका सब निष्फल है और फल के बदले हानि होती है, अतः बिना जनेऊ संस्कार हुए द्विजातियों को मन्त्रादि का जप नहीं करना चाहिए ।"

वस्तुतः आदिकाल से ही भारतीय धर्म के आचार्यों की आन्तरिक भावना रही है कि भारतमाता के सुपुत्र पाशविक जीवन से, आहार निद्रा, भय, मैथुन से ऊँचे उठकर ऐसा सैद्धान्तिक जीवन जियें जो उनके गौरव के उपयुक्त हो, जो व्यष्टि और समष्टि में सुख-शान्ति का अविर्भाव करता हो, जो आत्मा को परमात्मा तक पहुँचा कर जीवन लक्ष्य की पूर्ति करता हो । इस पशुत्व से देवत्व में परिणत होने की प्रक्रिया को उन्होंने प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी के लिए आवश्यक बताया है और आदेश किया है कि—'जन्म से शूद्र उत्पन्न होने वाले हे मनुष्यो ! तुम संस्कार से द्विज बनो !' पशु योनि से मनुष्य योनि में आना एक बहुत बड़ा सौभाग्य है, पर इससे भी बड़ा सौभाग्य यह है कि अपनी पशु मनोभूमि को देव मनोभूमि में बदल दिया जाय, तभी सच्चे अर्थों में मनुष्य योनि का मिलना कहा जायेगा । इस प्रकार का जन्म धर्म द्वारा होता है, संस्कार द्वारा होता है, आदर्श जीवन का व्रत धारण करने से होता है । यही व्रत धारण 'द्विज' बनना है, यही यज्ञोपवीत धारण करना है । जो इस मार्ग को नहीं अपनाता, जिसकी इस ओर रुचि नहीं है, वह पशु तुल्य है, ऐसे इन्द्रियपरायण, लोभ-मोह में ग्रस्त, अज्ञानान्धकार में भटकने वाले प्राणियों को हेय दृष्टि से देखा गया है । जिनको आदर्शों से प्रेम नहीं, उनके लिए वे सभी धर्माधिकार, सामाजिक अधिकार, नागरिक अधिकार हिन्दू धर्म ने छीन लिये हैं और उन्हें ही उपरोक्त श्लोकों में दण्डित किया और अस्पर्श्य अन्त्यज कहकर तिरष्कृत किया है । यह अस्पर्श्य अन्त्यज किसी वंश विशेष में उत्पन्न होने के कारण नहीं वरन् कुबुद्धि के कारण होते हैं । जन्म का ब्राह्मण भी यदि कुबुद्धि ग्रस्त है, पशुता प्रिय है तो वह भी इसी बहिष्कृत श्रेणी में आवेगा । इसके विपरीत यदि किसी छोटी जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति उच्च आदर्शों से प्रभावित है, उस मार्ग पर चलने का व्रत लेता है तो वह द्विज के अतिरिक्त और कौन होगा ?

## ब्रह्मसूत्र का प्रयोजन

यज्ञोपवीत का वास्तविक प्रयोजन मन पर शुभ संस्कार जमाना है । आत्मा को ब्रह्मपरायण करने के लिए अनेक प्रकार के पूजन, साधन, व्रत, अनुष्ठान विभिन्न धर्मों में बताये गये हैं । हिन्दू धर्म के ऐसे ही प्रधान साधनों में एक यज्ञोपवीत है । ब्रह्मसूत्र धारण करके लोग ब्रह्म तत्त्व में परायण हों इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्रह्मसूत्र है । यदि उससे प्रेरणा ग्रहण न की जावे तो वह गले में डोरा बाँधने से अधिक कुछ नहीं ।

उपनिषदों में ज्ञानरूपी उपवीत धारण करने पर अधिक जोर दिया गया है । सूत्र धारण का उद्देश्य भी ब्रह्मपरायणता में प्रवृत्ति करना है । यह प्रवृत्ति ही आत्म-लाभ कराती है ।

**येन सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणि गणा इव ।**
**तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगतत्वञ्च दर्शिवान् ॥**
**चहिः सूत्रं त्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममास्थितः ।**
**ब्रह्मभावमयंसूत्रं धारयेद्यः स चेतनः ॥**
**धारणत्तस्य सूत्रस्य नोच्छिष्टो ना शुचिर्भवेत् ।**
**सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञान यज्ञोपवीतिनाम् ॥**
**ते वै सूत्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः ।**
**ज्ञान शिखिनो ज्ञाननिष्ठा ज्ञान यज्ञोपवीतिनः ॥**
**ज्ञानमेव परं निष्ठा पवित्रं ज्ञानमुत्तमस् ।**
**अग्निरिव शिखानान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा ॥**
**स शिखीत्युच्यते विद्वानितरे केशधारिणः ।**

*—ब्रह्मोपनिषद्*

अर्थात्—जिस ब्रह्मरूपी सूत्र में यह सब विश्व, मणियों के समान पिरोया हुआ है, उस सूत्र-यज्ञोपवीत को तत्त्वदर्शियों को धारण करना चाहिए । बाहरी सूत्र की ओर अधिक ध्यान न देकर जो ब्रह्मभावरूपी सूत्र को धारण करता है वह चैतन्य है । उस ज्ञानरूपी आध्यात्मिक यज्ञोपवीत को धारण करना चाहिए जो कभी अपवित्र नहीं होता । जिनके ज्ञानरूपी शिखा है और निष्ठारूपी यज्ञोपवीत है वे ही सच्चे शिखाधारी और सच्चे यज्ञोपवीतधारी हैं । तप के समान दूसरी शिखा नहीं है । जिसके ज्ञानमयी शिखा है उसे ही विद्वान् लोग शिखाधारी कहते हैं, अन्य तो बाल रखाने वाले मात्र हैं ।

सिख सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थों में ऐसा ही जनेऊ धारण करने पर जोर दिया गया है । केवल मात्र बाहरी जनेऊ से ही काम नहीं चलता । आत्मिक यज्ञोपवीत को धारण करने में ही वास्तविक कल्याण है । मानसिक सद्गुणों का सूत्र धारण किये बिना केवल बाह्य उपकरण मात्र से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, परन्तु आध्यात्मिक साधना करने वाले व्यक्ति बिना बाह्य उपकरण के भी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं ।

**दया कपाह संतोख सूत, जत गंठी सत बट्ट ।**
**एह जनेऊ जीउ का, हईता पांडे धत्त ॥**
**वां एह तुटै ना मल लगै ना इहु जलै न जाय ।**
**धन्य सो मानस नानका, जो गल चल्ले पाय ॥**

*—आदि ग्रन्थ आसाकीर मं.१*

अर्थात्—हे पण्डित ! दयारूपी कपास का सन्तोषरूपी सूत बनावे और सत्य की ऐंठ देकर जत (इन्द्रिय निग्रह) की गाँठ लगावे । जीव को यदि ऐसा यज्ञोपवीत आपके पास है तो पहनाओ । इस प्रकार का यज्ञोपवीत न तो टूट सकता है और न मलिन हो सकता है, न जल सकता है, न विनष्ट हो सकता है । वह मनुष्य धन्य है जो ऐसा यज्ञोपवीत गले में पहनता है ।

**पत बिन पूजा, सत बिन संजम, जत बिन काहे जनेऊ ।**

*—राग रामकली, महल्ला अष्टपदी १ /५*

अर्थात्—विश्वास के बिना पूजा, सत्य के बिना संयम और इन्द्रिय-निग्रह के बिना जनेऊ का क्या महत्त्व है ।

२-अर्थात्—जनेऊ का महत्त्व तभी है जब उसके साथ-साथ, विश्वास, सत्य, संयम आदि आत्मिक गुण भी हों ।

जो साधक मनोसंयम की पूर्णता तक पहुँच जाते हैं उनके लिए कर्मकाण्डों का प्रयोजन शेष नहीं रह जाता । इसीलिये चतुर्थ आश्रम में जाने पर संन्यासी लोग शिखा, सूत्र, अग्निहोत्र आदि का परित्याग कर देते हैं ।

ऐसी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त एक महात्मा अपने संध्या-वन्दन न करने का कारण बताते हुए कहते हैं कि—

**हृदाकाशेचिदादित्यः सर्वदैव प्रकाशते ।**
**नास्तमेति न चोदेति कथं संध्यामुपास्महे ॥**

"हृदय आकाश में सदा ज्ञानरूपी सूर्य प्रकाशित रहता है । यह सूर्य कभी अस्त नहीं होता, न उदय होता है, अतएव संध्या काल ही नहीं आता । फिर संध्या वन्दन किस समय करें ?"

**मृता मोहमयी माता जातो ज्ञानमयः सुतः ।**
**पातकं सूतकं नित्य कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥**

"मोहरूपी माता मर गई है और ज्ञानरूपी पुत्र पैदा हुआ है । इसलिए सदा सूतक और पातक लगे रहते हैं, ऐसी दशा में संध्या-वन्दन किस प्रकार करें ?"

आरम्भिक अवस्था में सहायक साधनों की आवश्यकता अनिवार्य है । जैसे शुरू के विद्यार्थी के लिए पुस्तक, कापी, पट्टी, खड़िया आदि नितान्त आवश्यक हैं, इनके बिना उसकी शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकती । परन्तु कालान्तर में वही बालक जब प्रोफेसर हो जाता है तो फिर खड़िया, पट्टी आदि की जरूरत नहीं होती । वह शिक्षा उसे पूर्णरूप में हृदयंगम हो जाती है । इसी प्रकार आत्म-साधन में सफलता प्राप्त कर लेने वाले संन्यासी को भी शिखा, सूत्र की आवश्यकता नहीं होती ।

## यज्ञोपवीत के तीन लड़, नौ तार और ९६ चौवे

**त्रिरस्या परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः**
**अनंते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्होरोरुचानः**

*ऋग्वेद ४/७/१*

"इस उपवीत के तीनों तार महान् हैं । उससे सत्य, तेजस्वी और पवित्र व्यवहार को ग्रहण करो । इसके मध्य में (ब्रह्म ग्रन्थि) अनन्त परमात्मा की शुचिता, तेजस्विता और श्रेष्ठता प्रकाशवान् है । यह यज्ञोपवीत भली प्रकार प्राप्त हो ।"

**जायमानो हवै ब्रह्मस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्य्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ।**

*तै. सं. ६/३/१०/५*

"तीन सूत्रों से तीन ऋणों का बोध होता है । ब्रह्मचर्य से ऋषि ऋण, यज्ञ से देव ऋण और प्रजापालन से पितृ ऋण चुकाया जाता है ।"

### नौ लड़ें क्यों होती हैं ?

**यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रेण नवतान्तकम् ।**
**देवतास्तत्र वक्ष्यामि अनुषूर्वेण याः स्मृताः ।**
**ओंकारः प्रथमे तन्तौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च ।**
**तृतीयेनागादैवत्यं चतुर्थे सोमदेवता ।**
**पच्चमे पितृदैवत्यं षष्ठे चैव प्रजापतिः ।**
**सप्तमे मारुतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च**
**सर्वे देवास्तु नवम इत्येतास्तन्तु देवताः ।**

*—सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र (परिशिष्ट)*

अर्थात्—यज्ञोपवीत के ९ सूत्रों में ९ देवता वास करते हैं—(१) ओंकार-ब्रह्म (२) अग्नि-तेज (३) अनन्त-धैर्य (४) चन्द्र-शीतल-प्रकाश (५) पितृगण-स्नेह (६) प्रजापति-प्रजापालन (७) वायु-स्वच्छता (८) सूर्य-प्रताप (९) सब देवता-समदर्शन ।

उन नौ देवताओं को—नौ गुणों को—धारण करना ही नौ तार का अभिप्राय है । ब्रह्म परायणता, तेजस्विता, धैर्य, नम्रता, दया, परोपकार, स्वच्छता एवं शक्ति सम्पन्नता यह नौ गुण उपरोक्त नौ देवताओं के हैं । नव-सूत्री उपवीत धारण करने वाले को इन नौ गुणों को अपनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

**स्ययादेवकण शरासनमिदं सुव्यक्त मुर्वीभुजान् ।**
**अस्माकं भक्तो यतो नव गुणं यज्ञोपवीतं बलम् ॥**

"भगवान् राम ने परशुराम जी से कहा—हमारे पास तो शरासन का केवल एक ही गुण है, परन्तु आपके पास तो नवगुण यज्ञोपवीत का बल है । फिर हीन बल होने के कारण हम आपसे भला संग्राम किस प्रकार कर सकते हैं ।"

नौ गुणों का बोध कराने वाले भी नौ सूत्र हैं । 'धृतिः क्षमा दमोस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।' इस श्लोक में (१) धृति (२) क्षमा (३) दम (४) अस्तेय (५) शौच (६) इन्द्रिय निग्रह (७) धी (८) विद्या (९) सत्य तथा (१०) अक्रोध यह दस लक्षण धर्म के बताये हैं । इनमें दम और इन्द्रिय-निग्रह लगभग एक ही बात है, बहुत थोड़ा अन्तर है । इसलिए कई शास्त्रकार इन्हें नौ लक्षण ही बताते हैं । यही मनुष्य के परम पुनीत नौ गुण कहे जाते हैं । इन नौ गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले यज्ञोपवीत के नौ तार हैं । जनेऊ पहनने वाले का कर्त्तव्य है कि नौ तारों के सूत्रों के वास्तविक भेद उन नौ गुणों को भी अपने में धारण करे ।

**ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणी कृतम् ।**
**कृतो ग्रन्थिस्त्रिनेत्रेण गायत्र्या चाभिमंत्रितम् ॥**

*—सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र परिशिष्ट ।*

अर्थात्—ब्रह्माजी ने वेदत्रयी से तीन तन्तु का एक सूत्र बनाया, विष्णु ने कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों काण्डों से तिगुना किया और शिवजी ने गायत्री से अभिमन्त्रित कर के ब्रह्मगाँठ दी । इस प्रकार यज्ञोपवीत नौ तार का बन गया ।

इस प्रकार ऋग्, यजु, साम तीन वेदों का ज्ञान, कर्म, उपासना तथा जन्म, पालन एवं मृत्यु का आभास यज्ञोपवीत से मिलता है । तीनों देवताओं के त्रिविध कर्मों से नौ सूत का यज्ञोपवीत बना है ।

## ९६ चौवे की लम्बाई

यज्ञोपवीत की लम्बाई ९६ चौवे होती है (चार अंगुलों की लम्बाई को एक चौवा कहते हैं) इतनी ही लम्बाई क्यों रखी गई ? उसके कई कारण हैं,

**चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी ।**
**तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत् ॥**

अर्थात्—गायत्री २४ अक्षर की है । वेद ४ हैं । चौबीस का चौगुना ९६ होता है । यह भी ९६ चप्पों का हेतु है । वेद और गायत्री के अभिमत को स्वीकार करना ९६ चौवे लगाने का अभिप्राय है ।

**तिथिर्वारंनक्षत्रं च तत्ववेदगुणान्वितम् ।**
**कालत्रयं च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि पणिवधम् ॥**

*—सामवेदी छान्दोग्य सूत्र*

(२) तिथि २५, वार ७, नक्षत्र २७, तत्त्व २५, वेद ४, गुण ३, काल ३, मास १२ इन सबका जोड़ ९६ होता है ।

ब्रह्म पुरुष के शरीर में सूत्रात्मा प्राण का ९६ वस्तु रूप कन्धे से कटि पर्यन्त यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है, ऐसा भाव यज्ञोपवीत धारण करने वाले को मन में रखना चाहिये । मैं समय का, विश्व का, सृष्टि का तथा धर्म का एक घटक हूँ । ब्रह्म पुरुष को सूत्र रूप से अपने में धारण किये हुए हूँ । मैं विश्व में ओत-प्रोत हूँ, विश्व मुझमें समाया हुआ है, विश्व की समस्याएँ मेरी समस्याएँ हैं, विश्व के हित में मेरा हित है । इन विचारों को अपनाकर मनुष्य तुच्छ स्वार्थों को तिलांजलि देकर परमार्थी बने, यह भी ९६ चौवों का अभिप्राय है ।

(३) चारों वेदों में १ लाख श्रुतियाँ हैं । इनमें ८० हजार कर्मकाण्ड, १६ हजार उपासना काण्ड और शेष ४ हजार ज्ञान काण्ड की हैं । इनमें से कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड गृहस्थों, ब्रह्मचारियों के लिए तथा ज्ञान काण्ड संन्यासियों के लिए है । कर्मकाण्ड की ८० हजार और उपासना की १६ हजार मिलाकर ९६ हजार होती हैं । एक चप्पे में एक हजार श्रुतियों का प्रतिनिधित्व लिया गया है और ९६ चप्पे का यज्ञोपवीत बनाया गया है । इसका तात्पर्य इतनी श्रुतियों का धारण करना है । संन्यासी यदि यज्ञोपवीत पहनते तो उनका १०० चौवे का होता, पर शास्त्र में संन्यासी को उपवीत त्यागने का आदेश है, इसलिये वे धारण नहीं करते ।

(४) सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार मनुष्य अपनी अँगुलियों से ८४ से लगाकर १०८ अंगुल तक का होता है, ८४ और १०८ के बीच का मध्यान्तर ९६ है । साधारण औसतन, ९६ अंगुल का मनुष्य शरीर मान कर जनेऊ में ९६ चप्पे रखे गये हैं । शरीर को, जीवन को, ब्रह्ममय बनाने का बोझ कन्धे पर धारण करना, यह भी ९६ चप्पे के यज्ञोपवीत का अभिप्राय है ।

(५) मनुष्य की जीवन-आयु प्रायः १०१ वर्ष मानी गई है । ५ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत होता है । शेष ९६ वर्ष कर्त्तव्य के बन्धनों में बँधकर व्यतीत करने चाहिए, यह भी ९६ चप्पे का भावार्थ है ।

## यज्ञोपवीत की तीन लड़ियाँ

यज्ञोपवीत में तीन लड़ें होती हैं । यह लड़ें हमारे लिए तीन महान् संकेत करती हैं । पुस्तकें मूक होती हैं पर उनके गर्भ में विचारों का भारी भण्डार जमा रहता है । मूर्तियाँ, प्रतिमाएँ, तस्वीरें, समाधियाँ, स्मारक, ऐतिहासिक भूमियाँ यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से मौन होती हैं, निष्प्राण होने के कारण वे अपनी कोई बात किसी से नहीं कह सकतीं तो भी विचारवान् व्यक्ति जानते हैं कि उनमें कितने भारी सन्देश भरे होते हैं और यह निर्जीव पदार्थ मानव अन्तःकरण पर अपनी छाप इतनी डालते हैं जितनी कि कोई सजीव प्राणी भी कठिनाई से डाल पाता है ।

महात्मा गाँधी की समाधि दिल्ली में राजघाट पर है, उस स्थान पर पहुँचने पर भावनाशील अन्तःकरणों में महात्मा गाँधी की आत्मा संभाषण-सा करती है । जलियाँवाला बाग में पैर रखते ही उन स्वाधीनता की बलिवेदी पर शहीद हुए अमर नर-नारियों की याद में आँखें सजल हो जाती हैं । एक मुसलमान से पूछिए कि मक्का शरीफ जाकर कितना उल्लास अनुभव करता है । रामकृष्ण के उपासकों से पूछिए कि मथुरा और अयोध्या में जाने पर उन्हें कितनी मूल्यवान प्रेरणा, भावना और तृप्ति प्राप्त होती है । चित्तौड़ की रानियों का चिता-स्थल, हल्दीघाटी अपना एक विशेष सन्देश देते हैं । पुनीत नदियाँ, तीर्थ, मन्दिर आदि के समीप जाते हैं तो वे अपनी मूक भाषा में हमसे वार्त्तालाप करते हैं और अपना एक विशेष सन्देश देते हैं । यह सब यद्यपि प्रत्यक्षतः निर्जीव हैं तो भी इनके पीछे एक जीवित तथ्य जुड़ा रहता है जिसके कारण वे मूक होते हुए भी वाक्पटु, प्रभावशाली एवं प्रामाणिक व्याख्याता की भाँति हमसे बहुत कुछ कहते हैं ।

यज्ञोपवीत भी एक ऐसा ही मूक व्याख्याता गुरु है जो प्रतिक्षण हमारे साथ रहता है और हर घड़ी बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण उपदेश देता रहता है । उसमें तीन लड़ें हैं यह विश्व-व्यापी तीन कर्त्तव्यों की ओर सदैव हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं और बताती हैं कि आदर्श जीवन एक प्रकार का त्रिकोण है । इसमें तीन रेखाएँ हैं, इसमें तीन कोण हैं जिनका ठीक प्रकार सन्तुलन रखने से ही सुन्दरता रहेगी, यदि यह सन्तुलन बिगड़ जाता है तो वह त्रिकोण बड़ा, भद्दा, टेढ़ा-मेढ़ा कुरूप हो जायेगा । इसलिए यज्ञोपवीत की तीन लड़ें उन तीन तथ्यों की ओर हर घड़ी याद दिलाती हैं जिनके ऊपर सौन्दर्य का सारा आधार रखा हुआ है । आगे अब उन महत्त्वपूर्ण त्रिकोणों की चर्चा की जाती है ।

### (१) कन्धे पर तीन ऋण

हर मनुष्य के ऊपर तीन ऋण होते हैं (१) देव ऋण, (२) ऋषि ऋण, (३) पितृ ऋण । इन तीनों से उऋण होना हमारा कर्त्तव्य है । देव उन्हें कहते हैं जो देते हैं । संसार

की जीवित और स्वर्गस्थ अनेक आत्माओं ने मनुष्य जाति को दिव्य प्रकाश दिया है । अपने आपको कष्टों में डालकर दूसरों को दिव्य मार्ग पर ले जाने के लिए उन्होंने अपनी समस्त शक्तियों को निछावर किया है । ऐसे आदर्शवादी, लोक-सेवी महापुरुषों ने अपने आपको होम कर यदि सत्पथ का उदाहरण न रखा होता तो केवल कथन मात्र से, उपदेश मात्र से जनसाधारण को उत्तम मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा न मिलती । देव पुरुष इस विश्व की श्रेष्ठतम सम्पत्ति है । उनकी परम्परा को यथासम्भव हमें भी कायम रखना चाहिए । जितना बन पड़े उतना प्रयत्न करना चाहिए कि हमारे कार्य भी अधिक मात्रा में दिव्य हों। दूसरों को दिव्य बनाने के लिए एकमात्र उपाय उनके सामने उदाहरण पेश करना है । यदि हम अपने कार्यों द्वारा कुछ ऐसे उदाहरण उपस्थित करते हैं जिनसे दूसरों को दिव्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले तो यह कार्य उस महान् दैवी परम्परा को कायम रखने का होगा और यही देव ऋण चुकाना होगा । देवता उन्हें भी कहते हैं जो अदृश्य रूप से किसी अदृश्य स्थान पर रहते हैं और हमें श्रेष्ठ कार्यों में अदृश्य सहायता पहुँचाते हैं । साकार और निराकार, अदृश्य और जीवित दोनों ही देवताओं की कार्य प्रणाली बिल्कुल एक है । वे अपनी शक्तियाँ, दूसरों के हित में पूर्ण निःस्वार्थ भाव से, इस प्रयोजन से व्यय करते हैं कि संसार में दिव्य तत्त्वों की, सात्विक वृत्तियों की वृद्धि हो । देव ऋण चुकाने के लिए जितना हो सके हमें भी यह कार्य पद्धति अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करनी चाहिए।

ऋषि वह हैं जो उत्तम विचारधारा का निर्माण और प्रकाश करते हैं । देवता ऋषियों में अन्तर यही है कि ऋषियों का कार्य अधिकांश में लोगों के मस्तिष्क में अनेक तर्क और तथ्यों द्वारा सद्ज्ञान का आरोपण करना होता है। वे जानते हैं कि पहला काम मनोभूमियों को जोत कर उर्वरा बनाना है, ऐसी भूमि में ही दिव्यत्व के बीज जम सकते हैं और सत्कार्यों के पौधे उग कर फलफूल सकते हैं । जिनकी मनोभूमि ऊसर है उसमें किसी अच्छे अनुकरण की भी इच्छा नहीं होती । इसलिए वे विचारों का निर्माण करते हैं ताकि उपयुक्त मनोभूमि में समय पाकर अच्छे बीज जम सकें । ऋषि हलवाहा है और देवता बीज बोने वाला । वैसे दोनों ही एक कृषि कार्य को अपनी-अपनी मर्यादा में करते हैं । ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने विचारों का परिमार्जन करें । स्वाध्याय, सत्संग और मनन द्वारा अपनी मनोभूमि को ऋषि-मनोभूमि बनावें तथा उसी प्रकार की दूसरों की मनोभूमियाँ बनाने के लिए तन-मन-धन से प्रयत्न करें । यदि हम स्वयं इतना नहीं कर पाते हैं तो जो व्यक्ति जनता में श्रेष्ठ, जन-कल्याणकारी विचारधाराएँ फैलाने में लगे हुए हैं उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए समय, धन या सहानुभूति देकर सहायता करें । अपने में तथा दूसरों की सुबुद्धि बढ़ाने के लिए जितना कुछ किया जा सके वह ऋषि-ऋण को उतारना है ।

पितृ कहते हैं पूर्वजों को । हमारी पहली पीढ़ियाँ सब प्रकार शानदार थीं, उनका गौरव संसार-भर में सुविख्यात था, क्या हम उनकी गौरव-गरिमा को डुबा देंगे ? हम इतने तुच्छ, क्षुद्र, नीच, अकर्मण्य बन कर यह कहलाते हुए लज्जा अनुभव न करेंगे कि—हम उन ऋषियों, योद्धाओं और महापुरुषों की कैसी कुपुत्र सन्तान हैं ? हमारे पूर्वज अपनी उज्ज्वल कीर्ति की विरासत हमारे लिए छोड़ गये हैं, उसकी रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य है । इस कर्त्तव्य को पालन किए बिना उस महान् पितृ ऋणा से उऋणा नहीं हुआ जा सकता ।

पूर्वजों ने वर्तमान पीढ़ी का अपनी स्थिति के अनुसार निर्माण किया । हमारे हाथ में अगली पीढ़ी का निर्माण करना है । जो स्त्री, बच्चे, आश्रित या अनुयायी हमसे प्रभाव ग्रहण करते हैं उन्हें ऐसा पथ-प्रदर्शन प्रदान किया जाना चाहिए जिससे वे शरीर, मन और आत्मा की दृष्टि से वैसे ही सुविकसित बन सकें जैसे कि हमारे पूर्वज थे । यदि भावी पीढ़ियाँ बिगड़ेंगी, यदि आगामी सन्तति पतनोन्मुख, निर्बल और कुकर्मी होगी तो इसका पाप आज के उन लोगों को मिलेगा जिनके हाथ में दूसरों का निर्माण करने की जिम्मेदारी है । हममें से कोई व्यक्ति कितना ही स्वल्प साधन वाला क्यों न हो पर कम से कम अपने कुटुम्बियों में से कई छोटों पर वह अपना प्रभाव अवश्य डालता है । यदि वह चाहे तो उनका बहुत कुछ निर्माण तो अपने प्रयत्नों द्वारा ही कर सकता है । इसे ठीक प्रकार करना ही पितृ ऋण से उऋण होना है । अपने बालकों, बालिकाओं, स्त्रियों, कुटुम्बियों या जिनके जीवन निर्माण में अपना हाथ हो उन्हें उत्तम स्वास्थ्य, बुद्धि और चरित्र का बना कर संसार के सामने उपस्थित करें तो यह उन पितरों के ऋण से ऋण होना होगा जो आज इस लोक में होते हुए भी स्वर्ग सुख भोग रहे होंगे ।

इस प्रकार देव-ऋण, ऋषि-ऋण, और पितृ-ऋण से छुटकारा पाकर मुक्ति लाभ करने का सन्देश यज्ञोपवीत हमें देता है । वह कहता है कि जब तक इन तीन बन्धनों

से—ऋणें से—छुटकारा नहीं पाओगे तब तक बन्धन में ही बँधे रहोगे । कर्ज चुकाने वाला ही छुटकारा पा सकता है वही मुक्ति का अधिकारी है ।

## (२) दुःखों के तीन कारणों का विनाश

संसार में अनेक दुःख हैं । लोग विविध प्रकार के दुःखों से ग्रसित देखे जाते हैं । रोग, पीड़ा, हानि, अपमान, आक्रमण, शोषण, दारिद्र, मृत्यु, विछोह, चिन्ता, भय, शोक आदि असंख्यों प्रकार की यातनाएँ मनुष्य सहते हैं, कोई विरला ही मनुष्य ऐसा होगा जिसे आये दिन किसी न किसी प्रकार का दुःख न सहना पड़ता हो । इन सब प्रकार के दुःखों के तीन कारण हैं—(१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव । मूर्खता, कमजोरी और दरिद्रता के कारण ही नाना विधि व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं । इन तीनों के निवारण के लिए कार्य करते रहना एक प्रकार की ठोस लोक-सेवा है ।

भारतीय वर्ण-व्यवस्था का उद्देश्य, इन तीन दुःख हेतुओं के विनाश के लिए अपनी रुचि, योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार कार्य करना है । जो मनुष्य अज्ञान के विनाश में जुटा हुआ है, वह ब्राह्मण कहलाता है । जो अशक्ति, कमजोरी, दुर्बलता को मिटा कर दूसरों को शारीरिक, मानसिक दृष्टि से बलवान् बनाने में लगा हुआ है, निर्बलों को अपनी शक्ति सहायता देकर उन्हें अशक्तिजन्य कष्टों से बचाता है, वह क्षत्रिय है । जिसने जनता की दरिद्रता, अभावग्रस्तता दूर करके उन्हें सुविधा देना, आसानी से जीवनोपयोगी सामग्री सुलभ कराना अपना कार्यक्रम बना लिया है, वह वैश्य है । तीनों ही अपने ढङ्ग के लोक-सेवी हैं, आदर्शवादी हैं । तीनों ही कार्य समान रूप में उपयोगी आवश्यक एवं महत्त्व के हैं, किसी में छोटाई-बड़ाई नहीं, किसी का पुण्य कम नहीं, किसी का गौरव कम नहीं । इन तीन में से किसी एक को प्रधान कार्यक्रम के रूप से चुनना, रुचि, योग्यता एवं परिस्थितियों पर निर्भर होता है । इसलिए वर्ण-व्यवस्था का निर्माण गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर अवलम्बित है । एक कार्यक्रम को प्रधान रूप से अपना लेने का अर्थ दूसरे कार्यों की उपेक्षा कर देना नहीं है, पर समय और स्थिति की आवश्यकतानुसार अपनी रुचि के अनुकूल प्रधान कार्य-प्रणाली को स्थगित करके अन्य दो कार्यों में से किसी को अपनाया जा सकता है । वैसे इन तीनों ही दुःख हेतुओं का निवारण करना प्रत्येक आदर्शवादी का कर्त्तव्य है । पर प्रधान कार्य एक ही हो सकता है, शेष दो गौण रहेंगे । जिस दिशा में प्रधानता होगी वह उसका वर्ण माना जायेगा ।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले द्विज को यह अनुभव करना चाहिए कि जनेऊ की तीन लड़ें उससे कहती हैं कि—"दुखियों की सेवा करने में ही सुख का स्रोत छिपा हुआ है । जनता नाना प्रकार के दुःखों से संत्रस्त हो रही है, उसे सुखी बनाने के लिए इन तीन दुःख हेतुओं, महाअसुरों से संघर्ष करो । यह धर्म-युद्ध द्विज का लक्षण है । इसमें प्रवृत्त होने वाले के लिए उभय भाँति कल्याण है—"हतोवा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ससे महीम्" ।

## (३) त्रिविध तत्वज्ञान की प्राप्ति

समस्त विश्व के तीन आधार हैं—(१) ईश्वर, (२) जीव, (३) प्रकृति । इन तीनों के कार्य और उद्देश्य को भली प्रकार समझ लेना चाहिए । इनका तत्वज्ञान तीन शब्दों में स्पष्ट कर दिया गया है । "सच्चिदानन्द" शब्द एक ऐसा सूत्र है जिसमें सब कुछ बता दिया गया है । सत्+चित्+आनन्द इन तीन शब्दों से मिल कर 'सच्चिदानन्द' बनता है । इन्हीं शब्दों में ईश्वर, जीव, प्रकृति के प्रयोजनों का निरूपण है । ईश्वर सत् है । सत् से, सतोगुण से—ईश्वर की प्राप्ति होती है, ब्रह्मानन्द, स्वर्ग, मुक्ति, निर्वाण आदि के सुख उपलब्ध होते हैं । परोपकार, सेवा, पुण्य, दया, लोक-हित, त्याग, प्रेम, करुणा, क्षमा, दान जैसी सात्विक वृत्तियों की जितनी अधिकता हमारे अन्तःकरण में होती जायेगी, उतनी ही ईश्वरीय शक्ति बढ़ती जायेगी । इस वृद्धि के साथ-साथ देवत्व की प्राप्ति होती चलती है ।

'चित्त' शब्द का अर्थ है चैतन्यता । जीव का विकास उसी गति से होगा जिस गति से प्राणी में चैतन्यता बढ़ेगी। उत्साह, स्फूर्ति, चतुरता, क्रिया कुशलता, जागरूकता, निरापदता, लगन, धुन, श्रमपरायणता, साहस, दृढ़ता, बुद्धिमत्ता—ये ही चैतन्यता के लक्षण हैं । इसके विपरीत प्रसाद, अकर्मण्यता, निराशा, निरुत्साह, दीर्घसूत्रता से जो व्यक्ति जितना ही घिरा हुआ है वह उतना ही नीचे दर्जे का जीव है । यदि हमें अपनी आत्मा का विकास करना है, अपने जीव को ऊँचा उठाना है, अपने-अपने प्राप्त को सुहृढ़ बनाना है तो चैतन्यता का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए। जीव का स्वभाव चित् है,

वह तभी आनन्दित रह सकता है जब चैतन्य रहे । जो जितना ही अचेतन, आलसी रहेगा, उसका जीवन उतना ही मलिन और दुःखी रहेगा । इसलिये चैतन्यता को जागृत करते चलना चाहिये ।

आनन्द प्रकृति का गुण है । संसार के जितने भी पदार्थ हैं, आनन्दमय हैं । हमें आनन्द देने के लिए उन्हें ईश्वर ने बनाया है । इसलिए इस विश्व की वस्तुओं का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि वे हमें आनन्दित बनावें । यह कार्य तभी हो सकता है, जब लोभ, मोह, ममता एवं स्वार्थ की वृत्ति छोड़ कर प्रत्येक पदार्थ को देख कर प्रसन्न हुआ जाय या उसका उपयोग इस प्रकार किया जाय कि उससे आनन्द की उपलब्धि हो । नदी, पर्वत, वृक्ष, पौधे, घास, पुष्प, पशु-पक्षी, कीट, पतंग, आकाश, तारे, सूर्य, चन्द्र आदि यह सब कितने सुन्दर हैं, इन चित्र से सुन्दर पदार्थों को देखते-देखते एक भावुक हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगती हैं । चाहे मनुष्य के हों, चाहे पशु-पक्षियों के छोटे बच्चे कितने सुन्दर लगते हैं , यौवन का उभार एक अनुपम मादकता लिये हुए होता है उसकी छवि देखते-देखते हृदय की कली खिल जाती है । संसार में प्राकृतिक सौन्दर्य भी कम नहीं है, फिर मनुष्य की बुद्धि ने उसमें और भी चार चाँद लगा दिये हैं, आनन्द के उपकरण और भी सरल सुलभ बना दिये हैं । इतना सब होते हुए भी न जाने लोग क्यों दुःखी रहते हैं ? जिस बालक के पास हजारों प्रकार के सुन्दर-सुन्दर खिलौने हों फिर भी वह इधर-उधर फिरे, खेल का आनन्द न ले उसे अभागा ही कहना चाहिए । जो मनुष्य इतने आनन्दमय संसार में आकर खिन्न रहते हैं, वे एक प्रकार के वज्रमूर्ख हैं, वे प्रकृति के तत्वज्ञान को नहीं समझते और "स्वर्गादपि गरीयसी" धरती माता पर अवतीर्ण होने के अनन्त आनन्द से वंचित रह जाते हैं ।

यज्ञोपवीत की तीन लड़ें हमें बताती हैं कि ईश्वर को प्राप्त करो, जितनी ही सात्विक भावनाएँ आपके अन्तःकरण में बढ़ेंगी उतनी ही ईश्वरीय कलाएँ आपके भीतर बढ़ती जायेंगी और उसी अनुपात से ब्रह्मानन्द प्राप्त होता जायेगा । यज्ञोपवीत की दूसरी लड़ कहती है कि आत्मा की, जीव की उन्नति चैतन्यता और क्रियाशीलता पर निर्भर है, जितने ही कर्मठ बनोगे उतना ही तुम्हारा लघु आत्मा—महात्मा बनता जायेगा । उपवीत की तीसरी लड़ का सन्देश है कि लोभ में न फँसो, मोह और स्वार्थ के बन्धनों में न बँधो, प्रकृति की वस्तुओं पर मालिकी गाँठने की बेवकूफी न करो, संसार की वस्तुओं में जो विचित्र आनन्द है उसका रसास्वादन करो और इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द उपलब्ध करो । यही ईश्वर, जीव, प्रकृति का व्यावहारिक तत्वज्ञान है । द्वैत, अद्वैत की दार्शनिक गुत्थियों में माथापच्ची करने की अपेक्षा हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति के व्यावहारिक रूप को समझें और उसके अनुसार जीवन-पद्धति बनावें ।

## (४) सत्य, प्रेम, न्याय

यथार्थता को समझने के लिए, सत्य को प्राप्त करने के लिए विवेक का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि धर्म-ग्रन्थों, आचार्यों, महापुरुषों के आचरण के आधार पर भी सत्य का ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सकता । इन सब में परस्पर काफी मतभेद पाया जाता है । देश, काल, परिस्थितियों के कारण, जो बात एक समय में उचित होती है वह दूसरे समय में अनुचित बन जाती है । इसलिए यथार्थता को—औचित्य को—सदा निष्पक्ष हृदय से विवेकपूर्वक परीक्षण करना चाहिए और जो बात सत्य हो उसे ही हृदय से स्वीकार करना चाहिए । अपनी कमजोरी या लाचारी से यदि सत्य का पालन पूर्ण रूप से न बन पड़े तो जितना सम्भव हो उतना ही करना चाहिए । जितने अंशों में अनुचित आचरण करने को किसी कारणवश लाचार होना पड़े उसके लिए भी मन में विद्रोह अवश्य जागृत रखना चाहिए । असली पापी वे लोग हैं जो असत्य का समर्थन सत्य जैसी दृढ़ता से करते हैं । जब तक असत्य के, अन्याय के विरुद्ध विद्रोह जारी है तब तक वह युद्ध में पकड़े गये और शत्रु के बन्धन में पड़े हुए सैनिक की तरह निर्दोष हैं । हाँ, जो जानबूझ कर स्वार्थ भावना से शत्रु की सेना में जा मिलता है और अपने दल का संहार करता है, वह अवश्य ही युद्ध अपराधी है । असत्य का खुला समर्थन, निर्भय आचरण और बलपूर्वक प्रसार करने वाले लोग पातकी हैं । यज्ञोपवीत की प्रथम लड़ आदेश करती है कि सत्य और असत्य की विवेक द्वारा परीक्षा करो और अपने को सत्य के मोर्चे पर ही अड़ाये रहो और विशेष लाचारियों से बच कर जितना भी सत्य आचरण सम्भव हो, उतना करो तथा दूसरों से भी वैसा ही कराओ ।

प्रेम—दूसरों के प्रति निःस्वार्थ आत्मीयता का होना ही सच्चा प्रेम है । हम किसी को विराना न समझें, सबके लिए अपनेपन की भावना रहे । गीता में भगवान् ने कहा है—"जो अपने में सबको और सब में अपने को देखता है वही भक्त है ।" भक्त का अर्थ है प्रेमी, जो नर का प्रेमी है, वही नारायण का भक्त है । दूसरों के दुःख-दर्द को अपना दुःख-दर्द समझना, दूसरे की असुविधाओं, कठिनाइयों और त्रुटियों को अपनी समझना, दूसरों की इच्छा और आवश्यकताओं के औचित्य को देखना और उन पर सहानुभूतिपूर्वक सोचना सच्चे प्रेमी का दृष्टिकोण होता है । इस रीति से वह दिन-व-दिन उदार, विशाल हृदय, क्षमावान्, सहानुभूति रखने वाला बनता जाता है । उसे दूसरे का स्वार्थ, दूसरे का हित, दूसरे का लाभ अक्षुण्ण रखने की उतनी ही चिन्ता रहती है जितनी कि अपने स्वार्थ, हित और लाभ की । वह किसी को खोटी सलाह नहीं दे सकता, किसी पर अत्याचार नहीं कर सकता, किसी को ठग नहीं सकता, वरन् जितना भी होगा अपनी सामर्थ्य के अनुसार सम्बन्धित लोगों के साथ उदार व्यवहार ही करेगा । प्रेम का अर्थ मोह नहीं है, न इन्द्रिय वासना है । आजकल प्रेम का प्रयोग मोह, स्वार्थ और वासना के अर्थ में होता है । यज्ञोपवीत की दूसरी लड़ हमें ऐसा प्रेम करने का सन्देश देती है जो व्यापक हो, आत्मीयता से परिपूर्ण हो ।

न्याय का अर्थ है सन्तुलन । न अपना अधिकार हरण करने देना न किसी का करना । न किसी पर अत्याचार करना न किसी का सहना । न्याय की तोल शक्ति की तराजू पर सन्तुलित की जाती है । इसलिए अपने पक्ष में शरीर, बुद्धि, धन, संगठन, लोकमत और राज शक्ति एकत्रित करने का उद्योग करते रहना चाहिए, जिससे अन्याय, अनीति, पाप और दुराचरण को सिर उठाने का साहस ही न हो और हो तो उसका सिर कुचला जा सके । निर्बलता के वातावरण में अन्याय फलता-फूलता है, कमजोरों पर ही अन्याय किया जाता है । वर्षा में अनेकों कीड़े-मकोड़े अपने आप उपज पड़ते हैं, उसी प्रकार निर्बलता को देखकर अन्याय उपजता है और सबलता को देखकर विलीन हो जाता है । न्याय की सत्ता जीवित रहे, इसके लिए शरीर, बुद्धि, धन, संगठन, लोकमत और राजकीय शक्तियों को न्याय-पक्ष में एकत्रित, संगठित, जागृत करते रहना चाहिए ।

## (५) तीन आश्रम

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह चार आश्रम माने गये हैं । संन्यास आश्रम सर्वसाधारण के लिए नहीं है । उसे ब्रह्मपरायण, सच्चे ब्राह्मण, परिपूर्ण ज्ञान वृद्ध होकर ही धारण कर सकते हैं । जब वे अपनी दीर्घ-कालीन कर्तव्य परायणता द्वारा तीन ऋणों से उऋण हो जाते हैं, तब वे यज्ञोपवीत को उतार कर संन्यास धारण कर लेते हैं । उपवीत धारण करने का अधिकार तीन आश्रमों में ही है, क्योंकि किसी आधार या सहायता से काम करने की जरूरत तभी तक रहती है जब तक उस विषय में दक्षता प्राप्त नहीं है । नये विद्यार्थियों की पट्टी पर खड़िया से अक्षर बना दिये जाते हैं, बालक विद्यार्थी उन रेखाओं पर कलम फेर कर अक्षर लिखने का अभ्यास करता है । जब उसे भली प्रकार अभ्यास हो जाता है तो फिर पट्टी पर रेखाएँ खिंचवाने की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार संन्यासी के लिए यज्ञोपवीत का प्रयोजन नहीं रहता ।

सर्वसाधारण के लिए तीन आश्रमों का पालन आवश्यक है । जीवन को तीन भागों में विभक्त करके नृविज्ञान के आचार्यों ने अपनी दूर-दर्शिता का परिचय दिया है । जब तक शरीर की धातुएँ परिपुष्ट नहीं हों जातीं, तब तक उनका खर्च आरम्भ नहीं होना चाहिए । जब तक फूल खिला नहीं, फल कच्चा है, दाल पकी नहीं, रोटी सिकी नहीं, तब तक उसे तोड़ना, बिगाड़ना, खर्च करना आरम्भ कर दिया जाय तो उसका परिणाम बुरा ही होगा। बचपन में मस्तिष्क में ग्रहण करने वाले तत्व अधिक रहते हैं, यह निर्माण काल होता है, इस समय में मस्तिष्क को जितना विकसित किया जा सकता है, शरीर को जितना पुष्ट बनाया जा सकता है, उत्तम संस्कारों का जितना बीजारोपण किया जा सकता है, उतना और किसी काल में नहीं हो सकता । इसलिए बीस पच्चीस वर्ष या इससे भी अधिक समय तक ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए । केवल मात्र वीर्य-रक्षा ही ब्रह्मचर्य नहीं है । ब्रह्म का आचरण करना, अर्थात् श्रेष्ठ मार्ग की ओर चलने के सब साधन जुटाने में लगना ही ब्रह्मचर्य है । जीवन के आरम्भिक बीस-पच्चीस वर्षों में प्रधान रूप से और पीछे गृहस्थ आदि आश्रमों में गौण रूप से अधिकाधिक मात्रा में ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

गृहस्थ का अभिप्राय है, पारिवारिक जीवन का उत्तरदायित्व लेना । विवाह या सन्तानोत्पादन करना ही गृहस्थ जीवन नहीं है, वरन् परिवार के सभी व्यक्तियों के जीवन को सुस्थिर और सुविकसित बनाने के लिए, धन-उपार्जन, उनका शिक्षण, नियन्त्रण, दोषों का निराकरण

तथा प्रत्येक की उचित शारीरिक, मानसिक एवं भौतिक आवश्यकताओं का समुचित ध्यान रखते हुए व्यवस्था करना सच्चा गृहस्थ धर्म है । यह एक प्रकार का राज्य संचालन है । ईश्वर परिवार के रूप में एक छोटा-सा राज्य हमें सौंपता है और परीक्षा करता है कि आप अभी शासन करने के योग्य हुए या नहीं । सम्राटों का सम्राट् समस्त सृष्टि का शासक परमात्मा अपने परम प्रिय पुत्रों, मनुष्यों को भी अपने समान ही शासक बनाना चाहता है । उसकी इच्छा है कि उसका युवराज-मनुष्य-शीघ्र ही अपने राजाधिकार को उठाने में समर्थ हो जाय । इसलिए वह एक छोटे राज्य के रूप में प्रजा का एक छोटा समूह-परिवार उसे सौंपता है । परिवार में वैसी ही अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं जैसी कि राजाओं के सामने आती हैं । इन समस्याओं को खुबसूरती, बुद्धिमत्ता और चतुरता के साथ सुलझाना ही इस बात की परीक्षा है कि आप राजा बनने में किस हद तक प्रवीण हो गये ? जो अपनी प्रवीणता सिद्ध करता है, परीक्षोत्तीर्ण होता है, परिवार का सुसंचालन करके उसे आदर्श बनाके दिखाता है वह अपने को सुयोग्य अधिकारी सिद्ध करके परमात्मा के शासन में उच्च पद प्राप्त करता है । फिर उसे देव लोकों का शासन दिया जाता है और अन्त में वह सर्व शक्तिमान की निकटतम सत्ताओं के क्षेत्र में जा पहुँचता है ।

इसलिए गृहस्थ जीवन को कभी भी जंजाल, बन्धन, भवसागर आदि के बुरे नामों से नहीं पुकारना चाहिए । इसे एक कालेज के रूप में समझना चाहिए, जहाँ व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त करके अपनी विभिन्न चेतनाओं और चतुरताओं को विकसित किया जाता है । गृहस्थ-जीवन पुण्य और परमार्थ का स्रोत है, धन उपार्जन द्वारा अतिथियों, सन्तों और सत्कर्मों की सेवा गृहस्थ ही कर सकता है । अपने उत्तराधिकारियों को सुसंस्कृत बनाकर विश्व-मानव के सामने सुन्दर उपहार भेंट कर सकता है । जो त्रुटियाँ अपने में रह गई थीं, उन त्रुटियों को अपने बालकों तथा अनुयायियों में न रहने देकर उन्हें अधिक से अधिक उत्तम बनाना इस बात का एक अच्छा अवसर है कि अपने स्थान पर दूसरे अधिक पूर्ण व्यक्ति संसार को दे सकें । यज्ञोपवीत की प्रथम लड़ ब्रह्मचर्य से रहने का संकेत करती है, दूसरी लड़ गृहस्थ की सुव्यवस्था करने का सन्देश देती है, तीसरी का आदेश वानप्रस्थ का पालन करना है ।

जब गृहस्थ का उत्तरदायित्व अर्थ-उपार्जन और नियन्त्रण करने से हल्का हो जाय, अपने उत्तराधिकारी बड़े होकर इन दोनों कार्यों को करने योग्य हो जायें तो भार और उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर डालते चलना चाहिए । कई वयोवृद्ध व्यक्ति सत्ता का लोभ तब तक नहीं छोड़ना चाहते जब तक कि वह जबरदस्ती उनके हाथ से नहीं चली जाती, यह उचित नहीं । जब छोटे भाई, बेटे, भतीजे घर का बोझ उठाने लायक, धन कमाने लायक, व्यवस्था करने लायक हो जायें तो कार्य-भार धीरे-धीरे उन्हें सौंपना आरम्भ कर देना चाहिए । परिवार का नैतिक और बौद्धिक पथ-प्रदर्शन वयोवृद्ध पुरुष अपने हाथ में रखकर शेष संघर्षशील कार्यों का बोझ, नई एवं समर्थ पीढ़ी पर डालें, ताकि उन्हें भी उचित समय पर आवश्यक अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिले । यही वानप्रस्थ की स्थूल भूमिका है । सत्ता-त्याग से जो अवकाश प्राप्त हुआ है उसे स्वाध्याय, साधन और लोक-सेवा में लगाना चाहिए, जिससे जीवन के अन्तिम काल में मनोभूमि में सतोगुणी संस्कारों की वृद्धि के फलस्वरूप मृत्यु के उपरान्त मंगलमय सद्गति प्राप्त हो सके । जीवन के अन्तिम क्षणों में जैसी भावनाएँ मन में रहती हैं उन्हीं के आधार पर मरणोत्तर गति उपलब्ध होती है, इसलिए इन विश्राम की घड़ियों का उपयोग श्रेष्ठ कार्यों में ही करना चाहिए ।

## (६) त्रिकालदर्शी होना

समय के तीन विभाग हैं—भूत, भविष्यत्, वर्तमान—जो कुछ हुआ है, हो रहा है, या होने वाला है, वह सब इन तीनों के ही अन्तर्गत है । इन तीनों की गति-विधि का ध्यान रखते हुए कार्य करने वाले को ही त्रिकाल-दर्शी कहते हैं । अक्सर देखा जाता है कि वृद्ध मनोवृत्ति के मनुष्य प्राचीनकाल की गाथाओं को ही गाया करते हैं । जब देखिए तब बीते हुए समय की ही चर्चा करते मिलेंगे । यौवनोन्मत्त् तरुण दृष्टिकोण के व्यक्ति आज के, इसी समय के लाभ या मनोरंजन को ध्यान में रखते हैं, भविष्य की ओर उनका तनिक भी ध्यान नहीं होता, बिना आगा-पीछा देखे जो उत्साह में आता है सो कर गुजरते हैं । बालक मनोवृत्ति के मनुष्य-शेखचिल्ली की भाँति भविष्य के लिए बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते रहते हैं । आज की अपनी सामर्थ्य एक सेर है, इसे ध्यान में न

रखकर हजार मन की योजनाएँ बनाने में उलझे रहेंगे और उसके परिणामों की मधुर कल्पनाओं के स्वप्न लेते रहेंगे । यह तीनों ही स्थितियाँ अवांछनीय हैं । यज्ञोपवीत की तीन लड़ें कहती हैं कि भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों को देखो, त्रिकालदर्शी बनो और विवेक, अनुभव, स्थिति तथा दूरदर्शिता के आधार पर अपने कार्य-क्रम बनाओ ।

भूतकाल से अनुभव ग्रहण करना चाहिए । पिछले समय में जो किया गया, उसका क्या परिणाम हुआ, इसका निष्कर्ष निकालना ही इतिहास का लाभ है । इस लाभ से लाभान्वित होने के लिए ही पुरानी घटनाओं की तथा विचारधाराओं की जानकारी प्राप्त की जाती है । उस अनुभव के आधार पर भूलों का परिमार्जन करते हुए वर्तमान के लिए विवेकपूर्ण कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए । भविष्य में इस कार्य का परिणाम क्या हो सकता है ? हम कैसा भविष्य चाहते हैं ? उस प्रकार की स्थिति प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की कार्य पद्धति का अपनाना उचित है इन सब बातों का ध्यान रखते हुए वर्तमान को निर्धारित किया जाय तो वह वांछनीय परिणाम उपस्थित करता है । बुद्धिमान् लोग जानते हैं कि जो आगा-पीछा सोचकर काम करता है, भूत, भविष्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान का निर्धारण करता है, वही सफल होता है । यज्ञोपवीत धारण करने वालों की ऐसी ही दूर-दृष्टि होनी चाहिए ।

## (७) तीन देवता

तीन देवता सबसे बड़े हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश । इनके तीन कार्य हैं—ब्रह्मा द्वारा उत्पत्ति, विष्णु द्वारा पालन और महेश द्वारा संहार होता है । इस प्रकार सृष्टि का चक्र घूमता रहता है । यदि इन तीनों में से एक का कार्य भी अवरुद्ध हो जाय तो संसार का चक्र रुक जाय और भयंकर गड़बड़ी फैल जाय, इस विश्व के प्रत्येक पदार्थ की तीन गतियाँ हैं, पहले वह उत्पन्न होता है, पीछे बढ़ता विकसित और परिपुष्ट होता है, अन्त में क्षीण होता हुआ नष्ट हो जाता है । यह तीनों प्रक्रियाएँ अत्यन्त शक्तिशाली हैं । ईश्वरीय इच्छा की, प्रकृति की गतिविधि की प्रतीक हैं । इन तीनों के संरक्षण और नियन्त्रण में सृष्टि का सारा कार्य चल रहा है ।

इन तीन देवताओं का स्मरण रखने उनकी आराधना करने का तात्पर्य यह है कि हमें अपने निकटवर्ती सभी जड़ चेतन पदार्थों में इस त्रिविधि गति का अवलोकन करना चाहिए । जो पदार्थ उत्पन्न हो रहे हैं, वे एक समय अपने यौवन में अवश्य आयेंगे और अन्त में नष्ट हो जायेंगे । हमारे शरीर, धन, पद और परिजनों की भी यही गति होनी है । जो आज जीवित है वह एक दिन अवश्य ही मृत्यु के मुख में जायेगा, इस सम्भावना से बेखबर नहीं रहना चाहिए । जो लोग इधर से बेखबर रहते हैं और अपने प्रियजनों से, शरीर से, सम्पत्ति से अज्ञान्य-जन्य ममता बढ़ाते रहते हैं वे ही इनकी हानि या मृत्यु होने पर सिर धुन-धुन कर रोते कलपते हैं और शोक सागर में डूबते हैं । तीन देवताओं का स्मरण रखना एक प्रकार का तत्व ज्ञान है जिसके प्राप्त होने पर मनुष्य संसार के पदार्थों का सदुपयोग करना सीखता है । प्रत्येक क्षण बदलती हुई दुनिया प्रत्येक फल परिवर्तित होने वाली स्थिति, प्रत्येक घड़ी होने वाली हलचलें हमारे मनोविनोद का कारण होनी चाहिए । पानी की लहरें, वायु के झौंके हर घड़ी अपना स्थान छोड़ कर आगे बढ़ते हैं, पीछे वाले आगे आते हैं इसी प्रकार धन, यौवन, प्रियजन, परिजन आदि भी चलती-फिरती छाया के समान हैं । यह हमारे पास सदा रहने वाले नहीं हैं । इसलिये जब जो वस्तु प्राप्त हो तब उसका सर्वोत्तम उपयोग, जो सम्भव हो, वह कर लेना चाहिए । यही उनकी प्राप्ति का प्रयोजन है और जब वह पदार्थ अपनी स्वाभविक चंचल गति के कारण अपने से पृथक् हो जायें तो उसे स्वाभाविक परिवर्तन समझ कर शोक मोह से ग्रसित होकर दुःखी न होना चाहिए ।

यज्ञोपवीत तीन देवताओं का स्मरण रखने का आदेश करता है । उत्पत्ति, विकास और नाश अवश्यम्भावी प्रक्रिया है इनसे कोई भी बचता नहीं । न तो धन सन्तान आदि की उत्पत्ति को, भारी लाभ मान कर हर्षोन्मत्त होना चाहिए, न यौवन के नशे में चूर होकर इतराना चाहिए और न किसी हानि या मृत्यु शोक में विह्वल होकर मूर्छित होना चाहिए । यह प्रकृति की लीला है, इसे विनोदपूर्वक देखते हुए मुस्कराते रहना चाहिए और जब जो स्थिति प्राप्त हो उसका सर्वोत्तम लाभ लेने के लिए तात्कालिक कर्त्तव्य पालन करने तथा स्थिति का सदुपयोग करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

## (८) माता, पिता, आचार्य

हिन्दू धर्म में ऐसे असंख्य देवताओं की मान्यता है जो अदृश्य या अप्रत्यक्ष समझे जाते हैं और जिनकी पूजा प्रतिमा या अग्निहोत्र आदि माध्यमों द्वारा की जाती है ।

पर ऐसे देवता तीन ही हैं जो शरीर सहित इस लोक में विचरण करते हैं और जिनकी पूजा प्रत्यक्ष रूप से करके पुण्य लाभ किया जा सकता है एवं उनका आशीर्वादात्मक वरदान मिल सकता है । यह तीन देवता हैं—माता, पिता और आचार्य । माता ब्रह्मा है, क्योंकि उसके द्वारा हम उत्पन्न होते हैं । पिता विष्णु है, क्योंकि वह पालन करता है । गुरु शङ्कर है, क्योंकि वह हमारे अज्ञान का संहार करता है । इन तीन देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन माता, पिता और आचार्य में किया जा सकता है ।

मातृ-भक्त श्रवणकुमार, पितृ-भक्त राम और गुरु-भक्त हरिश्चन्द्र का उज्ज्वल इतिहास प्रलय तक अपना आलोक फैलाता रहेगा । इन तीनों का ऋण असाधारण है, इनके उपकार की तुलना नहीं हो सकती । बिना बदले की आशा के अपने सहज वात्सल्य से प्रेरित होकर, स्वयं अभाव और कष्ट का अनुभव करते हुए भी यह तीनों जिस आत्मीयता, प्रेम और त्याग के साथ बालक को विकसित करते हैं उसका बदला चुकाना साधारण बात नहीं है ।

माता भारती की सन्ताओं में और कोई गुण हो चाहे न हो पर 'कृतज्ञता' उनकी संस्कृति में घोंट-घोंट कर पिलाई जाती है । जो अपना तनिक-सा उपकार करे उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहना यह भारतीय धर्म की सदा से विशेषता रही है । ब्राह्मण वर्ग समाज की सेवा में निरत रहता आया है उसके बदले में उनकी अयोग्य सन्तानों को भी हिन्दू जाति प्रणाम करती है, चरण छूती है, भोजन कराती है और दान-दक्षिणा देकर कृतज्ञता की परम्परा का परिचय देती है । प्राचीन काल में बलि, मोरध्वज, कर्ण, हरिश्चन्द्र, वभ्रुवाहन आदि की अनेक कथाएँ ऐसी मिलती हैं कि ब्राह्मण के वेष में छलियों ने भी जब याचना की तो उस महान् विप्र-वर्ग की सेवाओं के प्रति कृतज्ञता का प्रत्युपकार प्रकट करने के लिए जो कुछ उन्होंने माँगा वही दिया । चाहे भले ही दान देने वाले को पीछे से कितना ही दुःख उठाना पड़ा है । उपकारी मनुष्यों तक ही नहीं वरन् पशु-पक्षी तक के लिए यही भाव रहा है । इससे भी आगे बढ़कर निर्जीव पदार्थों तक यह कृतज्ञता की भावना प्रकट की गई है । विविध अवसरों पर चक्की, चूल्हा, कुआ, घूरा, दीपक, हल, गोबर, नदी, पर्वत, वृक्ष, पौधे, पुस्तक, चित्र आदि तक की पूजा होती है । कृतज्ञता ही इसका कारण है । जिनका हृदय इतनी उदार कृतज्ञता से परिपूर्ण है उनके लिए यह अनिवार्य है कि माता-पिता, आचार्य जैसे उपकारी पितरों की सेवाओं का प्रतिफल किसी न किसी रूप में उन्हें चुकावें । यज्ञोपवीत की तीन लड़ें इन तीनों पितरों की ओर संकेत करती हैं कि इनको सन्तुष्ट रखना, सन्तान का सब प्रकार से आवश्यक कर्त्तव्य है ।

चूँकि मनुष्य में पाशविक वृत्तियाँ प्रधान रूप से कार्य करती हैं अतः वह प्रायः दूसरों को भूल जाता है । देखा गया है कि कितने ही कृतघ्न मनुष्य अपने माता, पिता या आचार्य को एक प्रकार का भार अनुभव करते हैं और उनके मरने की प्रतीक्षा करते हैं । जब तक तो वे लाभदायक थे, जब तक उनसे गरज थी, तब तक तो वे अच्छे थे, पर अब जबकि प्रत्यक्ष रूप से वे कोई लाभ नहीं पहुँचा पाते, कुछ बदले की आवश्यकता रखते हैं तो लोग उनसे पीछा छुड़ाना चाहते हैं । यह ऐसा ही है जैसा कर्ज लेने के बाद साहूकार से बचकर निकलना, जैसे वृद्ध गौ को कसाई के हाथ देने की सोचना । इस प्रकार की कृतघ्नता अभारतीय है । ऐसा आचरण तो म्लेच्छ कर सकते हैं । बाप को कैद में डालकर, भाइयों का कत्ल कर के राजसिंहासन पर बैठना हिन्दू इतिहास में नहीं मिल सकता । यज्ञोपवीत सावधान करता है कि कहीं ऐसा न हो कि हम यावनी कृतघ्नता अपना कर पितरों की उपेक्षा या भर्त्सना करने लगें ।

प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी को उचित है कि अपने पितरों, गुरुजनों के प्रति समुचित कृतज्ञता रखे और जितना सम्भव हो उनका प्रत्युपकार करे । अपने बालकों और शिष्यों के प्रति वैसा ही उत्तरदायित्व निभावे जैसा कि एक कर्त्तव्यपरायण पितर को निबाहना उचित है । पितरों की किसी अनुचित सलाह या आज्ञा की उपेक्षा की जा सकती है, पर उनकी व्यक्तिगत आवश्यकता तथा सेवा-सुश्रूषा का तो पूरा-पूरा ध्यान रखना ही चाहिए, जिससे उनका अन्तःकरण आशीर्वादात्मक वरदान देता रहे । पितरों का आशीर्वाद किसी भी श्रेष्ठतम दैवी वरदान से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

## (९) ह्रीं श्रीं क्लीं

संसार में तीन प्रकार के बल हैं —बुद्धिबल, धनबल, जनबल । इन तीनों बलों से सुसज्जित होना सुसम्मानित बनना प्रत्येक द्विज का कर्त्तव्य है, क्योंकि बलहीन व्यक्ति के लिए यह संसार सब प्रकार दुखःमय है । जो पदार्थ सबके लिए आनन्दायक होते हैं वही निर्बल के लिए दुःखदायी बन जाते हैं । शीतल वायु, पकवान, मिठाइयाँ, तरुणी पत्नी, खेल-कूद सब लोगों के लिए प्रसन्नता बढ़ाने वाले होते हैं, पर बीमार आदमी इनका रसास्वादन करना चाहे तो उसके लिए आपत्ति का हेतु बन जायेंगे । धन को

प्राप्त कर सब लोग सुखी होते हैं पर यदि किसी निर्बल, असहाय, मनुष्य को अकस्मात बहुत-सा धन मिल जाय तो चोर डाकू उसकी जान के गाहक बन जायेंगे । निर्बलों के लिए धन का होना भी एक संकट है । बेचारी कमजोर बकरी को हिंसक पशु, माँसाहारी मनुष्य और भैरव-भवानी से लेकर अल्लामियाँ तक चट कर जाने को तैयार बैठे रहते हैं, पर भेड़िये या बाघ का न तो किसी मनुष्य को माँस अच्छा लगता है और न कोई देवता उनकी कुर्बानी चाहता है, शक्ति का ऐसा ही प्रताप है ।

प्रकृति चाहती है कि संसार में शक्तिवानों का अस्तित्व रहे । माली अपने बगीचे में अच्छे पौधों को विकसित करता है और कमजोर, बीमार पौधों को उखाड़ कर फेंक देता है । किसान खेत निराता है, लाभदायक धान की सुरक्षा के लिए कमजोर घास-पात को काट डालता है । बड़ा वृक्ष अपने नीचे के छोटे पौधों की खुराक खींच कर खा जाता है जिससे उसके आस-पास छोटे पौधे पनपने नहीं पाते । बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है । जिधर भी दृष्टि डालिए प्रकृति का यही नियम दृष्टिगोचर होगा कि वह बलवानों को बढ़ाना और कमजोरों को नष्ट करना चाहती है । संसार के इतिहास में उन्हीं देशों ने, उन्हीं जातियों, उन्हीं वर्गों ने उन्नति की है जो बलवान रहे हैं । बेचारे निर्बलों को तो किसी न किसी उचित या अनुचित कारण से मरना, पिसना ही पड़ा है । कारण यह है कि कमजोर को देखकर दूसरों की लोभ वृत्ति को फलने-फूलने का मौका मिलता है, स्वार्थी लोग उन पर अपने स्वार्थ लाभ के लिए आक्रमण करते हैं, उन्हें सताते और शोषण करते हैं तथा उन्हीं के शिर झूठी तोहमत लगा कर बदनाम करते एवं दोषी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । कमजोर होना—मानो दूसरों को अत्याचरी बनते का खुला निमन्त्रणा देना है । जो बलवान् है, जिसमें सामर्थ्य है, जिसके पास प्रतिरोध के साधन हैं, उस पर पर्याप्त कारण होने पर भी आक्रमण करने की हिम्मत नहीं होती । कमजोर आदमी थोड़ा-सा भी कुपथ्य कर ले तो बीमार पड़ जायेगा । पर बलवान् यदि उससे दसगुना कुष्थ्य करे तो भी उसका कुछ न बिगड़ेगा ।

शक्ति के महत्त्व को हमें भली प्रकार समझ लेना चाहिए । उसका संग्रह किसी पर अनुचित आक्रमण के लिए नहीं, पर अपनी आत्मरक्षा के लिए तो करना ही चाहिए । निर्बलों का तो अस्तित्व ही सदा खतरे में रहता है । इसलिए यज्ञोपवीत का सन्देश है कि—संसार में सुखपूर्वक जीना है, शान्ति के साथ जीवनयापन करना है तो शक्ति का सम्पादन करो । शक्ति के तीन केन्द्र हैं—(१) ह्रीं—अर्थात् बुद्धिबल, (२) श्रीं—धनबल, (३) क्लीं—जनबल । इन तीनों के समन्वय से एक पूर्ण बल होता है ।

सबसे पहला बल 'बुद्धि' है । इस बल से अन्य दोनों बलों की प्राप्ति होती है । धन, प्रतिष्ठा, पद, यश, भोग-विलास से लेकर ईश्वर-प्राप्ति तक बुद्धिबल के द्वारा ही उपलब्ध होती है । इसलीए स्वाध्याय से, सत्संग से, अध्ययन से, मनन से, अनुभव से, बहुजन मिलन से, बुद्धि को बढ़ाना चाहिये । विवेक, जानकारी, क्रिया कुशलता—यह बुद्धि के तीन क्षेत्र हैं । तीन क्षेत्रों में बुद्धि का विकास करना चाहिए ।

धन कमाना सब प्रकार उचित और आवश्यक है, क्योंकि बिना धन के शरीर रक्षा, कुटुम्ब पालन, धर्म और प्रतिष्ठा कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सकता । धन का दुरुपयोग ही बुरा है । अति लोभ, अनुचित रीति से उपार्जन, आवश्यक कार्यों में खर्च न करना, बुरे और व्यर्थ कामों में खर्च करना, इन्हीं प्रक्रियाओं में धन बुरा है । अन्यथा सदुपयोग करने पर तो उसके द्वारा अपना और दूसरों का सब प्रकार कल्याण हो सकता है । इस कल्याण के उद्देश्य से ही धन को उचित रीति से उपार्जित करना चाहिए और उचित मार्ग में ही व्यय करना चाहिए ।

जन-शक्ति का तात्पर्य शरीर बल तथा संगठन बल है । स्वस्थ शरीर और समान मनोभूमि के, समान स्वार्थों के व्यक्ति जब एकत्रित हो जाते हैं । एक सूत्र में बँध जाते हैं तो उनकी शक्ति अनेक गुनी बढ़ जाती है । निर्जीव वस्तुएँ एक-एक मिल कर दो होती हैं, किन्तु जीवित मनुष्य १ और १ मिल कर ११ हो जाते हैं । शरीर-बल और संगठन बल इन दोनों बलों को जनशक्ति—क्लीं के नाम से पुकारते हैं ।

यज्ञोपवीत की तीन लड़ें तीन शक्तियों के संचय का आदेश करती हैं । हम ह्रीं, श्रीं, क्लीं से सुसज्जित हों । बुद्धि-बल, धन-बल और जन-बल से अपने आपको सम्पन्न बनावें । जिसके पास यह तीन बल जितनी अधिक मात्रा में होंगे वह उतना ही आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकेगा ।

उपवीत में तीन लड़ें हैं, प्रत्येक लड़ में तीन-तीन सूत्र हैं । इस प्रकार नौ डोरे हुए । ऊपर की शक्तियों में नौ प्रकार के त्रिवर्ग बता दिये गये हैं । इस प्रकार छोटा-सा यज्ञोपवीत हमें २७ शिक्षाएँ देता है । यह शिक्षाएँ इतनी

महत्त्वपूर्ण हैं कि इनका यदि थोड़ा-थोड़ा भी पालन किया जाय तो मानव जीवन दिन-व-दिन उन्नति की दिशा में अग्रसर हो सकता है । यज्ञोपवीत निर्जीव है तो भी उसकी आत्मा सजीव है । वह देखने में मूक प्रतीत होता है, पर वस्तुतः एक वेदपाठी ब्रह्मवेत्ता गुरु की भाँति हमें अहर्निश उपदेश करता रहता है । उसका बोझ बहुत कम है शायद एक तोले से भी कम, पर वस्तुतः उसका बोझ बहुत भारी है । जो उस बोझ को उठाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है, वास्तव में वही सच्चा द्विज है ।

## नौ सूत्रों की विवेचना

यज्ञोपवीत में तीन लड़ें होती हैं, प्रत्येक लड़ तीन-तीन धागों से मिलकर बनी होती है । इस प्रकार कुल नौ धागे से यह बनता है । यह नौ धागे बहुत ही महत्त्वपूर्ण अर्थ सन्देश उपने अन्दर धारण किये हुए हैं, इनका कुछ विवेचन नीचे की पंक्तियों में किया जाता है ।

### (१) परम पुनीत नव गुण

रामायण में परशुराम की श्रेष्ठता की चर्चा करते हुए कहा गया है कि—"नवगुण परम पुनीत तुम्हारे ।" ब्राह्मणों के, ब्रह्म परायण व्यक्तियों के, परम पुनीत नौ गुण होते हैं । यह नौ गुण हैं —(१) सत्य. (२) अहिंसा, (३) चोरी न करना, (४) इन्द्रिय-निग्रह, (५) अधिक संचय का लोभ न करना, (६) पवित्रता, (७) कष्ट सहिष्णुता, (८) विद्या, (९) ईश्वर और धर्म पर आस्था । इन्हीं नौ परम पुनीत गुणों को थोड़े हेर-फेर के साथ धर्म के दश लक्षणों में गिनाया है । योग-शास्त्रों में इन्हें पाँच यम और पाँच नियम के नाम से कहा गया है । उन्हें मनुष्य का—इन्सानियत का चिह्न भी कह सकते हैं । यज्ञोपवीत के नौ सूत्र हमें इन नौ गुणों के धारण करने का आदेश करते हैं ।

### (२) नव सिद्धियाँ

इस भूलोक में नौ सिद्धियाँ हैं जिन्हें प्राप्त करने से आनन्द की वृद्धि होती है । जिसके पास यह नौ सिद्धियाँ जितनी अधिक संख्या में या जितनी अधिक मात्रा में होंगी वह उतना ही सुखी रह सकेगा । नौ सिद्धियाँ इस प्रकार हैं—(१) विवेक (२) पवित्रता (३) शान्ति (४) साहस (५) स्थिरता (६) कर्त्तव्य निष्ठा (७) स्वास्थ्य (८) समृद्धि (९) सहयोग ।

(१) **विवेक**—विवेक से सत्-असत् का भेद स्पष्ट दिखाई देता है । शास्त्र, सम्प्रदाय, वर्ग, संस्कार, स्वार्थ आदि की चहारदीवारियों से मुक्त होकर सत्य का दर्शन करने वाली बुद्धि जागृत हो जाती है जिससे उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म का भेद ठीक प्रकार समझ पड़ता है, अकर्म की भयंकरता और कर्म की उपयोगिता भली-भाँति हृदयंगम हो जाती है, फलस्वरूप विवेकी व्यक्ति सन्मार्ग पर चलता है और उसके मंगलमय परिणाम प्राप्त करता है ।

(२) **पवित्रता**—भीतरी और बाहरी दो प्रकार की पवित्रता होती है । छल, कपट, दम्भ आदि के कारण अन्तःप्रदेश गन्दा हो जाता है, जिसकी दुर्गन्धपूर्ण कलुषता से नाना प्रकार के आन्तरिक रोग उपज पड़ते हैं । परन्तु जिनका अन्तःकरण बालकों की तरह सरल, कोमल, स्वच्छ और निष्कपट है, उनके हृदय में ईश्वर का निवास होता है । स्थान, शरीर, वस्त्र, प्रयोजनीय वस्तु तथा व्यवहार की पवित्रता को बाह्य पवित्रता कहते हैं । जो व्यक्ति भीतर और बाहर दोनों ओर से पवित्र है वह सबके हृदयों में प्रेम और श्रद्धा का स्थान प्राप्त करता है ।

(३) **शान्ति**—मानसिक उत्तेजनाएँ एक प्रकार की विपत्तियाँ हैं । दर्प, शोक, क्रोध, निराशा, भय, चिन्ता, मद, ईर्ष्या, द्वेष आदि के तूफान जिनके मन में उठते रहते हैं उनका चित्त सदा अशान्त बना रहता है वे अपने अन्तर में अग्नि सुलगा कर उसमें स्वयं झुलसते रहते हैं । इन उत्तेजनाओं से बच कर शान्त चित्त रहना, अप्रिय परिस्थिति आने पर भी अविचल रहना, घबराहट तथा उत्तेजना के शिकार न होकर धैर्यपूर्वक कठिनाई से निकलने का उपाय सोचना, शान्त मानस के लक्षण हैं । जो इस प्रकार की शान्ति के उपासक हैं, वे उन समस्त मानसिक दुःखों से बच जाते हैं, जिनके कारण उत्तेजित मस्तिष्क वाले सदा रोते कलपते रहते हैं ।

(४) **साहस**—शक्तियों के होते हुए भी कितने ही मनुष्य आत्म-हीनता, तुच्छता, दीनता, संकोच, कायरता आदि मानसिक कमजोरियों के कारण सदा डरते-झिझकते रहते हैं और साधारण बातों को भी बड़ा भारी दुर्गम कारण मान बैठते हैं । जिससे उनकी योग्यताएँ और शक्तियाँ सभी कुण्ठित हो जाती हैं । साहसी व्यक्ति इस विषम स्थिति में नहीं फँसता वरन् दिन-व-दिन अधिक स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी, पराक्रमी, पुरुषार्थी, निर्भय और वीर बनता जाता है । जीवन में प्रतिदिन आने वाली कठिनाइयों को परास्त करता हुआ अपनी विजय पताका फहराता है ।

(५) **स्थिरता**—डाँवाडोल अस्थिर वृत्तियों के मनुष्यों की जीवन यात्रा एक दिशा में नहीं चलती, कभी वह—कभी यह—ऐसी छलांगें भरते रहते हैं । क्षण-क्षण में उनकी बुद्धि बदलती रहती है, ऐसे व्यक्तियों का समय, श्रम और साधन निरर्थक खर्च होते रहते हैं, पर जिनका चित्त स्थिर है, मस्तिष्क स्वस्थ है, नीति नियत है, कार्यक्रम और लक्ष्य एक है, वह सदा नियत दिशा में तेजी से बढ़ता हुआ चला जाता है । स्थिरता का आध्यात्मिक अर्थ है—मनोजय, आत्म-निग्रह, स्थिति-प्रज्ञता, समाधि । इस मार्ग में जितनी भी प्रगति होती है वह सांसारिक आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्र में समस्वरता और संतुलन उत्पन्न करती है ।

(६) **कर्त्तव्यनिष्ठा**—अपने आत्मा के प्रति, कुटुम्ब के प्रति, समाज के प्रति, शरीर के प्रति, मस्तिष्क के प्रति, राष्ट्र के प्रति, ईश्वर के प्रति एवं प्राणिमात्र के प्रति कुछ कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व होते हैं, उन्हें धर्म कहते हैं । उन्हें न जानने या पूरा न करने से मनुष्य दु:ख, बन्धन एवं पतन की ओर गिरता है । कर्त्तव्य भावना को ही धर्म-परायणता या ईश्वर-निष्ठा कहते हैं । इस मार्ग को अपनाने वाला व्यक्ति देश-भक्त, लोक-सेवी, भला मनुष्य, सभ्य नागरिक, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईश्वर भक्त कहलाता है ।

(७) **स्वास्थ्य**—उत्तम स्वास्थ्य मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है । कुछ अपवादों को छोड़ कर आमतौर से प्रकृति माता सभी को स्वस्थ शरीर प्रदान करती है । किन्तु लोग उसे मिथ्या आहार-विहार के द्वारा बिगाड़ लेते हैं । यह बिगाड़ जब तक चलता रहता है तब तक स्वास्थ्य में विकृतियाँ बनी ही रहती हैं । एक रोग गया, दूसरा आया । एक दवा बन्द हुई, दूसरी आरम्भ करनी पड़ी । यह क्रम तब तक नहीं टूट सकता जब तक कि आहार-विहार में प्राकृतिकता न आवे, सतोगुण न बढ़े । गायत्री से सतोगुण बढ़ता है और जीवनक्रम में संयम एवं सुव्यवस्था का प्रमुख भाग रहने लगता है तदनुसार स्वास्थ्य में सुधार आरम्भ हो जाता है और वह दिन-दिन अधिक सुधरने लगता है ।

(८) **समृद्धि**—धन, सम्पत्ति और साधन सामग्री का पर्याप्त मात्रा में होना उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है और आनन्द की वृद्धि करता है, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि उचित रीति से कमाई हुई सम्पत्ति को ही समृद्धि कहते हैं । मितव्ययिता, ईमानदारी और परिश्रमशीलता जहाँ होगी वहाँ गरीबी नहीं रह सकती । अनीति से धनवान हुए लोगों की तरह भले ही अमीर न बना जा सके, पर जो पैसे का सदुपयोग करना जानता है वह थोड़ें पैसे से भी समृद्धिशाली जीवन का सुख भोग सकता है ।

(९) **सहयोग**—जिसे जितने अधिक लोगों का प्रेम, अनुग्रह, आत्मभाव तथा सहयोग प्राप्त है वह उसी अनुपात से सांसारिक तथा मानसिक सुख-शान्ति का सम्पादन कर सकता है । दूसरों का सहयोग अपने सद्गुणों के कारण प्राप्त होता है । खरे, ईमानदार, प्रसन्नचित्त, स्थिरमति, मधुर-भाषी, सेवाभावी और सन्तुष्ट रहने वाले मनुष्य की ओर सभी का मन आकर्षित होता है । ध्वनि की प्रतिध्वनि की भाँति प्रेम का उत्तर प्रेम से, सेवा का सेवा से और सहयोग का सहयोग से मिलता है । बुरे लोगों से स्वार्थवश चाहे कोई व्यक्ति बाहरी मित्रता भले ही प्रदर्शित करे पर भीतर से उसके लिए घृणा ही भरी रहती है जिसके कारण मौका पड़ने पर कोई उनकी सहायता नहीं करता । सज्जन व्यक्ति सदा दूसरों का सहयोग पाते हैं और उसके कारण वे सदा प्रसन्न रहते हैं ।

यह नव सिद्धियाँ जिन्हें प्राप्त हैं, उन्हें संसार की कोई वस्तु अप्राप्त नहीं रह सकती, वे कभी दु:खी, दरिद्री तथा दीन-हीन नहीं रह सकते । लक्ष्मी के यह नौ रूप हैं, जीवन की यह नौ दिव्य विभूतियाँ हैं । यज्ञोपवीत के नौ धागे कहते हैं कि हे द्विजो ! इन नौ को प्राप्त करने के प्रयत्न में हर घड़ी लगे रहना ।

## (३) नौ का महत्त्वपूर्ण अंक

९ का अंक इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसकी महिमा कहते-कहते थक जाना पड़ता है । नीचे कुछ विवरण देखिए—

**(१) रम्यो राम इमि जगत में, नहीं द्वैत विस्तार ।**
**जैसे घटत न अंक नव, नव के लिखत हजार ॥**

नौ का पहाड़ा चाहे जितनी बार पढ़ा जाय पर उनके जोड़ का परिणाम ९ ही होता है । (जैसे ९×२ = १८ । १+८=९ । ९×३ = २७ = २+७=९ इसी प्रकार चाहे जितनी बार नौ का पहाड़ा गिना जाय उन अक्षरों का योग ९ ही होगा । जैसे नौ के पहाड़े की सब संख्याओं में नौ का अक्षर मिला हुआ है, उसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर छिपा हुआ है ।

**(२) जग तेरहु छत्तीस (३६) है, रामचरन छै तीन (६३) ।**
**तुलसी देखि विचार हिय, है यह मतो प्रवीन ।**

छत्तीस की संख्या में तीन और छै के अंकों का मुख एक दूसरे से विपरीत दिशा में है, इसी प्रकार सांसारिक माया बन्धनों से हमें विमुख रहना चाहिए और भगवान् के चरणों की ओर इस प्रकार अभिमुख रहना चाहिये, जैसे ६३ की संख्या में यह दोनों अक्षर आमने-सामने मुख किये रहते हैं । इन उपदेश देने वाली दो संख्याओं—३६ का तथा ६३-के अंकों का भी जोड़ नौ होता है ।

(३) अक्षोहिणी सेना की संख्या में नौ का ही प्रतिफल है । अक्षोहिणी की संख्या २१८७०० होती है। इनका योग देखिए । २+१+८+७=१८ । १+८=९ ।

(४) युगों की संख्याओं का परिमाण ९ होता है । देखिये—कलियुग वर्ष ४३२००० । ४+३+२=९। द्वापर वर्ष ८६४००० । ८+६+४=१८ में १+८=९ । त्रेता वर्ष १२९६००० में १+२+९+६=१८ में १+८=९ । सतयुग वर्ष १७२८००० । १+७+२+८=१८ में १+८=९।

(५) चारों युगों के वर्षों का योग (दिव्य युग) ४३२०००० ।४+३+२+ = ९ ।

(६) मन्वन्तर (७१ दिव्य युग) ३०६७२०००० । ३+६+७+२=१८ में १+८=९ ।

(७) कल्प (१४ मन्वन्तर) वर्ष ४२९४०८०००० । ४+२+९+४+८=२७ में २+७=९ ।

(८) स्वरों में ९ गुरु हैं । आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ।

(९) चारों वेदों की मन्त्र संख्या १९४०४ है । १+९+४+४=१८ में १+८=९ ।

(१०) श्री रामचन्द्रजी का जन्म नवमी को—"नवमी तिथि हरि मास पुनीता ।"

(११) रामायण की रचना—नवमी को—"नवमी भौमवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित प्रकाशा ॥"

(१२) तुलसीकृत रामायण में छन्द संख्या ९९९० है।९+९+९=२७ में २+७=९ ।

(१३) विप्र के गुण ९ = ऋजु (सरलता), तपस्या, सन्तोष, क्षमा, अतृष्णा, जितेन्द्रियता, सत्य, अहिंसा, स्वाध्याय ।

(१४) पुराण १८ ।१+८= ९ ।

(१५) नक्षत्र २७ ।२+७= ९ ।

(१६) माला में बीज—१०८ ।१+८= ९ ।

(१७) पूज्यों के लिये लिखी जाने वाली श्री संख्या-१०८ में १+८= ९ ।

(१८) राग ६, रागिनी ३० = दोनों का योग ३६ । ३+६= ९ ।

(१९) गिनती के अंक १ से ९ तक —९ ।

(२०) शक्ति पूजा की नव-रात्रि, पृथ्वी के नौ खण्ड, नौ ग्रह, शरीर के नौ छेद, नौ रत्न, नौ रस, नवधा भक्ति, नौ नाड़ी, नौ द्रव्य, नौ दुर्गा ।

इस प्रकार नौ का अंक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से इसे 'ब्रह्म अंक' कहा गया है । यज्ञोपवीत को ब्रह्म-सूत्र भी कहा जाता है, उसमें धागे भी ब्रह्म अंक जितने अर्थात् ९ रखे गये हैं ।

## (४) नव द्वार का पिंजड़ा

**नवद्वारे का पींजरा, या में पक्षी पौन ।**
**रहवे को आश्चर्य है, निकसि जाय तब कौन ।**

शरीर में नौ छेद हैं । इनमें वायु-रूप प्राण अधूरे पंछी की तरह बैठा हुआ है । इतने द्वार वाले पिंजड़े में वह बैठा हुआ है, यही आश्चर्य की बात है, यदि उड़ जाय (प्राण निकल जाय) तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? तात्पर्य यह कि मृत्यु प्रत्येक काल शिर पर खड़ी हुई है, उसकी ओर सावधान रहना चाहिए । जितने समय जीना है, जितने श्वास बचे हैं उनका अच्छे से अच्छा उपयोग करना चाहिये ।

## (५) नव-खण्ड पृथ्वी

धरती माता नौ खण्डों में बँटी हुई है । इसमें अनेकों द्वीप, महाद्वीप, वन, पर्वत हैं । उनमें अनेकों वर्ण, जाति, धर्म, सभ्यता, भाषा, आचार-विचार वाले प्राणी रहते हैं । उन सभी को अपना समझना चाहिए । किसी के प्रति विरानापन मन में नहीं लाना चाहिए । भिन्नताएँ संसार के सौन्दर्य की वृद्धि के लिए परमात्मा ने पैदा की हैं, न कि घृणा या द्वेष करने के लिए । किसी को विदेशी, विधर्मी या विजातीय समझ कर उससे भिन्नता का व्यवहार नहीं करना चाहिए । वरन् नव-खण्ड पृथ्वी के निवासियों को अपने से वैसा ही सम्बन्धित समझना चाहिए जैसा कि जनेऊ की गाँठ से नौ धागे बँधे हुए हैं ।

## (६) नौ देवता

सामवेदीय छान्दोग्य-सूत्र के यज्ञोपवीत में नौ तारों में नौ देवताओं का निवास बताया है, ये नौ देवता यह हैं—(१) ॐकार, (२) अग्नि, (३) अनन्त, (४) चन्द्र, (५)

पितृ, (६) प्रजापति, (७) वायु, (८) सूर्य, (९) सर्व देवता । यह नौ देवता असल में नौ शक्तियों के नाम हैं, जो विकसित मनुष्यों में निवास करती हैं । इनका अर्थ इस प्रकार है—

१—ॐकार-ब्रह्म, परमात्मा, सर्वव्यापी, न्यायकारी सत्ता को सर्वत्र व्यापक देखकर बुरे कामों से बचना ।

२—अग्नि-तेज, वीरता, पराक्रम, पुरुषार्थ ।

३—अनन्त-धैर्य, प्रतीक्षा, आशा, दृढ़ता ।

४—चन्द्र-शीतलता, शान्ति, मधुरता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता ।

५—पितृ-स्नेह, आत्मभाव, उपकार, वात्सल्य, क्षमा ।

६—प्रजापति-कुटुम्ब-पालन, समाज की सुरक्षा ।

७—वायु-स्वच्छता, सफाई ।

८—सूर्य-प्रतिभा, शक्ति, बल, दमन ।

९—सर्व देवता-सगंठन, सहयोग, एकता, समाज-सेवा, सब लोगों के लिए आदर-भाव, सम दर्शन ।

इन नौ प्रकार के गुणों को धारण करने का अर्थ है—यज्ञोपवीत के नौ तारों में उपरोक्त नौ देवताओं की स्थापना । इन नव देवों को, नौ गुणों को सदा अपने साथ रखना जनेऊ का तात्पर्य है ।

## (७) नव-रत्न

रत्न नौ हैं, १-मोती २-माणिक्य ३-वैदूर्य ४-गोमेद ५-हीरा ६-पन्ना ७-नीलम ८-पद्मराग ९-मरकत । यह नौ रत्न पत्थर के हैं, परन्तु मनुष्य में नौ गुण होते हैं जिन्हें धारण कर के अलंकृत होता है । यह नौ गुण वही हैं जो उपरोक्त नौ देवताओं के वर्णन में तथा नव-निधियों में वर्णन किये जा चुके हैं । साधारण व्यक्ति जिस प्रकार नौं रत्नों को प्राप्त करने की आकांक्षा करते हैं, उन्हें पाकर प्रसन्न होते हैं वैसे ही द्विज को नौ तार का यज्ञोपवीत पहिन कर उससे सम्बन्धित नव-गुणों को धारण करके अपने को सौभाग्यवान् अनुभव करना चाहिए ।

## (८) नव-शक्तियाँ

बल के (शक्ति के) नौ भेद हैं । इन नौ के सम्मिश्रण से एक पूर्ण बल बनता है । इन सभी को प्राप्त कर के द्विज को सर्वशक्तिमान होने का प्रयत्न करना चाहिए । नव बल यह हैं—

(१) शरीर बल, (२) बुद्धि बल, (३) चातुर्य बल, (४) धन बल, (५) प्रतिष्ठा बल, (६) संगठन बल, (७) साहस बल, (८) प्रारब्ध बल, (९) आत्म बल । इन नौ को प्रचुर मात्रा में जमा करना ही नवदुर्गा-पूजा या नवरात्रि-उपासना का रहस्य है ।

## (९) नवधा भक्ति

भक्ति मार्ग की साकार उपासना में ईश्वर भक्ति नौ प्रकार की बताई गई है—१-श्रवण २-कीर्तन ३-स्मरण ४-पाद सेवन ५-अर्चन ६-वन्दन ७-दास्य ८-सख्य ९-आत्म-निवेदन ।

रामायण में नवधा भक्ति के दूसरे लक्षण बताये हैं । यथा—

**नवधा भक्ति कहउं तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मनमाहीं ।**

**प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥**

**गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान । चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ॥**

**मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ॥**

**छठ दम सील विरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ॥**

**सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोते संत अधिक कर लेखा ॥**

**आठवँ जथा लाभ सन्तोषा । सपनेहु नंहि देखइ परदोषा ॥**

**नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हिय हरष न दीना ॥**

**नव मँह एकउ जिनकें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥**

**सो अतिशय प्रिय भामिन मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥**

यज्ञोपवीत के नौ तार द्विज को ऐसी नवधा भक्ति करने का आदेश करते हैं ।

# यज्ञोपवीत की चार ग्रन्थियाँ

यज्ञोपवीत नौ तार की तीन लड़ों से बनाया जाता है । इसका विवेचन पिछले पृष्ठों पर हो चुका है । उपवीत के अन्तिम सिरे तीन साधारण और चौथी ब्रह्म ग्रन्थि लगा कर बाँध दिये जाते हैं । इस प्रकार वह पूरा होता है । आइए अब विचार करें कि यह ग्रन्थियाँ क्या हैं ? और उनमें हमारे लिये पूर्वज लोग क्या-क्या रहस्य छिपा कर रख गये हैं ।

(१) मनुष्य की अन्तःभूमि में तीन प्रकार की ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें योगशास्त्र के ज्ञाताओं ने ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रुद्र गन्थि के नाम से पुकारा है । इन तीनों गाँठों को खोल कर ही परमात्मा को प्राप्त करना सम्भव है । क्योंकि यह तीन द्वार हैं, जिनको पार किए बिना प्रभु तक नहीं पहुँचा जा सकता ।

अज्ञान-ब्रह्म ग्रन्थि है । लोभ-विष्णु ग्रन्थि है । धमण्ड-रुद्र ग्रन्थि है । इन तीनों दोषों को मिटाना ही ग्रन्थि-भेद है । दुर्गा सप्तशती में देवी के तीन चरित्र हैं । (१) मधुकैटभ वध, (२) महिषासुर वध, (३) शुम्भ वध । यह अलंकारिक वर्णन आत्मा द्वारा अज्ञान, लोभ और अहंकार को नष्ट करने का ही है । द्विजों का कर्त्तव्य है, कि इन तीन ग्रन्थियों को खोलें, इन तीन असुरों का वध करें, तभी चतुर्थ चरण में प्रभु की प्राप्ति हो सकती है ।

(२) चारों ग्रन्थियों चार वेदों की प्रतीक हैं । चारों वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, उनकी शिक्षाओं का मनन, चिन्तन और आचरण करना प्रत्येक द्विज का कर्त्तव्य है, यह इन चार ग्रन्थियों का संकेत है ।

(३) तुलसी कृत रामायण उत्तर काण्ड में माया ग्रन्थि का वर्णन है—

**सो माया वश भयउ गुसाईं । बँध्यो कीर मरकट की नाईं ।**

**जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि जाई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥**

इस माया ग्रन्थि को छुड़ाने के लिए तुलसीदास जी ने ज्ञान दीप का निरूपण किया है । इस ज्ञान दीप में तीन तत्व प्रधान हैं, (१) ज्ञान (२) कर्म (३) भक्ति । इन तीन के द्वारा माया ग्रन्थि से छूट कर जीव मुक्ति का अधिकारी बन सकता है ।

यज्ञोपवीत में चार गाँठें हैं । बड़ी गाँठ यह बताती है कि ईश्वर का अंश जीव-माया के बन्धनं में बँध कर तड़पता रहता है । शेष तीन गाँठें यह बताने के लिए लगी हुई हैं कि गाँठ बाँध लो कि इस माया के बन्धन से छूटने के तीन ही उपाय हैं । (१) ज्ञान को विवेक को जागृत करना (२) कर्त्तव्य कर्मों को तत्परता और दृढ़तापूर्वक करते रहना (३) ईश्वर की भक्ति करना, नर-नारायण की निःस्वार्थ सेवा में प्रेमपूर्वक लगे रहना ।

(४) धर्म, अर्थ और काम का यथावत् सम्पादन करते हुए ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सकता है । यथा—क्रम यात्रा किये बिना, छलांग मार कर जो व्यक्ति चोटी तक पहुँचना चाहते हैं वे भूल करते हैं, उन्हें चाहिए कि जीवन का सर्वांगीण विकास करें । आत्म-निर्माण, कर्त्तव्य-पालन, लोक-हित एवं समाज-सेवा द्वारा धर्मवान बनें धन, यश, प्रतिष्ठा, प्रतिभा, जनशक्ति द्वारा सम्पन्न बन कर अर्थ सम्पन्न हों । मनोरंजन, आनन्द और उल्लास की स्थिति अधिक से अधिक समय तक उपलब्ध रहे यही औचित्यपूर्ण काम है । इन तीनों स्थितियों में से संतोष और तृप्ति प्राप्त कर के आगे बढ़ा हुआ प्रशान्तात्मा मोक्ष का अधिकारी होता है । यह यज्ञोपवीत में लगी हुई चार गाँठें बताती हैं ।

(५) पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार दिशाएँ हैं । चारों ओर ही हमें ध्यान रखना चाहिए । आगे, पीछे, दायें, बायें चारों ओर देख कर जो चलता है, वह बुद्धिमान कहलाता है । आगे दौड़ लगाना और पीछे चौपट होता चले तो इससे क्या लाभ ? इसी प्रकार दायें-बायें का ध्यान रखना आवश्यक है, दायें का अर्थ है सहायक, बायें का अर्थ है विरोधी । इन दोनों को भी देखते चलना चाहिए कि हमारे पक्ष में कितनी और विपक्ष में कितनी शक्ति एकत्रित हो रही है । यज्ञोपवीत की ग्रन्थियाँ चारों दिशाओं की ओर ध्यान रखने का आदेश देती हैं ।

(६) दूसरों को अपने पक्ष में करने के चार प्रकार हैं—साम, दाम, दण्ड और भेद । समझाने-बुझाने से, लोभ बताने से, भय उपस्थित करने से तथा कूटनीतियुक्त षड्यन्त्र से दूसरों को बुरे रास्ते से हटाकर, सही रास्ते पर लाया जाता है । सदुद्देश्य से प्रेरित होकर इन चारो का प्रयोग करके दूसरों को अपना अनुयायी बनाने के यह चार स्तम्भ हैं, यही चार गाँठें जनेऊ में हैं ।

(७) अन्तःकरण के चार स्तर हैं—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार । इच्छा करने की शक्ति को मन, विचार और निर्णय करने की शक्ति को बुद्धि, अभ्यास, स्वभाव और संस्कारों की धारणा को चित्त, अपने अहंभाव की जागृति को (अह्म + कार) अहंकार कहते हैं । यह चारों वृत्तियाँ प्रधान हैं । इन चारों को सन्मार्ग पर लगाने से आत्मा का उत्थान होता है और जीवन फल की प्राप्ति होती है । यदि यह चारों कुमार्गगामी हो जायें तो प्राणी दिन-व-दिन गहरे गर्त में गिरता चला जाता है । इसलिए इन चारों मानसिक गुत्थियों को यज्ञ मार्ग में, सन्मार्ग के लिए उपवीत अर्थात् पवित्र रखना चाहिए—यह जनेऊ की चार गाँठों का उद्देश्य है ।

(८) हमारे कार्य, देश, काल, पात्र की स्थिति के अनुकूल होने चाहिए । कार्य की बड़ी गाँठ इन तीन छोटी गाँठों से सम्बद्ध होनी ही चाहिए, यह शिक्षा जनेऊ से हमें मिलती है ।

विविध प्रदेशों में रीति-रिवाज, आहार-विहार, ऋतु, साधन आदि की भिन्नता होती है, उसको ध्यान में रखते हुए तद्देशीय नियम बनाये जाते हैं । इसी प्रकार जो वातावरण प्राचीन काल में था, जो साधन पुराने लोगों को उपलब्ध थे अब उपलब्ध नहीं हैं, अतएव आज प्राचीन काल की नकल हर बात में नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त हर मनुष्य की रुचि, शक्ति तथा मनोभूमि में अन्तर होता है । इस अन्तर को ध्यान में रख कर ही किसी व्यक्ति से उसकी गतिविधि के सम्बन्ध में आशा की जा सकती है । आपत्ति धर्म इसके अतिरिक्त है । किन्हीं असाधारण परिस्थितियों में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना एवं रक्षा के लिए असाधारण एवं अप्रिय आचरण करना पड़ता है । स्थिति को देखते हुए जीवन की गुत्थियों को सुलझाना नीतिमत्ता कहलाती है । इस नीति का सम्बन्ध देश, काल तथा पात्र की स्थिति पर विशेष रूप से निर्भर है । यज्ञोपवीत की चार गाँठें हमें यह बताती हैं ।

(९) मनुष्य की दो भुजाएँ होती हैं, जिनके द्वारा वे कमाते-खाते हैं । देवताओं की चार भुजाएँ होती हैं जिनके कारण वे चतुर्भुज कहलाते हैं । इन भुजाओं के नाम यह हैं—(१) दान (२) दया (३) दमन (४) दक्षता । वे अपने कार्य इन चार हाथों द्वारा, इन चार माध्यमों द्वारा करते हैं । दूसरों को दान देने की इच्छा करते हैं, पीड़ितों और अविकसितों के प्रति दया से द्रवित हो जाते हैं, अन्याय और असंयम का दमन करते हैं तथा स्फूर्ति, नियमितता और क्रियाशीलता से युक्त रह कर दक्षता का परिचय देते हैं । इन चार विशेषताओं के कारण ही वे चतुर्भुज हैं । द्विजों को जनेऊ में लगी हुई चार गाँठें देखकर यह स्मरण करना चाहिए कि उनकी गतिविधि भी देवोपम होनी चाहिए ।

(१०) महत्त्व को चार प्रकार के मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं— (१) आर्त-दुःखी, (२) जिज्ञासु, (३) अर्थार्थी-आवश्यकता ग्रस्त, अन्वेषक बुद्धि वाले, खोजी, (४) ज्ञानी-सुविकसित मस्तिष्क वाले । साधारण श्रेणी के मनुष्य जिनके अन्तःकरण में महत्त्व प्राप्ति की उद्दीप्त इच्छाएँ नहीं उठतीं, ऐसे ही ज्यों-त्यों करके अपनी जीवन यात्रा पूरी कर लेते हैं, पर संसार भर में आज तक जिस किसी ने भी कोई बड़ा कार्य किया है, महानता प्राप्त की है, उन्हें इन चार परिस्थितियों में से कोई अवश्य प्राप्त थी । जिन्हें आगे बढ़ना है उन्हें अपने कष्टों का, अज्ञान का, आवश्यकताओं का अनुभव करना चाहिए और अपने बुद्धि विकास के द्वारा त्रुटियों और अभावों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये, यही महत्त्व प्राप्ति का मार्ग है । जनेऊ में लगी हुई ग्रन्थियाँ इन चार केन्द्र-बिन्दुओं का संकेत करती हैं कि इनके द्वारा मनुष्य का उत्कर्ष होता है, यह ध्यान रखो ।

इस प्रकार और भी अनेकों चतुर्वर्ग हैं जिनका मानव-जीवन की उन्नति एवं सुख-शान्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है, ध्यान देने से ज्ञान की अनेकों और श्रृंखलाएँ सूझ पड़ती हैं । यज्ञोपवीत में लगी हुई चार ग्रन्थियाँ हमारा चतुर्मुखी विकास करने के लिए नाना विधि से संकेत उपस्थित करती हैं । इन मूक उपदेशों को हम अपनी अन्तर्रात्मा द्वारा सुनें तो वह अमूल्य ईश्वरी ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जिसके आधार पर हमारा वर्तमान और भविष्य स्वर्गीय सुख-शान्ति से ओत-प्रोत बन जावे ।

## उपवीत और गायत्री का युग्म

यज्ञोपवीत को 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा जाता है । सूत्र डोरे को भी कहते हैं और उस संक्षिप्त शब्द रचना को भी जिसका अर्थ बहुत विस्तृत होता है । व्याकरण, दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड आदि के अनेकों ऐसे ग्रन्थ हैं जिसमें ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने अपने मन्तव्यों को बहुत ही संक्षिप्त संस्कृत वाक्यों में सन्निहित कर दिया है । उन सूत्रों पर लम्बी-लम्बी वृत्तियाँ, टिप्पणियाँ तथा टीकाएँ हुई हैं, जिनके द्वारा उन सूत्रों में छिपे हुए अर्थों का विस्तार होता है । ब्रह्म-सूत्र में यद्यपि अक्षर नहीं हैं तो भी संकेतों से कुछ बताया गया है । मूर्तियाँ, चिह्न, चित्र, अवशेष आदि के आधार पर बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं । यद्यपि इनमें अक्षर नहीं होते तो भी वे बहुत कुछ प्रकट करने में समर्थ हैं । इशारा करने से एक मनुष्य अपने मनोभाव दूसरे पर प्रकट कर देता है । भले ही उस इशारे में किसी शब्द का या लिपि का प्रयोग नहीं किया जाता । यज्ञोपवीत के ब्रह्म-सूत्र यद्यपि वाणी और लिपि से रहित हैं तो भी उनमें एक विशद् व्याख्यान की अभिभावना भरी हुई है ।

गायत्री को गुरु मन्त्र कहा जाता है । यज्ञोपवीत धारण करते समय जो वेदारम्भ कराया जाता है वह गायत्री से कराया जाता है । प्रत्येक द्विज को गायत्री जानना उसी प्रकार अनिवार्य है जैसे कि यज्ञोपवीत धारण करना । यह गायत्री-यज्ञोपवीत का जोड़ा ऐसा ही है जैसा लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधे-श्याम, प्रकृति-ब्रह्म, गौरी-शंकर, नर-मादा का जोड़ा है । दोनों के सम्मिश्रण से ही पूर्ण इकाई बनती है । जैसे स्त्री-पुरुष की सम्मिलित व्यवस्था का नाम ही गृहस्थ है, वैसे ही गायत्री-उपवीत का

सम्मिलन ही द्विजत्व है । उपवीत सूत्र है, तो गायत्री उसकी व्याख्या है । दोनों की आत्मा एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं ।

उपवीत में तीन तार हैं, गायत्री में तीन चरण हैं । 'तत्सवितुर्वरेण्यं' प्रथम चरण, 'भर्गोदेवस्य धीमहि' द्वितीय चरण और 'धीयोयोन: प्रचोदयात्', तृतीय चरण है । तीन तारों का क्या तात्पर्य है, इनमें क्या सन्देश निहित है, यह बात समझनी हो तो गायत्री के इन तीन चरणों को भली प्रकार जान लेना चाहिए ।

उपवीत में तीन प्रथम ग्रन्थियाँ और एक ब्रह्म ग्रन्थि होती है । गायत्री में तीन व्याहृतियाँ (भू: भूव: स्व:) और एक प्रणव (ॐ) है । गायत्री के प्रारम्भ में ॐकार और भू: र्भुव: स्व: का जो तात्पर्य है । उसी की ओर यज्ञोपवीत की तीन ग्रन्थियाँ संकेत करती हैं । उन्हें समझने वाला जान सकता है कि यह चार गाँठें मनुष्य जाति के लिए क्या-क्या सन्देश देती हैं ।

हम इस महाविज्ञान को सरलतापूर्वक हृदयंगम करने के लिए चार भागों में विभक्त कर सकते हैं । १-प्रणव तथा तीनों व्यहृतियाँ अर्थात् यज्ञोपवीत की चारों ग्रन्थियाँ, २-गायत्री का प्रथम चरण अर्थात् यज्ञोपवीत की प्रथम लड़, ३-द्वितीय चरण अर्थात् द्वितीय लड़ ४-तृतीय चरण अर्थत् तृतीय लड़ । आइए अब इन पर विचार करें

१-प्रणव का सन्देश यह है—"परमात्मा सर्वत्र समस्त प्राणियों में समाया हुआ है इसलिये लोक-सेवा के लिए निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए और अपने मन को स्थिर तथा शान्त रखें ।"

२—भू: का तत्वज्ञान यह है—"शरीर अस्थायी औजार मात्र है, इसलिये उस पर अत्यधिक आशक्त न होकर आत्म-बल बढ़ाने का, श्रेष्ठ मार्ग का, सत्कर्मों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये ।"

३—भुव: का तात्पर्य है—"पापों के विरुद्ध रहने वाला मनुष्य, देवत्व को प्राप्त करता है । जो पवित्र आदर्शों और साधनों को अपनाता है वही बुद्धिमान है ।"

४—स्व: की प्रतिध्वनि यह है—"विवेक द्वारा शुद्ध बुद्धि से सत्य को जानने, संयम और त्याग की नीति का आचरण करने के लिए अपने को तथा दूसरों को प्रेरणा देनी चाहिये ।"

यह चतुर्मुखी नीति यज्ञोपवीतधारी की होती है । इस सब का सारांश यह है कि उचित मार्ग से अपनी शक्तियों को बढ़ाओ और अन्तःकरण को उदार रखते हुए अपनी शक्तियों का अधिकांश भाग जनहित के लिए लगाये रहो । इसी कल्याणकारी नीति पर चलने से मनुष्य व्यष्टि रूप से तथा समस्त संसार में समष्टि रूप से सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है । यज्ञोपवीत, गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा है, उनका जो सन्देश मनुष्य जाति के लिए है, उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ऐसा नहीं जिससे वैयक्तिक तथा सामाजिक सुख-शान्ति स्थिर रह सके ।

# भूलोक का कल्पवृक्ष-यज्ञोपवीत

सुरलोक में एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर जिस वस्तु की कामना की जाय वही वस्तु तुरन्त सामने उपस्थित हो जाती है । जो भी इच्छा की जाय तुरन्त पूर्ण हो जाती है । वह कल्पवृक्ष जिसके पास होगा, वे कितने सुखी और सन्तुष्ट होंगे इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है ।

पृथ्वी पर भी एक ऐसा कल्पवृक्ष है जिसमें सुरलोक के कल्पवृक्ष की सभी सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं । इसका नाम है—गायत्री । गायत्री मन्त्र को स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो वह २४ अक्षरों और नौ पदों की एक शब्द-श्रृंखला मात्र है, परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक अवलोकन किया जाय तो उसके प्रत्येक पद और अक्षर में ऐसे तत्वों का रहस्य छिपा हुआ मिलेगा, जिनके द्वारा कल्पवृक्ष के समान ही समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है ।

इसमें बताया गया है "ॐ" ईश्वर, आस्तिकता ही भारतीय धर्म का मूल है । इससे आगे बढ़कर उसके तीन विभाग होते हैं—भू: भुव: स्व: । भू: का अर्थ है—आत्मज्ञान । भुव: का अर्थ है—कर्मयोग । स्व: का तात्पर्य है—स्थिरता समाधि । इन तीन शाखाओं में से प्रत्येक में से तीन-तीन टहनियाँ निकलती हैं, उनमें से प्रत्येक के भी अपने-अपने तात्पर्य हैं । तत्—जीवन विज्ञान । सवितु:—शक्ति संचय । वरेण्यं—श्रेष्ठता । भर्गो—निर्मलता । देवस्य—दिव्य दृष्टि । धीमहि—सद्‌गुण । धियो—विवेक । योन:—संयम । प्रचोदयात्—सेवा । गायत्री हमारी मनोभूमि में इन्हीं बीजों को बोती है । फलस्वरूप जो खेत उगता है, वह कल्पवृक्ष से किसी भी प्रकार कम नहीं होता है ।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि कल्पवृक्ष के सब पत्ते रत्नजड़ित हैं । वे रत्नों जैसे सुशोभित और बहुमूल्य होते हैं । गायत्री कल्पवृक्ष के उपरोक्त नौ पत्ते, निस्संन्देह नौ रत्नों के समान मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण हैं । प्रत्येक पत्ता-प्रत्येक गुण एक-एक रत्न से किसी भी प्रकार कम

नहीं है । "नौलखा हार" की जेवरों में बहुत प्रशंसा है । नौ लाख रुपये की लागत से बना हुआ 'नौलखा हार' पहनने वाले अपने को बड़ा सौभाग्यशाली समझते थे । यदि गम्भीर तात्विक और दूरदृष्टि से देखा जाय तो यज्ञोपवीत भी नवरत्न जड़ित नौलखा हार से किसी प्रकार कम महत्त्व का नहीं है ।

गायत्री गीता के अनुसार यज्ञोपवीत के नौ तार, जिन नौ गुणों को धारण करने का आदेश करते हैं, वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि नौ रत्नों की तुलना में इन गुणों की ही महिमा अधिक है ।

१—जीव विज्ञान की जानकारी होने से मनुष्य जन्म-मरण के रहस्य को समझ जाता है । उसे मृत्यु का डर नहीं लगता, सदा निर्भय रहता है, उसे शरीर का तथा सांसारिक वस्तुओं का लोभ-मोह भी नहीं होता । फलस्वरूप जिन साधारण हानि-लाभों के लिए बेतरह दुःख के समुद्र में डूबते और हर्ष के मद में उछलते फिरते हैं, उन उन्मादों से बच जाता है ।

२—शक्ति-सञ्चय की नीति अपनाने वाला दिन-व-दिन अधिक स्वस्थ, विद्वान, बुद्धिमान, धनी, सहयोग-सम्पन्न, प्रतिष्ठावान बनता जाता है । निर्बलों पर प्रकृति के, बलवानों के तथा दुर्भाग्य के जो आक्रमण होते रहते हैं, उनसे वह बचा रहता है और शक्ति-सम्पन्नता के कारण जीवन के नाना विधि आनन्दों को स्वयं भोगता एवं अपनी शक्ति द्वारा दूसरे दुर्बलों की सहायता करके पुण्य का भागी बनता है । अनीति वहीं पनपती है, जहाँ शक्ति का संतुलन नहीं होता । शक्ति संचय का स्वाभाविक परिणाम है—अनीति का अन्त, जो कि सभी के लिए कल्याणकारी है ।

३—श्रेष्ठता का अस्तित्व परिस्थितियों में नहीं, विचारों में होता है । जो व्यक्ति साधन सम्पन्नता में बढ़े-चढ़े हैं, परन्तु लक्ष, सिद्धान्त, आदर्श एवं अन्तःकरण की दृष्टि से गिरे हुए हैं, उन्हें निकृष्ट ही कहा जायेगा । ऐसे निकृष्ट आदमी अपने आत्मा की दृष्टि में, परमात्मा की दृष्टि में और दूसरे सभी विवेकवान व्यक्तियों की दृष्टि में नीच श्रेणी के ठहरते हैं । अपनी नीचता के दण्ड स्वरूप आत्मा-ताड़ना, ईश्वरीय दण्ड और बुद्धिभ्रम के कारण मानसिक अशान्ति में डूबते रहते हैं । इसके विपरीत कोई व्यक्ति भले ही गरीब, साधन-हीन हो, पर उसका आदर्श सिद्धान्त, उद्देश्य एवं अन्तःकरण उच्च तथा उदार है तो वह श्रेष्ठ ही कहा जायेगा । यह श्रेष्ठता उसके लिए इतने आनन्द का उद्‌भव करती रहती है, जो बड़ी से बड़ी सांसारिक सम्पदा से भी सम्भव नहीं ।

४—निर्मलता का अर्थ है सौन्दर्य ! सौन्दर्य वह वस्तु है, जिसे मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंगे तक पसन्द करते हैं । यह निश्चित है कि कुरूपता का कारण गन्दगी है । मलीनता जहाँ कहीं भी होगी, वहाँ कुरूपता रहेगी और वहाँ से दूर रहने की सबकी इच्छा होगी । शरीर के भीतर मल भरे होंगे तो मनुष्य कमजोर और बीमार रहेगा । इसी कारण कपड़े, घर, भोजन, त्वचा, बाल, प्रयोजनीय पदार्थ आदि में गन्दगी होगी तो वह घृणास्पद, अस्वास्थ्यकर, निकृष्ट एवं निन्दनीय बन जावेंगे । मन में, बुद्धि में, अन्तःकरण में, मलीनता हो, तब तो कहना ही क्या है । इन्सान का स्वरूप हैवान और शैतान से भी बुरा हो जाता है । इन विकृतियों से बचने का एकमात्र उपाय 'सर्वतोन्मुखी निर्मलता' है जो भीतर बाहर सब ओर से निर्मल है, जिसकी कमाई, विचारधारा, देह वाणी, पोशाक, झोंपड़ी, प्रयोजनीय सामग्री निर्मल है, स्वच्छ है, शुद्ध है, वह सब प्रकार सुन्दर, प्रसन्न, प्रफुल्ल, मृदुल एवं सन्तुष्ट दिखाई देगा ।

५—दिव्य दृष्टि से देखने का अर्थ है—संसार के दिव्य तत्वों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना । हर पदार्थ अपने सजातीय पदार्थों को अपनी ओर खींचता है और उन्हीं की ओर खुद खिंचता है । जिसका दृष्टिकोण संसार की अच्छाइयों को देखने, समझने और अपनाने का है, वह चारों ओर अच्छे व्यक्तियों को देखते हैं । लोगों के उपकार, भलमनसाहत, सेवा-भाव, सहयोग और सत्कार्यों पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों में बुराइयों की अपेक्षा अच्छाइयाँ अधिक हैं और संसार हमारे साथ अपकार की अपेक्षा उपकार कहीं अधिक कर रहा है । आँखों पर जैसे रंग का चश्मा पहन लिया जाय, वैसे ही रंग की सब वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं । जिनकी दृष्टि दूषित होती है, उनके लिए प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक प्राणी बुरा है, पर जो दिव्य दृष्टि वाले हैं, वे प्रभु की इस परम पुनीत फुलवारी में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बरसता देखते हैं ।

६—सद्‌गुण—अपने में अच्छी आदतें, अच्छी योग्यताएँ, अच्छी विशेषताएँ धारण करना सद्‌गुण कहलाता है । विनय, नम्रता, शिष्टाचार, मधुर भाषण, उदार व्यवहार, सेवा-सहयोग, ईमानदारी, परिश्रमशीलता, समय की पाबन्दी, नियमितता, मितव्ययिता, मर्यादित रहना, कर्त्तव्य परायणता, जागरूकता, प्रसन्न मुख-मुद्रा, धैर्य,

साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ, आशा, उत्साह यह सब सद्‌गुण हैं । संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, व्यापार, वक्तृता व्यवसाय, उद्योग, शिक्षण आदि योग्यताएँ होना सद्‌गुण हैं । इस प्रकार के सद्‌गुण जिसके पास हैं; वह आनन्दमय जीवन बितावेगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है ।

७—विवेक—इस प्रकार का आत्मिक प्रकाश है, जिसके द्वारा सत्य-असत्य की, उचित-अनुचित की, आवश्यक-अनावश्यक की, हानि-लाभ की परीक्षा होती है । संसार में असंख्यों परस्पर विरोधी मान्यताएँ, रिवाजें, विचारधाराएँ प्रचलित हैं और उनमें से हर एक के पीछे तर्क, कुछ आधार, कुछ उदाहरण तथा कुछ पुस्तकों एवं महापुरुषों के नाम अवश्य सम्बद्ध होते हैं । ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन होता है कि इन परस्पर विरोधी बातों में क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य ? इस सम्बन्ध में देश, काल, परिस्थिति, उपयोगिता, जनहित आदि बातों को ध्यान में रखते हुए सद्‌बुद्धि से निर्णय किया जाता है, वही प्रामाणिक एवं ग्राह्य होता है । जिसने उचित निर्णय कर लिया तो समझिये कि उनसे सरलतापूर्वक सुख-शान्ति के लक्ष्य तक पहुँचने की सीधी राह पा ली । संसार में अधिकांश कलह, क्लेश, पाप एवं दुःखों का कारण दुर्बुद्धि, भ्रम तथा अज्ञान होता है । विवेकवान् व्यक्ति इन सब उलझनों से अनायास ही बच जाता है ।

८—संयम—जीवन शक्ति का, विचार-शक्ति का, भोगेच्छा का, श्रम का संतुलन ठीक रखना ही संयम है । न इनको घटने देना, न नष्ट-निष्क्रिय होने देना और न अनुचित मार्ग में व्यय होने देना संयम का तात्पर्य है । मावन-शरीर आश्चर्यजनक शक्तियों का केन्द्र है । यदि उन शक्तियों का अपव्यय रोककर उपयोगी दशा में लगाया जाय तो अनेक आश्चर्यजनक सफलताएँ मिल सकती हैं और जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति हो सकती है ।

९—सेवा—सहायता, सहयोग, प्रेरणा, उन्नति की ओर सुविधा की ओर किसी को बढ़ाना यह उसकी सबसे बड़ी सेवा है । इस दशा में हमारा शरीर और मस्तिष्क सबसे अधिक हमारी सेवा का पात्र है, क्योंकि वह हमारे सबसे अधिक निकट है । आमतौर से दान देना, समय देना यह बिना मूल्य अपनी शारीरिक, मानसिक शक्ति किसी को देना सेवा कहा जाता है और यह अपेक्षा नहीं की जाती कि हमारे इस त्याग से दूसरों में कोई क्रिया-शक्ति, आत्म-निर्भरता, स्फूर्ति, प्रेरणा जागृत हुई या नहीं । इस संसार की सेवा दूसरों को आलसी, परावलम्बी और भाग्यवादी बनाने वाली हानिकारक सेवा है । हम और दूसरों की इस प्रकार प्रेरक सेवा करें, जो उत्साह, आत्म-निर्भरता और क्रियाशीलता को सतेज करने में सहायक हो । सेवा का फल है—उन्नति । सेवा द्वारा अपने को तथा दूसरों को समुन्नत बनाना; संसार को अधिक सुन्दर और आनन्दमय बनाने वाला महान् पुण्य कार्य है इस प्रकार के सेवाभावी पुण्यात्मा सांसारिक और आत्म-दृष्टि से सदा सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं ।

यह नवगुण निःसन्देह नवरत्न हैं । लाल (माणिक) मोती-मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, बैदूर्य यह नौ रत्न कहे जाते हैं । कहते हैं जिसके पास यह रत्न होते हैं, वे सर्वसुखी समझे जाते हैं । पर भारतीय धर्मशास्त्र कहता है कि जिनके पास यज्ञोपवीत और गायत्री मिश्रित उपरोक्त आध्यात्मिक नवरत्न है वे इस भूतल के कुबेर हैं । भले ही उनके पास धन-दौलत, जमीन-जायदाद न हो । यह नवरत्न मण्डित कल्पवृक्ष जिसके पास है, वह विवेकयुक्त यज्ञोपवीतधारी सदा सुरलोक की सम्पदा भोगता है । उसके लिए यह भूलोक ही स्वर्ग है, वह कल्पवृक्ष हमें चारों फल देता है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों सम्प्रदाय से हमें परिपूर्ण कर देता है ।

## साधकों के लिए उपवीत आवश्यक है

कई व्यक्ति सोचते हैं कि यज्ञोपवीत हमसे सधेगा नहीं हम उसके नियमों का पालन नहीं कर सकेंगे, इसलिये हमें उसे धारण नहीं करना चाहिये । यह तो ऐसी ही बात हुई, जैसे कोई कहे कि मेरे मन में ईश्वर भक्ति नहीं, इसलिये मैं पूजा-पाठ न करूँगा । पूजा पाठ करने का तात्पर्य ही भक्ति उत्पन्न करना है, यह भक्ति पहले से ही होती तो पूजा-पाठ करने की आवश्यकता ही न रह जाती । यही बात जनेऊ के सम्बन्ध में है, यदि धार्मिक नियमों का साधन अपने आप ही हो जाय तो उसको धारण करने की आवश्यकता ही क्या ? चूँकि आमतौर से नियम नहीं सधते, इसीलिये तो यज्ञोपवीत का प्रतिबन्ध लगाकर उन नियमों को साधने का प्रयत्न किया जाता है । जो लोग नियम नहीं साध पाते उन्हीं के लिए सबसे अधिक आवश्यकता जनेऊ धारण करने की है । जो

बीमार है उसे ही तो दवा चाहिये, यदि बीमार न होता तो दवा की आवश्यकता ही उसके लिए क्या थी?

नियम क्यों साधने चाहिये इसके बारे में लोगों की बड़ी विचित्र मान्यताएँ हैं । कई आदमी समझते हैं कि भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ही जनेऊ का नियम है बिना स्नान किये, रास्ते का चला हुआ, रात का बासी हुआ, अपनी जाति के अलावा किसी का बना हुआ भोजन न करना ही यज्ञोपवीत की साधना है । यह बड़ी अधूरी और भ्रम पूर्ण धारणा है । यज्ञोपवीत का मन्तव्य मानव-जीवन की सर्वांग पूर्ण उन्नति करना है, उन उन्नतियों में स्वास्थ्य की उन्नति भी एक है और उनके लिए अन्य नियमों का पालन करने के साथ-साथ भोजन सम्बन्धी नियमों की सावधानी भी रखना उचित है इस दृष्टि से जनेऊधारी के लिए भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ठीक है, परन्तु जिस प्रकार प्रत्येक द्विज जीवन का सर्वागीण उन्नति के सभी नियमों को पूर्णतया पालन नहीं कर पाता फिर भी कन्धे पर जनेऊ धारण किये रहता है फिर भोजन सम्बन्धी किसी नियम में यदि त्रुटि रह जाय तो यह नहीं समझना चाहिये कि त्रुटि के कारण जनेऊ धारण करने का अधिकार ही छिन जाता है । यदि झूँठ बोलने से, दुराचार की दृष्टि रखने से, बेईमानी करने से, आलस्य प्रमाद या व्यसनों में ग्रस्त रहने से जनेऊ नहीं टूटता तो केवल भोजन सम्बन्धी नियम में कभी-कभी थोड़ा-सा अपवाह आजाने से नियम टूट जायेगा यह सोचना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है।

मल-मूत्र के त्यागने में कान पर जनेऊ चढ़ाने में भूल होने का अक्सर भय रहता है । कई आदमी इसी डर की बजह से यज्ञोपवीत नहीं पहिनते या पहिनना छोड़ देते हैं। यह ठीक है कि इस नियम का कठोरता से पालन होना चाहिए, पर यह भी ठीक है कि आरम्भ में इसकी आदत न पड़ जाने तक नौसिखियों को कुछ सुविधा भी मिलनी चाहिए, जिससे कि उन्हें एक दिन में तीन-तीन जनेऊ बदलने के लिए विवश न होना पड़े । इसके लिये ऐसा किया जा सकता है कि जनेऊ का एक फेरा गर्दन में घुमा दिया जाय, ऐसा करने से वह कमर से ऊँचा आ जाता है । कान में चढ़ाने का प्रधान प्रयोजन यह है कि मल-मूत्र की अशुद्धता का यज्ञ सूत्र से स्पर्श न हो, जब जनेऊ कण्ठ में लपेट दिये जाने से कमर से ऊँचा उठ आता है; तो उससे अशुद्धता का स्पर्श होने की आशंका नहीं रहती और यदि कभी कान में चढ़ाने की भूल भी हो जाय; तो उसके बदलने की आवश्यकता नहीं होती । थोड़े दिनों में जब भली प्रकार आदत पड़ जाती है तो फिर कण्ठ में लपेटने की आवश्यकता नहीं रहती ।

छोटी आयु वाले बालकों के लिये; तथा अन्य भुलक्कड़ व्यक्तियों के लिये तृतीयांश यज्ञोपवीत की व्यवस्था की जा सकती है । पूरे यज्ञोपवीत की अपेक्षा दो तिहाई छोटा अर्थात् एक तिहाई लम्बाई का तीन लड़ वाला उपवीत केवल कण्ठ में धारण कराया जा सकता है। इस प्रकार के उपवीत को आचार्यों ने 'कण्ठी' शब्द से सम्बोधित किया है । छोटे बालकों का जब उपनयन होता था, तब उन्हें दीक्षा के साथ कण्ठी पहना दी जाती थी । आज भी गुरु नामधारी पण्डित जी गले में कण्ठी पहनकर और कान में मन्त्र सुना कर 'गुरु दीक्षा' देते हैं ।

इस प्रकार के अविकसित व्यक्ति उपवीत की नित्य सफाई का भी पूरा ध्यान रखने में प्रायः भूल करते हैं, जिससे शरीर का पसीना उसमें रमता रहता है, फलस्वरूप बदबू, गन्दगी, मैल और रोग-कीटाणु उसमें पलने लगते हैं । ऐसी स्थिति में यह सोचना पड़ता है कि कोई ऐसा उपाय निकल आवे, जिससे कण्ठ में पड़ी हुई उपवीती-कण्ठी का शरीर से कम स्पर्श हो । इस निमित्त तुलसी, रुद्राक्ष या किसी और पवित्र वस्तु के दानों में कण्ठी के सूत्रों को पिरो दिया जाता है, फलस्वरूप वे दाने ही शरीर का स्पर्श कर पाते हैं सूत्र अलग रहा आता है और पसीने का जमाव होते एवम् शुद्धि में प्रमाद होने के खतरे से बचत हो जाती है, इसीलिए दाने वाली कण्ठियाँ पहनने का रिवाज चलाया गया ।

पूर्ण रूप से न सही आंशिक रूप से सही, गायत्री के साधकों को यज्ञोपवीत धारण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उपनयन गायत्री का मूर्तिमान प्रतीक है, उसे धारण किये बिना भगवती की साधना का धार्मिक अधिकार नहीं मिलता । आजकल नई फैशन से जेवरों का रिवाज कम होता है, फिर भी गले में कण्ठी-माला किसी न किसी रूप में स्त्री-पुरुष धारण करते हैं । गरीब स्त्रियाँ काँच के मनकों की कण्ठियाँ पहनती हैं, सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ चाँदी, सोने, मोती आदि की कण्ठियाँ धारण करती हैं इन आभूषणों के नाम हार, नैकलेस, जंजीर, माला आदि रखे गये हैं, पर वह वास्तव में कण्ठियों के ही प्रकार हैं । चाहे स्त्रियों के पास कोई अन्य आभूषण हो चाहे न हो, परन्तु इतना निश्चित है कि कण्ठी को गरीब से गरीब स्त्रियाँ भी किसी न किसी रूप से अवश्य धारण करेंगी । इससे प्रकट है कि भारतीय नारियों ने अपने सहजधर्म प्रेम को

किसी रूप में जीवित रखा है और उपवीत को किसी न किसी प्रकार धारण किया है ।

जो लोग उपवीत धारण करने के अधिकारी नहीं कहे जाते, जिन्हें कोई दीक्षा नहीं देता, वे भी गले में तीन तार का या नौ तार का डोरा चार गाँठ लगाकर धारण कर लेते हैं। इस प्रकार चिह्न पूजा हो जाती है । पूरे यज्ञोपवीत का एक तिहाई लम्बा यज्ञोपवीत गले में डाले रहने का भी कहीं-कहीं रिवाज है ।

## यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टिकोण

शास्त्रों में यज्ञोपवीत की महिमा बड़े विस्तार से वर्णन की गई है । उसे प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी बताया गया है । देखिए—

**कोटि जन्मार्जितं पापं ज्ञानाज्ञान कृतं च यत् ।**
**यज्ञोपवीत मात्रेण पलायन्ते न संशयः ॥**

*—पद्म पुराण कौशल खण्ड*

करोड़ों जन्म के ज्ञान अज्ञान में किये हुए पाप यज्ञोपवीत धारण करने से नष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं।

**येनेन्द्राय बृहस्पतिर्व्यासः पर्यदधादमृतं तेनत्वा**
**परिदधाभ्या युष्ये दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥**

*—पा. गृ.२ /२ /७*

जिस तरह इन्द्र को बृहस्पति ने यज्ञोपवीत दिया था उसी तरह आयु, बल, बुद्धि और सम्पत्ति की वृद्धि के लिए मैं यज्ञोपवीत धारण करता हूँ ।

**देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तर्षयस्तपसे ये निषेदुः ।**
**मीमा जग्या ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमे व्योयम् ॥**

*—ऋग्वेद १० /१०९ /४*

प्राचीन तपस्वी सप्त ऋषि तथा देवगण ऐसा कहते हैं कि यज्ञोपवीत ब्राह्मण की महान् शक्ति है । यह शक्ति अत्यन्त शुद्ध चरित्रता और कठिन कर्त्तव्यपरायणता प्रदान करने वाली है । इस यज्ञोपवीत को धारण करने से नीच जन भी परमपद को पहुँच जाते हैं ।

**अमौक्तिकमसौवर्ण्यं ब्राह्मणानां विभूषणम् ।**
**देवतानां च पितृणां भागो येन प्रदीयते ॥**

*—मृच्छकटिक १०-१८*

यज्ञोपवीत न तो मोतियों का है और न स्वर्ण का फिर भी यह ब्राह्मणों का आभूषण है । इसके द्वारा देवता और ऋषियों का ऋण चुकाया जाता है ।

**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्षत्सहजं पुरस्तात् ।**
**आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥**

*—ब्रह्मोपनिषद्*

यज्ञोपवीतं परम पवित्र है, प्रजापति ईश्वर ने इसे सबके लिए सहज ही बनाया है । यह आयुवर्धक, स्फूर्तिदायक, बन्धन से छुड़ाने वाला, पवित्रता देने वाला है। यह बल और तेज देता है ।

**त्रिरस्यता परमासन्ति सत्यास्यार्हा देवस्य जनि मान्यग्नेः ।**
**अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्योरोरूचानः ।**

*—ऋग्वेद ४ /७ /१*

इस उपवीत के तीनों सार महान् हैं । उससे सत्य, तेजस्वी और पवित्र व्यवहार को ग्रहण करो । इसके मध्य में (ब्रह्मग्रन्थि में) अनन्त परमात्मा की तेजस्विता, शुचिता, श्रेष्ठता सन्निहित है । यह यज्ञोपवीत धारणकर्त्ता को प्राप्त होती है ।

**सदा यज्ञोपवीतिना भाव्यं सदावद्ध शिखेन च ।**
**विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥**

*—बोधायन*

सदा यज्ञोपवीत पहने और शिख में गांठ लगाकर रहे बिना शिखा और बिना यज्ञोपवीत वाला जो धार्मिक कर्म करता है सो निष्फल जाते हैं ।

**बिना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिबते द्विजः ।**
**उपवासेन चैकेन पंच गव्येन शुद्धयति ॥**

यज्ञोपवीत न होने पर द्विज को पानी तक न पीना चाहिए । (यदि इस नियम के भंग होने से वह पतित हो जाय तो) एक उपवास करने पर तथा पंच गव्य पीने पर उसकी शुद्धि होती है ।

**नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानि नयनाद्दते ।**
**शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ।**

यज्ञोपवीत होने से पहले बालक को वेद न पढ़ावें । क्योंकि जब तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता तब तक ब्राह्मण का बालक भी शूद्र समान है ।

**कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेश न भिष्यते ।**
**ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधि पूर्वकम् ॥**

जब बालकों का उपनयन संस्कार हो जावे तभी शास्त्र की आज्ञानुसार उसका अध्ययन आरम्भ होना चाहिए इससे पूर्व नहीं ।

**जन्यना जायते शूद्र संस्कारात् द्विज उच्यते ।**
**वेद पाठी भवेद् विप्रः, ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ।**

जन्म से सब शूद्र हैं । यज्ञोपवीत होने से द्विज बनते हैं जो वेदपाठी है वह विप्र है । जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है ।

**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।**
**तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबंधनम् ।**

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों द्विज कहलाते हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत धारण करने से उनका दूसरा जन्म होता है ।

**आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।**
**तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ।**

—*अथर्व.* ११,३,५,३

गर्भ में बस कर माता-पिता के सम्बन्ध द्वारा मनुष्य का साधारण जन्म घर में होता है । दूसरा जन्म विद्या रूपी माता के गर्भ में, आचार्य रूपी पिता द्वारा गुरु-गृह में यज्ञोपवीत और विद्याभ्यास द्वारा होता है ।

**तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।**
**तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥**

यज्ञोपवीत-मेखला-धारण करने से मनुष्य का ब्रह्म जन्म होता है । उस जन्म में गायत्री माता है और आचार्य पिता है ।

**वेद प्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।**
**नह्यास्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥**

वेद पढ़ाने वाले आचार्य को पिता कहते हैं । जब बालक का यज्ञोपवीत संस्कार हो जाता है तब उसे धार्मिक कर्मों को करने का अधिकार मिलता है, इससे पूर्व नहीं ।

**मातुरग्रेऽधि जननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् ।**

पहला जन्म माता के पेट से होता है । दूसरा यज्ञोपवीत संस्कार से होता है ।

**आचार्य उपनयमानो, ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।**
**तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ।**

—*अथर्व.* ११,३,५,३,४,५

आचार्य जब ब्रह्मचारी का उपनयन करता है वही वास्तविक जन्म है । तीन रात्रि तक आचार्य उसे गर्भ में रखते हैं, तब उसका देव तुल्य जन्म होता है ।

उपरोक्त शास्त्र वचनों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञोपवीत धारण करना कितना महत्त्वपूर्ण है । इस सूत्र के माध्यम से पशु को मनुष्य बनाने का संस्कार किया जाता है, उसकी मनोभूमि पर यह छाप जमाई जाती है कि पशुओं की तरह मनुष्यों को शिश्नोदर परायण-रोटी और कामुकता के पीछे ही पागल नहीं बना रहना है वरन् जीवन को आदर्शमय, उद्देश्यमय, धर्ममय बनाने के लिए नियोजित करना है । यह आयोजन, यह व्रत, यह संकल्प यह प्रतिज्ञा धारण ही जनेऊ पहनना है । इस व्रत को कंधे पर धारण करने वाला पशुता से ऊँचा उठ कर मनुष्यता की मनोभूमि में विकसित होना आरम्भ करता है, इसलिए यह द्विजत्व या दूसरा जन्म धारण करना कहा जाता है । भारतीय धर्म विज्ञान के आचार्यों ने उस बात पर बहुत अधिक जोर दिया है कि लोग अपने बालकों को छोटी आयु में ही उपवीत करादें ताकि वे बचपन से ही धर्म का, कर्त्तव्य का महत्त्व अनुभव करने लगें ।

## यज्ञोपवीत बनाने की विधि

**कार्पासक्षौमवमेवालशणवल्वतृणोद्भवम् ।**
**सदा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ।**

द्विजातियों का कपास, रेशम, गौ के बाल, सन या घस को भी बनाकर धारण करना पड़े तो भी यज्ञोपवीत पहनना चाहिए, छोड़ना नहीं चाहिए ।

कपास का (सूत का) यज्ञोपवीत धारण करना सुगम सात्विक, सस्ता तथा सुखकर है परन्तु कोई-कोई प्रदेश ऐसे हैं जहाँ कपास उपलब्ध नहीं होती तथा कोई विशेष समय भी ऐसा हो सकता है जब सूत न मिल सके । ऐसी दशा में भी यज्ञोपवीत पहनना न छोड़ना चाहिए वरन् रेशम, गौ के बाल, सन, यहाँ तक कि घास का बनाकर भी पहना जा सकता है । शास्त्रकार का प्रयोजन यह है कि सूत न मिलने जैसी कठिनाई में भी जनेऊ का त्याग न होना चाहिए । घास, सन या बालों के जनेऊ भारी, चुभने वाले, जल्दी टूटने वाला होगा तो भी न पहनने की अपेक्षा तो उसका पहनना ही श्रेयष्कर है । तात्पर्य यह है कि किसी अवस्था में उसे त्यागना न चाहिए ।

यज्ञोपवीत जैसा पवित्र धर्म चिह्न है, उसके अनुरूप पवित्रता ही उसके निर्माण में भी बरती जानी चाहिए । इसी दृष्टि से यज्ञोपबीत बनाने का विधि विधान ऐसा रखा गया है कि धार्मिक संस्कारों की सूक्ष्म छाया उसके ऊपर अंकित हो । नीचे यज्ञोपवीत के निर्माण का विधान बताया जाता है ।

**ग्रामान्निष्क्रम्य संखाय षण्णवत्यङ्ग लीषु तत् ।**
**तावत्रिगुणितं सूत्रं प्रक्षालयाव्लिङ्गकैस्त्रिभिः ।१।**
**देवागारेऽथवा गोष्टे नद्यां वाऽन्यत्र वा शुचौ ।**
**सावित्र्या त्रिवृतं कुर्यान्नवतन्तु तु तद् भवेत् ।२।**
**कार्पासं त्रिवृतं श्लक्षणं निदध्याद् वाम हस्तके ।**
**सावित्रया दश कृतोऽभिर्मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत ।३।**
**हरिब्रह्मेश्वरेम्यश्च प्रणम्य परिपूज्य च ।**
**यज्ञोपवीतमितिवा व्याहृत्यावापिधारयेत् ।४।**

अर्थात्—गाँव से बाहर जाकर देवालय, नदी, गौशाला या अन्य किसी पवित्र स्थान में जाकर ९६ चप्पे सूत नापे । ऐसे तीन चप्पे बनाकर गीला करें और गायत्री मंत्र का जप करता हुआ उन्हें तीन लड़ी का बनाकर ऐंठ लगावें और ॐकार उच्चारण करता हुआ ग्रन्थि लगावें यज्ञोपवीत को बायें हाथ पर रख कर गायत्री मंत्र के उच्चारण के साथ उस पर दाहिने हाथ से बायें हाथ पर रखकर गायत्री मन्त्र के उच्चारण के साथ उस पर दाहिने हाथ से दस-दस बार जल छिड़कें और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को प्रणाम एवं पूजन करता हुआ व्याहृतियों (ॐ भूर्भुवः स्वः) का उच्चारण करता हुआ यज्ञोपवीत धारण करें ।

**अवलिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षल्योर्ध्वावृतं त्रिवृत् ।**
**अप्रदक्षिणमावृतं सावित्र्यात्रिगुणी कृतम् ॥**
**अधः प्रदक्षमावृत्तं समंस्यान्नव सूत्रकम् ।**
**यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्राणि नवतन्तवः ॥**

*—देवल (मदन परिजात)*

अर्थात्—९६ चप्पे तीन गुण्डियाँ लेकर उन्हें पानी में भिगोकर फटकार लें । फिर उन्हें खोलकर इकट्ठी करके तीन व्याहृतियों (ऊँभूर्वः स्वः) से बायीं ओर को ऐंठ लगाकर बटा दें, जिससे वह एक तीन सूत्र वाली डोरी बन जाय फिर उस तीन सूत्र वाली डोरी को गायत्री मन्त्र पढ़ता हुआ तिगुना कर दाहिनी ओर नीचे को ऐंठे, इससे नौ तार की एक डोरी बन जाती है । इस डोरी से यज्ञोपवीत बनता है ।

**त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ।**

*—कात्यायन स्मृति ६-२*

अर्थात्—इस नौ सूती डोरे को तिलड़ा करके गाँठ लगादें ।

**त्रिरावेष्य दृढं बद्धवा ब्रह्मा विष्णु शिवान्नमेत् ।**

अर्थात्— ब्रह्म ग्रन्थि लगाते समय देवता ब्रह्मा विष्णु और शिव को नमस्कार करें ।

विधि पूर्वक बने हुए यज्ञोपवीत को धारण करने से ब्रह्म भावना उदय होती है कारण यह है कि उसके निर्माण में शास्त्रीय विधि विधान एवं वैदिक कर्म काण्ड का प्रयोजन हुआ है । बाजारू अशुद्ध सूत से अविधि पूर्वक बने हुए जनेऊ पहनने से वास्तविक अभिप्राय की पूर्ति नहीं हो सकती । इसलिए बाजारू जनेऊ न पहन कर शुद्ध रीति से बनाये हुए यज्ञोपवीत ही धारण करने चाहिए ।

**सिद्धार्थफलमानेन धार्यस्यादुपवीतकम् ।**
**यशोहरमतिस्थूलमतिसृक्ष्म धनापहम् ॥**

*—स्मृति प्रकाश*

सरसों के फल की बराबर मोटाई का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए । बहुत मोटा यश का नाश करता है और बहुत पतला धन का नाश करता है ।

अधिक मोटा बनाने में सूत का अधिक अपव्यय होता है । लेटते समय शरीर में चुभता है एवं फूहड़पन प्रकट करता है इसलिए यश का नाश करने वाला है । पतला जल्दी टूटता है समय तथा सूत का बेकार खर्च होता है । इसलिए बीच की मोटाई का पहनना चाहिए । यह मध्यम मोटाई सरसों की बराबर मानी गई है ।

**कृते पद्ममयं प्रोक्तं त्रेतायां कनकोद्भवम् ।**
**द्वापरे राजतं प्रोक्तं कलौ कर्पाससम्भवम् ।**

सतयुग में पद्ममय, त्रेता में स्वर्ण के, द्वापर में चाँदी के जनेऊ पहने जाते थे पर कलियुग में कपास के ही सम्भव हैं ।

## कान पर जनेऊ चढ़ाने का हेतु

**मूत्रेतु दक्षिणे कर्णे, पुरीषे वाम कर्णकं ।**
**उपवीतं सदा धार्य मैथुने तूपवीतिवत् ॥**

*—आह्निक कारिका—*

"मूत्र त्यगने के समय दाहिने कान पर यज्ञोपवीत को चढ़ालें और शौच के समय बायें कान पर रखें तथा मैथुन के समय सदा पहनता है वैसा ही पहने रहें ।"

मल-मूत्र त्याग में अशुद्ध वायु, अशुद्ध जल, अशुद्ध पदार्थ एवं अशुद्ध अंङ्गों से यज्ञोवीत का स्पर्श हो जाने की

आशंका रहती है । किन्तु उपवीत की पवित्रता को सदा कायम रखना आवश्यक है इसलिये मल-मूत्र त्याग के समय कान पर चढ़ाने का विधान है । कान पर लपेट लेने से उपवीत ऊँचा हो जाता है, कमर से ऊपर आ जाता है और उसके अपवित्र हो जाने की सम्भावना नहीं रहती ।

ऐसा भी कहा जाता है कि कान के मूल में जो नाड़ियाँ हैं उनका मूत्राशय और गुदा से सम्बन्ध है । दाहिने कान की नाड़ी का मूत्राशय से सम्बन्ध है और बायें कान की नाड़ी का गुदा से सम्बन्ध है । मूत्र त्याग करते समय बायें कान को लपेटने से उन नाड़ियों पर दबाव पड़ता है, फलस्वरूप मूत्राशय की नाड़ियाँ भी कड़ी रहती हैं । तदनुसार बहुमूत्र मधुमेह, प्रमेह आदि रोग नहीं होते । इसी प्रकार दाहिने कान की नाड़ियाँ दबने से काँच, भगन्दर, बवासीर आदि गुदा के रोग नहीं होते । कई सज्जन शौच जाते समय दोनों कानों पर यज्ञोपवीत चढ़ाते हैं, उनका तर्क यह है कि मल त्याग के समय मूत्र विसर्जन भी होता है इसलिये दोनों कानों पर उपवीत को चढ़ाना चाहिए । मैथुन के समय कान पर भले ही न चढ़ाया जाय, पर अशुत्र अंगों से ऊँचा अवश्य कर लेना चाहिए ।

**क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।**
**पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥**

*—पाराशर स्मृति ७/३७*

"छींकने, थूकने, दाँतों से किसी अंग के उच्छिष्ट हो जाने पर, झूठ बोलने और पातकी के साथ सम्भाषण करने पर अपने दाहिने कान का स्पर्श करे ।"

छोटी-मोटी अशुद्धताएँ कान का स्पर्श करने मात्र से दूर हो जाती हैं । कान को छूने, पकड़ने या दबाने से भूल सुधारने का प्रायश्चित होने का सम्बन्ध है । बालक के कान पकड़ने का अध्यापकों का यही प्रयोजन होता है कि उसके देवत्व का और मनोबल का विकास हो । कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने से भी सूक्ष्म रूप से वही प्रयोजन सिद्ध होता है । इसलिए भी मल-मूत्र के समय उसके कान पर चढ़ाने का विधान है ।

**आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट् ।**
**विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ॥**

*—शांख्यायन*

**अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा ।**
**सर्वे देवास्तु विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥**

*—आचार मयूख*

**प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।**
**विप्रस्य दक्षिणे कर्णो वसन्ति मुनिरब्रवीत् ॥**

*—पाराशरः*

उपरोक्त तीन श्लोकों में दाहिने कान की पवित्रता का वर्णन है, शांख्यायन का मत है कि आदित्य, वसु, रुद्र, वायु और अग्नि देवता विप्र के दाहिने कान में सदा रहते हैं । आचार मयूखकार का कथन है—अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य, अनिल तथा सब देवता ब्राह्मण के दाहिने कान में निवास करते हैं । पाराशर का मत है कि गंगा आदि सरितायें, तीर्थ-गण दाहिने कान में निवास करते हैं । इसलिए ऐसे पवित्र अंग पर मलमूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत को चढ़ा लेते हैं जिससे वह अपवित्र न होने पावे ।

## नियमोपनियम

**सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।**
**विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ।**

*—बोधायन*

अर्थात्—सदा यज्ञोपवीत धारण किये और शिखा में गाँठ लगा कर रहे । बिना शिखा और सूत्र वाले का सुकृत निष्फल जाता है ।

यज्ञोपवीत की भाँति शिखा के महत्त्व को भी हृदयङ्गम करना चाहिए । शिखा में गाँठ लगाये रहना ही उसका विधान है, शिखा सूत्र को समुचित धारण न करने वालों को यह भय बताया गया है कि उनके सुकृत निष्फल जाते हैं । हमारे सुकृत कहीं निष्फल न चले जायें, इस भय से भी शिखा सूत्र को धारण करने से अन्ततः उनके लाभ को तो प्राप्त कर ही लेंगे । नरक के भय से व्यभिचार न करने वाली स्त्री भी धर्म का लाभ प्राप्त करती ही है ।

**आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः । आद्वाविंशाद् क्षत्रियस्य । आचतुर्विंशाद् वैश्यस्य । अत ऊर्ध्वं पतित सावित्रिका भवन्ति ।**

*—पारस्कर गृह्य सूत्र और आश्वलायन गृ. सूत्र*

अर्थात्—अधिक से अधिक सोलह वर्ष तक ब्राह्मण का, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय का और चौबीस वर्ष तक वैश्य का यज्ञोपवीत हो जाना चाहिए । इससे अधिक समय होने पर वह गायत्री से पतित हो जाता है ।

नियत समय पर उपवीत किसी कारणवश न हो सके तो भी अधिक विलम्ब न करना चाहिए, क्योंकि युवावस्था से पूर्व ही संस्कारों का बीजारोपण ठीक प्रकार हो सकता है । कच्ची लकड़ी मुड़ सकती है पर पकी हुई लकड़ी को झुकाना कठिन है । यौवन से ही धार्मिक संस्कारों का

आचरण आरम्भ हो जाना चाहिए । अन्यथा युवावस्था की आँधी दूसरे मनोविकारों की ओर मन को उड़ा ले जाने में सफल हो जावेगी । जिसका मन बालकपन में ही धर्म-भाव में सध जाता है उसे यौवन के विकार उसी प्रकार विचलित नहीं कर पाते जैसे मजबूत रस्सियों से बँधे हुए छप्पर को आँधी उड़ा ले जाने नहीं पाती । बचपन से ब्रह्मसंस्कार न जमाना पतन का दरवाजा खुला रखना है । इसी दृष्टि से यज्ञोपवीत में अधिक विलम्ब करने वालों को इस सूत्र में पतित माना गया है ।

**अष्ट वर्ष ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा ।**
**एकादश वर्ष राजन्यं द्वादश वर्ष वैश्यम् ॥**

*—पारस्कर गृह्य सूत्र*

अर्थात्—जन्म से या गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का, ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष वैश्य का यज्ञोपवीत होना चाहिए ।

ब्रह्मत्व प्रधान बालकों में धर्म साधना छोटी आयु में ही उग आती है । क्षत्रियत्व का शरीर की पुष्टता से सम्बन्ध होने के कारण उसकी प्रतिभा कुछ विलम्ब से उगती है । वैश्यत्व के लिए अनुभव और सांसारिक ज्ञान की अधिक आवश्यकता है । यह तत्व अपेक्षाकृत देर में परिपक्व होता है । इसीलिए ब्राह्मण को सबसे शीघ्र आठ वर्ष की आयु में, क्षत्रिय को कुछ देर में अर्थात् ११ वर्ष की आयु में और वैश्य बालक को बारह वर्ष की आयु में सूत्र धारण करने का विधान है ।

**बिना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिबते द्विजः ।**
**उपवासेन चैकेन पंच गव्येन शुद्धयति ॥**

अर्थात—यज्ञोपवीत न होने पर द्विज को पानी तक न पीना चाहिए । (यदि इस नियम को भंग करने पर वह पतित हो जाय तो) एक उपवास करने पर तथा पंचगव्य पीने पर उसकी शुद्धि होती है ।

इस विधान के अनुसार सदा यज्ञोपवीत धारण किए रहना आवश्यक है । यह न होना चाहिए की कभी पहन लिया कभी उतार दिया । जिस द्विज के पास यज्ञोपवीत न हो उसे दूसरे लोग ऐसा निन्दनीय समझें कि उसके हाथ का जल तक न पीयें और इस अपराध को वह स्वयं पाप समझें । इस पाप के प्रायश्चित के लिए उसे एक दिन उपवास करना चाहिए तथा पंचगव्य (गौ मूत्र, गोबर, गौ दुग्ध, गौ दधि, गौ घृत) पीकर आत्म शुद्धि करनी चाहिए। यज्ञोपवीत सदैव धारण किए रहना द्विजों को आवश्यक कर्त्तव्य समझना चाहिए ।

यज्ञोपवीत धारण करने वालों को उसके धारण करने का विधि-विधान भी जानना आवश्यक है । इन नियमोपनियमों को जानने और उनका विधिवत् पालन करने से उपवीत के महत्त्व का मन पर श्रद्धा-युक्त संस्कार जमता है । यदि उसे यों ही कण्ठी की तरह गले में टाँगे रहा जाय, समय-समय पर उसका विधिविधान पालन न किया जाय तो मन उसे भूला रहता है । उसकी ओर बार-बार ध्यान आकर्षित न हो तो जिन उद्देश्यों के लिए यज्ञोपवीत धारण किया गया था उनका स्मरण न रहेगा । इसलिए शास्त्रकारों ने यज्ञोपवीत के साथ उसके विधि-विधानों का सुदृढ़ सम्बन्ध जोड़ दिया है । जो लोग इनका पूरी तरह पालन नहीं करते वे यज्ञोपवीत के महान् आध्यात्मिक लाभ को प्राप्त नहीं कर पाते ।

सावधानी के साथ यज्ञोपवीत की पवित्रता का ध्यान रखना, उसके विधि-विधानों को सतर्कतापूर्वक पालन करना, उपवीत के महत्त्व में श्रद्धा एवं आस्था सुदृढ़ बनाये रहने के लिए आवश्यक है । नीचे कुछ ऐसे ही नियमोपनियम दिये जाते हैं ।

**सूतके मृतके क्षौरे चाण्डाल स्पर्शने तथा ।**
**यज्ञसूत्र नवीनस्य धारणं प्रविधीयते ।**
**रजस्वला शवस्पर्शे म्लेच्छादीनं तथैव च ।**

*—नारायण संग्रह*

**मल मूत्रं त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक् ।**
**उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ।**

*—सायर्णीय*

**उपाकर्मणि चोत्सर्गे गते मास चतुष्टये ।**
**नव यज्ञोपवीतानि धृत्वा पूर्वाणि सन्त्यजेत् ।**
**जोर्णयज्ञोपवीतानि शिरोमार्गेण सन्त्यजेत् ।**

*—मा. बा. आ. सू.*

अर्थात्—जन्म सूतक, मरण सूतक, चाण्डाल स्पर्श, मुर्दे का स्पर्श, रजस्वला या म्लेच्छादिकों का स्पर्श, मलमूत्र त्यागते समय कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने में भूल होने पर, प्रायश्चित में, उपाकर्म तथा उत्सर्ग में, चार मास बीत जाने पर, नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए और पुराने को सिर में मार्ग से उतार देना चाहिए ।

पवित्रता का ध्यान रखने से श्रद्धा कायम रहती तथा बढ़ती है । मन्दिर, तीर्थ, पूजा पदार्थ, धर्म पुस्तक आदि की पवित्रता पर अधिक ध्यान किये जाने का कारण यह है

कि इनके प्रति आदर का, महानता का, श्रद्धा का भाव कायम रहे । थोड़ी भी अपवित्रता का आभास होने पर यज्ञोपवीत को बदल कर नया धारण करने से एक तो अपवित्रता के कारण उत्पन्न हुई मानसिक ग्लानि धुल जाती है, दूसरे नये सिरे से पवित्रता की स्थापना होती है । उपवीत बदलना एक प्रकार का प्रायश्चित भी है ।

**ब्रह्मचारिण एकं स्यात् स्नातस्य द्वे बहनिता ।**

*—आ. सू.*

"ब्रह्मचारी एक यज्ञोपवीत पहने । ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर दो या अधिक पहने ।"

इस सम्बन्ध में यह भी अभिमत है कि विवाह हो जाने पर स्त्री के यज्ञोपवीत सम्बन्धी कर्त्तव्य का भार पुरुष उठाता है, कारण यह है कि ऋतुधर्म, बालकों के मल-मूत्र तथा घर की अपवित्रताओं को साफ करते रहने के कारण स्त्रियाँ उतनी पवित्र नहीं रह सकतीं जितनी कि यज्ञोपवीत के लिए आवश्यक है । इसलिए पति अपनी अर्धांगिनी का धर्म भार उठाने के प्रयोजन से दो उपवीत धारण करता है ।

एक बात यह भी है कि ब्रह्मचारी की अपेक्षा गृहस्थ के कंधे पर दूना या दुहरा उत्तरदायित्व आ जाता है । उस भार का द्विगुणता अनुभव करने के लिए भी गृहस्थ को दो यज्ञोपवीत पहनने का विधान है ।

**यज्ञोपवीतं द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।**
**तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ।**

*—हेमाद्रि*

"श्रौत और स्मार्त कर्मकाण्ड के लिए दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिए । कन्धे पर वस्त्र (अंगोछा) न हो तो तीन धारण करे ।"

तात्पर्य यह है कि अंगोछा भी यज्ञोपवीतधारी को सदा साथ रखना चाहिए जिससे समय-समय पर उससे आवश्यक शुद्धि की जा सके । यदि कभी किसी कारणवश अंगोछा उपलब्ध न हो तो उसके अभाव में होने वाली अशुद्धि के प्रायश्चित स्वरूप तीन जनेऊ धारण करने चाहिए ।

**पृष्ठवंशे च नाभ्याश्च धृतं यद् विन्दते कटिम् ।**
**तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्ब न चोच्छृतम् ॥**

*—कात्यायन स्मृति १।३ और कर्म प्रदीप*

अर्थात्— कन्धे से पीठ और नाभि का स्पर्श करता हुआ कटि तक पहुँच जावे ऐसा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए । इससे छोटा बड़ा न हो ।

**आयुर्हरत्यतिहस्वमतिदीर्घ तपोहरम् ।**

*—स्मृति प्रकाश*

"बहुत छोटा यज्ञोपवीत आयु का हरण करता है और बहुत बड़ा तप का हरण करता है ।"

सब कार्यों में मध्यम मार्ग उचित है । नियम मर्यादा के अन्दर नियमित रूप से किए हुए कार्य ही उत्तम होते हैं । जो नाप बताया गया है, जितनी लम्बाई नियत की गई है उसी मर्यादा में उसे बनाना चाहिए ।

यज्ञोपवीत निर्माण जैसे धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्वपूर्ण कार्य में जो लापरवाही, आलस्य और प्रमादवश उसे छोटा बड़ा बना देता है । उसकी लापरवाही अन्य क्षेत्रों में तो और भी अधिक गजब ढाती होगी । ऐसी लापरवाही और असावधानी आयु, तप, स्वास्थ्य, धन, ज्ञान आदि सभी का नाश कर सकती है । इसी खतरे का इस श्लोक में संकेत है ।

## यज्ञोपवीत के पूजन का मंत्र

**प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं कर्पाससूत्रोद्भव ब्रह्मसूत्रम्। ब्रह्मत्व सिद्ध्यै च यशः प्रकाशं व्रतस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्म सूत्र !**

"हे ब्रह्मसूत्र ! आप प्रजापति द्वारा सहज पवित्र हैं । कपास से पैदा हुए ब्रह्मसूत्र हैं । आप ब्रह्मसूत्र की सिद्धि, यश, प्रकाश और व्रत की सफलता दीजिए ।"

## यज्ञोपवीत धारण करने के मंत्र

**यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।**

*—पारस्कर*

अर्थात्—यज्ञ की उपवीति (पवित्रता या प्रतिज्ञा) स्वरूप यज्ञोपवीत धारण करता हूँ ।

**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमुग्रय प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमसतु तेजः ॥**

*—ब्रह्मोपनिषद*

अर्थ—यज्ञोपवीत परम पवित्र है, प्रजापति ईश्वर ने इसे सहज बनाया है । यह आयुवर्धक और पवित्रता देने वालों में अग्रणी है । यह बल और तेज को देता है ।

## यज्ञोपवीत विसर्जन करने का मन्त्र

**एतावद् दिन पर्य्यन्तं ब्रह्मत्वं धारितं मया ।**
**जीर्णत्वात्परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखम् ॥**

"हे ब्रह्मसूत्र ! इतने दिन पर्यन्त आपको मैंने धारण किया अब जीर्ण हो जाने के कारण आपका परित्याग किया जा रहा है, अब सुखपूर्वक पधारिए ।"

यज्ञोपवीत धारण के पूर्व उसका पूजन-वन्दन करना चाहिए । इसी प्रकार धारण एवं विसर्जन करते समय भी विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करना चाहिए । विसर्जन किया हुआ ब्रह्मसूत्र जहाँ-तहाँ न पटक देना चाहिए, वरन् उसे किसी पवित्र नदी, तालाब, देवस्थान या पीपल, गूलर, बरगद, छोंकर जैसे पवित्र वृक्ष पर छोड़ देना चाहिए ।

पूजन, धारण और विसर्जन के समय उच्चारण करने के उपरोक्त मन्त्रों में यज्ञोपवीत की महत्ता एवं महात्म्य का वर्णन है । ईश्वरीय आदेशों का, पवित्रता का एवं धर्म कर्त्तव्य का वह प्रतीक है । आयु, बल एवं तेज वृद्धि के लिए वह पथ-प्रदर्शन करता है, ऐसे प्रेरणा केन्द्र प्रतीक का सम्मान करना उस सूत्र का सम्मान नहीं वरन् उन उद्देश्यों एवं कार्यों के प्रति आदर, आस्था तथा अनुराग प्रकट करना है । यह आस्था ही उस मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है जिसका कि प्रतिनिधि यह उपवीत है । यथा-समय पूजन, वन्दन, विसर्जन के साथ ब्रह्मसूत्रों के गुणों, महत्त्वों एवं संकेतों का स्मरण करना साधना करने वालों के लिए आवश्यक है । इसी प्रयोजन के लिए इन मन्त्रों का निर्माण किया गया है ।

## अयोग्य को अनधिकार

"स्त्री और शूद्रों को वेदज्ञान तथा ब्रह्मसूत्र नहीं लेना चाहिए" इस अभिमत का तात्पर्य किसी को जन्मजात कारणों की बजह से ईश्वरीय धर्म मार्ग में प्रवेश करने से रोकना नहीं है, वरन् यह है कि जिनकी अभिरुचि अध्यात्म-मार्ग में नहीं है, जिनकी शिक्षा, अभिरुचि तथा मनोभूमि धर्म मार्ग में प्रवृत्त न होकर दूसरी ओर लगी रहती है, वे वेदमार्ग में दिलचस्पी न ले सकेंगे, उसमें श्रद्धा न कर सकेंगे, समझ न सकेंगे । अधूरा ज्ञान लेकर तो उसके दुरुपयोग की ही अधिक सम्भावना है । शास्त्रकारों नें वेदमार्ग में प्रवेश होने की शर्त यह रखी है कि—धर्म में विशेष रुचि हो । जिसमें यह रुचि पर्याप्त मात्रा में है वह द्विज है, जिसमें नहीं है वह शूद्र है । ऐसे शूद्र वृत्ति वाले लोगों के लिए उपवीत एक भार है । वे उसका उपहास या तिरस्कार करते हैं । ठीक रीति से धारण न कर सकने योग्य व्यक्ति उसे धारण न करें तो ठीक ही है, इस दृष्टि से स्त्री और शूद्रों को यज्ञोपवीत निषिद्ध किया गया है ।

जिनमें ऐसे दोष न हों वरन् प्रबल धर्मरुचि हो वे जन्मजात कारण से धर्म-संस्कारों से नहीं रोके जाने चाहिए। ऐसे प्रमाण पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं जिनसे प्रकट होता है कि शास्त्र स्त्री और शूद्रों को भी उपवीत धारण करने की आज्ञा देता है ।

पाराशर संहिता के भाष्यकार माधवाचार्य ने अपनी टीका में लिखा है—

**"द्विविधा स्त्रियो, ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च ।**
**तत्र ब्रह्मवादिनीनां उपनयनं, अग्नि बन्धनं वेदाध्ययनं, स्वगृहे भिक्षावृत्तिश्च वधूनां तूपस्तिथे ।**
**विवाहे कथश्चिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः ।"**

अर्थात्—स्त्रियाँ दो प्रकार की हैं—ब्रह्मवादिनी और नववधू । ब्रह्मवादिनियों को उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और अपने घर में ही भिक्षा करनी चाहिए । नव-वधुओं को कम से कम विवाह समय में तो यज्ञोपवीत अवश्य ही करना चाहिए ।

**पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जिबन्धनमिष्यते ।**
**अध्यापनं च वेदान्तं सावित्री वचनं तथा ॥**

*—यम संहिता*

अर्थात्—पुराने समय में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण करती थीं, वेद पढ़ती थीं और गायत्री का जप करती थीं ।

**प्रावृत्तां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन्त्र्येत् सोमोऽददत् गंधर्वायेति ।**

*—गो.मु. २ ।१ ।१९-२१*

अर्थात्—"तत्पश्चात् उस कन्या को यज्ञोपवीत धारण कराके वस्त्रों से आच्छादित करके पति के समीप लावे और "सोमोऽददत्" इस मन्त्र को पढ़े । विवाह के समय यज्ञोपवीत धारण करने का यह विधान मौजूद है तो अन्य समयों में फिर कैसे निषिद्ध ठहराया जा सकता है ।"

यजुर्वेदीय पारस्कर गृहसूत्र में "स्त्रिय उपवीता अनुपवीताश्च" इत्यादि वचन आते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत पहनने वाली और न पहनने वाली दोनों प्रकार की होती थीं ।

**शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ।**

**इदन्त्व रथकारस्योप नयनं ।**
**अदुष्टकर्मणां शूद्राणामुपनयनम् ।**

अर्थात्—अदुष्ट काम करने वाले शूद्रों का उपनयन होना चाहिए रथकार का उपनयन होना चाहिए।

**औरसः पुत्रिका पुत्रः क्षेत्रजो गूढ़जस्तथा ।**
**कानीनञ्च पुनर्भुजा दत्तः क्रीजतश्च कृत्रिमः ।**
**दत्तात्मा च सहयोढ़श्च त्वपविद्ध सुतस्ततः ।**
**पिण्डदोन्श हरश्चैषा पूर्वाभावे परः परः।**

**एते द्वादश पुत्राश्च संस्कार्यास्युर्द्विजातयः ।**
**केचिदाहुर्द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्ड गोलकौ ।**

*पारस्कर गृह्य सूत्र (हरिहर भाष्य)*

अर्थात्—औरस, पुत्री का पुत्र क्षेत्रज, गूढ़ज, कानीन, पुनर्भुज, दत्त, क्रीत, कृत्रिम, दत्तात्मा सहोढ़ और अपविद्ध इन बारहों प्रकार के द्विजाति पुत्र उपनयन के अधिकारी हैं।

अधिकार अनधिकार के प्रश्न का समाधान यह है कि द्विजत्व के चिह्न जिसमें मौजूद हैं, जो यज्ञोपवीत की साधना का महत्त्व समझते और हृदयंगम करके अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हैं, उन्हें उसके धारण करने की अनुमति होनी चाहिए । जिनके गुण, कर्म, स्वभाव में शूद्रत्व भरा हुआ है वे उपवीत पहन कर उसे भी लज्जित न करें तो ही ठीक है ।

## यज्ञोपवीत सम्बन्धी कुछ नियम

(१) शुद्ध खेत में उत्पन्न हुए कपास को तीन दिन तक धूप में सुखावें । फिर उसे स्वच्छ कर हाथ के चरखे से कातने का कार्य प्रसन्न चित्त, कोमल स्वभाव एवं धार्मिक वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषों द्वारा होना चाहिए । क्रोधी, पापी, रोगग्रस्त, गन्दे, शोकातुर या अस्थिर चित्त वाले मनुष्य के हाथ का कता हुआ सूत यज्ञोपवीत में प्रयोग न करना चाहिए ।

(२) कपास न मिलने पर, गाय की पूँछ के बाल, सन, ऊन, कुश, रेशम आदि का भी यज्ञोपवीत बनाया जा सकता है, पर सबसे उत्तम कपास का ही है ।

(३) देवालय, नदी, तीर, बगीचा, एकान्त, गुरु-गृह, गौशाला, पाठशाला अथवा अन्य पवित्र स्थान यज्ञोपवीत बनाने के लिए चुनना चाहिए । जहाँ-तहाँ गन्दे, दूषित, अशान्त वातावरण में वह न बनाया जाना चाहिए और न बनाते समय अशुद्ध व्यक्तियों का स्पर्श होना चाहिए ।

(४) बनाने वाला स्नान सन्ध्यावन्दन करने के उपरान्त स्वच्छ वस्त्र धारण करके कार्य आरम्भ करे । जिस दिन यज्ञोपवीत बनाना हो उससे तीन दिन पूर्व से ब्रह्मचारी रहे और नित्य एक सहस्त्र गायत्री का जप करे । एक समय सात्विक अन्न अथवा फलाहार, दुग्धाहार का आहार किया करे ।

(५) चार अँगुलियों को बराबर-बराबर करके उन चारों पर तीन तारों के ९६ चक्कर गिन ले । गंगाजल, तीर्थजल या किसी अन्य पवित्र जलाशय के जल से उस सूत का प्रच्छालन करे तदुपरान्त तकली की सहायता से इन सम्मिलित तीन तारों को कात ले । कत जाने पर उसे मोड़कर तीन लड़ों में ऐंठ ले । ९६ चप्पे गिन ले तथा तकली पर कातते समय मन ही मन गायत्री मन्त्र का जप करे और तीन लड़ ऐंठते समय -(आपोहिष्ठा मयो भवः) मन्त्र से मानसिक जप करे ।

(६) कते और ऐंठे हुए डोरे को तीन चक्करों में विभाजित करके ग्रन्थि लगावे, आरम्भ में तीन गाँठें लगाई जाती हैं । कहीं-कहीं अपने गोत्र के जितने प्रवर होते हैं उतनी ग्रन्थियाँ लगाते हैं और अन्त में अपने वर्ण के अनुसार ब्रह्म ग्रन्थि, क्षत्रीय ग्रन्थि या वैश्य ग्रन्थि लगाते हैं । ग्रन्थियाँ लगाते समय (त्रयंतकम् बजामहे) मन्त्र का मन ही मन जप करना चाहिए । ग्रन्थि लगाते समय मुख पूर्व की ओर रखना चाहिए।

(७) यज्ञोपवीत धारण करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ।

**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत सहजं पुरस्तात ।**
**आयुष्यमग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीत बलमस्तु तेजः ॥**

(८) यज्ञोपवीत उतारते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

**एतावद् दिन पर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारित मया ।**
**जीर्णत्वात्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यया सुखम् ॥**

(९) जन्म-सूतक, मरण-सूतक, चाण्डाल-स्पर्श, मुर्दे का स्पर्श, मल-मूत्र त्यागते समय कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने में भूल होने के प्रायश्चित में उपाकर्म से, चार मास पुराना हो जाने पर, कहीं से टूट जाने पर जनेऊ उतार देना चाहिए। उतारने पर उसे जहाँ-तहाँ नहीं फेंक देना चाहिए वरन् किसी पवित्र स्थान पर नदी, तालाब, देवस्थान, पीपल, गूलर, बड़, छोंकर जैसे पवित्र वृक्ष पर विसर्जित करना चाहिए ।

(१०) बायें कन्धे पर इस प्रकार धारण करना चाहिए कि बायें पार्श्व की ओर न रहे । लम्बाई इतनी होनी चाहिए कि हाथ लम्बा करने पर उसकी लम्बाई बराबर बैठे ।

(११) ब्राह्मण पदाधिकारी बालक का उपवीत ५ से ८ वर्ष तक की आयु में, क्षत्रीय का ६ से ११ तक, वैश्य का ८ से १२ तक की आयु में यज्ञोपवीत कर देना चाहिए। यदि ब्राह्मण का १६ वर्ष तक, क्षत्रीय का २२ वर्ष तक, वैश्य का २४ वर्ष तक उपवीत न हो तो वह 'सावित्री पतित' हो जाता है । तीन दिन उपवास करते हुए पंचगव्य पीने से सावित्री पतित मनुष्य प्रायश्चित करके शुद्ध होता है ।

(१२) ब्राह्मण का बसन्त ऋतु में, क्षत्री का ग्रीष्म में और वैश्य का उपवीत शरद ऋतु में होना चाहिए । पर जो "सावित्री पतित" है अर्थात् निर्धारित आयु से अधिक का हो गया है उसका भी उपवीत कर देना चाहिए ।

(१३) ब्रह्मचारी को एक तथा गृहस्थ को दो जनेऊ धारण करने चाहिए, क्योंकि गृहस्थ पर अपना तथा धर्म-पत्नी दोनों का उत्तरदायित्व होता है ।

(१४) यज्ञोपवीत की शुद्धि नित्य करनी चाहिए। नमक, क्षार, साबुन, रीठा आदि की सहायता से जल द्वारा उसे भली प्रकार रगड़ कर नित्य स्वच्छ करना चाहिए ताकि पसीना का स्पर्श होने से जो नित्य ही मैल भरता रहता है वह साफ रहे और दुर्गन्ध अथवा जुयें आदि जमने की सम्भावना न रहे ।

(१५) मल-मूत्र त्याग करते समय अथवा मैथुन काल में यज्ञोपवीत कमर से ऊपर रखना चाहिए । इसलिए उसे कान पर चढ़ा लिया जाता है । कान की जड़ को मल-मूत्र त्यागते समय डोरे से बाँध देने से बवासीर, भगन्दर जैसे गुदा के रोग नहीं होते ऐसा भी कहा जाता है ।

(१६) यज्ञोपवीत आदर्शवादी भारतीय संस्कृति की मूर्तिमान प्रतिमा है, इसमें भारी तत्व-ज्ञान और मनुष्य को देवता बनाने वाला तत्व-ज्ञान भरा हुआ है । इसलिए इसे धारण करने की परिपाटी का अधिक से अधिक निस्तार करना चाहिए । चाहे लोग उस रहस्य को समझने तथा आचरण करने में समर्थ न हों तो भी इसलिए उसका धारण करना आवश्यक है कि बीज होगा तो अवसर मिलने पर उग भी आवेगा ।

## न होने से कुछ होना अच्छा है

यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में कई प्रकार के भ्रम जन-साधारण में प्रचलित हैं, उनके सम्बन्ध में कुछ बातों का स्पष्टीकरण कर लेना आवश्यक है । कई व्यक्ति सोचते हैं कि यज्ञोपवीत हम से सधेगा नहीं, हम उसके नियमों का पालन नहीं कर सकेंगे इसलिए हमें उसे धारण नहीं करना चाहिए । यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई कहे कि मेरे मन में ईश्वर की भक्ति नहीं है, इसलिए मैं पूजा-पाठ न करूँगा । पूजा-पाठ करने का तात्पर्य ही भक्ति उत्पन्न करना है, यदि भक्ति पहले से ही होती तो पूजा-पाठ करने की आवश्यकता ही न रह जाती । यही बात जनेऊ के सम्बन्ध में है यदि धार्मिक नियमों का साधन अपने आप ही हो जाय तो उसके धारण करने की आवश्यकता ही क्या है ? चूँकि आमतौर से नियम नहीं सधते इसीलिए तो यज्ञोपवीत का प्रतिबन्ध लगाकर उन नियमों को साधने का प्रयत्न किया जाता है । जो लोग नियम नहीं साध पाते उन्हीं के लिए सबसे अधिक आवश्यकता जनेऊ धारण करने की है । जो बीमार है उसे ही तो दवा चाहिए यदि बीमार न होता तो दवा की आवश्यकता ही उसके लिए क्या थी ?

नियम क्यों साधने चाहिए इसके बारे में लोगों की बड़ी विचित्र मान्यताएँ हैं । कई आदमी समझते हैं कि भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ही जनेऊ का नियम है, बिना स्नान किए, रास्ते का चला हुआ रात का बासी हुआ, अपनी जाति के अलावा किसी का बना हुआ भोजन न करना ही यज्ञोपवीत की साधना है । यह बड़ी अधूरी और भ्रम पूर्ण धारणा है । यज्ञोपवीत का मन्तव्य मानव-जीवन की सर्वांग पूर्ण उन्नति करना है, उन उन्नतियों में स्वास्थ्य की उन्नति भी एक है और उनके लिए अन्य नियमों का पालन करने के साथ-साथ भोजन सम्बन्धी नियमों की सावधानी रखना भी उचित है । इस दृष्टि से जनेऊधारी के लिए भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ठीक है, परन्तु जिस प्रकार प्रत्येक द्विज जीवन की सर्वांगीण उन्नति के सभी नियमों को पूर्णतया पालन नहीं कर पाता फिर भी कंधे पर जनेऊ धारण किये रहता है, फिर भोजन सम्बन्धी किसी नियम में यदि कुछ त्रुटि रह जाय तो यह नहीं समझना चाहिए कि इस त्रुटि के कारण जनेऊ धारण करने का अधिकार ही छिन जाता है । यदि झूठ बोलने से, दुराचार की दृष्टि रखने से,

बेईमानी करने से, आलस्य, प्रमाद या व्यसनों में ग्रस्त रहने से जनेऊ नहीं टूटता तो केवल भोजन सम्बन्धी नियमों में कभी-कभी थोड़ा-सा अपवाद आ जाने से नियम टूट जायेगा यह सोचना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि मलमूत्र त्यागते समय कान पर चढ़ाने की बारबार भूल हो जाती है इसलिए बारबार नये जनेऊ बदलने की आवश्यकता पड़ती है इस झंझट से बचने के लिए यही अच्छा है कि इसे पहना ही न जाय । यह विचार भी ठीक ऐसा ही है जैसा यह सोचना कि पाठ याद करने में बार-बार भूल हो जाती है इसलिए इस झँझट से बचने के लिए यही अच्छा है कि पढ़ाई-लिखाई बन्द कर दी जाय । क्या ऐसा निर्णय बुद्धिमत्ता पूर्ण होगा ? यदि नहीं, तो फिर भूल के कारण यज्ञोपवीत त्यागने की बात सोचना ही कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ?

यह ठीक है कि मल-मूत्र के त्याग में कान पर जनेऊ चढ़ाना आवश्यक है और इस नियम का कठोरता से पालन होना चाहिए, पर यह भी ठीक है कि आरम्भ में इसकी आदत न पड़ जाने तक नौसिखियों को कुछ सुविधा भी मिलनी चाहिए जिससे कि वे उन्हें एक दिन में तीन-तीन जनेऊ बदलने के लिए विवश न होना पड़े । इसके लिए ऐसा किया जा सकता है कि जनेऊ का एक फेरा गरदन में घुमा दिया जाय ऐसा करने से वह कमर से ऊँचा आ जाता है । कान में चढ़ाने का प्रधान प्रयोजन यह है कि मलमूत्र की अशुद्धता का यज्ञ सूत्र से स्पर्श न हो, जब जनेऊ कण्ठ में लपेट दिये जाने से कमर से ऊँचा उठ आता है तो उससे अशुद्धता का स्पर्श होने की आशंका नहीं रहती और यदि कभी कान में चढ़ाने की भूल भी हो जाय तो उसके बदलने की आवश्यकता नहीं होती । थोड़े दिनों में जब भली प्रकार आदत पड़ जाती है तो फिर कण्ठ में लपेटने की आवश्यकता नहीं रहती ।

छोटी आयु के बालकों के लिए, स्त्रियों के लिए तथा अन्य भुलक्कड़ व्यक्तियों के लिए तृतीयांश यज्ञोपवीत की व्यवस्था की जा सकती है । पूरे यज्ञोपवीत की अपेक्षा एक दो तिहाई छोटा अर्थात् एक तिहाई लम्बाई का तीन लड़ वाला उपवीत केवल कण्ठ में धारण कराया जा सकता है । इस प्रकार के उपवीत को आचार्यों ने "कण्ठी" शब्द से सम्बोधित किया है । छोटे बालकों का जब उपनयन होता था तब उन्हें दीक्षा के साथ कण्ठी पहना दी जाती थी । आज भी गुरु नाम धारी पण्डितजी गले में कण्ठी पहना कर और कान में मन्त्र सुनाकर "गुरुदीक्षा" देते देखे जाते हैं ।

इस प्रकार के अविकसित व्यक्ति उपवीत की नित्य सफाई का भी पूरा ध्यान रखने में प्रायः भूल करते हैं जिससे शरीर का पसीना उसमें रमता रहता है फलस्वरूप, बदबू, गंदगी, मैल और रोग-कीटाणु उसमें पलने लगते हैं। ऐसी स्थिति में यह सोचना पड़ता है कि कोई ऐसा उपाय निकल आवे जिससे कण्ठ में पड़ी हुई उपवीत कण्ठी का शरीर से कम स्पर्श हो । इस निमित्त तुलसी, रुद्राक्ष या किसी और पवित्र वस्तु के दानों में कण्ठी के सूत्रों को पिरो दिया जाता है, फलस्वरूप वे दाने ही शरीर का स्पर्श कर पाते हैं सूत्र अलग रहा आता है और पसीने का जमाव होने एवं शुद्धि में प्रमाद होने के खतरे से बचत हो जाती है इसीलिए दाने वाली कण्ठियाँ पहनने का रिवाज चलाया गया ।

आज कल नई फैशन से जेवरों का रिवाज कम होता जाता है फिर भी गले में कण्ठी माला किसी रूप में स्त्री पुरुष धारण करते हैं । गरीब स्त्रियाँ काँच के मनकों की कण्ठियाँ पहनती हैं, सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ चाँदी, सोने, मोती आदि की कण्ठियाँ धारण करती हैं । इन आभूषणों के नाम हार, नैकलेस, जंजीर, माला आदि रखे गये हैं पर यह वास्तव में कण्ठियों के ही प्रकार हैं । चाहे स्त्रियों के पास कोई अन्य आभूषण हो चाहे न हो, परन्तु इतना निश्चित है कि कण्ठी को गरीब से गरीब स्त्रियाँ किसी न किसी रूप में अवश्य धारण करेंगी, इससे प्रकट है कि भारतीय नारियों ने अपने सहज धर्म प्रेम को किसी न किसी रूप में जीवित रखा है और उपवीत को किसी प्रकार धारण किया है ।

जो लोग उपवीत धारण करने के अधिकारी नहीं कहे जाते, जिन्हें कोई दीक्षा नहीं देता वे भी गले में तीन लड़ों का बँटा हुआ डोरा डाले रहते हैं । ग्रामीण नवयुवक रंग बिरंगे सूत के बँटे हुए गुच्छेदार डोरे को बड़ी शौक और शोभा की चीज समझ कर गले में डालते हैं । मेले, ठेले और हाटों में डोरे का काम करने वाले पटवा लोग तरह-तरह के सुन्दर सूती से कला पूर्ण कण्ठे डोरे बना कर बड़ी मात्रा में बेचते हैं । ब्रह्म गाँठ की जगह पर सुन्दर गुच्छा लगा रहता है । यह भी उपवीत का ही प्रतिनिधि सूत्र है ।

इस प्रकार उन स्त्री-पुरुषों ने भी यज्ञोपवीत को अपनी ग्रीवा से अब तक चिपटाये रखा है और छाती से लगाये

रखा है जिन्हें लोगों ने उपवीत का अनधिकारी घोषित किया है । अब समय आ गया है कि सब लोग उसे धारण करें । जो पूर्ण नियमानुसार उसे धारण कर सकते हैं वे वैसा करें, जो वैसा नहीं कर सकते वे कण्ठी के रूप में उसे धारण करें, जो जिस प्रकार कर सकते हों वे उस प्रकार करें पर करें अवश्य । उपवीत ऋषियों का ऋण है, यह मनुष्यता का, आदर्श जीवन की आकांक्षा का प्रतीक है, इसे हम सबको पूरी-पूरी दिलचस्पी के साथ आदर पूर्वक अपने गले लगाना चाहिये । जितनी साधना, जितना नियम पूर्वक आज बन पड़े उतना आज करें, जितना न बन पड़े उतना धीरे-धीरे भविष्य में पूरा करने की प्रतिज्ञा करें । जो इस बीड़े को उठावेगा, उत्तरदायित्व को कंधे पर धारण करेगा उसकी साधना को प्रभु पूरा करते हैं । आप अपने ऊपर भारतीय संस्कृति के इस प्रतीक को धारण कीजिए, प्रभु आपकी सहायता करेंगे । स्मरण रखिए—न होने से "कुछ होना" भी अच्छा होता है ।

## पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता

शिक्षा के दो भेद हैं (१) जानकारी (२) अन्तर्निर्माण । जानकारी प्राप्त करने का काम साधारण पुस्तकों, समाचार-पत्रों, चित्रों आदि की सहायता से तथा श्रवण, भ्रमण, अनुभव, पर्यवेक्षण इत्यादि के आधार पर हो सकता है । स्कूली पढ़ाई से सांसारिक बहुत-सी बातें मालूम हो जाती हैं, भूगोल, इतिहास, गणित, साहित्य, शिल्प, रसायन, संगीत, व्यापार, चिकित्सा, कानून, धर्म, दर्शन, कला-कौशल आदि शिक्षा के अनेकों माध्यम मौजूद हैं । सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षण केंन्द्रों में जाकर इन सब बातों की जानकारी तथा प्रवीणता प्राप्त की जा सकती है । इन जानकारियों को प्राप्त करने वाला धन, पद तथा यश से सम्पन्न हो सकता है । शिक्षा का प्रथम भेद 'जानकारी' सुलभ है । उसके लाभ भी प्रत्यक्ष हैं इसलिए अधिकांश व्यक्ति इस दिशा में अपनी ज्ञान वृद्धि करते हैं और सुशिक्षित तथा विद्वान् कहलाते हैं ।

शिक्षा का दूसरा भेद है—अन्तः निर्माण, इस विज्ञान द्वारा मनुष्य अपने आपे के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है। मैं क्या हूँ ? सूक्ष्म से स्थूल क्यों हुआ हूँ ? इस शरीर को किस प्रयोजन के लिए धारण किये हुए हूँ ? जीवन का लक्ष क्या है ? सर्वोत्तम स्वार्थ क्या है ? वर्तमान कार्य-क्रम में कितना उचित, कितना अनुचित सम्मिलित किया हुआ है ? क्या कर्त्तव्य और क्या अकर्त्तव्य है ? इस प्रकार का दार्शनिक ज्ञान अन्तः निर्माण विद्या का आवश्यक अंश है । इस जानकारी को प्राप्त कर लेने से मनुष्य अपने मानसिक जगत की रचना से परिचित हो जाता है । मन की दौड़, कल्पनाओं की उड़ान, वासनाओं की लालसा, प्रलोभनों का आकर्षण, इन्द्रियों की रसिकता, व्यसनों की मादकता, आलस्य, प्रमाद और अज्ञान का अन्धकार, कर्मनिष्ठा से जीवन में सुख-शान्ति की स्थिरता, संयम, अपरिग्रहता और उदारता की विभूतियाँ, जैसे रहस्यों का परिशीलन करने से वह उन गुप्त तथ्यों से परिचित हो जाता है जिनके ऊपर यह बात पूर्णतया निर्भर है कि हम गरीब होते हुए भी सुखी रहें अथवा अमीर होती हुए भी दीन-दरिद्रियों की भाँति नाना प्रकार के क्लेशों से संतप्त रहें ।

सांसारिक जानकारी और अन्तःनिर्माण विद्या दोनों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । साथ ही असाधारण रूप से आपस में सम्बद्ध हैं । जैसे गाड़ी के दो पहिए होते हैं वैसे ही शिक्षा के दो अंश हैं । दो हाथ, दो पाँव, दो नेत्र, रात-दिन, सूर्य-चन्द्र, जल-थल, नर-मादा, सर्दी-गर्मी का जिस प्रकार जोड़ा है उसी प्रकार शिक्षा का भी जोड़ा है । जो व्यक्ति सांसारिक एवं व्यावहारिक आवश्यकताओं का समुचित ज्ञान रखता है और साथ ही अपनी आन्तरिक वस्तुस्थिति से परिचित है और तदनुसार अपनी मनोवृत्तियों को काबू में रखकर उन्हें उचित दिशा में मोड़ने की क्षमता रखता है वही सच्चे अर्थों में शिक्षित कहलाने योग्य है । जैसे रुपये के दो पहलू होते हैं उसी प्रकार शिक्षा के भी दो भाग हैं । यदि रुपये के एक ओर तो अक्षर छपे हैं और दूसरी ओर सफाचट हो तो उस रुपये की उपयोगिता सिद्ध न होगी, इसी प्रकार यदि केवल सांसारिक चतुरता ही किसी व्यक्ति ने सीखी हो और आत्म-विज्ञान से अपरिचित हो तो उसकी विद्या अधूरी है । इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अध्यात्म विज्ञान का ज्ञाता हो और रोटी कमाने तथा शरीर के साथ जिन्दगी बिताने का तरीका न जानता हो तो उसका ज्ञान अधूरा है। ताँबे और जस्ते के तारों में चलने वाली गरम और ठण्डी विद्युत धाराएँ जहाँ मिलती हैं वहीं बिजली का चमत्कारिक कर्म होता है, एक तार में चलने वाली एकांगी

विद्युत धारा चाहे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो अपनी क्षमता प्रकट नहीं कर सकती, इसी प्रकार इन दोनों में से यदि केवल एक का ही ज्ञान किसी को है तो वह अधूरा विद्वान् है, वह एक पहिए की गाड़ी पर बैठ कर जीवन यात्रा करने का प्रयास कर रहा है ।

प्राचीन-काल में बालकों को उभय पक्षीय विद्या पढ़ाई जाती थी वे जानते थे कि एक पंख वाला पक्षी लम्बी उड़ान नहीं भर सकता, जीवन के महान् उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता । इसलिए वे जहाँ साहित्य, शिल्प, विज्ञान, व्यापार, कला-कौशल आदि की सांसारिक शिक्षा का आयोजन करते थे वहाँ अन्तःकरण का विकास करने वाले मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने वाले आत्म-निर्माण विज्ञान की शिक्षा का भी आयोजन करते थे । गुरुकुलों में दोनों ही प्रकार की शिक्षण योजनाएँ चलती थीं वेद और उपनिषदों से लेकर धनुर्वेद, अर्थशास्त्र और कामसूत्र तक का आयोजन रहते थे । पर आज की गतिविधि छोड़कर एकांगी विकास करने की नीति पर लोग चल रहे हैं, फलस्वरूप इतना अधिक श्रम करने पर भी वैसा संतोषजनक परिणाम नहीं निकल रहा है जैसा कि इससे आधे चौथाई परिश्रम से ही सन्तुलित नीति का आचरण करने पर निकल सकता था । आज तो जिनकी रुचि सांसारिकता की ओर है वे आत्मविद्या से या तो मिथ्या समझ कर घृणा करते हैं या अनुपयोगी समझ कर उपेक्षा करते हैं । दूसरी ओर जिनकी रुचि आत्म-विद्या की ओर है वे व्यावहारिक ज्ञान को माया, बन्धन, स्वप्न, जंजाल आदि कह कर उससे दूर रहने में ही अपना कल्याण समझते हैं । भगवान् कृष्ण ने अपना उदाहरण उपस्थित करके इस द्विविधा को मिटाया था । उनके जीवन, विचार और कार्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाला इस बात को भली प्रकार समझ सकता है कि एक व्यक्ति पूर्ण योगी और पूर्ण व्यवहारकुशल साथ-साथ हो सकता है । भगवान् कृष्ण के अवतार लेने के जहाँ अन्य कारण थे वहाँ यह भी एक कारण था कि वे व्यवहारवाद और आत्मवाद का विरोधाभास मिटाकर समन्वय करने आये थे, अपना उदाहरण उपस्थित करके उन्होंने बताया कि योग और कर्म के समन्वय को ही सर्वश्रेष्ठ जीवन प्रणाली कहा जा सकता है ।

मनुष्य की प्रकृति स्वभावतः सांसारिक शिक्षा प्राप्त करने की होती है, इसलिए साधारणातः उसकी रुचि सांसारिक शिक्षा प्राप्त करने की होती है । इसी के लिए वह गुरु और शिक्षक चुनता है । आत्म-विद्या से चाहे वस्तुतः अनन्त एवं महानतम लाभ भले ही प्राप्त होते हों पर प्रत्यक्षतः हाथों-हाथ कोई लाभ नहीं दीखता, इसीलिए उस ओर प्रायः अरुचि और उपेक्षा रहती है । यह अरुचि और उपेक्षा जीवनोद्देश्य को ही नष्ट कर डालती है, इसलिए भारतीय धर्म के आचार्यों ने यह आवश्यक समझा कि इस दिशा में कठोरं नियन्त्रण रखा जाय । उन्होंने आदेश किया कि आत्म-विद्या का शिक्षक अवश्य ही नियुक्त होना चाहिए, जो गुरु या आचार्य के नाम से पुकारा जाय, माता-पिता के साथ ही गुरु का नाम जोड़ा गया है । जैसे किसी के पिता का पता न होना एक बड़े भारी अपमान की बात है वैसे ही भारतीय संस्कृति में यह भी एक भारी अपमानजनक गाली है कि किसी को बिना गुरु का "निगुरा" कहा जाय । गुरु दीक्षा की अनिवार्यता वैसी ही है जैसी यज्ञोपवीत धारण की । इसलिए इन दोनों को एक साथ जोड़ दिया गया है । जो यज्ञोपवीत देने वाला वही गुरु अथवा जो गुरु हो वही यज्ञोपवीत दे । चूँकि यज्ञोपवीत के छोटे से प्रतीक में समस्त अध्यात्म-ज्ञान, वेद शास्त्रों का सारांश भरा हुआ है इसलिए जो यज्ञोपवीत देता है वह उसमें छिपे हुए महा विज्ञान को भी बताता है, इसलिए अध्यात्म की शिक्षा उपवीत संस्कार के साथ आरम्भ होती है । कंधे पर पड़ा हुआ जनेऊ इस गुरु की दी हुई 'वेदत्रयी' है, इसको चौबीसो घण्टे साथ रखा जाता है और हर घड़ी पढ़ने, मनन एवं चिन्तन करने की सुविधा शिष्य को प्राप्त होती है ।

आत्म-निर्माण का कार्य किसी विद्वान् सूक्ष्मदर्शी तत्वज्ञानी, नीतिमान, सच्चरित्र एवं दूरदर्शी व्यक्ति द्वारा ही हो सकता है । ऐसे गुण वाले को शास्त्रों में "आचार्य" शब्द से सम्बोधित किया गया है । यों पुस्तकों और ग्रन्थों में बहुत से उपदेश भरे हुए हैं; कथा, व्याख्यान, सत्संग प्रवचन आदि द्वारा भी ऐसी बातें अक्सर सुनने को मिलती रहती हैं, पर इन सब के द्वारा इतना ठोस प्रभाव नहीं पड़ सकता जिससे जीवन दिशा में भारी परिवर्तन हो जाय । यह कार्य उन दो व्यक्तियों द्वारा हो सकता है जो आपस में अत्यन्त घनिष्ट सूत्र से आत्मीयता के बन्धन में बंधे हों और वह बन्धन श्रद्धा, प्रेम, निःस्वार्थता एवं परमार्थ के आधार पर अवलम्बित हो । ऐसा रिश्ता एकमात्र गुरु-शिष्य के बीच में ही हो सकता है । यों पत्नी, सन्तान तथा मित्रों में भी लोगों की घनिष्ठता रहती है, पर वह घनिष्ठता ऐसी नहीं होती जिसका आधार सांसारिक स्वार्थपरता से अधिक ऊँचा हो, इसलिए आत्म-निर्माण का कष्ट साध्य

कठिन कार्य उपरोक्त गुण वाले आचार्य द्वारा ही हो सकता है ।

आचार्य अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण अपनी वाणी में इतना बल, वजन, तर्क, तथ्य, प्रमाण और प्रभाव रखता है जिससे शिष्य का अन्तःकरण उसके आगे प्रभावित हो जाय । दूसरी ओर शिष्य के मन में आचार्य के प्रति श्रद्धा, भक्ति, आस्था, विश्वास, भावना, धर्मभीरुता होती है, जिससे उसका मन एक प्रकार से इतना नरम हो जाता है जिस पर उसकी छाप आसानी से पड़ सके । जब दोनों ओर से इस प्रकार झड़ मिल जाती है जो निश्चित उद्देश्य में प्रगति होने लगती है । पुर्जो की झड़ जब तक आपस में नहीं मिलती, तब तक मशीन ठीक प्रकार नहीं चलती, पर जब खाँचा ठीक फिट बैठ जाता है तो मशीन की गति बड़ी तेज और नरम हो जाती है । गुरु शिष्य का रिश्ता कायम होना, दो ऐसे व्यक्तियों की झड़ मिलना है जिनके आन्तरिक मिलन से आत्म-निर्माण, कार्य की प्रगति तेजी से आगे बढ़ने लगती है ।

इसके अतिरिक्त आचार्य की नियुक्ति के और भी कई लाभ हैं । मनुष्य अपने सम्बन्ध में ठीक प्रकार सोचने में प्रायः असमर्थ रहता है । वैद्य अपना इलाज आप नहीं कर सकता, क्योंकि अपने बारे में ठीक-ठीक निर्णय करने में उसकी बुद्धि समर्थ नहीं होती । आँखें अपने आप अपने को नहीं देख सकतीं । साधारणतः मनुष्य भी अपने गुण-दोषों का निर्णायक आप नहीं बन पाता, फिर अपने लिए आत्मोन्नति के लिए कार्यक्रम बनाना तो और भी कठिन होता है । लोभ और भोग में विशेष रुचि, अध्यात्म-पथ की रुक्षता, साधना की कठिनाई, संशय, अविश्वास, अनुभवहीनता के कारण अपने लायक कार्य-क्रम चुनने में असमर्थता आदि कठिनाइयों के कारण इस बात की बड़ी आवश्यकता होती है कि कोई अनुभवी, ईमानदार, विवेकशील एवं सहृदय पथ-प्रदर्शक स्थायी रूप से अपनी यह जम्मेदारी अनुभव करे कि मुझे इस व्यक्ति की उन्नति के लिए निरन्तर कार्य करना है और इसकी सफलता में अपनी योग्यता का प्रतिपादन करना है । इस प्रकार का रिश्ता गुरु-शिष्य का ही रिश्ता हो सकता है ।

आत्म-विस्तार की भी दो दिशाएँ हैं । वासना परक आत्म विस्तार पुरुष का स्त्री में और स्त्री का पुरुष में होता है । दोनों एक दूसरे के साथ अत्यन्त आत्मीयता से तन्मय हो जाते हैं परन्तु इस आत्म-विस्तार में एक कमी रह जाती है, वह यह कि 'वासना' और 'सुविधा' यह दो उद्देश्य दाम्पत्य जीवन में प्रधान रहते हैं । यदि यह दोनों न रहें तो अधिकांश दम्पत्तियों का प्रेम नीचे गिर पड़ेगा । ऐसे कितने स्त्री पुरुष हैं जो अपने साथी से काम सेवन का तनिक भी सहयोग न जाने पर भी, उससे उतनी ही तन्मयता रखें अथवा उससे परिश्रम, सेवा, मनोरंजन न पाने पर भी वैसा ही प्रेम रखें । इससे प्रतीत होता है कि दाम्पत्य प्रेम में कितनी ही तन्मयता एवं मादकता क्यों न हो पर वह कुछ अपवादों को छोड़ कर वासना और स्वार्थ-परता पर रुका रहता है । इसलिए किसी ऐसे विवाह की भी आवश्यकता पड़ती है जो इन दोनों तुच्छ कारणों से मुक्त हो और धार्मिक श्रद्धा एवं सात्विक प्रेम से सुसज्जित हो । यों ऐसा प्रेम दाम्पत्य जीवन में भी एक दूसरे के प्रति होना सम्भव है पर उसमें परीक्षा की कसौटी न रहने से यह खतरा बना रहता है कि कहीं वासनाजन्य भौतिक तन्मयता को ही आत्मिक मिलन न समझ बैठा जाय । गुरु शिष्य के बीच जो सम्बन्ध कायम होता है वह इस प्रकार के खतरे से खाली है । इन दोनों के बीच जितना प्रेम बढ़ेगा उसका आधार सात्विक ही होगा । यह सात्विक प्रेम ही ईश्वर प्राप्ति में सहायक होता है । वासनाजन्य प्रेम अस्थायी और निचले दर्जे का होता है, उसके द्वारा ईश्वर तक पहुँचने की सिद्धि नहीं मिल सकती। परम सात्विक, श्रद्धा, भक्ति, निःस्वार्थता और धर्म भावना से परिपूर्ण प्रेम द्वारा ही परमात्मा को प्राप्त किया जाता है । प्रभु प्राप्ति के अमोघ सत्य को उपलब्ध करने का अभ्यास गुरु-भक्ति द्वारा किया जाता है । छोटे तालाब में तैरना सीख कर तब बड़े नदी-नद पार करना सम्भव होता है । गुरु के ऊपर सात्विक प्रेम का अभ्यास बढ़ा कर तब उस बढ़ी हुई भक्ति से ईश्वर को प्राप्त किया जाता है ।

गुरु दीक्षा एक प्रकार का आध्यात्मिक विवाह है, जिसमें तो व्यक्ति एक पवित्र उत्तरदायित्व को ओढ़ते हैं। गुरु अपने ऊपर उत्तर-दायित्व लेता है कि शिष्य की आत्मा को ऊँचा उठाने में कोई कसर न रखूँगा । शिष्य अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेता है कि गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा रखता हुआ उनसे प्रकाश प्राप्त करूँगा । विवाह और दीक्षा में यद्यपि भौतिक दृष्टि से बहुत अन्तर है पर आध्यात्मिक दृष्टि से उसमें विशेष अन्तर नहीं है । दो आत्माएँ जीवन भर के लिए पूरी ईमानदारी से एक दूसरे की उन्नति और सहायता का व्रत लेती हैं यही दीक्षा कहलाती है । पति-पत्नी के बीच होने वाले प्रतिज्ञा बन्धन

को 'विवाह' गुरु शिष्य के बीच होने वाले प्रतिज्ञा बन्धन को 'दीक्षा' और मित्र-मित्र के बीच होने वाले प्रतिज्ञा बन्धन को "मैत्री या पगड़ी पलटना" कहते हैं । इस प्रकार के व्रत बन्ध के पश्चात् अधिक जिम्मेदारी से कर्त्तव्य पालन के भाव दृढ़ होते हैं । शास्त्रों में कहा गया है कि शिष्य के पाप-पुण्यों का दसवाँ भाग गुरु को भी मिलता है । कारण स्पष्ट है कि शिष्य के निर्माण में गुरु का भारी उत्तरदायित्व होने के कारण उसके पाप-पुण्यों में उसे भागीदार बना देता है । यही बात पति-पत्नी और मित्र-मित्र में भी होती है । सम्मिलित उत्तरदायित्व के कारण एक की कीर्ति-अपकीर्ति में दूसरा स्वयमेव भागीदार हो जाता है ।

मनुष्य के मन में अनेकों गुप्त बातें रहती हैं । परन्तु उसके मन और चित्त की बनावट इस प्रकार की है कि जितनी ही अधिक गुप्त बातें उसके भीतर जमा होती जाती हैं उतना ही उसका मानस-लोक दूषित होता जाता है । हर एक में ऐसी शक्ति नहीं कि वह गुप्त बातों को बहुत समय तक अपने भीतर भरे रहने पर भी स्वस्थ बना रहे । आँख में कूड़े-करकट का एक छोटा टुकड़ा पड़ जाय तो आँख अस्वस्थ हो जाती है । पेट में कोई धातु का टुकड़ा या विष पहुँच जाय तो जब तक वह निकल नहीं जाय, तब तक चैन नहीं लेने देता, इसी प्रकार गुप्त बातें मन में भरे रहने वाले कपटी या पेट के मैले कहलाते हैं । देखा गया है कि उनका शरीर और मन इस मैल के कारण अशान्त और विकार ग्रस्त बना रहता है । इस विषय स्थिति से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि हम ऐसा कोई रहस्य पेट में न छिपाये रहें जो किसी पर प्रकट न हो । परन्तु अपने भेदों को सब पर प्रकट करना एक खतरा है जिसे उठाने का हर किसी को साहस नहीं होता । लोगों से अक्सर दुष्कर्म होते रहते हैं । चोरी, व्यभिचार, पाखण्ड, शेखीखोरी, छल, विश्वासघात आदि अनेकों बुरे काम लोग आये दिन किया करते हैं जिनको यदि प्रकट कर दिया जाय तो उनकी प्रतिष्ठा नष्ट होती है, निन्दा का भागी बनना पड़ता है, समाज से बहिष्कृत होना पड़ता है, राज दण्ड भोगना पड़ता है, आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है और ग्राहकों, साथियों तथा सहयोगियों के सहयोग से हाथ धोना पड़ता है । यदि किसी खास आदमी से वे बातें कह कर अपना मन हल्का किया जाय तो भी यह भय लगा करता है कि कभी वह दूसरों पर प्रकट न कर दे अथवा स्वयं ही घृणा न करने लगे । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कई बातें घनिष्ठ मित्रों से भी नहीं कहीं जातीं और खास तौर से ये बातें तो प्रकट की ही नहीं जा सकतीं जो उन मित्रों के विरुद्ध पड़ती हों या उन्हें रुष्ट करती हों । यह रहस्यवाद जितना ही पेट में पड़ा सड़ता रहता है उतना ही मानस भूमि को दूषित करता रहता है और उसके फलस्वरूप अनेकों प्रकार के शारीरिक, मानसिक और भौतिक रोग बढ़ते रहते हैं ।

इस विषम स्थिति से बचने के लिए गुरु की नियुक्ति बड़ी ही लाभदायक है । गुरु अत्यन्त उदार, सहनशील, क्षमावान् और शिष्य की निर्बल मनोभूमि का ज्ञाता होता है इसलिए वह उसके दोषों को सहानुभूति पूर्वक सुनता है, उसका निदान करता है और शल्य चिकित्सा चालू कर देता है । चूँकि वह सच्चा हितू है इसलिए शिष्य की सामाजिक स्थिति बिगाड़ने के लिए उन बातों को असमय में प्रकाशन करना आवश्यक नहीं समझता । ऐसी दशा में शिष्य अपने मन में अटकी पड़ी सभी रहस्य-ग्रन्थियों को खोल कर रख सकता है और मन के भार से हल्का होकर अनेक प्रकार की अस्वस्थताओं से छुटकारा पा सकता है ।

इस प्रकार के अनेकों कारण हैं जिनसे गुरु की नियुक्ति आवश्यक अनुभव करके हमारे ऋषियों ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए माता-पिता के समान ही गुरु की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया है । पर आज तो बड़े भद्दे और सड़े-गले रूप में इस परम्परा को पूरा किया जा रहा है । नाम मात्र के पढ़े हुए, अन्धविश्वासी, अविवेकी, मानव प्रकृति से अनभिज्ञ, धर्म मन्तव्यों के सूक्ष्म तत्व-ज्ञान से अपरिचित, ऐसे व्यक्ति गुरु बनने का दुस्साहस करते हैं जिनमें लोभ, अहंकार, व्यसन, आलस्य, प्रमाद, स्वार्थपरता की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं जो न लोक सेवा में रुचि रखते हैं और न जिनमें दूसरों के आत्म-निर्माण करने की क्षमता है । वे भोले-भाले लोगों की धर्मश्रद्धा का, गुरु परम्परा के मूल्य का, अनुचित लाभ उठा कर अपने लिए एक प्रकार का खेत तैयार करते हैं जिनसे सदा ही कुछ वसूल करते रहा जाय । जिजमान उनकी खेती है जिन्हें फसल की फसल दुहते रहते हैं । चेले भी ऐसे ही हैं वे किसी भी ओंधे-सीधे आदमी से कण्ठी बंधवा कर, कान फुँकवा कर अपनी गुरु श्रद्धा को पूरा करते हैं । ऐसे गुरु-शिष्य व्यर्थ ही एक लकीर को पीटते हैं, इसमें उन्हें कुछ लाभ होने वाला नहीं है ।

सुविज्ञ, चरित्रवान् और आत्म-शक्ति से परिपूर्ण पथ-प्रदर्शक का प्राप्त होना एक सौभाग्य है । ऐसा

सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है वे आत्मोन्नति का लम्बा और कष्ट साध्य मार्ग अल्प समय और अल्प श्रम में पूरा कर लेते हैं। कारण यह है कि उनकी वाणी बुद्धि और शिक्षा प्रणाली से जितना लाभ होता है उससे अनेक गुना लाभ उनके आत्म तेज से होता है । अपनी शक्तियों की किरणें वे शिष्य के अन्तःकरण में प्रवेश करके उसके ज्ञान चक्षुओं को प्रकाशित कर देते हैं । डाक्टर लोग ऐसा करते हैं कि कोई रोगी जब रक्त हीनता के कारण बहुत निर्बल हो जाता है तो उसके शरीर में किसी बलवान स्वस्थ आदमी का खून डालते हैं । इस नये खून को पाकर रोगी में नई शक्ति लौट आती है और वह खतरे से बाहर हो जाता है । आत्म तेजवान् गुरु भी ऐसा ही करते हैं वे अपनी कठिन तपश्चर्या द्वारा संचित आत्म-शक्ति को अपने शिष्य के शरीर और मस्तिष्क में प्रेरित करते हैं, फल स्वरूप वह निर्बल आत्मा अपने में शक्ति सम्पन्नता का अनुभव करने लगती है । हमें अनेकों ऐसे प्रसंग मालूम हैं जिनमें सद्गुरुओं ने 'शक्तिपात' करके शिष्यों की सुप्त आत्मिक चेतना को जागृत किया है । कुछ घटनाएँ हमें ऐसी स्मरण हैं जिनमें गुरु की शक्ति ने शिष्य के शरीर में इस प्रकार प्रवेश किया मानो बिजली की धारा उनके शरीर में कोंध गई हो, वे घबरा गये, डर गये और अर्द्ध-मूर्छित से हो गये । कारण यह था कि जितनी शक्ति वे सहन कर सकते थे उससे कहीं अधिक मानवीय विद्युत उनके शरीर में प्रवेश कर गई । अनुभवी पथ-प्रदर्शक इसका ध्यान रखते हैं और अपना तेज शिष्य के शरीर में उसी अनुपात से प्रवेश होने देते हैं जितना वह सहन कर सके ।

## यज्ञोपवीत एवं गुरु-दीक्षा

संस्कार विहीन मनुष्य प्राणी एक प्रकार का पशु ही है। जहाँ मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने की कोई व्यवस्था नहीं, उन वन्य प्रदेशों के निवासी देह से मनुष्य होते हुए भी गुण, कर्म और स्वभाव की दृष्टि से पशु ही होते हैं । इस पशु मनोभूमि को समुन्नत करने, मानवी एवं दैवी भूमिका में परिणत करने का कार्य-क्रम, उपचार आध्यात्मिक भाषा में 'संस्कार' कहलाता है । भारतीय धर्म में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है । १६ संस्कारों के द्वारा भारतीय तत्व-वेत्ताओं ने साधारण मानव प्राणियों को महान् पुरुष बनाने का चिरकाल से सफल प्रयत्न किया है।

नामकरण, जात-कर्म, चूड़ा, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों में यज्ञोपवीत संस्कार का महत्त्व सबसे अधिक है, क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य की मनोभूमि एवं विचारधारा का परिवर्तन होता है । यज्ञोपवीत धारी 'द्विज' कहलाते हैं। द्विज वे हैं जिनका जन्म दो बार हो । एक सांसारिक जन्म माता-पिता के रजवीर्य से होता है, जिसकी व्यवस्था 'दाई' कराती है । दूसरा आध्यात्मिक जन्म गायत्री माता और यज्ञ पिता के द्वारा होता है, जिसकी उपचार व्यवस्था आचार्य करते हैं । शास्त्रों में कहा भी गया है—

**'शूद्रास्तु जन्मना सर्वे पश्चाद्यान्ति द्विजन्मताम् ।**
**गायत्र्यैव जनाः साकं ह्यु पवीतस्य धारणात् ॥'**

(जन्मनात्) जन्म से (सर्वेशूद्राः) सभी शूद्र होते हैं (पश्चात्) बाद में (जनाः) मनुष्य (गायत्र्या साकं) गायत्री के सहित (उपवीतस्य धारणात्) यज्ञोपवीत धारण करने से (एव) ही (द्विजन्मतां) द्विजत्व को (यान्ति) प्राप्त होते हैं ।

**रहस्यमुपवीतस्य गुह्याद् गुह्यतरं हि यत् ।**
**अन्तर्हितं तु तत्सर्वं गायत्र्यां विश्व मातरि ॥**

(उपवीतस्य) यज्ञोपवीत का (यत्) जो (गुह्याद्ग्रह्यातरं) गुह्य से गुह्य (रहस्यं) रहस्य है (तत्सर्वं) वह सब (विश्व मातरि) विश्व माता (गायत्र्यां) गायत्री में (अन्तर्हित) अन्तर्हित है ।

आत्म दर्शियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से बताया है कि क्रमिक विकास के सिद्धान्तानुसार जीव चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् मनुष्य शरीर प्राप्त करता है । इन पुराने जन्म-जन्मान्तरों में नाना प्रकार के गुण कर्म स्वभावों में होकर उसे गुजरना पड़ता है, जिनकी थोड़ी बहुत छायाएँ उसके गुप्त मन पर बनी रहती हैं । भेड़िये की क्रूरता, व्याघ्र की निर्दयता, बन्दर की उठाईगीरी, श्रृंगाल की धूर्तता, कुत्ते का जाति द्रोह, बगुले का ढोंग, कौए की कुरुचि, सर्प की असहिष्णुता, मच्छर की दुष्टता, मक्खी की गंदगी, लोमड़ी की चालाकी, उल्लू और चमगादड़ की निशाचरता, खरगोश की भीरुता, चींटी का परिग्रह, सुअर का अभक्ष सेवन आदि निकृष्टताएँ उसी जीवन के साथ-साथ समाप्त नहीं हो जातीं वरन् उनकी छाप प्राणी के अन्तः प्रदेश में पड़ती रहती है । इस प्रकार की लाखों योनियों में भ्रमण करता हुआ जीव मनुष्य शरीर में आता है, तो उसके ऊपर वे पूर्व संचित कुसंस्कार भी न्यूनाधिक मात्रा में जमा होते हैं ।

जो जीव नीच योनियों से पहली बार मनुष्य शरीर में आया है उसमें पाशविक वृत्तियाँ अत्यधिक होती हैं । फिर इसके बाद प्रत्येक नये मनुष्य जन्म में वे कुप्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे कम होने लगती हैं । जैसे वन्य प्रदेशों में झाड़ झंखाड़, कँटीले, करील, बबूल अपने आप प्रचुर परिमाण में लगे रहते हैं इन निरर्थक, निरुपयोगी, दुःखदायी पेड़-पौधों के उगने और बढ़ने की परम्परा यों ही अपने आप चलती रहती है, परन्तु यदि किन्हीं अच्छे फलों की अन्न या औषधियों की खेती करनी हो तो विशेष परिश्रम पूर्वक भूमि साफ करनी होगी, उसकी जुताई गुड़ाई करनी पड़ेगी और बीज बोने के बाद सिंचाई, निराई और रखवाली की व्यवस्था की जायेगी तब कहीं अभीष्ट फसल उपलब्ध होगी । यह बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है । आरम्भ में उसकी मनोभूमि जंगली भूमि की भाँति अव्यवस्थित होती है, उसे सुसंस्कृत बनाने के लिए ऐसा ही प्रयत्न करना पड़ता है जैसा कि जंगल को काटकर फलों की खेती के लिए किया जाता है । इस प्रयत्न को संस्कार दीक्षा, द्विजत्व, यज्ञोपवीत आदि नामों से पुकारते हैं ।

पहला जन्म माता के पेट से होता है और दूसरा जन्म आचार्य द्वारा दिया जाता है । आचार्य अपने शिष्य की मनोभूमि को साफ करता है, उसमें बीज बोता है, संस्कारों को स्थापित करता है, उन्हें सींचता है, सुधारता है, रखवाली करता है और इन प्रयत्नों द्वारा शिष्य को कुछ से कुछ बना देता है । पहले की जंगली भूमि, कुछ ही दिन बाद सुरम्य उपवन बन जाती है । वैसे वह एक ही वस्तु है, पर पहले और पीछे के रूपों में भारी अन्तर हो जाने के कारण इसे 'कायाकल्प' या दूसरा जन्म भी कहा जा सकता है । असंस्कृत, जन्म जन्मान्तरों के पाशविक संस्कारों से युक्त मनोभूमि का देवी सम्पत्तियों से सुसज्जित हो जाना भी मानसिक कायाकल्प है, इसे दूसरा जन्म भी कह सकते हैं । यह द्विजत्व है । **माता के स्तनों से दूध पीकर बालक का शरीर बढ़ता है, आचार्य की आत्मा का रस पीकर शिष्य का अन्तःकरण विकसित होता है । चिड़ियाँ अपने अंडे को अपनी छाती के नीचे रख कर 'सेती' हैं । उसे अपनी गर्मी से पकाती हैं और अंडे से बच्चा निकालती हैं । आचार्य भी अपने शिष्य को आत्म तेज की गर्मी से उष्णता प्रदान करता है, उस पर छाती देकर बैठता है और अन्त में पशुता का अंडा-खोलकर, फोड़ कर, उसमें से सच्चा मनुष्य निकालता है । इस प्रकार आचार्य द्वारा जन्म दिये हुए मनुष्य को द्विज कहते हैं । जन्म से सभी शूद्र होते हैं पर संस्कार से द्विज बन जाते हैं ।**

प्राचीन काल में गुरु की नियुक्ति को ऐसा ही आवश्यक समझा जाता था जैसा कि विवाह । **अच्छी पत्नी पाकर जैसे युवक को और अच्छा पति पाकर जैसे युवती को, प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता अच्छा गुरु पाकर भी होती है । कारण यह है कि गुरु भी वैसा ही साथी है जैसा कि स्त्री-पुरुष आपस में होते हैं । एक जोड़ा सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्त्व रखता है तो दूसरा जोड़ा आत्म-विकास के लिए अनिवार्य है ।** पर आज तो सर्वत्र ही अव्यवस्था और अन्धकार छाया हुआ है जैसे दम्पत्ति सहवास के आनन्द में अनेकों नकली, झूठे, हानिकारक एवं अनैतिक उपकरण प्राप्त होते हैं, व्यभिचार की पद्धतियाँ प्रचलित हैं, वैसे ही गुरु-शिष्य के पवित्र सम्बन्धों में भी धूर्तता, मूर्खता, अनैतिकता और अविवेक का साम्राज्य छाया हुआ है । किसी समय गरीबों से लेकर अमीरों तक और प्रजाजनों से लेकर राजकुमारों तक ऋषियों के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करने जाते थे और अपने-अपने क्षेत्र की उपयुक्त योग्यताएँ लेकर वापस लौटते थे । पर आज तो साधु-संन्यासी, पंडित-पुरोहित, गुरु, महात्मा आदि जन्तुओं को देखने से ही लोगों के मनों में भय पैदा होता है, क्योंकि उनकी विचारधारा, भावना तथा क्रिया-प्रणाली तीनों ही ऐसी होती हैं जिनके सम्पर्क में आने वाले को हानि उठानी पड़ती है । लोग अपने बच्चों को उनके पास नहीं जाने देते कि हमारा लड़का इन लोगों की संगति में बैठकर कहीं निकम्मा, निठल्ला, गैर जिम्मेदार, भिखारी, व्यसनी, आलसी, प्रमादी, आबारा न बन जाय । उनका भय अकारण नहीं है, अनेकों उदाहरणों के आधार पर उन्हें इस प्रकार की मान्यता बनाने को विवश होना पड़ा है ।

आज प्रामाणिक विश्वस्त, विवेकशील और क्रिया कुशल ऐसे पथ-प्रदर्शकों का बड़ा अभाव है जो जन-साधारण को आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करके उन्हें सब प्रकार सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करने में सहायता दें । ऐसे प्रकाशवान् आचार्यों की सचमुच ही भारी कमी है जो अपनी आन्तरिक ज्योति से दूसरों की अन्तरात्मा को प्रकाशित कर दें, फिर भी खोज करने से अभीष्ट वस्तु मिल ही जाती है । ईश्वर की इस वैभवशाली सृष्टि में किसी वस्तु का बीज नाश नहीं होता ।

परमात्मा ने एक स्थान पर प्रतिज्ञा की है कि "सच्चे खोजी को निराश न होना पड़ेगा ।"

कितने ही व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि हम अमुक समय एक व्यक्ति को गुरु बना चुके अब हमें दूसरे पथ-प्रदर्शक की नियुक्ति करने का अधिकार नहीं रहा । उनका यह सोचना वैसा ही है जैसे कोई विद्यार्थी यह कहे कि अक्षर प्रारम्भ करते समय जिस अध्यापक को मैंने अध्यापक माना था अब जीवन भर उसके अतिरिक्त न तो किसी से शिक्षा ग्रहण करूँगा और न किसी को अध्यापक मानूँगा। एक ही अध्यापक से संसार के सभी विषयों के जान लेने की आशा नहीं की जा सकती । फिर वह अध्यापक मर जाय, रोगी हो जाय, कहीं चला जाय तो भी उसी से शिक्षा लेने का आग्रह करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? फिर ऐसा भी हो सकता है कि कोई शिष्य प्राथमिक गुरु की अपेक्षा कहीं अधिक जानकार हो जाय और उसका जिज्ञासा क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाय । ऐसी दशा में भी उसकी जिज्ञासाओं का समाधान उस प्राथमिक शिक्षक द्वारा ही कराने का आग्रह किया जाय तो यह किस प्रकार सम्भव है ? प्राचीन काल के इतिहास पर दृष्टिपात करने से इस उलझन का समाधान हो जाता है । महर्षि दत्तात्रय ने चौबीस गुरु-धारण किये थे, राम और लक्ष्मण ने जहाँ वशिष्ठ से शिक्षा पाई थी वहाँ विश्वामित्र से भी बहुत कुछ सीखा था, दोनों ही उनके गुरु थे । श्रीकृष्ण जी ने संदीपन ऋषि से विद्याएँ पढ़ीं पर महर्षि दुर्वासा भी उनके गुरु थे । अर्जुन के गुरु द्रोणाचार्य भी थे और कृष्ण भी । इन्द्र के गुरु बृहस्पति भी थे और नारद भी । इस प्रकार अनेकों उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे प्रकट होता है कि आवश्यकतानुसार एक गुरु अनेक शिष्यों की सेवा कर सकता है और एक शिष्य अनेकों गुरुओं से ज्ञान प्राप्त कर सकता है । इसमें कोई ऐसा सीमाबन्धन नहीं है जिसके कारण एक के उपरान्त किसी दूसरे से प्रकाश प्राप्त करने में प्रतिबन्ध हो । अब भी एक व्यक्ति के कई पुरोहित होते हैं । ग्राम्य पुरोहित, तीर्थ पुरोहित, कुल पुरोहित, राष्ट्र पुरोहित, शिक्षा पुरोहित, दीक्षा पुरोहित । **जिससे यज्ञोपवीत लिया है, जीवन विद्या सीखी है, आत्म- निर्माण के लिए प्रकाश प्राप्त किया है वह ब्रह्म पुरोहित है।** यह सभी पुरोहित अपने-अपने क्षेत्र, अवसर और कार्य में पूछने योग्य तथा पूजने योग्य हैं । यह सब एक दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक होते हैं ।

यज्ञोपवीत धारण करना, गुरु दीक्षा लेना, विधिवत् मंत्र ग्रहण करना यह तीनों बातें गायत्री उपासना में सहायक, लाभदायक, आवश्यक एवं मंजिल को पार करने में बड़ी सरलता उत्पन्न कर देने वाली हैं । फिर भी अनिवार्य नहीं हैं । इन बातों के बिना साधना न हो सकती हो या गायत्री उपासना न की जा सकती हो सो बात नहीं है। ईश्वर की वाणी, वेद ऋचा, भगवती महाशक्ति गायत्री को अपनाने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है । शास्त्र विधान के अनुसार ब्राह्मण बालक का १० वर्ष, क्षत्रिय का १२ वर्ष, वैश्य का १४ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत होना चाहिए । इससे अधिक आयु हो जाने पर जल्दी की दृष्टि से बिना किसी विशेष समारोह के, किसी भी यज्ञ आदि के शुभ अवसर पर साधारण रीति से यज्ञोपवीत धारण किया जा सकता है, पर जिनको ऐसी सुविधा भी नहीं उन्हें यज्ञोपवीत के लिए गायत्री उपासना रोकने की आवश्यकता नहीं है । अवसर आने पर वे पीछे भी जनेऊ ले सकते हैं । इसी प्रकार यदि अपने स्थान पर ठीक पथ-प्रदर्शक गुरु प्राप्त न हों तो किसी दूरस्थ व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करके काम चलाया जा सकता है । एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति को गुरु मान कर अपने 'निगुरापन' को दूर कर लिया था । गुरु का दर्जा 'आध्यात्मिक पिता' का है । पुरुष और स्त्री दोनों ही के माता-पिता होते हैं, इसी प्रकार गुरु भी दोनों के होते हैं और दोनों ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं ।

## यज्ञोपवीत संस्कार पर दृष्टिपात

उपनयन संस्कार का तात्पर्य गुरु की समीपता प्राप्त करना है । विद्यार्थी सद्गुरु के समीप आकर विद्याध्ययन के लिए अपने आपको प्रस्तुत करता है, ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेता है और मनुष्य शरीर में समाये हुए पशुत्व के संस्कारों को त्याग कर जब उद्देश्यमय, कर्त्तव्य परायण, धार्मिक जीवन में प्रवेश करते हुए द्विजत्व ग्रहण करता है ।

यज्ञोपवीत संस्कार की विधि के ऊपर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो उस समय उच्चारण किये जाने वाले मंत्रों एवं कर्मकाण्डों में यही भावना व्यक्त दृष्टिगोचर होती है । यज्ञोपवीत संस्कार की पूरी विधि इस छोटी पुस्तक में नहीं दी जा सकती, पर उसमें प्रयुक्त होने वाले कुछ मंत्रों को नीचे दिया जाता है, जिनसे यज्ञोपवीत के मन्तव्य पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है ।

**बालक कहता है**

**ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।**

—*मं. ब्रा. १/६/९*

**अर्थ**—हे (व्रतपते) उपनयनादि व्रतों के अधीश्वर अग्ने पूजनीय परमात्मन् ! मैं (व्रतं चरिष्यामि) ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करूँगा । (तत्ते) इससे आपके प्रति (प्रब्रवीमि) निवेदन करता हूँ कि आपकी कृपा से (तत्) उस व्रत का पालन करने के लिए (शकेयम्) समर्थ होऊँ (तेन) उस व्रत के फल से मैं (ऋध्यासम्) समृद्धि सम्पत्ति युक्त होऊँ और (अहम्) मैं (अनृतात्) झूठे कार्यों को छोड़ कर (इदं सत्यम्) इस हृदयस्थ सत्य ब्रह्म को (उपैमि) प्राप्त होऊँ ।

**ॐ ब्रह्मचर्यमामामुपमानयस्व**

—*मं. बां. १/६/१६*

**अर्थ**—हे गुरुदेव ! मैं (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत को (आगाम्) स्वीकार कर चुका हूँ । अब आप (मा) मुझे (उपनयस्व) विधि पूर्वक अपने पास रखिए ।

## गुरु कहते हैं

**ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृहणाम्यसौ ।**

—*य. अ. ५/२६*

अर्थ—हे (असौ) अमुक नाम के बालक (सवितुदेवस्य) जगदुत्पादक परमात्मा के (प्रसवे) ऐश्वर्य के लिए (त्वा) तुझे ग्रहण करता हूँ । (अश्विनः) सूर्य और चन्द्रमा के जैसे (हस्ताभ्याम्) परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिए तथा (पूष्णः) प्राण वायु के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग के लिए, तेरे (हस्तम्) हाथ को (ग्रह्णामि) ग्रहण करता हूँ ।

**ॐ सविता ते हस्तमग्रहीत् असौ ।**

—*मानव गृ.सू. १-२२-५*

**अर्थ**—हे बालक (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (सविता) परमात्मा ने (अग्रहीत्) ग्रहण कर लिया है ।

**ॐ अनिग्नराचार्य स्तवअसौ ।**

—*सा.म. १-३-१५*

**अर्थ**—हे बालक (तव) तेरा (अग्नि) ईश्वर ही (आचार्यः) आचार्य है ।

**ॐ आगन्त्रा समगन्महे प्रसुमत्यं युयोतन ।**
**अरिष्टाः सञ्चरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥**

—*म. ब्रा. १-६-१४*

**अर्थ**—हे परमात्मन् (आगन्त्रा) ब्रह्मचर्य व्रत में अग्नि वाले इस ब्रह्मचारी के साथ हम (समगन्महे) मेल कर चुके हैं । आप कृपा कर इस बालक को (सुमर्त्यम्) सज्जनों से युक्त (युयोतन) भले प्रकार कीजिए । (अरिष्टाः) इस बालक को विघ्नों के हम (सञ्चरेमहि) अपने ऊपर लेते हैं । (अयम्) यह बालक (स्वास्ति चरतात्) कल्याण पूर्वक विचारें ।

इन मन्त्रों में बालक और गुरु दोनों अपने-अपने ढंग से एक ही उद्देश्य प्रकट करते हैं । छात्र भी वही शिक्षा प्राप्त करना चाहता है जो उसकी आत्मा का कल्याण करने वाली हो, गुरु भी वैसा ही ज्ञान दान करना अपना उद्देश्य बनाता है । दोनों एक उद्देश्य पर सहमत होकर ज्ञान सूत्र आरम्भ करते हैं । नर को नारायण बनाने का यह प्रयास ही उपनयन का मूल तथ्य है । ईश्वर परायण, ईश्वर की आज्ञा पालन, ईश्वर भक्त बनाने के उद्देश्य से ही आचार्य बालक को यज्ञोपवीत धारण कराता है । वह कहता है:—

**इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्य स्तवाहमाचार्यस्तवाऽसौ ॥**

**अर्थ**—(असौ) हे बालक तू (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (ब्रह्मचारी, असि) ब्रह्मचारी है । (तव) तेरा (अग्निः आर्चाय) पूजनीय ईश्वर ही आचार्य है और उसके बाद (अहम्) मैं भी (तव) तेरा (आचार्यः) आचार्य हूँ ।

निस्संदेह उपवीत संस्कार द्विजत्व में—दूसरे जन्म में प्रवेश करना है, स्वार्थ, भोग एवं पशुता को तिलाञ्जलि देकर जीवन के वास्तविक उद्देश्य में क्रियात्मक रूप से संलग्न होना, यज्ञ-परमार्थ से उपवीत संयुक्त सन्निकट होकर जीवन बिताना, यही तो यज्ञोपवीत धारण का उद्देश्य है ।

यज्ञोपवीत संस्कार यज्ञ के द्वारा ही होता है । उपवीत को, जनेऊ को यज्ञ के द्वारा पवित्र एवं संस्कारित किये जाने के कारण ही उसका नाम यज्ञोपवीत पड़ा है । वस्तुतः जीवन में महत्त्वपूर्ण मोड़ देने की यह एक महान् प्रक्रिया है । इस संस्कार के समय वेद के बड़े ही शक्तिशाली मंत्रों का प्रयोग किया जाता है । जो कर्मकाण्ड एवं संस्कार विधान उस अवसर पर प्रयुक्त होते हैं उनका एक रहस्यपूर्ण वैज्ञानिक रहस्य है । उस रहस्यपूर्ण प्रक्रिया का असर यज्ञोपवीत धारण करने वाले की मनोभूमि पर पड़ता है जिससे उसके स्वभाव और गुणों के सुधार में ही नहीं, मानसिक शक्तियों के विकास में भी बड़ी सहायता मिलती है । यज्ञोपवीत के समय ही वेदारम्भ एवं गुरुदीक्षा का कार्य सम्पन्न होता है जिसमें आचार्य अपने निजी तप, पुण्य, प्राण एवं आत्म-बल का

एक बड़ा भाग शिष्य की आत्मा गुह्यस्थल में प्रतिष्ठापित करता है और यही चिनगारी आगे बढ़कर शिष्य के जीवन में ओत-प्रोत हो जाती है ।

उपनिषदों में शिष्य की मनोभूमि को क्षेत्र और गुरु के शक्ति प्रयास को बीज बताया गया है । यज्ञोपवीत संस्कार का कर्मकाण्ड एक प्रकार से खेत को भली प्रकार जोत-बोकर उसमें छँटा हुआ बढ़िया बीज बोने के समान है । यह आध्यात्मिक बीजारोपण होने के बाद जब शिष्य के संस्कारों की खेती बढ़िया फसल के रूप में पकती है तो उसकी मोहक सुगंधि एवं मधुर मिठास से अन्तर्रात्मा का रोम-रोम खिल पड़ता है । यदि शिष्य श्रद्धावान् और गुरु प्राणवान् हो और विधिवत् उपनयन संस्कार किया जाय तो यह तीनों प्रक्रियाएँ मिलने का परिणाम वैसा ही होता है जैसा (१) उपजाऊ खेत (२) बढ़िया बीज और (३) आवश्यक खाद पानी प्राप्त होने का होता है ।

गायत्री उपासना में उत्कीलन और शाप मोचन का जो उल्लेख मिलता है उसमें गुरुदीक्षा की आवश्यकता का प्रतिपादन है और कहा गया है कि यदि अधिकारी गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त हो जावे तो साधना सफल होने में कोई सन्देह नहीं रहता । प्राचीन काल में यज्ञोपवीत संस्कार कराने और गुरुदीक्षा देने के लिए अधिकारी आचार्य बड़ी खोज के साथ ढूँढ़े जाते थे । आज तो कोई भी अधिकारी अनाधिकारी योग्य अयोग्य पंडित यज्ञोपवीत संस्कार कराने जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को कराने का दुस्साहस कर बैठते हैं और इस जीवन परिवर्तन करने जैसी महान् प्रक्रिया को एक खिलवाड़ जैसा बना देते हैं । देखा जाता है कि यज्ञोपवीत संस्कार या गुरु दीक्षा कराने वाले पंडितों को दान दक्षिणा खूब मिल जाती है और उधर जिनके बच्चे का संस्कार हुआ है उनका खर्च भी बहुत पड़ जाता है । इतना होने पर भी जिसने यज्ञोपवीत धारण किया उसके जीवन में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता । यदि आवश्यक परिणाम न हो तो यह संस्कार कराना एक प्रकार से चिह्न पूजा मात्र ही कहा जा सकता है ।

## उपवीत धारण में विलम्ब क्यों ?

"वेश से भावना उत्पन्न होती है" यह सिद्धान्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर अवलम्बित है । यदि किसी कायर पुरुष को फौजी कप्तान की पोशाक पहना दी जाय और उसे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कर दिया जाय तो उसकी यह वेश-भूषा जब तक रहेगी, तब तक वह वीरता की भावना से भरा रहेगा । राज्य के उच्च पदों पर आसन्न व्यक्ति यद्यपि व्यक्तिगत रूप से साधारण से नागरिक मात्र हैं, पर उस पद की सत्ता और गौरव के कारण अपने आपको कोई बड़ी हस्ती समझते रहते हैं जब तक कि उस कुर्सी पर काम करते हैं, जब वे अपने पद के उत्तरदायित्व से अलग होकर कहीं दूर देश चले जाते हैं तब उनकी हस्ती सामान्य जनता जैसी हो जाती है । आप विचार कीजिए कि, कोई साधु, महात्मा, पंडित, पुरोहित, कोई दुष्कर्म प्रत्यक्ष रूप से करने का साहस न करेगा, क्योंकि उसे भय रहता है कि मेरा उज्ज्वल वेश की ऐसीं करने से अप्रतिष्ठा होगी, इसलिए यदि कोई बुरा काम उसे करना होता है तो लोगों को आँख बचाकर गुप्त रूप से करता है ।

लड़कियाँ जब अपनी सुसराल में होती हैं तो उनका तर्ज-तरीका, बात-चीत का ढंग वधू जैसा होता है, जब वे अपने पिता के यहाँ आ जाती हैं तो लड़कियों की तरह अपना रवैया रखती हैं । स्थिति, वातावरण और वेश के अनुसार मनुष्य की विचारधाराएँ बनती हैं, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता । यज्ञोपवीत को धारण करना ऐसा ही एक मनोवैज्ञानिक प्रयोजन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने आपकी दृष्टि में तथा दूसरों की दृष्टि में सिद्धान्तवादी, आदर्श का अनुयायी, मनुष्यता का पुजारी, पशुता के बन्धनों से मुक्ति पाने का आकांक्षी तथा सन्मार्ग का पथचारी बनता है । कंधे पर रखा हुआ ब्रह्मसूत्र इस बात का साक्षी है, घोषणा-पत्र है, प्रतीक है कि यह व्यक्ति मनुष्यता के महान् उत्तरदायित्वों से अनभिज्ञ नहीं है और न उस ओर उपेक्षा एवं अकर्मण्यता धारण किये हुए प्रसुप्त अवस्था में पड़ा हुआ है, वरन् जितना भी उसे अवसर मिल रहा है अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उस ओर चल रहा है जिस ओर कि धर्म-प्रेमी को चलना चाहिए ।

यज्ञोपवीत पूर्णता का प्रतीक नहीं, वरन् इस बात का चिह्न है कि धर्म, कर्त्तव्य और संस्कृति की रक्षा की जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया गया है और उस बोझ को उठाने के लिए कंधा लगा दिया गया है । कर्मवीरों की सेना में भर्ती हो जाना वैसा ही द्विजत्व का व्रत है । यह व्रत हर भारत माता की संतान को लेना चाहिए, चाहे वह वर्तमान स्थिति में किसी कदर अपने को निर्बल ही क्यों न अनुभव करता हो । अनेकों अनाथ बालक अपने जीवन का बोझ अपने ऊपर उठाते हैं वे अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक चतुर हो जाते हैं । यद्यपि वयस्क पुरुष की भाँति वे अपने बोझ को ठीक प्रकार उठा कर नहीं चल

पाते बार-बार भूलते और गलती करते हैं फिर भी जो कुछ भी वे कर पाते हैं, वह सब भी कम प्रशंसा के योग्य नहीं होता । जो ऐसा अनुभव करते हैं कि हममें बहुत कमजोरी है जनेऊ हम से न सधेगा उन्हीं लोगों से हमारा इन पंक्तियों में विशेष अनुरोध है कि उपवीत को अवश्य धारण करें, यह कमजोरी ही इस बात का प्रबल कारण है कि उन्हें ही इसके धारण की सबसे अधिक आवश्यकता है । यदि वे पूर्ण उपवीत न ले सकें तो आरम्भ में अर्द्ध-उपवीत-कण्ठी-लेकर कार्य आरम्भ कर सकते हैं, पर इस दिशा में उन्हें कदम अवश्य उठाना चाहिए ।

यज्ञोपवीत का आरम्भ-संस्कार पूर्वक होना चाहिए । यों कोई व्यक्ति किसी स्त्री को साथ लेकर चल दे और गृहस्थ धर्म पालन करने लगे तो भी प्रत्यक्षतः कुछ विशेष हर्ज दिखाई नहीं पड़ता, तो भी इतना निश्चित है कि देवताओं की साक्षी, प्रतिष्ठित पंच परमेश्वरों के सामने प्रतिज्ञा वचन स्वीकार करते हुए वेदमन्त्रों के साथ जो कन्यादान पाणिग्रहण का शुभ संस्कार होता है उसको अकारण या व्यर्थ नहीं कहा जा सकता । विवाह सम्बन्ध के समान ही यज्ञोपवीत भी, गुरु दीक्षा, गायत्री द्वारा वेदारम्भ यह किसी कन्यादन और पाणिग्रहण से किसी प्रकार कम नहीं हैं ।

जो लोग सम्पन्न हैं, जो सावित्री पतित नहीं हुए हैं अर्थात् जिनकी आयु अपने वर्ण के हिसाब से (ब्राह्मण का उपवीत ५ से ८ वर्ष की आयु तक, क्षत्रिय का ६से ११ तक, वैश्य का ८ से १२ तक हो जाना चाहिए) अधिक आयु न हुई हो, उन्हें विवेकवान् विद्वान और आचरणवान् आचार्य से विधिपूर्वक उपनयन संस्कार कराना चाहिए ।

जो लोग धनवान नहीं हैं, अधिक आयु के हो चुके हैं, जिन्हें अवकाश कम मिलता है, जिन्हें अपने निकट कोई उपयुक्त आचार्य ऐसा नहीं दिखाई पड़ता जो केवल चिन्ह पूजा कराने के अतिरिक्त आत्म-निर्माण का पथ-प्रदर्शन भी कर सके, तो भी निराश होने की कोई बात नहीं, इन कठिनाइयों के कारण द्विजत्व का व्रत लेने का अनिवार्य कर्त्तव्य न तो स्थगित करना चाहिए और न इसको 'फिर कभी' के लिए टालना चाहिए, वरन् जितना शीघ्र हो सके किसी उपयुक्त पथ-प्रदर्शक को तलाश करके उसके द्वारा संक्षिप्त संस्कार के साथ उपवीत संस्कार करा लेना चाहिए और यज्ञोपवीत पहनना आरम्भ कर देना चाहिए ।

उपवीत धारण करने के साथ-साथ वेदारम्भ भी होता है । प्राचीन काल में गुरुकुलों में रह कर ब्रह्मचारी लम्बे समय तक गुरु मुख से वेद ज्ञान प्राप्त करते थे । आज यदि उतना सम्भव नहीं है तो भी यज्ञोपवीत के तत्त्व-ज्ञान को सविस्तार जान लेना भी किसी प्रकार वेद ज्ञान की पूर्ति कर सकता है । वेद में जिस ज्ञान की विशद् व्याख्या है वह सब बीज रूप से गायत्री में मौजूद है । यदि उपवीत-धारी व्यक्ति गायत्री को मनोयोग पूर्वक समझ ले तो उसे वेदाध्ययन का लाभ मिल सकता है । (१) उपवीत धारण, (२) गायत्री की दीक्षा, (३) पथ-प्रदर्शक की नियुक्ति, यह तीन कार्य एक साथ होने चाहिए । यह त्रिविधि सुयोग जब एकसाथ मिलता है तो त्रिवेणी के मिलन से बने तीर्थराज जैसा महान् फल मिलता है ।

यज्ञोपवीत को धरण करना, द्विजत्व में प्रवेश करना, साधारण काम नहीं है । यह महान् कार्य केवल धार्मिक कर्मकाण्ड करते रहने से पूरा नहीं हो सकता । इसके लिए हृदय के गहन अन्तराल में परिवर्तन होना चाहिए वहाँ से प्रेरणा और स्फूर्ति आनी चाहिए । बाहरी उत्साह तो क्षणिक होता है, दूसरों के द्वारा भरा हुआ जोश कुछ समय में समाप्त हो जाता है, पर जो स्फुरणा अन्तःकरण से निकलती है यह ज्वालामुखी पर्वत की अग्निशिखा की भाँति प्रज्वलित ही रहती है । यह अग्निशिखा प्रज्वलित हो जाने पर साधक का अन्तःकरण सुदृढ़ आधार पर खड़ा हो जाता है और आध्यात्मिक यात्रा आगे बढ़ने लगती है । यह आन्तरिक निर्माण तब होता है, जब आत्मा में ब्राह्मी भावनाएँ हिलोरें लेती हैं । इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें भगवती गायत्री माता ही की शरण में जाना पड़ता है। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि विश्वमाता गायत्री में यज्ञोपवीत का गुह्य रहस्य छिपा हुआ है, बिना गायत्री में यज्ञोपवीत अधूरा है केवल चिह्न पूजा मात्र है । इसलिए जो गायत्री सहित यज्ञोपवीत को धारण करता है वही सच्चे द्विजत्व को प्राप्त करता है । यों चिह्न पूजा तो सभी करते हैं, लकीर तो सभी पीटते हैं पर द्विज वही है जो आत्म-दृष्टि प्राप्त करके उद्देश्यमय जीवन जीता है । अन्यथा जन्म से तो सभी शूद्र ही हैं, कोई भले ही अपने को सवर्ण कहता रहे । इसलिए द्विजत्व को प्राप्त करने के लिए गायत्री की शरणागति आवश्यक है ।

## चोटी और जनेऊ की उपेक्षा न कीजिए

शिखा और यज्ञोपवीत यह दो हिन्दू धर्म के प्रधान चिह्न हैं । जिस प्रकार इस्लाम धर्म में सुन्नत कराना

इस्लाम के प्रति आस्था का प्रतीक है, जिस प्रकार सिख धर्म में, कड़ा, केश, कंघी, कृपाण और काँप को अपना प्रतीक मान कर धारण करते हैं, जिस प्रकार ईसाई लोग गले में टाई बाँधना अपना धर्म प्रतीक मानते हैं, इस प्रकार हिन्दू धर्म में चोटी और जनेऊ को आवश्यक धर्म प्रतीक मानकर उन्हें धारण किये रहने के कठोर आदेश दिये गये हैं ।

हिन्दू धर्म में शरीर को एक देव मंदिर माना गया है और हर धर्म प्रेमी से आशा की गई है कि जिस प्रकार देव मन्दिरों में धर्म धारण, ईश्वर की स्थापना करके न केवल वहाँ का भीतरी वातावरण पवित्र रखा जाता है वरन् बाह्य क्षेत्र में भी धर्म-भावनाओं सत्प्रवृत्तियों द्वारा देवालय बने और उसके कार्यक्रम ऐसे हों जिनके सम्पर्क में आने मात्र से लोगों में सद्भावनाएँ उत्पन्न हों । देव मन्दिरों पर उनकी पवित्रता और महत्ता के प्रतीक शिखर कलश लगाये जाते हैं, यह शिखर कलश एक प्रकार के झण्डे हैं जो अपनी ऊँचाई के माध्यम से मस्तक को ऊँचा उठाये हुए अपने महान् उद्देश्यों की घोषणा करते रहते हैं । शरीर रूपी देव मन्दिर के ऊपर भी इसी प्रकार एक शिखर स्थापित किया जाता है जिसे शिखा या चोटी कहते हैं ।

हर किले के ऊपर वहाँ की सरकार का एक झण्डा फहराता है जिसका तात्पर्य उस किले के ऊपर उस केन्द्र से संचालित क्षेत्र के ऊपर अमुक सरकार का वर्चस्व है यह घोषित करना होता है । शरीर भी एक किला है । इसके भीतर रहने वाली सत्ता का आधार क्या है ? वह किन आदर्शों एवं उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करती है ? यह जानकारी उसके ऊपर उड़ने वाले झण्डे को देखने मात्र से प्राप्त की जा सके, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिर पर चोटी रखाई जाती है । यह हिन्दू धर्म का झण्डा है जो हर धर्म प्रेमी के सर्वोच्च शिखर मस्तक के ऊपर गाढ़ा जाता है । यह शरीर हिन्दू धर्म की भावनाओं और मान्यताओं से अभिप्रेत है । चोटी रखा कर हर हिन्दू अपने शरीर की आन्तरिक भावनाओं की घोषणा करता है ।

यों कपड़े का एक छोटा टुकड़ा मात्र होने से झण्डा अपने आपमें कुछ विशेष मूल्य नहीं रखता । उसे व्यर्थ का झण्डा कहा जा सकता है । पर कोई भी देश या देश-भक्त उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता से इनकार नहीं करता । उसे हर महत्त्वपूर्ण स्थान पर लहराया जाता है । हर राष्ट्रीय पर्व पर झण्डाभिवादन के कार्यक्रम समारोह-पूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं । हिन्दू की मान्यता भी ऐसी होती है । संध्या, हवन आदि प्रत्येक शुभ कर्म के समय चोटी को ग्रन्थि संस्कार के साथ पूजन इसीलिए किया जाता है कि कोई हिन्दू इस धर्म प्रतीक की कहीं उपेक्षा न करने लगे । हिमालय की सबसे ऊँची चोटी एवेरस्ट के ऊपर शेरपा तेनसिंह ने झण्डा गाढ़ा था और एक गर्व एवम् गौरव पूर्ण प्रक्रिया सम्पन्न की थी । रूस ने चन्द्रमा पर उपना राकेट भेजा तो वहाँ उपनी विजय पताका भी फहराई । चन्द्रमा से भी ऊँचे—एवरेस्ट से भी ऊँचे मानव मस्तक की ऊँचाई पर चढ़ कर उसके ऊपर धार्मिकता की विजय पताका फहराते हुए हर हिन्दू उससे ज्यादा प्रसन्नता और गर्व अनुभव करता है जितना चन्द्रमा पर झण्डा फहराते हुए रूस ने अनुभव किया ।

चोटी रखाना हिन्दू धर्म के प्रति हमारी अटूट निष्ठा की घोषणा है । जब किसी राजसत्ता का पतन होता है तभी उसके राज भवन पर से वह झण्डा उतारा जाता है । जब कोई फौज हार कर आत्म-समर्पण करती है, तभी अपना झण्डा गिराकर सफेद झण्डा फहराती है । चोटी कटा देने का अर्थ भी उपनी धर्म भानाओं के प्रति अनास्था एवं अविश्वास घोषित करना है । मुसलमानों ने चोटी काटने पर बहुत जोर दिया था, इसके लिए उन्होंने लोगों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये और मृत्युदण्ड तक दिये । इस पर भी निष्ठावान लोग विचलित न हुए । उन्होंने बोटी-बोटी कटवा दी पर चोटी न कटने दी । राणा प्रताप, शिवाजी, बन्दा वैरागी, हकीकतराय, गुरु गोविन्द सिंह आदि असंख्यों बलिदानों के पीछे चोटी की रक्षा करने की प्रबल भावना ही प्रधान रूप से काम करती थी ।

राष्ट्रीय झण्डा फहराते समय यह गाया जाता है—"इसकी शान न जाने पावे । चाहे जान भले ही जावे ।" एक प्रसिद्ध राष्ट्र गीत में उद्बोधन है कि—"प्राण मित्रो भले ही गँवाना । पर न झण्डा को नीचे झुकाना ।" यह बातें केवल भावनाएँ ही नहीं हैं, राष्ट्रीय झण्डे की रक्षा में वस्तुतः सहस्त्रों देश-भक्तों ने अपने प्राणों का बलिदान किया है । इस धर्म पताका चोटी की रक्षा के लिए हुए बलिदानों का इतिहास भी बड़ा गौरवपूर्ण है । वे बलिदानी आत्माएँ हमें इस धर्म पताका की शान और सुरक्षा को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए आज भी सजग करती रहती हैं । उन ऋषियों की आत्माएँ जिन्होंने हिन्दू संस्कृति का निर्माण और विकास किया, आज भी अपने वंशजों से उस भावना की दृढ़ता की आशा करती हैं और यह ढूँढ़ती हैं कि उनके वंशज अपनी निष्ठा की प्रतीक शिखा को उपने शीर्ष स्थान पर धारण किये हुए हैं या नहीं ।

आज इस अवसर की दु:खद घड़ियों में हम न केवल अपनी धर्मनिष्ठा को ही भूले हैं वरन् उसकी शिखा के प्रति भी उपेक्षा बुद्धि रखने लगे हैं । उसे व्यर्थ समझने लगे हैं और मस्तिष्कों पर से हारे हुए सिपाही की भाँति उसे गिरा कर ही अपनी लज्जा और पराजय का प्रदर्शन कर रहे हैं ।

यों चोटी रखाने के अनेकों वैज्ञानिक लाभ भी हैं । मस्तक का वह केन्द्र बिन्दु जहाँ मेरुदण्ड एवं मस्तिष्क के स्नायु तंतु परस्पर सम्बद्ध होते हैं, हमारी मानसिक शक्तियों का उद्भव स्थान माना जाता है । वह पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की तरह सन्तुलन संस्था एवं शक्ति केन्द्र भी है। इस स्थान की सुरक्षा उच्च स्तरीय भावनाओं की सुरक्षा के लिए सूक्ष्मदर्शी ऋषिओं ने अत्यन्त आवश्यक मानी है । उस संस्थान की ऋतुओं का प्रभाव या मामूली चोट आदि से रक्षा होती रहे इसलिए एक मुलायम गद्दी के रूप में ढाल जैसी चोटी रखा दी जाती है । इसके फलस्वरूप हमारा श्रद्धा केन्द्र सूक्ष्म बना रहता है और हमारी आदर्शवादिता शिथिल नहीं होने पाती । यह तत्त्व इस गये गुजरे जमाने में भी चोटी धारी हिन्दुओं में सारे संसार के निवासियों की अपेक्षा अब भी कहीं अधिक है । मेरुदण्ड का उद्गम केन्द्र शीर्षबिन्दु जहाँ योगी लोग सहस्त्रार कमल मानते हैं, अध्यात्म शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली संस्थान है—उस स्थान पर आने वाले बालों को काटने से वहाँ विकृति एवं अनावश्यक हलचल पैदा होती है, कटे हुए बालों की जड़ें उन्हें पूरी लम्बाई तक बढ़ाने के लिए पुन: सक्रिय होती हैं । उनकी यह सूक्ष्म हलचल कामुकता, वासना, क्रोध आदि दुर्वृत्तियों को प्रोत्साहन देती है । यह हलचल हमारी आन्तरिक श्रेष्ठता में बाधा पहुँचाती हैं, इसलिए ऋषियों ने यह व्यवस्था विधान बनाया कि चोटी के बाल कभी न काटे जायें और वहाँ बालों की जड़ों को आवश्यक हलचल करने से बचाकर दुर्वृत्तियों पर काबू रखने का मार्ग सरल किया जाय । चोटी रखाने के ऐसे ही अनेकों और भी वैज्ञानिक लाभ हैं पर उनसे भी अधिक हम अपने शीर्ष स्थान पर शिखा फहरा कर अनादि काल से करते आये हैं ।

यज्ञोपवीत का स्थान शिखा से भी ऊँचा माना गया है। वह आदर्शमय, दिव्य जीवन बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहने की हमरी दृढ़ प्रतिज्ञा का चिह्न है । रमजान के महीने में मुसलमान लोग एक महीने के लिए कुछ व्रत लेते हैं और अपनी उस व्रतशीलता के प्रतीक रूप में गले में कलावा (रंगीन सूत का लच्छा) गले में बाँधते हैं जिससे उन्हें अपने व्रत की याद बराबर बनी रहे और उन दिनों के धर्म कर्त्तव्यों का निवाहन ठीक प्रकार होता रहे । हिन्दू का काम एक महीना व्रत लेने से नहीं चल सकता। वह थोड़ा समझदार होते ही आजीवन आदर्शवादी, आत्म संयमी, परोपकारी, धर्म परायण एवं आध्यात्मिक निष्ठावान् रहने का व्रत लेता है और उसका प्रतिज्ञा सूत्र—यज्ञोपवीत—बड़े धर्म समारोह के साथ धारण करता है ।

धर्म शास्त्रों में जनेऊ पहनने की बड़ी प्रशंसा की गई है और न पहनना एक निंदनीय अधर्म बताया गया है । जनेऊ की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए पद्म पुराण, कौशल खण्ड में कहा गया है कि—यज्ञोपवीत धारण करने से अनेक जन्मों के पाप (कुसंस्कार) दूर हो जाते हैं । ब्रह्मोपनिद् में लिखा है कि—यज्ञोपवीत परम पवित्र है। ईश्वर ने इसे सबके धारण करने के लिए सहज बनाया है । यह आयु वर्धक, स्फूर्ति दायक, बन्धन से छुड़ाने वाला एवं तेज और बल बढ़ाने वाला है । ऋग्वेद ४।७।१ में लिखा है—यज्ञोपवीत द्वारा सत्य व्यवहार की आकांक्षा, अग्नि के समान तेजस्विता और दिव्य गुणों की पवित्रता प्राप्त होती है । जहाँ इस प्रकार की प्रशंसा के अनेकों प्रमाण मिलते हैं वहाँ इनकी उपेक्षा करने की भर्त्सना भी स्थान-स्थान पर मिलती है । बोधायन का कथन है कि— "सदा यज्ञोपवीत धारण किये और शिखा रखाये रहना चाहिए । जो ऐसा नहीं करते उनके सब धर्म कर्म निष्फल चले जाते हैं ।" महाभारत में लिखा है कि—"यज्ञोपवीत की उपेक्षा करने वाले के हाथ का छुआ जल तक न पीना चाहिए ।" इस प्रकार के वचनों की बहुलता धर्म ग्रन्थों में बिखरी पड़ी है ।

कारण स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत के साथ सम्बद्ध आदर्शवादी व्रतशीलता के उत्तरदायित्वों को अपने कंधे पर, हृदय पर, कलेजे पर, पीठ पर धारण करना हर मानवता के पुजारी-भारतीय संस्कृति के अभिमानी का आवश्यक कर्त्तव्य है । उसे अपनाये बिना कोई व्यक्ति उस लक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता जो मानव-जीवन की सफलता के लिए अभीष्ट है । प्राचीन काल में आदर्शवादी जीवन की प्रतिज्ञा लेना और यज्ञोपवीत धारण करना एक ही बात मानी जाती थी । जो इस महानता का गौरव अस्वीकार करे—हीन कर्मों और दीन विचारों में तृष्णा और वासना में पड़े रहने का पाशविक दृष्टिकोण अपनावे और जनेऊ में सन्निहित आदर्शों को धारण करने से इनकार करे, उसे शूद्र, चाण्डाल अन्त्यज आदि नामों से

पुकारा जाता था । ऐसे लोग एक प्रकार से समाज बहिष्कृत ही रहते थे । कोई सभ्य आदमी उनसे प्रेम व्यवहार नहीं करता था । आज तो किसी वंश में जन्म लेने मात्र से शूद्र, चाण्डाल, अन्त्यज माने जाने लगे हैं और उन्हें जनेऊ पहनने का अधिकारी नहीं माना जाता । प्राचीन काल में ऐसा न था जो लोग धर्मकर्त्तव्यों का त्याग करते थे, वे ही बहिष्कृ:त होते थे । आज तो जब कि हर क्षेत्र में अन्धेर और अविवेक का साम्राज्य है तो वह समाज दण्ड भी एक रूढ़ि परम्परा बन गया है । आज की रूढ़िवादिता के अनुसार ही चोरी में सजा पाये हुए किसी व्यक्ति के वंशजों को भी सहस्त्रों पीढ़ियों तक जेल जाने का ही दण्ड मिल रहा है । यह दु:खद अविवेक मिटना तो है ही, विवेक का उदय होने तक के लिए कुछ प्रतीक्षा करनी पड़े यह बात दूसरी है ।

यज्ञोपवीत को गायत्री की प्रतिमा माना गया है । गायत्री में नौ शब्द हैं । उनके प्रतीक रूप में यज्ञोपवीत नौ धागें का बनता है । गायत्री में तीन चरण हैं—जनेऊ में तीन लड़ें होती हैं । गायत्री में भूर्भुव: स्व: तीन व्याहतियाँ हैं—जनेऊ में तीन गाँठें लगाई जाती हैं । अन्त में जो एक बड़ी ब्रह्म ग्रन्थि लगाई जाती है वह ॐ की प्रतीक है। यज्ञोपवीत धारण करते समय गुरु मन्त्र के रूप में केवल गायत्री लेने का ही विधान है । यज्ञोपवीत शब्द—यज्ञ में पवित्र किया हुआ सूत्र । वह यज्ञीय जीवन के आदर्शों का अनुगमन करने का प्रेरक है । यज्ञोपवीत धारी को द्विज कहते हैं । जो लोग जीवन में से, संसार में से अज्ञान को हटाने में अभिरुचि लें वे ब्राह्मण, जो अशक्ति मिटावें वे क्षत्रिय, जो अभाव का निवारण करें वे वैश्य श्रेणी में आते हैं । संसार में समस्त दु:खों के इन तीन कारणों को—अज्ञान, अशक्ति और अभाव को मिटाने के लिए कटिबद्ध हों वे ही सच्चे द्विज हैं । ऐसे लोगों को उचित है कि अपनी शीलता का प्रतीक यज्ञोपवीत भी अवश्य धारण करें ।

यज्ञोपवीत धारी को द्विज कहते हैं । द्विज का अर्थ है—दोबार जन्म लेने वाला । एक बार जन्म माता-पिता के रज वीर्य से होता है । यह पाशविक जन्म है । अन्य पशु-पक्षी भी इसी प्रकार जन्मते हैं । पर भारतीय धर्मावलम्बी को एक जन्म मानवता के आदर्शों को अपना कर दिव्य जीवन बिताने की व्रतशीलता द्वारा एक नया जन्म, दूसरा जन्म भी धारण करना पड़ता है । इसी का नाम द्विजत्व है । द्विज का धर्म संस्कार यज्ञोपवीत धारण है । गायत्री माता और यज्ञ पिता के द्वारा इस धर्म जीवन में प्रवेश मिलता है । गायत्री में सन्निहित विवेकशीलता और यज्ञ में अभिप्रेत त्यागमय जीवन को अपनाना सदा सद्विचारों और सत्कर्मों को अपनाने के लिए प्रयत्नशील रहना यज्ञोपवीत धारी का कर्त्तव्य है । जनेऊ पहनना एक धर्म चिह्न मात्र नहीं है वरन् उसमें उस आदर्शवादी जीवन की ओर अग्रसर होने की भी प्रेरणा है जो हमें द्विजत्व कीं, देवत्व की उच्च अन्त:स्थिति की ओर अग्रसर करके इसी जीवन में स्वर्गीय आनन्द का आस्वादन कराता है यदि लोग सच्चे मन से यज्ञोपवीत धारण करें और उसमें सन्निहित प्रेरणा पर ध्यान देने लगें तो मानव-जाति की सारी कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं और इसी पृथ्वी पर स्वर्गीय सुख-शान्ति की स्थापना हो सकती है ।

जनेऊ पहनना हमारा आवश्यक धर्म कर्त्तव्य है । भले ही उसे चिह्न पूजा के रूप में आज पहना जाय पर यदि यह परम्परा जीवित रही तो कल वह विवेक भी जागृत होकर रहेगा जो हमें साधारण नर पशु न रहने देकर महापुरुषों, नर रत्नों, भूसरों की श्रेणी तक ऊँचा उठा ले जाने में समर्थ होता है । यदि परम्पराओं की पुनीत थाती को नष्ट न होने दिया जाय, इन बीजों को सुरक्षित रखा जाय तो वह दिन भी आकर रहेगा जब उनकी हरी-भरी फुलवारी उगेगी और सारे विश्व को उसी प्रकार पुन: आनन्द मग्न कर देगी जिस प्रकार कि प्राचीन काल में युगों तक दिव्य उल्लास प्रवाहित करती रही है ।

जनेऊ धारण करना कुछ भी कठिन कार्य नहीं है । मलमूत्र त्यागने के समय उसे कान पर चढ़ाने की आदत कुछ ही दिन के अभ्यास से बड़ी सरलतापूर्वक पड़ जाती है । टूटने या अशुद्ध होने पर उसे बदलने में कुछ बड़ा खर्च नहीं है । गायत्री परिवारों द्वारा समय-समय पर आयोजित होते रहने वाले सामूहिक यज्ञों के अवसर पर बिना किसी खर्च के जनेऊ संस्कार केवल एक दिन का उपवास करने मात्र का कष्ट उठा कर आसानी से कराये जा सकते हैं । धर्म में गौरव अनुभव करने वाले, हिन्दू कंहलाने में प्रसन्नता अनुभव करने वाले प्रत्येक धर्म-प्रेमी को अपना सांस्कृतिक चिह्न यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिए । उनमें सन्निहित शिक्षाओं के बारे में अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं । विचारशीलता के आधार पर जनेऊ से प्रेरणा लेते हुए हम उच्च जीवन की ओर सरलतापूर्वक अग्रसर हो सकते हैं और अपने सांस्कृतिक आधारों का गौरव बढ़ाते हुए अपने मानव-जीवन को भी धन्य बना सकते हैं ।

शिखा और सूत्र हमारे जातीय जीवन के गौरवपूर्ण प्रतीक हैं । हम इनकी उपेक्षा न करें । स्वयं इन्हें धारण करें अपने बच्चों में इनके प्रति श्रद्धा पैदा करें, जिन लोगों

ने इन्हें भूल या उपेक्षा से छोड़ रखा है, उन्हें इनको पुन:धारण करने के लिए प्रोत्साहित करें तो यह धार्मिकता की एक बहुत बड़ी विजय मानी जायेगी ।

## कल्याण का पथ

शिखा और सूत्र का कुछ थोड़ा-सा महत्त्व पिछले पृष्ठों पर बताया गया है । यह पूर्ण नहीं है । तत्वदर्शी ऋषियों ने मनुष्य के हित का अधिकाधिक विचार करते हुए धार्मिक कर्मकाण्डों की रचना की है । इनमें यज्ञोपवीत और शिखा को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया है। चोटी हिन्दू धर्म का प्रतीक है । हिन्दू के लिए चोटी रखना अनिवार्य है । इस अनिवार्यता में एक ऐसा महत्त्व-पूर्ण लाभ छिपा हुआ है जो मानव प्राणी के लिए बहुत ही अनिवार्य है वह है—स्वास्थ्य रक्षा । शरीर का केन्द्र मस्तिष्क है । उसके मध्य बिन्दु को सुरक्षित रखने से मस्तिष्क ठीक रहता है और तद्नुसार शरीर की निरोगता भी कायम रहती है । जो शरीर और मन से स्वस्थ है उसी का जीवन सच्चे अर्थों में जीवन है । अन्यथा तो भार रूप जीना है, इस दृष्टि से शिखा रखना एक प्रकार से जीवन-निर्माण का महत्त्वपूर्ण काम करना है ।

आज हिन्दू धर्म में अनेक मतमतान्तर भेद-भाव, जातियाँ प्रचलित हैं । आपसी भेद-भाव, अनैक्य और प्रथकत्व के अनेकों चिह्न मौजूद हैं । अनेकों देवी-देवता, अनेकों धर्म सम्प्रदाय, अनेकों रीति-रिवाज, अनेकों मान्यता और विचारधाराएँ इस प्रकार फैली हुई हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाहर से एक दिखाई पड़ते हुए भी नारंगी की भाँति हिन्दू-जाति भीतर ही भीतर अनेक टुकड़ों में विभक्त है । इस विभक्तता के बीच एक आशा का ध्रुवतारा मौजूद है वह है शिखा ब्राह्मम से अन्त्यज तक और राजा से रंक तक विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ रखने वालों के बीच शिखा एक ऐसी इकाई है जो सब को एक करती है, एक सम्बन्ध सूत्र में जोड़ती है । राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी यह सम्बन्ध सूत्र ही मूल्यवान है । हिन्दू जाति का एकीकरण करने के लिए यह प्रतीक बड़ा ही अमूल्य है ।

आज कल पाश्चात्य सभ्यता की लहर में लोग धार्मिक चिह्नों को व्यर्थ समझने लगे हैं और शिखा, सूत्र की अवहेलना करने लगे हैं । इस उल्टे प्रवाह को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि इन प्रतीकों के महत्त्व को जन-साधारण में प्रचारित किया जाये, जिससे सर्व-साधारण को यह प्रतीत हो जाये कि यह कितनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है । इन व्यापक चिह्नों के पीछे कितना बड़ा वैज्ञानिक लाभ छिपा हुआ है । उस लाभ से परिचित होना हर एक हिन्दू का कर्त्तव्य है । क्योंकि किसी वस्तु का लाभ, महत्त्व और रहस्य को जाने बिना उस पर श्रद्धा, आस्था और प्रीति नहीं होती । अविश्वास, संदेह और भय रहने पर किसी वस्तु से पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता । यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

हिन्दू धर्म वैज्ञानिक धर्म है । इसमें उपयोगिता, आवश्यकता, लाभ एवं परम लाभ की प्राप्ति का ध्यान रखते हुए नियमोपनियम बनाये गये हैं । रीति-रिवाज, त्योहार, संस्कार, वर्ण, आश्रम, साधन, कर्मकाण्ड आदि के पीछे कोई न कोई ठोस आधार मौजूद है । शिखा और सूत्र का विषय भी ऐसा ही है । इन दोनों को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है, इन्हें सर्वसाधारण, के लिए व्यापक बनाया गया है इससे प्रतीत होता है कि उनके पीछे मनुष्य के लिए कोई बहुत बड़ी लाभदायक अभिसन्धि छिपी हुई है ।

गायत्री के दोनों पुण्य प्रतीक शिखा और यज्ञोपवीत आर्यत्व के, हिन्दुत्व के, देव संस्कृति के प्रधान चिह्न हैं । इन्हें धारण करने वालों पर भारी उत्तरदायित्व लादते हैं और उन्हें ब्रह्म आचरण के लिए निरन्तर प्रेरणा करते हैं। शिखा को सिर पर स्थान देना सद्बुद्धि को धार्मिकता या आस्तिकता को स्वीकारना है । ब्रह्म को, यज्ञ को धारण करने के लिए तद्नुकूल आचरण करने के लिए यज्ञोपवीत प्रतिज्ञा-चिह्न है । इस प्रतिज्ञा-चिह्न को निरन्तर सामने रखने से वह प्रण भूलने न पाये, यज्ञोपवीत का यही उद्देश्य है । इस प्रकार शिखा एवं ब्रह्म सूत्र धारण करने वाला अपने को ऊँचा उठाने का मार्ग अवलम्बन करता है । यह मार्ग ही मनुष्य प्राणी के लिए सर्व प्रकार कल्याणकारक है ।

इस तथ्य को हजार बार दोहराना और लाख बार प्रतिपादित किया जाना चाहिए कि शिखा और सूत्र भारतीय धर्म के दो सर्वमान्य प्रतीक हैं । सूत्र न होने से मुसलमान कहा जा सकता है, सिख धर्मानुयायी पंच केशों के द्वारा अपनी धार्मिक मान्यता प्रकट करते हैं । पुलिस, फौज, जहाज और रेल आदि विभागों के कर्मचारी अपनी पोशाक गणवेश से पहचाने जाते हैं । इसी प्रकार हिन्दू धर्मानुयायी भी इन दो प्रतीकों को धारण कर अपने धार्मिक आदर्शों का परिचय प्रकटीकरण कर सकते हैं ।

# गायत्री का वैज्ञानिक आधार

भगवान की अनन्त शक्तियाँ हैं। उनमें से कुछ हमारे लिए अनुकूल और कुछ प्रतिकूल पड़ती हैं। भगवान ने सिंह व्याघ्र भी बनाये हैं और गाय घोड़े भी। सृष्टि में सिंह व्याघ्र की भी उपयोगिता है परन्तु वे मनुष्य के लिए प्रतिकूल ही पड़ते हैं। पशुओं की सहस्रों जातियों में से केवल गाय सब से अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। वृक्ष वनस्पतियों को भी भगवान ने ही बनाया है पर उनमें से बहुत से तो विषैले, कटीले और कष्टदायक होने से प्रतिकूल हैं। फल, अन्न, फुलवारी, औषधि आदि पौधे मनुष्य के लिये उपयोगी पड़ते हैं वे सावधानी के साथ पाले-पोसे जाते हैं।

ईश्वर की अनगिनत अदृश्य दैवी शक्तियों में कितनी ही ऐसी हैं जो हमारे लिए उपयोग नहीं पड़तीं। भूकम्प, वज्रपात, विस्फोट, युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, दाह, अग्निकांड, संहार, एवं टिड्डी, मूषक आदि की उत्पादक ऐसी अनेक शक्तियाँ हैं जिनसे सृष्टि का कोई और प्रयोजन भले ही पूरा होता हो पर मनुष्य को त्रास ही मिलता है। मानव प्राणी के लिए तो वही शक्तियाँ उपयोगी होती हैं जो उसकी सृष्टि और सुख शान्ति में सहायक होती हैं। सूर्य भी शक्तियों का भंडार है। उसकी किरणों का विश्लेषण कर वैज्ञानिकों ने प्राण-घातक "मृत्यु किरण" उपलब्ध की है। साथ ही अल्ट्रावायलेट, अल्फावायलेट, एक्स रेज, ओजियन आदि ऐसी किरणें भी ढूंढ़ निकाली गई हैं जो असाध्य रोगियों को प्राणदान कर सकती हैं।

संसार में जो कुछ है वह सभी हमारे लिए हितकर नहीं है। अपने लाभ की वस्तुओं को हमें ढूँढना होता है, उन्हें पहचानना होता है और प्रयत्नपूर्वक उनको अधिक मात्रा में उपलब्ध करके उपयोग करना होता है तब हम ईश्वर की अगणित लाभदायक वस्तुओं से सुख प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। गाय, घोड़े, अन्न, फल, औषधि, कपास, खनिज द्रव्य, धातुएँ, रत्न आदि को प्राप्त करने के लिए मनुष्य प्रयत्नशील रह कर सुख-समृद्धि का अधिकारी हुआ है। यदि उसने इनकी ओर उपेक्षा बरती होती या हानिकर वस्तुओं से जा उलझा होता तो हानि, दुख, दुर्भाग्य, संकट और नाश के अतिरिक्त और कुछ हाथ न आता।

संसार स्थूल और सूक्ष्म दो भागों में बँटा हुआ है। स्थूल पदार्थ वे हैं जो आँखों से दिखाई पड़ते हैं। सूक्ष्म वे हैं जो आँखों से दिखाई नहीं पड़ते फिर भी उनका अस्तित्व मौजूद है। सर्दी, गर्मी, वायु, ईथर, शद्ब, विद्युत, परमाणु, रोगकीट, रेडियो तरंगें आदि अदृश्य होते हुए भी दृश्य के समान ही मौजूद हैं। मृत्यु होने पर आत्मा शरीर से निकल जाती है फिर भी वह अदृश्य रूप से मौजूद रहती है।

ईश्वर की ऐसी ही अनेक अदृश्य शक्तियाँ हैं उन्हें योगशास्त्र और अध्यात्म विद्या के वैज्ञानिक आचार्यों ने अपनी सूक्ष्म दिव्य दृष्टि से देखा और समझा है। और गुणों के आधार पर उनका नाम रूप स्थिर किया है। इन्हीं का नाम देवता है। ईश्वर की धन शक्ति को लक्ष्मी, बुद्धि शक्ति को सरस्वती, युद्ध शक्ति को दुर्गा, उत्पादन शक्ति को ब्रह्मा, पालन शक्ति विष्णु, संहार शक्ति को शिव, बल शक्ति को हनुमान, सिद्धि शक्ति को गणेश, शासन शक्ति को इन्द्र कहते हैं। जो हमारे लिए लाभदायक ग्रहण करने योग्य हैं उनसे सम्बन्ध स्थापन करने का उनको अधिक समीप लाकर लाभ उठाने का जो प्रयत्न किया जाता है उस प्रयत्न का नाम ही देवोपासना है।

जैसे गाय सब पशुओं में, गंगा सब नदियों में, तुलसी सब औषधियों में हमारे लिए विशेष लाभदायक है वैसे ही ईश्वर की गुप्त दैवी शक्तियों में गायत्री शक्ति मनुष्य जाति के लिए सब से अधिक उपयोगी है। गायत्री वह ज्ञानमयी अदृश्य चेतना है जिसमें सात्विकता, शान्ति और आनन्द का प्रधान अंश है। गायत्री त्रिपदा कही जाती है। ह्रीं-अर्थात् ज्ञान, बुद्धि विवेक, प्रेम संयम, सदाचार। श्रीं-अर्थात् धन, वैभव, पद, प्रतिष्ठा, भोग, ऐश्वर्य। क्लीं-अर्थात् स्वास्थ्य, बल, साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ, तेज। इन तीन विशेषताओं वाली त्रिगुणात्मक ईश्वरीय शक्ति ही गायत्री है। चूँकि यह तीनों ही तत्त्व मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक हैं इसलिए ऋषियों ने गायत्री उपासना को भी वैसा ही आवश्यक नित्य-कर्म बताया है जैसा सांस लेना, अन्न जल ग्रहण करना, शौच, स्नान से निबटना एवं निद्रा लेना आवश्यक है। इन क्रियाओं से शरीर की रक्षा एवं वृद्धि होती है। गायत्री उपासना से आत्म-बल की रक्षा और अभिवृद्धि का लाभ मिलता है।

शरीर परिपुष्ट, सबल, सतेज, स्वस्थ सक्षम हो तो उस शारीरिक बल के बदले में अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। शत्रुओं को पछाड़ना, कड़ी मेहनत करके अधिक कमाना, दूर-दूर की यात्राएँ कर लेना, रोगों से बचे रहना, दीर्घजीवी होना, सौन्दर्य कायम रहना, इन्द्रिय भोगों का भरपूर आनन्द उठाना, किसी की सहायता के आश्रित न होना, आदि अनेकों लाभ शारीरिक बल के हैं। उन लाभों का कितना महत्त्व है इस बात को वह समझता है जिसने अपना स्वास्थ्य गँवा दिया है और रोज-रोज की शारीरिक पीड़ा, बेचैनी, हानि एवं असफलताओं की दुर्भाग्यपूर्ण निराशा से दुखी रहता है। आत्मिक बल तो शरीर बल से और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उसके लाभों की गणना नहीं हो सकती। मनुष्य जीवन में जितना सुख-दुख है उसमें तीन चौथाई मानसिक और एक चौथाई शारीरिक होता है। स्त्री, पुत्र, मित्र, बल, यश, पद, प्रतिष्ठा, नेतृत्व, वैभव आदि के सुख वस्तुतः मानसिक सुख हैं। शरीर को इनसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता। इसी प्रकार शोक, वियोग, हानि, भय, चिन्ता, तृष्णा, अपमान, पराजय, असफलता आदि के दुख भी मानसिक हैं। शरीर स्वस्थ होते हुए भी मन में यह रोग लगे रह सकते हैं। आत्मिक बल बढ़ जाने से मानसिक सुखों में वृद्धि और दुःखों में कमी होने का क्रम चल पड़ता है। फलस्वरूप गायत्री साधना द्वारा आत्मिक बल की वृद्धि कर लेने वाला मनुष्य अनायास ही दुखों से छुटकारा पाकर सुख-शान्ति की ओर अग्रसर होता रहता है।

स्थूल वस्तुओं की सहायता से स्थूल वस्तुएँ पकड़ने की विधि को सब लोग जानते हैं। हाथ से कलम पकड़ना, पैर को जूते में घुसा देना, चिमटी से अग्नि उठाना, परिश्रम से पैसा कमाना, रुपये से वस्तुएँ खरीदना सभी को मालूम है पर अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों को किसके द्वारा किस प्रकार पकड़ कर अपने लाभ के लिए किस प्रकार प्रयुक्त किया जाय, इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को होती है। वैज्ञानिक आविष्कारों से पूर्व भी बिजली, भाप, गैस, परमाणु आदि की शक्तियाँ मौजूद थीं पर लोग उनका पकड़ना और प्रयोग करना न जानते थे। फलस्वरूप उनके लाभों से वंचित थे। वैज्ञानिकों ने किसी नई शक्ति का निर्माण नहीं किया है केवल उनसे लाभ उठाने की विधि का आविष्कार किया है। फलस्वरूप आज उन आविष्कारों से सर्वत्र लाभ उठाया जा रहा है। दैवी शक्तियाँ भाप बिजली, गैस, अणु आदि से भी सूक्ष्म होने के कारण यंत्रों की पकड़ में नहीं हैं फिर भी ऐसी तरकीबें हैं जिनके द्वारा उन्हें पकड़ा जा सकता है और उनसे लाभ उठाया जा सकता है। अध्यात्म विद्या, योग साधना ऐसी ही वैज्ञानिक पद्धतियाँ हैं जिनका आविष्कार हमारे पूजनीय पूर्वजों ने युगों तक घोर अध्यवसाय करने के उपरान्त किया था।

ऋषियों ने यह देखा कि सूक्ष्म शक्तियाँ उस जाति की हैं जिस जाति की कि हमारी आत्मा है। इसलिए आत्मा को ही ऐसी विशेष परिस्थिति में ढाला जाय जो उन दिव्य शक्तियों के अनुकूल हो, इस प्रकार उन दोनों में साम्य एवं चुम्बकत्व उत्पन्न होने से पकड़ना संभव हो सकेगा। आत्मा विद्या के अनेक वैज्ञानिक-ऋषि सहस्रों वर्षों तक उत्कट प्रयत्न और अध्यवसाय के साथ इस सम्बन्ध में शोध करते रहे और अन्त में उन्हें सफलता मिली। उन्होंने वह तरीके ढूँढ निकाले जिनके आधार पर अपनी आन्तरिक सत्ता को ऐसा योग्यताओं एवं विशेषताओं में ढाल लिया जाता है कि जिस दैवी शक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करना हो तदनुकूल बन कर उसे अपने चुम्बकत्व द्वारा पकड़ सकेगा। जमा हुआ मोम, तेल में नहीं मिलता पर यदि मोम को अग्नि पर पिघला दिया जाय तो वह तेल में घुल जायगा। इसी प्रकार दैवी सूक्ष्म शक्तियाँ साधारणतया हर किसी को प्राप्त नहीं होतीं पर यदि साधना द्वारा अन्तःस्तल को पिघला दिया जाय तो वह शक्ति आत्मसात हो सकती है। इसी विधि व्यवस्था को, क्रिया को आध्यात्मिक भाषा में "साधना" कहते हैं।

योग महा विज्ञान के आधार पर अब तक असंख्य व्यक्तियों ने ईश्वर के अभीष्ट शक्तियों को प्राप्त करने योग्य आत्म निर्माण किया है, प्राचीन इतिहास पुराणों में ऐसे अनेक वर्णन आते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि भिन्न देवताओं की, भिन्न विधियों से साधना करके अनेक व्यक्तियों ने विभिन्न वरदान पाये थे। इसका अर्थ है उन लोगों ने साधना द्वारा अपनी अन्तः चेतना को इस योग्य बनाया था कि ईश्वर की अभीष्ट शक्ति को वे पकड़ सकें और उससे लाभ उठा सकें। गायत्री साधना एक वैज्ञानिक पद्धति है इसके द्वारा ईश्वर की ह्रीं, श्रीं, क्लीं ज्ञान, वैभव और बल की सम्मिलित शक्ति को पकड़ कर, खींच कर अपने में धारण कर सकते हैं और उसके आधार पर जीवन में अनेक मानसिक एवं सांसरिक आनन्दों का उपभोग कर सकते हैं।

गायत्री साधनाएँ स्थूल दृष्टि से देखने में सामान्य क्रिया मालूम होती हैं इनके द्वारा किस प्रकार कोई लाभ

मिल सकता है, साधारणतः यह बात समझ में नहीं आती। पर अवश्यम्भावी परिणामों को देख कर यह मानना पड़ता है कि इसमें कोई तथ्य अवश्य है। गायत्री के चौबीस अक्षरों का गुंथन इस प्रकार से हुआ है कि उनके उच्चारण से जिह्वा, मुख, कण्ठ, तालु की ऐसी नाड़ियों का क्रमबद्ध संचालन होता है जिनके कारण शरीर के विभिन्न भागों में अवस्थित यौगिक लघु चक्र जागृत होते हैं । जैसे कुंडलिनी जागरण के लिए षट चक्रों को जागृत करके दिव्य शक्तियाँ प्राप्त की जाती हैं वैसे ही गायत्री के उच्चारण मात्र से यह लघु ग्रंथियाँ जागृत होकर आशाजनक परिणाम उपस्थित करती हैं।

शरीर के किस-किस भाग में कौन-कौन सी गुप्त ग्रंथियाँ हैं और गायत्री के किन-किन अक्षरों के उच्चारण से उनमें से कौन-कौन ग्रंथि जागृत होती है और उस ग्रंथि चक्र के जागरण से हमें कौन-कौन सी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं उस सबका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता, पर इतना बताया जा सकता है कि गायत्री के चौबीसों अक्षर बड़े ही रहस्यपूर्ण ढंग से ऋषियों ने गूंथे हैं। उनके उच्चारण से शरीर के भीतर ऐसी सूक्ष्म प्रक्रिया होती है जिसके कारण आसानी से हमारी अन्तःभूमि ऐसी चुम्बक शक्ति से परिपूर्ण हो जाती है जिसमें ईश्वर की गायत्री शक्ति को आसानी से खींच कर अवस्थित किया जा सके।

सृष्टि के आदि से लेकर अब तक असंख्य मनस्वी महापुरुषों ने गायत्री की साधना की है। विचार विद्या के ज्ञाता यह बात सहज ही समझ सकते हैं कि इतने अधिक मनस्वी पुरुषों का इतने अधिक काल तक, इतना अधिक मनोबल रहा है वह गायत्री मंत्र अपनी पूर्व संचित पूँजी के कारण भी कितना अधिक प्रभावशाली हो गया होगा। विचार कभी नष्ट नहीं होता उनके बादल आकाश में मँडराते रहते हैं, वे विचार बादल जहाँ अपनी जाति के अन्य विचारों की प्रचुरता देखते हैं वहीं स्वयं भी बरस पड़ते हैं। इसी से भले और बुरे विचारों को अदृश्य रूप से बल मिलता रहता है। नये गायत्री साधक पर पूर्वकाल के गायत्री साधकों के विचार बादल बरसते हैं और वह शीघ्र ही सफलता की ओर अग्रसर होने लगता है।

विविध रेडियो स्टेशनों द्वारा विविध प्रोग्राम हर घड़ी प्रसारित होते रहते हैं। पर सुनाई वहीं पड़ते हैं जहाँ रेडियो यंत्र रखा हो। उस यंत्र में भी जिस नम्बर पर सुई होगी उसी स्टेशन की खबरें सुनाई पड़ेंगी। ईश्वर की अनेक शक्तियाँ अनेक केन्द्रों से प्रचारित होकर सर्वत्र व्याप्त रहती हैं, पर उनको ग्रहण वही कर सकता है जिसने साधना द्वारा अपने आपको रेडियो यंत्र बना लिया है। जिस दैवी शक्ति को प्राप्त करना है उसी की विशेष साधना करना मानो रेडियो की सुई उस नंबर पर लगा देना है। इस प्रक्रिया द्वारा ईश्वर के महाशक्ति सागर में से, विपुल वैभव में से, हम अपनी आवश्यक शक्तियाँ एवं सम्पदाएँ प्राप्त कर सकते हैं। प्रभु के अक्षय भंडार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। ईश्वर के अमर युवराज मनुष्य को अपने पिता की प्रत्येक वस्तु पर पूरा-पूरा अधिकार है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम अपनी पात्रता सिद्ध करें अपने प्रयत्न, श्रम, अध्यवसाय और साधना द्वारा यह साबित कर दें कि हम अभीष्ट वस्तुओं के अधिकारी हैं तो कोई कारण नहीं कि हमें सन्तोषजनक सुख-शान्ति प्राप्त न हो।

गायत्री साधना ठोस, आध्यात्मिक महाविद्या की वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। उसका श्रद्धा और विश्वासपूर्वक परीक्षण किया जाय तो परिणाम सदा ही आशाजनक होता है।

## गायत्री मंत्र की श्रेष्ठता का आधार

दीर्घकाल तक साधना-उपासना, कठिन तपश्चर्या और गहन अन्वेषण, चिन्तन-मनन के बाद भारतीयों ने विश्व को मनोविज्ञान के रूप में एक ऐसा अनुदान दिया है, जिसका विधिपूर्वक उपयोग करने से व्यक्ति का निज का कल्याण सधता है और वह विश्व कल्याण में भी योगदान प्रस्तुत कर सकता है। मन्त्र विद्या का वैज्ञानिक स्वरूप समझने से पूर्व कुछ प्राथमिक बातें समझ लेना आवश्यक है। सर्वविदित है कि यह ब्रह्माण्ड गोल है। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि सभी ग्रह-उपग्रहों की बनावट गोल है। घूमते अथवा लुढ़कते रहने वाली हर वस्तु गोल बन जाती है। नदियों के पत्थर इसीलिए गोल होते हैं कि वे पानी के साथ बहते रहते हैं, और घिसते-घिसते अण्डाकार रूप धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त घूमने वाली वस्तुओं के लिए गोल होना भी आवश्यक है। पहिए तभी सुविधा सरलता से घूम पाते हैं जब कि वे गोल होते हैं। वे गोल होने पर ही घूम सकते हैं, चौकोर होने पर नहीं। यह भी एक तथ्य है कि घूमते रहने पर भी वस्तुएँ गोल बन जाती हैं। पहाड़ों पर से पत्थर के टुकड़े टूटकर नदी प्रवाह में गिरते और धारा के दबाव से आगे लुढ़कते हैं फलतः वे गोल हो जाते हैं। अधिक छोटे

टुकड़े बालू के रूप में दिखाई पड़ते हैं पर होते वे भी गोल हैं। घूमने की प्रतिक्रिया गोलाई ही हो सकती है।

गोलाई और गति का सम्मिश्रण हो जाने से एक चक्र बनता है। पहिया घूमता है, आगे बढ़ता है और बढ़ता-बढ़ता अन्ततः अपने पुराने स्थान पर ही लौट आता है। यदि गति को अनवरत क्रम से जारी रखा जाए तो पदार्थ अपनी जगह पर वापस लौट आता है और फिर वही आगे बढ़ने और पुराने स्थान पर लौटने का क्रम जारी रहता है। ग्रह-नक्षत्र इसी आधार पर अपनी कक्षाएँ बनाते और उनमें परिभ्रमण करते रहते हैं। परमाणु के अन्तर में काम करने वाले इलेक्ट्रोन आदि घटक भी अपनी धुरी पर अपनी कक्षा में ग्रह-नक्षत्रों की भाँति घूमते रहते हैं। शब्द कम्पनों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे जिस उद्गम स्रोत से निःसृत होते हैं, वहाँ से निकल कर द्रुतगति से आगे-आगे भागते हैं पर यह भागना अन्ततः गोलाई के चक्र की पकड़ में आ जाता है और फिर सुदूर अन्तरिक्ष की यात्रा करते हुए अपने मूल स्थान पर वापस लौट आता है। वहाँ से फिर आगे बढ़ता और फिर वापस लौटता है। शब्द कम्पनों की यात्रा इसी गति, इसी चक्र से होती है। वे दूसरों को भी प्रभावित करते हैं परन्तु उनका सबसे अधिक प्रभाव अपने ही ऊपर होता है क्योंकि उनका प्रत्येक यात्रा चक्र अपने मूल उद्गम को चिरकाल तक प्रभावित करता रहता है।

कहा जा चुका है कि मंत्रों के प्रभाव का एक सुनिश्चित वैज्ञानिक आधार होता है। इसे विज्ञान भी कहा जा सकता है। मन्त्र विज्ञान के दो आधार हैं। एक आत्मिक तथा दूसरा भौतिक। इन दोनों के समन्वय से मन्त्र प्रक्रिया का आधार बनता है। मन्त्र विज्ञान का आत्मिक पक्ष वह है जिसमें साधक का चारित्रिक एवम् भावनात्मक परिष्कार काम करता है। उससे व्यक्तित्व की उत्कृष्टता निखरती है और शक्ति का ऐसा प्रचण्ड स्रोत अन्तःचेतना में प्रादुर्भूत होता है, जिससे किसी भी दिशा में किसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जा सके। परिष्कृत व्यक्तित्व की पूँजी से आत्मिक क्षेत्र में विभिन्न विभूतियाँ उपलब्ध होती हैं। अपरिष्कृत व्यक्तित्व हो तो उसमें विभूतियों का आविर्भाव होने पर भी उनसे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता है। मैले बर्तन में दूध रखने से जिस प्रकार दूध फट जाता है, उसी प्रकार असंस्कृत और अपरिष्कृत व्यक्तित्व में उद्भूत विभूतियाँ निष्फल और निरर्थक हो जाती हैं। परिष्कृत व्यक्तित्व में आविर्भूत और उपलब्ध विभूतियों की पूँजी को यदि भौतिक प्रयोजनों में लगा दिया जाए तो उससे सम्भावित सफलताएँ हाथ बाँधकर आगे आ खड़ी होती हैं और आत्मिक क्षेत्र में उनका नियोजन करने पर आत्मिक उपलब्धियाँ चारों ओर से आ-आकर व्यक्तित्व को धन्य बनाती रहती हैं।

इसके विपरीत ओछे व्यक्तित्व पग-पग पर ठोकरें खाते और दीन-दरिद्रों की तरह निरन्तर असफलताओं का मुँह जोहते हैं। उन्हें न भौतिक उन्नति का अवसर मिलता है और न ही उनके लिए आत्मिक प्रगति की दिशा में बढ़ पाना सम्भव रहता है। नेपोलियन, सिकन्दर जैसे सांसारिक सफलताएँ पाने वाले मनस्वी लोगों को उनके व्यक्तित्व की प्रखरता के कारण ही ऐतिहासिक सफलताएँ प्राप्त हो सकी हैं। आत्मिक क्षेत्र में जिन लोगों ने उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त की हैं, उनके मूल में भी परिष्कृत अन्तःचेतना और व्यक्तित्व की प्रखरता ही काम करती रही है।

साधना के क्षेत्र में अग्रसर होने वालों के लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होता है कि वह अपने शारीरिक और मानसिक क्षेत्र में आवश्यक संयम बरत कर बिखराव में नष्ट होने वाली शक्तियों का चयन करते हुए सामर्थ्यवान बनें। व्यक्तित्व के विकास का दूसरा पक्ष यह है कि गुण, कर्म, स्वभाव को अधिकाधिक उच्चस्तरीय बनाते हुए स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में अवस्थित विभिन्न दिव्य शक्तियों को सुविकसित तथा परिपुष्ट होने का अवसर प्रदान किया जाए। संयम और संग्रह के उभयपक्षीय कदम बढ़ाते हुए आत्मिक प्रगति के पथ पर चलने वाला पथिक क्रमशः समुन्नत व्यक्तित्व प्राप्त करता है और उस आधार पर आत्मिक उत्कर्ष की दिशा में आशाजनक एवं उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त करता चलता है मात्र साधना की सफलता का आत्मिक आधार यही है व्यक्तित्व जितना परिष्कृत होगा, अन्तःचेतना जितनी सुविकसित होगी मन्त्र साधना का प्रतिफल उतने ही अनुपात से लाभदायक रूप में मिलता चलेगा।

मन्त्राराधन का भौतिक पक्ष उनकी शब्द सूचना, स्वर विनियोग, उपचार विधान एवं उपकरणों के स्तर जैसी व्यवस्थाओं से सम्बन्धित है। इन सबका सही आधार बन जाने पर आत्मिक प्रगति के दूसरे आधार की आवश्यकता पूरी होती है जो अन्तःचेतना का स्तर ऊँचा उठाकर भौतिक क्षेत्र में बहुमुखी सफलताएँ प्रस्तुत करती है। मात्र

आत्मिक सन्तोष के लिए ज्ञान और भक्तियोग की साधनाओं से काम चल सकता है। ब्रह्मविद्या के, वेदांत के तत्वदर्शन को स्वाध्याय, सत्संग एवं मानव-चिन्तन के आधार पर हृदयंगम किया जाता रहे तो आत्मबोध की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और ज्ञान वैराग्य का प्रकाश अन्तरात्मा में परिलक्षित हो सकता है। वेदांत-साधनाओं की 'अहं ब्रह्मास्मि' 'सोऽहम्' शिवोऽहम्' जैसी उद्बोधन वृत्ति ज्ञानयोग का उद्देश्य पूरा करती है। उसे आत्मबोध की स्थिति जागृत करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

उसी प्रकार भक्तियोग में प्रेमतत्व को विकसित करके आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन होता है। जिसके प्रति अपने को समर्पित किया जाता है, या जिसको अपना बनाया जाता है उसमें सहज ही आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और उस आकर्षण को आत्मसात् करते हुए आनन्द की अनुभूति होती है। दैनिक जीवन में वही सब चलता है। अपनी सम्पत्ति प्राणप्रिय लगती है। क्यों ? इसका एकमात्र कारण यही है कि उसके साथ अपनापन जुड़ा होता है। अपना शरीर, अपना परिवार, अपना यश, अपना वैभव, अपना वर्चस्व यह सब कुछ इसीलिए प्यारा लगता है कि उसके साथ अपनत्व की भावना रहती है। स्त्री-पुत्रों के प्रति यह भावना अधिक घनिष्ट होती है तो वे प्यारे भी अधिक लगते हैं। जिस वस्तु या व्यक्ति से यह आत्मभाव समेट लिया जाता है वह उतना ही अरुचिकर लगता है भले ही वह स्तर की दृष्टि से कितना ही उत्तम क्यों न हो। इसके विपरीत जो वस्तु या व्यक्ति जितना अधिक अपनेपन की पकड़ में कसा जायगा वह गुणहीन होने पर भी परमप्रिय लगता है। इसका क्या कारण है ? कोई व्यक्ति या वस्तु प्रिय क्यों लगती है ? इसका विश्लेषण किया जाए तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि प्रिय अप्रिय नाम के कोई तत्त्व इस संसार में नहीं बल्कि अपनेपन और परायेपन की ही दो भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं।

यह प्रेम अपनापन ईश्वर के प्रति जागृत हो, मन्त्राराधन का एक आधार यह भी है। मन्त्र जप के माध्यम से बार-बार इष्ट का स्मरण किया जाता है और उसके प्रति अपनत्व की भावना जगाई जाती है। सर्वविदित है कि ईश्वर महान् है, सभी सद्गुणों का पुंज और आत्मा का उद्गम केन्द्र है। उससे प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया जाय तो अपने अन्तःकरण में ईश्वरीय तत्वों की अभिवृद्धि सुनिश्चित है। आग के समीप बैठने से शीत से छूटना और गर्मी अनुभव करना स्वाभाविक है। मन्त्राराधन के द्वारा अन्तरात्मा में ईश्वर के प्रति प्रेम को उसी प्रकार विकसित किया जाता है जिस प्रकार व्यायामशाला और उसमें उपस्थित विभिन्न उपकरणों की सहायता से शरीरगत माँसपेशियाँ परिपुष्ट की जाती हैं।

ज्ञानयोग और भक्तियोग में यह सरलता है कि वे बिना किसी विशेष कर्मकांड के, सामान्य कर्मकांडों के सहारे विकसित होते रहते हैं। उनमें बाह्य साधनों की कम से कम सहायता लेनी पड़ती है। यह सरल होते भी, यह दोनों अपनी एक छोटी सीमा तक ही सीमित रहते हैं। ज्ञानी और भक्त अपने आपमें ही खोये रहते हैं, उसका यही कारण है और उन्हें लाभ भी केवल व्यक्तिगत ही मिलते हैं। उनकी साधनाओं के लाभ स्वर्ग मुक्ति, आत्म साक्षात्कार जैसी व्यक्तिगत परिधि में ही अपना प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

मन्त्राराधन का क्षेत्र इन सबसे बड़ा है, उसकी परिधि अधिक सुविस्तृत है क्योंकि वह कर्मयोग की ही एक प्रक्रिया है। सर्वविदित है कि कर्मयोग को अत्यधिक महिमावान और अत्यधिक उपयोगी बताया गया है मन्त्राराधन उसी की एक प्रक्रिया है। उसकी क्रिया-प्रक्रिया में भौतिक और आत्मिक तत्व समान रूप से मिले हुए हैं। भावनात्मक विकास की योग साधना और चारित्रिक परिष्कार की तपश्चर्या व्यक्तित्व को निखारने के लिये है। यह विशुद्ध अध्यात्म पक्ष हुआ। दूसरा पक्ष भौतिक है जिसके शब्द और स्वर दोनों ऐसे हैं जिन्हें पंचतत्वों से बने शरीर अवयवों की प्रतिक्रिया कह सकते हैं। शब्द मूलतः पदार्थ है। उसे रेंगने, धकेलने और उसमें प्रभाव उत्पन्न करने में आत्मशक्ति का उपयोग होता है पर स्वतः शब्द तो भौतिक हलचलों से उत्पन्न भौतिक उपकरणों से नापा तौला जाता है। स्वर भी शब्द का ही एक प्रकार है दोनों की गणना भौतिक विज्ञान की परिधि में ही की जाती है। पूजा उपचार में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ स्पष्टतः भौतिक हैं। देव प्रतिमा, पूजा उपकरण एवं पदार्थ चन्दन, धूप, अक्षत, जल, हवन सामग्री आदि की गणना इसी क्षेत्र में है। साधन का स्थान आहार मात्र आदि भी भौतिक पदार्थों से ही विनिर्मित है।

मन्त्र साधना में प्रयुक्त होने वाले साधनों में साधक की भावनात्मक स्थिति आधी आध्यात्मिक और आधी भौतिक कही जा सकती है। परिणाम की दृष्टि से भी वह दोनों ही क्षेत्रों को प्रभावित करती है। उससे साधक का

आत्मबल बढ़ना सुनिश्चित है। इसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन में अन्तरंग और बहिरंग दोनों क्षेत्रों में मन्त्राराधन की प्रक्रिया प्रभावित करती है।

मन्त्र विज्ञान की प्रतिक्रिया व्यक्तियों की स्थिति उलझने-सुलझने और प्रगति की सम्भावनाएँ बढ़ाने में सहायक होती हैं। उसके सहारे कई कष्ट पीड़तों को सहारा दिया जा सकता है। इसी प्रकार प्रकृति को, वस्तुओं को, परिस्थितियों को, वातावरण को प्रभावित करने की क्षमता भी इसी उपचार में विद्यमान है। मन्त्र से उत्पन्न शक्ति से सूक्ष्म जगत की हलचलों को स्थूल जगत के लिए उपयोगी और अनुकूल बनाया जा सकता है।

यों आत्मिक प्रगति के इच्छुकों के लिए अनेकानेक मन्त्रों की साधनाओं का विधान है। साधक अपनी स्थिति और सुविधा के अनुसार उनमें से जिसे चाहे अपना सकता है। लेकिन इनके लिए अनुभवी गुरु का मार्गदर्शन अनिवार्य है। उनमें कई विधि निषेधों का भी पालन करना पड़ता है। एक गायत्री मन्त्र ही ऐसा है, जिसकी हर कोई साधना कर सकता है। उसकी साधना में कोई विशेष जटिल और दुसाध्य नियमों का प्रतिबन्ध भी नहीं है। नियमितता, पवित्रता और हृदय शुद्धि का ध्यान रखते हुए इस मन्त्र की उपासना करने वाले साधक अपनी श्रद्धा निष्ठा के अनुपात से लाभ उठा सकते हैं। इसीलिए गायत्री मन्त्र को आत्मिक प्रगति के लिए अति महत्त्वपूर्ण उपाय उपचार बताया गया है। यदि इसकी उपासना नियमित रूप से विधिपूर्वक श्रद्धा निष्ठा के साथ की जाए तो इसके वही परिणाम सरलता से प्राप्त किए जा सकते हैं जो अन्य मन्त्रों के अनेकानेक विधि-नियमों का पालन करने पर प्राप्त होते हैं।

## गायत्री मंत्र की प्रचण्ड सामर्थ्य

योग वाशिष्ठ में मन्त्र शक्ति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

**यथाविरेक कुर्वन्ति हरीतम्य स्वभावतः।**
**भावनावशतः कार्य तथा परलवादयः ॥**

—६/१/८१/३९

अर्थात्—हे राम ! जिस प्रकार हर्र खाने से पाचन संस्थान में तीव्र गति होती है और दस्त लग जाते हैं उसी प्रकार दृढ़ और समर्थ भावना से मन्त्रों के अक्षर शरीरों को तीव्रगति से प्रभावित करते हैं।

रामायणकार ने "मन्त्र परम लघु जासुवस विधि हरिहर सुर सर्व" बताया। इन आख्यानों के पीछे नितान्त विज्ञान सम्मत प्रक्रिया कार्य करती है। केवल मात्र कल्पना या विश्वास नहीं। १९६७ की कादम्बिनी के पेज १८ में श्री गोविन्द शास्त्री ने एक ऐसे मन्त्र का विवरण दिया है जो काँसे की थाली में हाथ रखवाकर मन्त्र बोलता था। धीरे-धीरे थाली में भरा पानी पीला पड़ता गया और रोगी रोग मुक्त हो गया। गाँवों में आज भी सर्प और बिच्छू के इलाज मन्त्र शक्ति से होते हैं और वह आधुनिक चिकित्सा से कहीं अधिक कारगर सिद्ध होते हैं।

मन्त्रों में सन्निहित यह शक्ति वस्तुतः शब्द की पराशक्ति का ही चमत्कार है। इसमें अतिशयोक्ति जैसी कोई बात नहीं। मन्त्र का प्रत्यक्ष रूप ध्वनि है। ध्वनि भी क्रमबद्ध, लयबद्ध, तालबद्ध और वृत्ताकार एक क्रम से निरन्तर एक ही शब्द विन्यास का तो उसका एक गति चक्र बन जाता है। रस्सी में पत्थर का टुकड़ा बाँधकर उसे तेजी से चारों ओर घुमाया जाय तो उसके दो परिणाम होंगे, एक यह कि वह एक गोल घेरा जैसा दीखेगा। रस्सी और ढेले का एक स्थानीय स्वरूप बदल कर, गतिशील चक्र के रूप में बदल जाना एक दृश्य चमत्कार है दूसरा परिणाम यह होगा कि उस वृत्ताकार घुमाव से एक असाधारण शक्ति उत्पन्न होगी। इस तेज घूमते हुए पत्थर के छोटे टुकड़े से किसी पर प्रहार किया जाय तो उसकी जान ले सकता है। यदि इसी तरह उसे फेंक दिया जाय तो तीर की तरह सनसनाता हुआ बहुत दूर निकल जायगा। मन्त्र जप से यही होता है। कुछ शब्दों को एक रस, एक स्वर, एक लय के अनुसार बार-बार दुहराते रहने से उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें—सीधी सा साधारण नहीं रह जातीं। वृत्ताकार उनका घुमाया जाना अन्तरङ्ग पिण्ड में तथा बहिरङ्ग ब्रह्माण्ड में एक असाधारण शक्ति प्रवाह उत्पन्न करता है। उसके फलस्वरूप उत्पन्न हुए परिणामों को मन्त्र का चमत्कार कहा जा सकता है।

शब्द या ध्वनि की शक्ति को एक दूसरे प्रकार से भी समझा जा सकता है। किसी बच्चे ने कभी शेर न देखा हो, न ही उसकी प्रकृति से परिचित हो तो भी उसे कहीं शेर की दहाड़ सुनाई पड़ जाये तो वह काँप उठेगा। इसी तरह कोयल की कूक सुनते ही लोग मुस्कराने लगते हैं। यह तो शब्द का अन्तरङ्ग कलेवर पड़ने वाला अत्यन्त स्थूल प्रभाव मात्र है, पर जिस तरह दही को निरन्तर आलोड़ित करने से उसमें से मक्खन निकलना सम्भव हो जाता है उसी प्रकार यदि कर्णातीत ध्वनि तीव्र भावावेग के साथ गुंजित की जाय तो वह शरीरस्थ चक्रों, ग्रन्थियों, गुच्छकों और उपलिकाओं से एक ऐसी "संवहन" शक्ति

पैदा करती है जो किसी रोगी को अच्छा कर सकती है, किसी को अपने मनोनुकूल बना सकती है, मारण, मोहन उच्चाटन आदि प्रयोग भी उस शक्ति से किये जा सकते हैं। कृत्या और घात उसी शक्ति का तान्त्रिक भाग है। गायत्री मन्त्र जैसे परम कल्याणकारी मन्त्र में उस तरह की बातों की उपेक्षा की गई है। किन्तु दूसरी तरह के बाममार्गी उनका खुलकर उपयोग करते हैं। भले ही उन्हें उनके लिए अनिष्ट क्यों न भुगतने पड़ें।

गायत्री मन्त्र की शब्द रचना की विलक्षणता ही उसके सर्वोपरि होने का आधार है। इसी अनुसन्धान पर राजर्षि विश्वामित्र को अविलम्ब ब्रह्मर्षि पद पर पदोन्नत कर दिया गया था। समझने वाली बात है कि राजर्षि की सामर्थ्य की तुलना राजाओं-महाराजाओं से की जाती है तो ब्रह्मर्षि की शक्ति की तुलना-ब्रह्म से की जाती है। जिसका अर्थ यह हो सकता है कि वह सृष्टि के स्वामी संचालक और नियन्त्रक की क्षमताओं से ओत-प्रोत होता है।

मन्त्र में इतनी शक्ति हो सकती है यह आश्चर्य का विषय हो सकता है अयथार्थ नहीं। भारतीय मन्त्र विद्या में शब्दों की जिस "संवहन शक्ति" का उपयोग किया जाता है उसका एक छोटा-सा रूप पराध्वनि (अल्ट्रा साउण्ड) के रूप में भौतिकशास्त्रियों ने भी जान लिया है और उसके विभिन्न प्रकार के चिकित्सकीय उपयोग होने लगे हैं। इसे चिकित्सा जगत में क्रान्ति की संज्ञा दी गई है।

"एचीव्स आफ फिजिकल एण्ड रिहैबिलेशन" पत्रिका में एक घटना का विवरण दिया है जिसमें एक महिला की उँगलियों को इस तरह लकवा मार गया था कि वह उँगलियों में थोड़ी भी हरकत नहीं कर सकती थी किन्तु जब उसकी उँगलियों पर पराध्वनि चिकित्सा का प्रयोग किया गया तो उँगलियाँ पूरी तरह ठीक हो गईं और वह जूतों के फीते तक बाँधने में समर्थ हो गई।

"सालपेट्री हास्पिटल" पेरिस में ऐसे २७ लाइलाज रोगियों को इस कर्णातीत ध्वनि से ठीक किया गया। माउण्ट सिनाई हास्पिटल न्यूयार्क में एक ऐसा आग से जला व्यक्ति आया जिसकी उँगलियाँ जलकर पिघल गई थीं। उन्हें काट देने के अतिरिक्त कोई उपाय शेष नहीं रहा था उस समय "अल्ट्रा साउण्ड" ध्वनि का प्रयोग किया गया और वह व्यक्ति पूरी तरह अच्छा हो गया। अल्ट्रा साउण्ड ध्वनि और मन्त्र शक्ति में इतना ही अन्तर है कि मन्त्र की ध्वनि को चक्रों की विद्युत शक्ति रोग की कठिन स्थिति में भी बेध जाने योग्य बनाती है जबकि "टान्सडयूरूर" यन्त्र में कर्णातीत ध्वनि को विद्युत शक्ति यह सामर्थ्य प्रदान करती है। इस यन्त्र द्वारा सामान्यत: २० हजार साइकिल प्रति सैकिण्ड से ८० लाख और एक करोड़ साइकिल प्रति सैकिण्ड तक बढ़ा दिया जाता है।

ध्वनि का वह क्षेत्र तो बहुत स्वल्प है जो हमारे कानों की पकड़ में आता है और जिसे हम सुन सकते हैं। जिन ध्वनियों के कम्पन प्रति सैकिण्ड २० से लेकर २० हजार तक होते हैं उन्हें ही मनुष्य के कान आसानी से सुन सकते हैं। किन्तु ध्यान कम्पन तो इससे बहुत कम और बहुत अधिक सामर्थ्य के भी होते हैं। उन्हें अनसुनी ध्वनियाँ कहा जाता है। इससे उनकी सामर्थ्य में कमी नहीं होती वरन् सच तो यह है कि यह कर्णातीत—अनसुनी ध्वनियाँ और भी अधिक सामर्थ्यवान होती हैं। 'सुपर सोनिक रेडियो मीटर' की सहायता से अन्तरिक्ष में संव्याप्त अगणित ध्वनि प्रवाहों को सुना जाना जा सकता है। मन्त्र साधना में इन श्रवणातीत ध्वनियों का उत्पादन अतिरिक्त रूप से होता है और वे अपने क्षेत्र में असाधारण प्रभाव डालती हैं।

विज्ञान ने श्रवणातीत ध्वनियों को एक अति प्रभावोत्पादक शक्ति माना है और उनसे अनेक प्रकार के महत्त्वपूर्ण काम लेने की व्यवस्था बनाई है। इन दिनों वस्तुओं की सही मोटाई, गहराई नापने में—धातुओं के गुण, दोष परखने में इनका प्रयोग होता है। कार्बन ब्लैक का उत्पादन, वस्त्रों की धुलाई, रासायनिक सम्मिश्रण, वस्तुओं की कुटाई, पिसाई, गीली वस्तुओं को सुखाना, धातुओं की ढलाई, प्लास्टिक धागों का निर्माण जैसे अनेकों उद्योग ध्वनि तरंगों की सामर्थ्य का उपयोग करके चल रहे हैं। अयोवा स्टेट कालेज, अल्ट्रा सोनिक कारपोरेशन, बी. एफ. गुडरिच कम्पनी आदि कितने ही व्यापार संस्थानों ने ऐसे यन्त्र बनाये हैं जिनसे श्रवणातीत ध्वनियों की सामर्थ्य का उपयोग होता है और उससे महत्त्वपूर्ण लाभ कमाये जाते हैं।

ध्वनियों को आकाश से पकड़ कर उन्हें ऊर्जा के रूप में परिणत करने की तैयारियाँ भी बड़े जोरों से हो रही हैं। उन्हें ताप, प्रकाश, चुम्बक एवं बिजली के रूप में परिणत किया जा सकेगा और इस आधार पर ईंधन का एक सस्ता और सुविस्तृत स्रोत हाथ में आ जायगा। कान के माध्यम से मस्तिष्क में ध्वनियाँ पहुँचती हैं और हमें शब्द श्रवण का लाभ मिलता है। जिनके कानों की झिल्ली खराब हो गई है, उन बहरे लोगों को दृष्टि मार्ग से ध्वनि-तरंगों को मस्तिष्क तक पहुँचाने और सुनने का लाभ देने के लिए

चल रहे प्रयोग सफल होने के निकट पहुँचते जा रहे हैं। इसी प्रकार गूँगे, बहरे, अन्धे व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता अन्य छिद्रों के सहारे पूरी कर लिया करेंगे। राडार जैसे यन्त्र अभी भी ध्वनि प्रवाह को पकड़ कर ही बहुमूल्य जानकारियाँ संग्रह करते हैं।

मन्त्रों में भी ध्वनि शक्ति का ही स्वरूप कार्य करता है जिसके उपयोग की विधि आप्त महर्षियों ने अपने ढंग से खोजी थी। मन्त्र शक्ति की इतनी महत्ता होते हुए भी सभी लोग उसके द्वारा वह सामर्थ्य नहीं जुटा पाते। यह प्रश्न अक्सर उठा करता है और मन्त्र शक्ति में सन्देह का कारण बना रहता है। उसका कारण और कुछ नहीं अन्तःकरण का गहरा और उथला होना ही है। मन्त्र में सन्निहित भावनाओं को प्रखर बनाने के लिए जिस परिष्कृत और समर्थ व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। वह न जुट पाने से मन्त्र अपना सामान्य प्रभाव ही अभिव्यक्त करके रह जाता है। उससे विशेष कुछ लाभ मिलता नहीं। व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने का कार्य वाणी की सत्यनिष्ठा, सरलता और मधुरता से प्रारम्भ होता है और जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में छा जाता है। जिस तरह मैले शीशे पर पड़ने वाली प्रकाश की किरणें अपना कोई प्रभाव नहीं दिखा पातीं, उसी तरह मलिन अन्तःकरण में पड़ने वाले मन्त्र का प्रकाश केवल मात्र उसी सफाई में ही लगा रहेगा, यदि व्यक्ति की जीवन दिशा अपने दोष, दुर्गुणों को ढूँढ़ निकालने और उनके स्थान पर सद्गुणों की प्रतिष्ठा की हुई हो तब तो इस परिमार्जन का भी महत्त्व है और उस स्थिति में मन्त्र जप का प्रभाव अविलम्ब ही सही देखने को मिल जाता है, पर यदि आहार-विहार, रहन-सहन, वाणी-व्यवहार द्वारा अन्तःकरण को मल विक्षेप से लादते रहा गया हो तो कितना ही अच्छा और अधिक मन्त्र जप भी कोई प्रभाव परिणाम प्रस्तुत न कर सकेगा।

गायत्री महामन्त्र के जप से उत्पन्न पराध्वनि सारे वातावरण के परमाणुओं को कँपा देने की शक्ति से ओत-प्रोत है। इस महामन्त्र की अपार शक्ति का कोई भी लाभ उठा सकता है शर्त एक ही है कि वह उन शिक्षाओं पर, उस आचरण पर भी चले जिसका इस महामन्त्र के एक-एक अक्षर में संकेत है। उन आदर्शों पर चले बिना उल्लेखनीय सफलता के द्वार अवरुद्ध ही पड़े रहेंगे।

यह संसार इतना सुरम्य और सरस दिखाई पड़ता है उसमें शब्द का योगदान असाधारण है। यह जानते हुए लोग शब्द की शक्ति को सुविस्तृत करने और उसका इच्छानुरूप उपयोग करने में प्रवृत्त भी हैं। रेडियो के सहस्रों देशी-विदेशी केन्द्र निरन्तर प्रचार कार्य में लगे हैं। करोड़ों की संख्या में प्रतिदिन छपने वाले अखबार इसी प्रयोजन को पूरा करने में संलग्न हैं। साहित्य के मुद्रण प्रकाशन और विक्रय व्यवसाय में लगे हुए लाखों कार्यकर्ता मानव जाति की इसी आवश्यकता को पूरा करने में तत्पर हैं। तार, टेलीफोन, पोस्ट-आफिस, सिनेमा, ग्रामोफोन आदि अनेकों शाखायें इसी दिशा में प्रवृत्त हैं। विद्यालय तो हैं ही इस प्रयोजन के लिए। मनुष्य जाति शब्द के माध्यम से उपलब्ध होने वाले "ज्ञान संवर्धन" लाभ से परिचित हैं। अस्तु वह उसका भरपूर लाभ उठा भी रही है। यों उसके दुरुपयोग दुष्परिणाम भी उसे कम नहीं भुगतने पड़ रहे हैं। मानवीय अधःपतन और द्वेष-दुर्भावों को बढ़ाने में भी शब्द के दुरुपयोग को ही दोष दिया जा सकता है।

यह शब्द शक्ति की मोटी जानकारी हुई। बारीक जानकारी-सूक्ष्म रहस्य यह है कि शब्द अपने आप में एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की क्षमताओं से सुसम्पन्न "शक्ति" है। जिस प्रकार बिजली, भाप, ऐटम, बारूद आदि के माध्यम से विभिन्न स्तरों की शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं, उसी प्रकार शब्द भी एक प्रकार का महत्त्वपूर्ण शक्ति स्रोत है। इसका उपयोग ज्ञान के लिए नहीं वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए भी किया जा सकता है।

शब्द शक्ति के सूक्ष्म प्रभाव उससे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। विशेष प्रकार के शब्दों का शरीर-संस्थान पर जो अद्भुत प्रभाव पड़ता है, उसकी खोज बहुत दिनों से जारी है इस शोध के प्रयत्नों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनसे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। हालैण्ड और डेनमार्क में पशु पालक दूध दुहते समय एक विशेष प्रकार की स्वर लहरी का प्रयोग करते हैं। उनने पशु शरीरों पर अनुकूल प्रभाव डालने वाली संगीत धारा के ग्रामोफोन रिकार्ड बना रखे हैं। वे उन्हें बजाते हैं, जिसका प्रभाव पशुओं के नाड़ी संस्थान पर पड़ता है और दूध-ग्रन्थियाँ अधिक स्राव करने लगती हैं। सर्प-विद्या के ज्ञाता बीन बजाकर जहरीले साँपों को उनके छेदों में से बाहर बुला लेते हैं और जब वे उस संगीत लहरी को सुनने में तन्मय-भाव विभोर हो जाते हैं तब सपेरे उन्हें पकड़ लेते हैं। प्राचीन काल के बहेलिये हिरणों को पकड़ने के लिए बीन बजाने का अस्त्र उपयोग करते थे। मधुर संगीत को सुनकर जब हिरण चौकड़ी मारना भूल जाते थे और मुग्ध

होकर उस मधुर ध्वनि को सुनने के लिए ठगे से खड़े रह जाते थे तब धूर्त बहेलिये उन्हें अचक से पकड़ लिया करते थे।

विषैले फोड़ों और भूतोन्माद जैसे कठिन रोगों के निवारण में अब भी देहाती क्षेत्रों में उलटे घड़े पर काँसे की थाली को रख कर हथेली तथा लकड़ी की सहायता से एक विचित्र ध्वनि लहरी के साथ बजाते हैं, उसका परिणाम भी आश्चर्यजनक होता देखा गया है। कंठमाला, विषबेल जैसे 'गाँठ की टी. बी.' कहलाने वाले फोड़े उससे अच्छे होते पाये गये हैं। भयंकर साँप काटे का जहर उतरते देखा गया है। उन्माद रोग की एक शाखा भूतोन्माद भी है। इस रोग से ग्रसित पीड़ितों को उपरोक्त प्रकार का उपचार अद्‌भुत लाभ पहुँचाता है। अमेरिका के मनोविज्ञानवेत्ता अब अनिद्राग्रस्त रोगियों को हलकी सङ्गीत लहरी सुनाकर निद्रा लाने में सफल हो रहे हैं। स्नायु तन्तुओं की विकृति के कष्टग्रस्त रोगी इसी प्रयोजन से आविष्कृत विशेष संगीत साधनाओं द्वारा रोग मुक्त किये जाने लगे हैं। गर्भस्थ बालकों के मानसिक एवं स्नायविक विकास के लिए कई वैज्ञानिकों ने गर्भवती को एक विशेष प्रकार की वाद्य ध्वनियाँ सुनने की व्यवस्था की है और उससे आशाजनक परिणाम उत्पन्न हुए हैं।

प्राचीन काल में दीपक राग, मेघ, मल्हार सरीखे ध्वनि प्रवाह हमारे देश में प्रचलित थे। कहते हैं कि दीपक राग से बुझे हुए दीपक जल जाते थे और मेघ मल्हार गाने से सूखे अकाश में घटायें घिर आती थीं। मन्त्र शास्त्र इसी विद्या का विकसित रूप है। भारतीय विज्ञानवेत्ता-ऋषियों ने शब्द विद्या का इस दृष्टिकोण से गहन अध्ययन अन्वेषण किया था। आरण्यकों में बने उनके आश्रम एक प्रकार के वैज्ञानिक शोध-संस्थान होते । उनमें मन्त्र विद्या के आविष्कार-अन्वेषण इसी दृष्टि को लेकर किये जाते रहते थे कि किन शब्द गुच्छकों का समूह-कौन मन्त्र-किस उच्चारण के साथ-किस भाव मुद्रा में-किस व्यक्ति द्वारा-किस प्रकार प्रयुक्त किया जाय तो उसका क्या परिणाम उत्पन्न हो सकता है ?

शब्द का उच्चारण मुख से होता है। मुख में जिह्वा प्रधान है। इसलिए मोटे तौर से यह समझा जाता है कि जीभ ही बोलती है। पर वास्तविकता यह है कि कण्ठ, होठ, जिह्वा, तालु, दाँत आदि मुख के भीतरी विभिन्न अवयवों के विशाल संचालन से विशिष्ट शब्द उच्चारित होते हैं। पाणिनि व्याकरण में अक्षरों के स्थानों का भी उल्लेख हुआ है। इन अवयवों के संचालन की मिश्रित प्रक्रिया स्वरूप जो ध्वनि निकलती है वह बाह्य जगत् में विकीर्ण होकर 'शब्द' का रूप धारण करती है। कान उसे सुनते हैं मस्तिष्क उसे धारण करते । यह शब्द 'ईथर' तत्त्व में मिलकर धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक ही नहीं फैलते वरन् विश्व ब्रह्माण्ड में सुविस्तृत हो जाते हैं। सुनाई तो वे थोड़ी ही देर पड़ते हैं, पर उनका अस्तित्व अनन्त काल तक बना रहता है।

अभी जो शब्द हमारे मुख से निकला वह कुछ सैकिण्ड के अन्तर से इस देश से उस देश में पहुँच जायगा। चन्द्रमा आदि निकटवर्ती उपग्रहों तक पहुँचने में उसे कुछ मिनट लगेंगे। सौर मण्डल के नवग्रहों की कक्षायें पार करते-करते उसी शब्द को कुछ घण्टे लगेंगे। फिर जैसा हमारा सूर्य नौ उपग्रहों और ४७ उपग्रहों समेत घूम रहा है, वैसे ही वैसे पच्चीस लाख तारे हमारी 'स्पाइरल' आकाश गंगा में जुड़े पड़े हैं। इस हमारी आकाश गंगा की चादर में अपने सूर्य जैसे २५ लाख तारे जगमगा रहे हैं। फिर अकेली 'स्पाइरल' आकाश गंगा ही इस विश्व ब्रह्माण्ड में थोड़ी है। वैसी करोड़ों आकाश गंगायें इस अनन्त अन्तरिक्ष में घूमती नाचती फिर रहा हैं और उनमें से प्रत्येक में हमारी आकाश गंगा की तरह ही लाखों सूर्य, करोड़ों ग्रह उपग्रह जुड़े हैं। 'ईथर' उन सबमें व्याप्त है। आज हमारे मुख से निकला हुआ शब्द करोड़ों वर्षों तक समुद्र में बहने वाली लहरों की तरह आगे बढ़ता चलता जायगा और फिर चिर-भविष्य के बाद 'गोल' सिद्धान्त के आधार पर लौट-लौटकर वहीं आ जायगा जहाँ से चला था। यह शब्द भले ही बहुत दूर निकल गया हो पर उसका अस्तित्व क्षीण रूप में हर जगह बना रहेगा। इस विशेष विधियों से पकड़ा भी जा सकता है। अभी उस बात के प्रयोग हो रहे हैं कि महाभारत की घंटनाओं को आँख से देखना और कृष्ण की गीता को कान से सुनना सम्भव हो सके। सम्भावना इस बात की पूरी-पूरी है कि भविष्य में भौतिक विज्ञान वह प्रगति कर लेगा कि कितने ही वर्ष पुरानी अतीत की घटनायें फिर देख सकना और शब्दावलियों को सुनना सम्भव हो जायगा। गायत्री महामन्त्र ही शब्द रचना पर विचार करने के सन्दर्भ में लिखे गये इस लेख में तो इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि शब्द को सामान्य वस्तु न समझा जाय, बाह्य जगत में इसकी हलचलें बहुत ही समर्थ एवं अद्‌भुत होती हैं।

शब्द का अन्तर्मन में जो प्रभाव उत्पन्न होता है वह और भी अद्भुत है। मुख से निकल कर शब्द सर्वथा बाह्य जगत में ही गतिशील नहीं हो जाता। उसकी आधी शक्ति बाहर जाती है और आधी अपने भीतर भ्रमण करने लगती है। उच्चरित शब्द की आधी शक्ति ब्रह्माण्ड में विकीर्ण होती है और आधी पिण्ड में अपनी प्रबल प्रक्रिया आरम्भ कर देती है। बन्दूक चलाने में जब गोली छूटती है तो निशाने पर तो चोट करती ही है, एक झटका पीछे को भी देती है। इसलिए बन्दूक चलाने वाले सीने से उसे ठीक तरह कस कर जमा लेते हैं, अन्यथा चलाने वाले के कन्धे या सीने को वह तोड़ कर रख सकती है। शब्दोच्चारण भी एक प्रकार से बन्दूक चलाने जैसी प्रक्रिया है। केवल आकाश में ही उसका प्रभाव होता है ऐसी बात नहीं, उससे समीपवर्ती क्षेत्र में—शरीर में—भी उसकी प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरान्त तत्वदर्शी महामनीषी ऋषियों ने मन्त्र विद्या खोज निकाली, उनने यह आविष्कार किया कि किस-किस शब्द का किस-किस क्रम से, किस भावना और किस स्थिति में कैसा उच्चारण किया जाय तो उसकी क्या प्रतिक्रिया व्यक्ति एवं समिष्टि पर होगी। इसी वैज्ञानिक उपलब्धि के ऊपर मन्त्र विद्या का सुव्यवस्थित ढाँचा खड़ा किया गया है।

अब से पाँच छः वर्ष पूर्व दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शिनी हुई थी। उसके अमेरिकन कक्ष में एक ऐसी रेलगाड़ी दिखाई गई थी, जिसकी मशीनरी रेडियो संचार व्यवस्था के अनुसार बनी थी। प्रदर्शनकर्ता कुछ शब्द बोलता था, उन शब्दों से जो ध्वनि तरंगें निकलती थीं, उन्हीं से प्रभावित होकर रेल चलती, दौड़ती, मुड़ती और खड़ी हो जाती थी। प्रदर्शनकर्ता दर्शकों को समझाता था कि शब्द अपने आप में एक शक्ति है। जिस प्रकार भाप, तेल या बिजली के सहारे रेलें चलती हैं, उसी तरह इस रेडियो व्यवस्था के यन्त्रों से बनी रेल को हम शब्द के सहारे गतिशील बनाते हैं।

सन् १९२३ में जर्मन विज्ञान सभा के तत्वावधान में कुछ ऐसे मनुष्य आकृति यन्त्र बनाये गये थे जो देखने में बिल्कुल मनुष्य जैसे लगते थे। वे चलते, दौड़ते, खड़े होते, बैठते और मुड़ने में ठीक फौजी सैनिकों की समता करते थे। इतना ही नहीं वे कुछ प्रश्नों का सही उत्तर भी देते थे। बन्दूक का सही निशाना साधते थे। उनकी यह सारी गतिविधियाँ निर्देशक द्वारा उच्चारण किये गये शब्दों पर निर्धारित रहती थीं। बर्लिन की विज्ञान प्रदर्शनी में उन्हें जन साधारण को दिखाया गया था और बताया गया था कि शब्द में वह क्षमता मौजूद है कि वह इन यन्त्र मानवों को इच्छानुसार कार्य करने के लिए तत्पर कर सकें।

ऋषियों ने शब्द शक्ति की शोध उच्च स्तर पर की थी और उनने पाया था कि सामर्थ्य के इस महान भाण्डागार को लोक हित के लिये बहुत ही उपयुक्त रीति से प्रयोग में लाया जा सकता है। अस्तु उन्होंने इस दिशा में लाखों वर्षों तक अथक श्रम किया और जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं उनसे मानव जाति का महान हित साधा। आजकल जिस प्रकार विविध यन्त्रों से सुख-सुविधा के विभिन्न प्रयोजन और उपकरण प्राप्त किये जाते हैं—उसी तरह प्राचीन काल में मन्त्रों द्वारा वह सब कुछ प्राप्त किया जाता था जो मानवीय सुख-शान्ति एवं प्रगति-समृद्धि के लिए आवश्यक है।

प्राचीन काल में दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग मन्त्र शक्ति के आधार पर होता था। आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, नागपाश आदि आज के बन्दूक, गैस गोले जैसे न थे, उनकी सामर्थ्य और विशेषता आज के किसी भी शस्त्र से अधिक थी 'कृत्या' (घात) द्वारा घर बैठे व्यक्ति का मन्त्र शक्ति से मरण तक किया जा सकता था। मन्त्र शक्ति का यज्ञ के माध्यम से प्रयोग करके विपुल वर्षा और पौष्टिक खाद्य वनस्पति उत्पादन जैसे प्रयोजन पूरे किये जाते थे। शारीरिक और मानसिक रोगों का शमन होता था। आत्मिक उत्कृष्टता उत्पन्न की जाती थी। दिव्य-दर्शन, सूक्ष्म श्रवण जैसी सिद्धियाँ प्राप्त शरीर अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक यन्त्र बन जाते थे। प्राचीन काल का हमारा गौरव और वर्चस्व जिस विज्ञान के आधार पर बना और बढ़ा था, वह मन्त्र शक्ति ही थी।

आज हम उस महान विज्ञान को भुला बैठे और मणिहीन सर्प की तरह अधःपतित स्थिति में जा पहुँचे। नवजागरण की इस पुण्य बेला में हमें अपने वर्चस्व का मूल स्रोत पुनः खोजना और उपलब्ध करना होगा। वह स्रोत एक ही है—'शब्द'। शास्त्रकार ने 'शब्दों वै ब्रह्मा' शब्द को ब्रह्मा कहा है। ब्रह्मा में परमात्मा में जो कला, जो विभूति, जो महत्ता विद्यमान है वे सभी शब्द शक्तिमाध्यम से प्राप्त की जा सकती है। 'मन्त्र' शब्द शक्ति का उच्चस्तरीय उपयोग है। इसका उपयोग यदि हम जान

सकें तो निःसन्देह सच्चे ज्ञानी, सच्चे विज्ञानी बन सकते हैं।

गायत्री महामन्त्र, समस्त मन्त्र शास्त्र का प्राण, बीज, उद्गम एवं मर्म है। अगम और निगम—वेद और तन्त्र के अन्तर्गत जितने भी तांत्रिक प्रयोग हैं, उन सब को गायत्री बीज शक्ति का पल्लव-परिकर ही मानना चाहिये। मन्त्र विद्या का भाण्डागार है—वेद। और उनका उद्भव वेदमाता, विश्वमाता, गायत्री महाशक्ति के द्वारा हुआ है। इस अनुपम, अद्भुत, अनन्त और प्रमेय विभूति का सानिध्य प्राप्त कर हमें अपना वैज्ञानिक और सामाजिक-आध्यात्मिक और भौतिक जीवन सुखी, समृद्ध, सफल एवं सार्थक बनाना चाहिये।

गायत्री महामंत्र के जप द्वारा ऐसी चेतन शक्ति का उद्भव होता है, जो जपकर्ता के शरीर एवं मन में विचित्र प्रकार की हलचलें उत्पन्न करती है और अनन्त आकाश में उड़कर विशिष्ट व्यक्तियों को—विशेष परिस्थितियों को तथा समूचे वातावरण को प्रभावित करती है।

मंत्रों का चयन ध्वनि-विज्ञान को आधार मान कर किया गया है। अर्थ का समावेश गौण है। गायत्री मंत्र की सामर्थ्य अद्भुत है। पर उसक अर्थ अति सामान्य है। भगवान से सद्बुद्धि की कामना भर उसमें की गई है। इसी अर्थ प्रयोजन को व्यक्त करने वाले मंत्र श्लोक हजारों हैं। हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसी कविताओं की कमी नहीं जिनमें परमात्मा से सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है। फिर उन सब कविताओं को गायत्री मंत्र के समकक्ष क्यों नहीं रखा जाता और उनका उच्चारण क्यों उतना फलप्रद नहीं होता ? वस्तुतः मंत्र सृष्टाओं की दृष्टि में शब्दों का गुंथन ही महत्त्वपूर्ण रहा है। कितने ही बीज मंत्र ऐसे हैं जिनका खींचतान के ही कुछ अर्थ भले ही गढ़ा जाय पर वस्तुतः उनका कुछ अर्थ है नहीं। ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हुं, यं, फट् आदि शब्दों का क्या अर्थ हो सकता है, इस प्रश्न पर माथापच्ची करना बेकार है। उनका सृजन यह ध्यान में रखते हुए किया गया है कि उनका उच्चारण किस स्तर का शक्ति कम्पन उत्पन्न करता है और उनका जपकर्त्ता, बाह्य वातावरण तथा अभीष्ट प्रयोजन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

मानसिक, वाचिक एवं उपांशु जप में ध्वनियों के हलके भारी किये जाने की प्रक्रिया काम में लाई जाती है। वेद मन्त्रों के अक्षरों के साथ-साथ उदात्त-अनुदात्त और स्वरित क्रम से उनका उच्चारण नीचे-ऊँचे तथा मध्यवर्ती उतार-चढ़ाव के साथ किया जाता है। उनके सस्वर उच्चारण की परम्परा है। यह सब विधान इसी दृष्टि से बनाने पड़े हैं कि उन मन्त्रों का जप अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने वाला शक्ति प्रवाह उत्पन्न कर सके।

मन्त्र जप की दुहरी प्रतिक्रिया होती है। एक भीतर, दूसरी बाहर। आग जहाँ जलती है उस स्थान को गरम करती है, साथ ही वायुमण्डल में ऊष्मा बखेर कर अपने प्रभाव क्षेत्र को भी गर्मी देती है। जप का ध्वनि प्रवाह—समुद्र की गहराई में चलने वाली जलधाराओं की तरह तथा ऊपर आकाश में छितराई हुई उड़ने वाली हवा की परतों की तरह अपनी हलचलें उत्पन्न करता है। उनके कारण शरीर में यत्र-तत्र, सन्निहित अनेकों 'चक्रों' तथा 'उपत्यिका' ग्रन्थियों में विशिष्ट स्तर का शक्ति संचार होता है। लगातार के एक नियमित क्रम से चलने वाली हलचलें ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जिन्हें रहस्मय ही कहा जा सकता है। पुलों पर सैनिकों को पैरों को मिलाकर चलने से उत्पन्न क्रमबद्ध ध्वनि उत्पन्न न करने के लिए इसलिए मना किया जाता है कि इस साधारण-सी क्रिया से पुल तोड़ देने वाला असाधारण प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।

जप लगातार करना पड़ता है और एक ही क्रम से इस प्रक्रिया के परिणामों को विज्ञान की प्रयोगशाला में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। एक टन भारी लोहे का गार्डर किसी छत के बीचों-बीच लटका दिया जाय और उस पर पाँच ग्राम भारी हलके से कार्क के लगातार आयात लगाने प्रारम्भ कर दिये जायें तो कुछ ही समय में वह सारा गार्डर काँपने लगेगा। यह लगातार—एक गति से—आघात क्रम से उत्पन्न होने वाली शक्ति का चमत्कार है। मन्त्र जप यदि विधिवत् किया गया है तो उसका परिणाम भी यही होता है। सूक्ष्म शरीर में—अवस्थित चक्रों और ग्रन्थियों को जप ध्वनि का अनवरत प्रभाव अपने ढंग से प्रभावित करता है और उत्पन्न हुई हलचल उनकी मूर्छना दूर करके जागृति का अभिनव दौर उत्पन्न करती है। ग्रन्थिभेदन तथा चक्र जागरण का सत्परिणाम जपकर्त्ता को प्राप्त होता है। जगे हुए यह दिव्य संस्थान साधक में आत्मबल का नया संचार करते हैं। उसे ऐसा कुछ अपने भीतर जगा, उगा प्रतीत होता है जो पहले नहीं था। इस नवीन उपलब्धि के लाभ भी उसे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होते हैं।

टाइप राइटर के उदाहरण से इस तथ्य को और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है। उँगली से चाबियाँ

दबाई जाती हैं और कागज पर तीलियाँ गिर कर अक्षर छापने लगती हैं। मुख में लगे उच्चारण में प्रयुक्त होने वाले कलपुर्जों को टाइप राइटर की कुञ्जियाँ कह सकते हैं। मन्त्रोच्चार उँगली से उन्हें दबाना हुआ। यहाँ से उत्पन्न शक्ति प्रवाह नाड़ी तन्तुओं की तीलियों के सहारे सूक्ष्म चक्रों और दिव्य ग्रन्थियों तक पहुँचता है और उन्हें झकझोर कर जगाने, खड़ा करने में संलग्न होता है। अक्षरों का छपना वह उपलब्धि है जो इन जाग्रत चक्रों द्वारा रहस्यमयी सिद्धियों के रूप में साधक को मिलती है। यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि यदि जपयोग को विधिवत् साधा गया होगा तो उसका सत्परिणाम उत्पन्न होगा ही।

पुलों पर होकर गुजरती हुई सेना को पैर मिलाकर चलने पर उत्पन्न होना, ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करने की मनाही कर दी जाती है। पुलों पर से गुजरते समय वे बिखरे हुए—स्वच्छतापूर्ण कदम बढ़ाते हैं । कारण यह है कि लेफ्ट राइट के ठीक क्रम से तालबद्ध पैर पड़ने से जो एकीभूत शक्ति उत्पन्न होती है उसकी अद्भुत शक्ति के प्रहार से मजबूत पुलों में दरार पड़ सकती है और भारी नुकसान हो सकता है। मन्त्र जप के क्रमबद्ध उच्चारण से उसी प्रकार का तालक्रम उत्पन्न होता है और उसके फलस्वरूप शरीर के अन्त: संस्थानों में विशिष्ट हलचल उत्पन्न होती है। यह हलचलें उन आलौकिक शक्तियों की मूर्छना दूर करते हैं जो जागृत होने पर सामान्य मनुष्य को असामान्य चमत्कारों से सम्पन्न सिद्ध कर सकती हैं।

हाथों को लगातार थोड़ी देर तक घिसा जाय तो वे गरम हो जाते हैं। रगड़ से गर्मी और बिजली पैदा होती है, यह नियम विज्ञान की प्रथम कक्षा में पढ़ने वाले छात्र भी जानते हैं। जप में अनवरत उच्चारक्रम एक प्रकार का घर्षण उत्पन्न करता है। पत्थर पर रस्सी की रगड़ पड़ने से घिसाव के निशान बन जाते हैं। श्वांस के आवागमन तथा रक्त की भाग-दौड़ से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और उसी पर जीवन अवलम्बित रहता है। डायनमो में पहिया घूमने से बिजली उत्पन्न होने की बात सभी जानते हैं। जप में जो घर्षण प्रक्रिया गतिशील होती है, वह दौड़ लगाने पर शरीर के उत्तेजित हो जाने की तरह सूक्ष्म शरीर में उत्तेजना पैदा कर रही है और उस गर्मी से मूर्छित पड़ा अन्तर्जगत नये जागरण का अनुभव करता है। यह जागरण मात्र उत्तेजना नहीं होती उसके साथ-साथ दिव्य उपलब्धियों की सम्भावना भी जुड़ी रहती है।

ध्वनियाँ उतनी ही नहीं हैं जितनी कि कानों से सुनाई पड़ती हैं। कान तो एक निश्चित स्तर के ध्वनि कम्पनों को ही सुन पाते हैं। उनकी पकड़ से ऊँचे और नीचे कम्पनों वाले भी असंख्य ध्यान प्रवाह होते हैं जिन्हें मनुष्य के कान तो सुन नहीं सकते, पर उनके प्रभावों को उपकरणों की सहायता से प्रत्यक्ष देखा जाना जा सकता है। इन्हें 'सुपर सोनिक' ध्वनि तरंगें कहते हैं।

मनुष्य की ग्रहण और धारण शक्ति सीमित है। वह अपनी दुबली-सी क्षमता के लिए उपयुक्त शब्द प्रवाह ही पकड़ सके, इसी स्तर की कानों की झल्ली बनी है। किन्तु यह संसार तो शक्ति का अथाह समुद्र है और इसमें ज्वार-भाटे की तरह श्रवणातीत ध्वनियाँ गतिशील रहती हैं। अच्छा ही हुआ कि मनुष्य की ग्रहण शक्ति सीमित है और वह अपने लिए सीमित प्रवाह ही ले पाता है अन्यथा यदि श्रवणातीत ध्वनियाँ भी उसे प्रभावित कर सकतीं तो जीवन धारण ही सम्भव न हो पाता।

शब्द की गति साधारणतया बहुत धीमी है। वह मात्र कुछ सौ फुट प्रति सैकण्ड चल पाती है। तोप चलने पर धुआँ पहले दीखता है और धड़ाके की आवाज पीछे सुनाई पड़ती है। जहाँ दृश्य और श्रव्य का समावेश है वहाँ हर जगह ऐसा ही होगा। दृश्य पहले दीखेगा और उस घटना के साथ जुड़ी हुई आवाज कान तक पीछे पहुँचेगी।

रेडियो प्रसारण में एक छोटी-सी आवाज को विश्व-व्यापी बना देने और उसे १ लाख ८६ हजार मील प्रति सैकिण्ड की चाल से चलने योग्य बना देने में इलेक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों का ही चमत्कार होता है। रेडियो विज्ञानी जानते हैं कि 'इलेक्ट्रो मैगनेटिक वेव्स' पर साउण्ड का सुपर कम्पोज रिकार्ड कर दिया जाता है और वे पलक मारते सारे संसार की परिक्रमा कर लेने जितनी शक्तिशाली बन जाती हैं।

इलेक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों की शक्ति से ही अन्तरिक्ष में भेजे गये राकेटों की उड़ान को धरती पर से नियंत्रित करने, उन्हें दिशा और संकेत देने, यांत्रिक खराबी दूर करने का प्रयोजन पूरा किया जाता है। वे 'लैसर' स्तर की बनती हैं तो शक्ति का ठिकाना नहीं रहता। एक फुट मोटी लोहे की चद्दर में सूराख कर देना उनके बायें हाथ का खेल है। पतली वे इतनी होती हैं कि आँख की पुतली के लाखवें हिस्से में खराबी होने पर मात्र उतने ही टुकड़े का निर्धारित

गहराई तक ही सीमित रहने वाला सफ़ल आपरेशन कर देती हैं। अब इन किरणों का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी बहुत होने लगा है। केन्सर, अन्त्रशोध, यकृत की विकृति, गुर्दे की सूजन, हृदय की जकड़न जैसी बीमारियों की चिकित्सा में इनका सफल उपयोग हो रहा है।

'सुपर सोनिक' तरंगों का जप प्रक्रिया के द्वारा उत्पादन और समन्वय होता है मंत्र जप के समय उच्चारण किये गये शब्द—आत्म-निष्ठा, श्रद्धा एवं संकल्प शक्ति का समन्वय होने से वही क्रिया सम्पन्न होती है, जो रेडियो स्टेशन पर बोले गये शब्द—विशिष्ट विद्युत् शक्ति के साथ मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली हो उठते हैं और पलक मारते समस्त भूमण्डल में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं। जप प्रक्रिया में एक विशेषता यह है कि उससे न केवल समस्त संसार का वातावरण प्रभावित होता है, वरन् साधक का व्यक्तित्व भी झनझनाने, जगमगाने लगता है। जबकि रेडियो स्टेशन से प्रसारण तो होता है, पर कोई स्थानीय विलक्षणता दिखाई नहीं पड़ती। लैसर रेडियम किरणें फेंकने वाले यन्त्रों में कोई निजी प्रभाव नहीं देखा जाता ये उन स्थानों को ही प्रभावित करते हैं जहाँ उनका आघात लगता है। जप-प्रक्रिया में साधक को और वातावरण को प्रभावित करने की वह दुहरी शक्ति है-जो नव वैज्ञानिकों के सामान्य यन्त्र उपकरणों में नहीं पाई जाती।

## मंत्रशक्ति ही देवमाता-कामधेनु है

श्रुति कहती है—

**देवी वाचमजनयन्त देवास्तां,**
**विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।**
**सा नो मंद्रेष्षमूर्गं दुहाना,**
**धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुवैतु ॥**

परावाक् देवी है। विश्व रूपिणी है। देवताओं की जननी है। देवता मन्त्रात्मक ही हैं। यही विज्ञान है। इस कामधेनु वाक् की शक्ति से हम जीवित हैं। उसी के कारण हम बोलते हैं और जानते हैं।

शब्द के दो रूप हैं एक वह जो जीभ से बोला जाता है। कान से सुना जाता है। जिससे अर्थ का बोध होता है। एवं उस शब्द के साथ जुड़ा हुआ रूप या प्रसंग स्मृति पटल पर प्रस्तुत होता है। वैसे उच्चारित शब्दों को वैखरी संज्ञा दी जाती है। लोक प्रयोजन में वाणी का यही व्यवहार होता है।

दूसरा वह जिसे परावाक् कहते हैं। यह अन्तःकरण में भावना के—ज्ञान एवं इच्छा के—रूप में अवस्थित रहती है। यह शक्ति रूप है। इसमें प्रेरणा भरी पड़ी है। बुद्धि इसी की अनुचरी है, मन इसी का सेवक—चित्त इसी का पार्षद है। अन्तरंग मर्मस्थल में जो भाव उमड़ते हैं, उन्हें साकार करने के लिए—साधन जुटाने के लिए मन और बुद्धि को लगा रहना पड़ता है। शरीर इन्हीं दोनों का अनुचर है। अस्तु उसे भी उसी दिशा में चलना पड़ता है। जिसमें कि अन्तरंग में अवस्थित परावाक् की प्रेरणा से मन और बुद्धि दिशा ग्रहण करते हैं। मनुष्य जो कुछ सोचता है—करता है—बनता है—पाता है उसे परावाक् का ही प्रसाद कहना चाहिए।

शरीर को आहार विहार को स्वस्थ समुन्नत बनाया जाता है। मन, मस्तिष्क, अध्ययन, सान्निध्य, चिन्तन एवं अनुभव के आधार पर विकसित होता है। अन्तःकरण की अभिव्यंजना—परावाक्—को स्वस्थ, शुद्ध समुन्नत एवं सशक्त बनाने के लिए साधना करनी पड़ती है। साधना शारीरिक बलवर्धन के लिए भी होती है और मस्तिष्क को विकसित करने के लिए भी। व्यायाम, अध्ययन आदि को शरीर एवं मन की साधना कह सकते हैं। यदि इनका अवलम्बन न लिया जाय तो वे दोनों अविकसित पड़े रहेंगे। भगवान ने अनेक क्षमताओं से सम्पन्न शरीर और अनेक सम्भावनाओं से युक्त मन हमें दिया है पर यदि उन्हें व्यवस्थित एवं समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्न न किया जाय तो वे अवांछनीय दिशा में चलकर विकृत, भ्रष्ट एवं अधःपतित भी हो सकते हैं। रोग शोक से घिर सकते हैं। इसी प्रकार अन्तःकरण की उसकी ऊर्जा—परावाक् को परिष्कृत न किया जाय तो वह अधोगामी ही असुरता ग्रस्त हो सकती है। जिस प्रकार आलसी और प्रमादी अपने शरीर तथा मन को रुग्ण कर लेते हैं उसी प्रकार अन्तःकरण को सुसंस्कृत, परिष्कृत, समुन्नत बनाने का प्रयास छोड़ देने से मनुष्य पशु एवं पिशाच जैसी स्थिति में जा पहुँचता है। असुरता से आच्छादित अन्तःकरण दुर्भावनाओं से—दुर्बुद्धि एवं दुष्प्रवृत्तियों से भरा रहता है। स्वयं उद्विग्न रहता और दूसरों को कष्ट देता है।

शरीर और मन को समुन्नत स्थिति में रखने के लिए किये जाने वाले विविध विध प्रयास से भी अधिक आवश्यकता अन्तःकरण के सुधार परिष्कार की है। **यही प्रयोजन परावाक् साधना से पूरा होता है। मन्त्र विज्ञान का यही प्रयोजन है।** उससे परावाक् के मर्मस्थल का

स्पर्श किया जाता है और परिष्कार का साधन जुटाया जाता है।

श्रुति कहती है—

**पाक्का नः सरस्वती वाजभिर,**
**वाजिनीवती, धोनामवित्र्यवतु।**

तप से पवित्र हुई वाक् पवित्रता, पुष्टि, प्रतिभा, प्रज्ञा तथा प्रेरणा प्रदान करती है। परावाक् के तप प्रयोजन को ही मन्त्र साधन कहते हैं। स्थूल बैखरी वाणी से उच्चारित और मध्यमा से ध्यान सम्बद्ध सूक्ष्म परा पशन्ती वाणियों को जागृत करता है। इस प्रकार जब चारों वाणियाँ सक्रिय हो उठती हैं और ऊर्ध्वगामी बनती हैं तो जीव ही ब्रह्म बन जाता है। ब्रह्मा देवता के चार मुख हैं। उन्होंने चारों वेदों का सृजन प्रवचन किया। यह चतुर्थ प्रकटीकरण वस्तुतः बैखरी, मध्यमा, परा और पशन्ती वाणियों का ऊर्ध्वगामी उभार मात्र है। यह ब्रह्म देवता के लिए भी सम्भव है और आत्म-देवता के लिए भी। पुराणों में कथा है कि विष्णु की नाभि में से उत्पन्न कमल नाल पर ब्रह्मा जी कई बार उतरे और चढ़े। मन्त्र साधन में यही होता है। स्थूल शब्द उच्चारित होकर अन्तःकरण के मर्म स्थल की गहराई में उतरता है और उस शक्ति स्रोत की ऊर्जा से सम्पन्न होकर ऊपर आता है। जब वह ऊपर आता है तो बैखरी में पशन्ती का वैसा ही प्रभाव होता है जैसा बिजली के सम्पर्क से धातु के तार में। वह मन्त्रपूत शब्द समस्त सृष्टि में हलचल उत्पन्न करता है, सूक्ष्म जगत को स्पन्दित करता है और व्यक्ति को व्यक्ति मात्र न रखकर उसे दैवी शक्ति सम्पन्न बना देता है।

हम सब गायत्री का जप करते हैं पर यह स्थूल बैखरी वाणी का स्पन्दन मात्र होकर रह जाता है। फलतः उसका वह प्रभाव नहीं होता जो होना चाहिए महर्षि विश्वामित्र ने इसी गायत्री मन्त्र की साधना की। उस शक्ति का साक्षात्कार किया और वैसी ही सामर्थ्य से सम्पन्न हो गये जैसी कि इस महाशक्ति के महात्म्य में बताई गई है। मन्त्र साधना वाणी का तप है। स्थूल की सूक्ष्म में परिणति है। अन्तर्दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश करना है। कुएँ में घड़ा फाँसना और खींचना तप है। जल भरा हुआ घड़ा हाथ में आता है तब वह सिद्धि है। साधना और सिद्धि का यही अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मन्त्र साध्य को मन्त्र साध्य मनाने की इस अनूठी प्रक्रिया का रहस्य जो जानते हैं वे भौतिक उपकरणों के—साधनों को मान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा जो पाया जाना सम्भव है उसे मांत्रिक साधना पद्धति से प्राप्त कर लेते हैं। उनका साधना तप ही लौटकर सिद्धि भाण्डागार के रूप में परिलक्षित होता है।

शब्द को 'ब्रह्म' कहा गया है। यह शब्द ब्रह्म—परावाक् का मर्मस्थल है। यह प्रायः क्षीर सागर में प्रसुप्त पड़ा रहता है पर जब जागृत होता है तो उसके स्पन्दन से यह सारा विश्व गतिशील हो उठता है। श्रुति वाक् को हृदयस्पर्शी बताती है। स्पर्शानुभव में—रूपानुभव में आने वाली बताती है। यह हृदयस्पर्शी स्वरूप स्वर्ग, मुक्ति तथा ब्रह्म निर्वाण है। यह स्पर्श अनुभव की संभूति ऋद्धिसिद्धियों का भण्डार है। यह रूप अनुभव देवताओं का साक्षात्कार अनुग्रह एवं वरदान है। यह सब वाक् शक्ति की ही प्रतिक्रिया—प्रतिध्वनि है।

वाक्, रूप, रस, गंध, स्पर्श का अनुभव करता है। शब्द रूपी आकाश से ही वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्त्व का आविर्भाव हुआ है इसी से वाक् को विश्व रूपिणी—बहु रूपिणी और देव शक्तियों की उसे अधिष्ठात्री कहा जाता है। अग्नि भू लोक है। वायु—भुवः लोक और वरुण स्वःलोक। बैखरी जब मन्त्र साधन द्वारा सूक्ष्म होती चलती है तो तीनों लोकों पर उसका अधिकार होता चला जाता है। लोक लोकान्तर में जो कुछ विद्यमान है उसके सम्बन्धित होती है—प्रभावित करती, नियन्त्रण रखती है और संचालन करती है परिष्कृत परावाक्। जिह्वा से उच्चारित बकवास में प्रयुक्त होती रहने वाली प्रक्रिया जब उलट कर मन्त्र साधना में लगती है तब वह शक्ति रूप होती है। शक्ति भी ऐसी जिसकी परिधि में वह सब कुछ आ जाता है जिसे अद्भुत एवं महान कह सकते हैं।

यह परिष्कृत वाक् जब यज्ञाग्नि से संयुक्त होती है तब उसकी प्रचण्ड शक्ति को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। घृत को अग्नि में डालते ही उसकी परिणति ज्वाला के रूप में होती है। परावाक् जब यज्ञ कर्मों में जुटती है तो उसकी दीप्ति से अन्धकार में भटकता हुआ जगत् दिव्य आलोक का लाभ प्राप्त करता है और शोक-संतापों से छूट कर श्री, समृद्धि, शान्ति और प्रगति की ओर अग्रसर होता है। यज्ञ का सूक्ष्म रूप है—परमार्थ—लोक मंगल। जब साधना संतप्त वाक् को परमार्थ प्रयोजन में लगाया जाय तो सच्चे अर्थों में उसे ब्रह्मयज्ञ कहना चाहिए। ब्रह्म अग्नि में ब्रह्म हवि देने की चर्चा गीता में इस सन्दर्भ में की गई है। ऐसे ब्रह्म यज्ञ से सुख-शान्ति भर पर्जन्य बरसते हैं। चरु यज्ञों द्वारा भौतिक प्रयोजन पूरे होते हैं—भौतिक समृद्धि के मेघ

भी बरसते हैं पर श्रुति ने जिस पर्जन्य वर्षा की ओर संकेत किया है। उसे विश्व शान्ति और लोक कल्याण की उपलब्धियों के रूप में ही देखा समझा जाना चाहिए।

विश्वव्यापी स्थूल ऊर्जा विद्युत, चुम्बक, गर्मी, प्रकाश आदि के रूप में देखी जा सकती है। शक्ति के कम्पन परमाणु को प्रभावित करते हैं और उसके कारण दृश्य जगत की विभिन्न हलचलों का क्रिया-कलाप चलता है। जीवाणु भी किन्हीं दिव्य विद्युत शक्तियों से प्रभावित होते हैं। मानवी चेतना में जो दीप्तिमान अंश है उसे दिव्य सत्ता का स्पन्दन कहना चाहिए। यह स्पन्दन ब्रह्म सत्ता प्रवाहित भी होते हैं और आत्म सत्ता प्रवाहित भी। ईश्वर की इच्छा से यहाँ सब कुछ होता है। यह कहते हुए हमें यह भी समझना होगा कि आत्म-सत्ता का परिष्कृत रूप ब्रह्म सत्ता ही है। निर्विकार—साक्षी और दृष्टा ब्रह्म संसार में इच्छा बनकर जो कुछ करता है वस्तुतः वह उसके समतुल्य आत्म सत्ता का ही प्रवाह होता है। मन्त्र तप से साधित परावाक् अपनी विशुद्धता एवं प्रखरता के कारण, ब्रह्म-इच्छा ही बन जाती है। उसके स्पन्दन जगत के जीवाणुओं को स्पन्दित करते हैं। तदनुसार लोक प्रवाह की दिशा बदल जाती है। देवदूत, अवतारी महामानव यही करते हैं। इनके कर्तृव्य ईश्वर की इच्छा-या इनकी इच्छा से ईश्वर का विधान जुड़ा देखा जा सकता है। सिद्ध तपस्वियों का यही स्थिति होती है। उनकी परावाक् उच्चारण का ही नहीं संचालन और नियन्त्रण का भी प्रयोजन पूरा करती है।

जिस तरह ब्रह्माण्ड का बीज पिण्डाण्ड है, उसी प्रकार व्यष्टि का विराट् रूप समष्टि भी है। व्यक्ति की सत्ता को ब्रह्माण्ड की परिस्थितियों द्वारा विनिर्मित माना जाता है। साथ ही यह भी कहा गया है कि बीज जैसा पिंड विकसित रूप में ब्रह्मांड बन जाता है। दोनों के बीच वृक्ष और बीज जैसा सम्बन्ध है। यह ठीक है कि बीज से वृक्ष बनता है पर यह भी गलत नहीं कि वृक्ष पर बीज उत्पन्न होता है ब्रह्मांड की परिस्थितियों ने व्यक्ति को बनाया पर व्यक्ति का चरम विकास भी विराट् ब्रह्मांड होता है। छोटा गुब्बारा फूलकर बड़ा बनता है। परावाक् उसी वायु का नाम है जो व्यक्ति जैसे छोटे गुब्बारे को फुलाकर विराट् बना देती है और ब्रह्म की तुलना में ला खड़ा करती है। परमाणु की शक्ति बड़ी है पर जीवाणु की शक्ति उससे भी बड़ी है। इन्जन बड़ा है पर ड्राइवर उससे भी बड़ा है परमाणु जिन शक्तियों से स्पन्दित होते हैं उन्हें स्पन्दन करने की क्षमता उस चेतनशक्ति में सन्निहित है जिसे जीवाणु की विराट्सत्ता कहा जा सकता है। श्रुति कहती है—

**विष्णुमुखा वै देवाइछन्दोभि रिमान्लोकानन पजय्यमभ्यजपन्।**

देवता विष्णु मुख हैं। वे छन्द रूप हैं। उन्होंने न हटाया जा सकने वाला हटाया है और न जीता जा सकने वाला जीता है। यह मन्त्रात्मा और विश्वात्मा की एकता प्रकट करने वाला प्रतिपादन है।

मन्त्रों के शब्दार्थ से उनकी महत्ता सम्बन्धित नहीं। कोई अति शक्तिशाली मन्त्र अर्थ की दृष्टि से अति सामान्य हो सकता है। कोई भाषा गीत ऐसी अभिव्यक्ति युक्त हो सकता है जो मन्त्रों में दृष्टिगोचर नहीं होती हो। पर इससे मन्त्र का महत्त्व कम नहीं होता। अभिव्यक्ति नहीं, मन्त्र की महत्ता उसकी शक्ति संरचना से समाविष्ट है। मन्त्रों को स्वर शास्त्र या ध्वनिशास्त्र माना जाना चाहिए। उसके उच्चारण से जो स्पन्दन गतिशील होते हैं उन्हीं में उनकी महिमा समाई हुई है। विभिन्न धर्मों में उनके परम्परागत मन्त्रों से ही उपासनायें तथा कर्मकांडात्मक प्रक्रियायें सम्पन्न होती हैं। इसमें शब्द विन्यास की ही प्रधानता है। अर्थ की दृष्टि से, उस शब्दावली को सामान्य अथवा स्वल्प सार भी कह सकते हैं।

मन्त्रों में चार शक्तियाँ मानी गई हैं (१) प्रामाण्य शक्ति (२) फल प्रदान शक्ति (३) बहुलीकरण शक्ति (४) आयातयामता शक्ति। इसका विवेचन महर्षि जैमिनी ने पूर्व मीमांसा में किया है। उनके कथनानुसार मन्त्रों की प्रामाण्य शक्ति वह है जिसके अनुसार शिक्षा, सम्बोधन, आदेश का समावेश रहता है। इसे शब्दार्थों से सम्बन्धित कह सकते हैं।

कुण्ड समिध, पात्र पीठ, आज्यचरु, हवि, पीठ आदि को अभिमन्त्रित करके उनके सूक्ष्म प्राणों को प्रखर करने का विधान, मन्त्रोच्चार, कर्मकांड, न्यास, ऋत्विजों का मनोयोग, ब्रह्मचर्य तप, आहार, आदि-विधि-विधान से मन्त्र की फलदायिनी शक्ति सजग होती है। सकाम कर्मों में मन्त्र की यही शक्ति विभिन्न क्रिया कृत्यों के सहारे सजग होती है और अभीष्ट प्रयोजन पूरे करती है।

तीसरी शक्ति है 'बहुलीकरण' अर्थात् थोड़े को बहुत बनाना। यज्ञ में होमा हुआ जरा-सा पदार्थ वायुभूत होकर समस्त विश्व में फैल जाता है। पानी के ऊपर जरा-सा

तेल डाल देने से पानी की सारी सतह पर फैल जाता है। तनिक सा विष सारे शरीर में फैल जाता है। उसी प्रकार साधक का शरीर, मन्त्रोच्चार एवं साधन में काम आने वाले अंग, जरा से होते हैं पर उनके घर्षण से उत्पन्न शक्ति, दियासलाई से निकलने वाली चिनगारी की तरह नगण्य होते हुए भी दावानल बन जाने की सामर्थ्य से ओत-प्रोत रहती है। एक व्यक्ति की मन्त्र साधना अनेक व्यक्तियों को तथा पदार्थों को परमाणु जीवाणुओं को प्रभावित करती है तो यह बहुलीकरण शक्ति ही काम कर रही होती है।

चौथी 'आयातयामता शक्ति किसी विशेष क्षमता सम्पन्न व्यक्ति द्वारा विशेष स्थान पर, विशेष व्यक्ति की सहायता से, विशेष उपकरणों के सहारे विशेष विधि-विधान के साथ मन्त्रोपासना करने पर विशेष शक्ति उत्पन्न होती है। विश्वामित्र और परशुराम ने गायत्री मन्त्र की साधना, विशेष प्रयोजन के लिए, विशेष विधि-विधानों के साथ की थी और उससे उन्होंने अभीष्ट परिणाम भी प्राप्त किये। दशरथ जी का पुत्रेष्ठि यज्ञ वशिष्ठ पूरा न करा सके तब शृंगी ऋषि ने उसे सम्पन्न कराया यह शृंगी ऋषि की अयातयामता शक्ति ही थी।

मन्त्र साधक का शरीर संयमी और मन एकाग्र होना चाहिए। बिखरती शक्तियों वाला साधक छूँछ होता है और वह मन्त्र तेज को अपने गर्भ में धारण नहीं कर सकता। रुग्ण स्त्री को गर्भपात होते रहते हैं वह स्वस्थ बालक को जन्म नहीं दे पाती यही गति असंयमी साधक की होती है। महाभारत की कथा है कि अश्वत्थामा और अर्जुन ने मन्त्र चालित 'सन्धान अस्त्र' छोड़े। उनकी भयंकरता को देखकर व्यासजी बीच में आ खड़े हुए और दोनों से अपने अस्त्र वापिस कर लेने को कहा। अर्जुन ने ब्रह्मचारी होने के कारण वापिस कर दिया पर अश्वत्थामा असंयमी होने के कारण असफल रहा।

शतपथ का एक उपाख्यान है नृमेघ और यरुच्छेप में विवाद हुआ कि दोनों में कौन सफल मांत्रिक है। नृमेघ के कण्ठ से धुँआ भर निकला पर यरुच्छेप ने मन्त्रोच्चार करके गीली लकड़ी में अग्नि प्रकट कर दी। उस पर यरुच्छेप ने कहा तू मन्त्रोच्चार भर जानता है मैंने उसकी आत्मा का साक्षात्कार किया है।

कौत्स मुनि ने मन्त्रों को अनर्थक माना है। अनर्थक का अर्थ यह है उनके अर्थ को नहीं ध्वनिप्रवाह को, शब्द गुन्थन को महत्त्व दिया जाना चाहिए। ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं आदि बीज मन्त्रों के अर्थ से नहीं ध्वनि से ही प्रयोजन सिद्ध होता है। नैषध चरित्र के १३ वें सर्ग में उसके लेखक ने इस रहस्य का और भी स्पष्ट उद्घाटन किया है। संगीत का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर जो असाधारण प्रभाव पड़ता है उससे समस्त विज्ञान जगत परिचित है। एक नियत गति से शीशे के गिलास के पास ध्वनि की जाय तो वह टूट जायगा। पुलों पर चलते हुए सैनिकों को कदम मिलाकर चलने की ध्वनि नहीं करने दी जाती। उस तालबद्ध ध्वनि से पुल गिर सकता है। इंडेन में 'स्टोन हैव्ज' के पुराने अवशेष मध्यम स्वर बजने पर काँपने लगते हैं। इसलिये वहाँ न केवल बजाना वरन् गाना भी निषिद्ध है क्योंकि वह तालबद्धता उन अवशेषों को गिरा सकती है। इसी ध्वनि विज्ञान के आधार पर मन्त्रों की रचना हुई है। उनके अर्थों का उतना महत्त्व नहीं इसी से कौत्स मुनि ने उन्हें 'अनर्थक' बताया है।

अग्नि शक्ति का केन्द्र है। अग्नि का प्रयोग सीखकर ही मनुष्य इतना समर्थ बना है। अग्नि के भय से हिंसक सिंह, व्याघ्र तक भागते हैं। अग्नि से रेल चलती है, जहाज उड़ते हैं, कारखाने चलते हैं, अस्त्र चलते हैं, भोजन पकता है, बिजली बनती है, यदि अग्नि का अस्तित्व न हो तो जीवन ही न रहे। अग्नि का ही दूसरा नाम जीवन है। इसलिए मन्त्र साधना में अग्नि का उपचार सम्बद्ध किया जाता है। यज्ञशालाओं में अखंड अग्नि, जप में अखंड दीपक तथा अनुष्ठान की पूर्ति पर अनुपातिक यज्ञ करने का विधान है। विभिन्न पर्वों तथा धर्मानुष्ठानों के अवसर पर अग्निहोत्र की आवश्यकता इसीलिए है कि उस संदर्भ में प्रयुक्त होने वाली मंत्रशक्ति अपना समुचित चमत्कार दिखा सके।

## मंत्र साधना के आधार और चमत्कार

मन्त्र साधना भी यन्त्र साधना की तरह ही एक विशुद्ध विज्ञान है। यन्त्रों के सिद्धान्त, निर्माण, संचालन, सुधार में दक्षता प्रस्तुत करना ही यन्त्र विद्या का आधार है। यह प्रक्रिया ठीक रहे तो यन्त्रों की क्षमता से समुचित लाभ उठाया जा सकता है। पर यदि इन प्रकरणों में त्रुटि रहे तो मशीनें समय और धन की बर्बादी ही करती हैं। ठीक इसी प्रकार मंत्र साधना के सभी प्रयोग, प्रकरण सही हों तो उनका लाभ प्राप्त किया जा सकता है अन्यथा अधूरा और अस्त-व्यस्त साधना क्रम अपनाने पर निराशा और उपहास का ही भाजन बनना पड़ता है।

## ३.१७ गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

भौतिक विज्ञान बाह्य जगत को प्रभावित करता है और जड़ प्रकृति में सन्निहित शक्तियों को उपयोग योग्य बनाकर लाभकारी परिणाम उपस्थित करता है। अध्यात्म विज्ञान अन्तरंग क्षेत्र को प्रभावित करता है और चेतन प्रकृति को प्रदीप्त कर उससे सर्वसमर्थ व्यक्तित्व का निर्माण करता है। भौतिक विज्ञान सुख-साधनों का उत्पादन करता है। शरीर को अधिक सुविधाजनक स्थिति में रखने के आधार जुटाता है। यही उसकी परिधि है। अन्त:चेतना तक न तो उसकी पहुँच है और न उस स्तर की क्षमता ही वह उत्पन्न कर सकता है।

यह जगत जड़ और चेतन का सम्मिश्रण है। प्राण-धारियों के भीतर चेतना रहती है और बाहर पंच भौतिक कलेवर चढ़ा होता है। दोनों के सम्मिश्रण से ही प्राणि जगत ही विविध हलचलें दिखाई पड़ती हैं। नदी, पर्वत जैसे सर्वथा जड़ पदार्थों की बात अलग है—जहाँ चेतना है वहाँ इस बात की भी आवश्यकता अनुभव की जाती है कि वस्तुओं और शरीरों की तरह ही चेतना को भी स्वच्छ स्वस्थ और सुविकसित रखा जाय। इसी क्रिया-कलाप को अध्यात्म कहते हैं।

जड़ प्रकृति की शक्तियों का अधिकाधिक परिचय भौतिक विज्ञान ने सर्वसाधारण के लिए सुलभ किया है। अग्नि, विद्युत, ईथर, अणु-शक्ति तरंगें, चुम्बक आदि भौतिक शक्तियों का उपयोग कितना चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करता है यह सर्वविदित है। चेतन प्रकृति का स्तर और भी ऊँचा है। वस्तुत: चेतन का ही जड़ के ऊपर अधिकार है। जलयान कितना ही बड़ा क्यों न हो चेतन संचालक के बिना कुछ कर न सकेगा। अन्तरिक्ष में मानव रहित राकेट स्वसंचालित लगते भर हैं वस्तुत: उन्हें भी धरती पर बैठे हुए वैज्ञानिक ही दिशा देते और नियन्त्रण करते हैं। रेलगाड़ी कितनी ही कीमती क्यों न हो, जीवित ड्राइवर के बिना वह टूटी चट्टान की तरह निरर्थक है। प्राण के बिना शरीर का क्या उपभोग ? उपभोक्ता रहित सम्पदा तो समुद्र तल और भूगर्भ में न जाने कितनी दबी पड़ी है। महत्त्व उतनी का ही है जितनी कि चेतन प्राणी उसका उपयोग कर सके। जड़ पदार्थों की तरह जड़ विज्ञान भी तभी उपयोगी हो सकता है जब उसका चेतन प्राणी द्वारा नियन्त्रण एवं उपयोग किया जाय। तात्पर्य यह है कि जड़ की तुलना में चेतन का मूल्य महत्त्व अत्यधिक है। इसी अनुपात में भौतिक विज्ञान से अध्यात्म विज्ञान की महत्ता एवं उपयोगिता बढ़ी चढ़ी है।

भौतिक विज्ञान के प्रत्यक्षीकरण में प्रयुक्त होने वाले उपकरण 'यन्त्र' कहलाते हैं और आत्म विज्ञान से लाभान्वित होने के माध्यम 'मंत्र' कहे जाते हैं। यन्त्रों के बिना वैज्ञानिक तथ्यों से लाभ नहीं उठाया जा सकेगा। इसी प्रकार मन्त्र रहित अध्यात्म सिद्धान्त मात्र बनकर रह जायगा उसे प्रत्यक्ष न किया जा सकेगा।

समग्र विज्ञान को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक पिण्डव्यापी दूसरा ब्रह्माण्डव्यापी। एक अन्तरंग दूसरा बहिरंग। जिस प्रकार थ्योरी और प्रेक्टिस के आधार पर बहिरंग शिक्षा पद्धति चलती है उसी प्रकार अध्यात्म प्रगति के लिए आस्था और साधना दो माध्यम हैं। आस्था के अन्तर्गत नीति, धर्म, दर्शन, आत्म-ज्ञान, ब्रह्म एवं सूक्ष्म जगत का वर्णन विवेचन आता है। शास्त्रों में उसी का वर्णन है। आत्मबोध, लोक व्यवहार, चिन्तन परिष्कार को अध्यात्म 'निष्ठा' पक्ष में लिया जायगा। संयम, नियम, व्रत, तप, साधन प्रभृति क्रिया-कलापों को साधना माना जायगा। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरी अपूर्ण रह जायगी। ज्ञान कर्म के समन्वय से ही उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। ज्ञान के बिना कर्म और कर्म के बिना ज्ञान निर्जीव निष्प्राण रहेगा। तत्व दर्शन के बिना तपस्या और तप साधना के बिना तत्व दर्शन समग्र अध्यात्म का प्रयोजन पूरा नहीं कर सकते।

विश्वव्यापी ब्रह्म चेतना के साथ मनुष्य का सघन और सुनिश्चित सम्बन्ध है। पर उसमें मल आवरण विक्षेप जैसे अवरोधों ने एक प्रकार से विच्छेद जैसी स्थिति उत्पन्न करदी है। बिजली घर और कमरे के पंखे के बीच लगे हुए तारों में यदि कहीं गड़बड़ी उत्पन्न हो जाये तो पंखा और बिजली घर दोनों ही अपने-अपने स्थान पर वहीं रहते हुए भी सन्नाटा छाया रहेगा। पंखा चलेगा नहीं नि:चेष्ट पड़ा रहेगा। इन अवरोधों को साफ करना ही मन्त्र साधना का उद्देश्य है। नाली के प्रवाह में कोई रोड़ा आ जाय तो पानी इधर-उधर फैलेगा और नाली सूखी पड़ी रहेगी। यही बात हमारे जीवन प्रवाह में भी दृष्टिगोचर होती है। अन्न, जल पर जीवित रहने वाला शरीर तो अपना आहार प्राप्त करके गतिशील बना रहता है पर अन्त:चेतना की खुराक न मिलने से वह दिन-दिन दुर्बल एवं मरणासन्न होती चली जाती है। यही है हम सबकी आन्तरिक दयनीय दुर्दशा का कारण।

नव जात शिशु माता के दूध पर अवलम्बित रहता है। आत्मा का पोषण परमात्मा के साथ प्रत्यावर्तन बने

रहने पर ही होता है। बादल तभी बरसते हैं जब समुद्र से उन्हें भरपूर पानी मिले। यदि समुद्र से सम्बन्ध टूट जाय तो बादलों का बरसना तो दूर उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। तब केवल धूलिकण ही यदाकदा बदली बनकर घूमते दृष्टिगोचर होंगे। परमात्मा से सम्बन्ध टूट जाने पर आत्मा अपना वर्चस्व खो बैठती है, आत्म बल के लक्षण दिखाई नहीं पड़ते, महानता तिरोहित हो जाती है केवल काया कलेवर ही छिपकली की कटी हुई पूँछ की तरह उछल कूद करता रहता है। हममें से अधिकांश को शरीर मात्र बनकर जीना पड़ रहा है। आत्मा की गरिमा के वर्णित कोई चिह्न अपने में दीखते नहीं। इसे आत्मा और परमात्मा के बीच गतिरोध ही समझा जाना चाहिए। परित्यक्ता पत्नी की भाँति उस पर उदासीनता ही छाई रहती है।

साधना इन शिथिल सम्बन्धों को पुनः प्रतिष्ठापित करने की सुनिश्चित पद्धति है। मन्त्र साधन उसका कर्म पक्ष है। यों आत्म ज्ञान भी कम महत्त्व का नहीं, उसकी भी अपनी गरिमा है। फिर भी वह पूर्ण नहीं। कोई व्यक्ति विद्वान, ज्ञानी, दार्शनिक, शास्त्रज्ञ, वेदान्ती होने भर से आत्मबल सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिए उसे साधनात्मक कर्मकाण्ड अपनाने की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होगी। विश्व चेतना के साथ व्यक्ति चेतना को जोड़ने का यही मार्ग है। मंत्र साधन इसी राज मार्ग की तरह समझा जाना चाहिए।

मंत्र का प्रत्यक्ष रूप ध्वनि है। ध्वनि भी क्रमबद्ध—लयबद्ध और वृत्ताकार। एक क्रम से निरन्तर एक ही शब्द विन्यास का उच्चारण किया जाता रहे तो उसका एक गति चक्र बन जाता है। तब शब्द तरंगें सीधे चलने की अपेक्षा वृत्ताकार घूमने लगती हैं। रस्सी में पत्थर का टुकड़ा बाँधकर उसे तेजी से चारों ओर घुमाया जाये तो उसके दो परिणाम होंगे एक यह कि वह एक गोल घेरा जैसा दीखेगा। रस्सी और ढेले का एक स्थानीय स्वरूप बदलकर गतिशील चक्र के रूप में बदल जाना एक दृश्य चमत्कार है। दूसरा परिणाम यह होगा कि उस वृत्ताकार घुमाव से एक असाधारण शक्ति उत्पन्न होगी। इस तेज घूमते हुए पत्थर के छोटे टुकड़े से किसी पर प्रहार किया जाय तो उसकी जान ले सकता है। इसी प्रकार यदि उसे फेंक दिया जाय तो तीर की तरह सनसनाता हुआ बहुत दूर निकल जायगा। मन्त्र जप से यही होता है। कुछ शब्दों को एक रस, एक स्वर, एक लय के अनुसार बार-बार दुहराते रहने से उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें—सीधी या असाधारण नहीं रह जातीं। वृत्ताकार उनका घुमाया जाना अन्तरंग पिण्ड में तथा बहिरंग ब्रह्माण्ड में एक असाधारण शक्ति प्रवाह उत्पन्न करता है। उसके फलस्वरूप उत्पन्न हुए परिणामों को मन्त्र का चमत्कार कहा जा सकता है।

मन्त्रों का शब्द चयन योग विद्या में निष्णात तत्ववेत्ताओं से दिव्य चेतना एवं सघन अनुभूतियों के आधार पर किया होता है। यों उस शब्द विन्यास में कुछ प्रेरणाप्रद अर्थ और सन्देश भी होते हैं पर उनकी महत्ता उतनी नहीं, जितनी शब्द गुन्थन की। अर्थ की दृष्टि से भी उनसे भी अधिक भाव पूर्ण कविताएँ हैं और हो सकती हैं। फिर सूत्र जैसे छोटे मन्त्रों में उतनी विस्तृत भाव शृंखला भरी भी नहीं जा सकती जितनी मनःक्षेत्र को प्रभावित करने के लिए आवश्यक है। वस्तुतः मन्त्र की महत्ता उसके 'स्फोट' में है। स्फोट का अर्थ है ईश्वर तत्व में होने वाला ध्वनि विशेष का असाधारण प्रभाव। तालाब में छोटा ढेला फेंकने से थोड़ी और छोटी लहरें उत्पन्न होती हैं पर यदि बहुत ऊँचाई से बहुत जोर से कोई बहुत बड़ा पत्थर पटका जाय तो उसका शब्द और स्पन्दन दोनों ही अपेक्षाकृत बड़े होंगे और उसकी प्रतिक्रिया प्रतिध्वनि भी बड़ी लहरों के साथ दिखाई देगी। मन्त्र विद्या के सन्दर्भ में इसी को स्फोट कहा जाता है। इसकी तुलना बारूद, कारतूस विस्फोट से उत्पन्न ध्वनि के साथ, अथवा अणु बम फटने के साथ की जा सकती है। मन्त्र साधक को यह जानना और जताना पड़ता है कि स्फोट की कितनी मात्रा अभीष्ट है। असन्तुलित विस्फोट बन्दूक या तोप तक को फाड़ सकता है। असंगत साधना से लक्ष्य प्राप्त होना तो दूर उलटा अनिष्ट उत्पन्न हो सकता है।

मन्त्र की तीसरी धारा है लय। उसे किस स्वर में—किस प्रवाह में—उच्चारित किया जा रहा है इसे लय कहते हैं—साधारणतया मानसिक वाचिक और उपांशु नाम से लय की न्यूनाधिकता का वर्गीकरण किया जाता है। वेद मन्त्रों में इसे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते हैं। साम गान में सप्त स्वरों तथा उनके आरोह अवरोह को ध्यान में रखा जाता है। यह लय क्रम ही संगीत का मूल आधार है इसकी व्याख्या 'शब्द ब्रह्म' कह कर की जाती है। जानकारी का पता है कि शास्त्र सम्मत संगीत का शरीर और मन पर ही नहीं बाह्य वस्तुओं और परिस्थितियों पर भी प्रभाव पड़ता है। दीपक राग से बुझे

दीपक जलने, मेघ राग से वर्षा होने की कथा गाथाएँ सर्वथा अविश्वस्त नहीं हैं। संगीत के वृक्ष, वनस्पतियों, फसलों और दुधारू पशुओं पर होने वाले प्रभाव को वैज्ञानिक मान्यता मिल चुकी है। रोगों की निवृत्ति में संगीत की भूमिका निकट भविष्य में और भी अधिक मिलेगी और उसे चिकित्सा में प्रमुख स्थान मिलेगा। वैदिक और तांत्रिक मन्त्रों का सारा वाङ्मय लय तथ्य को अपने गर्भ में छिपाने बैठा है। किसी भी रीति से—किसी भी ध्वनि में मन्त्र साधना भावात्मक आकांक्षा भले ही पूरी करे उससे वैज्ञानिक लाभों का प्रयोजन पूरा न होगा।

चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है लकड़ी को नहीं। बिजली का प्रवाह भी धातु के तारों के सहारे ही चलता है। रबड़ आदि अधातु पदार्थों में बिजली नहीं दौड़ सकती। इसी प्रकार मन्त्र साधक को अपनी शारीरिक और मानसिक स्वच्छता एवं समर्थता के लिए प्रयास करते हुए अपना व्यक्तित्व इस योग्य बनाना पड़ता है कि अन्तरिक्ष से अवतरित होने वाला शक्ति प्रवाह धारण कर सकना सम्भव हो सके। राज योग से यम नियमों की साधना मानसिक परिष्कार के लिए और आसन प्राणायाम का अभ्यास शारीरिक सुव्यवस्था के लिए है। यदि इन आरम्भिक चरणों को पूरा न किया जाय तो फिर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की उच्च स्तरीय साधना सम्भव ही न होगी। आहार-विहार के प्रतिबन्ध—व्रत, संयम का विधान, व्यक्तित्व के परिष्कार के लिए ही है। स्वच्छ दर्पण में ही मुँह साफ दीखता है, साफ कपड़े पर ही ठीक से रंग चढ़ता है। यदि जीवन क्रम दुष्ट और दुराचारी बना रहे तो फिर मन्त्र साधना का कर्मकाण्ड कितना ही विधि विधान युक्त क्यों न हो उसका अभीष्ट परिणाम निकलेगा नहीं।

इसके अतिरिक्त पाँचवीं शर्त है—भाव भरी मनः स्थिति। इसे दूसरे शब्दों में श्रद्धा कह सकते हैं। जिस प्रकार भौतिक जगत की प्रमुख शक्तियों में विद्युत अग्रगन्य है उसी प्रकार आत्मिक जगत में सशक्त उपलब्धियाँ श्रद्धा की उत्कृष्टता पर निर्भर हैं। मनोविज्ञान-वेत्ता विचारों की क्षमता और संकल्प शक्ति का गुण गान मुक्त कण्ठ से करते रहे हैं। मनुष्य को उठाने गिराने और बनाने में निष्ठा एवं आस्था का महत्त्व असाधारण है। आत्मबल और मनोबल का चमत्कार सामान्य व्यक्ति को महामानव के रूप में परिणत कर देने में समर्थ होता है। संसार की महान घटनाओं की पृष्ठभूमि प्रचुर साधनों पर नहीं प्रचण्ड संकल्प शक्ति पर ही रखी गई है। सफलताओं का समग्र इतिहास दृढ़ निश्चय के साथ जुड़े हुए प्रचण्ड पुरुषार्थ की लेखनी से ही लिखा गया है। मैस्मरेज्म, हिप्नोटिज्म, क्लेरो वायेन्स, टैलेपैथी, आदि योग विद्या के छुटपुट खेल—संकल्प शक्ति की ही फुलझड़ियाँ हैं। इसी तथ्य को साधना का प्राण कह सकते हैं।

अविश्वासी और अन्यमनस्क व्यक्ति उपेक्षा और उदासीनता के साथ कोई साधन करते रहें तो चिरकाल व्यतीत हो जाने और लम्बा कष्ट साध्य अनुष्ठान कर लेने पर भी अभीष्ट लाभ न होगा। किन्तु यदि भाव भरी मनोभूमि में थोड़ा भी साधन विधान अटूट श्रद्धा विश्वास के साथ सम्पन्न किया जाय तो उसका परिणाम तत्काल दृष्टिगोचर होगा। संदिग्ध और आशंकाग्रस्त मनोभूमि मानसिक धरातल को बहुत ही उथला बनाये रखती है उससे कोई बड़े दैवी अनुदान सँजोये नहीं जा सकते। साधनात्मक विधि विधान का अपना महत्त्व है पर यह तथ्य ध्यान रखने योग्य है कि श्रद्धा को आत्मिक उपलब्धियों का 'प्राण' ही माना जायगा। प्राण रहित शरीर को कितना ही सँजोया सँभाला जाय उससे कुछ काम न बनेगा। भावना रहित मनोभूमि मरुस्थल के समान है जहाँ सफलता की हरी-भरी खेती लहलहाने का स्वप्न कदाचित ही सफल होता है। अस्तु साधना की सफलता चाहने वाले साधकों को अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति को श्रद्धा सिक्त ही बनाना पड़ता है।

आध्यात्म विज्ञान की गरिमा भौतिक विज्ञान से असंख्य गुनी बढ़ी-चढ़ी है। मन्त्र बहुमूल्य हो सकते हैं पर मन्त्रों की महत्ता से उन्हें तोला नहीं जा सकता। संसार की सम्पदायें—आत्मिक विभूतियों की तुलना में नगण्य हैं। जड़ और चेतन की गरिमा में जमीन आसमान जितना अन्तर है। इसे ध्यान में रखा जाय तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि हमें भौतिक सम्पदाओं के लिए ही लालायित नहीं रहना चाहिए वरन् आत्मिक विभूतियों को भी उपार्जित करना चाहिए। आत्मबल संग्रह करने के लिए कदम बढ़ाना सूर्य की ओर मुँह करके चलने के बराबर है। इससे सम्पत्ति रूपी छाया पीछे-पीछे चलेगी किन्तु यदि छाया की ओर मुँह करके दौड़ा जाय तो वह पकड़ में नहीं आयेगी और जितनी तेज दौड़ होगी वह भी आगे उतनी ही तेजी के साथ दौड़ती चली जायगी। विभूतिवान सम्पत्ति का लाभ अनायास ही उठा लेते हैं

जबकि सम्पत्तिवानों को भौतिक विक्षोभ और आत्मिक असन्तोष की दुहरी हानि उठानी पड़ती है।

मन्त्र साधना की सफलता के लिए साधक का उपयुक्त व्यक्तित्व निर्माण करना एक ऐसा कार्य है जिस पर जितना अधिक ध्यान दिया जाय उतना ही उत्तम है। शरीर के क्रिया-कलाप ऐसे हों, जिनसे इन्द्रिय शक्ति कलुषित एवं विकृत न होती हो। इस दृष्टि से इन्द्रिय निग्रह, संयम और सदाचार पर अत्यधिक जोर दिया जाना चाहिए। साथ ही भावनाओं की उत्कृष्टता मंत्र शक्ति में प्राण फूँकती है इस बात को भी ध्यान में रखा जाय। साधना के लक्ष्य एवं साधन विधान की यथार्थता एवं सफलता के बारे में मन सुनिश्चित और संशय रहित रहना चाहिए। इसके लिए सतत प्रयत्न करते रहने और तत्काल फल प्राप्ति के लिए उतावली न करने का धैर्य भी आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन की रीति-नीति एवं लोक व्यवहार में सौम्य, उदात्त एवं निर्मल दृष्टिकोण रहना चाहिए । स्नेह, सद्भावना, सज्जनता, करुणा एवं उदारता का अन्तःकरण में जितना अधिक समावेश होगा, उसी अनुपात में साधना की सफलता के लिए उपयुक्त मनोभूमि बनेगी। इस प्रकार का शारीरिक और मानसिक निर्माण आध्यात्मिक प्रगति की कुंजी समझी जानी चाहिए। साधक की सफलता का तीन चौथाई श्रेय इसी तथ्य पर निर्भर है। विधि विधान को तो एक चौथाई ही महत्त्व दिया जा सकता है। इन दिनों साधन पथ के पथिकों को जो असफलताजन्य निराशा ही हाथ लगती है उसका एक बहुत बड़ा कारण जीवन साधना की उपेक्षा और विधि विधान को ही सब कुछ मान बैठने की भूल है यदि यह भूल सुधार ली जाय और साधना के राज मार्ग पर चलने की सर्वाङ्गपूर्ण तैयारी की जाय तो उसकी सफलता भी उतनी ही निश्चित है जितनी सही ढंग से किये गये भौतिक विज्ञान सम्बन्धी क्रिया-कलापों की।

साधन विधान के अन्य माध्यम भी हैं पर मंत्र साधना सर्वत्र अनिवार्य है। कारण कि इससे संकल्प शक्ति जागृत एवं नियन्त्रित होती है, साथ ही शब्द विज्ञान का ऐसा सुन्दर सुयोग भी जुड़ता है जो साधक की प्रसुप्त किन्तु अति अद्भुत शक्तियों को जागृत कर उसे आत्मबल सम्पन्न बनाता है। और बाह्य जगत को प्रभावित करने की रहस्यमयी हलचलों का सृजन करता है।

मंत्र क्या है इसके बारे में आज की स्थिति, सार्वभौम और सर्वजनीन दृष्टि से कुछ कह सकना कठिन है कारण यह है कि इन दिनों साम्प्रदायिक पक्षपात और पूर्वाग्रहों का बोलबाला है। हर सम्प्रदाय अपनी परम्परा को प्रधानता देता है। अन्य मत वालों की बात उसे गले नहीं उतरती। किसी प्रकार समझा भी दिया जाय तो श्रद्धा नहीं जमती। ऐसी दशा में सामयिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए मंत्र विद्या के प्रख्यात ग्रन्थ "मंत्रमहार्णव" के अनुसार यही कहना ठीक होगा कि मंत्र की प्रत्यक्ष रूप ध्वनि है। ध्वनि भी क्रमबद्ध, लयबद्ध और वृत्ताकार। एक क्रम से निरन्तर एक ही शब्द विन्यास का उच्चारण किया जाता रहे तो उसका एक गति चक्र बन जाता है। तब शब्द तरंगें सीधी चलने की अपेक्षा वृत्ताकार घूमने लगती हैं। रस्सी में पत्थर का टुकड़ा बांधकर उसे तेजी से चारों ओर घुमाया जाय तो उससे दो परिणाम होंगे। एक यह कि वह गोल घेरा जैसा दिखेगा। रस्सी और ढेले का गतिशील चक्र में बदल जाना एक दृश्य चमत्कार है। दूसरा परिणाम यह होगा कि उस वृत्ताकार घुमाव से एक असाधारण शक्ति उत्पन्न होगी। इसी प्रकार यदि उसे फेंक दिया जाय तो तीर की तरह सनसनाता हुआ बहुत दूर निकल जायगा। मंत्र जप से यही होता है। कुछ शब्दों को एक रस एक स्वर एक लय के अनुसार बार-बार दुहराते रहने से उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें-सीधी या साधारण नहीं जातीं। वृत्ताकार उनका घुमाया जाना अन्तरंग पिण्ड तथा बहिरंग ब्रह्माण्ड में एक असाधारण शक्ति प्रवाह उत्पन्न करता है। उसके फलस्वरूप उत्पन्न हुए परिणाम को मंत्र का चमत्कार कहा जा सकता है।

महायोगी अनिर्वाण के ग्रंथ 'अन्तरयोग' के अनुसार मन्त्रों का शब्द चयन योग विद्या में निष्णात् तत्ववेत्ताओं ने दिव्य चेतना एवम् सघन अनुभूतियों के आधार पर किया है। यों इन शब्द विन्यासों में कुछ प्रेरणाप्रद अर्थ और सन्देश भी होते हैं पर उनकी महत्ता उतनी नहीं जितनी शब्द गुन्थन की। अर्थ की दृष्टि से भी उनसे भी अधिक भावपूर्ण कविताएँ हैं और हो सकती हैं। फिर सूत्र जैसे छोटे मन्त्रों में उतनी विस्तृत भाव श्रृंखला भरी भी नहीं जा सकती जितनी आवश्यक है। वस्तुतः मंत्र की महत्ता उसके "स्फोट" में है।

"स्फोट" का मतलब है ईश्वर तत्त्व में होने वाला ध्वनि विशेष का असाधारण प्रभाव। तालाब में छोटा

ढेला फेंकने से थोड़ी और छोटी लहरें उत्पन्न होती हैं। पर यदि बड़ी ऊँचाई से बहुत जोर से कोई बड़ा पत्थर पटका जाय तो उसका शब्द और स्पन्दन दोनों ही अपेक्षाकृत बड़े होंगे और उसकी प्रतिक्रिया प्रतिध्वनि भी बड़ी लहरों के साथ दिखाई देगी। मंत्र विद्या के सम्बन्ध में इसी को स्फोट कहा जाता है। इस दृष्टि से गायत्री मंत्र की शब्द संरचना अनुपम और अद्‌भुत है। आगम और निगम का समस्त भारतीय अध्यात्म इसी पृष्ठभूमि पर खड़ा है। मंत्र और तंत्र की अगणित शाखा प्रशाखाएँ इसी का विशाल परिवार है। मंत्र की अगली धारा है लय। उसे किस स्वर में किस प्रवाह में उच्चरित किया जा रहा है इसे लय कहते हैं। साधारणतया मानसिक, वाचिक, उपांशु नाम से लय की न्यूनाधिकता का वर्गीकरण किया जाता है। वेद मंत्रों में इसे उदात्त अनुदात्त और स्वरित कहते हैं। सामगान में सप्त स्वरों तथा उनके आरोह-अवरोह को ध्यान में रखा जाता है। यह लय क्रम ही संगीत का शरीर और मन पर ही नहीं बाह्य वस्तुओं और परिस्थितियों पर भी प्रभाव पड़ता है। वैदिक और तांत्रिक मंत्रों का सारा वाङ्‌मय लय तथ्य को अपने गर्भ में छिपाए बैठा है। किसी भी रीति से किसी भी ध्वनि में मंत्र साधना की भावात्मक आकांक्षा भले पूरी कर लें पर उससे वैज्ञानिक लाभों का प्रयोजन पूरा न होगा।

मंत्र साधक अन्तरिक्ष से अवतरित होने वाले शक्ति प्रवाह को धारण कर सकें, इसके लिए शारीरिक, मानसिक स्वच्छता और समर्थता के लिए प्रयास करना अनिवार्य है। राजयोग में यम-नियमों की साधना मानसिक परिष्कार के लिए और आसन-प्राणायाम का अभ्यास शारीरिक सुव्यवस्था के लिए है। यदि इन आरम्भिक चरणों को पूरा न किया जाय तो फिर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की उच्चस्तरीय साधना में प्रवेश पा सकना सम्भव नहीं।

इसके अतिरिक्त अगली शर्त है-भाव भरी मनः स्थिति। इसे दूसरे शब्दों में श्रद्धा कहा जा सकता है। अविश्वासी और अन्यमनस्क व्यक्ति उपेक्षा और उदासीनता के साथ कोई साधना करते रहे तो चिरकाल व्यतीत हो जाने और लम्बा कष्ट साध्य अनुष्ठान कर लेने पर भी अभीष्ट लाभ की गुंजाइश नहीं है। श्रद्धा आत्मिक उपलब्धियों का प्राण है। प्राण रहित शरीर की कितनी ही सार-सँभाल की जाय उससे कुछ काम न बनेगा। साधना की सफलता के लिए जरूरी है साधक की प्रकृति और प्रवृत्ति श्रद्धासिक्त बने।

मन्त्र साधन के सन्दर्भ में पिछले पृष्ठों पर चर्चा की जा चुकी है और जप का प्रयोजन समझाया जा चुका है। श्रद्धा और एकाग्रता युक्त मनोभूमि में स्वच्छ शरीर, मन, वस्त्र स्थान और उपकरणों का ध्यान रखते हुए किया हुआ जप तुरन्त स्फूर्ति प्रदान करता है और जिस प्रकार चाय आदि उत्तेजक पदार्थ पीने पर तत्काल फुरती दिखाई पड़ती है वैसा ही अनुभव साधना काल एवं उसके उपरान्त होता है। लगता है कुछ अतिरिक्त और महत्त्वपूर्ण शक्ति कहीं से मिलती है और वह अपेक्षाकृत अधिक आत्म बल सम्पन्न बना है। हर्ष, सन्तोष और प्रकाश के रूप में मंत्र की उपलब्धि को सहज ही परखा जा सकता है। कहना न होगा कि इसका लाभ अपने तक ही सीमित नहीं रहता। उसका प्रभाव बाह्य जगत पर भी पड़ता है। किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति को इस उपलब्धि से प्रभावित और परिवर्तित किया जा सकता है। सिद्धि इसी का नाम है।

स्वामी रामतीर्थ ने एक बार कहा था—ईश्वर बना जा सकता है उसे देख या दिखाया नहीं जा सकता। सूक्ष्म तत्त्व के बारे में भी यही बात है। ईथर तत्त्व में शब्द प्रवाह के संचार को रेडियो यंत्र अनुभव करा सकता है पर 'ईथर' को उसके असली रूप में देखा जा सकना सम्भव नहीं। गर्मी, सर्दी, सुख, दुख की अनुभूति होती है उन्हें पदार्थ की तरह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। मंत्र में उच्चारित शब्दावली मंत्र की मूल शक्ति नहीं वरन् उसको सजग करने का उपकरण है। किसी सोते को हाथ से झकझोर कर जगाया जा सकता है। पर यह हाथ 'जागृति' नहीं। अधिक से अधिक उसे जागृति का निमित्त होने का श्रेय ही मिल सकता है। मंत्रोच्चार भी अन्तरंग में और अन्तरिक्ष में भरी पड़ी अगणित चेतन शक्तियों में से कुछ को जागृति करने का एक निमित्त कारण भर है।

किस मन्त्र से किस शक्ति को, किस आधार पर जगाया जाय इसका संकेत हर मन्त्र के साथ जुड़े हुए विनियोग में बताया जाता है। वैदिक और तांत्रिक सभी मन्त्रों का विनियोग होता है। आगम और निगम शास्त्रों में मन्त्र विधान के साथ ही उसका उल्लेख रहता है। जप तो मूल मन्त्र का ही किया जाता है पर उसे आरंभ करते समय विनियोग को पढ़ लेना अथवा स्मरण कर लेना आवश्यक होता है। इससे मन्त्र के स्वरूप और लक्ष्य के प्रति साधना

काल में जागरूकता बनी रहती है और कदम सही दिशा में बढ़ता रहता है ।

मन्त्र विनियोग के पाँच अंग हैं—(१) ऋषि (२) छन्द (३) देवता (४) बीज (५) तत्त्व । इन्हीं से मिलकर मन्त्र शक्ति सर्वांगपूर्ण बनती है । पंच तत्त्वों के सम्मिश्रण से विभिन्न शरीर और पदार्थ बनते हैं । इसी प्रकार विनियोग के पाँच अंग उसे प्रत्यक्ष और सजीव बनाने वाले आधार माने जाते हैं । हमारे सूक्ष्म शरीर की पाँच परतें हैं इन्हें आवरण या कोश भी कहते हैं । प्याज के भीतर जिस तरह परतें होती हैं हमारी अन्त: चेतना में भी वैसी ही हैं उन्हें (१) अन्नमय कोश (२) प्राणमय कोश (३) मनो मय कोश (४) विज्ञान मय कोश, और (५) आनन्द मय कोश कहते हैं । इन्हें पाँच शक्ति भण्डार भी कह सकते हैं । पृथ्वी पर जैसे पाँच महाद्वीप हैं उसी प्रकार चेतन सत्ता को स्थूल एवं सूक्ष्म प्रकृति की मनुष्य काया में इन पाँच माध्यमों से देखा समझा-जा सकता है । मन्त्र विनियोग के पाँचों अंग ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्त्व इन पाँचों आधारों को प्रस्फुटित, प्रदीप्त एवं प्रयुक्त कैसे किया जाय इसका पथ प्रदर्शन करते हैं । अस्तु किसी मन्त्र की साधना करते हुए उसके विनियोग भाग को भी जानना समझना और अपनाना आवश्यक है ।

'ऋषि' तत्त्व का संकेत है—मार्ग दर्शक गुरु । ऐसा व्यक्ति जिसने उस मन्त्र में पारंगतता प्राप्त की हो सर्जरी, संगीत जैसे क्रिया-कलाप अनुभवी शिक्षक ही सिखा सकता है । पुस्तकीय ज्ञान से नौकानयन नहीं सीखा जा सकता इसके लिए किसी मल्लाह का प्रत्यक्ष पथ प्रदर्शन चाहिए । चिकित्सा ग्रन्थ और औषधि भण्डार उपलब्ध रहने पर भी चिकित्सक की आवश्यकता रहती है । विभिन्न मनोभूमियों के कारण साधना पथिकों के मार्ग में भी कई प्रकार के उतार-चढ़ाव आते हैं, उस स्थिति में सही निर्देशन और उलझनों का समाधान केवल वही कर सकता है जो उस विषय में पारंगत हो । गुरु का यह कर्त्तव्य भी हो जाता है कि शिष्य को न केवल पथ प्रदर्शन करे वरन् उसे अपनी शक्ति का एक अंश अनुदान देकर प्रगति पथ को सरल भी बनाये । अस्तु ऋषि का आश्रय मन्त्र साधना की प्रथम सीढ़ी बताई गई है ।

छन्द का अर्थ है—लय । काव्य में प्रयुक्त होने वाली पिंगल प्रक्रिया के आधार पर भी छन्दों का वर्गीकरण होता है, यहाँ उसका कोई प्रयोजन नहीं । मन्त्र रचना से काव्य प्रक्रिया अनिवार्य नहीं है । फिर यदि हो भी तो उसके जानने न जानने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं । यहाँ लय को ही छन्द समझा जाना चाहिए किस स्वर में किस क्रम से, किस उतार-चढ़ाव के साथ मन्त्रोच्चारण किया जाय यह एक स्वतंत्र शास्त्र है सितार में तार तो उतने ही होते हैं, उँगलियाँ चलने का क्रम भी हर वादन में चलता है, पर बजाने वाले का कौशल तारों पर आघात करने के क्रम में हेर-फेर करके विभिन्न राग रागनियों का ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करता है । मानसिक, वाचिक, उपांशु, उदात्त, अनुदात्त स्वरित ही नहीं मन्त्रोच्चार के और भी भेद प्रभेद हैं जिनके आधार पर उसी मन्त्र द्वारा अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं ।

ध्वनि तरंगों के कम्पन इस लय पर ही निर्भर हैं । साधना विज्ञान में इसे यति कहा जाता है । मन्त्रों की एक यति सब के लिए उचित नहीं । व्यक्ति की स्थिति और उसकी आकांक्षा को ध्यान में रखकर यति का-लय का-निर्धारण करना पड़ता है । साधक को उचित है कि मन्त्र साधना में प्रवृत्त होने से पूर्व अपने लिये उपयुक्त छन्द की लय का निर्धारण करले ।

विनियोग का तीसरा चरण है-देवता ? देवता का अर्थ है-चेतना सागर में से अपने अभीष्ट शक्ति प्रवाह का चयन । आकाश में एक ही समय में अनेक रेडियो स्टेशन बोलते रहते हैं पर हर एक की फ्रीक्वेन्सी अलग होती है । ऐसा न होता तो ब्राडकाष्ट किये गये सभी शब्द मिलकर एक हो जाते । शब्द धाराओं की पृथकता और उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के पृथक माध्यमों का उपयोग करके ही किसी रेडियो सेट के लिए यह संभव होता है कि अपनी पसंद का रेडियो प्रोग्राम सुने और अन्यत्र में चल रहे प्रोग्रामों को बोलने से रोक दें । निखिल ब्रह्माण्ड में ब्रह्म चेतना की अनेक धाराएँ समुद्री लहरों की तरह अपना पृथक अस्तित्व लेकर भी चलती हैं । भूमि एक ही होने पर भी उसमें परतें अलग-अलग तरह की निकलती हैं । समुद्रीय अगाध जल में पानी की परतें तथा असीम आकाश में वायु से लेकर किरणों तक की अनेक परतें होती हैं । इसी प्रकार ब्रह्म चेतना के अनेक प्रयोजनों के लिए उद्‌भूत अनेक शक्ति तरंगें निखिल ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होती रहती हैं । उनके स्वरूप और प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए ही उन्हें देवता कहा जाता है । साकार उपासना पक्ष इनकी अलंकारिक प्रतिमा भी बना लेता है और निराकार पक्ष प्रकाश किरणों के रूप में उसको पकड़ता है । सूर्य की सात रंग की किरणों में से हम जिसे

चाहें उसे रंगीन शीशे के माध्यम से उपलब्ध कर सकते हैं। एक्स रे मशीन अल्ट्रावायलेट उपकरण आकाश में से अपनी अभीष्ट किरणों को ही प्रयुक्त करते हैं। हंस दूध पीता है, पानी छोड़ देता है। इसी प्रकार किस मन्त्र के लिए ब्रह्म चेतना की किस दिव्य तरंग का प्रयोग किया जाय इसके लिए विधान निर्धारित है। स्थापन, पूजन, स्तवन आदि क्रियाएँ इसी प्रयोजन के लिए होती हैं। निराकारी साधक ध्यान द्वारा उस शक्ति को अपने अंग प्रत्यंगों में तथा समीपवर्ती वातावरण में ओत-प्रोत होने की भावना करते हैं। किस के लिए देव सम्पर्क का क्या तरीका ठीक रहेगा यह निश्चय करके ही मन्त्र साधक को प्रगति पथ पर अग्रसर होना होता है।

बीज का अर्थ है उद्‌गम। मानवी काय कलेवर में विभिन्न शक्तियों के लिए विभिन्न स्थान निर्धारित हैं। षट चक्रों १०८ उपव्यिकाओं, सहस्र शक्ति नदियों का निर्धारित स्थान है। उन स्थानों को शक्ति सम्पर्क के स्विच बोर्ड कह सकते हैं। स्विच दबाने पर बत्ती जलने लगती है। किसी मन्त्र के देवता का शरीर में सम्पर्क स्थान कहाँ है और उसे किस विधि से प्रभावित किया जाय इसी जानकारी को बीज विज्ञान कहते हैं। ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हुँ, यं, वं, रं, लं आदि बीज अक्षर भी हैं जिन्हें किसी मन्त्र में अतिरिक्त शक्ति भरने का सूक्ष्म इन्जेक्शन कह सकते हैं । आवश्यकतानुसार मन्त्रों के साथ इन अतिरिक्त बीजों को भी जोड़ दिया जाता है। गायत्री मन्त्र और मृत्युंजय मन्त्र में इसी आधार पर कई बीज उलट पुलट कर लगाये जाते हैं। यद्यपि उन्हें लगना अनिवार्य नहीं पर मन्त्र के उद्‌गम स्थान को तो जानना ही चाहिए। टेलीफोन के डायल को घुमा कर अभीष्ट नम्बर से बातें की जा सकती हैं। बीज स्थान और बीज शक्ति का प्रयोग करके मन्त्र को समर्थ बनाने वाली ब्रह्म चेतना के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है और उसका समुचित लाभ उठाया जा सकता है।

तत्त्व को मन्त्र की कुंजी कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में इसे लक्ष्य भी कहा जा सकता है। अक्सर साधना करने से पूर्व संकल्प पढ़े जाते हैं। उनमें यह प्रतिज्ञा रहती है कि इस साधना का उद्देश्य क्या है। इसके माध्यम से हमें जाना कहाँ है-और प्राप्त करना क्या है ? स्थूल रूप से पंच तत्त्वों, एवं तीन गुणों के रूप में भी मंत्रों की प्रवृत्ति मिलती रहती है और उस तत्व के अनुरूप पूजा उपकरण इकट्ठे करके भी तत्त्व साधना की जाती है।

आयुर्वेदशास्त्र में वस्तुओं के स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृतियों का वर्णन है। सामान्य तथ्य अन्न का स्थूल भाग रक्त माँस बनता है, सूक्ष्म भाग से बुद्धि और मन: चेतना विकसित होती है और कारण प्रभाव से अन्तरात्मा का पोषण मिलता है। योगशास्त्र में आहार का सात्विक राजस, तामस वर्गों में वर्गीकरण किया गया है। मनुष्यों के तीन शरीर होते हैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण। इसी प्रकार हर वस्तु के अन्तराल में उपरोक्त प्रकृतियों की न्यूनाधिकता भरी रहती है। पेड़ों में से यज्ञ कार्य के लिए केवल वही प्रयुक्त होते हैं जिनकी सूक्ष्म और कारण शक्ति अभीष्ट प्रयोजन में सहायक होती है। इसी आधार पर यह निर्माण निर्धारण किया जाता है कि किस मन्त्र की, किस उद्देश्य के लिए, किस स्थिति का व्यक्ति, साधना करे तो उसे आहार, वस्त्र, रहन-सहन, माला, दीपक, धूप, नैवेद्य आदि में किस प्रकार का चयन करना चाहिये। तत्त्व निर्धारण में इन्हीं बातों का ध्यान रखा जाता है।

दबी हुई प्रसुप्त क्षमता को प्रखर करने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। यंत्रों को चलाने के लिये ईंधन चाहिये। हाथ या पैर से चलने वाले यंत्रों के लिये न सही उन्हें चलाने वाले हाथ पैरों को काम करते रहने के लिये ऊर्जा की जरूरत रहती है। यह ताप मान जुटाने पर ही यन्त्र काम करते हैं। मन्त्रों की सफलता भी इसी ऊर्जा उत्पादन पर निर्भर है। साधना विधान का सारा कलेवर इसी आधार पर खड़ा किया गया है। आयुर्वेद में भी नाड़ी शोधन के लिये वमन, विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, नस्व यह पंच कर्म शरीर शोधन के लिये हैं। मंत्र साधन में व्यक्तित्व के परिष्कार के अतिरिक्त पाँच आधार—ऋषि, छंद, देवता, बीज, और तत्त्व हैं। जो इन सब साधनों को जुटा कर मंत्र साधन कर सके उसे अभीष्ट प्रयोजन की प्राप्ति होकर ही रहती है।

## मंत्रसाधना और उसकी रहस्यमयी शक्ति

योगी अरविन्द ने कहा है ग्रह नक्षत्रों की संरचना से लेकर विज्ञान के अनेकानेक रहस्यों का उद्घाटन करके निस्सन्देह मनुष्य ने बहुत बड़ी उपलब्धि प्राप्त की है। किन्तु यदि हमारे पास मनुष्य की आत्मा को समझ सकने वाला यन्त्र रहा होता तो प्रतीत होता कि उस महत्त्व के सामने पदार्थ विज्ञान की समस्त उपलब्धियाँ अत्यन्त ही नगण्य हैं।

मनुष्य की प्रकट और अप्रकट शक्तियों में से एक अति महत्त्वपूर्ण शक्ति है उसकी वाणी। वाणी के सहारे वह ज्ञानार्जन करता है, एक की जानकारी दूसरे को मिलती है और विविध विधि सांसारिक क्रिया-कलाप चलते हैं। वाणी रहित मनुष्य-समाज की कैसी गई-गुजरी स्थिति होती इसकी कल्पना मात्र से सिहरन उत्पन्न होती है। वाणी का भौतिक महत्त्व असन्दिग्ध है। दूसरों को मित्र और शत्रु बनाने का उल्लास और रोष उत्पन्न करने का जितना काम वाणी करती है उतना कर सकने वाला संसार में और कोई आधार नहीं है।

वाणी का आध्यात्मिक आधार और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। मंत्राराधना इसी प्रकार की रहस्यमयी प्रक्रिया है जिसके आधार पर मनुष्य की सर्वतोमुखी प्रगति और दूसरों की सहायता की पृष्ठभूमि बनती है। मन्त्रशक्ति के लाभ और प्रभाव से हम सभी परिचित हैं। यदि यह साधना ठीक प्रकार की जा सके तो उस रहस्यमयी शक्ति का प्रचुर परिमाण में उत्पादन किया जा सकता है जो मनुष्य के भौतिक और आत्मिक क्षेत्रों को आश्चर्यजनक सफलताओं से भर सकती है। मन्त्रशक्ति में चमत्कारों का प्रधान आधार है—शब्द। शब्द शक्ति का स्फोट। इसके साथ ही साधक की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थिति की पृष्ठभूमि जुड़ी हुई है। इन सब के समन्वय से ही वह प्रभाव उत्पन्न होता है जिसे मन्त्र शक्ति का चमत्कार कहा जा सके।

शब्दोच्चारण में जिह्वा, ओष्ठ, दाँत, तालु, कण्ठ, आदि मुख से सम्बन्धित कई अवयवों का संचालन होता है तब कहीं पूर्ण ध्वनि निकलती है। केवल जिह्वा का ही अवलम्बन हो तो मनुष्य भी पशु-पक्षियों की तरह थोड़ी सी ही ध्वनियों का उच्चारण कर सके। मन्त्रों का गठन शब्द विद्या के गूढ़ रहस्यों को ध्यान में रखकर किया गया है। उनके शब्दोच्चार से मुख अवयव ही गति नहीं करते वरन् उनकी हलचल सूक्ष्म शरीर के रहस्यमय केन्द्रों को भी प्रभावित करती हैं। षट चक्र, तीन ग्रन्थियों, तीन नाड़ियाँ, दश प्राण, चौवन उपत्यिकायें आदि को सूक्ष्म शरीर के अति महत्त्वपूर्ण संस्थान कहना चाहिये। उनको सक्रिय एवं जागृत बनाने में मन्त्र के अक्षरों का प्रवाह महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है।

टाइप राइटर यन्त्र की कुञ्जियों पर उँगली दबाते ही दूर रखे कागज पर तीलियाँ गिरनी आरम्भ हो जाती हैं और अक्षर छपने लगते हैं। हारमोनियम की कुञ्जियों पर उँगली रखते ही रीड़ खुलती हैं और स्वर गूँजने लगते हैं। ठीक यही प्रक्रिया मन्त्रोच्चार में होती है। मुख में होने वाली हरकत सूक्ष्म शरीर के विभिन्न शक्ति संस्थानों पर प्रहार करके उनमें विशिष्ट हलचल उत्पन्न करती है तदनुसार साधक की अन्तःसत्ता में जागरण एवं स्फुरण के ऐसे दौर आते हैं जिनके सहारे चमत्कारी दिव्य शक्तियाँ जागृत हो सकें और साधक व्यक्ति ऐसी विभूतियों से भर सकें जैसी कि सर्वसाधारण में नहीं पाई जातीं।

मोटेतौर से शब्द का प्रयोजन कर्णेन्द्रिय के माध्यम से कतिपय प्रकार की जानकारियाँ मस्तिष्क तक पहुँचाना भर समझा जाता है पर बात इतनी छोटी नहीं है। शब्द की शक्ति पर जितना गहरा चिन्तन किया जाय उतनी ही उसकी गरिमा और विलक्षणता स्पष्ट होती चली जाती है। बादलों की गरज से ऊँची इमारतें फट जाती हैं। आज की यांत्रिक सभ्यता जितना शोर उत्पन्न कर रही है उसके दुष्परिणामों से मानव जाति को पूरी न हो सकने वाली क्षति उठानी पड़ेगी। इस तथ्य से समस्त संसार चिन्तित है। अतिस्वन और जेट विमान आकाश में जितनी आवाज करते हैं उससे उत्पन्न होने वाली हानिकारक प्रतिक्रिया को सर्वत्र समझ रहा है और इन विशालकाय द्रुतगामी वायुयानों को कोलाहल रहित बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। यंत्र भी ऐसी कर्णातीत ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं जो आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित परिणाम उत्पन्न कर सकें।

मन्त्रों की विशेषता शब्दों के एक विशेष क्रम से चयन गुंथन में है। वे ध्वनि विज्ञान के एक विशेष नियम क्रम के अनुरूप गढ़े होते हैं जिनका एक ही प्रवाह से देर तक उच्चारण करने से एक विशेष स्तर की ऊर्जा उत्पन्न होती है। शब्दों के एक ही क्रम प्रवाह को लगातार जारी रखना अपने आप में एक अद्भुत प्रयोग है। हाथों को एक ही गति से रगड़ने पर वे बात ही बात में गरम हो जाते हैं। कुछ एक शब्दों को एक ही क्रम में—एक ही गति से एक ही स्वर से उच्चारित किया जाय तो उसकी प्रतिक्रिया से न केवल उस व्यक्ति का शरीर और मन वरन् समीपवर्ती वातावरण भी उत्तेजित हो जायगा। व्यक्ति में मन्त्र की प्रतिक्रिया की समुचित मात्रा उत्पन्न होना आवेश कहा जाता है। इनकी अनुभूति शरीर या मन में किसी विशेष स्फूर्ति, उत्साह एवं विश्वास के रूप में होती है। किसी-किसी को मन्त्र देवता का साक्षात्कार होता है और सफलता का आशीर्वाद सुनाई पड़ता है। यह स्थूल कानों

से स्थूल आँखों से नहीं होता वरन् पूर्णतया सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म इन्द्रियाँ ही उसकी अनुभूति करती हैं फिर भी कई बार उसमें इतनी प्रखरता होती है कि उस घड़ी स्थूल जैसा ही दर्शन या श्रवण अनुभव में आता है आवश्यक नहीं हर मन्त्र सिद्धि से हर किसी को श्रवण या दर्शन मिले, पर विश्वास और निष्ठा को परिपक्वता, उत्साह एवं मनोबल का अनुभव अवश्य होता है। सफलता व्यक्त करने वाली प्रसन्नता चेहरे पर और विजय उपलब्धि की चमक साधक की आँखों में चमकती हुई स्पष्ट देखी जा सकती है। इन सफलतासूचक अनुभूतियों को स्फोट कहा गया है।

मन्त्र की भाव भूमिका चुम्बकत्व उत्पन्न करती है और स्फोट उसे असंख्य गुना विस्तृत एवं सशक्त बनता हो। अणु का आरम्भिक विस्फोट सामान्य होता है उसके चारों ओर घिरा वातावरण ही गुणन शक्ति उत्पन्न करके उसे अति भयंकर बनाता है। यही प्रक्रिया मन्त्र में भी होती है मंत्र में सन्निहित भावना, कर्मकाण्ड के साथ जुड़ी श्रद्धा तप साधना से उत्पन्न, शब्द शक्ति का प्रचण्ड प्रवाह जैसी अनेकों रहस्यमयी मन्त्राराधन की विशेषतायें मन्त्र को जागृत करती हैं और निष्ठावान साधकों को सिद्ध मांत्रिक के स्तर पर ले जाकर पहुँचा देती है।

यहाँ एक बात और ध्यान रखने योग्य है कि मंत्राराधना में प्रयुक्त होने वाले हर उपकरण में पदार्थ में अवयव में दिव्य सत्ता का आह्वान करना पड़ता है और उसे सामान्य पदार्थ न रहने देकर देव आयुध के रूप में प्रतिष्ठापति करना पड़ता है। स्नान के जल में तीर्थों का, आत्मा का अवतरण कराने वाले मन्त्रों का उच्चारण जल में वरुण देव सहित अन्य देवों का आह्वान है। इस प्रकार श्रद्धासिक्त जल से स्नान करने पर साधक की निष्ठा में गहरा पुट लगता है। आसन, माला, पंचपात्र, दीपक, चन्दन पुष्प आदि उपकरणों के प्रयोग में मन्त्रोच्चारण एवं अमुकक्रम विधान अपनाने की जो परम्परा है उसे निरर्थक नहीं माना जाना चाहिए। यथाक्रम करने से वे सामान्य लगने वाली वस्तुयें उस विशेष चेतन स्तर की बनती हैं जिसकी कि मन्त्र प्रयोग में आवश्यकता है। इष्ट देव की प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा—षोडसोपचार पूजन जैसी व्यवस्थायें उसी दृष्टि से हैं कि गहन श्रद्धा का आरोपण उस पार्थिक प्रतीक को समर्थ सत्ता का प्रतिनिधि बनाकर प्रचण्ड प्रेरणा देने का प्रयोजन पूरा कर सके।

साधक को अपने अंग प्रत्यंग में न्यास मन्त्रों द्वारा विविध देव शक्तियों की प्रतिष्ठापना करनी पड़ती है। पवित्रीकरण, आचमन, प्राणायाम, न्यास का प्रयोजन सूक्ष्म स्थूल और कारण शरीरों को परिशुद्ध बनाता है। साधना विज्ञान का अभिमत है कि देव बनकर ही देवाराधन करनी चाहिए। शरीर और मन का परिमार्जन करने के लिए मन्त्र जप आरम्भ करने से पूर्व कई तरह के कर्मकाण्ड विधि-विधान करने होते हैं इनमें से बहुत से अपने में देव भाव की स्थापना के लिये होते हैं। यह प्रयोग साधन में प्रयुक्त होने पर उपकरणों की सफलता में सहायक रहने योग्य बनाते हैं।

ध्वनि की ऊर्जा विज्ञान सम्मत है। यदि श्रव्य-ध्वनि औडिवल साउण्ड-लगातार चालू रखी जाय तो उससे कुछ ही समय में पानी खौलने जितनी गर्मी पैदा हो जायगी।

मन्त्र से भावनायें और विचारणायें जुड़ी रहती हैं और एक ही विचारधारा को लगातार मस्तिष्क में स्थान देते रहने से वह चिन्तन विचार प्रक्रिया पर सवार हो जाता है और एक चिरंतन प्रवाह का रूप धारण करता है। यह मार्ग मस्तिष्कीय प्रशिक्षण एवं परिवर्तन की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। इससे मन को किसी विशेष भूमिका में रमण करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। विकृतियों को सुधारा जा सकता है और अभिरुचि तथा प्रकृति में परिवर्तन लाया जा सकता है। यह अर्थ चिन्तन को स्थान देते हुये मन्त्रानुष्ठान का सामान्य लाभ हुआ।

शब्दशक्ति का स्फोट मन्त्रशक्ति की रहस्यमय प्रक्रिया है। अणुविस्फोट से उत्पन्न होने वाली भयावह शक्ति की जानकारी हम सभी को है। शब्द की एक शक्ति सत्ता है। उसके कम्पन्न भी चिरन्तन घटकों के सम्मिश्रण से बनते हैं। इन शब्द कम्पन्न घटकों का विस्फोट भी अणु विखण्डन की तरह ही हो सकता है। मन्त्र योग साधना के उपचारों के पीछे लगभग वैसी ही विधि व्यवस्था रहती है। मन्त्रों की शब्द रचना का गठन तत्वदर्शी मनीषी तथा दिव्यदृष्टा मनीषियों ने इस प्रकार किया है कि उनका जपात्मक, होमात्मक तथा दूसरे तप साधनों एवं कर्मकाण्डों के सहारे अभीष्ट स्फोट किया जा सके। वर्तमान बोलचाल में विस्फोट शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है लगभग उसी में संस्कृत में स्फोट का भी प्रयोग किया जाता है। मन्त्राराधन वस्तुतः शब्दशक्ति का विस्फोट ही है।

शब्द स्फोट से ऐसी ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं जिन्हें कानों की श्रवण शक्ति से बाहर की कहा जा सकता है।

शब्द आकाश का विषय है। इसलिये मान्त्रिक का कार्यक्षेत्र आकाश तत्त्व रहता है। योगी वायु उपासक है। उसे प्राणशक्ति का संचय वायु के माध्यम से करना पड़ता है। इस दृष्टि से मान्त्रिक को योगी से भी वरिष्ठ कहा जा सकता है। सच्चा मान्त्रिक योगी से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही शक्तिशाली हो सकता है।

मन्त्राराधना में जहाँ शब्द शक्ति का विस्फोट होता है। विस्फोट में गुणन शक्ति है। मन्त्र में सर्वप्रथम देवस्थापन की सघन निष्ठा उत्पन्न की जाती है। यह भाव चुम्बकत्व है। श्रद्धा शक्ति के उद्भव का प्रथम चरण है। इस आरम्भिक उपार्जन का शक्ति गुणन करती चली जाती है और छोटा सा बीज विशाल वृक्ष बन जाता है। विचार का चुम्बकत्व सर्वविदित है। इष्ट देव की—मन्त्र अधिपति की शक्ति एवं विशेषताओं का स्तवन, पूजन के साथ स्मरण किया जाता है और अपने विश्वास में उसमें सर्वशक्तिसत्ता एवं अनुग्रह पर विश्वास जमाया जाता है। निर्धारित कर्मकाण्ड विधि विधान के द्वारा तथा तप साधना कष्टसाध्य तितीक्षा के द्वारा मन्त्र की गुह्य शक्ति के करतल गति हो जाने का भरोसा दीर्घकालीन साधना द्वारा साधक के मनः क्षेत्र में परिपक्व बनता है। यह सब निष्ठायें मिलकर मन्त्र की भाव प्रक्रिया को परिपूर्ण चुम्बकत्व से परिपूर्ण कर देती हैं।

मन्त्र से दो वृत्त बनते हैं एक को भाववृत्त और दूसरे को ध्वनि वृत्त कह सकते हैं। लगातार की गति अन्ततः एक गोलाई में घूमने लगती है। ग्रह नक्षत्रों का अपने-अपने अयन वृत्त पर घूमने लगना इसी तथ्य से सम्भव हो सका है कि गति क्रमशः गोलाई में मुड़ती चली जाती है। कोई मनुष्य नाक की सीध चलता ही चला जाय तो वह अन्ततः उसी स्थान पर आ जायगा जहाँ से कि चला था। ऐसा पृथ्वी की गोलाई के कारण होता है। पिण्ड ब्रह्माण्डों की गति तथा आकृति गोल है उसका कारण गतिशीलता है। पहाड़ों से टूटे शिला खण्ड नदी प्रवाह में बहते-बहते गोलाकार बनते जाते हैं और छोटे बनने वाले बालू कणों के रूप में परिणत हो जाते हैं।

मन्त्र जप में नियत शब्दों को निर्धारित क्रम से देर तक निरन्तर उच्चारण करना पड़ता है। जप यही तो है। इस गति प्रवाह के दो आधार हैं एक भाव और दूसरा शब्द। मन्त्र के अन्तराल में सन्निहित भावना का नियत निर्धारित प्रवाह एक भाववृत्त बना लेता है वह इतना प्रचण्ड होता है कि साधक के व्यक्तित्व को ही पकड़ और जकड़ कर उसे अपनी ढलान में ढाल लें। उच्चारण से उत्पन्न ध्वनिवृत्त भी ऐसा ही प्रचण्ड होता है कि उसका स्फोट एक घेरा डाल कर उच्चारणकर्त्ता को अपने घेरे में कस ले। भाव वृत्त अन्तरंग वृत्तियों को शब्द वृत्त बहिरंग प्रवृत्तियों पर इस प्रकार आच्छादित हो जाता है कि मनुष्य की उभयपक्षी चेतना को अभीष्ट स्तर का मोड़ा-मरोड़ा या ढाला जा सके। मंत्र विद्या को व्यक्तित्व का स्तर बदलने के लिये सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। कितने ही दोष दुर्गुण हटाये और मिटाये जा सकते हैं। सद्गुण, सत्कर्म और सत्स्वभाव के अभिवर्धन का लाभ मिल सकता है। शारीरिक और मानसिक रुग्णताओं से मुक्ति दिलाने में मंत्र विद्या का आशातीत उपयोग हो सकता है।

ज्ञानवृत्त और शब्दवृत्त दोनों ही अपने-अपने ढँग की शक्तियाँ संजोये हुये हैं। वे ऐसी भी हैं कि अन्यांय व्यक्तियों को तथा परिस्थितियों के प्रवाह को उलट पुलट सकें। विष्णु के हाथ में लगा हुआ चक्र सुदर्शन आत्मबल की प्रचण्ड क्षमता की ओर ही इंगित करता है। मन्त्र की वृत्त परिधियाँ दूसरों के मनः स्तर को बदलने में और परिस्थितियों के कारण बने हुये वातावरण को पलटने में भी चमत्कारी सफलता उत्पन्न कर सकती हैं।

चेतना का अनन्त सागर वृत्तियों आवृत्तियों और पुनरावृत्तियों की लहरों में लहलहा रहा है। इन्हीं के चक्रव्यूह में इच्छा, क्रिया और कर्मफल बनकर हमें कहीं से कहीं घसीटे फिरती है। इसी चक्र जाल को बेधन करके हम जीवन मुक्त बनते हैं। इसी भाव उन्मुक्त स्थिति का नाम आत्मसाक्षात्कार, आत्मानुभूति, आत्मज्ञान है। यही जीवन का परम लक्ष्य है। इस दिशा में चलने वाले को भवबाधाओं की झाड़ियाँ काटते हुए चलना पड़ता है। यह प्रयोजन भी मन्त्र विद्या द्वारा पूरा हो सकता है। मन को समझने से जिस तथ्य को वह हृदयंगम कर पाता उसे मन्त्रशक्ति का वृत्त, ट्रैक्टर या बुलडोजर के पहियों की तरह काटता चला जाता है।

मन्त्रानुष्ठानों में प्रायः अग्निहोत्र एक आवश्यक अंग होता है। सुगन्धित सामिग्री जलाकर वायु को सुवासित कर लेना अलग बात है और यज्ञानुष्ठान दूसरी। यज्ञानुष्ठान में प्रयुक्त होने वाली समिधा, हव्य सामिग्री, अग्नि चाहे जहाँ से चाहे जैसी नहीं ली जा सकती। उसके लिए पात्र चाहे जहाँ से नहीं लिये जा सकते हैं। उन्हें संकल्पित, अभिमन्त्रित एवं चिरपोषित होना चाहिए।

जिस वृक्ष को जिस डाली को समिधा के लिए प्रयुक्त करना है उसकी स्थिति और पवित्रता को परखना पड़ता है। शुभ घड़ी में शुद्धतापूर्वक उसे अभिमन्त्रित कुल्हाड़ी से काट कर लिया जाता है। उसे शुद्ध जल से धोने और छाया में सुखाने का विधान है। सूखी डाली को नियत लम्बाई मुटाई में यज्ञकर्ता ही काटते हैं और अग्नि में डालने से पूर्व उनमें फिर प्राण प्रतिष्ठा करते हैं तब कहीं वे लकड़ियाँ समिधा कहलाने योग्य बनती हैं जहाँ-तहाँ से ज्यों-त्यों लकड़ी लेकर हवन कुण्ड में झोंक देना तो ईंधन जलाने जैसा हुआ। उसके द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि में कोई चमत्कार नहीं देखा जा सकेगा।

अग्नि होत्र में प्रयुक्त होने वाले हव्य पदार्थों के बारे में भी यही बात है उन्हें विधान शृंखला के माध्यम से पवित्र बनाया जाना चाहिए। अग्नि को भी इसी प्रयोजन के लिए विधि साक्षी प्रज्ज्वलित करके कुण्ड में प्रतिष्ठापित किया जाना चाहिए। फोस्फोरस जैसे घृणित अस्थिसार एवं पोटास, गन्धक जैसे दुर्गन्ध युक्त पदार्थों से बनी माचिस की तीली से यदि कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित की जाय तो उससे अग्निदेव की पवित्र स्थापना का उद्देश्य पूरा न होगा। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पात्र अमुक काष्ठ के अमुक आकार प्रकार के बनने हैं यह झंझट अकारण नहीं है। होत्रा को स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहिन कर बैठना पड़ता है और अमुक अनुशासन में रहकर ही आहुति देने का क्रम पूरा करना पड़ता है। निर्धारित यज्ञ प्रक्रिया एवं मन्त्रोच्चार की विधि व्यवस्था को अपनाना पड़ता है। इन प्रयोजनों में स्वेच्छाचार वर्जित है। कारण कि यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उसमें विधि व्यवस्था का उल्लंघन न केवल श्रम को व्यर्थ बना देता है वरन् कई बार तो अवांछनीय प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है।

अग्निहोत्र की चर्चा यहाँ इसलिए की गई है कि वह भी मन्त्राराधन के अन्तर्गत ही आता है। उसी का एक विशेष प्रयोग है। यज्ञोच्चार के विभिन्न पक्षों में जिस प्रकार पवित्रता, सतर्कता रखी जाती है और भावसिक्त दिव्य प्रतिष्ठापना की जाती है उसी प्रकार मन्त्राराधन के प्रत्येक पक्ष में बरती जानी चाहिये—मात्र जप करने में ही जुट पड़ना और उसके साथ जुड़ी हुई पूर्वापरिसंगतियों को निरर्थक मानकर उपेक्षा करना ठीक न होगा।

## गायत्री साधना की सिद्धि का विज्ञान

शब्द का साधारण प्रभाव जानकारी देने तक सीमित रहता है। पैरों की चाप सुनकर अमुक प्राणी के आगमन का पता चल जाता है। बादलों की गड़गड़ाहट, पत्तों की खड़खड़ाहट, हवा की सनसनाहट सुनकर बिना देखे भी मौसम का अनुमान लगा लिया जाता है। मुख की आवाज सुनकर यह पता चलता है कि यह शब्द किस प्राणी का है और वह कहाँ है ? बात-चीत से घटनाओं, परिस्थितियों एवं समस्याओं की जानकारी मिलती है। सामान्यतया शब्दोच्चार जानकारी के आदान-प्रदान के लिए ही प्रयुक्त होता है। स्कूलों में, कारखानों में, यात्राओं में, व्यवसाय, कुटम्ब में, मित्रों में प्राय: इसी प्रकार का वार्तालाप होता पाया जाता है।

लेकिन शब्द केवल जानकारी ही नहीं देते वरन् उनका शरीर के विभिन्न बाह्य-अन्तर के अंगों पर बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जीभ से जो भी शब्द निकलते हैं उनका उच्चारण कंठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दंत, जिह्वा, कण्ठमूल आदि मुख के विभिन्न अंगों द्वारा होता है। इस उच्चारण काल में मुख जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु शरीर के अंगों तक फैलते हैं। इस फैलाव क्षेत्र में कई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ होती हैं जिन पर उस उच्चारण का दबाव पड़ता है। शरीर में अनेकों छोटी-बड़ी दृश्य-अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि उन कोणों में कोई विशेष शक्ति भण्डार छिपा रहता है। सुषुम्ना से सम्बद्ध षटचक्र प्रसिद्ध है ऐसी अगणित अनेकों ग्रन्थियाँ शरीर में हैं। विभिन्न शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन ग्रन्थियों का शक्ति भण्डार जागृत होता है। मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है। गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं। इनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रन्थियों को सतेज करती हैं। गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झंकार देता है। और उससे एक स्वर लहरी उत्पन्न होती है जिसका प्रभाव अदृश्य जगत के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर पड़ता है। यह प्रभाव ही गायत्री साधना के फलों का प्रधान हेतु है।

गायत्री मंत्र के उच्चारण से मुँह में जो क्रिया उत्पन्न होती है उससे कुछ ऐसी नाड़ियों का संचालन होता है जो शरीर के संस्थानों में उपस्थित बड़ी महत्त्वपूर्ण गुप्त ग्रन्थियों पर चोट करके उन्हें जगाती हैं। इस जागरण से वे ग्रन्थियाँ अपने अन्दर बड़ी ही महत्त्वपूर्ण ऐसी विशेषतायें उत्पन्न करती हैं जिन्हें शक्तियाँ या सिद्धियाँ कहते हैं। योगी लोग अन्य योगाभ्यासों द्वारा जिन ग्रन्थियों को जागृत करके सिद्धियाँ एवं शक्तियाँ प्राप्त करते हैं वे ही ग्रन्थियाँ गायत्री मन्त्र के विधिवत् उच्चारण

करते रहने से—जग में स्वयंमेव जागृत होती हैं। इस प्रकार गायत्री जप एक प्रकार की योग साधना ही सिद्ध होता है। सितार में कई तार होते हैं इनको बजाने के कई क्रम होते हैं। अमुक नम्बर के तार के बाद अमुक नम्बर का इतना हल्का या जोर से बजाने पर अमुक प्रकार की स्वर लहरी निकलती है। उस क्रम को बदलकर कोई और प्रकार के क्रम से उन तारों को बजाया जाय तो दूसरी स्वर लहरी निकलती है। इसी प्रकार मन्त्रों में जो अक्षर हैं उनके उच्चारण का क्रम भी शरीर में विशेष प्रकार की शक्तियों का संचार करता है। गायत्री मन्त्र की यही विशेषता महत्त्वपूर्ण है कि उस के अक्षरों का गुम्फन बड़े ही चमत्कारी और विज्ञान सम्मत ढंग से हुआ। एक के बाद एक अक्षर ऐसे क्रम से गुंथा हुआ है कि उनके उच्चारण से सितार में तारों की तरह अनायास ही एक आध्यात्मिक संगीत भीतर ही भीतर गूँजता है, जिसके गुंजन से आध्यात्मिक जगत की अनेकों पर्त अपने आप कमल पुष्प की तरह खुलती चली जाती हैं और उसका परिणाम जप करने वाले के लिए उच्चकोटि के योगाभ्यास की तरह बहुत ही मंगलमय होता है।

संगीत के प्रभाव का अध्ययन न करने के लिए अब तक जो अध्ययन हुए हैं, उनके भी चमत्कारी परिणाम सामने आये हैं। अमेरिकी डॉक्टर हचिंसन ने विविध संगीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की है, भारतवर्ष में तांत्रिक लोग थाली को घड़े पर रखकर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए, कण्ठमाला, विषवेल, भूतोन्माद आदि के रोगी बहुत अच्छे हो जाते हैं। कारण यह है कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का परिभ्रमण करते हुए अपने उद्गम केन्द्र पर कुछ ही क्षणों में लौट आते हैं तो उनमें अपने प्रकार की विशेष विद्युत शक्तियाँ भरी होती हैं और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उन शक्तियों का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। मन्त्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है। गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आविर्भाव होता है। मन्त्रोच्चारण में मुख के जो अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों के नाड़ी तन्तु कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं, उनमें स्फुरण होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक संगीत प्रवाह 'ईथर' तत्त्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में पूरी होने वाली विश्व परिक्रमा से वापिस आते-आते एक स्वजातीय तत्त्वों की सेना वापिस ले आता है जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी सहायक होती है। शब्द संगीत के शक्तिमय कम्पनों का पंच भौतिक प्रवाह और आत्मशक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की भावना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया सम्बन्ध, यह दोनों ही कारण गायत्री शक्ति को ऐसा बलवान बनाते हैं जो साधक के लिए दैवी वरदान सिद्ध होती है।

गायत्री मन्त्र को और भी सूक्ष्म बनाने वाला कारण है साधक का श्रद्धामय विश्वास। विश्वास की शक्ति से सभी परिचित हैं, जबकि अविश्वास के आधार पर लोग केवल भय की वजह से अकारण काल के मुख में चले गये और विश्वास के कारण मृत प्राय: लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया। रामायण में तुलसीदास जी ने 'भवानी शंकरौ वन्दे' श्रद्धा विश्वास रूपिणौ में गाते हुए श्रद्धा और विश्वास को भवानी शंकर की उपमा दी है।

मन्त्र जप एक प्रकार से शब्द विज्ञान की एक भाषा है तो भी भौतिक विज्ञान उसका उपयोग नहीं कर पाता उसका कारण और कुछ नहीं श्रद्धा संवेदना का वैज्ञानिक विश्लेषण न कर पाना है। आध्यात्म विज्ञान की बात करते समय इसी तथ्य को यह कह कर प्रकट किया जाता है कि साधक की श्रद्धा इष्ट में, उपास्य के प्रति उसका विश्वास जितना प्रगाढ़ होगा परमात्मा से मिलन की उसकी छटपटाहट—भक्ति जितनी तीव्रत्तर होगी मन्त्र का प्रभाव प्रतिफल उतनी ही जल्दी उपलब्ध होगा। कभी-कभी अनायास ही किसी-किसी के मुँह से निकले शब्द सच हो जाते हैं, शाप वरदानफलित हो जाते हैं। उसमें भी उस व्यक्ति की उस क्षण की भाव संवेदना ही प्रमुख होती है। साधारण अवस्था में जब व्यक्ति राग, द्वेष, मोह, ममता और अन्यान्य साँसारिक प्रयोजनों में लगा होता है तब किसी को कोस-कोस कर शाप देने से भी दूसरे का कुछ नहीं बिगड़ता उलटे वह अपनी ही स्थिति उपहासास्पद बना लेता है, "दुखिया को न सताइये जाकी मोटी हाय, मरी खाल की श्वांस सों सार भस्भ ह्वै जाय"— कबीर की इस उक्ति में यही सिद्धान्त कार्य करता है। जब सम्वेदनायें अपनी चरम अवस्था में उमड़ रही हों उस समय किसी दु:खी को पीड़ित करने से यह प्रतिफल कई लोगों को भुगतते आये दिन की जिन्दगी में देखा जा सकता है। इस आकास्मिक प्रभाव को ही मन्त्रसिद्धि द्वारा स्थायी बनाया जाता है। जिससे कभी भी

किसी भी समय किसी को लाभ पहुँचाया—सहायता की जा सकती है। समझा जाता है कि अब तक जितने भी शक्तिशास्त्रों का पता लगा है उनमें लैसर किरणें सबसे ज्यादा समर्थ और चमत्कारी हैं। अनुमान है कि यदि शब्द को इसके ऊपर चढ़ा दिया जाय तो व्यक्ति ब्रह्माण्ड के दूसरे छोर से बैठकर पृथ्वी के किसी घने जंगल में किसी गुफा के अन्दर बैठे हुए व्यक्ति से उसी तरह बात कर सकता है जैसे दो साथ बैठे व्यक्ति कर लेते हैं।

यह किरणें इतनी शक्तिशाली होती हैं कि एक फुट मोटी इस्पात की चादर में सेकण्ड के अरबवें हिस्से में ही छेद कर सकती हैं। आँख की पुतली में उसके लाखवें हिस्से में आपरेशन करना हो तो यह किरणें कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं "प्लैसर" किरणों को भविष्य की चिकित्सा का चमत्कार माना जा रहा है। एक दिन वह आ सकता है जब टी. बी. तथा कैंसर जैसे असाध्य रोगियों को एक लाइन में लगाकर रेल की टिकटें बेचने जितने समय में चंगा करके भेज दिया जाया करेगा। मन्त्र से भी ऐसी ही अपेक्षायें की जाती हैं। इसका यही अर्थ होता है मन्त्र की शक्ति सामर्थ्य किसी भी लेसर किरण से अधिक ही होनी चाहिये कम नहीं।

मन्त्र जप-प्रक्रिया में भी इसी तरह की शक्ति तरंगों का उत्पादन और समन्वय होता है। पर उसका प्रभाव साधक की अस्तव्यस्त मन:स्थिति के कारण दिखाई नहीं देता—"योग: चित्रवृत्तिश्चनिरोधा:" अर्थात् चित्त वृत्तियों को एकाग्र करना ही योग साधना का उद्देश्य है। पातजंलि योग दर्शन का यह सूत्र यह बताता है कि मन्त्र जप के साथ मन की बिखरी हुई शक्तियों को समेटना आवश्यक है। इसी से जप "सुपर कम्पोज" होता और शब्द की गति और तरंगें तीव्र गति धारण करती हैं यह शक्ति विद्युत चुम्बकीय क्षमता की तरह है। और प्रारम्भिक है। अन्तिम अवस्था तो मन्त्र के साथ भाव संवेदना का ही जुड़ना है।

भावनाओं की शक्ति मन की शक्ति से अनेक गुना अधिक है। परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ताओं को ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं। जब अत्यधिक संवेदना की स्थिति में पृथ्वी के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति तक बिना किसी वायरलेस टेलीफोन आदि के संदेश पहुँच जाता है। जब कि टेक्नालॉजी में आज तक शब्द तरंगों को नियन्त्रित किये बिना कभी भी यह संभव नहीं होता, यही कारण है कि रेडियो स्टेशन के प्रसारण रेडियो से सुने तो जा सकते हैं पर रेडियो वाला स्वयं रेडियो स्टेशन वाले को कुछ नहीं कह सकता। मन्त्र जप और भाव संवेदना की यह विशेषता उसे भौतिक उपार्जन से अधिक महत्त्वपूर्ण बनाती है। मन्त्र शक्ति केवल मात्र संसार के वातावरण को ही प्रभावित नहीं करती अपितु साधक के व्यक्तित्व में भी कम्पन पैदा करती है। उससे उसका व्यक्तित्व भी प्रखर प्रकाशवान बनता चला जाता है।

भावनाओं का विज्ञान समझ में न आता हो यह अन्यत्र बात है पर उनके अस्तित्व से कोई इनकार नहीं कर सकता, वह किन प्रकाश परमाणुओं का उत्पादन है, सम्भव है भविष्य में उसका पता चल सके, पर उनकी शक्ति सामर्थ्य दैनिक जीवन व्यापार में हर कोई देखता है। भावनाओं के आधार पर ही सृष्टि की क्रीड़ा चलती रहती है। भाव विहीन वातावरण सुनसान मरघट की तरह जान पड़ता है।

मन्त्र में यह भावनायें ही—श्रद्धा, विश्वास, भक्ति प्रेम ही कार्य करती हैं उन्हें जितना अधिक प्रखर बनाया जाता है मन्त्र शक्ति उतनी ही शीघ्र फल देने लगती है उखड़े मन से जपा गया मन्त्र फल तो देता है पर उसमें थोड़ी देर लगती है। कई लोग समझते हैं कि ये लाभ अनायास कोई देवी देवता दे देता है। कारण यह है कि अपने भीतर हो रहे परिवर्तनों की प्रगति और परिणति को वे देख और समझ नहीं पाते, यदि वे समझ पाते कि उनकी साधना से क्या सूक्ष्म प्रक्रियाएँ हो रही हैं तो यह समझने में देर न लगेगी कि यह सब कुछ कहीं से अनायास दान नहीं मिल रहा है वरन् आत्म विद्या की सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया का यह परिणाम है। गायत्री साधना कोई अन्धविश्वास नहीं एक ठोस वैज्ञानिक कृत्य है और उसके द्वारा लाभ भी सुनिश्चित ही होते हैं।

योगी लोग अनेक प्रकार की साधनाओं द्वारा स्थूल शरीर में अवस्थित जिन गुप्त शक्तियों को जागृत करते हैं वे गायत्री जप से अनायास ही जागृत होने लगती हैं। इस प्रकार यह साधना सरल होते हुए भी अत्यन्त उच्चकोटि की योग साधनाओं जैसी महान फलदायक है। इससे सरल, स्वल्प, श्रम साध्य, हानिरहित, तथा शीघ्र फलदायिनी साधना और कोई नहीं।

## शब्द की सामर्थ्य-मंत्र का विज्ञान

'स्टार्ट'—एस, टी, ए, आर, टी कुल पाँच अक्षरों का उच्चारण करना भर था कि पाँच-सात मन भार की कार घड़-घड़-घड़-घड़ करने लगी। 'गो' अगला शब्द एक व्यक्ति के मुख से निकला और जी तथा ओ इन दो शब्दों

ने न जाने क्या चमत्कार दिखाया कि स्वामि-भक्त सेवक की भाँति कार सड़क पर चल पड़ी । देखते ही देखते कार पूरी स्पीड में थी । बिना किसी ड्राइवर के कार यों खुली सड़क पर जा रही थी, तभी सामने से कोई वाहन आता दिखाई दिया और तभी एकान्त में बैठे उन्हीं सज्जन ने आदेश दिया 'हाल्ट' ।—एच, ए, एल, टी कुल चार अक्षरों से एक कोई जादू निकला और कार जहाँ थी, वहीं जाम होकर खड़ी की खड़ी रह गई ।

यह पंक्तियाँ पढ़ने तक किसी भी पाठक को भ्रम हो सकता है कि कहीं किसी जादू या हाथ की सफाई का खेल दिखाया जा रहा होगा, यह वर्णन उसी समय का होगा पर वस्तुस्थिति यह नहीं । यह एक विधिवत् सम्पन्न कार्यक्रम था, जिसे ग्राहम और नील नामक दो आविष्कारकों ने प्रस्तुत किया था । प्रदर्शन आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न नगर की एक भारी भीड़ वाली सड़क पर हुआ था । शब्द में कितनी सामर्थ्य है, यह देखने के लिये लाखों की भीड़ एकत्रित थी ।

एक व्यक्ति के शब्दों और संकेतों पर निर्जीव कार काम कर रही थी, उसके पीछे विज्ञान का एक सिद्धान्त काम कर रहा था । शब्द की सामर्थ्य काम कर रही थी । प्रदर्शनकारी के हाथ में एक माचिस की तरह की डिब्बी जैसा टांजिस्टर था । इस ट्रांजिस्टर का काम इतना था कि वह कार स्वामी की आवाज को एक निश्चित फ्रीक्वेन्सी पर विद्युत शक्ति के माध्यम से कार में 'डैशबोर्ड' के नीचे लगे नियन्त्रण-कक्ष (कन्ट्रोल यूनिट) तक पहुँचा देता था । उसी के आगे 'कार-रेडियो' नामक एक दूसरा यन्त्र लगा था, जब शब्द की विद्युत चुम्बकीय तरंगें उसमें टकरातीं तो कार के सब कल-पुर्जे अपने आप काम करने लगते । इन्जन ही नहीं, हार्न, बत्तियाँ, बाइपर आदि यन्त्र भी इशारे पर काम करते । लोगों ने देखा और आश्चर्य भी व्यक्त किया पर जो जानते थे, उन्होंने इसे वाक् शक्ति के अकूत भण्डार का स्फुल्लिग मात्र माना ।

शब्द की सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर, सूक्ष्म और विभेदन क्षमता वाली है, इस बात की निश्चित जानकारी होने के बाद ही मन्त्र-विद्या का विकास भारतीय तत्व-दर्शियों ने किया । यों हम जो कुछ भी बोलते हैं, उसका प्रभाव व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप से सारे ब्रह्मांड पर पड़ता है, तालाब के जल में फेंके गये एक छोटे से कंपन की लहरें भी दूर तक जाती हैं, उसी प्रकार हमारे मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द आकाश के सूक्ष्म परमाणुओं में कम्पन उत्पन्न करता है, उस कम्पन से लोगों में अदृश्य प्रेरणायें जागृत होती हैं, हमारे मस्तिष्क में विचार न जाने कहाँ से आते हैं, हम समझ नहीं पाते पर मंत्र-विद जानते हैं कि मस्तिष्क में विचारों की उपज कोई आकस्मिक घटना नहीं वरन् शक्ति की पर्तों में आदिकाल से एकत्रित सूक्ष्म कम्पन हैं, जो मस्तिष्क के ज्ञान-कोषों में टकरा कर विचार के रूप में प्रकट हो उठते हैं, तथापि अपने मस्तिष्क में एक तरह के विचारों की लगातार धारा को पकड़ने या प्रवाहित करने की क्षमता है । एक ही धारा में मनोगति के द्वारा एक सी विचार-धारा निरन्तर प्रवाहित करके सारे ब्रह्मांड के विचार जगत में क्रांति उत्पन्न की जा सकती है, उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि उन विचारों को वाणी या सम्भाषण के द्वारा व्यक्त ही किया जाये ।

एक दिन महर्षि.रमण के आश्रम में बहुत से सम्भ्रान्त लोग एकत्रित थे । अरुणाचलम् का वह स्थान जहाँ महर्षि का आश्रम था, पर्वतीय भाग से जुड़ा हुआ था । वहाँ अनेक तरह के जीव-जन्तु रहा करते थे । एक बन्दरिया वहाँ आकर खों-खों करने लगी । बड़ी देर तक वह ऐसे ही करती रही, किसी के मना करने और भगाने पर भी वह भागी नहीं, तब महर्षि रमण ने हँसकर बताया—"इसका पति दल का राजा है, बन्दरों के मुखिया को यह अधिकार होता है कि वह एक से अधिक रानियाँ भी रखे । उसने किसी और बन्दरिया को भी रानी चुन लिया है, यह बात इस पहली रानी को पसन्द नहीं । बन्दरिया वही शिकायत करने आई है ।" इसके बाद महर्षि थोड़ा ध्यानावस्थित हुये फिर थोड़ी देर में राजा-बन्दर वहाँ आया और ऐसा लगा मानो किसी ने उसे जबर्दस्ती समझा दिया हो, वह अपनी पहली रूठी हुई रानी को वहाँ से मना ले गया ।

मूक सत्संग और प्रेरणाओं की ऐसी अनेक घटनायें वहाँ आये दिन घटती रहती थीं । उसका लाभ बिना वाणी सैकड़ों लोगों ने प्राप्त किया । ऐसे सूक्ष्म प्रेरणा प्रवाहों का लाभ केवल अति-सांसारिक व्यक्ति ही नहीं ले पाते अन्यथा अपने मस्तिष्क को थोड़ा भी विचार-शून्य करके ध्यानावस्थित हुआ जाये तो अभी भी पूर्व पुरुषों के अदृश्य और अपने काम में विचार आकर्षित किये जा सकते हैं ।

यों कहने को स्वतन्त्रता संग्राम में विजय का श्रेय कुछ थोड़े से काँग्रेसी नेताओं को है पर एक समय वह आयेगा, जब विज्ञान बतायेगा कि उन नेताओं में से एक भी ऐसा

नहीं था, जो महर्षि अरविन्द जैसी महान् आत्माओं द्वारा सूक्ष्म रूप से प्रेरित और अनुप्राणित न किया गया हो ।

विचारों की सूक्ष्म सामर्थ्य से मनोमय जगत् में क्रांतिकारी परिवर्तन किये जा सकते हैं तो शब्द की सामर्थ्य से स्थूल जगत् में, पदार्थ और आकाश स्थित पिण्डों में जबर्दस्त विस्फोट किया जा सकता है । यही नहीं ग्रह नक्षत्रों में पाई जाने वाली सूक्ष्म-प्राण, विद्युत-प्रकाश, गर्मी आदि को आकर्षित किया जा सकता है पर उसके लिये इस कार में लगे नियन्त्रण कक्ष और ट्रांजिस्टर की तरह शब्दों का चयन एवं उनका नियन्त्रित प्रयोग आवश्यक है, इस बात की गहनतम जानकारी के आधार पर ही मन्त्र और वैदिक ऋचाओं का निर्माण हुआ है । देखने में शब्द और प्रार्थनायें लगने वाले मन्त्र और ऋचायें एक प्रकार के यन्त्र हैं, जिनका विधिवत प्रयोग यदि कोई कर सके तो वह सारे संसार का स्वामित्व प्राप्त कर सकता है । आज इस बात को भौतिक विज्ञान अच्छी तरह जानता चला आ रहा है ।

पचास वर्ष पूर्व तक रेडियो, टेलीफोन, जैसे यन्त्रों को ही शब्द शक्ति के चमत्कार के रूप में माना जाता था पर जब कैलीफोर्निया विश्व-विद्यालय के प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री डॉ हर्बर्ट हुबर ने शब्द के सूक्ष्म कम्पनों द्वारा एक ऐसी बारीक और नाजुक हड्डी पर लगे मैल और मिट्टी को साफ करके दिखा दिया, जिस पर कैसा भी हल्का ब्लेड चलाया जाता तो हड्डी टूटे बिना न रहती । पीछे तो शब्द शक्ति का ऐसा विकास हुआ कि औद्योगिक जगत् में एक नई क्रांति मच गई । इन दिनों बड़ी-बड़ी मोटी इस्पात की चादरों को काटने, कपड़ों की धुलाई करने, शहर की आवाज से शहर के लिये विद्युत शक्ति तैयार कर लेने जैसे भारी कामों में भी शब्द शक्ति का उपयोग होने लगा है । अभी तक एक्स-रे को ही ऐसा सूक्ष्म यन्त्र समझा जाता था, जो शरीर के भीतरी हिस्सों की स्थिति का भी पता दे देता है पर उसके द्वारा खींचे गये फोटोग्राफ इतने स्पष्ट नहीं आते कि स्थिति का पूर्णतया सही अनुमान लगाया जा सके, शब्द की सामर्थ्य ने अब इस कार्य को भी अति आसान बना दिया है । यह कार्य अब 'अल्ट्रा साउण्ड' द्वारा सम्पन्न होने लगा है ।

'अल्ट्रा साउण्ड' उस ध्वनि को कहते हैं, जो मनुष्य के कान से किसी भी स्थिति में न सुनी जा सके । अति सूक्ष्म कम्पनों को जब विद्युत-आवेश प्रदान किया जाता है तो उनकी भेदन क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि सघन से सघन वस्तु के परमाणुओं का भी भेदन करके उसकी आन्तरिक रचना का स्पष्ट फोटोग्राफ प्रस्तुत कर देती है ।

उदाहरण के लिए शिकागो की एक महिला की डाक्टरी परीक्षा की गई पर डाक्टर यह नहीं निश्चय कर पाये कि इसके पेट में ट्यूमर की गाँठ है अथवा गर्भ । एक्सरे पर एक्सरे खींचे गये पर स्थिति का सही पता नहीं चल सका । तब अल्ट्रा साउण्ड को प्रयोग किया गया और यह साफ प्रकट हो गया कि महिला के पेट में गर्भ विकसित हो रहा है । यूटा (अमेरिका) में एक व्यक्ति से धोखे में गोली चल गई । छर्रा एक छोटे बच्चे की आँख में धँस गया । डाक्टरों ने पचासों प्रयत्न किये पर यह पता नहीं ही चल पाया कि कारतूस का टुकड़ा किस स्थान पर डट गया है ।

आखिरकार बच्चे को वांशिगटन के सरकारी अस्पताल में भेजा गया । वहाँ 'अल्ट्रा साउण्ड' का प्रयोग किया गया तो पीतल के टुकड़े का साफ चित्र आ गया और बात की बात में डाक्टरों ने उसे निकालकर बाहर कर दिया ।

अभी तक किसी ऐसी विधि का आविष्कार नहीं हो पाया था, जो शरीर के अति कोमल 'ऊतकों' की जाँच कर सकें । शरीर छोटे-छोटे कोष (सेल्स) से बना है । बहुत से कोष मिलकर ऊतक बनते हैं, जिनसे शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है पर अमेरिका के कोलोरेडो विश्व-विद्यालय में चिकित्साशास्त्री डॉ. जोऐफ होम्स ने अल्टा साउण्ड के प्रयोग द्वारा ऊतकों के साफ अध्ययन की सफलता भी प्राप्त कर ली । यह कार्य जिस यन्त्र से सम्पन्न होते हैं, उसे 'ट्रांस्डूसर' कहते हैं । इस यन्त्र में विद्युत ऊर्जा को ध्वनि-ऊर्जा में बदला जाता है । एक सेंकिड में बीस हजार से भी अधिक की गति से ध्वनि-तरंगें प्रसारित करता है, यह तरंगें आगे जाकर जिस माध्यम से टकराती हैं उस वस्तु का परावर्तित कम्पनों से चित्र तैयार कर देती हैं । कम्पन की गतियों के नियन्त्रण और विस्तार की प्रणाली हर कार्य में अलग होती है । पर अन्ततः सिद्धान्त एक ध्वनि-तरंगों के अति सूक्ष्म प्रसारण का है ।

विज्ञान की यह उपलब्धियाँ यह बताती हैं, क्रमबद्ध ध्वनि-कम्पनों में जबर्दस्त सामर्थ्य है, मन्त्रों में इन्हीं सिद्धान्तों का समावेश है । मनोगति के सम्मिश्रण के द्वारा यह शक्ति और भी बढ़ जाती है और जब मनुष्य उस पर पूरा-पूरा नियन्त्रण-मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर लेता है तो वह

ऐसे ही आश्चर्यजनक प्रयोग कर सकता है, जैसे इस लेख में ऊपर बताये गये हैं ।

उपरोक्त पंक्तियाँ में जिस अल्ट्रा साउण्ड के 'ट्रान्स्डूसर' नामक अति सूक्ष्म ध्वनि कम्पन यन्त्र का विवरण दिया गया है, वह न केवल रोगों का पता लगाने में वरन कैन्सर और टी. बी. आदि रोगों के उपचार में भी प्रयुक्त होने लगा है । शब्द-कम्पनों को एक चींमटी की आकृति में बदल कर बारीक से बारीक कीटाणुओं और विषाणुओं को भी पकड़ कर खींचा जा सकता है ।

एक लड़के की आँख में पीतल का बहुत बारीक कण घुस गया । किसी भी धातु की चीमटी से धोखा हो सकता था, आँख में चुभ जाने का नया संकट उत्पन्न हो सकता था, उस स्थिति में ध्वनि-कम्पनों द्वारा बनाई गई यह चीमटी प्रयोग में लाई गई और उससे १० सेकिंड में ही वह टुकड़ा निकाल लिया गया। यह कार्य डॉ. नैथेनियल ब्रान्सन द्वारा सम्पन्न हुआ । डॉ. ब्रान्सन मैनहैटन (अमेरिका) में आँख, कान और गले के रोगों के विशेषज्ञ हैं ।

अल्ट्रा साउण्ड का प्रयोग वियेना के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. कार्ल टी. डसिक ने सर्वप्रथम १९४२ में किया यद्यपि इसकी जानकारी एक्सरे की खोज सन् १८९५ के कुल दो वर्ष बाद ही हो गई थी । इन दिनों इगंलैण्ड, अमेरिका, स्वीडन तथा जापान आदि देशों में मस्तिष्कीय जानकारी के लिये अल्ट्रा साउण्ड पर विस्तृत खोजें की जा रही हैं । पश्चिम जर्मनी के डूशल डोर्फ के डाक्टर डब्लू ब्लाइफील्ड और डॉ. स्वेन एफर्ट ने कोई १०००० व्यक्तियों के शरीरों के विभिन्न अल्ट्रा साउण्ड के चित्र उतारे और उनके अध्ययन के द्वारा अनेक नये तथ्यों का पता लगाया ।

चिकित्सा जगत् में शब्द के सूक्ष्मतम प्रयोग की यह उपलब्धियाँ यह बताती हैं कि यदि भारतीय तत्वदर्शियों ने मंत्र विद्या की इतनी जानकारी कर ली हो कि शब्दों के कम्पनों द्वारा विष-निवारण, रोग निवारण, अदृश्य शक्तियों का आकर्षण, मनोगति द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन आदि प्रयोग सफलतापूर्वक होते रहे हों तो उसे अतिशयोक्ति न माना जाय। महाभारत काल में मंत्र-प्रेरित शस्त्रों की मार होती थी, उससे परमाणु-बमों से भी भयंकर ऊर्जा उत्पन्न होती थी, उसका बड़ा सधा हुआ उपयोग सम्भव था । उस शक्ति से सैनिकों के समूहों को भी नष्ट किया जा सकता था और हजारों की भीड़ में छिपे केवल एक ही किसी व्यक्ति को मारा जा सकता था । यह सब उस शब्द विज्ञान का ही चमत्कार था, जिसकी क्षीण-सी जानकारी भौतिक विज्ञान जान पाया है ।

बात कहने की नहीं, अब सभी पढ़े-लिखे लोग जान गये हैं कि प्रत्येक ध्वनि को चित्रित किया जा सकता है । ध्वनि कम्पनों के इस चित्रण को 'स्पेक्ट्रोग्राफ' कहते हैं । हम जो कुछ भी बोलते हैं, उन शब्द तरंगों को 'स्पेक्ट्रोग्राफ' टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों के रूप में प्रस्तुत कर देता है । न्यूयार्क (अमेरिका) की बेल टेलीफोन लैबोरेटरी के वैज्ञानिक डॉ. लारेन्स केर्स्टा ने अनेकों लोगों की आवाज का 'स्पेक्ट्रोग्राफ' खींच कर देखा तो पाया कि हर व्यक्ति के ध्वनि कम्पनों से जो रेखायें बनाते हैं, वे चाहे एक ही वाक्य बोलें, रेखाओं का प्रकार अलग-अलग तरह का होता है पर किसी व्यक्ति द्वारा एक ही वाक्य स्वस्थ, अस्वस्थ, जुकाम, अधिक या कम तापमान (टेम्परेचर) वायुदाब (प्रेसर) आदि में सदैव अपरिवर्तित रहता है । इसका अर्थ यह हुआ कि ध्वनि-तरंगों में इतनी सामर्थ्य होती है कि प्राकृतिक परिवर्तन—तूफान, वर्षा, तापमान, हवा के दबाव आदि का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । प्रत्येक अवस्था में लकीरें एक व्यक्ति की एक ही तरह की होंगी । इसी तरह प्रत्येक मंत्र का तरङ्गों के रूप में विस्तार एक ही तरह का होता है, लकीरों की आकृति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भले ही भिन्न हो अर्थात् यदि एक व्यक्ति एक वाक्य बोलता है तो आगे बढ़ने और पीछे लौटने वाली लकीरें तो लम्बी या छोटी हो सकती हैं पर उनकी आवृति एक ही तरह की होगी ।

सामान्य रूप में बोली जाने वाली ध्वनि तरंगें थोड़ा आगे बढ़कर सारे विश्व भर के परमाणुओं में फैल जाती हैं और जैसे छुई मुई को छूते ही सारी पत्तियाँ बात की बात में हलचल करती हुई मुरझा जाती हैं, उसी प्रकार यह कम्पन सारे विश्व के विस्तार को कुछ ही सैकिंडों में पार कर प्रतिक्रिया सहित वापिस लौट आती हैं । परावर्तित कम्पनों में उसी तरह के अनेक और विचार भागे चले आते हैं, यही कारण है कि जब कोई क्रोध में बड़बड़ाता है तो उसी तरह के विचार दौड़े चले आते हैं पर जब कोई प्रेम और करुणा-जनक शब्द बोलता है तो वैसे ही मिठास भरे कोमल विचार मस्तिष्क में चले आते हैं । इसीलिये कहा जाता है कि बोला हुआ प्रत्येक शब्द मंत्र है, मनुष्य

को बहुत सम्भाल कर केवल मीठा और आशयपूर्ण ही बोलना चाहिये । कड़ुवा, तीखा, और निरर्थक की बकवाद की प्रतिक्रिया वैसे ही तत्वों को और बढ़ा देती है, जिससे मन में अशांति ही बढ़ती है ।

मंत्र का विज्ञान इससे भिन्न प्रकार का है । अभी तक हम जिन शब्द-तरंगों की बात करते रहे हैं, उनका आकार प्रकार विद्युत-शक्ति द्वारा निश्चित और प्रयुक्त होता रहा है । प्रश्न यह उठता है कि मंत्र में जबकि किसी प्रकार की बाह्य शक्ति उन शब्द-तरंगों को रूपान्तरित नहीं करती तो उनसे विज्ञान की तरह के लाभ कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर 'रेट्रोमीटर' यन्त्र के आविष्कार के साथ संभव हो गया है । इस यन्त्र में बाहरी शक्ति-स्रोत की आवश्यकता ऊर्जा का काम करती है । रेट्रोमीटर का आविष्कार न्यूमा ई. थामस नामक अमेरिकी वैज्ञानिक ने किया है । श्री थामस लेंगले स्थित 'नेशनल एरोनोटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन रिसर्च सेन्टर के अन्वेषक हैं । इस यन्त्र में किसी भी माध्यम के प्रकाश फोटोसेस्टिव सेल में भेजकर विद्युत ऊर्जा में बदली तरंगों को ध्वनि में बदलकर सुन लिया जाता है ।

इस सिद्धान्त से यह निश्चित हो गया है कि कर्णातीत तरंगों का स्वभाव लगभग प्रकाश तरंगों जैसा ही होता है। कर्णातीत तरंगों का तरंगदैर्घ्य जितना कम होता है, यह समता उतनी ही बढ़ती है, इसके पता चलता है कि कर्णातीत तरंगों को बड़ी ही सुविधापूर्वक आवर्तित और परावर्तित किया जा सकता है । इनका व्यवहार भी प्रकाश तरंगों से ठीक उल्टा होता है, इसलिये इन तरंगो से विभिन्न प्रकार के प्रकाश-स्रोतों की शक्ति को प्रतिक्रिया द्वारा आसानी से अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है । ऐसा इसलिये होता है कि कर्णातीत तरंगें किसी सघन पदार्थ में तो तेजी से चलती हैं पर विरल माध्यमों में वे मन्दगति से चलने लगती हैं ।

वेदों में प्रयुक्त प्रत्येक मंत्र का कोई न कोई देवता होता है । गायत्री का देवता सविता है, अर्थात् गायत्री उपासना से जो भी लाभ यथा आरोग्य, प्राण, धन-सम्पत्ति, पुत्र और अपनी महत्त्वाकांक्षायें आदि पूर्ण होती हैं, उसकी शक्ति अथवा प्रेरणा सूर्य लोक से आती है । किसी भी मंत्र का जब उच्चारण किया जाता है, तब वह एक विशेष गति से आकाश के परमाणुओं के बीच बढ़ता हुआ, उस देवता (शक्ति-केन्द्र) तक पहुँचता है, जिसका उस मंत्र से सम्बन्ध होता है । मंत्र-जप के समय आवश्यक ऊर्जा मन को शक्ति के द्वारा प्राप्त होती है, इस शक्ति के द्वारा जप के समय की ध्वनि तरंगों को विद्युत तरंगों के रूप में प्रेक्षित किया जाता है । वह तेजी से बढ़ती हुई कुछ ही क्षणों में देव-शक्ति से टकराती है । उससे अदृश्य सूक्ष्म-परमाणु मन्दगति से परावर्तित होने लगते हैं, उनकी दिशा ठीक उल्टी होती है । सूक्ष्म और स्थूल दोनों तरह के परमाणु दौड़ पड़ते हैं और साधक को शारीरिक लाभ और मानसिक प्रेरणायें देने लगते हैं । यह शक्ति ही मनुष्य को क्रमश: उन्नत जीवन और अनेक अप्रत्याशित लाभों की ओर अग्रसर करती रहती है ।

प्रारम्भ में आदान-प्रदान, आवर्तन-परावर्तन की यह क्रिया थोड़ा धीमी होती है पर जैसे-जैसे मानसिक एकाग्रता बढ़ती है, प्रतिक्रिया भी तीव्र होती है और सूक्ष्म आत्मसत्ता भी तेजी से उन प्रकाश-परमाणुओं से सुसज्जित होने लगती है, जो देव-शक्ति से आकर्षित होते हैं ।

उदाहरण के लिए सूर्य सम्पूर्ण सौर-मंडल की आत्मा है, अर्थात् सूर्य की किरणें सम्पूर्ण ग्रह-नक्षत्रों को देखती हैं। सूर्य के प्रकाश परमाणुओं की किरणें सर्वदर्शी होती हैं, यह प्रकाश-परमाणु गायत्री उपासक में जितना अधिक विकसित होते जाते हैं, वह उतना ही अधिक स्पष्ट, भविष्यदर्शी, सार्थक स्वप्न देखने वाला और चमत्कारिक प्रेरणायें प्राप्त करने वाला होता जाता है । उसी प्रकार स्थूल ऊर्जा का लाभ स्वास्थ सुधार में होता है । अनेक रोगी गायत्री उपासक रोग मुक्त होते देखे गये हैं, वह सूर्य की किरणों की इस परावर्तित प्रतिक्रिया का ही परिणाम होता है । मंत्र का लाभ इसीलिये अश्रद्धा होने पर भी अवश्य मिलता है । यद्यपि श्रद्धा और विश्वास के प्रगाढ़ होने पर लाभ भी द्रुतगामी होते हैं पर यदि ऐसा न हो तो भी साधक मंत्र जप के लाभ से कभी वंचित नहीं होता ।

## मंत्र शक्ति के आधार स्रोत

मन्त्र विज्ञान के अनेक आधार हैं जिनमें सर्वप्रथम है उसका शब्द गुंथन और उच्चारण का सम्यक् विधान । कविता की तरह मन्त्र का निर्माण भाव प्रधान या अर्थ प्रधान नहीं है । वरन् उस आधार पर है कि अक्षरों को किस क्रम से संजोया जाय ताकि उनके क्रमबद्ध उच्चारण से वह ध्वनि प्रवाह निसृत हो जो अभीष्ट प्रयोजन के लिए आवश्यक माना गया है । सितार में तारों का गुंथन एक क्रम विशेष को ध्यान में रखते हुए नियत निर्धारित रहता है । किसी किस्म का तार कहीं भी फिट कर देने से उनसे ध्वनियाँ एक जैसी निकालेंगे और विभिन्न प्रकार की

राग-रागनियाँ निकालना कठिन पड़ जायगा । इसी प्रकार शब्दों के ध्वनि प्रवाह को—उनकी पारस्परिक संगति को ध्यान में रखते हुए तत्त्व दृष्टाओं ने मन्त्रों का गुंथन किया है ।

उनके उच्चारण का भी विशेष विधान है । सितार के तारों का क्रम ही पर्याप्त नहीं, बजाने वाले की उंगलियाँ किस प्रकार थिरकती हैं यह भी महत्त्वपूर्ण है । रागों में अन्तर इस अंगुलि संचालन पर भी निर्भर है । मात्र तारों का गुंथन ही सब कुछ नहीं है । मन्त्र का शब्द संधान और साधक की विधिवत् उच्चारण प्रक्रिया इन दोनों का समन्वय अन्तरिक्ष में एक विचित्र प्रकार की स्वर लहरी प्रवाहित करते हैं उनके प्रभाव से सूक्ष्म जगत में वे परिस्थितियाँ बनने लगती हैं जो मन्त्रानुष्ठान के फलस्वरूप उपलब्ध होती मानी गई हैं ।

गायत्री मन्त्र को ही लें । उसके अर्थ में भगवान से सद्बुद्धि की याचना भर है । इस प्रयोजन के लिए अन्य ढेरों मन्त्र वेदों में भरे पड़े हैं । अन्य भाषाओं में भी ऐसी कविताएँ मौजूद हैं । यदि अर्थ मात्र की ही बात रही होती तो उन कविताओं में और गायत्री में कोई अन्तर न होता । कविता की दृष्टि से गायत्री मन्त्र में छन्द दोष बताया जाता है । आठ-आठ अक्षर के तीन चरण होने पर शुद्ध गायत्री छन्द बनता है, पर प्रख्यात गायत्री मन्त्र में २३ अक्षर हैं । चौबीसवाँ तो 'ण्यं' को 'णियम्' उच्चारण करके खींच-तान के सहारे बनता है। रचयिताओं को इस त्रुटि का ध्यान रहा होगा फिर भी उन्होंने शब्द गुंथन से उत्पन्न होने वाले ध्वनि प्रवाह को ही महत्त्व दिया और उस रूप में रचा जैसा कि अब है ।

ध्वनि अपने आप में एक शक्ति है । कभी उससे जानकारी प्राप्त करने भर का प्रयोजन पूरा होता था, पर अब वैज्ञानिक विकास ने उसे बहुत ही उच्चस्तरीय एक शक्ति के रूप में सिद्ध कर दिया है । कानों से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ हमें विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं । निन्दा सुनकर क्रोध आता है और प्रशंसा की वार्ता हमें प्रसन्नता प्रदान करती है । अपमानजनक चिन्ता उत्पन्न करने वाले, शोक सम्वाद शब्द हमें विक्षुब्ध कर देते हैं किन्तु सफलता, सुखद सम्भावना के समाचार सुनते ही मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है और चेहरे पर मुस्कान छा जाती है । मन ही नहीं, शरीर भी उस शब्द श्रवण की प्रतिक्रिया स्वरूप अपनी गतिविधियों में हेर-फेर कर लेता है । द्रौपदी के शब्दों की कटुता ने महाभारत खड़ा करा दिया था । नम्र और भावनापूर्ण शब्दों से मनुष्य तो क्या भगवान तक पिघल जाते हैं ।

मन्त्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि प्रवाह साधक की समग्र चेतना को प्रभावित करता है और उसके कम्पन अन्तरिक्ष में बिखरते हुए परिस्थितियों को अनुकूल बनाते हैं । कंठ, हाथ, जिह्वा, तालु आदि मुख्य अवयवों को विभिन्न शब्दों के उच्चारण में भिन्न भिन्न प्रकार की हलचलें करनी पड़ती हैं । इनका प्रभाव स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के कतिपय अवयवों पर पड़ता है । उपत्यिकाओं, नाड़ी गुच्छकों, विद्युत भँवरों पर इन मन्त्र ध्वनियों का प्रभाव पड़ता है और सूक्ष्म शरीर के चक्र एवं इड़ा पिंगला, सुषुम्ना जैसे विद्युत प्रवाह प्रभावित होते हैं । साधक के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरो में होने वाले इस मन्त्र ध्वनि प्रवाह से कई प्रकार के उपयोगी परिवर्तन होते हैं व्यक्तित्व में नये प्रकार के सुधार उत्पन्न होते हैं । कोई भी शक्ति सबसे पहले अपने उत्पादन स्थल को प्रभावित करती है फिर उसकी क्षमता अगले क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाती हुई आगे बढ़ती है । आग जहाँ जलेगी पहले वही स्थान गरम होगा बाद में उस गर्मी का विस्तार अगले क्षेत्र में फैलता चला जायगा । मन्त्र साधना से सबसे अधिक प्रभावित साधक का व्यक्तित्व ही होता है ।

मात्र शब्द प्रवाह ही नहीं साधना में अन्य विविध उपचारों का विधान रहता है । प्रयुक्त पदार्थों एवं हलचलों का, विधि-विधानों का कर्मकाण्डों के क्रिया-कलापों का अपना महत्त्व है । उनकी सम्मिलित प्रतिक्रिया का मन्त्र साधना में अद्भुत योगदान रहता है । इस संयुक्त प्रभाव से मन्त्र साधना अपना चमत्कारी प्रतिफल प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होती है । साधक की सत्ता को प्रभावित करती हुई यह ध्वनि धारा—रेडियो तरंगों की तरह अन्तरिक्ष में दौड़ना आरम्भ करती है । शब्दवेधी वाण की तरह उसका प्रवाह सूक्ष्म जगत के उन संस्थानों से टकराता है जिन्हें प्रभावित करना साधना का उद्देश्य रखा गया था ।

ध्वनि का वह क्षेत्र तो बहुत स्वल्प है जो हमारे कानों की पकड़ में आता है और जिसे हम सुन सकते हैं । जिन ध्वनियों के कम्पन प्रति सैकिण्ड २० से लेकर २० हजार तक होते हैं उन्हें ही मनुष्य के कान आसानी से सुन सकते हैं । किन्तु ध्यान कम्पन तो इससे बहुत कम और बहुत

अधिक सामर्थ्य के भी होते हैं । उन्हें अनसुनी ध्वनियाँ कहा जाता है । इससे उनकी सामर्थ्य में कमी नहीं होती वरन् सच तो यह है कि यह कर्णातीत—अनसुनी ध्वनियाँ और भी अधिक सामर्थ्यवान होती हैं । 'सुपर सोनिक रेडियो मीटर' की सहायता से अन्तरिक्ष में संव्याप्त अगणित ध्वनि प्रवाहों को सुना जाया जा सकता है । मन्त्र साधना में इन श्रवणातीत ध्वनियों का उत्पादन अतिरिक्त रूप से होता है और वे अपने क्षेत्र में असाधारण प्रभाव डालती हैं ।

विज्ञान ने श्रवणातीत ध्वनियों को एक अति प्रभावोत्पादक शक्ति माना है और उनसे अनेक प्रकार के महत्त्वपूर्ण काम लेने की व्यवस्था बनाई है । इन दिनों वस्तुओं की सही मोटाई, गहराई नापने में—धातुओं के गुण, दोष परखने में इनका प्रयोग होता है । कार्बन ब्लैक का उत्पादन, वस्त्रों की धुलाई, रासायनिक सम्मिश्रण वस्तुओं की कुटाई, पिसाई, गीली वस्तुओं को सुखाना, धातुओं की ढलाई, प्लास्टिक धागों का निर्माण जैसे अनेकों उद्योग ध्वनि तरंगों की सामर्थ्य का उपयोग करके चल रहे हैं । अयोवा स्टेट कालेज, अल्ट्रा सोनिक कारपोरेशन, वी. एफ. गुडरिच कम्पनी आदि कितने ही व्यापार संस्थानों ने ऐसे यन्त्र बनाये हैं जिनमें श्रवणातीत ध्वनियों की सामर्थ्य का उपयोग होता है और उससे महत्त्वपूर्ण लाभ कमाये जाते हैं ।

रेडियो तरंगें, माइक्रो लहरें, टेलीविजन और राडार तरंगें, एक्स किरणें, गामा किरणें, लेसर किरणें, मृत्यु किरणें, इन्फ्रारेड तरंगें, अल्ट्रा वायलेट तरंगें आदि कितनी ही शक्ति धाराएँ इस निखिल ब्रह्माण्ड में निरन्तर प्रवाहित रहती हैं । ध्वनि तरंगों में अल्ट्रासोनिक और सुपर सोनिक तो औद्योगिक प्रयोजनों में भली प्रकार काम आने लगी हैं । इन प्रवाहों में से अन्य असंख्यों को निकट भविष्य में ही मानवोपयोगी बना लिया जायगा। हानिकारक कीटाणुओं को मारने, दूध से मक्खन निकालने, धोने, रगड़ने, पीसने—कोहरा हटा देने जैसे सामान्य कार्यों में उनका प्रयोग जिस सफलतापूर्वक इन दिनों हो रहा है उसे देखते हुए वैज्ञानिक उनका उपयोग अन्य उपयोगी कार्यों में करने की विशालकाय योजना बना रहे हैं । पौधों को खाद, पानी देने की तरह ही अब मधुर ध्वनि प्रवाह से भी उनकी अभिवृद्धि का उद्देश्य पूरा हो रहा है । यूगोस्लाविया के किसानों ने कृषि कार्य में इन ध्वनियों का उत्साहवर्धक उपयोग किया है और अच्छा लाभ उठाते हैं । हालैण्ड के पशु पालक दूध दुहते समय विशेष प्रकार की ध्वनि करते हैं और अधिक दूध पाते हैं । पशुओं की श्रम शक्ति, बलिष्ठता एवं प्रजनन शक्ति को भी इन ध्वनियों के सहारे बढ़ाने में भारी सफलता मिली । अमेरिकी कृषक जार्ज स्मिथ को मक्का की फसल संगीत प्रवाह के आधार पर अत्यधिक बढ़ा लेने में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है ।

ध्वनियों को आकाश से पकड़ कर उन्हें ऊर्जा के रूप में परिणत करने की तैयारियाँ जोरों से हो रही हैं । उन्हें ताप, प्रकाश, चुम्बक एवं बिजली के रूप में परिणत किया जा सकेगा और इस आधार पर ईंधन का एक सस्ता और सुविस्तृत स्रोत हाथ में आ जायगा । कान के माध्यम से मस्तिष्क में ध्वनियाँ पहुँचती हैं और हमें शब्द श्रवण का लाभ मिलता है । जिनके कानों की झिल्ली खराब हो गई हैं उन्हें बहरे लोगों की दृष्टि मार्ग से ध्वनि तरंगों को मस्तिष्क तक पहुँचाने और सुनने का लाभ देने के लिए चल रहे प्रयोग अब सफल होने के निकट पहुँचते जा रहे हैं । इसी प्रकार नाक, कान, आँखे और मुँह के छिद्रों का मस्तिष्क से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह माना जा रहा है कि एक में गड़बड़ी होने पर दूसरे के द्वारा मस्तिष्क को आवश्यक जानकारी मिलने का मार्ग मिल जायगा । इस प्रकार गूँगे, बहरे, अन्धे व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता अन्य छिद्रों के सहारे पूरा कर लिया करेंगे । राडार जैसे यन्त्र अभी भी बहुमूल्य जानकारियाँ ध्वनि प्रवाह को पकड़ कर ही संग्रह करते हैं । भविष्य में यह क्षेत्र और भी व्यापक होने जा रहा है ।

मधुर, संयत और सुसंस्कृत वाणी को वशीकरण मन्त्र बताया गया है । उसके आधार पर पराये अपने हो जाते हैं । दूसरों का स्नेह, सम्मान एवं सहयोग अर्जित करना सम्भव होता है । प्रगति के असंख्य द्वार खुलते हैं । वाणी से परिष्कृत प्रभाव का लौकिक जीवन की प्रगति एवं प्रसन्नता में कितना अधिक योगदान होता है, इस पर जितना अधिक विचार किया जाय उतनी ही अधिक उसकी गरिमा स्पष्ट होती जाती है। स्कूली शिक्षा तो अध्यापकों और छात्रों के वाणी विनिमय आधार पर चलती ही है । ब्रह्म-विद्या का आधार भी वही है । सत्संग, प्रवचन, कथा, कीर्तन, पाठ, स्तोत्र से लेकर जप साधन तक वाणी के माध्यम से ही सम्भव होते हैं । लौकिक क्षेत्र में दूसरों को प्रभावित करके उन्हें ऊँचे उठाने, आगे बढ़ाने के प्रयोजन पूरे होते हैं । औरों का सद्भाव

सहयोग अर्जित करके व्यक्ति स्वयं भी लाभान्वित होता है । आत्मिक क्षेत्र में मन्त्र विद्या के आधार पर अनेक उच्चस्तरीय विभूतियाँ प्राप्त होती हैं और आत्म-कल्याण के लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव होता है । परिष्कृत वाणी के समान मनुष्य के पास कोई उत्कृष्ट शक्ति नहीं है । मन्त्र विद्या का जो कुछ भी चमत्कार कहा, सुना और देखा जाता है उसे उस 'वाक्' का ही प्रतिफल कह सकते हैं जिसका परिशोधन, सत्य, मौन, व्रत आदि माध्यमों से किया जाता । उसकी अद्‌भुत शक्ति जड़ जगत को हिला सकने और चेतन जगत में व्यापक भाव प्रवाह उत्पन्न कर सकने में समर्थ होती है । इसलिए 'वाक्' साधना को आत्म-विद्या का प्रधान आधार माना गया है । इसके लिए मन, वचन और कर्म से ऐसी उत्कृष्टता का समन्वय करना पड़ता है कि वाणी को 'दग्ध' करने वाला कोई कारण शेष न रह जाय । इतना करने के उपरान्त ही जपा हुआ—बोला हुआ—कोई भी मन्त्र असंदिग्ध रूप से सिद्ध होता है । यदि वाणी दूषित, कलुषित, दग्ध स्थिति में पड़ी रहे तो उसके द्वारा जप किये हुए मन्त्र भी जल जायेंगे और बहुत संख्या में, बहुत समय तक किये गये जप, स्तवन, पाठ आदि करते रहने पर भी अभीष्ट फल न मिल सकेगा । परिष्कृत वाणी 'वाक्' को अध्यात्म् का प्राण कह सकते हैं । उसे साधक की कामधेनु और तपस्वी का ब्रह्मास्त्र कहा जाय तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है । इसी परिमार्जित वाणी को 'सरस्वती' भी कहा गया है । देवी सरस्वती के अनुग्रह से जो वरदान प्राप्त हो सकते हैं परिष्कृत वाक् शक्ति भी वे सारे चमत्कार उत्पन्न कर सकती है ।

ब्रह्मा देवता के चार मुख हैं । उन्होंने उन चारों से चार वेदों का सृजन प्रवचन किया । यह चतुर्धा प्रकटीकरण वस्तुतः वैखरी, मध्यमा, परा और पश्यन्ती इन चार वाणियों के ऊर्ध्वगामी उभार का अलकांरिक वर्णन है । यह कार्य ब्रह्म देवता ने किया सो उसे आत्म-देवता भी सम्पन्न कर सकता है । पुराणों की कथा है कि विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल नाल पर ब्रह्मा जी कई बार उतरे और ऊपर चढ़े । मन्त्र साधना में यही होता है । उच्चारित होने के उपरान्त स्थूल शब्द अन्तःकरण के मर्मस्थल की गहराई में उतरता है और उस शक्ति स्रोत की ऊर्जा से सम्पन्न होकर ऊपर आता है । जब वह ऊपर आता है तो वैखरी में पश्यन्ती का वैसा ही प्रभाव होता है जैसा कि बिजली के सम्पर्क से धातु के तार में । वह मन्त्रवत् शब्द समस्त सृष्टि में हलचल उत्पन्न करता है । सूक्ष्म जगत को स्पन्दित करता है और वयक्ति को सामान्य न रहने देकर उसे दैवी शक्ति से सम्पन्न बना देता है ।

## मंत्र विद्या और उसकी सुनिश्चित सामर्थ्य

मन्त्र विद्या में दो तत्त्वों का समावेश है । (१) शब्द शक्ति का सूक्ष्म चेतना विज्ञान के आधार पर उपयोग (२) व्यक्ति की आन्तरिक पवित्रता एवं भावोल्लास से उत्पन्न दिव्य क्षमता का समन्वय । इन दोनों से मिलन के एक तीसरी ऐसी अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न होती है जो कितने ही बड़े भौतिक साधनों से उपलब्ध नहीं हो सकती ।

मशीनें टूटती-फूटती रहती हैं । उनकी साज-सँभाल के लिए कुशल कारीगर नियुक्त करने पड़ते हैं । ईंधन के बिना उन यन्त्रों का चलना सम्भव नहीं । पर मनुष्य-शरीर का यन्त्र जितना सशक्त है उतना ही सरल भी । इसके चलाने के लिए न कारीगर की जरूरत है न रोटी-पानी की स्वाभाविक प्रक्रिया के अतिरिक्त किसी विशेष ईंधन की । उसे खरीदने को पूँजी चाहिए न लगाने जमाने के लिए फैक्टरी । वह जितना सस्ता और सरल है उतना तुच्छ नहीं । महत्तायें, सिद्धियाँ, और विभूतियाँ उसके रोम-रोम में भरी पड़ी हैं । इस यन्त्र का भौतिक उपयोग सभी जानते हैं । आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसे प्रयोजनों के लिए पशुओं की तरह मनुष्य भी इसका उपयोग करते हैं। पर आत्मिक उपयोग कोई बिरले ही जानते हैं । इसे न जानने के कारण इस मानव काया का नगण्य सा ही उपयोग हो पाता है । जो कुछ दिव्य है उस अधिकांश का तो न ज्ञान होता है न उपयोग । योग विद्या इस हानि से बचाने की प्रक्रिया का ही नाम है ।

साधारणतया वाणी का उपयोग बात-चीत करने के—ज्ञान वृद्धि के—एवं जानकारियों के आदान-प्रदान के लिए होता है । यह उसका अति स्थूल प्रयोग है । शक्ति की सूक्ष्म शक्ति और उसके उपयोग की विधि को जाना जा सके तो उसका जितना लाभ आमतौर से उठाया जा सकता है उससे असंख्य गुना उठाया जा सकना सम्भव हो सकता है । मन्त्र विद्या को वाणी की सूक्ष्म शक्ति का उपयोग करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया ही समझा जाना चाहिए ।

शब्द कितना समर्थ है ? वाणी की क्षमता कितनी अद्‌भुत है ? आवाज कैसे अद्‌भुत प्रयोजन पूरे करती है ? उसके साथ जुड़ा हुआ विद्युत प्रवाह कितना प्रचण्ड है इसे पदार्थ विज्ञान वेत्ता जानते हैं और उस ज्ञान के आधार पर रेडियो, टेलिविजन, राडार आदि यन्त्रों का निर्माण संचालन करते हैं । मनुष्य के शरीर की विचारणा की भाव स्थिति की विविध क्षमताओं का समन्वय करके जो विद्युत प्रवाह प्रस्तुत होता है उसकी क्षमता को अध्यात्म तत्त्व वेत्ताओं ने समझा और उसी आधार पर मन्त्र-विद्या का आविष्कार किया ।

आवाज को मुँह से निकलने वाली 'हवा' मात्र न समझा जाय । वह एक शक्तिशाली पदार्थ की तरह है जिससे कितने ही तरह के प्रयोजन पूरे किये जा सकते हैं।

अन्य पदार्थों की तरह आवाज भी एक ऐसा पदार्थ सिद्ध हो गया है जिसकी नाप-तौल की जा सकती है और तस्वीर खींची जा सकती है । प्लेट रिकार्डों और टैपरिकार्डों के द्वारा मनुष्य की आवाज को अंकित कर लेना और उसे बार-बार सुनाते दुहराते रहना तो रोज ही देखा जाता है । लाउड स्पीकर और टैप रिकार्डर किन्हीं गीत वाद्यों सम्बन्धी रिकार्ड की हुई ध्वनियों को आये दिन सुनते रहते हैं ।

अब आवाज को किसी के अभिभाषण के प्रमाण रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है । इससे पहले ऐसी बात न थी । टैप रिकार्ड अदालतों में प्रामाणिक नहीं माने जाते हैं । उनकी गवाही को मान्यता नहीं मिलती थी । क्योंकि अभियुक्त अक्सर उस आवाज को अपनी मानने से मुकर जाते थे । कोई दूसरे की आवाज की नकल भी कर सकता है । इस सन्देह में उन रिकार्डों को प्रामाणिक नहीं माना जाता था ।

अंगूठे की और उंगलियों की छाप ही अब तक पूर्ण प्रामाणिक मानी जाती थी क्योंकि संसार में किन्हीं दो व्यक्तियों के अंगूठे की रेखायें एक सी नहीं होतीं । दस्तखत तो जाली बन सकते हैं पर अंगूठा छाप की नकल असम्भव है । इसी प्रकार संसार में दो व्यक्तियों की आवाज भी एक सी नहीं होती अब ध्वनि अंकन को भी वही मान्यता प्राप्त हो गई है । यह आविष्कार डॉ. कर्स्टा न्यू जर्सी के वायस प्रिंट प्रयोगशाला ने किया है। इस पद्धति के अनुसार आवाज को तीन कोणों से अंकन किया जाता है । आड़ा अंकन समय की लम्बाई बताता है। खड़ा ध्वनि की गति और बुलन्दी का अंकन नक्शे जैसी रेखाओं के रूप में होता है । इस प्रक्रिया के आविष्कर्त्ता डॉ. कर्स्टा का कथन है कि बच्चा जब बोलना सीखता है तब उसके ओठ, दाँत, जीभ, तालु, जबड़ा, कण्ठ आदि की मांसपेशियों के सिकुड़ने फैलने का ढंग दूसरों से सर्वथा नहीं मिलता । उसमें कुछ भिन्नता विशेषता रह जाती है । इसलिए हर व्यक्ति की आवाज में दूसरों की अपेक्षा अन्तर रहता है इस अन्तर को अंकित करके आवाज की अपने ढंग की एक तस्वीर ही बन सकती है ।

इस आविष्कार के आधार पर कितने अभियुक्तों को पकड़ा जा सका है और कितने ही अपराधी दण्ड के भागी हुए हैं जिस प्रकार अंगूठे की छाप या अपने फोटो से कोई इन्कार नहीं कर सकता उसी प्रकार अपनी आवाज के अंकन से इन्कार करना भी अब सम्भव नहीं रहा । अब यह प्रमाणित हो गया है कि ध्वनि तरंगों के रूप में फैलती रहने वाली आवाजों को भी स्वरूप एवं पदार्थ के रूप में परिणत किया जा सकता है ।

आवाज निस्सन्देह एक पदार्थ है । वाणी दूसरों पर प्रभाव डालती है । विद्यालयों में ज्ञान वृद्धि का माध्यम वाणी ही है । भावनाओं को उभारने और तरंगित करने का काम संगीत कितनी अच्छी तरह करता है यह सभी को विदित है । अपमान सूचक शब्द करने से दूसरों को कैसा क्रोध आता है और फलस्वरूप कितना अनर्थ होता है उसका उदाहरण द्रौपदी द्वारा थोड़े से अपमानजनक शब्द कह देने से महाभारत का होना प्रसिद्ध है । यह रोज ही देखा जाता है कि कटुवचन से मित्रों को शत्रु और मधुर वाणी से शत्रुओं को मित्र बनाया जा सकना सम्भव होता है । दुःखद, शोक-संताप की घटना सुनकर कैसा बुरा हाल हो जाता है। शब्दों की भावोत्तेजक क्षमता स्पष्ट है ।

इतना ही नहीं उनमें वह सामर्थ्य भी विद्यमान है जो अपने आपको—दूसरों को और समस्त सूक्ष्म जगत को प्रभावित कर सके । मन्त्र विज्ञान द्वारा यही सम्भव होता है । सितार के तारों पर क्रमबद्ध उंगलियाँ रखने से जिस प्रकार विभिन्न प्रकार की स्वर लहरियाँ निकलती हैं उसी प्रकार शब्दों के उच्चारण का एक लयबद्ध क्रम रहने से उसमें भी एक विशेष प्रकार के—विशेष शक्तिशाली—और विशेष प्रभावोत्पादक कम्पन उत्पन्न होते हैं । मन्त्रों में केवल शब्दार्थ का ही महत्त्व नहीं है । शिक्षा तो गद्य, पद्य से और भी अच्छी तरह दी जा सकती है । मन्त्रों में अक्षरों के क्रम का तथा उनके उच्चारण की विशेष विधि-व्यवस्था का ही अधिक महत्त्व है । कण्ठ,

तालु, दाँत, ओठ, मूर्धा आदि जिन स्थानों से शब्दोच्चारण होता है उनका सीधा सम्बन्ध मानव-शरीर के सूक्ष्म संस्थानों से है । षट्चक्र, उपात्मक एवं दिव्य वादियों, ग्रन्थियों का सूक्ष्म शरीर संस्थान अपने आप में अद्भुत है । इन दिव्य अंगों के साथ हमारे मुख यन्त्र के तार जुड़े हुए हैं । जिस प्रकार टाइप राइटर की चाबियाँ दबाते चलने से ऊपर अक्षर टाइप होते चलते हैं ठीक इसी प्रकार मुख से उच्चारण किये हुए—विशेष वैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ विनिर्मित मन्त्र गुम्फन का सीधा प्रभाव उपरोक्त शक्ति तरंगों का प्रवाह चल पड़ता है । यह प्रवाह मन्त्र विज्ञानी को स्वयं लाभान्वित करता है । उसकी प्रसुप्त क्षमताओं को जगाता है । भीतर गूँजते हुए वे मन्त्र कम्पन यही काम करते हैं और अब जब वे बाहर निकलते हैं तो वातावरण को प्रभावित करते हैं । सूक्ष्म जगत में अभीष्ट परिस्थितियों की सम्भावनाओं का सृजन करते हैं और यदि किसी व्यक्ति विशेष को प्रभावित करना है तो उस पर भी असर डालते हैं । मन्त्र विद्या इन तीनों प्रयोजनों को पूरा करती है ।

राडार (रेडियो डिक्टेशन एण्ड रेजिंग) शब्द का संक्षिप्त नामकरण है । ध्वनि तरंगें ठोस वस्तुओं द्वारा परावर्तित होती हैं । प्रत्येक ध्वनि प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है । देखा जाता है कि किसी बड़ी इमारत, गुम्बज, पक्का कुआँ आदि की तरफ मुँह करके जोर की आवाज की जाये तो उसकी प्रतिध्वनि होती है और कुछ देर बाद वह वहीं लौट आती है जहाँ से कि वह उत्पन्न हुई थी, इस ध्वनि के उच्चारण और वापिस के समय का अन्तर यदि ठीक प्रकार ज्ञात हो सके तो दूरी की गणना हो सकती है । इस प्रकार वेग, प्रतिध्वनि के उतार-चढ़ाव के आधार पर उस पदार्थ के स्वरूप एवं अन्तराल को जाना सकता है जिससे टकरा कर वह वापिस आई । रेडियो तरंगें भी तरंगों की तरह ही परावर्तित होती हैं । इनके आधार पर 'राडार' यन्त्र का आविष्कार हुआ है ।

एक सैकिण्ड के दस लाखवें भाग को माइक्रो सैकिण्ड कहते हैं । वायु मण्डल एवं शून्य आकाश में रेडियो तरंगें लगभग २,९५,००० किलो मीटर प्रति सैकिण्ड की चाल से दौड़ती है । रेडियो प्रेषित ध्वनि तरंगें—बहुत दूरी पर भी अपने लक्ष्य तक पहुँच कर कुछ ही माइक्रो सैकिण्डों में वापिस आ जाती हैं । इसलिए आकाश में उड़ने वाले वायुयान आदि की दूरी—चाल, स्थिति का पता आसानी से लगा लिया जाता है और यदि वह शत्रु का हो तो उसे निपटना भी सम्भव हो जाता है । इसी प्रकार इस प्रणाली से जलयानों की भी सही स्थिति का पता चल जाता है । राडार पद्धति बिना सम्पर्क साधे ही दूसरे जहाजों के सन्देश संकेत प्राप्त करने में, समुद्री तूफानों का पता लगाने में, ऋतु परिवर्तन, खगोल विद्या आदि कितने ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अपनी उपयोगी भूमिका प्रस्तुत कर रही है ।

राडार हमारे शरीर में भी विद्यमान है और वह भी यन्त्रों द्वारा बने हुए राडार की तरह काम करता है । उसे जागृत, सशक्त और सक्रिय बनाने के लिए मन्त्र विद्या का उपयोग किया जाता है । शब्द विद्या के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मन्त्रों के अक्षरों का चयन होता है । मंत्र रचना कविता या शिक्षा नहीं है । शिक्षा भी उनमें हो सकती है । पर वह गौण है । कविता की दृष्टि से भी मन्त्रों का महत्त्व गौण है । प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में २३ ही अक्षर हैं । जबकि छन्द शास्त्र के अनुसार उसमें २४ होने चाहिए । इस दृष्टि से उसे साहित्य कसौटी पर दोषयुक्त भी ठहराया जा सकता है । पर शक्ति तत्त्व का जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ सौ टंच खरा है । उसकी सामर्थ्य का कोई वारापार नहीं ।

शब्द मन्त्र विज्ञान में केवल जप उच्चारण ही पर्याप्त नहीं । उनकी शब्द शक्ति को ही सर्वांगपूर्ण नहीं मान लेना चाहिए । वरन् उसमें दूसरा पूरक तत्त्व और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । इतना अधिक महत्त्वपूर्ण कि उसके बिना अध्यात्म विद्या की गरिमा प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकती। वह तथ्य है मन्त्र साधक की मनोभूमि तथा आन्तरिक स्थिति । मनुष्य के तीन शरीर हैं—स्थूल—सूक्ष्म और कारण । इन तीनों का ही समन्वय होने से मन्त्र शक्ति का समुचित उद्भव होता है। स्थूल शरीर से जप, अनुष्ठान, पूजा, उपचारपरक, कर्म-काण्ड सम्पन्न किये जाते हैं । आहार-विहार, उपवास, ब्रह्मचर्य आदि की बाह्य तपश्चर्या स्थूल शरीर से होती है। यह मन्त्र विद्या का पहला आधार हुआ । दूसरा आधार है—सूक्ष्म शरीर, मन, मस्तिष्क । साधक का दृष्टिकोण उच्च और पवित्र होना चाहिए । उसकी विचारणा, आदर्शवादिता संयमशीलता, चरित्रनिष्ठा, उदारता, सेवा बुद्धि उत्कृष्ट होनी चाहिए । सूक्ष्म शरीर के शब्द का उद्भव इसी तरह होता है । तीसरी शक्ति तीसरे शरीर से—कारण शरीर से उत्पन्न होती है। अन्तःकरण से, यह क्षेत्र भावना भूमि है । साधक की भावनाओं में

श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और तन्मयता का गहरा पुट होना चाहिए। अविश्वासी, व्यग्र, अश्रद्धालु, भावना, रहित ऐसे ही उद्धत मन से बेगार टालने की तरह उपेक्षापूर्वक उपासना की जाय तो समझना चाहिए कि साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग छूट गया । ऐसी दशा में सफलता भी संदिग्ध रहेगी ।

ऊपर शब्द शक्ति के अतिरिक्त मन्त्र विद्या का दूसरा आधार साधक का व्यक्तित्व बताया गया है । यदि स्थूल शरीर से निर्धारित कर्म-काण्ड सूक्ष्म शरीर से सद्विचार और सदाचरण, कारण शरीर से भाव भरी श्रद्धा तन्मयता का त्रिविधि समावेश किया जा सके तो साधना के उपयुक्त व्यक्तित्व तैयार हो गया और उसका अभीष्ट परिणाम निश्चित रूप से होकर रहेगा ।

बढ़िया बन्दूक में—बढ़िया किस्म का कारतूस लगाकर ही कुशल निशानेबाज लक्ष्य वेध कर सकता है। मन्त्र विद्या की स्थिति भी यही है । अन्तःकरण की भावनायें, मस्तिष्क की नीति निष्ठायें, शरीर की विधि-व्यवस्थायें मिलकर साधना के उपयुक्त व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं । उसे बढ़िया बन्दूक कह सकते हैं । शब्द शास्त्र के अनुरूप तत्त्व ज्ञानियों द्वारा सृजन किया हुआ अनुभूत मन्त्र बढ़िया कारतूस है । उसे यदि मन्त्र साधक विश्वास और तत्परता के साथ प्रयोग कर सके तो असफलता के कोई कारण नहीं । मन्त्र शक्ति—यन्त्र शक्ति की तरह ही सुनिश्चित विज्ञान के आधार पर विनिर्मित है उसका ठीक तरह प्रयोग किया जा सके तो असफलता का कोई कारण नहीं है ।

अध्यात्म शब्द विद्या को मन्त्र विद्या को तत्त्व ज्ञानियों ने 'वाक्' कहा है । यह वाक् अध्यात्म शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण है, इसकी विवेचना करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है—

**प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुः ।**

—*ऋग् १ /९६ /७*

जिस प्रकार समुद्र में तरंगें उठती हैं उसी प्रकार वाक् की तरंगें भी कम्पन के सहित गति करती हैं ।

**प्रजापतिर्वा इदमेक आधीतस्य वागेव स्तमासीत् वाग द्वितीया स एक्षते मामेव वाच विसृजा । इयं वा इद सर्व विभवक्ष्येष्यतीति ।**

—*ताण्डय ब्रा. २० /१४ /२*

प्रजापति अकेले थे । उनके अतिरिक्त वाक् ही उनकी अपनी सम्पत्ति थी । उनने इच्छा की कि मैं इस वाक् का सर्जन करूँ । यह वाक् ही सब कुछ हो जायगा ।

**तद्यत किञ्चार्वाचीनं ब्रह्मणस्तद् वागेव सर्वम् ।**

—*जै. उ. १ /१३ /१ /३*

ब्रह्म के पश्चात् जो कुछ है सो वाक् ही है ।

**वाग् वै त्वष्टा ।**

*ऐत. २ /४*

वाक् ही त्वष्टा देवता है ।

**वाक् वैविश्वकर्मर्षिः वाचाहीद सर्वं कृतम् ।**

—*शतपथ ८ /१ /२ /९*

यह वाक् ही विश्व कर्मा ऋषि है । इसी से यह सारा संसार रचा गया ।

**यो वै तां वाचं वेद यस्मा एव विकारः स सम्प्रतिविदकारी वै सर्वा वाक् ।**

—*ऐ. ब्रा. २ /३ /६*

जो उस आदिमूल वाक् को जानता है वह सम्पत्तिविद् सिद्ध पुरुष कहलाता है ।

मन्त्र विद्या की महान् सामर्थ्य को यदि ठीक तरह समझा जा सके और उसका समुचित प्रयोग किया जा सके तो ये आध्यात्मिक प्रयास किसी भी भौतिक उन्नति के प्रयास से कम महत्त्वपूर्ण और कम लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता ।

## मन्त्र विद्या का वैज्ञानिक आधार

सुप्रसिद्ध अंग्रेज गायिका श्रीमती वाट्स हग्स एक बार अपने दरवाजे पर बैठी एक राग गा रही थीं जब जब वे राग गाते तन्द्रित अवस्था (निमग्नता) की स्थिति अनुभव करतीं उन्हें एक सर्प की आकृति प्रगट होती दिखाई देती । वे समझ न पाती थीं कि वस्तुतः वहाँ कोई सर्प आ जाता है अथवा वह केवल काल्पनिक अनुभूति भर है । परीक्षा के लिये उन्होंने उस स्थान में बहुत बारीक कणों वाली रेत बिछा दी और फिर से वही राग गाने लगीं । राग गाते गाते उन्हें फिर वैसी ही अनुभूति हुई अब उन्होंने राग बन्द किया और रेत के निकट जाकर देखा कि उसमें एक सर्प की आकृति सचमुच बनी हुई है ।

इस आश्चर्य ने उन्हें विविध प्रकार के राग सीखने और उनका विकास करने की प्रेरणा दी । राग में यद्यपि स्वर का आनन्द नहीं मिलता तथापि उसमें भावनाओं को दिशा—विशेष में निक्षेपित करने की प्रबल शक्ति होती है । उससे रस मिलता है । यह भाव तरंगें सूक्ष्म आकाश

के परमाणुओं में उपस्थित विद्युत में कम्पन उत्पन्न करती हैं यह कम्पन अपनी अपनी तरह से परिणाम उपस्थित कर सकते हैं प्राचीन काल में सिद्ध गायक मल्हार राग गाते थे तो वर्षा होने लगती थी, दीपक राग गाने से बुझे हुये दीपक जल उठते थे, मृग रंजनी गाने से जंगल के हिरण और मृग जीवन और मृत्यु का भय त्यागकर विमोहित हुये चले आते थे संगीत स्वरों से आबद्ध सृष्टि अन्तराल में जबर्दस्त् क्रान्ति उत्पन्न करने की एक महान उपलब्धि भारतीय आचार्यों ने प्राप्त की थी । वाट्स हग्स का यह नन्हा सा प्रयोग उस उपलब्धि की एक क्षीण झाँकी मात्र कही जा सकती है ।

गायत्री उपनिषद् की तृतीय कण्डिका में महर्षि मैत्रेय ने आचार्यमौद्गल्य से पूछा-देव ! मन और वाक् (ध्वनि) में क्या सम्बन्ध है इन दोनों का प्रकृति से क्या सम्बन्ध है इस पर महर्षि उत्तर देते हैं—

**मन एव सविता वाक् सावित्री, यत्र ह्येव मनस्तद्वाक् ।**

**यत्र वै वाक् तन्मन इति एते द्व योनी एकं मिथुनम् ॥१॥**

मन सविता है वाक् सावित्री जहाँ मन है वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है वहाँ मन है ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं ।

दृश्य जगत वस्तुतः सूर्य का ही व्यक्त रूप है । सूर्य न हो तो सारी सृष्टि निष्प्राण हो जाये । प्रकृति की रचना सूर्य ही करता है यह रचना शब्द द्वारा ही सम्पन्न करने का अभिलेख शास्त्रकार ने किया है । अर्थात् मन को शब्द में लय, गति या मन्त्र में बाँधकर स्थूल आणुओं की उसी प्रकार स्थिर किया जा सकता है जिस प्रकार से सूर्य अपनी प्रकृति को स्थिर करता है ।

श्रीमती वाट्स हग्स के इस प्रयोग में स्वर को मन से बाँधकर स्थूल परिणाम उपस्थित करना इस शास्त्रीय सत्यता का प्रमाण था । लार्ड लिटन ने इस प्रयोग की बात सुनी, तो उन्होंने श्रीमती हग्स को अपने पास बुलाया और उन्हें अपनी सभा का माननीय सदस्य बनाकर वैज्ञानिकों के समक्ष इस प्रकार का प्रयोग करने का आग्रह किया । श्रीमती वाट्स हग्स ने तब रागों के द्वारा विभिन्न आकृति प्रकृति के फूलों फलों से लदे वृक्ष, सर्पाकार त्रिकोण, षटकोण तारे समुद्र, पक्षी आदि अनेकों प्रकार की आकृतियाँ बनाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया ।

आज ऐसे यन्त्रों का विकास हो चुका है जिसमें शब्द को सूक्ष्म विद्युत तरंगों में बदल कर मोटर गाड़ियाँ चलाने के काम लिये जाते हैं पर बिना किसी यन्त्र के प्रकृति में परिवर्तन उत्पन्न करने का यह संगीत—विज्ञान अपने आप में अनोखा था और यह बताता था कि देव शक्तियाँ मन्त्र द्वारा, शब्द विज्ञान द्वारा ही सूक्ष्म स्थूल जगत का नियमन करती हैं । उन विद्याओं के ज्ञाता भी वैसे ही चमत्कार कर सकने में समर्थ हों तो इसे अतिशयोक्ति नहीं मानना चाहिए । मन्त्र स्वर या शब्द विज्ञान एक ही सत्य के भिन्न रूप हैं ।

इटली की एक युवती ने सामवेद की एक ऋचा पर—सितार द्वारा अभ्यास किया और उसने हजारों दर्शकों के बीच उसका प्रदर्शन करके दिखाया, कल्याण के "साधना विशेषांक" में पं. भगवानदास जी अवस्थी ने इसका वर्णन किया है । फ्रांस की मैडम लेंग ने विभिन्न राग गाकर देवी मेरी और जेसस क्राइस्ट के चित्र बनाकर दिखाये । और भारतीय मन्त्र शास्त्र के इस सिद्धान्त की पुष्टि की कि प्रकृति के हर स्थूल अणु को मानसिक एकाग्रता और ध्वनि के द्वारा किसी भी क्रम में सजाकर कैसा भी आग, पानी, आकाश, धरती, प्रकाश, पहाड़, नदी, पक्षी, जीव-जन्तुओं का रूप दिया जा सकता है ।

मन्त्र द्वारा शाप और वरदान, रोगों से मुक्ति, मारण, मोहन, उच्चाटन, अभिचार, कृत्याघात आदि प्रयोग विराट् चेतन शक्तियों द्वारा ध्वनि के माध्यम से उत्पन्न गति जैसे ही क्रिया-कलाप हैं । मन्त्र शक्ति के भण्डार होते हैं यदि मन की एकाग्रता द्वारा शब्द शक्ति प्रयोग की बात मनुष्य सीख ले तो वह साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा हजारों गुना अधिक शक्तिशाली हो सकता है । मलाया के राजा परमेसुरी अगोंग ने अपनी पुत्री राजकुमारी शरीफा साल्वा का विवाह निश्चित किया,तैयारियाँ कई दिन पूर्व से ही प्रारम्भ हुईं और विवाह के एक दिन पूर्व ही धूमधाम में बदल गईं ।

मलाया सघन वर्षा के लिये सारे संसार में विख्यात है । यहाँ काफी घने जंगल हैं और उनमें तरह-तरह के जीव-जन्तु परमात्मा की विलक्षण सृष्टि सर्जना का बोध कराते हैं मलय प्रायद्वीप के दक्षिणी सिरे पर स्थित १२८ ४७८ वर्ग मील क्षेत्र और १०६७४२०० जनसंख्या वाले इस देश में मलय चीनी, भारतीय और बोर्नियो जाति के लोग रहते हैं । भारत की तरह मंत्र-तंत्र पर इस देश के लोग बहुत अधिक विश्वास रखते हैं । भारत में तो मंत्र साधना ने अब अधिकांश या तो आडम्बर का रूप ले लिया है या अनभिज्ञता का, पर मलाया में आज भी मंत्र

शक्ति का सर्वत्र बोलबाला है सार्वजनिक समारोहों तथा राजकाज तक में मंत्र शक्ति का सहयोग लिया जाता है ।

इधर विवाह की मंगल तैयारियाँ हो रही थीं उधर आसमान में बादल सघन होते जा रहे थे प्रकृति और प्राणिजगत की इच्छाओं में विलक्षण वैषम्य पाया जाता है इसलिये प्रकृति को लोग विद्रोहिणी मानते हैं कई बार उसका दमन चक्र चलता है तो देश के देश नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं किन्तु भारतीय मान्यता इन सबसे भिन्न यह है कि प्रकृति पुरुष की आत्मिक चेतना की सहचरी है अपनी भावचेतना या विचार शक्ति द्वारा प्रकृति के कार्यों में ठीक उसी प्रकार व्यवधान और रोक उत्पन्न की जा सकती है जिस प्रकार प्रकृति मनुष्यों के काम में अवरोध उत्पन्न कर देती है यह शक्ति तप और कष्टसाध्य तो है तत्त्व वेत्ता उसके प्रदर्शन को अनुचित मानते हैं और प्रकृति को व्यवस्थापिका मान कर उसके विधान में हस्तक्षेप न करने के पक्ष में भी हैं किन्तु जब मनुष्य यह चुनौती देता है कि आत्म-शक्ति नाम की प्रकृति से बड़ी कोई शक्ति नहीं तो सिद्धि-सम्पन्न योगी इस तरह के चमत्कारों को भी बुरा नहीं मानते । यहाँ भी उद्देश्य लोगों का ध्यान सूक्ष्म चेतना की ओर प्रेरित करना ही होता है ।

विवाह प्रारम्भ होने में अभी कुछ देर थी कि बरसात प्रारम्भ हो गई । इतनी घनघोर बरसात हुई कि नदी-नाले उमड़ पड़े एक बार तो लगा कि विवाह का शाही रंग नष्ट हो गया पर यह चिन्ता प्रकृतिवादी को हो सकती है अध्यात्मवादी को नहीं । महाराज परमेश्वरी को अपने देश की मंत्र-शक्ति पर विश्वास था । रहमान नामक एक तान्त्रिक स्त्री को बुलाया गया । आज एक प्रकार का रसायन बादलों में छिड़क कर थोड़ी सी कृत्रिम वर्षा कर लेने की योग्यता तो वैज्ञानिकों ने पा ली है पर यह अध्यात्म की शक्ति है जो इच्छानुसार प्रकृति के काम को भी रोक सकती है अभी तक वैज्ञानिक भी यह शक्ति प्राप्त नहीं कर सके ।

रहमान ने प्रयोग किया और तब वहाँ का दृश्य ही कुछ और था जानते सब हैं कि जब पृथ्वी के पूर्ण भाग में सूर्य का प्रकाश रहता है तब पश्चिमी गोलार्द्ध में रात्रि का सघन अन्धकार विराट की यह धूप छाँव भले ही कोई न देख पाता हो किन्तु उस दिन न केवल मलयवासियों ने वरन् सुदूर देशों से पधारे शाही अतिथियों ने भी देखा, सारे नगर में वर्षा हो रही है पर जिस क्षेत्र में विवाह समारोह सम्पन्न हो रहा है वह बादलों से घिरा होने पर भी उसमें एक बूँद भी पानी नहीं गिर रहा । विवाह आयोजन जिस धूमधाम से प्रारम्भ हुआ था समापन भी उसी धूम-धाम से हुआ तब तक उतने क्षेत्र में एक बूँद भी पानी नहीं हुआ और जैसे ही रहमान ने दूसरा मन्त्र फूँका कि उस क्षेत्र में भी वर्षा प्रारम्भ हो गई ।

सन् १९६३-६४ में इसी प्रकार राष्ट्रमंडलीय क्रिकेट दल मलाया में खेलने गया । प्रकृति को तो परमात्मा का आदेश पालन करना ठहरा वह मनुष्य की सुविधा-असुविधा की बात नहीं देखती खेल अभी शुरू होने को ही था कि जोरदार बरसात शुरू हुई । मलाया की क्रिकेट एसोसियेशन के अध्यक्ष ने रैम्बाऊ के एक सुविख्यात वमोह (तांत्रिक को मलाया में वमोह कहते हैं) को बुलाया। खेल ठीक समय प्रारम्भ कर दिया गया क्योंकि वमोह आ गया था आधे लोग खेल देख रहे थे आधे मंत्र के विचित्र प्रमाण को । सारे नगर कुआलालम्पुर में और दूर-दूर तक वर्षा हो रही थी किन्तु क्रिकेट के मैदान में एक बूँद भी वारिस नहीं हुई मानों उतने स्थान पर शब्द शक्ति ने कोई विशाल छतरी बुन दी हो । खेल समाप्त होने तक यही स्थिति रही । १५ मार्च, १९६४ के धर्म युग में इस समाचार को बड़े आश्चर्य के साथ छापा गया ।

ऐसी ही स्थिति एक बार "दि इयर आफ दि ड्रेगन" फिल्म की शूटिंग के अवसर पर भी उपस्थित हुई थी । शूटिंग प्रारम्भ हुई ही थी कि वारिस आ गई । विख्यात वमोह (तांत्रिक) अब्दुल्ला बिन उमर की सेवायें ली गईं और उसी का परिणाम था कि जिस क्षेत्र में शूटिंग हो रही थी उस क्षेत्र में एक बूँद भी पानी नहीं हुआ उसके चारों ओर इतनी सघन वर्षा हुई कि सारा क्षेत्र जलमग्न हो गया।

## मंत्र विद्या ध्वनि विज्ञान पर आधारित है

प्राचीन काल में किसी देश पर कोई दूसरा राजा आक्रमण करता था तो उसकी सैन्य गतिविधियों को जानने के लिए पृथ्वी से कान सटाकर यह पता लगाया जाता था कि हलचल किस दिशा में—कितनी दूरी पर हो रही हैं। ध्वनि के बारे में यह समझा जाता है कि वह वायु के माध्यम से सुनी जाती है पर तथ्य यह है कि पृथ्वी की ध्वनि ग्राहक और प्रसारक शक्ति वायु से कहीं अधिक है।

आमतौर से शब्दों को सुनने के लिए कानों का प्रयोग किया जाता है। पर कानों की सामर्थ्य बहुत स्वल्प है। इसका एक कारण तो यह है कि ध्वनियाँ एक जैसी नहीं

होतीं। कुछ के कम्पन्न ही ऐसे होते हैं जो हमारे कानों के पर्दों से टकरा कर मस्तिष्क द्वारा अनुभव की जा सकने जैसी हलचलें उत्पन्न कर सकें। जो इस स्तर की होती हैं उन्हें ही कान सुन सकते हैं। दूसरा कारण यह है कि वे कानों की पकड़ में आ सकने योग्य स्तर की होते हुए भी बहुत दूरी के कारण इतनी हलकी और झीनी पड़ जाती हैं कि कान उनका ठीक तरह अनुभव न कर सकें। कानों की पकड़ से बाहर की इन ध्वनियों को सुनना कई दृष्टि से आवश्यक है। रचनात्मक प्रयोजनों के लिए इतनी उपयोगिता के साथ ही आपत्ति से बचने के लिए भी इनकी आवश्यकता है।

मेघों की दूरगामी हलचलों को मोर के कान सुन लेते हैं और वह उस पूर्व सूचना की अभिव्यक्ति अपनी प्रसन्नता प्रकट करने वाली आवाज में बार-बार करता रहता है। मकड़ी को वर्षा का पूर्वाभास होता है और वह अपने जाले बनाने समेटने का उपक्रम उसी आधार पर करती है। मकान गिरने की पूर्व हलचलें बिल्ली के कान आसानी से सुन लेते हैं और वह किसी दीवार के गिरने या छत के बैठने से पहले ही अपने बच्चों को ले भागती है। मनुष्य ने इस आवश्यकता की पूर्ति वैज्ञानिक उपकरणों के ध्वनि संवेदक यन्त्रों के माध्यम से की है।

इस दिशा में वैज्ञानिक प्रगति का प्रथम चरण इसी मान्यता को लेकर आगे बढ़ा था कि वायु की अपेक्षा पृथ्वी की ध्वनि ग्राहक शक्ति अधिक है। द्वितीय महायुद्ध में शत्रु सेना की हलचलों को जानने के लिए एक ऐसा यन्त्र बना था जो पृथ्वी तल पर थोड़ा गाड़ दिया जाता था थोड़ा ऊपर रहता था, इसमें अभ्रक का खोल और भीतर पारा भरा रहता था। दो नलियाँ उससे निकलती थीं और दोनों कानों में लगाई जाती थीं। जिस तरह हृदय की धड़कन जानने के लिए छाती पर 'स्टेस्थेस्कोप' लगाकर भीतर की स्थिति जानी जाती है, ठीक उसी प्रकार वह यंत्र भूतल पर हो रही दूरवर्ती हलचलों की जानकारी देता था।

पीछे आकाश में भरी विद्युत ऊर्जा और कम्पनों को समझने वाले यन्त्र चले। इनमें प्रमुख था—'माइक्रासफोन' यह आकाश में हो रही हलचलों को पकड़ता था। शत्रु सेना की बारूदी हलचलें इससे सहज ही सुनी जा सकती थीं बन्दूक या तोप दागने में तीन प्रकार की आवाजें होती हैं। पहली आवाज उस समय होती है जब नली से बाहर गैस निकलती है, दूसरी तब—जब हवा में गोली सनसनाती हुई दौड़ती है, तीसरी तब—जब गोली निशाने से टकराती है। इन तीनों का प्रथक्करण कानों द्वारा सम्भव नहीं। क्योंकि यह हलचलें इतनी तेजी से होती हैं कि कान और मस्तिष्क उसका भेद समझने में समर्थ नहीं होते। किन्तु यंत्रों से यह वर्गीकरण आसानी से हो जाता है और पता चल जाता है कि बारूदी अस्त्र कितनी संख्या में कितनी दूरी पर किस स्तर की गोलाबारी कर रहे हैं।

पृथ्वी और आकाश के अतिरिक्त पीछे जल की सतह पर दौड़ती हुई ध्वनियों द्वारा भी जानकारियाँ प्राप्त करने की चेष्टा की गई और सफलता मिली। पानी के जहाजों और पनडुब्बियों की हलचलें समुद्र की सतह पर दौड़ती हैं। पृथ्वी की भाँति इस जल सतह के साथ जुड़ी हुई ध्वनि प्रेरणा से भी यह जाना जाने लगा कि कहाँ, कितनी दूर पर किस स्तर की क्या हलचल हो रही है, इस जानकारी के स्रोत खुल जाने पर समुद्र युद्ध में सतर्कता बरतने का द्वार खुल गया। जर्मन पनडुब्बियों ने द्वितीय महायुद्ध में भी आतंक खड़ा किया था उससे एक बार ऐसा लगने लगा था कि समुद्र साम्राज्य पर जर्मन का आधिपत्य है । और वह उसका शासक बन गया है। किन्तु उस आतंक को विज्ञान की उपलब्धि ने समाप्त कर दिया जिसके कारण पनडुब्बियों की रहस्यमय हलचलों का न केवल पता ही लगा लिया गया वरन् उन्हें कारगर ढंग से नष्ट भी कर दिया गया। इसके लिए हाइड्राफोन यन्त्र के आविष्कार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही।

पानी की सतह पर जो ध्वनि कम्पन दौड़ते हैं उनकी प्रतिक्रियाएँ उसी मूल उद्‌गम की ओर लौटती हैं जहाँ से वह उत्पन्न हुई थीं। हाइड्राफोन की विद्युत उसी प्रतिध्वनि का पीछा करती है और यह बता देती है कि प्रस्तुत ध्वनि प्रवाह का उद्‌गम किस आकृति प्रकृति का है।

अब वायुयान, जलयान ही नहीं धरती के भीतर और ऊपर जो कुछ भी है उसे आँखों से देखने की जरूरत नहीं है वह सारी जानकारी ध्वनि कम्पनों के आधार पर ही जानी जा सकती है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, गर्मी इन सबको अब मात्र जड़ तत्त्व नहीं समझा जा रहा वरन् उनके साथ चलने वाले ध्वनि प्रवाहों की अपनी महत्ता है, उन प्रवाहों की अभी तो हलचलें हो रही हैं इतना ही जाना जा सकता है। यह शोध जैसे-जैसे आगे बढ़ेगी वैसे ही वैसे हर तत्त्व एक बोलती बात करती इकाई की तरह अपने इर्द-गिर्द रहस्यों का उद्‌घाटन करता दिखाई देगा।

घटनाएँ ध्वनि का रूप धारण करती हैं। ध्वनि और प्रकाश दो ऐसे आधार हैं जिनके आधार पर स्थूल को सूक्ष्म में और सूक्ष्म को स्थूल में परिवर्तित किया जा रहा है। अन्तरिक्ष में विविध स्तर के ध्वनि कम्पन निरन्तर गतिशील रहते हैं यदि किसी को कर्णेन्द्रिय से अधिक उच्च स्तर की श्रवण शक्ति मिल जाय तो वह श्रवणातीत ध्वनियों को सुन समझ सकता है और भूत तथा वर्तमान में घटित हुए दूरवर्ती अथवा समीपवर्ती घटनाओं को जान समझ सकता है। नादयोग के अभ्यासी इसी शक्ति को जगाते हैं और सूक्ष्म जगत में हो रही हलचलों के आधार पर भूत, वर्तमान तथा भविष्य का यह ज्ञान प्राप्त कर ध्यान योग से यही प्रयोजन प्रकाश के रूप में परिणामों के माध्यम से पूरा किया जाता है।

मन्त्रशक्ति के द्वारा संभव हो सकने वाले चमत्कारों की पृष्ठभूमि में ध्वनि विज्ञान के सिद्धान्त ही काम करते हैं। एक विशेष मन:स्थिति में—परिष्कृत शरीर स्थिति में—विशेष कर्मकाण्ड एवं विशेष उच्चारण अपने ढंग की एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न करते हैं। उसे मन्त्रशक्ति कहा जाता है। इसका प्रयोग कारतूस भरी बन्दूक की तरह किया जा सकता है। सूक्ष्म ध्वनि वाह को समझ कर जहाँ रहस्यमय अविज्ञात को ज्ञात बनाया जा सकता है वहाँ इसी ध्वनि शास्त्र का प्रहार करके अवरोधों और दुरित दुर्गमों को भी चूर्ण विचूर्ण किया जा सकता है। मन्त्रविद्या एक प्रकार से ध्वनि विज्ञान का ही महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

हारमोनियम या पियानों में 'स्वर सप्तक' कीबोर्ड तथा उनसे जुड़ी हुई रीड़ें होती हैं। कीबोर्ड की रीड़ें दबाते हैं तो सम्बन्धित केन्द्रों से विभिन्न प्रकार के स्वर निकलते हैं। उस कुन्जी दबाने के क्रम को यदि लय बद्ध किया जा सके तो इच्छित राग रागनियाँ बनती हैं। मुख एक प्रकार का कीबोर्ड है उसमें से विभिन्न शब्दों के उच्चारण मेरुदण्ड स्थिति पटचक्रों पर प्रभाव डालते हैं। यों वार्तालाप में असम्बन्ध उच्चारण होता रहता है पर यदि जप की शैली में कुछ नियत शब्द गुंथल बार-बार क्रमबद्ध संस्थानों को तरंगित एवं झंकृत करती है। यही कम्पन साधनात्मक क्रिया कृत्यों की हलचलों के साथ मिलकर एक ऐसी दिव्य चेतन धारा उत्पन्न करते हैं जिसका प्रयोग अभीष्ट प्रयोजनों के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

## मंत्र विद्या-ध्वनि शक्ति का उच्चस्तरीय उपयोग

ध्वनि को सामान्यतया कानों को अमुक प्रकार की जानकारी देने का माध्यम माना जाता है। किसी शब्द को सुनकर उसमें सन्निहित अर्थ का बोध प्राप्त किया जाता है। अथवा किसी हलचल का—घटनाक्रम का अनुमान लगाया जाता है। यह सर्वविदित ध्वनि परिचय हुआ। किन्तु गहराई में उतरने पर ध्वनि की सामर्थ्य उसकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत है जैसा कि साधारणतया अनुमान लगाया जाता है।

विज्ञान ने ध्वनि को भी ऊर्जा वर्ग में गिना है। यह ऊर्जा आमतौर से कानों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचती है और अपने लिए उपयुक्त संस्थानों को तरंगित करके अपने प्रभाव से प्रभावित करती है। इस ज्ञान के सहारे ही जीवन का अधिकांश काम चलता है। ध्वनि के माध्यम से बालकों को अभिभावकों की भाषा सीखने का अवसर मिलता है उसके बाद ज्ञान क्षेत्र की अन्यान्य उपलब्धियों का अधिकांश उपार्जन कान के माध्यम से ही होता है। बधिर व्यक्ति गूँगा भी होता है और उसकी ज्ञान परिधि अन्धे की अपेक्षा भी कम रह जाती है। ग्रहण की तरह प्रेषण भी एक काम है। अभिव्यक्तियों, आवश्यकताओं, प्रेरणाओं का आदान-प्रदान प्राय: ध्वनि की सहायता से ही सम्भव होता है। लेखनी से भी प्रभाव ग्रहण तो किया जाता है, पर उस ग्रहण की अधिकांश पृष्ठभूमि उसके पहले वाणी की सहायता से बन चुकी होती है। लेखनी उस वाणी संचित मनोभूमि से आगे का ही कुछ काम कर सकने में समर्थ होती है।

विज्ञान की शोधों ने इससे आगे की जानकारियाँ प्राप्त की हैं और पता चलाया है कि ध्वनि का कार्य क्षेत्र ज्ञान का संवहन करने तक ही सीमित नहीं है वरन् वे ऐसी प्रचण्ड ऊर्जा से भरी रहती हैं जो मनुष्य के लिए—संसार के लिए हानि और लाभ दोनों ही प्रचण्ड परिमाण में कर सकती हैं। कोलाहल के फलस्वरूप वातावरण इतना विक्षुब्ध हो जाता है कि उस ओजित क्षेत्र में रहने वालों को शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता का सामना करना पड़ता है। मशीनों, वाहनों एवं हलचलों से उत्पन्न अनगढ़ शोर की हानि का दिन-दिन अधिक परिचय मिल रहा है। फलत: उससे बचने के उपायों को गंभीरतापूर्वक सोचा जा रहा है, अन्यथा बढ़ता हुआ कोलाहल

सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए भयंकर संकट बन सकता है।

दूसरी ओर उपयोगी एवं सुनियोजित ध्वनियों का उपयोगी प्रभाव भी देखा जाता है। सुमधुर संगीत की सृजनात्मक सामर्थ्य की जानकारी क्रमशः बढ़ती जा रही है और सोचा जा रहा है कि इस ध्वनि सम्पदा का लाभ किसी प्रकार अधिक मात्रा में, किस क्षेत्र में, किस प्रकार उठाया जाय।

कर्णेन्द्रिय के माध्यम के समझी जाने वाली ध्वनियाँ समस्त ध्वनि प्रवाह का एक बहुत छोटा अंश होती हैं। कान अपनी बनावट के अनुरूप मध्यम स्तर की ध्वनियों को ही ग्रहण कर पाते हैं। उनकी पकड़ से धीमी या तीव्र ध्वनियाँ भी अनन्त आकाश में परिभ्रमण करती रहती हैं । इनमें से कुछ तो ऐसी होती हैं कि उनका उपयोग प्रचण्ड शक्ति की तरह किया जा सकता है। उनसे ऐसा लाभ उठाया जा सकता है जो एक प्रकार से अद्‌भुत या अनुपम ही कहा जा सके।

कनाडा के दो खदान नगरों के पास की खानों में कई दिन तक श्रमिक बहुत बड़ी संख्या में स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से काम पर हाजिर नहीं हुए। जो कुछ व्यक्ति आये, वे शारीरिक स्वास्थ्य और मनोदशा ठीक न होने के कारण सही ढंग से काम नहीं कर सके। इन लोगों की आम शिकायतें थीं—सिर दर्द, अनिद्रा, थकावट, काम में मन एकाग्र न होना, चेहरे का संज्ञा रहित हो जाना, मन बेचैन हो जाना, बहुतों की शिकायतें थीं कि उन्हें अपने आस-पास रिक्त स्थान में से तरह-तरह की आवाजें सुनाई देती हैं।

कनाडा के ध्वनि वैज्ञानिकों के एक दल ने वैज्ञानिक जाँच के बाद इन परिस्थितियों के लिए रूस पर आरोप लगाया कि उसने कनाडा के इन नगरों पर रेडियों तरंगें जैसी एक खास तरह की शक्तिशाली तरंगों का प्रहार किया है, जिनके प्रभाव से वहाँ के निवासियों का शरीर व मन दोनों ही अस्वस्थ हो गये हैं।

वास्तव में यह अब कपोल कल्पना नहीं रही कि अस्थायी मनोविकारों से ग्रस्त शत्रु सेना आत्म-समर्पण करने को विवश हो जाये व इन मनोविकारों का कारण 'ध्वनि-युद्ध' यानी "साउण्डवार" हो। यह अब उस शीतयुद्ध की विभिन्न श्रृंखलाओं में सम्मिलित हो चुकी है, जो पूँजीवादी एवं साम्यवादी देशों के मध्य चल रहा है। इस युद्ध में रूस ने अग्रणी रहकर ऐसा अस्त्र बना लिया है जिसके प्रयोग से नियंत्रित रेडियो तरंगें फेंक कर शत्रु सैनिकों के मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव पैदा किया जाता है जिससे वे युद्ध विमुख होकर शस्त्र त्याग करने की मनोदशा से आक्रान्त हो जायें एवं आत्म-समर्पण कर दें। ऐसा होंने से शत्रुओं पर भयंकर बम या अन्य संहारक अस्त्रों के चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। धन-जन की हानि से बचाव इस नये युद्धास्त्र की एक उपलब्धि होगी।

आखिर ये रेडियो तरंगें क्या हैं ? क्या वस्तुतः ध्वनि तरंगों में इतनी शक्ति होती है। ध्वनि विज्ञान हमारे ऋषि-मनीषियों द्वारा प्रतिपादित पुरातन विद्या है जिसके ऊपर मंत्रशक्ति आधारित है। हमारे पूर्वजों ने इसी का आश्रय लेकर ऐसी ऋचाओं का आविष्कार किया जिनके माध्यम से वे तरंगें फेंककर सूक्ष्म वातावरण को भी प्रभावित करते थे एवं स्थूल रूप से विश्व के मानव-मस्तिष्क को भी। मनोयोग से लक्ष्य पर फेंकी गई ध्वनि तरंगें प्रभावोत्पादक होती हैं। इसी पुरातन ज्ञान के आधार पर इन्फ्रारेडियो तरंगों का आविष्कार किया गया है।

इन तरंगों को ट्रांसमिशन टावर द्वारा दूरदेश पर रेडियो तरंगों की ही तरह सीधे फेंका जा सकता है। ये तरंगें सूक्ष्म तरंग पट्टी की आवर्तिता में नहीं है बल्कि उन तरंगों से लम्बाई (वेव लेंग्थ) में कहीं ज्यादा लम्बी और प्रतिसेकण्ड आवर्त्तिता (फ्रीक्वेन्सी) में कहीं कम आवर्त्ती हैं। इनकी लम्बाई और आवर्तिता मानव मस्तिष्क की विविध तरंगों के आसपास है और इसीलिए ये मस्तिष्क तरंगों को जगह-जगह छूती है, उन्हें काटती हैं, प्रभावित करती हैं और परिणामस्वरूप मन और दिमाग में व्यवधान पैदा करती हैं जिससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य विकृत हो जाता है। इन तरंगों को 'रेडियो से इस ओर' की तरंगें या इन्फ्रारेड वेव्स कहा जाता है।

हमारे रेडियो सेटों को किसी खास स्टेशन को पकड़ने के लिए उसके लिए ट्यून होना पड़ता है, परन्तु उपर्युक्त मामले में रूस से प्रसारित तरंगों की फ्रीक्वेन्सी मानव-मस्तिष्क रूपी रेडियो सेटों की फ्रीक्वेन्सी के आसपास होने से वे स्वाभाविकतः 'इनट्यून' हो गये एवं बजने लगे यानी प्रभावित होने लगे। यह प्रभाव अस्थायी होता है । इसमें मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य इतना ही विकृत किया जाता है कि शत्रु युद्ध से विमुख हो जायें एवं आत्म-समर्पण की मनोदशा में आ जायें। जबकि

माइक्रो तरंगों से पैदा होने वाली शिकायतें न केवल ज्यादा खतरनाक बल्कि स्थायी प्रकार की होती हैं। माइक्रो तरंग के शिकार राडार पर काम करने वाले होते हैं। राडार पीड़ितों का एक संगठन अमेरिका में है जिसके सदस्य द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कुछ ही वर्षों की रेडार साजी के शिकार हो गये हैं। कुछ पर बार बार हृदय रोग के आक्रमण हुए हैं। कुछ को पक्षाघात, कुछ को मोतियाबिंद एवं कुछ की प्रजनन शक्ति चली गयी है। इनके बालों का रंग भूरे से लाल हो गया है। इस संगठन के अध्यक्ष जोसेफ टाडने सरकार से आग्रह कर रहे हैं कि माइक्रो तरंगों के बढ़ते खतरों से रक्षा के लिए वह ठोस कार्यवाही करे। ये तरंगें न केवल रक्तरोग पैदा करती हैं अपितु इनसे कैंसर तक हो जाता है।

इन तरंगों के बारे में जो वैज्ञानिक जानकारी हमें उपलब्ध हुई है उससे भय की एक लहर दौड़ जाती है। ये तरंगें मनुष्य को उत्तेजित एवं तुरन्त बाद हताश कर उसे अक्षम बना देती हैं। रूस अकेला ही 'इन्फ्रारेडियो' तरंगों के मामले में आगे नहीं है। अमेरिका भी ऐसा आविष्कार कर चुका है।

इस बात की कल्पना करने की आवश्यकता है कि मानव-मस्तिष्क को नियंत्रित करने वाले ये प्रयोग आखिर मनुष्य को किस श्रेणी में ला देंगे ? इन तरंगों का सदुपयोग विज्ञान ने संचार साधनों के विस्तार हेतु किया, तब तक तो उचित था, पर जब इनका विनाशकारी उपयोग हो रहा है तो इसकी निंदा की जानी चाहिए। दूसरी ओर कुछ वैज्ञानिक ध्वनि तरंगों का उपयोग कर अल्ट्रासोनिक थेरेपी द्वारा मनुष्य की विभिन्न व्याधियों का उपचार करने का दावा करते हैं। ध्वनि का यही सृजनात्मक उपयोग मंत्रों की विद्या में प्रयुक्त हुआ है। विज्ञान विनाश की ओर न बढ़कर सृजन की ओर बढ़े तो लाखों पीड़ितों की सहायता हो, उन्हें अपने कष्ट से मुक्ति मिले।

मंत्र शक्ति की विधेयात्मक और निषेधात्मक शक्ति की प्रायः चर्चा होती रहती है। शाप और वरदान की बात असंगत नहीं युक्ति युक्त है। समर्थ व्यक्तित्व अपनी विशिष्ट सूक्ष्म प्राण शक्ति में घोलकर ऐसा शब्द प्रवाह उत्पन्न कर सकते हैं जो अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुँच कर अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सके। शब्द वेधी वाण की चर्चा होती रहती है। कहा जाता है कि यह वाण तरकस से निकलकर उस स्थान पर अचूक निशाना लगता है जहाँ से अमुक शब्द निसृत हुआ था। इस संदर्भ में प्रमाण के अभाव में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता, पर शाप और वरदान की अमोघ शक्ति के बारे में अनेकानेक प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रमाण उपलब्ध हो सकते हैं।

मन्त्र साधना से साधक अपनी सामर्थ्य बढ़ाते हैं, दैवी शक्तियों का अनुग्रह प्राप्त करते हैं तथा अन्यान्य व्यक्तियों एवं वस्तुओं को प्रभावित करते हैं। यह न तो कपोल-कल्पना है और न अंध विश्वास। इस शब्द शक्ति संरचना उसकी उच्चारण प्रक्रिया, निर्धारित साधना पद्धति—साधक का मनोबल एवं व्यक्तित्व आदि के सम्मिश्रित स्वरूप से वह शक्ति निखरती है जिसके आधार पर वे चमत्कारी परिणाम उत्पन्न होते हैं जिनकी मन्त्र योग की साधना से अपेक्षा की जाती है।

ध्वनि शक्ति का परिष्कृत उपयोग ही मन्त्र साधना है। उससे परोक्ष अध्यात्म, उद्देश्य ही नहीं प्रत्यक्षतः शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के उपयोगी लाभ भी मिल सकते हैं। वैज्ञानिक क्षेत्रों में ऐसे प्रयोगों को चिकित्सा उपचार का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाने लगा है।

ध्वनि विज्ञान का सृजनात्मक उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी हो सकता है, इसका उदाहरण पश्चिमी जर्मनी के डाक्टरों की वह अनूठी खोज है, जिसमें मूत्राशय या वृक्क की पथरी पर छोड़ी गई ध्वनि तरंगें कुछ ही क्षणों में पथरी को सूक्ष्म से सूक्ष्म कणों में बाँटकर उसे मूत्रमार्ग से बाहर निकाल देती हैं। नियंत्रित ध्वनि तरंगें निश्चित आवृत्तियों में जब छोड़ी जाती हैं, तब वे आसपास के ऊतकों को घायल किये बिना पथरी को पीस डालती हैं। बिना आपरेशन के मुक्ति पाने का यह अद्‌भुत उपाय है।

उपकरण के उपयोग की विधि यह है कि रोगी को नहाने के एक टब में बैठाया जायेगा और डेढ़ मीटर की दूरी से ध्वनि तरंगें उसके गुर्दे की पथरी को लक्ष्य बनाकर छोड़ी जावेंगी जो पथरी को चाहे उसका आकार कितना भी बड़ा हो, भस्म कर देती हैं।

इससे पूर्व अल्ट्रासोनिक थेरेपी के द्वारा शरीर के विभिन्न जोड़ों में दर्द आदि की चिकित्सा की जाती रही है। चिकित्सा के अलावा रोगों के निदान में भी ध्वनि व प्रतिध्वनि के सिद्धान्त का आश्रय लिया जाता है। हृदय की विभिन्न व्याधियों में उसके कपाटों द्वारा आने वाली प्रतिध्वनि को ग्राफ बनाकर पढ़ा जाता है व तदनुसार बीमारी जानी जाती है। मस्तिष्क में चोट, रक्तस्राव आदि

में भी इसी सिद्धान्त के द्वारा रोग का निदान किया जाता है।

विज्ञान जिस तत्परता के साथ ध्वनि शक्ति को खोजने और उसका सदुपयोग करने का मार्ग निकालने में दत्तचित है उसी प्रकार मन्त्र शक्ति के अनुसंधान में संलग्न होने पर और भी उच्चस्तर के लाभ मिल सकने की सम्भावना है।

## मंत्र परम लघु जासु वश विधि हरि हर सुर सर्व—

मंत्र, योग साधना का एक ऐसा शब्द और विज्ञान है कि उसका उच्चारण करते ही किसी चमत्कारिक शक्ति का बोध होता है। ऐसी धारणा है कि प्राचीन काल के योगी, ऋषि और तत्त्वदर्शी महापुरुषों ने मंत्रबल से पृथ्वी, देव-लोक और ब्रह्माण्ड की अनन्त शक्तियों पर विजय पाई थी। मंत्र शक्ति के प्रभाव से वे इतने समर्थ बन गये थे कि इच्छानुसार किसी भी पदार्थ का हस्तान्तरण, शक्ति को पदार्थ और पदार्थ को शक्ति में बदल देते थे। शाप और वरदान मंत्र का ही प्रभाव माना जाता है। एक क्षण में किसी का रोग अच्छा कर देना, एक पल में करोड़ों मील दूर की बात जान लेना एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र की जानकारी और शरीर की ७२ हजार नाड़ियों के एक-एक जोड़ की जानकारी तक मंत्र की ही अलौकिक शक्ति थी। इसलिये भारतीय तत्त्वर्दशन में मंत्र शक्ति पर जितनी शोधें हुई हैं, उतनी और किसी पर भी नहीं हुई। मंत्रों के आविष्कारक होने के कारण ही ऋषि मंत्र दृष्टा कहलाते थे। वेद और कुछ नहीं एक प्रकार के मंत्र विज्ञान हैं जिनमें विराट् ब्रह्माण्ड की उन अलौकिक सूक्ष्म और चेतन सत्ताओं और शक्तियों तक से सम्बन्ध स्थापित करने के गूढ़ रहस्य दिये हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में विज्ञान अभी "क ख ग" भी नहीं जानता।

मंत्र का सीधा सम्बन्ध उच्चारण या ध्वनि से है। इसलिये इसे "ध्वनि विज्ञान" भी कह सकते हैं। अब तक इस दिशा में जो वैज्ञानिक अनुसंधान हुए और निष्कर्ष निकले हैं वह यह बताते हैं कि सामान्य भारतीय मंत्र शक्ति पर भले ही विश्वास न करें पर वैज्ञानिक अब उसी दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। वह समय समीप ही है जब ध्वनि विज्ञान की उन्नति ऋषियों जैसे ही कौतूहलवर्द्धक कार्य करने लगेगी। उदाहरण के लिये "ट्रान्स्डयूसर" यंत्र से सूक्ष्म से सूक्ष्म आपरेशन किया जा सकता है। वह शब्द की कर्णातीत शक्ति का ही फल है। प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री डॉ. फ्रिस्टलाव ने "अल्ट्रासोनोरेटर" नामक एक ऐसा यंत्र तैयार किया है जो दो रासायनिक द्रव्यों को थोड़ी ही देर में मिला सकता है। इस पद्धति में एक "खे" का उपयोग किया जाता है। कर्णातीत डॉ. खे को प्रभावित करती है। खा इतनी तीव्रता से कम्पन करता है कि भारी मात्रा में भरा हुआ जल कड़ाही में खौलते पानी की तरह मंथन करने लगता है। वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं एक दिन वह आयेगा जब कर्णातीत ध्वनि से सृष्टि के किसी अदृश्य भाग के प्राकृतिक परमाणु में तीव्र हल-चल उत्पन्न कर किसी भी क्षेत्र को मथ डालना या उसमें परिवर्तन उत्पन्न कर देना सम्भव हो जायेगा। कई कीटाणु ऐसे होते हैं जो किन्हीं रसायनों में इस कदर घुलमिल जाते हैं कि उन्हें किसी बाह्य उपचार द्वारा नष्ट करना संभव नहीं होता, कर्णातीत या सूक्ष्म ध्वनि कम्पन उन्हें भी नष्ट कर देते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि यदि भारतीय तत्त्वदर्शी मंत्र शक्ति से किसी के रोग अच्छा कर देने, विष उतार देने, लोगों के रोग और उन्माद नष्ट कर देने के प्रयोग सफलतापूर्वक करते रहे हैं तो यह कोई आश्चर्य न होकर वैज्ञानिक प्रक्रिया ही है जो धीरे-धीरे प्रकाश में आ रही है।

आज मंत्र विज्ञान के नाम पर भारी अन्धविश्वास फैला हुआ है और सीधे-सादे भारतीयों का मंत्रों पर अनादि विश्वास झूठे मंत्र दृष्टाओं, ओझाओं की सहायता करता है। ये ओझा और तथाकथित मंत्रविद् जानते कुछ नहीं, लोगों की श्रद्धा का दोहन करते रहते हैं पर सचमुच ही यदि मंत्र शक्ति के विज्ञान को समझकर उसे प्रयोग करने की विधि जान ली जाये तो जो शक्ति आज लोगों को बरगलाने में प्रयुक्त हो रही है, वह लोक-मंगल के काम आ सकती है आज यह बात विज्ञान भी मानता है।

कैलीफोर्निया अमरीका में हुए एक प्रयोग में एक वैज्ञानिक ने एक सैकिण्ड में पाँच करोड़ से अधिक कम्पन वाली ध्वनि पैदा कर दी उस क्षेत्र में रुई का टुकड़ा पड़ा था वह अकस्मात जल उठा वैज्ञानिकों के कपड़े इतने गर्म हो उठे कि यदि वे कुछ देर के लिये उस क्षेत्र से अलग नहीं हो जाते और ध्वनि का कम्पन थोड़ा और तीव्र हो जाता तो उनके शरीर के टुकड़े भी जलने लगते।

प्रयोग का विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिकों ने बताया है कि मनुष्य कम से कम २० और अधिक से अधिक २०००० कम्पन वाली ध्वनि सुन सकता है। कुछ व्यक्ति खासकर वृद्ध लोग इसके अपवाद हो सकते हैं अन्यथा

इस सीमा से बाहर वाले कम्पनों की ध्वनि कानों से सुनी नहीं जा सकती पर उसका अस्तित्व इतना शक्तिशाली होता है कि बादलों के गर्जन से जिस प्रकार सारे प्राकृतिक परमाणु काँप जाते हैं उसी प्रकार यह ध्वनि कम्पन जहाँ से भी गुजरते हैं तीव्र हलचल उत्पन्न कर देते हैं। जीवों को नष्ट कर देना, परमाणुओं को उछाल कर उड़ा ले जाना, उन्हें शक्ति में बदल देना, यह सब कर्णातीत ध्वनि की तीव्रता पर निर्भर करता है। योग पद्धति में मंत्र के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि को शब्द-शक्ति ही विद्युत प्रदान करती है जब कि मानवीय इच्छा शक्ति उस पर नियंत्रण करके कोई भी कार्य कर सकने में समर्थ होती है। जप और ध्यान, नाद (शब्द या ध्वनि कम्पन) और बिन्दु साधना का सम्मिलित रूप है उससे सृष्टि के विराट् से विराट् और अणु से अणु कण का भेदन भी संभव हो जाता है। इसलिये मंत्र की शक्ति को अकूत माना जाता है और अनुमान किया जाता है कि इस शक्ति का उल्लंघन विधि (ब्रह्मा) विष्णु, महेश तथा कोई अन्य देवता भी नहीं कर सकता।

इंग्लैण्ड की बी. एफ. गुडरिच कंपनी के रिसर्च डाइरेक्टर डॉ. डब्लू एल सेमान, इस बात के परीक्षण कर रहे हैं कि सूक्ष्म ध्वनि तरंगें प्राकृतिक व कृत्रिम परमाणु की संरचना पर किस प्रकार प्रभाव डालती हैं और इनका उपयोग पृथ्वी के अंतराल ग्रह नक्षत्रों के अन्तराल का पता लगाने में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। गायत्री उपासना द्वारा सूर्य के अंतराल का वेधन करके वहाँ के परमाणुओं में हलचल उत्पन्न होना इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत है जैसा कि चमगादड़ के उदाहरण से स्पष्ट है। एक बार इटली के जीव विशेषज्ञ स्पालानजानी ने चमगादड़ को अन्धा करके उड़ाया। चमगादड़ में एक अलौकिक क्षमता यह होती है कि कितने ही तीव्र अन्धकार में बारीक से बारीक धागों की सैकड़ों बाधाओं को पार करता हुआ बराबर एक ही गति से उड़ता रहता है। किसी भी डोरे से टकराता नहीं। स्पालानजानी ने चमगादड़ के मुँह तथा नाक बन्द करके परीक्षण किये तो एक बात स्पष्ट हो गई कि चमगादड़ बाधाओं को पार करने में कर्णातीत ध्वनि का उपयोग करता है पीछे इस बारे में नये तथ्य प्रकाश में आये और पता चला कि चमगादड़ भागते समय हलकी चीख निकालता है वह वस्तु से प्रतिध्वनित होकर लौटती है और चमगादड़ के "रेटीक्यूलर फार्मेशन" (मस्तिष्क का वह भाग जहाँ हिन्दू चोटी रखते हैं) की संवेदनशील नाड़ियों द्वारा उसको यह सूचना दे देते हैं कि वस्तु कैसी है। किस दिशा में है आदि। मंत्रोच्चारण में कर्णातीत ध्वनि निकलती है। उसे भावनाओं की विद्युत शक्ति जितनी अधिक मात्रा में मिलती है उतनी ही तीव्रता से वह आकाश के परमाणुओं को कंपाती हुई ध्यान वाले स्थान तक दौड़ी चली जाती है। यह जानने वाली—बात है कि आकाश भी शून्य नहीं है। उसमें करोड़ों सूक्ष्म परमाणु बाल्टी में पानी की भाँति भरे और गतिशील हैं। साधारण तथा ध्वनि चारों दिशाओं में फैलती है पर मंत्रों में शब्द इस प्रकार गुम्फित होते हैं कि उसकी ध्वनि तरंगें विशेष प्रकार की हो जाती हैं। गायत्री मंत्र की ध्वनि तरंगें तार के छल्ले जैसी ऊपर उठती हैं और यह सूक्ष्म अन्तराल के परमाणुओं के माध्यम से सूर्य तक पहुँचती हैं और जब यही ध्वनि सूर्य के अन्तराल से प्रतिध्वनित होकर लौटती है तो अपने साथ प्रकाश अणुओं की (गर्मी, प्रकाश व विद्युत सहित) फीज जप करने वाले के शरीर में उतारती चली जाती है। साधक उन अणुओं से शरीर ही नहीं मन और आत्मा की शक्तियों का विकास करता चला जाता है। और कई बार वह लाभ प्राप्त करता है जो सांसारिक प्रयत्नों द्वारा कभी भी संभव न होते।

साधक के अन्तःकरण में इन्द्रियातीत दृश्यों की अनुभूति, भविष्य की सूचना वाले स्वप्न भी मंत्र जप के परिणाम होते हैं यही स्थिति एक दिन नाद की उच्चतम अवस्था "ॐ" कार की स्थिति तक पहुँचा देती है। प्रमाणस्वरूप पिट्सबर्ग (अमेरिका) की वेस्टिंग हाउस रिसर्च लैबौरेटरी के इंजीनियरों सर्वश्री डब्लू-एच पाकला, जे. एच. थामस और आर. ए. लेस्टर द्वारा बनाये उस उपकरण को प्रस्तुत किया जा सकता है जो इन दिनों बिजली के लीकेज का पता लगाने में प्रयुक्त होता है। विद्युत जहाँ से लीक होती है वहाँ हलका लीलम प्रकाश भी पैदा करती है और चटखने की आवाज भी। गति कोई भी हो उसमें स्पन्द के और प्रत्येक स्पन्दन (वाइव्रेशन) की एक सूक्ष्म ध्वनि होती है। पर इसे हमारे कान नहीं सुन सकते। इस यंत्र में दो २० के लगभग ट्रान्सडयूसर और टेलेस्कोप लगाये जाते हैं जो उस स्थान पर जहाँ से बिजली लीक होने से कर्णातीत कम्पन पैदा हो रहे थे, इसी ओर स्थिति का ज्ञान करा देते हैं। अर्थात् उस स्थान से शब्दों का आया हुआ कम्पन उस स्थान की स्थिति के दृश्य और शब्दों तक का ज्ञान करा देता है। यही मंत्र जप

के साधकों के साथ भी होता है। आवश्यकता केवल भावनाओं की तीव्रता भर की होती है।

सूक्ष्म ध्वनि शक्ति से इन दिनों चिकित्सा और औद्योगिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। चिमनी से निकले धुएँ को ९५ प्रतिशत में बदल देने, रोग ठीक करने, इस्पात की चद्दरों की कटाई, लाण्ड्री, सिंचाई के साधनों में इस शक्ति का उपयोग बिजली की तरह होने लगा है। इससे कोहरा दूर करके यह सिद्ध कर दिया गया है कि शब्द प्रकृति को भी जीत सकता है। इस दिशा में इंगलैण्ड और अमेरिका में तत्परतापूर्वक खोजें हो रही हैं और आशा की जाती है कि कर्णातीत ध्वनि से एक दिन खगोल विज्ञान में आश्चर्यजनक प्रगति होगी। इन प्रगतियों ने एक बार फिर से हमें उस स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से आवाज आती है—क्यों न हम अपने मंत्र विज्ञान को फिर से जागृत कर उसकी महान शक्ति से लाभान्वित हों। इस शक्ति से भौतिक और आध्यात्मिक सभी तरह के लाभ प्राप्त किये गये हैं, किये जा सकते हैं।

## मंत्र की प्रचण्ड शक्ति और उसके प्रयोग का रहस्य

मन्त्र विद्या में शब्द शक्ति—मानसिक एकाग्रता—चारित्रिक श्रेष्ठता एवं अभीष्ट लक्ष्य में अटूट श्रद्धा के चार तथ्य का समावेश होता है। मन्त्र शक्ति से कितने ही प्रकार के चमत्कार एवं वरदान उपलब्ध हो सकते हैं यह सत्य है, पर उसके साथ ही यह तथ्य भी जुड़ा हुआ है कि वह मन्त्र उपरोक्त चार परीक्षाओं की अग्नि में उत्तीर्ण हुआ होना चाहिए। प्रयोग करने से पूर्व उसे सिद्ध करना पड़ता है। सिद्धि के लिए साधना आवश्यक है। इस साधना के चार चरण हैं इन्हीं का ऊपर उल्लेख किया गया है।

मंत्र साधक को यम-नियमों का अनुशासन पालन करते हुए चारित्रिक श्रेष्ठता का अभिवर्धन करना चाहिए। क्रूरकर्मी, दुष्ट-दुराचारी व्यक्ति किसी भी मन्त्र को सिद्ध नहीं कर सकते। तान्त्रिक शक्तियाँ भी ब्रह्मचर्य आदि की अपेक्षा करती हैं। फिर देव शक्तियों का अवतरण जिस भूमि पर होना है उसे विचारणा, भावना और क्रिया की दृष्टि से सतोगुणी पवित्रता से युक्त होना चाहिए।

इन्द्रियों का चटोरापन मन की चंचलता का प्रधान कारण है। तृष्णाओं में—वासनाओं में और अहंकार तृप्ति की महत्त्वाकांक्षाओं में भटकने वाला मन मृगतृष्णा एवं कस्तूरी गन्ध में यहाँ-वहाँ असंगत दौड़ लगाते रहने वाले हिरन की तरह है। मन की एकाग्रता अध्यात्म क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति है उसके संपादन के लिए अमुक साधनों का विधान तो है, पर उनकी सफलता मन को चंचल बनाने वाली दुष्प्रवृत्तियों का अवरोध करने के साथ जुड़ी हुई है। जिसने मन को संयत समाहित करने की आवश्यकता पूर्ण कर सकने योग्य अन्तःस्थिति का परिष्कृत दृष्टिकोण के आधार पर निर्माण किया होगा। वही सच्ची और गहरी एकाग्रता का लाभ उठा सकेगा। ध्यान उसी का ठीक तरह जमेगा और तन्मयता के आधार पर उत्पन्न होने वाली दिव्य क्षमताओं से लाभान्वित होने का अवसर उसी को मिलेगा।

अभीष्ट लक्ष्य में श्रद्धा जितनी गहरी होगी उतना ही मन्त्र बल प्रचण्ड होता चला जायगा। श्रद्धा अपने आप में एक प्रचण्ड चेतन शक्ति है। विश्वासों के आधार पर ही आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं और मनःसंस्थान का स्वरूप विनिर्मित होता है। बहुत कुछ काम तो मस्तिष्क को ही करना पड़ता है। शरीर का संचालन भी मस्तिष्क ही करता है। इस मस्तिष्क को दिशा देने का काम अन्तःकरण के मर्मस्थल में जमे हुए श्रद्धा, विश्वास को है। वस्तुतः व्यक्तित्व का असली प्रेरणा केन्द्र इसी निष्ठा की धुरी पर घूमता है। गीताकार ने इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा है—'यो यच्छ्रद्धः स एव स' जो जैसी श्रद्धा रख रहा है वस्तुतः वह वही है अर्थात् श्रद्धा ही व्यक्तित्व है। इस श्रद्धा को इष्ट लक्ष्य में—साधना की यथार्थता और उपलब्धि में जितनी अधिक गहराई के साथ—तन्मयता के साथ—नियोजित किया गया होगा, मन्त्र उतना ही सामर्थ्यवान बनेगा। मांत्रिक को चमत्कारी शक्ति उसी अनुपात से प्रचण्ड होगी। इन तीनों चेतनात्मक आधारों को महत्त्व देते हुए जिसने मन्त्रानुष्ठान किया होगा निश्चित रूप से वह अपने प्रयोजन में पूर्णतया सफल होकर रहेगा।

मन्त्र का चौथा आधार है शब्द शक्ति। अमुक अक्षरों का एक विशिष्ट क्रम से किया गया गुन्थन शब्दशास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों पर तत्त्वदर्शी अध्यात्मवेत्ताओं ने किया होता है। मंत्रों के अर्थ सरल और सामान्य हैं। अर्थों में दिव्य जीवन की शिक्षाएँ और दिशाएँ पाई जाती हैं। उन्हें समझना भी उचित ही है। पर मन्त्र की शक्ति इन शिक्षाओं में नहीं उनकी शब्द रचना में

जुड़ी हुई है। वाद्य यन्त्रों को अमुक क्रम से बजाने पर ध्वनि प्रवाह निःसृत होता है। कण्ठ को अमुक आरोह-अवरोहों के अनुरूप उतार-चढ़ाव के स्वरों से युक्त करके जो ध्वनि प्रवाह बनता है उसे गायन कहते हैं। ठीक इसी प्रकार मुख के उच्चारण मन्त्र को अमुक शब्द क्रम के अनुसार बार-बार लगातार संचालन करने से जो विशेष प्रकार का ध्वनि प्रवाह संचारित होता है वही मन्त्र की भौतिक क्षमता है। मुख से उच्चारित मन्त्राक्षर सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं। उसमें सन्निहित तीन ग्रन्थियों, षटचक्रों, षोडस, माष्टकाडों चौबीस उपत्यिकाओं एवं चौरासी नाड़ियों को झंकृत करने में मन्त्र का उच्चारण क्रम बहुत काम करता है। दिव्य शक्ति के प्रादुर्भूत होने में यह शब्दोच्चार भी एक बहुत बड़ा कारण एवं माध्यम है।

मन्त्र विद्या में मुख से तो धीमे और हलके प्रवाह क्रम से ही शब्दों का उच्चारण होता है, पर उनके बार-बार लगातार दुहराये जाने से सूक्ष्म शरीर के शक्ति संस्थानों का ध्वनि प्रवाह बहने लगता है। वहाँ से अश्रव्य कर्णातीत ध्वनियाँ या प्रचंड प्रवाह प्रादुर्भूत होता है। इसी में मन्त्र साधक का व्यक्तित्व ढलता है और उन्हीं के आधार पर वह अभीष्ट वातावरण बनता है जिसके लिए मन्त्र साधना की गई। मन्त्र का जितना महत्व है, साधना विधान का जितना माहात्म्य है उतना ही आवश्यक यह भी है कि यांत्रिक अपनी श्रद्धा, तन्मयता और विधि प्रक्रिया में निष्ठावान रहकर अपना व्यक्तित्व इस योग्य बनाये कि उसका मन्त्र प्रयोग सही निशाना साधने वाली बहुमूल्य बन्दूक का काम कर सके।

शब्द शक्ति का महत्त्व विज्ञानानुमोदित है। स्थूल, श्रव्य, शब्द भी बड़ा काम करते हैं फिर सूक्ष्म कर्णातीत अश्रव्य ध्वनियों का महत्त्व तो और भी अधिक है। मन्त्र जप में उच्चारण तो धीमा ही होता है उससे अतीन्द्रिय शब्द शक्ति को ही प्रचंड परिमाण में उत्पन्न किया जाता है।

ध्वनि तरंगें पिछले दिनों उच्चारण से उद्भूत होकर श्रवण की परिधि में ही सीमित रहती थीं। प्राणियों द्वारा शब्दोच्चारों एवं वस्तुओं से उत्पन्न आघातों से अगणित प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं उन्हें हमारे कान सुनते हैं। सुनकर कई तरह के ज्ञान प्राप्त करते हैं निष्कर्ष निकालते हैं और अनुभव बढ़ाते हुए उपयोगी कदम उठाते हैं। यह शब्द का साधारण उपयोग हुआ।

विज्ञान ने ध्वनि तरंगों में सन्निहित असाधारण शक्ति को समझा है और उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों को पूरा करना अथवा लाभ उठाना आरम्भ किया है। वस्तुओं की मोटाई नापने धातुओं के गुण, दोष परखने का काम अब ध्वनि तरंगें ही प्रधान रूप में पूरा करती हैं। कार्बन ब्लैक का उत्पादन वस्त्रों की धुलाई, रासायनिक सम्मिश्रण, कागज की लुग्दी, गीलेपन को सुखाना, धातुओं की ढलाई, प्लास्टिक धागों का निर्माण, प्रभृति उद्योगों में ध्वनि तरंगों के उपयोग से एक नया व्यावसायिक अध्याय आरम्भ हुआ है।

वी. एफ. गुडरिच कम्पनी का हामोजिनाइजिंग, दुग्ध संयन्त्र बहुत ही लोकप्रिय हुआ है। जनरल मोटर्स ने भी 'सोनी गेज' यन्त्र बनाया है। इनके द्वारा ध्वनि तरंगों का उपयोग कई महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए किया जाता है। आयोवा स्टेट कालेज, अल्ट्रा सोनिक कारपोरेशन ने भी ऐसे ही कई उपयोगी यन्त्र बनाये हैं।

ध्वनि तरंगें कम्पन होती हैं, वे रेडियो तरंगों की तरह शून्य में यात्रा नहीं करतीं। मनुष्य के कानों द्वारा सुनी जा सकने योग्य थोड़ी सी ही है। जो कानों की पकड़ से नीची या ऊँची है उनकी संख्या कितनी गुनी अधिक है। शब्द को शक्ति के रूप में परिणित करने के लिए जिन ध्वनि तरंगों का प्रयोग किया जा रहा है उन्हें अल्ट्रा सोनिक (अस्तिवन) और सुपर सोनिक (महास्वन) संज्ञाएँ दी जाती हैं। यह ध्वनियाँ निकटभविष्य में सरलतापूर्वक विद्युत शक्ति में परिणत की जा सकेंगी और तब उस शब्द स्रोत का ध्वनि प्रवाह का उपयोग मनुष्य जाति के अगणित भौतिक प्रयोजनों के लिए किया जा सकेगा ऐसा वैज्ञानिक मानते हैं।

यह ध्वनि तरंगें देखने, सुनने, समझने में नगण्य सी हैं—उनका छोटा अस्तित्व उपहासास्पद सा लगता है, पर जब उनमें सन्निहित प्रचंड शक्ति का आभास मिलता है तो आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। यह ध्वनि तरंगें इतना बड़ा काम करती हैं जितना विशालकाय एवं शक्तिशाली संयन्त्र भी नहीं कर सकते। यन्त्र विज्ञान द्वारा इसी सूक्ष्म शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

प्रकाश और ध्वनि के कम्पनों का स्वरूप समझने के लिए हमें समुद्र में उठने वाली लहरों को देखना चाहिए वे ऊपर उठती और नीचे गिरती हैं तथा एक क्रम-व्यवस्था की दूरी के साथ अग्रगामी होती हैं। प्रकाश और ध्वनि के कम्पनों का भी यही हाल है। विद्युत चुम्बकीय तरंगें

प्रकाश की तरंगों से मिलती-जुलती होती हैं। किन्हीं दो उतार-चढ़ावों के बीच की दूरी को तरंग की लम्बाई कहा जाता है किसी बिन्दु पर से एक सैकिण्ड में गुजरती तरंग के उतार-चढ़ाव को लहर की फ्रीक्वेन्सी—कम्पनांक कहा जाता है। तरंग की गति में तरंग की लम्बाई का भाग देकर, इन कम्पनांकों का नाम निश्चित किया जाता है।

ध्वनि की लहरों का वायु के प्रवाह से भी बहुत कुछ सम्बन्ध रहता है। वे वायु प्रवाह के साथ अधिक सुविधापूर्वक जाती हैं जबकि अवरोध की दिशा में उनका बल बहुत क्षीण रहता है।

रेडियो तरंगें, शब्द तरंगें, माइक्रो लहरें, टेलीविजन और राडार की तरंगें, एक्स किरणें, गामा किरणें, लेसर किरणें, मृत्यु किरणें, इन्फ्रारेड तरंगें, अल्ट्रा वायलेट तरंगें आदि कितनी ही शक्ति धाराएँ इस निखिल ब्रह्माण्ड में निरन्तर प्रवाहित रहती हैं। इन तरंगों की भिन्नता उनकी लम्बाई के आधार पर नापी जाती है। मीटर, सेन्टीमीटर, माइक्रोन, मिली मीटर, आंगस्ट्रोन इनके मापक पैमाने हैं।

यह ध्वनि तरंगें अब विभिन्न भौतिक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त की जाने लगी हैं और उनके अनेकों उपयोगी लाभ उठाये जा रहे हैं।

हानिकारक कीटाणुओं का नाश करने में अश्रव्य ध्वनियों से बड़ी सहायता मिल रही है। दूध में से मक्खन निकालना, धातुओं तथा रसायनों को एक दूसरे के साथ घोट देना—कोहरा हटा देना—जैसे अनेकों महत्त्वपूर्ण कार्य ध्वनियाँ करती हैं। युद्ध समय में जलयानों तथा वायुयानों की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ राडार तथा ऐसे ही अन्य यंत्रों से मिलती है। कुछ समय पहले बिजली के उपकरणों द्वारा कितने ही रोगों का इलाज किया जाता था उसकी जगह अब अश्रव्य ध्वनियों का प्रयोग करके सफल उपचार किये जा रहे हैं।

शब्द केवल जानकारी ही नहीं और भी बहुत कुछ देता है। खाद और पानी के बाद अब पौधों के लिए मधुर ध्वनि प्रवाह भी एक उपयोगी खुराक मानी जाने लगी है। यूगोस्लेविया में फसल को सुविकसित बनाने के लिए खेतों पर अमुक स्तर की वाद्य लहरियाँ ध्वनि विस्तारक यन्त्रों से प्रवाहित की गईं और उसका परिणाम उत्साहवर्धक पाया गया। हालैण्ड के पशु पालकों ने गायें दुहते समय संगीत बजाने का क्रम चलाया और अधिक दूध पाया। निद्रा, उत्तेजना और विकास की विविध प्रक्रियाएँ वृक्ष और वनस्पतियों पर देखी गईं। पशुओं की श्रमशीलता, प्रजनन शक्ति, बलिष्ठता एवं दूध देने की क्षमता को संगीत ने बढ़ाया। मक्का पर संगीत के कतिपय प्रयोग करके उनकी वृद्धि में सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से एक अमेरिकी कृषक जार्ज स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की।

शब्द शक्ति को ताप में परिणित किया जा सकता है। शब्द जब मस्तिष्क के ज्ञानकोषों से टकराते हैं तो हमें कई प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। यदि उन्हें पकड़ कर ऊर्जा में परिणित किया जाय तो वे बिजली ताप प्रकाश चुम्बकत्व के रूप में कितने ही प्रकार का क्रिया-कलाप सम्पन्न कर सकने योग्य बन सकते हैं।

ताप को शक्ति का प्रतीक माना गया है। विभिन्न प्रकार के ईंधन जलाकर अनेकों शक्ति धाराएँ उत्पन्न की जाती हैं। शक्ति और ताप को अब एक ही मान लिया गया है। इस श्रृंखला में ध्वनि को भी एक शक्ति उत्पादक ईंधन मान लिया गया है। वह दिन दूर नहीं जब शब्द को ईंधन नहीं वरन् एक स्वतन्त्र एवं सर्वसमर्थ शक्ति माना जायगा। तभी मन्त्र शक्ति की यथार्थता ठीक तरह समझी जा सकेगी।

ध्वनियाँ तीन प्रकार से उत्पन्न होती हैं (१) वायु द्वारा (२) जल द्वारा (३) पृथ्वी द्वारा। वायु की तरंगों द्वारा प्राप्त होने वाली ध्वनि की गति प्रति सैकिंड १०८८ फुट होती है। जल तरंगों की गति इससे तेज होती है। उस माध्यम से वे एक सैकिण्ड में ४९०० फुट चलती हैं। पृथ्वी के माध्यम से यह गति और भी तेज होती है अर्थात् एक सैकिण्ड में १६४०० फुट।

प्राणायाम द्वारा वायु तत्व का—स्नान, आचमन, अर्घदान आदि द्वारा जल का—दीपक, धूपबत्ती, हवन आदि द्वारा अग्नि का प्रयोग करके मन्त्रानुष्ठान से वे त्रिविधि उपचार किये जाते हैं जिनसे शब्द शक्ति को प्रचण्ड बनने का अवसर मिल सके।

हर ध्वनि अपने ढंग से अलग-अलग कम्पन उत्पन्न करती है। इसी आधार पर हमारे कानों के पर्दे अलग-अलग व्यक्तियों की आवाज को आँखें बन्द होने पर भी पहचान लेते हैं। ध्वनि कम्पनों-ध्वनि तरंगों के घनत्व के आधार पर हम असंख्य प्रकार की ध्वनियों की भिन्नता अनुभव करते हैं। अन्धे लोगों को अपने कानों की सहायता से ही समीपवर्ती वातावरण में हो रही हलचलों का—व्यक्तियों तथा प्राणियों के अस्तित्व का पता लगाना पड़ता है। कान इस बात के अभ्यस्त हो जाते

हैं कि विभिन्न माध्यमों से उत्पन्न होने वाले ध्वनि प्रवाह का अन्तर कर सकें और स्थिति का अथवा प्राणियों की हलचलों का पता लगा सकें।

नादयोग की साधना द्वारा अनन्त अन्तरिक्ष में निरन्तर बहने वाली ध्वनि तरंगों को सुना जाता है और उनमें से अपने काम की तरंगों के साथ सम्पर्क बनाकर भूतकाल में जो हो चुका है उसकी—भविष्य के लिए जो सम्भावना बन रही है उसकी—तथा वर्तमान में किस व्यक्ति या किस परिस्थिति द्वारा क्या हलचलें उत्पन्न की जा रही हैं उनका पता लगाया जा सकता है। नादयोग की शब्द साधना वस्तुतः मन्त्र विज्ञान का ही एक अंग है।

जिन ध्वनियों के कम्पन प्रति सैकिण्ड १०० से ३०० तक होते हैं वे मनुष्य के कानों से आसानी के साथ सुने जा सकते हैं। इससे बहुत अधिक या बहुत कम कम्पन वाले शब्द आकाश में घूमते हुए भी हमारे कानों द्वारा सुने समझे नहीं जाते। इस प्रकार के शब्द प्रवाह को 'अनसुनी ध्वनियाँ' कहते हैं। उन्हें 'सुपर सोनिक मीटर' नामक यन्त्र से कान द्वारा सुना जा सकता है।

इलेक्ट्रोनिक्स के उच्च विज्ञानी ऐसा यन्त्र बनाने में सफल नहीं हो सके हैं जो श्रवण शक्ति की दृष्टि से कान के समान सम्वेदनशील हो। कानों की जो झिल्ली आवाज पकड़कर मस्तिष्क तक पहुँचती है, उसकी मुटाई एक इन्च के ढाई हजारवें हिस्से के बराबर है। फिर भी वह कोई चार लाख प्रकार के शब्द भेद पहचान सकती है और उनका अन्तर कर सकती है। अपनी गाय को या मोटर की आवाज को हम अलग से पहचान लेते हैं यद्यपि लगभग वैसी ही आवाज दूसरी गायों की या मोटरों की होती है, पर जो थोड़ा सा भी अन्तर उनमें रहता है, अपने कान के लिए उतने से ही अन्तर कर सकमा और पहचान सकना सम्भव हो जाता है। कितनी दूर से, किस दिशा से, किस मनुष्य की आवाज आ रही है, यह पहचानने में हमें कुछ कठिनाई नहीं होती। यह कान की सूक्ष्म सम्वेदनशीलता का ही चमत्कार है। टेलीफोन यन्त्र इतनी बारीकियाँ नहीं पकड़ सकता है।

कान से लेकर मस्तिष्क तक स्वसंचालित तंत्रिकाओं का जाल बिछा है। शब्द के कम्पन इनसे टकराकर प्रतिध्वनि उत्पन्न करते हैं, वह मस्तिष्क में पहुँचती है तब सुनने की बात पूरी होती है। कान में आवाज के घुसने और मस्तिष्क को उसका बोध होने के बीच लगभग एक सैकिण्ड समय लग जाता है।

मुँह बन्द करके गुनगनाया जाय तो भी उसकी आवाज मस्तिष्क तक पहुँचती है। ऐसी दशा में कान के समीप वाली जबड़े की हड्डी उन शब्दों को सीधे मुँह से मस्तिष्क तक पहुँचा देती है। इससे स्पष्ट है कि कान का कार्य क्षेत्र एक इन्च गहरी नली तक ही सीमित नहीं है वरन् जबड़े के इर्द-गिर्द तक फैला है। गाल पर चपत मारने से कान सुन्न हो जाते हैं। इसका कारण उस क्षेत्र की उग्र हलचल का कान पर प्रभाव पड़ना ही है।

कान में प्रवेश करने वाली ध्वनि तरंगों का वर्गीकरण करके उन्हें छने हुए रूप में मस्तिष्क तक पहुँचाने का काम 'यूस्टोक्ओ' नली सम्पन्न करती है। शोरगुल के बीच जब यह नली थक जाती है तो अक्सर बहरापन सा लगने लगता है। इसी तरह की आन्तरिक थकान को दूर करने के लिए जम्हाइयाँ आती हैं।

श्रवण शक्ति का बहुत कुछ सम्बन्ध मन की एकाग्रता से है। यदि किसी बात में दिलचस्पी कम हो तो पास में ही बहुत कुछ बकझक होते रहने पर भी अपने पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा। किन्तु यदि दिलचस्पी की बात हो तो फुसफुसाहट से भी मतलब की बातें आसानी से सुनी समझी जा सकती हैं।

मनुष्य के कान केवल उन्हीं ध्वनि तरंगों को अनुभव कर सकते हैं जिनकी संख्या प्रति सैकिण्ड २० से लेकर २० सहस्र तक की होती है। इससे कम और अधिक संख्या वाले ध्वनि प्रवाह होते तो हैं, पर वे मनुष्य की कर्णेन्द्रिय द्वारा नहीं सुने जा सकते।

इस तथ्य को समझने पर मानसिक जप का महत्त्व समझ में आता है। उच्चारण आवश्यक नहीं। मानसिक शक्ति का प्रयोग करके—ध्यान भूमिका में सूक्ष्म जिह्वा द्वारा मन ही मन जो जप किया जाता है उसमें भी ध्वनि तरंगें भली प्रकार उठती रहती हैं।

रेडियो यन्त्र केवल कुछ सीमित और सम्बन्धित फ्रीक्वेन्सी पर चल रही ध्वनि तरंगें ही पकड़ पाते हैं। समीपवर्ती फ्रीक्वेन्सी के साथ यदि उनके साथ सम्बन्ध न हो तो वे यन्त्र सुन नहीं सकेंगे। कान की स्थिति उनकी अपेक्षा लाख गुनी अच्छी है। वे अनेक फ्रीक्वेन्सियों पर चल रहे शब्द प्रवाहों को एक साथ पकड़ और सुन सकते हैं।

नाक में जिस स्तर की गन्धग्राही शक्ति है उस स्तर की पकड़ कर सकने वाला यन्त्र अभी तक बनाया नहीं जा सका।

नादयोग द्वारा आकाशव्यापी, अन्तर्ग्रही तथा अन्तःक्षेत्रीय दिव्य शक्तियों का सुना जाना सम्भव है और उस आधार पर वैसा बहुत कुछ जाना जा सकता है जो स्थूल मस्तिष्कीय चेतना अथवा उपलब्ध साधनों से जान सकना सम्भव नहीं है। विश्वव्यापी शब्द समुद्र में मन्त्र साधक अपनी प्रचण्ड हलचलें समाविष्ट करता है और ऐसे शक्तिशाली ज्वारभाटे उत्पन्न करता है जिनके आधार पर अभीष्ट परिस्थितियाँ विनिर्मित हो सकें। यही है मन्त्र विद्या के चमत्कारी क्रिया-कलाप का रहस्य।

लोग उथली एकांगी मन्त्र साधना करते हैं फलतः वे उस सत्परिणाम से वंचित रह जाते हैं जो सर्वांगपूर्ण मन्त्र साधना करने से निश्चयपूर्वक प्राप्त हो सकता है। ध्यान रखा जाय मन्त्र विद्या की सफलता के चार आधार हैं—शब्द शक्ति, मानसिक एकाग्रता, चारित्रिक श्रेष्ठता एवं लक्ष्य के प्रति अटूट श्रद्धा। चारों आधारों को साथ लेकर चलने वाली मन्त्र साधना कभी निष्फल नहीं होती।

● ● ●

# मंत्रशक्ति की वैज्ञानिकता एवं उसकी संसिद्धि

## मांत्रिकी में है चमत्कारी शक्ति

मंत्र की शक्ति-सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर है । इस तथ्य की जानकारी भारतीय तत्वदर्शियों ने प्राचीनकाल में ही प्राप्त कर ली थी । यों तो हम जो कुछ भी बोलते या उच्चारण करते हैं, उसका प्रभाव व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप से सारे ब्रह्मांड पर पड़ता हैं। तालाब में फेंके गये एक छोटे से कंकड़ से उत्पन्न जल तरंगें दूर तक जाती हैं, उसी तरह हमारे मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द आकाश के सूक्ष्म परमाणुओं में कंपन उत्पन्न करता है । उस कंपन से लोगों में अदृश्य प्रेरणायें जाग्रत होती हैं । शब्द की इस सामर्थ्य से स्थूल जगत में पदार्थ और आकाश स्थित पिण्डों में जबर्दस्त विस्फोट किया जा सकता है । यही नहीं ग्रह नक्षत्रों में पायी जाने वाली सूक्ष्म प्राण-विद्युत, प्रकाश, गर्मी, आदि को भी आकर्षित किया जा सकता है । आवश्यकता मात्र उनकी जानकारी एवं सही प्रयोग की है । इसी आधार पर मंत्रों एवं वैदिक ऋचाओं का निर्माण हुआ है । देखने में शब्द और प्रार्थनायें लगने वाले मंत्र और ऋचायें एक प्रकार के यंत्र हैं जिनका विधिवत् प्रयोग यदि कोई कर सके तो वह सारे संसार का स्वामित्व प्राप्त कर सकता है।

ध्वनि विज्ञान की आधुनिकतम उपलब्धियाँ यह बताती हैं कि क्रमबद्ध ध्वनि कंपनों की सामर्थ्य असामान्य है । अल्ट्रासाउण्ड जैसी सूक्ष्म कर्णातीत ध्वनि तरंगों को जब विद्युत आवेश प्रदान किया जाता है, तो उनकी भेदन क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि सघन से सघन वस्तु के परमाणुओं का भी भेदन करके उनकी रचना का स्पष्ट फोटोग्राफ प्रस्तुत कर देती है । इसी तरह चिकित्सा जगत में सूक्ष्म ध्वनि तरंगों के प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि सामान्य से ध्वनि कंपन में जब इतनी सामर्थ्य है, तो मंत्रों में, जिनका कि गुम्फन ही विशेष रूप से ऋषियों द्वारा हुआ, कितने शक्तिशाली होंगे । मंत्र शक्ति से कभी रोग निवारण, विष निवारण, अदृश्य शक्तियों का आकर्षण, मनोगति द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन आदि प्रयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न होते रहे हैं । रामायण एवं महाभारत में मंत्र प्रेरित शस्त्रों की मार होती थी । उससे परमाणु बमों से भी भयंकर ऊर्जा उत्पन्न होती थी, इसलिए उसका बड़ा सधा हुआ उपयोग सम्भव हो पाता था । उस शक्ति से सैनिकों के समूहों को भी नष्ट किया जा सकता था और हजारों की भीड़ में छिपे केवल एक ही किसी व्यक्ति को भी मारा जा सकता था । यह सब उस शब्द विज्ञान का ही चमत्कार था जिसकी हल्की सी जानकारी ही अभी तक भौतिक विज्ञान को मिल गई है ।

मंत्रशक्ति से भौतिक और आध्यात्मिक सभी तरह के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं । प्राचीन काल के योगी, ऋषि और तत्वदर्शी महापुरुषों ने मंत्रबल से पृथ्वी, देवलोक और ब्रह्मांड की अनंत शक्तियों पर विजय पाई थी । मंत्रशक्ति के प्रभाव से वे इतने समर्थ बन गये थे कि इच्छानुसार किसी भी पदार्थ का हस्तान्तरण, शक्ति को पदार्थ और पदार्थ को ऊर्जा में बदल देते थे । शाप और वरदान मंत्र का ही प्रभाव माना जाता है । एक क्षण में किसी का रोग दूर कर देना, पल भर में करोड़ों मील दूर की बात जान लेना, एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र की जानकारी और शरीर की ७२ हजार सूक्ष्म नाड़ियों के एक-एक जोड़ की जानकारी तक मंत्र की ही अलौकिक शक्ति थी । इसीलिए भारतीय तत्वदर्शन में मंत्र शक्ति पर जितनी अधिक शोधें हुई हैं, उतनी और किसी पर नहीं हुई हैं । मंत्रों के आविष्कारक होने के कारण ही ऋषि मंत्र दृष्टा कहलाते थे । वेद और कुछ नहीं एक प्रकार के मंत्र विज्ञान हैं जिनमें विराट् विश्व-ब्रह्माण्ड की उन अलौकिक सूक्ष्म और चेतन सत्ताओं तथा शक्तियों तक से सम्बन्ध स्थापित करने के गूढ़ रहस्य दिये हुए हैं । भौतिक विज्ञानी अभी इस क्षेत्र की मामूली सी जानकारी ही प्राप्त कर सके हैं ।

मंत्र का सीधा सम्बन्ध उच्चारण या ध्वनि से है, इसलिए इसे 'ध्वनि विज्ञान' भी कह सकते हैं । अब तक इस दिशा में जो अनुसंधान हुए हैं और निष्कर्ष निकले हैं, वह बताते हैं कि बुद्धिवादी व्यक्ति मंत्र शक्ति पर भले ही विश्वास न करें, पर वैज्ञानिक अब उसी दिशा में अग्रसर हैं। न्यूयार्क-अमेरिका के मूर्धन्य अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक डॉ. लॉरेन्स केर्स्टा ने स्पेक्ट्रोग्राफ जैसे उपकरणों के माध्यम से विभिन्न आयु वर्ग के हजारों लोगों की

आवाजों का ग्राफ खींचने और उनका विश्लेषण करने के बाद निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्येक व्यक्ति के ध्वनि कम्पन से जो रेखायें बनती हैं, वे अलग-अलग प्रकार की होती हैं। लेकिन किसी व्यक्ति द्वारा बोला गया एक ही वाक्य स्वस्थ-अस्वस्थ, अधिक या कम ताप या दबाव आदि अवस्थाओं में सदैव अपरिवर्तित बना रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि ध्वनि तरंगों में इतनी सामर्थ्य होती है कि प्राकृतिक परिवर्तनों यथा हवा-तूफान, वर्षा, तापमान आदि का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, प्रत्येक अवस्था में लकीरें एक व्यक्ति की एक ही तरह की होंगी। इसी तरह प्रत्येक मंत्र का तरंगों के रूप में विस्तार एक ही तरह का होता है। लकीरों-ग्राफ की आकृति-प्रकृति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भले ही भिन्न हो, अर्थात् यदि एक व्यक्ति एक वाक्य या मंत्र बोलता है तो आगे बढ़ने या पीछे लौटने वाली लकीरें लम्बी या छोटी हो सकती हैं, पर उनकी आवृत्ति एक ही तरह की होगी।

सामान्य रूप से बोली जाने वाली ध्वनि-तरंगें थोड़ी आगे बढ़कर समूचे विश्व ब्रह्मांड में फैल जाती हैं और कुछ ही सेकण्डों में प्रतिक्रिया सहित वापस लौट आती हैं। परावर्तित कम्पनों में उसी तरह के अनेक भाव और विचार भागे चले आते हैं और उच्चारणकर्ता में वैसे ही तत्वों को और बढ़ा देते हैं। इसलिए कहा जाता है कि बोला हुआ प्रत्येक शब्द मंत्र है, मनुष्य को बहुत सँभल कर केवल मधुर और आशयपूर्ण ही शब्द बोलना चाहिए।

मंत्र का विज्ञान इससे भिन्न प्रकार का है। जिन शब्द तरंगों की उपर्युक्त पंक्तियों में चर्चा की गयी है, उनका आकार-प्रकार विद्युत शक्ति द्वारा निश्चित और प्रयुक्त होता रहा है पर मंत्र में किसी प्रकार की बाह्य शक्ति उन शब्द तरंगों को रूपांतरित नहीं करती। योग पद्धति में मंत्र के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि को शब्द शक्ति ही विद्युत प्रदान करती है, जबकि मानवीय इच्छा या संकल्पशक्ति उस पर नियंत्रण करके कोई भी कार्य करा सकने में समर्थ होती है। जप और ध्यान नाद-ध्वनि कम्पन और बिन्दु साधना का सम्मिलित रूप है, उससे सृष्टि के विराट् से विराट् और सूक्ष्म कण का भेदन भी सम्भव हो जाता है। इसलिए मंत्र की शक्ति को अकूत माना जाता है और अनुमान किया जाता है कि इस शक्ति का उल्लंघन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा कोई अन्य देवता भी नहीं कर सकते। तभी तो मानसकार ने कहा है—"मंत्र परम लघु जासुवश, विधि, हरिहर, सुर सर्व।"

भौतिक विज्ञानियों के अनुसार मनुष्य कम से कम २० और अधिक से अधिक २०००० कम्पन वाली ध्वनि सुन सकता है। कुछ व्यक्ति इसके अपवाद हो सकते हैं, अन्यथा इस सीमा से बाहर वाले कर्णातीत ध्वनिकम्पन कानों से सुनी नहीं जा सकती इतने पर भी उनका अस्तित्व इतना शक्तिशाली होता है कि बादलों के गर्जन से जिस प्रकार सारे प्राकृतिक परमाणु काँप जाते हैं उसी प्रकार यह ध्वनि कम्पन जहाँ से भी गुजरते हैं—तीव्र हलचल उत्पन्न कर देते हैं। जीवों को नष्ट कर देना, परमाणुओं को उछालकर उड़ा ले जाना, उन्हें शक्ति में बदल देना—यह सब कर्णातीत ध्वनि तरंगों की तीव्रता पर निर्भर करता है। मंत्रों में भी इन्हीं सिद्धांतों का समावेश है। मंत्रोच्चार से भी कर्णातीत ध्वनि तरंगें निकलती हैं। उसे भावनाओं की श्रद्धा-समन्वित मनोगति की विद्युत शक्ति जितनी अधिक मात्रा में मिलती है, उतनी ही तीव्रता से वह आकाश के परमाणुओं को कँपाती हुई ध्यान वाले स्थान तक दौड़ी चली जाती है। यह एक तथ्य है कि आकाश भी शून्य नहीं है। अपने अरबों-खरबों परमाणु बाल्टी में भरे पानी की भाँति भरे और गतिशील हैं। साधारणतया ध्वनि चारों दिशाओं में फैलती है, पर मंत्रों में शब्द इस प्रकार गुम्फित होते हैं कि उसकी ध्वनि तरंगें विशेष प्रकार की हो जाती हैं। गायत्री महामंत्र की ध्वनि तरंगें तार के छल्ले जैसी ऊपर उठती हैं और यह सूक्ष्म अंतराल के परमाणुओं के माध्यम से सूर्य तक पहुँचती हैं और जब यह ध्वनि सूर्य के अंतराल से प्रतिध्वनित होकर लौटती हैं तो अपने साथ प्रकाश अणुओं की गर्मी, प्रकाश व विद्युत जप करने वाले के शरीर में उतारती चली जाती हैं। साधक उन अणुओं से शरीर ही नहीं, मन और आत्मा की शक्तियों का विकास करता चला जाता है और कई बार वह लाभ प्राप्त करता है जो सांसारिक प्रयत्नों द्वारा कभी सम्भव नहीं होते।

वेदों में प्रयुक्त प्रत्येक मंत्र का कोई न कोई देवता होता है। गायत्री का देवता 'सविता' है, अर्थात् गायत्री उपासना से जो भी लाभ यथा आरोग्य, प्राण, बल, धन-सम्पत्ति, पुत्र और अपनी महत्वाकांक्षायें आदि पूर्ण होती हैं—उसकी शक्ति अथवा प्रेरणा सूर्य मण्डल से

आती है । किसी भी मंत्र का जब उच्चारण किया जाता है तब वह एक विशेष गति से आकाश के परमाणुओं—ईथर आदि के बीच बढ़ता हुआ उस देवता या शक्ति केन्द्र तक पहुँचता है, ज़िसका उस मंत्र से सम्बन्ध होता है । मंत्र जप के समय आवश्यक ऊर्जा मन की शक्ति के द्वारा प्राप्त होती है । इस शक्ति के द्वारा जप के समय की ध्वनि तरंगों को विद्युत तरंगों के रूप में प्रेक्षित किया जाता है । वह तेजी से बढ़ती हुई कुछ ही क्षणों में देवशक्ति से टकराती हैं । उससे अदृश्य सूक्ष्म परमाणु मंदगति से परावर्तित होने लगते हैं । उनकी दिशा ठीक उल्टी होती है, सूक्ष्म और स्थूल दोनों तरह के परमाणु दौड़ पड़ते हैं और साधक को शारीरिक लाभ तथा मानसिक प्रेरणायें देने लगते हैं । मंत्र की यह परावर्तित एवं बहुगुणित शक्ति ही मनुष्य को क्रमशः भौतिक सिद्धियों एवं आत्मिक विभूतियों की ओर अग्रसर करती है ।

गायत्री महामंत्र की उपासना से साधक सूर्य के अंतराल का वेधन करके वहाँ के परमाणुओं में हलचल उत्पन्न कर देता है, फलस्वरूप प्रकाश ऊर्जा—प्राण चेतना एवं प्रेरणाओं की सघन तरंगें साधक पर बरसने लगती हैं । प्रारंभ में आदान-प्रदान की, आवर्तन-परार्वतन की यह प्रक्रिया थोड़ी धीमी होती है, पर जैसे-जैसे मानसिक एकाग्रता बढ़ती जाती है—प्रतिक्रिया भी तीव्र होती जाती है और सूक्ष्म आत्मसत्ता भी तेजी से उन प्रकाश परमाणुओं से सुसज्जित होने लगती है जो देवशक्ति से आकर्षित होते हैं । यह प्रकाश परमाणु, उपासक में जितने अधिक विकसित होते जाते हैं वह उतना ही अधिक स्पष्ट भविष्यदर्शी, सार्थक स्वप्न द्रष्टा और चमत्कारिक प्रेरणाओं को प्राप्त करने वाला होता जाता है । श्रद्धा और विश्वास प्रगाढ़ होने पर लाभ भी द्रुतगामी होता है, पर यदि ऐसा न हो तो भी साधक मंत्र जप के चमत्कारी लाभ से कभी वंचित नहीं होता ।

## गायत्री मंत्र जप शब्द शक्ति का अद्‌भुत चमत्कार

मंत्र की परिभाषा "रुद्रयामल" ग्रंथ में इस प्रकार की गई है :—

**मननात् त्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात् ।**
**मन्त्र इत्युच्यते सम्यक् मदधिष्ठानत प्रिये ।**

अर्थात्—जिसका मनन करने से संसार का यथार्थ स्वरूप विदित हो, भव बन्धनों से मुक्ति मिले, जो सफलता के मार्ग पर अग्रसर, करे उसे "मन्त्र" कहते हैं ।

इसी प्रकार जप का अर्थ है :—

**जकारो जन्म विच्छेदः पकारः पाप नाशकः**
**तस्माज्जय इति प्रोक्तो जन्म पाप विनाशकः**

*(यम)*

"ज" का अर्थ है जन्म का रुक जाना और "प" का अर्थ है पाप का नाश होना । इसीलिए पाप को मिटाने वाले और पुनर्जन्म प्रक्रिया रोकने वाले को जप कहा है ।

इन दो श्लोकों में मन्त्र जप की परिभाषा पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मंत्रजप की फलश्रुति यह है कि साधक को सृष्टि के यथार्थ का ज्ञान हो जाता है । वह इस बात को भली-भाँति समझ लेता है कि आत्मा परम तेजस्वी—ईश्वरीय महिमा और गरिमा से ओत-प्रोत अविनाशी तत्व ही वर्तमान दीन-हीन अवस्था में घसीट लाने के कारण जन्म जन्मान्तरों के पाप हैं । निरन्तर जप उन पापों का परिमार्जन कर अन्तरात्मा को इतना शुद्ध, पवित्र और निरन्जन बना देता है जिससे साधक जन्म-मरण के चक्र में न पड़ कर अमरत्व का चिर आनन्द प्राप्त करता है ।

साधारण दृष्टि से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्र और जप की इन परिभाषाओं के पीछे मात्र मनोवैज्ञानिक दिशा निर्देश है पर यदि "गति" और "शब्द" के विज्ञान पर दृष्टि डाली जाये तो ज्ञात होगा कि किसी भी मंच के बारे में जिस शक्ति की कल्पना की जाती है वास्तव में वह जप के कारण परिपोषण शक्ति का उद्‌भव है । यदि इस शक्ति का समुचित उपयोग करने की जानकारी हो जाय तो साधक वस्तुतः उस तरह के चमत्कार प्राप्त कर सकता है जो हर किसी के लिए किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं होते ।

"डायनमो" विज्ञान के ज्ञाता जानते हैं कि मोटर के निरन्तर घूर्णन के कारण ही विद्युत शक्ति का संचार होने लगता है । यदि डायनमो का घूमना बन्द हो जाय तो उसी क्षण विद्युत का उत्पादन भी रुक जावेगा । सृष्टि का प्रत्येक ग्रह नक्षत्र अधर आकाश में लटका हुआ है । यह बात आश्चर्यचकित कर देने वाली है कि पृथ्वी के ऊपर एक नन्हा सा ढेला भी फेंक दिया जाय तो वह भी अधर में लटका नहीं रह जाता फिर इतने भीमकाय नक्षत्र आकाश में किस तरह लटके रह जाते हैं । यह सर्वसाधारण के लिए अचम्भे की बात हो सकती है किन्तु विज्ञान के विद्यार्थी के लिए यह शोध का विषय होता है, आश्चर्य का नहीं । अपनी जिज्ञासा के आधार पर ही वैज्ञानिकों ने यह

जान लिया है कि तेजी से गोलार्ध के घुमाव से एक प्रकार की शक्ति पैदा होती है जिसे "सेन्ट्रीफ्यूगल फोर्स" कहते हैं । यह शक्ति ही उन्हें निर्धारित अक्ष और कक्षा में बाँधकर रखती है । पौराणिक कथा है कि एक बार हिरणाक्ष नामक दैत्य ने इस रहस्य को जान लिया था इस शक्ति का जहाँ केन्द्र बनता है उसे नियंत्रित कर लिया जाये तो नक्षत्र को कहीं का कहीं ले जाया जा सकता है । अपने इसी ज्ञान के कारण वह समूची पृथ्वी को चुरा ले गया था । कथानक में इतना सत्य है यह अन्य विषय है किन्तु उसे इस घुमाव की शक्ति के मर्म का पता निश्चित रूप से चलता है । यदि वह न हो तो संसार एक भी दिन तक चल नहीं सकता ।

गति की यह शक्ति ही नहीं इस तेज घुमाव से एक प्रकार की ध्वनि भी गुंजित होती है जिसे "रोर" कहते हैं । यह गुंजन प्रत्येक ग्रह-नक्षत्र में अलग-अलग है और उसकी एक सम्मिलित ब्रह्माण्ड ध्वनि बनती है । वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सृष्टि की अधिकांश चेतना का लयमन और नियन्त्रण इसी के द्वारा होता है । यदि यह शक्ति न होती तो सर्वत्र नीरवता, निस्तब्धता और अन्धकार का साम्राज्य होता ।

प्रत्येक घुमाव में ऐसी ही परिपेषण शक्ति और गुंजन का संचार होता है । मेले ठेलों में बच्चों को झुलाने वाली एक चकरी सामान्य अवस्था में २०-२५ फुट का दायरा पकड़ लेती है । फिर भी झूलने वाले बच्चों को गिरने के भय की अपेक्षा एक प्रकार की गुदगुदी और आनन्द आता है । यह इस "सेन्ट्रीफ्यूगल" शक्ति का ही चमत्कार है कि रस्सी से बँधे लोटे में पानी भर कर उसे तेजी से गोलाई में घुमाया जाये तो मुँह नीचे हो जाने पर भी पानी गिरता नहीं । गाँव के किसान चिड़ियों को भगाने के लिये 'गोफन' का प्रयोग करते हैं जिससे सामान्य गति की अपेक्षा घुमाकर फेंकने के कारण पत्थर कई गुना अधिक दूर तक सटीक मार करने में समर्थ होता है । अभी पिछले दिनों दिल्ली में भयंकर चक्रवात आया जिसने वहाँ कुहराम मचा दिया वह और कुछ नहीं वायु का एक गोलाई में तीव्र गति से घूमना मात्र ही था । मंत्र जप का भी सम्बन्ध ठीक इसी प्रकार गोलाई में तेज घुमाव से है । उस कारण मन्त्रों में गुम्फित शब्दों का एक ऐसा सर्किल, ऐसा चक्रव्यूह बनता है जो एक निश्चित गोलाई में चक्कर काटकर जप कर्ता के पास लौट आता है पर लौटने के साथ मन्त्र में सन्निहित विचारों, भावनाओं की एक इतनी सशक्त फौज अपने साथ लेकर आता है जिसे मन्त्र के देवता की प्रेरणा अदृश्य दैवी सहायता अथवा मन्त्र की शक्ति का चमत्कार कुछ भी कहा जा सकता है पर होता यही है कि धीरे-धीरे उपासक के जीवन का नियमन यह शक्ति ही करने लगती है । व्यक्तित्व के अनुरूप, साधक की श्रद्धा, निर्मलता, निश्छलता जितनी बढ़ी-चढ़ी होती है, यह प्रभाव उतना ही स्पष्ट होता है । मन्त्र जप कुछ ही दिनों के बाद साधक को विलक्षण स्वप्न पूर्वाभास, अदृश्य सहायतायें आदि उसी शक्ति में चेतना की घुलनशीलता का परिणाम होता है । यह स्थिति जितनी प्रगाढ़ होती है प्रतिफल उतने ही स्पष्ट और आनन्द- दायक तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाले होते हैं ।

गायत्री मन्त्र में एक और विशेषता यह है कि उसमें परमात्मा से सद्बुद्धि, ज्ञान और प्रकाश की कामना की गई है । यह विशेषता उसके २४ अक्षरों के शरीर के २४ महत्वपूर्ण स्थानों की प्रतिध्वनि से उत्पन्न विशेष "सर्किल" से इतर होती है जिससे साधक पर तत्काल दोहरी प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है अर्थात् मन्त्र का सृष्टि के रहस्यों के उद्घाटन का प्रभाव, जप से पापों के क्षय और पुनर्जन्म से मुक्ति के प्रभाव के साथ-साथ सांसारिक श्री समृद्धि शक्ति और साधनों का भी लाभ इस तरह मिलने लगता है जिससे न तो साधक संसार में भटकता है और न सांसारिक वैभव में आसक्त होता है । यह लाभ किसी और मन्त्र में न होने से गायत्री मन्त्र को भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि महत्ता प्रदान की गई है ।

लेख के प्रारम्भ में मन्त्र की परिभाषा में यह बताया गया है कि मन्त्र वह है जो सृष्टि के यथार्थ को उजागर करता है । गायत्री मन्त्र के नियमपूर्वक जप से उत्पन्न शब्द शक्ति का चक्रवात अनन्त ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करता है । इस यात्रा में जो लहरें या स्पन्दन आगे बढ़ते हैं वे परमात्मा से अभियाचित धियः तत्व की भावना से ओत-प्रोत रहते हैं । यह शब्द शक्ति ब्रह्माण्ड की गोलाई में परिक्रमा करके जब लौटती है तो व्यक्ति के सतोगुणी जीवन के अनेक लाभ पूर्ववर्ती सफल व्यक्तियों के आकाश में घूम रहे इतिहास उनकी विचारणायें, प्रेरणायें मन्त्र जप के साथ परिप्रेषित भाव तरंगों के साथ लौटकर साधक के मस्तिष्क से टकराने लगती हैं । गायत्री उपासक के मन में कभी-कभी यकायक ऐसे विचार पैदा होते हैं जो किसी संकट से बचाने, सफलता के लिये गूढ़ प्रेरणा देने वाले होते हैं । स्वयं उपासक समझ नहीं पाता

कि यह विचार कहाँ से आ गया पर ध्वनि और मन्त्र का यही विज्ञान उसका कारण होता है जिससे उपासक को विलक्षण स्वप्न, विलक्षण ध्वनियाँदिक दर्शन, पुलक और प्रकाश के दर्शन होते हैं । इस प्रक्रिया में यदि साधक की अपनी मन: स्थिति इस तरह की हो कि वह बुराइयों को संकल्पपूर्वक निकाल फेंकने और मन को पारमार्थिक क्रियाकलापों में लगा कर रखने में शिथिल न पड़े तो वह कुछ ही समय में गायत्री उपासना के चमत्कारी लाभों का अनुभव करने लगता है ।

जप मन्त्र में सन्निहित भावनाओं के प्रभाव विराट् सृष्टि के ऐसे रहस्यों का उद्घाटन करने में सक्षम है जो सामान्य कल्पना से परे हों । यदि ऐसा रहा होता तो उच्च शिक्षित वर्ग भी उस तरह की आध्यात्मिक अनुभूतियों से स्वत: ही ओत-प्रोत हो गया होता जबकि देखा यह गया है कि उच्च शिक्षित और विचारक कहे जाने वाले लोग भी सांसारिक मायाजाल से मुक्त नहीं हो पाते जबकि सांसारिक मायाजाल में फँसे गायत्री उपासकों में कम शिक्षित होने पर भी उच्च आत्मिक शक्ति प्रादुर्भूत कोई भी देख सकता है ।

मन्त्र में इतनी शक्ति होने पर भी उसकी वैज्ञानिकता को भूलना नहीं चाहिये । विज्ञान का अर्थ है सिद्धान्त का गणितीय होना । इसे निश्चित नियमबद्धता भी कह सकते हैं । इसमें साधक की आन्तरिक निर्मलता के साथ- साथ प्रतिदिन नियत समय जप करना भी आवश्यक है । नियत समय पर जप के साथ जप का समस्वर होना भी आवश्यक है । कभी जल्दी, कभी धीरे-धीरे, कभी आलस्य में, कभी सजग होकर किये गये अस्त-व्यस्त जप से परिणाम तो निकलेंगे पर अस्पष्ट और उलझे हुये होंगे । माला से जप का कारण यही है कि एक मन्त्र जप से प्रत्येक दूसरे मन्त्र जप में नियत अन्तर रहे कम अधिक नहीं । सामान्यत: एक घण्टे में १० या ११ माला का जप होता है अतएव नियमबद्धता को घड़ी के साथ भी साधा जा सकता है पर मन्त्र जप का परिपूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिये प्रतिदिन नियत समय, नियत स्थान में नियमित रूप से जप करना आवश्यक होता है । परिस्थितिवश स्थान परिवर्तन करना पड़े तो भी जहाँ तक सम्भव हो समय की नियमितता का पालन तो करना ही चाहिये ।

विधिपूर्वक जपे गये मन्त्र से उपासक की अनुभूतियाँ उसका चिन्तन इतना विस्तृत होता है कि जिससे संसार की यथार्थता समझ में आ जाती है । भौतिक लाभ तो ऐसे हैं जैसे तीर्थयात्रा जाते समय मार्ग में पड़ने वाले किसी नगर से आवश्यक वस्तुयें भी खरीद ली जायें तो उनका महत्व नगण्य जैसा ही रहता है, उससे प्रसन्नता तो हो सकती है पर मूल लाभ आत्मा की ईश्वरीय चेतना में परिणति ही है, जिसे यह लाभ मिल जाता है वह वस्तुत: जीवन्मुक्त हो जाता है । उसका जीवन सचमुच धन्य हो जाता है ।

## मनन की विद्या और ज्ञान ही मंत्र विज्ञान

संस्कृति के प्रेरक—प्रणेता ऋषियों की अगणित उपलब्धियों में मंत्र विद्या का मूल्य एवं महत्व अद्वितीय है। इसी सामर्थ्य के कारण वे ऋषि कहलाए । वेदवाणी कहती है—ऋषियो मंत्र दृष्टार: अर्थात्—ऋषि वही है जिसने मंत्र की साधना की, गहराई को अनुभव और उपलब्धियों को हस्तगत किया । ऋषियों के अनुभूत कोष स्पष्ट करते हैं कि विश्वव्यापी ब्रह्म चेतना के साथ मनुष्य का सघन और सुनिश्चित सम्बन्ध है । पर उसमें मल-विक्षेप आवरण जैसे अवरोधों ने एक प्रकार से विक्षेप जैसी स्थिति पैदा कर दी है । बिजलीघर और कमरे के पंखे के बीच लगे तारों में यदि कहीं गड़बड़ी उत्पन्न हो जाय तो पंखा और बिजली दोनों के अपने-अपने स्थान पर रहते हुए भी सन्नाटा छाया रहेगा । मंत्र साधना इन शिथिल सम्बन्धों को पुन: प्रतिष्ठापित करने वाली सुनिश्चित पद्धति है । विश्व चेतना के साथ व्यक्ति को जोड़ने वाला राजमार्ग है ।

महायोगी अनिर्वाण के ग्रन्थ 'अन्तरयोग' के अनुसार मंत्रों का शब्द चयन योग विद्या में निष्णात् तत्ववेत्ताओं ने दिव्य चेतना के साथ सघन अनुभूतियों के आधार पर किया है । यों ये शब्द विन्यास संस्कृति सूत्र और जीवन के उत्कर्ष का भाव सन्देश भी हैं । पर इससे कहीं अधिक महत्ता शब्द-गुन्थन की है । मंत्र विद्या के प्रख्यात ग्रन्थ मंत्र महार्णव में इन दोनों ही तत्वों को स्वीकारा गया है । इसके अनुसार मंत्र का अर्थ है, मनन, विज्ञान, विद्या और ज्ञान । मंत्र शक्ति से मनन् का स्वभाव मिलता है । मनन् कहते हैं बार-बार विचारने को । जिस विचार को बार-बार मन में जमाने की कोशिश की जाती है वह मन का स्वभाव बन जाता है । अत: मंत्र शक्ति मन तदनुरूप ढलता है । साथ ही इसे वह विज्ञान और विद्या कहा है जिससे शक्ति का उद्भव होता है । यह वह ज्ञान व प्रकाश देता है जिससे अज्ञान और अंधकार को दूर किया

जा सकता है । इसकी साधना से अन्तर्चेतना में कुछ ऐसी फेर-बदल होती है जिसकी वजह से ईश्वरीय शक्ति और आनन्द का अवतरण होने लगता है ।

मंत्र प्रक्रिया की अनेकानेक विशेषताओं में सर्वाधिक महत्ता उसके स्फोट में है । स्फोट का मतलब है ध्वनि विशेष का ईश्वर तत्व में होने वाला असाधारण प्रभाव । तालाब में छोटा ढेला फेंकने से थोड़ी और छोटी लहरें उत्पन्न होती हैं । पर यदि बड़ी ऊँचाई से बहुत जोर से कोई पत्थर पटका जाय तो उसका शब्द और स्पन्दन दोनों ही अपेक्षाकृत बड़े होंगे और उसकी प्रतिक्रिया प्रतिध्वनि भी बड़ी लहरों के साथ दिखाई देगी । मंत्र विद्या के सम्बन्ध में इसी को स्फोट कहा जाता है । आगम और निगम का समस्त भारतीय आध्यात्म इसी पृष्ठभूमि पर खड़ा है । मंत्र और तंत्र की सभी शाखा-प्रशाखाएँ इसी का विशाल परिवार हैं ।

शब्द की सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर, सूक्ष्म और विभेदन क्षमता वाली है, इस बात की निश्चित जानकारी होने के बाद ही मन्त्र-विद्या का विकास भारतीय तत्व-दर्शियों ने किया । यों हम जो कुछ भी बोलते हैं, उसका प्रभाव व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप से सारे ब्रह्माण्ड पर पड़ता है, तालाब के जल में फेंके गये एक छोटे से कम्पन की लहरें भी दूर तक जाती हैं, उसी प्रकार हमारे मुख से निकला हुआ, प्रत्येक शब्द आकाश के सूक्ष्म परमाणुओं में कम्पन उत्पन्न करता है, उस कम्पन से लोगों में अदृश्य प्रेरणायें जाग्रत होती हैं ।

यह शब्द शक्ति का परोक्ष प्रभाव हुआ । प्रत्यक्ष प्रभाव वैखरी वाणी के रूप में सामने आता है । वैखरी वाणी जब विशिष्ट उच्चारण प्रक्रिया द्वारा समर्थ होकर "वाक्" बनती है तो उसका विस्तार श्रवण क्षेत्र तक सीमित न रहकर तीनों लोकों की परिधि तक व्यापक होता है । वाणी में ध्वनि है, ध्वनि में अर्थ, किन्तु 'वाक्' शक्तिरूपा है । उसकी क्षमता का उपयोग करने पर वह सब जीता जा सकता है जो जीतने योग्य है ।

कौत्स मुनि ने मन्त्र अक्षरों के अर्थ की उपेक्षा की है और कहा है कि उनकी क्षमता शब्द गुन्थन के आधार पर समझी जानी चाहिए । उसमें 'वाक्' तत्व ही प्रधान रूप से काम करता है । मंत्रों का चयन इसी ध्वनि-विज्ञान को आधार मानकर किया गया है । अर्थ का समावेश गौण है । गायत्री मंत्र की सामर्थ्य अद्‌भुत है पर उसका अर्थ अति सामान्य है । भगवान से सद्‌बुद्धि की कामना भर उसमें की गई है । इसी अर्थ प्रयोजन को व्यक्त करने वाले मंत्र श्लोक हजारों हैं । हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसी कविताओं की कमी नहीं जिनमें परमात्मा से सद्‌बुद्धि की प्रार्थना की गई है । फिर उन सब कविताओं को गायत्री मंत्र के समकक्ष क्यों नहीं रखा जाता और उनका उच्चारण क्यों उतना फलप्रद नहीं होता ? वस्तुतः मंत्र स्रष्टाओं की दृष्टि में शब्दों का गुंथन ही महत्वपूर्ण रहा है । कितने ही बीज मंत्र ऐसे हैं जिनका खींचतान के ही कुछ अर्थ भले ही गढ़ा जाय, पर वस्तुतः उनका कुछ अर्थ है नहीं । ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐ, हुं, यं, फट् आदि शब्दों का क्या अर्थ हो सकता है, इस प्रश्न पर माथापच्ची करना बेकार है । उनका सृजन यह ध्यान में रखते हुए किया गया है कि उनका उच्चारण किस स्तर का शक्ति कम्पन्न उत्पन्न करता है और उनका जपकर्ता, वाह्य वातावरण तथा अभीष्ट प्रयोजन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

मानसिक, वाचिक एवं उपांशु जप में ध्वनियो के हल्के भारी किये जाने की प्रक्रिया काम में लाई जाती है । वेद मन्त्रों के अक्षरों के साथ-साथ उदात्त-अनुदात्त और स्वरित क्रम से उनका उच्चारण नीचे-ऊँचे तथा मध्यवर्ती उतार-चढ़ाव के साथ किया जाता है । उनके सस्वर उच्चारण की परम्परा है । यह सब विधान इसी दृष्टि से बनाने पड़े हैं कि उन मन्त्रों का जप अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने वाला शक्ति प्रवाह उत्पन्न कर सके ।

मन्त्र जप की दुहरी प्रतिक्रिया होती है—एक भीतर दूसरी बाहर । आग जहाँ जलती है उस स्थान को गरम कर देती है । साथ ही वायुमण्डल में ऊष्मा बिखेर कर अपने प्रभाव क्षेत्र को भी गर्मी देती है । जप का ध्वनि प्रवाह समुद्र की गहराई में चलने वाली जलधाराओं की तरह तथा ऊपर आकाश में छितराई हुई उड़ने वाली हवा की परतों की तरह अपनी हलचलें उत्पन्न करता है । उनके कारण शरीर में यत्र-तत्र सन्निहित अनेकों 'चक्रों' तथा 'उपत्यिका' ग्रन्थियों में विशिष्ट स्तर का शक्ति-संचार होता है । लगातार के एक नियमित क्रम से चलने वाली हलचलें ऐसा प्रभाव करती हैं, जिन्हें रहस्यमय ही कहा जा सकता है । पुलों पर सैनिकों को पैरों को मिलाकर चलने से उत्पन्न क्रमबद्ध ध्वनि उत्पन्न न करने के लिए इसलिए मना किया जाता है कि इस साधारण-सी क्रिया से पुल तोड़ देने वाला असाधारण प्रभाव उत्पन्न हो सकता है ।

यह प्रश्न उठता है कि मंत्र में जबकि किसी प्रकार की वाह्य शक्ति उन शब्द-तरंगों को रूपान्तरित नहीं करती तो

उनसे विज्ञान की तरह के लाभ कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर 'रेट्रॉमीटर' यन्त्र के आविष्कार के साथ सम्भव हो गया है । इस यन्त्र में बाहरी शक्ति-स्रोत की आवश्यकता नहीं पड़ती वरन् ध्वनि में सन्निहित ऊर्जा ही विद्युत ऊर्जा का काम करती है । रेट्रॉमीटर का आविष्कार न्यूमा ई, थामस नामक अमेरिकी वैज्ञानिक ने किया है । श्री थामस लेंगले स्थित 'नेशनल एरोनोटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' रिसर्च सेन्टर के अन्वेषक हैं । इस यन्त्र में किसी भी माध्यम से प्रकाश फोटोसेन्सिटिव सैल में भेज कर विद्युत ऊर्जा में बदल दिया जाता है और फिर रिसीवर यन्त्र में विद्युत ऊर्जा में बदली तरंगों को ध्वनि में बदलकर सुन लिया जाता है ।

इस सिद्धान्त से यह निश्चित हो गया है कि कर्णातीत तरंगों का स्वभाव लगभग प्रकाश तरंगों जैसा ही होता है। कर्णातीत तंरगों का तंरगदैर्घ्य जितना कम होता है, यह समता उतनी ही बढ़ती है, इससे पता चलता है कि कर्णातीत तरंगों को बड़ी ही सुविधापूर्वक आवर्तित और परावर्तित किया जा सकता है । इनका व्यवहार भी प्रकाश तरंगों से ठीक उल्टा होता है, इसलिये इन तरंगों से विभिन्न प्रकार के प्रकाश-स्रोतों की शक्ति को प्रतिक्रिया द्वारा आसानी से अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है । ऐसा इसलिये होता है कि कर्णातीत तरंगें किसी सघन पदार्थ में तो तेजी से चलती हैं पर विरल माध्यमों में वे मन्दगति से चलने लगती हैं ।

वेदों में प्रयुक्त प्रत्येक मंत्र का कोई न कोई देवता होता है । गायत्री का देवता सविता है, अर्थात—गायत्री उपासना से जो भी लाभ यथा आरोग्य, प्राण, धन-सम्पत्ति, पुत्र और अपनी महत्वाकांक्षायें आदि पूर्ण होती हैं, उसकी शक्ति अथवा प्रेरणा सूर्य लोक से आती है । किसी भी मंत्र का जब उच्चारण किया जाता है, तब वह एक विशेष गति से आकाश के परमाणुओं के बीच बढ़ता हुआ, उस देवता (शक्ति-केन्द्र) तक पहुँचता है, जिसका उस मंत्र से सम्बन्ध होता है । मंत्र-जप के समय आवश्यक ऊर्जा मन को शक्ति के द्वारा प्राप्त होती है, इस शक्ति के द्वारा जप के समय की ध्वनि तरंगों को विद्युत तरंगों के रूप में प्रेक्षित किया जाता है । वह तेजी से बढ़ती हुई कुछ ही क्षणों में देव-शक्ति से टकराती हैं, उससे अदृश्य सूक्ष्म-परमाणु मन्दगति से परावर्तित होने लगते हैं, उनकी दिशा ठीक उल्टी होती है । सूक्ष्म और स्थूल दोनों तरह के परमाणु दौड़ पड़ते हैं और साधक को शारीरिक लाभ और मानसिक प्रेरणायें देने लगते हैं । यह शक्ति ही मनुष्य को क्रमशः उन्नत जीवन और अनेक अप्रत्याशित लाभों की ओर अग्रसर करती रहती है ।

शब्द शक्ति का स्फोट मन्त्र शक्ति की रहस्यमय प्रक्रिया है । अणु विस्फोट से उत्पन्न होने वाली भयावह शक्ति की जानकारी हम सभी को है । शब्द की एक शक्ति सत्ता है । उसके कम्पंन भी चिरन्तन घटकों के सम्मिश्रण से बनते हैं । इन शब्द कम्पन्न घटकों का विस्फोट भी अणु विखण्डन की तरह ही हो सकता है । मन्त्र योग साधना के उपचारों के पीछे लगभग वैसी ही विधि व्यवस्था रहती है । मंत्रों की शब्द रचना का गठन तत्वदर्शी, मनीषी तथा दिव्य दृष्टा मनीषियों ने इस प्रकार किया है कि उसका जपात्मक, होमात्मक तथा दूसरे तप साधनों एवं कर्मकाण्डों के सहारे अभीष्ट स्फोट किया जा सके । वर्तमान बोलचाल में विस्फोट शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है लगभग उसी में संस्कृत में स्फोट का भी प्रयोग किया जाता है । मन्त्राराधन वस्तुतः शब्द शक्ति का विस्फोट ही है ।

शब्द स्फोट से ऐसी ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं जिन्हें कानों की श्रवण शक्ति से बाहर की कहा जा सकता है । शब्द आकाश का विषय है । इसलिए मान्त्रिक का कार्यक्षेत्र आकाश तत्व रहता है । योगी वायु उपासक है उसे प्राणशक्ति का संचय वायु के माध्यम से करना पड़ता है, इस दृष्टि से मान्त्रिक, को योगी से भी वरिष्ठ कहा जा सकता है । सच्चा मान्त्रिक योगी से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही शक्तिशाली हो सकता है ।

मन्त्र से दो वृत्त बनते हैं—एक को भाव वृत्त और दूसरे को ध्वनि वृत्त कह सकते हैं । लगातार की गति अन्ततः एक गोलाई में घूमने लगती है । ग्रह नक्षत्रों का अपने-अपने अयन वृत्त पर घूमने लगना इसी तथ्य से सम्भव हो सका है कि गति क्रमशः गोलाई में मुड़ती चली जाती है ।

तन्त्र जप में नियत शब्दों को निर्धारित क्रम से देर तक निरन्तर उच्चारण करना पड़ता है । जप यही तो है । इस गति प्रवाह के दो आधार हैं—एक भाव और दूसरा शब्द । मन्त्र के अन्तराल में सन्निहित भावना का नियत निर्धारित प्रवाह एक भाव वृत्त बना लेता है, वह इतना प्रचण्ड होता है कि साधक के व्यक्तित्व को ही पकड़ और जकड़ कर उसे उपनी ढलान में ढाल ले । उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि वृत्त भी ऐसा ही प्रचण्ड होता है कि उसका

स्फोट एक घेरा डालकर उच्चारणकर्ता को अपने घेरे में कस ले । भाव वृत्त अन्तरंग वृत्तियों पर, शब्द वृत्त बहिरंग प्रवृतियों पर इस प्रकार आच्छादित हो जाता है कि मनुष्य के अभीष्ट स्तर को तोड़ा-मरोड़ा या ढाला जा सके । इतना ही नहीं समूह स्तर को भी इससे प्रभावित-उत्तेजित किया जा सकता है । पिछले दिनों रूस ने ऐसे ही प्रयोग कनाडा के खनिकों पर किये थे ।

विज्ञान जगत में शब्द के सूक्ष्मतम प्रयोग की ये उपलब्धियाँ यह बताती हैं कि यदि भारतीय तत्वदर्शियों ने मंत्र विद्या की इतनी जानकारी कर ली हो कि शब्दों के कम्पनों द्वारा विष-निवारण, रोग-निवारण अदृश्य शक्तियों का आकर्षण मनोगति द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन आदि प्रयोग सफलतापूर्वक होते रहे हों तो उसे अतिशयोक्ति न माना जाय । महाभारत काल में मंत्र-प्रेरित शस्त्रों की मार होती थी, उससे परमाणु-बमों से भी भयंकर ऊर्जा उत्पन्न होती थी, उसका बड़ा सधा हुआ उपयोग सम्भव था । उस शक्ति से सैनिकों के समूहों को भी नष्ट किया जा सकता था और हजारों की भीड़ में छिपे केवल एक ही किसी व्यक्ति को मारा जा सकता था । यह सब उस शब्द विज्ञान का ही चमत्कार था, जिसकी क्षीण-सी जानकारी भौतिक विज्ञान जान पाया है । यदि इस मंत्र शक्ति का रचनात्मक उपयोग हो सके तो चेतना के ईंधन कहे जाने वाले इस ऊर्जा स्रोत से अनुकूलताओं के सृजन व सद्भाव विस्तार में असाधारण मदद मिल सकती है । भारतीय संस्कृति में मंत्र-विज्ञान-शब्द शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है व रहेगा ।

## दिव्य चेतना के शक्तिशाली गुच्छक मंत्र

मंत्र को शब्द ब्रह्म कहा गया है जिसकी रचना शब्द विज्ञान के रहस्यों के आधार पर होती है । किस शब्द के बाद कौन सा शब्द रखने से किस प्रकार का, किस विद्युत शक्ति का प्रवाह उत्पन्न होता है, इस रहस्य को अभी पाश्चात्य विज्ञान नहीं जान पाया है किन्तु शब्द की इस महान शक्ति से हमारे ऋषि परिचित थे । अमुक क्रम से शब्दों को रखने से, मुख से अमुक-अमुक अंगों का अमुक क्रम से संचालन होता है और उनके कारण शरीर के अमुक ज्ञान तन्तुओं, चक्रों, शक्ति संस्थानों, ग्रन्थि-गुच्छकों एवं उपत्यिकाओं में अमुक प्रकार की हलचल उत्पन्न हो जाती है । उस हलचल की क्रिया-प्रतिक्रिया की उथल-पुथल से एक विशेष प्रकार का विद्युत प्रवाह आकाश में उत्पन्न होता है जो लोक-लोकान्तरों तक आसानी से पहुँच जाता है । उसकी पहुँच देवों तक, देवलोकों तक, देव शक्तियों तक भली प्रकार हो जाती है । मंत्र बल से परम पद को प्राप्त करने तथा आत्मा को परमात्मा बना देने तक की सफलता ऋषियों ने प्राप्त की थी । आज भी वह हर सफलता हर किसी के लिए देवशक्तियों से जीवन का सान्निध्य करा देने वाला रहस्यपूर्ण माध्यम है ।

आधुनिक विज्ञानवेत्ता ध्वनि की शक्ति-सामर्थ्य से भली-भाँति परिचित हैं । उन्होंने ध्वनि तरंगों के द्रुतगति से आकाश में भ्रमण करने की गतिविधि का पता लगाकर बेतार के तार एवं राडार जैसे यंत्रों का आविष्कार किया । यह यंत्र विद्युत प्रवाह की प्रेरणा से स्वच्छन्द आकाश में दौड़ रही तरंगों को पकड़ने और प्रेरक की इच्छानुसार उनकी गति, दिशा एवं दूरी का विश्लेषण आज्ञाकारी दूत की तरह करते हैं । मन्त्र को भी "आध्यात्मिक राडार" की संज्ञा दी जा सकती है । जब सामान्य शब्दों में ध्वनि तरंगों में इतनी क्षमता है, तो फिर वेद मंत्रों में जिस वैज्ञानिक ढंग से शब्दों का गुन्थन हुआ है, उसकी महत्ता तो अनिवर्चनीय ही है । इन शब्दों का मर्म एवं रहस्य कोई ठीक प्रकार समझ ले, इनकी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करे अथवा इन शब्दों में छिपी हुई विद्याओं एवं शक्तियों से अवगत हो जाये, तो उसके लिए यह मंत्र कामधेनु के समान सब कुछ दे सकने वाले बन जाते हैं । महर्षि पतंजलि ने ऐसा ही अभिमत प्रकट करते हुए कहा है "एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति ।" अर्थात्—एक शब्द के अर्थ का सम्यक् ज्ञान होने और उसका उचित रीति से प्रयोग करने से स्वर्गलोक और समस्त मनोरथों की पूर्ति होती है । "मंत्र परम लघु" कह कर उसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देव शक्तियों को बताकर मानसकार ने भी मंत्र की महिमा महत्ता का प्रतिपादन किया है ।

वस्तुतः मंत्र विज्ञान महामाया प्रकृति की मूल उपादान शक्ति ध्वनि-ऊर्जा के विशिष्ट व्यवस्थित प्रयोगों की विद्या है । इसके प्रयोग का आधार उपासक की संकल्प और श्रद्धा बनती है । श्रद्धा समन्वित संकल्प ही मंत्र को जीवन्त और गतिशील बनाता है । शास्त्र का कथन है—"मन्त्राश्चिन्मरीचय" अर्थात्—मंत्रचिद्रश्मिमय हैं, चेतना की किरणों से मंत्र ओत-प्रोत होते हैं । इसीलिए

इन्हें संकल्प और श्रद्धा से समन्वित कर अति समर्थ बनाया जाता है । मंत्र जप में संकल्पयुक्त श्रद्धा की जितनी भी मात्रा बढ़ी-चढ़ी होगी, उत्पन्न प्राण प्रवाह भी उतना ही प्रचण्ड एवं चेतनामय होगा ।

मंत्र ध्वनि तरंगों के एक विशेष समुच्चय हैं । ये तरंगें अन्तर्द्रष्टा ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा देखी जानी गयी हैं । पाया गया है कि मंत्र में उच्चारित ध्वनि तरंगों की एक निश्चित आकृति होती है । इसी आकृति के आधार पर मंत्रों के देवता आदि शास्त्रों में निर्धारित किये गये हैं । ध्वनि तरंगों के आधुनिक अनुसंधानों ने भी इन शास्त्रीय प्रतिपादनों के पक्ष में सामग्री जुटायी है । आज तो ध्वनि कम्पनों से बनने वाले रूप—आकारों का अध्ययन करने वाली विज्ञान की एक नयी शाखा ही विकसित हो चुकी है जिसे "साइमेटिक्स" कहते हैं । इस क्षेत्र में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि हर स्वर, हर नाद, हर कम्पन एक विशेष आकार को जन्म देता है । मूर्धन्य वैज्ञानिक हंटिंग्टन और ड्यूवी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक का अपना एक वाद्यमण्डल होता है और अपना इलेक्ट्रॉनिक नाद होता है ।

साइमेटिक्स द्वारा ध्वनि कम्पनों की आकृति देखने का जो तरीका ढूँढ़ निकाला गया है उसमें जर्मनी के सुप्रसिद्ध भौतिकशास्त्रवेत्ता अरनेस्ट क्लाडनी को विशेष सफलता मिली है । वायलिन वादन के माध्यम से उन्होंने बालुई सतह पर सुन्दर आकृतियाँ उभारने में सफलता पायी है । इन आकृतियों को 'क्लाडनी के चित्र' कहा जाता है । इसी से मिलता-जुलता प्रयोग स्विट्जरलैण्ड के प्रतिष्ठित भौतिकीविद् डॉ. हेन्स जेनी ने 'टोनोस्कोप' नामक स्वनिर्मित यन्त्र के माध्यम से किया है । इस उपकरण से मनुष्य आवाज को या उच्चारित मंत्र ध्वनि को जड़ वस्तुओं पर केन्द्रित करके उसकी तरंगों को त्रिआयामीय स्वरूप में क्रमबद्ध रूप से सजते देखा जा सकता है । उन्होंने अपने अनेकों प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि ध्वनि तरंगों का वस्तु के आकार से गहरा सम्बन्ध है । एक प्रयोग में देखा गया कि 'ओऽम्' की ध्वनि माइक्रोफोन द्वारा करने पर गोल आकार विनिर्मित होता है ।

मंत्र विज्ञान के ज्ञाताओं के अनुसार 'ऊँ' का शुद्ध उच्चारण 'आ' से आरम्भ होकर गुंजन करता हुआ 'ओ' से होता हुआ 'म' तक चला जाता है । 'म' का गुंजन स्वयं में ध्वनि न होकर अन्त के स्वर का विस्तार है । यह ध्वनि सभी यान्त्रिक ध्वनियों से शक्तिशाली है । इसका वैज्ञानिक रीति से उपयोग करके चेतना को समुन्नत बनाया जा सकता है । कुछ विशेष ध्वनियों के योग से बने मंत्रों के उच्चारण से शरीर, चेतना एवं ब्रह्माण्ड में एक निश्चित प्रकार की ध्वनि तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं जो प्रयोगकर्ता को, वातावरण को एवं समीपवर्ती व्यक्तियों को भी प्रभावित करती हैं । मन्त्रोपासना जिस स्थान पर होती है वहाँ से एक निश्चित आवृत्ति वाली ध्वनि तरंगें सतत् प्रवाहित होती रहती हैं जिनका अनुभव एवं लाभ वहाँ रहने वाले व्यक्तियों को भी अनायास ही मिलता रहता है। भारत भूमि में अभी भी ऐसे अनेकों पवित्र स्थान हैं जहाँ कभी प्राचीन ऋषियों ने दीर्घकाल तक तपस्या एवं मंत्रोपासना की थी । कालान्तर में उसकी विशिष्टता को जानकर परवर्ती साधकों, संतों ने भी उसे तपस्थली के रूप में चुना और आत्मोत्कर्ष को प्राप्त हुए । इसी तरह देवात्मा हिमालय में कितनी ही गुफाएँ ऐसी हैं जहाँ यदि शांतचित्त होकर बैठा जाय तो मंत्रोच्चार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं । उन स्थानों में कभी ऋषि-मुनियों ने लम्बे समय तक मंत्र जप किया था जिनके कम्पन अभी भी वहाँ के वातावरण में सघनता से छाये हुए हैं । उन्हें न केवल सुना व अनुभव किया जा सकता है, वरन् साधक उनसे लाभान्वित भी हो सकते हैं ।

ध्वनि एक प्रत्यक्ष शक्ति है और अणु शक्ति, विद्युत शक्ति, तापशक्ति लेजर आदि की तरह ही इसका भी कई प्रकार से प्रयोग होता है । इसके सृजनात्मक एवं ध्वंसात्मक दोनों ही प्रयोग विख्यात हैं । ध्वनि के कम्पनों से उत्पन्न ऊर्जा का व्यवस्थित उपयोग मंत्र विज्ञान में किया जाता है । मंत्र शक्ति में ध्वनि प्रवाह के सही होने की विशेष भूमिका है । इसीलिए मंत्रों में महत्व मात्र शब्दार्थ का नहीं, वरन् निश्चित ताललययुक्त शुद्ध उच्चारण का भी होता है । मनुष्य के मुख के तार-तंत्रिकायें शरीरस्थ षट्चक्रों, दिव्य ग्रन्थियों से जुड़े रहते हैं । मन्त्रोचारण द्वारा ये चक्र ग्रन्थियाँ, उपत्यिकायें वैसे ही प्रभावित होती हैं जैसे वाद्य यंत्रों के एक तार को छेड़ देने पर संलग्न सभी तार झंकृत हो उठते हैं । शरीर के विभिन्न स्थानों पर छिपे सूक्ष्म शक्ति भण्डारों पर श्रद्धा एवं संकल्पयुक्त मंत्रोच्चार का प्रेरक प्रभाव पड़ता है और जो मंत्र जिस प्रयोजन के लिए निर्धारित है, उस स्तर की ध्वनि ऊर्जा उत्पन्न करता है ।

मंत्रवेत्ताओं के अनुसार मंत्रोच्चारण के समय सम्पूर्ण शरीर संस्थान-शक्ति संस्थान के रूप में परिवर्तित हो

जाता है । ध्वनि की शक्ति के साथ ही मंत्र में गति के विज्ञान का भी अपना महत्व है । मंत्र जप के साथ ध्वनि ऊर्जा का एक निश्चित घुमाव बार-बार होता है । यह घुमाव अपकेन्द्री शक्ति 'सेण्ट्रीफ्यूगल फोर्स' को जन्म देता है जो चक्रवात की तरह प्रचण्ड परिपेषण शक्ति से युक्त होता है । मंत्र जप से उत्पन्न शब्द शक्ति का प्रचण्ड तूफानी चक्रवात संकल्प बल तथा श्रद्धाबल से अंतरिक्ष में संव्याप्त दैवी चेतन ऊर्जा के सम्पर्क से अनेक गुनी शक्ति अर्जित करता है और साधक के लिए सिद्धियों का द्वार खोलता है ।

इस प्रकार मंत्र को चेतनारश्मियों के शक्तिशाली गुच्छक या शब्द तरंगों के विशेष समुच्चय कहा जा सकता है, जो अपने इष्ट चेतन प्रवाह से सघन सम्पर्क का माध्यम बनते हैं । इनके जप विधान में इसीलिए भावश्रद्धा, जप विधि, ध्वनि ऊर्जा तथा उपासना से जुड़े अन्य व्रत सभी का अपना महत्व है । इन सबके अनुशीलन से ही साधक का व्यक्तित्व मंत्र जप से उत्पन्न दिव्य चेतन ऊर्जा के धारण और उपयोग में समर्थ होता है ।

## मंत्र शक्ति के चमत्कारी सत्परिणाम

मन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से होती है । निरुक्त में "मन्त्रा मनात्"—मन से संचारित होने वाली प्रक्रिया को मन्त्र कहा है । शतपथ ब्राह्मण में "वाग्वै मन्त्रः"—परिष्कृत वाणी से उच्चारित शब्द-श्रृंखला को मन्त्र बताया गया है । तन्त्र से "मन्त्रि गुप्त भाषणे" रहस्यमय गुप्त संभाषण को मन्त्र कहा गया है । तीनों अर्थों का समन्वय करने से एक बात पूरी होती है । जिसमें मानसिक एकाग्रता एवं निष्ठा का समुचित समावेश हो, परिष्कृत व्यक्तित्व की परिमार्जित वाणी से जिसकी साधना की जाय, जिसकी रहस्यमय क्षमता पर गहन श्रद्धा हो तथा जिसका अनावश्यक विज्ञापन न करके गोपनीय रखा जाय, वे प्रयोग मन्त्राराधन की आवश्यकता पूरी करते हैं ।

मन्त्र शक्ति में चार तथ्य काम करते हैं—(१) ध्वनि, (२) संयम, (३) उपकरण, (४) विश्वास । शब्द संरचना और उच्चारण की शुद्धता युक्त ध्वनि ही सार्थक होती है। साधक अपनी शक्तियों को शारीरिक मानसिक असंयम से बचाकर उपासना कृत्य में नियोजित रखे । माला, आसन, मात्र प्रतीक, उपचार, उपकरण आदि में प्रयुक्त हुए पदार्थों में शुद्धता का ध्यान रखा जाय । मन्त्र-साधना के प्रति श्रद्धा-विश्वास की कमी न हो । यह सभी बातें जहाँ ठीक प्रकार प्रयुक्त हुई होंगी वहाँ आराधना का प्रतिफल निश्चित रूप से दृष्टिगोचर हो रहा होगा । उपासना के आधारों का स्तर गिर जाने से ही सफलता संदिग्ध होती चली जाती है ।

तन्त्र विज्ञान में हृदय को शिव और जिह्वा को शक्ति कहा गया है । इन दोनों को 'प्राण' और 'रयि' नाम भी दिये गये हैं । भौतिकी के अनुसार इन्हें धन और ऋण विद्युत प्रवाह कह सकते हैं । जिह्वा से मन्त्र उच्चारण होता है यह हलचल हुई । इसके भीतर जितनी शक्ति होगी उतना ही बढ़ा-चढ़ा प्रभाव उत्पन्न होगा । यह प्रभाव हृदय के बिजलीघर में उत्पन्न होता है । यहाँ हृदय से तात्पर्य उस भावना स्तर से है जो कृत्रिम रूप से नहीं व्यक्तित्व की मूल सत्ता के आधार पर विनिर्मित होता है । हृदय को अग्नि और जिह्वा को सोम कहा गया है । दोनों के समन्वय से चमत्कारी आत्मशक्ति उत्पन्न होती है । भावना और कर्म की उत्कृष्टता से मन्त्र साधना प्राणवान बनती है । इस रहस्य को यदि समझा और अपनाया जा सके तो किसी को भी इस क्षेत्र में निराश न रहना पड़े ।

मन्त्र शक्ति को फलित करने के लिए उसका उच्चारण एवं विधि-विधान ही पर्याप्त नहीं । साधक के व्यक्तित्व की प्रखरता का समावेश होना भी आवश्यक है । महर्षि जैमिनी ने पूर्व मीमांसा में मंत्र शक्ति के विकास की चर्चा करते हुए उसके चार आधार बताये हैं—(१) **प्रामाण्य**—अर्थात् मनगढ़न्त नहीं विधि के पीछे सुनिश्चित विधि-विधान होना, (२) **फलप्रद**—अर्थात् जिसका उपयुक्त प्रतिफल देखा जा सके, (३) **बहुलीकरण**—अर्थात् जो व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करे, (४) **आयात यामता**—अर्थात् साधक के श्रेष्ठ व्यक्तित्व की क्षमता । इन सारे तत्वों का समावेश होने में मन्त्र प्रक्रिया से दैवी शक्ति का समावेश होता है और उसका चमत्कारी प्रतिफल देखा जाता है ।

विश्वामित्र, वशिष्ठ, परशुराम आदि ने गायत्री शक्ति की आराधना करके दिव्य प्रतिफल प्राप्त किये थे किन्तु सामान्य व्यक्ति वैसा नहीं कर पाते । इसमें मन्त्र की श्रेष्ठता एवं उपासना की गरिमा का दोष नहीं । साधक को ओछा व्यक्तित्व अभीष्ट परिणाम उत्पन्न करने योग्य

न होने से ही निराशा हाथ लगती है । खिलौना बन्दूक में रखकर बढ़िया कारतूस चलाने पर भी लक्ष्य वेध में सफलता न मिलेगी । उपयुक्त परिणाम उत्पन्न करने में कारतूस ही सब कुछ नहीं होता, बढ़िया बन्दूक की भी आवश्यकता पड़ती है । दशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ का पौरोहित्य करने के लिए अखण्ड व्रतधारी शृङ्गी ऋषि का सहयोग लेना पड़ा था । महाभारत की कथा है कि अश्वत्थामा और अर्जुन ने मन्त्र चालित 'सन्धान अस्त्र' छोड़े । उनकी भयंकरता को देखकर व्यास जी बीच में आ खड़े हुए और दोनों से अपने अस्त्र वापस लेने को कहा । अर्जुन ने ब्रह्मचारी होने के कारण अपना अस्त्र वापस कर लिया और अश्वत्थामा असंयमी होने के कारण वैसा कर सकने में असफल रहा ।

शतपथ ब्राह्मण में यरुच्देव और नृमेध ऋषियों के विवाद का एक कथानक आता है । दोनों अपने को सफल मांत्रिक सिद्ध करने के लिए अपनी शक्ति का प्रमाण देते हैं । यरुच्देव ने मन्त्रोच्चारण करके गीली लकड़ी में अग्नि प्रकट कर दी जब कि नृमेध के कंठ से धुआँ भर निकल कर रह गया । इस पर यरुच्देव ने प्रतिपक्षी से कहा—आप मन्त्रोच्चारण भर जानते हैं, मैंने उसकी आत्मा का साक्षात्कार किया है ।

पर ब्रह्म साक्षी दृष्टा निर्विकार है । उसे सूत्र संचालक भर कह सकते हैं । संसार में चेतनात्मक हलचलों के उतार-चढ़ाव जिस ब्रह्म सत्ता द्वारा सम्भव होते हैं उसे आत्म सत्ता का परिष्कृत रूप ही कह सकते हैं । ईश्वर इच्छा से सब कुछ होता है । इस उक्ति का जहाँ भी वर्णन हो रहा हो समझना चाहिए यह परिष्कृत आत्म सत्ता की इच्छाशक्ति का ही उल्लेख है । मन्त्र तप से साधित परावाक् अपनी विशुद्धता एवं प्रखरता से ब्रह्म इच्छा बन जाती है । उसके स्पंदन विश्व के परमाणुओं और जीवाणुओं को प्रभावित करते हैं । फलत: लोक प्रवाह की दिशा बदल जाती है । देवदूत, अवतारी, महामानव यही करते हैं । इनके कर्तृत्व ईश्वर की इच्छा कहलाते हैं । उनकी इच्छा के पीछे ईश्वर का विधान काम करता दृष्टिगोचर होता है। सिद्ध और तपस्वी भी अपने स्तर के अवतार ही होते हैं । उनकी परावाक् शक्ति मात्र उच्चारण के ही काम नहीं आती वरन् विश्व के नियन्त्रण, संचालन, अभिवर्द्धन एवं परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है ।

ब्रह्माण्ड वृक्ष है—पिण्डाण्ड उसका बीज । बीज में वृक्ष की समस्त सम्भावनाएँ सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में जो कुछ है उसका सार तत्व पिण्डाण्ड में—मनुष्य में विद्यमान है । प्रश्न प्रसुप्ति को जागृति में परिणत करने का है । बीज को वृक्ष बनाने में माली का श्रम, मनोयोग एवं साधन लगता है । शुक्राणु को बालक रूप में विकसित करने के लिए माता-पिता के अनुदान लगते हैं । इसी प्रकार तुच्छ से पिण्ड की क्षमता को ब्रह्माण्ड को प्रभावित कर सकने योग्य बनाने में 'साधना' की आवश्यकता पड़ती है । इस तप-साधना में 'परावाक्' शक्ति का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है ।

यज्ञ प्रकरण में परावाक् का ही गुणानुवाद गाया गया है । वैखरी में तो वायुशोधक अग्निहोत्र भर होता है । नित्यकर्म का विधान भर उससे सम्पन्न होता है । यज्ञाग्नि और परावाक् के संयोग से ज्योति और दीप्ति उत्पन्न होती है । ज्वाला से उसका स्तर भिन्न है । ज्योति की महिमा बताते हुए श्रुति कहती है—उससे शोक-सन्ताप छूटते हैं तथा श्री, समृद्धि, शान्ति एवं प्रगति की उपलब्धि होती है ।

गीता में ब्रह्म यज्ञ का वर्णन है । ब्रह्म अग्नि में—ब्रह्म हवि देने का वर्णन है । यज्ञ का अर्थ है—परमार्थ । यज्ञाग्नि सत्प्रयोजनों में संलग्न सत्प्रवृत्ति को कहा गया है। वाक् उत्कृष्ट व्यक्तित्व का सार तत्व घृत है । दोनों के समन्वय से जो वातावरण बनता है उसमें भौतिक ऋद्धियों के भण्डार भरे पड़े हैं । पानी तो बिना यज्ञ वाले क्षेत्र पर भी बरसते हैं, पर सुख-शान्ति बरसाने वाले पर्जन्य यज्ञ प्रक्रिया के फलस्वरूप ही बरसते हैं ।

मन्त्र विनियोग के पाँच अंग हैं—(१) ऋषि, (२) छन्द, (३) देवता, (४) बीज, (५) तत्व । इन पाँचों को मन्त्र शरीर का आधार स्तम्भ माना गया है । पाँच तत्वों से स्थूल काया बनी है । पाँच प्राणों से सूक्ष्म शरीर का निर्माण हुआ है । करण शरीर में पाँच तन्मात्राएँ आधारभूत हैं । वनस्पतियों का पंचांग प्रयुक्त होता है । पंचगव्य— गो शरीर के पाँच अमृत माने गये हैं । रत्नों में पाँच ही प्रमुख हैं । पाँच देवताओं की उपासना-आराधना प्रख्यात है । पाँच कोशों के जागरण की विधा गायत्री मंत्र के पाँच मुख चित्रित करते हुए समझाई गई है । मंत्रशक्ति को जाग्रत करने के लिए उपर्युक्त पाँच आधारों को उसके विनियोग में समाविष्ट किया गया है ।

(१) ऋषि अर्थात् मार्गदर्शक गुरु । उपासना एक महत्वपूर्ण विज्ञान है । उसे एक विशेष शिल्प कह सकते

हैं । इसके लिए अनुभवी एवं निष्णात मार्गदर्शक चाहिए। यह मात्र पुस्तक प्रशिक्षण से सम्भव नहीं हो सकता है । ग्रन्थों में हर रोग का निदान एवं उपचार लिखा है तो भी अनुभवी चिकित्सक की आवश्यकता बनी ही रहती है । कारण कि हर रोगी की प्रकृति एवं स्थिति में भिन्नता होती है । उसका तालमेल बिठाते हुए चिकित्सक को स्वतन्त्र बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है और देखना पड़ता है कि उपचार की व्यवस्था किस क्रम से बनाई जाय । नित्य के उतार-चढ़ाव देखते हुए उसे चिकित्सा में नित नये परिवर्तन करने पड़ते हैं । यही बात मन्त्राराधन के सम्बन्ध में भी है । सामर्थ्यवान गुरु शिष्यों को सामर्थ्य का अनुदान भी देता है और स्थिति के उपयुक्त मार्गदर्शन भी करता है । अस्तु उस प्रयोजन की सफलता के लिए ऋषि स्तर का मार्गदर्शक नियुक्त करना आवश्यक माना गया है ।

(२) विनियोग का दूसरा चरण है—छन्द । छन्द अर्थात् स्वर-ताल-लय । मंत्र को किस स्वर में, किस क्रम से, किस उतार-चढ़ाव के साथ उच्चारित किया जाय, उसकी गति कितनी रहे, मंत्र विद्या में यह एक स्वतंत्र शास्त्र है । सितार में तार तो उतने ही रहते हैं और उँगलियाँ चलाने की बात भी हर वादन में रहती है किन्तु बजाने वाले का कौशल तारों पर आघात करने का क्रम—परिवर्तित होने के कारण विभिन्न राग-रागिनियों का ध्वनि प्रवाह उत्पन्न होता है । मानसिक—वाचिक—उपांशु—उदात्त—अनुदात्त—स्वरित के आधार पर मंत्र की क्षमता में भारी अन्तर पड़ता है और उसकी प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं । सामवेद में लिखित मन्त्रों की कभी एक हजार शाखाएँ थीं । अर्थात् उनमें से प्रत्येक को हजार ध्वनि लय के साथ गाने-बजाने का विधान था । यह मात्र संगीत की दृष्टि से नहीं वरन् शक्ति उत्पादन की दृष्टि से यह सृजन हुआ है । कौन व्यक्ति किस प्रयोजन के लिए किस मन्त्र की—किस लय में आराधना करे यह विधान जान लेने से उसके प्रभावशाली परिणाम निकलते हैं ।

(३) विनियोग का तीसरा चरण है—देवता । देवता का अर्थ है—सूक्ष्म जगत् से चलने वाले शक्ति प्रवाहों में से अभीष्ट परत का चयन । आकाश में एक ही समय में अनेक रेडियो स्टेशन बोलते हैं, पर हर एक की प्रसारण 'फ्रीक्वेन्सी' भिन्न होती है । ऐसा न होता तो ब्राडकास्टों के सभी शब्द मिलकर एक हो जाते और गड़बड़ खड़ी करते । अभीष्ट प्रसारण सुनने के लिए अपने रेडियो की सुई इसी स्टेशन पर लगानी पड़ती है । आकाश के वायु मण्डल में हवा की कितनी ही परतें हैं । समुद्र-जल में भी पानी की परतें और धाराएँ बहती हैं । जमीन खोदने पर भी मिट्टी की भिन्न-भिन्न परतें मिलती हैं । ठीक इसी तरह सूक्ष्म जगत में भी भिन्न-भिन्न स्तर के शक्ति प्रवाह बहते हैं । इन्हें ही देवता कहते हैं । सूर्य किरणों में सात रंग होते हैं । रंगीन शीशों के माध्यम से हम जिस रंग का लाभ उठाना चाहें उसे उपने उपयोग के लिए पकड़ सकते हैं । देवाराधन प्रक्रिया का यही उद्देश्य है । मन्त्र को बल देने वाली देव शक्ति से ठीक तरह सम्पर्क किया जा सके तो उसका अभीष्ट परिणाम उपलब्ध होता है ।

(४) चौथा चरण है—बीज । बीज अर्थात् उद्गम । स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में अनेक दिव्य केन्द्र हैं । हारमोन ग्रन्थियों की विलक्षणता स्थूल शरीर में प्रत्यक्ष है। नाड़ी गुच्छक प्लेसेस—मस्तिष्कीय ग्रन्थियाँ अपने में कितनी जादुई सम्भावनाएँ दबाये बैठी हैं, उसे शरीर विज्ञानी भली प्रकार जानते हैं । षट्चक्र, तीन ग्रन्थियाँ—१०८ उपत्यिकाएँ—सहस्त्रों शक्ति नाड़ियाँ—सूक्ष्म और कारण शरीर में विद्यमान हैं । उन दिव्य संस्थानों को सूक्ष्म शक्तियों के साथ सम्पर्क मिलाने का 'स्विच' कह सकते हैं । स्विच दबाने से बिजली जलने लगती है । किस मन्त्र की सफलता के लिए—किस स्विच को, किस प्रकार दबाया जाय इसके लिए अलग विधान है। तन्त्र में इसके लिए ह्रीं, श्रीं, क्लीं और बीजाक्षरों का विधान है । योग में कुछ विशेष ध्यान, नाद, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध आदि का निर्धारण है । इस क्रम व्यवस्था को अपनाने से मन्त्र को जाग्रत एवं शक्ति-सम्पन्न बनाया जाता है । टेलीफोन डायल के नम्बर बदल देने से अलग-अलग स्थानों से बातें होने लगती हैं। मन्त्रों के साथ बीज एवं सम्पुट बदल देने से उनकी क्षमता एवं दिशा में अन्तर पड़ता है ।

(५) विनियोग का पाँचवाँ अंग है—तत्व । तत्व अर्थात् लक्ष्य । किस प्रयोजन के लिए आराधना की जा रही है इसका संकल्प, उद्देश्य-निर्धारण ही तत्व है । एक ही वृक्ष के विभिन्न अवयवों में विभिन्न प्रकार के गुण होते हैं । एक ही पदार्थ में कई प्रकार के रासायनिक कण मिल सकते हैं । आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार खाद्य पदार्थों के भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृति होती है । स्थूल भाग से रक्त-माँस बनता है । सूक्ष्म भाग से मन बुद्धि का निर्माण

होता है । कारण भाग से गुण, कर्म, स्वभाव, आकांक्षा एवं प्रकृति का निर्माण होता है । योगशास्त्र में यह वर्गीकरण सत, रज, तम के नाम से बताया गया है । मन्त्राराधन में प्रयुक्त उपकरणों में किस तत्व की प्रधानता है इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उपयोगी सामग्री का निर्धारण करना पड़ता है । भिन्न मन्त्रों में–स्थान, आहार, उपचार आदि का जो अन्तर रहता है उसे तत्व प्रक्रिया से सम्बन्धित माना जाना चाहिए । मुहूर्त, ऋतु, तीर्थ, सरोवर आदि के अन्तर भी प्रकृति की तत्व स्थिति के साथ साधना का ताल-मेल बिठाने की दृष्टि से किये जाते हैं ।

आयुर्वेद शास्त्र में, 'कल्प' उपचार करने से पूर्व–नाड़ी शोधन प्रक्रिया सम्पन्न कराई जाती है । नाड़ी शोधन के पाँच अंग हैं–(१) वमन, (२) विरेचन, (३) स्नेहन, (४) स्वेदन, (५) नस्य । इन कृत्यों से शरीर में भरे हुए मल निकल जाते हैं और उपचार सफल होने की सम्भावना बढ़ जाती है । राजयोग के पाँच यम और पाँच नियम प्रख्यात हैं । वे ठीक बन पड़ें तो समझना चाहिए कि प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधि का पथ-प्रशस्त हो गया। तंत्रयोग के पाँच मकार, हठयोग के पाँच प्रयास प्रथमत: किये जाते हैं । सिख धर्म के पाँच प्रतीक प्रख्यात हैं । मन्त्राराधन में जिस आधार पर प्रखरता बढ़ती और सफलता मिलती है उन्हें विनियोग के अन्तर्गत बता दिया गया है । ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्व इन पाँचों अंगों को ठीक तरह समझते हुए, ठनका समुचित प्रयोग करते हुए यदि मन्त्र साधन किया जाय तो उसका सत्परिणाम मिलने में फिर कोई विशेष कठिनाई शेष न रह जायगी ।

देवता क्या है ? उनका तेज मानव शरीर में किस प्रकार प्रवेश करता है और क्या प्रभाव उत्पन्न करता है ? इसकी विवेचना करते हुए श्रुति कहती है–

**"विष्णुमुखा वै देवाइछन्दोभिरिमान्लोकानन पजय्यमभ्य जपन्"**

अर्थात् देवता विष्णु मुख हैं । वे मन्त्र रूप होते हैं । इन मन्त्र देवताओं ने न हटाये जा सकने वाले अवरोध हटाये हैं और न जीते जा सकने वाले वर्चस्व जीते हैं ।

मन्त्र शब्द गुच्छक मन्त्रों की शास्त्रीय विधि से की गई उपासना अपने प्रतिफल उत्पन्न करती है । साथ ही एक तथ्य और भी है कि सद्विचारों को अपनी चेतना में ओत-प्रोत करके तदनुरूप व्यक्तित्व को ढाल लिया जाय तो यह भी प्रत्यक्ष जीवन क्रम में उतरने वाला मन्त्राराधन ही है । सत्प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त की गई सद्भावना युक्त वाणी भी मन्त्र शक्ति के समान ही फलवती होती है ।

सन्त विनोबा ने पंढरपुर सर्वोदय सम्मेलन के एक प्रवचन में वाणी की उपासना पर प्रकाश डालते हुए कहा था–"मेरा बोलना जप के लिए है । जिन विचारों को बोलता हूँ वे दृढ़ होते चले जाते हैं ।—जो किया है, आप लोगों ने किया है । मैने तो जप किया है । भूदान का जप किया तो भूदान मिला । सम्पत्ति दान का जप किया तो सम्पत्ति दान मिला । न तो मैं यज्ञ करता हूँ, न दान करता हूँ, न तप करता हूँ, मैं तो केवल जप ही करता हूँ और मेरे सारे काम बन जाते हैं ।"

शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है कि "जन समाज का मैल धोने वाला शब्द प्रवाह ही सारस्वत मन्त्र है, जन कल्याण की दृष्टि से किया गया संभाषण एवं प्रवचन इस प्रतिपादन के आधार पर मन्त्र साधना के समतुल्य ही प्रभावोत्पादक होता है ।"

वेदों में मन्त्रों की २० हजार ऋचाएँ हैं । इन सभी को विभिन्न छन्दों में विभक्त किया गया है । छन्द अर्थात् गीत गायन । इन सभी गीतों की सीमा मर्यादा है । कौन किस प्रकार गाया जायेगा, इसका ऋषिगणों द्वारा उसी समय निर्धारण हो गया है, जब इनका सृजन हुआ है । इन्हें लयबद्ध गाया जाना चाहिए । मोटा विभाजन तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के क्रम में हुआ है । मन्त्रों के नीचे, ऊपर आड़ी टेढ़ी लकीरें जो लगाई जाती हैं, उनमें उच्चारण के संकेत हैं । लेकिन जब इन्हें स्वर समेत गाना हो तो उनके सरगम, सामवेद में दिये गये हैं । वहाँ अंकों के चिह्न हैं । वैदिक सरगम का १,२,३,४ आदि अंकों में अक्षरों के ऊपर दिया जाता है । यह ध्वनियाँ हैं जिन पर हिन्दी गीतों को कई-कई तरह गाया जाता है । इन गाने के ढंगों को सरगम की भिन्नता के हिसाब में अंकित किया जाता है । आगे वाले इन आड़ी-टेढ़ी लकीरों को हिसाब में अनुमान लगा लेते हैं और छन्दों को उसी क्रम से गाने लगते हैं । एक छन्द को अनेक ध्वनियों में गाया जा सकता है । इन ध्वनि भिन्नताओं में स र ग म के अतिरिक्त आड़ी-टेढ़ी लकीरों में संकेत ध्वनि बना देते हैं । इस प्रकार वेद मन्त्रों में जो ऋचा सामगान के रूप में गायी जाती हैं, तब उनके ऊपर अंक संकेत लगा देते हैं । सामगान की यही परम्परा है । कुछ दिन पूर्व सामगान की अनेकों शाखाएँ थीं, पर अब वे लुप्त हो गईं । जो बची हैं मात्र वे ही उपलब्ध हैं ।

इसके अतिरिक्त जटा-पाठ, घनपाठ का भी तरीका है । इनमें से कुछ मिलते हैं, कुछ लुप्त हैं । जो मिलते हैं, उनमें से अधिकांश की श्रुति सम्पदा है । कहना और सुनना अथवा कण्ठस्थ करना वेदों का क्रम था । पर अब इतना परिश्रम लोग करते नहीं । जो लिखित है उसी के सहारे गाड़ी चलती है, आगे भी चलती रहेगी ।

शुद्ध उच्चारण के लिए कंठस्थ होना विश्वस्त एवं प्रामाणिक है । गायन की दृष्टि से ही यह लयबद्धता नियोजित नहीं की गई, पर उनके अर्थ और प्रतिफल भी भिन्न हो जाते हैं । किस प्रयोजन के लिए, किस मन्त्र को, किस लय ध्वनि में गाया जाय, इसका अपना अलग शास्त्र है । मन्त्रों के विभिन्न प्रयोजन हैं । मात्र शब्दार्थ तो मोटी बात है । उसे तो निरुक्त, व्याकरण, शब्द कोष के सहारे सरलतापूर्वक समझा जा सकता है । छन्दों के साथ ऋषि, देवता आदि का भी उल्लेख किया जाता है । इन संकेतों के हिसाब से यह अनुमान लगाया जाता है कि अर्थ किस प्रयोजन के निमित्त किया जायेगा । शब्दार्थों की दृष्टि से एक ही मन्त्र के कई अर्थ भी हो सकते हैं । पर ऋषि को किस प्रसंग का अर्थ अभीष्ट है यह जानने के लिए छन्द ऋषि, देवता का, जो हर मन्त्र के साथ उल्लेख है उसका अवलोकन कर तद्नुसार निर्धारण करना होता है ।

मन्त्रों का शब्दार्थ ही सब कुछ नहीं है । यह भी दृष्टव्य है कि ध्वनि प्रवाह के आधार पर इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी ? प्रतिफल क्या उत्पन्न होगा ?

शब्द का प्रतिफल वार्तालाप में भी भला-बुरा होता है । मीठे और कड़ुए वचन अपने-अपने भले-बुरे परिणाम उत्पन्न करते हैं । इसी प्रकार उच्चारण की प्रतिक्रियाएँ शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक क्षेत्रों में अपने-अपने ढंग की अलग-अलग होती हैं । इन्हीं को मन्त्र की परिणति कहते हैं । अमुक विधि में अमुक मन्त्र का प्रयोग करने से अमुक रोग का निवारण—अमुक मनोविकारों का शमन होता है । अमुक प्रकार के विचार उठते और अमुक प्रकार की भावनाएँ जन्म लेती हैं । मनुष्य की कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं जो उसे उत्साहित, निरुत्साहित, आनन्दित, उदासीन बनाती हैं । उन मनोवृत्तियों का प्रभाव जीवन के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार का होता है । यही मन्त्र की परिणति है । मन्त्र बल से धन का पिटारा तो किसी को नहीं मिलता पर ऐसी प्रवृत्तियाँ अवश्य उठती हैं जिनके कारण मनुष्य लाभान्वित होता या घाटा उठाता है ।

अदृश्य जगत के अदृश्य प्राणी परोक्ष रूप में कई बार अमुक व्यक्ति से सम्बन्ध बनाकर अच्छी या बुरी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं । इनमें कुछ अनिष्टकर हों तो उनका शमन—समाधान मन्त्र बल से हो सकता है । ग्रह-नक्षत्रों का अमुक समय में अमुक व्यक्ति पर श्रेष्ठ या निकृष्ट प्रभाव पड़ना बताया जाता है । इसी को दुर्भाग्य या सौभाग्य कहते हैं । इन परिस्थितियों को मन्त्र बल से अनुकूल किया जा सकना एवं प्रतिकूलताओं का निवारण भली-भाँति सम्भव है ।

## गायत्री जप का वैज्ञानिक आधार

गायत्री महामन्त्र के विधि-विधान सहित जप की महत्ता शास्त्रकारों ने बड़े विस्तार से लिखी है । कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं देखने में आता जिसमें इस मन्त्र के जप की व्यष्टिगत एवं समष्टिगत फलश्रुतियों का वर्णन न किया गया हो । यदि समुचित विधि से कर पाना सम्भव न भी हो तो भी इसके किसी भी अवस्था में जप व भावनात्मक ध्यान के सत्परिणाम होते बताये गये हैं । इसके पीछे इस मन्त्र में निहित प्रेरणाओं का महत्व तो है ही, छन्द शास्त्र की दृष्टि से शब्द गुच्छकों की महत्ता तो अपनी जगह है ही इसका मनावैज्ञानिक आधार भी इतना सशक्त है कि यह एक पूर्णत: विज्ञान सम्मत प्रक्रिया प्रतीत होती है ।

वस्तुत: मनुष्य शरीर एक ऐसी जटिल मशीन है जिसे समझने में सैकड़ों वैज्ञानिक लाखों जीव शास्त्री और करोड़ों चिकित्सा शास्त्री लगे हुए हैं किन्तु अब तक जितना जाना जा सका है वह नगण्य ही है ।

योग साधनाओं के द्वारा इस शरीर के सम्बन्ध में जो कुछ जाना गया है, वह विज्ञान की अपेक्षा कई गुना अधिक महत्वपूर्ण है । इन साधनाओं के कठोर अभ्यास के द्वारा चेतना के गहन अन्तराल में प्रविष्ट हो तत्वदर्शी ऋषियों ने इस शरीर को ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति के रूप में पाया । इसमें ऐसे-ऐसे चक्र, कोश, उपत्यिकायें, नाड़ी, गुच्छक और दिव्य क्षमता सम्पन्न केन्द्र विद्यमान हैं जिन्हें देखकर उन्हें "यत् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे" जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह सारा का सारा इस पिण्ड (देह) में विद्यमान है । १३ करोड़ प्रकाश वर्ष के विराट् क्षेत्र वाले इस ब्रह्माण्ड के माडल शरीर को वस्तुत: सृष्टि की सबसे विलक्षण मशीन कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी । जप विज्ञान एक

ऐसी विद्या है जिसमें "शब्द" को बार-बार दुहरा कर बाँसुरी के छिद्रों में वायु फूँककर उसमें से मधुर ध्वनि निकालने के समान इन शरीरस्थ शक्ति केन्द्रों में से वह क्षमतायें अर्जित कर ली जायें जो साधारण व्यक्तियों के लिये अद्‌भुत और चमत्कार जैसी लगें । इन शक्तियों को जाग्रत करने में जप साधना महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती है । इसके माध्यम से आत्म-चेतना का उच्चस्तरीय शिक्षण होता है । इसी कारण प्रत्येक धर्म ने चाहे वह हिन्दू हो या सिख, ईसाई, बौद्ध, ताओ, इस्लाम या बहाई कोई भी हो अपनी उपासना पद्धति में जप को अनिवार्य रूप से जोड़ रखा है ।

जप में गायत्री मन्त्र के जप को प्रधानता जो दी गयी है, इसका कारण यह है कि महाप्रज्ञा का उच्चस्तरीय तत्व दर्शन इसमें समाहित है । सद्बुद्धि की प्रेरणा से मानव मात्र का कल्याण सोचने वाले आर्ष कालीन ऋषियों ने इसे अत्यधिक महत्व देते हुए वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता तक कहा है । न केवल हिन्दू धर्म में अपितु अन्यान्य मत सम्प्रदायों में भी इसे उचित स्थान प्राप्त है । गाँधी जी ने इसे भावी विश्व धर्म या संस्कृति का मूल आधार माना था व कहा था कि कभी विश्व-शान्ति आयी तो इसी मन्त्र की प्रेरणा से आ सकेगी ।

गायत्री मन्त्र पूर्णतः विज्ञान सम्मत है एवं इसकी जप प्रक्रिया केवल मनोवैज्ञानिक क्रिया नहीं, अपितु लय-ताल पर आधारित शब्द-शक्ति की वैज्ञानिक विद्या है ।

यहाँ विज्ञान की उस जटिलता में जाना अभीष्ट नहीं है। अपितु जप के माध्यम से आत्म चेतना का उच्चस्तरीय प्रशिक्षण किस प्रकार होता है, उसकी जानकारी देना है । जप व्यक्ति को अपनी अन्तर्चेतना की ओर अभिमुख करने और विराट् चेतना के साथ संगति सामंजस्य स्थापित करने की एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है। गायत्री उपासना के प्रारम्भिक स्तर के साधक को मन्त्र जप का मनोवैज्ञानिक आधार समझ में आ जाये तो मन न लगने, ध्यान उखड़-उखड़ जाने वाली कठिनाई का आधा निराकरण तत्काल हो जाता है, शेष मंजिल वह कुछ ही समय में पूर्ण कर सकता है ।

मनोवैज्ञानिकों ने चेतना को प्रशिक्षित करने के लिए जो चार आधार बताये हैं वह चारों ही तथ्य "जप" में सन्निहित हैं । जप को इन्हीं चार धारणाओं का समुच्चय कह सकते हैं । यह आधार हैं (१) शिक्षण—बार-बार दोहराना—रटना (२) जो जाग गया है या जिसे बार-बार दुहराया गया है, उसे स्व-स्वभाव का अंग बना लेना (३) टूटे सम्बन्धों को फिर कायम करना, बिखरे हुए स्नेह सम्बन्धों को फिर से स्थापित करना और (४) अपनी आस्था निष्ठा और विश्वास को अनुभूति और सम्वेदना के स्तर तक प्रगाढ़ बना देना । दार्शनिक शैली में इन्हें ही (१) आत्म निरीक्षण (२) आत्म शोधन (३) आत्म निर्माण और (४) आत्म विकास कहते हैं । यह क्रमिक सोपान हैं। जप की चार सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़ कर ही आत्मा परमात्मा तक पहुँचती है । इनमें योगाभ्यास जैसी क्रियायें दिखाई न देने पर भी इतनी सुदृढ़ता है कि मात्र इसी एक आधार को अपनाकर व्यक्ति आत्म निरीक्षण से आत्मोत्कर्ष तक की उच्च स्थिति तक जा पहुँचता है ।

जप की यह महत्ता अकारण रही होती तो गायत्री उपासकों से नियमित रूप से अधिक से अधिक जप की प्रेरणा देकर निरर्थक समय गँवाने के लिये नहीं कहा जाता, इसके पीछे मनोवैज्ञानिक के यही चार सशक्त सिद्धान्त कार्य करते हैं, यह साधक को दीन-हीन अवस्था से उठाकर महा समर्थ अवस्था तक पहुँचाने में पूर्ण सक्षम हैं। अज्ञान की राख से ढके आत्मा के अंगार को चमकाने में यही चार आधार हैं । जप प्रक्रिया इन्हीं को पूरा करती है ।

'शिक्षण' संस्कार की पहली भूमिका है । संसार में कोई शिक्षित व्यक्ति ऐसा नहीं जिसने इस भूमिका में प्रवेश किये बिना स्कूल की पढ़ाई पूरी की हो । प्रारम्भ में सभी को बार-बार दोहराने की क्रिया से करना पड़ता है। जप साधना में भी मन्त्र को बार-बार दोहराना पड़ता है। उसके बिना अभीष्ट संस्कार उत्पन्न नहीं होते ।

गायत्री मन्त्र में परमात्मा से सद्बुद्धि प्रदान करने वाले जिस "धी" तत्व की माँग की गई है वह एक बार कह देने मात्र से संस्कार नहीं बन सकता । मनोभूमि उस ऊबड़-खाबड़ कठोर भूमि की तरह होती है जिसमें जुताई, निराई, गुड़ाई किये बिना बीज बोना उसे निरर्थक गँवा देने की तरह है । साधना का बीज फले-फूले इसके लिये "जप" द्वारा उसकी पर्याप्त जुताई आवश्यक होती है । जप के द्वारा व्यक्ति को अपने भीतर झाँकने का अभ्यास होता है जिससे वह अन्तरंग में छिपे कल्मष कषायों को पहचानता है । उन्हें नष्ट करने, निकाल बाहर फेंकने की योजना बनाता है । भागवत् संस्कारों को गहराई तक जमाने के लिये इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है । जप एक तरह की रगड़, मँजाई, खराद है जिससे मन और अन्तःकरण पर छाई हुई कलुष-कालिमा की धुलाई

होती है । भीतर की अन्तरात्मा की चमक उसी से प्रारम्भ होती है । इसीलिये प्रत्येक गायत्री उपासक को प्रतिदिन नियमित रूप से नियत स्थान में और सम्भव हो तो नियत संख्या में भी गायत्री मन्त्र जप का क्रम अपनाना चाहिये । कभी कम कभी अधिक से कहीं वर्षा कहीं सूखा, कहीं बीज कहीं ऊसर की सी उपहासास्पद स्थिति बनती है । यह अभ्यास का क्रम काफी समय तक चलता है तब कहीं सफलता का द्वार खुलता है ।

आत्म विकास की दूसरी सीढ़ी "जानकारी को स्वभाव का अंग बना लेना" अपने दोषों पर जैसे-जैसे दृष्टि साफ होती जाती है साधक उनके प्रति घृणा भी करने लगता है और उनका परित्याग भी करता है । अकेले आत्म निरीक्षण से सन्तोष कर लिया जाये तो इसे अधूरा जप माना जायेगा, स्वभाव में जो कमियाँ, कमजोरियाँ और दुराग्रह भरे पड़े हैं उनका निष्कासन जितनी तेजी से होगा इष्ट की समीपता की उतनी ही स्पष्ट अनुभूति होगी । इस अवस्था में आँख-मिचौनी और धूप-छाँव तो चलती है जन्म-जन्मान्तरों के बुरे अभ्यास, तृष्णा, वासना और अर्हतायें बार-बार गड्ढे में गिराने का प्रयत्न करती हैं पर अब तक साधक जान लेता है कि वह शरीर नहीं आत्मा है वह जितना लौकिक है पारलौकिक उससे लाख गुना अधिक है सो रत्ती भर स्वार्थ के लिये करोड़ मन परमार्थ की उपेक्षा कोई बुद्धिमानी नहीं अतएव वह अध्यात्म में ही अपना कल्याण देखकर पूरे मन से पीछे लौटता, भूल के लिये प्रायश्चित करता, उसे सुधारता और फिर कभी उसकी पुनरावृत्ति न होने देने का संकल्प लेता है ।

मनुष्य का सूत्र संचालक कोई और है । धागे टूट जाने पर जिस तरह कठपुतली के नाच में आनन्द नहीं रह जाता, पिता से बिछुड़ कर जिस तरह पुत्र श्री हीन हो जाता, है, विद्युतघर से कनेक्शन कट जाने से जिस तरह बल्ब प्रकाशहीन हो जाता है, उसी तरह परमात्मा से बिछुड़ने के कारण ही आत्मा की दुर्गति हुई है ।

चेतना को प्रोन्नत करने के लिये मनोविज्ञान का तीसरा आधार भी जप से ही पूरा होता है । जप काल में चेतना आत्म केन्द्रित होकर ही अपने परमार्थिक स्वरूप को पहचानती है । जैसे-जैसे यह पहचान घनीभूत होती है साधक अपने अतीत की स्मृतियों को कुरेदता और भूतकाल की अपनी अवस्था को विचारता है । स्वभावतः यह लगता है कि हम परमात्मा से बिछुड़ गये । अन्त में यह बिछुड़न ही दुःख का मूल कारण है । इसलिये वह बारम्बार अपने हितैषी को इस बात के लिये पुकारता है हे माँ ! अब मुझे उस अन्ध कूप में गिरने नहीं देना । इस अवस्था में जब शरीर निर्मल हुआ, मन निर्मल हुआ तो स्वभावतः मन विधेयात्मक विचारणा से, आदर्श कर्तृत्व से भरा हुआ होगा ।

चौथी स्थिति आध्यात्म निष्ठा की परिपक्व अवस्था है । जप के द्वारा भी साधक अपने प्रकाश स्वरूप की "सविता" के तेज से संगति बैठाता है । जैसे-जैसे यह स्थिति प्रगाढ़ होती है वैसे-वैसे साधक अपने को सविता के तेज के रूप में "अयमात्मा ब्रह्म", "तत्वमसि", "सोहअस्मि", "शिवोऽहं", "चिदानदोऽहं" की अनुभूति करता है । इसे ही समाधि, तुरीयावस्था अथवा इष्ट सिद्धि कह सकते हैं । आत्म विकास के इस परिपाक तक पहुँचने के लिये इस तरह जप से ही कार्य चल जाता है । अन्य कठिन योगाभ्यासों में पड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती । इसीलिये जप को यज्ञ और विज्ञान की संज्ञा दी गई । जप पूर्णता तक पहुँचाने में अकेला ही समर्थ है ।

मन्त्र में सन्निहित सामर्थ्य का उपयोग जप द्वारा करके सृष्टि के ऐसे रहस्यों का उद्घाटन भी किया जा सकता है जो अभी वैज्ञानिक बुद्धि में तो नहीं समाते पर सामान्य कल्पनाओं से परे हो सकते हैं । यदि ऐसा रहा होता तो उच्च शिक्षित वैज्ञानिक वर्ग भी इस तरह की आध्यात्मिक अनुभूतियों से स्वतः ही ओत-प्रोत हो गया होता, जबकि देखा यह गया है उच्च शिक्षित, मनीषी और विचारक कहे जाने वाले लोग भी सांसारिक मायाजाल में फँसे रहते हैं जबकि कम शिक्षित पर भावनाशील गायत्री उपासकों में भी उच्च आत्मिक शक्ति प्रादुर्भूत होते देखी जा सकती है ।

इसका कारण है कि मन्त्र की सफलता का मूल आधार "अक्षर विज्ञान" है । मन्त्रों में निस्सन्देह अपार शक्ति निहित है कि मन्त्र गुच्छकों में निहित वैज्ञानिकता को हमें भूलना नहीं चाहिये । विज्ञान का अर्थ है सिद्धान्त का गणितीय होना । इसे निश्चित नियमबद्धता भी कह सकते हैं । इसमें साधक की आन्तरिक निर्मलता के साथ-साथ प्रतिदिन नियत समय जप करना भी आवश्यक है । नियत समय पर जप के साथ-साथ जप का समस्वर होना भी आवश्यक है । कभी जल्दी, कभी धीरे-धीरे, कभी आलस्य में, कभी सजग होकर किये गये अस्त-व्यस्त जप से परिणाम तो निकलेंगे पर अस्पष्ट और उलझे हुये होंगे । माला से जप का कारण यही है कि एक

मन्त्र जप से प्रत्येक दूसरे मन्त्र जप में नियत अन्तर रहे, कम अधिक नहीं । सामान्यत: एक घण्टे में १० या ११ माला का जप होता है अतएव नियमबद्धता को घड़ी के साथ भी साधा जा सकता है पर मन्त्र जप का परिपूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिये प्रतिदिन नियत समय, नियत स्थान में, नियमित रूप से जप करना आवश्यक होता है । परिस्थितिवश स्थान परिवर्तन करना पड़े तो भी जहाँ तक सम्भव हो समय की नियमितता का पालन तो करना ही चाहिये । उसके पीछे भी वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं ।

विधि पूर्वक जपे गये मन्त्र से उपासकों की अनुभूतियाँ, उनका चिन्तन इतना विस्तृत होता है कि जिससे संसार की यथार्थता समझ में आ जाती है । भौतिक लाभ तो ऐसे हैं जैसे तीर्थयात्रा जाते समय मार्ग में पड़ने वाले किसी नगर से आवश्यक वस्तुयें भी खरीद ली जायें । मूल लाभ आत्मा की ईश्वरीय चेतना में परिणति ही है । जिसे यह लाभ मिल जाता है, वह वस्तुत: जीवन्मुक्त हो जाता है । उसका जीवन सचमुच धन्य हो जाता है । गायत्री मन्त्र की सफलता का यही मुख्य आधार है जिसे प्रयोग कर लाभान्वित होना हर व्यक्ति के लिये सम्भव है ।

## गायत्री जप की भावनात्मक पृष्ठभूमि

गायत्री महामन्त्र के मन्त्र शिरोमणि होने एवं भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ मंत्र घोषित किए जाने के अनेकों कारण हैं । मंत्र में शब्दों का गुंथन इस वैज्ञानिक रीति से हुआ है कि इसके जप से साधक की अन्त:चेतना में प्रसुप्त सूक्ष्म संस्थानों पर आघात होता है । प्रसुप्ति जागृति में बदलती है । शक्ति स्रोतों के भंडार खुल जाते हैं । अन्त:करण जागरण बाह्य चेतन जगत से सम्पर्क जोड़कर इतनी सामर्थ्य को संचित कर लेता है जिसे असामान्य, चमत्कारी कहा जा सके । यह तो मंत्र का वैज्ञानिक पक्ष हुआ ।

वैचारिक पक्ष में जीवन एवं जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक छोटी-बड़ी समस्याओं का समाधान समाहित है । मन्त्र में सन्निहित तत्व दर्शन में सृष्टि के सभी रहस्यों, तथ्यों का निरूपण किया गया है जो ईश्वर, जीव एवं प्रकृति के स्वरूप एवं आपसी सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं । मंत्र के २४ अक्षरों में छिपे तत्वज्ञान के चिन्तन-मनन द्वारा ज्ञान के उस स्रोत तक पहुँचा जा सकता है जिसे शास्त्रकारों ने आत्म-ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान के नाम से वर्णन किया है ।

वैज्ञानिक, वैचारिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष की तुलना में गायत्री महामन्त्र का भाव पक्ष कहीं अधिक प्रेरणादायक, समर्थ एवं प्रभावशाली है । विश्व की किसी भी संस्कृति में मात्र २४ अक्षरों में ब्रह्म विद्या एवं साधना विज्ञान का इतना सशक्त एवं समग्र दर्शन नहीं मिलता । भाव-संवेदनाओं की पराकाष्ठा का दर्शन यदि कहीं करना हो तो गायत्री महामन्त्र में किया जा सकता है । भावों की उदात्तता के कारण ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र होने का श्रेय उसे प्राप्त हो सका है ।

मन्त्र का देवता सविता है । सविता शब्द "षूड़ प्राणिगर्भविमोचने याषू प्रेरणो" धातुओं से बना है । 'षूड़' धातु से बनाने पर "य: सुते चराचर जगत् उत्पादयति स सविता"—जो चराचर जगत को उत्पन्न करता है वही सविता है । 'षू' धातु से बनाने पर—"य: सुवति प्रेरयति सर्वान् स सविता" अर्थात् जो सबको सद्मार्ग की ओर प्रेरित करता है, वह सविता है । इन सभी अर्थों के अनुसार जड़-चेतन को उत्पन्न करने वाले तथा सबको पवित्र बनाने एवं श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले भगवान सविता हैं । सूर्य को भी सविता कहते हैं । सूर्य स्वयं प्रकाशमान है तथा दूसरों को प्रकाशित करते हैं । इसी प्रकार सविता देव भी स्वयं प्रकाश के पुंज हैं तथा सबमें अपने प्रकाश का आलोक वितरित करने वाले हैं । गायत्री उपासक—सविता का साधक भी इन्हीं उदात्त भावनाओं से सम्पन्न बनता चला जाता है ।

मन्त्र के तीन चरण हैं । तीनों में दिव्य प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं । उन्हीं का आह्वान, अवगाहन साधक करता तथा अपनी धारणा शक्ति का विकास करता है । प्रथम चरण है—तत्सवितुर्वरेण्यं । पृथ्वी में, अन्तरिक्ष में, धुलोक में, अग्नि में, विद्युत में, सूर्य में सर्वत्र भगवान सविता का तेज समाया हुआ है । अपने भाव नेत्रों से इष्ट की—परमात्मा की झाँकी सविता के प्रकाश पुन्ज के रूप में सर्वत्र करता हुआ साधक भाव-विभोर हो उठता है । सविता की उज्ज्वल-पवित्र ज्योति एक अनिवर्चनीय आनन्द में डुबोये रहती है । इस दिव्य ज्योति का गुणगान उपनिषदों में भी मिलता है ।

"न तत्र सूर्योभाति न चन्द्तारक,
नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्त मनु भांति सर्वे,
तस्यमासा सर्वमिदविभति ॥"

*(कंठ, मुण्डक, श्वेताश्वतर)*

अर्थात्—उसकी ऐसी दिव्य ज्योति है कि उसके समक्ष सूर्य, चन्द्र, तारे सभी फीके पड़ जाते हैं। बिजली की चमक उसके आगे कुछ नहीं है—अग्नि की बात ही क्या है। उस महाज्योति पुंज से ही प्रकाश लेकर ये सभी आलोकित हो रहे हैं । उसी दिव्य ज्योति का अवगाहन, आराधन सविता साधक करता है । उस वरणीय ज्योति को अधिकाधिक धारण करने की कामना करता है ।

प्रथम चरण में सविता के रूप में उस परम सत्ता के दिव्य गुणों का वर्णन हुआ है, जिसकी स्तुति कर साधक फूला नहीं समाता । स्तुति के उपरान्त प्रार्थना का क्रम है। सविता की प्रकाश स्तुति के उपरान्त साधक कह उठता है—"भर्गो देवस्य धीमहिं" अर्थात् जिन दिव्य गुणों का विशेषताओं का हम ध्यान करते हैं वह हमारे अन्दर अवतरित हों । भक्त-भगवान का, साधक-साध्य का, उपासक-उपास्य का, जीव-ब्रह्म का तादात्म्य, एकरूपता परस्पर के आदान-प्रदान इष्ट की दिव्यता के अवतरण से ही सम्भव हैं । मंत्र के द्वितीय चरण में यही प्रार्थना की गई है । हे प्रकाश-पुन्ज, पापनाशक, दिव्य, आनन्ददायक परमात्मा स्वरूप सविता देव आप हमारे अन्दर अवतरित हों । हम आपके दिव्य गुणों को अपने अन्दर धारण करते हैं । आप हमारे भीतर अवस्थित हो जायें जिससे आपके आलोक से हमारा अन्तःकरण जगमगा उठे ।

मंत्र के तृतीय चरण में इस तथ्य का स्पष्टीकरण हुआ है कि दैवीय गुणों की शक्तियों को क्यों धारण करना चाहते हैं ? "धियो योनः प्रचोदयात्"—ताकि वह हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित कर दें । बुद्धि प्रसुप्ततमिस्रा के घोर अन्धकार में सोयी पड़ी है । उसे अपने लक्ष्य का, कर्तव्यों का बोध नहीं है। सांसारिक आकर्षणों में इस तरह भटक गयी है कि उसे अपनी गरिमा का भान नहीं है। मंत्रों के तृतीय भाग में यही प्रार्थना की गई है—"हे सविता देव अपने दिव्य गुणों के साथ हमारे अन्तः में अवतरित होकर बुद्धि को अन्धकार की तमिस्रा से प्रकाश की ओर धकेल दो । जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश प्रातःकाल अपनी तेजस्वी स्वर्णिम किरणों के साथ आकर सोये हुए प्राणियों को जगा देता है और कर्मों में प्रवृत्त करता है उसी प्रकार सविता देव का प्रकाश भी गायत्री साधक के अन्तःकरण में आकर बुद्धि को प्रकाशित करता है । प्रसुप्ति जागृति के रूप में परिलक्षित होती है । बुद्धि में प्रज्ञा का अवतरण होता है । असत्य की, जड़ता की तमिस्रा छटती है । सत् का, चैतन्यता का प्रादुर्भाव होता है। प्रज्ञा की ओर उन्मुख बुद्धि जड़ता के बन्धन, लोभ-मोह के आकर्षणों में नहीं बँधती । उसके स्वः की परिधि संकुचित नहीं रहती । विस्तृत होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का रूप लेना चाहती है । स्वः का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में विस्तार ही जीवन का प्रयोजन है । गायत्री महामंत्र की दिव्य प्रेरणाओं को धारण कर साधक इसी लक्ष्य की प्राप्ति की ओर तत्पर होता है ।

महामंत्र के वर्णित आशय से स्पष्ट है कि इसे इतना अधिक गौरवास्पद स्थान भारतीय संस्कृति में क्यों मिला है । इसमें किसी वस्तु की कामना नहीं की गई है । की भी गई है तो बुद्धि को निर्मल पवित्र बनाने—सन्मार्ग पर प्रेरित करने की । वह भी अपने लिए मात्र नहीं, समष्टि के लिए प्रार्थना की गई है । "योनः" हम सबकी बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग की ओर अग्रसर हो । दृष्टा ऋषि इस तथ्य से परिचित थे कि समष्टि के कल्याण में ही व्यक्ति का भी हित निहित है । इसी कारण प्रज्ञा के अवतरण की प्रार्थना भी समष्टि के लिए की गई है ।

गायत्री मंत्र का भाव पक्ष इतना उदात्त, इतना पवित्र एवं मानव मात्र के लिए कल्याणकारक है कि उसके चिन्तन एवं मनन द्वारा अन्तःकरण की भावनाएँ स्वतः उमड़ने लगती हैं । सही रूप से महामन्त्र का अवगाहन, आराधन एवं चिन्तन-मनन किया जा सके तो क्रमशः आत्मोत्कर्ष की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए विराट् सत्ता के निकट पहुँचा जा सकता है । जिसके निकट पहुँचने, उसके दिव्य स्वरूप का दिग्दर्शन करने के उपरान्त कोई कामना अवशेष नहीं रहती । एक अनिर्वचनीय आनन्द में साधक सदा डूबा भौतिक जगत में रहते हुए भी निर्लिप्त बना रहता है ।

## गायत्री महामन्त्र की शब्द शक्ति

शब्द का मोटा उपयोग ज्ञान के लिए किया जाता है। वाणी जो कहती है, कान जो सुनते हैं उनका सामान्य प्रयोजन यही रहता है कि जानकारी बढ़े । एक व्यक्ति दूसरे तक अपने जो विचार एवं भाव पहुँचाना चाहता है

और उसकी प्रतिक्रिया जानना चाहता है तो उसके लिए शब्दों का ही माध्यम अपनाना पड़ता है । शब्द भावनाओं के, विचारधाराओं के भार वाहक हैं । वे उन्हें इधर से उधर ढोते रहते हैं और मनुष्य के एकाकीपन को दूर कर उसे दूसरों के साथ तादात्म्य बनाते रहते हैं । व्यष्टि को समष्टि के रूप में विकसित करने का सारा श्रेय शब्दों को ही है । यदि मनुष्य बोल सकने की विशेषता से वंचित होता, वाणी का वरदान उसे न मिला होता तो रीछ, बन्दरों की तरह अपना नगण्य अस्तित्व ही किसी प्रकार बनाये रख सका होता । सृष्टि का मुकटमणि कहलाने का जो श्रेय सौभाग्य आज प्राप्त है वह उपलब्ध न हुआ होता ।

भौतिक प्रगति में शब्द की कितनी अधिक उपयोगिता है इसे हर कोई जानता है । शिक्षा का मूल प्रयोजन शब्द भण्डार की क्षमता का परिचय प्राप्त कर उससे लाभान्वित होना ही तो है । शब्दों की आकृति अक्षरों के रूप में अंकित करने की लेखनकला ने इस शक्ति में और भी चार चाँद लगा दिये हैं । लिखने और बोलने की कला ने विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के सुविस्तृत क्षेत्र का अधिपति मनुष्य को बना दिया है । इस क्षमता से जो वंचित रह गया उसे एक प्रकार से मानसिक अपाहिज व गूंगा बहरा ही कहना चाहिए । यह कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं कि हमारी आन्तरिक और बाह्य प्रसन्नता एवं प्रगति का आधार शब्द ही है । मानवीय व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में—मानव समाज को सुविकसित एवं सुसंगठित बनाने में शब्द की महत्ता ही सर्वोपरि है ।

'शब्द' के इस स्थूल उपयोग से हर कोई परिचित है । शब्द का ज्ञान संवर्धन उपयोग करने के लिए संगीत साहित्य का विकास हुआ है । यह संसार इतना सुरम्य और सरस दिखाई पड़ता है उसमें शब्द का योगदान असाधारण है । यह जानते हुए लोग शब्द की शक्ति को सुविस्तृत करने और उसका इच्छानुरूप उपयोग करने में प्रवृत्त भी हैं । रेडियो के सहस्रों देशी-विदेशी केन्द्र निरन्तर प्रचार कार्य में लगे हैं । करोड़ों की संख्या में प्रतिदिन छपने वाले अखबार इसी प्रयोजन को पूरा करने में संलग्न हैं । साहित्य के मुद्रण प्रकाशन और विक्रय व्यवसाय में लगे हुए लाखों कार्यकर्ता मानव जाति की इसी आवश्यकता को पूरा करने में तत्पर हैं । तार, टेलीफोन, पोस्ट-आफिस, सिनेमा, ग्रामोफोन आदि अनेकों शाखाएँ इसी दिशा में प्रवृत्त हैं । विद्यालय तो हैं ही इस प्रयोजन के लिए । मनुष्य जाति शब्द के माध्यम से उपलब्ध होने वाले "ज्ञान संवर्धन" लाभ से परिचित है । अस्तु वह उसका भरपूर लाभ उठा भी रही है । यों उसके दुरुपयोग दुष्परिणाम भी उसे कम नहीं भुगतने पड़ रहे हैं । मानवीय अध:पतन और द्वेष दुर्भावों को बढ़ाने में भी शब्द के दुरुपयोग को ही दोष दिया जा सकता है ।

यह शब्द शक्ति की मोटी जानकारी हुई । बारीक जानकारी-सूक्ष्म रहस्य यह है कि शब्द अपने आप में एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की क्षमताओं से सुसम्पन्न "शक्ति" है । जिस प्रकार बिजली, भाप, ऐटम, बारूद आदि के माध्यम से विभिन्न स्तरों की शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं, उसी प्रकार शब्द भी एक प्रकार का महत्वपूर्ण शक्ति स्रोत है । इसका उपयोग ज्ञान के लिए नहीं वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए भी किया जा सकता है ।

शब्द की संगीत शाखा का प्राणियों के शरीरों पर जो अद्भुत प्रभाव पड़ता है, उसकी खोज बहुत दिनों से जारी है। इस शोध के प्रयत्नों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनसे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । हॉलैण्ड और डेनमार्क में पशुपालक दूध दुहते समय अब एक विशेष प्रकार की स्वर लहरी का प्रयोग करते हैं । उन्होंने पशु शरीरों पर अनुकूल प्रभाव डालने वाली संगीत धारा के ग्रामोफोन रिकार्ड बना रखे हैं । वे उन्हें बजाते हैं, जिसका प्रभाव पशुओं के नाड़ी संस्थान पर पड़ता है और दूध-ग्रन्थियाँ अधिक स्राव करने लगती हैं । इस प्रकार इन्होंने दूध की मात्रा में काफी बढ़ोत्तरी कर ली है ।

सर्प-विद्या के ज्ञाता बीन बजा कर जहरीले साँपों को उनके छेदों में से बाहर बुला लेते हैं और जब वे उस संगीत लहरी को सुनने में तन्मय-भाव विभोर हो जाते हैं तब सपेरे उन्हें पकड़ लेते हैं । साँप के लहराने का मनोरंजन दिखाने वाले सपेरों का एकमात्र माध्यम उनका बीनवादन ही होता है । प्राचीन काल के बहेलिये हिरनों को पकड़ने के लिए बीन बजाने का अस्त्र उपयोग करते थे । मधुर संगीत सुन कर जब हिरन चौकड़ी मारना भूल जाते थे और मुग्ध होकर उस मधुर ध्वनि को सुनने के लिए ठगे से खड़े रह जाते थे तब धूर्त बहेलिये उन्हें अचक से पकड़ लिया करते थे ।

विषैले फोड़ों और भूतोन्माद जैसे कठिन रोगों के निवारण में अब भी देहाती क्षेत्रों में उल्टे घड़े पर काँसे की थाली को रख कर हथेली तथा लकड़ी की सहायता से

एक विचित्र ध्वनि लहरी के साथ बजाते हैं, उसका परिणाम भी आश्चर्यजनक होता देखा गया है। कंठमाला, विषबेल जैसे 'गाँठ की टी. बी.' कहलाने वाले फोड़े उससे अच्छे होते पाये गये हैं । भयंकर साँप काटे का जहर उतरते देखा गया है । उन्माद रोग की एक शाखा भूतोन्माद भी है । इस रोग से ग्रसित पीड़ितों को उपर्युक्त प्रकार का उपचार अद्भुत लाभ पहुँचाता है । अमेरिका के मनोविज्ञानवेत्ता अब अनिद्राग्रस्त रोगियों को हल्की संगीत लहरी सुना कर निद्रा लाने में सफल हो रहे हैं । स्नायुतंतुओं की विकृति के कष्टग्रस्त रोगी इसी प्रयोजन से आविष्कृत विशेष संगीत साधनाओं द्वारा रोग मुक्त किये जाने लगे हैं । गर्भस्थ बालकों के मानसिक एवं स्नायविक विकास के लिए कई वैज्ञानिकों ने गर्भवती को एक विशेष प्रकार की वाद्य ध्वनियाँ सुनने की व्यवस्था की है और उससे आशाजनक परिणाम उत्पन्न हुए हैं ।

प्राचीन काल में दीपक राग, मेघ मल्हार सरीखे ध्वनि प्रवाह हमारे देश में प्रचलित थे । कहते हैं कि दीपक राग से बुझे हुए दीपक जल जाते थे और मेघ मल्हार गाने से सूखे आकाश में घटायें घिर आती थीं । मन्त्र शास्त्र इसी विद्या का विकसित रूप है । भारतीय विज्ञानवेत्ता-ऋषियों ने शब्द विद्या का इस दृष्टिकोण से गहन अध्ययन, अन्वेषण किया था । आरण्यकों में बने उनके आश्रम एक प्रकार के वैज्ञानिक शोध-संस्थान होते थे । उनमें मन्त्र विद्या के आविष्कार-अन्वेषण इसी दृष्टि को लेकर किये जाते रहते थे कि किन शब्द गुच्छकों का समूह—कौन मन्त्र—किस उच्चारण के साथ—किस भाव मुद्रा में—किस व्यक्ति द्वारा—किस प्रकार प्रयुक्त किया जाय तो उसका क्या परिणाम उत्पन्न हो सकता है ?

वेद मन्त्रों में जहाँ सदुपदेशों की सत् शिक्षा का समावेश है वहाँ उनकी ध्वनि लहरी का वैज्ञानिक महत्व भी है । वेद की महत्ता केवल इसीलिए नहीं है कि उनमें जीवनोत्कर्ष की सत् शिक्षायें भरी पड़ी हैं । यह प्रयोजन तो प्रचलित भाषा की भाव भरी कविताएँ और भी अच्छी तरह पूरा कर सकती हैं । वेद मन्त्रों में इतनी अधिक कोमलता एवं अभिव्यक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती जितनी आधुनिक कविताओं में । फिर कठिन संस्कृत का समुचित अर्थ एवं भाव समझना भी उतना सरल नहीं जितना बोली जाने वाली भाषा में बनाई हुई भाव भरी कविता द्वारा सरल हो सकता है । इस दृष्टि से तो वेद मन्त्रों की तुलना में आधुनिक कविताएँ भी बाजी मार ले जा सकती हैं । इसलिये हमें यह समझ लेना चाहिये कि मन्त्रों की महत्ता केवल मात्र उनकी शिक्षा ही नहीं है । जिस आधार पर मन्त्रों का इतना गौरव एवं महत्व है वह वस्तुतः उनका विज्ञान ही है ।

गायत्री मन्त्र को ही लें । उसे शिक्षा की कसौटी पर कसा जाय तो उसकी महिमा साधारण-सी रह जायगी । प्रकाशवान, श्रेष्ठ, तेजस्वी, वरेण्य, देव स्वरूप परमात्मा का ध्यान करने और उससे सद्बुद्धि की प्रेरणा प्राप्त करने का मात्र सन्देश यह महामन्त्र है । इतनी छोटी बात तो हिन्दी कविता में भी कही जा सकती है, कही गई है । गायत्री के अर्थ को व्यक्त करने वाली कितनी ही भाव भरी कविताएँ बनी हैं और प्रचलित हैं । क्या उन गायनों को गायत्री महामन्त्र का रूप मिल सकता है ? यदि अर्थ ही एकमात्र तथ्य रहा होता तो दुरूह संस्कृत में कहे गये उस मन्त्र के स्थान पर वे कवितायें अधिक गौरवास्पद एवं उपयोगी रही होतीं ।

तथ्य यह है कि मन्त्रों के शिक्षापूर्ण अर्थ तो एक प्रकार की ब्याज हैं । मूल धन तो उनकी वह शक्तियाँ हैं जो एक विशेष स्तर पर उद्भूत होती और मानव जीवन को असाधारण रूप से प्रभावित करती हैं । इस शक्ति के स्वरूप, रहस्य एवं प्रयोग को जान लेना ही मन्त्र की आत्मा को जान लेना है । प्राचीन काल में मन्त्रों में सन्निहित शक्ति को एक शोध विषय माना जाता था और उनका प्रयोग, परीक्षण एवं साक्षात्कार करने के लिए ऋषियों का जीवन उत्सर्ग होता था । वेद मन्त्रों में से प्रत्येक का एक विनियोग होता है जिसमें उसके छन्द, ऋषि एवं देवता का उल्लेख रहता है। मन्त्र पढ़ने से पूर्व विनियोग की चर्चा इसलिए आवश्यक मानी गई है कि इस मन्त्र की शोध, प्रशक्ति एवं पद्धति की जानकारी उस मार्ग के पथिक को ठीक तरह हो सके ।

गायत्री महामन्त्र का ऋषि विश्वामित्र—उसके विनियोग में बताया गया है । इसका तात्पर्य यह है कि विश्वामित्र ने गायत्री मन्त्र का अन्वेषण एवं साक्षात्कार कर सकने में सफलता प्राप्त की । प्राचीन काल में वैसे ही लोग दीर्घजीवी होते थे फिर ऋषियों की आयु तो और भी लम्बी होती थी । वे निरन्तर अपने शोध कार्य में तन्मय रह कर जो कार्य करते थे वह मन्त्र की आत्मा का दर्शन ही होता था । यह कार्य कठिन, श्रमसाध्य और गहन अध्यवसाय पर निर्भर है, इसलिये लम्बे जीवन उस पर उत्सर्ग हो जाते हों तो आश्चर्य ही क्या है ?

मन्त्रों में जिन शिक्षाओं का उल्लेख है, उनकी जानकारी आसानी से हो सकती है । किसी मन्त्र का अर्थ एवं शिक्षण अधिक से अधिक दो घण्टे में जाना-सीखा जा सकता है । इसके लिये किसी व्यक्ति का समस्त जीवन बचाने की क्या आवश्यकता हो सकती है ? शोध कार्य उसमें सन्निहित रहस्य का ही होता है । मन्त्रों का रहस्य उनके अक्षरों में नहीं, उनमें सन्निहित शक्ति भण्डार में खोजा जाता है । ऋषियों ने अपने बहुमूल्य जीवन इसी के लिये उत्सर्ग किये थे । महर्षि विश्वामित्र ने इस मन्त्र की क्षमता, शक्ति, परिधि, प्रक्रिया, प्रेरणा, प्रशक्ति एवं उपलब्धि को ढूँढ़ निकालने में ही सारा जीवन लगाया और अपने पुण्य प्रयोजन में सफलता भी प्राप्त की ।

शब्द का उच्चारण मुख से होता है । मुख में जिह्वा प्रधान है । इसलिए मोटे तौर से यह समझा जाता है कि जीभ ही बोलती है । पर वास्तविकता यह है कि कंठ, होठ, जिह्वा, तालु, दाँत आदि मुख के भीतरी विभिन्न अवयवों के विशाल संचालन से विशिष्ट शब्द उच्चारित होते हैं । पाणिनि व्याकरण में अक्षरों के स्थानों का भी उल्लेख हुआ है । इन अवयवों के सञ्चालन की मिश्रित प्रक्रिया स्वरूप जो ध्वनि निकलती है वह वाह्य जगत् में विकीर्ण होकर 'शब्द' का रूप धारण करती है । कान उसे सुनते हैं और मस्तिष्क उसे धारण करता है । यह शब्द 'ईथर' तत्व में मिल कर धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक ही नहीं फैलते वरन् विश्व ब्रह्माण्ड में सुविस्तृत हो जाते हैं । सुनाई तो वे थोड़ी ही देर पड़ते हैं, पर उनका अस्तित्व अनन्त काल तक बना रहता है ।

अभी जो शब्द हमारे मुख से निकला वह कुछ सेकण्ड के अन्तर से इस देश से उस देश में पहुँच जायगा। चंद्रमा आदि निकटवर्ती उपग्रहों तक पहुँचने में उसे कुछ मिनट लगेंगे । सारे मण्डल के नवग्रहों की कक्षाएँ पार करते-करते उसी शब्द को कुछ घण्टे लगेंगे । फिर जैसा हमारा सूर्य नौ उपग्रहों और ४७ उपग्रहों समेत घूम रहा है, वैसे ही वैसे पच्चीस लाख तारे हमारी 'स्पाइरल' आकाश गंगा में जुड़े पड़े हैं । इस हमारी आकाश गंगा की चादर में अपने सूर्य जैसे २५ लाख तारे जगमगा रहे हैं । फिर अकेली 'स्पाइरल' आकाश गंगा ही इस विश्व ब्रह्माण्ड में थोड़ी है । वैसी करोड़ों आकाश गंगायें इस अनन्त अन्तरिक्ष में घूमती, नाचती फिर रही हैं और उनमें से प्रत्येक में हमारी आकाश गंगा की तरह ही लाखों सूर्य, करोड़ों ग्रह-उपग्रह जुड़े पड़े हैं । 'ईथर' उन सबमें व्याप्त है । आज हमारे मुख से निकला हुआ शब्द करोड़ों वर्षों तक समुद्र से बहने वाली लहरों की तरह आगे बढ़ता चला जायगा और फिर चिर भविष्य के बाद 'गोल' सिद्धान्त के आधार पर लौट-लौट कर वहीं आ जायगा जहाँ से चला था । यह शब्द भले ही बहुत दूर निकल गया हो पर उसका अस्तित्व क्षीण रूप में हर जगह बना रहेगा । इसे विशेष विधियों से पकड़ा भी जा सकता है । अभी उस बात के प्रयोग हो रहे हैं कि महाभारत की घटनाओं को आँख से देखना और कृष्ण की गीता को कान से सुनना सम्भव हो सके । सम्भावना इस बात की पूरी-पूरी है कि भविष्य में भौतिक विज्ञान वह प्रगति कर लेगा कि कितने ही वर्ष पुरानी अतीत की घटनाएँ फिर देख सकना और शब्दावलियों को सुनना सम्भव हो जायगा ।

यहाँ विषयान्तर न करके केवल उतना कहा जा रहा है कि मुख से अथवा किसी अन्य माध्यम से निकला हुआ शब्द वाह्य जगत में अपनी एक स्थिति ग्रहण कर लेता है, और अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखकर निरन्तर क्रियाशील बना रहता है । यह शब्द दूसरों पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं । अपमान, शोक, चिन्ता, भय आदि अनुभव करने वाले शब्द सुनकर सुनने वालों के शरीर एवं मन पर तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है । किसी प्रियजन की मृत्यु का समाचार सुनकर सारा शरीर और मानसिक ढांचा हिल उठता है । भूख और नींद तक उड़ जाती है । आँखें आँसू बहाती हैं और अन्तरात्मा हाहाकार करने लगती है । अपमान में क्रोध आता है और आँखें लाल हो जाती हैं, शरीर काँपने लगता है और मस्तिष्क सही सोचना बन्द करके आवेश में कुछ न कुछ करने को तैयार हो जाता है । उसी प्रकार लाभ, प्रेम, प्रशंसा, सफलता आदि की सूचना देने वाले शब्द मुरझाये शरीर एवं मन को हरा कर देते हैं । शब्दों के प्रभाव से लोग बदलते हैं, गिरते और उठते हैं । इसी से सत्संग की इतनी महत्ता गाई गई है । 'काक होहि पिक बकहु मराला' की उक्ति सत्संग पर ठीक ही लागू होती है और कुसंग के दुष्परिणाम तो रोज ही आँखों के सामने प्रस्तुत होते रहते हैं । शब्दों के भले-बुरे प्रभाव जो व्यक्ति या समाज पर पड़ते हैं उनका अपना एक स्वतन्त्र इतिहास है । द्रोपद के मुख से निकले हुए आठ अनुपयुक्त अक्षर 'अन्धों के अन्धे होते हैं' महाभारत की पृष्ठभूमि बन गये और लाखों मनुष्यों के लहू में पृथ्वी लाल हो गई । इसी प्रकार सन्तों,

ऋषियों, अवतारों ने समय-समय पर अवतरित होकर अपनी वाणी से सृष्टि संतुलन को ठीक करने में सफलता प्राप्त की है । समय को, युग को, परिस्थितियों को बदल डालने में शब्दों का क्या योगदान है इसकी चर्चा करने में तो एक अलग ही विषय चल पड़ेगा । गायत्री महामन्त्र की शब्द रचना पर विचार करने के संदर्भ में लिखे गये इस लेख में तो इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि शब्द को सामान्य वस्तु न समझा जाय, वाह्य जगत में इसकी हलचलें बहुत ही समर्थ एवं अद्‌भुत होती हैं ।

शब्द का अन्तर्मन में जो प्रभाव उत्पन्न होता है वह और भी अद्‌भुत है । मुख से निकल कर शब्द सर्वथा वाह्य जगत में ही गतिशील नहीं हो जाता । उसकी आधी शक्ति बाहर जाती है और आधी अपने भीतर भ्रमण करने लगती है । उच्चरित शब्द की आधी शक्ति ब्रह्माण्ड में विकीर्ण होती है और आधी पिण्ड में अपनी प्रबल प्रक्रिया आरम्भ कर देती है । बन्दूक चलाने में जब गोली छूटती है तो निशाने पर तो चोट करती ही है, एक झटका पीछे को भी देती है । इसलिए बन्दूक चलाने वाले सीने से उसे ठीक तरह कस कर जमा लेते हैं, अन्यथा चलाने वाले के कन्धे, सीने को वह बन्दूक तोड़ कर रख सकती है । शब्दोच्चारण भी एक प्रकार से बन्दूक चलाने जैसी प्रक्रिया है । केवल आकाश में ही उसका प्रभाव होता है ऐसी बात नहीं, उससे समीपवर्ती क्षेत्र में—शरीर में भी उसकी प्रतिक्रिया होती है । इस प्रतिक्रिया का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरान्त तत्वदर्शी महामनीषी ऋषियों ने मन्त्र विद्या खोज निकाली, उन्होंने यह आविष्कार किया कि किस-किस शब्द का किस-किस क्रम से, किस भावना और किस स्थिति में, कैसा उच्चारण किया जाय तो उसकी क्या प्रतिक्रिया व्यक्ति एवं समष्टि पर होगी । इस वैज्ञानिक उपलब्धि के ऊपर मन्त्र विद्या का सुव्यवस्थित ढांचा खड़ा किया गया है ।

अब से पाँच छः वर्ष पूर्व दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शनी हुई थी । उसके अमेरिकन कक्ष में एक ऐसी रेलगाड़ी दिखाई गई थी, जिसकी मशीनरी रेडियो संचार व्यवस्था के अनुसार बनी थी । प्रदर्शनकर्ता कुछ शब्द बोलता था, उन शब्दों से जो ध्वनि तरंगें निकलती थीं, उन्हीं से प्रभावित होकर रेल चलती, दौड़ती, मुड़ती और खड़ी हो जाती थी । प्रदर्शनकर्ता दर्शकों को समझाता था कि शब्द अपने आप में एक शक्ति है । जिस प्रकार भाप, तेल या बिजली के सहारे रेलें चलती हैं, उसी तरह इस रेडियो व्यवस्था के यन्त्रों से बनी रेल को हम शब्द के सहारे गतिशील बनाते हैं ।

सन् १९२३ में जर्मन विज्ञान सभा के तत्वावधान में कुछ ऐसे मनुष्य आकृति यन्त्र बनाये गये थे जो देखने में बिल्कुल मनुष्य जैसे लगते थे । वे चलते, दौड़ते, खड़े होते, बैठते और मुड़ने में ठीक फौजी सैनिकों की समता करते थे । इतना ही नहीं वे कुछ प्रश्नों का सही उत्तर भी देते थे । बन्दूक का सही निशाना साधते थे । उनकी यह सारी गतिविधियाँ निर्देशक द्वारा उच्चारण किये गये शब्दों पर निर्धारित रहती थीं । बर्लिन की विज्ञान प्रदर्शनी में उन्हें जन-साधारण को दिखाया गया था और बताया गया था कि शब्द में वह क्षमता मौजूद है कि वह इन यन्त्र मानवों को इच्छानुसार कार्य करने के लिए तत्पर कर सकें ।

शब्द की महत्ता और क्षमता की अद्‌भुत प्रतिक्रियाएँ मानव प्राणियों पर होती देखी जाती हैं । शब्दों द्वारा अपमानित व्यक्ति खूंख्वार बन जाता है । आत्महत्या से लेकर दूसरों की हत्या करने तक पर उतारू हो जाता है । प्रेम भरे शब्दों के बदले सब कुछ लुटा डालने वाले के उदाहरण कम नहीं हैं । सेनापति के आदेश पर सेना के अगणित वीर अपनी जान की परवाह किये बिना कूँच करते हैं । नेता के आदेश पर अनुयायी अपने जीवन की बाजी लगा देते हैं । किसी दीन-दुःखी की आर्त पुकार सुनकर सहृदय व्यक्ति बड़ी से बड़ी जोखिम उठा कर भी सहायता के लिए बढ़ते हैं । सत्पुरुषों के सदुपदेशों से प्रभावित होकर दुष्ट दुर्जनों के जीवन पलटते और उन्हें सन्त सज्जन बनते देखा गया है । निराशों में आशा का सञ्चार और भीरुता ग्रस्तों में शौर्य एवं साहस, प्रेरणाप्रद शब्दों के प्रभाव से उत्पन्न हो सकता है । इतिहास के पन्ने इस प्रकार के उदाहरणों से भरे पड़े हैं । मीठे वचन की प्रशंसा कटु वचनों की भर्त्सना में नीतिकारों ने बहुत कुछ कहा है । 'कागा काको धन हरे, कोयल काको देत । मीठे वचन सुनायके जग अपनो कर लेत ।' की उक्ति पग-पग पर सार्थक होती देखी जाती है । 'वशीकरण एक मन्त्र है, तजदे वचन कठोर' । इस वचन की सत्यता में किसी को क्या संदेह होगा । 'जेहि नहिं सीखो बोलिवो, तिहि सीखो सब धूरि' इस नीति वचन में शिक्षा की कसौटी सुसंस्कृत वाणी को ही प्रतिपादित किया गया है ।

शब्द की स्थूल शक्ति का परिचय थोड़े बहुत लोगों को है भी पर सूक्ष्म शक्ति की जानकारी सर्वसाधारण को

नहीं के बराबर ही है । जिस प्रकार धूलि का एक कण स्थूल दृष्टि से नगण्य महत्व का है पर वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उस धूलि कण के परमाणुओं में छिपी शक्ति का जब लेखा-जोखा लिया जाता है तब प्रतीत होता है कि वह नन्हा-सा कण दस लाख टन बारूद जितनी शक्ति अपने अन्दर छिपाये बैठा है । उसका यदि विस्फोट हो जाय तो तीस मील के दायरे को भस्मसात करके रख दे । इस शक्ति की जानकारी जन साधारण को भले ही न हो पर वैज्ञानिक इस तथ्य को भली प्रकार समझते हैं और तदनुरूप उसका प्रयोग परीक्षण करने में संलग्न रहते हैं ।

ऋषियों ने शब्द शक्ति की शोध उच्च स्तर पर की थी और उन्होंने पाया था कि सामर्थ्य के इस महान भाण्डागार को लोक हित के लिये बहुत ही उपयुक्त रीति से प्रयोग में लाया जा सकता है । अस्तु उन्होंने इस दिशा में लाखों वर्षों तक अथक श्रम किया और जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुई उनसे मानव जाति का महान हित साधा । आजकल जिस प्रकार विविध यन्त्रों से सुख-सुविधा के विभिन्न प्रयोजन और उपकरण प्राप्त किये जाते हैं—उसी तरह प्राचीन काल में यन्त्रों द्वारा वह सब कुछ प्राप्त किया जाता था जो मानवीय सुख-शान्ति एवं प्रगति-समृद्धि के लिए आवश्यक है ।

प्राचीन काल में दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग मन्त्र शक्ति के आधार पर होता था । आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, नागपाश आदि आज के बन्दूक, गैस, गोले जैसे न थे, उनकी सामर्थ्य और विशेषता आज के किसी भी शस्त्र से अधिक थी । 'कृत्या' (घात) द्वारा घर बैठे व्यक्ति का मन्त्र शक्ति से मरण तक किया जा सकता था । मन्त्र शक्ति का यज्ञ के माध्यम से प्रयोग करके विपुल वर्षा और पौष्टिक खाद्य वनस्पति उत्पादन जैसे प्रयोजन पूरे किये जाते थे । शारीरिक और मानसिक रोगों का शमन होता था । आत्मिक उत्कृष्टता उत्पन्न की जाती थी । दिव्य-दर्शन, सूक्ष्म श्रवण जैसी सिद्धियाँ प्राप्त शरीर अपने आप में एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक यन्त्र बन जाते थे । प्राचीन काल का हमारा गौरव और वर्चस्व जिस विज्ञान के आधार पर बना और बढ़ा था, वह मन्त्र शक्ति ही थी । 'शब्द' शक्ति का ठीक तरह उपयोग कर सकने की कला में निष्णात, राजर्षि, महर्षि, देवर्षि और ब्रह्मर्षि स्तरों के वैज्ञानिक इस भारत भूमि को स्वर्गादपि गरीयसी और तेतीस कोटि देवताओं की निवासस्थली बनाने में समर्थ हुए थे ।

आज हम उस महान विज्ञान को भुला बैठे हैं और मणिहीन सर्प की तरह अध: पतित स्थिति में जा पहुँचे हैं । नवजागरण की इस पुण्य बेला में हमें अपने वर्चस्व का मूल स्रोत पुन: खोजना और उपलब्ध करना होगा । वह स्रोत एक ही है—'शब्द' । शास्त्रकार ने 'शब्दों वै ब्रह्म' शब्द को ब्रह्म कहा है । ब्रह्म में, परमात्मा में जो कला, जो विभूति, जो महत्ता विद्यमान है वे सभी शब्द शक्ति माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं । 'मन्त्र' शब्द शक्ति का उच्चस्तरीय उपयोग है । इसका उपयोग यदि हम जान सकें तो नि:संदेह सच्चे ज्ञानी, सच्चे विज्ञानी बन सकते हैं ।

गायत्री महामन्त्र, समस्त मन्त्र शास्त्र का प्राण, बीज, उद्गम एवं मर्म है । आगम और निगम—वेद और तन्त्र के अन्तर्गत जितने भी तांत्रिक प्रयोग हैं, उन सबको गायत्री बीज शक्ति का पल्लव परिकर ही मानना चाहिये । मन्त्र विद्या का भाण्डागार है—वेद और उनका उद्भव वेदमाता-विश्वमाता, गायत्री महाशक्ति के द्वारा हुआ है । इस अनुपम, अद्भुत, अनन्त और प्रमेय विभूति का सान्निध्य प्राप्त कर हमें अपना वैज्ञानिक और सामाजिक-आध्यात्मिक और भौतिक जीवन सुखी, समृद्ध, सफल एव सार्थक बनाना चाहिये ।

हम इस तथ्य को अधिक गहराई के साथ समझें और हृदयंगम करें कि मानव प्राणी की प्रगति और समृद्धि एवं सुख, शक्ति पर निर्भर है । यह शक्ति जिसके पास जितनी अधिक मात्रा में होगी वह उतना ही सफल एवं समर्थ बन सकेगा । शक्ति की आवश्यकता को जिसने समझा और उसे उपलब्ध करने का प्रयत्न किया उसी ने जीवन को समग्र रूप से सुविकसित करने में सफलता प्राप्त की । अतएव हममें से प्रत्येक को शक्तिशाली बनने की दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

भौतिक क्षेत्र में उपलब्ध हो सकने वाली शक्तियों को उपार्जित करने में आज सारा संसार लगा है । रूप, यौवन, बल, धन, शिक्षा, चातुर्य, संगठन आदि बलों को बढ़ाने और उनके द्वारा सुख-सुविधा के साधन एकत्रित करने में सभी लोगों की गतिविधियाँ केन्द्रित हो रही हैं । पुरुषार्थ का फल मिलता भी है । भौतिक सुख-साधन बढ़ भी रहे हैं पर उनसे तृष्णा और वासना, आकांक्षा और अभिलाषा का वेग बढ़ ही रहा है । व्यक्तित्व को विकसित करके समग्र एवं सर्वांगीण सामर्थ्य का वरदान दे सकना उनके बलबूते की बात नहीं है । मनुष्य सच्चे

अर्थों में शक्तिशाली आंतरिक क्षमता की अभिवृद्धि के माध्यम से ही हो सकता है । उसी से वह उस क्षमता का अधिकारी बन सकता है जिसके द्वारा आत्मिक और भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में चिरस्थायी एवं परिपूर्ण प्रगति का अधिकारी बन सके ।

आत्मिक शक्ति के प्रसुप्त भाण्डागारों को जाग्रत कर सकने की क्षमता गायत्री के २४ अक्षरों में है । उनमें से हर अक्षर अपनी निज की वैज्ञानिक महत्ता से ओत-प्रोत है। किस विधि से, किस संदर्भ से, गायत्री के इन शब्द शास्त्रों का क्या, कैसा प्रयोग हो सकता है, उसकी चर्चा विस्तारपूर्वक अगले अंकों में करेंगे । पाठक अगले पाँच वर्षों तक इस महत्वपूर्ण विज्ञान को सावधानी के साथ पढ़, समझ और हृदयंगम कर सकें तो वे सच्चे अर्थों में शक्तिशाली बन कर रहेंगे । सर्वशक्तिमान गायत्री माता का सच्चा साधक समग्र शक्ति का अधिकारी बन कर ही रहता है ।

## गायत्री उपासना विज्ञान की दृष्टि में

उपासना का अर्थ है—ईश्वर के आदर्शों के समीप बैठना। उपास्य, आराध्य की स्थिति से जितनी ही अधिक समीप अपनी स्थिति विनिर्मित कर ली जाये, उसके जितना अधिक अनुकूल-समतुल्य बना जाये उसकी क्षमताएँ, शक्तियाँ, सामर्थ्य उसी अनुपात में अपने अन्दर आती और अपने चेतन व भौतिक गुणों से लाभान्वित करती चली जाती हैं। ईश-उपासना का सुनिश्चित वैज्ञानिक आधार है जो सही अर्थों में सम्पन्न होने पर शरीर, मन, बुद्धि में आवश्यक परिवर्तन के रूप में परिलक्षित होता है।

"दि ह्यूमन सेन्सेज" नामक अपनी कृति में विख्यात वैज्ञानिक डॉ. गेल्डार्ड ने बताया है कि नक्षत्रीय गतिविधियाँ मनुष्य की मानसिक व शारीरिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं। मनुष्य की कोशिकाओं में अनुकूल तत्वों को आकर्षित करने, अवशोषण कर अपने में धारण करने और इस आधार पर शरीर से टूटने वाली ऊर्जा की कमी को पूरा करने की अद्भुत सामर्थ्य है। उनके अनुसार शरीर का प्रत्येक कोश एक लघु उप स्टेशन है जो मुख्य स्टेशन-मस्तिष्क से जुड़ा रहता है। मस्तिष्क में जो भी भाव तरंगें उठती हैं उनका प्रभाव तत्काल शरीर के अणुओं-कोशिकाओं पर पड़ता है। इसी आधार पर मनुष्य आकाश की अदृश्य शक्तियों से तो प्रभावित होता ही है, मन की चुम्बकीय शक्ति के द्वारा वह दूरस्थ नक्षत्र पिण्डों से शक्ति प्रवाह भी अपने अंदर आकर्षित कर धारण कर सकता है और अपनी अंतरंग क्षमताओं को विकसित कर सकता है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इन्हीं शक्ति प्रवाहों को सूक्ष्म दैवीय शक्ति के रूप में माना था और उनके गुणों की पृथकता के आधार पर उन्हें पृथक्-पृथक् देव शक्तियों की संज्ञा देकर उनकी उपासना की विधियाँ विकसित की थीं। साथ ही साथ उनके अभ्यास द्वारा अपनी क्षमताओं को विकसित कर प्रचुर भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष उपलब्ध किया था।

प्रख्यात प्राकृतिक चिकित्साविद् डॉ. हेनरी लिंडर हर ने अपनी पुस्तक "प्रैक्टिस ऑफ नेचुरल थेरेप्युटिक्स" में उपासना की महत्ता बताते हुए लिखा है कि मानवीय मनोभावों को सर्वव्यापी सत्ता किसी देवपुरुष, अदृश्य देवदूत, सिंहपुरुष, महान सद्गुरु यहाँ तक कि लौकिक दृष्टि से किसी प्रेमी के मनोभावों से जोड़कर उनकी विचारणाओं, अनुभूतियों को आत्मसात कर न केवल उनकी भावनाएँ समझने की बात स्वीकार की है अपितु यह भी माना है कि इष्ट की भौतिक, परमाणु या शारीरिक अनुभूतियाँ भी उस स्थिति में विलक्षण रूप में आकर्षित होती हैं। जब यीशु मसीह क्रास पर कील से ठोके गये थे, उस समय सेन्ट कैथराइन अपने शरीर के विभिन्न स्थलों में वैसी ही पीड़ा अनुभव करती थीं। यह उपास्य से उपासक के गहरे तादात्म्य का ही परिणाम है। न केवल चेतन परमाणु अपितु जड़, पिण्ड और वह भी काल ब्रह्माण्ड की सीमा के परे इस तादात्म्य में जोड़े जा सकते हैं और भूत, भविष्य की घटनाओं की जानकारी ली जा सकती है।

गायत्री उपासना में तल्लीन साधक पर किये गये कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान भी इन तथ्यों का आश्चर्यजनक प्रतिपादन करते हैं। उपासना की तल्लीनता के साथ कुछ शारीरिक परिवर्तन होते हैं। उपासना की अवस्था में कम आक्सीजन में भी शरीर का काम चलता है। हृदय व नाड़ियों की गति मंद पड़ने से रक्त विकार कम होते हैं। शयनकाल के बाद शरीर में जो ताजगी आती है वह उपासना काल में ही उपलब्ध होती है।

प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में "उत्सर्जन" की क्रिया अनिवार्य है। हमारे शरीर में भी विकिरण क्रिया चलती

और उससे शक्ति क्षरण होता है, किन्तु उपासना की अवस्था में विकीर्ण होने वाली तरंगें अपना गुण बदल देती हैं और वे शरीर के विष शोधन एवं नई संरचना में जुट जाती हैं। गायत्री का देवता सविता अर्थात् गायत्री उपासना के समय सूर्य के ध्यान की व्यवस्था है। उसका अर्थ है सूर्य की अदृश्य शक्तियों-किरणों को उपर्युक्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर शरीर में धारण करना और उसके आत्मिक व वैज्ञानिक लाभों से लाभान्वित होना। हमारी प्रगाढ़तम उपासना हमारी मनश्चेतना को 'सूर्य' बना देती है। उस शक्ति, सामर्थ्य और अनुभूति की कल्पना की जा सके तो सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि गायत्री सिद्धि के क्या चमत्कार हो सकते हैं?

असंतोष, उदासी, व्यथा, तनाव, निराशा, विषाद आदि ऋणात्मक दबाव से पिट्यूटरी ग्रंथि से जो हार्मोन्स निकलते हैं उनमें एक है—एस. टी. एच. हार्मोन्स। यह शरीर को सीधे प्रभावित करते हैं। इनकी अधिकता से शरीर में व्यग्रता, अधीरता, बेचैनी बढ़ती है एवं आँतों में जख्म हो जाता है और पाचन सम्बन्धी अनेक रोग घेर लेते हैं किंतु उपासना करते समय गहरे ध्यान की अवस्था में मटर के दाने जैसी 'पिट्यूटरी' नामक ग्रंथि से बारह प्रकार के 'हार्मोन्स' स्रावित होते हैं जो मिल-जुलकर शरीर को स्वस्थ संतुलित रखने हेतु सक्रिय होते हैं।

उच्च रक्तचाप नियंत्रण के लिए मुख्यत: केसरपाइन, स्मेलिन, इंडेरेल आदि औषधियाँ दी जाती हैं। इनके प्रभाव से धमनियों की दीवारों में मुलायमी आती है और अकड़न के कारण जो अतिरिक्त दबाव पड़ रहा था वह घट जाता है, किंतु यह निदान स्थायी नहीं है। उपासना एवं ध्यान में निमग्न साधक का परीक्षण करने पर पाया गया कि रक्तचाप को नियंत्रित करने में उपासना-साधना महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करती है।

संवेदना और भावनाओं में आने वाली उत्तेजना के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले तनाव में पिट्यूटरी तथा ऐड्रेनल ग्रंथियों द्वारा सोमोटोट्रिफिक हार्मोन्स तथा डेसोक्साइकोर्टिकोस्टेरोन नामक हार्मोन्स नि:सृत होते हैं। फलत: तनाव के कारण सरदर्द, उच्च रक्तचाप, रूमेटिक अर्थराइटिस, पेप्टिक अल्सर, कोलाइसिस, गेस्ट्रिक अल्सर, हृदयरोग तथा अन्य कितने ही विकार उत्पन्न होते हैं किन्तु मानसिक जप, उपासना एवं ध्यान की अवस्था में इन रस स्रावों का बनना पूर्णत: बंद हो जाता है जिससे साधक स्वस्थ अनुभव करता है। महिलायें स्वभावत: धार्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण उनमें यह रोग कम ही पाया जाता है।

इन्स्टीट्यूट ऑफ लिविंग हार्ट फोर्ड के निर्देशक डॉ. बर्नाड सी. ग्लू ने भी उपासकों एवं ध्यान-साधकों का गम्भीरता पूर्वक परीक्षण किया है। एक ओर उन्होंने शरीर मन में उत्पन्न होने वाले सभी तनावों को शांत करने वाले सारे उपायों का परीक्षण कर देखा तो दूसरी ओर कुछ रोगियों को ध्यान का अभ्यास कराया। इन दोनों प्रकार के प्रयोगों में उन्होंने तनाव मुक्ति और निरापद शांति के लिए ध्यान को ही सबसे अधिक कारगर तरीका पाया। उपासना करने वालों में त्वचा की विद्युत रोधकता दूसरों की अपेक्षा ज्यादा विद्यमान रहती है। यही नहीं उनकी तरंगों की आकृतियाँ भी दूसरे लोगों की अपेक्षा सरल होती हैं।

प्राय: सभी धर्मों ने उपासना पद्धति को अपनाया है। भारतीय धर्म में गायत्री उपासना, ईसाई धर्म में 'होर्सचाज्म', यहूदी धर्म में 'कब्बालह', इस्लाम मत में 'तसव्वुफ', जापान के जैनधर्म में 'जानेन' आदि उपासना विधानों का एक ही अर्थ है। अनन्य और सर्वभाव से किया गया ईश चिंतन उपासना को प्रभावशाली और फलवती बनाता है। उनसे उत्पन्न हुई धनात्मक शक्ति व्यक्ति के आत्मविश्वास, आत्मगौरव और आत्मबल को बढ़ाती है। इसके साथ यदि गायत्री महामंत्र का जप एवं सविता देवता का ध्यान जुड़ जाय तो अनेकानेक आधि-व्याधियों से सहज ही मुक्ति मिल सकती है।

## मंत्र विद्या का वैज्ञानिक आधार

ध्वनि अपने आप में एक शक्ति है। कभी उससे जानकारी प्राप्त करने भर का प्रयोजन पूरा होता था, पर अब वैज्ञानिक विकास ने उसे बहुत ही उच्चस्तरीय एक शक्ति के रूप में सिद्ध कर दिया है। कानों से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ हमें विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। निन्दा सुनकर क्रोध आता है और प्रशंसा की वार्ता हमें प्रसन्नता प्रदान करती है। अपमानजनक चिन्ता उत्पन्न करने वाले शोक सम्वाद शब्द हमें विक्षुब्ध कर देते हैं किन्तु सफलता, सुखद सम्भावना के समाचार सुनते ही मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है और चेहरे पर मुस्कान छा जाती है। मन ही नहीं, शरीर भी उस शब्द

श्रवण की प्रतिक्रिया स्वरूप अपनी गतिविधियों में हेर-फेर कर लेता है। द्रौपदी के शब्दों की कटुता ने महाभारत खड़ा करा दिया था। नम्र और भावना पूर्ण शब्दों से मनुष्य तो क्या भगवान तक पिघल जाते हैं।

मन्त्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि प्रवाह साधक की समग्र चेतना को प्रभावित करता है और उसके कम्पन अन्तरिक्ष में बिखरते हुए परिस्थितियों को अनुकूल बनाते हैं। कंठ, हाथ, जिह्वा, तालु आदि मुख्य अवयवों को विभिन्न शब्दों के उच्चारण में भिन्न-भिन्न प्रकार की हलचलें करनी पड़ती हैं। इनका प्रभाव स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के कतिपय अवयवों पर पड़ता है। उपत्यिकाओं, नाड़ी गुच्छकों, विद्युत भँवरों पर इन मन्त्र ध्वनियों का प्रभाव पड़ता है और सूक्ष्म शरीर से चक्र एवं इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना जैसे विद्युत प्रवाह प्रभावित होते हैं। साधक के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों में होने वाले इस मन्त्र ध्वनि प्रवाह से कई प्रकार के उपयोगी परिवर्तन होते हैं। व्यक्तित्व में नये प्रकार के सुधार उत्पन्न होते हैं। कोई भी शक्ति सबसे पहले अपने उत्पादन स्थल को प्रभावित करती है फिर उसकी क्षमता अगले क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाती हुई आगे बढ़ती है। आग जहाँ जलेगी पहले वही स्थान गरम होगा, बाद में उस गर्मी का विस्तार अगले क्षेत्र में फैलता चलता जायेगा। मन्त्र साधना से सबसे अधिक प्रभावित साधक का व्यक्तित्व ही होता है।

मात्र शब्द प्रवाह ही नहीं मन्त्र साधना में अन्य विविध उपचारों का विधान रहता है। प्रयुक्त पदार्थों एवं हलचलों का, विधि-विधानों का, कर्मकांडों के क्रिया-कलापों का अपना महत्व है। उनकी सम्मिलित प्रतिक्रिया का मन्त्र साधना में अद्‌भुत योगदान रहता है। इस संयुक्त प्रभाव से मन्त्र साधना अपना चमत्कारी प्रतिफल प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होती है। साधक की सत्ता को प्रभावित करती हुई यह ध्वनि धारा—रेडियो तरंगों की तरह अन्तरिक्ष में दौड़ना आरम्भ करती है। शब्दवेधी वाण की तरह उसका प्रवाह सूक्ष्म जगत के उन स्थानों से टकराता है जिन्हें प्रभावित करना साधना का उद्देश्य रखा गया था।

मन्त्र विद्या की सामर्थ्य विज्ञान की आधुनिक शोधों से भी पुष्टि होती है। अब ऐसे यन्त्रों का विकास हो चुका है जिसमें शब्द को सूक्ष्म विद्युत तरंगों में बदल कर मोटर गाड़ियाँ चलाने के काम लिये जाते हैं। सुप्रसिद्ध अँग्रेजी गायिका श्रीमती वाट्स हग्स ने तो बिना यन्त्र के संगीत द्वारा प्रकृति में परिवर्तन करने के प्रयोग किये हैं।

इन प्रयोगों की प्रेरणा उन्हें एक घटना से मिली। श्रीमती वाट्स हग्स एक बार अपने दरवाजे पर बैठी एक राग गा रही थीं। जब जब वे राग गाते-गाते तन्द्रित अवस्था (निमग्नता) की स्थिति अनुभव करती उन्हें एक सर्प की आकृति प्रकट होती दिखाई देती। वे समझ न पाती थीं कि वस्तुत: वहाँ कोई सर्प आ जाता है अथवा वह केवल काल्पनिक अनुभूति भर है। परीक्षा के लिये उन्होंने उस स्थान में बहुत बारीक कणों वाली रेत बिछा दी और फिर से वही राग गाने लगीं। राग गाते-गाते उन्हें फिर वैसी ही अनुभूति हुई। अब उन्होंने राग बन्द किया और रेत के निकट जाकर देखा कि उसमें एक सर्प की आकृति सचमुच बनी हुई है।

इस आश्चर्य ने उन्हें विविध प्रकार के राग सीखने और उनका विकास करने की प्रेरणा दी। राग में यद्यपि स्वर का आनन्द नहीं मिलता तथापि उसमें भावनाओं को दिशा-विशेष में निक्षेपित करने की प्रबल शक्ति होती है। उससे रस मिलता है। यह भाव तरंगें सूक्ष्म आकाश के परमाणुओं में उपस्थित विद्युत में कम्पन उत्पन्न करती हैं। यह कम्पन अपनी-अपनी तरह से परिणाम उपस्थित कर सकते हैं। प्राचीन काल में सिद्ध गायक मल्हार राग गाते थे तो वर्षा होने लगती थी, दीपक राग गाने से बुझे हुए दीपक जल उठते थे, मृग रंजनी गाने से जंगल के हिरण और मृग जीवन और मृत्यु का भय त्याग कर विमोहित हुए चले आते थे। संगीत स्वरों से आबद्ध सृष्टि अन्तराल में जबर्दस्त क्रान्ति उत्पन्न करने की एक महान् उपलब्धि भारतीय आचार्यों ने प्राप्त की थी। वाट्स हग्स का यह नन्हा सा प्रयोग उस उपलब्धि की एक क्षीण झाँकी मात्र कही जा सकती है।

गायत्री उपनिषद् की तृतीय कंडिका में महर्षि मैत्रेय ने आचार्य मौद्‌गल्य से पूछा—देव मन और वाक् (ध्वनि) में क्या सम्बन्ध है तथा इन दोनों का प्रकृति से क्या सम्बन्ध है तो महर्षि उत्तर देते हैं।

**मन एवं सविता वाक् सावित्री, यत्र ह्येव मनस्तद्वाक्।**

**मंत्र वै वाक् तन्मन इति एते द्व योनो एकं मिथुनम्॥**

मन सविता है वाक् सावित्री है, जहाँ मन है वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है वहाँ मन है। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं।

दृश्य जगत वस्तुत: सूर्य का ही व्यक्त रूप है। सूर्य न हो तो सारी सृष्टि निष्प्राण हो जाये। प्रकृति की रचना

सूर्य ही करता है यह रचना शब्द द्वारा ही सम्पन्न करने का अभिलेख शास्त्रकार ने किया है अर्थात् मन को शब्द में लय, गति या मन्त्र में बाँधकर स्थूल अणुओं को उसी प्रकार स्थिर किया जा सकता है जिस प्रकार से सूर्य अपनी प्रकृति को स्थिर करता है।

श्रीमती वाट्स हग्स के इस प्रयोग में स्वर को मन से बाँधकर स्थूल परिणाम उपस्थित करना इस शास्त्रीय सत्यता का प्रमाण था। लार्ड लिटन ने इस प्रयोग की बात सुनीं तो उन्होंने श्रीमती हग्स को अपने पास बुलाया और उन्हें अपनी सभा का माननीय सदस्य बनाकर वैज्ञानिकों के समक्ष इस प्रकार का प्रयोग करने का आग्रह किया। श्रीमती गाट्स हग्स ने तब रागों के द्वारा विभिन्न आकृति-प्रकृति के फूलों-फलों से लदे वृक्ष, सर्पाकार, त्रिकोण, षटकोण, तारे, समुद्र, पक्षी आदि अनेकों प्रकार की आकृतियाँ बनाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया।

आज ऐसे यन्त्रों का विकास हो चुका है जिसमें शब्द को सूक्ष्म विद्युत तरंगों में बदल कर मोटर गाड़ियाँ चलाने के काम लिये जाते हैं पर बिना किसी यन्त्र के प्रकृति में परिवर्तन उत्पन्न करने का यह संगीत-विज्ञान अपने आप में अनोखा था और यह बताता था कि देव शक्तियाँ मन्त्र द्वारा, शब्द विज्ञान द्वारा ही सूक्ष्म स्थूल जगत का नियमन करती हैं। उन विद्याओं के ज्ञाता भी वैसे ही चमत्कार कर सकने में समर्थ हों तो इसे अतिशयोक्ति नहीं मानना चाहिये। मन्त्र स्वर या शब्द विज्ञान एक ही सत्य के भिन्न रूप हैं।

इटली की एक युवती ने सामवेद की एक रचना पर सितार द्वारा अभ्यास किया और उसका प्रयोग कर हजारों दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर दिया। कल्याण के साधना विशेषांक में पं. भगवानदास जी अवस्थी ने इस घटना का विवरण दिया है। फ्रांस की मैडम लोंग ने विभिन्न राग गा कर देवी मेरी और ईसा मसीह के अनेक चित्र बनाकर दिखाये और भारतीय मन्त्र शास्त्र के इस सिद्धान्त की पुष्टि की कि प्रकृति के हर अणु को मानसिक एकाग्रता और ध्वनि के द्वारा किसी भी क्रम में सजा कर कैसा भी-आग, पानी, आकाश, धरती, प्रकाश, पहाड़, नदी, पक्षी, जीव-जन्तुओं का रूप दिया जा सकता है।

मंत्र द्वारा शाप, वरदान, रोगों से मुक्ति, मारण, मोहन, उच्चाटन, अभिचार, कृत्याघात आदि प्रयोग विराट् चेतना शक्तियों द्वारा ध्वनि के माध्यम से उत्पन्न गति जैसे ही क्रिया-कलाप हैं। मंत्र शक्ति के भंडार होते हैं, यदि मन की एकाग्रता द्वारा शब्द शक्ति प्रयोग की बात मनुष्य सीख ले तो वह साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा हजारों गुना अधिक शक्तिशाली हो सकता है। संगीत तो उसका सबसे सीधा सरस व सरल प्रयोग मात्र है।

## गायत्री महामंत्र में निहित रोगोपचार की शक्ति सामर्थ्य

गायत्री महामंत्र की सामर्थ्य सर्वविदित है। इसका प्रयोग जिस भी क्षेत्र में किया जाता है, उधर ही सफलता प्राप्त होती चली जाती है। एक ओर जहाँ इस छोटे से आदि मंत्र में वह ज्ञान और प्रकाश-प्रेरणा भरी पड़ी है जिससे अज्ञान, अंधकार और अभाव को दूर किया जा सकता है और अंतर्निहित सूक्ष्मशक्ति केन्द्रों को जाग्रत कर एक ऐसी मनोभूमि तैयार की जा सकती है जिस पर ईश्वरीय सत्ता केन्द्रीभूत होने के लिए अपना आसन लगाने की स्वीकृति प्रदान करती है। वहीं दूसरी ओर यह वह विज्ञान और विद्या है जिससे शक्ति का उद्भव होता है, प्राणशक्ति बढ़ती है और दीर्घायुष्य प्राप्त होता है। अथर्ववेद १९/१/७१ में गायत्री महिमा का गान करते हुए स्पष्ट उल्लेख है कि यह आयु, प्राणशक्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली है। मंत्र जप का लाभ मानसिक ओजस्विता, बौद्धिक प्रखरता, आत्मिक वर्चस् के रूप में तो मिलता ही है, आरोग्य प्राप्ति, आयुवृद्धि, विपत्ति निवारण जैसी अगणित भौतिक उपलब्धियाँ भी इसकी विशेषता है।

गायत्री महामंत्र का बार-बार लयबद्ध उच्चारण करने से मानवी मन-मस्तिष्क एवं हृदय असाधारण रूप से प्रभावित होते हैं। इस संदर्भ में वैज्ञानिकों ने गहन अनुसंधान किये हैं और पाया है कि मंत्रोच्चार से ध्यान की गहराई में मन को प्रवेश करने का अवसर मिलता है, जिसका प्रतिफल 'अल्फास्टेट' के रूप में ई. ई. जी. मशीन पर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। 'अल्फा स्टेट' मन की वह अवस्था होती है जिसका बाह्य रूप शांतचित्तता और आंतरिक प्रफुल्लता के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जबकि आंतरिक रूप से अंतःकरण में दैवी गुणों का विकास होता है और अतीन्द्रिय क्षमतायें जाग्रत होती हैं। मंत्र जप मानवी चेतना को मथ डालने वाली संसार की सर्वाधिक शक्तिशाली प्रक्रिया है। उससे न केवल असाधारण शारीरिक, मानसिक क्षमता प्राप्त होती है, वरन् आत्मिक विभूतियों और भौतिक सिद्धियों को भी हस्तगत किया जा सकता है।

मंत्र विद्या के विशेषज्ञ वैज्ञानिक जानते हैं कि जिह्वा से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कंठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दन्त, जिह्वामूल आदि मुख के विभिन्न अंगों द्वारा होता है। इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तंतु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं । इस फैलाव क्षेत्र में कई ग्रंथियाँ होती हैं जिन पर उन उच्चारणों का दबाव पड़ता है। जिन लोगों की कोई सूक्ष्म ग्रंथियाँ रुग्ण या नष्ट हो जाती हैं, उनके मुख से कुछ खास शब्द अशुद्ध या रुक-रुक कर निकलते हैं, इसी को हकलाना या तुतलाना कहते हैं। योगविद्या विशारद जानते हैं कि शरीर में अनेक छोट-बड़ी दृश्य-अदृश्य ग्रंथियाँ तथा शक्ति केन्द्र होते हैं जिनमें विशेष शक्ति भंडार छिपे रहते हैं। सुषुम्ना से सम्बद्ध षट्चक्र प्रसिद्ध हैं। ऐसे अगणित सूक्ष्मशक्ति केन्द्र शरीर में है। विविध शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रंथियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन केन्द्रों का शक्ति भाण्डागार जाग्रत होता है। मंत्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है । गायत्री महामंत्र में चौबीस अक्षर हैं। इसका सम्बन्ध शरीरस्थ स्थूल एवं सूक्ष्म ग्रंथि तंत्रों-शक्ति केन्द्रों से है जो जाग्रत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों-अतीन्द्रिय क्षमताओं को सतेज करते हैं। गायत्री मंत्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार चौबीस स्थानों से झंकृत होता है और उससे एक ऐसी स्वर-लहरी उत्पन्न होती है जिसका प्रभाव अदृश्य जगत के महत्वपूर्ण तत्वों पर पड़ता है। गायत्री महामंत्र की शब्दावली ही ऐसे चुने हुए श्रृंखलाबद्ध शब्दों से बनायी गयी है जो क्रम और गुम्फन की विशेषता के कारण उच्चारणकर्ता के शरीर, मन और अंतराल के अतिरिक्त दृश्य-अदृश्य जगत में अपने ढंग का एक अद्भुत एवं विशिष्ट शक्ति प्रवाह उत्पन्न करती है।

मंत्र में ध्वनियाँ होती हैं। ध्वनियों के समूह को ही मंत्र कहते हैं। विज्ञानवेत्ताओं ने शब्द विज्ञान-ध्वनि विज्ञान पर प्रयोग-परीक्षण किये हैं और अनेकों प्रत्यक्ष चमत्कार प्रस्तुत किये हैं। आज चिकित्सा उपचार से लेकर ध्वंसात्मक प्रयोजनों तक में इसे प्रयुक्त किया जाने लगा है। ध्वनि-तरंगों पर नित नये परीक्षण किये जा रहे हैं। जर्मनी के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने विविध परीक्षणों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मानवी काया पर ध्वनि तरंगों का विशेषकर मंत्र विज्ञान का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उन्होंने 'ऊँ' के उच्चारण से निकलने वाली ध्वनि तरंगों से उत्पन्न शक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यदि 'ऊँ' का उच्चारण विधिपूर्वक किया जाय तो उससे एक मोटी दीवार तक फट सकती है। इसी तरह का निष्कर्ष फ्रांस की एक महिला वैज्ञानिक (मि. वाटसह्यूज) ने अपनी पुस्तक—"वॉइस फिगर्स" में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मंत्र जप से हृदय और मस्तिष्क विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। नियत समय पर प्रतिदिन नियमित रूप से जप करते रहने पर क्रमशः मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों का उद्भव होता है। प्राणशक्ति का अभिवर्धन, आरोग्य प्राप्ति एवं दीर्घायुष्य जैसे भौतिक लाभ तो इसके सहज परिणाम हैं।

मानवी काया में संजीवनी शक्ति प्राणशक्ति की घट-बढ़ होने पर शारीरिक एवं मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता है और अनेकानेक प्रकार की व्याधियाँ धर दबोचती हैं। चिकित्सा विज्ञानी इसका उपचार अपने ढंग से करते हैं तो योग विज्ञानी प्राणायाम परक अनेक विधाओं द्वारा इसकी पूर्ति करने का मार्ग सुझाते हैं। गायत्री महामंत्र का जप इस आवश्यकता की पूर्ति आसानी से कर देता है। यह प्रक्रिया हानि रहित भी है और निरापद भी। गायत्री का अर्थ ही है—प्राणों का त्राण-रक्षा करने वाली। 'गय' माने प्राण और 'त्री' माने त्राण करने वाली। इस उपक्रम को अपनाकर मुनष्य विपुल परिमाण में प्राण संचय कर सकता है और महाप्राण बनकर जरूरतमंदों की भी सहायता कर सकता है।

भारतीय अध्यात्म शास्त्रों में इस तरह के अनेक मंत्रों का उल्लेख है जिनके भाव प्रणव जप से चिकित्सकीय लाभ उठाये जा सकते हैं। इन मंत्रों में गायत्री महामंत्र की महत्ता एवं उपादेयता सर्वोपरि है। गायत्री महामंत्र सूर्य का मंत्र है जिसका प्राण-जीवनी शक्ति से सीधा सम्बन्ध है। यह अपने उपासक-जपकर्ता को सर्वप्रथम आयु अर्थात् दीर्घायुष्य प्रदान करती है और प्राणवान बनाती है। वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षणों से भी अब इस तथ्य की पुष्टि हो गयी है कि इस महामंत्र का जप करने से मनुष्य की जीवनी शक्ति में असाधारण रूप से अभिवृद्धि होती है। चिकित्सा विज्ञान की भाषा में जिसे 'इम्यूनिटि' अर्थात् रोग प्रतिरोधी क्षमता कहते हैं, वह और कुछ नहीं प्राणशक्ति की अधिकता ही है। इसके क्षीण होने पर ही मनुष्य रोगी बनता है। गायत्री मंत्र का जप करते रहने पर समूची काया धीरे-धीरे प्राण प्रखरता से भरती जाती है और भीतरी एवं बाहरी रोगाणुओं से शरीर की रक्षा करने के साथ-साथ दीर्घायु प्रदान करती है। गहनतापूर्वक जाँच-परख करने पर पाया गया है कि इस मंत्र का जप

करते रहने पर श्वांसों की संख्या स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है। यह एक मिनट में १५ के स्थान पर सात रह जाती है। प्राय: प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति २४ घंटे में २१६०० बार श्वांस लेता है अर्थात् एक मिनट में १५ बार। प्राणायाम परक यौगिक क्रियाओं से श्वांस-प्रश्वांस पर नियंत्रण साधा और उसकी गति को कम किया जाता है। जप द्वारा भी यही प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इस तरह से यदि कोई व्यक्ति एक घंटा प्रतिदिन जप करता है तो समझा जाना चाहिए कि उसकी आयु में लगभग ५०० श्वांसों की आयु-वृद्धि हो गयी। इस तरह से यदि वह इस प्रक्रिया को निरंतर जारी रखता है तो जीवन में कई वर्षों की वृद्धि हो सकती है।

इस संदर्भ में जबलपुर मेडिकल कालेज के वरिष्ठ चिकित्सा विज्ञानी एवं हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. आर. एस. शर्मा ने गंभीरतापूर्वक परीक्षण किया है। उन्होंने अपनी अनुसंधानपूर्ण कृति "थेरॅप्यूटिकॅल बेनिफिट्स आफ गायत्री मंत्र" अर्थात् गायत्री मंत्र के चिकित्सकीय लाभ में लिखा है कि मंत्र जप आत्मोत्थान में सहायक तो होता ही है, साथ ही साथ इसके प्रभाव से शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य में भी अभूतपूर्व सफलता मिलती है। गायत्री महामंत्र के नियमित जप का मनुष्य के आयुष्य एवं जीवनक्रम पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इस प्रयोग-परीक्षण के लिए ४० से ८० वर्ष आयु के २० व्यक्तियों को चुना गया जो जप करते थे साथ ही सम्बन्धित व्यक्तियों के परिवार से एक-एक ऐसे व्यक्ति को लिया गया जो जप नहीं करता था। दोनों ही समूहों का आहार-विहार समान रखा गया। उनके प्रारम्भिक स्वास्थ्य परीक्षण के सात ई. सी. जी., ई. ई. जी., ब्लडप्रेशर आदि भी नोट कर लिये गये। यह भी परख लिया गया कि किसी व्यक्ति को उच्च रक्तचाप या कोई अन्य हृदय सम्बन्धी बीमारी तो नहीं है। तीन वर्ष तक बराबर त्रैमासिक परीक्षण किया जाता रहा। मंत्र जप करने वाले समूह के जो परीक्षण परिणाम सामने आये, वे अद्‌भुत थे। पाया गया कि जो व्यक्ति जप कर रहे थे, उनके रक्त दाब एवं हृदय-गति क्रमश: कम हो गयी थी, परन्तु जो जप नहीं कर रहे थे उनके हृदय की गति एवं रक्त दाब अपेक्षाकृत बढ़े-चढ़े थे। पहले ग्रुप में न तो किसी को उच्च रक्तचाप की बीमारी थी और न ही 'एन्जाइना' जैसा हृदय रोग। उनमें से किसी को कार्डियोवैस्कुलर या सेरिब्रो वैस्कुलर बीमारियों से मरते भी नहीं देखा गया, जबकि दूसरे ग्रुप के कई व्यक्ति इन्हीं बीमारियों से ग्रस्त होकर दम तोड़ते देखे गये।

हृदय की गतियों पर सामान्य मनुष्यों का कोई नियंत्रण नहीं होता, लेकिन योगाभ्यासियों के लिए हृदय की धड़कन एवं नाड़ी गति आदि को इच्छानुसार घटा-बढ़ा लेना, उसकी लयबद्धता को सुस्थिर बना देना एक सामान्य क्रिया होती है। इस प्रक्रिया द्वारा हृदय की अनैच्छिक पेशियों को वशवर्ती बनाया जा सकता है। हृदय की असामान्य गति—"सायनस टैकीकार्डिया" से लेकर हृदयाघात तक की प्राणघातक बीमारियों से गायत्री मंत्र द्वारा छुटकारा पाया जा सकता है। इस मंत्र द्वारा हृदय की लयबद्धता को न केवल नियमित बनाया जा सकता है, वरन् असामयिक मरण से भी छुटकारा पाया जा सकता है। इस तथ्य की पुष्टि करने के लिए डॉ. शर्मा ने पिछले दिनों १६ से ७० वर्ष आयु के २६६ व्यक्तियों पर १७ दिन से लेकर एक वर्ष तक गायत्री मंत्र के प्रभाव का परीक्षण किया। इनमें से अधिकतर कार्डियक अरिमियास, आट्रियल टैकीकार्डिया जैसे विभिन्न प्रकार के हृदय रोगों से पीड़ित थे। इन्हें नियमपूर्वक गायत्री महामंत्र का जप कराया गया। एक वर्ष बाद पाया गया कि हृदय रोगों में दी जाने वाली प्रचलित औषधियों की अपेक्षा इस महामंत्र का अधिक स्थायी एवं अनुकूल प्रभाव पड़ा।

'हाइपरटेन्सन' अर्थात् उच्च रक्तचाप वर्तमान शताब्दी की सबसे बड़ी बीमारी है। विश्व भर में इस महाव्याधि से पीड़ितों की संख्या करोड़ों में है और प्रतिवर्ष लाखों नये रोगी इस श्रृंखला में आ जुड़ते हैं। प्रचलित औषधि-उपचार भी इसमें कोई स्थायी राहत नहीं दिला पाते, कारण कि यह एक मनोकायिक रोग है, जिसकी जड़ मानसिक उत्तेजनाओं, उद्विग्नताओं, चिंताओं एवं तनावों में छिपी हुई है। इसका उपचार भी तदनुरूप, ही ढूँढ़ा जाना चाहिए जो चिंतन-चेतना को प्रभावित-परिष्कृत कर सके और तंत्रिकातंत्र एवं स्नायु प्रणाली को सुसंतुलित बनाये रख सके। गायत्री महामंत्र को इसके लिए सबसे उपयुक्त पाया गया है। इस महामंत्र में एक ओर जहाँ मन-मस्तिष्क को उच्चस्तरीय विचारणाओं, सत्प्रेरणाओं से परिपूरित करने, मनोविकारों का शमन करने की क्षमता है, वहीं दूसरी ओर इसमें सूक्ष्म कायिक ग्रंथियों, शक्ति-केन्द्रों, नाड़ी संस्थानों को प्रभावित-उत्तेजित करने और उन्हें जाग्रत कर क्षमतावान बनाने की सामर्थ्य विद्यमान है। अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों

ने पाया है कि जिन व्यक्तियों की हृदयगति ११० प्रति मिनट थी, वह ३ माह से एक वर्ष की जप साधना के पश्चात् ७० प्रति मिनट तक हृदयगति को कम करने में सफल हुए। चिकित्सा विज्ञानियों के अनुसार ऑटोनामिक नर्वस सिस्टम एवं मन-मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध मंत्र के साथ जुड़ जाने के कारण ही इस प्रकार के अप्रत्याशित परिवर्तन होते हैं।

गायत्री महामंत्र से होने वाले भौतिक एवं आध्यात्मिक लाभ, सिद्धियाँ, शक्तियाँ किसी दैवी कृपा से अकस्मात् ही प्राप्त नहीं हो जातीं, वरन् उसके द्वारा जो वैज्ञानिक प्रक्रिया अपने आप मंत्रवत् होती हैं उससे लाभ होता है। मंत्र की सफलता उसके शुद्ध उच्चारण में है, तभी उसमें गुँथे शब्दों का प्रभाव विभिन्न शक्ति केन्द्रों पर पड़ना सम्भव होता है। मंत्र जप में भावना के साथ-साथ नियमितता एवं लयात्मकता का प्रमुख योगदान होता है। श्रद्धा और विश्वास तो इसका मेरुदंड है ही।

## शब्द तरंगों में निहित विलक्षण शक्ति

मंत्र-शक्ति की सामर्थ्य सर्वविदित है। रामायण एवं महाभारत काल में आग्नेयास्त्र, पाशुपतास्त्र, वायवास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र जैसे कितने ही दिव्य अस्त्रों के प्रयोगों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। यह सभी मंत्रशक्ति एवं मन: संस्थान की संकल्पित ऊर्जा से परिचालित होते थे। आधुनिक परमाणु आयुधों एवं लेसर अस्त्रों की तुलना में वे कहीं अधिक सटीक निशाने पर गिरते और निर्धारित लक्ष्यवेधन में सफल रहते थे। मंत्रशक्ति द्वारा उद्भूत यह मनुष्य की प्राणशक्ति का, पराशक्ति का चमत्कार है।

अब विज्ञानवेत्ताओं का ध्यान भी मानव में अन्तर्निहित 'पराशक्ति' की ओर आकृष्ट हुआ है। वे शत्रुपक्ष के गोपनीय क्रिया-कलापों की जानकारी प्राप्त करने से लेकर 'माइण्डवार'-'पराशक्ति-युद्ध' तक में इसे प्रयुक्त करने की योजनाएँ बना रहे हैं। सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि मनुष्य मंत्रशक्ति से उद्भूत अपनी संकेन्द्रित ऊर्जा द्वारा गुप्तचरी कर सकता है। समुद्र के गर्भ में छिपी लड़ाकू पनडुब्बियों, प्रक्षेपास्त्रों को अपनी प्रचण्ड प्राणशक्ति से उन्हें नष्ट कर सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि शत्रु पक्ष के लिए प्रहार प्रयोजन के लिए उस शक्ति को काम में लाया जाय। आग्नेयास्त्र स्तर का विकास करके प्रचण्ड शक्ति से किसी को जीवित जलाया जा सकता है, या अग्निकांड जैसी दुर्घटना खड़ी की जा सकती है।

तंत्रशास्त्र ऐसे ही विधानों से भरा पड़ा है। उसमें मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तंभन आदि के कितने ही प्रयोगों का विस्तृत उल्लेख है, साथ ही उनका प्रयोग करने की हिदायत भी है। कारण कोई अनाड़ी बंदूक चलाए तो उसका धक्का चलाने वाले की छाती को भी तोड़ सकता है। तांत्रिक प्रयोगों में जिन विशिष्ट मंत्रों का उपयोग किया जाता है, उनका प्रभाव परिणाम भी अप्रिय होता है। उससे उपलब्ध शक्ति का उपयोग दूसरों को प्रताड़ित करने और हानि पहुँचाने में किया जाता है। यद्यपि उसे जाग्रत करने वाले विशेषज्ञ इस शक्ति का श्रेष्ठ सत्कार्यों में भी प्रयोग कर सकते हैं।

परन्तु मंत्रशास्त्र में ऐसी बात नहीं है। इस विद्या से उद्भूत शक्तियाँ सत्प्रयोजनों में ही प्रयुक्त होती हैं। उसमें मंत्रों का उच्चारण जिस विशेष लय, ध्वनि और सुर के साथ किया जाता है, उसकी परिणति सुखद, सात्विक शक्तियों के उद्भव के रूप में सामने आती है। एक निश्चित क्रम, लय और सीमा में बँधे मंत्रों के जप एवं उनके अर्थों के ध्यान का प्रभाव अवश्य होता है। अध्यात्मशास्त्रों में उल्लेख है कि प्रत्येक मंत्र का अपना विशिष्ट अर्थ, प्रयोजन और मूल्य होता है। उसमें सन्निहित शक्ति का प्रस्फोट उसके शुद्ध उच्चारण पर तो निर्भर करता ही है, साथ ही लय, ध्वनि एवं प्रयोक्ता की भावना, आस्था की भी प्रमुख भूमिका होती है। इन्हीं के सम्मेलन से प्रभावकारी शक्ति उद्भूत होती और तरह-तरह के प्रतिफल प्रस्तुत करती है। इस आधार पर मुँह से उच्चारित प्रत्येक शब्द मंत्रमय और सामर्थ्यवान बनता है। मंत्रवेत्ता आचार्यों का कहना है कि क्रमबद्ध एवं लयबद्ध शुद्ध मंत्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाती है। उसके परावर्तन से चारों ओर तथा लक्षित क्षेत्र तक शक्तिशाली प्रकम्पनों का जाल सा बिछ जाता है। उसकी जितनी सघनता होगी, उतनी ही अधिक चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करेगी। मंत्रित ध्वनि तरंगों से उच्चारण कर्ता के मन-मस्तिष्क और प्राण में नवीन शक्ति प्रवाहित होने लगती है और वह क्रमशः शक्तिपुंज बनता चलता जाता है।

मंत्र विद्या पर अनुसंधानरत वैज्ञानिकों का कहना है कि मंत्रों में इन्फ्रासोनिक एवं कम आवृत्ति वाली अल्ट्रासोनिक स्तर की ध्वनियों का समावेश होता है।

उन्होंने इन्फ्रासोनिक ध्वनि तरंगों को शांत, सात्विक प्रकृति का माना है और कहा है कि इसमें नवजीवन प्रदान करने वाली प्रचण्ड ऊर्जा का भण्डार सन्निहित है। उच्च आवृत्ति वाली अल्ट्रासोनिक ध्वनियों की प्रकृति विनाशकारी होती है । तंत्रविज्ञान में इसी का प्रयोग होता है। इनसे प्राणी और पदार्थ को उसी तरह तबाह किया जा सकता है जैसे—शक्तिशाली शस्त्रास्त्रों से। सर्वविदित है कि परा ध्वनियों के माध्यम से धातु खण्डों को काटा या गलाया तथा इमारतों को क्षणमात्र में ध्वस्त किया जा सकता है। सोवियत संघ के सुप्रद्धि वैज्ञानिक बी. कुद्रयाबत्सेव ने इस बात की गवेषणा कर ली है कि अश्रव्य ध्वनियाँ मंत्रशक्ति का आधार हैं। पाया गया है कि सामूहिक मंत्रोच्चारण से निकली ध्वनि तरंगें पृथ्वी के अयन मण्डल को घेरे विशाल भू-चुम्बकीय प्रवाह से टकराती और परावर्तित होकर सम्पूर्ण वायुमण्डल में छा जाती हैं। इसका प्रभाव न केवल प्रयोक्ता पर होता है, वरन् जड़-चेतन सभी उससे प्रभावित और लाभान्वित होते हैं।

ध्वनि की इस प्रचण्ड सामर्थ्य से प्राचीन काल के ऋषि-मनीषी अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने कुछ ऐसे शब्द या शब्द समूहों का आविष्कार किया, जिनका प्रभाव असामान्य स्तर का होता है। इन्हें ही 'मंत्र' के नाम से पुकारा गया। मंत्र विद्या के इन ज्ञाताओं ने अपने अनुसंधानों और अनुभवों के आधार पर यह पहले ही सुनिश्चित कर दिया था कि किस मंत्र का कितना अथवा किस प्रकार जप करने से कौन सी शक्ति उत्पन्न होगी और उसका मन पर या शरीर के किस अंग अथवा चक्र-उपत्यिका पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा। मंत्राक्षरों के गुंथन और उनमें सन्निहित ध्वनियों का महत्व मंत्रार्थ की तुलना में अनेकों गुना महत्व रखता है।

वर्जीनिया के प्रख्यात चिकित्सा मनोविज्ञानी एवं एसोसियेशन फार रिसर्च एण्ड इनलाइटेनमेण्ट के निदेशक डॉ हर्बर्ट बी. पेरियर का कहना है कि पवित्र मंत्रों में मानव मन एवं अन्तराल को मथ डालने की आश्चर्यजनक क्षमता है। उन्होंने इसे अन्तर्निहित, प्रसुप्त पड़ी पराशक्तियों के जागरण एवं उन्नयन का शक्तिशाली माध्यम बताया है। मंत्र शक्ति का सही उपयोग किया जा सके तो प्रयोक्ता का सम्बन्ध परमात्म सत्ता एवं उसकी सहायक शक्तियों से हो जाता है। मंत्र की सत्यता उसमें सन्निहित शक्तियों के प्रकटीकरण में सन्निहित है और यह प्रयोक्ता की निर्मलता, सुदृढ़ आस्था एवं लक्ष्य की उत्कृष्टता पर निर्भर करता है।

मंत्र जप वस्तुतः एक विशिष्ट अभ्यर्थना है, जो अपनी परिपूर्णता या चरम सीमा पर पहुँचने पर इष्ट को शक्तिशाली चुम्बक की तरह अपने पास खींच बुलाने में ऊर्जा के उच्चस्तरीय रूपान्तरण का यह एक सर्वोत्तम साधन है। मंत्र जप के साथ, मंत्रार्थ का, उसमें सन्निहित दिव्य भावों-प्रेरणाओं का ध्यान चमत्कारी सत्परिणाम प्रस्तुत करता है। मंत्रों में गायत्री मंत्र को बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसमें शब्दों का गुंथन कुछ इस प्रकार हुआ है कि यह शरीर ही चक्र-उपत्यिकाओं को आंदोलित, उद्वेलित करके रख देता है। इससे प्रसुप्त क्षमताएँ उभरती-विकसित होती देखी जाती हैं। ब्रह्मवर्चस् की सिद्धि गायत्री मंत्र से ही प्राप्त होती है। यदि भावार्थ से जोड़ते हुए मंत्र शक्ति का सुनियोजन किया जा सके तो वे सभी लाभ उठा पाना सम्भव है, जिनकी महिमा सामगान में, वेद-उपनिषदों में गाई गई है।

## मन्त्र-शक्ति द्वारा मेघवृष्टि

सौराष्ट्र प्रदेश में जामनगर शहर 'छोटी काशी' के उपनाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि वहाँ महादेव के छोटे-बड़े मंदिर बहुत बड़ी संख्या में हैं । उनमें दो मंदिर—श्री भीड़भंजन और काशी विश्वनाथ अधिक प्रसिद्ध हैं । उनमें बाहर से आने वाले पंडितों, ज्योतिषियों, वेद पारंगत विद्वानों, संन्यासियों आदि अतिथियों के ठहरने और भोजनादि की व्यवस्था राज्य की तरफ से और कितने ही नागरिकों की तरफ से भी की गई है । विशेष रूप से वर्षा ऋतु में ऐसे महात्मा और विद्वान वहाँ प्रायः आते रहते हैं और अपने धर्मोपदेशों द्वारा वैदिक धर्म की प्रभावना करते हैं ।

वेद-वेदांग, उपनिषद् और कर्मकाण्ड में दक्षिण तथा उत्तर भारत जितना आगे बढ़ा हुआ है, उतना भारत का दूसरा कोई भाग नहीं है । इसमें पश्चिमीय प्रदेश तो कर्म-उपासना और मन्त्र शक्ति में काफी पिछड़ा हुआ है । यद्यपि जामनगर, राजकोट, गोंडल, भावनगर, जूनागढ़ आदि कुछ इने-गिने शहरों में महान् विद्वान पंडित पाये जाते हैं, तो भी अन्य स्थानों में उनकी कमी है । पर इसके साथ ही वहाँ की जनता बड़ी धर्म जिज्ञासु और सत्पुरुषों का आदर सत्कार करने वाली है ।

द्वारका धाम की यात्रा के उद्देश्य से कितने ही वेदमूर्ति विद्वान राजधानी होने के कारण जामनगर में ठहरा करते

हैं। अब से लगभग दस-पन्द्रह वर्ष पहले की बात है कि हैदराबाद (दक्षिण) के दो अथर्ववेदीय ब्राह्मण जामनगर में आकर ठहरे । वे इस देश की तरफ कभी नहीं आये थे इसलिये उनको गुजराती भाषा का ज्ञान तो कहाँ से हो सकता था ? वे संस्कृत भाषा में बातचीत कर सकते थे, पर उतनी संस्कृत जानने वाले लोग जामनगर में थोड़े ही थे । वे लोग मराठी भाषा बोल और समझ सकते थे, पर उसके जानने वाले भी वहाँ नाम मात्र को ही थे । काशी विश्वनाथ के अतिथि आश्रम में ठहरने को उनको एक कोठरी मिल गई, पर भाषा की कठिनाई के कारण उनको प्राय: गूँगा बनकर ही रहना पड़ता था । ऐसी स्थिति में जनता पर उनका क्या प्रभाव पड़ता ? तो भी उनको विश्वास था कि भगवती वाणी, शारदामाता अपना प्रभाव प्रकट करेंगी ।

भाद्रपद वदी ९ को जामनगर की महारानी श्री गुलाब कुँवरवा का जन्म दिवस था । उस दिन समस्त प्रमुख ब्राह्मणों ने राजमहल में जाकर आशीर्वाद दिया और दान दक्षिणा प्राप्त किया । पर अनजानों को वहाँ कौन जाने देता ? वे बिचारे निराश हो गये । पर एक व्यक्ति ने उनको समझाया कि "तुम जहाँ उतरे हो उसके सामने ही दयानन्द ब्रह्मपुरी है ।" वहाँ शाम को चार बजे सभा होगी और महारानी पधारेंगी । वे बड़ी गुण-गाहक हैं । उसी स्थान पर तुम उनसे भेंट करना ।

शिवभट्ट और विष्णु भट्ट को कुछ आशा हुई और वे सभा में गये । कार्यक्रम शुरू हुआ । कितने ही पंडितों ने गुजराती भाषा में आशीर्वाद की कवितायें पढ़ीं । ये दोनों सभा में दूर खड़े-खड़े देख रहे थे । आगे स्थान प्राप्त करने में भी आजकल मेल-मुलाहिजा और परिचय की आवश्यकता है, जिसका इन भट्टजी के पास अभाव था । दोनों महारानी की तरफ एक टक लगाये देख रहे थे । महारानीजी बहुत चतुर, आस्तिक और चारों तरफ निगाह रखने वाली थीं । जब उनकी दृष्टि इन दोनों पंडितों पर पड़ी तो वे उसी जगह से हाथ उठाकर आशीर्वाद देने लगे। यह देखकर महारानी ने उनको आगे बुला लिया । उन्होंने मेज के पास खड़े होकर तीन-तीन श्लोक पढ़ कर आशीर्वाद दिया । उनका तीव्र स्वर, शुद्ध उच्चारण, अलंकारिक भाषा और संस्कृत (देववाणी) की वाक्यावली सुनकर सभा मुग्ध हो गई । समस्त सभा में संस्कृत में आशीर्वाद देने वाले ये दोनों अनजान भट्टजी ही थे । इससे महारानी बहुत प्रसन्न हुई और बड़ी खुशी के साथ उन्होंने उन दोनों से दूसरे दिन प्रातःकाल अपने बँगले पर आने को कहा और उनको कोई न रोके इसलिए पास भी दे दिया ।

विष्णुभट्ट और शिवभट्ट को ऐसा जान पड़ा कि मानों उनकी दृढ़ भावना फलीभूत हो गई । पर फिर भी उनके सामने गुजराती भाषा न समझ सकने की कठिनाई बनी ही रही । इस समस्या को हल करने के लिये सोच विचार कर एक युक्ति निकाली और मराठी तथा गुजराती दोनों भाषा जानने वाले एक व्यक्ति को ढूँढ़ निकाला । उसको साथ लेकर वे ठीक समय पर महारानी के बँगले पर पहुँचे और पास को देख कर नौकर ने उनको मुलाकात के कमरे में पहुँचा दिया । अब महारानी गुजराती भाषा में जो पूछती थीं उसे वह साथी भट्टजी को मराठी में अनुवाद करके समझा देता था और जो कुछ उत्तर भट्टजी मराठी भाषा में देते थे उसे गुजराती में महारानी को सुना देता था। इस प्रकार उनमें परस्पर धर्मशास्त्र, मन्त्र विद्या, यज्ञ-विज्ञान के सम्बन्ध में बहुत सी बातें हुईं ।

सौराष्ट्र में दूसरे, तीसरे वर्ष अकाल पड़ता ही रहता है। मेघराज गुस्सा होकर पानी बरसाना बन्द कर देते हैं । इस वर्ष भी भाद्रपद का महीना बीतने को आया पर वर्षा का एक छींटा भी नहीं गिरा था । इससे जनता बड़ी व्याकुल हो रही थी । भट्टजी ने मन्त्र शक्ति की अपूर्व महिमा की बात कही थी । उन्होंने दृढ़तार्पूक कहा था कि असम्भव कार्य भी मंत्र द्वारा सम्भव हो सकता है । इसलिये महारानी ने कहा कि "अगर आप बरसात के लिये अनुष्ठान करो तो बहुत अच्छी बात है । इसमें सफलता होने से आपका सम्मान बढ़ेगा और पर्याप्त दक्षिणा भी मिल सकेगी ।"

भट्टजी ने कहा—"देवता कैसे प्रसन्न न होंगे ? यज्ञ आरम्भ होने के दसवें दिन बरसात होनी ही चाहिये । हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने जन्म-जन्म तक तपश्चर्या की थी और देवताओं को प्रसन्न किया था, क्या वे सब मन्त्र निरर्थक ही हैं ? क्या वे गपोड़े हैं ? नहीं, वे सत्य हैं, और हमको विश्वास है कि भगवान आपकी भावना को पूर्ण करेंगे और हमारे वैदिक मंत्रों का यश बढ़ेगा ।"

## वरुण-यज्ञ का आरम्भ

तुरन्त राज कर्मचारियों को आज्ञा दे दी गई । शहर के दक्षिणी तरफ जहाँ रंगमती और नागमती नदी का संगम है और जहाँ नाग नाथ महादेव का अति प्राचीन

मन्दिर है, वह एकान्त स्थान यज्ञ के लिये पसन्द किया गया । मन्दिर के चौक में मण्डप बनाया गया, बिजली की बत्तियाँ लगा दी गईं । भट्टजी अपने हाथ से भोजन बनाकर एक समय खाते थे । उनके लिये वहाँ की धर्मशाला में तीन कोठरियाँ दे दी गईं । सब तरह की आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करने के लिये एक राज्य कर्मचारी नियुक्त कर दिया गया । दरवाजे पर और आस-पास देखभाल रखने के लिये सिपाहियों का पहरा लगा दिया गया । राज पुरोहित को आदेश दिया गया कि वे नौ योग्य पंडित यज्ञ में आहुतियाँ देने के लिये भेज दें । गणेश, इन्द्र आदि सब देवताओं की यथास्थान प्रतिष्ठा की गई । वरुण के रूप में श्रृंगी ऋषि की भव्य मूर्ति भट्टजी ने स्वयं अपने हाथ से बनाई । आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के दिन शुभ मुहूर्त में वरुण-यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ हुआ ।

अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों से भट्टजी ने कहा—"बन्धुओं, हम लोगों के द्विजत्व की प्रतिष्ठा भंग न हो जाय इसका ध्यान रखना आपका काम है । नैष्टिक ब्रह्मचर्य का पालन करके श्रद्धा पूर्वक मन्त्रपाठ करते रहना । दुनिया को बता देना कि वेदवाणी कलियुग में भी जाग्रत है । तुम जरा भी हिम्मत न हारना, यही हमारी विनय है ।"

प्रातःकाल पाँच बजे घण्टा बजते ही सब उठकर शौच, कुल्ला, दाँतुन आदि से निवृत्त होकर अपनी नियत जगह पर बैठ कर संध्यावन्दन करते । फिर चाय, काफी या दूध आदि पीकर ठीक आठ बजे अनुष्ठान शुरू कर देते । दोपहर के बारह बजे केला, पेड़ा, बरफी, फलाहरी, पूरी, रबड़ी, आलू का शाक आदि फलाहार करके दो घण्टा विश्राम करते । पर उनको हाते के बहार जाने की आज्ञा न थी । ढाई का घण्टा बजते ही फिर मन्त्रोच्चारण आरम्भ हो जाता था जो सात बजे पूरा होता था । फिर संध्या वन्दन करके साढ़े सात बजे निरांजन आरती की जाती थी । इसके पश्चात् खा पीकर सब सो जाते थे ।

यद्यपि यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के लिये सब प्रकार की सुविधायें थीं और वे बढ़िया पौष्टिक भोजन करते थे । इसके विपरीत भट्टजी रात को एक बार भात उबांल कर खाते थे और दोपहर को फलाहार भी नाममात्र को लेते थे, तो भी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण वे भट्टजी से ईर्ष्या करने लगे और चाहने लगे कि कार्य खण्डित होकर इनकी बदनामी हो जाय । उनमें दो-तीन नवयुवक ब्राह्मण आधी रात के समय चोरी से घर चले जाते थे और सुबह चार बजे वापस आ जाते थे ।

अनुष्ठान के तीन दिन बीत गये, पर आकाश में किसी तरह का अन्तर न जान पड़ा । दोनों भट्टजी के मन में दुःख हुआ । चौथा दिन—पाँचवाँ दिन—इसी तरह तीव्र धूप और गर्मी पड़ते बीत गया । जैसे-जैसे दिन बीतते जाते थे, इन दोनों को बड़ी चिन्ता होती जाती थी । आठवें दिन भी जब कोई परिवर्तन न जान पड़ा तो वे अत्यन्त व्याकुल हो गये और उनका खाना और सोना बन्द हो गया । अन्तिम दिन भी जब कुछ न हुआ तो वे रात के बारह बजे मण्डप में गये और अपने इष्टदेव की मूर्ति के सम्मुख अश्रुपात करते हुए विह्वल वाणी से स्तुति करने लगे—

**"ॐ तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान स्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेऽमानो वरुणेह बोध्यरु शंस मान आयुः प्रमोषी ।"**

अर्थात्—"यजमान हविर्भाग देकर, यजुर्वेद के मतानुसार इस वेद-स्तुति से, मैं आपसे याचना करता हूँ, आप विशाल स्तुति के योग्य हो । ऐसे हे वरुण देव ! क्रोध रहित होकर तुम इस यज्ञ में हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने का ध्यान रखकर हमको दीर्घायुष्य बनाओ ।"

पूर्णाहुति का दिन आ गया । बरसात का कोई भी चिह्न दिखलाई नहीं पड़ता था । दोपहर हो गया । दोनों भट्टजी ढीले हो गये । संध्या के ५ बजे पूर्णाहुति का नारियल महारानी के हाथ से यज्ञ-कुण्ड में होम किये जाने को था । धार्मिक जनता की अपार भीड़ उसे देखने को इकट्ठी हो गई थी । स्वयं जाम साहब अनेक प्रतिष्ठित अधिकारियों और नागरिकों के साथ सामने बैठे थे । महारानी यज्ञकुण्ड के सामने आकर बैठ गईं । दोनों भट्टजी ने अग्नि नारायण का मन्त्र सूक्त आरम्भ किया । यज्ञ-मण्डप में बैठे लोगों में तरह-तरह की भली-बुरी शंकाएँ उत्पन्न हो रही थीं । उपवास से कृश शरीर पर मन्त्रोच्चारण से मस्तक में तेज चमकता हुआ—ऐसे दोनों भट्टजी वास्तविक ऋत्विज जान पड़ते थे । बाकी ब्राह्मण तो मोटे-ताजे और कई मोटी तोंद निकले हुए भी थे, पर सबका ब्रह्मतेज फीका पड़ा हुआ था । आकाश साफ था, बादलों का कोई चिह्न न था । खूब धूप पड़ रही थी । महारानी के हाथ में नारियल दिया गया । अग्नि ज्वाला

प्रज्वलित हो रही थी । भट्टजी और ब्राह्मणों ने उच्च स्वर से स्वाहा का उच्चारण किया महारानी ने नारियल अग्नि में डाल दिया । उसके डालते ही आकाश में भी एक जोर का धड़ाका हुआ और बादल, बिजली होकर थोड़ी ही देर में जोर से वर्षा होने लगी । पाँच दिन तक अच्छी वर्षा होने से अकाल की क्रूर छाया दूर हो गई ।

भगवान ने भट्टजी को यश दिया और मन्त्र-शक्ति की विजय दिखला दी शिव भट्ट और विष्णु भट्ट को महाराज और महारानी ने वस्त्रालंकार और अच्छी दक्षिणा दी। भट्टजी ने दक्षिणा में से एक चौथाई वहाँ के राजकीय संस्कृत पाठशाला को तथा चौथाई 'आनन्द बाबा अनाथालय' को दे दिया । अन्त में उन्होंने यह भी कहा कि "हवन करने वाले ब्राह्मणों में से कई ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं करते थे, इसी से मेघराज ने इतनी देर की और परीक्षा ली क्योंकि ब्रह्मचर्य कर्मकाण्ड यज्ञ विज्ञान का मूल आधार है ।" इस घटना से उस प्रदेश में यज्ञ की प्रतिष्ठा चारों ओर फैल गई ।

## व्यक्तित्व परिष्कार में मंत्र शक्ति का योगदान

सृष्टि का कारण भूत तत्व "ऊँ कार" शब्द को बताया गया है । सूक्ष्म जगत में नाद-ब्रह्म के रूप में इसी की प्रधानता है, जबकि दृश्य जगत के क्रिया-कलाप स्थूल शब्द पर आधारित हैं । 'ओउम्' वह कर्णातीत ध्वनि है, जिसे सुना नहीं जा सकता है, परन्तु अनुभव किया जा सकता है । अध्यात्म शास्त्रों में इसे ब्रह्म वाचक बताया गया है । नादानुसंधान में साधक इसी एक मंत्र का आश्रय लेते हैं । यही प्रकृति-पुरुष का आदि समागम भी है और उसी उपक्रम के निरन्तर चलते रहने से सृष्टि क्रम चलता रहता है । गायत्री महामंत्र का बीज भी यही है । 'ऊँ' से तीन व्याहतियाँ उत्पन्न हुईं । प्रत्येक से तीन-तीन शब्द प्रस्फुटित हुए, जैसे कि बीज से अंकुर, पौधा और पत्तों, फूल, फलों से विकसित हुआ वृक्ष दृष्टिगोचर होता है। गायत्री को वृक्ष और "ऊँ" का उसका बीज कहा जा सकता है । गायत्री के २४ अक्षरों के मंत्रोच्चारण से काय कलेवर के अन्तराल में विद्यमान २४ शक्ति केन्द्रों का जागरण होता है और उस आधार पर अनेक ऋद्धि-सिद्धियों का विभूतियों का वैभव हस्तगत होता है। यही समूचा लाभ प्रकारान्तर से अकेले "ऊँकार" मंत्र के जप से भी हस्तगत हो सकता है ।

मंत्रोच्चार की नियमित प्रक्रिया दुहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है । एक आभ्यांतरिक दूसरी वाह्य । इससे उत्पन्न इन्फ्रासोनिक स्तर का ध्वनि प्रवाह जहाँ शरीर में स्थित सूक्ष्म चक्रों में शक्ति संचार करता है वहीं दूसरी ओर इन ध्वनि प्रकंपनों से वातावरण में एक विशेष प्रकार का स्पंदन उत्पन्न होता है । इस संदर्भ में भौतिक विज्ञानियों ने भी गहन खोजें की हैं और प्राचीन मंत्र विद्या की सत्यता को सही सिद्ध कर दिखाया है ।

मंत्र विज्ञान पर अनुसंधानरत वैज्ञानिकों ने पाया है कि मंत्रोच्चारण के पश्चात् उसकी आवृत्तियों से उठने वाली ध्वनि तरंगें पृथ्वी के अयन मंडल को घेरे विशाल भू चुम्बकीय प्रवाह शूमेन्स रेजोनेन्स से टकराती और परावर्तित होकर सम्पूर्ण पृथ्वी के वायुमण्डल में छा जाती हैं । इन्फ्रासोनिक स्तर की मंत्र ध्वनियाँ जीव-जन्तुओं, पेड़ पादपों सभी पर समान रूप से प्रभाव डालती हैं । प्रयोग परीक्षणों के दौरान पाया गया है कि सामूहिक अनुष्ठानों में समवेत स्वर में बोले गये मंत्र शूमेन्स रेजोनेन्स के अन्तर्गत वैसी ही गति उत्पन्न करते हैं, जो ध्यानावस्था की गहराई में पहुँचने वाले साधक के मस्तिष्क के 'अल्फास्टेट' की होती है । ज्ञातव्य है कि ७ से १३ चक्र प्रति सेकण्ड की दर से निकलने वाली अल्फाब्रेन वेव्स का व्यक्ति के शरीर और मन पर अनुकूल एवं उत्साह-वर्धक प्रभाव पड़ता है । इससे उसे प्रसन्नता-प्रफुल्लता एवं तनाव शैथिल्य का अनुभव होता है और अधिक गहराई में प्रवेश करने पर समाधि सुख जैसा लाभ हस्तगत होता है । भू चुम्बकीय प्रवाह से टकराने के बाद मंत्र की यह अल्फा तरंगें समस्त बायोस्फीयर में संचारित होकर अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रभाव-परिणाम उत्पन्न करती हैं ।

ज्यूरिच की सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. हैन्स जैनी ने मंत्र विज्ञान की क्षमता को रखने के लिए "टोनोस्कोप" नामक एक विशेष यंत्र बनाया है । उसमें जब कुछ बोला जाता है अथवा किसी प्रकार की ध्वनि छोड़ी जाती है, तो वह पर्दे पर आकृति के रूप में उभर आती है । एक प्रयोग में उन्होंने पाया कि जब इस उपकरण में "ऊँकार" मंत्र का उच्चारण किया जाता है तो पर्दे पर इसका एक विशिष्ट रेखागणितीय रूप प्रकट होता है, जबकि बोलचाल के दूसरे शब्दों के साथ इस प्रकार की कोई नियमित और व्यवस्थित आकृति नहीं उभरती । इस बात पर वे आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहती हैं कि पूर्वार्त्त देशों के मनीषी ऋषियों ने मंत्र शक्ति के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण

खोजें की थीं । उनका कहना है कि मंत्र विज्ञान में शब्दों का गुंथन एक विशिष्ट क्रम में होता है, अत: 'टोनोस्कोप' में उनका आकार भी नियमित प्रकट होता है । प्रभावकारी भी वे इसीलिए होते हैं ।

जैनी का उक्त प्रयोग मंत्र विज्ञान के उस रहस्य को उद्घाटित करता है जिसमें कहा गया है कि प्रत्येक मंत्र में अदृश्य शक्तियाँ एवं देवत्व छिपा है । जो प्रयोक्ता की श्रद्धा एवं इच्छाशक्ति की प्रखरता के साथ जप करने पर प्रकट होती है विख्यात, थेयोसोफिस्ट लेडबीटर, एनी बेसेन्ट, मैडम ब्लेवट्स्की आदि मनीषियों ने भी अपनी-अपनी रचनाओं में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि 'मंत्र' वर्णों के साधारण संग्रह से पूर्णत: भिन्न एवं शक्ति जागरण के स्रोत हैं । इस सम्बन्ध में सर जॉन वुडरफ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "गारलैण्ड आफ लेटर्स" में लिखा है कि मंत्रों की विशिष्ट संरचना के मूल में गुह्य अर्थ एवं शक्ति होती है जो अभ्यास कर्ता को दिव्य शक्तियों का पुंज बना देती है ।

अध्यात्म साधनाओं में नादयोग के रूप में मंत्रों में सन्निहित, पराध्वनियों का उपयोग आत्मिक विकास के लिए प्रयुक्त करने की व्यवस्था है, पर विज्ञान ने इनका उपयोग विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक रोगों के उपचार में प्रयुक्त करने की विधा विकसित की है ।

"न्यू इंग्लैण्ड जनरल आफ मेडिसिन" पत्रिका में प्रकाशित "योग फार ड्रग एब्यूज" नामक लेख के अन्तर्गत डॉ. एच. बेन्सन ने मन्त्र जप और ध्यान से नशेबाजी जैसी बुरी आदतें छुड़ाने सम्बन्धी प्रयोगों का उल्लेख किया है । उनके अनुसार २१ से ३८ वर्ष की अवस्था वाले २० व्यक्तियों को कई माह तक नियमित रूप से मंत्र जप कराया गया । उनमें से १९ व्यक्ति, जो स्मैक, एल. एस. डी. हेरोइन जैसी तीव्र नशीली औषधियों का सेवन करते थे, मन्त्र जप और ध्यान के निरन्तर अभ्यास से उनकी लतें छूट गईं । इसके बाद उन्हें इनकी आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई । इन सभी व्यक्तियों ने उन नशीली औषधियों का प्रयोग पूर्णतया बन्द कर दिया जिसके बिना पहले उन्हें चैन नहीं पड़ता था ।

श्रद्धाभावयुक्त शुद्ध लयबद्ध मंत्रोच्चार करने एवं उसे बार-बार दुहराते रहने से उसकी आवृत्तियों से उठने वाली अतिसूक्ष्म ध्वनि तरंगों का एक गति तन्त्र बन जाता है जो अभ्यासकर्ता के शरीर तंत्र, विचार तंत्र एवं भावना तंत्र को प्रभावित-रूपांतरित करता है । वैज्ञानिक खोजों और प्रयोगों ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि "ॐ" के क्रमबद्ध एवं लयबद्ध बार-बार सम्यक् उच्चारण से मस्तिष्कीय विकारों का शमन होता है । स्नायु स्वस्थ और सशक्त बनते हैं । रक्तचाप संतुलित होता है । मंत्रों का उच्चारण जितनी बार किया जाता है, हृदय की सक्रियता, सशक्तता बढ़ती जाती है और रक्ताभिसरण में तीव्रता आ जाती है । इससे रक्त शुद्ध होने की प्रक्रिया भी बढ़ जाती है और हृदय धमनियों को आराम मिलता है। इससे जहाँ जीवनीशक्ति प्रखर बनती है वहीं ओजस्-तेजस् की भी अभिवृद्धि होती है ।

भारतीय अध्यात्म प्रयोजनों में विभिन्न प्रकार के तंत्र मंत्रों का अनुष्ठान पुरातनकाल से ही प्रचलित रहा है । मंत्रशक्ति से आत्मसत्ता का परमात्म सत्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ने और व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रियाएँ पूर्ण की जाती रही हैं । अब वैज्ञानिक खोजों और प्रयोगों ने भी उसकी असंदिग्ध प्रभावशीलता पर मुहर लगा दी है । लंदन में 'यूटा कॉलेज आफ मेडिसिन' तथा न्यूयार्क में 'येशीवा विद्यालय' के 'अलबर्ट आइन्स्टीन कॉलेज ऑफ मेडीसिन' में मंत्र ध्वनियों द्वारा शारीरिक मानसिक रोगों के उपचार के निमित्त लगातार अनुसंधान प्रयोग किये जा रहे हैं । एक ऐसा ही अभिनव प्रयोग शान्तिकुंज के ब्रह्मवर्चस् अनुसंधान केन्द्र में मंत्र शक्ति पर चल रहा है और उसके उत्साहवर्धक सतपरिणाम भी सामने आये हैं ।

## मंत्र में शक्ति कहाँ से और कैसी आती है ?

मन्त्र साधना केवल कुछ शब्दों के संग्रह को बार-बार दुहराते रहना भर नहीं है वरन् शब्द शक्ति का विज्ञान सम्मत उपयोग है । उसमें मन्त्र साधक को शारीरिक संयम, मनोनिग्रह और भाव संवर्धन के तीनों तत्व मिलाने पड़ते हैं तब कहीं शब्द शक्ति के चमत्कारी विकास का अवसर मिलता है । शरीर के विकास में अन्न, जल और वायु का पोषण चाहिए । उसी प्रकार शब्द को मंत्र शक्ति का रूप धारण करने के लिए साधक को त्रिविधि परिष्कार की आवश्यकता पड़ती है । यों शब्द समुच्चय के रूप में

बने हुए मंत्रों की अपनी निजी विशेषता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

मंत्र जप में शारीरिक और मानसिक स्थिति ऐसी बनानी पड़ती है जिसमें उच्चारित शब्द प्रवाह मात्र उच्चारण बनकर न रह जाय । आवाज भर को दुहराने के लिए मुख यन्त्र का उपयोग किया जाता रहा तो उसका साधक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव तो होगा, पर वह प्रभाव उत्पन्न न हो सकेगा जिसकी तुलना श्रवणातीत ध्वनियों से की जा सकती है ।

शब्द विज्ञान के शोधकर्त्ताओं ने जाना है कि जो मुख से बोले और कानों से सुने जाते हैं मात्र उतनी ही सीमा तक ध्वनि विस्तार नहीं है वरन् ऐसी भी आवाजें इस संसार में प्रवाहित होती हैं जो कानों से तो नहीं सुनी जा सकती हैं, पर प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त सामर्थ्यवान होती हैं ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि "शब्द" या "ध्वनियाँ" हर व्यक्ति को प्रभावित करती हैं । किसी बच्चे ने कभी शेर की दहाड़, हाथी की चिंघाड़ न सुनी हो और उसे यकायक सुनने को मिल जाये तो वह घबरा जायगा हालांकि उसे यह पता नहीं होगा कि शेर हिंसक जीव है । कोयल की कूक से प्रसन्नता और कौवे की काँव-काँव से कर्कशता का स्वत: भान होता है । शब्द एक प्रकार का आलोड़न है जैसे कोई पानी को मथे और काई को दूर कर दे । उसी प्रकार शब्दों के कम्पन न केवल विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं वरन् वह कम्पन "संवहन" की शक्ति भी रखते हैं और काई के समान ही विजातीय द्रव्य को खींचकर बाहर भी निकाल सकते हैं । शरीर में कुछ ऐसी चक्र ग्रन्थियाँ, गुच्छक और उपत्यिकाएँ होती हैं जो शब्दों की ध्वनियों को अपने-अपने ढंग से प्रभावित और प्रसारित करती हैं । भाव विज्ञान के ज्ञाता मन्त्रज्ञ इन स्वर लहरियों को ही रोग निवारक शक्ति के रूप में प्रयोग करते रहे हैं ।

शब्द शक्ति को ताप में परिणत किया जा सकता है । शब्द जब मस्तिष्क के ज्ञान कोषों से टकराते हैं तो हमें कई प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त होती हैं । यदि उन्हें पकड़ कर ऊर्जा में परिणत किया जाय तो वे बिजली, ताप, प्रकाश, चुम्बकत्व के रूप में कितने ही प्रकार का क्रिया-कलाप सम्पन्न कर सकने योग्य बन सकते हैं ।

इलेक्ट्रोनिक्स के उच्च विज्ञानी ऐसा यन्त्र बनाने में सफल नहीं हो सके हैं जो श्रवण शक्ति की दृष्टि से कान के समान सम्वेदनशील हों । कानों की जो झिल्ली आवाज पकड़ कर मस्तिष्क तक पहुँचाती है, उसकी मोटाई एक इंच के ढाई हजारवें हिस्से के बराबर है । फिर भी वह कोई चार लाख प्रकार के शब्द भेद पहचान सकती है और उनका अन्तर कर सकती है । अपनी गाय को या मोटर की आवाज को हम अलग से पहचान लेते हैं यद्यपि लगभग वैसी ही आवाज दूसरी गायों की या मोटरों की होती है, पर जो थोड़ा-सा भी अन्तर उनमें रहता है, अपने कान के लिए उतने से ही अन्तर कर सकना और पहचान सकना सम्भव हो जाता है । कितनी दूर से, किस दिशा से, किस मनुष्य की आवाज आ रही है, यह पहचानने में हमें कुछ कठिनाई नहीं होती । यह कान की सूक्ष्म सम्वेदनशीलता का ही चमत्कार है ।

श्रवण शक्ति का बहुत कुछ सम्बन्ध मन की एकाग्रता से है । यदि किसी बात में दिलचस्पी कम हो तो पास में ही बहुत कुछ बकझक होते रहने पर भी अपने पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा किन्तु यदि दिलचस्पी की बात हो तो फुसफुसाहट से भी मतलब की बातें आसानी से सुनी समझी जा सकती हैं । कहना न होगा कि मन्त्र साधना के साथ ध्यान प्रक्रिया इसीलिए जोड़ी गई है कि उच्चारण के साथ-साथ मानसिक एकाग्रता बनी रहे और प्रयुक्त शब्द प्रवाह को सामर्थ्यवान बनने के लिए एकाग्रताजन्य ऊर्जा की सहायता मिलती रहे ।

ऐसी ध्वनि तरंगें (साउण्ड-वेव्स) जिनको हम देख सुन नहीं सकते, आज वैज्ञानिक शोध कार्यों एवं व्यावसायिक जगत में क्रान्ति मचाये दे रही हैं । कर्णातीत ध्वनि (साउण्ड व्हिच कैन नाट बी हर्ड बाई इयर) पर नियन्त्रण करके अब चिकित्सा शल्यकीट और कीटाणुओं का संहार, धुआँ और कोहरा दूर करना, कपड़े, कम्बल और बहुमूल्य गलीचों को धोकर साफ करना, घड़ी आदि के पुर्जे चमकाना, साफ करना जैसे छोटे-मोटे काम ही नहीं धातुओं को क्षण भर में काट डालना, छेद डालना, गला देना, एक दूसरे में जोड़ देना आदि ऐसे काम होने लगे हैं, जिनको बड़ी-बड़ी मशीनें भी काफी समय में कर सकती हैं । ध्वनि की इस करामात पर आज सारा संसार आश्चर्यचकित है, लोग समझ नहीं पा रहे कि इतनी सूक्ष्म गतिविधि से इतने भारी कार्य कैसे सम्पन्न हो जाते हैं । विद्युत से भी अधिक तीक्ष्ण और सर्वव्यापी कर्णातीत नाद शक्ति की वैज्ञानिक बड़ी तत्परतापूर्वक शोध कर रहे हैं ।

आज के विज्ञान की दृष्टि में भी स्थूल ध्वनि कोई महत्व नहीं रखती, क्योंकि सुन ली जाने वाली ध्वनि (औडिबल साउण्ड) की शक्ति बहुत थोड़ी होती है। यदि डेढ़ सौ वर्ष तक निरन्तर ऐसी ध्वनि उत्पन्न की जाय तो उससे केवल एक कप चाय गरम करा लेने ही जितनी शक्ति पैदा होगी किन्तु श्वाँस या विचार तरंगों के रूप में शब्द का जो मानसिक स्फोट होता है वह बड़ा शक्तिशाली होता है, यद्यपि वह ध्वनि सुनाई नहीं देती, पर वह इतनी प्रखर होती है कि अपनी एक ही तन्मात्रा से वह परमाणुओं का विखण्डन कर सकती है और उससे उतनी ऊर्जा पैदा कर सकती है, जिससे विश्व के किसी भू-भाग यहाँ तक कि चन्द्रमा और सूर्य में भी क्रान्ति पैदा कर दी जा सकती है। इस शक्ति को मन्त्र विज्ञान से जाना जाता है और उसकी ब्रह्म शक्ति या कुण्डलिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा की गई है।

"अल्ट्रा साउण्ड" उस ध्वनि को कहते हैं जो मनुष्य के कान से किसी भी स्थिति में न सुनी जा सके। अति सूक्ष्म कम्पनों को जब विद्युत आवेश प्रदान किया जाता है तो उसकी भेदन क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि सघन से सघन वस्तुओं के परमाणुओं का भी भेदन करके उसकी आन्तरिक रचना का स्पष्ट फोटोग्राफ प्रस्तुत कर देती है। उदाहरण के लिए शिकागो की एक महिला की डॉ. परीक्षा की गई, पर डा. यह नहीं निश्चय कर पाये कि इसके पेट में ट्यूमर की गाँठ है अथवा गर्भ। एक्सरे पर एक्सरे खींचे गये, पर स्थिति का सही पता नहीं चल सका। तब अल्ट्रा-साउण्ड का प्रयोग किया गया और यह साफ प्रकट हो गया कि महिला के पेट में गर्भ विकसित हो रहा है। भूटा अमेरिका में एक व्यक्ति से धोखे में गोली चल गई। छर्रा एक छोटे बच्चे के आँख में घुस गया, डाक्टरों ने पचासों प्रयत्न किये पर यह पता नहीं चल पाया कि कारतूस का टुकड़ा किस स्थान पर डट गया है।

ब्रह्माण्ड में चल रहे स्वर प्रवाह की तरह ही पिण्ड रूपी सितार भी अपने क्रम से झंकृत होते रहते हैं। मेरुदण्ड स्पष्टत: वीणा दण्ड है। सात धातुओं के सात तार उसमें जुड़े हैं। सप्त विधि अग्नियों का पाचन परिपाक चलते रहने से ही तो प्राण को पोषण मिलता है और जीवन को स्थिर रखा जाता है। यह अग्नियाँ सात धातुओं को पकाती हैं और परिपाक को तेजस् में बदलती हैं।

(१) पेशियों का आकुंन-प्रकुंचन,

(२) नाड़ियों का रक्ताभिसरण,

(३) फुफ्फुसों का श्वांस-प्रश्वांस,

(४) हृदय की धड़कन,

(५) मस्तिष्कीय विद्युत का ऋण धन का आरोह-अवरोह,

(६) चित्त का विश्राम-जागरण,

(७) कोशिकाओं का जन्म-मरण।

यह सात क्रिया-कलाप ही जीवन विद्या के मूलभूत आधार हैं। इन्हीं को सप्तऋषि, सप्तलोक, सप्तदीप, सप्तसागर, सप्तमेरु, सप्तसरित, सप्तशक्ति के नाम से पुकारते हैं। शब्द सूर्य के यही सप्त अश्व हैं।

कैलीफोर्निया अमेरिका में हुए एक प्रयोग में एक वैज्ञानिक ने एक सेकण्ड में पाँच करोड़ से अधिक कम्पन वाली ध्वनि पैदा कर दी, उस क्षेत्र में रुई का टुकड़ा पड़ा था। वह अकस्मात जल उठा। वैज्ञानिकों के कपड़े इतने गर्म हो उठे कि यदि वे कुछ देर के लिए उस क्षेत्र से अलग नहीं हो जाते और ध्वनि का कम्पन थोड़ा और तीव्र हो जाता तो उनके शरीर के कपड़े भी जलने लगते।

श्रवणातीत ध्वनियों का अमुक स्तर अग्निकाण्ड उत्पन्न कर सकता है। यह एक प्रयोग है। उसे अन्य प्रयोजनों में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। मंत्र साधना में वाणी से ही सारा कार्य पूरा नहीं कर लिया जाता वरन् भीतरी अवयवों में से प्रत्येक द्वारा एक विशिष्ट ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करना पड़ता है। उसकी क्षमता श्रवणातीत ध्वनियों के स्तर की होती है। शरीर के अवयवों से ध्वनि तरंगें निकलती हैं यह तथ्य वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्रमाणित हो चुका है।

न्यूजर्सी की टेलीफोन प्रयोगशाला में एक कमरा इस तरह का बनाया गया कि उसमें कोई बाहरी आवाज तनिक भी प्रवेश न कर सके। इसमें प्रवेश करने पर कुछ ही समय में मनुष्य को सीटी बजने, रेल चलने, झरने गिरने, आग जलने, पानी बरसने के समय होने वाली आवाजों जैसी ध्वनियाँ सुनाई पड़ती थीं। इस प्रयोग को कितने ही मनुष्यों ने अनुभव किया, बात यह थी कि शरीर के भीतर जो विविध क्रिया-कलाप होते रहते हैं उनसे ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। ये इतनी हल्की होती हैं कि बाहर होते रहने वाली ध्वनि प्रवाह में वे एक प्रकार से खो जाती हैं। नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह यह भीतरी अवयवों की ध्वनियाँ कानों तक नहीं पहुँच पातीं, पहुँचती हैं तो वायुमण्डल में चल रहे शब्द कम्पनों की तुलना में

अपनी लघुता के कारण उनका स्वल्प अस्तित्व अनुभव न होता हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं; पर जब बाहर की आवाज रोक दी गई और केवल भीतर की ध्वनियों को मुखरित होने का अवसर मिला तो वे इतनी स्पष्ट सुनाई देने लगीं मानो वे अंग अपनी गतिविधियों की सूचना चिल्ला-चिल्ला कर दे रहे हों। कान जैसा कोई इलेक्ट्रॉनिक मनुष्य द्वारा बन सकना सम्भव नहीं। क्योंकि कान में ऐसी सम्वेदनशील झिल्ली लगाई गई है जिसकी मोटाई एक इंच का २५०० विलियन (एक विलियन बराबर दस लाख) है। इतनी हल्की साथ ही इतनी सम्वेदनशील ध्वनि ग्राहक वस्तु बन सकना मानवीय कर्तृत्व से बाहर की बात है। सुनने के प्रयोजन में काम आने वाले मानव निर्मित यन्त्रों की तुलना में कान लगभग ४ लाख प्रकार की आवाज पहचान सकते हैं और उनके भेद-प्रभेद का परिचय पा सकते हैं। सौ वाद्य यन्त्रों के समन्वय से बजने वाला ऑर्केस्ट्रा सुनकर उनसे निकलने वाली ध्वनियों का विश्लेषण प्रस्तुत करने वाले कान कितने ही संगीतज्ञों के देखे गये हैं। शतावधानी लोग सौ शब्द श्रृंखलाओं के क्रमबद्ध रूप से सुनने और उन्हें मस्तिष्क में धारण कर सकने में समर्थ होते हैं। कहते हैं कि पृथ्वीराज चौहान ने घण्टे पर पड़ी हुई चोट को सुनकर उसकी दूरी की सही स्थिति विदित कर ली थी।

योग-पद्धति में मंत्र के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि को शब्द शक्ति ही विद्युत प्रदान करती है जबकि मानवीय इच्छा शक्ति उस पर नियन्त्रण करके कोई भी कार्य कर सकने में समर्थ होती है। जप और ध्यान, नाद (शब्द या ध्वनि कम्पन) और बिन्दु साधना का सम्मिलित रूप है उससे सृष्टि के विराट् से विराट् और अणु से अणु कण का भेदन भी सम्भव हो जाता है।

अब वायुयान, जलयान ही नहीं धरती के भीतर और ऊपर जो कुछ भी है उसे आँखों से देखने की जरूरत नहीं है वह सारी जानकारी ध्वनि कम्पनों के आधार पर ही जानी जा सकती है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, गर्मी इन सबको अब मात्र जड़ तत्व नहीं समझा जा रहा वरन् उनके साथ चलने वाले ध्वनि प्रवाहों की अपनी महत्ता है, उन प्रवाहों की अभी तो हलचलें हो रही हैं इतना ही जाना जा सकता है। यह शोध जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा वैसे ही वैसे हर तत्व एक बोलती बात करती इकाई की तरह अपने इर्द-गिर्द छिपे रहस्यों का उद्घाटन करता दिखाई देगा।

घटनायें ध्वनि का रूप धारण करती हैं। ध्वनि और प्रकाश दो ऐसे आधार हैं जिनके आधार पर स्थूल को सूक्ष्म में और सूक्ष्म को स्थूल में परिवर्तित किया जा रहा है। अन्तरिक्ष में विविध स्तर के ध्वनि कम्पन निरन्तर गतिशील रहते हैं। यदि किसी को कर्णेन्द्रिय से अधिक उच्च स्तर की श्रवण शक्ति मिल जाय तो वह श्रवणातीत ध्वनियों को सुन समझ सकता है और भूत तथा वर्तमान में घटित हुई दूरवर्ती अथवा समीपवर्ती घटनाओं को जान समझ सकता है। नादयोग के अभ्यासी इसी शक्ति को जगाते हैं और सूक्ष्म जगत् में हो रही हलचलों के आधार पर भूत, वर्तमान तथा भविष्य का वह ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं जो सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर होता है। ध्यान योग से यही प्रयोजन प्रकाश के रूप धारणाओं के माध्यम से पूरा किया जाता है।

जप के लिए जिह्वा से होने वाले शब्दोच्चारण को बैखरी वाणी कहते हैं। यह केवल जानकारी के आदान-प्रदान से प्रयुक्त होती है। भावों के प्रत्यावर्तन में मध्यमा वाणी काम आती है। इसे भाव सम्पन्न व्यक्ति ही बोलते हैं। जीभ और कान के माध्यम से नहीं वरन् हृदय से हृदय तक यह प्रवाह चलता है। भावनाशील व्यक्ति ही दूसरों की भावनायें उभार सकता है। यह बैखरी और मध्यमा वाणी मनुष्यों के बीच विचारों एवं भावों के बीच आदान-प्रदान का काम करती है।

इससे आगे दो और वाणियाँ हैं जिन्हें परा और पश्यन्ति कहते हैं। परा पिण्ड में और पश्यन्ति ब्रह्माण्ड क्षेत्र में काम करती हैं। आत्म-निर्माण का—अपने भीतर दबी हुई शक्तियों को उभारने का काम 'परा' करती है। ईश्वर से—देव शक्तियों से—समस्त विश्व से— लोक लोकान्तरों से सम्बन्ध, सम्पर्क बनाने में पश्यन्ति वाणियों को दिव्य वाणी एवं देव वाणी कहा गया है। इस दिव्य वाणी को 'वाक्' कहते हैं। 'वाक्' शक्ति उत्पन्न करने वाले और उसके साथ मन्त्र साधना करने वाले साधक अपने लक्ष्य में सफल होकर ही रहते हैं।

बैखरी वाणी जब मन्त्र साधन द्वारा सूक्ष्म होती चलती है और 'वाक्' बनती है तो तीनों लोकों पर उसका अधिकार होता चला जाता है। लोक लोकान्तर में जो कुछ विद्यमान है उससे सम्बन्धित होती है, प्रभावित करती, नियन्त्रण रखती है और संचालन करती है परिष्कृत परावाक्। जिह्वा से उच्चारित वकवास में प्रयुक्त होती रहने वाली प्रक्रिया जब उलट कर मंत्र साधना में लगती है तब वह शक्ति रूप होती है। शक्ति भी ऐसी जिसकी

परिधि में वह सब कुछ आ जाता है जिसे अद्भुत एवं महान् कह सकते हैं।

## गायत्री मंत्र और वाक् शक्ति

शब्द को ब्रह्म कहा गया है। शब्द-ब्रह्म, नाद-ब्रह्म आदि सम्बोधनों से शास्त्रों में इसकी महिमा और गरिमा गाई गई है। यह अलंकारिक वर्णन नहीं बल्कि यथार्थ है। लेकिन जिन शब्दों को ब्रह्म कहा गया है वे मात्र ध्वनि नहीं हैं। वाद्य यन्त्र पर यदि उल्टी सीधी अंगुलि से आघात किये जाएँ तो केवल आवाज भर होगी जबकि क्रमबद्ध और लयबद्ध ध्वनि निकालनी हो तो उसके लिए प्रशिक्षित मस्तिष्क और सधे हुए हाथ होना जरूरी है। मन्त्रों से भी अभीष्ट परिणाम प्राप्त करने के लिए उनका लयबद्ध, तालबद्ध और क्रमबद्ध विधान पूरा करना आवश्यक है।

जिह्वा से उच्चारित किये गये शब्द तो दूसरे व्यक्ति तक अपनी जानकारी और अनुभूति भर पहुँचा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई उपयोग नहीं होता। पर मंत्र चमत्कारी क्षमताओं से सम्पन्न होते हैं और वे अपना परिणाम तभी प्रस्तुत करते हैं जबकि उन्हें निर्धारित विधि से प्रयुक्त किया जाय। जिस प्रकार जैसे तैसे अंगुलि चलाने से दीपक राग या मल्हार राग उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार जैसे तैसे मत्रोच्चारण करने से उसके प्रभावोत्पादक परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते। फिर गायत्री मन्त्र में तो २४ अक्षरों का गुम्फन ही इस प्रकार किया गया है कि उसके लिए निर्धारित विधि और आवश्यक बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए। साधारण बातचीत में ही कई लोग बातों को उस रूप में नहीं कह पाते जिस रूप में कि कहना चाहिए और न ही सभी सुनने वाले कही गई बात को उसी रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

जब सामान्य व्यवहार तक में वाणी की यह दुर्गति हो जाती है और उच्चारण अविश्वस्त तथा अप्रामाणिक माने जा सकते हैं तो उससे व्यावहारिक आदान-प्रदान की पूरी तरह आवश्यकता पूर्ति नहीं हो पाती तो फिर मन्त्राराधन द्वारा आध्यात्मिक प्रयोजन की पूर्ति तो और ही बात है। इसी कठिनाई को ध्यान में रखते हुए मंत्राराधन में 'वाणी' मात्र से सम्भव हो सकने वाले क्रिया कांडों को महत्व नहीं दिया गया है।

जीभ से तो लोग आये दिन कथा, कीर्तन, भजन, पाठ, जप आदि के माध्यम से तरह-तरह के चित्र-विचित्र वचन बोलते रहते हैं। यदि उतने भर से धर्मचर्या के उद्देश्य पूरे हो जाया करते तो फिर सरलता की अति ही कही जाती। छोटे-छोटे लाभ प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कठोर श्रम करने, साधन जुटाने एवं मनोयोग लगाने की आवश्यकता पड़ती है तब कहीं आधी-अधूरी सफलता का योग बनता है। अध्यात्म क्षेत्र जितना उच्चस्तरीय है उतनी ही उसकी विभूतियाँ भी बहुमूल्य हैं। निश्चित रूप से उसके लिए प्रयास भी अपेक्षाकृत अधिक कष्ट साध्य ही होते हैं। यदि उतने बड़े लाभ मात्र जिह्वा से अमुक शब्दावली दुहरा देने भर से प्राप्त हो जाया करते तो उन्हें पाने से कोई भी वंचित न रहता पर इतना सस्तापन है कहाँ ?

महत्व की दृष्टि से हर वस्तु का मूल्य निर्धारित है। अध्यात्म उपलब्धियों में शब्द शक्ति की महत्ता बताई और महिमा गाई गई है। मन्त्राराधन के फलस्वरूप मिलने वाले लाभों का वर्णन विस्तारपूर्वक शास्त्रों में भरा पड़ा है, पर उसे शब्द चमत्कार भर नहीं मान लिया जाना चाहिए। यदि उच्चारण ही सब कुछ रहा होता तो साधना ग्रन्थ पढ़ने वाले प्रेस कर्मचारी और पुस्तक विक्रेता पहले ही लाभान्वित हो लेते। पाठक को उनका बचा खुचा ही शायद कुछ हाथ लगता। शब्दोच्चारण में जप के अति सरल कर्मकाण्ड के लिए थोड़ा-सा समय लगा देने में किसी को क्या कुछ असुविधा होगी ? उतना तो कोई बालक-नासमझ या वृद्ध अशक्त भी कर सकता है, फिर समर्थ व्यक्ति तो उसे उत्साहपूर्वक करते और भरपूर लाभ उठाते। ऐसा कहाँ होता है ? लाभों का माहात्म्य विस्तार पढ़ते हुए भी कुछ करने के लिए कहाँ किसी का उत्साह होता है।

शब्द ब्रह्म-शब्दों में जो गहन रहस्य छिपा है वह यह है कि अध्यात्म प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली को उच्चस्तरीय होना चाहिए। वह इतनी परिष्कृत हो कि उसकी पवित्रता, प्रामाणिकता एवं क्षमता को ईश्वर के समतुल्य ठहराया जा सके। इसके लिए कई लोग स्वर विन्यास की बात सोचते हैं और अनुमान लगाते हैं कि मन्त्रों में उच्चारण का जो स्वर क्रम बताया गया है, उसे जान लेने से काम बन जायगा। यह मान्यता भी तथ्य की दिशा में एक छोटा कदम भर ही है। इस चिन्तन में इतनी-सी ही जानकारी है कि हमारे क्रिया-कृत्यों को अनगढ़ नहीं—सुव्यवस्थित होना चाहिए। भले ही वह

उच्चारण ही क्यों न हो ? वाणी को शिष्टाचार-सन्तुलन सभ्यता का अंग माना जाता है। जो ऐसे ही अण्ड-बण्ड बोलते रहते हैं वे असभ्य कहलाते और तिरस्कार के पात्र बनते हैं। ऐसी दशा में मन्त्र प्रयोजन में यदि उनके साथ जुड़े हुए व्यवस्था नियमों का पालन किये जाने का निर्देश है तो उसका पालन होना ही चाहिए। इसमें सतर्कता एवं जागरूकता अपनाये जाने की बात दृष्टिगोचर होती है। यह दिशा उत्साहवर्धक है। इससे प्रमाद पर अंकुश लगने और व्यवस्था अपनाने में उत्साह उत्पन्न होने का बोध होता है, यह उचित भी है और आशाजनक भी।

मंत्रों का उच्चारण सही हो, शुद्धता और गति का ध्यान रहे यह आवश्यक है। स्वर, लय, क्रम, विराम आदि को जाना व माना जाय मंत्रोच्चार की कक्षा में प्रवेश का यह आवश्यक कदम है। पूजा उपचार के अन्य कर्मकाण्डों में भी यह सतर्कता बरती जानी चाहिए। आलसी प्रमादियों की तरह आधी-अधूरी चिह्न पूजा करने की बेगार भुगत लेने से तो अश्रद्धा मात्र टपकती है। अन्यमनस्कता एवं उपेक्षापूर्वक किये गये नित्यकर्म तक बेतुके और बेढंगे होते हैं तो अध्यात्म की उपलब्धियाँ उस ढंग से किस प्रकार प्राप्त की जा सकती हैं। इस स्वभाव से तो जीविका उपार्जन तक में असफलता मिलती है, फिर साधना क्षेत्र में उसका परिणाम अवरोध उत्पन्न करने के अलावा और क्या हो सकता है।

गायत्री मन्त्र के अभीष्ट परिणाम प्राप्त करने के लिए उसके उच्चारण से लेकर विधि-विधान तक में सुव्यवस्था एवं सतर्कता बरती जानी चाहिए किन्तु इतने भर से ही यह नहीं मान लेना चाहिए कि हमारे उच्चारण 'मन्त्र' बन गये और उन्हें शब्द ब्रह्म या नाद की संज्ञा मिल गई । इसके लिए वाणी को 'वाक्' के रूप में परिष्कृत करना होगा । यह स्वर साधना नहीं, वरन् जीवन साधना के क्षेत्र में होने वाला प्रयोग है । इसके लिए समूचे व्यक्तित्व को-मन, वाणी, कर्म, स्वभाव को, चिन्तन एवं चरित्र को, उच्चस्तरीय बनाने के भगीरथ प्रयत्न में जुटना होता है। मन्त्रोच्चारण की विधि-व्यवस्था कुछ घण्टों में सीखी जा सकती है । उसका परिपूर्ण अभ्यास कुछ दिनों में हो सकता है किन्तु व्यक्तित्व की मूल सत्ता का स्तर ऊँचा उठाना काफी कठिन है । उसके लिए प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है । दूसरों को सुधारने में जितनी कठिनाई पड़ती है अपने को सुधारना उससे भी अधिक कष्टसाध्य और श्रमसाध्य है ।

जिह्वा उच्चारण तन्त्र है । अन्य वाद्य यन्त्रों की तरह उसका सही होना तो प्राथमिक आवश्यकता है । मंत्र की शब्दावली शुद्ध हो । भाषा की अशुद्धियाँ न हों । प्रवाह एवं स्वर ठीक हो । इसके अतिरिक्त जिह्वा साधना की दृष्टि से सामान्य व्यवहार में उसके रसना प्रयोजन एवं वार्ताक्रम में साधकों जैसी रीति-नीति का समावेश किया जाय । अनीति की, हराम की कमाई न खाई जाय । परिश्रम और न्याय के सहारे जितना कुछ कमाया जा सके उतने में ही मितव्ययतापूर्वक गुजारा किया जाय । चटोरेपन की बुरी आदत से लड़ा जाय और सात्विक सुपाच्य पदार्थों को औषधि भाव से उतनी ही मात्रा में लिया जाय जितनी कि पेट की आवश्यकता एवं क्षमता है। इस दृष्टिकोण को अपनाने वाले के लिए मद्य, माँस जैसे अभक्ष्यों को ग्रहण करने की तो बात ही क्या, उत्तेजक मसाले और नशीले पदार्थों, मिष्ठान्न, पकवानों तक से परहेज करने की जरूरत पड़ती है । अन्न का मन पर प्रभाव पड़ने की बात स्पष्ट है । सात्विक आहार से मनःक्षेत्र में सात्विकता बढ़ती है और उससे अनेक दोष-दुर्गुण जो अभक्ष्य खाते रहने पर छूट नहीं सकते थे, अनायास ही घटते-मिटते चले जाते हैं । अस्वाद व्रत पालन करने वाले के लिए अन्य इन्द्रियों पर काबू रख सकना सरल हो जाता है ।

आहार की सात्विकता का वाणी की पवित्रता पर गहरा असर पड़ता है । अभक्ष्य आहार से जिह्वा की सूक्ष्म शक्ति नष्ट होती है और उसके द्वारा उच्चरित शब्द आध्यात्मिक प्रयोजन पूरे कर सकने की क्षमता से रहित ही बने रहते हैं । वाणी का दूसरा कार्य है वार्तालाप । हमारे दैनिक जीवन में वार्तालाप का स्तर उच्चस्तरीय एवं आदर्श परम्पराओं से युक्त होना चाहिए ।

मन्त्र को धीमे जपा जाता है । शब्दावली अस्पष्ट एवं धीमी रहती है । बहुत बार तो वाचिक से भी अधिक महत्व मानसिक और उपांशु का होता है । उनमें तो वाणी नाम मात्र को ही होती है किन्तु इन मौन जपों में भी मध्यमा, परा, पश्यन्ती, वाणियाँ काम करती रहती हैं । यह तीनों वाणियाँ मनुष्य के दृष्टिकोण, चरित्र एवं आकांक्षा से सम्बन्धित रहती हैं । यदि व्यक्ति ओछा, घटिया और दुष्ट है, उसकी आकांक्षाएँ निकृष्ट, दृष्टिकोण विकृत एवं चरित्र भ्रष्ट है तो तीनों सूक्ष्म वाणियाँ निम्नस्तरीय ही बनी रहेंगी और उनका समन्वय से बैखरी वाणी तक प्रभावहीन, संदिग्ध एवं अप्रामाणिक बना रहेगा । उसका सांसारिक

उपयोग भी कोई महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न न कर सकेगा फिर उसके द्वारा की गई मन्त्र साधना तो सफल हो ही कैसे सकती है ।

मंत्र जप की विधि सरल है पर साधना कठिन है और साधना के बिना उपयुक्त परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता । मन्त्र जप की साधना में जिह्वा समेत समस्त उपकरणों का परिशोधन करना पड़ता है । जो तथ्य को समझते हैं, विधि-विधान तक ही सीमित नहीं रहते अपितु जीवन प्रक्रिया को उच्चस्तरीय बनाने की सुविस्तृत रूपरेखा भी तैयार करते हैं । उस प्रयास में जिसे जितनी सफलता मिलेगी उसके जप तप उसी अनुपात में सफल होते देखे जा सकते हैं ।

इसी आधार पर शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार होता है । समूची आत्मसत्ता को परिष्कृत बनाने से वाणी की परिणति वाक् शक्ति में होती है । इसका प्रभाव असीम है और उसकी सहायता से असम्भव को भी सम्भव किया जा सकता है ।

शतपथ ब्राह्मण में गायत्री का विवेचन करते हुए कहा गया है—परावाक् उसका मर्मस्थल है । परावाक् का रहस्योद्घाटन करते हुए बताया है वह हृदयस्पर्शी है। प्रसुप्त को जगाती है । स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि का आधार वही है । देवताओं के अनुग्रह वरदान का केन्द्र उसी में है । इस विश्व में जो कुछ श्रेष्ठ है वह वाक् की प्रतिध्वनि एवं प्रतिक्रिया ही समझी जानी चाहिए ।

बैखरी वाणी जब साधना सम्पन्न होकर 'वाक्' बनती है तो उसका विस्तार श्रवण क्षेत्र तक सीमित न रह कर तीनों लोकों की परिधि तक व्यापक होता है । वाणी में ध्वनि है, ध्वनि में अर्थ, किन्तु 'वाक्' शक्तिरूपा है । उसकी क्षमता का उपयोग करने पर वह सब जीता जा सकता है जो जीतने योग्य है ।

कौत्स मुनि ने मंत्र अक्षरों के अर्थ की उपेक्षा की है और कहा है कि उनकी क्षमता शब्द गुन्थन के आधार पर समझी जानी चाहिए । उसमें 'वाक्' तत्व ही प्रधान रूप से काम करता है । इस 'परावाक्' का स्तवन करते हुए श्रुति कहती है—

**देवी वाचमजनयन्त देवास्तां,**
**विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।**
**सा नो मंद्रेष्मूर्ग दुहाना,**
**धेनुर्वागस्मानुप्सुष्टुवैतु ॥**

परावाक् देवी है । विश्व रूपिणी है । देवताओं की जननी है । देवता मन्त्रात्मक ही हैं । यही विज्ञान है । इस कामधेनु वाक् की शक्ति से हम जीवित हैं । उसी के कारण हँस बोलते और जानते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि गायत्री मंत्र में वाक् तत्व इतना प्रधान है कि यदि उसे सिद्ध कर लिया जाय तो आयु प्राण से लेकर कीर्ति और द्रव्य तक लौकिक उपलब्धियाँ तथा आत्मकल्याण, आत्म बल, आत्म ज्ञान, ब्रह्मतेज, ब्रह्मवर्चस् जैसी आध्यात्मिक उपलब्धियाँ अर्जित की जा सकती हैं ।

## मंत्रों की सफलता वाक् पर निर्भर है

मुख में से निकलने वाली वाणी अपनी अन्तरंग मन:स्थिति का वाह्य जगत को परिचय देती है और उसे प्रभावित करती है । सामान्य जीवन में उसकी कितनी उपयोगिता है और उस शक्ति के कुण्ठित होने पर कैसी असहाय स्थिति होती है इसे किसी गूँगे और मुखर व्यक्ति के तुलनात्मक अन्तर को देखकर सहज ही जाना जा सकता है ।

मधुर संयत और सुसंस्कृत वाणी को वशीकरण मंत्र बताया है । उसके आधार पर पराये अपने हो जाते हैं । दूसरों का स्नेह, सम्मान और सहयोग अर्जित करना सम्भव होता है । प्रगति के असंख्य द्वार खुलते हैं । वाणी के परिष्कृत प्रभाव का लौकिक जीवन की प्रगति एवं प्रसन्नता में कितना अधिक योगदान होता है इस पर जितना अधिक विचार किया जाय उतनी ही अधिक गरिमा स्पष्ट होती जाती है ।

आत्मिक शक्ति संचय की साधना में से वाणी को प्रधान माध्यम ही मानना चाहिए। स्कूली अध्यापकों और छात्रों तक की शिक्षा प्रक्रिया वाणी के आधार पर ही चलती है । विद्या का—ब्रह्मविद्या का आधार भी वही है। सत्संग, प्रवचन, कथा, कीर्तन, स्तवन, जप आदि के लिए वाणी ही माध्यम है ।

वाणी का दुरुपयोग भी हो सकता है और सदुपयोग भी । कटु वचन, अपमान, तिरस्कार, व्यंग, निन्दा, चुगली जैसा व्यवहार किया जाय तो शत्रुता बढ़ती है और बैर, विरोध, असहयोग एवं संघर्ष का वातावरण उत्पन्न होता है। उसकी प्रतिक्रिया अपने लिए विग्रह, उद्वेग एवं अशांति का कारण बनती है । कहते हैं कि—"तलवार का घाव भर जाता है पर जीभ का घाव नहीं भरता ।"

द्रौपदी की जीभ से निकले थोड़े से कटु शब्दों के फलस्वरूप असंख्यों का सर्वनाश उत्पन्न करने वाला महाभारत खड़ा हो गया था । मधुर भाषा सज्जनता, शालीनता और सद्भावना से युक्त होने के कारण सुनने वालों पर चमत्कारी प्रभाव डालती है । शान्ति और दिशा प्रदान करती है । संसार के महान परिवर्तनों में मनस्वी लोगों की वाणी ने अपनी प्रमुख भूमिका सम्पन्न की है । साधु और ब्राह्मणों ने सत्य और ज्ञान के उद्घोष कर्ताओं ने अपने दिव्य वचनों से असंख्य प्राणियों का कल्याण किया है ।

मन्त्र विद्या में शब्द शक्ति की महान् गरिमा प्रकट होती है । पर यह विशेषता मात्र उच्चारण भर की नहीं होती वरन् उसके पीछे अन्तःकरण की ऐसी विशेषताएँ जुड़ी रहती हैं; जिनके कारण उसमें असाधारण एवं चमत्कारी क्षमता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । मौन, सत्य, सत्प्रयोजन, सन्तुलन, सद्भाव जुड़े रहने से वाणी की श्रेष्ठता सामान्य व्यवहार से उभरती हुई देखी जाती है। प्याज, मूली, शराब, हींग आदि खाने से मुख से उसी प्रकार की गंध आती है । इसी प्रकार अन्तःक्षेत्र में जो कुछ भरा होता है वह वाणी के साथ लिपट कर बाहर आता और प्रभाव उत्पन्न करता है ।

मंत्र विद्या का समस्त आधार वाणी की पृष्ठभूमि पर ही आधारित है । परिष्कृत वाणी के समान मनुष्य के पास और कोई उत्कृष्ट शक्ति नहीं है । 'मंत्रविद्या' का जो कुछ भी चमत्कार कहा, सुना और देखा जाता है उसका आधार वाणी ही है । सत्य, मौन, अभक्ष्य, अवरोध, जप आदि की साधना पद्धतियाँ सामान्य समझी जाने वाली वाणी को असामान्य 'वाक्' में परिणत करती है । उसकी उद्भूत शक्ति जड़ जगत को हिला सकने और चेतन जगत में व्यापक भाव प्रवाह उत्पन्न कर सकने में समर्थ होती है । इसलिए वाक् साधना को आत्मविद्या का प्रधान आधार माना गया है ।

मंत्र की जो कुछ महिमा है उसका आधार वाणी को 'वाक्' के रूप में परिणत कर देना है । इसके लिए मन, वचन और कर्म में ऐसी उत्कृष्टता का समन्वय करना पड़ता है कि वाणी को दग्ध करने वाला कोई कारण शेष न रह जाय । इतना करने के उपरान्त उसके द्वारा जपा हुआ मंत्र सहज ही सिद्ध होता है और उच्चारण किया हुआ शब्द असंदिग्ध रूप से सफल होता है । यदि वाणी दूषित, कलुषित, दग्ध स्थिति में पड़ी रहे तो उसके द्वारा जप किये हुए मंत्र भी जल जायेंगे और बहुत संख्या में बहुत समय तक जप, स्तवन, पाठ आदि करते रहने पर भी अभीष्ट फल न मिलेगा । परिष्कृत जिह्वा में वह शक्ति रहती है जिसके बल पर किसी भी भाषा का—कोई भी मंत्र प्रचंड और प्रभावशाली हो उठता है । उसके द्वारा उच्चारित शब्द मनुष्यों के अन्तस्तल को, असीम अन्तरिक्ष को प्रभावित किये बिना नहीं रहता । ऐसी परिष्कृत वाणी—वाक्—को अध्यात्म का प्राण कह सकते हैं । उसे साधक की कामधेनु एवं तपस्वी का ब्रह्मास्त्र कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है । इसी को परिमार्जित जिह्वा को 'सरस्वती' कहते हैं । साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को उस मंत्रशक्ति की—दीक्षा की—महत्ता समझनी चाहिए । मंत्र की माता उसे ही मानना चाहिए, सिद्धियों का उद्गम स्थल, भगवान को द्रवित एवं प्रभावित कर सकने का माध्यम उसे ही मानना चाहिए । वाक् साधना को अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए प्रथम चरण मानना चाहिए और समझना चाहिए कि जो इस प्रयोजन को पूरा कर सकेगा वही मंत्रविद्या का—प्रार्थना उपासना का लाभ उठा सकेगा । वाणी के अशुद्ध रहते उपासना की सफलता संदिग्ध ही रहेगी इस तथ्य को ध्यान में रख जा सके तो जप अनुष्ठान आदि की प्रक्रिया के साथ-साथ वाणी के परिष्कार की बात भी उतनी ही महत्वपूर्ण समझनी होगी और उसको भी साधना का एक अनिवार्य अंग मानकर चलना होगा । मन्त्र शक्ति की महत्ता का शास्त्रों ने इस प्रकार वर्णन किया है—

**तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो,**
**यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा ।**
**अनुहाय तपसा मन्युना चोत,**
**दूरादेव भिन्दन्त्येनम् ॥**

—*अथर्व* ५ ।१८ ।९

जीभ जिसकी प्रत्यञ्चा है, उच्चारण किया हुआ शब्द जिसका वाण है, संयम जिसका वाणाग्र है, तप से जिसे तीक्ष्ण किया गया है, आत्मबल जिसका धनुष है, ऐसा ब्राह्मण अपने मंत्र बल से समस्त देवद्रोही तत्वों को वेध डालता है ।

**जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्**
**नाड़ीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।**
**तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून्**
**हृद्बलै र्धनुर्भि र्देवजूतैः ॥**

—*अथर्व* ५ ।१८ ।८

आत्मबल रूपी धनुष, तप रूपी तीक्ष्ण वाण, लेकर तप और मन्यु के सहारे जब यह तपस्वी ब्राह्मण मन्त्रशक्ति का प्रहार करते हैं तो अनात्म तत्वों को दूर से ही वेध कर रख देते हैं ।

**अस्मानं चिद् ये विभिदुर्वचोभिः ।**

*—ऋग्वेद ४ /१६ /६*

उन शक्ति सम्पन्न उच्चारणों ने पत्थरों को भी फोड़ डाला ।

**यत् त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति...............**

**सर्वं तद्वाचापहन्मो वयम् ।**

*—अथर्व १ /१८ /३*

तेरे शरीर में जो अनिष्ट हैं उन्हें मंत्रपूत वाणी से हम नष्ट करेंगे ।

**तामेतां वाचं यथा धेनुं वत्सनोपसृज्य प्रत्तां ।**

**दुहीतैवमेव देवा वाचं सर्वान् कामान् अदुह्रन् ॥**

*—जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण*

जिस प्रकार बछड़ा गाय का दूध पीता है उसी प्रकार देव पुरुष दिव्य वाणी का आश्रय लेकर समस्त कामनाएँ पूर्ण करते हैं ।

मंत्र शक्ति की महत्ता 'वाक्' शक्ति पर निर्भर है । इस वाक् को स्वर भी कहते हैं—साम भी और सरस्वती भी । यदि इसे शुद्ध एवं सिद्ध कर लिया गया तो फिर मंत्र के चमत्कार का प्रकट होना सुनिश्चित है । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मंत्र से भी बढ़कर 'वाक्' की प्रशंसा की गई है । कारण स्पष्ट है । परिष्कृत वाक् ही मन्त्रों की सार्थकता बनाती है । भ्रष्ट वाणी से किये हुए मंत्रानुष्ठानों को सफलता कहाँ मिलती है ?

**अस्थि वा ऋक्,**

*—शतपथ ७ /५ /२ /२५*

मंत्र तो हड्डियाँ मात्र हैं ।

**प्राणे वै स्वरः ।**

*—ताण्ड्य ब्राह्मण २४ /११ /९*

प्राण तो स्वर है ।

**एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्टु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च काम धुग भवति ।**

*—श्रुति*

एक ही शब्द की तात्विक अनुभूति हो जाने से समस्त मनोरथों की पूर्ति हो जाती है ।

**वाक्य सिद्धिर्द्विधा प्रोक्ता शापानुग्रह कारिका ।**

*—शक्ति पंचकम्*

वाक् सिद्धि दो प्रकार की होती है एक शाप देने वाली दूसरी वरदान देने वाली ।

**स यो वाचं ब्रह्मेत्वपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति ।**

*—छान्दोग्य ७ /२ /२*

जो वाणी को ब्रह्म समझ कर उपासना करता है उसकी वाणी की गति इच्छित क्षेत्र तक हो जाती है ।

वाक् को ब्रह्मस्वरूप माना गया है । वही ब्रह्म की ब्रह्मविद्या की अविच्छिन्न शक्ति है । देवता उसी के वश में रहते हैं । उच्चारण और स्वर में यही अन्तर है कि उच्चारण कंठ, होठ, जीभ, तालु, दाँतों की संचालन प्रक्रिया से निकलता है और वह विचारों का आदान-प्रदान कर सकने भर में समर्थ होता है । पर स्वर अन्तःकरण से निकलता है । उसमें व्यक्तित्व, दृष्टिकोण और भाव समुच्चय भी ओत-प्रोत रहता है । इसलिए मंत्र का स्वर कहा गया है । वेद पाठ में उदात्त अनुदात्त स्वरित की उच्चारण प्रक्रिया का शुद्ध होना ही इसी ओर संकेत करता है । साधना क्षेत्र में स्वर का अर्थ वाक्शक्ति के माध्यम से किये जाने वाले सशक्त जप अनुष्ठान से ही है ।

**यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।**

*—अथर्व ७ /२ /५*

समस्त संसार का निर्माण करने वाली यह विराट् वाक् ही है ।

**यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ।**

*—ऋग् १० /११४ /८*

जहाँ तक ब्रह्म विस्तृत है, उतनी ही वाक् विस्तृत है ।

**विराट् वाक् ।**

*—अथर्व ९ /१५ /२४*

यह वाक् विराट् है ।

**यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ।**

*—ऋग्वेद १० /११४ /८*

जितना बड़ा ब्रह्म है, उतनी ही विशाल वाक् है ।

**तद्यत् किचांर्वाचीनं ब्रह्मण स्तद् वागेव सर्वम् ।**

*—जै. उ. १ /११ /१ /३*

ब्रह्म के पश्चात् वाक् ही उत्पन्न हुई ।

**वाग् वै विश्वकर्मर्षिः वाचा हीदं सर्वं कृतम्**

*—यजु १३ /५८*

वाक् ही विश्वकर्मा ऋषि है । उसी ने यह संसार बनाया ।

**प्रजापतिर्वा इदमेक आसं त्तस्य वागेव स्वमासीत् वाग् द्वितीया स ऐक्षतेमामेव वाच विसृजा । इयं वा इदं सर्वं विभवन्त्येष्यतीति ।**

*—ता. ब्रा. २० /१४*

प्रजापति अकेले थे । उनके पास 'वाक्' ही एक सम्पत्ति थी । उन्होंने विचार किया मैं इस वाक् को ही प्रखर करूँ । यही सब कुछ बन जायगी ।

**तिस्रो वाचो प्रवद ज्योति रभा ।**

*—ऋग् ७ /१०१ /१*

उस वाक् का ज्योति रूप में दर्शन होता है ।

**स्वरूप ज्योति रेवान्तः परावागत्तपायिनी ।**

*—महाभारत*

यह वाक् ज्योति रूप में परिलक्षित होती है ।

**आगमोक्तं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥**
**शब्दब्रह्माऽऽगमयं परं ब्रह्म विवेकजम् ।**

*—अग्निपुराण*

एक शब्द ब्रह्म है दूसरा परब्रह्म । शास्त्र और प्रवचन से शब्दब्रह्म और विवेक मनन चिंतन से परब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

**शब्द ब्रह्माणि निष्णांतः पर ब्रह्माधिगच्छति ।**

*—शतपथ*

शब्द ब्रह्म को ठीक तरह जानने वाला ब्रह्म तत्व को प्राप्त करता है ।

**वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वममृतं यच्च मर्त्यम् ।**

*—शतपथ*

वाक् यह सृष्टि का मूल तत्व है । यह मनुष्य लोक का अमृत है । शब्दों में जो शक्तियाँ भरी हैं वे अद्भुत हैं।

वाक् शक्ति की आराधना यदि ठीक प्रकार की जा सके तो मंत्र शक्ति के—प्रार्थना के—वरदान आशीर्वाद के—जड़ चेतन जगत को प्रभावित करने के—सिद्धि साधना के समस्त प्रयोजन उसी तरह पूर्ण हो सकते हैं जैसे कि शास्त्रों में लिखे हैं । वरिष्ठ साधकों की तरह आज भी साधना के वैसे ही प्रतिफल मिल सकते हैं । शर्त केवल एक ही है—वाक् साधना का महत्व समझा जाय और उस पर समुचित रूप से ध्यान दिया जाय ।

# मानवी और दैवी वाणियाँ

मुख मार्ग से निकलने वाले शब्दों को वाणी कहते हैं। विचारों का आदान-प्रदान इसी के माध्यम से होता है। एक-दूसरे के सामने अपनी अभिव्यक्तियों का प्रकटीकरण इसी माध्यम से करते हैं । ज्ञान का प्रमुख स्रोत इसी को बताया गया है । यों संकेतों के सहारे भी थोड़ा बहुत काम चल जाता है । इस प्रकार साहित्य स्वाध्याय से ज्ञान का संकलन नेत्र माध्यम से भी सम्भव है। पर प्रथम आधार वाणी ही है । उसके द्वारा लिपि भाषा, शब्द व्याकरण आदि का प्रथम ज्ञान वाणी से ही करना पड़ता है । साहित्य इसके उपरान्त ही काम देता है ।

कहने-सुनने के पीछे प्रयोजन भी होते हैं । कई बार विनोद, व्यंग, उपहास के लिए निरर्थक भी बहुत कुछ बोला जाता है । जिह्वा का उपयोग निरन्तर करते रहने पर भी उसकी समग्र शक्ति में कोई-कोई ही परिचित होते हैं। जो परिचित होते हैं वे उसका बहुमूल्य रत्न जैसा उपयोग करते हैं । जो अपरिचित होते हैं वे इस भाण्डागार को ऐसे ही निरर्थक लुटाते गँवाते रहते हैं ।

बोलना सरल है । वार्तालाप द्रुतगति से होता रहता है । उसमें कुछ लगता नहीं दीखता । पर सच तो यह है कि उस माध्यम से सामर्थ्य का बहुमूल्य स्रोत खाली होता रहता है । यों हाथ-पैर चलने में थकान आती है, पर जीभ चलने में वैसा भी कुछ लगता नहीं दीखता ।

वाणी का एक प्रयोग उथल भर है, जो कंठ, होठ, तालु, दन्त के सहयोग से शब्दों की, भाषणों की झड़ी लगाता रहता है पर इसके पीछे जो कुछ है, वह जानने ही योग्य है ।

वाणी के दो विभाग हैं । एक वह जिसे जिह्वा की सहायता से मनुष्य बोलता रहता है, दूसरा वह है जिसके माध्यम से देवता बोलते हैं ।

श्रुति वचन है—

**आपक्रायन् पौरुषेदनाद् वृणानोद्दप वचः ।**

एक से मनुष्य बोलते रहते हैं और अपना मन हल्का करते रहते हैं । दूसरी वाणी देवताओं की है जिसके माध्यम से दिव्य अनुदान लिये और दिये जाते हैं ।

इस महाशक्ति को आगे चलकर चार भागों में विभक्त किया गया है—

**चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्णह्मणा ये मनीषणः । गुहात्रीणि निहिता नैंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदानीः ।**

मनीषी जानते हैं कि वाणी के चार विभेद हैं । इनमें से तीन रहस्यमय गुफा में छिपे हैं और एक को मनुष्य वार्त्तालाप में बोलते रहे हैं ।

बैखरी वार्तालाप में बोली जाती है । यह मनुष्यों की है । देवतओं की तीन वाणियाँ हैं जो रहस्यमय गुफा में छिपी रहती हैं । यह तीन हैं मध्यमा, परा और पश्यन्ति । यह बोली नहीं जाती किन्तु देवताओं द्वारा बोली और प्रकट की जाती हैं । इनमें शब्दोच्चार तो नहीं होता किन्तु शक्तियों का भाण्डागार छिपा रहता है । जो उन्हें ग्रहण करते हैं वे धन्य हो जाते हैं ।

इन तीन चार वाणियों से चार वेद बने हैं । इस ब्रह्माण्ड की संचालन व्यवस्था में चार ऋषि काम करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में उनके नाम वसु, रुद्र, आदित्य और इन्द्र कहे जाते हैं । रहस्य यही तीन वाणियों का मार्ग जानना हो तो उसकी व्याख्या चारों वेदों की ऋचाओं में और देवताओं के साथ जुड़ी हुई विभूतियों में खोजनी चाहिए । जो देव वाणी का मर्म समझता है विभूतियाँ उसके सम्मुख अपने आपको नग्न रूप में प्रकट कर देती हैं ।

मध्यमा मुखाकृति, भाव भंगिमा, चेष्टा एवं मुद्रा के साथ प्रकट होती है । उसमें मनोभावों का पुट रहता है । मन निग्रहीत या विकृत जिस भी स्तर का होगा उसी स्तर की तरंगें निस्सृत होंगी । सम्बद्ध मनुष्य उसमें प्रभावित होते हैं । बैखरी वाणी से चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाता रहे पर एक मन दूसरे के मन को पढ़ लेता है । मौन बैठे रहने पर भी सामने वाले व्यक्ति के लिए जो भी सोचा गया है वह भाव तरंगें अनायास ही उठती और दूसरे को प्रभावित करती रहेंगी ।

परावाणी प्राण से निकलती है और समीपवर्ती सारे वातावरण में गूँजती है । गुम्बद की आवाज जिस प्रकार गूँजने लगती है उसी प्रकार एक का प्राण दूसरे प्राणों में स्पन्दन उत्पन्न करता है । ऋषियों के आश्रम में गाय सिंह एक घाट पर पानी पीते थे । जितने दायरे में यह प्राण गुंजन रहता है उतने में प्राणियों के बीच अहिंसा वृत्ति और प्रेम भाव बना रहता है । दुष्ट प्राण भी यदि जाग्रत कर रखा है तो दुर्व्यसनी, व्यभिचारी लोग अपने समीपवर्ती लोगों को बिना कुछ कहे-सुने ही उस प्रकार की वृत्ति का संचार करते हैं । सन्त सज्जन भले ही वाणी से प्रवचन न करें, पर उनकी अन्तरात्मा अपनी भावनाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं को क्षेत्रवर्ती लोगों के अन्तःकरण तक पहुँचा देती हैं । कितने ही प्राणवान शक्ति मौन रहते हैं । उपदेश आदि नहीं करते पर उनके शरीर की विद्युत शक्ति दूसरों तक अपनी विद्युत तरंगों को फैला देती है । इनका स्पर्श करने मात्र से लोग प्रभाव ग्रहण करते हैं । बिना स्पर्श किये भी वातावरण में ऐसी ऊर्जा का संचार होता है । यह देव वाणी है जो एक से अनेकों तक पहुँचती है । अपने समान विचार और स्वभाव वाली परतों पर यह प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है । प्रचार माध्यमों में तो कोई आदमी सीमित क्षेत्र में ही अपनी समझाने बुझाने की समर्थ, तर्क प्रमाण के आधार पर ही प्रभाव छोड़ सकता है। पर परावाणी के माध्यम से असंख्य लोगों को बिना कुछ कहे-सुने ही सुधार सकता है ।

पश्यन्ति वाणी आत्मा से निस्सृत होती है और आत्माओं को अपने ढाँचे में ढालती चली जाती है । असुरों ने किसी जमाने में पश्यन्ति वाणी के प्रभाव से समूचे लंका जैसे प्रदेश के सभी निवासियों को असुर स्वभाव में ढाल दिया था । इसलिए कोई विद्यालय उन्हें नहीं बनाना पड़ा था । पश्यन्ति वाणी से सम्पन्न तपस्वी समय को बदलने में असाधारण सफलता प्राप्त करते हैं । अरविन्द, महर्षि रमण जैसे योगियों ने सत्याग्रह आन्दोलन के समय उस स्तर की अनेकों उच्चस्तरीय आत्माएँ विनिर्मित कर दी थीं। रामराज्य की स्थापना के समय ऋषियों का असाधारण योगदान रहा था । लंकादमन में राम रावण युद्ध की भूमिका काम दे गई थी, किन्तु जब समूची प्रजा का धर्मात्मा बनाने का प्रसंग आया तो उस प्रयोजन के लिए ऋषियों ने पश्यन्तिवाणी के विस्तार का महाअनुष्ठान सम्पन्न किया था । अश्वमेघ यज्ञ जैसे प्रयोजनों से वह कार्य सम्पन्न हुआ ।

शेष तीन वाणियाँ, मन, प्राण और आत्मा से निस्सृत होती हैं । उन्हीं गुफाओं में वे छिपी रहती हैं । इसलिए उन्हें सशक्त बनाने के लिए उनके स्थानों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या के माध्यम से प्रखर बनाना पड़ता है । ऐसे साधकों को बैखरी वाणी स्तर विशेष रूप से संयम करना पड़ता है । अन्यथा इस मार्ग में शक्तियों का क्षरण होने लगने से शेष तीन देव वाणियों का संशोधन और अभिवर्धन जैसा चाहिए वैसा नहीं हो पाता ।

शाप और वरदान से सम्बन्धित अनेकों विभूतियाँ जब चमत्कारी प्रतिफल प्रस्तुत कर रही हों तो समझना चाहिए कि यह परा और पश्यन्ति की साधना का सत्परिणाम है । यह वाणियाँ, मनुष्य का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार शुद्ध होने से ही निखरती हैं । व्यक्तित्व जितना मजा हुआ होगा, साधना द्वारा कषाय-कल्मषों का जितना अधिक निराकरण हो चुका होगा उतनी ही यह वाणियाँ तेजस्वी होती चली जायेंगी ।

इस तरह मनुष्य की एक जीभ होते हुए भी वाणियाँ चार हैं । पहली है बैखरी । यह वाणी सामान्य अर्थों में वह कही जाती है जो जिह्वा से कही और कानों से सुनी जाय । इसका एक स्वरूप लेखन और वाचन भी हो सकता है । यह स्थूल वाणी है जो विचारों के आदान-प्रदान में काम आती है । इस माध्यम से अपनी मान्यताओं, भावनाओं एवं इच्छाओं, परिस्थितियों को प्रकट किया जाता है ।

मध्यमा वाणी वह है जिसमें शब्दों का उच्चारण तो नहीं होता पर संकेतों से अभिप्राय प्रकट होता है । चेहरा एक प्रकार का दर्पण माना गया है । उस पर विचारणायें दौड़ती और भावनाएँ छाई रहती हैं । उन्हें पढ़ा जा सकता है और मन:स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है । हाथों की मुद्राएँ भी कुछ सामान्य संकेत करती हैं । उनके माध्यम से अभिप्राय प्रकट किया जा सकता है । भावना की अभिव्यक्ति तो आँखों और होठों के माध्यम से ही प्रधानतया होती हैं । इस प्रकार से अभिप्राय प्रकट करने वाली मध्यमा वाणी में कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं पड़ती तो भी व्यक्ति एक-दूसरे की मन:स्थिति से अवगत होते रहते हैं । विशेषतया भावनाओं और आकांक्षाओं का प्रकटीकरण तो सहज ही हो जाता है ।

परावाणी वह है जो विचारों के रूप में मस्तिष्क में चलती रहती है । इसका प्रत्यक्ष प्रकटीकरण तो मुखाकृति से भी नगण्य होता है, पर उसका प्रभाव दूसरों पर पड़ने में कमी नहीं आती । विचार प्रवाह एक सीमित क्षेत्र पर धूप की तरह फैला रहता है । उसका प्रभाव काम करता है । धूप और छाया के मध्य जो अन्तर पाया जाता है वही भले-बुरे विचारों का होता है । सत्संग और कुसंग में आवश्यक नहीं कि वार्तालाप द्वारा ही सब कुछ कहा सुना जाय । विचारों की विद्युत तरंगें समीपवर्ती लोगों तक पहुँचती हैं और उन्हें परोक्ष रूप से अपनी प्रेरणा से अवगत एवं प्रभावित करती रहती हैं । इसमें अधिक मनस्वी दुर्बल मन वाले को परास्त करके अपना आधिपत्य जमा लेता है । ऋषियों के आश्रमों में सिंह भी गायों के साथ पानी पिया करते थे । इससे सिद्ध हुआ कि ऋषि की प्रभाव प्रेरणा ने सिंह के स्वभाव को दबोच लिया और उसे वैसा ही व्यवहार करना पड़ा जैसा कि प्रेरणा पुन्ज द्वारा उसे निर्देशन दिया गया था ।

उपर्युक्त वाणियों में एक से दूसरी का और दूसरी से तीसरी का अधिकाधिक प्रभाव होता है, क्योंकि उनके साथ अधिक ऊर्जा का समावेश होता है । धनुष की प्रत्यंचा को जितना पीछे खींचा जाता है उसी अनुपात से तीर में दूर तक जाने और गहरा घाव करने की सामर्थ्य होती है । मुख से मनुष्य ऐसे ही बेकार बकवास में अधिक शक्ति व्यय करता है । मखौलबाजी चलती रहती है । भीतर जो है उसके विपरीत भी शब्दाडम्बर प्रकट किया जाता रहता है । विशेषतया धर्म, आदर्श, कर्तव्य, दर्शन आदि के प्रवचन करने वाले लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरों को सदुपदेश देने में अपनी प्रवीणता प्रकट करते हैं । कथन को लच्छेदार शब्दों में गूँथ कर ऐसा बना देते हैं जो कानों को सरस लगे । इतने पर भी श्रवण कर्ताओं पर उसका कोई कारगर प्रभाव नहीं पड़ता । क्योंकि उसके पीछे आन्तरिक विश्वासों की आस्था एवं निष्ठा का पुट नहीं रहता । हाथी का चित्र सुहावना तो लगता है, पर उसमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वजन उठाये या किसी को अपनी पीठ पर बिठाये ।

आन्तरिक भावनाओं का समावेश मध्यमा में होता है। दर्शक यदि सूक्ष्मदर्शी है तो ही चेहरा पढ़ सकता है और उसके सूक्ष्म उतार-चढ़ावों को समझ सकता है । अन्यथा मन्दबुद्धि लोग भूल भी कर सकते हैं । अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप दूसरों की भावनाओं का अर्थ लगा सकते हैं । वाणी और मुद्रा की परिधि सीमित है । कान अपनी सामर्थ्य की दूरी से शब्द सुनते और आँखों की शक्ति आकृति के ऊपर छाई हुई अभिव्यंजना को देख सकती है ।

मध्यमा द्वारा निस्सृत होने वाली विचार तरंगें काफी दूर तक जाती हैं । यह चिन्तक के व्यक्तित्व और प्राण प्रवाह पर निर्भर है कि वह कितनी दूर तक पहुँचे और कितना प्रभाव उत्पन्न करे । इस सम्बन्ध में एक बात और भी है कि समान विचार के लोग परस्पर सरलतापूर्वक आदान-प्रदान कर लेते हैं जबकि प्रतिकूल स्तर के साथ वे टकराकर छितरा जाते हैं और अस्वीकृत तिरस्कृत होने पर

वापस लौट जाते हैं । विश्वामित्र मनस्वी थे । उनके स्वप्न दर्शन का हरिश्चन्द्र पर इतना प्रभाव पड़ा कि अपना राजपाट, शरीर, परिवार दान देने के लिए तैयार हो गया । किन्तु ताड़का, सुबाहु, मारीच उनकी इच्छा के विपरीत यज्ञ में विघ्न ही डालते रहे । उनसे निपटने के लिए राम-लक्ष्मण को बुलाना पड़ा । कुश्ती का पहलवान अपने क्षेत्र में बाजी जीतता है, पर क्रिकेट से अनभ्यस्त होने पर हार जाता है ।

चौथी वाणी पश्यन्ती है । इसमें उपर्युक्त तीन वाणियों की तरह न्यूनाधिक मात्रा में भी शब्दों का प्रयोग नहीं करना पड़ता । वरन् इसे जाग्रत करने के लिए मौन रहने का अभ्यास करना पड़ता है ताकि इस क्षमता को पूरी तरह संग्रहीत करके रखा जा सके । मौन में शक्ति की बचत सबसे अधिक होती है । मनुष्य की प्राण शक्ति निरन्तर वार्तालापं करने में बहुत अधिक खर्च हो जाती है। ऐसी दशा में उसके दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने जैसी क्षमता शेष नहीं रहती । वाचाल व्यक्ति दूसरों को उच्च प्रयोजनों के लिए प्रभावित नहीं कर सकता ।

पश्यन्ती वाणी का भण्डार भरने के लिए साधक को न केवल अधिक समय मौन रहना पड़ता है, वरन् उसे अपने शारीरिक, मानसिक दोष-दुर्गुणों का निराकरण करते हुए सर्वतोमुखी पवित्रता अर्जित करनी पड़ती है ।

पश्यन्ती वाणी यदि सामान्य क्षमता की ही हो तो अपने संकल्प बल से समीपवर्ती वातावरण में सद्विचारों का संचार कर सकती है । गिरों को उठा सकती है और उठों को बढ़ा सकती है । उसे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती । उसका कथन संकल्पमय हो जाता है । अस्तु अनेकों को श्रेय पथ पर घसीट ले जाने की उसकी क्षमता काम करने लगती है । अरविन्द रमण जैसे आत्मबल के धनी लोगों ने अपने समय का वातावरण बदल देने में असाधारण स्तर की सफलता पाई थी । गाँधी और बुद्ध प्रभावशाली वक्ताओं में नहीं गिने जाते थे फिर भी उनकी सामान्य वाणी के सामान्य परामर्शों ने अनेकों कठिन मार्ग पर चलने के लिए कितने ही सामान्यजनों को दुस्साहस कर गुजरने के लिए सहमत कर लिया ।

पश्यन्ती वाणी अत्यन्त ओजमय होती है । वह सीमित क्षेत्र में अवरुद्ध नहीं रहती । वरन् उसका प्रभाव दूरगामी और अत्यन्त प्रभावी होता है । व्यापक जनमानस का प्रवाह परिवर्तन करने में बैखरी वाणी काम नहीं आती। वक्ता प्रचारक बहुत कुछ कहते रहते हैं, किन्तु उनके कथन का प्रभाव सीमित ही होता है किन्तु पश्यन्ती वाणी बिना एक शब्द कहे ही अनेकों को अनुगमन करने के लिए प्रेरित करने में सफल होती देखी गई है ।

पश्यन्ती वाणी को उभारने में मौन के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि चरित्र और लक्ष्य ऊँचा रहे । आहार और दिनचर्या में उत्कृष्टता का स्तर गिरने न पाये ।

पश्यन्ती का उद्गम अन्तःकरण है जिसमें से प्रभावशाली प्रवाह उद्भूत करने के लिए यह आवश्यक है कि स्थूल शरीर के क्रिया-कलाप, सूक्ष्म शरीर के चिन्तन और कारण शरीर के सद्भाव उच्चकोटि के रहें । इन सब की संयुक्त उत्कृष्टता ही पश्यन्ती वाणी का निर्माण करती है । वह इतनी प्रचण्ड हो सकती है कि अनाचार से लोहा ले सके और सत्प्रवृत्तियाँ दूरगामी क्षेत्र में सफल बनाने की भूमिका निभा सकें ।

## वाक्शक्ति की अधिष्ठात्री गायत्री

मंत्र की शक्ति असीम है । उसकी सामर्थ्य का पारावार नहीं है । लोहे से बने, विद्युत संचालित यन्त्रों का करतब हम प्रत्यक्ष देखते हैं पर वह होता तभी है जबकि वे सभी यन्त्र लोहे के हों, और सही पद्धति से निर्मित किये गये हों । बच्चों के खिलौने के रूप में रेल, मोटर, हवाई जहाज आदि बने होते हैं पर उनकी बाहरी शक्ल बनी होती है । निर्माण पद्धति का प्रयोग जैसा होना चाहिए वैसा न होने से वे खिलौने भर बनकर रह जाते हैं, वह काम नहीं कर सकते जो असली यन्त्र करते हैं । यन्त्र की तरह मन्त्र भी है वह समर्थ और सर्वांगपूर्ण होता है लेकिन शर्त यह है कि उसके साथ साधक का व्यक्तित्व भी अध्यात्म प्रक्रिया पद्धति को अपनाए ।

गायत्री मंत्र की महत्ता सर्वोपरि प्रधान है । उसकी प्रधानता और वर्चस् को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी साधना और उपासना में व्यक्तित्व को और अधिक प्रखर बनाया जाय । स्मरण रखा जाना चाहिए कि वाणी से उपासना करना ही पर्याप्त नहीं है, उसे 'वाक्' बनाकर ही इस योग्य बनाया जा सकता है कि अध्यात्म पथ पर बढ़ते हुए साधक को कुछ कहने लायक सफलता मिल सके । आयुर्वेद में सोना , चाँदी, ताबा, राँग, पारद आदि की भस्म बनाकर उनके सेवन का विधान

है । विषों का भी बड़ा लाभ बताया गया है पर वह सम्भव तभी होता है जबकि उन विषों को विधानपूर्वक शुद्ध किया जाय । वाणी एक मूल पदार्थ है शोधित होने पर वह अमृत बन जाती है और विकृत होने पर विष का काम करती है ।

गायत्री मंत्र की साधना का प्रथम प्रयास अपने गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करना है । मात्र वाणी का संयम करने से उसे वाक् रूप में परिणत नहीं किया जा सकता । मौन, सत्य, मधुर, वचन, सत्प्रयोजन, सन्तुलित एवं स्वल्प समाज जिह्वा साधना के वाह्य उपचार हैं । अन्तःकरण में उत्कृष्टता और क्रिया-कलाप में आदर्शवादिता का समन्वय अन्तः उपचार है । प्याज, मूली, शराब, हींग आदि खाने पर मुँह में वैसी ही गन्ध आती है, अन्तःकरण में यदि असन्तुलन भरा हो तो जिह्वा की रोक बाँध में भी चूक होती ही रहेगी और वस्तुस्थिति उभरकर जिह्वा के माध्यम से प्रकट होती रहेगी । असद् वाणी साधना को मात्र शब्द साधना नहीं समझना चाहिए वरन् अन्तःकरण की शुद्धि से उसका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध समझना चाहिए । तभी वाणी का प्रत्यावर्तन वाक् रूप में होता है और उसके द्वारा उच्चारित मन्त्र सफल व सार्थक होता है । ऐसी वाक् शक्ति की शास्त्रों में पग-पग पर महिमा गाई गयी है । कहा गया है—

**ब्ल यद्वाग्वदन्त्य विचेतनानि,**
**राष्ट्री देवानां निषसाद् मन्द्रा ।**
**चतस्त्रव लर्ज्जं दुदुरे पयांसि,**
**क्व त्विदस्याः परमं जगाम ॥**

*—सरस्वती रहस्योपनिषद*

अर्थात्—वाक् विश्वव्यापनी है, समस्त प्राणियों में व्याप्त है । अल्प चेतनों में भी वह विद्यमान है । वह देवताओं का भी संचालन करती है । न जाने हम कब उसे जान सकेंगे ।

**स वै वाचमेव प्रथमामत्यवहत् सा यदा मृत्यु-मत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत् सोऽयमग्निः परेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते ।**

*—वृ. उ. १ /३ /१२*

अर्थात्—'वाक्' देवता को प्राण ने मृत्यु से पार किया । यह वाक् अग्नि बनकर अमर हो गई और वह असीम शक्तियों से ओत-प्रोत होकर ज्योतिर्मय हो गई ।

**मननात्सर्वं भवानां गरुणात्संसार सागरात् ।**
**मन्त्र रूपा हि तटछक्तिर्म तनत्राण रूपिणी ॥**

*—प्रपंच सारतंत्र*

अर्थात्—मन, मनन और भावनायें समस्त जगत का त्राण करने वाली शक्ति का नाम मन्त्र है । वह मूल में एक होते हुए भी प्रयोग में अनेक हो जाती है ।

मंत्र साधना में जप का प्रमुख स्थान है । उसकी साधना ही जप द्वारा की जाती है । मंत्र जप का अर्थ बताते हुए कहा गया है ।

**जकारो जन्म विच्छेदः पकारः पाप नाशकः ।**
**तस्याज्जप इति प्रोक्तो जन्म पाप विनाशकः ॥**

*—अग्नि पुराण*

अर्थात्—'ज' अर्थात् जन्म मरण से छुटकारा, 'प' अर्थात् पापों का नाश । इन दोनों प्रयोजनों को पूरा करने वाली निष्पाप और जीवन मुक्त बनाने वाली साधना को 'जप' कहते हैं ।

जप के लिये प्रयुक्त की जाने वाली वाणी का स्तर ऊँचा होना चाहिए । जिह्वा से होने वाले शब्दोच्चारण को बैखरी वाणी कहते हैं । यह केवल जानकारी के आदान-प्रदान से प्रयुक्त होती है । भावों के प्रत्यावर्त्तन में मध्यमा वाणी काम आती है । इसे भाव सम्पन्न व्यक्ति ही बोलते हैं । जीभ और कान के माध्यम से नहीं वरन् हृदय से हृदय तक यह प्रवाह चलता है । भावनाशील व्यक्ति ही दूसरों की भावनायें उभार सकता है । यह बैखरी और मध्यमा वाणी मनुष्यों के बीच विचारों एवं भावों के बीच आदान-प्रदान का काम करती है ।

इससे आगे दो और वाणियाँ हैं जिन्हें परा और पश्यन्ति कहते हैं । परा पिण्ड में और पश्यन्ति ब्रह्माण्ड क्षेत्र में काम करती है । आत्म-निर्माण का—अपने भीतर दबी हुई शक्तियों को उभारने का काम 'परा' करती है । ईश्वर से—देव शक्तियों से—समस्त - विश्व से—लोक-लोकान्तरों से सम्बन्ध, सम्पर्क बनाने में पश्यन्ति का प्रयोग किया जाता है । अस्तु इन परा और पश्यन्ति वाणियों को दिव्य वाणी एवं देव वाणी कहा गया है ।

**ऐं चत्वारि वाक् परिमिता पदानि,**
**तानि विदुर्ब्राह्मणा यं मनीषिणः ।**
**गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति,**
**तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥**

अर्थात्—वाणी के चार चरण होते हैं, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी । इनमें से पृथक तीन अन्तःकरण रूपी गुफा में छिपी रहती हैं चौथी बैखरी ही बोलने में प्रयुक्त होती है ।

**चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदु र्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।**
**गुहा त्रीणि निहिता नेगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।**

*—ऋक १/२२/१६४/४०*

अर्थात्—वह वाणी चरण वाली होती है । उसे विद्वान ब्रह्मवेत्ता ही जानते हैं । इन वाणियों में से तीन तो गुफा में ही छिपी बैठी हैं । वे अपने स्थानों से नीचे नहीं हिलतीं । चौथी बैखरी को ही मनुष्य बोलते हैं ।

**परायाम कुरी भूय पश्यन्त्यां द्विदलीकृता ॥**
**मध्यमाया मुकुलिता वैखर्या विकसीकृता ।**
**पूर्व यथोदिता या वाग्विलोमेनास्तगा भवेत् ॥**

*—योग कुण्डल्युपनिषद् ३ /१८-१९*

अर्थात्—वाणी का उद्भव परा से होता है । पश्यन्ती में विकसित होकर उसकी दो शाखायें फूटती हैं। मध्यमा में वह पुष्पों से लद जाती है और बैखरी में वह फलित होती है । जिस क्रम से उसका विकास होता है उसके उल्टे क्रम से वह लय भी हो जाती है ।

विधानात्मक कर्मकाण्ड की उपयोगिता भी है और महत्ता भी । पर उसे समग्र सर्वांगपूर्ण नहीं मानना चाहिए उसके साथ जब भावनाओं का—वृत्तियों का—समन्वय होता है तभी उस कर्मकाण्ड से शक्ति उत्पन्न होती है ।

वाक् शक्ति को अग्नि भी कहा गया है । यह अग्नि सर्वत्र तेजस्विता, ऊर्जा, प्रखरता एवं आभा उत्पन्न करती है इसलिए वाक् अग्नि भी है । ऋग्वेद के दशक मण्डल के ९८ वें सूत्र में ९ वें मन्त्र में कहा गया है कि ऋषि वाणी द्वारा ही अग्नि को प्राप्त करते रहे हैं । यदि देव, मंत्र, वाक्, जप और स्वर के तात्विक स्वरूप को समझा जा सके तो गायत्री की अद्भुत चमत्कारी क्षमता मूर्तिमान होकर सामने खड़ी हो सकती है ।

## गायत्री शक्ति का वैज्ञानिक आधार

आधुनिक विज्ञान वाह्य उपकरणों के सहारे मनुष्य जीवन की जटिलताओं को कम करने या सरल बनाने के लिए प्रयत्नशील है । वाह्य उपकरण अर्थात् पदार्थों के माध्यम से जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के कारण ही इसे पदार्थ विज्ञान कहा जाता है । प्राचीनकाल में हमारे मनीषियों ने पदार्थ विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने के साथ-साथ चेतना को भी शोध और अन्वेषण का विषय बनाया था । इस क्षेत्र में चमत्कृत कर देने वाली प्रगति की थी ।

चेतना विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के जो विधि-विधान खोजे गये उनमें मन्त्र विद्या प्रमुख मानी गयी । यों सामान्य रूप से मन्त्रों का स्वरूप कुछ विशिष्ट शब्दों का समूह ही दिखाई देता है, परन्तु वास्तव में मन्त्र केवल शब्दों का समूह ही नहीं है । उनका गठन विज्ञान सम्मत प्रभाव को ध्यान में रखते हुए किया गया है । कुछ समय पूर्व तक मन्त्रों के प्रभाव और विशेषताओं को अन्धविश्वास के सिवा कुछ नहीं कहा जाता था पर अब विज्ञान भी मन्त्रों की शक्ति को प्रमाणित करने लगा है ।

मन्त्र विद्या को वैज्ञानिक जानते हैं कि जीभ से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कण्ठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दन्त, जिह्वामूल आदि मुख के विभिन्न अङ्गों द्वारा होता है । इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं । इस फैलाव क्षेत्र में कई ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन पर उन उच्चारण का दबाव पड़ता है । जिन लोगों की कोई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ रोगी या नष्ट हो जाती हैं, उनके मुख से कुछ खास शब्द अशुद्ध या रुक-रुककर निकलते हैं इसी को हकलाना या तुतलाना कहते हैं । शरीर में अनेक छोटी-बड़ी, दृश्य-अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि उन कोशों में कोई विशेष शक्ति-भण्डार छिपा रहता है । सुषुम्ना से सम्बद्ध षट्चक्र प्रसिद्ध है, ऐसी अगणित ग्रन्थियाँ शरीर में हैं । विविध शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन ग्रन्थियों का शक्ति-भण्डार जाग्रत होता है । मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है । गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं । इनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रन्थियों से है जो जाग्रत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं । गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झंकार देता है और उससे एक ऐसी स्वर लहर उत्पन्न होती है, जिसका प्रभाव अदृश्य जगत

के महत्वपूर्ण तत्वों पर पड़ता है । यह प्रभाव ही गायत्री-साधना के फलों का प्रभाव हेतु है ।

दीपक-राग गाने से बुझे दीपक जल उठते हैं, मेघ-मल्हार गाने से वर्षा होने लगती है, वेणु-नाक सुनकर सर्प लहराने लगते हैं, मृग सुधि-बुद्धि भूल आते हैं, गायें अधिक दूध देने लगती हैं, कोयल की बोली सुनकर काम-भाव जाग्रत हो जाते हैं । अमेरिका के डाक्टर हचिंसन ने विविध संगीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की । भारतवर्ष में तान्त्रिक लोग थाली को घड़े पर रखकर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प, बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए, कण्ठमाला, विषबेल, भूतोन्माद आदि रोगी बहुत करके अच्छे हो जाते हैं । कारण यह है कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का परिभ्रमण करते हुए जब अपने उद्गम केन्द्र पर कुछ ही क्षणों में लौट आते हैं तो उसमें अपने प्रकार की एक विशेष विद्युत-शक्ति भरी होती है और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उस शक्ति का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है । मन्त्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है । गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आविर्भाव होता है । मन्त्रोच्चारण में मुख के अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों में नाड़ी तन्तु कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं । उनमें स्फुरणा होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक संगीत प्रवाह ईथर तत्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में होने वाली विश्व परिक्रमा से वापस आते-आते एक स्वजातीय तत्वों की सेना वापस ले आता है, जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी सहायक होती है । शब्द संगीत के शक्तिमान कम्पनों का पंचभौतिक प्रवाह और आत्म-शक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की याचना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया सम्बन्ध, यह दोनों ही कारण साधक के लिए दैवी वरदान सिद्ध होते हैं ।

शब्द केवल जानकारी ही नहीं और भी बहुत कुछ देते हैं । अब ऐसे प्रयोग भी किये जाने लगे हैं जिनसे खाद और पानी के अलावा मधुर संगीत प्रवाह भी पौधों के विकास हेतु प्रयोग में लाये जा सकें । यूगोस्लाविया में फसल को सुविकसित करने के लिए खेतों पर अमुक स्तर की वाद्य लहरियाँ ध्वनि विस्तारक यन्त्रों में प्रवाहित की गईं और उनका उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त हुआ ।

शब्द शक्ति से सम्भावित लाभ उठाने के लिए इस तरह के अनेकानेक प्रयोग चल रहे हैं । मन्त्र विद्या का एक आधार यह भी है कि इस विद्या के ज्ञाताओं के अनुसार मन्त्र में दो तत्वों का समावेश है—(१) शब्द शक्ति का सूक्ष्म चेतना-विज्ञान के आधार पर उपयोग, (२) व्यक्ति की आन्तरिक पवित्रता एवं भावोल्लास से उत्पन्न दिव्य क्षमताओं का समन्वय । इन दोनों के मिलन से एक ऐसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है, जो कितने ही बड़े भौतिक साधनों से उपलब्ध नहीं हो सकती ।

मन्त्रों में अक्षरों के क्रम का तथा उनके उच्चारण की विशेष विधि-व्यवस्था का ही अधिक महत्व है । कण्ठ, तालु, दाँत, होठ, मूर्धा आदि जिन स्थानों से शब्दोच्चारण होता है उनका सीधा सम्बन्ध मानव शरीर के सूक्ष्म संस्थानों से है । षट्चक्र, उपात्मक एवं दिव्य वादियों, ग्रन्थियों का सूक्ष्म शरीर संस्थान अपने आप में अद्भुत है। इन दिव्य अंगों के साथ हमारे सुख यन्त्र के तार जड़े हुए हैं । जिस प्रकार टाइप राइटर की चाबियाँ दबाते चलने से ऊपर अक्षर टाइप होते चलते हैं, ठीक इसी प्रकार मुख से उच्चारण किये हुए विशेष वैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ विनिर्मित मन्त्र गुम्फन का सीधा प्रभाव उपर्युक्त संस्थानों पर पड़ता है और वहाँ तत्काल एक अतिरिक्त शक्ति-तरंगों का प्रवाह चल पड़ता है । यह प्रवाह मन्त्र विज्ञानी को स्वयं लाभान्वित करता है । उसकी प्रसुप्त क्षमताओं को जगाता है । भीतर गूँजते हुए वे मन्त्र कम्पन यही काम करते हैं और जब वे बाहर निकलते हैं तो वातावरण को प्रभावित करते हैं । सूक्ष्म जगत में अभीष्ट परिस्थितियों की सम्भावनाओं का सृजन करते हैं और यदि किसी व्यक्ति विशेष को प्रभावित करना है तो उस पर भी असर डालते हैं । मन्त्र विद्या इन तीनों प्रयोजनों को पूरा करती है ।

साधारणतया ध्वनि चारों दिशाओं में फैलती है पर मन्त्रों में शब्द इस प्रकार गुम्फित होते हैं कि उसकी ध्वनि तरंगें विशेष प्रकार की हो जाती हैं । गायत्री मन्त्र की ध्वनि तरंगें तार के छल्ले जैसी ऊपर उठती हैं और यह सूक्ष्म अन्तराल के परमाणुओं के माध्यम से सूर्य तक पहुँचती हैं और जब यही ध्वनि सूर्य के अन्तराल में प्रतिध्वनित होकर लौटती है तो अपने साथ प्रकाश

अणुओं की (गर्मी, प्रकाश व विद्युत सहित) फौज जप करने वाले के शरीर में उतरती चली जाती है । साधक उन अणुओं से शरीर ही नहीं, मन और आत्मा की शक्तियों का विकास करता चला जाता है और कई बार वह लाभ प्राप्त करता है जो सांसारिक प्रयत्नों द्वारा कभी भी सम्भव न हो सकें ।

शब्द की शक्ति पर जितना गहरा चिन्तन किया जाय उतनी ही उसकी गरिमा और विलक्षणता स्पष्ट होती चली जाती है । बादलों की गरज से ऊँची इमारतें फट जाती हैं । आज की यांत्रिक सभ्यता जितना शोर उत्पन्न कर रही है उसके दुष्परिणामों से मानव-जाति को पूरी न हो सकने वाली क्षति उठानी पड़ेगी । इस तथ्य से समस्त संसार चिन्तित है । अतिस्वन और जेट विमान आकाश में जितनी आवाज करते हैं उससे उत्पन्न होने वाली हानिकारक प्रतिक्रिया को सर्वत्र समझा जा रहा है और इन विशालकाय द्रुतगामी वायुयानों को कोलाहल रहित बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

शब्द की सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर सूक्ष्म और विभेदन क्षमता वाली है । इस बात की निश्चित जानकारी होने के बाद ही मन्त्र विद्या का विकास भारतीय तत्वदर्शियों ने किया । यों हम जो कुछ बोलते हैं उसका प्रभाव व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप से सारे ब्रह्माण्ड पर पड़ता है ।

तालाब के जल में फेंके गये कम्पन की लहरें भी दूर तक जाती हैं, उसी प्रकार हमारे मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द आकाश के सूक्ष्म परमाणुओं में कम्पन उत्पन्न करता है, उस कम्पन से लोगों में अदृश्य प्रेरणाएँ जाग्रत होती हैं, हमारे मस्तिष्क में विचार न जाने कहाँ से आते हैं, हम समझ नहीं पाते, पर मन्त्रविद् जानते हैं कि मस्तिष्क में विचारों की उपज कोई आकस्मिक घटना नहीं वरन् शक्ति के परतों में आदिकाल से एकत्रित सूक्ष्म कम्पन हैं, जो मस्तिष्क के ज्ञानकोषों से टकराकर विचार के रूप में प्रकट हो उठते हैं, तथापि अपने मस्तिष्क में एक तरह के विचारों की लगातार धारा को पकड़ने या प्रवाहित करने की क्षमता है ।

एक ही धारा में मनोगति के द्वारा एक-सी विचारधारा निरन्तर प्रवाहित करके सारे ब्रह्माण्ड के विचार-जगत में क्रान्ति उत्पन्न की जा सकती है, उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि उन विचारों को वाणी या सम्भाषण के द्वारा ही व्यक्त किया जाये ।

'उच्चारण' और 'स्वर' में यही अन्तर है कि उच्चारण कंठ, होठ, जीभ, तालु, दाँतों की संचालन प्रक्रिया से निकलता है और वह विचारों का आदान-प्रदान कर सकने भर में समर्थ होता है । पर स्वर अन्तःकरण से निकलता है । उसमें व्यक्तित्व, दृष्टिकोण और भाव समुच्चय भी ओत-प्रोत रहता है । इसलिये मन्त्र को स्वर कहा गया है। वेद पाठ में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित की उच्चारण प्रक्रिया का शुद्ध होना ही इसी ओर संकेत करता है । साधना क्षेत्र में स्वर का अर्थ वाक्-शक्ति के माध्यम से किये जाने वाले सशक्त जप अनुष्ठान से ही है ।

मन्त्र की जो कुछ महिमा है उसका आधार वाणी को 'वाक्' के रूप में परिणत कर देना है । इसके लिए मन, वचन, और कर्म में ऐसी उत्कृष्टता का समन्वय करना पड़ता है कि वाणी को दग्ध करने वाला कोई कारण शेष न रह जाय । इतना करने के उपरान्त उसके द्वारा जपा हुआ मन्त्र सहज ही सिद्ध होता है और उच्चारण किया हुआ शब्द असंदिग्ध रूप से सफल होता है । यदि वाणी दूषित, कलुषित, दग्ध स्थिति में पड़ी रहे तो उसके द्वारा जप किये हुए मन्त्र भी जल जायेंगे और बहुत समय तक जप, स्तवन, पाठ आदि करते रहने पर भी अभीष्ट फल न मिलेगा ।

परिष्कृत जिह्वा में वह शक्ति रहती है जिसके बल पर किसी भी भाषा का—कोई भी मन्त्र प्रचण्ड और प्रभावशाली हो उठता है । उसके द्वारा उच्चारित शब्द मनुष्यों के अन्तस्तल को, असीम अन्तरिक्ष को प्रभावित किये बिना नहीं रहता । ऐसी परिष्कृत वाणी-वाक् को आध्यात्म का प्राण कह सकते हैं । उसे साधक की कामधेनु एवं तपस्वी का ब्रह्मास्त्र कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है । इसी की परिमार्जित जिह्वा को "सरस्वती" कहते हैं । साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को उस मन्त्रशक्ति की दीक्षा की महत्ता समझनी चाहिए । मन्त्र की माता उसे ही मानना चाहिये, सिद्धियों का उद्गम स्थल, भगवान को द्रवित एवं प्रभावित कर सकने का माध्यम उसे ही मानना चाहिए ।

## गायत्री मन्त्र की सफलता के आधार

शास्त्र पुराणों में गायत्री मन्त्र की प्रशंसा महिमा का जितना गुणगान किया गया है, उतना शायद ही किसी मन्त्र का महिमा गान किया गया हो । इसकी महिमा के बारे में

यही पर्याप्त है कि गायत्री को गुरुमन्त्र कहा गया है । प्राचीन काल में गायत्री मन्त्र गुरुमन्त्र के रूप में प्रसिद्ध था। आज भी गायत्री मन्त्र प्रसिद्ध है । अधिकांश लोग उसे जानते हैं । अनेक साधक इसकी किसी न किसी प्रकार उपासना करते, इसका जप करते देखे जाते हैं । इतने पर भी देखा जाता है कि उससे कोई विशेष लाभ नहीं होता । इस कारण यह शंका होने लगती है कि "कहीं गायत्री की प्रशंसा और महिमा में वर्णन करने वालों ने कोई अत्युक्ति तो नहीं की ?" कई लोग आरम्भ में उत्साह दिखाकर थोड़े ही दिनों में उसे छोड़ बैठते हैं । वे देखते हैं कि इतने ही दिनों तक हमने गायत्री उपासना की, पर लाभ तो कुछ नहीं हुआ । जरूर इसकी महिमा गान में अत्युक्ति से काम लिया है, इस कारण जो लाभ होने की आशा की जा रही थी, वह नहीं हो रहे हैं ।

यह ठीक है कि कई बार गायत्री उपासना का कोई लाभ मिलता दिखाई नहीं देता । परन्तु इसका कारण गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में अत्युक्तिपूर्ण महिमा गान नहीं है । इसकी विशेषता बताते समय जो भी बातें कही गई हैं वे अक्षरश: सच हैं । फिर अपेक्षित सफलता क्यों नहीं मिलती ? इसके दूसरे कारण हैं । पहला तो यही कि प्रत्येक कार्य एक नियत विधि व्यवस्था द्वारा पूरा होता है। चाहे जैसे, चाहे जिस काम को, चाहे जिस प्रकार करना आरम्भ कर दिया जाए तो अभीष्ट परिणाम नहीं मिल सकता । मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कार्य होते हैं, पर मशीनें काम तभी सम्पन्न करती हैं जब उन्हें सही तकनीक से चलाया जाए । यदि कोई अनाड़ी चलाने वाला मशीनों को यों ही चलाने लगे तो उससे लाभ होना तो दूर रहा उल्टे मशीन खराब हो जाएगी और चलाने वाले के लिए भी संकट उपस्थित कर सकती है । मोटर तेज दौड़ने वाला वाहन है, उसके द्वारा सैकड़ों मील की यात्रा तुर्त-फुर्त में सम्पन्न की जा सकती है परन्तु कोई अनाड़ी ड्राइवर की जगह जा बैठे और उसे चलाने की विधि न आती हो तो मोटर स्टार्ट ही नहीं होगी । किसी प्रकार मोटर चल भी पड़े तो भी दुर्घटना की ही सम्भावना रहती है । ऐसी दशा में मोटर को कोसना, उसकी शक्ति पर अविश्वास करना उचित नहीं कहा जा सकता । बिना विधि विधान और साधना का मर्म जाने यदि गायत्री उपासना की जाती है तथा वह निष्फल हो जाती है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

सर्वविदित है कि जो वस्तुएँ जितनी महत्वपूर्ण होती हैं, उनकी प्राप्ति उतनी ही कठिन भी होती है । सीप घोंघें आसानी से मिल जाते हैं, उन्हें चाहे कोई बीन सकता है पर जिन्हें मोती प्राप्त करने हों उन्हें समुद्र तल में गहराई तक उतरना पड़ता है और इस काम को किसी से सीखना पड़ता है । कोई अनजान, अनभिज्ञ व्यक्ति गोताखोरी को बच्चों का खेल समझ कर या यों ही समुद्र तल में उतरने के लिए डुबकी लगाने लगेगा तो उसे अपनी नासमझी के कारण मिलने वाली असफलता पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।

यद्यपि गायत्री मन्त्र में यह विशेषता है कि नियत विधि से साधना न करने पर भी साधक का कुछ अहित नहीं होता है। अन्य मन्त्रों की आराधना यदि नियत विधि से न की जाए तो उससे तो हानि की सम्भावना रहती है । गायत्री के साथ ऐसा कुछ नहीं है । ऐसा भी नहीं है कि उपासना में किया गया परिश्रम पूरी तरह निष्फल जाता हो । हाँ, इतना जरूर है कि वह लाभ नहीं होता जो नियत विधि से साधना करने पर हो सकता है । गायत्री की तान्त्रिक उपासना में तो अविधिपूर्वक उपासना करने से हानि होती है, किन्तु साधारण साधना में वैसा कोई खतरा नहीं है फिर भी परिश्रम का पूरा लाभ न मिल पाना भी तो एक खतरा ही है । इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति, साधना का मर्म रहस्य जानने वाले साधक उतावली, अहम्मन्यता, उपेक्षा के शिकार नहीं होते और साधना मार्ग पर पूरी सावधानी के साथ चलते हैं ।

गायत्री की साधना विधिपूर्वक क्यों करनी चाहिए ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि अविधिपूर्वक किया गया कोई भी काम अपेक्षित परिणाम उत्पन्न नहीं करता । कुछ औषधियाँ नियत विधिपूर्वक तैयार की गई हों और उन्हें नियत समय में, नियत अनुपात के साथ रोगी को सेवन कराई जायें तो आश्चर्यजनक लाभ होता है किन्तु यदि उन्हीं औषधियों को चाहे जिस ढंग से, चाहे जिस मात्रा में, चाहे जिस रोगी को सेवन करायी जायें तो लाभ होना तो दूर रहा, उल्टे हानि होने ही सम्भावना ज्यादा रहती है । औषधियाँ, जो विधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर अमृतोपम लाभ दिखाती हैं, अविधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर निरर्थक सिद्ध होती हैं । गायत्री साधना भी यदि अविधिपूर्वक की गई तो वह लाभ नहीं मिल सकता जो विधिपूर्वक साधना करने से मिल सकता है ।

गायत्री साधना के अप्रतिम लाभ हैं और वे लाभ अनायास ही नहीं मिलते । उन्हें प्राप्त करने के लिए साधना में श्रद्धा, नियमितता, विश्वास और तदनुकूल आचार-विचार रहना चाहिए, तभी अपेक्षित लाभ मिल पाता है, अन्यथा नहीं । इस सिद्धान्त के पीछे एक सुसंगत विज्ञान है । शास्त्रों में मन्त्र छन्द की दो विशेषताएँ बताई गई हैं, एक तो यह कि उसमें साधक की अन्तरात्मा के गहन मर्मस्थल से निकलने वाली दिव्य सम्वेदनाएँ घुली रहती हैं । दूसरे विशिष्ट शब्द गुंथन के आधार पर रचे हुए मन्त्र जब गुनगुनाए जाते हैं तो उनसे विशिष्ट ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं । इन ध्वनि तरंगों को अलौकिक ही कहा जा सकता है । इस दुहरे समन्वय के शब्द में अणु विस्फोट के स्तर जैसी प्रचण्ड शक्ति का उद्‌भव होता है । साधक का समूचा व्यक्तित्व इससे प्रभावित होता है और वह अपने व्यक्तित्व से समीपवर्ती तथा दूरवर्ती वातावरण को किसी न किसी रूप में प्रभावित करता चला जाता है ।

मन्त्रों की यही विशेषता है कि उनमें अक्षरों का गुंथन स्वर शास्त्र की विशिष्ट प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए किया जाता है । उसके उच्चारण से जो ध्वनि तरंगें निकलती हैं वे न केवल साधनकर्ता को, वरन् समस्त वातावरण को प्रभावित करती हैं ।

शरीर को यदि एक वाद्य यन्त्र कहा जाए तो गायत्री मन्त्र की आराधना को स्वर लहरी । सामान्य संगीत ही अपने आप में अद्‌भुत और विलक्षण परिणाम प्रस्तुत करता है । किसी को संगीत शास्त्र का ज्ञान हो अथवा न हो परन्तु वह संगीत से मन्त्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहता है । सर्प को कहाँ संगीत शास्त्र का ज्ञान होता है ? न वह स्वरों को जानता है न उस वादन के साथ गाये जा रहे गीत के भाव को ही समझता है, फिर भी वह स्वर लहरी मात्र सुनकर तरंगित हो उठता है । बहेलियों द्वारा बजाये जा रहे वादन पर मोहित होकर हिरन खड़े हो जाते हैं और सरसता पर मुग्ध होकर अपने तन मन की सुध-बुध गँवा बैठने के कारण पकड़े जाते हैं । छोटे बच्चे तथा अन्य प्राणी जिन्हें संगीत का क, ख, ग भी नहीं आता, वे भी उन मधुर ध्वनि तरंगों पर प्रसन्न्ता व्यक्त करते देखे जाते हैं। यह स्वर लहरी अपने आप में अतीव उल्लास भरी होती है और अपनी अदृश्य क्षमता से प्राणधारियों में अद्‌भुत हलचल उत्पन्न करती है । यह भौतिक वाद्ययन्त्रों और उनके द्वारा निस्सृत, कानों से सुनी जा सकने वाली संगीत ध्वनियों की बात हुई । मानव शरीर अपने ढंग का अद्‌भुत वाद्य यन्त्र है । इसमें षट्‌चक्र और सक्षम सहस्रार कमल सात स्वर दिव्य संगीत के आधार हैं । इस वीणा का मध्यभाग सिर और नीचे का हिस्सा नितम्ब क्षेत्र है । नासिका द्वारा पहुँचने वाली वायु इड़ा पिंगला के रूप में दो उंगलियों के सहारे इसमें जो दिव्य ध्वनियाँ प्रवाहित करती हैं, उनका संगीत यदि सुना जा सके तो प्रतीत होगा कि नाद ब्रह्म के श्रवण का ब्रह्मानन्द कितना दिव्य एवं कितना आह्लादकारी है ?

गायत्री मन्त्र मनुष्य शरीर के सूक्ष्म संगीत आधार को, तारवाद्य को स्पन्दित कर जो स्वर लहरी उत्पन्न करता है, उसे एक शब्द में अलौकिक ही कहा जा सकता है । मेरुदण्ड में लगे कोटि-कोटि तार जब झंकृत होते हैं और चक्र संस्थानों में जब अनाहत नादों का गुंजन होता है तो उसे नादयोग के साधन कर्त्ता सुनते-सुनते मन्त्र मुग्ध बन कर रह जाते हैं । वाद्ययन्त्रों में स्वर सप्तक एक व्यवस्थित क्रम श्रृंखला में लगाए जाते हैं और अमुक ध्वनि बजाने के लिए उंगलियों का संचालन एक विशेष क्रम से किया जाता है । ठीक वही प्रक्रिया शरीर में लगे सूक्ष्म शक्ति स्रोतों की मूच्छर्ना जगाकर प्रखरता उत्पन्न करने के लिए कार्यान्वित की जाती है । गायत्री मन्त्र में अक्षर इसी क्रम से जुड़े हैं कि उनका उच्चारण सूक्ष्म शक्तियों के जागरण में आवश्यक गतिशीलता उत्पन्न कर सके । उसका उच्चारण क्रम भी अपने आप में ऐसा अद्‌भुत है कि उससे उत्पन्न गतिशीलता एक नहीं अनेक दिव्य उत्पादनों के रूप में परिलक्षित हो जाती है ।

कहा भी गया है—

**जानुदघ्नं चिन्वति प्रथमं चिन्वानो गायत्रियवेमं लोकमभ्यारोहति नाभिरघ्नं चिन्वीत ।।**

अर्थात्—गायत्री का उच्चारण मुख से लेकर नाभिपर्यन्त अपना प्रभाव विस्तीर्ण करता है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में समरूप लोकों में संव्याप्त चेतना और उसका निर्धारण करने वाली नियामक शक्ति को गायत्री कहा गया है—

**तमेत देव सामन गायन्न त्रायत ।**

**यद् गायन्न त्रायत् तद् गायत्रस्य गायत्र त्वम् ।।**

अर्थात्—समस्त लोकों में संव्याप्त सामगान को ऋषियों ने गायत्री कहा है ।

शब्द को ब्रह्म और परब्रह्म तक कहा गया है । श्रीमद् भागवत के छठे स्कन्ध में सोलहवें अध्याय में आता है—

**शब्द ब्रह्म परब्रह्म यागेभ्यां शाश्वती तनु ।**

अर्थात्—शब्द ब्रह्म और परब्रह्म यह दोनों ही भगवान के नित्य और चिन्मय शरीर हैं ।

शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है—

**'शब्दो वै ब्रह्म'**

अर्थात्—शब्द निश्चित रूप से ब्रह्म है ।

गायत्री मन्त्र की शब्द शक्ति, लय एवं ताल शक्ति से उत्पन्न ध्वनि प्रवाह के प्रभाव परिणाम को देखते हुए उसे वाक् देवी के नाम से पुकारा गया है—

**वाग्वै गायत्री, गायत्री वा इदं सर्वभूतम् ।**

अर्थात्—वाणी गायत्री है । सम्पूर्ण विश्व इस गायत्री से ओत-प्रोत है ।

शब्द शक्ति की महिमा तथा गायत्री से निस्सृत ध्वनि प्रवाह की चर्चा शास्त्रों में इस प्रकार आती है—

**गायत्री वा इदं सर्वभूतं यदिदं किंच वाग्वे ।**

**गायत्री वाग्वा इदं सर्व भूतं गायत्री च त्रायत्रेय ।**

—छान्दोग्य ३

अर्थात्—यह जो कुछ है, निश्चय ही गायत्री है । गायत्री ही समस्त जगत की सार और वाणी है । वाणी ही सारे संसार को जाती और बचाती है ।

गायत्री में सन्निहित शब्द शक्ति के साथ जो ब्रह्म वर्चस् जुड़ा हुआ है, उसका लाभ किस प्रकार उठाया जा सकता है ? इसके लिये शास्त्रों में पर्याप्त स्पष्ट निर्देश दिए हैं और साधक को अपना आचार-विचार, चरित्र, आचरण, रहन-सहन तथा व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाने के लिए कहा गया है ।

**तीक्ष्णेषवो ब्राह्मण हेतिभन्तो,**
**यामस्यन्ति शख्यां न सा भ्रग ।**
**अनुहाय तपसा मन्युना चोत,**
**दूराटेक भित्यनयेनम् ॥**

अर्थात्—जीभ जिसकी प्रत्यंचा है, उच्चारण किया हुआ शब्द जिसका वाण है, संयम जिसका वाणाग्र है, तप से जिसे तीक्ष्ण किया गया है, आत्मबल जिसका धनुष है, ऐसा ब्राह्मण अपने मन्त्रबल से समस्त देवद्रोही तत्वों को वेध डालता है ।

आशय यह है कि गायत्री साधना से लाभ उठाने के लिए केवल मन्त्रोच्चार ही पर्याप्त नहीं है । अपितु साधक को संयम और तप साधना द्वारा अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत भी बनाना चाहिए । तभी गायत्री मन्त्र के वरदानों की पात्रता उत्पन्न होती है । पात्रता न होने पर तो उपलब्धियाँ कहीं ठहर ही नहीं पातीं । इसलिए गायत्री उपासना का परिपूर्ण लाभ उठाने के लिए उपासना के साथ-साथ साधना का भी सुनिश्चित विधान किया गया है ।

किसी भी क्षेत्र में सफलता की सिद्धि किसी एक तत्व पर आधारित नहीं होती । सफलता के लिए परिश्रम आवश्यक है, परिश्रम के बिना सफलता नहीं मिलती यह ठीक है, किन्तु परिश्रम ही पर्याप्त नहीं है । परिश्रम के साथ-साथ सूझ-बूझ भी चाहिए । सूझ-बूझ के साथ परिश्रम किया जाए, सफलता के मार्ग में आने वाले अवरोधों को हटाया जाय तो सफलता सम्भव है परन्तु इतना भी पर्याप्त नहीं है । परिश्रम और सूझ-बूझ के साथ-साथ सफलता प्राप्ति के लिए आवश्यक धैर्य भी चाहिए । किए गए परिश्रम और बरती गई तत्परता का परिणाम तत्काल नहीं मिलता । उसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है । बीज के अंकुरित होने में और बढ़कर पेड़ बनने, पल्लवित पुष्पित होने में समय लगता है । समय से पहले न बीज अंकुरित होता है न उसमें फल-फूल लगते हैं । कहा भी गया है—"समय पाइ तरुवर फलै केतिक सींचौं नीर ।"

स्पष्ट है कि सफलता किसी एक तत्व पर निर्भर नहीं करती । उसके लिए व्यापक आधार चाहिए । फिर वह किसी भी क्षेत्र में हो । भौतिक लक्ष्य हो या आध्यात्मिक, प्रत्येक क्षेत्र में अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक व्यापक आधार चाहिए । आत्मिक उत्कर्ष के लिए की जाने वाली साधनाओं में मन्त्र सिद्धि भी इसी प्रकार कुछ आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही मिलती है । मन्त्रों में शक्ति है, उनकी शक्ति से कितने ही प्रकार के चमत्कार एवं वरदान उपलब्ध हो सकते हैं पर उन उपलब्धियों के साथ यह तथ्य जुड़ा हुआ है कि उनके प्रयोग से पूर्व उन्हें सिद्ध करना पड़ता है । उनकी सिद्धि के लिए साधना आवश्यक है और साधना कोई एकांगी प्रक्रिया नहीं है । उसके चार चरण हैं । कहा जा सकता है कि मन्त्रों की सफलता के चार आधार हैं । एक तो स्वयं मन्त्र जिसमें शब्द शक्ति का प्रयोग होता है, दूसरे मानसिक एकाग्रता, तीसरे उत्कृष्ट चरित्र और चौथे अभीष्ट लक्ष्य के प्रति अटूट श्रद्धा ।

मन्त्र सिद्धि के ये ही चार प्रमुख आधार हैं इन आधारों में प्रथम है शब्द शक्ति । मन्त्रों में अक्षरों का एक विशिष्ट क्रम से गुंथन किया गया होता है । यह गुंथन तत्वदर्शी अध्यात्म वेत्ताओं ने अपने दीर्घकाल के

शोध और अनुभवों के आधार पर किया है । अर्थ की दृष्टि से देखा जाए तो मन्त्रों के अर्थ बहुत सरल और सामान्य हैं । उनमें जीवनोपयोगी शिक्षाएँ और दिशाएँ पाई जाती हैं । उन्हें समझना चाहिए परन्तु मन्त्र की शक्ति इन शिक्षाओं में नहीं उनकी शब्द रचना में, अक्षरों के क्रम में जुड़ी हुई है । वाद्य यन्त्रों को निश्चित क्रम से बजाने पर संगीत उत्पन्न होता है और हृदय को आह्लादित, प्रफुल्लित करता है । ठीक इसी प्रकार मन्त्र के उच्चारण से उसके शब्द या अक्षर क्रम के बार-बार लगातार निश्चित क्रम से जो विशेष प्रकार का ध्वनि प्रवाह संचरित होता है वही मन्त्र की भौतिक क्षमता है । मुख से उच्चरित मन्त्राक्षर सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं ।

यह प्रभाव विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से उत्पन्न होता है । शब्द शक्ति का महत्व विज्ञानानुमोदित है । स्थूल और श्रव्य शब्द भी बड़ा काम करते हैं । फिर सूक्ष्म कर्णातीत अश्रव्य ध्वनियों का महत्व तो और भी अधिक है । मन्त्र जप में उच्चारण तो धीमा ही होता है पर उससे अतीन्द्रिय शब्द शक्ति को ही प्रचण्ड परिमाण में उत्पन्न किया जाता है । पिछले दिनों शब्द शक्ति, ध्वनि विज्ञान के सम्बन्ध में कई खोजें हुई हैं और उन अनुसंधानों से अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आए हैं ।

अब ध्वनि तरंगों में सन्निहित असाधारण शक्ति को न केवल समझा जा रहा है, बल्कि विभिन्न प्रयोजनों के लिए उसके उपयोग भी किये जाने लगे हैं । वस्तुओं की मोटाई नापने, धातुओं के गुण-दोष परखने में ध्वनि तरंगों का विशेष रूप से उपयोग किया जाने लगा है । कार्बन का उत्पादन, वस्त्रों की धुलाई, रासायनिक सम्मिश्रण, कागज की लुगदी, गीलेपन को सुखाना, धातुओं की ढलाई, प्लास्टिक धागों का निर्माण आदि अनेकों उद्योगों में ध्वनि तरंगों के उपयोग का व्यावसायिक क्षेत्र में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ है । पिछले दिनों वी एफ. गुडरिच कम्पनी ने 'हामोजिनाइजिंग' नामक दुग्ध संयंत्र बनाया है, जिसमें ध्वनि तरंगों का प्रयोग किया जाता है । जनरल मोटर्स ने ध्वनि तरंगों से चलने वाला ध्वनि सोनोगेज यन्त्र बनाया है । अयोबा स्टेट कॉलेज, आस्ट्रा सेमिक कारपोरेशन आदि संस्थानों ने भी ध्वनि तरंगों के माध्यम से काम करने वाले कई उपयोगी संयन्त्र बनाने में सफलता प्राप्त की है ।

ध्वनि तरंगों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि मनुष्य केवल उन्हीं तरंगों को अनुभव कर सकता है जिनकी संख्या २० से लेकर ३० हजार प्रति सेकण्ड तक होती है । इससे कम या अधिक संख्या वाले ध्वनि प्रवाह भी होते हैं पर वे मनुष्य की कर्णेन्द्रिय द्वारा नहीं सुने जा सकते । इस तथ्य को समझने पर मानसिक जप का महत्व समझा जा सकता है । श्रवण शक्ति का बहुत कुछ सम्बन्ध मन-एकाग्रता से है । यदि किसी बात में दिलचस्पी न हो तो पास में ही बहुत कुछ बकझक होते रहने पर भी अपने पल्ले कुछ नहीं पड़ता किन्तु यदि दिलचस्पी की बात हो तो फुसफुसाहट से भी मतलब की बातें आसानी से सुनी समझी जा सकती हैं ।

मानसिक जप में उच्चारण की आवश्यकता नहीं है । मानसिक शक्ति का प्रयोग करके, ध्यान भूमिका में सूक्ष्म जिह्वा द्वारा मन ही मन जो जप किया जाता है, उसमें भी तरंगें भली प्रकार उठती रहती हैं । रेडियो यन्त्र केवल कुछ सीमित और सम्बन्धित फ्रीक्वेन्सी पर चल रही ध्वनि तरंगें ही पकड़ पाते हैं । समीपवर्ती फ्रीक्वेन्सी के साथ यदि उनका कोई सम्बन्ध न जुड़े तो वे यन्त्र उत्पन्न ध्वनि तरंगों को पकड़ नहीं पाते । कान की स्थिति उनकी अपेक्षा लाख गुनी अच्छी होती है । वे अनेक फ्रीक्वेन्सियों पर चल रहे शब्द प्रवाहों को एक-साथ पकड़ और सुन सकते हैं । नाद योग की साधना भी एक प्रकार का मन्त्रानुष्ठान ही है । इसके द्वारा आकाशव्यापी अन्तर्ग्रही तथा अन्त:क्षेत्रीय दिव्य शक्तियों को सुना जाना सम्भव है और उस आधार पर वैसा बहुत कुछ जाना जा सकता है जो स्थूल मस्तिष्कीय चेतना अथवा उपलब्ध संकेतों से जान सकना सम्भव नहीं है । विश्वव्यापी समुद्र में मन्त्र साधक अपनी प्रचण्ड हलचलें समाविष्ट करता है और ऐसे शक्तिशाली ज्वारभाटे उत्पन्न करता है जिनके आधार पर अभीष्ट परिस्थितियाँ विनिर्मित हो सकें । मन्त्र विद्या की चमत्कारी क्षमता का यही रहस्य है ।

उल्लेखनीय है कि मन्त्र सिद्धि की सफलता का एक-मात्र आहार यह ध्वनि विज्ञान ही नहीं है । इसके लिए चारित्रिक श्रेष्ठता और मन्त्र के प्रति साधक की अटूट श्रद्धा भी आवश्यक है । मन्त्र साधना की सफलता के लिए साधक को यम नियमों का अनुशासन पालन करते हुए चारित्रिक श्रेष्ठता का अभिवर्धन करना होता है । क्रूरकर्मी, दुष्ट, दुराचारी व्यक्ति किसी भी मन्त्र को सिद्ध नहीं कर सकते । तांत्रिक साधनाओं में भी ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों का निग्रह आवश्यक है । फिर देवशक्तियों का अवतरण जिस भूमि पर होना है उसे विचारणा, भावना

और क्रिया की दृष्टि से सतोगुणी पवित्रता से युक्त होना चाहिए ।

मन की चंचलता का प्रमुख कारण इन्द्रियों का चटोरापन है । तृष्णाओं और वासनाओं में, अहंकार की तृप्ति के लिए, महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भटकने वाले मन की मृगतृष्णा एक कस्तूरी की गन्ध से आकर्षित, प्रभावित होकर यहाँ-वहाँ भटकने वाले हरिण की सी ही होती है । मन की यहाँ एकाग्रता जो मन्त्र सिद्धि के लिए आवश्यक है वह कहाँ सध पाती है जबकि तथ्य यह है कि मन की एकाग्रता ही अध्यात्म क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है । उसके सम्पादन के लिए अमुक साधनों का विधान तो है पर उनकी सफलता मन को बनाने वाली दुष्प्रवृत्तियों का अवरोध करने के साथ जुड़ी हुई है । जिसने मन को संयम समाहित करने की आवश्यकता पूर्ण कर सकने योग्य अन्त:स्थिति का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर ली वही सच्ची और गहरी एकाग्रता का लाभ उठा सकेगा । ध्यान में उसी की गति हो सकेगी और वही ठीक तरह एकाग्र हो सकेगा । उस एकाग्रता और तन्मयता के आधार पर उत्पन्न होने वाली दिव्य क्षमताओं का लाभ परिष्कृत अन्त:स्थिति वाले साधक के लिए ही सम्भव है ।

मन्त्र साधना में चौथा और महत्वपूर्ण सफलता का आधार है श्रद्धा । अभीष्ट लक्ष्य में श्रद्धा जितनी गहरी होगी उतना ही मन्त्र बल प्रचण्ड होता चला जाएगा । श्रद्धा अपने आप में एक प्रचण्ड चेतना शक्ति है । विश्वासों के आधार पर ही आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं, और मन: संस्थान का स्वरूप विनिर्मित होता है । बहुत कुछ काम तो मस्तिष्क को ही करना पड़ता है । शरीर का संचालन भी मस्तिष्क ही करता है । इस मस्तिष्क को दिशा देने का काम अन्त:करण के मर्मस्थल में जमे हुए श्रद्धा विश्वास को है । वस्तुत: व्यक्तित्व का असली प्रेरणा केन्द्र इसी निष्ठा की धुरी पर घूमता है । गीताकार ने इसी तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा है—"यो यच्छ्रब्द स एव स:" अर्थात् जो जैसी श्रद्धा रख रहा है वस्तुत: वह वही है । अर्थात् श्रद्धा ही व्यक्तित्व है । इस श्रद्धा को इष्ट-लक्ष्य में, साधना की यथार्थता और उपलब्धि में जितनी अधिक गहराई के साथ, तन्मयता के साथ नियोजित किया गया होगा, मन्त्र उतना ही सामर्थ्यवान बनेगा । मांत्रिक की चमत्कारिक शक्ति उसी अनुपात में प्रचण्ड होगी । इन तीनों चेतनात्मक आधारों को महत्व देते हुए जिसने मंत्रानुष्ठान किया होगा निश्चित रूप से वह अपने प्रयोजन में पूर्णतया सफल होकर रहेगा ।

लोग उथली एकांगी मन्त्र साधना करते हैं, फलत: वे उस सत्परिणाम से वंचित रह जाते हैं जो सर्वांगपूर्ण मन्त्र साधना करने से निश्चयपूर्वक प्राप्त हो सकती है । मन्त्र साधना की सिद्धि के लिए यह तथ्य अनिवार्य रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मानसिक एकाग्रता, चारित्रिक श्रेष्ठता एवं लक्ष्य के प्रति अटूट श्रद्धा हो तभी मन्त्रों की शब्द शक्ति से अपेक्षित और वांछित लाभ प्राप्त किया जा सकता है । इन चारों आधारों को साथ लेकर चलने वाली मन्त्र साधना कभी निष्फल नहीं जाती ।

## मन्त्र विज्ञान और उसकी संसिद्धि

आत्मोत्कर्ष के लिये जितनी भी साधनाएँ हैं, प्राय: उन सब में मन्त्र जप का समावेश किसी न किसी रूप में अवश्य होता है क्योंकि मन्त्र विद्या मनुष्य के अंतरंग में सोयी उन शक्तियों और क्षमताओं को जाग्रत करती है जो उसे उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँचाती है । अन्य मन्त्र साधनाओं में फिर भी अन्यान्य कर्मकाण्ड करने पड़ते हैं, पर गायत्री मन्त्र की साधना एक ऐसी साधना है जो अपने आप में सर्वांगपूर्ण है ।

अकेला गायत्री मन्त्र ही वे सभी उपलब्धियाँ प्रदान करने में समर्थ है जो अन्य बहुत सी साधनाओं के करने से प्राप्त होती हैं । इस मन्त्र की साधना को सफल बनाने में चार तथ्यों का समावेश है । १. शब्द शक्ति, २. मानसिक एकाग्रता, ३. चारित्रिक श्रेष्ठता और ४. अटूट श्रद्धा ।

गायत्री मन्त्र से कितने ही प्रकार के चमत्कार एवं वरदान उपलब्ध हो सकते हैं, यह सत्य है, पर उसके साथ यह तथ्य भी जुड़ा हुआ है वह मन्त्र उपर्युक्त चार परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ होना चाहिए ।

गायत्री मन्त्र का प्रथम आधार है शब्द शक्ति । इस में अक्षरों का गुंथन एक ऐसे विशिष्ट क्रम से किया गया है जो शब्द शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों पर आधारित है । यों अर्थ की दृष्टि से गायत्री मन्त्र सरल है । उसमें परमात्मा से सद्बुद्धि की याचना की गई है । इस शिक्षा को भी समझना चाहिए, पर मंत्र की शक्ति मात्र इस शिक्षा में नहीं, उसकी शब्द रचना से भी जुड़ी हुई है । वाद्य यंत्रों का अमुक क्रम से बजाने पर ध्वनि प्रवाह निस्सृत होता है । कण्ठ को अमुक आरोह-अवरोहों के अनुरूप उतार-चढ़ाव

के स्वरों से युक्त करके जो ध्वनि प्रवाह बनता है उसे गायन कहते हैं । ठीक इसी प्रकार मुख से उच्चारित मन्त्र को अमुक शब्द क्रम के अनुसार बार-बार लगातार संचालन करने से जो विशेष प्रकार का ध्वनि प्रवाह विनिर्मित होता है वही मन्त्र की भौतिक क्षमता है । मुख से उच्चारित मन्त्राक्षर सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं । उसमें सन्निहित तीन ग्रन्थियों षट्चक्रों, षोडस मातृकाओं, चौबीस उपत्यिकाओं एवं चौरासी नाड़ियों को झंकृत करने में मंत्र का उच्चारण क्रम बहुत काम करता है । दिव्य शक्ति के प्रादुर्भूत होने में यह शब्दोच्चार भी एक बहुत बड़ा कारण एवं माध्यम है ।

मन्त्र विद्या में मुख से तो धीमे और हल्के प्रवाह क्रम से ही शब्दों का उच्चारण होता है पर उनके बार-बार लगातार दुहराये जाने से सूक्ष्म शरीर के शक्ति संस्थानों का ध्वनि प्रवाह बहने लगता है । वहाँ से अश्रव्य कर्णातीत ध्वनियाँ या प्रचंड प्रवाह प्रादुर्भूत होता है । इसी में मन्त्र साधक का व्यक्तित्व ढलता है और उन्हीं के आधार पर वह अभीष्ट वातावरण बनता है जिसके लिये मन्त्र साधना की गई । मन्त्र का जितना महत्व है, साधना विधान का जितना माहात्म्य है उतना ही आवश्यक यह भी है कि साधक अपनी श्रद्धा, तन्मयता और विधि प्रक्रिया में निष्ठावान रहकर अपना व्यक्तित्व इस योग्य बनाये कि उसका मन्त्र प्रयोग सही निशाना साधने वाली बहुमूल्य बंदूक का काम कर सके ।

शब्द शक्ति का महत्व विज्ञानानुमोदित है । स्थूल, श्रव्य, शब्द भी बड़ा काम करते हैं कि फिर सूक्ष्म कर्णातीत अश्रव्य ध्वनियों का महत्व तो और भी अधिक है । मन्त्र उच्चारण तो धीमा ही होता है उससे अतीन्द्रिय शब्द शक्ति को ही प्रचंड परिमाण में उत्पन्न किया जाता है ।

ध्वनि तरंगें पिछले दिनों उच्चारण से उद्भूत होकर श्रवण की परिधि में ही सीमित रहती थीं । प्राणियों द्वारा शब्दोच्चारों एवं वस्तुओं से उत्पन्न आघातों से अगणित प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं। उन्हें हमारे कान सुनते हैं। सुनकर कई तरह के ज्ञान प्राप्त करते हैं । निष्कर्ष निकालते हैं और अनुभव बढ़ाते हुए उपयोगी कदम उठाते हैं । यह शब्द का साधारण उपयोग हुआ ।

विज्ञान ने ध्वनि तरंगों में सन्निहित असाधारण शक्ति को समझा है और उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों को पूरा करना अथवा लाभ उठाना आरम्भ किया है । वस्तुओं की मोटाई नापने, धातुओं के गुण-दोष परखने का काम अब ध्वनि तरंगें ही प्रधान रूप में पूरा करती हैं । कार्बन ब्लैक का उत्पादन, वस्त्रों की धुलाई, रासायनिक सम्मिश्रण, कागज की लुगदी, गीलेपन को सुखाना, धातुओं की ढलाई, प्लास्टिक धागों का निर्माण प्रभृति उद्योगों में ध्वनि तरंगों के उपयोग से एक नया व्यावसायिक अध्याय आरम्भ हुआ है ।

इलेक्ट्रॉनिक्स के उच्च विज्ञानी ऐसा यन्त्र बनाने में सफल नहीं हो सके जो श्रवण शक्ति की दृष्टि से कान के समान संवेदनशील हो । कानों की जो झिल्ली आवाज पकड़कर मस्तिष्क तक पहुँचाती है उसकी मोटाई एक इंच के ढाई हजारवें हिस्से के बराबर है, फिर भी वह कोई चार लाख प्रकार के शब्द भेद पहचान सकती है और उनका अंतर कर सकती है । अपनी गाय की या मोटर की आवाज को हम अलग से पहचान लेते हैं और उनका अंतर कर सकते हैं यद्यपि लगभग वैसी ही आवाज दूसरी गायों की या मोटरों की होती है, पर जो थोड़ा सा भी अन्तर उनमें रहता है, अपने कान के लिये उतने से ही अंतर कर सकना और पहचान सकना सम्भव हो जाता है । कितनी दूर से, किस दिशा से, किस मनुष्य की आवाज आ रही है यह पहचानने में हमें कुछ कठिनाई नहीं होती । यह कान की सूक्ष्म संवेदनशीलता का ही चमत्कार है । टेलीफोन यन्त्र इतनी बारीकियाँ नहीं पकड़ सकता है ।

यह यन्त्र कान के समान ही संवेदनशील है । पर सुनता उससे भी ज्यादा है । मनुष्य के कान तो उन्हीं बातों को सुनते हैं जिनमें उनकी दिलचस्पी होती है अन्यथा पास में बहुत कुछ बकझक होते रहने पर भी अपने पल्ले कुछ नहीं पड़ता किन्तु यदि दिलचस्पी की बात हो तो फुसफुसाहट से भी मतलब की बातें आसानी से सुनी जा सकती हैं । प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि श्रवण शक्ति का पूरी तरह सम्बन्ध मानसिक एकाग्रता से है ।

मनुष्य के कान केवल उन्हीं ध्वनि तरंगों को अनुभव कर सकते हैं जिनकी संख्या प्रति सेकण्ड २० से लेकर २० सहस्र डेसिबल तक की होती है । इससे कम और अधिक संख्या वाले ध्वनि प्रवाह होते तो हैं, पर वे मनुष्य की कर्णेन्द्रिय द्वारा नहीं सुने जा सकते ।

इस तथ्य को समझने पर मानसिक जप का महत्व समझ में आता है । उच्चारण आवश्यक नहीं । मानसिक शक्ति का प्रयोग करके ध्यान भूमिका में सूक्ष्म जिह्वा द्वारा मन ही मन जो जप किया जाता है उसमें भी ध्वनि तरंगें भली प्रकार उठती रहती हैं ।

रेडियो यन्त्र केवल कुछ सीमित और सम्बन्धित फ्रीक्वेन्सी पर चल रही ध्वनि तरंगें ही पकड़ पाते हैं । समीपवर्ती फ्रीक्वेन्सी के साथ यदि उनका सम्बन्ध न हो तो वे यन्त्र सुन नहीं सकेंगे । कान की स्थिति उनकी अपेक्षा लाख गुनी अच्छी है । वे अनेक फ्रीक्वेन्सियों पर चल रहे शब्द प्रवाहों को एक साथ पकड़ और सुन सकते हैं ।

नादयोग द्वारा आकाश-व्यापी, अन्तर्ग्रही तथा अन्तः क्षेत्रीय दिव्य शक्तियों का सुना जाना सम्भव है और उस आधार पर वैसा बहुत कुछ जाना जा सकता है जो स्थूल मस्तिष्कीय चेतना अथवा उपलब्ध साधनों से जान सकना सम्भव नहीं है । विश्व-व्यापी शब्द समुद्र में मन्त्र साधक अपनी प्रचण्ड हलचलें समाविष्ट करता है और ऐसे शक्तिशाली ज्वार-भाटे उत्पन्न करता है जिनके आधार पर अभीष्ट परिस्थितियाँ विनिर्मित हो सकें । यही है मन्त्र विद्या के चमत्कारी क्रिया-कलाप का रहस्य ।

शब्द शक्ति के बाद शेष् आधार साधक को स्वयं प्रयत्नपूर्वक खड़े करने पड़ते हैं । इन्हें चेतनात्मक आधार भी कहा जा सकता है । चारित्रिक श्रेष्ठता और लक्ष्य के प्रति अटूट श्रद्धा साधक को सफलता की ओर अग्रसर करती है तथा उसे अभीष्ट लक्ष्य तक ले पहुँचती है ।

चारित्रिक श्रेष्ठता के लिये मन्त्र साधक को यम-नियमों का अनुशासन पालन करते हुए श्रेष्ठता का अभिवर्धन करना चाहिए । क्रूर कर्मी दुष्ट-दुराचारी व्यक्ति किसी भी मन्त्र को सिद्ध नहीं कर सकते । तांत्रिक शक्तियाँ भी ब्रह्मचर्य आदि की अपेक्षा करती हैं । फिर देव शक्तियों का अवतरण जिस भूमि पर होना है उसे विचारणा, भावना और क्रिया की दृष्टि से सतोगुणी पवित्रता से युक्त होना ही चाहिए ।

इन्द्रियों का चटोरापन मन की चंचलता का प्रधान कारण है । तृष्णाओं में, वासनाओं में और अहंकार तृप्ति की महत्वाकांक्षाओं में भटकने वाला मन मृगतृष्णा एवं कस्तूरी गंध में यहाँ वहाँ असंगत दौड़ लगाते रहने वाले हिरण की तरह है । मन की एकाग्रता अध्यात्म क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है उसके संपादन के लिये अमुक साधनों का विधान तो है, पर उनकी सफलता मन को चंचल बनाने वाली दुष्प्रवृत्तियों का अवरोध करने के साथ जुड़ी हुई है । जिसने मन को संयत समाहित करने की आवश्यकता पूर्ण कर सकने योग्य अंतःस्थिति का परिष्कृत दृष्टिकोण के आधार पर निर्माण किया होगा वही सच्ची और गहरी एकाग्रता का लाभ उठा सकेगा, ध्यान उसी का ठीक तरह जमेगा और तन्मयता के आधार पर उत्पन्न होने वाली दिव्य क्षमताओं से लाभान्वित होने का अवसर उसी को मिलेगा ।

अभीष्ट लक्ष्यों में श्रद्धा जितनी गहरी होगी उतना ही मन्त्र बल प्रचण्ड होता चला जायेगा । श्रद्धा अपने आप में एक प्रचण्ड चेतन शक्ति है । विश्वासों के आधार पर ही आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं और मनः संस्थान का स्वरूप विनिर्मित होता है । बहुत कुछ काम तो मस्तिष्क को ही करना पड़ता है । शरीर का संचालन भी मस्तिष्क ही करता है । इस मस्तिष्क को दिशा देने का काम अंतःकरण के मर्मस्थल में जमे हुए श्रद्धा, विश्वास का है । वस्तुतः व्यक्तित्व का असली प्रेरणा केन्द्र इसी निष्ठा की धुरी पर घूमता है । गीताकार ने इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा है "यो यच्छ्रद्धः स एव स" जो जैसी श्रद्धा रख रहा है वस्तुतः वह वही है । अर्थात् श्रद्धा ही व्यक्तित्व है । इस श्रद्धा को इष्ट-लक्ष्य में साधना की यथार्थता और उपलब्धि में जितनी अधिक गहराई के साथ, तन्मयता के साथ नियोजित किया गया होगा, मन्त्र उतना ही सामर्थ्यवान बनेगा । मांत्रिक की चमत्कारी शक्ति उसी अनुपात से प्रचण्ड होगी । इन तीनों चेतनात्मक आधारों को महत्व देते हुए जिसने मंत्रानुष्ठान किया होगा, निश्चित रूप से वह अपने प्रयोजन में पूर्णतया सफल होकर रहेगा ।

उथली एकांगी साधना करने से तो उसके सत्परिणाम से वंचित ही रहना पड़ता है । शब्द शक्ति, मानसिक एकाग्रता, चारित्रिक श्रेष्ठता, लक्ष्य के प्रति अटूट श्रद्धा यह चार आधार लेकर की जाने वाली मन्त्र साधना कभी निष्फल नहीं होती ।

## मन्त्रसिद्धि के चार प्रधान आधार

मन्त्र सिद्धि में चार तथ्य सम्मिश्रित रूप से काम करते हैं—(१) ध्वनि विज्ञान के आधार पर विनिर्मित शब्द श्रृंखला का चयन और उसका विधिवत् उच्चारण, (२) साधक की संयम द्वारा निग्रहीत प्राण शक्ति और मानसिक एकाग्रता का संयुक्त समावेश, (३) उपासना प्रयोग में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ उपकरणों की भौतिक किन्तु सूक्ष्म शक्ति, (४) भावनाप्रवाह, श्रद्धा, विश्वास एवं उच्चस्तरीय लक्ष्य दृष्टिकोण । इन चारों का जहाँ जितने

अंश में समावेश होगा वहाँ उतने ही अनुपात से मन्त्र शक्ति का प्रतिफल एवं चमत्कार दिखाई पड़ेगा । इन तथ्यों की जहाँ उपेक्षा की जा रही होगी और ऐसे ही अन्धाधुन्ध गाड़ी धकेली जा रही होगी—जल्दी-पल्दी वरदान पाने की धक लग रही होगी वहाँ निराशा एवं असफलता ही हाथ लगेगी ।

मन्त्र विज्ञान भी अन्यान्य विज्ञानों की तरह ही एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसे धैर्य एवं सावधानी के साथ अपनाना पड़ता है । उसके हर अंग उपांग को यथास्थान नियोजित करना पड़ता है । घड़ी का हर कल पुर्जा अपने स्थान पर सही रूप से फिट हो तभी वह ठीक तरह चलती और समय बताती है । इसी प्रकार मन्त्र विज्ञान के उपर्युक्त तीनों आधार यदि सतर्कतापूर्वक व्यवस्थित किये जा सकें तो कोई कारण नहीं कि अभीष्ट परिणाम प्राप्त न किया जा सके । मन्त्र विद्या निष्फल एवं उपहासास्पद इसीलिए बनती जाती है कि कुपात्र, उतावले और अवैज्ञानिक दृष्टि वाले लोग साधना की विडम्बना रचते हैं और हथेली पर सरसों न जमे तो तरह-तरह के लांछन लगाते हैं ।

मन्त्र शक्ति में ध्वनि प्रवाह का सही होना प्रथम आधार है । सर्वविदित है कि बहते पानी में किन्हीं आघातों के कारण लहरें उत्पन्न होती हैं और वे प्रवाह की दिशा में ही बहती हैं । रुके जल में वे चारों ओर भी फैलती हैं । वायु बहती तो है, पर उसकी लहरें प्रवाह की ओर ही नहीं वरन् सभी दिशाओं में फैलती हैं । शब्द वस्तुत: एक प्रकार की कम्पन लहरें ही हैं । मनुष्य के मन में कोई विचार उत्पन्न होता है । मस्तिष्क को अभ्यास है कि किस विचार से बाह्य जगत को परिचित कराने के लिए किन स्वर यन्त्रों में किस प्रकार की हलचल की जानी चाहिए । इच्छा शक्ति से प्रेरित पूर्वाभ्यास उच्चारण यन्त्रों में जो उभार उत्पन्न करता है उससे मुख में भरी हुई तथा बाहर की वायु को आघात लगता है और उससे ध्वनि तरंगें उत्पन्न होनी आरम्भ हो जाती हैं । हमारे कान उन्हें ही सुनते हैं और उनका विश्लेषण करके मस्तिष्क यह निर्णय करता है कि किसने, किस प्रयोजन के लिए क्या कहा ?

इच्छा से गति और गति से तरंगें उत्पन्न होती हैं । यह कम्पन मोटे शब्दों में वायु से हुए कहे जा सकते हैं, पर वस्तुत: वे वायु के भीतर रहने वाले एक सूक्ष्म तत्व 'ईथर' से होते हैं । साधारणतया एक सेकण्ड में ३२ तक होने वाले कम्पनों को हमारे कान सुन लेते हैं । इससे कम होंगे तो सुने न जा सकेंगे इस प्रकार अधिक से अधिक ६८ तक सुन सकते हैं इससे ज्यादा होंगे तो भी कानों को उन्हें सुन-समझ सकना सम्भव न होगा । ईथर तत्व के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म और अति संवेदनशील हैं । वे एक सेकण्ड में ३४ अरब तक कम्पन उत्पन्न कर सकते हैं । जब यह कम्पन चरम सीमा पर पहुँचते हैं तो उनसे एक अखण्ड प्रकाश की किरणें निकलने लगती हैं । इन्हीं किरणों को 'एक्सरेज' कहा जाता है ।

इन किरणों में अद्‌भुत गतिशीलता होती है, वे एक सेकण्ड में प्राय: एक करोड़ मील चल लेती हैं । रेडियो टेलीविजन आदि का निर्माण इसी विज्ञान के आधार पर सम्भव हुआ है । वायु के कम्पन नष्ट हो जाते हैं, पर ईथर के कम्पनों का कभी नाश नहीं होता। वे सदा अमर रहते हैं। जैसे-जैसे वे पुराने होते जाते हैं वैसे-वैसे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सतह पर जाकर स्थिर हो जाते हैं । जहाँ वे बलिष्ठ होने पर अपने समानधर्मी अन्य कम्पनों को अपनी ओर खींचते हैं अथवा दुर्बल होने पर दूसरों की ओर खिंच जाते हैं । इस प्रकार जीर्ण होने पर भी एक नई चेतना को संघ शक्ति के आधार पर जन्म देते हैं और ऐसे चुम्बकत्व का सृजन करते हैं जो उन शब्दों के साथ जुड़ी हुई चेतनाओं से मनुष्यों को प्रभावित कर सके । यहाँ भी सहधर्मिता का नियम लागू होता है। जिन मनुष्यों के मस्तिष्क की स्थिति उन प्राचीन किन्तु संगठित शब्द कम्पन शक्ति से मिलती-जुलती होगी । असमानता की स्थिति में कोई विचार या शब्द प्रभाव किसी को प्रभावित नहीं कर सकता केवल अपनी उपस्थिति का परिचय दे सकता है ।

ध्वनि एक प्रत्यक्ष शक्ति है । वह यों निराकार है; पर साकार बनाई जा सकती है । अब ध्वनियों के फोटो लिये जाने लगे हैं और उस आधार पर उस व्यक्ति की आकृति पहचानी जा सकती है जिससे अमुक ध्वनि अपने मुँह से निकाली थी । आवाज की फोटोग्राफी के विज्ञान ने इस सच्चाई को सामने रख दिया है कि शब्द एक शक्तिशाली पदार्थ है; जिस पर अणु शक्ति का, बिजली का, ताप का उपयोग होता है वैसा ही शब्द का भी हो सकता है । मन्त्रों के शब्द प्रवाह का जो चित्र बनता है उसी के आधार पर उनके अधिष्ठाता देवताओं की आकृतियों का निर्धारण किया गया है और मन्त्र सिद्धि में उन देवताओं के पूजन ध्यान से निर्धारित ध्वनि प्रवाह को सशक्त बनाने का अध्यात्म विज्ञानियों द्वारा निर्देश किया गया है ।

कैलिफोर्निया के वायु सेना ट्रेविस केन्द्र के एक २५ वर्षीय वायु सैनिक का कोर्ट मार्शल हुआ । वह टेलीफोन केन्द्र पर एक्सचेंज पर नियुक्त लड़कियों के साथ अश्लील छेड़-छाड़ करने का अपराधी पाया गया । यों वह अपना नाम पता प्रकट न होने देने के सम्बन्ध में पूरी सतर्कता बरत रहा था तो भी पुलिस ने वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से पकड़ लेने में सफलता प्राप्त कर ही ली ।

आवाज की फोटोग्राफी का प्रयोग इस प्रयोजन के लिए किया गया । जो आवाज टेलीफोन पर आती थी उसका फोटो लिया गया । फिर सम्भावित अपराधी की आवाज से उसे मिलाया गया तो वे प्रिन्ट बिल्कुल मिल गये । यद्यपि अपराधी इनकार करता रहा तो भी अदालत ने सबूत को प्रामाणिक माना और उसे सजा सुना दी ।

आवाज का फोटो, विज्ञान की अनोखी देन है । इस पद्धति के आविष्कारक हैं डा. कर्स्टा। उन्होंने ध्वनि अंकन—व्वाइस स्पेक्ट्रोग्राम की तीन आयाम वाली ऐसी प्रक्रिया ढूँढ़ निकाली है जिसके अनुसार किसी की भी आवाज का फोटो लिया जा सकता है । उनका कहना है कि जिस प्रकार किसी की अंगूठा छाप किसी दूसरे से नहीं मिलती उसमें भिन्नता अवश्य होती है। उसी प्रकार किसी की आवाज भी दूसरे से नहीं मिलती । अस्तु आवाज के फोटोग्राफ भी किसी अन्य की आवाज के समान नहीं होते । इस पद्धति के अनुसार खींचे गये आवाज के फोटो पूर्णतया प्रामाणिक माने जाते हैं और उनके आधार पर महत्वपूर्ण गुप्त रहस्यों को जानने एवं अपराधियों को पकड़वाने में बहुत सहायता मिलती है ।

डॉ. कर्स्टा के अनुसार हर बालक बोलना सीखते समय अपने होठ, दाँत, जीभ, तालु, कण्ठ आदि का प्रयोग एक विशेष ढंग से करता है और उच्चारण की व्यवस्था बनाता है; इससे मांस-पेशियों में जो हलचल होती है उसका दबाव मुँह में भरी तथा बाहर फैली हवा पर पड़ता है । इस दबाव से ध्वनि उत्पन्न होती है । चूँकि उच्चारण यन्त्रों की हलचल का उतार-चढ़ाव, हर किसी का स्वनिर्मित एवं अलग होता है इसलिए मुख से निकले शब्दों में भी कुछ न कुछ अन्तर रहता है । यह अन्तर ही ध्वनि भिन्नता का आधार बनता है और किसी की आवाज किसी से न मिलने का क्रम चल पड़ता है ।

न्यूजर्सी के डॉ. मार्टिमर श्वार्ज ने शरीर की आन्तरिक स्थिति का पता लगाने और रुग्णता के कारणों का विश्लेषण करने के लिए मनुष्य की आवाज को महत्वपूर्ण आधार माना है। वे कहते हैं कि जब स्वेस्थस्कोप के माध्यम से हृदय की धड़कन में रहने वाले अन्तर जानकर रक्त-संचार की स्थिति जानी जा सकती है तो शरीर की भीतरी स्थिति से प्रभावित होने वाले उच्चारण को बारीकी से समझने पर किसी की अन्तःव्यथा एवं स्थिति को समझना क्यों अशक्य होगा । उनके प्रयोगों ने रोग निदान के क्षेत्र में एक नया आधार खड़ा किया है ।

बीज मन्त्रों का अर्थ कुछ नहीं उनकी शक्ति परिधि अवश्य है । मन्त्र शास्त्र में ह्रीं, श्रीं, क्लीं, यं वं रं लं ऐं, ओं हुँ आदि अनुस्वारान्त एकाक्षरी कितने ही बीज मन्त्रों का उल्लेख और उनके प्रभाव तथा विधान का वर्णन है । यह बीज विज्ञान विशुद्ध रूप से शब्द शक्ति पर अवलम्बित है । शब्द की अपनी शक्ति एवं प्रक्रिया है ।

पदार्थ विज्ञान के अनुसार शब्द से कम्पन उत्पन्न होते हैं । साथ ही यह भी एक तथ्य है कि मुख अथवा किसी पदार्थ विशेष में शक्ति का प्रयोग होने से शब्द प्रवाह विनिसृत होता है । शब्द अपने आप में कम्पन प्रवाह की एक स्थिति विशेष है । बाहरी वायु से जब हमारी भीतरी वायु की टक्कर होती है तो शब्दोच्चार—स्वर प्रवाह आरम्भ होता है ।

तीर्थ स्थान किसी समय साधना पीठ के रूप में बने विकसित हुए थे । वहाँ अमुक साधना के अभीष्ट उपयुक्त वातावरण—आवश्यक साधन एवं अनुभूत मार्ग दर्शन प्रस्तुत रहता था । अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति को लोग वहाँ जाते थे और सफल मनोरथ लेकर आते थे । आज तीर्थों की दुर्दशा सर्वविदित है । यह उस मूल प्रयोजन से सर्वथा भिन्न है जिनके लिए इनकी रचना की गई थी ।

यों शरीर भी एक छोटा किन्तु पूरा विश्व है । इसमें सभी तीर्थों के बीज पीठ विद्यमान हैं । इनमें से कोई एक अथवा एक साथ अनेक पीठों को जाग्रत एवं प्रखर बनाया जा सकता है । कोई-कोई व्यक्तित्व मूर्तिमान शक्तिपीठ होते हैं। इन्हीं सिद्ध पुरुष मानवी चेतना में घुसा हुआ विजातीय तत्व है उसे निकालने, हटाने में थोड़ा सा ही प्रबल प्रयत्न सफल हो सकता है । साधना इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये है । साधन समर में यदि आत्म-तत्व बाजी ले गया तो फिर पौराणिक समुद्र मंथन में प्राप्त १४ रत्नों से भी अधिक मूल्य की अगणित दैवी सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं । उन्हें पाकर मनुष्य आप्त काम हो जाता है फिर और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता । साधन काल दैवी आसुरी संघर्षों की तुमुल युद्ध की—अवधि है । इसमें पूरे कौशल चातुर्य एवम् साहस का प्रयोग करना पड़ता है । यह युद्ध उपेक्षा पूर्वक—ज्यों-त्यों करके ढीले-पोले बेगार भुगतने की तरह नहीं लड़ा जा सकता है । उसमें

पूरे मनोयोग एवम् प्रबल पराक्रम की आवश्यकता पड़ती है ।

श्रेय पथ पर गतिशील ऊर्ध्वगामी मनःस्थिति को दैवी कहते हैं और पतनोन्मुख वासना, तृष्णा में निरत आकांक्षा स्तर को 'आसुरी' कहा जाता है । इनमें से प्रथम आकर्षक और द्वितीय विकर्षक चेतना प्रवाह है । व्यक्ति सत और तम का सम्मिलित उत्पादन है । रज दोनों की मध्य स्थिति है । तम को सत की ओर ले जाने में मध्यवर्ती स्थिति की समुद्र मंथन से तुलना की जाती है । दोनों ओर रस्साकसी होती है । चिर अभ्यस्त पतन क्रम अपने बन्धनों को ढीला नहीं करना चाहता । साधक उसे उत्थान की ओर बढ़ाने में प्रयत्नशील है। फलतः समुद्र मंथन की—महाभारत की—संघर्षात्मक स्थिति हमारे आन्तरिक धर्म-क्षेत्र, कर्म क्षेत्र में उत्पन्न हो जाती है । असुरता को सौभाग्य मिल गया ।

साधना जब साधक का सर्वप्रिय विषय बन जाय—उसमें निरत रहने को स्वयमेव मन चले—उन क्षणों को घटाने की नहीं बढ़ाने की ललक रहे—उपासना से उठने पर शरीर में स्फूर्ति और मन में सरसता लगे तो समझना चाहिए कि परिपक्वता आ गई और इसका श्रेयस्कर सत्परिणाम अत्यन्त सन्निकट है । आरम्भ में यह स्थिति बलपूर्वक उत्पन्न करनी पड़ती है । कल्पना और संकल्प शक्ति का उपयोग करके वैसी मानसिक स्थिति नकली रूप में बनानी पड़ती है । थोड़े समय में वह स्थिति स्वाभाविक बन जाती है । बलपूर्वक मार-धाड़ और धड़पकड़ द्वारा बलात्कारपूर्वक उच्चस्तरीय मनःस्थिति बनाने के काल को ही साधना काल कहते हैं। जब वह स्थिति सहज बनी रहने लगे तो समझना चाहिए कि सिद्धावस्था प्राप्त हो गई ।

आत्मा का परमात्म सत्ता के साथ घनिष्ठ—एकाकार—तादात्म्य होने की स्थिति को साधना की प्रखरता कहते हैं । जब दोनों का सघन मिलन होता है तो आत्म-विभोर स्थिति को समाधि कहा जाता है । आवश्यक नहीं कि उस स्थिति में योगनिद्रा अथवा मूर्छा ही आवे । ज्ञान साधना में स्थितिप्रज्ञ की—कर्म साधना में अनासक्त कर्तव्य-परायण की—भक्ति साधना में व्यापक स्नेह सौजन्य की—स्थिति प्राप्त होती है । इससे मूर्छा तो नहीं आती पर आत्मज्ञान का आलोक एवं सन्तोष समाधान का अनवरत अनुभव होता है । साधक अपने को भगवान में और भगवान को अपने में एकाकार देखता है । दोनों की इच्छाएँ एवं क्रियाएँ एक ही स्तर की होती हैं । परमात्मा का क्षेत्र व्यापक है और आत्मा का सीमित । एक अणु है—दूसरा विभु—इतने पर भी दोनों के स्तर में अद्भुत साम्य रहता है । परमात्मा को अपने सुख की चिन्ता नहीं, वह मात्र ब्रह्माण्ड चेतना को सुस्थिर, सुविकसित बनाने के लिए जुटा रहता है और उस कर्तृत्व में खोया, समाया दीखता है । साधक की परिष्कृत आत्मा बिल्कुल इसी स्तर की होती है । उसे अपने धन कुटुम्ब की—यश वर्चस्व की नहीं—लोकमंगल की चिन्ता रहती है । वही उसे अपना सुखद कर्तृत्व परिलक्षित होता है । उसी में निरत रहना और स्वाभाविक एवं सन्तोषजनक प्रतीत होता है । जब मान्यता, निष्ठा, श्रद्धा विकसित होकर गुण, कर्म, स्वभाव में ओत-प्रोत हो जाय—कर्म में परिलक्षित होने लगे तो समझना चाहिए कि नाली और गंगा के मिलन में जैसा एकाकार होता है वैसा ही आत्मा और परमात्मा का सुखद मिलन है ।

इन्द्रिय संयम और मानसिक एकाग्रता की दोनों धाराएँ मिलकर मानवी विद्युत शक्ति का निर्माण करती हैं। बिजली ठण्डे और गरम दो तारों के द्वारा प्रवाहित होती है । इसी प्रकार शरीर और मन की शक्तियों को वासना और तृष्णा में बिखरने न देने से वह सामर्थ्य जमा होती है जिसे प्राण शक्ति अथवा ओजस् कहा जाता है । योगशास्त्र में साधना क्षेत्र के छात्रों को यह नियम बरतने का शारीरिक और मानसिक संयम बरतने की प्राथमिक तैयारी करने के लिए कहा गया है । यदि इन दोनों बड़े छेदों में होकर मानवी विद्युत नष्ट होती रहे तो फिर मन्त्र रूपी इन्जन को चलाने के लिए तेल, कोयला, ईंधन—कहाँ से आवेगा ? मात्र शब्दोच्चारण का नाम ही तो मन्त्र साधना नहीं है ।

प्राण स्वसंचालित है और मन्त्र परसंचालित । अपनी प्राण शक्ति को उग्र बनाना साधक का प्रथम कार्य है । मन्त्र वह कमान है जिस पर चढ़ाकर विभिन्न स्तर के तीर फेंके जा सकते हैं । फेंकना धनुष का अर्थात् परिष्कृत व्यक्तित्व का काम है । यदि वह सही रूप से काम न कर रही होगी तो मन्त्र की विधि एवं विद्या के सही काम करने पर भी अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति न हो सकेगी । इसी प्रकार प्राण शक्ति अकेली महत्वपूर्ण होते हुए भी मन्त्र शक्ति का उपयोग किये बिना प्रसुप्त शक्तियों के जागरण का कार्य न कर सकेगी ।

योग और तप की मानसिक और शारीरिक साधना में शक्ति का उद्भव होता है । पर यदि यह उपार्जन काल में अथवा उत्पन्न होने के पश्चात सुरक्षित न रखा गया तो वह देखते-देखते बारूद की तरह जलकर भस्म हो जाती है । खुली बोतल में रखी हुई स्प्रिट उड़ जाती है इसी

प्रकार असुरक्षित रखी हुई शक्ति यों ही निरर्थक चली जाती है ।

उपार्जन काल में सात्विक आहार-विहार, ब्रह्मचर्य, मौन, एकान्त सेवन, परिमार्जित दिनचर्या, मनन-चिन्तन द्वारा साधन को सींचा जाता है । उसके उपरान्त उसे सस्ती प्रशंसा लूटने के लिए दिखाये जाने वाले चमत्कारों से बचाया जाता है । सिद्धियों को लोभ, मोह के उथले प्रयोजन पूरा करने में भी खर्च किया जा सकता है और अपने को तथा दूसरों को आत्म-कल्याण की दिशा में प्रेरित करने के लिए भी उसका उपयोग हो सकता है । स्वल्प श्रम में अधिक भौतिक सफलताएँ पाना कर्म विज्ञान के विपरीत है । उसके लिए यदि मन्त्र शक्ति का प्रयोग किया जायगा तो वह देर तक टिक न सकेगी और उसी खिलवाड़ में नष्ट हो जायेगी । हाँ यदि आत्म-कल्याण के लिये उसका प्रयोग होगा तो उससे उसमें और भी तीव्रता आयेगी जैसे कि चाकू को पत्थर पर रगड़ने से उसकी धार तेज होती है और जंग छूटकर चमक आती है ।

मन्त्र सिद्धि के लिए साधक के शरीर को पोषण देने वाला उसका रक्त और ओजस् बनाने वाली वस्तुओं का विशेष महत्व है । आहार से शरीर और विहार से मन परिपुष्ट होता है । पदार्थों में परसंचालित शक्ति है जिसे स्वसंचालित शक्ति के सहारे गतिशील किया जा सकता है । कोयला, तेल और पानी में भाप बनाने की शक्ति है, पर वह आग एवं प्रयोक्ता की स्वसंचालित शक्ति के सहारे ही प्रकट हो सकती है । पदार्थों की शक्ति को भी साधना काल में प्रयोग किया जाता है । अनेक विधि निषेध एवं वस्तु प्रयोग इसी दृष्टि से बने हैं । किस मन्त्र की सिद्धि के लिये किन पदार्थों से हवन किया जाय ? आहार में क्या वस्तुएँ प्रयुक्त की जाएँ ? पूजा के उपकरणों में किस स्तर को प्रधानता दी जाय ? आदि की विधियाँ—परसंचालित शक्ति को स्वसंचालित शक्ति का साथ देने के लिए उभारने के लिए है । इन्जन में भाप बनाने और उसे पहिये घुमाने में लगाने की प्रक्रिया इसी प्रकार सम्पन्न होती है ।

आहार की परिधि-विहार तक विस्तृत है । इसलिए साधन सफलता के क्षेत्र में उसे भी सम्मिलित रखा गया है, किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो खाया जाता है वही आहार नहीं है । नासिका और रोम कूपों द्वारा साँस ली जाती है उसमें आक्सीजन आदि कितने ही तत्व घुले रहते हैं, वह भी आहार ही है । इन्जेक्शनों द्वारा आहार शरीर में पहुँचाने की बात सर्वविदित है । हवन, यज्ञ को भी नासिका मार्ग से पहुँचाया गया इन्जेक्शन ही माना जाना चाहिए । अनुष्ठानों में हवन, यज्ञ का विधान जोड़कर रखा गया है । वह औषधि का सूक्ष्म एवं कारण भाग शरीर द्वारा सोखे जाने की प्रक्रिया ही है । अमुक वृक्ष के तले—अमुक वनस्पतियों के रस का सेवन या स्नान, उबटन, मालिश आदि के प्रयोग भी इसी प्रयोजन की पूर्ति करते हैं ।

आहार में विशिष्ट सूक्ष्म गुणों से युक्त धान्य, शाक, फल, दूध आदि का ग्रहण करना—जहाँ से उन्हें प्राप्त किया गया है उन स्रोतों को अधिकाधिक पवित्र एवं प्रखर बनाना यह भी साधना का ही एक अंग है । किस वृक्ष की लकड़ियों से, किन उपकरणों से, किन व्यक्तियों के सहयोग से वह आहार बनाया गया है और किस मनःस्थिति में उसे खाया गया है यह प्रक्रिया साधक के लिए बहुत महत्वपूर्ण है । अभक्ष्य एवं निकृष्ट स्तर का, निकृष्ट वातावरण में, निकृष्ट व्यक्तियों द्वारा पकाया, परोसा भोजन साधक के सारे श्रम को निरर्थक बनाकर रख देता है । इसलिए उपासना काल में आहार पर सर्वप्रथम ध्यान देना पड़ता है । विहार भी इसी कोटि में आता है—विहार का तात्पर्य समग्र दिनचर्या से है, उसे सात्विक रहना चाहिए ।

आहार के भले-बुरे, घटिया-बढ़िया होने का परिणाम शरीर पर सहज ही देखा जाता है । हमारा प्रमुख आहार वनस्पतियाँ ही हैं । दूध, शहद एवं मांस आदि भी प्राणियों द्वारा किया गया वनस्पतियों का रूपान्तरण ही है । वस्तुतः शरीर का निर्वाह वनस्पतियों द्वारा ही होता है । मनुष्य में जिस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारण शक्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार वनस्पतियों की भी होती हैं । तुलसी, पीपल, आँवला आदि का महत्व उनकी दिव्यकरण शक्ति को देखते हुए दिया गया है । चिकित्सकों द्वारा वनस्पतियों की रासायनिक सूक्ष्म शक्तियों का लाभ उठाया जाता है । स्थूल रूप उनका वह है जो रंग, रूप, गन्ध, स्वाद आदि के आधार पर जाना जाता है ।

विहार का एक अत्यन्त शक्तिशाली पक्ष है—ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्य का मोटा अर्थ वीर्यपात न करना माना जाता है । वस्तुतः उसका अभिप्राय शरीर और मन की समस्त चेतनाओं, आकांक्षाओं एवं वासनाओं को अस्त-व्यस्त होने से रोकना है । बन्दूक की नली में थोड़ी-सी बारूद की शक्ति को एक दिशा में प्रयुक्त किया जाता है । तभी वह अपनी प्रचण्ड शक्ति का परिचय देती है । यदि उतना ही बारूद-खुले मैदान में बिखेर कर आग लगाई जाय तो वह भक से जल जायगी

और विनोद मात्र प्रस्तुत करेगी । इन्द्रियों की—मानसिक चेतना की—उपभोगों को अन्य दिशाओं में अस्त-व्यस्त न करके अभीष्ट अध्यात्म प्रयोजन में लगा दिया जाय तो निस्सन्देह चमत्कार होता है । औषधि परिधि में आहार के साथ विहार को भी लिया गया है । शरीर के साथ मन का पोषण भी अभीष्ट है ।

ब्रह्मचर्य विज्ञान को एक प्रकार से मानवी विद्युत विज्ञान कहना चाहिए । काम-क्रीड़ा का प्रत्येक क्रिया-कलाप मात्र इन्द्रिय सुख या मानसिक उल्लास ही उत्पन्न नहीं करता वरन् नर-नारी की विद्युत शक्ति का भी एक-दूसरे में आवान्तरण करता है । नारी शरीर की विद्युत आकर्षक और नर शरीर की विकर्षक होती है । रति के स्खलन क्षेत्रों में नारी खींचती है और नर फेंकता है यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । यही क्रम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के बारे में भी है । काम-क्रीड़ा में निरत होकर साधक यदि नर हो तो उसे गँवाना ही पड़ेगा। सहयोगिनी नारी को यत्किंचित लाभ भी हो सकता है, पर साधक की दिव्य-क्षमता क्षीण होगी और उसकी सफलता का मार्ग लम्बा हो जायेगा । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ब्रह्मचर्य को महत्व दिया गया है ।

सिद्धि का चौथा आधार है औषधि । अर्थात् उपचार में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ । औषधि का अर्थ यहाँ वह नहीं है जो रोगी को ज्वर आदि रोगों से निवारण के लिए चिकित्सकों द्वारा दी जाती है । अध्यात्म प्रयोजनों में औषधि शब्द उन वनस्पतियों के अर्थ में आता है जो मुख, नासिका, रोमकूप आदि छिद्रों से शरीर में प्रवेश कराई जाती हैं और उनकी सूक्ष्म शक्तियों को अपनी चेतना में समाविष्ट करके आत्म-सत्ता को इस योग्य बनाया जाता है कि वह मन्त्र शक्ति से ठीक तरह लाभान्वित हो सके ।

साधना ग्रन्थों में वनस्पतियों के अनेकानेक विधि-विधान शास्त्रकारों ने बताये हैं । माला किस वृक्ष के फल, मूल या मध्य भाग की बनी हो—आसन, कुशा, खजूर आदि किस का बना हो—कमण्डल, नारियल, लौकी आदि किस के फल से बना हो, बालों को धोने में—शरीर पर लेपन में—किस मिट्टी या किस वनस्पति का उपयोग किया जाय । हवन-सामग्री में किस प्रयोजन के लिए किन वनस्पतियों का और किन समिधाओं का किस प्रकार प्रयोग किया जाय यह सारे विधान वस्तुतः साधक की आहार प्रक्रिया में ही सम्मिलित होते हैं ।

मन्त्र विद्या में प्रयुक्त होने वाला चौथा तत्व है—भावना । साधना की श्रद्धा, उपासना विज्ञान पर इतनी गहरी होनी चाहिए कि उसमें संशय की—अविश्वास की कहीं कोई गुन्जायश न रहे । परीक्षा बुद्धि, कौतूहल एवं शंकालु मन लेकर की गई साधना निष्फल चली जाती है । श्रद्धा अपने आप में एक शक्ति है । पेट्रोल, भाप, बिजली की तरह उसकी भी अपनी सामर्थ्य है । श्रद्धालु साधक पूर्णरूपेण सफल होकर रहते हैं जबकि शंकाशीलों को खाली हाथ रहना पड़ता है। विश्वास और संकल्प का सत्परिणाम भौतिक जीवन में पग-पग पर देखा जा सकता है आध्यात्मिक प्रगति एवं सफलता के लिए तो उसे प्राण ही कहना चाहिए । साधक का मन्त्र शक्ति पर अटूट विश्वास होना चाहिए और उसे पूर्ण श्रद्धा, एकाग्रता, मनोयोग एवं भावनापूर्वक अपने क्रिया कृत्य में संलग्न होना चाहिए ।

उपासना जिस प्रयोजन के लिए की जा रही हो वह उच्चस्तरीय होना चाहिए । भौतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए उसे प्रयुक्त नहीं करना चाहिए । संसार सुख तो योग्यता, कुशलता एवं पुरुषार्थ की कीमत पर पाये जाते हैं उन्हें उसी आधार पर खरीदना चाहिए । आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग सम्पत्ति बढ़ाने के लिए विभूतियों के अभिवर्धन में ही किया जाना चाहिए । उनके आधार पर आन्तरिक क्षमताएँ विकसित की जानी चाहिए ।

साधक को अपना व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व उत्कृष्ट रखना चाहिए । उसका दृष्टिकोण सिद्धियों का—चमत्कारों का प्रदर्शन करने के लिये बाल कौतूहल नहीं अपनाना चाहिए वरन् देव मानव की तरह आत्मकल्याण एवं विश्व-कल्याण के लिए सच्चे हृदय से इतना निष्ठावान होना चाहिए कि लिप्सा-लालसाओं से विरत होकर अन्तरात्मा, ज्ञान-विज्ञान में रस लेने लगे । जिसका चिन्तन और कर्तृत्व महान है वस्तुतः उसी की भावना शिव की जटाओं की तरह स्तर की मानी जा सकती है कि उस पर मंत्र शक्ति रूपी अध्यात्म गंगा का अवतरण सम्भव हो सके ।

## मन्त्रों की चमत्कारी शक्ति के दो उद्‌गम स्रोत

जीभ और हृदय का कोई सीधा तारतम्य शरीर शास्त्र की दृष्टि से मालूम नहीं पड़ता । यों तो सभी अंग एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं । मस्तिष्क सभी अंगों को चेतना देता है, हृदय रक्त और फेंफड़े वायु, आमाशय रस, इस प्रकार यह चारों ही संस्थान महत्वपूर्ण हुए और परस्पर एक-दूसरे का सम्बन्ध भी बना । पर जहाँ तक अति निकटता और सघनता का सम्बन्ध है, जीभ और

हृदय के बीच कोई असाधारण एवं अतिरिक्त घनिष्ठता नहीं है ।

पर आत्म-विज्ञान की दृष्टि से इनमें अत्यधिक सम्बन्ध है । शब्द विज्ञान की गहन शक्ति इन दोनों के समन्वय से ही उत्पन्न होती है । यों जीभ स्वादेन्द्रिय भी है और शब्दोच्चारण का प्रयोजन भी पूरा करती है पर उसमें एक विशेष क्षमता है शब्दों के साथ जुड़े हुए असामान्य प्रभाव की । यदि वह तत्व न हो तो फिर वह ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह केवल जानकारी देने भर का ही काम दे सकती है और उससे किसी व्यक्ति को अथवा व्यापक अन्तरिक्षीय वातावरण को प्रभावित नहीं किया जा सकता ।

शारीरिक विज्ञान जिह्वा की मोटी जानकारी देकर और मोटी मांसल परिभाषा प्रस्तुत करके चुप ही हो जाता है । उसकी थोड़ी सी जानकारी यह है कि जीभ स्वादेन्द्रिय और वाणी दोनों का काम करती है । पर वह एकाकी नहीं है, अनेक घटकों का समूह है । जीभ एक परिवार है जिसके अनेक विभाग हैं और वे सब परस्पर मिल-जुलकर काम करते हैं तभी जिह्वा अपना प्रयोजन पूरा कर पाती है ।

जीभ की नोंक पर कोई चीज रख दी जाय तो वह उसका स्वाद का पता न लगा सकेगी । इस जाँच पड़ताल में उसे अपने अन्य सहायकों का सहयोग लेना पड़ता है । पदार्थ के साथ मुँह की लार का सम्मिश्रण होता है। वह गीला पदार्थ स्वाद कलिकाओं को स्पर्श करता है। वे अपनी प्रतिक्रिया मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं । इतना हो चुकने के बाद ही यह पता चलता है कि जो पदार्थ मुँह में है वह किस स्वाद का है । यदि लार का मिश्रण न हो और सूखी वस्तु जीभ पर रखी रहे तो उसके स्वाद का कुछ भी पता न चल सकेगा ।

स्वाद अनेक होते हुए भी वैज्ञानिक वर्गीकरण के अनुसार वे केवल चार हैं—(१) मीठा, (२) खट्टा, (३) कडुआ, (४) खारा । इन्हें परखने के स्थान भी मुँह में अलग स्थानों पर हैं । जीभ के अग्र भाग में मीठा, पिछले भाग में कडुआ, दोनों पार्श्वों में खट्टा और खारा परखने के सम्वेदक तन्तु हैं ।

नासिका और जिह्वा के संवेदक तन्तुओं में परस्पर घना सम्बन्ध है । जुकाम हो जाने पर मुँह का जायका बिगड़ जाता है और वस्तुओं का स्वाद ठीक से पहचानने में नहीं आता। स्वादिष्ट व्यंजनों की गन्ध जीभ को प्रभावित करती है, मुँह में पानी भर आता है और पता चलता है कि किस स्वाद के व्यंजन कितनी दूरी पर बन रहे हैं । मिर्च मसालों के छोंक बघार नासिका की गन्ध शक्ति द्वारा मुँह को उनके स्वाद का परिचय कराते हैं । खरबूजा, आम आदि फलों को सूँघकर उनके खट्टे-मीठे होने का निर्णय किया जा सकता है । यह नासिका और जिह्वा के सम्वेदकों में परस्पर घनिष्टता होने का ही प्रमाण है ।

जीभ की संरचना का यदि वर्गीकरण किया जाय तो उसे लम्ब पेशियाँ, जीनियो ग्लोसस पेशियाँ, जिह्वा ग्रन्थि, जिह्वावरण, लेपेक्स, तन्त्रिकाएँ, स्वाद कलिकाएँ, स्वाद कोशिकाएँ, स्पिन्डल कोशिकाओं के विभागों में विभक्त किया जा सकता है । इन सबका सहयोग ही जीभ को अपना काम ठीक तरह करते रह सकने के योग्य बनाता है।

जीभ का यह भौतिक परिचय हुआ । उसका आत्मिक परिचय भगवती सरस्वती के प्रतीक रूप में है । जिह्वा शब्दोच्चारण करती है और उस उच्चारण के पीछे मनुष्य के मस्तिष्क और अन्तःकरण को ही नहीं शरीर को भी प्रभावित करने की शक्ति रहती है । इससे भी आगे बढ़कर वह शक्ति वस्तुओं को भी प्रभावित करती है । इसी रहस्यमय शक्ति को चमत्कारी ढंग से प्रयुक्त करने के विधान का नाम मन्त्र शास्त्र है । सामान्य जानकारी का आदान-प्रदान तो वाणी से होता ही रहता है, पर जब वह एकाग्र, समग्र और शब्द शास्त्र के अनुसार कुछ विशेष शब्दों का विशेष स्वर साधना के साथ उच्चारण करती है तो उस शब्द समूह को 'मन्त्र' कहते हैं । मन्त्रों की चमत्कारी शक्ति के अध्यात्म विज्ञान का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है । जप के बिना, किसी धर्म, सम्प्रदाय की कोई साधना नहीं हो सकती । इसे आत्म-शक्ति सम्वर्धन का आधारभूत स्रोत माना गया है ।

जहाँ तक मन्त्रोच्चारण का सम्बन्ध है यह कह सकते हैं कि जिह्वा तन्तुओं का सम्बन्ध जिन चक्रों, उपत्यकाओं मातृकाओं से है वे इस उच्चारण के साथ वैसे ही प्रभावित होती हैं जैसे टाइपराइटर की कुञ्जियाँ दबाने से उससे सम्बन्धित तीलियाँ उछलती हैं और कागज पर अक्षर छप जाता है । शरीर के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न सूक्ष्म शक्तियों के भण्डार दबे पड़े हैं, वाणी का प्रभाव बाहर ही नहीं निकलता भीतर भी चलता है । शब्दोच्चारण के साथ-साथ जिह्वा की नस, नाड़ियाँ और ध्वनि लहरियाँ उन प्रसुप्त संस्थानों को जगाती हैं । क्रम विशेष से सितार के तारों को बजाने से उसमें से विभिन्न स्वर लहरियाँ निकलती हैं। इसी प्रकार शब्दों का उच्चारण तथा स्वर क्रम मिलकर एक ऐसी गूँज उत्पन्न करते हैं जिससे

शरीरगत सूक्ष्म संस्थान में हलचल मच जाती है और जो मन्त्र जिस प्रयोजन के लिए निर्धारित है, उसके अनुकूल ध्वनि कम्पनों का, ऊर्जा तरंगों का निर्माण होता है ।

इस प्रकार मन्त्र शक्ति अपना काम करती है । मन्त्रोच्चारण के अवसर पर सारा स्वर संस्थान एक शक्ति स्रोत के रूप में परिणत हो जाता है और अपने भीतर लक्ष्य किये हुए मनुष्य या देवता के ऊपर अथवा अनन्त आकाश में एक प्रभाव उत्पन्न करता है जिससे शास्त्रोक्त अभीष्ट परिणाम उत्पन्न होने की सम्भावना बन जाय ।

पर इतना ही पर्याप्त नहीं माना जाता । इस मन्त्रोच्चार की शब्द श्रृंखला के पीछे हृदयगत ऊर्जा का प्रचण्ड शक्ति धाराओं का सम्मिश्रण भी होना चाहिए । हृदय का अर्थ दो प्रकार का होता है, जिह्वा की तरह वह भी दो प्रयोजन पूरे करता है । एक तो रक्ताभिसरण का केन्द्र बिन्दु होने से वहाँ उत्पन्न होने वाली प्रचण्ड ऊर्जा का वह भण्डार बना होता है दूसरे उसे भाव संस्थान का केन्द्र बिन्दु भी माना गया है । धड़कन से उत्पन्न ऊर्जा और श्रद्धा, निष्ठा, भक्ति, एवं विश्वास की समन्वयात्मक भाव गरिमा । इन दोनों का समन्वय ही मन्त्र का प्राण है । उच्चारण को मन्त्र का कलेवर और भावनाओं को उनका प्राण कहा गया है । इस प्रकार जहाँ तक आत्म साधना के विज्ञान का सम्बन्ध है जिह्वा और हृदय दोनों को एक ही रथ के दो पहिये माना गया है । मन्त्र साधना में दोनों का सहयोगात्मक समन्वय समान रूप से रहने पर ही अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध होता है ।

शरीर विज्ञान की दृष्टि से जिह्वा की तरह ही थोड़ा परिचय यह है—

हृदय को शरीर नगर की जल व्यवस्था—रक्त संचार प्रणाली को सुचारु रूप से व्यवस्थित रखने वाला 'पम्पिग स्टेशन' कहना चाहिए । हृदय का फेंका हुआ रक्त समस्त शरीर के अंग-प्रत्यंगों में धमनियों द्वारा भ्रमण करता है । वायु एवं पोषण से उन अंगों को पुष्ट करता हुआ वहाँ की विकृतियों को भी अपने साथ समेटता लाता है और वापस हृदय में आ जाता है । फेफड़े उस संग्रहीत कूड़े-कचरे को साँस के द्वारा बाहर निकाल कर उसमें आक्सीजन—प्राण वायु घोल देते हैं । इसके बाद रक्त का वही भ्रमण क्रम फिर चल पड़ता है । हृदय इसी रक्त संचार प्रक्रिया का निर्वाह करते रहने वाला प्रधान अंग है ।

यों हृदय में रक्त सदा ही भरा रहता है पर वह उसमें से सीधा एक बूँद भी ग्रहण नहीं करता । उसे जो मिलता है वह एक कायदे कानून—प्रथा प्रक्रिया के अनुसार मिलता है । इसके लिये हृदय की मांसपेशियों को खुराक देने वाली छोटी-छोटी धमनियाँ अलग से विनिर्मित हैं । वस्तुतः वे ही हृदय की धाय हैं, उन्हीं के माध्यम से उसे पोषण मिलता है । यह किसी प्रकार थक जाय या गड़बड़ा जाय तो हृदय को या उसके किसी भाग को खुराक मिलनी बन्द हो जाती है या कम पड़ जाती है । इस थोड़े से अवरोध का प्रभाव बहुत भयंकर होता है । हृदय को, उसके किसी भाग को ही उस कमी से कष्ट नहीं होता वरन् शरीर के अन्य भागों को भी खुराक मिलनी बन्द हो जाती है । मस्तिष्क को तो यह कमी तनिक भी बर्दाश्त नहीं होती और सारे शरीर में भयंकर हलचल मच जाती है । इसका नाम हृदय का दौरा है । यदि यह अवरोध १० मिनट भी बना रहे तो मरण निश्चित ही समझना चाहिए । इस भयंकर आपत्ति के समय हृदय-ग्राह के मुख में पड़े हुए गज की तरह करुण क्रन्दन करता हुआ चिल्लाता है । इसी को हृदय का दर्द कहा जाता है ।

हृदय क्या है ? साढ़े तीन इंच चौड़ी, पाँच इंच लम्बी पान के पत्ते जैसे आकार की १२ ॥ औंस भारी छाती को दाहिनी ओर पाँचवीं और छठवीं पसली के बीच की एक मांसल थैली । जो सदा धड़कती रहती है । यह चार कोष्ठों में विभाजित है । दो ऊपर वाले भाग आरीकिल (अलिंद) कहलाते हैं नीचे के दो भाग वेन्ट्रीकिल (निलय) कहे जाते हैं । शरीर में रक्त का संचार और नियंत्रण उनका काम है ।

बन्द मुट्ठी जैसी आकृति के इस नरम और मुलायम हृदय की धड़कन हर मिनट में ७०-७५ बार होती है । हर सेकण्ड में प्रायः ८ बार धड़कन होती है । इस प्रकार वह एक साल में प्रायः तीन करोड़ सत्तर लाख बार धड़क लेता है । नवजात शिशु के हृदय की धड़कन प्रति मिनट १२० से १४० बार तक होती है पर जैसे-जैसे आयु बढ़ती है यह धड़कन घटती जाती है और अन्त में प्रायः ६०-७० तक रह जाती है । इसका कारण आयु वृद्धि के साथ-साथ आक्सीजन युक्त नीले खून वाली शिराओं की लचक घटते जाना है । उनकी दीवारें मोटी होती जाती हैं जिससे धमनियों के फैलने सिकुड़ने की क्षमता घटती जाती है । तदनुसार धड़कन का क्रम भी कम होता चला जाता है ।

अपने आकार और वजन को देखते हुए शरीर के अन्य अवयवों की तुलना में हृदय को कहीं अधिक काम करना पड़ता है । वह एक मिनट में ७२ बार धड़कता है । वर्ष में ३ करोड़ ७० लाख बार । यदि कोई व्यक्ति ६० वर्ष जीवित रहे तो उसका हृदय २२० करोड़ बार

धड़क चुका होगा । १८००० टन रक्त बहा चुका होगा । ६२००० मील रक्त नलिकाओं की सड़क पगण्डियों पर चल चुका होगा । यह लम्बाई समस्त पृथ्वी की परिक्रमा से ढाई गुनी अधिक है । इस कार्य में उसे इतनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है, जितने में कि संसार का सबसे भारी युद्ध पोत धरती से पाँच गज ऊँचा उठाकर अधर टाँगा जा सकता है । मनुष्य की बनाई अब तक की कोई मशीन इतने लम्बे समय तक—बिना टूट-फूट, बिना विश्राम लिए चल सके ऐसी नहीं बनी है ।

यों यह कर्तृत्व भी इस छोटी सी मांस थैली का आश्चर्यजनक है । पर बात इतनी सी ही नहीं है । अपने आकार को देखते हुए हृदय जितना काम करता है उसके अनुपात को देखते हुए उसकी कार्यक्षमता की तुलना में संसार का कोई यन्त्र नहीं बैठता । आकार और साधन स्वल्प होते हुए वह जितना बड़ा उत्तरदायित्व सँभालता है निस्सन्देह उसी अनुपात का मनुष्य कृत यन्त्र बन सकना अभी तक सम्भव नहीं हुआ । इतनी प्रचण्ड ऊर्जा का योगदान मन्त्र शक्ति से मिल जाता है तो उसकी शक्ति को करोड़ों गुना अधिक बढ़ना ही चाहिए ।

आकाशवाणी से उच्चारण किये हुए शब्द इसलिए प्रखर हो उठते हैं कि उनमें विद्युत शक्ति का सम्मिश्रण किया जाता है । उसी के अभाव में हमारी आवाज हजार गज पर भी नहीं सुनी जाती जबकि रेडियो की आवाज सारा संसार सुनता है । ठीक मन्त्रोच्चारण को प्रचण्ड और व्यापक बनाने के लिए हृदय की विद्युत धारा का उपयोग करना पड़ता है । साथ ही श्रद्धा, विश्वास और भक्ति का समन्वय करके उसकी जप शब्दावली को इतना प्रखर बनाना पड़ता है कि वह साधारण उच्चारण न रहकर एक शक्ति प्रवाह के रूप में प्रादुर्भूत होकर अपना अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर सके ।

आत्मिक क्षेत्र में हृदय का सूक्ष्म अर्थ 'सहृदयता' लिया गया है । निष्ठुर प्रकृति के दुष्ट दुराचारियों को 'हृदयहीन' कहा जाता है । इसका अर्थ खून फेंकने वाली थैली का होना या न होना नहीं । वरन् यह है कि उच्चस्तरीय संयम, सदाचार, निर्मलता, निष्कपटता, ममता, आत्मीयता, उदारता जैसी सद्भावनाओं का उद्गम केन्द्र है या नहीं । यदि वह परिप्लावित हो तो अन्य आत्मिक शक्तियाँ भी उगेंगी, फलेंगी, फूलेंगी । यदि श्मशान जैसी निष्ठुरता और प्रेत पिशाचों जैसी दुष्टता भर रही होगी तो उस मरघट की जली हुई भूमि में कोई भी आत्मिक विभूति पल्लवित और फलित न होगी । इसे अतिरक्त उच्च सत्ता पर—आत्मा की महत्ता पर—साधन प्रक्रिया तथा उसकी परिणति पर गहन श्रद्धा विश्वास का होना भी हृदयवान होने का चिह्न है । इन विशेषताओं से जो सम्पन्न हों उनकी हृदयगत भाव शक्ति—जिह्वागत स्वर शक्ति को सम्मिश्रित करके समग्र मन्त्र शक्ति उत्पन्न करेगी और उसका प्रभाव परिणाम निश्चित रूप से आशाजनक होगा ।

हृदय को शिव और जिह्वा को शक्ति कहते हैं । हृदय प्राण और जिह्वा रयि है । हृदय को अग्नि, जिह्वा को सोम कहते हैं । दोनों का समन्वय धन और ऋण विद्युत धाराओं के मिलने से जो शक्ति प्रवाह उत्पन्न करता है, वही मन्त्र के चमत्कार रूप में देखा जा सकता है ।

मन्त्र की एक प्रकट ध्वनि होती है एक अप्रकट । शब्दोच्चार के साथ-साथ एक प्रतिध्वनि और उत्पन्न होती है जो प्रत्यक्ष उच्चारण से अधिक सूक्ष्म होने के कारण और भी अधिक बलवती होती है । कान की पकड़ में न आने वाली ध्वनियों को आजकल वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा पकड़ा और प्रयुक्त किया जा रहा है । उनकी अद्भुत सामर्थ्य ने विज्ञान जगत को आश्चर्यान्वित कर दिया है ।

आवाज उतनी ही नहीं है जितनी कानों से सुनी जाती है । कानों की एक सीमित मर्यादा है । वे अपनी पकड़ में आने वाली आवाजों को ही सुन पाते हैं । पर ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जो हम सुन सके उतनी ही ध्वनि होती है । शब्द तरंगों का बहुत बड़ा भाग वह है जो कानों की पकड़ में नहीं आता पर वह इस आकाश में चलती निरन्तर रहती है । रेडियो तरंगों के साथ मिली हुई आवाजें आकाश में हर घड़ी गूँजती रहती हैं पर हम उन्हें सुन तभी पाते हैं जब रेडियो यन्त्र पास में हो और उस कानों की पकड़ से बाहर की आवाज को बिजली के सहारे तीव्र करें। शब्द तरंगों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। वे इस संसार में चल रही अनेक हलचलों के कारण जो ध्वनियाँ होती हैं उन्हें इधर से उधर लाती ले जाती रहती हैं । योगाभ्यास में 'नादानुसन्धान' की पद्धति से इन्हीं ध्वनियों को सुना अपनाया जाता है ।

ध्वनि तरंगें केवल आवाज को कान तक पहुँचा कर, उसके द्वारा जानकारी बढ़ाने का ही काम नहीं करतीं, उनमें एक प्रचण्ड बिजली भी भरी रहती है और वह इतनी सामर्थ्यवान होती है कि डाइनामाइट जैसी पुल और किले उड़ा देने वाली बारूद को पीछे छोड़ दे । अब इन ध्वनि

तरंगों का वह प्रवाह भी वैज्ञानिकों की पकड़ में आ गया है जो कानों द्वारा सुने जाने की मर्यादा से कहीं अधिक सूक्ष्म है । उनका उपयोग सुनने के लिए नहीं वरन् उन कार्यों के लिए सफलतापूर्वक किया जा रहा है जो बिजली की सामर्थ्य से भी कहीं अधिक गहरी शक्ति की अपेक्षा करते हैं । अभी इनके प्रयोग का प्रथम चरण है । आगे चलकर सोचा यह जा रहा है कि इन तरंगों द्वारा संसार की शक्ति आवश्यकता, सस्तेपन और सरलता के साथ सम्पन्न की जाय ।

जिन कर्णा कुहरों से आगे की ध्वनि तरंगों की यहाँ चर्चा हो रही है उन्हें विज्ञान की भाषा में 'अति स्वन' कहा जाता है । इन्हें छुट-पुट अनेक उद्योगों में प्रयुक्त किया जा रहा है । कपड़ों को धोना, सुखाना, सफाई, तेल निकालना, कागज बनाना जैसे छोटे-मोटे उद्योगों में इनका सफल प्रयोग किया गया है । जर्मनी में उन्हें धातुओं की ढलाई के काम में लाया जा रहा है । ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने धागे के सम्बन्ध में उनका प्रयोग किया है । बी. एफ. गुडरिच कम्पनी का अनुसन्धान विभाग इस अन्वेषण में लगा हुआ है कि इन ध्वनि तरंगों को किस उद्योग में किस प्रकार—काम में लगाया जा सकता है । रेथ्यान कम्पनी का बना होमोजिनाइंजिंग यन्त्र दुग्ध साधनों के लिए इसी आधार पर बना है और हजारों की संख्या में बिक रहा है ।

ध्वनि तरंगें कम्पन के रूप में होती हैं । वे गैसों, द्रवों एवं ठोस पदार्थों में वास्तविक धड़कनों की तरह हैं । रेडियो तरंगों में और इनमें मुख्य अन्तर यह है कि रेडियो तरंगें शून्य में यात्रा करती हैं पर ये ध्वनि तरंगें वैसा नहीं करतीं । इन दिनों तीन प्रकार के ध्वनि तरंग यन्त्र बने हैं । एक वे उच्च दबाव पर वायु के उपयोग से उच्च आवृत्ति के कम्पन उत्पन्न करते हैं । दो किस्म की शक्ति के लिए विद्युत ऊर्जा का उपयोग करते हैं । अमेरिका का अल्ट्रा-सोनिक कारपोरेशन गैसों के लिए साइरन औद्योगिक स्तर पर उत्पादन करता है । इन तरंगों के उपकरण अल्ट्रा सोनिक (अतिस्वन) और सुपरसानिक (महास्वन) नाम से पुकारे जाते हैं । वैज्ञानिकों ने खोज तो निकाला है पर इनसे इनकी गौरव गरिमा के उपयुक्त काम लिया जा सके यह प्रयोग करना शेष है ।

मन्त्र विद्या के महान विज्ञान को यदि ठीक से समझा जा सके, शब्द ब्रह्म की भावना पूर्वक साधना की जा सके तो अदृश्य और अप्रत्यक्ष विभूतियों को हम सामने खड़ी दृश्य और प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं ।

# मंत्र में शब्द , चरित्र और भावना की समन्वित शक्ति

मन्त्र-शक्ति में प्रथम आधार है ध्वनि प्रवाह का सही होना । शब्द वस्तुत: एक तरह की कम्पन-तरंगें ही हैं । मस्तिष्क में यह जानकारी व अभ्यास संचित है कि किन स्वर-यन्त्रों में किस तरह की हलचल करने से वाह्य-जगत में कौन से शब्द तथा विचार सम्प्रेषित होंगे । व्यक्ति की इच्छा-शक्ति से प्रेरित होकर उच्चारण-मन्त्रों में पूर्वाभास के अनुसार उभार पैदा होता है, उस उभार से मुँह में भरी हुई वायु को तथा बाहर की वायु को आघात लगता है और ध्वनि-तरंगें पैदा होने लगती हैं । सुनने वाले व्यक्ति के कान इन ध्वनि-तरंगों को सुनकर उनका मस्तिष्कीय जानकारी एवं अभ्यास के आधार पर विश्लेषण कर उन शब्दों का अर्थ व प्रयोजन निश्चित करते हैं । इस तरह इच्छा से गति तथा गति से तरंगें उत्पन्न होती हैं । ये ध्वनि-कम्पन वायु के भीतर रहने वाले एक सूक्ष्म तत्व 'ईथर' से होते हैं । ईथर तत्व के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म और अति सम्वेदनशील हैं तथा एक सेकण्ड में ३४ अरब तक कम्पन उत्पन्न कर सकते हैं । यद्यपि हमारे कान एक सेकण्ड में ३२ से ६८ तक ही कम्पन सुन-समझ सकते हैं। ३२ से कम नहीं और ६८ से अधिक नहीं । जब ईथर तत्व के परमाणुओं द्वारा उत्पन्न कम्पन चरम सीमा पर अर्थात् ३४ अरब के प्रति सेकण्ड के आस-पास पहुँचते हैं, तो उनसे एक अखण्ड प्रकाश की किरणें प्रवाहित होने लगती हैं । यही प्रकाश-किरणें 'एक्स-रेज' कहलाती हैं । ये किरणें अद्भुत गतिशील होती हैं, एक सेकण्ड में ये प्राय: एक करोड़ मील चल लेती हैं । इसी आधार पर रेडियो, टेलीविजन बने हैं । वायु के कम्पन नष्ट हो जाते हैं, किन्तु ईथर के कम्पन कभी भी नष्ट नहीं होते । हाँ, पुराने होने पर वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सतह पर जाकर स्थिर हो जाते हैं । वहाँ वे बलिष्ठ हो जाने पर अपने समानधर्मी अन्य कम्पनों को अपनी ओर खींचते हैं और दुर्बल होने पर समानधर्मी किन्तु शक्तिशाली अन्य कम्पनों की ओर खिंच जाते हैं । इस तरह संघ-शक्ति के आधार पर वे एक चुम्बकत्व का सृजन कर सकते हैं । यह चुम्बकत्व एक चेतना जैसा होता है, जो समानधर्मी चेतना वाले मनुष्यों को प्रभावित करता है । जिन मनुष्यों के मस्तिष्क की स्थिति उन प्राचीन, सुसंगठित शब्दों की कम्पन-शक्ति से

मिलती-जुलती होगी, उन पर इस चुम्बकत्व शक्ति का, इस चेतना का सीधा प्रभाव पड़ेगा । यदि स्थिति समान न हुई, तो समान शब्दों का उच्चारण उस प्रभाव की उपस्थिति का परिचय तो दे सकता है, किन्तु उस पर गहरा प्रभाव नहीं डाल सकता । इसीलिए मन्त्र-जपकर्त्ता की अन्तश्चेतना का परिष्कार अत्यावश्यक है । तभी पूर्वज ऋषियों की चेतना से उसकी सम्वेदना जुड़ सकती है ।

ध्वनि एक प्रत्यक्ष शक्ति है । अणु-शक्ति, विद्युत-शक्ति, ताप-शक्ति आदि की तरह ही शब्द-शक्ति का भी उपयोग सम्भव है ।

शब्द से कम्पन उत्पन्न होता है । मुख अथवा किसी पदार्थ विशेष में शक्ति का प्रयोग होने से शब्द प्रवाह निःसृत होता है । इस प्रकार शब्द अपने आप में कम्पन प्रवाह की एक स्थिति विशेष है । वाह्य वायु से आन्तरिक वायु की टक्कर होने से ध्वनि का यह कम्पन-प्रवाह प्रारम्भ होता है ।

मन्त्रों के शब्द-प्रवाह का जो चित्र बनता है, उसी के आधार पर उनके अधियनता देवताओं की आकृति का आकलन किया गया है ।

शब्दों की भावोत्तेजक क्षमता सुविदित है । साथ ही उनमें वह सामर्थ्य भी विद्यमान है जो स्वयं को भी तथा अन्यों को—सम्पूर्ण सूक्ष्म जगत को प्रभावित कर सके । मन्त्र विज्ञान में इसी सामर्थ्य का उपयोग होता है ।

जिस प्रकार सितार के तारों पर एक निश्चित क्रम से उंगलियाँ रखने पर सुनिश्चित स्वर लहरियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार शब्दों के उच्चारण का एक लयबद्ध क्रम विशिष्ट कम्पनों को उत्पन्न करता है, जो विशेष शक्तिशाली व प्रभावोत्पादक होते हैं ।

इसीलिए मन्त्रों में महत्व मात्र शब्दार्थ का नहीं । हमारे मुख के तार षट्चक्रों, दिव्य-ग्रन्थियों आदि सूक्ष्म शरीर संस्थानों से जुड़े हैं । टाइपराइटर की चाबियाँ दबाते चलने से अक्षरों के टाइप होते चलने की ही तरह विशेष वैज्ञानिक प्रक्रिया से विनिर्मित मन्त्र-गुम्फन मनुष्य के सूक्ष्म शरीर-संस्थानों पर सीधा असर डालते हैं और वहाँ एक अतिरिक्त शक्ति-प्रवाह उत्पन्न करते हैं । भीतर गूँजते हुए मन्त्र-कम्पन स्वयं मन्त्र-विज्ञानी को लाभ पहुँचाते हैं और बाहर निकलने पर वे वातावरण को प्रभावित करते हैं । वे सूक्ष्म जगत में अभीष्ट परिस्थितियों की सम्भावनाओं का सृजन करते हैं तथा चाहे जाने पर किसी व्यक्ति-विशेष को भी प्रभावित करते हैं ।

शब्द-शक्ति का चिन्तन-मनन उसकी महत्ता व गरिमा का स्मरण कराता है । आज चारों ओर बढ़ रहे शोर से प्रदूषण उत्पन्न होने की चिन्ता चारों ओर व्यक्त की जा रही है तथा इस शोर को सामाजिक तनाव, बेचैनी और विकृति के कारणों में से एक कहा बताया जा रहा है। ध्वनियों के अप्रत्याशित आश्चर्यजनक परिणामों की लगातार जानकारी मिल रही है । सभी जानते हैं कि वर्तमान यान्त्रिक सभ्यता का शोर सम्पूर्ण मानव जाति पर गहरा दुष्प्रभाव डाल रहा है ।

संगीत के प्रभाव पर भी इधर अधिकाधिक खोजें हुई हैं । पशुओं का दूध बढ़ाने, पौधों के विकास, बच्चों में अनुशासन का विकास, समूह में विशिष्ट भावोत्तेजना की सृष्टि आदि के लिए संगीत के प्रभावों की बात अब सर्वविदित है । संगीत वस्तुतः ध्वनि प्रवाह का एक क्रम विशेष मात्र है । उसकी शक्ति शब्द व ध्वनि की ही शक्ति है ।

मन्त्र भी इसी शक्ति के पुंज हैं । उनके अक्षरों का चयन-क्रम एवं उच्चारण की अनुशासित-व्यवस्था, दोनों का समन्वित प्रभाव साधक को अतिरिक्त विशेषताओं से सम्पन्न बनाता है । उसके आत्मबल को प्रखर, प्रबल बनाता है और अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति का मार्ग-प्रशस्त करता है । मन्त्रों के शब्दों का चयन-गुंथन विशिष्ट होता है । वे ध्वनि विज्ञान के विशेष नियम-क्रम के अनुरूप गढ़े होते हैं । इसी से उनको देर तक एक ही प्रवाह से उच्चारण करने पर एक विशेष स्तर की ऊर्जा उत्पन्न होती है । यह ऊर्जा विकसित होने पर साधक को उसकी विशिष्ट अनुभूति स्वाभाविक व अनिवार्य है । यह कई तरह की हो सकती है । शरीर-मन में स्फूर्ति, उत्साह, विश्वास की वृद्धि होती है । किसी-किसी को मंत्र-देवता का साक्षात्कार होता है और सफलता का आशीर्वाद सुनाई पड़ता है । ये अनुभूतियाँ सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा ही होती हैं, तो भी प्रबलता एवं प्रखरता की स्थिति में कई बार स्थूल दर्शन-श्रवण जैसा अनुभव हो सकता है, यद्यपि यह हर एक के साथ होना अनिवार्य नहीं किन्तु विश्वास एवं निष्ठा को परिपक्वता, उत्साह तथा मनोबल को अनुभूति का आधार अवश्य मिलता है । ये अनुभूतियाँ ही मन्त्र का स्फोट कही जाती हैं । मन्त्र की भाव भूमिका चुम्बकत्व उत्पन्न करती और स्फोट इस चुम्बकत्व को कई गुना विस्तृत एवं सशक्त बनाता है । निष्ठावान साधक इन उपलब्धियों को प्राप्त कर बढ़ता जाता है ।

मन्त्र साधना के साथ-साथ कई प्रकार के व्रत नियमों का पालन करना पड़ता है । साधक को आहार-विहार का संयम बरतना पड़ता है । ब्रह्मचर्य से रहना पड़ता है तथा ऐसी मर्यादाओं का पालन करना होता है जो साधक को चरित्रवान, सज्जन, सद्‌गुणी बनाने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है । क्रोध, द्वेष आदि दुर्गुणों का निषेध इसीलिए किया जाता है कि मन्त्र शक्ति उत्पन्न करने वाले शरीर तथा मन को कषाय-कल्मषों से रहित होना चाहिए । मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता । रँगाई से पहले धुलाई आवश्यक होती है । मंत्र की शक्ति का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए साधक के इन्द्रिय समूह तथा अन्तःकरण चतुष्ट का परिष्कृत होना आवश्यक है । देखा जाता है कि चरित्रवान साधक स्वल्प जप-तप से ही आशाजनक सफलता प्राप्त कर लेते हैं जबकि दोष, दुर्गुणों को चरितार्थ करते रहने वालों की लम्बी और कष्टसाध्य साधना भी निरर्थक चली जाती है ।

मन्त्र विज्ञान में जिह्वा के साथ-साथ हृदय की शक्ति के समावेश का भी वर्णन है । कहा गया है मन्त्र की प्रखरता के स्रोत हृदय से भी उद्‌भूत होते हैं । यहाँ हृदय से तात्पर्य रक्त-संचार करने वाली उस थैली से नहीं है जो अहर्निश धड़कती और कण-कण को पोषण प्रदान करती है । यों शरीर में जीवन की विभिन्न गतिविधियों के संचालन में प्रयुक्त होने वाली ऊर्जा इसी बिजलीघर से मिलती है और उसका प्रभाव अध्यात्म क्षेत्र पर भी पड़ता है । इसीलिए फेफड़ों के माध्यम से हृदय को प्रभावित करने वाले प्राणायामों का विधान बनाया गया है और उसे साधना प्रयोजनों का आवश्यक अंग माना गया है । इतने पर भी मन्त्र शक्ति को प्रखर बनाने में जहाँ 'हृदय' के उपयोग की चर्चा है, वहाँ उसका प्रयोजन भावना शक्ति से है । शरीर विज्ञान में 'हृदय' रक्त-संचार में संलग्न बाईं पसलियों के मध्य अवस्थित मुट्‌ठी जितने आकार की थैली को कहा जाता है, पर आध्यात्मिक विवेचना में 'उसे' भाव संस्थान समझा जाना चाहिए । भावना का—श्रद्धा सम्वेदना का जितना उच्चस्तरीय समावेश मन्त्र साधना में होता है, अश्रद्धा, उपेक्षा और अन्यमनस्क भाव से बेगार टालने की तरह किसी प्रकार अमुक अक्षरों को रटते रहा जाय तो उससे न तो जिह्वा की शक्ति का उपयोग हुआ माना जायेगा और न हृदय शक्ति का समावेश हुआ कहा जायेगा ।

जिह्वा की शक्ति को अन्तरिक्ष में बलपूर्वक उड़ाता है, इसका तात्पर्य वाक् शक्ति से है, जो सस्वर, उच्चारण और पवित्र सिंचन से उत्पन्न होती है । पवित्र सिंचन का अर्थ है अनीति उपार्जित अभक्ष्य आहार और कटुभाषण असत्य एवं गिराने वाले परामर्श का परित्याग । जिस जिह्वा से कुधान्य नहीं खाया जाता और पशु-प्रवृत्तियों को नहीं भड़काया जाता, उससे उच्चारण की हुई वाणी वाक् कहलाती है और वह प्रत्यक्ष सरस्वती बनकर मंत्र की शक्ति को प्रचण्ड बना सकने में समर्थ होती है ।

हृदय स्थान पर प्रकाश का ध्यान करने—वहाँ न्यास कृत्य करके पवित्रता की आस्था जमाने एवं प्राणायाम के माध्यम से सशक्त बनाने का जो उपक्रम किया जाता है उसे स्थानीय उपचार नहीं समझना चाहिए, वरन् यह तात्पर्य समझ लेना चाहिए कि भावना को उत्कृष्ट बनाने के लिए अंगुलि निर्देश किया जा रहा है । 'सहृदय' उसे नहीं कहा जाता जिसकी छाती में हृदय की थैली हो वह तो हर मनुष्य में होती ही है । इससे तो हर व्यक्ति सहृदय कहा जा सकता है । इसी प्रकार 'हृदय हीन' का अर्थ निष्ठुर भावना रहित को कहा जाता है, ऐसा तो कोई भी व्यक्ति न होगा जिसके वक्षस्थल में रक्त-संचार करने वाली 'हार्ट' नामक थैली न हो, वरन् ऐसा भवना के केन्द्र बिन्दु से है । प्रामाणिक उच्चस्तरीय स्तर पर विनिर्मित स्वर विज्ञान के अनुरूप व्यवहृत-पवित्र जिह्वा द्वारा उच्चरित और सद्‌भाव सम्पन्न अन्तःकरण द्वारा सुसंस्कारित मन्त्राराधन अभीष्ट प्रयोजन में सफल होकर रहता है यह निश्चित है ।

## श्रद्धा जितनी प्रगाढ़ होगी मंत्र उतना सद्यः फलप्रद

मंत्रजप एक प्रकार से शब्द विज्ञान की एक शाखा है तो भी भौतिक विज्ञान उसका उपयोग नहीं कर पाता । उसका कारण और कुछ नहीं, श्रद्धा-संवेदना का वैज्ञानिक विश्लेषण न कर पाना है । अध्यात्म विज्ञान की बात करते समय इसी तथ्य को यह कहकर प्रकट किया जाता है कि साधक की श्रद्धा इष्ट में जितनी अधिक होगी, उपास्य के प्रति उसका विश्वास जितना प्रगाढ़ होगा, परमात्मा से मिलन की छटपटाहट—भक्ति जितनी तीव्रतर होगी, मंत्र का प्रभाव-प्रतिफल उतनी ही जल्दी उपलब्ध

होगा । कभी-कभी अनायास ही किसी के मुख से निकले शब्द सच हो जाते हैं, शाप, वरदान फलित हो जाते हैं । उसमें भी उस व्यक्ति की उस क्षण की भाव संवेदना ही प्रमुख होती है । जब भाव संवेदनायें अपनी चरम अवस्था में उमड़ रही हों, उस समय मंत्र सिद्धि द्वारा कभी भी किसी भी समय किसी को भी लाभ पहुँचाया और सहायता की जा सकती है ।

साधारणतया शब्द की शक्ति बहुत धीमी होती है । आकाश में बिजली चमकती है तो ध्वनि पहले होती है, प्रकाश पीछे प्रस्फुटित होता है, किन्तु दूरस्थ व्यक्ति को पहले चमक दिखाई देती है और गरज पीछे सुनाई पड़ती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रकाश की गति एक सेकण्ड में एक लाख ८६ हजार मील या ३ × १०$^{८}$ मीटर है । ध्वनि की गति मंद होती है और यह एक सेकण्ड में ११२० फुट या ३३० मीटर जितनी छोटी दूरी ही तय कर पाती है । इतनी स्वल्प क्षमता वाली ध्वनि कोई चमत्कार कैसे पैदा कर सकती है ? यह विचारणीय प्रश्न है ।

रेडियो, टेलीविजन आज घर-घर पहुँच गये हैं । बी. बी. सी. लन्दन, वी. ओ. ए. न्यूयार्क, रूस, जापान आदि के प्रसारण एक सेकण्ड में इतनी दूर बैठे भारतवासी सुन लेते हैं । ऐसा क्यों होता है, जबकि ध्वनि की गति मात्र ३३० मीटर प्रति सेकण्ड है ।

भौतिक शास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि रेडियो प्रसारण जिस स्टेशन से होता है वहाँ एक बड़ी क्षमता वाला विद्युत जेनरेटर जुड़ा रहता है । यह विद्युत शक्ति चुम्बकीय क्षेत्र से गुजारी जाती है जिससे उसकी सामर्थ्य भी कई गुना अधिक तरंगित हो जाती है । इन विद्युत चुम्बकीय तरंगों के जहाज पर ही शब्दों के यात्री बैठा दिये जाते हैं जिससे उनकी गति ३३० मीटर प्रति सेकण्ड से बढ़कर ३×१०$^{८}$ मीटर प्रति सेकण्ड हो जाती है । इस क्रिया को 'सुपर इम्पोज्ड रिकार्डेड साउण्ड' कहते हैं । इस शक्ति से न केवल रेडियो प्रसारण ही सम्भव हुए हैं, वरन् अंतर्ग्रही राकेटों की उड़ान के समय, उन्हें दिशा निर्देश देने, उनकी यान्त्रिक खराबी को दूर करने का कार्य इस शक्ति से किया जाने लगा है । सोनोग्राफी से लेकर साउण्ड थेरेपी तक के कितने ही चिकित्सकीय कार्य सम्पन्न होने लगे हैं ।

अब शक्ति के एक नये स्रोत "लेसर" की जानकारी वैज्ञानिकों को हस्तगत हुई है जिसकी गति प्रकाश या विद्युत चुम्बकीय तरंगों की अपेक्षा बहुत अधिक है । अनुमान है कि यदि शब्द को इस शक्ति के ऊपर चढ़ा दिया जाय तो व्यक्ति ब्रह्माण्ड के दूसरे छोर से बैठकर पृथ्वी के किसी घने जंगल में किसी गुफा के अन्दर बैठे हुए व्यक्ति से उसी प्रकार बात कर सकता है जैसे दो साथ बैठे व्यक्ति कर लेते हैं । यह किरणें इतनी शक्तिशाली होती हैं कि एक फुट मोटी इस्पात की चादर में सेकण्ड के अरबवें हिस्से में ही छेद कर सकती हैं । आँख की पुतली में इसके लाखवें हिस्से में आपरेशन करना हो तो ये किरणें यह कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं । लेसर किरणों को भविष्य की चिकित्सा का चमत्कार माना जा रहा है । एक दिन वह आ सकता है जब क्षय तथा कैंसर जैसे असाध्य रोगियों को एक पंक्ति में लगाकर रेल की टिकटें बेचने जितने समय में चंगा करके भेज जाया करेगा । मंत्र से भी ऐसी ही अपेक्षायें की जाती हैं । मंत्र की शक्ति सामर्थ्य असीम है, वह लेसर किरणों से कम नहीं, वरन् अधिक ही है ।

मंत्र जप-प्रक्रिया में भी इसी तरह की शक्ति तरंगों का उत्पादन और समन्वय होता है । पर उसका प्रभाव साधक की अस्त-व्यस्त मनःस्थिति के कारण दिखाई नहीं देता । "योगः चित्तवृत्तिश्चनिरोधाः" अर्थात् चित्तवृत्तियों को एकाग्र करना ही योग साधना का उद्देश्य है । पातंजल योग दर्शन का यह सूत्र बताता है कि मंत्र जप के साथ मन की बिखरी हुई शक्तियों को समेटना आवश्यक है । इसी से जप शक्तिशाली बनता है और शब्द की गति एवं तरंगें तीव्र गति धारण करती हैं । यह शक्ति विद्युत चुम्बकीय क्षमता की तरह है और प्रारम्भिक है । अन्तिम अवस्था तो मंत्र के साथ-साथ भाव संवेदना का ही जुड़ना है ।

भावनाओं की शक्ति मन की शक्ति से अनेक गुना अधिक है । परामनोविज्ञान के अनुसंधानकर्ताओं को ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं जिन्हें 'टेलिपैथी' या दूर संप्रेषण के नाम से जाना जाता है । इस संदर्भ में 'साइको काइनोसिस' नामक एक स्वतंत्र विज्ञान ही विकसित कर लिया गया है जिसमें मनुष्य की भाव संवेदनाओं से लेकर अतीन्द्रिय क्षमताओं तक की विज्ञान सम्मत जानकारियाँ सम्मिलित हैं । पाया गया है कि अब अत्यधिक संवेदना की स्थिति में पृथ्वी के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति तक बिना किसी वायरलेस-टेलीफोन के संदेश पहुँचाया जा सकता है । जबकि टेक्नालॉजी में आज तक शब्द तरंगों को नियंत्रित किये बिना कभी भी यह संभव नहीं होता । यही कारण है कि रेडियो स्टेशन के प्रसारण रेडियो से तो

सुने जा सकते हैं, पर रेडियो वाला स्वयं रेडियो स्टेशन वाले को कुछ नहीं कह सकता । मंत्र जप और भाव संवेदना की यह विशेषता उसे भौतिक उपार्जन से अधिक महत्वपूर्ण बनाती है । मन्त्रशक्ति केवल मात्र संसार के वातावरण को ही प्रभावित नहीं करती, वरन् साधक के व्यक्तित्व में भी प्रकम्पन पैदा करती है । उससे उसका व्यक्तित्व भी प्रखर प्रकाशवान बनता चला जाता है ।

मदन मोहन मालवीय जी के जीवन की एक घटना है। वे तब इलाहाबाद में थे और उनकी माँ वाराणसी में थीं। माँ एक दिन दुर्घटनावश आग से बुरी तरह जल गयीं । उस समय उन्होंने सम्पूर्ण हृदय से मालवीय जी को याद किया । उसकी प्रतिक्रिया तुरन्त मालवीय जी को तीव्र जलन के रूप में हुई । उनके अंतःकरण ने तुरन्त अनुभव किया कि माँ जल गई हैं । वे तत्काल बनारस पहुँचे और वस्तुस्थिति को सत्य पाया । जगत् गुरु आदि शंकराचार्य के सम्बन्ध में भी ऐसा ही एक प्रसंग है । उन्होंने बचपन में अपनी माँ को उनका दाह संस्कार स्वयं अपने हाथों से करने का वचन दिया था । उनकी मृत्यु के समय वे उत्तर भारत की यात्रा में थे, जहाँ उन्हें माँ की आभ्यन्तर वाणी सुनाई दी और वे मध्य यात्रा से ही घर लौट पड़े और ठीक समय पर पहुँच कर माँ का अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया । संत ज्ञानेश्वर एवं रामकृष्ण परमहंस के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्हें मानवेतर प्राणियों की भाव संवेदनायें भी अपनी मर्मान्तक पीड़ा से अवगत करा देती थीं । निरीह प्राणियों के शरीरों पर पहुँचने वाले कष्ट स्वयं उनकी काया पर उभर आते थे ।

भावनाओं का विज्ञान समझ में न आता हो, यह अलग बात है, पर उनके अस्तित्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता । वह किन प्रकाश परमाणुओं का उपादान है, सम्भव है भविष्य में उसका पता चल सके, पर उनकी शक्ति सामर्थ्य दैनिक जीवन-व्यापार में हर कोई देखता है । भावनाओं के आधार पर ही सृष्टि की क्रीड़ा चलती रहती है । भावविहीन वातावरण सुनसान मरघट की तरह जान पड़ता है ।

मंत्र में यह भावनायें ही श्रद्धा-विश्वास—भक्ति माध्यम से ही कार्य करती हैं । उन्हें जितना अधिक प्रखर और पवित्र बनाया जाता है, मंत्रशक्ति उतनी ही शीघ्र फल देने लगती है । आधे-अधूरे मन से जपा गया मंत्र फल तो देता है, पर उसमें थोड़ी देर लगती है । मंत्रशक्ति को प्रभावशाली बनाने में अन्तः श्रद्धा की प्रगाढ़ता ही प्रमुख भूमिका निभाती है । यही वह शक्ति है जो मंत्र को जीवन्त और सद्यः फलदायी बनाती है ।

श्रद्धा होने पर किसी संत की दी हुई भभूत भी बहुमूल्य औषधि जैसा, पुण्य प्रसाद जैसा फल देती है, किन्तु उसी को यदि अविश्वास-उपहासपूर्वक कौतूहल की तरह काम में ले लिया जाय तो उससे किसी बड़ी सम्भावना की आशा नहीं की जा सकती । श्रद्धा से पत्थर में भी देवता जैसी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है । उसका अभाव हो तो प्रतिमा का खिलौने से बढ़कर और कोई अर्थ नहीं रह जाता ।

कहा जाता है कि "शंका डायन और मनसा भूत ।" झाड़ी से भूत इसी प्रकार उत्पन्न होते हैं । रात्रि के सुनसान जंगल में पीपल के पत्तों का खड़खड़ाना और उल्लू जैसे पक्षियों का विचित्र शब्दों में बोलना किसी डरपोक को भूतों की उपस्थिति का अनुभव कराता है और वह उतने भर से घबरा जाता है ।

इसी प्रकार गले में गायत्री का रक्षा कवच बाँधकर मनुष्य भयानक विपत्तियों के बीच में से गुजर जाता है । यह श्रद्धा का ही प्रतिफल है । अनेक व्यक्तियों को गायत्री महामंत्र की उपासना के फलस्वरूप अनेक प्रकार के कष्टों से छुटकारा पाते और अनेक सुविधायें उपलब्ध करते हुए देखकर हमें यही अनुमान लगाना चाहिए कि उस मंत्र जप में ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश अवश्य है जिनके कारण उपासक की अंतःभूमि में आवश्यक हेर-फेर होते हैं और वह असफलताओं एवं शोक-संतापों पर विजय प्राप्त करते हुए तेजी से समुन्नत, समर्थ एवं सफल जीवन की ओर अग्रसर होता है ।

रामायणकार ने "मंत्र परम लघु जासु बस" कहकर मंत्र की सर्वोपरि शक्ति और महत्ता का वर्णन किया है । मंत्र शक्ति की इतनी महत्ता होने पर भी सभी लोग वह सामर्थ्य नहीं जुटा पाते, उसकी सफलता में उन्हें संदेह बना ही रहता है । उसका कारण और कुछ नहीं, अंतःकरण का गहरा और उथला होना अर्थात् श्रद्धा और विश्वास की कमी का होना ही है । मंत्र में सन्निहित भावनाओं को प्रखर बनाने के लिए जिस परिष्कृत और समर्थ व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है, वह न जुटा पाने से मंत्र अपना सामान्य प्रभाव ही अभिव्यक्त करके रह जाता है । उससे कुछ विशेष लाभ मिलता नहीं । व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने का कार्य वाणी की सत्यनिष्ठा, सरलता और मधुरता से प्रारम्भ होता है और जीवन के प्रत्येक

क्रिया-कलाप में छा जाता है । जिस तरह मैले शीशे पर पड़ने वाली प्रकाश की किरणें अपना कोई प्रभाव नहीं दिखा पातीं, उसी तरह मलिन अंतःकरण में पड़ने वाले मंत्र का प्रकाश केवल मात्र उसी सफाई में लगा रहेगा । यदि व्यक्ति की जीवन दिशा अपने दोष-दुर्गुणों को ढूँढ़ निकालने और उनके स्थान पर सद्गुणों की प्रतिष्ठा की हुई हो तब तो उस परिमार्जन का भी महत्व है और उस स्थिति में मंत्र जप का प्रभाव विलम्ब से ही सही देखने को मिल जाता है । पर यदि आहार-विहार, रहन-सहन, वाणी-व्यवहार द्वारा अंतःकरण को मलविक्षेप से लादते रहा गया हो तो कितना ही अच्छा और अधिक मंत्र जप भी कोई प्रभाव-परिणाम प्रस्तुत न कर सकेगा ।

मंत्र केवल शब्द गुच्छक नहीं हैं। उसके साथ देवत्व की प्राण धारा जुड़ती है, तब उनका प्रभाव उभरता है । यदि उसके साथ साधक अपने देवत्व को विकसित करके संयुक्त कर सकने में सफल न हो सके तो समझना चाहिए कि उस शब्द समुच्चय का वह प्रभाव उत्पन्न न हो सकेगा जो शास्त्रकारों ने उसका महात्म्य एवं प्रतिफल बताया है । धनुष का चमत्कार उस पर चढ़ाकर चलाये गये वाण से ही उत्पन्न होता है । मनुष्य धनुष है और साधक का व्यक्तित्व वाण । दोनों का स्तर ऊँचा रहे तो ही लक्ष्य वेध की सफलता मिलेगी ।

इन्हीं वैज्ञानिक कारणों से सभी धर्मों ने अपनी उपासना पद्धति में मंत्रों का समावेश किया चाहे वह हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध या बहाई सभी धर्मों में मंत्र जप अनिवार्य रूप से ज़ुड़ा हुआ है । इन सभी मंत्रों के अपने-अपने प्रभाव और विशेषताएँ हैं । इन सभी विशेषताओं के अलावा गायत्री मंत्र में एक विशेषता यह है कि उसमें परमात्मा से सद्बुद्धि, ज्ञान और प्रकाश की कामना की गई है । यह विशेषता उसके २४ अक्षरों के शरीर के २४ महत्त्वपूर्ण स्थानों की प्रतिध्वनि से उत्पन्न विशेष "सर्किल" से इतर होती है । जिससे साधक पर तत्काल दोहरी प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है अर्थात् मन्त्र का सृष्टि के रहस्यों के उद्घाटन का प्रभाव, जप से पापों के क्षय और पुनर्जन्म से मुक्ति के प्रभाव के साथ-साथ सांसारिक श्री, समृद्धि, शक्ति और साधनों का भी लाभ इस तरह मिलने लगता है, जिससे न तो साधक संसार में भटकता है और न सांसारिक वैभव में आसक्त होता है । यह लाभ किसी और मन्त्र में न होने से गायत्री मंत्र को भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि महत्ता प्रदान की गई है ।

मन्त्र की परिभाषा में यह बताया गया है कि मन्त्र वह है जो सृष्टि के यथार्थ को उजागर करता है । गायत्री मन्त्र के नियमपूर्वक जप से उत्पन्न शब्द शक्ति का चक्रवात अनन्त ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करता है । इस यात्रा में जो लहरें या स्पन्दन आगे बढ़ते हैं वे परमात्मा से अभियाचित धियः तत्व की भावना से ओतप्रोत रहते हैं । यह शब्द शक्ति ब्रह्माण्ड की गोलाई में परिक्रमा करके जब लौटती है तो व्यक्ति के सतोगुणी जीवन के अनेक लाभ पूर्ववर्ती के आकाश में घूम रहे इतिहास उनकी विचारणायें, प्रेरणायें मन्त्र जप के साथ परिप्रेषित भाव तरंगों के साथ लौटकर साधक के मस्तिष्क से टकराने लगती हैं । गायत्री उपासना से मन में कभी-कभी यकायक ऐसे विचार पैदा होते हैं जो किसी संकट से बचाने, सफलता के लिए गूढ़ प्रेरणा देने वाले होते हैं । स्वयं उपासक समझ नहीं पाता कि यह विचार कहाँ से आ गया पर ध्वनि और मन्त्र का यही विज्ञान उसका कारण' होता है जिससे उपासक को विलक्षण स्वप्न, विलक्षण ध्वनियाँदिक दर्शन, पुलक और प्रकाश के दर्शन होते हैं । इस प्रक्रिया में यदि साधक की अपनी मनःस्थिति इस तरह की हो कि वह बुराइयों को संकल्पपूर्वक निकल फेंकने और मन को पारमार्थिक क्रिया-कलापों में लगाकर रखने में शिथिल न पड़े तो वह कुछ ही समय में गायत्री उपासना के चमत्कारी लाभों का अनुभव करने लगता है ।

इन सभी कारणों से गायत्री को सर्वश्रेष्ठ उपासना कहा गया है । पुराणों में उल्लेख है कि सुरलोक में देवताओं के पास कामधेनु गौ है, वह अमृतोपम दूध देती है जिसे पीकर देवता लोग सदा सन्तुष्ट, प्रसन्न तथा सुसम्पन्न रहते हैं । इस गौ में यह विशेषता है कि उसके समीप कोई अपनी कुछ कामना लेकर जाता है तो उसकी इच्छा तुरन्त पूरी हो ही जाती है । कल्पवृक्ष के समान कामधेनु गौ भी अपने निकट पहुँचने वालों की मनोवांछा पूरी करती है ।

यह कामधेनु गौ गायत्री ही है । इस महाशक्ति की जो देवता दिव्य स्वभाव वाला मनुष्य उपासना करता है, वह माता के स्तनों के समान आध्यात्मिक दुग्धधारा का पान करता है उसे किसी प्रकार कोई कष्ट नहीं रहता । आत्मा स्वतः आनन्द स्वरूप है । आनन्द मग्न रहना उसका प्रमुख गुण है । दुःखों के हटते और मिटते ही वह अपने मूल स्वरूप में पहुँच जाता है । देवता स्वर्ग में सदा आनन्दित रहते हैं । मनुष्य भी भूलोक में उसी प्रकार

आनन्दित रह सकता है, यदि उसके कष्ट कारणों का निवारण हो जाय । गायत्री कामधेनु मनुष्य के सभी कष्टों का समाधान कर देती है ।

## सत्परिणाम अनायास नहीं विज्ञानसम्मत

गायत्री उपासना का भावनात्मक एवं वैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से बड़ा महत्व है । भावना की दृष्टि से विचार किया जाय तो मानव-जीवन के चरित्र उत्कर्ष का बीजमंत्र उसे कहा जा सकता है । सामान्यतया मनुष्य सबसे अधिक उपेक्षा सद्बुद्धि की ही करता है, जिस औजार से उसे निर्माण कार्य करना है उसे ही टूटा-फूटा, भौंथरा और अंनगढ़ रखता है, इस भूल के फलस्वरूप ही उसे जीवन लक्ष्य से वंचित रह जाना पड़ता है ।

गायत्री मंत्र में ईश्वर से यही माँगा गया है कि हमें आपने मानव शरीर देकर असीम अनुकम्पा की है, अब मानव बुद्धि देकर हमें उपकृत और कर दीजिए ताकि हम सच्चे अर्थों में मनुष्य कहला सकें और मानव-जीवन को सार्थक बनाते हुए उसमें निहित जीवन में आनन्द का लाभ उठा सकें । गायत्री के २४ अक्षरों में परमात्मा के 'सवितु', 'वरेण्यं' 'भर्ग:' और 'देव' गुणों का चिन्तन करते हुए, उन्हें अपने जीवन में धारण करने की आस्था बनाते हुए यह संकल्प किया गया है कि परमात्मा के अनुग्रह एवं वरदान की एकमात्र विभूति, सद्बुद्धि को भी हम प्राप्त करते रहेंगे । अपने जीवन को उसी ढाँचे में ढालेंगे, जिसमें कि सद्बुद्धि सम्पन्न महामानव ढालते चले आये हैं । उसी संकल्प को बार-बार पूरी निष्ठा और भावनापूर्वक दुहराने का नाम गायत्री जप है । जप का सच्चा स्वरूप समझते हुए जो उस उपासना को करते हैं, वे उसका अनिर्वचनीय लाभ प्राप्त भी कर लेते हैं । वे इस अमृत को पाकर अमर बन जाते हैं और इस मृत्यु-लोक में रहते हुए भी दिव्य-लोक में निवास करने का स्वर्गीय आनन्द पग-पग पर अनुभव करने लगते हैं ।

वैज्ञानिक दृष्टि से गायत्री उपासना के अगणित भौतिक लाभ भी हैं । कष्टों और आपत्तियों में पड़े हुए, विपत्तियों में फँसे हुए, अभाव और दरिद्र से पीड़ित, असफलता की ठोकरों से विक्षुब्ध व्यक्ति यदि इस महामंत्र का आश्रय लेते हैं तो उन्हें आशा की किरणें दृष्टिगोचर होती हैं । जिन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दीख रहा था और आपत्तियों के कुचक्र में पीसे जाने का भय सता रहा था, उन्हें इस उपासना से नया प्रकाश मिला है । अभावग्रस्त व्यक्ति दारिद्र्य से और रुग्ण मनुष्य पीड़ाओं से छुटकारा प्राप्त करते देखे गये हैं ।

कामनाओं की जलती हुई आग तृप्ति और शान्ति में परिणत होते देखी गई है । इस अवलम्बन का सहारा लेकर गिरे हुए लोग ऊपर उठते हैं । इस प्रकार के प्रतिफल किसी जादू से नहीं, वरन् एक वैज्ञानिक पद्धति से उपलब्ध होते हैं । गायत्री उपासना मनुष्य के विचारों और कार्यों में एक नया मोड़, एक नया परिवर्तन प्रस्तुत करती है । जिसका अन्तर्जगत बदले तो उसके वाह्य-जीवन में परिवर्तन प्रस्तुत होना ही चाहिए, होता भी है । इसे ही लोग गायत्री माता का अनुग्रह एवं वरदान भी मानते हैं ।

अनेक व्यक्तियों को गायत्री उपासना के फलस्वरूप अनेक प्रकार के कष्टों से छुटकारा पाते और अनेक सुविधायें उपलब्ध करते हुए देखकर हमें यही अनुमान लगाना चाहिए कि उस साधन पद्धति में ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश है, जिनके कारण साधक की अन्त:भूमि में आवश्यक हेर-फेर उपस्थित होते हैं और वह असफलताओं एवं शोक-सन्तापों पर विजय प्राप्त करते हुए तेजी से समुन्नत, समर्थ एवं सफल-जीवन की ओर अग्रसर होता है ।

गायत्री उपासना से साधकों की सामयिक कठिनाइयों का निवारण होने के समाचार आये दिन मिलते रहते हैं । इसी प्रकार प्रगति पथ पर आगे बढ़ने की सुविधा संवर्धन की ऐसी घटनाएँ भी सामने आती रहती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि किसी अदृश्य सहायता के सहारे साधक को ऐसे लाभ जिनकी प्रस्तुत परिस्थितियों में केवल कल्पना भर थी—आशा नहीं । कष्ट निवारण और सुविधा संवर्धन की अनेकानेक घटनाओं को गायत्री उपासना का सत्परिणाम कहा जाता है । यह घटनायें किम्वदन्तियाँ नहीं हैं और न अत्युक्तियाँ । जो सामने हैं उसमें शंका करने की गुंजायश नहीं रह जाती । आये दिन उपलब्ध होती रहने वाली सूचनाओं की जाँच-पड़ताल करके यह सहज ही जाना जा सकता है कि उन घटनाओं में कुछ अलौकिकता है या यह सब ऐसे ही अनायास-संयोगवश घटित हुआ समझा जा सकता है ।

ऐसा भी हो सकता है कि अनायास ही कोई संकट टल गये हों और संयोगवश ही किन्हीं को कोई बड़ी उपलब्धियाँ मिल गई हों । यह भी सम्भव है कि उन उपलब्धियों का श्रेय भावुक लोगों ने गायत्री उपासना को

दे दिया हो । कुछ ऐसे भी प्रसंग हो सकते हैं, पर अधिकांश के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे संयोगवश हुए । वस्तुतः इस संसार में संयोगवश कुछ भी नहीं होता । जिन्हें हम आकस्मिक या अनायास कहते हैं, वे सब भी प्रकृति के नियमानुसार ही होते हैं । अन्तर इतना ही रहता है कि जिन क्रियाओं की प्रतिक्रिया का अपनी स्वल्प बुद्धि को ज्ञान है उन्हें अस्वाभाविक कहा जाता है और जो अपने अपरिचित प्रकृति नियमों के अनुसार होता है वह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है ।

गायत्री उपासना के द्वारा मिलने वाले सत्परिणाम भी लगते आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित हैं पर वस्तुतः वैसी कोई बात नहीं । जो घटित होता है वह तथ्यों पर आधारित रहता है । उपासना की प्रतिक्रिया भी इसी कसौटी पर भली प्रकार परखी जा सकती है ।

उपासना का विज्ञान गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयत्न किया जाय तो इसका प्रभाव साधक की अपनी मनोभूमि में सात्विकता की मात्रा का संवर्धन होता है । इसे एक ऐसी आकर्षण शक्ति कह सकते हैं जो अन्तरंग के रोम-रोम में प्रसुप्त पड़ी हुई दिव्य क्षमताओं को जगाती झकझोरती है । वे उगती बढ़ती हैं तो सहज ही उनका प्रभाव व्यक्तित्व के विभिन्न क्षेत्रों में उभार उत्पन्न करता है । विकसित व्यक्तित्व अपने चिन्तन को सुधारता है । अनुपयुक्त दृष्टिकोण अपनाते ही अवांछनीय इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं । संचित कुसंस्कार उनका परिपोषण करते हैं । दूषित वातावरण से, दुष्ट संगति से उन्हें और अधिक बल मिलता है जिनके कारण अनावश्यक और अहितकर कामनाएँ मनःक्षेत्र पर छाई रहती हैं । इनकी पूर्ति असम्भव है । समस्त संसार का वैभव मिलकर भी एक व्यक्ति की कामनाएँ पूरी नहीं कर सकता । रावण, हिरण्यकश्यप और सहस्त्रबाहु, वृत्तासुर जैसे असुरों ने परम सीमा तक वैभव संग्रह करने में सफलता पा ली थी तो भी उनका असंतोष दूर न हुआ । अन्य किसी की भी अवांछनीय मनोकामनाएँ पूरी हो सकेंगी—अथवा पूरी होने पर सन्तोष मिल सकेगा यह सम्भव नहीं । जितना मिलेगा उससे दूनी, चौगुनी तृष्णा उस उपलब्धि के साथ-साथ ही आग में घी डालने की तरह भड़क उठेगी । इस तथ्य के रहते जब भी गायत्री उपासकों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं इसके दो कारण हैं । एक तो यह है कि चिन्तन में उत्कृष्टता की मात्रा बढ़ने से उचित-अनुचित का, आवश्यक-अनावश्यक का विवेक बढ़ जाता है और अवांछनीयता की आग अनायास ही ठण्डी हो जाती है । दूसरा कारण यह है कि उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिस स्तर का चिन्तन, कर्तृत्व और व्यक्तित्व चाहिए वह सात्विकता की अभिवृद्धि के साथ-साथ ही बढ़ने लगता है । अपनी पात्रता के अनुरूप ही कामना के स्तर में काट-छाँट कर ली जाती है । साथ ही प्रयासों में उपयुक्त रीति-नीति का समन्वय हो जाने से सफलता सरलतापूर्वक जल्दी और अभीष्ट मात्रा में मिलने लगती है । यह सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया ही लोगों को चमत्कार दीखती है और देवता की अनुकम्पा से मिला हुआ वरदान प्रतीत होती है ।

देवता का वरदान भी एक नियम, क्रम और सिद्धान्त पर आधारित है । उसमें न तो अंधेरगर्दी की गुंजायश है और न पक्षपात की । पूजा करने वाले को देवता निहाल करें और न करने वालों पर लाठी लेकर बरस पड़ें ऐसा हो ही नहीं सकता । यदि ऐसा होने लगेगा तो संसार में घोर अव्यवस्था और अराजकता छा जायेगी । सफलताओं के लिए पात्रता और पुरुषार्थ की शर्त अनादि काल से चली आ रही है । इसी कारण लोग क्षमता बढ़ाने और साधन जुटाने के लिए प्रयत्न पराक्रम करते हैं । यदि सृष्टि की सुव्यवस्था बनाये रखने वाली यह प्रथा उलट जाय और देवता के अनुग्रह से मनोकामनाएँ पूरी हो जाया करें तो फिर निश्चय ही संसार की क्रम व्यवस्था ही पूरी तरह उलट जायेगी । फिर न कोई अपनी पात्रता बढ़ायेगा और न सफलता के लिए अभीष्ट पुरुषार्थ करने की आवश्यकता समझेगा । देवता यदि सस्ती पूजा-पत्री से प्रसन्न हो जाते हैं तो इतना करने में तो किसी बालक को भी कुछ कठिनाई न होगी । पूजा-विधानों पर दृष्टिपात करने से वे स्वल्प समय, स्वल्प श्रम और स्वल्प खर्च में पूरे हो सकने वाले दीखते हैं । यदि स्थिति वैसी ही रही होती जैसी कि भ्रम-ग्रस्तों द्वारा समझती जाती है तो फिर संसार का एक भी आदमी उस सस्ते मोल की देव कृपा को खरीदने से वंचित न रहता और तब किसी की भी मनोकामनाएँ अपूर्ण न रहतीं ।

इसका अर्थ यह नहीं कि देवता किसी पर अनुकम्पा करते ही नहीं—दैवी अनुग्रह से अनेकों को आशाजनक लाभ मिलते हैं । पर वह सारी अनुकम्पा पद्धति विशुद्ध वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण सिद्धान्तों पर अवलम्बित है । उपासना का तत्त्वज्ञान यदि सही रीति से समझा गया होगा और उसके उपचारों को यदि सही रीति से अपनाया गया

होगा तो उसकी सुनिश्चित प्रतिक्रिया साधक के आत्म परिष्कार के रूप में प्रस्तुत होगी । साधन और सात्विकता एक ही तथ्य के दो नाम-रूप हैं । यदि साधना सच्चे सिद्धान्तों के साथ चल रही होगी तो चिन्तन और क्रिया-कलाप में सात्विकता निश्चित रूप से छलकेगी और इस उफान का सत्परिणाम अनेकों प्रत्यक्ष आधारों के सहारे समस्याओं के समाधान और सुविधाओं के सम्वर्धन के रूप में सामने दिखाई देगा । मनःस्थिति में अन्तर आते ही परिस्थिति में अन्तर पड़ना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होगा । अन्तरंग का सुधार बाहर के सुधार का परिवर्तन उत्पन्न न करे ऐसा हो ही नहीं सकता । स्वजनों का विरोध, असहयोग, तिरस्कार प्रायः अकारण ही नहीं बरस पड़ता उसके मूल में कुछ अपनी भी अवांछनीयताएँ होती हैं, उनके दूर होते ही सम्पर्क क्षेत्र के व्यक्ति अनुकूल बनते हैं, सहयोग करते हैं फलतः अवरोध बड़ी मात्रा में सरल हो जाते हैं । प्रगति और कुछ नहीं, प्रतिकूलताओं के घटने और अनुकूलताओं के बढ़ने का ही दूसरा नाम है । इसमें आधारभूत कारण अपना ही व्यक्तित्व होता है । उसमें तामसिकता छाई रहे तो अनेक प्रकार के विग्रह उत्पन्न होते रहेंगे और यदि सात्विकता की मात्रा बढ़ेगी तो समृद्धि और प्रगति की परिस्थितियाँ सहज ही बनती चली जायेंगी ।

देवताओं की शक्ति सूक्ष्म जगत में मौजूद है । यह देवता ईश्वर से प्रथक कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । उसी महासमुद्र की लहरें हैं । उन्हें महासूर्य विभिन्न स्तर की किरणें कहा जा सकता है । वे सृष्टि व्यवस्था को सुसंतुलित रखने का ईश्वरीय प्रयोजन पूरा करती रहती हैं। धर्म का संरक्षण और अधर्म का उन्मूलन उनकी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु रहता है । इसी आधार पर उनकी प्रसन्नता, अप्रसन्नता निर्भर रहती है । यही वह आधार है जिसके निमित्त वे सहयोग देते और विरोध करते रहते हैं । अकारण वे किसी पर प्रसन्न होते हैं, न रुष्ट । पूजा से देवता की प्रसन्नता की संगति जुड़ती तो है पर उसके मध्य में एक और तथ्य को विद्यमान देखना पड़ेगा। सच्ची पूजा से सात्विकता की सुनिश्चित अभिवृद्धि पर व्यक्तित्व में यह देवत्व का अभिवर्धन ही देव अनुग्रह के रूप में प्रकट-परिणत होता है । यदि पूजा के उपचार, कर्मकाण्ड मात्र को ही देवाराधन मान लिया जाय और उतने भर से तरह-तरह के वरदान मिलने की बात सोची जाय तो यह मान्यता शाश्वत तथ्यों के विपरीत एक बचकानी आत्म-प्रवंचना ही कही जायगी । देवता उतने ओछे हो ही नहीं सकते कि पूजा उपचार के कर्मकाण्डों को भी भक्ति भावना मान लें, अन्तरंग की स्थिति न समझ सकें, पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना पुजारियों पर अन्धाधुन्ध अनुकम्पा बरसाना आरम्भ कर दें, यदि कोई देवता करेगा तो उसे सृष्टि विधान, ईश्वरीय नियम मर्यादा के प्रतिकूल काम करने वाला कहा जायेगा। ऐसी दशा में उस बेचारे की अपनी स्थिति ही बड़ी दयनीय एवं उपहासास्पद बन जायेगी । तब उसे देवता कहलाने तक का अधिकार न रहेगा ।

देवताओं का अनुग्रह सीधा धन सम्पदा के रूप में नहीं मिलता । वे स्वयं दिव्य हैं, चेतन हैं । इसलिए उनके अनुदान भी दिव्य एवं चेतन ही हो सकते हैं । न वे स्वयं भौतिक पदार्थों से बने हैं और न उनके उपहार भौतिक पदार्थों या परिस्थितियों के रूप में कहीं बरसते हैं । देवता के अवतरण का क्षेत्र अन्तःकरण है । अन्तःकरण में देवत्व की कितनी किरणें उतरीं, कितनी दिव्य प्रेरणाएँ उभरीं इसी पर्यवेक्षण से यह जाना जा सकता है कि किस पर किस मात्रा में देवता प्रसन्न हो रहे हैं और साधक को उनका अनुग्रह किस परिमाण में उपलब्ध हो रहा है ।

पुरुषार्थ का प्रतिफल पैसे के रूप में हाथ लगता है । उस कमाई के बदले बाजार से इच्छित वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं । श्रमिक को सीधे उसकी अभीष्ट वस्तुएँ वेतन के रूप में नहीं मिलतीं । ठीक इसी प्रकार देवता अपने भक्तों को सीधे धन-वैभव आदि नहीं देते । वे सत्प्रेरणाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ प्रदान करते हैं । वास्तविक वैभव यही है । विभूतियाँ उन्हीं को कहते हैं । यह सम्पदाएँ जिनके पास होंगी वे उस हुण्डी को किसी भी दुकान पर भुना सकते हैं और किसी भी क्षेत्र की किसी भी स्तर की सफलता प्राप्त कर सकते हैं । पिता ने बच्चे को पढ़ा दिया, पढ़ाई की कीमत पर उसने अच्छा पद और वेतन प्राप्त कर लिया । यही घुमावदार तरीका देव अनुग्रह के रूप में क्रियान्वित होता है। न तो बाप अपने सुयोग्य बेटे को उच्च पद एवं अच्छा वेतन देता है और न देवता किसी की छत पर धन-वैभव बरसाते हैं । साधक को उपासना के फलस्वरूप सत्प्रेरणाएँ मिलती हैं । सन्मार्ग पर चलने के संकल्प उभरते हैं । सत्संकल्पों को निष्ठापूर्वक अपनाये रहना और उन्हें क्रियान्वित करने का साहस मिलना देवता का प्रत्यक्ष वरदान है । इतने भर अनुग्रह

को पर्याप्त भी कहा जा सकता है । सत्प्रेरणाओं का क्रियान्वयन तो मनुष्य का अपना काम है । उपासना के साथ साधना का युग्म इसीलिए अविच्छिन्न रूप से ज़ुड़ा हुआ माना गया है । साधक को मात्र पूजा कर लेने मात्र से ही निवृत्ति नहीं मिल जाती वरन् उपासना का प्राण कही जाने वाली जीवन साधना को भी श्रद्धापूर्वक साधना पड़ता है । बिजली के दो तार मिलने पर करेंट बहने लगता है । उपासना के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सद्भावना को कार्य रूप में परिणत करना ही साधना है । साधक का उत्तरदायित्व उन दोनों ही प्रयोजनों को पूरा करता है । दोनों कदम बढ़ाते हुए ही सर्वतोमुखी प्रगति के पथ पर चलना और लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव होता है। सच्चे साधक पूजा उपासना तो करते ही हैं साथ ही देवानुग्रह के रूप में बरसने वाली दिव्य प्रेरणाओं को भी शिरोधार्य करते हैं । उनकी गतिविधियों में जिस अनुपात से देवत्व का समावेश होता है, उतनी सुख-सम्पदायें-वैभव-विभूतियों का लाभ मिलता चला जाता है ।

कोई व्यक्ति यदि पूजा उपासना तो तरह-तरह की करता है किन्तु आत्म-परिष्कार की ओर ध्यान नहीं देता तो समझना चाहिए कि उसकी उपासना देवता तक पहुँची ही नहीं, उसे प्रसन्न करने में समर्थ हुई ही नहीं । यदि पहुँचती तो प्रत्युत्तर अवश्य ही आता और बदले में सद्भावनाएँ उमड़तीं, सद्विवेक जागता और सत्कर्मों में असाधारण उत्साह उत्पन्न होता । जीवन क्रम स्वार्थान्ध बना रहे और लोभ-मोह से, वासना-तृष्णा से आगे की कुछ बात सूझ ही न पड़े तो समझना चाहिए कि देवाराधन के मूलभूत सिद्धान्त को समझने में साधक ने कोई भयंकर भूल की है और किसी भ्रम जंजाल की आत्म-प्रवंचना में भटक रहा हैं। ऐसी दशा में यदि उसे निराश रहना पड़े—मनोकामना पूर्ण न होने की शिकायत करनी पड़े तो उसमें किसी को किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं होना चाहिए ।

गायत्री महाशक्ति सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री है । उसे ऋतम्भरा प्रज्ञाब्रह्मविद्या कहा गया है । वेदमाता होने का तात्पर्य यही है कि उसकी उपस्थिति का प्रमाण परिचय दूरदर्शी विवेकशीलता के रूप में मिलता है । यही वह हुण्डी है जिसके बदले में अन्तःकरण में उल्लास उभरता है। चिन्तन में उत्कृष्टता का अनुपात बढ़ता है और क्रिया-कलाप में आदर्शवादिता की झलक क्रमशः अधिकाधिक मात्रा में मिलती चली जाती है । यही है गायत्री माता का प्रत्यक्ष अनुग्रह जिसके आधार पर साधना की सफलता को परखा जा सकता है । यह अनुकम्पा जिस पर बरसेगी उसे अपनी सदाशयता और कर्त्तव्यनिष्ठा से हर घड़ी आत्म-सन्तोष और आत्म-गौरव का आनन्द मिलता रहेगा । ऐसे लोग वाह्य जगत में उच्चस्तरीय सफलताएँ पाते हैं । ओछे मनुष्य जहाँ वासना-तृष्णा की कीचड़ में लोटने को सब कुछ मानते हैं वहाँ आन्तरिक उत्कृष्टता के सहारे महामानव बना जा सकता है । लोक-श्रद्धा और जन-सहयोग की उन्हें कमी नहीं रहती । इन उपलब्धियों के सहारे वे इतने बड़े काम कर गुजरते हैं—इतने ऊँचे स्तर तक पहुँच सकते हैं जिन्हें सामान्य लोगों की तुलना में दैवी अनुग्रह से उपलब्ध हुए चमत्कार वरदान मानने में कोई अत्युक्ति नहीं है ।

गायत्री उपासना के सत्परिणाम असंदिग्ध हैं । अथर्ववेद में वेदमाता के अनुग्रह से आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रव्य और ब्रह्मवर्चस इन सात लाभों का उपलब्ध होना कहा गया है । इस प्रतिपादन में रत्तीभर भी अत्युक्ति नहीं है । आये दिन मिलने वाले समाचारों से विदित होता रहता है कि माता का अंचल पकड़ने वालों को विपत्तियों से छूटने, सुविधा साधन बढ़ाने एवं सफलताएँ पाने में आशाजनक सहायता मिली है । ऐसी घटनाओं के मूल में साधक के चिन्तन एवं चरित्र में सात्विकता की अभिवृद्धि ही मूल कारण होती है । जहाँ व्यक्तित्व निकृष्ट ही बना रहने पर कोई विशिष्ट उपलब्धि मिली हो उसे संयोगवश अन्धे के हाथों बटेर लगने की उक्ति घटित हो जाने के समान ही समझना चाहिए । गायत्री उपासना से और उसके सत्परिणाम, अध्यात्म विज्ञान के विशुद्ध तथ्य और सिद्धान्तों पर आधारित हैं । उनमें न किसी सन्देह की गुंजायश है और न आश्चर्य करने की । ऋतम्भरा प्रज्ञा को अन्तःकरण में धारण करके जीवन नीति का संचालन-यही है गायत्री का तत्व ज्ञान और उसकी उपासना के आश्यर्चजनक फल का रहस्योद्घाटन । सच्चा गायत्री उपासक न केवल अपने के लिए आहुति देकर सुख-शान्ति का उपार्जन करता है वरन् अपनी नाव में बिठाकर असंख्यों को उस पार पहुँचाने में समर्थ होता है ।

गायत्री का महात्म्य भावनात्मक दृष्टि से भी है और वैज्ञानिक दृष्टि से भी । इसी से इस महान् अध्यात्म संबल को श्रद्धापूर्वक अपनाये रहने और उसे नित्य कृत्यों में

स्थान दिये रहने का शास्त्र ने निर्देश दिया है । ऋषियों ने प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति के लिए गायत्री की निष्ठापूर्वक उपासना करने के लिए जोर दिया है और जो उस उपयोगी व्यवस्था का लाभ नहीं उठाना चाहते उनकी भूल को, कटु भर्त्सना के साथ निंदनीय भी ठहराया है ।

गायत्री उपासना हमारे अपने हित में ही है । इस माध्यम से मनुष्य निश्चय ही अपनी बहुत आत्मोन्नति कर सकता है । जिन्होंने अभी इस मार्ग पर चलना आरम्भ नहीं किया है उन्हें चाहिए कि अवलम्बन के एक परीक्षण के रूप में वे गायत्री उपासना आरम्भ करें और देखें कि उनके उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना उत्पन्न करने में कैसे आश्चर्यजनक ढंग से यह उपासना सहायक हो रही है ।

## मंत्र शक्ति का महत्व

शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में भगवान का नाम स्मरण करने और मंत्र की महिमा बहुत अधिक है । इसका मुख्य कारण यह है कि इस युग में मिथ्या नाम और रूपों की संख्या बहुत अधिक हो गई है । वैसे मनुष्य में इतनी शक्ति है कि वह समाज का सुधार कर सकता है, पर मनुष्य की आयु अल्प होती है और समाज में रहने से छोटी उम्र में ही उसमें मिथ्या संस्कारों का उदय हो जाता है । इन संस्कारों के कुप्रभाव का मुकाबला मंत्र शक्ति द्वारा ही सम्भव होता है ।

मनुष्य का जीवन भूतकाल के संस्कारों की स्मृति और वर्तमान संयोगों के दबाव से चलता है । इन दोनों कारणों के बीच में सामञ्जस्य रहना चाहिये । छोटी उम्र में जो संस्कार पड़ जाते हैं उनका स्मरण बहुत ज्यादा रहता है । अगर वे संस्कार उत्तम हों तो उनमें लाभ पर्याप्त हो सकता है । पर वर्तमान समय के जल्दबाजी के जीवन में न तो माँ बाप को इतनी फुर्सत रहती है कि बालक के संस्कारों को ठीक करने में समय दे सकें और न स्कूलों में शिक्षकों को ही इस काम के लिए समय मिलता है । इसके अतिरिक्त माँ बाप और शिक्षक भी समाज के दृष्टिकोण के अनुसार चलने को विवश रहते हैं । यह तो सभी जानते हैं कि वर्तमान समय में समाज में अनेक प्रकार की गलत बातें फैली हुई हैं । इस काल में इन्द्रिय-सुख की लालसा दिन पर दिन बढ़ती जाती है, इसलिये मनुष्यों का अधिकांश समय "अर्थ" और "काम" इन दो पुरुषार्थों में ही खर्च हो जाता है । जो विचारधारा योरोप में बह रही है उसका बहुत कुछ असर पिछले दो सौ वर्षों में हमारे देश पर भी पड़ा है । सौभाग्य की बात इतनी ही है कि अभी हमारे देश में बहुत सा प्राचीन साहित्य बच रहा है और उसकी मदद से मनुष्य को अनेकता से एकता का पाठ पढ़ने को मिल सकता है । उसी साहित्य का एक अंग मंत्र शक्ति भी है ।

शायद कोई भाई यह शंका करे कि मन्त्र जपने में तीन-चार घंटा खर्च करने की अपेक्षा उतने समय में अन्य उद्योग करके अगर किसी गरीब मनुष्य को खाना, कपड़ा दिया जा सके, तो क्या यह ज्यादा पुण्य का काम न होगा ? यह ठीक है कि गरीब मनुष्य की सहायता करना भी पुण्य का कार्य है और कोई उसको बुरा नहीं कह सकता, पर मंत्र शक्ति से नया जीवन मिलता है और मोक्ष का रास्ता खुल जाता है । गीता में कहा है कि "यज्ञ, दान और तप ये तीनों मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं, यज्ञों में जप यज्ञ श्रेष्ठ है ।" इसलिये संसार का कार्य करते रहने पर भी भगवान का नाम जपना परम कल्याणकारी है । अपनी जाति की भलाई करने का स्वभाव तो एक पशु में भी पाया जाता है, पर ज्ञान रखने वाले मनुष्य को इससे ज्यादा ऊँचा जीवन व्यतीत करना चाहिए । आजकल के कच्ची बुद्धि वाले मनुष्य इस विषय पर भली प्रकार विचार तो नहीं करते, केवल जल्दबाजी के संस्कार के प्रभाव से समाज की नकल करने लग जाते हैं और उसी को ठीक मान लेते हैं । ऐसे जल्दबाजी के स्वभाव को संयमित करने के लिये पहले मन्त्र-जप की आवश्यकता होती है । कुछ समय बाद जब यह उद्देश्य सिद्ध हो जाय, तब गुरु के उपदेश से मनुष्य परमात्मा का ध्यान कर सकता है और आत्मज्ञान का अधिकारी बनता है, क्योंकि परमात्मा का निवास सर्वत्र है इसलिये मन्त्र जप करने वाला सब में परमात्मा को देखने का प्रयत्न करेगा और इस प्रकार उसके भीतर अद्वैत भाव का उदय हो सकेगा ।

अनेक द्वैत-भाव वाले भी ऐसे होते हैं कि उनकी संगति से थोड़े समय के लिये अद्वैत-भाव उत्पन्न हो जाता है । यह योरोप के लोगों का मनोभाव है । इन लोगों का अंतिम लक्ष्य यही रहता है कि मनुष्य के साथ मुनष्य का सा बर्ताव करना । पर भारतीय जीवन का उद्देश्य साधारण मानव जीवन से ऊपर उठकर दिव्य जीवन प्राप्त करना माना गया है । पिछले सौ-दो सौ वर्षों में व्यापार, शिक्षा, शासन आदि का सम्बन्ध होने से हमने जहाँ पश्चिम वालों से कुछ गुण सीखे हैं वहाँ अनेकों मूर्खता की बातें भी ग्रहण कर ली हैं । अब हमको जीवन मार्ग

का संशोधन करना पड़ेगा, जिससे पश्चिम के मनुष्य भी हमारे यहाँ अद्वैत ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने आवें ।

वर्तमान सामाजिक जीवन में जो मनुष्य दूसरों के हित का ख्याल रखते हैं, वे भी इन्द्रिय सुख में डूबे रहते हैं । पर यह दैवी जीवन का मार्ग नहीं है । ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिए सच्ची वाणी और सच्चे शब्द की आवश्यकता है । जिस प्रकार एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ सम्बन्ध करने के लिए बात करनी पड़ती है और उसमें शब्द का ही प्रयोग होता है, उसी प्रकार भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी शब्द की आवश्यकता होती और यही शब्द "मंत्र" कहा जाता है । मंत्र-शक्ति से एक नवीन आकर्षण युक्त क्षेत्र तैयार होता है और उसमें भक्त तथा भगवान के बीच का भेद दूर हो जाता है । आधुनिक विज्ञान में भी कहा गया है कि "एक आकर्षण के क्षेत्र में देश और काल का अस्तित्व जाता रहता है ।"

## मंत्र की शक्ति

लगभग पचास वर्ष पहले की बात है कि वाणी के प्रसिद्ध विद्वान बाबू भगवानदास अपने मकान के बाहर बैठे हुए थे । उसी समय एक अंधा ब्राह्मण तथा एक अन्य व्यक्ति जो उसका हाथ पकड़ कर ले जा रहा था, वहाँ पर आये और भोजन को कुछ मांगने लगे । बाबू भगवानदास ने कहा कि "अभी भोजन तैयार होने में एक घंटा की देर है, इसलिये अगर एक घंटा बाद आओ तो भोजन मिल सकेगा ।"

अंधे ब्राह्मण ने कहा कि "मुझे तो दिखलाई पड़ता नहीं, कहीं घूम फिर सकना मेरे लिये कठिन जान पड़ता है, इसलिये आप स्थान बता दें तो एक घंटे तक मैं यहीं बैठा रहूँगा ।" वे लोग दालान में बैठ गये । कुछ देर बाद बाबू साहब ने अंधे भिखारी से दो एक बातें कीं तो उनका उत्तर उसने ऐसे ज्ञान युक्त ढंग से दिया कि उनको मालूम हो गया कि यह कोई विद्वान आदमी है । इसके पश्चात उन्होंने उससे ॐकार की उपासना के सम्बन्ध में बातचीत की तो मालूम हुआ कि उसे इस विषय का 'प्रणववाद' नामक एक प्राचीन ग्रंथ मुखाग्र है ।

बाबू साहब को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि आप अब कुछ समय इसी स्थान पर निवास करो और मुझे "प्रणववाद का रहस्य" समझाओ । इसके पश्चात् उन्होंने दो पंडितों को नियत करके 'प्रणववाद' का सम्पूर्ण ग्रंथ लिखवा लिया और फिर अंग्रेजी में उसका अनुवाद करके एक बहुत श्रेष्ठ ज्ञान प्रदायिनी रचना प्रकाशित करा दी ।

यह सभी जानते हैं कि पुराने जमाने में पुस्तकें छापी नहीं जाती थीं और पुस्तकों को लिखकर रखना भी बड़े श्रम और अर्थ व्यय का कार्य था—उस समय अनेक व्यक्ति ऐसे पाये जाते थे जिनको हजारों और लाखों श्लोकों की संख्या वाले ग्रंथ याद थे । श्री मद्भागवत में १८ हजार श्लोक हैं, स्कन्दपुराण उससे भी बड़ा है, महाभारत में एक लाख श्लोक बतलाये जाते हैं । ऐसे-ऐसे अनेक महान ग्रंथ उस समय के लोग बिना लिखे ही बना लेते थे और याद भी रखते थे । ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति जो उस समय के ब्राह्मणों में दिखलाई पड़ती थी उसका भी मूल आधार यही था कि वे त्रिकाल संध्या, गायत्री मंत्र की उपासना, सदाचार तथा संयम का पालन करते थे । इसके लिये सात्विक आहार पर तथा सात्विक वातावरण में रह कर अपने को इस प्रकार की साधना के योग्य बनाते थे । इस प्रकार उनको ऐसी मंत्रशक्ति प्राप्त हो जाती थी जिससे वे अनेक आश्चर्यजनक कार्यों को सिद्ध कर दिखाते थे ।

यों तो बहुत से मंत्र हैं । उनके सिद्ध करने और प्रयोग करने के विधान अलग-अलग हैं और फल भी अलग-अलग हैं । परन्तु एक मन्त्र ऐसा है जो सम्पूर्ण मन्त्रों की आवश्यकता को अकेला ही पूरा करने में समर्थ है । वह गायत्री मंत्र है । गायत्री मंत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद चारों वेदों में है । इसके अतिरिक्त और कोई ऐसा मन्त्र नहीं है जो चारों वेदों में पाया जाता हो । गायत्री वास्तव में वेद की माता है । तत्वदर्शी महात्माओं का कहना है कि गायत्री मंत्र के आधार पर वेदों का निर्माण हुआ है, इसी महा मंत्र के गर्भ में से चारों वेद उत्पन्न हुए हैं । वेदों के मंत्र दृष्टा ऋषियों ने जो प्रकाश प्राप्त किया है वह गायत्री से ही प्राप्त किया है ।

निःसन्देह वर्तमान काल में गायत्री मंत्र की आराधना आध्यात्मिक उन्नति तथा श्रेष्ठ मनोकामनाओं की सिद्धि का सबसे सरल और अचूक उपाय है । उसको विधि से करना छोड़ दिया गया है, इसी से विशेष फल देखने में नहीं आता और लोगों की श्रद्धा भी वैसे-वैसे ही कम होती जाती है । इस स्थिति में सुधार होने का मार्ग यह है कि प्रथम तो जिस मंत्र का जप करना हो उसे नियमानुसार

दीक्षा लेकर गुरु से ग्रहण किया जाय और तब उन्हीं की बतलाई विधि से उसका अनुष्ठान किया जाय । बीच-बीच में भी गुरु से इस सम्बन्ध में अपना अनुभव बतलाते हुए परामर्श ले लिया जाय । फिर इसको जितना मन लगाकर परिश्रमपूर्वक किया जायगा उतनी ही शीघ्र और अव्यर्थ सिद्धि प्राप्त होगी । इसलिये जो व्यक्ति वास्तव में मंत्र-जप द्वारा लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें इस सम्बन्ध में सब प्रकार के नियमों का पालन करना चाहिये। सबसे पहला नियम तो यही है कि मन्त्रानुष्ठान स्वयं किया जाय । किसी दूसरे से कराया अनुष्ठान कदापि उतना अधिक फल नहीं दे सकता । फिर जप के लिये शुद्ध स्थान ढूँढ़े जैसे कोई तीर्थ या सिद्धपीठ आदि। भोजन की पवित्रता का ध्यान रखना परमावश्यक है, क्योंकि शरीर और मन का निर्माण भोजन के तत्वों द्वारा ही होता है और यदि उसमें किसी प्रकार का दोष हुआ तो जप में बाधा पड़ जाना अवश्यम्भावी है । इसके सिवाय और भी बहुत सी छोटी-बड़ी बातें हैं जिनका वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार किया है—

"स्त्री-संसर्ग, उनकी चर्चा तथा जहाँ वे रहती हों वह स्थान छोड़ देना चाहिये । स्त्री साधिकाओं के लिये पुरुषों के सम्बन्ध में भी यह नियम समझ लेना चाहिए । क्षौर, उबटन, बिना भोग लगाये भोजन और बिना संकल्प के कर्म नहीं करना चाहिये । केवल आँवले से अथवा पंचगव्य से स्नान करना चाहिये । स्नान, आचमन, भोजन आदि मंत्रोच्चारण के साथ ही हों । यथाशक्ति तीनों समय, या दो समय, या एक समय स्नान, संध्या और इष्टदेव की पूजा अवश्य करनी चाहिये । जप के समय माला पूरी हुये बिना बातचीत नहीं करनी चाहिये ।"

यदि जप करते समय एक शब्द का उच्चारण हो जाये तो एक बार प्रणव का उच्चारण कर लेना चाहिये । यदि कहीं बहुत बात कर ली जाय तो आचमन तथा अंगन्यास करके पुनः माला प्रारम्भ करना चाहिये । छींक और अस्पर्श्य स्थानों का स्पर्श हो जाने पर भी यही विधान है । जप करते समय यदि शौच, लघुशंका आदि का वेग हो तो उसका निरोध नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसी अवस्था में इष्ट और मंत्र का चिन्तन तो होता नहीं, मल-मूत्र का चिन्तन होने लगता है । मलिन वस्त्र, केश और मुख से जप करना शास्त्र विरुद्ध है । जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं—आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अंगों का स्पर्श और क्रोध । जप में बहुत जल्दबाजी न करनी चाहिये, न बहुत विलम्ब । गाकर जपना, सिर हिलाना, लिखा हुआ पढ़ना, अर्थ न जानना, बीच-बीच में भूल जाना—ये सब मन्त्रसिद्धि के प्रतिबन्धक हैं । मंत्र सिद्धि के लिए बारह नियम हैं—(१) भूमि-शयन, (२) ब्रह्मचर्य, (३) मौन, (४) गुरु सेवन, (५) त्रिकाल स्नान, (६) पाप कर्म परित्याग (७) नित्य पूजा, (८) नित्य दान, (९) देवता की स्तुति, (१०) नैमित्तिक पूजा, (११) इष्टदेव और गुरु में विश्वास, (१२) जप निष्ठा । जो इन नियमों का पालन करता है उसको मंत्र सिद्धि ही समझना चाहिये । किसी भी अनुष्ठान के समय सौगन्ध खाने से सब फल नष्ट हो जाता है । किसी का गाना, बजाना, नाचना न सुनना चाहिये और न देखना । जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध है । इस प्रकार जप के बहुत से नियम हैं, जिन्हें समझ कर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिये । ये सब नियम नियमित जप के (अनुष्ठान) लिये हैं । मानस-जप के लिये कोई नियम नहीं । उसे आदमी सदैव कर सकता है । शास्त्र में कहा गया है—

**अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि**
**मन्त्रैक शरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ।**
**न दोषो मानसो जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा ॥**

अर्थात् "मंत्र के रहस्य को जानने वाला जो साधक एकमात्र मंत्र की ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र सब समय चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते मंत्र का अभ्यास कर सकता है । मानस जप में किसी भी समय और स्थान को दोषयुक्त नहीं समझा जाता ।"

इस प्रकार शास्त्रों में मंत्र-जप की बड़ी महिमा बतलाई गई है और धार्मिक व्यक्तियों के मतानुसार मंत्रों की शक्ति से अनेक असम्भव कार्यों का सम्पन्न होना भी सम्भव है । आधिदैविक जगत के रहस्य को जानने वाले कहते हैं कि स्थूल जगत की प्रत्येक वस्तु का एक-एक अधिष्ठाता देवता होता है जिनको मंत्र द्वारा जाग्रत कर लेने पर उस विषय में आश्चर्यजनक परिणाम दिखलाई पड़ सकते हैं । हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थ मंत्रों की महिमा से भरे पड़े हैं और आज भी करोड़ों व्यक्ति मंत्रों के जप और प्रयोग द्वारा अपनी तरह-तरह की कामनाओं को पूरा करने का उद्योग करते रहते हैं । यहाँ की साधारण जनता का तो मंत्रों में अटल विश्वास है, पर आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति मंत्र-शक्ति का कोई तर्क और बुद्धि-युक्त प्रमाण

न मिलने से, उनको मानने से इन्कार करते हैं । वे कहते हैं कि यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति द्वारा कुछ शब्दों के उच्चारण करने से दूसरे व्यक्ति का सिर का दर्द मिट जाय या बिच्छू आदि का विष उतर जाय ? मंत्र द्वारा सन्तान होना, शत्रु पर विजय प्राप्त करना या लक्ष्मी की प्राप्ति आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जिनके सम्बन्ध में लोगों में मतभेद दृष्टिगोचर होता है और प्राय: वाद-विवाद भी होने लगता है । एक मंत्र-शक्ति का पूर्णत: समर्थन करता है और दूसरा उसे कोरा वहम या कल्पना बतलाता है ।

मंत्र-शास्त्र का समर्थन करने से हमारा आशय यह नहीं कि आजकल जो ओझा, स्याने-भोलाआदि 'मंत्र' का व्यवसाय करते हैं, वे सब वास्तव में उसके जानकार हैं और जो कुछ क्रिया वे करते हैं, वह पूर्णतया सच्ची होती है । जिस प्रकार आजकल सभी प्राचीन विद्याओं का लोप हो गया है और उनमें वास्तविकता के बजाय ढोंग और छल का प्रवेश अधिक हो गया है, वही दशा मन्त्र-शास्त्र की भी समझनी चाहिये । लोग न तो उसके तत्व को समझते हैं और न परिश्रमपूर्वक पूरा विधि-विधान करते हैं, उन्होंने तो इसे केवल पेट भरने का धन्धा बना लिया है । अन्यथा जिस प्रकार विदेशों के विद्वान् पुरुष विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की खोज कर रहे हैं और वास्तविकता का पता लगाने के लिये तन, मन धन सब कुछ अर्पण कर देते हैं, उसी प्रकार यदि हमारे यहाँ भी शब्द-विज्ञान और उसके अन्तर्गत मंत्र-विज्ञान की खोज की जाती तो सैकड़ों ऐसे आश्चर्यजनक तथ्यों का पता लगता, जिससे हमारा व्यक्तिगत कल्याण होने के साथ ही भारतीय-संस्कृति का भी मुख उज्ज्वल होता ।

भारतीय-दर्शन के मत से शब्द की शक्ति सबसे अधिक है, क्योंकि वह आकाश-तत्व से सम्बन्धित है, जो सर्वाधिक सूक्ष्म होता है और सूक्ष्म-तत्व की शक्ति, स्थूल-तत्व की शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक होती है । बारूद या किसी अन्य स्फोटक पदार्थ को जब विशाल शक्ति के रूप में परिणत करना होता है, तो उसमें चिनगारी लगाकर उसे स्थूल से सूक्ष्म गैस के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है । आज हम आश्चर्य करते हैं कि प्राचीन ऋषि-मुनि किस प्रकार किसी मंत्र या कुछ गूढ़ शब्दों का उच्चारण करके विनाश और निर्माण के बड़े-बड़े काम क्षणमात्र में कर दिखाते थे ? इसका रहस्य यही था कि आज जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने पिछले सौ वर्षों में स्फोट करने वाले स्थूल पदार्थों की खोज करते-करते भयंकर बम और घण्टे में आठ हजार मील दौड़ने वाले राकेट बना डाले, उसी प्रकार भारतीय ऋषि-मुनियों ने स्थूल पदार्थों के बजाय सबसे सूक्ष्म तत्व आकाश से उत्पन्न शब्द-शक्ति का अनुसंधान किया था और उसके प्रयोग की ऐसी-ऐसी विधियाँ मालूम की थीं कि जिसके प्रभाव से विश्व-ब्रह्माण्ड में भी हलचल उत्पन्न की जा सकती थी । आज भी जो लोग इस विद्या की एकाध छोटी-मोटी विधि को भली प्रकार सीख लेते हैं, वे आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाते हैं ।

मंत्र की क्रिया में केवल उसकी ध्वनि का ही (चाहे वह सुनने में आवे और चाहे भीतर ही उच्चारण किया जाय) प्रभाव नहीं पड़ता वरन् उसकी भावना तथा संकल्प शक्तियाँ भी काम करती रहती हैं । इन दोनों के मिल जाने से मंत्र की शक्ति बहुत बढ़ जाती है । एक विद्वान् के कथनानुसार "भारतीय लिपि और अक्षर पूर्णत: वैज्ञानिक हैं और उसकी ध्वनियों में एक विशेष रहस्य छिपा है । मंत्र में 'आस्था' भी एक प्रबल तत्व होता है, जिसे मानने में कितने ही लोग आना-कानी करते हैं । वैसे बिना 'आस्था' या भावना के भी मंत्र-शक्ति का अनुभव किया जा सकता है, पर उसमें विलम्ब अधिक लगता है । इसीलिये किसी मंत्र को सिद्ध करने के लिये दस हजार बार या लाख बार जपने का विधान बनाया गया है । इससे उसकी 'आस्था' हृदय में बद्धमूल हो जाती है ।"

इस सबका निष्कर्ष यही है कि शब्द की शक्ति से अनेक बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं । हमारे पूर्वजों ने तो इस तथ्य को पूर्णरूप से हृदयंगम करके उसे 'शब्द-ब्रह्म' की संज्ञा दी थी और 'ॐ' के रूप में उसको सृष्टि का उत्पादक माना था । ऐसी महान् शक्ति से अपरिचित रहना या उसकी उपेक्षा करना अपने हित पर स्वयं कुठाराघात करना है । हमको इस घातक प्रवृत्ति से बचकर शब्द ब्रह्म की उपासना करके उससे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये ।

## सरलतम और समग्र शक्तिवान "ॐकार"

मंत्र साधना करने वाले साधक को जिन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना होता है, उसमें प्रधान यह है कि मंत्रोच्चारण की ध्वनि शुद्ध हो । इसकी जाँच पड़ताल किसी अनुभवी से करा लेनी चाहिए । ईश्वर प्रार्थना के रूप में राम का नाम सीधा उल्टा, सही, गलत किसी भी

रूप में लिया जा सकता है, पर मंत्रोच्चार में उसकी ध्वनि शुद्धता आवश्यक है । सितार के तारों का गठन और अंगुलि चालन यदि सही हो तो ही उसमें से अभीष्ट राग, रागनियाँ निकलते हैं । औंधे-सीधे किसी भी प्रकार कुछ भी बजाने लग जायें तो उसमें से बेसुरी कर्कशता ही निकलेगी । यह बात मंत्रोच्चार की शुद्धता के सम्बन्ध में भी है ।

कौन व्यक्ति किस प्रयोजन के लिए किस मंत्र की साधना करे इसका निर्धारण अपनी मन-मर्जी से नहीं कर लेना चाहिए और न पुस्तकीय उल्लेखों को आत्यंतिक प्रमाणभूत मानना चाहिए । चिकित्सा शास्त्र के अनेकों ग्रन्थ औषधि निर्माण का विधान एवं सेवन का उपचार बताने वाले हैं । इस पर भी रोगी की विशेष स्थिति को जाँचकर तदनुरूप औषधि का निर्धारण करने में अनुभवी चिकित्सक की सलाह लेनी पड़ती है । निदान परीक्षणों द्वारा रोगी की अन्तरंग स्थिति का विवेचन पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता पड़ती है । यदि ऐसा न किया जाय तो कोई भी रोगी बाजार से पुस्तक या दवा खरीद कर अपना इलाज आप करने लगे । इच्छित मात्रा में इच्छित औषधि खाने लगे तो इसके दुष्परिणाम भी हो सकते हैं । इसलिए सार्वजनिक प्रार्थनाओं को छोड़कर यदि मंत्र विद्या में गहराई तक प्रवेश करना है और अभीष्ट लाभ प्राप्त करने का लक्ष्य रखना है, तो अपने मनोरथ के अनुरूप मंत्र के चयन एवं प्रयोग के विधान में किसी अनुभवी का परामर्श लेना चाहिए । अपनी स्थिति एवं कामना के अनुरूप मंत्र का चयन, विधान एवं उच्चारण सही करना चाहिए ।

उच्चारण के अतिरिक्त जो बात ध्यान रखने की है, वह है व्यवहार शुद्धि । मंत्र साधक का आहार-विहार सात्विक ही नहीं सीमित भी होना चाहिए । इसी को व्रत उपवास की परिधि कहते हैं । यह प्रक्रिया संयम साधना के अन्तर्गत आती है । जिसका प्रारम्भ आहार शुद्धि से होता है और आगे बढ़कर चरित्र शुद्धि तक पहुँचता है । दुराचारी, अनाचारी, कुकर्मी व्यक्ति अपने उद्धत आचरण से इतनी प्रतिकूल प्रतिक्रिया काय कलेवर में अर्जित कर लेते हैं कि उस पर मंत्र साधना का प्रभाव उतना ही पड़ता है जितना जलते तवे पर पानी की कुछ बूँदों का ।

आध्यात्मिक उपचारों का विधि-विधान ही समुचित नहीं होना चाहिए, वरन् उसके प्रयोक्ता का व्यक्तिगत चरित्र-चिन्तन भी परिष्कृत स्तर का होना चाहिए । अभक्ष्य खाने वाले, बहुभक्षी, नशेवाले, व्यभिचारी, दुराचारी स्तर के व्यक्ति प्राय: उपयुक्त साधना विधान अपनाने पर भी असफल रहते देखे गये हैं । उनकी विद्रूप मानसिकता एवं उच्छृंखलता, क्रियाशीलता यदि रुके नहीं तो मलीनता की मात्रा इतनी अधिक संचित होती जाती है, जो साधना के स्वल्प प्रयास को भी अपने तूफानी झोंके में उड़ा ले जाय । इसलिए मंत्र योगी को आहार विहार की सात्विकता, संयमशीलता बनाये रहने के लिए विज्ञ जन दबाव या निर्देशन करते रहे हैं । विशेषतया आहार की सात्विकता बढ़ाने और मात्रा घटाने के लिए । भूख से कुछ कम और नियत समय पर सात्विक आहार करने से भी उपवास का कामचलाऊ उद्देश्य पूरा हो जाता है । इस हेतु अस्वाद व्रत, बिना नमक-शक्कर मिला भोजन भी प्रशंसनीय है । अमृताशन, उबली हुई खिचड़ी जैसे प्रस्तुतीकरण को भी सात्विक माना गया है । शाकाहार फलाहार यथासम्भव अन्न की तुलना में कुछ अधिक ही रखा जाय । खाने के समय तो नहीं पर बाद में पानी की मात्रा भी पर्याप्त रखी जाय जिससे कचरे की धुलाई ठीक प्रकार होती रहे ।

तीसरी बात है मंत्र की सशक्तता एवं प्रामाणिकता पर अटूट विश्वास । विश्वास को साधना का प्राण कहा गया है । उसके अभाव में संदेह छाया रहता है और उपयुक्त परिणति की सम्भावना बड़ी मात्रा में नष्ट हो जाती है । विश्वास अपने आप में एक शक्ति है । उसके आधार पर सिद्ध पुरुषों द्वारा दी हुई "भस्म" भी जादू जैसा प्रभाव दिखाती देखी गई है । 'जिजीविषा' के प्रबल रहने पर मरणासन्न व्यक्ति भी मौत को परास्त करते देखे गये हैं । स्वसंकेतों का, स्वसंवेदनों का एक स्वतंत्र शास्त्र ही विकसित हुआ है, जिसमें व्यक्ति की अपनी प्रगति की, सुधार की, उज्ज्वल भविष्य की सुनिश्चित अवधारणा करनी पड़ती है । विश्वास द्वारा उत्पन्न ऊर्जा अनेकानेक विपन्नताओं को परास्त करती देखी गई है । इस अवलम्बन को मजबूती से पकड़े रहने वाले आशावादी साधनों के अभाव में भी ऊँचे उठते, आगे बढ़ते देखे गये हैं । "एकल चलो रे" का संकल्प उस साहसिकता का द्योतक है जिसमें उपयुक्त सहयोग एवं साधन न मिलने पर भी आत्म-विश्वास के सहारे कदम उठाते हैं और अभीष्ट तक पहुँचाने वाला प्रयास निर्बाध गति से अनुगामी बनता है, सफल होकर रहता है ।

रस्सी का साँप, झाड़ी का भूत, बतलाने जैसे उदाहरणों में अवास्तविकता विश्वास के आधार पर सत्य बनती और अपना दुष्प्रभाव दिखाती देखी गई है । कथा प्रसिद्ध है कि यमराज ने मृत्यु को पाँच हजार व्यक्ति मार लाने के लिए भेजा । जब वह पन्द्रह लाख लेकर लौटी तो जवाब-तलब हुआ कि आदेश से अधिक बटोरने की अवज्ञा क्यों की गई ? तो मौत ने कहा—"मैंने तो नियत संख्या में ही मारे । पर अन्य लोग आशंका, कुकल्पना और भीरुता के कारण डर के मारे स्वयं मर गये और परलोक आने वालों की भीड़ में सम्मिलित हो गये ।" होता ऐसा भी है कि संकल्पों की दृढ़ता एवं दुर्बलता अपने आप में एक तथ्य भरी शक्ति बन जाती है और ऐसे परिणाम दिखाती है जिसे आश्चर्यजनक कहा जा सके । शास्त्रकार ने श्रद्धा विश्वास को "भवानी शंकर" की उपमा दी है । इसे मनगढ़ंत नहीं, सच्चाई जैसी वास्तविकता समझा जाना चाहिए । इस आधार पर हित साधन भी होता है और अनर्थ में जकड़ा भी जाता है । मंत्र साधना में विशेष रूप से इस तथ्य को समझा और सम्मिलित किया जाना चाहिए कि विश्वासी को मंत्र साधन की सहज सफलता प्राप्त करते देखा गया है, जबकि अविश्वासी का सही मंत्र और सही प्रयोग भी अनेक बार असफल रहते देखा गया है ।

कौन व्यक्ति, किस प्रयोजन के लिए , किस मंत्र की साधना किस प्रकार करे ? यह एक विशेष निर्धारण है । इसके लिए परीक्षक एवं निर्धारक ऐसा होना चाहिए जो व्यक्तित्व का सही वर्गीकरण करने एवं साधना विधान में प्रयोग प्रतिक्रिया से भली-भाँति परिचित हो । ऐसे निष्णात अनुभवियों का इन दिनों एक प्रकार से अभाव ही देखा जाता है । अनगढ़ आडम्बर ही अध्यात्म क्षेत्र पर विडम्बनाओं के सहारे हावी है । उन्हीं का छल प्रपंच भावुकजनों की भाव श्रद्धा का दोहन करता रहता है । बाहुल्य इसी समुदाय का है । उन्हीं का गुरुदम्भ जहाँ-तहाँ अधिकार जमाये बैठा है और चित्र-विचित्र विडम्बनाएँ रचता रहता है। जिन्होंने गम्भीर अध्ययन, मनन, चिन्तन किया हो, आचरणों में, भावनाओं में उत्कृष्टताओं का भरपूर समावेश रखा हो,साथ ही साधना विधान के हर पक्ष को भली-भाँति समझा हो ऐसे मार्गदर्शकों के अभाव में साधक के सामने यह कठिनाई आती है कि वह स्थूल शरीर के परिमार्जन हेतु मंत्र साधना का उपयोग किस प्रकार करे ? द्विविधा से किस प्रकार मुक्ति पाये ? सरल और सीधे मार्ग पर किस प्रकार चल सके ?

इस उलझन का समाधान करने के लिए हमें व्यक्ति विशेष के लिए विभिन्न विधि-विधान बताने वाली प्रक्रिया से बच कर ऐसा राजमार्ग निश्चित करना होगा, जो हर किसी के काम आ सके और बिना किसी जोखिम का हो ।

पन्द्रह वर्ष की आयु से आरम्भ करके अब ८० वर्ष तक के ६५ वर्षों में हमने निरन्तर गायत्री महामंत्र की उपासना की है । इस अवधि में हमने अपने अवरोधों को हटाने और अनुकूलताओं के उगने में आशातीत सफलता पाई है । सम्पर्क परिकर के जिन लोगों को यह प्रयोग बताया है, उन सब ने भी अपनी प्रतिक्रिया ऐसी ही व्यक्त की है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विश्वासी के लिए इस साधना का सुनिश्चित प्रतिफल हो सकता है और वह मंत्र शक्ति की सार्थकता के सम्बन्ध में स्वयं सन्तुष्ट रहकर दूसरों को भी अपने अनुभवों से आश्वस्त कर सकता है किन्तु यहाँ कठिनाई यह आड़े आती है कि यह संस्कृत भाषा में विनिर्मित है साथ ही हिन्दू परम्परा से भी जुड़ा हुआ है । उसकी मातृ स्तर की छवि ही बनी हुई है । यह सब बातें हिन्दू धर्मानुयायियों के ही गले उतरती हैं । प्रश्न सार्वभौम व्यवस्था का है । लक्ष्य विश्व मानव की प्रगति का सामने है जो हिन्दू परम्परा के प्रति निष्ठावान नहीं हैं उन अन्य भाषा भाषियों और अन्य धर्मावलम्बियों का भी है । अब हमें विश्व विचारणा, विश्व भावना को भी ध्यान में रखना है । भविष्य में एकता और समता को ही मान्यता मिलनी है । विभेदों वाले प्रचलन हटने हैं । ऐसी दशा में उस मानसिकता का निर्धारण करना होगा जो सर्वग्राह्य भी हो और सर्वसुलभ, सर्वग्राह्य एवं प्रयोग में सरलतम भी हो ।

इस सन्दर्भ में "ॐ कार" की ध्वनि धारणा से उपर्युक्त आवश्यकताओं की मूर्ति होती है । "ॐ" किसी भाषा का कोई शब्द नहीं । भारत में उसे अ-उ-म के सम्मिश्रण से बना "ओम्" माना जाता है और उसका अर्थ भी संस्कृत शब्दकोष के आधार पर किया जाता है । पर "ॐ" तो ध्वनि मात्र है । "ओउम्" से भिन्न है । इसे ऐसी ध्वनि समझा जा सकता है जैसी घड़ियाल में हथौड़ी मारने के उपरान्त झनझनाहट के रूप में होती है । यह प्रकृति पुरुष का आदि समागम भी है और उसी उपक्रम के निरन्तर चलते रहने से सृष्टिक्रम चलता रहता है । इसे घड़ी का पेण्डुलम तुल्य कहा जा सकता है । गायत्री का बीज भी यही है । ॐ से तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं । प्रत्येक व्याहृति से तीन-तीन शब्द प्रस्फुटित हुए । जैसे

कि बीज में अंकुर, पौधा और पत्तों फूल फलों से विकसित हुआ वृक्ष दृष्टिगोचर होता है । गायत्री को वृक्ष और "ॐ" को उसका बीज कहा जा सकता है । गायत्री के २४ अक्षरों में काय कलेवर के अन्तराल में विद्यमान २४ शक्ति केन्द्रों का जागरण होता है और उस आधार पर अनेक ऋद्धि-सिद्धियों की विभूतियों का वैभव हस्तगत होता है। यही समूचा लाभ प्रकारान्तर से अकेले "ॐ" कार के जप से भी हस्तगत हो सकता है ।

शरीर को यथासम्भव शुद्ध करके शुद्ध स्थान में बैठकर अन्तर्मुखी मुद्रा में "ॐकार" जप इस प्रकार किया जा सकता कि मनोचेतना और काया के बीच आघातों का क्रम चलने और झनझनाहट जैसी अनुभूति होने का क्रम चल रहा है । इस आधार से चक्रों, उपत्यिकाओं, ग्रन्थियों गुच्छकों में अभिनव चेतना का संचार होता है । कुछ ही दिन के अभ्यास से इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी किया जा सकता है । साथ ही उन लाभों को हस्तगत होते देखा जा सकता है, जो गायत्री मंत्र की विधिवत साधना करने से उपलब्ध होता है ।

अच्छा हो इस जप का कंठ से गुंजन होता रहे और उसका कम्पन प्रभाव समस्त काया को प्रभावित करता प्रतीत होता रहे । इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है कि जब भी अवसर अवकाश हो तभी "ॐ" का मानसिक जप चालू कर दिया जाय । यह प्रक्रिया भी लौकिक जीवन को सुखी समुन्नत बनाने में कारगर हो सकती है ।

## गायत्री महामंत्र की साधना

पुनरावृत्ति से मस्तिष्क एक विशेष ढाँचे में ढलता है। जिस क्रिया को बार-बार किया जाता है वह आदत में सम्मिलित हो जाती है । जो पढ़ा, सुना, बोला या समझा जाता है वह भी मस्तिष्क में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेता है । मानसिक संरचना ऐसी है, जिसमें कोई बात गहराई तक जमाने के लिए उसकी पुनरावृत्ति का अभ्यास करना होता है ।

बच्चों को वर्णमाला के अक्षर और गिनती के अंक कण्ठाग्र करने पड़ते हैं । बार-बार दुहराने से ही यह प्रयोजन पूरा होता है । आगे चलकर भी विद्यार्थी को अपने पाठ रटने भी न पड़ें तो उन्हें कई बार पढ़ना अवश्य पड़ता है । परीक्षा में कुछ समय पिछले पढ़े हुये को याद करने के लिये कुछ दिनों का अवकाश मिलता है । उन दिनों विद्यार्थी पिछले पढ़े हुए को बार-बार दुहराते हैं ताकि स्मृति में से कोई बात उतर गई हो तो पुनः स्मरण हो आये ।

उपासना प्रसंग में जप का महत्वपूर्ण स्थान है । उसे सभी धर्म सम्प्रदायों में भक्ति प्रयोजन के लिये प्रमुख स्थान दिया गया है । मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि सभी धर्मो के सन्तों के हाथ में, गले में, कमर में माला लटकती देखी गई है । वे उसका उपयोग नाम जप के लिये करते भी हैं ।

माला की महत्ता देखते हुए उसे सुसम्पन्नों ने आभूषणों तक का रूप दे डाला है । राजा, सेठ तथा उनकी पत्नियाँ मणि-मुक्तकों की विशेष सज्जा के साथ गूँथी हुई मालायें पहनती हैं । साधारण और गरीब हालत की महिलायें भी बाजार से सस्ते दाम की माला खरीद लाती हैं और उन्हें चावपूर्वक पहनती हैं । आभूषण रूप तक में बदल जाने से प्रतीत होता है कि कभी उसका कितना मान-सम्मान रहा होगा ।

नाम जप के साथ माला की संगति सामयिक आवश्यकता के अनुरूप बिठाई गई है । कारण कि जप प्रयोजन को नियत समय पर, नियत संख्या में किया जाना चाहिये । इससे मन उस समय का अभ्यस्त बन जाता है और उसी कार्य के होने की प्रतीक्षा करता रहता है । शौच एवं भोजन के अपने-अपने समय हैं । नींद के भी समय पर सोने, उठने, खाने-नहाने की आदत कुछ समय में इतनी परिपक्व हो जाती है कि उसके किये बिना चैन ही नहीं पड़ता है । बार-बार उस प्रयोजन का स्मरण आता है । इतना ही नहीं यह भी स्वभाव बन जाता है कि कोई काम कितनी देर किया जाय । खेलने का निर्धारित समय पूरा होते ही चलने को मन करता है । बच्चे तो छुट्टी की प्रतीक्षा में आधा घण्टा पहले से ही बस्ता बाँधने लगते हैं।

मन का ऐसा ही क्रम है । समय पर नियति अवधि तक काम सही प्रकार से बन पड़ता है । आगे-पीछे तो वह काम बेगार भुगतने जैसा हो जाता है ।

जप प्रक्रिया जितनी संख्या में जितने समय चलानी हो उसका पूर्ण निर्धारण एवं संकल्प होना चाहिए । तभी मन उस कृत्य में ठीक तरह लगा रहेगा । अन्यथा उसकी उछल-कूद आरम्भ हो जायेगी ।

प्राचीनकाल में घड़ियाँ नहीं थीं । इसीलिये जप की अवधि एवं संख्या का अनुमान लगाने के लिये माला की आवश्यकता पड़ती थी । उसी के आधार पर पता चलता

था कि जप की संख्या एवं अवधि पूरी हुई कि नहीं । माला एक प्रकार से हाथ में घुमाकर चलाई जाने वाली घड़ी है । अब यह कार्य टाइम पीस से ही हो सकता है और छुट्टी का अलार्म भी बज सकता है किन्तु पुरातन परम्परा अब इतने अभ्यास में आ गई है कि उसे जप का एक अंश ही माना जाने लगा है । इसमें कुछ हर्ज भी नहीं । साधक को परम्परा निर्वाह का सन्तोष ही होता है ।

जप किसका किया जाय ? इसका एक ही उत्तर है कि परमात्मा का । उसी की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है । आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति जब तक नहीं होती तब तक पति के वियोग में पत्नी की जो मनोदशा होती है, वही आत्मा की रहती है । प्यास जितनी तीव्र होती है, मिलन की सम्भावना उसी अनुपात में निकट आती है । एक ओर की बेचैनी दूसरे पक्ष को प्रभावित किये बिना भी नहीं रहती । यह भी एक प्रकार का टेलीफोन या रेडियो है जो निर्धारित लक्ष्य तक पहुँच कर रहता है । प्रेमिका की तिलमिलाहट प्रेमी को भी बेचैन करती है । जप को, नाम स्मरण को प्रेम प्रदर्शन का, लगन का एक अंग माना गया है । किसी को बुलाना होता है तो उसे नाम लेकर जोर से पुकारते हैं, जोर से इसलिये, क्योंकि मनुष्यों की श्रवण शक्ति सीमित होती है । पर परमात्मा के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है, वह धीमी आवाज भी यहाँ तक कि मानसिक जप स्मरण को भी सुन लेता है । वह अपने ही अन्तराल में विराजमान जो है ।

पुनरावृत्ति हमेशा अधिक ही प्रभावशाली होती है । कपड़े धोने में उन्हें बार-बार फीचना पड़ता है । स्नान में भी रगड़ाई करनी पड़ती है । दाँतों को ब्रुश से घिसा जाता है । आटा पीसने की चक्की तथा तेल निकालने के कोल्हू में भी एक ही क्रिया का चक्रगति से प्रयोग चलता रहता है। पत्थर को चिकना करने के लिये घिसना पड़ता है । बहुमूल्य औषधियाँ बनाने के लिये उनकी घुटाई, पिसाई अधिक मात्रा में अधिक देर तक करनी होती है । रस्सी की रगड़ से कुँये की पत्थर जैसी कठोर जगत पर निशान बन जाते हैं । एक ही रास्ते पर पशुओं के चलने से पगडण्डियाँ बन जाती हैं । यह सब नियमित रूप से एक ही क्रम का गतिचक्र घुमाने का क्रम है । मशीनें सभी इसी आधार पर बनती और चलती हैं । उसका प्रभाव भी व्यक्तित्व पर अन्तराल पर ऐसा गहरा पड़ता है कि लक्ष्य के सम्बन्ध में स्मृति अपनी जगह मजबूती से पकड़ लेती है । इतना ही उन्हें उसका एक सुनिश्चित स्थान अचेतन मन में भी बन जाता है । फलतः बिना प्रयास के भी निद्रावस्था में भी जप चलने लगता है । जप में मात्र अक्षरों को दुहराते रहने की क्रिया तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, वरन् उसके साथ भावना भी जुड़नी चाहिए। भावना का आरोपण किसी नाम या रूप के साथ होता है। प्रेमिका जब प्रेमी का स्मरण करती है तो उसके प्रति प्रेम भावना आत्मीयता भी जुड़ी रहती है । यही जप का प्राण है । इष्ट के प्रति अनन्य भक्ति भावना होनी चाहिये । माता जब बच्चे को पुकारती है तो उसके साथ वात्सल्य भी घुला होता है । छोटा बच्चा जब मम्मी-मम्मी पुकारता है तब उसे कुछ निवेदन नहीं करना होता । मात्र अपना प्रेम प्रदर्शित करता है । जप के साथ भावनाओं का गहरा सम्पुट होना चाहिये । प्रेम और आत्म भाव का इतना सघन समावेश होना चाहिये कि उससे मिलन की, दर्शन की, एकता की, आत्मीयता की, साथ ही समर्पण की असाधारण उत्कण्ठा हो । यह भावना सम्पुट जितना गहरा होता है, उतना ही नाम स्मरण अपने उद्देश्य की पूर्ति अधिक अच्छी तरह कर पाता है । अन्यथा तोते की तरह शब्द रटने या ग्रामोफोन की तरह शब्दोच्चारण में न भक्त की भावना झंकृत होती है और न भगवान तक वह पुकार-गुहार बन कर इस स्तर की बनती है कि उनका सिंहासन हिला दे । हमारी पुकार द्रौपदी स्तर की होनी चाहिए कि उस पर ध्यान देने और दौड़ आने के लिये विवश होना पड़े ।

जप के लिये गायत्री मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है । कारण कि उसमें जो शब्द प्रयुक्त हुये हैं उनका इस प्रकार क्रमिक गुंथन हुआ है कि वह स्थूल शरीर में सन्निहित अनेकों शक्ति भण्डारों को चक्र-उपत्यिकाओं को झकझोर कर उन्हें जगाती है और इस प्रकार योगाभ्यास का भी एक महत्वपूर्ण प्रयोजन अनायास सधता रहता है ।

उसके शब्दार्थ भी ऐसे हैं जो चिन्तन को एक दिशा देते हैं, और सोचने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करते हैं ।

तत् वह, सवितु-तेजस्वी गतिशील, वरेण्यं-धारण करने योग्य जीवन क्रम में घुला लेने योग्य । भर्ग— अवांछनीयता को भून देने वाला । देवस्य—दिव्य । यह भगवान के चार अति महत्वपूर्ण विशेषण हैं । ऐसे तो भगवान के हजारों नाम और हजारों विशेषण हैं, पर इन चार में तत्वज्ञान का वह सार संक्षेप समाहित है जिसे हृदयंगम कर लेने पर मनुष्य में गतिशीलता, उत्कृष्टता की ओर बढ़ चलती है । व्यक्ति इस प्रत्यक्ष को भौतिक में

नहीं—परोक्ष को, सचेतन को ईश्वर का रूप मानता है । संचार में भला बुरा सब कुछ है, पर वह श्रेष्ठ का ही वरण करता है । सविता के समान तेजस्वी, साहसी, पराक्रमी और कर्मनिष्ठ बनता है । जो अनुचित है, अनीति है, उससे जूझने के लिये अपने शौर्य, पराक्रम को तीक्ष्ण करता है । दिव्यता ही उसे रुचती है । स्वयं देव बनने की उत्कण्ठा से ओत-प्रोत रहता है । विशेषतायें कहने-सुनने भर तक सीमित नहीं रहतीं, वरन् वह उन्हें अपनाता है, धारण करता है । अन्त में उस सर्व समर्थ से प्रार्थना करता है कि मुझ अकेले को नहीं सर्वसाधारण को सद्बुद्धि की ओर चलने की शिक्षा मात्र न दे वरन् प्रेरणा, उत्कण्ठा अभिलाषा जाग्रत कर दे ।

गायत्री मंत्र के उपर्युक्त भावार्थ में वह सब कुछ है जो मनुष्य को सोचना एवं करना चाहिये । इस प्रकार यह मंत्र तत्वज्ञान के अध्यवसाय का सार संक्षेप बन जाता है । जप के साथ-साथ इस अर्थ चिन्तन का समावेश रहने से मनुष्य अपने लिये सर्वश्रेष्ठ दिशाधारा का संकेत उपलब्ध करता है । इतना ही नहीं गायत्री की शब्द शक्ति से चिन्तन और चरित्र को अपने दिव्य प्रवाह के साथ घसीट ले जाता है ।

गायत्री का समग्र उच्चारण जो नहीं कर सकते वे "ॐ भूर्भुवः स्वः" इतना पंचाक्षरी गायत्री मंत्र याद कर सकते हैं । जिन्हें संस्कृत बोलने या समझने में कठिनाई होती है वे "ॐ तत् सत्" जप सकते हैं । जिनके लिये इतना भी कठिन हो वे मात्र "ॐ" का जप भी कर सकते हैं । शास्त्रों के अनुसार सर्वप्रथम "ऊँ" था । फिर शब्द ब्रह्म भू भुवः स्व की व्याहृतियों में विकसित हुआ । इसके उपरान्त एक-एक व्याहृति से तीन चरणों वाला गायत्री मंत्र बना । जिनसे पूरा या अधूरा जैसा भी बन पड़े गायत्री को आधार मानकर जप की प्रक्रिया चलानी चाहिए ।

मंत्र जप की महिमा का गान करते हुए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि "यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" अर्थात् 'यज्ञों' में जप यज्ञ मैं हूँ । इसमें जप यज्ञ को अन्य यज्ञों से श्रेष्ठ बतलाया है, इसका कारण यही है कि आध्यात्मिक उन्नति के लिए जिस चित्त शुद्धि की आवश्यकता है, वह प्रधानतः जप द्वारा ही प्राप्त होती है । इसमें विशेष द्रव्य या श्रम की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल दृढ़ श्रद्धा और एक निष्ठा से निष्काम उपासना करनी पड़ती है, इसलिए गरीब, अमीर, शक्तिशाली और दुर्बल, पण्डित और सामान्य बुद्धि वाले सभी इसको कर सकते हैं । जो व्यक्ति सकाम भावना से कोई विशेष उद्देश्य सामने रखकर जप करते हैं उनको वैसे फल की प्राप्ति होती है और जो निष्काम भाव से करते हैं, उनकी आत्म शुद्धि होकर मोक्ष मार्ग में प्रगति होती है ।

अन्य धर्मों की बात छोड़ दें तो हिन्दू शास्त्रों में ही सैकड़ों प्रकार के मन्त्रों के जप का विधान बताया गया है इनमें अधिकांश मंत्र किसी एक देव या देवी से सम्बन्ध रखते हैं और उनके द्वारा प्रायः एक ही वस्तु की प्राप्ति होती है । ऐसे मन्त्रों का जप करने वालों का उद्देश्य प्रायः भौतिक या सांसारिक होता है, पर एक तो समस्त भौतिक पदार्थ नाशवान् होते हैं, कुछ समय बाद उनका अन्त हो जाना अवश्यम्भावी है । दूसरे वे एक नियत सीमा के भीतर ही होते हैं इसलिए अगर माँगने वालों की संख्या अधिक हो तो वे इच्छानुसार परिमाण में मिल सकने में भी कठिन होते हैं अतएव सकाम जप का महत्व नगण्य जितना है ।

मनुष्य का वास्तविक हित तो आत्म कल्याण में ही है । आत्मा सूक्ष्म है इसलिए उस पर स्थूल पदार्थों की अपेक्षा सूक्ष्म तत्वों का ही विशेष प्रभाव पड़ सकता है । इस बात को समझकर भारतीय ऋषि मुनियों ने हजारों वर्ष तक योगाभ्यास तथा तपश्चर्या द्वारा ऐसी विधि का आविष्कार किया है जिससे सांसारिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके । इन विधियों में से गायत्री जप सबसे अधिक लाभदायक और प्रभावशाली है यह मंत्र पूर्णरूपेण सार्थक है और समझदार जप करने वाला इसके अर्थ को ध्यान रखते हुए इच्छानुसार प्रगति कर सकता है ।

विज्ञान की दृष्टि से भी गायत्री जप मनुष्य के लिए बहुत हितकारी सिद्ध हुआ है । अब विज्ञान वेत्ता भी यह स्वीकार कर चुके हैं कि मनुष्य के दिमाग या बुद्धि का मूल स्रोत प्रकृति के सामूहिक दिमाग या मन में स्थित है जिससे हम इलेक्ट्रोन के रूप में शक्ति प्राप्त करते रहते हैं । सर जेम्स ने इस सम्बन्ध में एक स्थान पर कहा है—

'समय के प्रभाव के साथ ज्ञान का प्रवाह अध्यात्म-वाद की तरफ मुड़ता जाता है । अब हमको यह ब्रह्माण्ड एक बड़ी भारी मशीन के बजाय एक बड़े भारी विचार (थाट्स) के रूप में दिखलाई पड़ता है । अब यह कल्पना मिटती जा रही है कि मानव मन या विचार शक्ति भौतिक पदार्थ में अकस्मात् उत्पन्न हो गयी है । अब हम यह अनुमान करने लगे हैं कि पदार्थ का बनाने वाला और

उसकी व्यवस्था चलाने वाला मन ही होता है । इसका आशय यह नहीं कि व्यक्ति विशेष का मन इस कार्य को करता है, वरन् इसका अर्थ है कि प्रकृति में 'मन' नामक जो तत्व है उसी के अणुओं से चेतना का प्रादुर्भाव होता है और सृष्टि में गति दिखाई देती है ।

इस प्रकृति में रहने वाले मन का ही गायत्री मंत्र में भर्ग के रूप में वर्णन किया गया है और उसी का ध्यान करके सद्बुद्धि की कामना की जाती है । अगर हम इस ध्यान अथवा जप को विधि पूर्वक करें और अपने मन को विश्व मन के साथ एकाग्र करने का प्रयत्न करें तो निःसन्देह हम न केवल वैयक्तिक कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं वरन् समूची मानव जाति का हित साधन कर सकते हैं ।

## मंत्रविद्या की अकूत शक्ति

भारतीय मनीषियों ने "शब्द" को ब्रह्म कहा है । ब्रह्म या परमात्मा एक विराट् तथा सर्वव्यापी तेजस सत्ता का नाम है—जिसकी शक्ति का कोई पारावार नहीं । इस तरह से तत्वदर्शी भारतीयों ने शब्द की सामर्थ्य को बहुत पहले ही जान लिया था । यही नहीं उस पर गम्भीर खोजें हुई थीं और मन्त्र-विज्ञान नाम की एक स्वतन्त्र शाखा की ही स्थापना हुई थी । मंत्र-शक्ति की महत्ता इन्हीं शब्दों से ज्ञात हो जाती है—

**मंत्र परम लघु जासु बस विधि हरिहर सुरसर्व ।**
**महामंत्र गजराज कहँ बस कर अंकुश खर्व ॥**

जिस शब्द तत्व को इतना समर्थ निरूपित किया गया है वह चाहे जो कुछ, चाहे जैसे मुँह से बोल देने वाले शब्द नहीं वरन् विशेष गति, लय, क्रम में गुम्फित अक्षरों की विशेष ध्वनि ही यह कार्य करती है । विज्ञान जगत में इस तरह की ध्वनि को "अश्रव्य" ध्वनि कहते हैं । अश्रव्य का अर्थ है जो सुनाई न दे; किन्तु जिसका अस्तित्व हो । विभिन्न प्रकार की विशेष ध्वनियों से इस्पात की मोटी चादरें काटने से लेकर चिकित्सा, कृषि, पशुओं से दुग्ध उत्पादन आदि अनेकों प्रकार के आश्चर्यजनक काम होने लगे हैं । प्रकारान्तर से चिकित्सा जगत फिर से अपने उसी प्राचीन मन्त्र-जन्त्र के सिद्धान्त पर लौट रहा है ।

अश्रव्य ध्वनि की महत्ता पहली बार १९१४ में फ्रांस के वैज्ञानिक पाल लैंजेविन ने किया था । उन दिनों जहाजों की संरक्षा के लिए किसी ऐसे यन्त्र की शोध अहं बनी हुई थी जिससे समुद्र के अन्दर भीमकाय जीव-जन्तुओं, प्रवाल द्वीपों, चट्टानों तथा दुश्मन के जहाजों की पूर्ववर्ती जानकारी मिलती रह सके । डॉ. लैंजेविन ने इसका निदान अश्रव्य ध्वनियों से किया । निश्चित गति और शक्ति से प्रक्षेपित ध्वनि तरंगें जब किसी पदार्थ, जीव या स्थान से टकराती हैं तो उससे तुरन्त वापसी दिशा में प्रतिध्वनि लौटती है, इस प्रतिध्वनि के विश्लेषण से उस वस्तु की अन्तःस्थिति का पता चल जाता है ।

एक बार तथ्य सामने आ जाने के बाद वैज्ञानिक प्रयोगों की व्यापक श्रृंखला चल पड़ी । १९४२ से १९५० तक डॉ. उसिक एडला, मुन्त डोनाल्ड लेकसेल हर्ज तथा हगेज आदि ने विभिन्न प्रयोगों में यह पाया कि अश्रव्य ध्वनि का चिकित्सा क्षेत्र में सफल प्रयोग किया जा सकता है । भ्रूण जैसे पहुँच से सर्वथा असम्भव क्षेत्र तथा उसकी बीमारियों के निदान तक में यह अश्रव्य ध्वनि चमत्कार सिद्ध हुई । १९५६ में पित्ताशय के परीक्षण में इसी का प्रयोग हुआ । अब तक इस क्षेत्र में सैकड़ों यन्त्र विकसित हो गये हैं जो १२ या उससे अधिक मेगाहर्ज आवृत्ति वाली अश्रव्य ध्वनि तरंगों को शरीर के कोमल ऊतकों (टिशूज) में प्रविष्ट करा कर उनसे वहाँ की स्थिति की जानकारी तथा रोग निवारण में मदद करते हैं । मेगाहर्ज इस ध्वनि को मापने की इकाई होती है । एक मेगाहर्ज का अर्थ है शब्द के कम्पन को इतना सूक्ष्म और प्रखर बना देना कि उसकी १ सेकण्ड में १०००००० (दस लाख बार) कम्पन (थरथरी) हो । ध्वनि तरंगें नियमित होने पर शरीर के भीतर की उनसे स्थिर जानकारी मिल जाती है, उससे रोगी को किसी प्रकार का कष्ट अथवा कोई प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं होता ।

मंत्र के सम्बन्ध में भी यही तथ्य काम में आता है । ध्वनि को अश्रव्य स्थिति में तीव्र आवृत्ति देने का जो काम यंत्र करते हैं वह तालु, कण्ठ, ग्रीवा आदि से सम्पन्न कर लिया जाता है । भावनाओं द्वारा इन्हें नियन्त्रित किया जाता है और फिर किसी भी स्थान विशेष पर इन तरंगों के विखण्डन, संलयन, मार्जन आदि के द्वारा उपचार, प्रताड़न, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के विभिन्न प्रयोग किये जाते हैं । दोनों अवस्थाओं में काम शब्द-शक्ति ही करती है, पर उनकी बनावट, गति और भावनाओं के अनुरूप उनकी शक्ति घट-बढ़ होती है और उसी अनुपात में उसके परिणाम प्रस्तुत होते हैं ।

भले ही मंत्र विद्या के जानकार अब उंगलियों में गिनने लायक ही लोग बचे हों, पर इस विज्ञान की

सुनिश्चितता से इन्कार नहीं किया जा सकता । अनुमान है कि उच्च आवृत्ति वाली ध्वनि तरंगों से भविष्य में रुधिर संचार की गतिविधि, शरीर के ऊर्जा स्रोतों की जानकारी और उन्हीं से रोगों के निवारण की अन्तःव्यवस्था भी होने लगेगी । इन ध्वनियों का जो चमत्कारिक पक्ष प्रस्तुत होने जा रहा है वह है पदार्थ की संरचना सम्बन्धी गूढ़ से गूढ़ जानकारी। इतना हो जाने के बाद शब्द शक्ति से ही परमाणु विखण्डन पदार्थ को शक्ति में बदल कर उसके मनमाने उपयोग का मार्ग खुल जायेगा । मंत्र विद्या से ऐसे ही चमत्कारों की परिकल्पना की जाती है जो अब विज्ञान द्वारा साकार होने जा रहे हैं ।

शब्द को प्रकाश से भी अधिक समर्थ शक्ति माना जाने लगा है। इन दिनों सुपरसोनिक नामक जो माइक्रोस्कोप बने हैं वह प्रकाश-सिद्धान्त पर बने माइक्रोस्कोपों से अधिक शक्तिशाली होते हैं । रचना में ध्वनि तरंगें प्रकाश तरंगों से बहुत कुछ मिलती-जुलती होने पर भी गुणों में उनसे ठीक विपरीत होती हैं । प्रकाश-तरंगें उन्नतोदर लेन्स में तो संगठित होकर शक्तिशाली बनती हैं जबकि नतोदर में बिखर जाती हैं किन्तु अश्रव्य ध्वनि तरंगों के बारे में स्थिति ठीक इससे विपरीत रहती है । इस केन्द्रित शक्ति से न केवल शरीर अपितु पौधों, धातुओं आदि के दोषों का पता लगाना सम्भव हो गया है और इस नई शक्ति से औद्योगिकी में व्यापक क्रान्ति आने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जा रही हैं ।

मन्त्रों में उपर्युक्त प्रकार की सम्भावनाओं से भी अधिक समर्थ अपेक्षायें विद्यमान हैं, जो भी शब्द बोला जाता है वह दूसरे को सुनाई ही तब पड़ता है जब हवा में से उसके कम्पन दूसरे के कानों तक पहुँचते हैं । हर शब्द से हर दूसरा व्यक्ति प्रभावित होता है, पर जब वही शब्द प्रखर संवेगों और भावनाओं से प्रेरित होते हैं तो उसका अर्थ अश्रव्य ध्वनि कम्पनों का निर्माण ही होता है । मंत्र विद्या के कुछ अन्य पहलू भी हैं जो शब्द उच्चारण में प्रयुक्त होने वाले शरीर यन्त्रों से सम्बन्धित हैं तालु, जिह्वा, विवर तथा कुछ विशिष्ट चक्रों, उपत्यिकाओं से भी है जो शब्दों को गति प्रवाह, भ्रमर आदि में बदल देते हैं। यह उन यन्त्रों की तरह ही हैं जैसे ट्रान्सड्यूसर यन्त्र जो ध्वनि को सूक्ष्म आवृत्ति वाला बनाकर उन्हें अति समर्थ बना देते हैं ।

मंत्र विज्ञान एक अति समर्थ तथा सूक्ष्म विज्ञान है। उसे समझा तो जाये, पर जिस आधार पर यह शक्तियाँ मिलती हैं उस आत्मिक धरातल को भी सुदृढ़, विकसित और पवित्र बनाया जाना आवश्यक रहता है। उसके बिना मन्त्र विद्या का कुछ अर्थ ही नहीं हो सकता ।

यों तो गायत्री मंत्र के अर्थ, स्वरूप और प्रभाव से अनेक लोग परिचित हैं, पर उसकी भौतिक क्षेत्र में असाधारण रूप से कार्य कर सकने वाली क्षमता का अनुभव दूसरे लोगों ने नहीं किया जैसा कि साम्यवादी से अध्यात्मवादी के रूप में बदल जाने वाले महान दार्शनिक आर्थर कोयस्लर ने ।

कुछ समय पूर्व बम्बई के प्रख्यात साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' के सम्पादक संचालक श्री करेंजिया लन्दन गये थे । वहाँ रह रहे विश्वविख्यात विचारक कोयस्लर से भेंट की । इस भेंट में अन्य विषयों के अतिरिक्त परमाणु युद्ध की सम्भावना और उसकी विश्वव्यापी प्रतिक्रिया पर लम्बा वार्तालाप हुआ । इस सन्दर्भ में वे बहुत चिन्तित दिखाई पड़े । श्री करेंजिया ने पूछा—"यदि अणु आक्रमण हुआ तो हम अपनी रक्षा कैसे करेंगे ?"

इसके उत्तर मे कोयस्लर ने कहा—"गायत्री मंत्र में हजार परमाणु बमों से अधिक शक्ति है । यदि भारतवासी सामूहिक रूप से इस उपासना को आरम्भ कर दें तो उससे प्रकट होने वाली शक्ति आक्रमणकारियों के हौसले पस्त कर सकती है ।"

## प्राणरक्षक, गाया जा सकने वाला गायत्री मंत्र

गायत्री मंत्र एक विज्ञान सम्मत गाया जाने वाला मंत्र है । भौतिक सुख-शक्ति की अभिवृद्धि, वातावरण संशोधन एवं सूक्ष्म चेतना को बलवती बनाने के लिए उसका प्रयोग प्राचीनकाल के ऋषियुग में भी होता रहा है । मंत्र को व्यापक बनाने के लिए उसके साथ ताप और प्रकाश को यज्ञ के रूप में जोड़ना पड़ता है, तभी वह अधिक शक्तिशाली और विश्वव्यापी बनता है ।

यज्ञ एक बहुमुखी प्रक्रिया है । देखा गया है कि वनौषधियों को वायुभूत करके—हवन करके उसके समीप बैठने से गायत्री मंत्र का मध्यम स्वर से उच्चारण करते हुए यदि यज्ञ किया जाय तो पर्यावरण संशोधन से लेकर शारीरिक व मानसिक रोग निवारण व स्वास्थ्य संरक्षण तक में उसकी महती भूमिका सम्पन्न होती देखी जाती है ।

जिन्हें कुछ अधिक सार्थक उपलब्धि करनी हो अथवा जो इससे अधिक करने की स्थिति में हैं उनके लिए गायत्री मंत्र के ध्वनि गायन का अवलम्बन लेना चाहिए । जिस प्रकार शाकल्य में प्रयुक्त होने वाली वनौषधियों के अपने-अपने पृथक्-पृथक् गुण हैं, उसी प्रकार गायत्री मंत्र को जिन ध्वनियों में गायन करते हुए आहुतियाँ दी जाती हैं, उनका भी विशेष प्रभाव होता है । मंत्र की विशेषता उसके विशिष्ट रूप से किये गए गायन में है । उनमें शक्ति इसी आधार पर पैदा होती है । सामगान का समूचा शास्त्र ही इसी आधार पर बना है । मध्यम स्वर में तो किसी मंत्र का जप हो ही सकता है, दैनिक या सार्वजनिक यज्ञ में भी यह यज्ञ स्वर काम दे सकता है । वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिये इस प्रकार की स्वर लहरियों का विशेष प्रभाव देखा गया है । संसार भर में संगीत के प्रभाव से फसलें अच्छी फलित करने, अण्डे देने वाले पक्षियों एवं मछलियों को परिपुष्ट बनाने के प्रयोग हुए हैं । इसके अतिरिक्त मानसिक रोगों, स्नायुविक रोगों में भी संगीत विशेष की स्वर लहरियों के विशेष उपयोगी प्रभाव देखे गये हैं । अब संगीत चिकित्सा अपने आप में एक विशिष्ट शास्त्र बनता जा रहा है ।

गायत्री महामंत्र की प्रभावशीलता असंदिग्ध है । स्वर विधा के आधार पर भी इसे चमत्कारी माना गया है। इसके आधार पर शारीरिक ही नहीं मानसिक और भावनात्मक क्षेत्र में भी उपयोगी परिवर्तन किये जा सकते हैं । यज्ञाग्नि के साथ मिलकर मंत्र विद्या का प्रभाव असंख्य गुना अधिक हो जाता है । अथर्ववेद ३ ।१ ।१ के अनुसार इससे जहाँ अनेक रोगों से छुटकारा पाया जाता है और दीर्घ जीवन की उपलब्धि होती है, वहीं समिधाओं तथा औषधियों से परिपूरित यज्ञाग्नि के प्रभाव से उन्मादी और सनकी व्यक्ति भी रोग मुक्त हो जाते हैं । इसी में आगे कहा गया है—"यदिक्षितायुर्यदि परतो यदि मृत्योरन्ति के ।" अर्थात् यदि रोगी मृत्यु के समीप तक पहुँच गया हो तो भी यज्ञाग्नि उसे मंत्र शक्ति के सहारे वापस लौटा सकती है । श्रुति कहती है "गयान प्रणान त्रायते सा गायत्री ।" जो प्राणों की रक्षा करती है वह गायत्री है ।

परीक्षणोपरान्त पाया गया है कि मानसिक रोगों के निवारण के लिए उस प्रयोजन में काम आने वाली वनौषधियों का हवन अधिक लाभदायक सिद्ध होता है । शारीरिक रोगों में मध्यम स्वर से गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए हवन किया जाता है, किन्तु मानसिक रोगों के लिए सस्वर पाठ करते हुए हवन करना चाहिए । इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है । यह एक प्रकार का संगीत है । संगीत का 'न्यूरोहारमोनों' पर प्रभाव पड़ता है और उससे मनोविकार दूर होते हैं । अकेले की अपेक्षा सामूहिक रूप से किया गया सस्वर मंत्रोच्चार अधिक प्रभावशाली होता है और प्रतिफल भी जल्दी प्रस्तुत करता है । इस प्रयोजन के लिए पहले से टेप किये हुए सस्वर मंत्रोच्चार के कैसेटों से अभ्यास किया जा सकता है । टेपरिकार्डर के साथ स्वर में स्वर मिलाकर अपने मनोरोगों के लिए जिस स्वर में गायत्री मंत्र बोलना चाहिए, उसमें बोला जाय । नित्यकर्म प्रयोग में जिस तरह यजनकर्ता को अपनी सुविधानुसार सामग्री चयनकर हवन करने का नियम है, उसी तरह शारीरिक-मानसिक रोगों में भी प्रत्येक को अपने लिए उपयुक्त बीज मंत्र तथा सामग्री का चयन कर सस्वर या बिना स्वर के गायत्री महामंत्र का उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिए । मंत्रों की आहुतियों की संख्या चौबीस भी हो सकती है और ज्यादा भी । यहाँ ध्यान यह रखा जाना चाहिए कि संख्या नहीं, आहुतियाँ नहीं वस्तुतः मंत्रोच्चार करने वाले साधक की तपःपूत वाणी से उच्चारित शब्द लहरियों में प्राण श्रद्धा की सामर्थ्य से ही पैदा किए जाते हैं । जब यह सब होने लगता है तो चमत्कारी परिवर्तन जड़ व चेतन में होता हुआ देखा जा सकता है । गायत्री मंत्र का बीज मंत्र या बिना बीज मंत्र के योग गायन करते हुए कितना विस्फोटकारी है, यह जानने के बाद किसी को संदेह तनिक भी नहीं रह जाता ।

## मंत्र जप द्वारा चैतन्य ऊर्जा-स्रोत से सम्पर्क

गायत्री का देवता सविता चेतना-सूर्य है । वह ब्रह्माण्ड व्यापी चेतना-ऊर्जा का उद्गम स्रोत है । उसकी चित्शक्ति अनन्त अन्तरिक्ष के अज्ञात प्रदेश से प्रतिक्षण पृथ्वी पर बरसती रहती है । इन चैतन्य-ऊर्जाओं की अनुभूति का माध्यम है—श्रद्धा-तत्व । इनसे सम्पर्क की सशक्त प्रक्रिया है—भावपूर्ण स्मृति सातत्य । मंत्र साधना इसी प्रक्रिया का एक अंग है जिसमें ध्वनि विज्ञान श्रद्धा-शक्ति तथा चेतना विज्ञान का समन्वय है । व्यक्ति स्तर पर मन्त्राराधन में प्रथम आधार है इच्छा-शक्ति की तीव्रता । दूसरा आधार है ध्वनि विज्ञान । यह हुआ

व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले उद्योग का आधार, इन दोनों से ऊपर हैं चेतना विज्ञान के सूक्ष्म नियम ! समष्टि-व्यापी चेतना का ही एक अंश है व्यक्ति, किन्तु अपनी बहिर्मुखता में भटका मनुष्य उस समष्टि-चेतना से सम्पर्क के सूत्र भूल जाता है या वे सूत्र छोड़ देता है । उन सूत्रों को पुनः सक्रिय बनाना ही साधना है । मंत्र-शक्ति भी उनमें से एक सूत्र है ।

मंत्र-शक्ति का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए साधक को सर्वप्रथम आंतरिक धुलाई करनी होती है । परिष्कृत अन्तःकरण में ही मंत्र-शक्ति के प्रभाव से समष्टि-चेतना अपना दिव्य प्रकाश फेंकती है । अतः हृदय की शक्ति का मंत्र-साधना में सर्वोपरि महत्व है । क्योंकि वह चेतना विज्ञान का उपकरण है । यहाँ हृदय से तात्पर्य रक्त संचार करने वाली उस थैली से नहीं है जो अहर्निश धड़कती और कण-कण को पोषण प्रदान करती रहती है । शरीर विज्ञान में 'हृदय' रक्त संचार में संलग्न, मुट्ठी भर आकार वाली थैली को कहा जाता है, किन्तु चेतना विज्ञान का उपकरण-हृदय है भाव संस्थान । भाव संवेदना श्रद्धा-संवेग का जितना उच्चस्तरीय समावेश मन्त्र साधना में होता है, उतना ही सत्परिणाम सामने आता है ।

भावना-श्रद्धा की शक्ति के साथ उत्पन्न ध्वनि ही मंत्र है । जिस मंत्र का जो देवता होता है, भावश्रद्धा का उसी से सम्पर्क होता है । इस सम्पर्क में ध्वनि-विज्ञान के सिद्धान्त भी अपनी भूमिका निभाते हैं । ध्वनि एक प्रत्यक्ष शक्ति है । अणु-शक्ति, विद्युत-शक्ति, ताप-शक्ति आदि की ही तरह उसका भी उपयोग सम्भव है । शब्द और ध्वनियाँ वस्तुतः कम्पन-प्रवाह की स्थिति विशेष हैं जो इच्छापूर्वक उत्पन्न किये जाते हैं ।

इच्छा से गति तथा गति से तरंगें उत्पन्न होती हैं । ये ध्वनि कम्पन वायु के भीतर रहने वाले एक सूक्ष्म तत्व 'ईथर' में होते हैं । ईथर तत्व के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म और अति सम्वेदनशील होते हैं तथा एक सेकण्ड में ३४ अरब तक कम्पन उत्पन्न कर सकते हैं । यद्यपि हमारे कान एक सेकण्ड में ३२ से ६८ तक ही कम्पन सुन, समझ सकते हैं । ३२ से कम नहीं और ६८ से अधिक नहीं । जब ईथर तत्व के परमाणुओं द्वारा उत्पन्न कम्पन चरम सीमा पर अर्थात् ३४ अरब के प्रति सेकण्ड के आस-पास पहुँचते हैं तो उनसे एक अखण्ड प्रकाश की किरणें प्रवाहित होने लगती हैं । यही प्रकाश किरणें एक्स-रेज कहलाती हैं । ये किरणें अद्भुत गतिशील होती हैं, एक सेकण्ड में ये प्रायः एक करोड़ मील चल लेती हैं। इसी आधार पर रेडियो, टेलीविजन बने हैं । वायु के कम्पन नष्ट हो जाते हैं, किन्तु ईथर के कम्पन कभी भी नष्ट नहीं होते । हाँ, पुराने होने पर वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सतह पर जाकर स्थिर हो जाते हैं । वहाँ वे बलिष्ठ हो जाने पर अपने समानधर्मी अन्य कम्पनों को अपनी ओर खींचते हैं और दुर्बल होने पर समानधर्मी किन्तु शक्तिशाली अन्य कम्पनों की ओर खिंच जाते हैं । सभी कम्पन-समूह एक विशेष ध्वनि वर्ग का निर्माण करते हैं । यह ध्वनि वर्ग अपने अनुरूप वर्ग के साथ तीव्रता से प्रतिक्रिया करता है । एक से ध्वनि-समूह पर्यावरण में एक प्रकार का दबाव प्रभाव उत्पन्न करते हैं । प्राचीन ध्वनि कम्पन संघनित रूप में गुरुत्वाकर्षण सतह में एक विशेष दबाव का निर्माण करते हुए विद्यमान हैं ।

इस प्रकार संघ शक्ति के आधार पर ये कम्पन समूह एक चुम्बकत्व का सृजन करते हैं । यह चुम्बकत्व एक चेतना जैसा होता है, जो समानधर्मी चेतना वाले मनुष्यों को प्रभावित करता है । जिन मनुष्यों के मस्तिष्क की स्थिति उन प्राचीन, सुसंगठित शब्दों की कम्पन शक्ति से मिलती-जुलती होगी उन पर इस चुम्बकत्व शक्ति का, इस चेतना का सीधा प्रभाव पड़ेगा । यदि स्थिति समान न हुई तो समान शब्दों का उच्चारण उस प्रभाव की उपस्थिति का परिचय तो दे सकता है, किन्तु उस पर गहरा प्रभाव नहीं डाल सकता । इसीलिये मंत्र जप कर्ता की अन्तश्चेतना का परिष्कार अत्यावश्यक है । तभी पूर्वज ऋषियों की चेतना से उसकी सम्वेदना जुड़ सकती है ।

संगीत विज्ञान से ज्ञात होता है कि प्रत्येक ध्वनि का आकार होता है, वह मात्र तरंग नहीं है । प्रत्येक को वैसी ही आकृति दी जा सकती है जैसी कि हम एक पत्थर, एक कुर्सी, एक पत्ता आदि की देखते हैं । ध्वनि का परिवर्तन शक्ति के रूप में किया जा सकता है । इस शक्ति को पुनः ध्वनि का रूप दिया जा सकता है । आवाज का परिवर्तन पदार्थ के रूप में किया जा सकता है । प्रत्येक पदार्थ से एक विशेष ध्वनि कम्पन निःसृत होता है । मंत्रों के आधार पर विशिष्ट ध्वनि प्रवाह का जो चित्र बनता है उसके ही आधार पर उस मंत्र के देवता की आकृति का आकलन किया गया है । मन्त्र के देवता की आकृति मंत्र के ध्वनि समूह की आकृति है, जो निरन्तर उसके आवर्तन से बनती है ।

जिस प्रकार सितार के तारों पर एक निश्चित क्रम से उंगलियाँ रखने पर सुनिश्चित स्वर लहरियाँ निकलती हैं,

उसी प्रकार शब्दों के उच्चारण का एक लयबद्ध क्रम विशिष्ट कम्पनों को उत्पन्न करता है, जो विशेष शक्तिशाली व प्रभावोत्पादक होते हैं । इन शक्तिशाली कम्पनों के संघात से पर्यावरण में उभरने वाले दबाव की आकृति ही मंत्र देवता की आकृति है । यही मंत्र विज्ञान में देवता की अभिव्यंजना है । इसीलिए मंत्रों में महत्व मात्र शब्दार्थ का नहीं ध्वनि प्रवाह का है । श्रद्धा के उपरान्त मन्त्र-विज्ञान में दूसरी महत्वपूर्ण बात है विशिष्ट ध्वनि प्रवाह की निरन्तर आवृत्ति से उत्पन्न लयबद्धता ।

बांसुरी में सात छिद्र होते हैं जिन्हें सात स्वर कहा जाता है । आरोह अवरोह के एक निश्चित क्रम से वायु को फूँकते हुए छिद्रों का व्यवस्थित संचालन करने पर एक निश्चित स्वर लहरी उत्पन्न होती है । यह ध्वनि-चक्र है। मंत्र भी एक विशिष्ट ध्वनि चक्र को जन्म देते हैं । देर तक गायत्री मंत्र के सतत रूप द्वारा उत्पन्न हुआ शक्तिशाली ध्वनि-चक्र निखिल ब्रह्मांड में परिभ्रमण करता है और वहाँ हलचल उत्पन्न करता है । यह ध्वनि चक्र चेतना-चुम्बकत्व के कारण पूर्व में की गई गायत्री साधना से उत्पन्न चेतना-चुम्बक से जुड़ता है । इस प्रकार वह अनन्त ऊर्जा स्रोत से भी जुड़ जाता है ।

मंत्र का सुदीर्घ काल तक सतत दुहराव अन्तर प्रदेश तथा वाह्य प्रदेश में एक साथ विशिष्ट दबाव पैदा करता है। यह दबाव प्रभाव साधक के अन्तःकरण की शक्ति यानी कारण शरीर की सामर्थ्य के अनुसार न्यूनाधिक होता है । साधक की श्रद्धा तथा निष्ठा जितनी सघन होती है और चरित्र जितना शुद्ध होता है, ऊर्जा उतनी ही प्रखर होती है । यह मंत्र-ऊर्जा अन्तःकरण की प्रकृति का अंग बनती जाती है । दीर्घकालीन सतत साधना से साधक मानो मन्त्र की ही मूर्ति हो जाता है । यही मंत्र-विज्ञान में योनिमुद्रा की स्थिति है, जिसमें मंत्र रूपी चेतना ऊर्जा प्रविष्ट होकर एक रूप हो जाती है । मंत्र और साधक का व्यक्तित्व अभिन्न हो जाता है । उसके व्यक्तित्व में से मन्त्र की सामर्थ्य झलकने लगती है । यही सिद्धि है ।

स्पष्ट है कि मंत्र चैतन्य और योनिमुद्रा की स्थिति चेतना-विज्ञान तथा श्रद्धा तत्व को समापने और अपने व्यक्तित्व को तदनुरूप ढालने पर ही प्राप्त हो सकती है । साधना में यह आधार विनिर्मित किया जाना सर्वोपरि आवश्यकता है । तभी गायत्री मंत्र जप द्वारा ब्रह्माण्ड व्यापी चेतना सूर्य से सघन सम्पर्क में सफलता प्राप्त होती है ।

# मंत्र शक्ति और देवसत्ताओं का तारतम्य

मनुष्य सत्ता दो भागों में विभक्त है—शरीरगत और मनोगत । शरीर क्रिया करता है और मन चिन्तन । दोनों से ही अपने-अपने ढंग के विद्युत-प्रवाह निस्सृत होते हैं । शरीर में घर्षणात्मक क्रिया होती है । हृदय की धड़कन, नाड़ी समूह में रक्त का आवागमन—फेफड़ों द्वारा श्वांस का ग्रहण-विसर्जन—मांस-पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन एक प्रकार का घर्षण उत्पन्न करता है और उन हलचलों से जो गर्मी उत्पन्न होती है उसे शरीरगत ऊर्जा कह सकते हैं। इसी के बल पर शरीर यन्त्र विभिन्न प्रकार के क्रिया-कृत्य करने में समर्थ होता है । इसे घर्षण परक विद्युत कहा जाता है ।

मस्तिष्क से चुम्बकीय विचार तरंगें उत्पन्न होती हैं । तालाब में ढेला फेंकने पर लहरें उठती हैं और वे धीरे-धीरे बहती हुई तालाब के अन्तिम छोर तक जा पहुँचती हैं । यह विश्व-ब्रह्माण्ड भी एक प्रकार का तालाब है किन्तु है गोल । इसलिए इसका अन्तिम छोर भी वही स्थान होता है जहाँ से संचरण क्रिया आरम्भ हुई थी । मस्तिष्क से ताप—प्रकाश की तरह ही विचारों की विद्युत तरंगें निकलती हैं । वे आगे-आगे बहती बढ़ती चली जाती हैं। अन्ततः वे एक पूरी परिक्रमा करने के बाद अपने मूल उद्गम स्थान पर शब्द वेधी वाण की तरह लौट आती हैं।

यह यात्रा चुपचाप नहीं होती रहती, वरन् इनकी चुम्बकीय शक्ति बहुत कुछ ग्रहण-विर्सजन भी करती चलती है । यह तरंगें जिस क्षेत्र से सम्पर्क बनाती हैं उसे प्रभावित करती और स्वयं प्रभावित होती हैं । यह प्रभाव प्रक्रिया सजातीयता के आधार पर चलती है । समान वर्ग के पदार्थ अथवा प्राणी एक-दूसरे से प्रभावित और आकर्षित होते हैं । पालतू पक्षी उड़ा दिया जाय तो वह अपनी ही जाति के पक्षियों के झुण्ड में जा मिलेगा । अन्य जाति के पक्षियों की उपेक्षा करता हुआ वह सजातीयों को ढूँढ़ेगा और वे जहाँ भी मिलें वहीं अपने रहने का प्रबन्ध करेगा । विचार भी एक प्रकार के पक्षी हैं । वे अपनी ही जाति के विचार प्रवाहों के साथ रिश्ता बनाते और आदान-प्रदान करते हैं ।

कुछ जाति के पक्षी ऋतु परिवर्तन का लाभ लेने के लिए अपने जन्म स्थान से बहुत दूर उड़ जाते हैं किन्तु समय पर फिर लौटकर अपनी जगह वापस आ जाते हैं । विचारों की मात्रा भी इसी प्रकार की है । उनकी तरंगें मस्तिष्क से उठती हैं । विश्व भ्रमण के लिए निकलती हैं। इस यात्रा में वे पुण्य बटोरती और दान-पुण्य करती तीर्थयात्रा जैसी रीति-नीति अपनाती हैं । भले या बुरे विचार घर से निकलते हैं और अपने साथ सजातीयों का एक पूरा झुण्ड लेकर अपने उद्गम स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक बलवान होकर लौट आते हैं । इस प्रक्रिया के अनुसार मनुष्य अपनी विचार सम्पदा से—जहाँ असंख्यों को लाभान्वित करता है वहाँ उनसे बहुत कुछ प्राप्त भी करता है । इस प्रकार अपने विचार वस्तुतः दूसरों को कम और अपने को अधिक प्रभावित करते हैं । खेत में बोया हुआ बीज बढ़ता और फलता है । उस फसल का लाभ बोने वाले किसान को ही मिलता है । अपने मस्तिष्क रूपी खेत में हम विचारों के बीज बोते हैं और उनकी फसल स्वयं ही काटते हैं । अशुभ विचारों से दूसरों को भी हानि होती है किन्तु वापस लौटने पर उनकी बढ़ी-चढ़ी घातक शक्ति की हानि अपने को ही अधिक भुगतनी पड़ती है । यह बात सद्विचारों के सम्बन्ध में भी है । वे भी सारा वातावरण प्रभावित करते हैं, जिधर से गुजरते हैं उधर ही सुगन्धित शीतल वायु जैसा उत्तम प्रभाव छोड़ते हैं और अन्ततः अनेक गुने परिपुष्ट होकर जब लौटते हैं तो उनका लाभ सृजेता को भी मिलता है । गाय सबेरे जंगल में चरने जाती है और शाम को वापस लौटती है इस वापसी में घास से पेट भरने के साथ-साथ थनों में दूध भरकर भी घर आती है । विचार दुधारू गाय की तरह हैं। वे जहाँ से निकलते हैं वहाँ मात्र विचार होते हैं, पर परिभ्रमण के बाद उनकी स्थिति काफी सुदृढ़ हो चलती है। तद्नुसार उसका परिणाम भी उद्गम स्थल को मिलता है । बादल समुद्र से उठते हैं । दूर देशों में बरसते हैं । वर्षा का जल नदी-नालों में होकर समुद्र में फ़िर वापस जा पहुँचता है, पर इस वापसी में पृथ्वी में रहने वाले अनेक खनिज पदार्थ भी उसके साथ घुले होते हैं । उन्हीं के कारण समुद्र का पानी क्रमशः अधिक खारी और अधिक गाढ़ा होता जाता है । मस्तिष्क रूपी समुद्र, विचार रूपी बादलों को, आकाश में उड़ाता है, वे लौटते हैं तो सजातीय अनुभवों एवं अनुदानों की पोटली अपनी अभिनव कमाई के रूप में अपने साथ लादे हुए होते हैं ।

शब्द के साथ ऊर्जा लिपटी होती है । यदि कोई हल्की-सी ध्वनि लगातार एक वर्ष तक जारी रखी जाय और उसकी ऊर्जा संग्रहीत रखी जाय तो उससे इतनी गर्मी मिलेगी जो एक कटोरी पानी को खौला सके ।

शरीर द्वारा शब्द की उत्पत्ति का मोटा विवरण यह है कि बाहर की वायु अन्तर के अमुक स्नायु संस्थानों से टकराती है और उस आघात से शब्द उत्पन्न होता है । इस उत्पत्ति में भी शारीरिक अवयवों की हलचल अपने आप नहीं हो जाती वरन् मन का पूरा नियन्त्रण रहता है। बाहरी हवा का कितना दबाव किस अवयव पर किस उतार-चढ़ाव के साथ पड़े और उससे किस स्तर का ध्वनि प्रवाह निस्सृत हो, किन्हीं शब्दों को सौम्य, आवेश युक्त, अपेक्षित गद्य अथवा पद्य शैली में भिन्न-भिन्न प्रकार से बोला जा सकता है । यह भिन्नता मन जनित है । जब हम चाहते हैं तब इच्छा शक्ति द्वारा नियोजित वे हलचलें आरम्भ होती हैं जो बाहरी वायु को खींचने भीतरी से टकराने—स्नायुगत हलचल उत्पन्न होने और ध्वनि प्रवाह चल पड़ने तक की लम्बी किन्तु क्षण भर में सम्पन्न होने वाली क्रिया का उपक्रम बन जाती हैं ।

शब्द में शरीरगत घर्षण विद्युत का समावेश होता है क्योंकि वह अवयवों की हलचल से उत्पन्न होता है । किन्तु साथ ही मन का सहयोग भी उसमें पूरी तरह जुड़ा होता है इसलिए धारावाहिक विद्युत का भी सहज समन्वय हो जाता है । इसलिए शब्द में उभयपक्षीय विद्युत संचार जुड़े हुए देखे जा सकते हैं । सहज धकलने में मात्र शारीरिक हलचल ने ही काम किया, उसमें घर्षण विद्युत ने ही काम किया किन्तु यदि किसी को क्रोधपूर्वक हल्का सा भी चाँटा मारा गया है तो उसकी प्रतिक्रिया कहीं अधिक उग्र होगी क्योंकि सहज धकेल में उतना विद्युतीय प्रवाह नहीं था जितना कि आवेश युक्त चाँटे में । उसमें शरीरगत और मनोगत विद्युत का दुहरा रोल रहा इसलिए आघात न केवल शरीर पर ही लगेगा, वरन् मनः क्षेत्र को भी तिलमिला देगा ।

वायु के भीतर एक और सूक्ष्म तत्व है जिसे 'ईथर' कहते हैं । शब्द के कम्पन इस ईथर में ही होते हैं ईथर के कम्पन उसकी सूक्ष्मता के अनुरूप अत्यधिक तीव्र होते हैं । उनकी गति भी उसी हिसाब से तीव्र होती है । प्रकाश कम्पनों की गति एक सेकण्ड में एक लाख छियासी हजार मात्र है । जबकि ईथर में शब्द के कम्पन एक सेकण्ड में २३०५७९३००९२१३६९३९५२ तक

पाये जाते हैं । हमारे कान इतने तीव्र कम्पनों को पकड़ नहीं सकते । उनकी रचना बहुत सीमित ध्वनियों को ही सुन सकने योग्य हुई है । वे मात्र ३२७७० गति के कम्पन सुन सकते हैं । मनुष्य के कानों की पकड़ से मन्द और तीव्र असंख्य ध्वनियाँ इस आकाश में प्रवाहित रहती हैं, पर अपनी सीमित श्रव्य शक्ति के कारण वह सुन नहीं सकते ।

शब्द के कम्पन अपनी चरम स्थिति पर पहुँचकर 'क्ष' किरणों एक्सरेज के रूप में परिणत हो जाती हैं । तब उनकी गति एक करोड़ मील प्रति सेकण्ड होती है ।

कम्पन कभी नष्ट नहीं होते वे भी अमर होते हैं । वे कुछ समय पर तो आकाश में उड़ते हैं, पर धीरे-धीरे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से खिंचकर नीचे उतरते आते हैं और धरती सतह पर परत की तरह जमते चले जाते हैं । यहाँ भी वे मृत नहीं बन जाते किन्तु सक्रियता जारी रखते हैं । प्रभावित होने और प्रभावित करने का आदान-प्रदान इस स्थिति में भी चलता रहता है । इस क्षमता का मन्द अथवा तीव्र होना इस बात पर निर्भर रहता है कि विचार-कर्त्ता का व्यक्तित्व कितना विद्युतीय था और उसमें किस स्तर की संकल्प शक्ति का प्रयोग हुआ ।

सजातीयों का एकत्रीकरण प्रकृति का नियम है । भू-गर्भ में खदानें इस सिद्धान्त पर बनती और बढ़ती हैं कि अमुक स्थान पर एकत्रित खनिज एक संयुक्त चुम्बकत्व उत्पन्न करते हैं । उसका प्रभाव जितने क्षेत्र में होता है वहाँ से उसी जाति के बिखरे कण खिंचते हुए चले आते हैं और उस जमाव में सम्मिलित होने लगते हैं । इस प्रकार खदान का आकार बढ़ता है साथ ही उसका चुम्बकीय क्षेत्र भी । जितनी बड़ी खदान उतना बड़ा चुम्बकत्व और फिर उतने ही सुदूर क्षेत्र तक उसकी आकर्षण प्रक्रिया का प्रभाव । यही है वह आधार जिसके सहारे धातु आदि की खदानें धीरे-धीरे अपना आकार बढ़ाती रहती हैं ।

शब्द, ताप आदि की तरह विचार भी एक प्रकार का पदार्थ ही है । कम्पन और गति के साथ जो वस्तु जुड़ी, वह पदार्थ बनी । सूक्ष्मता, स्थूलता का अन्तर तो बना ही रहेगा । इससे सत्ता में कोई अन्तर नहीं आता । खदानों की तरह कोई अति तीव्र और अधिक व्यापक विचार संघन होकर समर्थ गुच्छकों के रूप में विकसित होते रहते हैं । इनका बहुत प्रभाव होता है । धर्म, सम्प्रदायों के अपने विचार गुच्छक हैं । राजनैतिक क्षेत्र में साम्यवाद, पूँजीवाद, प्रजातन्त्रवाद, अधिनायकवाद के बड़े प्रचण्ड विचार गुच्छक हैं और वे जिन मस्तिष्कों में अनुकूलता पाते हैं उन्हीं पर चढ़ दौड़ते हैं । अध्यात्म की भाषा में इन्हें 'अधि देवता' कहा गया है ।

हर मन्त्र का एक अधि देवता माना गया है । उसकी अपनी आकृति और प्रकृति का वर्णन है । मन्त्र में शक्ति उसी से आती है और सिद्ध होने पर साधक को उसी से वरदान मिलता है । ध्यान साधना की सुविधा के लिए इन अधि देवताओं को मनुष्य की आकृति दी गई है और शस्त्रों, आभूषणों एवं वाहनों से अलंकृत किया गया है । इससे प्रतीत होता है कि वे कोई मनुष्य जैसे ही देव दानव स्तर के होंगे और मनुष्यों की तरह खाते, सोते, बोलते और क्रुद्ध, प्रसन्न होते होंगे । अलंकारिक दृष्टि से इस प्रतिपादन में समझने समझाने की सुविधा रह सकती है, पर यदि यथार्थता जाननी हो तो इन अलंकारों के पीछे छिपे हुए तथ्यों को जानना पड़ेगा ।

तात्विक दृष्टि से कुछ विशिष्ट प्रकार के विचार गुच्छकों को 'अधि देवता' कहा जा सकता है । विशिष्ट अर्थात् जिनके पीछे मनस्वी लोगों का अनुमोदन, सघन निष्ठा का समन्वय, उनका कार्यान्वित होना जैसे आधारों का समन्वय । उदाहरण के लिए गायत्री महामन्त्र अति प्राचीन है । उसकी शब्द रचना का निर्धारण—अमुक स्तर के शक्ति कम्पन उत्पन्न कर सकने की विशेषता को ध्यान में रखकर किया गया है । मन्त्र में शब्दार्थ का कम और उसकी शक्ति उत्पादन क्षमता का महत्व अधिक होता है । गायत्री मन्त्र के पीछे अगणित अति मनस्वी लोगों की मानसिक श्रद्धा ऊर्जा सम्मिलित है । साधना—पुरश्चरण प्रक्रिया की असंख्य धाराएँ उसके साथ मिलती चली गई हैं । दैनिक उपासना के रूप में उसे अब तक अगणित व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त किया गया है । इससे उस दिव्य शक्ति की क्षमता युग-युगों से निरन्तर बढ़ती चली आई है और वह अधि देवता अधिकाधिक परिपुष्ट होता चला आया है । गायत्री की शक्ति अन्य मन्त्रों से अधिक है । इस स्पष्ट तथ्य का कारण उसके अधि देवता का अधिक शक्ति सम्पन्न होना है । गायत्री एक अधि देवता भी है । उसका प्रतीक पूजन साधक को इस शक्ति प्रवाह के साथ संयुक्त करने में सहायक सिद्ध होता है । यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि देवताओं की आकृतियों का निर्धारण, अमुक स्तर के विचार गुच्छकों की क्षमता का प्रतीकात्मक वर्णन ही है ।

यदि आकृति की वास्तविकता को स्वीकार करने न करने के झंझट में न पड़ा जाय तो साकारवादी और निराकारवादी दोनों ही समान रूप से इस सृष्टि में चेतनात्मक शक्ति गुच्छकों के अस्तित्व का अनुभव कर सकते हैं ।

प्रत्येक वेद मन्त्र का एक देवता है । हर मन्त्र के साथ उसका परिचय विनियोग जुड़ा हुआ है । हर मन्त्र का एक छन्द—ऋषि और देवता होता है । इनकी व्याख्या, ध्वनि प्रवाह—अनुमोदन, परम्परा और ऊर्जा गुच्छक के रूप में की जा सकती है । छन्द अर्थात् मन्त्र श्रृंखला के द्वारा उत्पन्न होने वाले कम्पनों का प्रवाह स्तर । ऋषि अर्थात् वह मान्यता और भावना जो उसके साथ चिरकाल से एक परम्परा बनकर चलती आ रही है । देवता अर्थात् छन्द और ऋषि तत्वों का खाद, पानी पाकर परिपुष्ट हुआ मन्त्र बीज का परिपुष्ट वट-वृक्ष । इतने आधार हर मन्त्र के साथ जुड़े होते हैं । इसीलिए उपासना काल में इन सबको पूजा प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठापित किया जाता है । उनकी छवि का ध्यान एवं उपचार पदार्थों से पूजा सत्कार किया जाता है । यह देव सान्निध्य की तथ्यपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। मोटी बुद्धि से इसे अन्ध-विश्वास कहा जा सकता है, पर वस्तुतः वैसी बात है नहीं । परमाणु के इलेक्ट्रोन घटकों सहित चित्र प्रायः छपते रहते हैं और उनमें कई गेंद, गोले उड़ते, भ्रमण करते दिखाई पड़ते हैं । तथ्यतः वैसा देखने योग्य कहीं कुछ नहीं है । परमाणु के घटक मात्र विद्युतीय कण हैं । उन्हें रेत कण की तरह आकृति युक्त स्थिति में नहीं देखा जा सकता । उनके परिणामों को देखकर वैसा अनुमान लगाया गया है जैसा कि एटम के चित्रों में छपा हुआ देखा जाता है । झंझट ही खड़ा करना हो तो एटम की आकृतियों को भी झुठलाया जा सकता है । देवताओं की आकृतियाँ भी इसी आधार पर कपोल कल्पित कही जा सकती हैं, पर इस खण्डन-मण्डन से कुछ बिगड़ता बनता नहीं । देखना यह होगा कि मन्त्र शक्ति की कुछ प्रतिक्रिया होती है या नहीं? यदि होती है तो उसके सूक्ष्म स्वरूप की स्थूल स्थापना करने में कोई हर्ज नहीं । इससे समझने समझाने में सुविधा रहती है । एटम का वह चित्र जितने गोले उड़ते, घूमते दीखते हैं बन जाना कुछ अनर्थ जैसा नहीं हुआ है । आत्म-शक्ति से भरे-पूरे शक्ति गुच्छकों के सान्निध्य में आने से जो प्रभाव उत्पन्न होता है उसके सहारे मन्त्र सत्ता के रूप निर्धारण में कोई दोष नहीं है । अधि देवताओं का मन्त्र शक्ति के साथ जुड़े होने का तथ्य इसी आधार पर समझा जाना चाहिए ।

# मंत्र शक्ति का उद्गम स्रोत

यज्ञ प्रक्रिया में ज्ञान एवं विज्ञान के सभी स्रोत विद्यमान हैं । ज्ञान पक्ष के द्वारा यज्ञीय दर्शन एवं प्रेरणाओं को हृदयंगम करने एवं उदात्त-जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है । जबकि विज्ञानपक्ष द्वारा शक्ति सामर्थ्य अर्जित की जाती है । वातावरण संशोधन, रोगनिवारण, स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्धन, पर्यावरण संतुलन इसी के अन्तर्गत आते हैं । यज्ञों के उस वैज्ञानिक, उपयोगी प्रारूप को देने में मूलभूत शक्ति कौन सा काम करती है, यह कम ही जानते हैं ।

सर्वविदित है कि बिना शब्द शक्ति की ऊर्जा के यज्ञ का प्रयोजन अधूरा ही रहता है । मात्र वनौषधि यजन से यदि यह लक्ष्य पूरा होता तो इसे किसी यांत्रिक संयंत्र द्वारा पूरा कर लिया जाता । यज्ञ में सन्निहित शक्ति एवं परिणति का आधार है मंत्र एवं यज्ञ दोनों मिलकर यजन प्रक्रिया को सफल बनाते हैं । मंत्रों के सही गायन एवं सुपात्र याज्ञिक के अभाव में वह कृत्य मात्र कौतूहल भर बन कर रह जाता है ।

मंत्रों में चार प्रकार की शक्तियाँ पाई गई हैं—

(१) प्रामाण्य शक्ति

(२) फलप्रदायक शक्ति

(३) बहुलीकरण शक्ति

(४) अध्यात्म शक्ति ।

इन चारों ही शक्तियों के समन्वय एवं योगदान से यज्ञायोजन का समग्र लाभ मिलता तथा चमत्कारी प्रभाव पड़ते देखा गया है ।

महर्षि जैमिनी रचित पूर्ण मीमांसा के अनुसार मंत्रों में जो अर्थ, शिक्षा, सम्बोधन एवं प्रेरणा सन्निहित है जिसके द्वारा मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान मिलता है तथा सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है वह उसकी प्रामाण्य शक्ति है । परोक्ष में यही वह देव शक्ति है जो यजन कर्त्ता को सूक्ष्म रूप से सदाचरण एवं परमार्थ पथ पर चलने की प्रेरणा देती है । विज्ञान द्वारा सिद्ध है कि विचारों का कभी अन्त नहीं होता । आह्वान जिन भी विचारों का किया जाता है, वे ही चिन्तन के आधार बनते और उसके अनुरूप ही गतिविधियाँ चलती हैं । सत्चिन्तन एवं अनैतिक चिन्तन का यही आधार है । यज्ञीय वातावरण में मंत्र के माध्यम से श्रेष्ठ विचारों का स्फोट किया जाता है जो यज्ञ ऊर्जा के सान्निध्य में पहुँच

कर और भी सूक्ष्म हो जाते हैं तथा अंतरिक्ष में फैल जाते हैं अपने अनुरूप ही विचारों को अंतरिक्ष से संकलित करके पुनः यजन कर्त्ता के निकट पहुँचते हैं । अपने उद्‌गम स्रोत में पहुँचकर वे और भी अधिक सशक्त एवं समर्थ बन चुके होते हैं । यज्ञीय ऊर्जा में मंत्र शक्ति से निकले शक्तिशाली विचार यजन कर्ता के चारों ओर छाये रहते हैं। फलतः वह तो लाभान्वित होता ही है निकटवर्ती अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं । यह अनुभूति सत्य है कि जहाँ कहीं भी यज्ञायोजन होते हैं, वहाँ का वातावरण दिव्य बना रहता है । देव तत्वों की वहाँ बहुलता होती है । जिसके कारण एक नास्तिक भी यदि वहाँ पहुँचे तो वह भी अपने अन्तःकरण में एक विचित्र आह्लाद एवं आनन्द का अनुभव करता है । वह अपनी संकीर्णता भूल जाता है । सहयोग, सेवा एवं उदारता की उमंगें उसके अन्तः में भी उभरने लगती हैं । यह मंत्र में सन्निहित प्रामाण्य शक्ति का ही प्रभाव है जिसके कारण इस प्रकार की वैज्ञानिक दिव्य प्रेरणाएँ हर किसी के हृदय में उठने लगती हैं । यज्ञीय ऊर्जा में यह शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती तथा चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करती है । वातावरण संशोधन, अनुकूलन, रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन का यह वह पक्ष है जो परोक्ष में मनुष्य आचार नियमों को पालन करने, संयम में आबद्ध होने की शक्ति देता है । मंत्र शक्ति का यह सूक्ष्म और औपचारिक पक्ष है पर अन्य स्थूल पक्षों की तुलना में अधिक सशक्त और वैज्ञानिक है ।

मंत्र की दूसरी शक्ति है फल प्रदान करने वाली । जिसके द्वारा हवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को संस्कारित किया जाता तथा प्राणवान बनाया जाता है । कुशा, हवि, चरु, आज्य, कुण्ड, समिधा, यज्ञ पात्र आदि मंत्र की सूक्ष्म प्राण शक्ति से अभिमंत्रित होते हैं । वे किस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त हो रहे हैं, इस आधार पर ही मंत्रों द्वारा उन्हें अभिमंत्रित किया जाता है । उनमें अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के योग्य ही संस्कार दिए जाते हैं । लक्ष्य परिशोधन का भी है । वस्तुओं एवं पदार्थों पर भी अपने उद्‌गम स्रोत के संस्कार पड़े रहते हैं । उन्हें परिशोधित एवं पवित्र करने की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न प्रकार के मंत्रों का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि स्थान आदि से जुड़ी अपवित्रता को दूर करना । अभीष्ट प्रयोजन के लिए मंत्रोच्चार द्वारा पवित्र एवं संस्कारित करके योग्य बनाना, तभी यज्ञ के निर्धारित प्रयोजन की आपूर्ति सम्भव हो पाती है ।

मंत्र की तीसरी शक्ति बहुलीकरण शक्ति है । यह सूक्ष्मीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है । देव पूजन में थोड़ी मात्रा में चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य आदि चढ़ाया जाता है । देवताओं का आकार एवं विस्तार अधिक है । ऐसी स्थिति में उनकी तुष्टि एवं तृप्ति इन थोड़ी वस्तुओं से किस प्रकार होती है, यह सन्देह अधिकांश के मन में उठता है । स्पष्ट है कि देवता व्यक्ति नहीं शक्ति होते हैं । उनके स्वरूप भी स्थूल न होकर सूक्ष्म होते हैं । उन्हें सूक्ष्म आहार ही अभीष्ट होता है । देवशक्तियाँ सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में फैली हैं । उन्हें पोषण देने, आकर्षित करने के लिए वस्तुओं की सूक्ष्म विशेषताओं के साथ मंत्रों की विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा स्फोट कराया जाता है । फलतः थोड़ी मात्रा में चढ़ायी हुई वस्तु भी सूक्ष्म होकर अधिक सामर्थ्यवान बन जाती है । देवत्व परिपोषित एवं परिपुष्ट होकर अपने अनुदानों की वर्षा करता है । यही बात हवन में प्रयुक्त होने वाली वनौषधियों के सम्बन्ध में लागू होती है । होमियोपैथी के ज्ञाता जानते हैं कि वस्तुएँ सूक्ष्मीकृत होकर अधिक शक्तिशाली बन जाती हैं । अधिक पोटेन्सी वाली होमियोपैथिक औषधियाँ अधिक सूक्ष्मीकरण के सिद्धान्त द्वारा ही विनिर्मित होती हैं । प्रयोग कर्ता के ऊपर इनका शीघ्र तथा चमत्कारी प्रभाव पड़ता है । यज्ञ अग्नि में वनौषधियाँ सूक्ष्मीकृत होकर शीघ्र तथा अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती हैं । इनकी प्रतिक्रिया भी व्यापक स्तर पर होती है । मंत्र की बहुलीकरण शक्ति द्वारा यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं पर स्फोट किया जाता है । यह प्रक्रिया वैसी ही है जिस प्रकार पारमाण्विक ऊर्जा प्राप्त करने के लिए परमाणु को तोड़ने की । इस प्रक्रिया द्वारा होमीकृत वस्तुओं की सामर्थ्य तो बढ़ती ही है, प्रभाव भी व्यापक क्षेत्र में पड़ता है । जीव, जन्तु, वृक्ष, वनस्पति सभी लाभान्वित होते हैं । वातावरण संशोधन एवं अनुकूलन का प्रयोजन पूरा होता है ।

मंत्र की चौथी अयातयाम अथवा अध्यात्म शक्ति वह है जो किसी विशेष व्यक्ति द्वारा, विशेष स्थान पर, विशेष उपकरणों से पैदा होती है । विश्वामित्र ऋषि ने गायत्री तत्व की साधना को पूरी तन्मयता एवं विधिविधान के साथ लम्बे समय तक किया, फलस्वरूप गायत्री के मंत्र दृष्टा बने । विशिष्ट साधना निश्चित समय, निश्चित स्थान एवं एक निर्धारित विधि द्वारा किए जाने पर चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करती है । साधना में प्रयोग किए जाने

वाले पात्र एवं स्थान भी तप की ऊर्जा से असाधारण रूप से प्रभावित होते हैं । ऐसे ही स्थान तीर्थ, सिद्धपीठ, शक्तिपीठ बनते हैं । साधना में प्रयुक्त होने वाले पूजा पात्र, माला आदि भी मंत्र शक्ति से अभिपूरित होते हैं तथा अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में सहायक सिद्ध होते हैं ।

प्राचीन काल में इस आध्यात्मिक अयातयाम शक्ति का असाधारण महत्व था और इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था कि विशिष्ट साधना में प्रयुक्त होने वाले पात्रों का उपयोग अन्य किसी कार्य के लिए न किया जाय। इससे उनकी पवित्रता एवं शक्ति बनी रहती है । यह विधान भी है कि उपासना, साधना अथवा यज्ञ में काम आने वाले विभिन्न पात्रों का प्रयोग मात्र उसी प्रयोजन तक सीमित रख जाय । कल्प सूत्रों की मर्यादा है कि निर्धारित कर्मकाण्ड समाप्त हो जाने पर उसका बचा हुआ द्रव्य, यातयाम, निर्वीय हो जाता है । कारण यह है कि उन पदार्थों को जिस उद्देश्य से अभिमंत्रित किया गया था वे उस उद्देश्य से भिन्न प्रयोजन के उपयुक्त नहीं हैं । यही कारण है कि विभिन्न कर्मकाण्डों के उपरान्त बचे द्रव्य आदि को नदी आदि में प्रवाहित कर देने का विधान है ।

वस्तुएँ ही नहीं व्यक्ति भी मंत्र की अयातयामता शक्ति से अभिपूरित होते हैं । तांत्रिक, अघोरी, अपनी क्रियाओं में दक्ष होते हैं पर वे अन्य कोई कर्मकाण्ड नहीं करा सकते । इसी प्रकार यज्ञ आदि कराने वाले आचार्य भी अपनी पात्रता को उसके अनुरूप विकसित कर लेते हैं । तभी यज्ञायोजन का अभीष्ट लाभ पूरा हो पाता है। विभिन्न कर्मकाण्ड अथवा यज्ञायोजन के लिए अभीष्ट पात्रता का अभाव हो तो भी उसको उतना लाभ नहीं मिल पाता। यही कारण है कि शास्त्र निर्देश देते हैं कि सुपात्र, योग्य आचार्यों से ही यज्ञायोजन आदि का कृत्य कराना चाहिए । सर्वविदित है कि गुरु वशिष्ठ ब्रह्मज्ञानी थे, योग्यता भी कम नहीं थी । पर राजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ कराना हुआ तो श्रृंगी ऋषि को बुलाना पड़ा । ऋषि वशिष्ठ पुत्रेष्टि यज्ञ को करा सकने में अक्षम थे । श्रृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराये जाने पर ही अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति हुई ।

मंत्रों में सन्निहित चारों शक्तियाँ मंत्र को समग्र एवं अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति के लिए समर्थ बनाती हैं । यज्ञायोजन की सफलता मंत्र शक्ति के ऊपर ही निर्भर करती है । किस शक्ति का किस प्रकार लाभ उठाया जाय, इसके लिए यज्ञ की विभिन्न मर्यादाओं का पालन करना होता है । विविध कर्मकाण्ड दीखते भर सामान्य हैं। उनमें प्रत्येक अपने में विशेषताओं को समेटे हुए है । प्रत्येक के वैज्ञानिक आधार एवं एक निश्चित लक्ष्य है । मर्यादाओं का भली-भाँति पालन किया जा सके, मंत्र में सन्निहित चारों शक्तियों का बोध हो सके तो शब्द शक्ति के माध्यम से यज्ञ प्रक्रिया का ठीक प्रकार से लाभ उठाया जा सकता है । आवश्यकता यज्ञ प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले एक-एक मंत्र की सूक्ष्म वैज्ञानिक विशेषताओं को समझने, भली-भाँति हृदयंगम करने की है इस कार्य पर वैज्ञानिक शोध तो अनिवार्य है ही श्रद्धापूर्वक मंत्रों का सुनियोजन कर यदि यजन सम्भव हो सके तो वे सभी लाभ उठाए जा सकते हैं, जिनका शास्त्रों में वर्णन है ।

## मन्त्र शक्ति का रहस्य

मन्त्र या जप के प्रभाव को समझने के लिए शब्द विज्ञान, मनोविज्ञान, वायु तथा विद्युत विज्ञान की कुछ सहायता लेनी होगी । अनेक धर्मों में शब्द का महत्व ऊँचा माना गया है आर्य तो शब्द को ब्रह्म रूप मानते हैं । शब्द चाहे जड़ का हो या चेतन का—चेतन में भी मानव का हो या पशु पक्षी का—सभी का प्रभाव न केवल प्राणियों पर किन्तु प्रकृति पर भी अवश्य पड़ता है । मेघ गर्जन बिजली की कड़क का प्रभाव पशु पक्षियों पर ही नहीं मानवों पर भी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार पड़ता है । होमियोपैथिक प्रणाली के अनुसार इन शब्दों से प्रकृति विशेष के रोगियों का रोग घटता-बढ़ता है । नदी के कल-कल का प्रभाव कवियों तथा प्रकृति के इतर पुजारियों पर पड़ता ही है । सिंह गर्जन सुनकर किसी को भय और किसी को उत्तेजना और वीर भाव उत्पन्न होता है । कोकिल या मयूर के गाने से किसी को भय की भावना नहीं होती । शब्द से ही हम दूसरे मनुष्यों को प्रभावित करते हैं । किसी में क्रोध उत्पन्न कर देते हैं तो किसी में प्रेम, किसी में कामना तो किसी में वात्सल्य प्रेम या वैराग्य ! फिर शब्द शैली और शब्द योजना की विभिन्नता से भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों तथा रसों का प्रादुर्भाव होता है। शब्द क्या शब्द के रचना करने वाले अक्षरों से ही भिन्न-भिन्न रस उत्पन्न होते हैं । करुण रस में तथा श्रृंगार रस में कोमल कान्त पदावली अभीष्ट होती है किन्तु वीर, रौद्र और वीभत्स रसों की शब्दावलि विपरीत होती है । संसार की सभी भाषाओं के छन्दालंकार शास्त्र ने शब्दाक्षर विन्यासानुपात और उनके विपर्यय तथा तारतम्य के प्रभाव को स्वीकार किया है ।

युद्ध सम्बन्धी प्राचीन कार्यों में कितने कर्ण-कर्कश शब्दाक्षरों का प्रयोग होता था । शब्दों ही से युद्ध छिड़ जाता है, शब्दों ही के कारण प्राणी हास्य और रुदन करने लगते हैं । यदि हमारे शब्दों में वास्तविक शक्ति हो तो दौड़ता हुआ विषधर सर्प भी रोका जा सकता है और वश में किया जा सकता है । चंचल मृगों को अपनी ओर आकृष्ट करके निश्चल और शान्त कर सकते हैं और पागल हाथी की उन्मत्तता को भी दूर कर सकते हैं ।

मन्त्रों की शक्ति को थोड़े समय के लिए अभी दूर रहने दीजिए । संगीत ही में वशीकरण और रोगशमन की शक्ति आज भी पाई जाती है । संगीत से सिर पीड़ा और वमनोद्वेग रुकते मैंने देखा है । यह है केवल शब्द विज्ञान की लीला । उसके साथ भावना की पुट दे दीजिए मनोविज्ञान की सहायता से लीजिए सोने में सुहागा हो गया । मानव विशेष युक्त शब्दों का क्या प्रभाव होता है इसके प्रमाण जीवन के पल-पल में प्राप्य हैं । कुत्ते-बिल्ली आदि में तो मानव बुद्धि नहीं है परन्तु प्रेम मय शब्दों को और घृणा, क्रोध भरे शब्दों को वे भी पहचानते हैं तथा उन्हीं भावनाओं के परिणामस्वरूप कार्य भी करते हैं । हमारी विचार शक्ति और आन्तरिक इच्छा शक्ति का प्रतिबिम्ब शब्दों द्वारा विलक्षण रीति से मनुष्यों पर तो पड़ता ही है पशु पक्षियों क्या वृक्षों तक पर पड़ता है । फिर एक ही शब्द पृथक-पृथक प्रकार के फल को प्रकट करता है । जैसे—"क्यों बे बदमाश" क्रोध में कहने से क्रोध और घृणा का अभिभावक होता है । अपने बच्चे के प्रति प्रेम से कहने पर प्रेमोल्लास प्रकट करता है । एक ही स्त्री को कोई बेटी, कोई माता, कोई भगिनी, कोई प्रियतमा कहकर पुकारता है परन्तु प्रत्येक पुकार में विविध भावनाओं की तरंग का प्रादुर्भाव होता है और प्रतिक्रिया में भी भिन्नता होती है । मेस्मरेजम या हिपनोटिज्म में यद्यपि मन्त्रों का प्रयोग नहीं होता है किन्तु वहाँ भी शब्द योग और इच्छा शक्ति योग के सम्पर्क से काम लिया जाता है। बड़े-बड़े रोग अच्छे हो जाते हैं। मनुष्यों के स्वभाव तक में परिवर्तन किसी-किसी अवस्था में होते देखा गया है । तात्पर्य यह है कि विशेष शब्दविन्यास में जब विशेष भावनाओं का रस मिश्रण किया जाता है तो दूसरों पर जिन पर उनका प्रयोग किया जाता है विशेष प्रभाव पड़ता है । यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि प्रत्येक प्राणी में आकर्षण या विद्युत शक्ति है क्योंकि सभी प्राणी जगदात्मा के एक सूत्र की मणियाँ हैं या कहिये सभी में एक ही विद्युत तरंग के कण विद्यमान हैं । ऐसा न होता तो अहैतुक और तात्कालिक प्रेम तथा घृणा के भाव जो संसार में दृष्टिगोचर होते हैं न होते । स्वाभाविक द्वेष तथा प्रेम इसके प्रमाण हैं ।

आप शब्दों का उच्चारण जोर से न भी करें केवल मन से ही उन शब्दों को किसी के प्रति लक्ष्य करके अभ्यासरूप से दुहरावें तो उन मूक शब्दों का विचार तरंग द्वारा उस पर प्रतिबिम्ब पड़ता है और उसके मन में उसी प्रकार से उद्वेलन होगा । यह एक अनुभव की बात है कि आप किसी घोर दुष्ट वासनामय स्त्री पुरुष के पास जाकर चुपचाप भी बैठे रहें तो भी उसके मूल विचारों का आप पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा और यदि आपके विचार उससे विपरीत हैं तो आप घबराकर वहाँ से भाग जायेंगे । उसी प्रकार अच्छे विचारों के सज्जनों के पास बैठने से भी मूक विचारों का असर पड़ता है । शब्द भावना और प्राकृतिक विद्युत शक्ति से हम दूसरों पर सत् तथा असत् प्रभाव डाल सकते हैं । अब देखना यह है कि शब्दों तथा विचारों का प्रभाव वायु के स्तरों में तथा आकाश मण्डल में कहाँ, कितना और किस प्रकार पड़ता है । हमारे संगीत शास्त्र में राग-रागनियों के स्वरूप तथा गुणादि का बड़े विस्तार से वर्णन है उनके प्रभावों का भी दिग्दर्शन कराया गया है । प्राचीन पुस्तकों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि दीपक राग के गाने से दीपक जल जाते थे, मेघराग से वर्षा हो जाती थी । पर आज हमारी आँखें पाश्चात्य सभ्यता तथा विदेशी गौरव से चौंधियाई हुई हैं । हम इन बातों के अनुसन्धान में समय नष्ट नहीं करना चाहते, न इन पर विश्वास करते हैं । हाँ, यदि कोई पाश्चात्य विद्वान् इन तत्वों तथा तथ्यों का पोषण मात्र कर दे तो हम उसके अन्धविश्वासी हो सकते हैं । मैंने पढ़ा है कि इसी शताब्दी में कई बार गायकों द्वारा प्रयोग करके देखा गया है कि विविध राग-रागिनियों की तान अलापने पर परदों पर तथा चूर्ण विशेष विस्तृत वायुमण्डल में उनकी रूप-रेखा नाचती दिखाई देगी और गान समाप्त होते ही वे रूप अन्तर्हित हो गये । एक बार लार्ड लिटन के कमरे में प्रसिद्ध अन्वेषिका श्रीमती वाट्स हन्स द्वारा यह प्रयोग देखा गया ।

एक प्रकार के राग से एक ही प्रकार की आकृति प्रकट हुई दूसरे से दूसरी । फ्रान्स में भी एक बार लेडीलेंग ने एक राग छेड़ने पर देवी मैरी के दर्शन क्राइस्ट को गोद में लिए हुए किए । भैरवराग छेड़ने पर भैरव जी

के दर्शन हुए। इटली में भी इसका प्रयोग किया गया है और वहाँ गायिका के स्वरों के प्रभाव से रेत में चित्र बनते देखे गये । वह चित्र माता सरस्वती जी पुस्तक धारिणी वीणा धारिणी का था । शब्द के संघर्ष को शक्ति विद्युदाच्छन्न आकाश मण्डल में हजारों मीलों तक विस्तृत होती है । इसके वैज्ञानिक प्रमाण रेडियो और बेतार के तार हैं। आधुनिक काल में विशेष यन्त्रों द्वारा हमारी वाणी इतनी दूर पहुँचाई जा सकती है। प्राचीन काल में सिद्ध पुरुष बिना किसी यन्त्र के अपने योग बल से केवल अपनी वाणी का ही प्रसार सुदूरस्थ प्रदेशों में ही न कर वरन् एक स्थान में स्थित अपने शरीर द्वारा हजारों कोसों दूर पर स्थूल क्रियाएँ भी प्रदर्शित कर सकते थे । वे क्रियाएँ आज भी सम्भव हो सकती हैं । यदि हम योगिक क्रियाओं की ओर अपना गम्भीर ध्यान दें और विस्तृत क्रियाओं और उनके उपेक्षित तत्वों का अनुसन्धान करने और उनकी साधना करने में समय तथा शक्ति का व्यय करें । हम यदि यह समझतें हों कि हमारी वाणी का प्रसार बिना यन्त्र के केवल वहीं तक है जहाँ तक वह सुनाई देती हो तो हम भूल करते हैं । एक बड़े जलाशय में आप एक छोटा सा कंकड़ डालें तो देखेंगे कि उस छोटे से कंकड़ की ताड़ित संघर्षणा में जल में चक्र बन कर समस्त तड़ाग के घेरे में पड़ता ही जायगा ठीक इसी प्रकार जो शब्द हमारे कण्ठ से निकलता है वह सारे वायुमण्डल में फैलकर अपनी तरंगों का प्रभाव डालता है । हमारी मानसिक शक्ति का प्रसाद और संघर्ष बल इससे भी अधिक है क्योंकि मन की प्रगति और बल शरीर से अत्यन्त प्रबल और तीव्र है । हम यहाँ बैठे-बैठे संसार के किसी व्यक्ति विशेष को ध्यान में लाकर उस पर अपनी प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा अपने विचारों का प्रभाव डाल सकते हैं । इसका यदि हम स्वयं परीक्षण करें तो हमें विश्वास प्रत्यक्ष रूप से हो जावेगा । निकट स्थान पर ही इस तत्व का परीक्षण करके देखिए । आप में से कितने ही महानुभावों को वह अनुभव कई बार हुआ होगा कि आप एक विषय पर अपने मित्र से वार्तालाप करने के लिए विचार करते हुए गए, पहुँचने पर आप तो विचार करते ही रहे और जो विचार आपके हृदय में थे वे ही आपके मित्र ने प्रकट कर दिए । आप किसी से कोई प्रश्न करने को उद्यत हुए कि उसने उसका उत्तर आपको पहले ही दे दिया । वाह्य विद्युतशक्ति का बल कहीं अधिक है। विचार विनिमय शब्दों से नहीं हृदयान्तरित तार से ही हो जाता है । हमें उसके प्रमाण दैनिक जीवन में ही प्राप्त होते हैं परन्तु हम उन पर ध्यान नहीं देते ।

जब शब्द, भाव, विचार, वायु, विद्युत तथा आकाश का पृथक-पृथक तथा सम्मिलित प्रभाव हमारे जीवन के साधारण व्यवहार से पशु-पक्षी, प्रकृति तथा मानवजाति पर नित्य पड़ना प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध है तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि हमारे ऋषि-मुनियों ने आत्मयोग द्वारा विशेष साधनों से शब्द-विज्ञान मनो-विज्ञान आदि के अनुसन्धानित आधार पर विशिष्ट शब्दविन्यास की योजना से मन्त्रों की रचना करके उनकी विधिवत सिद्धि द्वारा संसार का कल्याण किया । इन्हीं तत्वों की विवेचना के आधार पर यह निश्चित धारणा स्थिर हुई है कि मन्त्र द्वारा अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । रोग आपत्ति और संकटों का शमन होता है और इष्टदेव के दर्शन से कामनाएँ पूर्ण होती हैं । एक विचार को आप बारम्बार हृदय में दुहरावें और उसका अभ्यास करें तो वह विचार आपके मस्तिष्क में ऐसा अंकित हो जाता है कि वह आपके स्वभाव में परिणत हो जाता है और उसका एक अंग बन जाता है और उस स्वभाव तथा संस्कार से वाह्य जगत प्रभावित होता है । इसी प्रकार किसी मन्त्र या मन्त्रों के स्तोत्र के पुरश्चरण से सिद्धियाँ प्राप्त करके संसार का कल्याण निश्चित रूप से किया जा सकता है ।

शब्दोच्चारण भी कई प्रकार का है। एक शब्द वह जो दूसरों को सुनाई देता है, उसमें कण्ठ, जिह्वा व अन्य शरीरांग का योग होता है । दूसरा वह शब्द है जिसमें जिह्वा का आश्रय न लेकर केवल कण्ठ से ही उच्चारण होता है। तीसरा वह शब्द जिसमें केवल आपकी श्वाँस ही कार्य करती है । चौथा शब्द है जिसका आप हृदयान्तर अथवा अन्तःकरण से ही उच्चारण करते हैं परन्तु उसकी भीमकाय तरंगें सारे ब्रह्माण्ड को आप्लावित कर देती हैं । पांचवां शब्द अनहद शब्द है जिसका उच्चारण आप वास्तव में करते ही नहीं । इन सब तथ्यों के विज्ञानों महर्षियों, तत्वदर्शियों ने लोककल्याण के लिए मन्त्रों का निर्माण गुप्त दिव्य शक्तियों की मन्त्रणा से और साधन से किया था । उनका सूक्ष्मतर मननयोग जो मन्त्रों में वैज्ञानिक क्रियाओं से सन्निहिततेवाह्य वायु तथा विद्युत के अभ्यन्तर सूक्ष्मस्तर की तरंगों द्वारा जड़ और जंगम पर यदि अपना अचूक प्रभाव डालता है तो क्या आश्चर्य है। किसी मन्त्र का जप हो या ईश्वर भजन प्रार्थना मन्त्र का कीर्तन ही उपर्युक्त वैज्ञानिक तत्वों की प्रतिक्रिया उन सब

में प्रगाढ़ रूप से दृष्टिगोचर होती है और उनके प्रभाव का विस्तार अनन्त होकर के तार द्वारा हृदयों में प्रवेश करता है । मन्त्रों का अनुष्ठान एक ही स्थान में अथवा एक ही समय में अनेकों स्थानों में किए जाने पर वायुमण्डल मात्र में एक विशेष उद्वेलन और संघट्टन उत्पन्न करता है जिसका सामूहिक प्रतिफल समष्टि पर अंकित हो जाता है यही कारण है कि धार्मिक आचार्यो ने पूजा, संध्या,नमाज, प्रार्थना के कुछ निश्चित समय नियत कर दिये हैं । मन्त्र सिद्ध करके मनुष्य अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयोग करता है । मन्त्र तामसी, राजसी या सात्विकी नहीं हैं ये तो मनुष्य के गुण और स्वभाव के विशेषण हैं । सिद्धियों के दुरुपयोग से सदाचार, संयमी, ब्रह्मचारी सदा स्वयं बचते हैं और दूसरों की रक्षा करते हैं ।

मन्त्र शक्ति से कभी-कभी ऐसे काम होते देखे और सुने जाते हैं जिनसे असाधारण आश्चर्य होता है । अत्यन्त विषैले सर्प जिनकी फुसकार से ही मनुष्य मर सकता है, मन्त्र शक्ति से कीलित होकर रस्सी की तरह पड़े रहते हैं और कुछ हानि नहीं पहुँचाते । जिस सर्प ने मनुष्य को काटा है उसे ही मन्त्र शक्ति से बुलाकर काटे हुए स्थान से विष चुसवा कर रोगी को अच्छा कर देना कई सर्प विद्या विशारदों का बाएँ हाथ का खेल होता है । जहरीले बिच्छू जिनका डंक लगते ही मनुष्य बेचैन हो जाता है, मन्त्र शक्ति से निर्विष हो जाते हैं, डंक की पीड़ा मिनटों में अच्छी हो जाती है । पागल सियार या कुत्ते के काटे हुए, जहरीली मक्खियों या कीड़ों के काटे हुए लोग भी इसी प्रकार ठीक होते देखे गये हैं । मधुमक्खियों को मन्त्र शक्ति से निर्विष करके लोग उनका शहद बड़ी सुगमतापूर्वक निकाल लेते हैं ।

कमलवाय, पीलिया, तिल्ली, पारी के ज्वर, कंठमाला, मृगी, उन्माद आदि रोग मन्त्र द्वारा ठीक होते देखे जाते हैं । बच्चों के पसली चलना, अधिक रोना, दूध पटकना, चौंक पड़ना, सूखते जाना आदि बहुत से रोग भी इसी विधि से ठीक होते देखे गये हैं । भूत बाधा, प्रेत, पिशाच आदि के उपद्रव आदि का भी मन्त्रों द्वारा शमन होता है । मन्त्रों द्वारा हानि भी पहुँचाई जाती है । किसी को बीमार कर देना, द्वेष करा देना, वश में कर लेना आदि हानिकारक उपचार भी किये जाते हैं और जरूरत पड़ने पर बुद्धि को सुधारने में मानसिक शक्तियों को श्रेष्ठ एवं उन्नतिशील बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है, हम ऐसे व्यक्तियों को जानते हैं जिन्होंने मन्त्र शक्ति से अनेक पगले, आधे पगले, भुलक्कड़, जड़ मूढ़, शठ और दुष्टों के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन उपस्थित कर दिया है । इसके अतिरिक्त और भी असंख्य प्रकार के भले बुरे कार्य मन्त्र शक्ति से होते हैं और होंगे ।

इन सब बातों को देखते हुए यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसे आश्चर्यजनक कार्यों का मूल स्रोत क्या है ? यह शक्ति कहाँ से आती है और किस प्रकार काम करती है ? मन्त्रों की शब्द रचना पर मामूली तौर से दृष्टिपात करने पर यह पता नहीं चलता कि इनके उच्चारण में ऐसी क्या विशेषता है जिनके द्वारा वह अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है । मन्त्रों की वाक्यावली में से कोई ऐसा महत्वपूर्ण अर्थ भी नहीं निकलता जिसके आधार पर उसमें किसी विशेषता के निहित होने का अनुमान लगाया जा सके ।

मोटी बुद्धि से सरसरी तौर पर देखने से मन्त्रों का मर्म समझ में नहीं आता परन्तु गंभीरतापूर्वक विवेचन करने से वस्तु स्थिति का पता चल जाता है । 'शब्द' एक सजीव पदार्थ है जो भी शब्द हमारे स्वर मन्त्र में से निकलता है वह ईथर तत्व में एक कम्पन उत्पन्न करता है, यह कम्पन उस उच्चारण करने वाले मनुष्य की इच्छा शक्ति और धारणा के अनुसार बलवान और निर्बल होते हैं, पृथक-पृथक रूप से अक्षरों का स्वरूप अदृश्य जगत में बनता है एक तथा विशेष प्रकार की शब्दावली को एकत्रित कर देने से उनका विशिष्ट स्वरूप बन जाता है । अक्षर विज्ञान के आचार्य इस बात को जानते और मानते हैं कि अमुक प्रकार के अक्षरों का एक समूह अमुक प्रकार से कम्पन उत्पन्न करता है और वह इस प्रकार का हानिकर व लाभदायक प्रभाव उत्पन्न करता है । जैसे शहद और घी दोनों ही मामूली खाद्य पदार्थ हैं परन्तु यदि वे बराबर मात्रा में मिला कर खाये जायें तो बड़े घातक प्रभाव उत्पन्न करते हैं । उसी प्रकार अमुक अक्षर का उच्चारण अमुक अक्षर के बाद करने से क्या फल होता है उस विज्ञान का सूक्ष्म परीक्षण करने के बाद मन्त्रों की अक्षर रचना इस प्रकार की गई है जिससे अमुक प्रकार का ही प्रभाव उत्पन्न हो ।

ऊँ ह्रीं हूं, श्रीं, क्लीं आदि एकाक्षरी मन्त्र अपना विशेष महत्व रखते हैं । कंठ के स्वर यन्त्र के जिस स्थान से यह अक्षर निकलते हैं उनमें कुछ अलौकिक विशेषता है । इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए वर्णमाला में या बोलचाल की भाषा में कहीं भी इन्हें स्थान नहीं दिया गया

है। यदि दिया जाता तो उच्चारण करने वालों के सामने ऐसे भले-बुरे परिणाम उपस्थित होते जिनकी उन्हें आवश्यकता न थी । मन्त्रों की रचना ऊट-पटांग अक्षरों का जोड़ मालूम पड़ती है परन्तु वास्तव में बात दूसरी ही है । एक अक्षर का स्वतन्त्र महत्व और अमुक-अमुक अक्षरों के सम्मिलन का सामूहिक महत्व उन दोनों तथ्यों पर योग विद्या के तत्वज्ञों ने सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना करके मन्त्रों की रचना की है । सच्चे मन्त्रों को उचित रूप से अभिमन्त्रित करने पर अक्षर विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार उनका निश्चित फल प्राप्त होता है इसकी चाहे जो परीक्षा कर सकता है ।

शब्द रचना के अतिरिक्त प्रयोक्ता की धारणा और विश्वास शक्ति का बल होता है । यह बल जितना ही न्यूनाधिक होगा उतना ही मन्त्र भी फलदायक होगा । उसी मन्त्र के द्वारा एक साधक अद्भुत कर्तव्य कर दिखाता है, परन्तु दूसरे को उसके द्वारा कुछ विशेष सफलता नहीं मिलती, इसका कारण प्रयोक्ताओं का विश्वास और मनोबल है । जिसके मन में अपने मन्त्र के ऊपर अविचल श्रद्धा है उसका प्रयोग असफल नहीं हो सकता किन्तु जिसका मन शंका से शंकित रहता है, संकल्प विकल्प किया करता है उसको सफलता प्राप्त होना दुर्लभ है । मन्त्र को सिद्ध करने के लिये एक विशेष प्रकार का अद्भुत कर्मकाण्ड करना पड़ता है, कोई मन्त्र मरघट में सिद्ध किये जाते हैं, किन्हीं के लिये अर्ध रात्रि के समय निर्जन स्थानों में जाना पड़ता है, किन्हीं मन्त्रों को अमुक व्रत, उपवास और विधि विधानों के साथ सिद्ध करते हैं, यह मन्त्र सिद्धि के कर्मकाण्ड इसलिये हैं कि मन्त्र योगी को स्वयं अपने ऊपर, अपने मन्त्र के ऊपर सुदृढ़ विश्वास हो जावे । जिसने उन साहसपूर्ण और कष्टदायक मन्त्र सिद्धि की साधना को पूरा किया है निश्चय ही उसे अपनी साधना पर विश्वास होना चाहिये । यही विश्वास वह बल है जिससे मन्त्र सजीव होता है और अपना चमत्कार दिखाता है । अक्षर रचना के पश्चात् यह धारणा एवं विश्वस्तता ही सफलता की आधारभूमि है ।

मन्त्र में तीसरा तथ्य इच्छा शक्ति है । कार्यसिद्धि के लिये प्रयोक्ता की तीव्र इच्छा का होना आवश्यक है । प्रयोग के साथ-साथ अपनी सम्पूर्ण मानसिक शक्तियों को एक स्थान पर एकत्रित करके सफलता की उत्कंठ आकांक्षा में अपना मनोयोग लगाना होता है । विभिन्न दिशाओं में काम करने वाली शक्तियाँ जब एक ही दिशा में पिल पड़ती हैं तो उसी प्रकार अचरज भरा कार्य हो जाता है जैसे आतिशी शीशे के थोड़े से क्षेत्र पर बिखरी हुई सूर्य किरणें एक स्थान पर एकत्रित कर देने से आग जलने लगती है ।

मन्त्र की सफलता के यह तीन आभ्यन्तरिक तथ्य हैं चौथा तथ्य बाहरी है । वह भी इन तीन की तरह ही आवश्यक और महत्वपूर्ण है । यह चौथा तथ्य है कि जिस आदमी के ऊपर प्रयोग किया जाय उसको मन्त्र की शक्ति पर विश्वास हो, कम से कम इस बात की सूचना तो अवश्य ही हो कि मेरे ऊपर कुछ मांत्रिक प्रयोग किया जा रहा है । मैस्मेरजम विद्या का जिन्हें ज्ञान है वे पाठक जानते हैं कि जब तक सामने वाला व्यक्ति कुछ झेंप न जाय तब तक उसे निद्रित नहीं किया जा सकता । कोई कठोर मनोभूमि का आदमी दृढ़तापूर्वक कह दे कि मेरे ऊपर कोई मैस्मेरजम नहीं कर सकता तो उसको प्रभाव में लाना कठिन है । मन्त्र योग और मैस्मेरजम एक ही पेड़ की दो शाखाएँ हैं, इसमें भी वही सिद्धान्त काम करता है । यदि सामने वाले व्यक्ति को विश्वास होगा कि मेरे ऊपर कोई कारगर प्रयोग हो रहा है तो निश्चय ही उसके ऊपर प्रभाव पड़ेगा । यदि उसे पता न हो या विश्वास न हो तो मन्त्र का पूरा फल नहीं मिल सकता । कारण यह है कि मन्त्र योग भी एक योग है, योग का अर्थ है जोड़ । जोड़ के लिये कम से कम दो संख्यायें जरूर चाहिये । दोनों के मिलने से ही तो योग होगा । यदि एक पक्ष मिलने से इन्कार करे तो जोड़ का—योग का—मंत्रयोग का समुचित लाभ होना कठिन है, जिसके ऊपर प्रयोग किया गया है उसका विश्वास भी साथ में होना चाहिये, यदि वह नहीं तो प्रयोग उतना ही सफल होगा जितना कि एक हाथ से ताली बजाने में सफलता मिलती है ।

जो प्रयोक्ता सदाचारी, संयमी, सद्भावना युक्त है जिन्हें अपनी साधना पर विश्वास है, जो दूसरों को अपने प्रभाव में लेने की कला से परिचित हैं उनके मन्त्र कभी झूँठे नहीं होते । ऐसे मंत्र योगी आमतौर से अपने उद्देश्य को पूरा कर ही लेते हैं उनके प्रयोग प्रायः व्यर्थ नहीं हो जाते हैं ।

## मन्त्र साधना का वैज्ञानिक आधार

आत्मिक कल्याण के लिए अनेक प्रकार की साधना, उपासनाओं का उल्लेख मिलता है । आत्मा का परमात्म

से, जीव का ब्रह्म से, अणु का विभु से, क्षुद्र का विराट से मिलन संयोग जिस आधार पर होता है, उसे योग कहते हैं । ऋषि मनीषियों ने इस श्रेय साधन के लिए राजयोग, ध्यान योग, समाधि योग, दृढ़योग आत्मयोग आदि अनेक योग प्रचलित किये हैं । सर्वसामान्य के लिए प्रचलित योग साधनाओं में मन्त्र जप का किसी न किसी रूप में उपयोग किया जाता है । मन्त्र योग साधना का एक ऐसा शब्द और विज्ञान है कि उसका उच्चारण करते ही किसी चमत्कारिक शक्ति का बोध होता है । ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्राचीन काल में योगी, ऋषि और तत्वदर्शी महापुरुषों ने मन्त्र बल से पृथ्वी, देवलोक और ब्रह्माण्ड की अनन्त शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली थी । वे मन्त्र शक्ति के प्रभाव से इतने समर्थ बन गए थे कि इच्छानुसार किसी भी पदार्थ का हस्तान्तरण, शक्ति को पदार्थ और पदार्थ को शक्ति में बदल देते थे । शापवरदान मन्त्र का ही प्रभाव माना जाता है । एक क्षण में किसी का रोग ठीक कर देना, एक पल में करोड़ों मील दूर की बात जान लेना, सुदूर अन्तरिक्ष में स्थित ग्रह-नक्षत्रों की जानकारी तक मन्त्र की ही अलौकिक शक्ति मानी जाती है । मन्त्र साधना द्वारा जो शक्तियाँ—सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, शास्त्रों ने उनका उल्लेख विस्तार से किया है । उनमें कुछ इस प्रकार हैं—(१) अविज्ञात अतीत और अनागत भविष्य का ज्ञान, (२) सभी प्राणियों की भाषा समझना, (३) पूर्वजन्मों का ज्ञान, (४) दूसरों के मन की बात जान लेना, (५) अन्तर्धान शक्ति, (६) अपरिमित बल की प्राप्ति, (७) सूक्ष्म और सुदूर स्थित वस्तुओं का ज्ञान, (८) क्षुधा पिपासा की निवृति, (९) पर काया प्रवेश, (१०) शरीर को छोटा कर लेना, (११) रुई के समान हल्कापन, (१२) शरीर का आकार बढ़ा लेना, (१३) बहुत भारी हो जाना, (१४) इच्छित वस्तुओं की इच्छा मात्र से ही प्राप्ति ।

इस तरह अनेकानेक शक्तियाँ मन्त्र साधना से प्राप्त होना सम्भव बताया गया है । मन्त्र शक्ति के महत्व पर इसीलिए इतना जोर दिया गया है । मन्त्रों के आविष्कर्ता होने के कारण ही ऋषि मन्त्र दृष्टा कहलाते थे । मन्त्र और कुछ नहीं एक प्रकार के मन्त्र विज्ञान ही हैं, जिनमें विराट् ब्रह्माण्ड की इन अलौकिक, सूक्ष्म और चेतन सत्ताओं तथा शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करने के गूढ़ रहस्य दिये हुए हैं जिनके सम्बन्ध में विज्ञान अभी क, ख, ग, भी नहीं जानता ।

कहाँ से आती है मन्त्रों में शक्ति ? मन्त्र साधना किस प्रकार साधक को अलौकिक शक्तियाँ प्रदान करती है ? इसका एक सुनिश्चित विधान है । मन्त्र साधना का आधार विज्ञान सम्मत है । मन्त्रों का सीधा सम्बन्ध उच्चारण या ध्वनि से है । इसलिए इसे ध्वनि विज्ञान भी कह सकते हैं । अब तक इस दिशा में जो वैज्ञानिक अनुसंधान हुए और निष्कर्ष प्राप्त हुए, वे बताते हैं कि सामान्य भारतीय मन्त्र शक्ति पर भले ही विश्वास न करें किन्तु वैज्ञानिक अब उसी दिशा में अग्रसर हो रहे हैं । वह समय समीप ही है जब ध्वनि विज्ञान की उन्नति ऋषियों जैसी ही चमत्कारी कार्य सम्पन्न करने लगेगी । उदाहरण के लिए 'ट्रान्सड्यूसर' यन्त्र द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म आपरेशन किया जा सकता है । वह शब्द की कर्णातीत शक्ति का ही फल है । प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री डॉ. फ्रिस्टलाप ने अल्ट्रा सोनोरेटर नामक एक ऐसा यन्त्र तैयार किया है जो दो रासायनिक द्रव्यों को थोड़ी ही देर में मिला सकता है । इस पद्धति में एक रवे का प्रयोग किया जाता है । कर्णातीत ध्वनि उस रवे को प्रभावित करती है और रवा इतनी तीव्रता से कम्पन करता है कि यदि उसे पानी से लबरेज भरी हुई कढ़ाई में छोड़ दिया जाय तो वह पानी रवे के कम्पन से खौलते पानी की तरह मंथन करने लगता है ।

यह तो शब्द शक्ति, ध्वनि की शक्ति का एक छोटा सा उदाहरण हुआ । मन्त्रों में तो शब्द शक्ति का उच्चस्तरीय प्रयोग हुआ है । मन्त्रों में सामान्यतः चार शक्तियाँ मानी गई हैं । एक प्रामाण्य शक्ति, दूसरी फलप्रदा शक्ति, तीसरी बहुलीकरण शक्ति और चौथी आयतायमता शक्ति । महर्षि जैमिनी ने इसका विवेचन मीमांसा दर्शन ग्रन्थ में किया है । उनके अनुसार मन्त्रों की प्रामाण्य शक्ति वह है जिसके अनुसार शिक्षा, सम्बोधन और आदेश-निर्देश का समावेश रहता है । इसे शब्दार्थों से सम्बन्धित कह सकते थे ।

मन्त्र की दूसरी शक्ति फल प्रदायिनी शक्ति मानी गई है । कुंड-समिधा, पात्रपीठ, आज्य, चरु, हवि पीठ आदि को अभिमंत्रित करके उनके सूक्ष्म प्राणों को प्रखर करने का विधान, मन्त्रोच्चार कर्मकाण्ड न्यास, ऋत्विजों का मनोयोग, ब्रह्मचर्य, तप, आहार आदि विधिविधान से मन्त्र की फलदायिनी शक्ति सजग होती है । सकाम अनुष्ठानों में मन्त्र की यही शक्ति काम करती है और विभिन्न क्रिया कृत्यों के सहारे सजग होती तथा अभीष्ट प्रयोजन पूरे करती है ।

तीसरी शक्ति है बहुलीकरण, अर्थात् थोड़े को बहुत बनाना । यज्ञ में होमा हुआ जरा सा पदार्थ वायु भूत होकर समस्त विश्व में फैल जाता है । पानी के ऊपर थोड़ा सा तेल डाल देने पर वह पानी की सारी सतह पर फैल जाता है और मरणांतक स्थिति उत्पन्न कर देता है । उसी प्रकार साधक का शरीर मन्त्रोच्चार एवं साधन में काम आने वाले अंग जरा से होते हैं पर उनके घर्षण से उत्पन्न शक्ति दियासिलाई से निकलने वाली चिनगारी के समान नगण्य होते हुए भी दावानल बन जाने की सामर्थ्य से ओत-प्रोत रहती है । एक व्यक्ति की मंत्र साधना अनेक व्यक्तियों को तथा पदार्थों को, परमाणु जीवाणुओं को प्रभावित करती है तो यह बहुलीकरण शक्ति ही काम कर रही होती है ।

चौथी आयातयामता शक्ति किसी विशेष क्षमता सम्पन्न, प्रत्युत्पन्न, मति, मेधावी, सक्षम व्यक्ति द्वारा विशेष स्थान पर, विशेष व्यक्ति की सहायता से, विशेष उपकरणों के सहारे, विशेष विधि विधान के साथ मन्त्रोपासना करने पर उत्पन्न होती है । विश्वामित्र और परशुराम ने गायत्री मन्त्र की साधना विशेष प्रयोजन के लिए विशेष विधि विधानों के साथ की थी और इस साधना के उन्होंने अभीष्ट परिणाम भी प्राप्त किये थे । दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ वशिष्ठ जी पूरा न कर सके तब श्रृंगी ऋषि ने उसे सम्पन्न कराया । यह श्रृंगी ऋषि की आयातयामता शक्ति ही थी ।

मन्त्रों के अर्थ भी होते हैं और उनसे जीवन को भव्य बनाने की प्रेरणाएँ मिलती हैं । परन्तु मनीषियों ने मन्त्रों के अर्थों को विशेष महत्व नहीं दिया है । कौत्स मुनि ने तो मन्त्रों को अनर्थक ही माना है । अनर्थक का तात्पर्य है कि उसके अर्थ को नहीं ध्वनि प्रवाह को, शब्द गुंथन को महत्व दिया जाना चाहिए । ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं आदि बीजमन्त्रों के अर्थों से नहीं उनके ध्वनि प्रवाह से ही प्रयोजन सिद्ध होता है । नैषध चरित के तेरहवें सर्ग में उसके लेखक ने इस रहस्य का और भी स्पष्ट उद्घाटन किया है । संगीत का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ पर जो साधारण प्रभाव पड़ता है उससे समस्त विज्ञान जगत परिचित है । एक नियत गति से शीशे के गिलास के पास ध्वनि की जाए तो प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि वह टूट जायगा । पुलों पर चलते हुए सैनिकों को कदम मिलाकर चलने की ध्वनि नहीं करने दी जाती । उस ताल बद्ध ध्वनि से पुल गिर सकता है । इण्डेन में स्टोन हैब्ज के पुराने अवशेष मध्यम स्वर बजने पर कांपने लगते हैं । इसलिए वहाँ न केवल बजाना वरन् गाना भी निषिद्ध है । ध्वनि विज्ञान के यही सिद्धांत—शब्द शक्ति का यही महत्व मन्त्रों को चमत्कारी शक्ति सम्पन्न बनाता है । कहा जा सकता है कि इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मनीषियों ने मन्त्रों की रचना की । शब्द शक्ति और ध्वनि विज्ञान ही आधारभूत होने के कारण मन्त्र के अर्थों को उतना महत्व नहीं दिया गया है और उन्हें अनर्थक माना गया है ।

मन्त्र शक्ति की सबसे रहस्यमय और सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया यदि जाननी हो तो उसे शब्द शक्ति का स्फोट कहा जा सकता है । अणु विस्फोट से उत्पन्न होने वाली भयावह शक्ति की जानकारी प्रायः सभी लोगों को है । शब्द की भी एक शक्ति सत्ता है । उसके कम्पन भी चिरंतन घटकों के सम्मिश्रण से बनते हैं । उन शब्द कम्पन घटकों का विस्फोट भी अणु विखण्डन की तरह हो सकता है । मन्त्र योग की साधना में किये जाने वाले उपचारों के पीछे लगभग वैसी ही विधि व्यवस्था रहती है। मन्त्रों की शब्द रचना का गठन तत्वदर्शी ऋषियों तथा दिव्य दृष्टा मनीषियों ने इस प्रकार किया है कि उसका तप साधनों एवं कर्मकाण्डों के सहारे अभीष्ट स्फोट किया जा सके ।

विचारों का चुम्बकत्व तो सर्वविदित है । इष्ट देव की मन्त्र अधिपति की शक्ति एवं विशेषताओं का स्तवन, पूजन के साथ स्मरण किया जाता है और अपने विश्वास से उसमें सर्वशक्ति सत्ता तथा अनुग्रह पर विश्वास जमाया जाता है । निर्धारित कर्मकाण्ड, विधिविधान के द्वारा तथा तप साधना, कष्ट साध्य तितिक्षा के द्वारा मन्त्र की गुह्य शक्ति के करतलगत हो जाने की आस्था दीर्घकालीन साधना द्वारा साधक के मनः क्षेत्र में परिपक्व बनती है । यह सब निष्ठाएँ मिलकर मन्त्र की भाव प्रक्रिया को परिपूर्ण चुम्बकत्व से परिपूर्ण कर देती हैं ।

मन्त्र साधना में, मन्त्र जप से दो वृत्त बनते हैं । एक को भाववृत्त कह सकते हैं और दूसरे को ध्वनि वृत्त । लगातार की गति अन्ततः एक गोलाई में घूमने लगती है । ग्रह नक्षत्रों का अपने-अपने वृत्त पर घूमने लगना इसी तथ्य से सम्भव है कि गति क्रमशः गोलाई में मुड़ती चली जाती है । गति जब गोलाई में मुड़ती चली जाती है तो उससे उत्पन्न होने वाले चमत्कार हम अपने दैनिक जीवन में नित्य ही देखते हैं । बच्चे छोटी फिरकनी अथवा लट्टू जमीन पर घुमाने का खेल खेलते हैं । एक बार सावधानी से घुमा देने पर यह खिलौने देर तक अपनी धुरी पर घूमते

रहते हैं जबकि गति बन्द होते ही वे जमीन पर गिर जाते हैं । यह गति का चमत्कार ही है कि एक बार का धक्का देर तक काम देता है और उत्पन्न गति प्रवाह को दूर तक चलते रहने की स्थिति उत्पन्न करता है । जप के द्वारा उत्पन्न गति भी साधना काल में बहुत देर तक चलती रहती है और साधक की आत्मिक विशेषता को गतिशील एवं सुस्थिर बनाये रहती है ।

मन्त्र जप में नियत शब्दों का निर्धारित क्रम से देर तक निरन्तर उच्चारण करना पड़ता है । इसी को जप कहते हैं और इसी से गति प्रवाह उत्पन्न होते हैं । कहा जा चुका है कि इस गति प्रवाह के दो आधार हैं—एक भाव और दूसरा शब्द । मन्त्र के अन्तराल में सन्निहित भावना का नियत निर्धारित प्रवाह एक भाववृत्त बना लेता है और वह इतना प्रचण्ड होता है कि साधक के व्यक्तित्व को ही पकड़ और जकड़ कर उसे अपनी ढलान में ढाल ले । उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि वृत्त भी ऐसा ही प्रचण्ड होता है कि उसका स्फोट एक घेरा डाल कर उच्चारण कर्ता को अपने घेरे में कस ले । भाववृत्त अन्तरंग वृत्तियों पर, शब्द वृत्त बहिरंग प्रवृत्तियों पर इस प्रकार आच्छादित हो जाता है कि मनुष्य के अभीष्ट स्तर को मोड़ा मरोड़ा या ढाला जा सके ।

जप के समय उच्चारित किये गए शब्दों में आत्मनिष्ठा, श्रद्धा एवं संकल्प शक्ति का समन्वय होने से वही क्रिया सम्पन्न होती है जो रेडियो स्टेशन पर बोले गये शब्द विशिष्ट विद्युत शक्ति के साथ मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली हो उठते हैं और पलक मारते ही समस्त भूमण्डल में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं । जप प्रक्रिया में अथवा मन्त्र विद्या में यह विशेषता है कि उससे न केवल समस्त संसार का वातावरण प्रभावित होता है वरन् साधक का व्यक्तित्व भी जगमगाने, झनझनाने लगता है । रेडियो स्टेशन से प्रसारण तो होता है पर कोई स्थानीय विलक्षणता नहीं दिखाई देती । लेसर रेडियम किरण फेंकने वाले यन्त्रों में कोई निजी प्रभाव नहीं देखा जाता । वे उन स्थानों को ही प्रभावित करते हैं जहाँ उनका आघात लगता है किन्तु जप प्रक्रिया में साधक को और वातावरण को प्रभावित करने की दुहरी शक्ति होती है जो नव वैज्ञानिकों के सामान्य यन्त्र उपकरणों में नहीं पाई जाती ।

## मन्त्र शक्ति की प्रभावोत्पादक सामर्थ्य एवं मर्म

आज जब विज्ञान की गति पदार्थ की स्थूल सत्ता से जैसे-जैसे उसके सूक्ष्म स्वरूप की ओर बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे भारतीय प्राचीन विद्याओं की अनेक बातें सत्य प्रतीत होने लगी हैं । इन्हीं में से एक है मंत्र विद्या । प्राचीन समय में युद्ध के मैदान से लेकर रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन जैसे अन्यान्य क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जाता था । आज यह विद्या लगभग लुप्त प्राय: हो चुकी है । अधिकांश लोग तो इस पर अविश्वास करने लगे थे, पर विज्ञान की अधुनातन खोजों ने उस शास्त्रीय संभावना को बल प्रदान किया है, जिसमें इसकी विलक्षण सामर्थ्य की चर्चा की गई है । आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकारता है कि ध्वनि में इतनी सामर्थ्य है कि वह भला-बुरा किसी भी प्रकार का प्रभाव व्यक्ति और वस्तु पर डाल सकती है । भले प्रभाव के रूप में गीत की शक्ति सर्वविदित है और कोलाहल का दुष्प्रभाव आये दिन कितने ही उपद्रव खड़े करता रहता है, इसे सभी जानते हैं। यह तो स्थूल ध्वनियाँ हुईं । विज्ञान ने सूक्ष्म ध्वनियों की भी खोज कर ली है । इनकी शक्ति स्थूल की तुलना में कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है । मंत्र में यही सूक्ष्म ध्वनियाँ काम करतीं और तरह-तरह के प्रभाव-परिणाम उत्पन्न करती हैं ।

शास्त्रों में मंत्रों की चार शक्तियाँ बतायी गई हैं—(१) प्रामाण्य शक्ति, (२) फल प्रदान शक्ति, (३) बहुलीकरण शक्ति, (४) आयातयामता शक्ति ।

इन सभी का विस्तृत वर्णन महर्षि जैमिनी ने अपने पूर्व मीमांसा दर्शन में किया है । उनके अनुसार मंत्रों की प्रामाण्य शक्ति वह है जिसमें शिक्षा, सम्बोधन व आदेश का समावेश रहता है । इसे शब्दार्थों से सम्बोधित माना जा सकता है ।

पात्र, कुण्ड, समिधा, आज्यचरु, हवि, पीठ आदि को अभिमंत्रित करके उनकी सूक्ष्म प्राण शक्ति को प्रखर बनाना, यह ऋत्विजों के मनोयोग, ब्रह्मचर्य, मंत्रोच्चार, तप, आहार और भावना पर निर्भर है । इससे मंत्र की फल-दायिनी शक्ति सजग होती है । सकाम कर्मों में मंत्र की यही शक्ति सजग होकर इच्छित मनोरथ सिद्ध करती है ।

इसकी तीसरी शक्ति है 'बहुलीकरण' अर्थात् अल्प को अधिक बनाना । अग्नि में मिर्च का छोटा टुकड़ा भर

डाल देने से वह वायुभूत होकर पूरे कमरे में फैल जाती है, और उस वातावरण में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है । तेल की कुछ बूँदें जल की विस्तृत सतह को घेर लेती हैं । विषधर का स्वल्प विष ही पूरे शरीर में फैल कर प्राण संकट खड़ा करता है । इसी प्रकार मांत्रिक का मंत्र और उसे उच्चारण करने वाले अंग अवयव आकार प्रकार में छोटा होने के बावजूद भी इनके पारस्परिक घर्षण से उत्पन्न होने वाली शक्ति चिनगारी की भाँति नगण्य होते हुए भी दावानल बन जाने की सामर्थ्य संजोये रहती है । जहाँ किसी एक व्यक्ति की मंत्र साधना अनेकों को प्रभावित उत्तेजित करती हो वहाँ बहुलीकरण शक्ति ही क्रियारत समझी जानी चाहिए ।

अन्तिम शक्ति आयातयामता है । किसी विशेष क्षमता सम्पन्न व्यक्ति द्वारा विशेष स्थान पर विशेष साधनों के माध्यम से, विशेष विधि-विधान के साथ सम्पन्न हुई मंत्रोपासना विशेष शक्ति उत्पन्न करती है। यही आयातयामता शक्ति है । विशेष प्रयोजन इसी शक्ति से सधते हैं । कहा जाता है कि विश्वामित्र, परशुराम, और श्रृंगी ऋषि को यही शक्ति प्राप्त थी । राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न करने में वशिष्ठ ने जब अपनी असमर्थता व्यक्त की तो श्रृंगी ऋषि को बुलाया गया । उन्होंने ही इसे पूरा किया । यह श्रृंगी ऋषि की आयातयामता शक्ति ही थी ।

शब्द अथवा मंत्र में स्थूल शक्ति तो होती है । पर उसकी सूक्ष्म शक्ति को ग्रहण, धारण करने के लिए मंत्र साधक को संयमी होना पड़ता है, तभी वह उस शक्ति का सफलतापूर्वक उपयोग कर उसका लाभ उठा पाता है । महाभारत की कथा है । अश्वत्थामा और अर्जुन ने मंत्रचालित 'संधानअस्त्र' का प्रयोग किया । अस्त्र और स्थिति की भयंकरता को देखकर बीच में व्यास जी आ खड़े हुए और दोनों से अस्त्र वापस लेने का आग्रह करने लगे । अर्जुन ब्रह्मचर्य पालने के कारण ऐसा करने में सफल हुए, पर अश्वत्थामा असंयमी होने के कारण ऐसा न कर सके ।

शतपंथ ब्राह्मण में नृमेध और यरुच्छेप का एक उपाख्यान आता है । दोनों में इस बात का विवाद छिड़ा कि कौन सफल मांत्रिक है । नृमेध लकड़ी से धुआँ भर निकाल सका, पर यरुच्छेप ने मंत्रोच्चार करके गीली लकड़ी में अग्नि प्रकट कर दी । इस पर यरुच्छेप ने कहा कि तू मंत्रोच्चार भर जानता है । हमने उसकी आत्मा से साक्षात्कार किया है ।

कौत्स मुनि ने अपने ग्रन्थ में मंत्रों को अर्थ प्रधान नहीं वरन् ध्वनि प्रधान बताया है । उनके अनुसार बीज मंत्र ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि में उनके अर्थ से नहीं, ध्वनि से प्रयोजन सिद्ध होता है । नैषध चरित्र के १३ वें सर्ग में उसके लेखक ने इस बात को और भी अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाया है । कहा जाता है कि दक्षिणी इंग्लैण्ड के सैलिसबरी के मैदान में स्थित पाषाण कालीन स्टोनहेन्ज नामक संरचना के खण्डहर मध्य में ध्वनि करने से वे बुरी तरह काँपने लगते हैं । अत: वहाँ संगीत बजाने के साथ-साथ गाना भी निषिद्ध है । शेर की दहाड़ और हाथी की चिंघाड़ से लोग डर जाते हैं । सैनिकों को यह आदेश होता है कि किसी पुल से गुजरते समय कदम मिला कर न चलें, अन्यथा उनकी तालबद्ध ध्वनि तरंगें पुल को गिरा सकती हैं । इसी ध्वनि विज्ञान पर मंत्रों की रचना आधारित है । उनके अर्थों का उतना महत्व नहीं है, इसी से कौत्स मुनि ने उन्हें अनर्थक कहा है । वैसे यह बात सभी मंत्रों पर लागू नहीं होती ।

मंत्र में निहित इसी शक्ति का प्रयोग विभिन्न प्रयोजनों में किया जाता है । एक घटना १९७१ की है, जब मलाया के राजा परमेसुरी अगोंग थे । उनकी पुत्री शरीफा साल्बा का विवाह होने जा रहा था । शादी आरम्भ होने में अभी कुछ समय बाकी ही था कि वर्षा आरम्भ हो गई । इतनी घनघोर शुरू हुई कि वह रुकने का नाम ही नहीं लेती । राज परिवार में चिन्ता व्याप्त हो गई । ऐसा लगने लगा कि शायद अब शादी आगे टल जाय, पर तभी राजा को वहाँ के प्रसिद्ध मांत्रिक रहमान की याद आयी । उसे बुलाया गया । उसने कुछ प्रयोग किये और थोड़ी ही देर पश्चात् वहाँ वारिश पूर्णत: थम गई । यद्यपि आकाश में अभी भी सघन बादल थे और उस स्थान को छोड़कर नगर के समस्त भाग में तेज वर्षा हो रही थी। इस दृश्य को देखकर ऐसा लगता था मानों किसी ने उसके ऊपर छतरी लगा दी हो । विवाह भली–भाँति सम्पन्न होकर धूमधाम से समाप्त हुआ । इसके बाद रहमान ने दूसरा मंत्र पढ़ा और उस क्षेत्र में पुन: वर्षा प्रारम्भ हो गई ।

एक बार न्यूयॉर्क के माउण्ट सिनाई अस्पताल में एक जख्मी व्यक्ति उपचार के लिए लाया गया । उसने गर्म धातु का स्पर्श कर लिया था । औषधि उपचार से काफी हिस्सा नियंत्रण में आ गया, पर हाथ की कुछ अंगुलियाँ इतनी भयंकरता से जली थीं कि डाक्टरों को उन्हें काट देने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं सूझ रहा था, तभी

कुछ व्यक्तियों की सलाह पर मंत्र शक्ति को आजमाया गया । कुछ ही दिनों के मंत्र उपचार से उंगलियाँ ठीक हो गईं । इस घटना का उल्लेख तत्कालीन समय की प्रमुख चिकित्सा पत्रिका एचीवमेण्ट्स ऑफ फिजिकल मेडिसिन एण्ड रिहैबिलिटेशन में छपा था ।

ऐसी ही एक घटना दिसम्बर १९६७ की कादम्बिनी पत्रिका में छपी थी, जिसमें मंत्रोपचार द्वारा पीलिया रोग निवारण की एक प्रत्यक्ष घटना की चर्चा की गई थी । गाँवों में कुत्ते और साँप के विष को मंत्र द्वारा ही निर्विष कर दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्ति का उपचार किया जाता है ।

योग वशिष्ठ (६/१/८१/३९) में मंत्र की चिकित्सा शक्ति पर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है कि जैसे हर्र खाने से पाचन संस्थान में तीव्र गति होती है और दस्त लग जाते हैं, उसी प्रकार दृढ़ भावना से युक्त यरलव आदि मंत्रों के अक्षर शरीर पर असर डालते हैं ।

अश्विनी कुमार के भैषज तंत्र में भी मंत्र शक्ति का उपयोग उपचार क्षेत्र में किये जाने का उल्लेख मिलता है । इसमें चार प्रकार के भैषज बताये गये हैं—पवनौकष, जलौकष, वनौकष और शाब्दिक । शाब्दिक भैषज से तात्पर्य है मंत्रोच्चार एवं लयबद्ध गायन । जहाँ आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ चरक संहिता, सुश्रुत संहिता में विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार के लिए मंत्रोपचार की चर्चा की गई है, वहीं सामवेद में ऋचाओं के गायन का माहात्म्य स्वास्थ्य लाभ के क्षेत्र में बताया गया है ।

मंत्र की इसी शक्ति का प्रयोग तंत्रशास्त्र में कृत्या-घात, जैसे प्रयोगों में किया जाता है । पर यहाँ उच्चारण सम्बन्धी भूल न सिर्फ वांछित मनोरथ प्राप्ति से प्रयोक्ता को वंचित कर देती है वरन् उसका दुष्परिणाम भी उसे भुगतना पड़ता है । एक पौराणिक कथा है कि त्वष्टा से मंत्रोच्चारण में एक स्वर की गलती हुई थी और उसका परिणाम विपरीत हो गया । त्वष्टा इन्द्र को मारने वाला पुत्र उत्पन्न करना चाहते थे, किन्तु स्वर सम्बन्धी उच्चारण की भूल से जिसे इन्द्र ने ही मार डाला, ऐसा वृत्त नाम असुर उत्पन्न हुआ और उनका प्रयोजन पूरा न हो सका ।

इससे प्रमाणित होता है कि मंत्रशक्ति में कितनी प्रचण्ड सामर्थ्य विद्यमान है । मनीषियों की मान्यता है कि सृष्टि के आदि में "शब्द" उत्पन्न हुआ । उसका ध्वनि प्रवाह ओंकार जैसा था । उसके बाद अन्यान्य तत्वों की उत्पत्ति हुई । यह आज के भौतिकीविदों की "बिंगबैंग" थ्यौरी का ही स्वरूप माना जा सकता है । सृष्टि की परोक्ष सत्ता इसी ओंकार से प्रस्फुटित हो प्रत्यक्ष कलेवर धारण करती चली गयी । ऊँकार ध्वनि शास्त्र का बीज है । उस अकेले को ही इतने प्रवाहों में गाया जा सकता है कि सातों स्वरों का परिचय उस अकेले से ही प्रादुर्भूत हो सके । हो सकता है—मंत्र चिकित्सा, संगीत उपचार के अनुसंधान के क्षेत्र में अगले दिनों ऐसे भी प्रयोग चल पड़े कि समस्त श्रुति ऋचाओं का बीज मंत्र ओंकार ही विभिन्न ध्वनि लहरियों में प्रयुक्त किया जा सके एवं मंत्र-संगीत चिकित्सा का एक परिपूर्ण ढाँचा खड़ा किया जा सके ।

आज विज्ञान के पास वह सब कुछ है जिससे प्रयोगों की परिणति को, उनकी क्रिया पद्धति को जाँचा परखा जा सकता है । समय आ रहा है कि स्थूल की शोध क्रमशः सूक्ष्म स्तरों को स्पर्श कर रही है । शब्द शक्ति को चेतना का ईंधन माना गया है जो अन्दर विद्यमान प्राणाग्नि को प्रज्वलित कर प्रसुप्त क्षमताओं को जगाती है । ऐसे यन्त्र भी आने वाले समय में आविष्कृत होंगे जो उन सूक्ष्म कम्पनों को पकड़ सकेंगे जो मंत्रोच्चारण एवं ऋचाओं के गायन की प्रक्रिया में उत्पन्न होते हैं एवं शरीर के अंग प्रत्यंग को, चारों ओर के वातावरण पर अपना प्रभाव डालते हैं । फिर वे रहस्य भी जाने जा सकेंगे जो अभी तक अविज्ञात हैं ।

# गायत्री साधना सम्बन्धी शंका-समाधान

गायत्री-उपासना के सन्दर्भ में कई प्रकार की शंकाएँ उठती रहती हैं । इनका उपयुक्त समाधान न मिलने से, जिस-तिस द्वारा बताए गये भ्रान्त विचारों को ही स्वीकार करना पड़ता है । समय-समय पर प्रस्तुत की जाने वाली शंकाओं में से कुछ का समाधान यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

## गायत्री एक या अनेक

गायत्री महामन्त्र एक है । वेदमाता, भारतीय संस्कृति की जन्मदात्री, आद्यशक्ति के नाम से प्रख्यात गायत्री एक ही है । वही सन्ध्यावन्दन में प्रयुक्त होती है । यज्ञोपवीत संस्कार के समय गुरुदीक्षा के रूप में भी उसी को दिया जाता है । इसलिए उसे गुरुमन्त्र भी कहते हैं। अनुष्ठान-पुरश्चरण इसी आद्यशक्ति के होते हैं । यह ब्रह्मविद्या है—ऋतम्भरा प्रज्ञा है । सामान्य नित्य उपासना से लेकर विशिष्टतम साधनाएँ इसी प्रख्यात गायत्री मन्त्र के माध्यम से होती हैं । इसके स्थान पर या समानान्तर किसी और गायत्री को प्रतिद्वन्द्वी के रूप में खड़ा नहीं किया जा सकता ।

मध्यकालीन अराजकता के अन्धकार भरे दिनों में उपासना विज्ञान की उठक-पटक खूब हुई है और स्वेच्छाचार फैलाने में निरंकुशता बरती गई है । उन्हीं दिनों ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य वर्ग की अलग-अलग गायत्री गढ़ी गईं । उन्हीं दिनों देवी-देवताओं के नाम से अलग-अलग गायत्रियों का सृजन हुआ । गायत्री महामन्त्र की प्रमुखता और मान्यता का लाभ उठाने के लिए देव-वादियों ने अपने प्रिय देवता के नाम पर गायत्री बनाई और फैलाई होंगी । इन्हीं का संग्रह करके किसी ने चौबीस देव-गायत्रीं बना दी प्रतीत होती हैं । देव-मन्त्र यदि गायत्री छन्द में बने हों तो हर्ज नहीं, पर उनमें से किसी को भी महामन्त्र गायत्री का प्रतिद्वन्द्वी या स्थानापन्न नहीं बनाया जाना चाहिए और न जाति-वंश के नाम पर उपासना क्षेत्र में फूट फसाद खड़ा करना चाहिए । देवलोक में कामधेनु एक ही है और धरती पर भी गंगा की तरह गायत्री भी एक ही है । चौबीस अक्षर—आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण—तीन व्याहृतियाँ—एक ओंकार इतना ही आद्य गायत्री का स्वरूप है । उसी को बिना जाति, लिंग आदि का भेद किये सर्वजनीन-सार्वभीम उपासना रूप में प्रयुक्त करना चाहिए ।

गायत्री के २४ अक्षरों में से प्रत्येक में एक-एक प्रेरणा और सामर्थ्य छिपी पड़ी है । उसे ध्यान में रखते हुए २४ महा-मातृकाओं का उल्लेख है । यह न तो एक-दूसरे की प्रतिद्वन्द्वी हैं और न आद्यशक्ति की समग्र क्षमता के स्थानापन्न होने के उपयुक्त । हर अक्षर का तत्वदर्शन एवं साधना क्षेत्र निरूपित करने के लिए २४ प्रतिमाओं का स्वरूप निर्धारित हुआ है । यह एक ही तत्व के भेद-उपभेदों को एक-एक करके समझाने और एक-एक चरण में दिव्य सामर्थ्यों का रहस्य, उद्घाटन करने की प्रक्रिया भी है ।

नवदुर्गाओं की तरह गायत्री महाशक्ति के भी नौ विभाग हैं, उन्हें नव देवियां कहते हैं । इस विभाजन को अध्याय—प्रकरण के तुल्य माना जा सकता है । महामन्त्र के तीन चरणों में से प्रत्येक में तीन-तीन शब्द हैं । इस तरह यह शब्द परिवार सौर-परिवार के नौ शब्दों की तरह बन जाता है । यज्ञोपवीत के नौ धागे इसी विभाजन—वर्गीकरण का संकेत देते और विवेचना की सुविधा प्रस्तुत करते हैं । इस आधार पर गायत्री-तत्व-मण्डल में नौ देवियों को मान्यता मिलती है और उनकी पृथक्-पृथक् प्रतिमा बनाई गई हैं ।

ब्रह्मतत्व व्यापक एवं निराकार है पर उनकी विभिन्न सामर्थ्यों की विवेचना करने की दृष्टि से देवताओं का स्वरूप एवं प्रयोजन निर्धारित किया गया है । गायत्री के नौ शब्दों की नौ देवियाँ—चौबीस अक्षरों की चौबीस मातृकाओं की प्रतिमाएँ बनी हैं । यह एक ही महाशक्ति-सागर की छोटी-बड़ी लहरें हैं । इस भिन्नता में भी एकता का दर्शन है । अंग-अवयवों को मिलाकर काया बनती है । आद्यशक्ति की प्रेरणाओं, शिक्षाओं, सामर्थ्यों, सिद्धियों का निरूपण ही इन प्रतीक प्रतिमाओं के अन्तर्गत हुआ है । अतएव गायत्री एक ही है । प्रतिमाओं में भिन्नता होते हुए भी उसकी तात्विक एकता में अन्तर नहीं आता ।

गायत्री एकमुखी, सावित्री पंचमुखी है । गायत्री आत्मिक और सावित्री भौतिकी है । एक को ऋद्धि और

दूसरी को सिद्धि कहते हैं । रुपए के दोनों ओर दो आकृतियाँ होती हैं, पर इससे रुपया दो नहीं हो जाता । गायत्री और सावित्री एक ही तथ्य की दो प्रतिक्रियाएँ हैं । जैसे आग में गर्मी और रोशनी दो वस्तुएँ होती हैं, उसी प्रकार गायत्री-सावित्री के युग्म को परस्पर अविच्छिन्न समझना चाहिए ।

त्रिकाल सन्ध्या में ब्राह्मी-वैष्णवी-शाम्भवी की तीन आकृतियों की प्रतिष्ठापना की जाती है । अन्यान्य प्रयोजनों के लिए उसकी अन्य आकृतियाँ ध्यान एवं पूजन के लिए प्रयुक्त होती हैं । यह कलेवर भिन्नता ऐसी ही है जैसे एक ही व्यक्ति सैनिक, मिस्त्री, खिलाड़ी, तैराक, नट, दूल्हा आदि बनने के समय भिन्न-भिन्न वाह्य उपकरणों को धारण किए होता है, भिन्न मुद्राओं में देखा जाता है । उसी प्रकार एक ही महाशक्ति विभिन्न कार्यों में रहते समय विभिन्न स्वरूपों में दृष्टिगोचर होती है । यही बात गायत्री माता की विभिन्न आकृतियों के सम्बन्ध में समझी जानी चाहिए ।

## स्नान और उसकी अनिवार्यता

गायत्री जप बिना स्नान किए भी हो सकता है या नहीं ? इस प्रश्न के उत्तर में समझा जाना चाहिए कि प्रत्येक अध्यात्म प्रयोजन के लिए शास्त्रों में शरीर को स्नान से शुद्ध करके और धुले हुए कपड़े पहन कर बैठने का विधान है । अधिक कपड़े पहनने पर सभी कपड़े नित्य धुले हुए हों, यह व्यवस्था करना कठिन पड़ता है । इसलिए धोती-दुपट्टा पहन कर बैठने की परम्परा है । ठण्ड लगती हो तो बनियान आदि पहन सकते हैं । पर वे भी धुले ही होने चाहिए । यह पूर्ण विधान हुआ ।

अब कठिनाईवश इस व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न होने पर क्या करना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि शास्त्रकारों ने कठिनाई की स्थिति में लचीली नीति रखी है । ऐसे कड़े प्रतिबन्ध नहीं लगाये जिनके कारण स्नान एवं धुले वस्त्र की व्यवस्था न बन पड़ने पर जप जैसा पुनीत कार्य भी बन्द कर दिया जाय । इसमें तो दुहरी हानि हुई । नियम इसलिए बने थे कि उपासना काल में अधिकतम पवित्रता रखने का प्रयत्न किया जाय । यदि नियम इतना कड़ा हो जाय कि स्नानादि न बन पड़ने पर जप, साधना का पुण्य उपार्जन ही बन्द हो जाय तब तो बात उल्टी हो गई । नियमों की कड़ाई ने ही साधना, उपासना कृत्य से वंचित करके, कठिनाई का हल निकालने के स्थान पर, रही बची सम्भावना भी समाप्त कर दी । जो आधा-अधूरा लाभ मिल सकता था उसकी सम्भावना भी समाप्त हो गई ।

शास्त्र-विधान यह है कि शरीर, वस्त्र, पात्र, उपकरण, पूजा सामग्री, देव प्रतिमा, आसन, स्नान आदि सभी को अधिकतम स्वच्छ बनाकर उपासना कृत्य करने पर जोर दिया जाय । इसमें आलस्य, प्रमाद को हटाने और स्वच्छता को उपासना का अंग मानने की बात कही गई है । फिर भी कारणवश ऐसी कठिनाइयाँ हो सकती हैं जिनमें साधक की मनःस्थिति और परिस्थिति पर ध्यान देते हुए विधान-प्रक्रिया को उस सीमा तक ढीला किया जाय जितना किये बिना गाड़ी रुक जाने का खतरा हो । स्वच्छता की नीति पूरी तरह तो समाप्त नहीं करनी चाहिए, पर जहाँ तक अधिकाधिक सम्भव हो उतना करने-कराने की ढील देकर क्रम को किसी प्रकार गतिशील रखा जा सकता है ।

रुग्णता, दुर्बलता से ग्रसित व्यक्ति स्नान की सुविधा न होने पर हाथ-पैर, मुँह धोकर काम चला सकते हैं । गीले तौलिये से शरीर को पोंछ लेना भी आधा स्नान माना जाता है । वस्त्र धुले न हों तो ऊनी कपड़े पहन कर यह समझा जा सकता है कि उनके धुले न होने पर भी काम चल सकता है । यों मैल और पसीना तो ऊन को भी स्पर्श करता है और उन्हें भी धोने की या धूप में सुखाने की आवश्यकता पड़ती है । पर चूंकि उनके बाल गन्दगी को अपने अन्दर नहीं सोखते वह बाहर ही चिपकी रह जाती है । इस दृष्टि से उसमें अशुद्धि का सम्पर्क कम होने के कारण बिना धुले होने पर भी ऊनी कपड़े पवित्र माने जाते हैं । यों स्वच्छता की दृष्टि से वे भी ऐसे नहीं होते कि बिना धुले होने पर भी सदा प्रयुक्त किए जाते और स्वच्छ माने जाते रहें । इसलिए इतना ही कहा जा सकता है कि व्यक्ति की असुविधा को ध्यान में रखते हुए शरीर और वस्त्रों की स्वच्छता के सम्बन्ध में उतनी ही छूट देनी चाहिए जिसके बिना काम न चलता हो । अश्रद्धा, उपेक्षा, आलस्य, प्रमाद वश स्वच्छता को अनावश्यक मानना और ऐसे मनमानी करना उचित नहीं ।

रेशमी वस्त्रों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही मान्यता है कि उन्हें धोने की आवश्यकता नहीं । वे बिना धोये ही शुद्ध होते हैं यह मान्यता गलत है । सूत जितनी सोखने की शक्ति न होने से अपेक्षाकृत उसमें अशुद्धि का प्रवेश कम होता है, यह तो माना जा सकता है पर उसे सदा सर्वदा के लिए पवित्र मान लिया जाय और धोया ही न जाय, यह

गलत है । धोने के समय को सूती कपड़े की अपेक्षा कुछ अधिक किया जा सकता है, इतना भर ही माना जाना चाहिए । धोया उसे भी जाय ।

रेशम के कपड़े पूजा में प्रयुक्त करते समय प्राचीन काल की और आज की परिस्थिति के अन्तर को भी ध्यान में रखना होगा । प्राचीन काल में कीड़े बड़े होकर जब उड़ जाते थे तब उसके छोड़े हुए खोखले ही से रेशम निकाला जाता था । यह अहिंसक उपलब्धि थी । पर आज तो अधिकांश रेशम जीवित कीड़ों को पानी में उबाल कर उनका खोखला उपलब्ध करके प्राप्त किया जाता है । इसमें मारने वालों की तरह पहनने वाले भी अहिंसा के नियम का उल्लंघन करने के दोषी बनते हैं । इस प्रकार अहिंसा युक्त तरीके से प्राप्त हुआ रेशम पूजा उपचार में तो निषिद्ध ही माना जाय । अच्छा तो यह है कि उनका उपयोग सामान्य पहनने के लिए भी न किया जाय ।

पशु चर्म के आसनों के सम्बन्ध में भी यही बात है । प्राचीन काल में ऋषि-मुनि जंगलों में रहते थे । वहीं अपनी मौत से मरे हुए वन्य पशुओं का चमड़ा जहाँ-तहाँ आसानी से उपलब्ध होता रहता था । आच्छादन के अन्य साधन उन दिनों वनवासी लोगों के लिए सहज उपलब्ध भी न थे । ऐसी दशा में उनके लिए आच्छादन में मृग, सिंह, व्याघ्र आदि का आसन, आच्छादन प्रयुक्त करना उचित था । पर आज तो जितना भी पशु चर्म उपलब्ध होता है उसमें ९९ प्रतिशत वध किए गये पशुओं का ही होता है । इस प्रकार हिंसापूर्वक प्राप्त किए गये चमड़े और माँस में कोई अन्तर नहीं पड़ता । आज जब आसन के लिए ऊनी, सूती, कुशा, चटाई आदि के अनेक प्रकार के बिना हिंसा के प्राप्त आसन सर्वत्र उपलब्ध हैं, तो फिर पशुचर्म का उपयोग करने की क्या आवश्यकता ? अहिंसक विधि से बनने वाले आसन ही उपयुक्त हैं । इस दृष्टि से कुशासन को अधिक पवित्र मानने की परम्परा ही अधिक उपयुक्त है । धोना न बन पड़े तो भी धूप में सुखाकर आच्छादनों को पवित्र करने का शुद्धि कृत्य तो चलते ही रहना चाहिए । स्नान में जितनी शिथिलता अनिवार्य हो उतनी ही कमी करनी चाहिए । जितना अधिक बन पड़े उसी का प्रयत्न करना चाहिए ।

उपासना काल के मध्य में यदि मूत्र विसर्जन के लिए जाना पड़े तो हाथ-पैर धोकर फिर बैठा जा सकता है । छींक, अपानवायु, जम्भाई आदि आने पर तीन आचमन कर लेने से शुद्धि हो जाती है । बीच में शौच जाना पड़े तो स्नान अनिवार्य नहीं । जितना बन पड़े हाथ, पैर, मुँह धो लेने आदि से भी काम चल सकता है ।

## गायत्री उपासना का समय

प्रातःकाल का समय गायत्री उपासना के लिए सर्वोत्तम है । सूर्योदय से पूर्व दो घण्टे से लेकर दिन निकलने तक का समय ब्राह्म मुहूर्त माना जाता है । इस अवधि में की गई उपासना अधिक फलवती होती है । सायंकाल सूर्य अस्त होने से लेकर एक घण्टे बाद तक का समय भी सन्ध्याकाल है । प्रातःकाल के उपरान्त दूसरा स्थान उसी समय का है । इतने पर भी अन्य समय में न करने जैसी कोई रोक नहीं है । दिन में सुविधानुसार कभी भी जप किया जा सकता है । जिन लोगों को रात की पाली में काम करना पड़ता है, जैसे रेलवे आदि की नौकरी में छुट्टी के समय बदलते रहते हैं, वे अपनी सुविधानुसार जब भी स्नान आदि करते हैं तो उपासना को भी नित्यकर्म में सम्मिलित रख सकते हैं । इस प्रकार बार-बार समय बदलना पड़े तो भी हर्ज नहीं है । न करने से करना अच्छा । प्रातः सायं का समय न मिलने के कारण उपासना ही बन्द कर दी जाय यह उचित नहीं । सर्वोत्तम न सही तो कुछ कम महत्त्व का समय भी बुरा नहीं है ।

रात्रि को जप करना निषिद्ध नहीं है । शास्त्रकारों ने सामान्य सुविधा का ध्यान रखते हुए ही रात्रि का महत्त्व घटाया है । दिन काम करने के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है । विश्राम के समय काम करेंगे तो इससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । इसलिए विश्राम के घण्टों में विक्षेप न करके काम के घण्टों में ही अन्य कामों की तरह ही उपासना करने का औचित्य है । एक कारण यह भी है कि सविता को गायत्री का देवता माना गया है । सूर्य की उपस्थिति में उस उपासना द्वारा सूर्य-तेज का अधिक आकर्षण किया जाता है । उसकी अनुपस्थिति में लाभ की मात्रा में कुछ कमी रह जाती है । इन्हीं दो बातों के कारण रात्रि में उपासना का महत्त्व कम किया गया है । किन्तु निषेध फिर भी नहीं है । दिन की तरह रात्रि भी भगवान द्वारा ही निर्मित है । शुभ कार्य के लिए हर घड़ी शुभ है । जिनके पास और कोई समय नहीं बचता वे रात्रि

में भी अपनी सुविधानुसार किसी भी समय अपनी उपासना कर सकते हैं ।

विधि निषेध का असमंजस अधिक हो तो रात्रि की उपासना मौन मानसिक की जा सकती है । माला का प्रयोजन घड़ी से पूरा किया जा सकता है । माला प्राचीन काल में हाथ से प्रयुक्त होने वाली घड़ी है । परम्परा का निर्वाह करना और माला के सहारे जप करने की नियमितता बनाए रखना उत्तम है । फिर भी रात्रि में माला न जपने से किसी विधि निषेध की मन में उथल-पुथल हो तो माला का काम घड़ी से लेकर नियत संख्या की—उपासना अवधि की नियमितता बरती जा सकती है ।

माला में चन्दन की उत्तम है । शुद्ध चन्दन की माला आसानी से मिल भी जाती है । तुलसी के नाम पर बाजार में अरहर की या किन्हीं जंगली झाड़ियों की लकड़ियाँ ही काम में लायी जाती हैं । इसी प्रकार रुद्राक्ष के नाम पर नकली गुठलियां ही बाजार में भरी पड़ी हैं । उनके मनमाने पैसे वसूल करते हैं । आज की स्थिति में श्वेत चन्दन की माला ही उत्तम है । यों वे नकली भी खूब बिकती हैं । असली होना आवश्यक है । चन्दन, तुलसी और रुद्राक्ष में से जिसका भी प्रयोग करना हो वह असली ली जाय इसका यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिए ।

मानसिक जप रात्रि में करने में कोई अड़चन नहीं है । रास्ते चलते, सवारी में बैठे, चारपाई पर पड़े हुए भी मानसिक जप करते रहा जा सकता है । होंठ, कण्ठ, जीभ बिना हिलाए मन ही मन जप, ध्यान करने में किसी भी स्थिति—किसी भी समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं है । विधिवत् की गई साधना की तुलना में विधि रहित मानसिक जप ध्यान का फल कुछ कम होता है । इतनी कमी है । जितना गुड़ डाला जाय उतना मीठा होने की बात विधिवत और मानसिक जप पर भी लागू होती है ।

## उच्चारण क्रम

गायत्री मन्त्र का किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार उच्चारण करे इस सम्बन्ध में कई बातें जानने योग्य हैं । गायन उच्चारण सस्वर किया जाता है । प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ स्वर विधान जुड़ा हुआ है कि उसे किस लय, ध्वनि में, किस उतार-चढ़ाव के साथ गाया जाय । वेद-मन्त्र को छन्द भी कहते हैं । वे सभी पद्य में हैं और गायन में जो स्वर लहरी उत्पन्न करते हैं उसका प्रभाव ध्वनि तरंगें उत्पन्न करता है । वे तरंगें निखिल ब्रह्माण्ड में परिभ्रमण करती और सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित करती हैं । इसलिए सहगान में—यज्ञ-हवन में, मंगल प्रयोजनों में, शुभारम्भ में, गायत्री मन्त्र उच्चारण सहित—निर्धारित स्तर विधान के साथ—निर्धारित ध्वनि प्रक्रिया के साथ गाया जाता है । तीन वेदों में गायत्री मन्त्र का उल्लेख है । तीनों में स्वरलिपि अलग-अलग हैं । इनमें से एक ही चुनना ठीक है । यजुर्वेदीय गान उच्चारण सर्वसाधारण के लिए अधिक उपयुक्त है ।

नियमित जप मन्द स्वर से किया जाता है । उसमें होंठ, कण्ठ, जीभ में स्पन्दन तो रहना चाहिए पर ध्वनि इतनी मन्द होनी चाहिए कि अन्य कोई उसे सुन समझ न सके । मात्र हल्का गुंजन जैसा कुछ अनुभव होना कर सके ।

यदि रास्ता चलते, बिना नहाये—काम-काज करते अनियमित जप करना हो तो होंठ, कण्ठ, जीभ सभी बन्द रहने चाहिए और मन ही मन ध्वनि-ध्यान की तरह उसे करते रहना चाहिए । ऐसी स्थिति में जो जप किया जाता है, उसकी माला के समान गणना नहीं की जाती । घड़ी देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अपनी जप-गति क्या थी और कितने समय में कितना मानसिक जप हो गया होगा ।

## अधिक 'ॐकारों' का प्रयोग

कहीं-कहीं ऐसे विधान मिलते हैं कि गायत्री मन्त्र के साथ एक से अधिक ॐकारों का प्रयोग करना चाहिए । कोई तीन और कोई पाँच ॐकार लगाने की भी बात कहते हैं । आदि में, मध्य में और अन्त में, तीन चरणों में से प्रत्येक के पहले—व्याहृतियों के बाद एक या अधिक ॐकार लगाने की बात कही जाती है । इसके लिए यत्र तत्र के उल्लेख भी उपस्थित किये जाते हैं ।

मतमतान्तरों ने यह भिन्नता किस प्रकार प्रस्तुत की इसकी सही जानकारी तो नहीं मिल सकी, पर ऐसा प्रतीत होता है कि तिलक छाप में अन्तर करके जिस प्रकार अपने सम्प्रदाय की जानकारी कराई जाती है—वेष, वस्त्र आदि से अपने वर्ग का परिचय सर्वसाधारण को कराया जाता है, सम्भवतः उसी प्रकार गायत्री जप में न्यूनाधिक ॐकारों का प्रयोग करने की प्रथा चलाई होगी ।

साधारणतया प्रत्येक वेद मन्त्र से पूर्व उसके सम्मान का बोध कराने के लिए एक ॐ लगाने का विधान है । जिस प्रकार किसी के नाम का उल्लेख करने से पूर्व 'श्री'—'श्रीमती'—'मिस्टर'—'कुमारी' आदि लिखने का, उसके प्रति सम्मान प्रकट करने का शिष्टाचार प्रचलित है, उसी प्रकार प्रत्येक वेद मन्त्र से पूर्व ॐ लगाते हैं । तीन व्याहृति आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण और एक ॐकार बस इतना ही गायत्री मन्त्र है और वही पूर्ण भी है । जप, यज्ञ आदि में इसी परिपूर्ण मन्त्र का उपयोग होना चाहिए । गुरुमन्त्र गायत्री का इतना ही स्वरूप है । विशिष्ट साधना और नित्य कर्म में इतना ही मन्त्र भाग प्रयुक्त होता रहा है। अधिक संख्या में 'ॐकारों' का प्रयोग करना सम्भवत: सम्प्रदाय विशेषों में अपनी प्रथकता सिद्ध करने की दृष्टि से ही चला है ।

"ॐ" भगवान का सर्वोत्तम नाम है । उसका अधिक बार गायत्री मन्त्र के साथ उपयोग कर लेने में भी कोई हानि नहीं। इसलिए जिन्हें अधिक बार "ॐ" लगाने का मन है, उन्हें रोकने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसमें अनुचित जैसी कोई बात दिखाई नहीं पड़ती । जहाँ तक सार्वभौम व्यवस्था—एकरूपता—समस्वरता एवं शास्त्रीय परम्परा का प्रश्न है, वहाँ मन्त्र के आरम्भ में एक बार "ॐ" लगाना ही अधिक सही कहा जायेगा ।

## वितण्डावादों से बचने की नीति

गायत्री का महत्त्व असाधारण है । वह एक ईश्वरीय वरदान है । इस महामन्त्र में वह सब ज्ञान विज्ञान भरा हुआ है जिसकी मनुष्य जाति को, सारे संसार को, आवश्यकता है । आत्मा को अनन्त शक्ति प्रदान करने वाली ब्रह्म विद्या से लेकर इन २४ अक्षरों में अनेक प्रकार की सांसारिक विद्याएँ भी छिपी हुई हैं ।

अखण्ड ज्योति संस्था की ओर से लम्बे समय से इस महाविज्ञान सम्बन्धी कुछ शोध हो रही है । हजारों प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करके गायत्री सम्बन्धी जानकारियों का संकलन, देशव्यापी गायत्री उपासकों के अनुभवों का संग्रह, महान तपस्वियों एवं विद्वानों का सहयोग, रहस्य-मय सिद्ध पुरुषों की खोज, स्वयं की कठोर तपश्चर्याएँ, उपलब्ध ज्ञान का प्रयोग एवं परीक्षण, आदि मार्गों द्वारा इस दिशा में जो कार्य हुआ है उसकी जानकारी रखने वाले विज्ञ पुरुषों को बड़ा हर्ष और सन्तोष है । इस कर्क प्रगति को देखते हुए ऐसा विश्वास होता है कुछ ऐसे आश्चर्यजनक परिणाम जल्दी ही सामने आवेंगे जिन पर भारत के आध्यात्मिक जगत को गर्व हो सके ।

भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान के एकमात्र बीज मन्त्र गायत्री की महान प्रतिष्ठा की पुन: स्थापना करने के लिए सभी अध्यात्मिक पुरुषों, विद्वानों एवं साधकों के सहयोग की आवश्यकता है । वह हमें मिलता भी है और आशा है कि जिस दैवी प्रेरणा से यह कार्य हो रहा है उसी की सहायता से अधिकाधिक सत्पुरुषों का सच्चा सहयोग हमें और भी अधिक प्राप्त होगा ।

दूसरी ओर हमें इस बात पर कभी-कभी खेद भी होता है कि कुछ सज्जन अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए ऐसे अभिमत प्रकट कर देते हैं जिससे अल्प श्रद्धा वाले लोगों में अकारण मतिभ्रम पैदा हो जाता है । ऐसे अनेक मतिभ्रम फैलाए जाने की सूचनाएँ हमें मिलती रहती हैं और हमसे उनके स्पष्टीकरण या प्रत्युत्तर माँगे जाते हैं । ऐसे अवसरों पर एक विचित्र उलझन सामने आती है। हमारी सीमित शक्तियाँ गायत्री माता के चरणों में संलग्न हैं । हम उसकी गोदी में बैठकर वह पयपान करना चाहते हैं जो अभीष्ट है । वितण्डावादों में उलझने का न तो हमारे पास समय है और न इच्छा, न रुचि, न शक्ति । अपने जीवन भर के विनम्र अन्वेषणों तथा देव तुल्य गुरुजनों की चरण रज के प्रसाद स्वरूप जो कुछ प्राप्त हुआ है उसे हमने अपनी पुस्तकों में प्रकाशित कर दिया है और करते रहते हैं । कोई गुरुजन कृपा करके हमारी कभी कोई भूल बता देते हैं तो उनके अनुग्रह के लिए अनेक उपकार मानते हुए तत्क्षण अपनी भूल को सुधार लेते हैं ऐसे अनुग्रह के लिए विद्वानों और अनुभवियों को हम सदा आमन्त्रित भी करते रहते हैं ताकि लक्ष्य की ओर अधिक आशाजनक प्रगति हो सके ।

हमारी प्रार्थना पर ध्यान न देकर कुछ सज्जन मतिभ्रम फैलाने में ही औचित्य अनुभव करते हैं । वे मौखिक रूप से एवं कभी-कभी अखबारों में छपा कर ऐसे विचार प्रकट करते हैं जिससे बड़ी कठिनाई से उत्पन्न हुई लोगों की साधन श्रद्धा, विचलित हो जाती है और वे अपने अध्यात्मिक प्रयत्नों को छोड़ बैठते हैं । संभवत: वे सज्जन "धर्म रक्षा" की दृष्टि से ऐसे विचार प्रकट करते होंगे पर होता उसके विपरीत है । क्योंकि उनके अभिमत किसी मजबूत आधार पर निर्धारित नहीं होते । अपनी अल्पज्ञता का ध्यान न रखते हुए जब मनुष्य पूर्णता एवं सर्वज्ञता का अहंकार धारण कर लेता है तब उससे प्राय: अनुचित कार्य ही बन पड़ते हैं ।

यों तो समय-समय पर अनेक आक्षेप और विरोध सामने आते रहते हैं और अपनी निर्धारित नीति के अनुसार हम उनकी उपेक्षा करते रहते हैं । ऐसा ही एक विरोध अभी हाल में बम्बई के एक गुजराती पत्र में छपा है जिसमें अखण्ड-ज्योति द्वारा संचालित गायत्री मन्त्र लेखन का विरोध किया है, उस विरोध के जो कारण दिये गये हैं वे बड़े मनोरंजक हैं । पाठकों का कुछ मनोरंजन हो इस दृष्टि से उसका उल्लेख नीचे किया जाता है—

विज्ञप्ति के छपाने वाले कोई 'शास्त्री' सज्जन हैं । उन्होंने मन्त्र लेखन का निषेध तीन तर्कों के आधार पर किया है—

(१) हमारे पास चार पांच पुस्तकें गायत्री सम्बन्धी हैं उनमें से किसी में मन्त्र लेखन का विधान नहीं है ।

(२) पुष्टि मार्ग के एक आचार्य ने कोई गुरुदीक्षा मन्त्र पुस्तक में छप जाने पर उस कार्य का विरोध किया था ।

(३) किसी तन्त्र ग्रन्थ में लिखा है कि 'मन्त्र माला तथा यन्त्र गुरोरपि न दर्शयेत्' अर्थात् माला, मन्त्र और यन्त्र इन्हें गुरु को भी न दिखाना चाहिए ।

आइए इन तर्कों की परीक्षा करें और देखें कि क्या सचमुच शास्त्री महोदय की बात युक्तिसंगत है—

(१) उनके पास ४-५ पुस्तकें गायत्री सम्बन्धी हैं और चूंकि इनमें मन्त्र लेखन सम्बन्धी समर्थन या विरोध नहीं है । इसलिए वे सोचते हैं कि संसार में गायत्री साहित्य केवल ४-५ पुस्तकों का ही है । उनमें मन्त्र लेखन का विरोध भले ही न हो पर समर्थन नहीं है तो वह विरोध ही मान लेना चाहिए । यदि वे सज्जन चाहते तो यों भी सोच सकते थे कि सम्भव है संसार में गायत्री विद्या की जानकारी मेरे पास जो ४-५ पुस्तकें हैं उनके अलावा भी किसी और ग्रन्थ में हो, जो मेरे देखने में न आई हो और चूंकि इन पुस्तकों में कहीं विरोध नहीं है इसलिए सम्भव है किसी अन्य ग्रन्थ में मन्त्र लेखन का समर्थन हो । परन्तु वे ऐसा क्यों सोचते ? उन्हें तो विरोध करने से काम था । अपने पास मन्त्र लेखन के विरोध में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है—न सही । समर्थक प्रमाण ४-५ पुस्तकों में न होना यही विरोध के लिए पर्याप्त प्रमाण है ।

सच बात यह है कि गायत्री सम्बन्धी विज्ञान से सम्बन्धित लगभग ८०० प्राचीन ग्रन्थ हैं जिनमें से उन्हें ७९५ का कुछ भी पता नहीं है । इतनी दुर्बल जानकारी के आधार पर एक सुसंचालित तपश्चर्या का विरोध करने के लिए वे तत्पर हुए हैं ।

(२) पुष्टि मार्गी गुरुदीक्षा का मन्त्र उस सम्प्रदाय के आचार्य ने किसी पुस्तक में छापने का विरोध किया था । वे पण्डित जी समझते हैं कि गायत्री भी किसी सम्प्रदाय का कोई ऐसा ही मन्त्र है जो केवल गुरुदीक्षा देने के काम आता है । उसे प्रकट कर देने से शिष्य लोग गुरु की अपेक्षा न रखेंगे और उसे जान लेने से स्वयं ही उनके ज्ञाता बन जावेंगे ।

पण्डित जी यह भूल जाते हैं कि गायत्री वेद मन्त्र हैं । प्रेस न होने से पहले वेद हस्तलिखित होते थे और अब प्रेस हो जाने पर तो लाखों की संख्या में वेद मन्त्र प्रेस में छपते हैं । मन्त्र लिखे जाने का या छपने का आज तक किसी बड़े से बड़े कट्टरपन्थी ने विरोध नहीं किया । यदि ऐसा निषेध होता तो कहीं कोई वेद या वेद मन्त्र छपा हुआ या लिखा हुआ दृष्टिगोचर न होता । पुष्टि मार्गी सम्प्रदाय के गुरुदीक्षा मन्त्र और गायत्री मन्त्र को एकसमान मान लेने और उनके आचार्य के विरोध को एकमात्र प्रमाण मान लेने पर उसका फलितार्थ क्या होगा, इस बात को वे सज्जन विरोध के उत्साह में बिल्कुल भूल गये हैं । यदि उनकी बात स्वीकार कर ली जाय तो उन्हें उन ४-५ पुस्तकों से भी वंचित होना पड़ेगा जिनके आधार पर ये मन्त्र लेखन में सन्देह करते हैं । चूंकि शास्त्र को मानने वाले हैं । पुष्टिमार्गी आचार्य वाक्य ही उनका शास्त्र है । ऐसी दशा में उन्हें एक उस पुस्तक का पूर्ण निषेध करना चाहिए जिसमें वेद मन्त्र छपे या लिखे हों । गायत्री की भाँति अन्य वेद मन्त्र भी हैं । इतना न हो तो कम से कम जिस पुस्तक में गायत्री का उल्लेख हो उसे तो उन्हें 'अछूत' ही मानना चाहिए ।

(३) किसी तन्त्र ग्रन्थ का श्लोक है कि मन्त्र, माला, और यन्त्र गुरु को भी न दिखाये । यहां उन्होंने ये शब्द देखकर सभी मन्त्रों को एक लाठी से हांक दिया है । वाम मार्गी, कौल, सावर तन्त्र के मन्त्र में और दक्षिण मार्गी, वेदोक्त मंत्रों में कोई अन्तर है या नहीं यह उन्हें पता नहीं । वे गायत्री को सांवर तन्त्र का ऐसा मन्त्र मानते हैं जिसे मारण आदि अभिकारों के लिए प्रयोग किया जाता है और इतना गुप्त रखा जाता है कि और को तो क्या गुरु को भी न दिखाया जाय । यदि वेद मन्त्रों को इसी श्रेणी में रख दिखाया जाय तो फिर वेद विद्यालय पूर्णतया बन्द करने पड़ेंगे । क्योंकि मन्त्र को शिष्य भला गुरु को किस प्रकार

सुना सकेगा ? गुरु शिष्य से उसके वेद पाठ पूछ भी कैसे सकेगा ? क्योंकि इसे मालूम है कि मन्त्र को तो गुरु को भी सुनाना निषेध है । इसी प्रकार वेद गान, वेदपाठ, साम गान आदि भी बन्द करने होंगे और विवाहादि संस्कारों में तथा यज्ञों में जो मन्त्रों का उच्चारण होता है वह निषिद्ध, शास्त्र विरुद्ध ठहरेगा ।

पाठक देखेंगे कि उपर्युक्त बातों में कितना तथ्य है ? शास्त्री महोदय कितने दुर्बल आधार को लेकर, कितने महत्त्वपूर्ण धर्म कार्य का विरोध करने में लगे हुए हैं ? इससे उन्हें क्या लाभ हुआ ? सम्भव है किसी महत्त्वपूर्ण बात का विरोध करने से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने और अपने पाण्डित्य का प्रकाश करना उनका मन्तव्य हो जैसा कि आमतौर से होता है । यदि ऐसा हो तो हम शास्त्री महोदय तथा समय-समय पर ऐसे ही विरोध करने वाले अन्य सज्जनों की प्रसन्नता के लिए एक बड़ा पूर्ण सुयोग भी उपस्थित कर सकते हैं । वह यह कि वे यदि अपनी बातों का आधार मजबूत समझते हों, और हमारी बातों को अप्रामाणिक समझते हों तो इसके लिए एक विद्वज्जनोचित शास्त्रार्थ कर लें और उसमें यह शर्त रख लें कि (१) जिसकी बातें अप्रामाणिक सिद्ध हों उसे गोली मार दी जाय (२) विजेता को पराजित की सारी सम्पत्ति दे दी जाय । इन शर्तों को स्वीकार कर लेने से उन महानुभावों को तीन लाभ हो सकते हैं—

(१) उनकी विद्वता की विजय दुन्दुभी चारों ओर बज जायेगी और जिस भावना की कुल बुलाहट से वे निर्मूल आक्षेप करने को बाध्य होते हैं उस प्रवृत्ति की भली प्रकार तृप्ति हो जायेगी ।

(२) अपनी विद्वत्ता के पुरस्कार में उन्हें हजारों रुपए की सम्पत्ति जीतने का लाभ मिलेगा ।

(३) यदि वे सच-सच हमारे विचारों में कोई शास्त्र विरुद्ध बात समझते होंगे तो उन्हें धर्मोद्धार का श्रेय भी मिलेगा ।

वास्तविकता यह है कि उपासना और साधना का आध्यात्मिकता का विषय तपस्वियों और साधकों से सम्बन्ध रखता है । जिन व्यक्तियों की इस क्षेत्र में गति है, अनुभव है उन्हीं को कुछ कहना या बोलना चाहिए । यों साहित्य के अन्तर्गत सभी बातें आती हैं । पुस्तकों में बहुत कुछ लिखा है पर केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर हर व्यक्ति को हर विषय में बोलने का अधिकार नहीं होता । शास्त्री लोग व्याकरण की साहित्य की बारीकियों को आसानी से समझ सकते हैं, उस विषय में वे प्रामाणिक भी हो सकते हैं । परन्तु हर विषय में उनकी प्रामाणिकता नहीं हो सकती । जैसे एक डाक्टर, चिकित्सा तो खूब कर सकता है पर वकील, इंजीनियर, चित्रकार, शिल्पी आदि के कार्यों का उसे कोई अनुभव नहीं होता । इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि कोई व्यक्ति अक्षर ज्ञान की दृष्टि में पूर्ण पण्डित होते हुए भी साधना, योग एवं अध्यात्म के क्षेत्र में बिल्कुल अनजान हो । ऐसी दशा में उसे अपनी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए और उसे यह भी जानना चाहिए कि सभी आध्यात्मिक रहस्य पुस्तकों में लिखे हुए नहीं हैं । पुस्तकों से बाहर भी बहुत कुछ मौजदू है ।

संसार में अनेक अधार्मिक कार्य हो रहे हैं । चोरी, बेईमानी, दगाबाजी, व्यभिचार, व्यसन, नास्तिकता आदि सभी कार्य शास्त्र विरुद्ध हैं । धर्मध्वजी लोगों के व्यक्तिगत आचरणों में भी शास्त्र विरुद्ध कार्यों की कमी नहीं रहती, इन सब बातों के सम्बन्ध में जो लोग सदैव मौन रहते हैं उन प्रसंगों पर बोलने या लेखने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, परन्तु जब कोई कल्याणकारक श्रेष्ठ कार्य होता है तो गायत्री जैसी सर्वथा हानि रहित उपासना में भी बाल की खाल निकाल कर अधार्मिक सिद्ध करने और लोगों को उस मार्ग से रोकने के लिए उनका शास्त्रीय ज्ञान उछल पड़ता है ।

इस सम्बन्ध में हम अपने पाठकों से एक ही बात कहना चाहेंगे कि—साधना पथ पर किसी का पथ प्रदर्शन करते हुए हम जानते हैं कि हमारी जिम्मेदारी कितनी महान है । किसी को गलत सलाह दी जाय तो अपनी श्रद्धा, गुरु भक्ति, सच्चाई और साधना के बल पर वह साधक तो उस गलत साधना से भी अभीष्ट फल प्राप्त कर लेगा पर उसको जो फल मिलेगा वह उस पथ प्रदर्शन की साधना में से कट कर मिलेगा और यदि उसके पास तप की इतनी पूँजी नहीं है तो उसे पेशगी उतना पुण्य फल उन शिष्यों को देना पड़ेगा और उसकी पूर्ति के लिए उसे हजारों जन्मों तक पिसना पड़ेगा । स्पष्ट है कि ऐसा करने में हमारा कोई लाभ नहीं । हम लोक हित के लिए, दूसरों को कल्याण मार्ग पर ले जाने की पुण्य भावना से प्रेरित होकर ही दूसरों को कोई साधना संबन्धी सलाह देते हैं इसमें हमारा कोई आर्थिक या भौतिक स्वार्थ नहीं होता फिर हम क्यों किसी का गलत पथ प्रदर्शन करेंगे ? और क्यों अकारण अपनी हजारों जन्मों की तपश्चर्या को नष्ट करेंगे ?

कल्याण मार्ग पर कोई विरले ही प्रवृत्त होते हैं । जिनके शुभ संस्कार प्रबल हैं उन्हें श्रेष्ठ पथ पर श्रद्धा एवं निष्ठा प्राप्त होती है । जिन्हें कल्याण प्राप्त नहीं होना है-वे यदि किसी प्रकार खड़े भी कर दिये जायें तो कोई न कोई विघ्न, प्रमाद, मतिभ्रम सामने आ खड़ा होता है और उनकी दुर्बल श्रद्धा नष्ट हो जाती है । तप और यज्ञ में अनेक विघ्न आते हैं उन्हीं विघ्नों में से 'मतिभ्रम' भी एक है जो मूर्खों द्वारा, विद्वानों द्वारा, स्वजनों द्वारा, परिजनों द्वारा उपस्थित किया जा सकता है । ऐसा पूर्व काल में भी होता था और अब भी होगा । सन्मार्ग पर ले चलने वाली सतोगुणी शक्तियाँ संसार में कम हैं और रास्ता चलने वालों को रोकने वाली आसुरी शक्तियाँ बहुत हैं । वे अपना काम अवश्य करेंगी । हमारे या किसी और के द्वारा उन्हें पूर्ण- तया रोका नहीं जा सकता । इसीलिए हम सदा से ऐसे विवादों से दूर रहते हैं और आगे भी रहेंगे । हमने अब तक किसी आक्षेप का उत्तर नहीं दिया और आगे भी किसी वितण्डावाद में पड़ने का हमारा विचार नहीं है । हमारे पास अपने लक्ष्य को पूर्ण करने में प्रवृत्त रहने लायक समय और साधन हैं । दूसरों को लोकहित की दृष्टि से उचित सलाह एवं शिक्षा देते रहना हमारा ब्राह्मणोचित कर्त्तव्य है उसे हम यथासम्भव पालन करते रहते हैं । हमारी ही बातें ठीक मानी जायें ऐसा कोई हमारा आग्रह भी नहीं है, और न कोई इसमें संकुचित स्वार्थ ही है । हर व्यक्ति अपने विवेक एवं अन्त: प्रेरणा का अनुकरण करके आसानी से सत्य असत्य का निर्णय कर सकता है ।

यह पंक्तियाँ तो हमने अपनी नीति के स्पष्टीकरण करने मात्र के लिए लिखी हैं जिससे पाठक तरह-तरह के आक्षेपों में भ्रमित होकर हमारा अकारण समय नष्ट न करें । इन पंक्तियों में एक सज्जन के आक्षेपों का प्रसंग वशात् ही उल्लेख हो गया है । किसी का प्रत्युत्तर देना हमें अभीष्ट नहीं, जिस बात को हम पूर्ण सत्य, उपयोगी एवं प्रामाणिक समझते हैं केवल उसी को दूसरों के सामने उपस्थित करते हैं । अपनी बातों की प्रामाणिकता के लिए हमारे पास ठोस आधार होते हैं इसलिए हम निरर्थक विवादों से अपने समय और शक्ति को सदैव बचाते रहते हैं । वितण्डावाद से हमें घृणा है इसलिए उससे दूर रहना ही हमें अभीष्ट है ।

# गायत्री का जातिगत अधिकार

कहा जाता है कि गायत्री का अधिकार ब्राह्मण वर्ग को है । कहीं-कहीं उसके द्विजातियों तक सीमित होने का उल्लेख है । इससे लगता है कि ब्राह्मणेतर अथवा द्विज वर्ग से बाहर के लोगों को—असवर्णों को गायत्री का अधिकार नहीं है ।

यह शंका सर्वथा निर्मूल है । एक कारण तो यह है कि गायत्री ब्राह्मी शक्ति होने के कारण, उसका उपयोग करने का अधिकार, सूर्य, जल, वायु, पृथ्वी आदि की तरह सभी को है । प्रतिबन्ध मनुष्यकृत वस्तुओं पर उसके मालिक लगा सकते हैं । ईश्वरीय निर्मित वस्तुएँ सभी के लिए उपलब्ध रहती हैं । गायत्री सार्वभौम है—सर्व-जनीन है । उस पर किसी धर्म, जाति, वंश, वर्ग का आधिपत्य नहीं है । हर वर्ग, वंश का व्यक्ति इस कल्पवृक्ष का आश्रय बिना किसी हिचक के ले सकता है ।

गायत्री गुरु मन्त्र है । विद्याध्ययन के लिए छात्र जब गुरुकुल में प्रवेश करते थे तो सर्वप्रथम उन्हें गायत्री मन्त्र ही गुरु द्वारा दिया जाता था । विद्यार्थी सभी वर्णों के होते थे और सभी को गायत्री मन्त्र मिलता था । भारतीय संस्कृति का प्रधान प्रतीक शिखा है । जिसे बिना किसी वर्ण भेद के सभी हिन्दू समान रूप से धारण करते हैं । शिखा गायत्री का स्वरूप है । मस्तिष्क पर सद्विवेक का अनुशासन स्थापित करने वाली इस ध्वजा को गायत्री की प्रतिमा ही कह सकते हैं । शिखाधारी तो अनायास ही गायत्री का अधिकारी बना होता है ।

प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था जन्म वंश पर नहीं गुण-कर्म स्वभाव पर आधारित थी । वर्ण बदलते रहते थे । वंश और वर्ण का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था । उन दिनों की सामाजिक व्यवस्था में कुटिलता अपनाने और कुकर्म करने वालों का सामाजिक बहिष्कार होता होगा और उनके नागरिक अधिकार छिन जाते होंगे । ये बहिष्कृत लोग खुले हुए कैदियों की स्थिति में सुधरने तक अलग रखे, तिरस्कृत किए जाते होंगे । उसी सामाजिक वर्ण व्यवस्था में सम्भवत: उन अस्पर्श्यों से गायत्री का अधिकार छिन जाता होगा । इसी स्थिति का उल्लेख अन्त्यजों को गायत्री मन्त्र से वंचित करने के दण्ड-रूप में दिया जाता होगा ।

जो हो आज वैसे सामाजिक दण्ड की व्यवस्था नहीं रही । फिर कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार भी

नष्ट हो गया । ऐसी दशा में किसी वंश विशेष को अधिकारी—अनधिकारी ठहराने का कोई औचित्य नहीं हो सकता । सभी मनुष्य भगवान के पुत्र हैं । सभी भाई-भाई हैं । जन्म के आधार पर कोई ऊंच-नीच नहीं हो सकता । उत्कृष्टता-निकृष्टता का एकमात्र आधार मनुष्य के सत्कर्म, दुष्कर्म ही हो सकते हैं । इन तथ्यों के रहते किसी वंश के ही लोगों को गायत्री का अधिकारी ठहराने की बात अनर्गल है । गायत्री उपासना सभी वर्णों के, सभी धर्म सम्प्रदायों के लोग बिना किसी भेदभाव के कर सकते हैं ।

गायत्री को ब्राह्मण वर्ण तक सीमित करने वाली बात तो और भी अधिक उपहासास्पद है । गायत्री विनियोग में इस महामन्त्र के ऋषि विश्वामित्र कहे गये हैं । विश्वामित्र जन्मत: क्षत्रिय थे । उन्हें ही इस महामन्त्र का साक्षात्कार और रहस्योद्घाटन करने का श्रेय प्राप्त है । यदि जाति-वंश की दावेदारी का झंझट खड़ा हो तो उसमें क्षत्रिय वर्ण के लोग अपने उत्तराधिकारी का दावा कर सकते हैं । ब्राह्मण तो तब भी हार जायेंगे ।

ब्रह्मपरायण—उत्कृष्ट व्यक्तित्व वाले साधक गायत्री उपासना से अधिक उच्चस्तरीय लाभ उठा सकते हैं । इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए गायत्री को ब्राह्मण की कामधेनु कहा गया है । इस प्रतिपादन में मात्र उत्कृष्टता की विशिष्टता को महत्त्व दिया गया है । अन्य वर्ग के लोगों को उससे वंचित करने जैसा प्रतिबन्ध उसमें भी नहीं ।

प्राचीन प्रचलन, शास्त्र का निर्देश और न्याय-नीति के आधार पर गायत्री उपासना सर्वजनीन ही ठहरती है । जाति, वंश, देश, सम्प्रदाय के कारण सार्वभौम उपासना पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगता । हर कोई प्रसन्नतापूर्वक इस महाशक्ति का अंचल पकड़ कर ऊंचा उठने और आगे बढ़ने का लाभ प्राप्त कर सकता है ।

यह मान्यता सर्वथा निराधार है कि गायत्री मन्त्र का अधिकार केवल द्विजों को ही है । जिनका दूसरा जन्म नहीं हुआ है उनके लिए गायत्री व्यर्थ है । अनधिकारी होने के कारण न तो उनका इस महान साधना में मन लगता है न विश्वास होता है और न वे तदनुकूल आचरण कर पाते हैं। आयुर्वेद पढ़ना हो तो आरम्भ में हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान होना आवश्यक है । अशिक्षित व्यक्ति आयुर्वेद कॉलेज में नाम लिखाने जाय तो प्रिंसिपल को यही कहना पड़ेगा कि आपको प्रविष्ट नहीं किया जा सकता ।

द्विजत्व का अर्थ है—दूसरा जन्म । एक जन्म माता-पिता से होता है । पशु-पक्षियों का जन्म भी इसी प्रकार होता है । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद मानव शरीर पाने पर भी उसमें पिछले पाशविक संस्कार ही प्रधान रहते हैं । पेट भरना, कामवासना, लोभ, स्वार्थ एवं अहंकार आदि की पाशविक वृत्तियों से प्रेरित होकर वह सोचता है, इच्छा करता है और कार्य प्रवृत्त होता है । यदि यही गतिविधि जारी रहे तो वह नर पशु ही बना रहता है ।

पशुता की विचारधारा और कार्य-प्रणाली से ऊंचा उठ कर मनुष्यता की जिम्मेदारियों को कन्धे पर लेना, मानोवांछित इच्छाएँ करना, विचार एवं कार्यों का अपनाना दूसरा जन्म है । पशु का आदर्श—इन्द्रिय भोग और स्वार्थ है । मनुष्य का आदर्श—आत्मोन्नति और परमार्थ है । पशु अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि की परवाह नहीं करता, मनुष्य दूसरे की सेवा के लिए अपने सुख और स्वार्थ को बलिदान कर देता है । शूद्र का तात्पर्य है—नर पशु । ऐसे व्यक्तियों को शास्त्रों में श्वान समान पर तिरस्कृत और वहिष्कृत किया है । गायत्री से ही उन्हें आत्मिक अयोग्यता के कारण ही वंचित रखा गया है ।

पानी नीचे की ओर अपने आप बहता है । जितनी अधिक निचाई होगी उतना ही बहाव तेज होगा । पर यदि पानी को ऊपर की ओर, ऊंचाई की ओर बढ़ाना हो तो कितने ही कष्ट साध्य प्रयत्न करने पड़ते हैं । पशुता की ओर, पतन की ओर, भोग और स्वार्थ की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, इस प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करके धर्म की ओर, संयम की ओर, कल्याण की ओर अग्रसर होने के लिए जो विशेष अवरोध करना पड़ता है उसका नाम है—द्विजत्व का वृत्त, यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु दीक्षा ।

पहला स्थूल जन्म माता-पिता के रज-वीर्य से होता है। दूसरा सूक्ष्म जन्म माता गायत्री और पिता गुरु के संयोग से होता है । रोगी अपना इलाज आप नहीं कर सकता, अपने दोषों को समझना, अपनी मानसिक स्थिति को तोलना और आत्म निर्माण का कार्यक्रम बनाना इस महान योजना को बिना अनुभवी पथ-प्रदर्शक के पूरा नहीं किया जा सकता । जैसे-सभी बीमारों को एक दवा नहीं दी जाती उनकी अनेक सूक्ष्म परिस्थितियों को समझ कर

अनुभवी वैद्य पृथक्-पृथक प्रकार की औषधियों और अनुपानों का विधान करता है ऐसे ही हर व्यक्ति की भिन्न मनोभूमि के अनुरूप ही आत्मोन्नति की योजना बनाई जाती है । यह कार्य दिव्यदर्शी, सूक्ष्म बुद्धि, स्वार्थ रहित, सदाचारी, ज्ञान वृद्ध महापुरुष ही कर सकते हैं । ऐसे ही लोगों को गुरु कहा जाता है । बगीचे का व्यवस्थित विकास करने के लिए ऐसे माली का संरक्षण आवश्यक है जो ठीक समय पर बोना, जोतना, सींचना एवं काट-छांट करना जानता है । इस प्रकार की नियुक्ति हो जाने पर द्विजत्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग पूरा हो जाता है ।

गायत्री के चौबीस अक्षर जीवन की गतिविधि का निर्णय करने में कसौटी का काम देते हैं । प्रत्येक अक्षर एक-एक स्वर्ण शिक्षा का प्रतीक है । 'ॐ' की शिक्षा है कि—सर्वत्र परमात्मा को व्यापक समझ कर कहीं भी गुप्त या प्रकट रूप से बुराई न करो । 'भूः' की शिक्षा है कि—अपने अन्दर सम्पूर्ण उत्थान पतन के हेतुओं को ढूंढ़ो । 'भुवः' का अर्थ है—कर्त्तव्य कर्म में तत्परता से प्रवृत्त रहो और फल के लालच में अधिक न उलझो । 'स्वः' का सन्देश है कि—स्थिर रहो, हर्ष शोक में उद्विग्न न बनो । 'तत्' का तात्पर्य है कि—इस शरीर के क्षणिक सुखों को ही सब कुछ मत समझो, जन्म जन्मान्तरों के स्थाई सुखों का महत्त्व समझो । 'सवितुः' का भावार्थ है—अपने को विद्या, बुद्धि, स्वास्थ्य, धन, यश, मैत्री, साहस आदि शक्तियों से अधिकाधिक सुसम्पन्न करना । 'वरेण्यं' का सन्देश है कि इस दुरंगी दुनिया में से केवल श्रेष्ठता का ही स्पर्श करो । 'भर्गो' का अर्थ है—शरीर, मन, मकान, वस्त्र तथा व्यवहार को स्वच्छ रखना । 'देवस्य' का अर्थ है—उदारता, दूरदर्शिता । 'धीमहि' अर्थात्—सद्‌गुण, उत्तम स्वभाव, दैवी सम्पदाएँ, उच्च विचार । 'धियो' का तात्पर्य है—किसी व्यक्ति, ग्रन्थ या सम्प्रदाय का अन्धानुयायी न होकर विवेक के आधार पर केवल उचित को ही स्वीकार करना । 'योनः' की शिक्षा है—संयम, तप, ज्ञान, सहिष्णुता, तितीक्षा, कठोर श्रम, मितव्ययता, शक्तियों का संचय और सदुपयोग । 'प्रचोदयात्' अर्थात् प्रेरणा देना, गिरे हुओं को ऊंचा उठाना, उत्साहित करना, प्रफुल्लित, सन्तुष्ट एवं सेवा परायण रहना ।

सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में अनेक शिक्षाएँ अपने-अपने ढंग से दी गई हैं उन सब का सार भाग उपर्युक्त पंक्तियों में आ गया है । उतनी बातें भली प्रकार हृदयंगम कर ली जायें तो समझ लीजिये कि चारों वेदों के पण्डित हो गये । गायत्री के २४ अक्षरों में दिव्य जीवन की समस्त योजना, नीति, विचारधारा, कार्य प्रणाली सन्निहित है, इस पर चलने में व्यवहारिक सहयोग देना, पथ-प्रदर्शन करना, गुरु का काम है । इस प्रकार गायत्री माता और गुरु पिता द्वारा हमारे आदर्शवादी जीवन का जन्म होता है । यही द्विजत्व है ।

यज्ञोपवीत में तीन लड़ें होती हैं । प्रत्येक लड़ में तीन-तीन धागे होते हैं । जैसे देवताओं की मूर्ति पाषाण या धातुओं की होती है वैसे ही हर घड़ी छाती से लगाये रहने योग्य गायत्री की मूर्ति यज्ञोपवीत रूपी बनाई गई है । गायत्री में तीन पद और नौ शब्द हैं । यज्ञोपवीत में तीन लड़ें और नौ सूत्र हैं । तीन व्याहृतियों की प्रतीक तीन ग्रंथियां हैं । ॐकार ब्रह्म ग्रन्थ है । यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है—"गायत्री से सन्निहित शिक्षाओं को जीवन व्यवहार में क्रियात्मक रूप से चरितार्थ करने का उत्तरदायित्व कन्धे पर उठाना ।" इस जिम्मेदारी को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा लेना ही यज्ञोपवीत संस्कार या द्विजत्व में प्रवेश कहलाता है ।

यज्ञोपवीत धारण का अर्थ उसी दिन इन सब गुणों से परिपूर्ण हो जाना एवं पुराने कुसंस्कारों से तत्क्षण मुक्त हो जाना नहीं है । यह पूर्ण सिद्धावस्था तो अन्तिम लक्ष्य है । "हम सच्चे हृदय से गायत्री में निर्धारित जीवन नीति की उत्तमता को स्वीकार करेंगे ।" इस प्रतिज्ञा के साथ द्विजत्व का आरम्भ होता है । जन्म जन्मान्तरों के कुसंस्कार एक दिन में नहीं छूट जाते वरन् उन्हें हटाने के लिए काफी लम्बा धर्मयुद्ध करना पड़ता है । कई बार हम कुसंस्कारों पर विजय पाते हैं, कई बार कुसंस्कारों की जीत होती है । यह लड़ाई निरन्तर जारी रहनी चाहिए । पाप एवं पतन के सामने कभी भी आत्मसमर्पण न करना चाहिए । उसके प्रति घृणा और प्रतिरोध का भाव सदा जारी रहे । कोई बुराई अपने में हो और छूट न पा रही हो तो भी उसे अपनी कमजोरी या भूल समझकर पश्चाताप ही करें और उससे छुटकारा पाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न जारी रखें । बुराई को भलाई के रूप में स्वीकार करना, उसका समर्थन करना, उसका विरोध छोड़ देना, उसमें रस लेना यह शूद्रत्व का चिह्न है । हम पाप के प्रतिरोध में अपनी अन्तःचेतना को समक्ष रखें तो हम द्विजत्व की प्रतिज्ञा पर दृढ़ कहे जा सकते हैं । चाहे पूर्ण शुद्ध होने में, पूर्ण सफलता मिलने में, पूर्ण विजय प्राप्त होने में, कितनी ही देर क्यों न लग जाय ।

पशुत्व का विरोध और मनुष्यता का समर्थन करने की प्रतिज्ञा लेना, द्विजत्व का व्रत स्वीकार करना आत्मोन्नति का सर्वप्रथम एवं अत्यन्त आवश्यक धर्म कृत्य है । इसे करने के उपरान्त आदर्शवाद के अनुयायियों में अपनी गणना करा लेने के पश्चात् ही हमें वह अधिकार मिलता है कि गायत्री साधना द्वारा दैवी शक्तियों को प्राप्त करें । अनधिकारी व्यक्ति किसी प्रकार उसे प्राप्त भी कर लें तो उसका दुरुपयोग हीं करेंगे इसलिए शास्त्रकारों ने प्रतिज्ञा हीन, व्रत हीन, यज्ञोपवीत हीन व्यक्तियों को शूद्र संज्ञा देकर गायत्री का अनधिकारी ठहरा दिया है । यह प्रतिबन्ध सर्वथा उचित एवं दूरदर्शितापूर्ण ही है ।

जन्म से हर मनुष्य शूद्र होता है । कर्म से, संस्कार से वह द्विज बनता है । हम में से हर एक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि अपनी जन्मजात शूद्रता का परित्याग करके सन्मार्ग गमन रूपी द्विजत्व की प्रतिज्ञा लें । इस प्रतिज्ञा के साथ-साथ की हुई गायत्री साधना ही सफल हो सकती है ।

## गायत्री उपासना की अधिकार मीमांसा

सूर्य की धूप में, चन्द्रमा की चाँदनी में नील धवल आकाश के तले, शीतल मलय पवन में बैठने का अधिकार मनुष्य मात्र को है । पुण्य तोया भागीरथी गंगा में स्नान करने पर किसी को कोई प्रतिबन्ध नहीं है । स्वच्छ वायु में सांस लेने, जल पीने और अन्न खाने के अधिकार से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार सत्य बोलने , कर्त्तव्यों का पालन करने और उदारता बरतने, संयम से रहने के लिए किसी को टोका नहीं जाता वरन् प्रोत्साहित किया जाता है । ईश्वर स्मरण भी ऐसा ही पुण्य कार्य है, जिसके लिए न किसी को रोका जा सकता है और न ही प्रतिबन्धित किया जा सकता है । ऐसा कोई कारण नहीं है, जिसके आधार पर किसी को ईश्वर स्मरण से रोका जाय या प्रभु प्रार्थना का अनधिकारी ठहराया जाय । गायत्री परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ और सर्वजनीन उपासना है । वह सार्वभौम सार्वजनीन उपासना मन्त्र है जिसे बिना धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश, वंश, वेश और लिंग आदि का भेदभाव किए बिना अपनाया जा सकता है । मनुष्य मात्र इस उपासना का अवलम्बन ले सकता है और अपना सकता है । बिना कोई विधिविधान के, इस मन्त्र के द्वारा गायत्री की उपासना करता हो पर सद्बुद्धि के रूप में तो मनुष्य मात्र इसकी आराधना उपासना करता है । अस्तु, कहा जा सकता है कि गायत्री मनुष्य मात्र के लिए है । न केवल मनुष्य मात्र के लिए है, वरन् मनुष्य मात्र के लिए यह आवश्यक है ।

सद्बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा का मुख्य वरदान, वह उपलब्धि और सिद्धि है जो गायत्री उपासना से मिलती है। यह उपलब्धि जिसे जिस मात्रा में प्राप्त होगी वह उतना ही ऊंचा उठेगा । अधिकारी की दृष्टि से गायत्री उपासना के सम्बन्ध में विचार किया जाये तो आधार यह मानना चाहिए कि प्रत्येक सत्कार्य को सम्पन्न करने, सन्मार्ग अपनाने की दिशा में कदम बढ़ाने की छूट और सुविधा हर किसी को हो । प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता वहाँ अनुभव की जाती है, जहाँ कोई अवांछनीय गतिविधियाँ अपनाई जा रही हैं । अथवा उन कार्यों को करने से रोका जाता है जो सामर्थ्य और क्षमता से बाहर के हों । सामर्थ्य और क्षमता से अधिक कुछ करना वैसे भी कठिनाई उत्पन्न कर देता है । गायत्री उपासना में वैसी कोई बात नहीं है । न तो उसमें कुछ अनैतिक अवांछनीय है, जिसके कारण उसे करने के लिए प्रतिबन्ध लगाना पड़े और न ही यह दुस्साध्य है जिसे करने के लिए कोई जोखिम उठाना पड़ें । इस प्रकार गायत्री उपासना के अधिकारी या अनधिकारी का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

फिर भी जहाँ-तहाँ ऐसे प्रतिपादन मिलते हैं जिनमें द्विजत्व को, ब्राह्मणत्व को गायत्री के साथ जोड़ा गया है । इस प्रतिपादन का तात्पर्य इतना मात्र है कि जो साधक उत्कृष्टतावादी चिंतन और आदर्शवादी कर्तृत्व अपनाकर चलते हैं, उनको गायत्री उपासना के परिणामस्वरूप दिव्य उपलब्धियाँ शीघ्र और सफलतापूर्वक प्राप्त हो सकती हैं । द्विजत्व का अर्थ है दूसरा जन्म । दूसरा जन्म अर्थात् पशु प्रवृत्तियों से जकड़े हुए सामान्य जीवन क्रम से ऊँचा उठकर मानवीय आदर्शों को अपनाना । मनुष्य जीवन के रूप में परमात्मा का जो दिव्य वरदान प्राप्त हुआ है, इस विशेष अनुग्रह के साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को तत्परता से निभाना । नर-पशु की रीति-नीति छोड़कर, दैवी प्रवृत्तियों को अपनाया जाना । इसके लिए व्रत लेना पड़ता है और कृतसंकल्प होना पड़ता है कि वासना तृष्णा की क्षुद्रता में कृमि कीटाणुओं की तरह निरत नहीं रहा जायेगा, वरन् मानवी उत्कृष्टता को जीवन क्रम से ओत-प्रोत करते हुए उच्चस्तरीय सिद्धान्तों को अपनाकर चला जायेगा । इस प्रकार का व्रतशील जीवन ही द्विजत्व

है । पशु प्रवृत्तियों का त्याग और देव परम्पराओं को धारण करने का व्रत लेना भारतीय परम्परा में एक अत्यन्त आवश्यक एवं पवित्र कार्य है । यह व्रत यज्ञोपवीत संस्कार है ।

इस व्रत धारण का स्मरण कराने वाला प्रतीक है यज्ञोपवीत । यज्ञोपवीत इस बात की शपथ सौगन्ध का स्मरण कराता और प्रेरणा देता है कि पशु प्रवृत्तियों को त्यागने तथा दिव्य गुणों, दैवी सत्प्रवृत्तियों को अपनाने का व्रत लिया गया है । ऐसे व्रत धारियों को ही द्विज की संज्ञा दी गई है । द्विज के लिए आदर्शवादी रीति-नीति बनाना और लोकोपयोगी कार्यों में निरत रहने की योजना बना कर चलना आवश्यक होता है । ऐसे कार्यों में तीन प्रमुख हैं, १. अज्ञान का निवारण, २. अनीति का उन्मूलन और ३. अभावों का समापन । रुचि, योग्यता एवं परिस्थिति के अनुसार इन तीनों में से कोई भी लक्ष्य चुना जा सकता है ।

उल्लेखनीय है कि संसार में जितने भी कष्ट हैं, जितनी भी कठिनाइयाँ हैं इन सबका मूल कारण ये तीन हैं। इन्हें जितना निरस्त किया जा सकेगा उतनी ही सुख शान्ति और सुव्यवस्था स्थिर रहेगी तथा प्रगति की सम्भावना बढ़ेगी । अज्ञान का निवारण करने वाले वर्ग को प्राचीनकाल में ब्राह्मण कहा जाता था । जो वर्ग अनीति का उन्मूलन करने के लिए संघर्ष करता, जूझता था वह क्षत्रिय कहलाता था और अभावों को दूर करने तथा समृद्धि सुविधाओं का सम्वर्धन करने वाले वर्ग को वैश्य कहा जाता था । यह शब्द जाति और वर्गगत अर्थों में तो बाद में रूढ़ हुए, अन्यथा इनका प्रचालन तो इस स्तर की आदर्शवादी आकांक्षाओं के ही प्रतीक स्वरूप हुआ था । जिनमें इस प्रकार की आदर्शवादी आकांक्षा नहीं है, जो अपनेपन की आपाधापी तक ही सीमित है, जिनकी उत्कृष्टता अपनाने में कोई रुचि नहीं, जो पेट प्रजनन से आगे की बात नहीं सोचते, शिश्नोदर परायण जीवन तक ही अपने को सीमित रखते हैं वे हेय और शूद्र हैं । शास्त्रकारों ने उन्हें ही शूद्र कहा है । यह भावनात्मक वर्गीकरण है । इसमें जाति वर्ग का कोई प्रश्न नहीं उठता ।

इस आप्तवाक्य से बात और स्पष्ट हो जाती है, जिसमें कहा गया है, 'जन्मना जायते शूद्रो कर्मणा द्विजोच्यते' अर्थात् जन्म से तो सभी शूद्र हैं, कर्म से ही कोई व्यक्ति द्विज कहलाता है । इस विभाजन को विशुद्ध रूप से आचार प्रक्रिया या आदर्श पद्धति कहा जा सकता है । तथ्य को और स्पष्ट करना हो तो यों कहा जा सकता है कि संकीर्ण स्वार्थपरता की क्षुद्र पशु प्रवृत्तियों में संलग्न व्यक्ति शूद्र है और उत्कृष्ट चिंतन तथा आदर्श कर्तृत्व अपनाने वाले लोग द्विज हैं । इन वर्गों का कोई स्थायित्व नहीं है । कोई जड़ता नहीं है कि परिष्कार न हो सके । व्यवस्था बहुत सरल है, क्योंकि आज का स्वार्थी व्यक्ति कल आदर्शवादी बन सकता है और आज का श्रेष्ठ व्यक्ति कल का निकृष्ट भी बन सकता है । इस प्रकार शूद्र द्विज होते रहते हैं और द्विजों में से अगणित अपवित्र होकर शूद्र वर्ग में चले जाते हैं । यह वर्ण भेद ही प्राचीन काल से वर्ण भेद कहा गया है । जन्म जाति के आधार पर किसी को शूद्र या द्विज मानना निरर्थक है । सदाचारियों के बच्चे अनिवार्य रूप से सदाचारी ही हों और दुराचारियों के बच्चे अनिवार्य रूप से दुराचारी ही होते हों, ऐसा कहाँ होता है ? इसलिए अमुक वंश में जन्मे लोग शूद्र ही होते रहेंगे और अमुक परिवार की पीढ़ियाँ द्विज ही होती रहेंगी, यह कहना तथा मानना नितान्त दुराग्रहपूर्ण है ।

आदर्शवादी और उत्कृष्टतावादी चिंतन के साथ जब गायत्री उपासना की जाती है तो उसे सोने में सुगन्ध मिलने की तरह सराहा गया है । इस सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण साफ रखना चाहिए कि उपासना का जितना महत्त्व है उतना ही, बल्कि उससे भी कहीं अधिक महत्त्व साधना का है । साधना और कुछ नहीं चिन्तन में उत्कृष्टता और कर्तृत्व में आदर्शवादिता का समावेश ही है । ईश्वर उपासना गाड़ी का एक पहिया है तो आदर्शवादिता अपनाने वाली जीवन साधना दूसरा पहिया । इन दोनों के सम्मिलन से ही सर्वतोन्मुखी प्रगति का रथ अग्रसर होता है । उपासना और साधना के समन्वय का महत्त्व जहाँ समझा जाता हो और इसे अपनाया जाता हो इस समन्वय को ही गायत्री और द्विजत्व की संज्ञा दी गई है । इस तथ्य को भली-भाँति समझा जाना चाहिए और स्वीकार किया जाना चाहिए कि गायत्री उपासना किसी वंश या जाति को देखकर फलित नहीं होती । यदि किसी का वंश या उसकी जाति देखकर उसे द्विज ठहराया जायेगा और इस आधार पर किसी को अधिकारी अनधिकारी ठहराया जायेगा तो अनर्थ ही पैदा होगा ।

दुर्भाग्य से पिछले दिनों ऐसा ही भ्रान्त और त्रुटिपूर्ण प्रतिपादन किया जाता रहा कि अमुक जाति वंश के लोग

इस पवित्र उपासना के अधिकारी हैं और अमुक जाति वंश के अनधिकारी । वास्तविकता इससे भिन्न ही रही है । तत्वदर्शी, मनीषी, ऋषि इतने संकीर्ण नहीं हो सकते हैं कि वे अमुक जाति वंश के लोगों को आत्मिक प्रगति के साधन अपनाने का अधिकारी ठहराएँ और अन्यों को इस अधिकार से वंचित कर दें । ऐसा पक्षपात तो बहुत ही ओछे स्तर के, संकीर्ण बुद्धि, पक्षपाती और विद्वेषी लोग ही कर सकते हैं । भारतीय धर्म शास्त्रों और उनके प्रस्तुतकर्ता ऋषियों पर कितने ही आक्षेप लगने लगेंगे तो यह महान् भारतीय संस्कृति का उपहास ही होगा, जिसके कारण समस्त विश्व ने इस देशवासियों को देव मानवों का देश माना था और जगद्गुरु कह कर यहाँ के मनीषियों के प्रति श्रद्धा और आदर से शीश नवाया था । इसमें कोई सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है कि गायत्री उपासना का अधिकार हर किसी को है । मनुष्य मात्र उसे बिना किसी भेदभाव के कर सकता है । उसकी सफलता के लिए शर्त इतनी भर जोड़ी गई है कि उसे करने के साथ-साथ आदर्शवादी उत्कृष्ट चिन्तन और क्रियाकलाप भी अपनाए जायें । इस सामान्य बुद्धि संगत तथ्य के समर्थन में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है फिर भी यदि शास्त्रों के प्रमाण ही ढूँढ़ने हों तो बहुत से प्रमाण मिल सकते हैं । उदाहरण के लिए गुह्य सूत्र में कहा गया है—

**सर्वेषां वा गायत्री मनु ब्रूयात् ।**

*पारस्कर—गृहसूत्र २ ।३ ।१०*

गायत्री का उपदेश सब करें ।

**चतुर्गानामपि वर्णानाम् आश्रमस्य विशेषतः ।**
**करोति सतत शांति सावित्री उत्तमा पठत् ॥**

*—महाभारत*

'चारों वर्ण और चारों आश्रमों में रहने वाले कोई भी साधक जो इस उत्तम गायत्री मन्त्र का जप करते हैं वे परम शान्ति को प्राप्त करते हैं ।'

**यथा कथं च जप्तैषा त्रिपदा परम पावनी ।**
**सर्व काम प्रदा प्रोक्ता विधिनां किं पुनर्नृप ॥**

*—विष्णु धर्मेत्तर*

हे राजन ! जैसे बने वैसे ही जप करने पर भी गायत्री परम पावनी और कल्याण करने वाली है । फिर विधि पूर्वक उपासना करने वालों के लिए तो कहना ही क्या ?

अग्नि देव ने कहा है—

**एवं सन्ध्या विधि कृत्वा गायत्रीं च जपेत स्मरेत् ।**
**गायेचिष्वान यत् स्त्रीये दभार्यां प्राणस्त यैव च ॥**

अर्थात् सन्ध्या विधि परिपूर्ण करने के पश्चात् गायत्री का जप और स्मरण करना चाहिए । जापमान होने से अर्थात् उसकी उपासना जप और ध्यान करने से वह गुरु शिष्य स्त्री और प्राणी सबका उद्धार करती है ।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि ब्राह्मण शब्द मात्र कर्मकाण्ड परायण व्यक्ति के लिए ही प्रयुक्त नहीं होता वरन् इस शब्द का वास्तविक आशय ब्रह्म परायण जीवन जीने वाले से है, जो आत्मशोधन और परमार्थ प्रयोजन में निरत रहकर ब्रह्मतेज की अभिवृद्धि करता है उसी को ब्राह्मणत्व का पद मिलता है और पूजनीय भी उसे ही माना जाता है । कहा भी गया है—

**शास्त्राण्याधीत्यापि भवन्ति मूर्खा ।**
**यस्तु क्रियावान्पुरुष स विद्वान् ॥**
**सुचिंतित चौषधमातुराणाँ**
**न नाम मात्रेण करौत्यरोगम्**

*—अग्नि संहिता १ ।७१*

शास्त्र पढ़ कर भी मूर्ख होते हैं परन्तु जो कर्म में चतुर हैं वही चतुर और पण्डित हैं, जिस प्रकार भली भाँति निर्णय की हुई औषधि भी रोगियों को केवल नाम मात्र से अच्छा नहीं करती इसी प्रकार बिना आचरण के ज्ञान भी कोई फल प्रदान नहीं करता ।

प्रत्येक वह व्यक्ति जिसे आत्मिक प्रगति की उत्कंठा है, आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने की ललक है, वह निस्संकोच गायत्री उपासना में प्रवृत्त हो सकता है और इस साधना का लाभ उसी अनुपात से उठा सकता है जितना कि वह परिष्कार और परमार्थ परायणता की रीति-नीति निष्ठापूर्वक अपनाता है ।

## गायत्री का अधिकार और अनधिकार

शास्त्रों में कहा गया है, कि गायत्री ब्राह्मण की कामधेनु गौ है । ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व गायत्री के ऊपर निर्भर है । जो ब्राह्मण गायत्री को त्याग देता है वह ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है । ऐसे नामधारी ब्राह्मणों की शास्त्रकारों ने कटु शब्दों में भर्त्सना की है और चाण्डाल बताकर ब्रह्मकर्मों से बहिष्कृत करने की घोषणा की है ।

ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए गायत्री उपासना आवश्यक है । इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि

गायत्री उपासना करने वाला ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है। सावित्री और सत्यवान की कथा में इस रहस्य को भली प्रकार स्पष्ट किया गया है । सत्यवान की आयु केवल एक वर्ष शेष थी, फिर भी सावित्री ने उसे वरण कर लिया । जब सावित्री ने सत्यवान का वरण कर लिया तो अल्पायु होते हुए भी उसे दीर्घ जीवन प्राप्त हुआ । यम, सत्यवान के प्राण को नियत समय पर हरण करने के लिए आए पर सावित्री के प्रचण्ड प्रताप के आगे उनकी एक न चली और उन्हें सत्यवान का प्राण वापस करना पड़ा ।

सावित्री गायत्री का ही दूसरा नाम है । वह सत्यवान को ही वरण करती है । झूँठे, चोर, लम्पट, छली उसे कभी प्रिय नहीं हो सकते । वे चाहे जितना जप तप करें सावित्री उनसे रुष्ट ही रहती है । उसे तो सत्यवान-सत्य पर आरूढ़ व्यक्ति ही प्रिय है । उसे ही गायत्री वरण करती है। गायत्री कहते हैं प्राण की रक्षा करने वाली को । गय-प्राण, त्री-रक्षिका, प्राणों की रक्षिका गायत्री है । जिसे सावित्री वरण कर ले ऐसा सत्यवान साधक अजर अमर हो जाता है। यम उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते ।

गायत्री उपासक यदि सत्यवान है तो ही वह साधना का पूरा लाभ उठा सकेगा । उसी तथ्य को ब्राह्मण की कामधेनु गौ कह कर प्रकट किया गया है । जो सदाचारी है, संयमी है, परोपकारी है, निर्लोभ और निस्वार्थ है ऐसा ब्रह्म परायण व्यक्ति गायत्री उपासना के उन लाभों को प्राप्त कर सकता है जो अनेक शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जो जन्म से ब्राह्मण कुल में पैदा हुए हैं वे ही गायत्री जप करें, अन्य वर्ण के लोग गायत्री उपासना न करें । यह महामन्त्र तो मानव मात्र का उपासना मन्त्र है । इसे चाण्डाल अन्त्यज नहीं जपते । उनकी प्रवृत्ति ही इस ओर नहीं होती है । आसुरी भावनाओं में उनका मन ऐसा तमसाछन्न होता है कि उपासना की बात भी उन्हें बुरी लगती है, उसका उपहास करते हैं, अविश्वास ग्रस्त होने के कारण उन्हें इसके लिए न तो अभिरुचि होती है और न अवकाश ही मिलता है । ऐसे लोग जिन्होंने उपासना और आस्तिकता का बहिष्कार कर रखा है अन्त्यज या चाण्डाल कहे जाते हैं । उनका अधिकार गायत्री में नहीं है । यह अधिकार कोई बाहर का आदमी देता या रोकता नहीं है वरन् उसकी अन्तःवृत्ति ही प्रतिबन्ध लगा देती है । आज भी ऐसे अनेकों व्यक्ति हैं जो उपासना की कितनी ही उपयोगिता बताने पर भी उस ओर आकर्षित नहीं होते । ऐसे लोगों को अनधिकारी ही कहा जायेगा ।

## अधिकारी को सफलता मिलती है

ऐसे अनधिकारी लोगों से उस महान तत्वज्ञान का वर्णन करना भी व्यर्थ है । अशुद्ध मनोभूमि के कारण वे इससे कुछ लाभ तो उठाते नहीं, उलटे उपहास करते हैं और बताने वाले का समय नष्ट करते हैं । इसलिए शास्त्रों में ऐसी आज्ञा भी है कि ऐसे दुष्ट बुद्धि, अनधिकारी लोगों को धर्मोपदेश न दिया जाय ।

**इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।**
**न चाशुश्रूषसे वाच्यं न चा मां योऽभ्य सूयति ॥**

*गीता १८*

जो तप विहीन है, भक्त नहीं, जिन्हें सुनने की जिज्ञासा नहीं, जो गुरु सेवा परायण नहीं, जो उपेक्षा करते हों उनसे इस ज्ञान को न कहना ।

ईसाई धर्म के "मत्ती सुसमाचार" में कहा गया है—

"मनुष्यो, तुम्हें ईश्वरीय रहस्यों को जानने की आज्ञा दी जाती है । पर उन्हें नहीं जो इसके अधिकारी नहीं हैं ।"

इसका तात्पर्य यही है कि ऐसे अनुपयुक्त लोगों से जिनकी समझ में यह विषय न आवे, उस चर्चा का करना व्यर्थ है ।

जिन्हें धार्मिकता, आस्तिकता एवं मानवता के आदर्शों में आस्था है—जो इस संसार में से अज्ञान, अशक्ति और अभाव को दूर करना चाहते हैं वे सभी द्विज हैं । यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी द्विज कहलाते हैं । उन्हें गायत्री का स्वभावतः अधिकार है ।

**बहुना किमिहोक्तेन यथावत् साधु साधिता ।**
**द्विजन्मानामियं विद्या सिद्धिः कामदुधास्मृता ॥**

*—शारदा तिलक*

अधिक कहने से क्या लाभ ? अच्छी प्रकार उपासना की गई गायत्री द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली है ।

**सोमादित्यान्वयः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा ।**
**पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्री परमां गतिम् ॥**

*महा. अनु. १५ /७८*

हे युधिष्ठिर सम्पूर्ण चन्द्रवंशी, रघुवंशी तथा कुरुवंशी नित्य ही पवित्र होकर परम गति दायक 'गायत्री मन्त्र' का जप करते हैं ।

**कुर्यादन्यन्नवा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा ।**
**गायत्री मात्र निष्ठस्तु कृत्य कृत्यो भवेद्विजः ॥**

*गायत्री तन्त्र*

अन्य अनुष्ठान करें या न करें, गायत्री मन्त्र की उपासना करने वाला द्विज (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) कृतकृत्य हो जाता है ।

**उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठेत योद्विजः ।**
**काले त्रिकालं सप्ताहात् स पतन्नात्र संशयः ॥**

*—वृ. संध्या भाष्य*

गायत्री मन्त्र को जान कर जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) उसकी उपासना नहीं करता उसका निश्चय ही पतन हो जाता है ।

भगवान राम और लक्ष्मण क्षत्रिय कुल में उत्पन्न थे । वे द्विजों का आवश्यक कृत्य गायत्री जप और हवन नित्य करते थे । देखिए—

**कृतोद कानुजप्यः स हुताग्नि समलंकृतः ।**

*महाभारत (उद्योग-९४-६)*

श्री कृष्ण जी ने स्नान करके जप और हवन पूर्ण किया ।

**तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।**
**स्नात्वा कृतादिकौ थीरौ जपेतुः परमं जपम् ॥**

*वाल्मीकि रामायण*

परम उदार ऋषि के वचन सुनकर राम, लक्ष्मण दोनों भाई स्नान आचमन करके गायत्री का परम जप करने लगे।

## गुण कर्म स्वभाव के आधार पर चातुर्वर्ण्य

चारों वर्ण गुण कर्म स्वभाव के आधार पर निर्भर हैं । केवल जन्म या कुल ही वर्ण व्यवस्था का आधार नहीं है । महाभारत शान्ति पर्व में इस समस्या पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है ।

भारद्वाज उवाच—

**चातुर्वर्णस्य वर्णेनि यदि वर्णो विभिद्यते ।**
**सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसंकरः ॥१६**
**कामक्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधाश्रमः ।**
**सर्वेषां न प्रभवति कस्माद्वर्णो विभिद्यते ॥ ३**
**स्वेद मूत्र पुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं स शोणितं ।**
**तनुः क्षति सर्वेषां कस्मात् वर्णो विभिद्यते ॥ ८**

भृगु उवाच—

**न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्व ब्राह्ममिदं जगत् ।**
**ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥१०**
**काम भोगप्रियास्ती क्ष्णाः क्रोधनाः प्रिय साहसाः ।**
**व्यक्त स्वधर्मा रक्तांगास्ते द्विजा क्षत्रतां गताः ॥११**
**गोभ्यो वृत्रिं समास्याय पीता कृष्युप जीविनः ।**
**स्वधर्मान्ननुतिष्ठिन्त ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ १२**
**हिंसानृत प्रिया लुब्ध्वाः सर्व कर्मोपजीवितः ।**
**कृष्णाः शौच परिभ्रष्टा स्ते द्विजा शूद्रतांगताः ॥१३**
**इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ताः द्विजा वर्णान्तरं गताः ।**
**धर्मोयज्ञक्रिया तेषां नित्यंच प्रतिपिष्यते ॥ १४**
**इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती ।**
**विहिता ब्रह्मणा पूर्व लोभादक्षानतां गता ॥ १५**

*—महाभारत शान्ति पर्व अ. १८८*

भारद्वाज ने पूछा—

—यदि रंग भेद से वर्णो का विभाजन किया जाय तो सभी रंग के लोग पाए जाते हैं ।

—यदि काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम आदि मानसिक स्थिति के आधार पर वर्ण विभाजन किया जाय तो यह बात भी सब वर्णो में मौजूद है ।

—मल, मूत्र, पसीना, कफ, पित्त, खून भी सब शरीरों में समान है फिर वर्ण भेद कैसे हो ?

इस पर भृगु ने उत्तर दिया—

—वर्णो की कोई विशेषता नहीं । इस समस्त संसार को ब्रह्माजी ने ब्राह्मण मय ही बनाया है । पश्चात् कर्मों के अनुसार वर्ण बने ।

—जो काम भोग में रुचि रखने वाले, तीखे स्वभाव, के, क्रोधी, दुस्साहसी प्रकृति, के लाल रंग के थे वे ब्राह्मण क्षत्रिय हो गये ।

—ब्रह्म कर्म जिन्होंने छोड़ दिये और कृषक, गोपालक बने, पीले रंग के थे वे वैश्य कहलाये ।

—जो हिंसा, झूठ, लोभ, सभी कामों से आजीविका कमाने वाले, गन्दे और काले रंग के थे वे शूद्र बन गये ।

—इस प्रकार इस कार्य भेद के कारण ब्राह्मण ही पृथक्-पृथक् वर्णो के हो गये । इसलिए धर्म कर्म और यज्ञ क्रिया उनके लिए विहित है—निषिद्ध नहीं ।

—इन चारों वर्णों का वेद विद्या तथा धर्म कार्यों में समान अधिकार है । ब्रह्माजी का यही पूर्ण विधान है । लोभ के कारण ही लोग अज्ञान को प्राप्त होकर इसका विरोध करते हैं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गोरे, भूरे, बादामी, काले रंगों के आधार पर भी वर्ण माने जाने लगे थे । पर यह निश्चित नहीं कि गोरे रंग के पिता का गोरा पुत्र ही होगा । भारतवर्ष की जलवायु में एक ही वंश में रंग भेद प्रायः होता रहता है । ऐसी दशा में रंग बदलने के साथ-साथ वर्ण बदला जाय तो यह भी एक विकट समस्या उत्पन्न होती है ।

**ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः ।**
**वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणा मसितस्तथा ॥**

*महा. शान्ति १८८ /५*

ब्राह्मण का रंग श्वेत, क्षत्रिय का रंग लाल, वैश्य का रंग पीला, शूद्र का रंग काला ।

अत्रिस्मृति में भी गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ही वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन है ।

**संध्या स्नानं जपं होमं देवता नित्य पूजनम् ।**
**अतिथि वैश्वदेवं च देव ब्राह्मण उच्यते ॥ १ ॥**
**शाके पत्रे फले मूले वन वासे सदा रतः ।**
**निरतो अहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ २ ॥**
**वेदान्तं पठिते नित्यं सर्व संगं परित्यजेत् ।**
**सांख्य योग विचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥३॥**
**अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसन्मुखे ।**
**आरम्भे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ ४ ॥**
**कृषि कर्मरतो यश्च गवां च परिपालकः ।**
**वाणिज्य व्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥५॥**
**लाक्षालवण संमिश्रे कुसुंभं क्षीर सर्पिषः ।**
**विक्रेया मधुयांसाना स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ६ ॥**
**चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशक स्तथा ।**
**मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ७ ॥**
**ब्रह्म तत्वं न जानाति ब्रह्म सूत्रेण गर्वितः ।**
**तेनैव स च पापेन विप्रः पशु रुदाहतः ॥ ८ ॥**
**वापीकूप तडागानां आरामस्य, सरः सुच ।**
**निःशंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥९॥**
**क्रिया हीनश्च मूर्खश्च सर्व धर्म विवर्जितः ।**
**निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चांडाल उच्यते ॥१०॥**

*—अत्रिस्मृति*

—जो नित्य प्रति सन्ध्या, जप, होम, देव पूजन, अतिथि सेवा, वैश्वदेव आदि करता है उस ब्राह्मण को 'देव' कहते हैं ॥ १ ॥

—जो शाक, पत्र, कन्द, मूल, फल खाकर वनवास करता है, निरन्तर श्रद्धापूर्वक अपने कर्त्तव्य पालन में लगा रहता है, उस ब्राह्मण को 'मुनि' कहते हैं ॥ २ ॥

—जो सर्वप्रकार की आसक्ति छोड़कर वेदान्त ज्ञान में निरत है, सांख्य तथा योग की साधना करता है, उस ब्राह्मण को 'द्विज' कहते हैं ।

—जो ब्राह्मण अस्त्र-शस्त्र लेकर शत्रु से संग्राम करता है उसे 'क्षत्रिय' कहते हैं ।

—जो खेती करता है, गायें पालता है, वाणिज्य व्यवसाय करता है वह ब्राह्मण 'वैश्य' कहलाता है ।

—जो लाख, नमक, स्वर्ण, दूध, घी, शहद तथा माँस बेचता है उस ब्राह्मण को शूद्र कहते हैं ।

—जो चोरी, डकैती, लूट, हिंसा तथा मद्य माँस से प्रीति रखता है वह ब्राह्मण 'निषाद' कहलाता है ।

—जो ब्राह्मणत्व को तो जानता नहीं, केवल जनेऊ का घमण्ड करता है, उस ब्राह्मण को पशु कहते हैं । जो बावडी, कुआँ, तालाब, बाग, सरोवर आदि को रोकता या नष्ट करता है उस ब्राह्मण को म्लेच्छ कहते हैं ।

जो धर्म कर्म से हीन है, मूर्ख है, कर्त्तव्य रहित है, निर्दय है, सबको दुख देता है ऐसे ब्राह्मण को 'चाण्डाल' कहते हैं ।

## कर्म से वर्ण परिवर्तन

व्रज सूची उपनिषद में अनेकों ऐसे उदाहरण दिये गये हैं जिसमें अन्य वर्णों के घरों में जन्मे बालक अन्य वर्ण को प्राप्त हुए हैं ।

**—तर्हि जाति ब्राह्मण इति चेतन्ना । तन्न जात्यन्तर**
**जन्तुषु अनेक जाति संभवा महर्षयो वहवः सन्ति ।**
**ऋष्य श्रंग मृगयाः कौशिकः कुशात जम्बूको**
**जम्बूकात्, वाल्मीको वाल्मीकात्, व्यासः**
**कैवर्त कन्यायाम्, शश पृष्टात् गौतम, वशिष्ठ**
**उर्वस्याम्, अगस्तः कलशे जात इति श्रुतत्वात् ।**
**एतेषां जात्या विना अपि अमेज्ञान प्रतिपादिता**
**ऋष्यो वहवः सन्ति । रमान्नं जातिर्ब्राह्मण इति ।**

*—ब्रज सूचिकोपनिषद्*

**अर्थ**—तो क्या जन्म जाति को ब्राह्मण मानें ? नहीं यदि ऐसा होता तो मनुष्यों की भाँति ही अन्य जीव-जन्तुओं में भी ऐसा ही जाति भेद होता । बहुत से ऋषियों का जन्म अन्य जातियों से भी हुआ है । मृगी से ऋष्य श्रृंग, कुश से कौशिक, जम्बुक से जाम्बुक, वाल्मीक से वाल्मीकि, कैवर्त कन्या से व्यास, शशपृष्ट से गौतम, उर्वशी से वशिष्ठ, कुंभ से अगस्त उत्पन्न हुए । हीन जाति से भी बहुत से ज्ञान सम्पन्न ऋषि हुए हैं, इसलिए जाति ब्राह्मण नहीं है ।

**पुत्रोगृत्समदस्यापि शुनको यस् शौनकाः ।**
**ब्राह्मणः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच ॥**

*हरिवंश पुराण १५ ।१९-२०*

अर्थात्—गृत्समद के पुत्र शुनक हुए । शुनक से शौनक नाम से विख्यात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र पुत्र उत्पन्न हुए ।

## प्राचीन काल में एक ही वर्ण था

वर्ण व्यवस्था का इतिहास बताते हुए भागवतकार ने कहा है कि प्राचीन काल में सभी मनुष्यों का एक ही वर्ण था । महाभारतकार का कथन है कि यह एक ही वर्ण पीछे गुण, कर्म, स्वभाव से चार प्रकार का बन गया ।

**एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।**
**देवो नारायणो न्यान्यः एको ऽग्निर्वर्णं एव च ॥**

*—श्रीमद्भागवत पु. स्कं. ९, १४*

सर्वप्रथम एक ही वेद एक ही सर्ववाङ्मय प्रणव, एक ही अद्वैत नारायण, एक ही अग्नि और एक ही वर्ण था ।

**एक वर्णामिदं पूर्वं विश्वमासीद युधिष्ठिर ।**
**कर्मक्रिया विभेदेन चातुर्वण्यं प्रतिष्ठितम् ।**
**सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्व मूत्र पुरीषजाः ।**
**एकेन्द्रियेन्द्रियार्थाश्च तरमाच्छील गुणैर्द्विजः ।**
**शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।**
**ब्राह्मणो ऽनि क्रिया हीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ।**

*महाभारत वन पर्व अ.१८०*

इस संसार में पहले एक ही वर्ण था । पीछे गुण और कर्म के भेद के कारण चार वर्ण बने । सब मनुष्य योनि से ही पैदा होते हैं, मल-मूत्र के स्थान से ही जन्मते हैं, सब में एक सी इन्द्रिय वासनाएँ हैं । इसलिए जन्म से जाति मानना ठीक नहीं । कर्म की प्रधानता से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य माने जाते हैं । यदि शूद्र उत्तम कर्म वाला हो तो उसे ब्राह्मण मानना चाहिए और जो कर्त्तव्यहीन ब्राह्मण है उसे शूद्र से भी नीचा मानो ।

गीता में भगवान् कृष्ण ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है—

**चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः ।**

*गीता ४ ।१३*

मैंने गुण कर्म के विभाग अनुसार ही चार वर्ण उत्पन्न किए हैं ।

वर्ण व्यवस्था सनातन नहीं है । इसे तो सामाजिक सुविधा की दृष्टि से शौनक ने प्रचलित किया—

**गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वण्य प्रवर्तयिताभूत ।**

*विष्णु पुराण अ. ४,८-१*

गृत्समद के पुत्र शौनक ने चातुर्वण्य व्यवस्था प्रवर्तित की ।

इसी प्रकार के और भी अनेक प्रमाण शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं ।

**सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ।**
**वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति ॥**
**ब्राह्मणो वा च्युतोधर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते ।**

*—महा. अनु. १४३*

सद् आचरण से सभी कोई ब्राह्मण हो सकते हैं । शूद्र भी यदि सच्चरित्र है तो वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है । ब्राह्मण यदि कर्त्तव्य च्युत है तो शूद्र हो जाता है ।

**न शूद्रा भगवद् भक्ता विप्रा भगवताः स्मृताः ।**

*—भारत*

भगवान् के भक्तों को शूद्र नहीं कहा जा सकता उन्हें तो ब्राह्मण ही कहना चाहिए ।

**चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका । एवं प्रजानां हिपितैक एवं पित्रेक भावान्न च जाति भेद ।**

*भविष्य पुराण ४१ ।४५*

जिस प्रकार एक ही पिता के चार पुत्रों की जाति एक ही होती है उसी प्रकार एक ही पिता की सन्तान यह चारों वर्ण भी एक ही जाति के हैं ।

## ब्राह्मण गायत्री का विशेष अधिकारी

ब्राह्मण को गायत्री का विशेष अधिकारी माना गया है । इसका तात्पर्य जाति विशेष में उत्पन्न हुए किन्हीं

व्यक्तियों को ही गायत्री को सीमित कर देना नहीं है वरन् यह है कि जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा में श्रेष्ठ, सदाचार, परमार्थ एवं ब्रह्म परायणता को धारण किए हुए होंगे, वे गायत्री उपासना का अधिक लाभ उठा सकेंगे ।

ब्राह्मण की महिमा एवं महत्ता शास्त्रकारों ने पग-पग पर प्रतिपादित की है । उन्हें मनुष्यों में देवता बताया है । इन ब्रह्म गुण सम्पन्न ब्राह्मणों की कीर्ति एवं स्तुति से धर्म ग्रन्थों का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है । भगवान राम स्वयं श्री मुख से अपनी विशेषताओं का कारण ब्राह्मण की कृपा को ही बताते हैं—

**विप्र प्रसादात् कमलावरोऽहं,**
**विप्र प्रसादात् धरणी धरोऽहम ।**
**विप्र प्रसादात् जगती पतिश्च,**
**विप्र प्रसादात् मम राम नाम ॥**

अर्थात्—ब्राह्मण के प्रसाद से ही मैं लक्ष्मीपति हूँ, उनकी कृपा से मैं पृथ्वी को धारण किए हूँ, उन्हीं के अनुग्रह से मैं जगती पति कहलाता हूँ और ब्राह्मणों के प्रसाद से ही मेरा नाम राम है ।

ब्राह्मणत्व एक अत्यन्त उच्च सामाजिक सम्मान का पद है । जो इस पद के उपयुक्त सिद्ध होकर सच्चे ब्राह्मण होते हैं उनको लोक और वेद दोनों ही ओर से ही प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । ब्राह्मणत्व के गौरव का वर्णन करते हुए शास्त्र ने कहा है—

**पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सागरे ।**
**सागरे यानि तीर्थानि पदे विप्रस्य दक्षिणे ।**

अर्थात्—पृथ्वी तल और समुद्र गर्भ में जितने भी तीर्थ हैं वे सब ब्राह्मण के दाहिने चरण में निवास करते हैं ।

**विप्रौघ दर्शनात्क्षिप्रं क्षीयन्ते पाप राशयः ।**
**वंदनान्मंगलावाप्तिरर्चनादच्युतं पदम् ।**

अर्थात्—ब्राह्मण के दर्शन से पाप दूर होते हैं । वन्दन करने से कल्याण होता है और अर्चन से ईश्वर की प्राप्ति होती है ।

**ब्राह्मणा जंगमे तीर्थ निर्मलं सार्वकामिकम् ।**
**येषा वाक्योदकं नैव शुध्यान्ति मलिना जनाः ॥**

अर्थात्—ब्राह्मण निर्मल चलते-फिरते तीर्थ हैं । उनके वचनों से मलीन जनों के मन भी शुद्ध हो जाते हैं ।

**उत्पत्ति रेव विप्रस्य मूर्ति धर्मस्य शाश्वती ।**
**सहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥**

अर्थात्—ब्राह्मण धर्म मूर्ति के रूप में इस पृथ्वी पर उत्पन्न होता है । उससे धर्म एवं ब्रह्मतत्व का अभिवर्धन होता है ।

**भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धि जीविनः ।**
**बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणः स्मृताः ।**

अर्थात्—सृष्टि में प्राणी श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुद्धिमान प्राणी श्रेष्ठ है, बुद्धिमानों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है ।

## ब्राह्मण की श्रेष्ठता का आधार

ब्राह्मण की इस श्रेष्ठता का कारण उसका उच्च चरित्र, संयम, सेवा भाव, त्याग तथा तप है । ब्राह्मण के इन कर्त्तव्यों का सर्वत्र वर्णन है । इसके अतिरिक्त उसका महान कर्त्तव्य उपासना भी है । उपासना से ही वह आत्मबल प्राप्त होता है जिसके द्वारा देवताओं को आकर्षित करना तथा आत्मकल्याण का आयोजन कर सकना सम्भव हो सकता है । इसी आध्यात्मिक दिव्य शक्ति से सम्पन्न होने के कारण ब्राह्मण देवता कहलाता है । कहा भी है—

**देवाधीनं जगत्सर्व मंत्राधीनाश्च देवताः ।**
**ते मंत्रा ब्राह्मणाधीना ब्राह्मणो मम देवतम् ।**

अर्थात्—देवताओं के आधीन सब संसार है, वे देवता मन्त्रों के अधीन हैं । वे मन्त्र ब्राह्मणों के अधीन हैं । इसलिए ब्राह्मण ही देवता हैं ।

**वैशेष्यात् प्रकृति श्रेष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।**
**संस्कारस्य विशेषाच्चा वर्णानां ब्राह्मणाः प्रभुः ।**

अच्छी प्रकृति धारण करने की, नियमों के पालन की, श्रेष्ठ संस्कारों की विशेषता होने के कारण ब्राह्मण चारों वर्णों में श्रेष्ठ कहलाता है ।

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादम जन्मनः ।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेयन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ।**

*मनु. २, २०*

इस देश के निवासी ब्राह्मण के आदर्श आचरणों का अनुगमन करके पृथ्वी के सब मनुष्य अपने चरित्र को उत्तम बनावें ।

ऐसे ब्राह्मण स्वभावतः तेजस्वी और निर्भीक होते हैं । वे राजा, प्रजा किसी की भी अनीति को सहन नहीं करते

जहाँ कहीं भी अनुचित होता है वहाँ डट कर उसका विरोध करते हैं, इसलिए शासक भी ऐसे ब्राह्मणों का अंकुश मानते हैं ।

**यत्क्रोध भीत्या राजापि स्वधर्म निरतो भवेत् ।**

*शुक्र नीति*

उनके विरोध भय से डर कर राजा भी अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहते हैं ।

सच्चे ब्राह्मण अपने चरित्र बल और सेवा बल से सारे समाज को अपने प्रभाव क्षेत्र में रखते हैं । उनकी इस आराधना से उनकी आत्मा ही नहीं सारी वसुधा धन्य हो जाती है ।

**तप्यन्ते लोक तापेन साधवः प्रायशो जनाः ।**
**परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ।**

*—श्री मद्‌भागवत्*

सज्जन पुरुष दूसरों को दुखी देख कर स्वयं दयार्द्र हो जाते हैं । इस संसार के समस्त प्राणियों की सेवा ही उनका परम आराधन होता है ।

ऐसे सेवा परायण ब्राह्मण संसार में थोड़े ही होते हैं—

**मनसि वचसि काये प्रेम पीयूष पूर्णा**
**स्त्रिभुवन गुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।**
**परगुणपरमाणान पर्वती कृत्य नित्यं**
**निज हृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।**

*—भर्तृहरि*

जो मन से, वचन से, काया से प्रेमामृत से भरे हैं, जिनकी वाणी प्रेम मधुर वचन ही बोलती है, जिनकी प्रत्येक चेष्टा से प्रेम ही टपकता है, अपने उपकारों से दूसरों को स्नान कराते रहते हैं, दूसरों के अणुमात्र गुणों को पर्वत समान मानते हैं और उससे अपने चित्त में मोद मनाते हैं ऐसे सन्त इस पृथ्वी पर कितने हैं ?

ऐसा ब्राह्मण बड़े से बड़े धन कुबेर से भी अपने को अधिक सम्पन्न मानता है । गायत्री उपासना से उसका ब्राह्म तेज निखर आता है और इस संसार का समस्त ऐश्वर्य जिस ब्रह्म शक्ति गायत्री का एक चरण मात्र है, वह जब उसे अपने अन्तःकरण में कामधेनु के समान प्रत्यक्ष विरामजान दिखाई पड़ती है तो उसे किसी वस्तु का अभाव अपने में दिखाई नहीं पड़ता ।

**याचे न कञ्चनं न कञ्चन वञ्चयामि**
**सेवे न कञ्चन निरस्तसमस्त दैन्यः ।**
**श्लक्ष्णं बसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीं**
**देवीं हृदि स्फुरति मे कुल कामधेनुः ।**

किसी से न मैं मांगता हूं, न किसी को ठगता हूँ, न किसी की दासता करता हूँ, तो भी दीनता मुझसे सदा दूर रहती है । क्योंकि सुन्दर वस्त्र भोजन, स्त्री आदि जिसके तुच्छ प्रसाद हैं वह मेरी कुल कामधेनु (गायत्री) मेरे हृदय में ही सदा निवास करती है ।

## ब्राह्मणत्व का अधःपतन

किन्तु आज तो स्थिति ही बड़ी शोचनीय हो रही है । ब्राह्मणों ने अपने ब्रह्म तेज का अवलम्बन छोड़कर लोभ, इन्द्रियपरायणता और हीन कोटि के आचरणों का आश्रय लिया है । फलस्वरूप उनकी वे विशेषताएँ नष्ट हो गईं और दीन-हीन भिक्षुकों की जो दशा होती है वही उनकी हो रही है ।

**जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।**
**मनो दग्धं परस्त्री भिः कथं सिद्धिर्वरानने ॥**
**वादार्थं पठ्यते विद्या परार्थं क्रियते जपः ।**
**ख्यात्यर्थं दीयते दानं कथं सिद्धिर्वरानने ॥**

अर्थात्—पराया अन्न खाने से जिह्वा की शक्ति नष्ट हो गई, दान दक्षिणा लेते रहने से हाथों की शक्ति चली गई, पर नारी की ओर मन डुलाने से मन नष्ट हो गया फिर हे पार्वती, (शंकर जी कहते हैं) इन ब्राह्मणें को सिद्धि कैसे प्राप्त हो ?

वाद-विवाद के लिए विद्या पढ़ी, दूसरों से दक्षिणा लेने के लिए जप किया, कीर्ति के लिए दान दिया । ऐसे लोगों को हे पार्वती सिद्धि कैसे मिल सकती है ?

**अनध्यापन शीलं च सदाचार विलंघनम् ।**
**सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं वाधते यमः ।**

स्वाध्याय न करने से, आलस्य से और कुधान्य खाने से ब्राह्मण का पतन हो जाता है ।

स्वयं साधना तपस्या करके अपना आत्मबल बढ़ाने की अपेक्षा आज जिह्वा लोलुप ब्राह्मण मधुर भोजनों के लोभ में धान्य कुधान्य का विचार न करके निमन्त्रणों के लोभ में फिरते रहते हैं । ऐसे निमन्त्रण भोजी ब्राह्मण यदि कुछ जप तप करते भी हैं तो उनका आधा पुण्य उस अन्न खिलाने वाले को ही चला जाता है । यदि अपने पुरुषार्थ

से आजीविका कमा कर साधना की जाय तो ही उसका समुचित लाभ ब्राह्मण को मिल सकता है ।

**यस्यान्ने तु पुष्टाङ्गो तपं होमं समाचरेत् ।**
**अन्न दातुः फलस्यार्धं चार्धं कर्तुर्न संशयः ।**

*—कुलार्णव*

यदि कोई साधक किसी दूसरे का अन्न खाकर जप, तप, होम आदि करता है तो आधा फल उस अन्नदान देने वाले को चला जाता है । शेष आधा फल ही उस साधक को मिलता है ।

आजकल कुपात्र साधु ब्राह्मण बहुत बढ़ रहे हैं, इस वृद्धि को रोका जाना आवश्यक है क्योंकि जिस देश में ब्राह्मणत्व का दम्भ करने वाले लोग बढ़ जाते हैं वह राष्ट्र पतित हो जाता है । वशिष्ठ स्मृति में लिखा है कि जिस ग्राम में अविद्वान, अनुचित रीति से भिक्षा प्राप्त करने वाले ब्राह्मण रहते हों, राजा को चाहिए कि उन कर्त्तव्यहीन ब्राह्मणों को ही नहीं, आश्रय देने वाले उन सारे ग्राम वासियों को भी चोरों की तरह दण्ड दे । देखिए—

**आवृत्ताश्चाधीयान् यत्र भैक्ष चरा द्विज ।**
**तं ग्रामं दंडयेत् राजा चोर भक्त प्रदंडवत् ॥**

*—वशिष्ठ स्मृति*

कितने दुख की बात है कि आज ऐसे ही ब्राह्मणों की भरमार हो रही है और यही लोग कहते हैं कि हम गायत्री के अधिकारी हैं । इस प्रकार विवाद करने की अपेक्षा यदि वे अपने ब्रह्म बल को उपार्जित करें तो उन्हें स्वयं विदित हो जाय कि यह कितनी महान् वस्तु है ।

## ब्रह्म तेज की जननी गायत्री

वशिष्ठ के ब्रह्मबल से परास्त होकर राजा विश्वामित्र ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि बाहुबल शस्त्र बल तुच्छ है । महान् तो ब्रह्म बल ही है ।

**धिग्बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्म तेजो बलं बलम् ।**
**एकेन ब्रह्म दंडेन सर्वास्त्रणि हतानि मे ।**

क्षत्रिय का बल धिक्कार है, तुच्छ है—ब्रह्मबल ही वास्तविक बल है । एक ही ब्रह्म दण्ड ने मेरे सारे अस्त्रों को नष्ट कर दिया ।

**प्रभावेणैव गायत्र्याः क्षत्रियः कौशिको वशी ।**
**राजर्षित्वं परित्यज्य ब्रह्मर्षिपदमीयिवान् ॥**
**सामर्थ्य प्राय चात्युच्चै रन्य द्भुवन सर्जने ।**
**किं किं न दद्यात् गायत्री सस्यगेवमुपासिता ॥**

*—स्कंद पुराण*

अर्थात्—क्षत्रिय विश्वामित्र ने राजर्षि पद से उन्नति करते हुए ब्रह्मर्षि पद गायत्री मन्त्र की उपासना से ही प्राप्त कर लिया तथा दूसरी सृष्टि रच डालने की भी शक्ति प्राप्त की थी । भली प्रकार साधना की हुई गायत्री भला कौन-सा ऐसा अभीष्ट लाभ है जिसे प्राप्त नहीं करा सकती ?

ऐसे ब्रह्म बल सम्पन्न केवल अपना ही आत्म कल्याण नहीं करते वरन् दूसरों का भी कल्याण कर सकते हैं । सारे संसार का उद्धार कर सकते हैं ।

**यै शान्त दान्ताः श्रुतिपूर्ण कर्णाः**
**जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृताः ।**
**प्रतिग्रहे संकुचिताग्रहस्ता**
**स्ते ब्राह्मणास्तारयितु समर्थाः ।**

जो ब्राह्मण, शान्त, दान्त, वेद ज्ञान से पूर्ण, जितेन्द्रिय, दयालु, प्रतिग्रह लेने में संकोची हैं वे ही ब्राह्मण दूसरों का उद्धार कर सकते हैं ।

**कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयो मिथः**
**संभूतिं तस्य तां विद्यात् यद्योनाभिजायते ।**
**आचार्यस्त्वस्य यां जाति विधिद्वेदपारगः ।**
**उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा ऽजराऽमरा ।**

*—मनु २-१४७,४८*

अर्थात्—माता-पिता काम वश होकर जो सन्तान उत्पन्न करते हैं वह तो वैसे अपने माता-पिता के समान ही अंगों वाली होती है पर वेदज्ञ आचार्य जिस बालक को विधिवत् गायत्री मन्त्र देकर जिस जाति का बना देता है वही जाति सत्य है, अजर और अमर है ।

गायत्री ब्राह्मण का अक्षय भण्डार है । जो इसके महत्त्व को पहचान लेता है, इसे उपलब्ध कर लेता है, उसे कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती ।

**—विद्याह वै ब्राह्मण माजगाम.........................शेवधिष्टे ऽहमस्मि ।**

वेद विद्या-गायत्री-ब्राह्मणी के पास पहुँची और बोली मैं तेरा खजाना हूँ ।

## गायत्री के सम्बन्ध में अन्यान्य भ्रान्तियाँ

हजार वर्षों के अज्ञानान्धकार के कारण मत-मतान्तरों का जो कूड़ा-कचरा जमा होता गया उसके ढेर के नीचे गायत्री और यज्ञ दब गये । उनका स्थान अनेकानेक मन्त्रों एवं कर्मकाण्डों ने ले लिया । गायत्री का यों प्रत्यक्ष

विरोध करने का तो कोई साहस कैसे करता पर उसे अनावश्यक बताने के लिए इतने प्रतिबन्ध खड़े कर दिये गये कि इसे अपनाने की किसी को हिम्मत ही न पड़े ।

गायत्री केवल ब्राह्मण की है, गायत्री को किसी को बताना नहीं चाहिए, गुप्त रखना चाहिए, गायत्री को शाप लग गया है, गायत्री इस युग में सफल नहीं होती आदि न जाने क्या-क्या ऊल-जलूल बातें गढ़कर लोगों की श्रद्धा इस अनादि वैदिक उपासना पर से हटाने और उसके स्थान पर अपने सम्प्रदाय के मन्त्र एवं पूजा विधान पर लोगों की आस्था जमाने का प्रयत्न किया गया । पिछले दो हजार वर्षों में दो हजार से अधिक मत-मतान्तर उपजे, हर प्रभावशाली पण्डित ने, हर प्रभावशाली साधु ने यह प्रयत्न किया कि उसके नाम का एक सम्प्रदाय चल पड़े और ईश्वर के स्थान पर उसी की पूजा होने लगे । लोकेषणा की इस दुर्बलता ने उनके द्वारा नये-नये सम्प्रदाय उत्पन्न करवाये, सभी ने वेदोक्त सनातन उपासना गायत्री को परोक्ष रूप से व्यर्थ सिद्ध करने की कोशिश की, इसके बिना जनता इस अनादि उपासना को छोड़कर उस नवीन मत को क्यों ग्रहण करती ? रामानन्दी, वैष्णव, शैव और शाक्त, साधारण चार सम्प्रदाय अधिक पुराने थे । राम, कृष्ण, शिव और दुर्गा को मानकर चलने वाले लोग कुछ अधिक समय से अपने सम्प्रदाय चला रहे थे । पर पिछले समय में तो इन चारों में से भी प्रत्येक में सैकड़ों शाखा, उपशाखाएँ फूट पड़ीं । इतने बवण्डर को देखकर जनता दिग्भ्रान्त हो गई, खण्ड-खण्ड में बँट गई, एक भावना, एक उपासना का महत्त्व नष्ट हो गया, अपनी ढपली अपना राग की तूती बोलने लगी । इस दुरवस्था में गायत्री उपासना की दुर्गति होना स्वाभाविक ही था ।

अब वह परिस्थिति बदल रही है । अन्धकार को चीरता हुआ प्रकाश का युग उदय हो रहा है । भारतीय संस्कृति की महान उपासना को भी उसका स्थान प्राप्त कराने का प्रयत्न हो रहा है । पर एक बार जो पिछड़ जाता है उसे पुनः अपना स्थान प्राप्त करने में भारी कठिनाई उठानी पड़ती है, सत्ता-स्वामियों का घोर प्रतिरोध सहना पड़ता है । पाण्डवों को १२ वर्ष का बनवास हुआ था । बनवास से लौटने के बाद न्याय से राज्य उन्हें मिलना चाहिए था, पर कौरवों के हाथ में सत्ता आ गई थी, सत्ता का लोभ उनसे छूटता नहीं था, वे सूई की बराबर भी जमीन पाण्डवों को देने को तैयार न हुए । अन्त में संघर्ष होकर रहा, तब कहीं न्याय की प्रतिष्ठा रह सकी । समय-समय पर इस घटना की पुनरावृत्ति होती रहती है । दो हजार वर्षों तक अज्ञानान्धकार का युग द्वारा तिरस्कृत गायत्री माता और यज्ञ पिता अब बनवास से पुनः लौटे हैं तो उनका अपना स्वाभाविक स्थान प्राप्त करना दुर्लभ हो रहा है, लोग उन पर दाँत पीसते हैं और लाठी लेकर दौड़ते हैं ।

गायत्री से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है, ब्रह्म-तेज आत्मा में आता है यह सत्य है, पर यह असत्य है कि गायत्री केवल ब्राह्मण की ही जायदाद है । यज्ञोपवीत धारण कराते समय तीनों वर्णों को गायत्री दी जाती है । यज्ञोपवीत सूत की बटी हुई गायत्री की प्रत्यक्ष मूर्ति है, जो यज्ञोपवीत पहनता है वह स्पष्ट ही गायत्री को अपने कन्धे पर धारण किये हुए है । गुप्त रखने के सम्बन्ध में भी बात यह है कि जप करते समय मन ही मन या होठ चलाते हुए धीरे-धीरे मन्त्र जपा जाता है । यह विधान जप के समय का है यह ठीक है पर यह ठीक नहीं कि गायत्री को कभी बोलना ही नहीं चाहिए । बिना बोले इसका प्रवचन करना, महत्त्व समझना, समझाना, पाठ करना, वेद-ध्वनि करना, यज्ञ करना किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? फिर यह बात व्यवहारतः पूर्णतया असम्भव भी है । जो मन्त्र पुस्तकों में छप गया, जिसके चित्र छप गये उसे किस प्रकार गुप्त रखा जा सकेगा ? जिन पुस्तकों में गायत्री मन्त्र छपा है, जो पुस्तकें बाजार में बिकती हैं उन्हें कोई भी खरीद सकता है । फिर वह गुप्त कैसे रहेगा ? जो बात प्रेस में छप चुकी उसके गुप्त रखने की कोई बात नहीं रहती ।

शाप लगना एक अलंकार है जिसमें यह संकेत है कि गायत्री गुरु-मन्त्र है, उसे गुरु-मुख से लेकर उपासना करना उचित है । तान्त्रिक साधनाओं में कवच, कीलक, अर्गल का उपयोग करना पड़ता है । जब गायत्री की तान्त्रिक उपासना की जाती है तब कवच, न्यास, शाप, मोचन, कीलक, अर्गल—२४ मुद्राएँ करनी होती हैं । यह एक प्रक्रिया विशेष का संकेत है । चारों वेदों की जननी को, ज्ञान-विज्ञान की आदि गंगोत्री को कोई ऋषि शाप देगा और वह भी गायत्री के मन्त्र दृष्टा विश्वामित्र द्वारा शाप दिया जायेगा यह बातें समझ से बाहर की हैं । संस्कृत की किसी पुस्तक में कोई बात कहीं लिखी मिले तो उसे वेद-वाक्य ही नहीं मान लेना चाहिए । जिस प्रकार आज राष्ट्र भाषा हिन्दी है और हिन्दी में भली-बुरी, झूठी-सच्ची

सभी तरह की बातें छपी मिलती हैं उसी प्रकार किसी जमाने में संस्कृत राष्ट्र भाषा थी । उसमें सभी प्रकार के विचार के लोगों ने सभी तरह की बातें लिखी हैं । उन सभी को सच्चा मानना कठिन है । शाप लगने की बात अलंकारिक तो है, उसमें गुरु-मुख होने की बात का तथा गायत्री की तान्त्रिक उपासना के एक विधान का संकेत तो है, पर यह कहना गलत है कि अब गायत्री को शाप लग चुका और बेकार हो गई । सूर्य और चन्द्रमा की तरह हमारे उपासना आकाश में गायत्री और यज्ञ जो प्रकाशवान् एवं प्रधान पिण्ड हैं उनकी शाश्वत सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकता, इनको किसी भी पर्दे में छिपाया नहीं जा सकता । देश काल की परिधि से ये बाहर हैं । सूर्य जो त्रेता में चमकता था वह ही आज भी चमक रहा है, बदला नहीं । सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि के जो धर्म-तत्व द्वापर में थे वे ही आज भी हैं । सतयुग में भी लोग मुँह से खाते और मल-छिद्र से शौच जाते थे आज भी वही प्रक्रिया चल रही है । सच्चे शाश्वत तथ्य कभी बदलते नहीं, देश काल का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । गायत्री जैसी उपयोगी सतयुग में थी वैसी आज भी है । इन लांछनाओं के पीछे किसी वर्ग विशेष की दुरभिसन्धि हो सकती है, पर सच्चाई तो रत्ती भर भी नहीं है ।

महिलाओं को जब पशुओं की संज्ञा में रखा गया था, गुलामों की भाँति उन्हें खरीदा-बेचा जाता था, एक पुरुष ढेरों औरतें घर में पालता था, उस जमाने में स्त्री का दर्जा पशुओं जैसा रहा होगा और उनकी दीन सामाजिक स्थिति के कारण उन्हें पूजा उपासना से वंचित रखा गया होगा । उसी जमाने में गायत्री और यज्ञ से भी स्त्रियों को रोका गया होगा । पर किसी थोड़े समय का बुरा इतिहास कभी भी सत्य का या आदर्श का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता । भारत में नारियों का दर्जा नर से भी ऊँचा रहा है । उसके नाम के आगे देवी शब्द लगाया जाता है । इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में नारी को देवी तुल्य पूज्य भाव से माना जाता रहा है । लक्ष्मीनारायण, राधेश्याम, सीताराम, गौरीशंकर आदि भगवान के नामों में पहले नारी का, पीछे नर का नम्बर आता है, इससे भी स्पष्ट है कि नारो का दर्जा इस देश में कभी भी नर से नीचा नहीं माना गया । जो अधिकार पुरुष को हैं वे सभी नारी को भी हैं । जो उपासना पुरुष कर सकता है वह नारी भी कर सकती है । भगवान की दृष्टि में नर और नारी, कन्या और पुत्र दोनों समान हैं । हम लड़के को बढ़िया और लड़की को घटिया मानते हैं तो यह भी सोचते हैं कि ईश्वर भी हमारी ही भांति लड़कियों को बेकार की चीज समझता होगा और उन्हें अपनी गोदी में चढ़ने का, उपासना करने का अवसर न देता होगा, उसे केवल लड़के ही प्यारे होंगे । पर हमारी यह मान्यता नितान्त अस्वाभाविक है । ईश्वर ने, ऋषियों एवं शास्त्रों ने ऐसा भेदभाव नहीं किया है, स्त्रियाँ गायत्री न जपें इसके प्रतिबन्ध के पीछे विवेक का एक कण भी नहीं है ।

इन भ्रान्तियों को पार करने में आज सचमुच बड़ी कठिनाई है । जो बात लोगों ने बहुत समय से होती देखी है, उनकी दृष्टि में वही सत्य है, वही सनातन है । बहुत दिनों से केवल ब्राह्मण ही पूजा-पाठ की टण्ट-घण्ट करते थे । दूसरे लोगों का ध्यान ही इस ओर न था, अब यही बात एक रूढ़ि बन गई कि पूजा केवल ब्राह्मणों को ही करनी चाहिए । यज्ञों की परम्परा बहुत दिनों से लुप्त थी । अब यज्ञ होते दीखते हैं तो उन्हें लगता है कि यह कोई नई बात चली । ऐसे सामूहिक यज्ञ उन्होंने होते देखे नहीं और जो बात उन्होंने नहीं देखी वह सनातन हो नहीं सकती । सनातन नहीं, उनके देखी नहीं, वह या तो व्यर्थ है या धर्म विरुद्ध है, ऐसे-ऐसे तर्क लोगों के मन में उठते रहते हैं और जब कोई उनका समाधान करता है तो इन्हें लगता है कि कोई उनके लालबुझक्कड़पन को चुनौती दे रहा है । ऐसे लोगों की बातों का जवाब न दिया जाय तो भ्रम और फैलता है, जवाब दिया जाय तो वे नाराज होते हैं, अपना अपमान समझते हैं, लड़ने आते हैं । रूढ़िवाद जहाँ सामाजिक कुरीतियों का पोषक एवं अनेक प्रचलित बुराइयों का पृष्ठपोषण करता है वहाँ वह विशुद्ध वैज्ञानिक एवं अनादिकाल की सत्य सनातन गायत्री उपासना जैसे महान सत्य को भी अपने प्रतिबन्ध में रखना चाहता है । इस दुराग्रह के सामने विचारशीलता नतमस्तक हो जाय और सच्चाई को तिलांजलि देकर 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' के आगे आत्म-समर्पण कर दे, यह कठिन है ।

जो भी हो गायत्री-परिवार यदि सत्य का अवलम्बन करना चाहता है, सच्चाई को फैलाना चाहता है तो उसे विरोध सहने के लिए तैयार रहना पड़ेगा । भूलों को रास्ते पर लाने के लिए उनके कुतर्कों का दृढ़तापूर्वक समाधान करना होगा और अविचल भाव से सत्य की चट्टान पर दृढ़ रहना होगा । यदि हमारी श्रद्धा इतनी दुर्बल है कि अमुक बाबाजी या पोथी पण्डे उलटी-सीधी बातें करके हमें बहका दें और सत्य मार्ग से विचलित कर दें, डरा दें,

हतोत्साह कर दें तो फिर हमारी श्रद्धा बहुत ही दुर्बल मानी जायेगी । उतनी दुर्बल श्रद्धा से न तो हमारा आत्मकल्याण हो सकता है, न लक्ष्य प्राप्त हो सकता है, न माता का अनुग्रह मिल सकता है और न घर-घर गायत्री माता का सन्देश पहुँचाने का लक्ष्य ही पूरा हो सकता है । ऐसे दुर्बल मानस के लोग हवा के झोंकों में उड़ते फिरने वाले पत्तों की तरह इधर-उधर लुढ़कते-पुड़कते फिरते हैं । इतने कमजोर मनोबल के लोग जिन्हें अपने आदर्शों और सिद्धान्तों पर इतनी भी आस्था नहीं कि बहकाने वाले लोगों की मूर्खता पर हँस सकें, भला किस प्रकार अपने लक्ष्य तक पहुँचेंगे । तप करती हुई पार्वतीजी का विश्वास आजमाने के लिए सप्तऋषि यह कहने पहुँचे थे कि शिवजी से उनका विवाह कठिन है इस हठ को छोड़ दें । इस आजमायश के उत्तर में पार्वतीजी ने कहा था—"कोटि जनम लगि रगर हमारी । बरों शम्भु न तु रहों कुमारी ॥" इतनी निष्ठा वालों की ही उपासना सफल हो सकती है । जो जरा बहकाने में डर जायें उन्हें गायत्री से, न किसी अन्य मन्त्र से कभी सिद्धि मिल सकती है । दृढ़ता, निष्ठा और श्रद्धा हम में कितनी है, इस बात की परीक्षा यह बहकाने वाले लोग लेते रहते हैं । इस प्रकार खरे और खोटे की परख माता करती रहती है । जिनका विश्वास इतना दुर्बल है कि किसी भी औंधे-सीधे आदमी के बहकाने से अपना संकल्प छोड़े बैठें, ऐसे लोगों से पीछा छुड़ाने में माता को प्रसन्नता ही हो सकती है ।

दृढ़ता से ही हमें आत्म-लाभ होगा और गायत्री-परिवार का वह उद्देश्य पूर्ण होगा जिसके अनुसार हमें घर-घर में जन-जन के मन-मन में गायत्री माता और यज्ञ पिता का सन्देश पहुँचाना है । भूले-भटकों को मार्ग पर लाना है । विरोधियों को प्रेम से जीतना है । अन्ततः वे अपनी भूल मानेंगे ही, आज नहीं तो कल विजय सत्य की ही होकर रहेगी ।

## गायत्री मन्त्र न तो अशुद्ध है, न ही झूठा

पुष्प उद्यान में गुणग्राही बुद्धि, पुष्पों की शोभा देखती है, सुगन्ध का आनन्द लेती है तथा सुरभित वृक्षों की छाया में बैठकर आनन्द लेती है । गुणग्राही जब लौटता है तो उसे उद्यान की शोभा का भी स्मरण रहता है और उसके निर्माता, माली तथा प्रयास की सराहना भी करता रहता है ।

इसके विपरीत दोषदर्शी बुद्धि को उसमें पग-पग कमियाँ, खराबियाँ और बुराइयाँ दीख पड़ती हैं । यहाँ तक कि उसके निर्माता, संरक्षकों में भी इस प्रयास के पीछे कोई दुरभिसन्धि दीख पड़ती है । भौंरे, तितली, मधुमक्खी, कोयल स्तर के प्राणी उस रसास्वादन में निरत रहते हैं । जितना समय उस क्षेत्र में बीतता है, उसे सौभाग्य मानते हैं । किन्तु एक अन्य प्रकार के कीड़े भी उसी क्षेत्र में रहते हैं जिन्हें खाद गोबर की ही तलाश रहती है । खोजने पर हर जगह हर चीज मिल जाती है । सर्वथा निर्दोष तो इस संसार में कुछ भी नहीं है । भगवान, देवता, ऋषि, महामानव तक में खोट ढूँढ़े जा सकते हैं । पुष्प वाटिका में भी कहीं न कहीं खाद, गोबर, कूड़े-कबाड़ का अस्तित्व रहता है । उसे ढूँढ़ निकालने पर वे यह भी कह या सोच सकते हैं कि बगीचे में दुर्गन्ध के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं । पुष्पों की ओर से मुँह मोड़ लेने पर वे दीखते भी कहाँ हैं ।

गायत्री मन्त्र को भी कहने वाले शब्द रचना की दृष्टि से अशुद्ध, छन्द शास्त्र की दृष्टि से दोगला और परिणाम की दृष्टि से झूठा भी कह सकते हैं, पर ध्यानपूर्वक देखने से वे तीनों ही आक्षेप निस्सार प्रतीत होते हैं । ऋचाओं के सृजेताओं को इतना भी ज्ञान न रहा हो, ऐसी बात नहीं है । उन्होंने वेद मन्त्रों की संरचना में जहाँ शब्द, छन्द, अर्थ का ध्यान रखा है, वहाँ मुख्यतया उसकी परिणति को भी ध्यान में रखा है । गायत्री की प्रेरणा तथा उपासना की परिणति ऐसी नहीं है जिसे भ्रान्त एवं निरर्थक कहा जा सके । दूर से तो तारे भी जुगनू जैसे दीखते हैं । समीपता अथवा जानकारी की गहराई बढ़ते जाने पर ही यह प्रतीत होता है कि वे उतने छोटे नहीं हैं जितने कि सामान्य दृष्टि से प्रतीत होते थे । गायत्री की गरिमा के सम्बन्ध में भी यही बात है । त्रुटि वेद मन्त्र में नहीं उसके प्रयोक्ताओं, पर्यवेक्षकों में हो सकती है । संशोधन उसी का होना चाहिए न कि मूल मन्त्र का ।

गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में आपत्ति उठाने वाले नासमझों को मात्र व्याकरण के आधार पर ही नहीं—शास्त्र, तर्क, तथ्य, दर्शन आदि सभी प्रमाणों के आधार पर यह बताया जा सकता है कि ऐसा विचार मात्र

करना कितनी बड़ी दुर्बुद्धि का परिचायक है । यदि हम पहले व्याकरण पक्ष को ही लें तो कुछ पृष्ठभूमि भी पाठक समुदाय को समझनी होगी ।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेदार्थ की गूढ़ता और उसे समझने की क्षमता के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्हें आत्मसात् करने के लिए परिष्कृत प्रज्ञा की आवश्यकता है । साधारण भाषा ज्ञान से उस प्रयोजन की पूर्ति ठीक प्रकार से होती नहीं । इस सन्दर्भ में उल्लेख है—"वेदों की व्याख्याओं के विषय में ऐसा समझना कि जब तक सत्य प्रमाण सुतर्क, वेदों के शब्दों का, पूर्वा पर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदांगों—शतपथ आदि ब्राह्मणों पूर्व मीमांसादि शास्त्रों-शास्त्रान्तरों का यथावत् बोध न हो और परमेश्वर का अनुग्रह, उत्तम विद्वानों की शिक्षा, उनके संग से पक्षपात छोड़कर आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि गणों के किए व्याख्यानों को न देखें तब तक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता ।"

*—विश्वामित्र संहिता*

वेदार्थ मात्र संस्कृत शब्दों का तात्पर्य एवं व्याकरण विद्या मात्र के आधार पर सही रूप में प्रकट नहीं होता ।

उसके रहस्यों को यदि भाषा के आधार पर जानना हो तो भी पद रचना, वर्ण संख्या, पद क्रम, स्वर सन्धान, ध्वनि जैसी विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए ही उस रहस्य को समझा जा सकता है, जो सृजेताओं ने उन शब्द गुंथनों में संजोया है ।

यास्क निरुक्त के (अ. १३ ख. १२) में उल्लेख है—

**"न हि एषु प्रत्यक्षमस्ति अनषः अतपसो वा, पारोवर्योवत्सु तु वेदितृष भूयः विद्यः प्रशस्यः भवति ।"**

अर्थात्—ऋषियों जिसे ज्ञान-विज्ञान के बिना उच्चस्तरीय तप तथा अध्यवसाय के बिना वेदमन्त्रों का अर्थ प्रत्यक्ष नहीं होता । वेदज्ञों में भी जिनकी ज्ञान साधना जितनी समृद्ध होती है, वे उसी अनुपात से रहस्यों को समझ पाते हैं उनका ज्ञान उतना ही प्रशंसनीय होता है ।

वस्तुतः श्रुति को सर्वथा छन्द परिधि में नहीं बाँधा जा सकता । ऋचाएँ व्याकरण और छन्द नियमों से ऊपर हैं । व्याकरण के प्रस्तोता महर्षि पाणिनि ने वेदों को अपौरुषेय माना है । उन्होंने यह अभिमत व्यक्त किया है कि जहाँ कहीं भी वेद संरचना एवं व्याकरण विधा के मध्य व्यवधान उत्पन्न होने की स्थिति आए, वहाँ श्रुति संरचना को ही मानने का अभिमत व्यक्त किया है ।

"छंदासि दृष्टत्वात् शुद्धम्" । अर्थात् जहाँ-कहीं उन्होंने व्याकरण की परिधि के बाहर वाक्यों का उपयोग देखा उसे वेद से शुद्ध माना । इतना ही नहीं इसके लिए उन्हें वाक्यों के वैदिक प्रयोग के लिए अलग से सूत्रों की संरचना करनी पड़ी । उपर्युक्त कथन में भी इसी निर्णय का प्रकटीकरण हुआ है ।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि वेद पहले बने और व्याकरण बाद में । श्रुति अपौरुषेय है एवं अनादि है । शब्द शास्त्र का विस्तार होने के उपरान्त उन्हें क्रमबद्ध बनाने की दृष्टि से व्याकरण एवं छन्द शास्त्र की रचना हुई है न कि छन्द शास्त्र पहले बना और वेद बाद में । कितने ही ऋचा खण्ड ऐसे हैं जो वर्तमान व्याकरण के हिसाब से सही नहीं बैठता तो भी उनकी श्रेष्ठता एवं मान्यता में कोई अन्तर नहीं आता । उदाहरण के लिए 'सत्यमेव जयते' शब्द को लिया जा सकता है । व्याकरण के अनुसार इसे 'सत्यमेव जयति' होना चाहिए था । यह विवाद का प्रश्न नहीं बनाया जाना चाहिए । भाव उनके पीछे क्या है, उसे महत्त्व मिलना चाहिए, सद्बुद्धि यही कहती है ।

गायत्री मन्त्र में प्रयुक्त तत् शब्द एक प्रकार से तो नपुंसकलिंग ठहरता है, पर उसकी व्युत्पत्ति तथा पदच्छेद दूसरे प्रकार से किये जाने पर वैसी स्थिति नहीं रह जाती और सहज समाधान हो जाता है ।

**"तंदित्यत्र सुयां सुलुगिति षष्टयालुक्"** इस व्याकरण के अनुसार तत् पद को नपुंसकलिंग नहीं माना जा सकता । यहाँ तत् की व्याख्या तस्य की गयी है । लिंग व्यत्यय के अनुसार भी समग्र व्याख्या बनने पर अर्थ इस प्रकार निकलता है—"हम 'तत्' उस भर्ग (तेज) का ध्यान करते हैं ।" यहाँ मन्त्र के यः वर्ण की यत् के रूप में व्याख्या की जानी है । ये सभी प्रमाण बताते हैं कि प्रचलित गायत्री छन्द पूर्णतः विशुद्ध एवं व्याकरण सम्मत है । इस सम्बन्ध में जो भी व्याकरण का सहारा लेकर जनमानस को गुमराह करने का प्रयास करते हैं उनकी बुद्धि को क्या कहा जाय ?

जिस ढंग से पदच्छेद कर तत् को नपुंसकलिंग ठहराया जाता है उसे अन्य दो सर्वनाम शब्दों के साथ जोड़कर विसंगति बताई जाती है—यदि उस पदच्छेद के स्थान पर दूसरी प्रकार से उसका पदच्छेद किया जाय तो यह झंझट अनायास ही समाप्त हो जाता है । एक ही

पदच्छेद का आग्रह करना असंगत है, कुतर्क है । अन्य पदच्छेद भी उसी प्रकार मान्य हो सकते हैं । ऐसे कुछ शुद्ध पदच्छेद इस प्रकार हैं—

(१) ॐ भूर्भुवः स्वः धीमहि तत् वरेण्यं भर्गो देवस्य सवितुद् यः प्रचोदयात् नः धियः (२) तत् धियो यः नः प्रचोदयात् भर्गो देवस्य सवितुद् वरेण्यं धीमहि (३) देवस्य सवितुर यो भर्गो नः धियो प्रचोदयात् वरेण्यं धीमहि (४) तत् सवितुर वरेण्यं भर्गो देवस्य यः नः धियो प्रचोदयात् धीमहि ।

'तत्' के स्थान पर 'तस्य' रखने का सुझाव देना वेदों के आदि सृजेताओं को पाठ पढ़ाने के सदृश है । ऐसे प्रस्ताव रखने वाले अपने आपको वेद सृजेताओं से अधिक विद्वान होने का दावा करते हैं । न जाने उनकी अहमन्यता कहाँ तक सही है ?

वैसे तत् शब्द से ऐसी कोई अड़चन नहीं उत्पन्न होती, जिससे उसे बदलने की आवश्यकता पड़े । संस्कृत व्याकरण के सामान्य जानकार भी समझते हैं कि "तस्य सवितुः" का समास संयोग भी "तत्सवितु"ही बनता है । ऐसी स्थिति में हम तो यही कह सकते हैं कि 'तत्' के स्थान पर 'तस्य' या 'तम्' कर देने, 'यो' के स्थान पर यद् कर देने का प्रस्ताव करने वालों के सम्मुख वेद रचयिता ऋषियों को जाना चाहिए और कहना चाहिए कि उन्हें इतना भी नहीं आता था तो इन प्रस्तावकों के पास जाकर व्याकरण एवं छन्द शास्त्र पढ़ते । जब कुछ पढ़ लिख जाते तब कहीं यह साहस करते कि वेद सृजन का साहस जुटायें । इसे व्यंग्य न मानकर यथार्थ माना जाय और उस अन्तर्वेदना की अनुभूति की जाय जो किसी भी उचित शब्द के तोड़-मरोड़ कर गाली-गलौज के रूप में प्रयुक्त होने पर किसी को भी होती है ।

इसी प्रकार गायत्री महामन्त्र में प्रयुक्त हुए शब्दों में लिंगभेद की गलती निकालना भी अनुपयुक्त है । भर्ग शब्द को साधारण संस्कृत में पुल्लिग माना गया है पर वैदिक कोषों में उसे संज्ञा, सर्वनाम एवं नपुंसकलिंग भी निरूपित किया गया है । सायण भाष्य के अनुवर्त्ती मैक्डॉनल की संस्कृत डिक्शनरी में 'भर्ग' का अर्थ करते हुए लिखा गया है—भर्गो: वैदिक, पु. एफल्जैन्स (ज्योतिर्मयो), वैदिक शब्द नपुंसक लिंग—ग्लोरियस (गौरवशाली, तेजस्वी) । उसे डा. विश्व बन्धु ने भी माना और उद्धृत करते हुए अपना प्रस्तुतीकरण किया है ।

गायत्री महामन्त्र में तेईस अक्षर होने की बात कहकर कई व्यक्ति उसकी छन्द रचना अशुद्ध मानते हैं और लगभग झूठा आदि तक कहने लगते हैं । वस्तुतः उसमें छन्द रचना की दृष्टि से न तो कोई दोष है और न ही व्याकरण की अशुद्धि ।

वेदों में अनुष्टुप, त्रिष्टुप, जगती, बृहती, पंक्ति, गायत्री आदि अनेकों छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें से प्रत्येक के कई-कई भेद हैं । उपर्युक्त छन्दों को एक वर्ग समझा जा सकता है और उनके भेदों को उपवर्ग की संज्ञा दी जा सकती है । छन्दों की संख्या सीमित कर देने की दृष्टि से एक बड़े वर्ग के अन्तर्गत छोटे उपभेदों का समावेश कर दिया गया है ।

गायत्री भी एक छन्द वर्ग है । उसके कितने ही भेद-उपभेद-उपवर्ग हैं । यथा—गायत्री छन्द—निचृद् गायत्री छन्द, आर्षी, आसुरी, विराड् गायत्री, विराडार्थी गायत्री, निचृटार्षी, स्वरा ढन्नाभार्षी, प्रजापात्या, भूरिग्, भूरिग्त्रिपाद, वर्धमाना, पिपीलिका मध्या, निचृद् गायत्री आदि, आदि । यह सभी गायत्री भेद हैं । इनमें जो थोड़ा-थोड़ा अन्तर है, उसके रहते हुए वे एक ही समान गायत्री के अन्तर्गत आते हैं । इन भेदों के कारण उनका कोई अन्य छन्द नहीं बन जाता । वे एक परिवार से निकलकर सर्वथा स्वतन्त्र नहीं बन जाते । गायत्री में २३ अक्षर होने से वह निचृद् उपवर्ग में तो आता है, पर इससे उसमें अशुद्धि होने जैसी कोई बात नहीं है ।

गायत्री के तीन चरण हैं । अक्षर गणना के अनुसार प्रथम पाद में सात और द्वितीय-तृतीय पाद में आठ-आठ अक्षर हैं । एक अक्षर का झंझट "ण्यं" शब्द में है । उसे एक गिन लिया जाय तो ही सात अक्षर होते हैं । अन्यथा उसे ध्वनि के अनुरूप वर्गीकृत किया जाय तो संख्या पूरी आठ हो जाती है ।

आद्य शंकराचार्य ने इस पाद का पदच्छेद इस प्रकार किया है । (१) तत् (२) स (३) वि (४) तुः (५) व (६) रे (६) णि (८) यम् । उनके मत से ध्वनि गणना के अनुसार २४ अक्षर पूरे हो जाते हैं ।

'मन्त्रार्थ चन्द्रोदय' (पृष्ठ३३) पर 'ण्यं' के शब्द में ऐसा ही अभिमत व्यक्त किया गया है और भ्रान्ति निवारण के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट प्रस्तुतीकरण किया गया है—

**'तत्र वरेण्य-मित्यत्र वरेणियं इति व्यूहेन पाद पूरणम् तदुक्तं पिंगलेन पाद इत्यधिकृत' इयादि पूरण इति ।**

अर्थात्—पिंगल शास्त्र में वरेण्यं नामक शब्द के अन्तिम भाग में इय जोड़ने से आठ अक्षरों का प्रथम चरण शुद्ध हो जाता है । अर्थात् "तत् सवितुर्वरेणियम्" इसका अर्थ यही हुआ कि छन्द शास्त्र की दृष्टि से भी गायत्री मन्त्र शुद्ध गायत्री छन्द है ।

ऋचाओं की संरचना मात्र अर्थ प्रधान ही नहीं है, उनमें स्वर विज्ञान के अनुरूप शब्द गुन्थन भी एक तथ्य है । शब्द क्रम के अनुसार छन्द संरचना होती है । सितार के तारों की तरह एक के बाद दूसरों के झनझनाने से, जो स्वर लहरी उत्पन्न होती है, उसके प्रभाव परिणाम का रचनाकारों ने ध्यान रखा है । स्वर शास्त्री जानते हैं कि कई बार अमुक राग प्रवाह उत्पन्न करने के लिए शब्दों को दीर्घ से ह्रस्व और ह्रस्व से दीर्घ भी करना पड़ता है । ऋचा में स्वर विद्या का रहस्य अर्थ से भी अधिक है । गायत्री के सृजेता ने 'ण्यं' शब्द के लेखन और उच्चारण में जो अन्तर रखा है, उसमें स्वर विज्ञान के रहस्य समाहित हैं । ऐसा गायत्री में ही नहीं, अन्यान्य मन्त्रों में भी हुआ है । स्वर के अनुरूप ही शब्द गुन्थन को यहाँ विशेष महत्त्व दिया गया है । यहाँ पर ण्य शब्द का स्वर विज्ञान वाला पक्ष प्रबल मानते हुए ही उसे इस प्रकार रखा गया है ।

गायत्री छन्द नाम से वेदों में कितने ही मन्त्र हैं । किन्तु 'वरेण्य' वेदमाता गायत्री का नामकरण उसमें प्रयुक्त हुए छन्द के आधार पर नहीं हुआ है । उसको गय = प्राण, त्री = त्राणकर्त्री क्षमता के आधार पर यह नाम दिया गया है । यह विशेषता इस स्तर के अन्य छन्दों में नहीं है । इसलिए उन्हें गायत्री नाम से नहीं पुकारा जाता । बृहती जैसे छन्दों के आधार पर किसी भी वेदमन्त्र को पुकारा नहीं जाता । फिर गायत्री के नाम से यह एक मन्त्र ही क्यों प्रख्यात हुआ ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि उसकी प्राण सम्वर्धिनी शक्ति को विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है और उस विशेषता की जानकारी देने की दृष्टि से ही इसको वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता—त्रिपदा का मान दिया गया है । अन्य छन्दों को यह सम्मान प्राप्त नहीं ।

द्वैतवाद के प्रस्तोता जी. माध्वाचार्य ने वेदार्थों की गम्भीरता एवं गरिमा के सम्बन्ध में कहा है—

**"गुणाधिक्यं भवेद् येन, वेदस्यार्थ स एवहि।**
**प्रयोजकत्वात् नान्यस्य, कलाभावात्तदर्थता ॥"**

अर्थात्—"भावार्थ से नहीं, वेदों की रहस्यमयी गरिमा उनके स्वर, मात्रा, वर्ण, पद, पद्यांश, चरण आदि की संगति बिठाते हुए ही समझी जा सकती है । मात्र शब्दार्थ भर से उसकी वास्तविकता का बोध नहीं होता ।" यह कथन कितना सटीक है, इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं होना चाहिए ।

इतना कुछ कह लेने पर गायत्री मन्त्र के पाप नाशक होने सम्बन्धी विवाद सुलझा लेना भी उचित होगा. । किसी भी मन्त्र को रटते रहने या मुख से उच्चारण कर व्यवहार को यथावत् बनाये रखने पर बदला जा सकता है, इस मान्यता को सर्वथा निर्मूल करना चाहिए । गायत्री मन्त्र की प्रेरणा ही कुछ ऐसी है कि उसके भाव को आत्मसात करने पर व्यक्ति पापों की ओर—दुष्कृतों की ओर—उन्मुख नहीं होता ।

गायत्री उपासना से पाप नाश होने या सुख शान्तिदायक पुण्यफल प्राप्त होने की फलश्रुति के साथ इतना संकेत और भी जुड़ा हुआ है कि उस आधार पर उपलब्ध होने वाली प्रेरणा को जीवनचर्या में सम्मिलित किया जाय । व्यवहार क्रम में उतारा जाय । इसका अधिक स्पष्टीकरण इसलिए नहीं किया गया है कि पुरातन काल में इस तथ्य से तो सभी अवगत थे कि आदि और अन्त के संकेत करने पर उसकी मध्य श्रृंखला का अनुमान सामान्य ज्ञान के आधार पर ही हर कोई लगा लेता है ।

स्कूल में प्रवेश—स्नातकोत्तर सम्मान । व्यायामशालाओं में भर्ती-प्रख्यात पहलवान । खेत में बीजारोपण—कोठे भरने वाली फसल । भूमि पूजन-भव्य भवन । व्यवसाय आरम्भ—समृद्धि का स्वप्न । इस प्रकार के कथन ही आमतौर से कहे-सुने जाते हैं । इतना अनुमान सहज ज्ञान के आधार पर लगाया जा सकता है कि आदि और अन्त के बीच मध्य भी होता है । भूमि पूजन भर से भवन नहीं बन जाता । उसके लिए श्रम साधन जुटाने होते हैं । बीज बोते ही कोठे नहीं भर जाते वरन् लम्बे समय तक खाद, पानी, निराई, गुड़ाई, रखवाली आदि का भी प्रबन्ध करना होता है । विद्यार्थी स्कूल में प्रवेश लेने भर से अफसर कहाँ बन जाता है । मध्यान्तर का विशेष वर्णन न करने पर तो यह अनुमान लगा पाना भी सम्भव नहीं । विवाह-संस्कार फले-फूले, गृहस्थ जीवन का स्वर्णिम स्वप्न देखा जाय, यह तो ठीक है । किन्तु उसके बीच पति-पत्नी का निरन्तर कर्त्तव्य-पालन भी एक तथ्य है । इसे भले ही विस्तृत रूप में वर्णन किया न जाय पर उसकी जानकारी तो रखनी ही चाहिए ।

यह हो सकता है कि कोई प्रयोक्ता या आलोचक-मध्य श्रृंखला को प्रयोग में आने की उपेक्षा होती देखकर यह अनुमान लगाने लगे कि मध्य श्रृंखला का कोई विधान ही नहीं है । मात्र आदि अन्त ही सब कुछ है । इस भ्रान्ति के कारण जो भी रहे हों, इससे प्रभावित कोई कितना भी क्यों न हो, तथ्य यही है कि मध्यान्तर की व्यवस्था करने पर ही लक्ष्य पूर्ति होती है । गायत्री मन्त्र का भावार्थ दृष्टि में रखें तो यही तथ्य उसमें सन्निहित दीख पड़ता है ।

गायत्री में सद्बुद्धि की—महाप्रज्ञा की आराधना है । उपासक उसका जप मात्र ही न करें वरन् प्रचोदयात्—प्रेरणा भी ग्रहण करें । उस अनुशासन के अनुरूप उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र एवं उदात्त व्यवहार का भी अभ्यास करें तभी वह प्रक्रिया पूरी होती है जिसके आधार पर इस उपासना का महत्त्व एवं माहात्म्य वर्णित किया जाता रहा है । निश्चय है कि गायत्रीमय जीवनचर्या अपनाने पर व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश होगा और उस प्रक्रिया में संलग्न व्यक्ति को प्रगति, समृद्धि, संस्कृति एवं सुख शान्ति जैसे प्रतिफलों से लाभान्वित होने का अवसर मिलेगा ।

यह बात पाप नाश के सम्बन्ध में भी है । पाप नाश से तात्पर्य क्रियमाण भले-बुरे कृत्यों का फल न मिलने से नहीं, वरन् यह है कि कुकृत्यों में लगाने और नरक यातनाओं में संत्रस्त करने वाली दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा मिलेगा । सत्प्रेरणा के—सद्बुद्धि के आधार पर सत्प्रेरणा अपनाने वाले को पाप नाश एवं नारकीय प्रवृत्तियों से छुटकारे का लाभ मिलना ही चाहिए ।

कितने लोग पालन करते हैं, कितने नहीं, यह प्रश्न सर्वथा दूसरा है, उसमें सिद्धान्त को झुठलाया नहीं जा सकता । प्रयोक्ताओं की नासमझी या अवहेलना की ही भर्त्सना की जा सकती है । रिश्वतखोरी का कानून है, उसे लोग पालते नहीं, इस कारण उस कानून निर्धारण पर दोष नहीं लगाया जा सकता । अवहेलना करने वालों की ही निन्दा की जा सकती है । भले ही वह अवहेलना नासमझी के कारण की जा रही हो अथवा जानबूझकर वैसा किया जा रहा हो । गायत्री का समग्र स्वरूप तब बनता है जब उसका शास्त्रोक्त उपासना परक ही नहीं, मन्त्र में सन्निहित प्रज्ञा प्रेरणा पक्ष भी अपनाया जाय और सत्प्रवृत्तियों के रूप में उसे जीवनचर्या का अविच्छिन्न अंग भी बनाया जाय ।

# गायत्री उपासना सम्बन्धी शंकाएँ एवं उनका समाधान

गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में एक शंका अक्सर उठाई जाती है कि उसके कई रूप हैं । कई लोग भिन्न-भिन्न ढंग से उसका उच्चारण करते या लिखते हैं । वस्तुतः शुद्ध रूप क्या है ? इस सम्बन्ध में सारे ग्रन्थों का अध्ययन करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि गायत्री में आठ-आठ अक्षर के तीन चरण एवं चौबीस अक्षर हैं । भूः, भुवः स्वः के तीन बीज मन्त्र—ओजस्, तेजस् और वर्चस् को उभारने के लिए अतिरिक्त रूप से जुड़े हुए हैं । प्रत्येक वेद मन्त्र के आरम्भ में एक ॐ लगाया जाता है । जैसे किसी व्यक्ति के नाम से पूर्व सम्मान सूचक 'श्री', मिस्टर, पण्डित, महामना आदि सम्बोधन जोड़े जाते हैं, उसी प्रकार ॐकार—तीन व्याहृति और तीन पाद समेत पूरा और सही गायत्री मन्त्र इस प्रकार लिखा जा सकता है—"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।" कई व्यक्ति इसी घटाने-बढ़ाने में अपनी-अपनी तिकड़म भिड़ाते देखे जाते हैं । कोई तीन ॐ—कोई पाँच ॐ लगाने की बात कहते हैं। कोई-कोई हर चरण के साथ एक ॐ जोड़ते हैं । कोई ब्राह्मणों की—क्षत्रियों की—वैश्यों की अलग-अलग गायत्री बताते हैं । यह अपनी-अपनी मनगढ़न्त हैं । वस्तुतः गायत्री का शुद्ध स्वरूप उतना ही है जितना कि ऊपर बताया गया । आर्ष ग्रन्थों में कहीं-कहीं तीन या सात व्याहृतियों के प्रयोग की, बीज मन्त्रों को भी साथ जोड़ने की चर्चा है । यह अपने-अपने विशेष प्रयोग उपचार हैं । शुद्ध गायत्री मात्र उतनी ही है जिसका उल्लेख किया गया ।

वेदों में अनेकों मन्त्र हैं, फिर गायत्री को ही प्रमुखता क्यों दी गयी ? इस पर विचार करने पर मत यही बनता है कि इस मन्त्र की अपनी विशेष गरिमा है । इसका उल्लेख वेदों में स्थान-स्थान पर हुआ है तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थों में भी माहात्म्य सहित प्रमुखता दी गयी है । देव संस्कृति के दो प्रतीकों-शिखा और सूत्र (यज्ञोपवीत) को भी गायत्री का ही बहिरंग पर आरोपित स्वरूप माना जा सकता है । एक को सिर पर धर्म ध्वजा के रूप में तथा दूसरे को कन्धे पर उत्तरदायित्व अनुशासन के रूप में धारण किया जाता है । यह गौरव किसी भी अन्य मन्त्र को प्राप्त नहीं है ।

हर धर्म का एक प्रतीक बीज मन्त्र होता है । इस्लाम में कलमा, ईसाई में वपतिस्मा, जैन धर्म में नमोंकार मन्त्र आदि का प्रचलन है । भारतीय धर्म का आस्था केन्द्र—गायत्री को माना गया है । इसे इसके अर्थ की विशिष्टता—सन्निहित प्रेरणा के कारण विश्व आचार संहिता का प्राण तक माना जा सकता है । वेदों की सार्वभौम शिक्षा लगभग सभी धर्म सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हुई है । गायत्री रूपी बीज के तने, पल्लव ही वेद शास्त्रों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । इसी कारण उसे 'वेदमाता' कहा गया है । वेदमाता अर्थात् सद्ज्ञान की गंगोत्री । इसे देवमाता कहा गया है—अर्थात् जनमानस में देवत्व का अभिवर्धन करने वाली । विश्वमाता भी इसे कहते हैं अर्थात् "वसुधैव कुटुम्बकम्" के तत्व दर्शन तथा नीति-निर्धारण का पोषण करने वाली । ये विशेषण इसकी प्रमुखता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

एक अन्य चर्चा इस उपासना के सम्बन्ध में की जाती है कि गायत्री मन्त्र गुप्त है । इसका उच्चारण निषिद्ध है । यह प्रचार वर्ण के नाम पर स्वयं को ब्राह्मण कहने वाले धर्म मंच के दिग्गजों ने अधिक किया है । विशेषकर दक्षिण भारत में यह भ्रान्ति तो सर्वाधिक है । वस्तुतः गुप्त तो मात्र दुरभि सन्धियों को रखा जाता है । श्रेष्ठ निर्धारणों को खुले में कहने में कोई हर्ज नहीं । गायत्री में सदाशयता की रचनात्मक स्थापनाएँ हैं । उन्हें जानने-समझने का सबको अधिकार है । ऐसे पवित्र प्रेरणायुक्त उपदेश को उच्चारणपूर्वक कहने-सुनने में भला क्या हानि हो सकती है ? पर्दे के पीछे व्यभिचार, अनाचार जैसे कुकर्म ही किए जाते हैं । षडयन्त्रों में काना-फूसी होती है । किसी को पता न चलने देने की बात वहीं सोची जाती है जहाँ कोई कुचक्र रचा गया हो । सद्ज्ञान का तो उच्च स्वर से उच्चारण होना चाहिए । कीर्तन-आरती जैसे धर्म कृत्यों में वैसा होता भी है ।

तन्त्र विधान की कुछ विधियाँ गुप्त रखी गई हैं ताकि अनधिकारी लोग उसका दुरुपयोग करके हानिकर परिस्थितियाँ उत्पन्न न करने पायें । मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन जैसे आक्रामक अभिचारों के विधि-विधान तथा तन्त्र को इसी दृष्टि से कीलित या गोपनीय रखा गया है । एक तरह से इन्हें सौम्य साधना का स्वरूप न मानकर इन पर 'बैन' लगा दिया है ताकि लोग भ्रान्तिवश इनमें भटकने न लगें ।

वैदिक प्रक्रियाओं में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं । गायत्री वेदमन्त्र है । उसका नामकरण ही "गाने वाले का त्राण करने वाली" के रूप में हुआ है । फिर उसे मुँह से न बोलने, गुप्त रखने, चुप रहने, कान में कहने जैसा कथन सर्वथा उपहासास्पद है । ऐसा वे लोग कहते हैं जो तन्त्र और वेद मन्त्र में अन्तर नहीं समझते । गायत्री मन्त्र का उच्चारण व्यापक विस्तृत होने से उसकी तरंगें वायु मण्डल में फैलती हैं और जहाँ तक वे पहुँचती हैं, वहाँ लाभदायक परिस्थितियाँ ही उत्पन्न करती हैं । उच्चारण न करने पर तो उस लाभ से सभी वंचित रहेंगे ।

क्या गायत्री की उपासना रात्रि में की जा सकती है ? इस विषय पर भी भाँति-भाँति के मत व्यक्त किए जाते हैं एवं जन-साधारण को भ्रान्ति के जंजाल में उलझा दिया जाता है । वस्तुतः गायत्री का दाता सूर्य है, सूर्य की उपस्थिति में की गई उपासना का लाभ अधिक माना गया है । किन्तु ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं कि सविता देवता की अनुपस्थिति में—रात्रि होने के कारण उपासना की ही न जा सकेगी । ब्राह्म मुहूर्त को भी एक प्रकार से रात्रि ही कहा जा सकता है । उसमें तो सभी को जल्दी उठकर उपासना करने और सूर्योदय होने पर सूर्यार्घ देकर उसे समाप्त करने की साधारण विधि व्यवस्था है । वस्तुतः सूर्य न कभी अस्त होता है और न देवता शयन करते हैं । इसलिए रात्रि में उपासना करने में कोई हर्ज नहीं । किसी को बहुत ही सन्देह हो तो मौन, मानसिक जप तो बिना संकोच कर सकता है । मानसिक जप पर तो स्नान, स्थान जैसा भी प्रतिबन्ध नहीं है ।

एक और अहम् प्रश्न है कि गायत्री के साकार एवं निराकार रूपों में से किसे किस-किस प्रकार से उपासना प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाय ? इसका समाधान मात्र यही है कि जिन्हें निराकार रुचता हो, वे सविता के 'भर्गः' स्वरूप का ध्यान करें । सूर्य का तेज—प्रकाशवान स्वरूप उसका प्रतीक है । प्रभातकालीन स्वर्णिम सूर्य को सविता की आकृति माना जाता है । यह मात्र आग का गोला नहीं है । वरन् अध्यात्म की भाषा में ब्रह्म भर्ग से युक्त एवं सचेतन है । उदीयमान सूर्य से तो मात्र उसकी संगति बिठाई जाती है । इसके लिए सूर्य के स्थान पर दीपक को, धूपबत्ती की अथवा गायत्री मन्त्र जिसकी किरणों के साथ जुड़ा हो ऐसे सूर्य चित्र को भी प्रयुक्त कर ध्यान नियोजित किया जा सकता है ।

साकार उपासना में गायत्री को माता के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है । माता होते हुए भी उसका

स्वरूप नवयौवना के रूप में दो कारणों से रखा गया है । एक तो इसलिए कि देवत्व को कभी वार्धक्य नहीं सताता। सतत् उसका यौवन रूपी उभार ही झलकता रहता है । सभी देवताओं की प्रतिमाओं में उन्हें युवा सुदर्शन रूप में ही दर्शाया जाता है । यही बात देवियों का चित्रण करते समय भी ध्यान में रखी जाती है और उन्हें किशोरी निरूपित किया जाता है । दूसरा कारण यह है कि युवती के प्रति भी विकार भाव उत्पन्न न होने देने—मातृत्व की परिकल्पना परिपक्व करते चलने के लिए उठती आयु को इस अभ्यास के लिए सर्वोपयुक्त माना गया है । कमलासन पर विराजमान होने का अर्थ है—कोमल, सुगन्धित, उत्फुल्ल कमल पुष्प जैसे विशाल में उसका निवास होने की संगति बिठाना । यही है विभिन्न रूपों में उसकी उपासना का तात्विक दर्शन ।

स्त्रियों को गायत्री का अधिकार है या नहीं, यह आशंका सभी उठाते देखे जाते हैं—धर्माचार्य भी तथा शोषक पुरुष समुदाय भी । वस्तुतः नर और नारी भगवान के दो नेत्र, दो हाथ, दो कान, दो पैर के समान मनुष्य जाति के दो वर्ग हैं । दोनों की स्थिति गाड़ी के दो पहियों की तरह मिल-जुलकर चलने और साथ-साथ सहयोग करने की है । दोनों के कर्त्तव्य और अधिकार समान हैं । प्रजनन प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए एक का कार्य क्षेत्र परिवार, दूसरे का उपार्जन—उत्तरदायित्व इस रूप में बँट गए हैं । इस पर भी वह कोई विभाजन रेखा नहीं है । सामाजिक, आर्थिक, साहित्य, राजनीति आदि में किसी भी वर्ग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है । इसी प्रकार धर्म अध्यात्म क्षेत्र में—साधना-उपासना के क्षेत्र में भी दोनों को स्वाभावतः समान अधिकार प्राप्त हैं ।

नर और नारी को—सवर्ण और असवर्ण को ऊँचा-नीचा मानना, एक को अधिकारी—दूसरे को अनधिकारी ठहराने का प्रचलन मध्यकालीन अन्धकार युग की देन है । उसमें समर्थों ने असमर्थों को पैरों तले रौंदने, उनसे मनमाने लाभ उठाने और विरोध की आवाज न उठा सकने के लिए जहाँ डण्डे का उपयोग किया, वहाँ पण्डिताऊ प्रतिपादन भी लालच या भय दिखाकर अपने समर्थन में प्राप्त कर लिए । शूद्रों को—स्त्रियों को नीचा या अनधिकारी ठहराने के पीछे मात्र एक ही दुरभि सन्धि है कि समर्थों को मनमाने लाभ मिलते रहें और किसी विरोध—प्रतिरोध का सामना न करना पड़े। बहुपत्नी प्रथा चलते हुए यह आवश्यक हो गया कि इसकी प्रतिक्रिया से नारी को भी तनकर खड़े न होने देने के लिए धार्मिक मोर्चे पर मनोवैज्ञानिक दीवार खड़ी की जाय और उन्हें अपनी विवशता को भगवद् प्रदत्त या धर्मानुकूल मानने के लिए बाधित किया जाय । सती प्रथा—पर्दा प्रथा—जैसे प्रचलन नारी को अपनी विवशता—नियति प्रदत्त मानने के लिए स्वीकार करने हेतु कुचक्र भर थे । इसी सिलसिले में धार्मिक अधिकारों से उन शोषित वर्गों को वंचित करने की बात कही जाने लगी । शास्त्रों में भी जहाँ-जहाँ ये अनैतिक प्रतिपादन ठूँस दिये गये और भारतीय संस्कृति की मूलधारा को उलट देने वाले प्रतिपादन चल पड़े । धार्मिक कृत्यों से वंचित रखने की बात भी उसी सामन्ती अन्धकार युग का प्रचलन—आधुनिक संस्करण भर है । वस्तुतः नर-नारी के बीच शास्त्र परम्परा के अनुसार कहीं राई-रत्ती भर भी अन्तर नहीं है ।

प्राचीन काल में वेद-ऋचाओं की दृष्टा प्रतिपादनकर्ता ऋषियों का तरह ऋषिकाएँ भी हुई हैं । गायत्री वेदमन्त्रों का सिरमौर है । स्त्री, शूद्रों को वंचित करने के सिलसिले में गायत्री का वेदमन्त्र होने के कारण प्रतिबन्ध लगाया जाता है, जिसका किसी तर्क, तथ्य, न्याय, औचित्य की कसौटी पर कसने वाला कोई भी विज्ञजन समर्थन नहीं कर सकता ।

गायत्री नारी रूप है । माता से पुत्रियों को कैसे दूर किया जा सकता है । बेटे को दूध पिलायें और बेटी को कचरे में फेंक दें, ऐसे निष्ठुर तो मात्र पिशाच ही होते हैं । गायत्री माता का ऐसा पिशाचिनी स्वरूप नहीं हो सकता । नर को नारी के क्षेत्र में प्रवेश से रोकने की मर्यादा के नाते कोई तुक भी हो सकती है पर नारी-नारी के क्षेत्र में प्रवेश न कर सके इसका तो लोक व्यवहार की दृष्टि से भी कोई औचित्य नहीं है । इस शंका को सर्वथा निर्मूल कर नर और नारी समान रूप से इसकी उपासना करते रह सकते हैं ।

## स्त्रियों का गायत्री अधिकार

केवल पुरुष गायत्री-उपासना के अधिकारी हैं, स्त्रियाँ नहीं—ऐसा कई व्यक्ति कहते सुने जाते हैं । इसके समर्थन में वे जहाँ-तहाँ के कुछ श्लोक भी प्रस्तुत करते हैं।

इन भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए हमें भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप को समझना होगा । वह विश्वधर्म—मानवधर्म है । जाति और लिंग की

अनीतिमूलक असमानता का उसके महान सिद्धान्तों में कहीं भी समर्थन, प्रतिपादन नहीं है । समता, एकता, आत्मीयता के आदर्शों के अनुरूप ही उसकी समस्त विधि व्यवस्था विनिर्मित हुई है । ऐसी दशा में स्त्रियों के मानवोचित नागरिक एवं धार्मिक अधिकारों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाने जैसी कहीं कोई बात नहीं है । नारी को नर से कनिष्ठ नहीं वरिष्ठ माना गया है । इसे हेय ठहराने और आत्मकल्याण की महत्त्वपूर्ण साधना न करने जैसा प्रतिबन्ध लगाने की बात तो तत्वदर्शी ऋषि सोच भी नहीं सकते थे । भारतीय दर्शन की आत्मा ऐसे भेदभाव को सहन नहीं कर सकती । इसलिए धर्मधारणा के किसी भी पक्ष से गायत्री उपासना जैसे अनुशीलन से उसे रोका गया है, ऐसी भ्रान्ति न तो किसी को फैलानी और न किसी को ऐसा कुछ कहने वालों की बात पर ध्यान देना चाहिए ।

मध्यकाल के अन्धकार-युग में सामन्ती व्यवस्थाओं का बोलबाला था । वे सामर्थ्यहीन दुर्बलों का हर दृष्टि से शोषण-दोहन करने पर तुले हुए थे । उनका वैभव, वर्चस्व, विलास एवं अहंकार इसी आधार पर पुष्ट होता था कि दुर्बलों को सता सकने की आतंक-क्षमता का उद्धत प्रदर्शन करके अपनी बलिष्ठता का परिचय देते रहें । उन्हीं दिनों दास-प्रथा पनपी, रखैलों से अन्तःपुर सजे—अपहरण हुए—युद्ध ठने—कत्ले-आम हुए । और न जाने कितने कुकृत्यों की बाढ़ आई । इन कुकृत्यों के समर्थन में आश्रित पण्डितों से कितने ही श्लोक लिखाये और प्राचीन ग्रन्थों में ठुसवाये गये । नारी भी इस कुचक्र में पिसने से न बची । उसके यौवन, श्रम तथा मनोबल के मनमाने उपयोग के लिए ऐसी व्यवस्थाएँ गढ़ी गईं, जिससे पददलितों का मनोबल टूटे और वे सहज शरणागति स्वीकार कर लें । सामन्तों और पण्डितों की इस मिलीभगत ने स्त्री, शूद्रों को कुचलने में ऐसे प्रतिपादन खड़े किये जिन्हें धर्म परम्परा का बाना पहनाया जा सके । देशी और विदेशी आततायी अपनी-अपनी गतिविधियों को निर्बाध गति से देर तक चलाने के लिए दमन और शमन के दुहरे आक्रमण करते रहे । नारी वर्ग को आसूर्यस्पर्श्या =पर्दे के भीतर रहने वाली कठपुतली, चरणदासी बनी रहने, सती होने, पति को ही परमेश्वर मानकर उसके हर अनौचित्य को शिरोधार्य करने जैसे शमनप्रयोग उसी षड्यन्त्र के अंग हैं । स्त्रियों को जन्म-जात निकृष्ट ठहराने का एक प्रमाण यह भी प्रस्तुत किया गया कि वे दीन-हीन होने के कारण ही गायत्री मन्त्र जैसी श्रेष्ठ उपासना करने की भी अधिकारिणी नहीं हैं ।

प्राचीन काल के इतिहास एवं शास्त्र अनुशासन को देखने से स्पष्ट है कि भारतीय धर्म नर और नारी के अधिकारों में कहीं रत्ती भर भी अन्तर नहीं है । यदि कहीं है भी तो उसमें नारी को नर से ही वरिष्ठ सिद्ध किया गया है और उसे पूजा योग्य ठहराया गया है । प्राचीन काल में ऋषियों की तरह ऋषिकाएँ भी समस्त धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रयोजनों में समान रूप से सहभागिनी रही हैं। उनके द्वारा वेद संहिता की अनेकों ऋचाओं का अवतरण हुआ है । योग-तप एवं धर्म कृत्यों में उनके समान सहयोग के प्रमाणों से अतीत का समस्त घटनाक्रम एवं वातावरण पूरी तरह साक्षी है । यज्ञ में नारी का साथ होना आवश्यक है । विवाह आदि संस्कारों में यज्ञ भी होता है और मन्त्रोच्चार भी । इसमें नर-नारी दोनों का ही समान भाग रहता है ।

गायत्री की प्रतिमा स्वयं नारी है । नारी की उपासना नारी भी न करें—माता से बेटी को दूर रखा जाय इसका किसी भी दृष्टि से औचित्य नहीं है । नर और नारी दोनों को ही समान रूप से गायत्री-उपासना समेत समस्त धर्मकृत्यों का अधिकार है । इसके विरुद्ध जो अनर्गल प्रलाप किए जाते हैं—काने, कुबड़े प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें भारतीय धर्म की आत्मा के सर्वथा प्रतिकूल ही माना जाना चाहिए । तथ्यहीन प्रतिगामिता की उपेक्षा करना ही श्रेयष्कर है । पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी गायत्री उपासना की परिपूर्ण अधिकारिणी हैं ।

**शास्त्रीय प्रमाण**—गायत्री उपासना स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए ही आवश्यक है । यदि उसे उचित शिक्षा-दीक्षा, एवं विधि व्यवस्था के आधार पर किया जाय तो निश्चित रूप से अधिक सतपरिणाम प्राप्त होते हैं ।

पुरुषों की ही भाँति स्त्रियाँ भी गायत्री उपासना से लाभान्वित हो सकती हैं । कई आध्यात्मिक तत्ववेत्ताओं का यह कहना है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को गायत्री उपासना का लाभ अधिक मिलता है क्योंकि माता को स्वभावतः पुत्र की अपेक्षा कन्या का अधिक ध्यान रहता है, वह अपनी पुत्रियों के लिए अधिक उदारता का परिचय देती हैं ।

प्राचीन काल में अनेक महिलाएँ उच्चकोटि की साधिकाएँ हुई हैं । आध्यात्मिक कार्य में वे पुरुषों से कभी भी पीछे नहीं रही हैं । नारी का तप ही उसकी कुक्षि

से महान् आत्माओं को प्रसव करने में समर्थ होता है । तपस्विनी अदिति ने वामन भगवान को जन्म दिया । कौशिल्या की गोदी में राम खेले । देवकी ने कृष्णचन्द्र को जन्म दिया, रोहिणी और यशोदा के आंगन में उन्हें बाल-क्रीड़ा करनी पड़ी । समस्त देवताओं की जननी अदिति माता है ! भगवती कात्यायिनी असुरों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हुई । माता शतरूपा के गर्भ से मानव प्राणी का उद्भव हुआ है । ब्रह्मवादिनी घोषा काक्षीबान ऋषि की कन्या थी, उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था । तप करके उन्हेंने अश्विनीकुमार देवता को प्रसन्न किया और निरोगिता एवं विद्या का विपुल भण्डार प्राप्त किया । महर्षि कर्दम की धर्मपत्नी देवहूति ने तपस्वी जीवन बिताकर भगवान कपिल को जन्म दिया । महर्षि मेघातिथि की कन्या अरुन्धती ने तापसारण्य वन में तप करके वशिष्ठ जैसे योगी को अपने पति रूप में पाया और वे सशरीर अजर-अमर बनीं ।

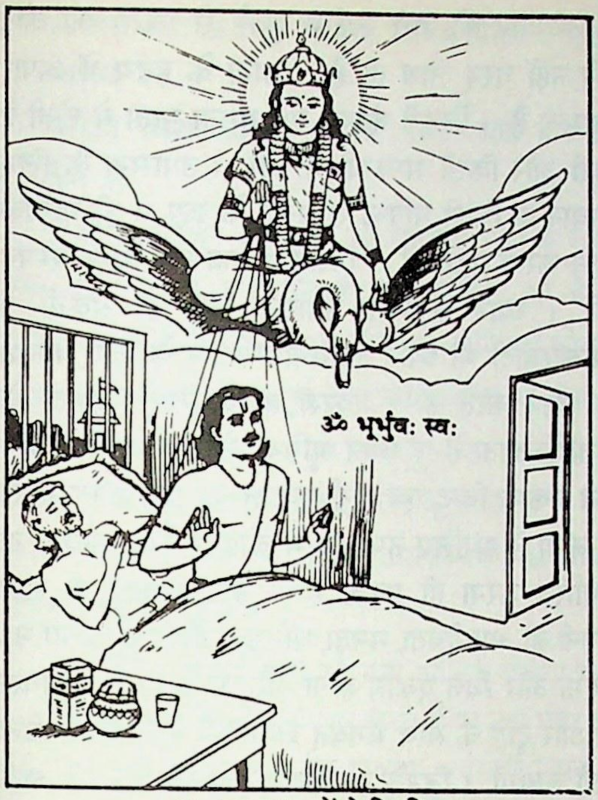
महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न ब्रह्मवादिनी महाविदुषी विश्वधारा ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल के द्वितीय अनुवाद के अट्ठाईसवें षट ऋकों की मन्त्र द्रष्टा हैं । उन्होंने अपनी तपस्या के बल से ऋषि पद पाया था । तपस्विनी अपाला पतिगृह में असाध्य रोग से ग्रसित हो गईं तो उन्होंने तप करके इन्द्र को प्रसन्न किया और खोया हुआ स्वास्थ्य तथा ब्रह्म-ज्ञान पाया । यह अपाला भी ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ९१ वें सूक्त की १ से ७ तक की ऋचाओं की द्रष्टा हैं । सती तपती की आयु बहुत बड़ी हो गई थी, उनका विवाह न हो सका था । तपती की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं सूर्य नारायण ने उनसे विवाह किया । अभृण ऋषि की कन्या वाक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी हुई हैं । ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के १२५वें देवी सूक्त के आठ मन्त्रों की ऋषि यह वाकदेवी ही हैं । ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५ सूक्त की ऋचाओं की ऋषि होने का श्रेय ब्रह्मवादिनी सूर्या को प्राप्त है । बड़े रोमों वाली भावभव्य ऋषि की धर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी रोमेशा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२६वें सूक्त की सात ऋचाओं की द्रष्टा ऋषि हुई हैं । बृहदारण्यक उपनिषद में वचक्त ऋषि की पुत्री गार्गी और याज्ञवल्क्य के शास्त्रार्थ का विस्तृत वर्णन है । महातपस्विनी गार्गी ने राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के छक्के छुड़ा दिये थे । ब्रह्मज्ञानिनी सुलभा ने राजा जनक जैसे तत्वज्ञानी की अनेक भ्रान्तियों का निवारण किया था । राजा आसंग की पत्नी शाश्वती ऋग्वेद के आठवें मण्डल के प्रथम सूक्त की ३४वीं ऋचा की ऋषि हैं । इसी प्रकार उशिज इसी मंडल के ११६ से १२१वें तक के मन्त्रों की ऋषि हैं । दशम सूत्र की ऋषि ब्रह्मवादिनी ममता है ।

जो व्यक्ति कहते हैं कि—"स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं, क्योंकि गायत्री वेद मन्त्र है । वेद मन्त्र स्त्रियों को नहीं पढ़ने चाहिए ।" ऐसे लोग तनिक विचार करने का कष्ट करें कि यदि स्त्रियों को वेद का अधिकार न होता तो वेद मन्त्रों की द्रष्टा, व्याख्याता, विशेषज्ञा, अधिपति यह उपर्युक्त स्त्रियाँ किस प्रकार रही होतीं ? प्राचीन काल में घोपा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत, जुहू, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लापा-मुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि अनेकों ब्रह्मवादिनी वेद व्याख्याता हुई हैं ।

मनु की पुत्री 'इड़ा' नामक एक महिला का वर्णन है जो 'यज्ञान् काशिनी' उपाधि से विभूषित थी । उसने अपने पिता तक के लिए यज्ञ कराए थे । भारद्वाज की पुत्री श्रतावती, तपस्विनी सिद्धा, शाण्डिल्य की पुत्री श्रीमती, वेद विद् शिवा, ब्रह्मवादिनी सुलभा, स्वधा की पुत्रियाँ वद्यना और धारिणी आदि अनेक वेदज्ञ महिलाओं का वर्णन महाभारत में है । यदि उन्हें वेदों का अधिकार न होता तो किस प्रकार वे वेदज्ञ होतीं । शंकर दिग्वजय में भारती देवी नामक एक ऐसी महिला का वर्णन है जिसने शास्त्रार्थ में शंकराचार्य के दाँत खट्टे कर दिये थे ।

विवाहादि संस्कारों में स्त्री को अपने मुख से अनेक वेद मन्त्र उच्चारण करने पड़ते हैं । यज्ञों में स्त्रियाँ सदा पति के साथ रहती हैं । स्त्री के बिना यज्ञ सफल नहीं होता। रामचन्द्रजी को सोने की सीता बनाकर यज्ञ पूर्ण करना पड़ा था । यज्ञ बिना वेद मन्त्रों के होते नहीं, यदि स्त्रियों को वेद का अधिकार न होता तो उन्हें यज्ञ में सम्मिलित होने का अथवा विवाहादि संस्कारों में मन्त्रोच्चारण का विधान किस प्रकार होता ?

व्योम संहिता में कहा गया है कि—"स्त्रियों को वेद का अध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने का वैसा ही अधिकार है जैसे कि उर्वशी, यमी, शची आदि को प्राप्त था ।" यम स्मृति में लिखा है—"स्त्रियों को वैदिक कर्म-काण्डों की भाँति ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का भी अधिकार है । वाल्मीकि रामायण में कौशल्या, कैकेयी, सीता, तारा आदि नारियों द्वारा सन्ध्या, हवन करने तथा




१५. काया कष्टों से निवृति

स्वस्तिवाचन आदि वेद मन्त्रों का पाठ करने का वर्णन है। वशिष्ठ स्मृति में कहा गया है कि—"यदि स्त्री के मन में पति के प्रति दुर्भाव आये तो उस पाप का पश्चाताप करने के लिए १०८ गायत्री मन्त्र जपने से वह पवित्र होती है ।

सनातन धर्म के कर्णधार महामना पं. मदनमोहन जी मालवीय ने देश के उच्चकोटि के पण्डितों की एक समिति नियुक्त की, जिसको यह कार्य सौंपा गया कि वह शास्त्रों के आधार पर यह खोज करे कि स्त्रियों को वेद मन्त्रों का अधिकार है या नहीं । कमेटी ने लम्बे समय तक भारी खोज की और २२ अगस्त सन् १९४६ को उस समिति की रिपोर्ट के आधार पर मालवीयजी ने घोषणा की कि स्त्रियों को भी पुरुषों की ही भाँति वेद पढ़ने का अधिकार है । तब से हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेद पढ़ाये जाते हैं ।

गायत्री ईश्वर की सर्वोत्तम प्रार्थना है । वेद भगवान की अमृतमयी वाणी है । ऐसे उपयोगी तत्व से स्त्रियों को वंचित रखा जाना न्याय के, विवेक के, तथा भारतीय संस्कृति की मूलभूत भावना के प्रतिकूल है । इसलिए इस प्रकार के भ्रमों में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्राचीन काल की भाँति आज भी असंख्यों भारतीय महिलाएँ ऐसी हैं जो गायत्री मन्त्र द्वारा उपासना करती हैं और उसके महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक और सांसारिक लाभों को प्राप्त करती हैं ।

पतियों का सुधार स्त्रियाँ गायत्री उपासना द्वारा कर सकती हैं । इस तपस्या से अनेकों स्त्रियों ने अपने पतियों के बुरे स्वभावों और बुरे आचरणों को सुधारा है । उनके झगड़ालू, रूखे, निष्ठुर स्वभाव को बदल कर मधुर भाषी, सहानुभूति, सद्भाव एवं स्नेह वाला बनाया है । उनकी कुसंगति छुड़ाने एवं व्यभिचार आदि की बुराइयों से बचाने में भी स्त्रियाँ गायत्री उपासना का रामबाण की तरह प्रयोग कर सकती हैं ।

गायत्री उपासना करने वाली स्त्रियों के पेट में जो सन्तान होती है उस पर माता के विचारों का बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ता है । उसमें विद्या, बुद्धि, विवेक, तेज, प्रतिभा, सदाचार, आदि गुणों की कमी नहीं रहती । माताएँ बालकों को दूध पिलाते समय यदि मन ही मन गायत्री मन्त्र जपती रहें, तो वह दूध बालक के शरीर और मन को शुद्ध बनाने के लिए अमृत रूप हो जाता है । बच्चों को निरोग, हँसमुख, सुन्दर, तेजस्वी, बुद्धिमान और दीर्घजीवी बनाने में माताएँ गायत्री महामन्त्र से आशाजनक लाभ उठा सकती हैं ।

कई प्रारब्ध के कठोर विधान बड़े कठिन होते हैं, उनका पूर्ण रूप से हटाना सरल नहीं होता, तो भी उनमें गायत्री उपासना से सुधार अवश्य होता है । प्रायः सभी परिवारों पर समयानुसार बुरे दिनों और अशुभ घड़ियों की कुदशा आती है । ऐसे संकटों एवं अनिष्टों की भयंकरता कम करने के लिए स्त्रियाँ गायत्री माता की शरण ले सकती हैं । घर का अर्थ संकट, दारिद्र, राजदण्ड का भय, मुकदमा, रोग, शत्रु, भय आदि आपत्तियाँ जब सिर पर मँडरा रही हों तो इस महामन्त्र की सहायता से बहुत सहारा मिलता है । सन्तान का न होना, होकर मर जाना, केवल कन्याएँ ही होना, गर्भपात होते रहना आदि व्यथाओं में बहुधा पूर्व जन्मों के अशुभ संस्कार कारण होते हैं तो भी उनका निवारण गायत्री द्वारा होना असम्भव नहीं । जिन घरों में भूत, प्रेत का प्रकोप रहता है, वहाँ यदि गायत्री की पूजा होने लगे, तो किसी प्रेत पिशाच का ठहरना वहाँ नहीं हो सकता । किसी तान्त्रिक, ओझा आदि ने अपने ऊपर या अपने बालकों के ऊपर कोई कुप्रयोग किया हो, तो उसका अनिष्ट भी गायत्री माता की कृपा से शान्त हो जाता है ।

विधवाओं के लिए गायत्री साधना का बहुत भारी महत्त्व है । वे आत्मसंयम, सदाचार, विवेक, ब्रह्मचर्य पालन, इन्द्रिय निग्रह एवं मन को वश में करने के लिए

गायत्री साधना को ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रयोग कर सकती हैं। जिस दिन से वे यह साधना आरम्भ करती हैं उसी दिन से मन में शान्ति, स्थिरता, सद्बुद्धि और आत्मसंयम की भावना पैदा होती है । वैधव्य उनके लिए तप साधना जैसा शान्तिदायक बन जाता है । वे ऐसी आत्म शान्ति प्राप्त करती हैं कि जिसकी तुलना में सधवा रहने का सुख भी नितान्त तुच्छ दिखाई पड़ता है ।

कुमारी कन्याएँ अपने विवाहित जीवन में सब प्रकार सुख शान्ति प्राप्त करने के लिए भगवती की उपासना कर सकती हैं । सधवा बहिनों को अपने पति, पुत्र तथा दोनों कुलों को सुखी समृद्ध, स्वस्थ, सम्पन्न एवं दीर्घजीवी बनाने के लिए गायत्री उपासना करनी चाहिए । इसी प्रकार अन्य कठिनाइयों के निवारण एवं सुख शान्ति की वृद्धि के लिए भगवती का आश्रय लेना सब प्रकार मंगलमय होता है ।

गायत्री माता का आश्रय लेना स्त्रियों के लिए सब प्रकार उत्तम हैं । पिता की अपेक्षा माता अपनी कन्या पर अधिक प्यार करती है । गायत्री माता परम कल्याणमयी हैं, उनका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण है । अपनी गोदी में चढ़ने वाली किसी पुत्री को वे निराश नहीं करतीं ।

## गायत्री का स्त्री-स्वरूप क्यों ?

कई व्यक्ति पूछते हैं—गायत्री महाशक्ति को नारी रूप में क्यों पूजा जाता है जबकि अन्य सभी देवता नर रूप हैं । इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि गायत्री मन्त्र में सविता देवता की प्रार्थना के लिए पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग हुआ है, फिर उसे नारी रूप क्यों दिया गया ?

इन शंकाओं के मूल आधार में मनुष्य की वह मान्यता काम करती है जिसके अनुसार नर को श्रेष्ठ और नारी को निकृष्ट माना गया है । घरों में नारियाँ नर की सेवा पूजा करती हैं, उसके अधिकार आधिपत्य में रहती हैं, उन्हें छोटा या हेय माना जाता है । स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अपमान मानते हैं । किसी स्त्री अफसर के नीचे पुरुष कर्मचारियों को काम करना पड़े तो बाहर से कुछ न कहते हुए भी भीतर कुड़कुड़ाते हैं । किसी घर में स्त्री की बात चलती हो, पुरुष अनुगामी हो तो उसकी मखौल उड़ाई जाती है । नर की नारी के प्रति जो यह सामन्तकालीन तिरस्कार बुद्धि है उसी से प्रभावित होकर उसे यह सोचना पड़ता है कि वह नारी शक्ति की पूजा क्यों करे ? जब नर देवता मौजूद है तो नारी के आगे मस्तक झुका कर अपने नरत्व को हेय क्यों बनाया जाय ?

भगवान को नारी रूप में पूजने से किसी की कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही है । माता के हृदय में अपार वात्सल्य है । जितनी करुणा एवं ममता माता में होती है उतनी और किसी सम्बन्धी में नहीं । उपासना के लिए भगवान के किसी घनिष्ठ सम्बन्धी के रूप में ही मान्यता प्रदान करनी पड़ती है । निराकार ब्रह्म का ध्यान सम्भव नहीं । ध्यान के बिना उपासना नहीं हो सकती । निराकारवादी भी ध्यान उपासना प्रयोजन के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं । प्रकाश ही आखिर पंचभूतों के अन्तर्गत आता है । ध्यान भूमिका में प्रयुक्त किये जाने वाले प्रकाश बिन्दु एवं सूर्य मण्डल का एक आकार बन ही जाता है इसलिए उपासना में कोई न कोई आकार तो निर्धारित करना ही पड़ता है । इस आकार के साथ जितनी ही आत्मीयता, ममता, घनिष्टता होगी उतना ही मन लगेगा और चित्त एकाग्र होगा और भावनात्मक तन्मयता की ओर दृष्टि के साथ भगवत् प्राप्ति की ओर प्रगति होती चली जायगी । जिनके साथ घनिष्ठता स्थापित की जाती है उनके साथ कोई रिश्ता बन जाता है । रिश्ते का अर्थ है—असाधारण घनिष्ठता । परिवार के सदस्य कुटुम्बी और कन्याओं के आदान-प्रदान में सम्बन्धित रिश्तेदार कहलाते हैं । उससे अतिरिक्त लोगों को मित्र कहते हैं, गुरुजन भी । इन्हीं वर्गों में स्वाभाविक प्रेम बढ़ता है । इनके सान्निध्य में सुख और वियोग में दुख मिलता है । भगवान को प्राप्त करने के लिए उससे प्रेम सम्बन्ध दृढ़ करना होता है और उसके लिए उसे कोई प्रेम-पात्र कुटुम्बी रिश्तेदार अथवा मित्र जैसा सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है । इस सम्बन्ध, मान्यता में जितनी अधिक आत्मीयता होगी उतनी ही प्रतिक्रिया भी मिलेगी । गुम्बद अथवा कुएँ की प्रतिध्वनि की तरह हमारा प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम एवं अनुग्रह बन कर हमारे पास वापस लौटता है । जिस स्तर का भाव या प्यार हम भगवान के प्रति व्यक्त करते हैं उसी के अनुरूप दीवार पर मारी हुई रबड़ की गेंद की तरह लौटकर भगवान की अनुकम्पा हमारे पास वापस आ जाती है । इसलिए भगवान को कोई न कोई सम्बन्धी मान कर चलना होता है । उस मान्यता के आधार पर ही हमारी उपासना में प्रगति होती है ।

भगवान से कोई भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । उस एक को ही किसी भी आत्मीय भावना के साथ देखा जा सकता है । उसके लिए हर मान्यता उपयुक्त है । कहा भी है—

**त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव भ्राता च सखा त्वमेव ।**
**त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥**

प्रार्थना में जिन सम्बन्धों को गिनाया गया है उनमें माता का सम्बन्ध सर्वप्रथम है, वह सर्वोपरि भी है । क्योंकि माता से बढ़ कर परम निस्वार्थ, अतिशय कोमल करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई रिश्ता हो ही नहीं सकता । जब हम भगवान को माता मान कर चलते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया किसी सहृदय माता के वात्सल्य के रूप में ही उपलब्ध होती है । इन उपलब्धियों को पाकर साधक धन्य हो जाता है ।

पिता से माता का दर्जा सौ गुना अधिक बताया गया है । यों पिता भी बच्चों को प्यार करते हैं पर उस प्यार का स्तर माता की तुलना नहीं कर सकता । इसलिए सब में भगवान को माता मान कर चलना अपने ही हित में है । इसमें अपने को ही अधिक लाभ होता है ।

नारी के प्रति मनुष्य में एक वासनात्मक दुष्टता की प्रवृत्ति जड़ जमाये बैठी रहती है । यदि इसे हटाया जा सके—नर और नारी के बीच काम-कौतुक की कल्पना हटाई जा सके तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावनात्मक रसायन बन सकती है । नर और नारी के बीच जो 'रयि' और 'प्राण' विद्युत् धारा सी बहती है उनका सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है जैसा कि बिजली के 'नेगेटिव' और 'पॉजिटिव' धाराओं के मिलन से विद्युत संचार का माध्यम बन जाता है । माता और पुत्र का मिलन एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की आध्यात्मिक विद्युत्धाराओं का सृजन करता है । मातृ स्नेह से विहीन बालकों में एक बड़ा मानसिक अभाव रह जाता है भले ही उन्हें सांसारिक अन्य सुविधाएँ कितनी ही अधिक क्यों न हों । पत्नी, बहिन, पुत्री आदि के रूप में भी नारी नर को महत्त्वपूर्ण भावनात्मक पोषण प्रदान करती है और उसकी मानसिक अपूर्णता को पूर्ण करने में सहायक होती है । यह सांसारिक स्तर की बात उपसना के भावना क्षेत्र में भी लागू होती है । माता का नारी रूप ध्यान भूमिका में जब प्रवेश करता है तो उसमें प्राण की एक बड़ी अपूर्णता पूरी होती है ।

युवती नारी के रूप में माता का ध्यान करके हम नारी के प्रति वासनात्मक दृष्टि हटा कर पवित्रता का दृष्टिकोण जमाने का अभ्यास करते हैं । इसमें जितनी ही सफलता मिलती है उतना ही वाह्य जगत में हमारी नारी के प्रति वासना दृष्टि रखने में मन हटता जाता है । उस प्रकार नर नारी के बीच जिस पवित्रता की स्थापना हो जाने पर अनेक आत्मिक बाधाएँ कुण्ठाएँ एवं विकृतियाँ दूर हो सकती हैं उनका लाभ सहज ही मिलने लगता है । गायत्री माता का ध्यान एक वृद्ध नारी का नहीं वरन् एक युवती का होता है । युवती में यदि उत्कृष्टता की तथा पवित्र दृष्टि रखी जा सके तो समझना चाहिए कि आत्मिक स्तर सिद्ध योगियों जैसा तेजस्वी बन गया । गायत्री उपासना में इस महाशक्ति को नारी रूप देकर इस एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है ।

भाषा विज्ञान की दृष्टि में 'शक्ति' स्त्रीलिंग है । इसलिए यदि ध्यान कल्पना में उसे नारी रूप में निश्चित किया जाय तो उसमें अनुचित कुछ भी नहीं है । उस महा मन्त्र में सविता देवता के लिए पुल्लिग शब्दों का प्रयोग भले ही हुआ है वह है तो स्तुति ही, प्रार्थना ही । प्रार्थना और स्तुति दोनों ही स्त्रीलिंग हैं । इसी दशा में यदि गायत्री को स्त्री रूप में निश्चित किया जाता है तो इसमें बुराई क्या है । सच तो यह है कि शक्तितत्व को स्त्री पुरुष के वर्गों में विभक्त ही नहीं किया जा सकता । यह विभाजन तो शरीरधारी प्राणियों में सन्तानोत्पत्ति प्रयोजन के लिए होता है । दिव्य शक्तियाँ न तो शरीरधारी हैं और न उन्हें प्रजनन ही करना है, ऐसी दशा में उनमें वास्तविक लिंगभेद नहीं । उन्हें नर-नारी के रूप में तो ध्यान सुविधा के लिए ही चित्रित किया जाता है अथवा भाषा में जिस प्रकार का लिंग प्रयुक्त होता है उसी आधार पर उनका शरीर बना दिया जाता है । यह वस्तु वास्तविक नहीं वरन् मानवी कल्पना का खेल है ।

अग्नि स्त्रीलिंग है, तेजस् पुल्लिग । शब्दों में लिंग भेद है पर वस्तु एक ही है । वायु स्त्रीलिंग और मरुत पुल्लिग है । बात एक ही है पर शब्दों के आधार पर लिंग बदल गया । उपवन पुल्लिग है, वाटिका स्त्रीलिंग एक ही चीज के दो स्वरूप । शैय्या और पलंग एक होते हुए भी लिंग पृथक है । चन्द्रमा को हिन्दी में नर और अंग्रेजी में नारी मानते हैं । वस्तुतः चन्द्रमा एक ग्रह पिण्ड-मात्र है वह न नर है न नारी । भाषा और कल्पना में उसे नारी के रूप में खींचा जाता है । परब्रह्म की सर्वोपरि शक्ति को स्त्री कहा जाय या पुरुष यह हमारी भाषा और कल्पना पर निर्भर है । वस्तुतः वह लिंगभेद से परे है । उपासना में

गायत्री की तुलना नारी रूप में करके हम अपना ही साधनात्मक भावनात्मक प्रयोजन पूर्ण करते हैं । अतएव इसमें सन्देह तथा विवाद की कोई गुंजाइश नहीं है ।

नर की जननी होने के कारण वस्तुतः नारी उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं पवित्र है । उसका स्थान सम्भवतः बहुत ऊँचा है । माता का पूज्य स्थान पिता एवं उससे भी ऊँचा है । पुरुष की अपूर्णताएँ नारी के स्नेह सिंचन से ही दूर होती हैं । इसलिए यदि नारी के रूप में हमारा उपास्य इष्ट हो तो वह एक औचित्य ही है । अनादिकाल से भारतीय धर्म में ऐसी ही मान्यता चली आ रही है, जिसके अनुसार माता को ही नहीं पत्नी को भी पति से अधिक एवं प्रथम सम्मान मिला है । पति-पत्नी के सम्मिलित नामों में पत्नी की प्राथमिकता है । लक्ष्मी-नारायण, सीताराम, राधेश्याम, उमा-महेश, शची-पुरन्दर, माता-पिता, गंगा-सागर, आदि नामों में पत्नी को ही प्राथमिकता मिली है । कारण उनकी वरिष्ठता ही है । इस दृष्टि से भी यदि देवता का पुल्लिंग स्वरूप अधिक उत्तम है या स्त्रीलिंग स्वरूप, तो उसका सहज उत्तर नारी के रूप में ही जायेगा । ऐसी दशा में यह शंका सन्देह करना उचित नहीं कि गायत्रीशक्ति को नारी का रूप देकर उसे जो पूज्य स्थान पर बिठाया गया है उसमें कुछ अनुचित हुआ है । नर की श्रेष्ठता का अहंकार ही इस प्रकार के प्रश्नों का सृजन करता है ।

उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि में अगणित शास्त्रीय प्रमाण मिलते हैं उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

**अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निगुर्णस्य गुणात्मनः ।**
**उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥**

"ब्रह्म की सभी शक्तियाँ अचिन्त्य और निर्गुण हैं । उन स्वरूपों को उपासकों को समझाने के उद्देश्य से ऋषियों ने उनके रूपों की कल्पना करके मूर्तियों को बनाया है ।"

**भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गा प्रभवत्यज ।**
**दृश्यादृश्य विभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा ॥**
**नाऽहं नारी पुमांश्चाहं न क्लीवं सर्गसंक्षये ।**
**सर्गे सति विभेदः स्यात् कल्पितोऽयं धिया पुनः ॥**
**अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा ।**
**श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा, तृष्णा तथा क्षमा ॥**

*— देवी भागवत.*

"उत्पत्ति के समय सृष्टि के अर्थ से ही भेद प्रतीत होता है । यह दृश्य, अदृश्य का विभेद-द्वैतभाव सदैव रहता है । अर्थात् सृष्टि-दशा में ब्रह्म और ब्रह्म शक्ति दोनों स्वतन्त्र रूप से प्रकट होते हैं । प्रलय हो जाने हो पर न मैं स्त्री हूँ, न पुरुष और न क्लीव हूँ, केवल सृष्टिकाल में ही बुद्धि द्वारा कल्पित भेद दृष्टि में आता है । सृष्टि की विकास अवस्था में ही बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, पिपासा और क्षमा मैं ही हूँ ।"

**अरूपं भावनागम्यं परं ब्रह्म कुलेश्वरि ।**
**अरूपां रूपिणी कृत्वा कर्मकाण्डरता नरः ॥**

*—कुलार्णव तन्त्र*

"वह ईश्वरी शक्ति अरूप और केवल भावनागम्य है । पर कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य उस अरूप में से ही रूप की कल्पना कर लेते हैं ।"

**"एवं विधो यो भगवान चिदात्मा सा एव गायत्री............गायत्री परमेश्वरावेवास्थैव चेतनापुरुषस्य द्वे नामनी ध्यानेन तु स्त्रीलिंग ।"**

*—विष्णु धर्मोत्तर*

"इस प्रकार जो भगवान है वही गायत्री है । गायत्री और परमेश्वर ये उस चेतन-पुरुष के ही दो नाम हैं । परन्तु ध्यान के लिए वह (गायत्री रूप में) स्त्रीलिंग है ।

**जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ।**
**गरीयर्सीति जगतां माता शतगुणैः पितु ॥**

*—ब्रह्मवैवर्त पुराण*

"जगज्जननी प्रकृति है और जगत का पिता पुरुष है । जगत में पिता से सौ गुना अधिक महत्व माता का है ।"

**न बाला न च त्वं वयस्था न वृद्धा,**
**न च स्त्री न षण्ढः पुमानैव च त्वम् ।**
**सुरो नासुरी नरो वा न नारी,**
**त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥**

*—महाकाली स्तवन*

"हे महामाया ! न तुम बालिका हो, न वयस्क हो, न वृद्ध हो, स्त्री, क्लीव और पुरुष भी तुम नहीं हो, न देवता हो, न दानव हो, न नर हो, न नारी हो, तुम केवल परब्रह्म स्वरूपिणी हो ।"

**अचिन्त्यापि साकारशक्ति स्वरूपा,**
**प्रतिव्यक्त्यधिष्ठान सत्वैक मूर्तिः ।**

**गुणातीतानिर्द्वन्द्व बौधैकगम्या,**
**त्वमेका परब्रह्म रूपेण सिद्ध ।**

*—महाकाली स्तवन*

"तुम अचिन्तनीय होते हुए भी साकार मूर्तिरूपा हो । प्रत्येक प्राणी में सत्वगुण रूप में विराजमान रहती हो तथा गुणातीत हो । केवल तत्वज्ञान से ही तुम जानी जाती हो । तुम्हीं परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हो ।"

**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं,**
**कुमार उत वा कुमारी ।**
**त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं,**
**जातो भवसि विश्नतो मुखः ॥**

*—श्वे. ४-३*

"तू स्त्री है, तू पुरुष भी है, तू ही कुमार और कुमारी है, तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है ।"

**सा च ब्रह्म स्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ।**
**यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता ॥**
**अत एव हि योगीन्द्रै स्त्री पुम्भेदो न मन्यते ।**
**सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् सदपि नारद ॥**

*—देवी भाग ९ ।१ ।१० ।११*

"वही ब्रह्म प्रकृति ब्रह्म स्वरूपा, नित्या और सनातनी है । पर ब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण उस प्रकृति में निहित हैं जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति सदा रहती है । इसी से परम योगीगण स्त्री-पुरुष में भेद नहीं मानते । हे नारद ! वे कहते हैं, कि सत्-असत् जो कुछ भी है सब ब्रह्ममय है ।"

'कामधेनु तन्त्र' में कहा है कि—

**"युवती सा समाख्याता सा महाकुण्डली परा ॥"**

अर्थात् "वह परा जैसी महाकुण्डली अर्थात् महागायत्री युवती के रूप में कही गई है ।"

**स तस्मिन्नेवाकशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभः मानामुमां हैमवतीम् ।**

"इन्द्रादि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने को ब्रह्मस्थान में जो प्रतिमा प्रकट हुई उसी स्त्री-मूर्ति का दर्शन इन्द्र को हुआ ।"

**जगद्धात्रीं महामायां ब्रह्मरूपां सनातनीम् ।**
**दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवताप्सर किन्नराः ॥**

*—वृहद् विष्णु पुराण*

"जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी महाशक्ति को देख कर देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर सब परम हर्षित हुए ।"

**जयखिला सुराराध्ये जय कामेशि कामदे ।**
**जय ब्रह्ममयि देवि ब्रह्मानन्द रसात्मिके ॥**

*—ललितोपाख्यान ८ ।१२*

"हे महादेवि ! तुम ही समस्त देवताओं की आराध्य हो, तुम्हीं सर्व कामनाओं की ईश्वरी और उनको पूर्ण करने वाली हो ।"

**त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।**
**त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥**
**कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।**
**पर ब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥**
**तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ।**
**सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥**
**सर्वबीज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।**
**सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्व मङ्गल मङ्गला ॥**

*—ब्रह्मवैवर्त पु. प्रकृति. २१६६ ।७ ।१०*

"तुम्ही विश्वजननी, मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो । यद्यपि वस्तुतः तुम निर्गुण हो तथापि प्रयोजन वश सगुण हो जाती हो । तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो । परम तेजस्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने के हेतु मानव शरीर धारण करती हो । तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो । तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्व पूज्या एवं आश्रय रहित हो । तुम सर्वज्ञ, सब प्रकार से मंगल करने वाली और सर्व मंगलों की भी मंगल हो ।

**कथं जगत् किमर्थ तत् करोषि के न हेतुना ।**
**नाहं जानामि तद्देव यतोहं हि त्वदुद्भवः ॥**

*—शक्तिदर्शन*

"हे देवी ! तुम किसके लिए, किस हेतु जगत् की सृष्टि करती हो—मैं इस बात को नहीं जानता क्योंकि मैं तुम से उत्पन्न हूँ ।"

**माया ख्यायाः कामधेनोर्वत्सो जीवेश्वराबुभो ॥**

*—शक्तितत्व विमर्शिनी*

"जीव और ईश्वर दोनों माया रूपी कामधेनु के दो बछड़े हैं ।"

उपर्युक्त प्रमाणों में परब्रह्म को नारी रूप में चित्रण करने का रहस्य प्रकट किया गया है । नर और नारी में से किसे प्राथमिकता मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में नृतत्व विज्ञान का, जीव विज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता है । शोधकर्ता इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राथमिकता नारी को ही है । पहले भूमि बनी, बीजों का आविर्भाव उसके उपरान्त हुआ ।

नृतत्ववेत्ता 'हेवलाक ऐलिस' इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव जाति का आरम्भ नारी से ही होता है । पुरुष का अस्तित्व पीछे प्रकाश में आया । उन्होंने लिखा है—

"प्राथमिकता और प्रकृति के नियमानुसार पहले नारी की ही उत्पत्ति हुई । साधारणतया प्राणीमात्र की उत्पत्ति नारी जाति पर ही अवलम्बित है । प्राणी जगत् की सृष्टि के लिए पुरुष की आवश्यकता ही न थी अथवा गौण थी । रज और वीर्य के संयोग से विभिन्न गुणों द्वारा जीवनशक्ति को परिपुष्ट एवं प्रस्फुटित करने के हेतु लाभ की दृष्टि से पुरुष जाति का पीछे से विकास हुआ ।"

नारी में देवत्व की मात्रा पुरुष की तुलना में कहीं अधिक है । इसलिए जहाँ पुरुष को अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता होने पर ही पूज्य पद एवं सम्मान मिलता है वहाँ नारी को उसकी जननी, भगिनी, कन्या आदि विशेषताओं के कारण जन्मजात सम्मान मिल जाता है । उनके हृदय में वह विशालता विद्यमान है जिसके आधार पर शिशु को अपने शरीर का रस निचोड़ कर प्रदान कर सकती है । इन्हीं विशेषताओं के कारण मानवी होते हुए भी उसे देवी कहा जाता है । अधिकांश स्त्रियों के नाम के अन्त में देवी पद जोड़ा जाता है जैसे शकुन्तला देवी, उर्मिला देवी, भगवती देवी आदि । शास्त्र कहते हैं—

**स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम् ।**
**धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥**

*—चरक संहिता-चि. स्था. अ. २*

"प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियों में ही होता है । सन्तान की जननी भी वे ही होती हैं । धर्म स्त्रियों में रहता है, लक्ष्मी भी स्त्रियों में रहती है । इसलिए संसार स्त्रियों में ही स्थित है ।"

नारी रूप में परमात्मा का दिव्य दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं । इस प्रकार की दिव्य-दृष्टि जिसे प्राप्त है उसे सच्ची आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त हुई समझनी चाहिए । गायत्री उपासना में नारी प्रतिमा को वन्दनीय मानकर मनुष्य को पवित्रतम बनाने का प्रयत्न किया गया है । नारी वस्तुतः मूर्तिमान महामाया ही है । देखिये—

**जननी जन्म काले च स्नेह काले च कन्यका ।**
**भार्या भोगाय सम्पृक्ता अन्तकाले च कालिका ।**
**एकैव कालिका देवी विहरन्ती जगत्त्रये ॥**

"वही महामाया जननी रूप में हमको जन्म देती है, कन्या रूप में हमारी स्नेह की पात्र बनती है, भार्या के रूप में भोगदात्री बन जाती है और अन्त समय में कालिका के रूप में हमारी इहलीला संवरण कर देती है । इस प्रकार एक ही महादेवी तीनों लोकों में विचरण करती रहती है ।"

तन्त्र ग्रन्थों में नारी को भगवान् की मूर्तिमान प्रतिमा मानकर उसकी विधिवत् पूजा करने का विधान है । विभिन्न आयु तथा स्थिति की नारियों को विभिन्न देवियों के रूप में पूजनीय मानकर उनका वन्दन-अर्चन किया जाता है । ब्राह्मण भोजन की तरह ही कन्या भोजन का भी पुण्य माना गया है । नवरात्रियों में, पुरश्चरणों के अन्त में तो विशेष रूप से कन्या भोजन करने की ही परम्परा है । ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्या एवं सेवा के आधार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं पर कन्याओं में वह तत्व जन्मजात रूप से स्वभावतः अनायास ही विद्यमान रहता है । इस सन्दर्भ में तन्त्र ग्रन्थ का अभिमत देखिये—

"एक वर्ष की आयु वाली बालिका 'कुमारी' कहलाती है, दो वर्ष वाली 'सरस्वती', तीन वर्ष वाली 'त्रिधामूर्ति', चार वर्ष वाली 'कालिका', पाँच वर्ष की होने पर 'सुभगा', छः वर्ष की 'उमा', सात वर्ष की 'मालिनी', आठ वर्ष की 'कुब्जा', नौ वर्ष की 'काल-सन्दर्भा', दसवें में 'अपराजिता', ग्यारहवें में 'रुद्राणी', बारहवें में 'भैरवी', तेरहवें वर्ष में 'महालक्ष्मी', चौदह पूर्ण होने पर 'पीठनायिका', पन्द्रहवें में 'क्षेत्रज्ञा' और सोलहवें में 'अम्बिका' मानी जाती है । इस प्रकार जब तक ऋतु का उद्गम न हो । तभी तक क्रमशः संग्रह करके प्रतिपदा आदि से लेकर पूर्णिमा तक वृद्धि-भेद से कुमारी पूजन करना चाहिए ।" *—रुद्रयामल-उत्तरखण्ड*

"आठ वर्ष की बालिका गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या कहलाती है । इसके बाद वही महामाया और रजस्वला भी कही गई है । बारहवें वर्ष से लेकर बीसवें तक वह 'सुकुमारी' कही गई है ।"

*—विश्वसार तन्त्र*

"यजमान को चाहिए कि दस कन्याओं का पूजन करे । उनमें भी दो वर्ष से लेकर दस वर्ष तक की अवस्था की कुमारियों का ही पूजन करना चाहिए । दो वर्ष की आयु वाली है वह 'कुमारी'—तीन वर्ष की 'त्रिमूर्ति'—चार वर्ष की 'कल्याणी'—पाँच वर्ष की 'रोहिणी'—छ: वर्ष की 'कालिका'—सात वर्ष की 'चण्डिका'—आठ वर्ष की 'शाम्भवी'—नौ वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष की 'सुभद्रा' कही गई है । इनका मन्त्रों द्वारा पूजन करना चाहिए । एक वर्ष वाली कन्या को पूजा से प्रसन्नता नहीं होगी, अत: उसका ग्रहण नहीं है और ग्यारह वर्ष के ऊपर वाली कन्याओं का पूजा में ग्रहण वर्जित है ।"

"जो कुमारी को अन्न, वस्त्र, जल अर्पण करता है उसका वह अन्न मेरु के समान और जल समुद्र के सदृश अक्षुण्ण और अनन्त होता है । "योगिनी तन्त्र" के कथनानुसार—"कुमारी पूजा का फल अवर्णनीय है, इसलिए सभी जाति की बालिकाओं का पूजन करना चाहिए । कुमारी पूजन में जाति भेद का विचार करना उचित नहीं ।" 'काली-तन्त्र' में कहा गया है कि—"सभी बड़े-बड़े पर्वों पर अधिकतर पुण्य मुहूर्त में और महानवमी की तिथि को कुमारी पूजन करना चाहिए । सम्पूर्ण कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए कुमार पूजन अवश्य करे ।" 'वहन्नीलतन्त्र' के अनुसार—"पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, भय और अत्यन्त उत्कट शत्रु को भी नष्ट कर डालती हैं ।" रुद्रयामल में लिखा है कि—कुमारी साक्षात् योगिनी और श्रेष्ठ देवता है । विधियुक्त कुमारी को अवश्य भोजन कराना चाहिए । कुमारी को पाद्य, अर्घ्य, कुंकुम और शुभ चन्दन आदि अर्पण करके भक्तिभाव से उसकी पूजा करे ।" *—कुब्जिका तन्त्र*

कुमारी कन्याओं तक ही यह दिव्य भाव सीमित नहीं माना गया है वरन् उसका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । प्रत्येक नारी में देवत्व की मान्यता रखना और उसके प्रति पवित्रतम श्रद्धा रखना एवं वैसा ही व्यवहार करना उचित है जैसा कि 'देवी-देवताओं के साथ किया जाता है । नारी मात्र को भगवती गायत्री की प्रतिमाएँ मानकर जब साधक का हृदय पवित्रता का अभ्यासी हो जाय तो समझना चाहिए कि उसके लिए परम सिद्धि की अवस्था अब समीप है । शास्त्र उसी प्रका(र की मनोभूमि बनाने का हमें निर्देश करते हैं और बताते हैं—

**सर्वस्त्रीनिलया, जगदम्बामयं पश्य**
**स्त्रीमात्रमाविशेषतः ।**

"स्त्री-मात्र को जगतमाता और जगत्गुरु मान कर पूजो ।"

**गायत्री वा इदं सर्वम्**

*—नृसिंह पूर्वतापनीयोपनिवह ४-२*

"यह समस्त सृष्टि गायत्री स्वरूप ही है ।"

**विद्यासमस्तास्तव देवि भेदाः,**
**स्त्रिय समस्तासकला जगस्तु ।**
**स्तयैकया पूरितमम्व वैतत्,**
**वास्ते स्तुतिः स्तव्य परा परोक्ति ॥**

इस सम्पूर्ण संसार में जो परा-अपरा विद्याएँ हैं सो आपका ही भेद है । इस संसार में समस्त नारियाँ आपका ही भेद हैं । संसार में समस्त नारियाँ आपका ही रूप हैं ।

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।**
**यत्र नार्यो न पूज्यन्ते श्मशानं तत्र वैगृहम् ॥**

*—मनु*

"जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ नारी का तिरस्कार होता, वह घर निश्चय ही श्मशान है ।"

**स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौटिल्यं चाप्रियं वचः ।**
**आत्मनो हितमान्विच्छन्देवी भक्ते विवर्जयेत् ॥**

"अपना कल्याण चाहने वाला, माता का उपासक स्त्री की निन्दा न करे, न उन्हें मारे, न उनसे छल करे, न उनका जी दुखाये ।"

नारी मात्र के प्रति उच्च भाव रखने और उनके साथ सहृदय सद्व्यवहार करने से व्यक्ति एवं समाज का सर्वांगीण उत्कर्ष हो सकता है । भावात्मक पवित्रता से बढ़ कर मनुष्य के पास और कोई श्रेष्ठता हो नहीं सकती ।

जब हम भगवान को माता के रूप में पूजते हैं तो वे भी हमारे लिए माता जैसा वात्सल्य लेकर प्रस्तुत होते हैं । कहना न होगा कि पिता की तुलना में माता का हृदय अत्यधिक कोमल होता है । वह अपने पुत्र एवं भक्त के प्रति सहज ही करुणार्द्र हो उठती है । माता की शरण लेने वाला अपेक्षाकृत सदा ही अधिक लाभ में रहता है । ऐसे उदाहरण भी हैं—

**पिते वत्वत्रेयाजननि परि पूर्णागसि जने ।**
**हित स्त्रोती वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधीः ॥**
**कि येतन्निदोषः व इहं जगतीति त्वमुचितैः ।**
**रूपापै र्विस्यार्य स्वजनयसि माता तद सिनः ॥**

*—पराशर भट्ट*

"परम पिता परमात्मा जब अपराधी जीव परपिता के समान कुपित हो जाते हैं तब आप ही उन्हें समझाती हो कि—यह क्या करते हो ? इस संसार में पूर्ण निर्दोष कौन है ? उनका क्रोध शान्त कर आप ही उनमें दया उपजाती हैं । इसलिए आप ही हमारी दयामयी माता हैं ।"

**पुरतः पतितं देवी धारण्यां वायसं तदा ।**
**तच्छिरः पादयो स्तस्य योजयामास जानकी ॥**

*—रामायण*

"जब काकरूपी जयन्त तीनों लोकों में आश्रय न पाकर रामचन्द्रजी की शरण आकर गिर पड़ गया तो जानकीजी ने उसका सिर रामचन्द्रजी के पैरों में रखकर उसकी रक्षा की प्रार्थना की ।

**मातर्मैथिलि राक्षसी स्त्वयि तदैवाद्रपिराधास्त्वया ।**
**रक्षन्त्या पवनात्सजाल्लघु तरा रामस्य गोष्ठी कृता ॥**
**काकं ते च विभीषणं शरणभित्युक्ति क्षमौ रक्षतः ।**
**सानरसान्द्र महागस सुख यतु क्षान्तिस्त्वया कस्यिका ॥**

"रामचन्दजी ने शरण आने पर ही काक और विभीषण की रक्षा की । उसमें उनका क्या बड़ा गौरव रहा । जानकी जी की महानता तो देखो, उन्होंने अपराध करने वाली राक्षसियों के बिना कोई प्रार्थना किये ही दण्ड देने को उद्यत हनुमान जी से छुड़ा दिया । जानकी जी की करुणा रामचन्द्रजी से कहीं बड़ी है ।"

अस्तु नारी को हेय या छोटा मानकर उसे पूजा के अयोग्य होने की कुशंका मन में नहीं उठने देनी चाहिए और न यह सोचना चाहिए कि पुल्लिंग देवता का पूजन मातृ कर पूजन से अधिक उत्तम है । माता ही प्रथम देवता है । गायत्री माता की शरण लेकर हम अपने ऊपर चढ़े हुए चिन्ताओं, कुण्ठाओं, दैन्य दुर्भावों एवं शोक-संतापों से छुटकारा पा सकते हैं । इस रहस्य को जानने वाला आध्यात्म विद्या का मर्मज्ञ भावनापूर्ण हृदय से उस महाशक्ति के प्रति अपनी अभिव्यंजना व्यक्त करते हुए कहता है—

**ॐ नमस्ते देविः ! गायत्री ! सावित्री ! त्रिपदेऽक्षेट ।**
**अजरे ! अमरे ! मातस्त्राहि मां भवसागरात् ॥**
**ब्रह्मविद्ये ! महाविद्ये ! वेदमातर्नमोऽस्तु ते ।**
**अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड व्यापिन ! ब्रह्मचारिणि ॥**
**नमोनमस्ते गायत्री ! सावित्री ! त्वां नमाम्यहम् ।**
**सरस्वति ! नमस्तुभ्यं तुरीये ! ब्रह्मरूपिणी ॥**

*—वशिष्ठ-संहिता*

"हे देवी गायत्री ! हे सावित्री ! हे त्रिपदास्वरूपा ! हे अक्षरा ॐ स्वरूपा ! हे अजर-अमर स्वरूपा ! मेरा तुझे नमस्कार है । हे माता ! भवसागर से मेरी रक्षा कर । हे ब्रह्म विद्ये ! हे महाविद्ये ! हे वेदमाता ! हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों से व्यापक ! हे ब्रह्मचारिणि ! तुझे नमस्कार है ! नमस्कार है । हे गायत्री ! हे सावित्री ! हे सरस्वती ! तुरीय ब्रह्मरूपिणी तुझे मेरा नमस्कार है ।"

## गायत्री उपासना मातृ रूप में ही क्यों ?

संसार में सबसे अधिक प्रेम सम्बन्ध का अद्वितीय उदाहरण माता है । माता अपने बालक को जितना प्रेम करती है उतना और कोई सम्बन्धी नहीं कर सकता । यौवन के उपरान्त काल में पति-पत्नी में भी अधिक प्रेम देखा जाता है पर वह वास्तविक दृष्टि से माता के प्रेम की तुलना में बहुत ही हल्का और उथला बैठता है । पति-पत्नी का प्रेम, आदान-प्रदान, एक दूसरे के मनः संताप एवं प्रतिफल के ऊपर निर्भर रहता है । उसमें कमी या विघ्न हो तो वह प्रेम विरोध के रूप में परिवर्तित हो जाता है परन्तु माता का प्रेम अतीव सात्विक और उच्च कोटि का होता है । बालक से प्रतिफल मिलना तो दूर रहा उलटे अनेक कष्ट होते हैं । इस पर भी वह वात्सल्य की, परम सात्विक प्रेम की, अमृतधारा बालक को पिलाती रहती है । कुपुत्र होने पर भी माता की भावनाएँ घटती नहीं ।

श्री मद्‌भागवत में वर्णन आता है कि कंस की सभा में जब श्रीकृष्ण जी पधारे तो सभासदों ने अपनी-अपनी भावनाओं के अनुरूप उन्हें देखा । रामायण में वर्णन है कि सिया-स्वयंवर के समय उपस्थित जन-समुदाय राम को साक्षात् वैसा ही देखते थे जैसी कि उनकी भावना थी । ब्रह्म तत्व स्फटिक मणि के समान स्वच्छ निर्मल एवं निर्विकार है । अपनी-अपनी भावनायें ही कंस सभा और सीय-स्वयंवर सभासदों की भाँति भगवान में परिलक्षित होती हैं । दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब दीखता है । कुएँ में अपनी ही प्रतिध्वनि वापस लौटती है । स्फटिक मणि के निकट जिस रंग की वस्तु रखी होगी उसी रंग की वह मणि दिखाई देने लगेगी । भगवान को हम माता, पिता, भ्राता, सखा आदि जिस किसी भाव से देखेंगे वे उसी भाव के अनुरूप हमारे लिए प्रतिध्वनित होंगे ।

हम भगवान को प्रेम करते हैं और उनके अनन्य प्रेम का प्रतिदान करना चाहते हैं । तय माता के रूप में उन्हें भजना सबसे अधिक उपयुक्त एवं अनुकूल बैठता है । माता का जैसा वात्सल्य अपने बालक पर होता है वैसा ही प्रेम प्रति फलप्राप्त करने के लिए भगवान से मातृ-सम्बन्ध स्थापित करना आत्म-विद्या के, मनोवैज्ञानिक रहस्यों के आधार पर अधिक उपयोगी एवं लाभदायक सिद्ध होता है । कंस, भगवान को काल के रूप में देखता था उसे दिन-रात, सोते-जागते उनका प्राणघातक शस्त्र पाणि महाभयंकर स्वरूप दिखाई पड़ता था । सूरदास के कृष्ण बाल गोपाल स्वरूप थे । हमारे लिए माता का सम्बन्ध अधिक स्नेहमय हो सकता है । माता की गोदी में बालक अपने को सबसे अधिक आनन्दित, सुरक्षित, सन्तुष्ट अनुभव करता है । प्रभु को माता मानकर जगज्जननी वेदमाता गायत्री के रूप में उसकी उपासना करें तो उसकी प्रतिक्रिया भगवान की ओर से भी वैसे ही वात्सल्यमय होगी जैसी कि माता की अपने बालक के प्रति होती है ।

इसके अतिरिक्त एक वैज्ञानिक कारण यह भी है कि विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है । पुरुष शरीर और मन में कुछ ऐसी कमियाँ हैं जो स्त्री से ही पूरी होती हैं । उन अभावों की पूर्ति के लिए विपरीत लिंग की ओर सदैव खिंचाव रहता है । ध्यान करने में पुरुषाकार रूप में मन की उतनी प्रवृत्ति नहीं होती जितनी कि स्त्री रूप में । गायत्री माता की उपासना से मन अपेक्षाकृत अधिक शान्त, स्थिर एवं सचेतन रह सकता है । इसलिए गायत्री का इष्ट निर्धारण शीघ्र प्रतिफलित होता है ।

हम भगवान को प्रेम करते हैं और उनके अनन्य प्रेम का प्रतिदान प्राप्त करना चाहते हैं । तब माता के रूप में उन्हें भजना सबसे अधिक उपयुक्त एवं अनुकूल बैठता है । माता का जैसा वात्सल्य अपने बालक पर होता है वैसा ही प्रेम—प्रतिफल प्राप्त करने के लिए भगवान से मातृ सम्बन्ध स्थापित करना आत्म विद्या के मनोवैज्ञानिक रहस्यों के आधार पर अधिक उपयोगी एवं लाभदायक सिद्ध होता है । प्रभु को माता मानकर जगज्जननी वेदमाता गायत्री के रूप में उनकी उपासना करें तो उसकी प्रतिक्रिया भगवान की ओर से भी वैसी ही वात्सल्यमय होगी जैसी कि माता की अपने बच्चे के प्रति होती है ।

नारी शक्ति पुरुष के लिए सब प्रकार आदरणीय है, पूजनीय एवं वन्दनीय भी । पुत्री के रूप में, बहिन के रूप में माता के रूप में वह स्नेह करने—मैत्री करने योग्य एवं गुरुवत् पूजन करने योग्य है । पुरुष के शुष्क अन्तर में अमृत सिंचन यदि नारी द्वारा नहीं हो पाता तो वैज्ञानिक बतलाते हैं कि वह बड़ा रूखा, कर्कश, क्रूर, निराश, संकीर्ण एवं अविकसित रह जाता । वर्षा से जैसे पृथ्वी का हृदय हर्षित होता है और उसकी प्रसन्नता हरियाली एवं पुष्प-पल्लव के रूप में फूट पड़ती है, वैसे ही पुरुष भी नारी की स्नेह वर्षा से इसी प्रकार सिंचन प्राप्त करके अपनी शक्तियों का विकास करता है । परन्तु एक भारी विघ्न इस मार्ग में वासना का है जो अमृत को भी विष बना देता है । दुराचार, कुदृष्टि एवं वासना का सम्मिश्रण हो जाने से नर-नारी के सान्निध्य से प्राप्त होने वाले अमृत फल विष बीज बन जाते हैं । इसी बुराई के कारण स्त्री पुरुषों को अलग-अलग रहने के सामाजिक नियम बनाए गये हैं । फलस्वरूप दोनों पक्षों को उन असाधारण लाभों से वंचित रहना पड़ता है जो नर-नारी के पवित्र मिलन पुत्री-बहिन और माता के रूप में सामीप्य होने से मिल सकते हैं ।

इस विष विकार की भावना का शमन करने के लिए गायत्री साधना परम उपयोगी है । विश्व माता के रूप में भगवान की मातृभाव से परमपुण्य भावनाओं के साथ आराधना करना मातृ जाति के प्रति पवित्रता की अधिकाधिक वृद्धि करना है । इस दिशा में जितनी अधिक सफलता मिलती जाती है उसी अनुपात से अन्य इन्द्रियों का निग्रह, मन का निरोध एवं अनेक मनोविकारों का शमन अपने आप होता जाता है । मातृभक्त के हृदय में दुर्वासनाएँ अधिक देर तक नहीं ठहर सकतीं । इसी कारण श्रीरामचन्द्रजी परमहंस, योगी अरविंद घोष, छत्रपति शिवाजी, महात्मा गान्धी, स्वामी दयानन्द आदि कितने ही महापुरुष शक्ति के उपासक थे । शाक्त धर्म भारत का प्रधान धर्म है । जन्मभूमि को हम भारत माता के रूप में पूजते हैं । शिव से पहले शक्ति की पूजा होती है । माता का पिता और गुरु से भी पहला स्थान है । इस प्रकार विश्व नारी के रूप में भगवान की पूजा करना नर पूजा की अपेक्षा अधिक उत्तम उपयोगी है । गायत्री उपासना की यही विशेषता है ।

ब्रह्म निर्विकार है, इन्द्रियातीत तथा बुद्धि से अगम्य । उस तक सीधा पहुँचने का कोई मार्ग नहीं । नाम-जप, रूप का ध्यान, प्रार्थना, तपस्या साधना, चिन्तन, श्रवण, कीर्तन आदि सभी आध्यात्मिक उपकरण हैं । सतोगुणी माया,

एवं चित्त के द्वारा ही जीव और ईश्वर का मिलन हो सकता है । यह आत्मा और परमात्मा का मिलाप कराने वाली शक्ति गायत्री ही है । ऋषियों ने इसी की उपासना की है, क्योंकि यह खुला रहस्य है कि शक्ति बिना मुक्ति नहीं । सरस्वती, लक्ष्मी, काली, माया, प्रकृति, राधा, सीता, सावित्री, पार्वती आदि के रूप में गायत्री की ही पूजा की जाती है । पिता से सम्बन्ध होने का कारण माता ही है । इसीलिए पिता से माता का दर्जा ऊँचा है । ईश्वर की असीम आनन्द राशि का आस्वादन करने का सौभाग्य गायत्री माता द्वारा ही मानव प्राणी को प्राप्त होता है । ब्रह्म की इच्छा, शक्ति एवं क्रिया गायत्री है उसी से उत्पत्ति, विकास एवं अवसान का आयोजन होता है । सुन्दरता, मधुरता क्रीड़ा, सम्पत्ति, कीर्ति, आशा, प्रसन्नता, करुणा, मैत्री आदि रूप में यह महाशक्ति ही जीवन क्षेत्र को आनन्दित एवं तरंगित करती रहती है । इस विश्वनारी की, सर्वव्यापी महाशक्ति गायत्री की, महामाता की आराधना करके हम अधिकाधिक आनन्द की ओर, बन्धन मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं ।

## गायत्री का मनुष्य मात्र को अधिकार

कहा जाता है कि गायत्री का अधिकार केवल द्विजों अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रिय और वैश्य जातियों को ही है । इस प्रतिपादन में जाति का अर्थ केवल उसी परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्तियों से है, जो उपर्युक्त जाति के ही हों । परन्तु ऐसा नहीं है । द्विजों को ही गायत्री के अधिकार का जहाँ प्रतिपादन प्राचीन शास्त्र ग्रन्थों में किया गया है वहाँ कुल या वर्ग विशेष में जन्म लेने वाले व्यक्तियों से ही नहीं है बल्कि गुण कर्म स्वभाव से जो व्यक्ति अपने मनुष्य होने का प्रमाण देते हैं उनसे है । प्राचीन काल में उन्हीं व्यक्तियों को ब्राह्मण कहा जाता था जो गुण कर्म स्वभाव से अपने भीतर ब्राह्मणत्व विकसित कर लेता था । ब्राह्मण की मान्यता, भावना एवं आकांक्षा किस स्तर की होती है इसका दिग्दर्शन परिपरिचय इस प्रकार दिया गया है—

**याचे न कञ्चन न कञ्चन वंचयामि,**
**सेवे न कञ्चन निरस्तसमस्तदैन्यः ।**
**श्लक्ष्णंवसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीं,**
**देवी हृदि स्फुरति मे कुल कामधेनुः ॥**

*—नीति दर्शन सार*

ब्राह्मण कहता है— "मैं किसी से याचना नहीं करता न किसी को ठगता हूँ, न किसी की नौकरी करता हूँ, तो भी मुझे कभी दीन होकर रहना नहीं पड़ता । क्योंकि सुन्दर वस्त्र, मधुर भोजन, श्रेष्ठ स्त्री—ये सब चमत्कार मेरे हृदय में नित्य स्फुरण करने वाली मेरे कुल की कामधेनु, ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी देवी के ही हैं ।"

**निर्धनोऽपि सदा तुष्टाऽप्य सहायो महाबलः ।**
**नित्यतृप्तोऽप्यभञ्जाना सर्वत्र समदर्शिनः ॥**

*—नीति दर्शन सार*

"निर्धन होने पर भी सदैव सन्तुष्ट रहता है, असहाय होने पर भी महाबलिष्ठ होता है, उपवासी होने पर भी नित्य तृप्त रहता है, वही सच्चा ब्राह्मण है ।

जहाँ द्विज शब्द का प्रयोग आता है, वहाँ द्विज से अर्थ है दो बार जन्म लेने वाला । एक जन्म तो माता के गर्भ से होता है । इस जन्म की दृष्टि से सभी प्राणी एकसमान हैं । दूसरा जन्म है जब गुरु की प्रेरणा से मनुष्य अपने कल्याण के लिए प्रेरित होता है और मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने की दिशा में अग्रसर होता है । ऐसे द्विजों के लिए कहा गया है कि—

**गायत्री सामुपासीनो द्विजो भवति निर्भयः ।**

*शिव तत्व विवेक*

गायत्री की भली प्रकार उपासना करने से ब्राह्मण सब भयों से छूट कर निर्भय हो जाता है ।

**वृद्धैः काश्यप गौतम प्रभृतिभि र्भृग्वांगिरोत्र्या दिभिः ।**
**शुक्रागस्त्य बृहस्पति प्रभृतिभिर्ब्रह्मर्षिभिः सेवितम् ।**
**भारद्वाजयतं ऋषीक तनयैः प्राप्तं वशिष्ठात् पुनः ।**
**सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभि कृत्स्ना जिता दानवः ।**

*—देवल*

अर्थात्—इस गायत्री की उपासना करके काश्यप, गौतम, भृगु, अंगिरा, अत्रि, भारद्वाज, वृहस्पति, शुक्राचार्य, अगस्त्य, वशिष्ठ आदि ने ब्रह्मर्षि पद पाया और इन्द्र वसु आदि देवताओं ने असुरों पर विजय पाई ।

**गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरता ।**
**यस्या विनात्वधः यातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥**

*—देवी भागवत*

गायत्री उपासना अनादिकाल से है, ऐसा वेदों में कहा गया है । इसके बिना ब्राह्मण की दुर्गति होती है ।

**इत्येवं संविचार्याथ गायत्री प्रजपेत्सुधीः**
**आदि देवीं च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदायजाम् ।**

*—शिव कैवल्य*

इन बातों पर विचार करके ब्राह्मण को चाहिए कि ब्राह्मणत्व प्रदान करने वाली गायत्री का जप नित्य किया करे ।

**बहुनाकिमि होक्तेन यथावत् साधु साधिता**
**द्विजन्मनामियं विद्या सिद्धि कामदुघामता**

*—शारदा तिलक*

अधिक कहने की क्या आवश्यकता । भली प्रकार साधना की हुई यह गायत्री विद्या द्विजों के लिए कामधेनु के समान सब सिद्धियों को देने वाली है ।

**स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरोन संत्रन्नतुमर्हति ।**
**गायत्रीजपशुद्ध ह शुद्धो ब्राह्मण उच्यते ।**

गायत्री जप से शुद्ध हुआ ब्राह्मण ही शुद्ध कहा जा सकता है । जो स्वयं शुद्ध हो चुका है वही दूसरों को भी शुद्ध कर सकता है ।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि गायत्री उपासना में किसी जाति विशेष की महत्ता का प्रतिपादन नहीं है । ईश्वरीय ज्ञान, वेद और उसकी उपासना के अधिकार से किसी भी मनुष्य को वंचित नहीं किया जा सकता । इन शास्त्र वचनों से तो इस तथ्य का प्रकटीकरण किया गया है कि जो अपने मानसिक, बौद्धिक, एवं भावनात्मक 'स्तर' को निर्मल बनाकर जितना ब्रह्मवर्चस् प्राप्त कर लेगा उसे उतनी ही अधिक—उतनी ही शीघ्र—उतनी ही उच्चस्तर की सिद्धि सफलता मिलेगी । गायत्री उपासना का अवलम्बन ग्रहण करने वाले को जप अनुष्ठानों की भाँति ही अपनी मनोभूमि को परिष्कृत करने की साधना में भी संलग्न होना चाहिए ।

ब्राह्मणेतर वर्ण भी गायत्री उपासना का लाभ उठा सकते हैं । उसकी चर्चा शास्त्रों में जगह-जगह उपलब्ध होती है । यथा—

**सोमदित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथाः**
**पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्री परमां गतिम् ।**

*—महाभारत*

हे युधिष्ठिर, सम्पूर्ण चन्द्रवंशी, रघुवंशी तथा कुरुवंशी नित्य ही पवित्र होकर परमगतिदायक गायत्री मन्त्र का जप करते हैं ।

**तस्यर्षेः परमोरं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।**
**स्नात्वा कृतादिको वीरौ जपेतुः परमंजपम् ।**

*—वाल्मीकि रामायण*

परम उदार ऋषि के वचन सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई स्नान आचमन करके गायत्री का परम जप करने लगे ।

**प्रभावेणैव गायत्र्याः क्षत्रियः कौशिकी वंशी ।**
**राजर्षित्व परित्यज्य ब्रह्मर्षि पदमीयिवान् ।**
**सामर्थ्य प्रापचात्युच्चै रन्यद युवन स्त्रर्जन ।**
**किं किं न दयात् गायत्री सम्यगेवमुपासिता ।**

*—स्कन्द पुराण*

क्षत्रिय विश्वामित्र ने राजर्षि पद से उन्नति करते हुए ब्रह्मर्षि पद गायत्री मन्त्र की उपासना से ही प्राप्त कर लिया तथा दूसरी सृष्टि रच डालने की भी शक्ति प्राप्त की थी । भली प्रकार साधना की हुई गायत्री भला कौनसा ऐसा अभीष्ट लाभ है जिसे प्राप्त नहीं करा सकती ?

**वंदेतां परमां देवी गायत्री वरदां शुभम् ।**
**यत्कृपालेशतो यान्ति द्विजा वै परमांगतिम् ।**

उस वरदात्री परम देवी गायत्री को नमस्कार है, जिसकी लेश मात्र कृपा से द्विज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, परमगति को प्राप्त करते हैं ।

उपर्युक्त अभिवचनों में ब्रह्मणेतर जातियों द्वारा गायत्री उपासना करने और उसके आधार पर परम सिद्धियाँ प्राप्त करने का वर्णन है । इससे स्पष्ट है कि जातिगत बन्धन लगाने का शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है । केवल इतना ही कहा गया है कि जो इस महाशक्ति का वास्तविक लाभ उठाना चाहें वे अपने आन्तरिक एवं व्यावहारिक जीवन में ब्राह्मणत्व की विशेषताएँ उत्पन्न करें । जो इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं उन्होंने इतना कुछ पाया है कि स्वयं धन्य हुए हैं और दूसरों को धन्य बनाया है । जिन्होंने जप ध्यान तक ही अपने को सीमित रखा वे लौकिक जीवन की छुटपुट समृद्धियाँ प्राप्त कर सकने के स्वल्प लाभों से आगे बढ़कर कोई अधिक महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके । कारण स्पष्ट है । शारीरिक और मानसिक अनाचार बरतने से आत्मशक्ति का इतना क्षरण हो जाता है कि किसी मन्त्र तन्त्र के सहारे भी अपना आन्तरिक वर्चस्व बढ़ाने का अवसर नहीं मिलता । इसके आधार पर ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण स्तर की गरिमा गौरवपूर्ण आत्मिक स्तर प्राप्त कर सकता है ।

इसके लिए किसी प्रकार का कोई जाति बन्धन नहीं है । मनुष्य मात्र आत्मशोधन, आत्म परिष्कार का मार्ग अपना कर गायत्री उपासना के समस्त लाभ उठा सकता है ।

## भ्रान्तियों का निवारण

गायत्री उपासना के सन्दर्भ में कई प्रकार की शंका कुशंकाओं की, विधि निषेधों की चर्चा होती रहती है । अक्सर यह सोचा जाता है कि उसके विधि विधान में कोई त्रुटि हो गई तो उससे अनिष्ट होगा । इसलिए लोग डरते रहते हैं और यह जानना चाहते हैं कि कहीं कोई ऐसी चूक न हो जाय जिससे उन्हें लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़े ।

उपयुक्त विधि विधान के साथ हर काम करना उत्तम है । इसमें शोभा और सफलता दोनों की ही सम्भावना रहती है । चूक करने से इतना तो स्पष्ट है कि जैसा लाभ अपेक्षित है वैसा नहीं मिलता इतने पर भी एक बात स्पष्ट है कि उससे किसी प्रकार के विपरीत प्रतिफल की या उलटा अशुभ होने की कोई आशंका नहीं है ।

गीता में भगवान कहते हैं—

**नेहाभिक्रम नाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते । स्वल्प मप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो मयात् ।**

अर्थात् इस मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले का पथ अवरुद्ध नहीं होता । उलटा परिणाम भी नहीं निकलता । थोड़ा सा प्रयत्न करने पर भी भय से त्राण मिलता है ।

भगवान का नाम किसी भी स्थिति में लिया जाय उसका सत्परिणाम ही हो सकता है । दुष्परिणाम तो दुष्कर्मों के निकलते हैं । भगवत् उपासना कोई दुष्कर्म नहीं है । जानबूझकर या अनजाने भी सत्कर्म करते रहने का थोड़ा या बहुत लाभ ही होता है । यह बात किसी के भी मन में नहीं आनी चाहिए कि किसी विधि विधान में कमी रह जाने से किसी प्रकार का अनिष्ट हो सकता है । वाल्मीकि ने उलटा नाम जपा था, उनके विधि विधान में यह स्पष्ट त्रुटि थी । इतने पर भी भक्ति भावना और चरित्र दृष्टिकोण बदल देने के कारण उनकी उस विधानत्रुटि के कारण कोई हानि नहीं पहुँची और वे सफलता के साथ चरम लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो सके ।

यह स्पष्टीकरण इस उद्देश्य से किया जा रहा है कि किसी को उपासना आरम्भ करने और उसे चलाते रहने में अकारण आशंकाओं से ग्रस्त न रहना पड़े इससे श्रद्धा डगमगाती है और जिस सुनिश्चित मनोयोग के साथ आशा युक्ति मनोभूमि में आत्मिक प्रगति के लिए प्रयास होने चाहिए वे बन नहीं पड़ते । इस असमंजस को दूर किये बिना वास्तविक प्रगति कर सकना किसी भी साधक के लिए सम्भव नहीं हो सकता । इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए तत्वदर्शी मनीषियों ने यह निर्देश किया है कि उपासना विधान के सम्बन्ध में एक मार्गदर्शक नियुक्त होना चाहिए । इस नियुक्ति से पूर्व यह बात भली प्रकार जान ली जाय कि मार्गदर्शक का ज्ञान अनुभव परिपक्व है या नहीं और उसके परामर्श को प्रामाणिक माना जा सकता है या नहीं ? इस खोजबीन में जल्दी भी न की जाय । अपना समाधान हर दृष्टि से भली प्रकार कर लिया जाय । किन्तु जब निश्चित हो जाय तो फिर उसकी बात को ही प्रामाणिक मानकर चला जाय । हिन्दू धर्म में दुर्भाग्यवश पिछले दिनों धार्मिक और अध्यात्म क्षेत्र में पूरी तरह अराजकता छाई रही है । पण्डितों ने बुरी तरह मनमानी और खींचातानी की है । फलस्वरूप हर प्रसंग में अनेकों प्रकार के परस्पर विरोधी मतभेद मिलते हैं । इन सबको सदा सुना और माना, जाय तो फिर शंकाएँ इतनी अधिक बढ़ जायेंगी कि उनका समाधान किसी भी प्रकार न हो सकेगा । गायत्री में एक, तीन या पाँच ॐ लगाने सम्बन्धी मतभेद आये दिन खड़े रहते हैं वस्तुतः प्रत्येक वेद मन्त्र के आदि में एक बार उसे लगाने का नियम है, वही पर्याप्त है । पर किसी को अधिक लगाकर जप करने का आग्रह हो तो उसे भी रोकने की आवश्यकता नहीं है । भगवान के अधिक नाम ले लेने में कभी कोई हानि नहीं है ।

लगता है गायत्री की सिद्धियों का वर्णन शास्त्रों में देखकर निहित स्वार्थों ने यह घोषित किया होगा कि उसे अमुक वंश के लोग ही कह-सुन सकते हैं । अन्य लोग भी यदि उसे अपनाने लगेंगे तो विशेष अधिकारों के रूप में तथाकथित विधि विधान ज्ञाताओं का कोई वर्चस्व न रह जायेगा । फिर दक्षिणा लेकर अनुष्ठान करने का धन्धा उन लोगों के हाथ से चला जायेगा । ऐसी दशा में वे लोग यही कहते और लिखते रहे कि गायत्री सामर्थ्यवान तो है पर उसका अधिकार केवल अमुक वंश के लोगों को ही है । यह प्रतिबन्ध ब्राह्मणेतर लोगों पर ही नहीं लगा वरन्, समस्त स्त्री जाति को भी ऐसे ही ऊट-पटाँग बहानों की आड़ लेकर अनधिकारी ठहरा दिया गया जहाँ-तहाँ ऐसे उल्लेख भी संस्कृत ग्रन्थों से ढूंढ़े गये जिनमें इस प्रकार के प्रतिबन्धों का उल्लेख है । असंख्य

स्थानों पर गायत्री यज्ञ एवं वेद मन्त्रों को सर्वजनीन, सार्वभौम धर्म प्रक्रिया बताया गया है । यदि उसे न मानकर किन्हीं दो चार जगह लिखे पाए जाने वाले प्रतिबन्धों की बात पढ़कर अपना मन शंकित करते रहा जाय तो फिर किसी निश्चय पर पहुँच सकना असंभव हो जायेगा । यह मतभेदों की डिब्बी कभी सुलझने वाली नहीं है । शंकाशीलों के लिए तो तिल भर का सन्देह भी ताड़ बन कर मानसिक अनिश्चितता उत्पन्न कर सकता है । शंकाशील मन:स्थिति में की गई किसी उपासना का कोई कहने लायक परिणाम नहीं निकल सकता ।

इस जंजाल से साधक को बचाने के लिए शास्त्रकारों ने साधना गुरु की आवश्यकता बताई है और यदि उसकी प्रामाणिकता का निश्चय कर लिया गया हो तो फिर बहुत तर्क-कुतर्कों में न पड़कर उसी के परामर्श को अनुशासन मानकर चलना चाहिए । अनिश्चितता से छूटने का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।

शंकाओं में बहुचर्चित शंका यह है कि गायत्री का वर्ण व्यवस्था के साथ कोई सम्बन्ध है ? क्या ब्राह्मणों को ही उसका अधिकार है ? क्या हर वर्ण की गायत्री अलग-अलग है ?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि परमेश्वर की परम पावनी और परम सामर्थ्य सम्पन्न ऋतम्भरा, चेतना शक्ति का नाम गायत्री है, वह सूरज की तरह सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाती है और बादलों की तरह बिना भेदभाव के बरसती है । चन्द्रमा की चाँदनी में बैठने का हर किसी को अधिकार है । आकाश की छत्र-छाया में कोई भी बैठ सकता है । पवन का अभीष्ट उपयोग कोई कर सकता है । अन्न सभी के लिए उपलब्ध है । गंगा स्नान की हर किसी को छूट है । गायत्री सार्वमौम सर्वजनीन मन्त्र है । उसमें हर आत्मा को पवित्र बनाने, ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने की शक्ति है । माता को अपने सभी पुत्र प्रिय हैं । किसी पुत्र को माता के चरण स्पर्श से रोका नहीं जा सकता । देश, धर्म, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय से गायत्री महाशक्ति कहीं अधिक ऊँची है । यह सीमा बन्धन मनुष्यकृत हैं । भगवान की व्यवस्था में इस प्रकार के कोई विभाजन नहीं हैं । अस्तु गायत्री उपासना किसी भी जाति, धर्म, देश का व्यक्ति उसी प्रकार कर सकता है जिस प्रकार बिजली का उपयोग ।

ब्राह्मण को गायत्री शक्ति का विशेष लाभ मिलता है । इसी लक्ष्य को अधिक भावावेश में अधिक बल देने के लिए यह कह दिया गया है कि गायत्री का अधिकार ब्राह्मण को है वह ब्राह्मण की कामधेनु है । उसका तात्पर्य उसकी उपासना किसी जाति वंश विशेष तक के लिए सीमित करना नहीं वरन् यह है कि श्रेष्ठ आचरण वाले परमार्थ परायण ब्रह्मवृत्ति के व्यक्ति उस उपासना का समुचित लाभ उठा सकते हैं । इसमें सत्पात्रता का—व्यक्तित्व की उत्कृष्टता को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन भर है । दैवी शक्तियों का अवतरण परिष्कृत स्तर के व्यक्तियों पर ही विशेष रूप से होता है । इस सर्वविदित तथ्य को साधना की सफलता में, ब्राह्मणत्व के सम्वर्धन की आवश्यकता के रूप में समझाया गया है । यही है गायत्री उपासना में ब्राह्मणत्व की प्रशंसा । इसमें अन्य लोगों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है । दुष्ट मनुष्यों की दुष्टता भी इस उपासना से क्रमशः हल्की होती जाती है । प्रतिबन्ध माँसाहारी, मद्यपी, दुराचारी के लिए भी नहीं है । इतना अवश्य है कि आवरण ओढ़ लेने पर धूप का उतना लाभ नहीं मिलता जितना कि खुला शरीर रहने पर । फिर भी धूप में बैठने का कुछ लाभ तो आवरण ओढ़ कर बैठने पर भी मिल जाता है ।

यही बात स्त्री और पुरुष के भेदभाव के सम्बन्ध में भी है । आर्ष शास्त्रों में किसी भी धर्म प्रयोजन अथवा अध्यात्म साधना में ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है कि उन्हें पुरुष कर सकते हैं स्त्रियाँ नहीं । यह भेदभाव तो मध्य काल के अन्धकार युग की देन है । उन्हीं दिनों समर्थों ने असमर्थों को आश्रित बनाकर मनमाने लाभ लेने का जंगली कानून चलाया था । मनुष्य व्यवहार में मत्स्यन्याय का प्रवेश उन्हीं दिनों की देन है । अछूत प्रथा और पर्दा प्रथा उन्हीं की देन है । सामन्तों की इच्छानुसार उनके आश्रित पण्डितों ने जिस तिस ग्रन्थ में ऐसे श्लोक जोड़ दिये जिनसे सामन्ती अनाचार की पुष्टि होती है । शास्त्रों में हुई इसी प्रकार की घुसपैठ को आज भी प्रतिगामी तत्व बाँस पर उछालते हैं जबकि भारतीय धर्म और संस्कृति की अन्तरात्मा में आदि से अन्त तक मानवी समानता का ही प्रतिपादन भरा पड़ा है । उसमें जाति, लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के सामाजिक अथवा धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं लगाये गये हैं । स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति ही सदा से धर्म कृत्यों में प्रवेश पाती रही हैं । गायत्री माता तो मातृ जाति की ही है । यदि वे भेदभाव करें तो पुरुष से ही कर सकती हैं । माता और बेटी के बीच में किसी प्रकार के बन्धन प्रतिबन्ध हो ही नहीं सकते ।

किसी को भी ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि शास्त्रों के बारे में यह प्रतिगामी लोग अधिक जानते हैं और युग निर्माण योजना मंच को उसकी जानकारी कम है । वस्तु-स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है । जिस तन्त्र द्वारा गायत्री उपासना का पुनर्जागरण किया गया है उसका शास्त्रीय ज्ञान प्रतिगामी लोगों के अधकचरे ज्ञान की तुलना में असंख्यों गुना अधिक और गहरा है । इन अधकचरे लोगों ने तो दस पाँच धर्म ग्रन्थ भी अच्छी तरह नहीं पढ़े होंगे जबकि गायत्री प्रचार जिन हाथों से हो रहा है उन्होंने समूचे भारतीय धर्म शास्त्र एवं तत्व ज्ञान का न केवल विशद अध्ययन अवगाहन ही किया है, वरन् उनका अनुवाद, प्रकाशन और प्रचार करके अपनी अधिक गहरी शक्ति भक्ति का परिचय दिया है । अस्तु किसी को भी इस सन्दर्भ में शंका कुशंकाओं में पड़ने की आवश्यकता नहीं है । बिना किसी जाति लिंग देश और धर्म का अन्तर किए मनुष्य मात्र को गायत्री उपासना करने और उससे लाभान्वित होने का पूरा अधिकारी माना जाना चाहिए और जिनको इस दिशा में तनिक भी रुचि हो उन्हें बिना किसी आशंका असमंजस के गायत्री उपासना करते रहना चाहिए ।

एक शंका यह है यज्ञोपवीत पहने बिना भी क्या गायत्री उपासना हो सकती है ? इसका उत्तर भी हाँ ही हो सकता है । यह प्रश्न भी पुराने ब्राह्मण अब्राह्मण भेदभाव के साथ ही जुड़ा हुआ है । मध्य काल में मात्र ब्राह्मण ही जनेऊ पहनते थे । इसलिए वे ही एक तर्क यह भी देते थे कि यज्ञोपवीत हम ही पहनते हैं इसलिए गायत्री भी हमारी ही है । वस्तुतः ऐसा कोई प्रतिबन्ध है नहीं । यों यज्ञोपवीत पहनना और गायत्री मन्त्र जपना अधिक प्रशंसनीय है । इसे सोना सुहागा मिलने पर अधिक चमक आने की तरह अच्छा माना जायेगा । पर सुहागे के बिना सोने का कोई उपयोग ही नहीं है ऐसी बात नहीं है । शिखा और सूत्र दोनों भारतीय संस्कृति के प्रतीक चिह्न हैं । इन्हें धारण करना धर्म परम्परा का निर्वाह ही माना जायेगा पर जो उन्हें धारण नहीं करते वे गायत्री भी जप न करें यह तो ऐसा है जैसा कि यह कहना कि जिन्हें भी उपलब्ध नहीं है वे अन्न भी न खायें । यह दुहरा घाटा हुआ । एक भूल तो यह कि शिखा सूत्र रखने में उपेक्षा की गई । दूसरी भूल ऊपर से यह और लाद ली कि यज्ञोपवीत नहीं पहनते तो गायत्री उपासना भी क्यों करें ? ज़िस औचित्य को नहीं अपनाया गया है उसे अपनाने की बात सोचनी चाहिए । जनेऊ के साथ-साथ गायत्री भी छोड़ देना तो दुहरी गलती है । बिना जनेऊ पहने भी गायत्री उपासना भली प्रकार हो सकती है ।

जिन्हें बीमारी, कमजोरी या अन्य किसी कारण उपासना से पूर्व स्नान करने की सुविधा नहीं रहती वे भी गायत्री साधना कर सकते हैं, उसका उत्तर भी यज्ञोपवीत धारण की तरह है । स्नान की, वस्त्र शुद्धि की प्रशंसा ही की जायेगी और यही कहा जायेगा की स्वच्छता पवित्रता का जितना ध्यान रखा जा सके उतना ही उत्तम है । आलस्य और प्रमाद वश कोई इस शुद्धता की उपेक्षा न करे इसलिए उपासना के आवश्यक नियमों में स्नान को सम्मिलित रखा गया है किन्तु यह अनिवार्य नहीं । विशेष परिस्थितियों में हाथ, पैर, मुँह आदि धोकर, पसीने वाले वस्त्र बदल कर भी उपासना हो सकती है । यहाँ तक कि रास्ता चलते, शारीरिक श्रम करते समय भी मन्त्र जप चलता रह सकता है । ऐसी स्थिति में मुँह बन्द रखकर, मन ही मन मानसिक जप करने का विधान है । जहाँ शुद्धि की समुचित व्यवस्था न बन पड़े वहाँ मन ही मन जप करते रहने में कोई अड़चन नहीं है । महिलाएँ भोजन बनाने, चक्की पीसने, कपड़ा धोने, बच्चों को दूध पिलाने, पुरुष रास्ते चलने काम करने जैसे किसी भी शारीरिक श्रम के समय मानसिक जप करते रह सकते हैं । मानसिक कार्य-अध्ययन, मोटर चलाना जैसे बौद्धिक क्रियाशीलता वाले कार्यों में ऐसे मानसिक जप का निषेध है । ध्यान बट जाने से मनोयोग वाले काम गड़बड़ाने लगते हैं । जिनमें मात्र शारीरिक श्रम ही पड़ते हैं ऐसे कार्यों में-विश्राम के क्षणों में मानसिक जप भली प्रकार हो सकता है उसमें कोई निषेध नहीं है ।

रात्रि में जप हो सकता है या नहीं ? इसमें भी कोई गम्भीर बात नहीं है । सामान्य सुविधा को ही ध्यान में रखा गया है । दिन काम के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है । दिन भर का थका शरीर मनोयोग पूर्वक प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ जप ध्यान नहीं कर पाता । रात्रि को जल्दी सो जाने और सबेरे जल्दी उठने का नियम शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम है । इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर सूर्यास्त के एक घण्टा पश्चात् तक जप पूरा कर लेने और प्रातः दो घण्टा पूर्व आरम्भ करने का मोटा नियम बनाया गया था । यह सुविधा से सम्बन्धित है । प्राचीन काल में रात्रि में प्रकाश की वैसी सुविधा नहीं थी जैसी आज है । ऐसी दशा में उन दिनों

वह व्यवस्था उचित थी । किन्तु आज जब कि लोगों को दिन निकलते ही काम पर चले जाना होता है और रात्रि को देर से घर आने का नित्य कर्म से निबटने का अवसर मिलता है तब रात्रि को भी यदि प्रतिबन्धित रखा जाय तो फिर उपासना के लिए कोई समय ही नहीं बचेगा । अपने २४ लक्ष्य के २४ गायत्री महा पुरश्चरण रात्रि को दो बजे से आरम्भ होते रहे हैं । अन्य लोगों के लिए आज की स्थिति में रात्रि के जप का कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं है । फिर भी जिन्हें आशंका हो मानसिक जप तो बिना किसी प्रकार का असमंजस किए प्रसन्नतापूर्वक करते रह सकते हैं । न करने से तो कुछ करना ही अच्छा है ।

माला की सुविधा न हो तो गायत्री जप हो सकता है या नहीं । इसमें इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि जप करने के लिए जितना समय निश्चित किया जाय नियमित रूप से ही लगना चाहिए । घट बढ़ रहने से समस्वरता नहीं बनती । काल की गणना इन दिनों घड़ी से हो सकती है । प्राचीन काल में काल का काम हाथ से माला घुमा कर पूरा किया जाता था इससे यह पता चलता था कि नियत समय तक जप पूरा हुआ या नहीं । माला का यही मूल प्रयोजन है । किसी को किसी कारणवश माला की सुविधा न हो तो नियत समय की गणना घड़ी से भी की जा सकती है । प्राय: पाँच या छ: मिनट में एक माला पूरी हो जाती है । जितनी माला जपनी हो उसके हिसाब से घड़ी द्वारा भी समय नियत रखा जा सकता है । यों माला के साथ परम्परागत श्रद्धा जुड़ी रहने से उसका भावनात्मक महत्त्व तो है ही ।

## शंका-कुशंकाएँ और उनका समाधान

विज्ञान की समस्त उपलब्धियाँ स्तुत्य हैं, पर यदि किसी एक बात ने वस्तुस्थिति को असमंजस में डाला है तो वह है "कुतर्क" । तर्क को तो वस्तुत: ऋषि माना गया है एवं तथ्यों, प्रमाणों के साथ उसकी आर्ष ग्रन्थों में अभ्यर्थना की गयी है । तर्कसम्मत प्रतिपादनों के साथ श्रद्धा का समुचित समावेश होने पर जब मनोयोगपूर्वक कोई कार्य किया जाता है तो आत्मिक प्रगति सुनिश्चित है । लेकिन असमंजस ग्रस्त मन:स्थिति में किया गया पुरुषार्थ तो किसी भी क्षेत्र में प्रगति नहीं दिखा सकता । सम्भवत: जनसाधारण की इसी कठिनाई को ध्यान में रखते हुए तत्वदर्शी मनीषियों ने यह निर्देश किया था कि उपासना विधान के सम्बन्ध में एक विज्ञ मार्गदर्शक अवश्य होना चाहिए । अनुभव ज्ञान रहित मार्गदर्शक के स्थान पर आप्त निष्कर्षों के आधार पर निर्धारित अनुशासनों को ग्रहण कर लेना अधिक श्रेयस्कर है । मार्गदर्शक की खोजबीन में जल्दी भी न की जाय और स्वयं का समुचित समाधान पहले कर लिया जाय, यही उचित है । हिन्दू धर्म में की गई खींचतान और मध्यकालीन मनमानियों ने परस्पर विरोधी मतभेदों को अधिक जन्म दिया है । इन सबको सुन, समझकर उचित-अनुचित के चयन की बात यदि सोची जायेगी तो शंकाएँ इतनी अधिक होंगी कि उनका समाधान तो दूर, स्वयं को भ्रम जंजाल से निकालना भी भारी पड़ जायेगा । ऐसी स्थिति में विवेक यही कहता है कि किसी प्रकार का कोई दुराग्रह न रखकर श्रेष्ठता को स्वीकारा जाय और श्रद्धा को मान्यता देते हुए मन:स्थिति साफ रखी जाय ।

गायत्री के बारे में एक चर्चा जो की जानी है वह यह कि इसकी कृपा से अर्चा आराधना से स्वर्ग और मुक्ति मिलती है । शंकालु इस विषय पर काफी ऊहापोह करते देखे गए हैं । वस्तुत: स्वर्ग कोई स्थान विशेष नहीं है । न ही कोई ऐसा ग्रह-नक्षत्र है जहाँ स्वर्ग के नाम पर अलंकारिक रूप में वर्णित अनेकानेक प्रसंग बताए जाते रहे हैं । वस्तुत: इस सम्बन्ध में ऋषि चिन्तन सर्वथा भिन्न है । परिष्कृत दृष्टिकोण को ही स्वर्ग कहते हैं । चिन्तन में उदात्तता का समावेश होने पर सर्वत्र स्नेह, सौन्दर्य, सहयोग और सद्भाव ही दृष्टिगोचर होता है । सुखद—दूसरों को ऊँचा उठाने—श्रेष्ठ देखने की ही कल्पनाएँ मन में उठती हैं । उज्ज्वल भविष्य का चिन्तन चलता तथा उपक्रम बनता है । इस उदात्त दृष्टिकोण का नाम स्वर्ग है । स्नेह, सहयोग और सन्तोष का उदय होते ही स्वर्ग दिखाई पड़ने लगता है ।

नरक ध्वंस, द्वेष एवं पतन को कहते हैं । ये जहाँ कहीं भी रहेंगे, वहीं व्यक्ति अस्वस्थ, विक्षुब्ध रहेंगे और कुकृत्य करते रहेंगे । सर्वत्र नरक के रूप में अलंकारिक वर्णित भयावहता और कुरूपता ही दृष्टिगोचर होगी, फलत: सम्पर्क क्षेत्र विरोधी एवं वातावरण प्रतिकूल होता जाता है । यही नरक है और उससे उबर पाना स्वर्ग है । मुक्ति कहते हैं भव-बन्धनों से छुटकारा पाने को, इसी लोक में रहते हुए । भव-बन्धन तीन हैं, जो मनुष्य को सतत् अपनी पकड़ में कसने का प्रयास करते रहते हैं,

लालच, व्यामोह और अहंकार । लोभ, मोह और अहंता नाम से प्रख्यात इन तीन असुरों से जो जूझ लेता है, उनके रज्जु जंजाल से मुक्त होने का प्रयास करता है, वही जीवनमुक्त है जो पूर्ण मुक्ति की दिशा में गतिशील है । ये तीनों ही मनुष्य को क्षुद्र और दुष्ट प्रयोजनों में निरत रखते हैं और इतनी लिप्सा भड़काते हैं जिससे पुण्य परमार्थ के लिए समय निकाल सकना, साधन लगा सकना सम्भव ही न हो सके । अर्थ का सर्वथा, सदैव अभाव लगता रहे और उसकी पूर्ति में इतनी व्यस्तता-व्यग्रता रहे कि सत्प्रयोजनों को करना तो दूर, वैसा सोचने तक का अवसर न मिले ।

तीनों ही नितान्त अनावश्यक होते हुए भी अत्यधिक आकर्षक लगते हैं । इस भ्रान्ति एवं विकृति से छुटकारा पाने को ही मुक्ति कहते हैं । महाप्रज्ञा के आलोक में ही इन निविड़ भव बन्धनों से छुटकारा मिलता है । व्यक्ति स्वतन्त्र चिन्तन अपनाता, अपने निर्धारण आप करता है । प्रचलनों एवं परामर्शों से प्रभावित न होकर श्रेय पथ पर एकाकी चल पड़ता है । विवेक अवलम्बनजन्य इस स्थिति को ही मुक्ति कहते हैं, जो महाप्रज्ञा गायत्री का तत्वदर्शन समझकर उनके आश्रय में जाने वाले सच्चे साधक को अवश्य ही मिलती है ।

स्वर्ग-नरक की चर्चा के बाद एक प्रसंग संकट मुक्ति का है, जिसके बारे में शंकाएँ उठाई जाती रहीं हैं कि यह कहाँ तक सही है । क्या जप करने से संकट समीप नहीं आते ? इसे भी तत्व दर्शन के परिप्रेक्ष्य में सभी इन्द्रियाँ जाग्रत रख समझना होगा । महाप्रज्ञा के स्वरूप को समझने तथा शिक्षा को हृदयंगम करने पर आत्मशोधन और आत्म-परिष्कार के दो कदम संकल्प पूर्वक उठने लगते हैं । फलतः कुसंस्कारों एवं अवांछनीयता से छुटकारा मिलता है । साथ ही उस उन्मूलन से खाली हुए स्थान को गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता से भरने का काम भी द्रुतगति से चल पड़ता है । यह परिवर्तन जिस क्रम से अग्रसर होता है, उसी अनुपात से संकटों से भी छुटकारा मिलता चला जाता है ।

संकट वस्तुतः स्वाभाविक नहीं, स्व उपार्जित हैं । असंयम से रुग्णता, असन्तुलन से विग्रह, अपव्यय से दारिद्र्य, असभ्यता से तिरस्कार, अस्त-व्यस्तता से विपन्नता के घटाटोप खड़े होते हैं । अपनी अवांछनीयताएँ, कुसंस्कारिताएँ ही दुर्गति को, दुःखद परिस्थितियों को न्योत बुलाती हैं । मनःस्थिति बदले तो परिस्थिति बदलने में देर न लगे । आकस्मिक अपवाद तो कभी-कभी ही खड़े होते हैं । आमतौर से दृष्टिकोण, स्वभाव एवं व्यवहार में घुसा अनगढ़पन ही विभिन्न स्तर के संकटों के लिए उत्तरदायी होता है । इस तथ्य को समझने वाले बाहरी संकटों का साहस और सूझ-बूझ द्वारा मुकाबला करते हैं । साथ ही यह देखते हैं कि अपनी किन त्रुटियों के कारण अवांछनीयता के साथ घनिष्ठता जुड़ी और वैसा परिणाम निकला । अपने को बदलने के लिए तत्पर व्यक्ति प्रतिकूलताओं में बदलने में भी प्रायः सफल होते हैं । गायत्री उपासना के उपयुक्त निर्धारण एवं अवलम्बन से आत्मपरिष्कार पराक्रम का लक्ष्य पूरा होता है । फलतः संकटों के निवारण में भी सन्देश नहीं रह जाता । गायत्री लाठी लेकर संकटों को मार भगाये और श्रद्धालु आँखें मूंदकर उस तमाशे को देखें, ऐसा नहीं होता ।

इसी प्रकार एक शंका और प्रश्न के रूप में कुरेदी-उभारी जाती रही है—गायत्री की कृपा से सम्पन्नता और सफलता कैसे मिलती है ? वस्तुतः इस प्रश्न में एक और कड़ी जुड़नी चाहिए—मध्यवर्त्ती कर्तृत्व और परिवर्तन की । स्कूल में प्रवेश करने और ऊँचे अफसर बनने, डाक्टर की पदवी पाने में आरम्भ और अन्त की चर्चा मात्र है । इसके बीच मध्यान्तर भी है जिसमें मनोयोग पूर्वक लम्बे समय तक नियमित रूप से पढ़ना, पुस्तकों की—फीस की, व्यवस्था करना आदि अनेकों बातें भी शामिल हैं । इस मध्यान्तर को विस्मृत कर दिया जाय और मात्र प्रवेश एवं पद दो ही बातें याद रहें तो कहा जायेगा कि यह शेखचिल्ली की कल्पना भर है । यदि मध्यान्तर का महत्त्व और उस अनिवार्यता का कार्यान्वयन भी ध्यान में हो तो कथन सर्वथा सत्य है । पहलवान बलिष्ठता की मनोकामना नहीं पूरी करता, न ही 'पहलवान-पहलवान' रटते रहने से कोई वैसा बन पाता है । उसके लिए व्यायामशाला में प्रवेश से लेकर नियमित व्यायाम, आहार-विहार, तेल-मालिश आदि का उपक्रम भी ध्यान में रखना होता है ।

साधना से सम्पन्नता की सिद्धि या सफलता प्राप्ति के शाश्वत सिद्धान्त पर ये सभी बातें लागू होती हैं । छुटपुट कर्मकाण्डों की लकीर पीट लेने पर अभीष्ट सफलता कहाँ मिलती है ? उसके लिए श्रम साधना, मनोयोग, साधनों का सदुपयोग आदि सभी आवश्यक हैं ।

गायत्री के आकर्षक माहात्म्य जो बताए जाते रहे हैं, वे किसी को मिलते हैं किसी को नहीं । इसका एक ही कारण है उपासना व साधना के मध्य अविच्छिन्न सम्बन्ध । दोनों परस्पर पूरक हैं । उपासना से तात्पर्य है उत्कृष्टता की देवसत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करना, साधना का अर्थ है अपने गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का अनुपात अधिकाधिक मात्रा में बढ़ाना । यदि गायत्री तत्वज्ञान को सही रूप से समझा गया होगा तो साधक को निर्धारित उपासना कृत्य श्रद्धापूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा, साथ ही आत्म-परिष्कार की जीवन साधना में भी उतनी ही तत्परता के साथ संलग्न होना पड़ेगा । दोनों का मिलन होते ही चमत्कार दृष्टिगोचर होने लगते हैं । भ्रष्ट जीवन के रहते दैवी अनुकम्पाएँ मिल सकना सम्भव नहीं जो देवताओं को फुसलाकर अपना उल्लू साधना चाहते हैं पर चिन्तन और चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश नहीं करते, ऐसे ही लोगों की उपासना प्राय: निष्फल रहती है । इसी प्रकार के लोग विभिन्न शंकाएँ उठाते देखे गये हैं और कुतर्क का जाल बुनकर भावना के क्षेत्र में कुहराम मचाते पाए गये हैं ।

बिना किसी जाति, लिंग, देश और धर्म का अन्तर किए मानव मात्र को गायत्री उपासना करने और उससे लाभान्वित होने का पूरा-पूरा अधिकार है । इस सम्बन्ध में अधकचरे ज्ञान के आधार पर उठायी गयी प्रतिगामी टिप्पणियों से अप्रभावित हो, जिन्हें भी आत्मिक प्रगति में तनिक भी रुचि हो, बिना किसी आशंका-असमंजस के श्रद्धापूर्वक गायत्री उपासना करते रहना चाहिए ।

## गायत्री और यज्ञोपवीत

गायत्री साधना के लिए यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिए, अथवा जो यज्ञोपवीत धारण करें वे ही गायत्री जपें, ऐसी चर्चाएँ प्राय: चलती ही रहती हैं ।

इस सन्दर्भ में इतना ही जानना पर्याप्त है कि यज्ञोपवीत गायत्री महामन्त्र का प्रतीक है । उसके नौ भागों में, गायत्री मन्त्र के नौ शब्दों में सन्निहित तत्वज्ञान भरा पड़ा है । तीन लड़ें त्रिपदा गायत्री की तीन धाराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं । तीन ग्रन्थियाँ तीन व्याहृतियां हैं । बड़ी ब्रह्मग्रन्थि को ॐकार कहा गया है । इस प्रकार पूरा यज्ञोपवीत एक सूत का बना धर्म ग्रन्थ है जिसको धारणकर्ता को मानवोचित रीति-नीति अपनाने का अनुशासन सिखाने वाला अंकुश कह सकते हैं । इसे कन्धे पर धारण करने का तात्पर्य है गायत्री में सन्निहित सदाशयता को स्वीकार करना और उसे अपनाने की तत्परता का परिचय देना । शिवरात्रि पर गंगाजल की काँवर कन्धे पर रखकर चलने और शिवप्रतिमा पर चढ़ाने का उत्तर भारत में बहुत प्रचलन है । श्रवणकुमार ने अपने माता-पिता को कन्धे पर बिठाकर तीर्थयात्रा कराई थी । गायत्री-माता का अनुशासन कन्धे पर धारण करना, अपनाना ही यज्ञोपवीत धारण है । प्रकारान्तर से इसे शरीर पर गायत्री की सूत निर्मित प्रतिमा को धारण करना भी कह सकते हैं ।

देव प्रतिमा के सान्निध्य में उपासना करने का अधिक महत्त्व है । किन्तु यदि कहीं देवालय न हो तो भी उपासना करने में कोई निषेध नहीं है । इस प्रकार यज्ञोपवीत धारग करते हुए गायत्री जप किया जाय तो देव प्रतिमा के सान्निध्य में की जाने वाली उपासना की तरह अधिक उत्तम है । पर यदि किसी कारणवश यज्ञोपवीत धारण करना न बन पड़े, तो भी इस उपासना के करने में किसी प्रकार की रोक-टोक या अड़चन नहीं है ।

गायत्री महामन्त्र में ईश्वर के जिन गुणों का वर्णन किया गया है उनको अपने लिए आवश्यक समझकर अपने को प्राणवान बनाना दुःखदायी कुकर्मों से बचना, सुखदायी सत्कर्मों पर संलग्न होना, श्रेष्ठ विचारों को अपनाना, तेजस्वी बनना, पापों से लड़ना, अपने स्वभाव में देवत्व भरना, यह सब प्रयत्न निरन्तर चलते रहना चाहिए । अपनी बुद्धि को सात्विक, सन्मार्ग गामी बनाने के लिए सचेष्ट रहना यह गायत्री मन्त्र की शिक्षा है । इन शिक्षाओं को अपने व्यावहारिक जीवन में समावेश करने के लिए पूरी तत्परता से कार्य करना यही यज्ञोपवीत धारण करने का लक्ष्य है । यज्ञोपवीत को सूत्र भी कहते हैं । सूत्र 'डोरे' को भी कहते हैं और उस 'शब्द रचना' को भी कहते हैं जो स्वयं बहुत संक्षिप्त होते हुए भी अपने अन्दर एक विस्तृत अर्थ छिपाए होते हैं । अष्टाध्यायी, षट् दर्शन गृह्य सूत्र आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं यज्ञोपवीत में लिपि और भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है तो भी यह 'ब्रह्मसूत्र' ग्रन्थ है । इसके एक-एक धागे में जीवन को महान् बनाने वाली शिक्षाएँ भरी हुई हैं । इन शिक्षाओं का हर घड़ी ध्यान रखने के लिए ही यज्ञोपवीत पहना जाता है और उसे पहनने पर इतना जोर दिया जाता है ।

## गुरु की आवश्यकता

गायत्री को गुरु-मन्त्र कहा गया है । इसका एक अर्थ यह भी है कि इसकी उच्चस्तरीय उपासना के लिए अनुभवी मार्गदर्शक एवं संरक्षक आवश्यक है । कुछ शिक्षाएँ ऐसी होती हैं, जो पुस्तकों के सहारे एकाकी भी प्राप्त की जा सकती हैं । पर कुछ ऐसी हैं जिनमें अनुभवी व्यक्ति के सान्निध्य, सहयोग एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है । संगीत, शिल्पकर्म, अक्षरारम्भ, उच्चारण जैसे कार्यों में दूसरों का प्रत्यक्ष सहयोग आवश्यक है । गायत्री उपासना की नित्यकर्म विधि तो सरल है, किन्तु उच्चस्तरीय साधना में व्यक्ति की विशेष स्थिति के अनुरूप अनेकों उतार-चढ़ाव आते हैं और उसमें अनुभवी मार्गदर्शक की वैसी ही आवश्यकता रहती है जैसी कि रोग उपचार में चिकित्सक की । रोगी का अपने सम्बन्ध में लिया गया निर्णय प्राय: सही नहीं होता । इसलिए चिकित्सक का परामर्श एवं अनुशासन आवश्यक होता है । वही बात उपासना की उच्चस्तरीय प्रगति के सम्बन्ध में भी है ।

गुरु की नियुक्ति अनिवार्य तो नहीं पर आवश्यक अवश्य है । इस आवश्यकता की पूर्ति मात्र उच्च चरित्र, साधन विधान में निष्णान्त व्यक्ति ही कर सकते हैं । जब तक वैसा मार्गदर्शन न मिले तब तक प्रतीक्षा ही करनी चाहिए । उतावली में जिस-तिस को गुरु बना लेने से लाभ के स्थान पर हानि ही होती है । एक कक्षा पूरी करके दूसरी में प्रवेश करने पर नये अधिक अनुभवी अध्यापक के सम्पर्क में जाना पड़ता है । इसी प्रकार सामान्य मन्त्र दीक्षा लेते समय यदि सामान्य स्तर के गुरु का वरण किया गया हो तो उच्चस्तरीय साधना में अधिक योग्य गुरु का वरण भी हो सकता है । एक व्यक्ति के कई गुरु हो सकते हैं । संगीत, व्यापार, शिल्प, शिक्षा आदि के लिए जिस प्रकार एक ही समय में कई गुरुओं की सहायता लेनी पड़ती है, उसी प्रकार एक व्यक्ति के कई गुरु भी हो सकते हैं । भगवान राम के वशिष्ठ और विश्वामित्र दो गुरु थे, दत्तात्रय के चौबीस थे ।

शिक्षा प्राप्त करने में नर-नारी दोनों को ही अध्यापक की सहायता आवश्यक होती है । उसी प्रकार अध्यात्म क्षेत्र के प्रगति प्रशिक्षण में भी बिना लिंग भेद के हर साधक को मार्गदर्शक का सहयोग लेना होता है । व्यवहार-व्यवस्था में स्त्रियों का गुरु पति-सास आदि भी हो सकते हैं, पर आत्मिक प्रगति में सहायता तो वही करेगा जो स्वयं उस विषय का निष्णान्त पारंगत हो । ऐसा व्यक्ति पति आदि भी हो सकता है, बाहरी भी ।

## साधना में त्रुटि

गायत्री उपासना के क्रिया-कृत्यों में कोई त्रुटि रहने पर किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका तो नहीं है ? इस आशंका को मन से पूरी तरह निकाल देना चाहिए । सौम्य उपासना में ऐसा कोई खतरा नहीं है । गायत्री उपासना सौम्य स्तर की है । उसे मातृभक्ति के समतुल्य समझना चाहिए । माता से भी शिष्टाचार बरतना चाहिए, यह उचित है । पर किसी लोकाचार में कमी रह जाने पर भी सन्तान के मन में मातृभक्ति रहनी है और माता के मन में वात्सल्य बना रहने पर किसी अप्रिय घटना की कोई सम्भावना नहीं है । माता के मन में बच्चों के प्रति जो असीम वात्सल्य रहता है उसे देखते हुए कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वे मात्र क्रिया-कृत्य में कोई भूल या कमी रहने पर अपने उपासक का कुछ अहित करने की बात सोचेंगी भी । त्रुटि रहने पर इतना ही हो सकता है कि सत्परिणाम में कुछ कमी रह जाय ।

गीता के अनुसार सौम्य उपासना में 'प्रत्यवाय' अर्थात् उल्टा परिणाम कभी नहीं हो सकता । उसका थोड़ा-सा अवलम्बन भी 'त्रायते महतो भयात्' अर्थात् अनिष्ट से रक्षा करता है । भगवान का नाम रुग्ण अवस्था में बिस्तर पर, अशुद्ध स्थिति में पड़े हुए भी लेते रहते हैं । भगवान इतना निष्ठुर नहीं है कि भक्त की भावना का ध्यान न रखे और विधि-विधान में कोई कमी रह जाने से रुष्ट होकर अपने भक्तजनों की ही हानि करने पर उतारू हो जाय । ऐसा तो कोई सर्प, बिच्छू, सिंह, व्याघ्र ही कर सकता है, भक्त वत्सल भगवान नहीं ।

यह आशंका तान्त्रिक विधानों में गलती करने पर उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों की बात के आधार पर की गई है । तान्त्रिक विधानों में भावना का उपयोग नहीं होता । वे भौतिक उद्देश्यों के लिए किये जाते हैं । उनके शरीर की हठ-साधना और प्रयोग सामग्री के उपचार ही प्रधान होते हैं । एक प्रकार से उन्हें भौतिक क्रिया-कृत्य कह सकते हैं । तान्त्रिक देवी-देवताओं की उपासना इसी स्तर की है । तेजाब के रख-रखाव में बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है, तनिक भी भूल होने से खतरे का डर रहता है । आग या बिजली के उपयोग में भी सावधानी न

बरतने पर हानि हो सकती है । किन्तु गौदुग्ध के प्रयोग में कोई खतरा नहीं है । इसमें पूरे लाभ की सम्भावना है । किन्तु किसी को भी यह आशंका नहीं करनी चाहिए कि त्रुटि रहने पर माता के कोप का—प्रयोग के दुष्परिणाम का कोई संकट हो सकता है ।

## गायत्री मन्त्र कीलित है ?

गायत्री उपासना के दो मार्ग हैं एक देव-मार्ग, दूसरा दैत्य-मार्ग । एक को वैदिक, दूसरे को तान्त्रिक कहते हैं । तंत्र-शास्त्र का हर मन्त्र कीलित है अर्थात् प्रतिबन्धित है । इस प्रतिबन्ध को हटाये बिना वे मन्त्र काम नहीं करते । बन्दूक का घोड़ा जाम कर दिया जाता है, तो उसे दबाने पर भी कारतूस नहीं चलता । मोटर की खिड़की 'लौक' कर देने पर वह तब तक नहीं खुलती जब तक उसका 'लौक' न हटा दिया जाय । तान्त्रिक मंत्रों में विघातक शक्ति भी होती है उसका दुरुपयोग करने पर प्रयोक्ता को तथा अन्यान्यों को हानि उठानी पड़ सकती है । अनधिकारी कुपात्र व्यक्तियों के हाथ में यदि महत्वपूर्ण क्षमता आ जाय तो वे आग के साथ खेलने वाले बालकों की तरह उसे नाश का निमित्त बना सकते हैं ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भगवान शंकर ने समस्त तान्त्रिक मन्त्रों को कीलित कर दिया । उत्कीलन होने पर ही वे अपना प्रभाव दिखा सकते हैं । तान्त्रिक सिद्धि-साधनाओं में उत्कीलन आवश्यक है । यह कृत्य अनुभवी गुरु द्वारा सम्पन्न होता है । किसी रोगी को—क्या औषधि—किस मात्रा में देनी चाहिए उसका निर्धारण कुशल चिकित्सक रोगी की स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरान्त ही करते हैं । यही बात मंत्र साधना के सम्बन्ध में भी है । किस साधक को किस मन्त्र का उपयोग—किस कार्य के लिए—किस प्रकार करना चाहिए, इसका निर्धारण ही उत्कीलन है । यों प्रत्येक तन्त्र-विधान का एक उत्कीलन प्रयोग भी है । 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ आरम्भ करने से पूर्व कवच, कीलन, अर्गल अध्यायों का अतिरिक्त पाठ करना होता है । साधना के समय होने वाले आक्रमणों से सुरक्षा के लिए कवच मन्त्र, सुषुप्त शक्ति को प्रखर करने के लिए कीलक एवं सिद्धि के द्वार पर चढ़ी हुई अर्गला—सांकल—को खोलने के लिए 'अर्गल' की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । 'दुर्गा सप्तशती' पाठ की तरह अन्यान्य तन्त्र-प्रयोगों में भी अपने-अपने ढंग से कवच, कीलक, अर्गल करने होते हैं । इनमें से कीलक का विशेष महत्व है । वही प्रख्यात भी है । इसलिए उत्कीलन उपचार के लिए अनुभवी मार्गदर्शक की सहायता प्राप्त करने के उपरान्त ही अपने पथ पर अग्रसर होते हैं ।

यह तान्त्रिक साधनाओं का प्रकरण है । वैदिक-पक्ष में इस प्रकार के कड़े प्रतिबन्ध नहीं हैं, क्योंकि वे सौम्य हैं । उनमें मात्र आत्मबल बढ़ाने और दिव्य क्षमताओं को विकसित करने की ही शक्ति है । अनिष्ट करने के लिए उनका प्रयोग नहीं होता । इसलिए दुरुपयोग का अंश न रहने के कारण सौम्य मन्त्रों का कीलन नहीं हुआ है । उनके लिए उत्कीलन की जैसी प्रक्रिया नहीं अपनानी पड़ती जैसी कि तन्त्र प्रयोजनों में । फिर भी उपयुक्त शिक्षा एवं चिकित्सा के लिए उपयुक्त निर्धारण एवं समर्थ सहयोग, संरक्षण की तो आवश्यकता रहती ही है । उपयुक्त औषधियाँ उपलब्ध करने पर भी चिकित्सक के अनुभव एवं संरक्षण की उपयोगिता रहती है । रोगी अपनी मर्जी से अपना इलाज करने लगे—विद्यार्थी अपने मन से चाहे जिस क्रम से पढ़ने लगे, तो उसकी सफलता वैसी नहीं हो सकती, जैसी कि उपयुक्त सहयोग, मिलने पर हो सकती है । बिना मार्गदर्शन, बिना सहयोग, संरक्षण के, एकाकी यात्रा पर चल पड़ने वाले अनुभवहीन यात्री को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, वे ही स्वेच्छाचारी साधकों के सामने बनी रहती हैं । वे आश्रय-हीन तिनके की तरह हवा के झोंकों के साथ इधर-उधर भटकते छितराते रहते हैं ।

इस दृष्टि से मार्गदर्शन इतनी मात्रा में तो सभी साधनाओं के लिए आवश्यक है कि उन्हें अनुभवी संरक्षण में सम्पन्न किया जाय । स्वेच्छाचार न बरता जाय । जो इस प्रयोजन को पूरा कर सकें, समझना चाहिए कि उनकी गायत्री-साधना का उत्कीलन हो गया और उनकी साधना सरल एवं सफलता सुनिश्चित हो गई ।

## गायत्री शाप मोचन

कई जगह ऐसा उल्लेख मिलता है कि गायत्री-मन्त्र को शाप लगा हुआ है । इसलिए शापित होने के कारण कलियुग में उसकी साधना सफल नहीं होती । ऐसा उल्लेख किसी आर्ष ग्रन्थ में कहीं भी नहीं है । मध्यकालीन छुट-पुट पुस्तकों में ही एक-दो जगह ऐसा प्रसंग आया है । इनमें कहा गया है कि गायत्री को ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र ने शाप दिया है कि उसकी

साधना निष्फल रहेगी, जब तक उसका शाप मोचन नहीं हो जाता । इस प्रसंग में 'शाप मुक्त भोव' वर्ग के तीन श्लोक भी हैं । उन्हें पाठ कर तीन चमची जल छोड़ देने भर से शाप-मोचन का प्रकरण समाप्त हो जाता है ।

यह प्रसंग बहुत ही आश्चर्यजनक है । पौराणिक उल्लेखों के अनुसार गायत्री ब्रह्माजी की अविच्छिन्न शक्ति है । कहीं-कहीं तो उन्हें ब्रह्मा-पत्नी भी कहा गया है । वशिष्ठ वे हैं जिन्होंने गायत्री के तत्वज्ञान को देवसत्ता से हस्तगत करके मनुष्योपयोगी बनाया । वशिष्ठजी के पास कामधेनु की पुत्री नन्दिनी थी । स्वर्ग में गायत्री को कामधेनु कहा गया है और उसके पृथ्वी संस्करण का नाम नन्दिनी दिया गया । वशिष्ठ की प्रमुख शक्ति वही थी । इसके आधार पर उन्होंने ऋषियों में वरिष्ठता प्राप्त की । एक बार प्रतापी राजा विश्वामित्र से विग्रह हो जाने पर नन्दिनी के प्रताप से उनके धुर्रे बिखेर दिये । उसी ब्रह्मशक्ति से प्रभावित होकर राजा विश्वामित्र विरक्त बने और गायत्री की प्रचण्ड साधना में संलग्न रहकर गायत्री मन्त्र के दृष्टाव, साक्षात्कार कर्ता, निष्णान्त एवं सिद्ध पुरुष बने । गायत्री के विनियोग संकल्प में सविता देवता, गायत्री छन्द, विश्वामित्र ऋषि का वाचन होता है । इससे स्पष्ट है कि गायत्री विद्या के अन्तिम पारंगत ऋषि होने का श्रेय विश्वामित्र को ही प्राप्त है ।

प्रस्तुत प्रतिपादनों में स्पष्ट है कि ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र तीनों की ही आराध्य एवं शक्ति निर्झरिणी गायत्री ही रही है । उसी के प्रताप से उन्होंने वर्चस्व पाया है । विष्णु के कमल नाभि से उत्पन्न होने के उपरान्त आकाशवाणी द्वारा निर्दिष्ट गायत्री की उपासना करके ही ब्रह्माजी सृष्टि निर्माण की शक्ति प्राप्त कर सके और उसी महाविद्या के व्याख्यान में उन्होंने चार मुखों से चार वेदों का सृजन किया । ब्रह्माजी गायत्री के ही मूर्तिमान संस्करण कहे जा सकते हैं ।

ऐसी दशा में ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र गायत्री की साधना के निष्फल चले जाने का शाप देकर अपने पैरों कुल्हाड़ी क्यों मारेंगे ? स्वयं हतवीर्य क्यों बनेंगे और समस्त संसार को इस कल्पवृक्ष का लाभ उठाने से वंचित क्यों करेंगे ? यह ऐसी अनबूझ पहेली है, जिसका समाधान कहीं से भी नहीं सूझता ।

लगता है मध्यकाल में जब चतुर धर्माध्यक्षों में अपना स्वतन्त्र मत चलाने की प्रतिस्पर्धा जोरों पर थी, तब उन्होंने गायत्री की सर्वमान्य उपासना को निरस्त करके उसका स्थान अपनी प्रतिपादित उपासनाओं को दिलाने का प्रयत्न किया होगा । इसके लिए पूर्व मान्यता हटाने की बात मस्तिष्क में आई होगी । सीधा आक्रमण करने से सफलता की सम्भावना न देखकर बगल से हमला किया होगा । गायत्री की सर्वमान्य महत्ता को धूमिल करने के लिए, उसे शापित, कीलित होने के कारण निष्फल होने की बात कहकर लोगों में निराशा, अश्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न चला होगा और उस मनःस्थिति से लाभ उठा कर अपने सम्प्रदाय का गुरुमन्त्र लोगों के गले उतारा होगा ।

इसके अतिरिक्त और कोई कारण समझ में नहीं, आता जिसके आधार पर गायत्री महाशक्ति के प्रमुख उपासकों द्वारा शाप देकर व्यर्थ कर दिये जाने जैसी उल-जलूल बात कही जा सके । सूर्य को, बादलों को, पवन को, बिजली को, पृथ्वी को कौन शाप दे सकता है ? इतना बड़ा शाप दे सकने की सामर्थ्य इस धरती के निवासियों की तो हो नहीं सकती । अस्तु, गायत्री को शाप लगने और उसके निष्फल होने की बात को किसी विकृत मस्तिष्क की उपज ही कहा जा सकता है । उसे मान्यता देने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है । हर कोई बिना किसी शंका-कुशंका के गायत्री उपासना कर सकता है और उसके सत्परिणामों की आशा कर सकता है ।

वस्तुतः इस अलंकारिक वर्णन में विधिवत् गायत्री साधना करने, उसकी शास्त्रीय प्रक्रिया को समझने एवं अनुभवी पथ-प्रदर्शक के संरक्षण में साधना-क्रम को आगे बढ़ाने का आदेश दिया गया है । 'वशिष्ठ' कहते हैं— विशेष रूप से श्रेष्ठ का । प्राचीनकाल में जो व्यक्ति सवा करोड़ गायत्री जप कर लेते थे उन्हें वशिष्ठ की पदवी दी जाती थी । रघुवंशियों के कुलगुरु सदा ऐसे ही वशिष्ठ पदवी धारी होते थे । रघु, अज, दिलीप, दशरथ, राम, लव-कुश इन छः पीढ़ियों के गुरु एक वशिष्ठ नहीं, अलग-अलग ऋषि थे पर उन सभी ने उपासना के आधार पर वशिष्ठ पद पाया था । 'वशिष्ठ शाप मोचन' का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के किसी अनुभवी उपासक से गायत्री साधना की शिक्षा लेनी चाहिए उसे अपना पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना चाहिए । विश्वामित्र का अर्थ है संसार की भलाई करने वाले परमार्थी, और सच्चरित्र एवं कर्त्तव्यनिष्ठ । गायत्री का शिक्षक केवल वशिष्ठ गुण वाला होना ही पर्याप्त नहीं उसे विश्वामित्र भी होना चाहिए । तपस्वी और परमार्थी दोनों ही गुण जिनमें हों

उन्हें वशिष्ठ एवं विश्वामित्र श्रेणी का व्यक्ति कहा जा सकता है । ऐसे ही लोगों से गायत्री की विधिवत शिक्षा-दीक्षा लेने पर इस महामन्त्र में वह लाभ उठाना सम्भव होता है । अपने आप मन चाहे, तरीके से कुछ न कुछ करने लगने से अधिक प्राप्त नहीं हो सकता । जिसने उपयुक्त पथ-प्रदर्शक प्राप्त कर लिया उसने साधना की आधी मंजिल पार कर ली, ऐसा समझना चाहिए । यह शाप मोचन एवं उत्कीलन है । गायत्री जैसी विश्व जननी महाशक्ति को कोई भी सत्ता शाप देने में समर्थ नहीं हो सकती । गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करने के लिये ही अलंकारिक रूप में शाप लगने की बात कही गई है ।

शाप लगने की बात को एक बुझौअल के रूप में अधिक से अधिक इतना ही महत्त्व दिया जा सकता है कि वशिष्ठ जैसे विशिष्ट और विश्वामित्र जैसा विश्व-मानवता का परिपोषक व्यक्ति सहयोगी, मार्गदर्शक मिलने पर इस महान साधना के अधिक सफल होने की आशा है । जिसे ऐसा गुरु न मिलेगा उसे अँधेरे में टटोलने वाले की तरह असफल रह जाने की भी संभावना हो सकती है । गायत्री को गुरुमन्त्र कहा गया है । उसकी सफलता ब्रह्मविद्या में पारंगत वशिष्ठ स्तर के एवं तपश्चर्या की अग्नि परीक्षा में खरे उतरे हुए विश्वामित्र स्तर के गुरु मिल जाने पर सुनिश्चित होती है । अन्यथा शाप लगने और निष्फल जाने का भय बना ही रहेगा ।

## अशौच में प्रतिबन्ध

जन्म और मरण का सूतक तथा स्त्रियों का रजोदर्शन होने की अवधि को अस्पर्श जैसी स्थिति का माना जाता है । उन दिनों गायत्री उपासना भी बन्द रखने के लिए कहा जाता है । इसको औचित्य अनौचित्य का विश्लेषण करने से पूर्व यह जान लेना चाहिए कि सूतक एवं रजोदर्शन के समय सम्बन्धित व्यक्तियों के पृथक् रखने का कारण उत्पन्न हुई अशुद्धि की छूत से अन्यों को बचाना है । साथ ही इन अव्यवस्था के दिनों में उन्हें शारीरिक, मानसिक श्रम से बचाना भी है । यह सभी बातें विशुद्ध रूप से स्वच्छता-नियमों के अन्तर्गत आती हैं । अस्तु प्रतिबन्ध भी उसी स्तर के होने चाहिए जिससे अशुद्धता का विस्तार न होने पाये । विपन्न स्थितियों में फँसे हुए व्यक्तियों पर से यथासम्भव शारीरिक मानसिक दबाव कम करना इन प्रतिबन्धों का मूलभूत उद्देश्य है ।

भावनात्मक उपासना क्रम इन अशुद्धि के दिनों में भी जारी रखा जा सकता है । विपन्नता की स्थिति में ईश्वर की शरणागति, उसकी उपासनात्मक समीपता हर दृष्टि से उत्तम है । उन दिनों यदि प्रचलित छूत परम्परा को निभाना हो तो इतना ही पर्याप्त है कि पूजा उपकरणों का स्पर्श न किया जाय । देव पूजा का विधान-कृत्य न किया जाय । मानसिक उपासना में किसी भी स्थिति में कोई प्रतिबन्ध नहीं है । मुंह बन्द करके, बिना माला का उपयोग किये, मानसिक जप, ध्यान इन दिनों भी जारी रखा जा सकता है । इससे अशुद्धि का भाव हल्का होने में भी सहायता मिलती है ।

सूतक किसको लगा, किसको नहीं लगा, इसका निर्णय इसी आधार पर किया जा सकता है कि जिस घर में बच्चे का जन्म या किसी का मरण हुआ है, उसमें निवास करने वाले प्रायः सभी लोगों को सूतक लगा हुआ माना जाय । वे भले ही अपने जाति-गोत्र के हों या नहीं । पर उस घर से अन्यत्र रहने वाले—निरन्तर सम्पर्क में न आने वालों पर सूतक का कोई प्रभाव नहीं हो सकता, भले ही वे एक कुटम्ब-परम्परा या वंश, कुल के क्यों न हों । वस्तुतः सूतक एक प्रकार की अशुद्धि-जन्य छूत है, जिसमें संक्रामक रोगों की तरह सम्पर्क में आने वालों को लगने की बात सोची जा सकती है यों अस्पतालों में भी छूत या अशुद्धि का वातावरण रहता है । पर सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों अथवा साधनों को उससे बचाने की सतर्कता रखने पर भी सम्पर्क और सामंजस्य बना ही रहता है । इतना भर होता है कि अशुद्धि के सम्पर्क के समय विशेष सतर्कता रखी जाय । जन्म-मरण के सूतकों के विषय में भी इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए । पूजापरक कृत्यों में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखने का नियम है । इसी से उन दिनों नियमित पूजा-उपचार में प्रतिमा, उपकरण आदि का स्पर्श न करने की प्रथा चली होगी । उस प्रचलन का निर्वाह न करने पर भी मौन-मानसिक जप, ध्यान आदि व्यक्तिगत उपासना का नित्यकर्म करने में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं पड़ता ।

महिलाओं के रजोदर्शन काल में भी कई प्रकांर के प्रतिबन्ध हैं, वे अछूत की तरह रहती हैं । भोजन आदि नहीं पकातीं । उपासनागृह में भी नहीं जातीं । इसका कारण मात्र अशुद्धि ही नहीं यह भी है कि उन दिनों उन पर कठोर श्रम का दबाव न पड़े । अधिक विश्राम मिल सके । नस-नाड़ियों में कोमलता बढ़ जाने से उन दिनों अधिक कड़ी मेहनत न करने की व्यवस्था स्वास्थ्य के नियमों को ध्यान में रखते हुए बनी होगी । इन प्रचलनों

को जहाँ माना जाता है वहाँ कारण को समझते हुए भी प्रतिबन्ध किस सीमा तक रहें इस पर विचार करना चाहिए । रुग्ण व्यक्ति प्राय: स्नान आदि के सामान्य नियमों का निर्वाह नहीं कर पाते और ज्वर, दस्त, खाँसी आदि के कारण उनकी शारीरिक स्थिति में अपेक्षाकृत अधिक मलीनता रहती है । रोगी परिचर्या के नियमों से अवगत व्यक्ति जानते हैं कि रोगी की सेवा करने वालों या सम्पर्क में आने वालों को सतर्कता, स्वेच्छा के नियमों का अधिक ध्यान रखना पड़ता है । रोगी को भी दौड़-धूप से बचने और विश्राम करने की सुविधा दी जाती है । उसे कोई चाहे तो छूतछात भी कह सकते हैं । ऐसी ही स्थिति रजोदर्शन के दिनों में समझी जानी चाहिए और उसकी सावधानी बरतनी चाहिए ।

तिल को ताड़ बनाने की आवश्यकता नहीं है । कारण और निवारण का बुद्धिसंगत ताल-मेल विवेकपूर्वक बिठाने में ही औचित्य है । शरीर के कतिपय अंग द्रवमल विसर्जन करते रहते हैं । पसीना, मूत्र, नाक, आँख आदि के छिद्रों से निकलने वाले द्रव भी प्राय: उसी स्तर के हैं जैसा कि ऋतुस्राव । चोट लगने पर भी रक्त निकलता रहता है । फोड़े फूटने आदि से भी प्राय: वैसी ही स्थिति होती है । इन अवसरों पर स्वच्छता के आवश्यक नियमों का ध्यान रखा जाना चाहिए । बात का बतंगड़ बना देना अनावश्यक है । प्रथा-प्रचलनों में कई आवश्यक हैं कई अनावश्यक । कइयों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए और कइयों की उपेक्षा की जानी चाहिए । सूतक और अशुद्धि के प्रश्न को उसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए जिससे कि प्रचलन कर्त्ताओं ने उसे आरम्भ किया था । उनका उद्देश्य उपासना जैसे आध्यात्मिक नित्यकर्म से किसी को विरत, वंचित करना नहीं वरन् यह था कि अशुद्धता सीमित रहे, उसे फैलने का अवसर न मिले । आज भी जहाँ अशौच का वातावरण है वहीं सूतक माना जाय और शरीर से किये जाने वाले कृत्यों पर ही कोई रोकथाम की जाय । मन से उपासना करने पर तो कोई स्थिति बाधक नहीं हो सकती । इसलिए नित्य की उपासना मानसिक रूप से जारी रखी जा सकती है । पूजा-उपकरणों का स्पर्श न करना हो तो न भी करे ।

यदि सूतक या अशौच के दिनों में अनुष्ठान चल रहा हो तो उसे उतने दिन के लिए बीच में बन्द करके, निवृत्ति के बाद, जिस गणना से छोड़ा था, वहीं से फिर आरम्भ किया जा सकता है । बिना माला का मानसिक जप-ध्यान किसी भी स्थिति में करते रहा जा सकता है ।

## अनुष्ठान के नियमोपनियम

साधारण स्तर का जीवनक्रम अपनाकर की गई उपासना नित्य नियम है । अनुष्ठान का स्तर विशेष है— उसके साथ अनेकों प्रतिबन्ध, नियम, विधान जुड़े रहते हैं । अतएव उसका प्रतिफल भी विशेष होता है । पुरश्चरण का विशेष विधि-विधान है । उसमें अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक मन्त्रों एवं कृत्यों का प्रयोग करना पड़ता है । वह कर सकना उस प्रयोजन के लिए, प्रशिक्षित संस्कृतज्ञों के लिए ही सम्भव है । साधारणतया अनुष्ठानों का ही प्रचलन है । सर्वसाधारण के लिए वे ही सरल हैं ।

अनुष्ठान तीन स्तर के हैं । लघु , चौबीस हजार जप का ९ दिन में सम्पन्न होने वाला । मध्यम, सवालक्ष का ४० दिन में होने वाला । उच्च, २४ लाख जप का १ वर्ष में होने वाला । लघु में २७ माला, मध्यम में ३३ और उच्च में ६६ माला नित्य जपनी होती हैं । औसत एक घण्टे में १०-११ माला जप होता है । इस हिसाब से लघु और मध्यम में प्राय: तीन घण्टे और उच्च में छ: घण्टे नित्य लगते हैं । यह क्रम दो या तीन बार में भी थोड़ा-थोड़ा करके पूरा हो सकता है । यों प्रात:काल का ही समय सर्वोत्तम है । शरीर, वस्त्र तथा उपकरणों की शुद्धता, षट्-कर्म, पंचोपचार, जप, ध्यान, सूर्यार्घदान यही उपक्रम है । पूजा वेदी पर छोटा जलकलश और अगरबत्ती रखकर (जल, अग्नि की साक्षी मानी जाती है) चित्र, प्रतिमा का पूजन, जल, अक्षत, चन्दन, पुष्प, नैवेद्य से किया जाता है । आवाह्न, विसर्जन के लिए आरम्भ और अन्त में गायत्री मन्त्र सहित नमस्कार किया जाता है ।

जप के साथ हवन जुड़ा हुआ है । प्राचीन काल में जब हर प्रकार की सुविधा थी तब जप का दशांश हवन किया जाता था । आज की स्थिति में शतांश पर्याप्त है । चौबीस हजार के लिए २४०, सवा लक्ष के लिए १२५० चौबीस लक्ष के लिए २४ हजार आहुतियाँ देनी चाहिए, यह एक परम्परा है । स्थिति के अनुरूप आहुतियों की संख्या न्यूनाधिक भी हो सकती है । पर होनी अवश्य चाहिए । अनुष्ठान में जप और हवन दोनों का ही समन्वय है । गायत्री माता और यज्ञ पिता का अविच्छिन्न युग्म है । दो विशिष्ट साधनाओं में दोनों को साथ रखकर

मिलाना होता है । हवन हर दिन भी हो सकता है और अन्तिम दिन भी । हर दिन न करना हो तो जितनी माला हों उतनी आहुतियाँ । अन्तिम दिन करना हो तो समूचे जप का शतांश । यज्ञवेदी पर कई व्यक्ति बैठते हैं तो सम्मिलित आहुतियों की गणना होती है । जैसे हवन पर ५ व्यक्ति बैठे हों तो उनके द्वारा दी गई १०० आहुतियाँ ५०० मानी जायेंगी । २४० आहुतियों के लिए ६ व्यक्ति एक साथ बैठकर हवन करें तो ४० बार आहुतियाँ प्रदान करने से ही वह संख्या पूरी हो जायेगी ।

पुरश्चरणों में तर्पण, मार्जन, न्यास, कवच, कीलक, अर्गल आदि के कितने ही विशिष्ट विधान हैं । अनुष्ठानों में इनमें से किसी की भी आवश्यकता नहीं है । जप, हवन के उपरान्त ब्रह्मभोज ही पूर्णाहुति का अन्तिम चरण पूरा करने के लिए आवश्यक होता है । यह कार्य ब्राह्मणों या कन्याओं को भोजन कराने के साथ पूरा होता है । सच्चे ब्राह्मण ढूँढ़ पाना अति कठिन है । जो हैं वे परान्न खाने को तैयार नहीं होते । कन्याओं को मातृशक्ति का प्रतीक मानकर भाव-पवित्रता का सम्वर्धन करने के लिए भोजन कराया जा सकता है । पर उसमें भी यही व्यवधान आता है । स्वाभिमानी अभिभावक इसके लिए तैयार नहीं होते । ढूँढ़ निकाली भी जायें तो दान की प्रतिक्रिया का अनुमान लगाने पर उसका परिणाम भी कुछ उत्साहवर्धक नहीं दीखता । इन परिस्थितियों में ब्रह्मभोज का सही स्वरूप ब्रह्मदान हो सकता है । ब्रह्मदान अर्थात् सद्ज्ञान का दान । यह युग निर्माण द्वारा पूरा हो सकता है । एक-एक आहुति पर एक नया पैसा ब्रह्मदान के लिए निकाला जाय । २४० आहुतियाँ २४ हजार के अनुष्ठान के लिए देनी हैं तो २४० पैसे का प्रसार साहित्य भी सत्पात्रों को वितरण करना चाहिए । इससे सद्ज्ञान का बीजारोपण अनेक अन्तःकरणों में होता है और उसका सत्परिणाम पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों को ही समान रूप से मिलता है ।

अनुष्ठान में अधिक अनुशासन पालन करना पड़ता है । जप का समय, संख्या, दैनिक क्रम एक साथ बनाकर चलना पड़ता है । अनिवार्य कारण आ पड़े तो बात दूसरी है अन्यथा उपासना का निर्धारण क्रम आदि से अन्त तक एक रस ही चलते रहना चाहिए । उसमें उलट-पुलट अनिवार्य कारण होने पर ही करती चाहिए और वह भी न्यूनतम मात्रा में ।

अनुष्ठान के दिनों में पाँच तप-संयम साधने पड़ते हैं—(१) उपवास, (२) ब्रह्मचर्य, (३) अपनी सेवा अपने हाथ से, (४) भूमिशयन, (५) चमड़े का प्रयोग त्याग । अनुष्ठान के दिनों चमड़े के जूते आदि का प्रयोग न किया जाय । प्लास्टिक, रबड़, कपड़ा आदि की बनी वस्तुएँ आजकल चमड़े के बजाय हर स्थान पर प्रयुक्त होती हैं । वही किया जाय । भूमि शयन सर्वोत्तम है । सीलन, कीड़े आदि का भय हो तो तख्त पर सोया जा सकता है । हजामत, कपड़े धोना जैसी दैनिक जीवन की शारीरिक आवश्यकताएँ नौकरों से न करायें, स्वयं करें । भोजन अपने हाथ से बना सकना सम्भव न हो तो स्त्री, माता, बहिन आदि उन्हीं अति निकटवर्ती स्वजनों के हाथ का बनाया स्वीकार करें, जिनके साथ आत्मीयता का आदान-प्रदान चलता है । बाजार से पका हुआ तो नहीं ही खरीदें । ब्रह्मचर्य अनुष्ठान के दिनों में आवश्यक है । शारीरिक ही नहीं मानसिक भी पाला जाना चाहिए । कामुक कुदृष्टि पर नियन्त्रण रखा जाय । सम्पर्क में आने वाली नारियों को माता, बहिन या पुत्रीवत् पवित्र भाव से देखा जाय । यही बात पुरुषों के सम्बन्ध में नारियों पर लागू होती है । पाँचवीं तपश्चर्या भोजन की है । यह उपवास काल है । उपवास कई स्तर के होते हैं—(१) छाछ, दूध आदि पेय पदार्थों पर रहना, (२) शाक फल के सहारे काम चलाना, (३) नमक, शक्कर का त्याग अर्थात् अस्वाद, (४) एक समय आहार, (५) दो खाद्य पदार्थों पर अनुष्ठान की अवधि काटना ।

अनुष्ठान के यही मोटे नियम हैं । इसके अतिरिक्त जो तरह-तरह की बातें कही जाती हैं और परस्पर विरोधी नियम बताये जाते हैं उन पर ध्यान न दिया जाय ।

अनुष्ठान में कोई भूल हो जाने पर त्रुटि रहने पर भी किसी अनिष्ट की आशंका न करनी चाहिए । फिर भी उन दिनों कोई विघ्न उत्पन्न न होने पाये इसके लिए संरक्षण और ज्ञात-अज्ञात में रही हुई त्रुटियों का परिमार्जन करने के लिए अनुष्ठान साधना के लिए कोई समर्थ संरक्षक नियुक्त कर लेना चाहिए । यह सेवा शान्तिकुंज हरिद्वार से भी ली जा सकती है । अनुष्ठान करने वाले व्यक्ति का परिचय तथा समय लिख भेजने से संरक्षण, परिमार्जन सर्वथा निस्वार्थ भाव से होता रहता है । यह व्यवस्था करने पर साधना की सफलता और भी अधिक सुनिश्चित हो जाती है ।

## एक के द्वारा दूसरे के लिए जप अनुष्ठान

जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने धन साधनों का अनुदान दूसरे अभावग्रस्तों को दे सकता है, उसी प्रकार उपासना द्वारा अर्जित तप भी दूसरों के निमित्त उदारतापूर्वक किया जाता है । इसी प्रकार तप देने वाले का जो कोष खाली होता है वह बदले में मिलने वाले पुण्य से फिर भर जाता है । दानी को पुण्य मिलता है । इस प्रकार वह एक वस्तु देकर बदले में दूसरी प्राप्त कर लेता है और घाटे में नहीं रहता । कष्टपीड़ितों की व्यवस्था हरने वाला कोई व्यक्ति सद्प्रयत्नों को सफल बनाने के लिए, अपने जप-तप का दान देता रहे तो उसकी यह परमार्थ परायणता आत्मोन्नति में बाधक नहीं, सहायक ही सिद्ध होगी । वरदान, आशीर्वाद देने की परम्परा यही है । इसमें इतना ही ध्यान रखा जाय कि मात्र औचित्य को ही सहयोग दिया जाय । अनाचार को परिपुष्ट करने के लिए अपनाई गई उदारता भी प्रकारान्तर से स्वयं अनाचार करने की तरह ही पाप कर्म बन जाती है । इसलिए किसी की सहायता करते समय यह ध्यान भी रखना चाहिए कि इस प्रकार की सहायता से अनीति का पक्ष पोषण तो नहीं होता ।

पैसा देकर बदले में कल्याण के निमित्त कराए गये जप, अनुष्ठानों में सफलता तभी मिलती है जब कि फीस पारिश्रमिक के रूप में नहीं वरन् कर्ता ने अनिवार्य निर्वाह के लिए न्यूनतम मात्रा में ही उसे स्वीकार किया हो । व्यवहार या लूट-खसोट की दृष्टि से मनमाना पैसा वसूल करने वाले लालची अनुष्ठान कर्ताओं का प्रयत्न नगण्य परिणाम ही प्रस्तुत कर सकता है ।

अनुष्ठान आदि की विशिष्ट साधनाएँ, चाहे स्वयं की गई हों या दूसरे किसी से कराई गई हों, उनमें हर हालत में तपश्चर्या के नियमों का पालन करना आवश्यक है । आहार की सात्विकता-ब्रह्मचर्य पालन-अपनी सेवा आप करना जैसे नियम हर अनुष्ठान कर्ता के लिए आवश्यक हैं, भले ही वह अपने निमित्त किया गया हो या दूसरे के लिए । इन नियमों का पालन न करने पर, मात्र जप-संख्या पूरी करने पर से अनुष्ठान का लाभ नहीं मिलता ।

जहाँ तक हो सके अपनी साधना स्वयं ही करनी चाहिए । विपत्ति के समय वह दूसरे से भी कराई जा सकती है । पर उसकी आन्तरिक भावना और बाह्य आचरण प्रक्रिया साधु ब्राह्मण स्तर की ही होनी चाहिए । प्राचीन काल में ऐसे कृत्यों के लिए ब्राह्मण वर्ग के लोगों को महत्त्व दिया जाता था । उन दिनों के ब्राह्मण—ब्रह्म-तंत्व के ज्ञाता—उच्च चरित्र और आचरण-व्यवहार में देवोपम रीति-नीति अपनाने वाले थे । इसलिए उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की जाती थी और उन्हें देव कर्मों का उत्तरदायित्व सौंपा जाता था । आज वैसे ब्राह्मण मिलने कठिन हैं जो वंश से नहीं गुण-कर्म-स्वभाव की कसौटी पर अपने स्तर के अनुरूप खरे उतरते हों । विशिष्टता न रहने पर विशिष्ट स्तर एवं विशेष अधिकार भी नहीं रहता । आज की स्थिति में ब्राह्मण-अब्राह्मण का अन्तर कर सकना कठिन है । वंश और वेष की प्रभुता प्राचीन काल में भी अमान्य थी और आज भी अमान्य ही रहेगी ।

जहाँ तक अनुष्ठान का—उससे सम्बन्धित यज्ञादि कर्मों का सम्बन्ध है, उसे स्वयं ही करना सर्वोत्तम है । यदि दूसरे से कराना हो तो वंश-वेष को महत्त्व न देकर किसी चरित्रवान, निर्लोभ, निष्ठावान, साधक प्रकृति के व्यक्ति से ही उसे कराना चाहिए । ऐसा व्यक्ति किस वंश या कुल का है इसका महत्त्व नहीं ।

## अखण्ड जप करें—अखण्ड यज्ञ नहीं

गायत्री जयन्ती, गुरु पूर्णिमा, बसन्त पंचमी आदि पर्वों पर अखण्ड गायत्री जप रखा जाता है । जिस समय से आरम्भ करते हैं उसी समय पर समाप्ति भी होती है । २४ घण्टे में प्राय: आधा समय दिन का और आधा रात्रि का होता है । दिन में मन्त्र उच्चारण सहित और रात्रि में मानसिक जप करने की परम्परा है । अखण्ड जप में एक ही विधि रखी जाती है । दिन में एक प्रकार और रात्रि में दूसरी प्रकार नहीं करते । इसलिए पूरा अखण्ड जप मानसिक ही होना उपयुक्त रहता है । इसमें एकरसता बनी रहती है । यों जहाँ कहीं दिन और रात्रि के अन्तर को ध्यान में रखते हुए वाचिक और मानसिक जप की भिन्नता रखी जा सके वहाँ वैसा भी हो सकता है । सरलता मानसिक जप में ही रहती है ।

यज्ञ अखण्ड करने का विधान नहीं है । वह नियत समय में ही समाप्त होना चाहिए । यज्ञ का उपयुक्त समय

दिन है । दिन में कीड़े-मकोड़े अग्नि में न जा पहुंचें, इसका ध्यान रखा जा सकता है । रात्रि में कृत्रिम प्रकाश उत्पन्न कर लेने पर भी ऐसी स्थिति नहीं बन पड़ती कि छोटे कीड़ों को पूरी तरह देख सकना या रोक सकना सम्भव हो सके । सर्वविदित है कि पतंगों से लेकर छोटे कृमि-कीटक दिन की अपेक्षा रात्रि में ही अपनी गतिविधियाँ अधिक विस्तृत करते हैं । इसलिए रात्रि में हिंसा की सम्भावना अधिक रहने, सतर्कता कम बन पड़ने की स्थिति को ध्यान में रखते हुए सूर्य की उपस्थिति में ही यज्ञ करने की परम्परा है । ऐसे समय में रात्रि के समय भी यज्ञ जारी रखने का औचित्य नहीं है ।

विवाह शादियाँ प्राय: रात्रि के समय होने का ही प्रचलन है । उस समय अग्निहोत्र होता है, पर वह अपवाद है । यों विवाह विधि भी शास्त्र परम्परा के अनुसार दिन में ही होनी चाहिए और उसका अग्निहोत्र भाग भी दिन में ही निपटना चाहिए । पर लोगों ने सुविधा का ध्यान रखते हुए रात्रि को फुरसत में विवाह की धूमधाम करने का रास्ता निकाल लिया है । दिन में करने से दिन के अन्य कामों का हर्ज होता है । ऐसे ही कारणों से विवाह जैसे अवसरों पर अपवाद रूप से रात्रि में ही हवन होते हैं ।

वस्तुत: तान्त्रिक 'मख' रात्रि के सुनसान वातावरण में श्मशान, खण्डहर जैसे वीभत्स स्थानों में करने की विधि-व्यवस्था है । यज्ञ वैदिक होते हैं और 'मख' तान्त्रिक । मख कृत्यों में अभक्ष और अस्पृश्य जैसे पदार्थ भी होमे जाते हैं । उनका दृश्य कुरुचिपूर्ण होता है । इसलिए उन्हें अविज्ञात, एकान्त एवं निस्तब्ध वातावरण में सम्पन्न किया जाता है । निशाचरी कृत्य तमोगुण प्रधान एवं अनैतिक होते हैं । उन्हें गुह्य ही रखा जाता है । प्रकट होने पर विरोध-विग्रह का ही डर रहता है । हिंसा-अहिंसा का भी उसमें ध्यान नहीं रखा जाता है । अतएव होलिका दहन, चिता प्रज्ज्वलन जैसे मख-कृत्यों को छोड़कर रात्रि के समय देव-यज्ञ नहीं किये जाते । प्रचलन फैल जाने के कारण विवाह संस्कार ही इसका अपवाद है । यों उनमें भी गोधूलि वेला का मुहूर्त उत्तम माना गया है ।

अखण्ड-जप रखना ही पर्याप्त है । अखण्ड यज्ञ का अत्युत्साह न दिखाया जाय । घृतदीप और अगरबत्ती जलाते रहने से हवन की संक्षिप्त प्रक्रिया पूरी होती रह सकती है । अखण्ड जप के साथ ही चौबीस घण्टे घृतदीप जलाने और धूपबत्ती प्रज्ज्वलित करने की व्यवस्था बना दी जाय तो प्रकारान्तर से ही अखण्ड यज्ञ की विधि भी भाव दृष्टि से पूरी हो सकती है । यज्ञ दिन में ही किये जायें ।

अखण्ड जप की एक पद्धति २४ घण्टा जप की है । दूसरी सूर्योदय से सूर्यास्त तक जप जारी रखने की भी है । उसे भी अखण्ड संज्ञा दी जानी चाहिए । सविता की उपस्थिति में वाचिक और व्यवस्थित जप ही यदि अभीष्ट हो तो २४ घण्टे के स्थान पर सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक भी सामूहिक जप किया जा सकता है ।

## जप-यज्ञ के समय के वस्त्र

जप तथा यज्ञ में ऐसे वस्त्र धारण किए जाते हैं जो शरीर से अधिक चिपकें नहीं, प्राण तत्व को भीतर खींचने और कल्मषों को बाहर निकालने की उस समय की प्रक्रिया में बाधा न पहुँचायें । प्राचीन काल में धोती और दुपट्टा दो ही वस्त्र इन प्रयोजनों में काम आते थे । शरीर पर न्यूनतम वस्त्र रहें, जो रहें वे ढीले हों, वायु के आवागमन में बाधक न होते हों, वही उपासना के समय धारण करने योग्य माने गये हैं । यज्ञ में यह बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है, क्योंकि अग्निहोत्र की उपयोगी ऊर्जा रोम छिद्रों के द्वारा भीतर प्रवेश करती है, त्वचा पर प्रभाव डालती है । उस गर्मी के भीतर प्रवेश करने पर भीतर से भाप, पसीना और साथ ही अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ बाहर निकलती हैं । यदि कपड़े भारी, मोटे या कसे हुए रहेंगे तो उपर्युक्त दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति में कठिनाई पड़ेगी और साधक घाटे में रहेगा ।

धोती सबसे ढीला वस्त्र है । उससे लज्जा आच्छादन ठीक प्रकार होता है । कटि प्रदेश और जंघाएँ लज्जा के अवयव माने गये हैं । वे पाजामे में भी उतनी अच्छी तरह नहीं ढँकते जितना की भारतीय संस्कृति के अनुसार आवश्यक है । इसी प्रकार पाजामे का कमरबन्द नीचे की मुहरी, शरीर के साथ उसका चिपका रहना, यज्ञ के लाभों में बाधा उत्पन्न करता है । अधिक खुली हवा के आवागमन के अधिक अनुकूल होने के कारण धोती ही अधिक उपयुक्त है । भारतीय संस्कृति का यही प्रतीक परिधान भी है । जिसका अन्य समय में न सही धार्मिक कृत्यों में तो स्थान बना ही रहना चाहिए ।

शरीर पर धारण किये जाने वाले वस्त्रों में कुर्ता, सीधा, सरल, सादगी का प्रतीक एवं सस्ता है । वायु का आगमन निर्बाध रूप से होता रहे ऐसी ही उसकी बनावट

है । भारत की सांस्कृतिक पोशाक की दृष्टि से भी कुर्ता ऐसा परिधान है जिसे धार्मिकता एवं सांस्कृतिक एकता के प्रतीक रूप में मान्यता मिल सकती है । वह आसानी से नित्य धोया जा सकने योग्य है ।

ऐसे कपड़े जो शरीर पर चिपके रहते हैं—नित्य नहीं धुलते, उनको धार्मिक क्रिया-कृत्यों में धारण न किया जाय तो ही अच्छा है । मोजे हर हालत में उतार देने चाहिए, उनकी गन्दगी लगभग जूते के ही समतुल्य होती है ।

जिन प्रदेशों में धोती कुर्ते का रिवाज नहीं है, बनाना भी कठिन है, वहाँ पाजामा के उपयोग की भी छूट मिल सकती है । पर वह भी धुला हुआ तो हो यह ध्यान रखा जाय । जहाँ आसानी से धोती कुर्ते का प्रबन्ध हो सकता है वहाँ उसके लिए जोर दिया ही जाय । इस सन्दर्भ में आलस्य या उपेक्षा न बरतें । कंधे पर पीला दुपट्टा धर्मानुष्ठानों के लिए शास्त्रोक्त परिधान है । जहाँ तक सम्भव हो जप, साधना यज्ञ-प्रक्रिया आदि के अवसर पर कंधे पर पीला दुपट्टा रखा जाय । इसमें सांस्कृतिक एकता एवं भावनात्मक समस्वरता का समावेश है । इसलिए यथासम्भव सभी धर्मकृत्यों में धोती, कुर्ता, पीला दुपट्टा धारण करने पर जोर दिया जाय । पर इसे इतना कड़ा प्रतिबन्ध माना जाय कि किसी श्रद्धालु को मात्र इसी कारण सम्मिलित होने से रोका जाय । अच्छा यह है कि सामूहिक आयोजनों में कुछ सेट इस प्रकार के रखे जायें जिन्हें वे लोग प्रयोग कर सकें जो इस प्रकार के वस्त्र घर से लेकर नहीं आए हैं । महिलाएँ प्रायः साड़ियाँ, ही पहनती हैं, वे धर्मकृत्यों में पीली रँगी रहें । शरीर पर धारण करने के वस्त्र चिपके रहने वाले नहीं ढीले होने चाहिए ।

## नित्य उपासना से अधिक लाभ

प्रतिदिन प्रातः सायं नियमित रूप से गायत्री उपासना का विधान है । उस नियमितता में कोई व्यतिरेक नहीं आने देना चाहिए । तन्मयता और एकाग्रता तो उपासना को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए अनिवार्य है ही । पर इतने मात्र से ही आत्मकल्याण की आवश्यकता पूरी नहीं हो जाती है । स्वास्थ्य संरक्षण के लिए दिन में दो या तीन बार भोजन करते हैं । शरीर के पोषण और स्वास्थ्य संरक्षण के लिए यह आवश्यक है, पर इतने मात्र से यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता । इसके साथ ही श्रमशील जीवन जीना, दिनचर्या में और भी कई नियमों का समावेश करना आवश्यक हो जाता है । यदि इन आवश्यक बातों का ध्यान न रखा गया तो कितना ही पौष्टिक भोजन किया जाय उससे पोषण और स्वास्थ्य संरक्षण की आवश्यकता पूरी नहीं होती । गायत्री उपासना थोड़े समय तक की जाती है लेकिन उसका पूरा लाभ तब मिलता है जब जीवन पथ में उपासना के साथ-साथ साधना का भी समावेश किया जाय ।

पहलवान लोग शारीरिक शक्ति का सम्वर्धन करने के लिए पौष्टिक भोजन तो करते ही हैं लेकिन उसका अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए अधिकाधिक श्रम, व्यायाम, दण्ड, बैठक आदि भी करते हैं, तभी उसका समुचित लाभ मिलता है । जिन्हें गायत्री उपासना से अधिकाधिक लाभ उठाना है, उन्हें चाहिए कि वे उपासना के साथ साधनात्मक व्यायाम भी करें । यदि उपासना का स्तर अधिक ऊँचा कर दिया जाय, उसे साधना स्तर की बना दिया जाय तो उसका लाभ और भी अधिक मिलता है । साधना से आशय उपासना में निष्ठा का अधिकाधिक समावेश करना है । निष्ठा का समावेश संकल्प, दृढ़ता, अनुशासन और नियमितता के रूप में चरितार्थ होता है । निष्ठा के समावेश से संकल्प बढ़ता है, संकल्प से मनोबल, आत्मिक बल ऊँचा उठता है । यह मनोबल, संकल्प दृढ़ता, समन्वित-निष्ठा साधक को कठोर अनुशासन में रहने के लिए प्रेरित और बाध्य करती है । यह अनुशासन, नियमानुवर्तित ही तपश्चर्या कहलाती है । अनुष्ठान साधनाओं में इन्हीं बातों की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है और यदि नियमित साधना में भी इन विशेषताओं का समावेश कर लिया जाय तो वह सामान्य उपासना क्रम भी अनुष्ठान स्तर का बन जाता है । अस्तु, गायत्री उपासना का अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए उसमें नियम पालन, अनुशासन, निष्ठा, दृढ़ता और नियमितता का कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए ।

## साधना का स्तर ऊँचा उठाएँ

अनुष्ठान समय विशेष पर नियम अवधि में पूरा करना पड़ता है । यों उसे कभी भी आरम्भ किया जा सकता है लेकिन अवधि का ध्यान तो रखना ही पड़ता है । उच्च स्तर के, बहुत ही ऊँची श्रेणी के साधक २४ लाख का महापुरश्चरण नित्य निरन्तर चलाते हैं पर यह पूरा समय साधना उपासना में लगा सकने वालों के लिए

ही सम्भव है । सामान्य स्थिति में अपनी उपासना को अनुष्ठान स्तर का बनाना हो तो उसके लिए एक वर्ष में पाँच लाख जप की संख्या पूर्ण करना सर्वश्रेष्ठ है । एक वर्ष में पूरा होने वाले इस उपासना अनुष्ठान को अभियान साधना कहते हैं । इस साधना का विधि-विधान भी बहुत सरल है । ५ लाख की जप संख्या १५ माला प्रति दिन जप करने तथा चैत्र और आश्विन की दो नवरात्रि में २४ हजार का लघु अनुष्ठान करने से पूरी हो जाती है । यों पन्द्रह माला प्रतिदिन करने से भी ३६० दिन में पाँच लाख की संख्या पूरी हो जाती है किन्तु नवरात्रियों में लघु अनुष्ठान तो सभी उपासक करते हैं । सामान्य उपासना क्रम अपनाने वाले साधक भी प्रायः नवरात्रि अनुष्ठान करते हैं । अतएव अभियान साधना करने वाले साधकों को यह अनुष्ठान करना और भी आवश्यक और लाभप्रद है ।

यह तो हुई संख्या पूरी करने की बात । अभियान साधना को अनुष्ठान स्तर की बनाने वाले नियम हैं गुरुवार के दिन संयम । संयम अर्थात् उपवास मौन, ब्रह्मचर्य, तितिक्षा और उन सभी नियमों का पालन जो २४ हजार के, सवालक्ष के अथवा चौबीस लक्ष के, लघु-मध्यम तथा पूर्ण अनुष्ठान पुरश्चरण में करना पड़ते हैं ।

यों शुभ कार्य के लिए सभी दिन शुभ हैं । फिर भी किसी पर्व से यह साधना आरम्भ की जाय तो अधिक उत्तम है । बसन्त पंचमी, गुरु-पूर्णिमा, गायत्री जयन्ती आदि पर्वों से अथवा तिथियों में पंचमी, एकादशी और पूर्णिमा या वारों में रविवार अथवा गुरुवार से अधिक उत्तम है । यों बुरा या निषिद्ध, कोई भी दिन नहीं है । सामान्य नियम यह है कि जब से आरम्भ किया जाय तभी एक वर्ष पूरा होने पर, समाप्त किया जाय । पर्व दिन कुछ आगे-पीछे पड़ते हों तो उस अवसर पर भी पूर्णाहुति की जा सकती है और शेष जप संख्या को थोड़ी-बहुत घटा-बढ़ाकर सन्तुलन बिठाया जा सकता है ।

वैसे पन्द्रह माला और २४ हजार के दो लघु अनुष्ठानों का नियम भी इस प्रकार बनाया गया है कि इस क्रम से उपासना करने में प्रायः ११ महीनों में ही यह संख्या पूरी हो जाती है । चांद्र वर्ष पूरे तीन सौ साठ दिन का होता भी नहीं है । तिथियों की घट-बढ़ प्रायः होती रहती है इसलिए पाँच लाख की संख्या सरलतापूर्वक हो सकती है ।

# आत्मिक प्रगति के लिये गायत्री उपासना सर्वोपरि क्यों है ?

इस अनन्त ब्रह्माण्ड में परमात्मा की अनन्त शक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं । इन शक्तियों से सम्पर्क बनाकर, अपने पुरुषार्थ द्वारा उन्हें अर्जित कर जो चाहे प्राप्त कर सकता है । उदाहरण के लिए मनुष्य ने विज्ञान के सहारे प्रकृति की अनेकों शक्तियाँ हस्तगत कीं और उनसे लाभ उठाया । विद्युत्, ताप, प्रकाश, चुम्बक, शब्द, अणुशक्ति जैसी प्रकृति की कितनी ही दृश्य-अदृश्य, ज्ञात-अविज्ञात शक्तियों को उसने ढूँढ़ा और करतलगत किया । प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के समान ही परब्रह्म की चेतनात्मक शक्तियाँ भी अनन्त हैं । उन शक्तियों को आत्मिक प्रयासों द्वारा करतलगत किया जा सकता है । आवश्यकता है उन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक संकल्प बल की । यह संकल्प बल ही मनुष्य में असाधारण चुम्बकत्व उत्पन्न करता है और उसी क्षमता के सहारे भौतिक जीवन में अनेकों को प्रभावित तथा आकर्षित करता है । उसी आधार पर वह साधन जुटाता है, सम्पन्न बनता और सफलताएँ अर्जित करता है । आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी यही संकल्प बल और तज्जनित चुम्बकत्व, आकर्षण शक्ति चाहिए ।

आध्यात्मिक प्रगति के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, वह है प्रज्ञातत्व । प्रजा की अभीष्ट मात्रा यदि अपने पास विद्यमान हो तो फिर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति करने के लिए कोई बाधा नहीं रह जाती । वह सुविधा और परिस्थितियाँ आसानी से बन जाती हैं जिनके आधार पर मनुष्य नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम और आत्मा से परमात्मा बन जाता है । इसके लिए कोई विशेष श्रम या मनोयोग लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती । आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में उतना ही श्रम और उतना ही मनोयोग लगाना पर्याप्त रहता है जितना कि भौतिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए जरूरी होता है । लोभ और मोह की पूर्ति में जितना पुरुषार्थ करना और जितना जोखिम उठाना पड़ता है, आत्मिक प्रगति के लिए उससे कम में ही काम चल जाता है । महामानवों को उससे अधिक कष्ट नहीं सहने पड़ते जितने कि साधारण लोगों को सामान्य जीवन में नित्यप्रति उठाने पड़ते हैं । फिर कठिनाई क्या है ? ऋषि-मुनियों ने एक ही कठिनाई बताई है और वह है प्रज्ञा प्रखरता की ।

यदि प्रज्ञा को प्रखर बनाया जा सके, वह प्राप्त हो सके तो समझना चाहिए कि जीवन को सच्चे अर्थों में सार्थक बनाने वाली ऋद्धि-सिद्धियों की उपलब्धियों से भर देने वाली सम्भावनाएँ हस्तगत हो गई हैं ।

इस प्रज्ञातत्व का ही दूसरा नाम गायत्री है । गायत्री महाशक्ति को तत्वज्ञानियों ने इसीलिए सर्वोपरि दिव्य क्षमता बताया है और इसीलिए इसका इतना अधिक माहात्म्य बताया गया है है कि इसका आशय लेकर कोई व्यक्ति सहज ही आत्मिक प्रगति की उच्च कक्षा में पहुँच सकता है । प्रज्ञातत्व को अथवा गायत्री को दूरदर्शी, विवेकशीलता एवं आत्मोकर्ष के लिए अभीष्ट बल प्रदान करने वाली साहसिकता भी कह सकते हैं । गायत्री उपासना से यह दूरदर्शी विवेकशीलता और आत्मिक प्रगति के लिए अभीष्ट साहसिकता पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती है । इसलिए मनीषियों ने आत्मिक प्रगति के लिए की जाने वाली समस्त साधना-उपासनाओं में गायत्री को सर्वश्रेष्ठ माना है ।

इस उपासना का प्रतिफल प्रज्ञातत्व के रूप में—दूरदर्शी विवेकशीलता और आत्मबल के रूप में प्राप्त होता है और उसके बल पर साधक अपने को आत्मिक दृष्टि से सुविकसित एवं सुसम्पन्न बनाता है । परिणामस्वरूप उसके आत्मिक जीवन का स्तर ऊँचा उठता है और वह सामान्य व्यक्ति न रहकर देवात्मा, महात्मा तथा परमात्मा के स्तर तक जा पहुँचता है । जहाँ इस स्तर की आत्मिक सम्पन्नता होगी, वहाँ कहने की आवश्यकता नहीं है कि आत्मिक सम्पन्नता की अनुचरी भौतिक सम्पन्नता भी अनिवार्य रूप से होगी ही होगी । आत्मिक दृष्टि से सुसम्पन्न और सुविकसित व्यक्ति इन भौतिक विभूतियों का उद्धत प्रदर्शन नहीं करते, उन्हें श्रेष्ठ सत्कार्यों में ही लगाते हैं । इसलिए वे सांसारिक दृष्टि से अन्य मनुष्यों की अपेक्षा साधारण स्तर के ही दिखाई देते हैं । बहुतों को उनकी यह सादगी देखकर उनके दरिद्र होने का भ्रम भी हो जाता है । दूसरे उन्हें क्या समझते हैं ? इसकी परवाह न कर वे आत्मिक पूँजी के धनी अपने आप में ही सन्तुष्ट रहते हैं और सच्चे अर्थों में सुसम्पन्न बनते हैं ।

जिस प्रज्ञा को दूरदर्शी विवेकशीलता, निर्मल, प्रखर बुद्धि और आत्मबल के रूप में जाना जाता है, उसे आकर्षित करने का अनुभूत और सर्वोपरि सर्वसुलभ उपाय है गायत्री उपासना । इस तत्व को आकर्षित कर साधक परब्रह्म की विशिष्ट अनुकम्पा, दूरदर्शी विवेकशीलता और सन्मार्ग अपना सकने वाली प्रखरता प्राप्त करता है । यह अनुदान प्राप्त कर वह स्वयं तो धन्य बन ही जाता है, अपने आस-पास के समूचे वातावरण में भी वैसी ही विशेषताऐं उत्पन्न करता है । उसके ऊर्जा सम्पन्न व्यक्तित्व से आस-पास का, उसके सम्पर्क क्षेत्र का समूचा वातावरण प्रभावित होता रहता है और सुखद सम्भावनाओं का क्रम चल पड़ता है । इस सम्बन्ध में मानवी महाशक्ति का उसकी उपलब्धियों का, उसकी उपासना का परिचय देते हुए तत्वदर्शियों ने बहुत कुछ कहा है । शास्त्र वचनों में इस तथ्य का उल्लेख स्थान-स्थान पर हुआ है ।

प्रज्ञातत्व साधक का किस प्रकार कायाकल्प करता है ? इस सन्दर्भ में शास्त्रकारों का कथन है कि यह शक्ति मनुष्य में सत्-असत् का निरूपण करने वाली, नीर-क्षीर विवेक का भाव जगाने वाली, बुद्धि का विकास और परिष्कार करती है । इसके प्राप्त होने का प्रथम चमत्कार तो यह होता है कि मनुष्य वासना-तृष्णा की पशु प्रवृत्तियों से ऊँचा उठकर मनुष्योचित कर्म-धर्म को समझने और तदनुसार उत्कृष्टतावादी नीति अपनाने के लिए अन्त: प्रेरणाएँ प्राप्त करता है तथा साहसपूर्वक आदर्शवादी जीवन जीने की दिशा में चल पड़ता है । ऐसे व्यक्ति स्वभावत: दुष्कर्मों से ही नहीं दुर्भावनाओं से भी विरत हो जाते हैं और उनके क्रिया-कलापों में से, अन्त:क्षेत्र में से अवाछनीयताएँ पूरी तरह चली जातीं, निकल जाती हैं । शास्त्रकार ने इस परिवर्तन को धर्मस्थापना और अधर्म निवारण के रूप में प्रतिपादित करते हुए प्रार्थना की है—

**धर्मोन्नतियधर्मस्य नाशनं जनहृदच्छु चिम् ।**
**मांगल्ये जगतो माता गायत्री कुसनात्सदा ॥**

अर्थात्—धर्म की उन्नति, अधर्म का नाश, भक्तों के हृदय की पवित्रता तथा संसार का कल्याण गायत्री माता करे ।

**य एतां वेद गायत्री पुण्यां सर्व गुणान्विताम् ।**
**तत्वेन भरत श्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥**

*—महाभारत भीष्म पर्व १-४-१६*

हे राजन् ! जो इस सर्वगुण सम्पन्न परम पुनीत गायत्री तत्व ज्ञान को समझकर उपासना करता है, उसका संसार में कभी पतन नहीं होता ।

गायत्री मन्त्र में जिस प्रज्ञा को 'धियः' शब्द से सम्बोधित किया गया है और उसे अन्त:चेतना के

कण-कण में ओतप्रोत करने की घोषणा की है, उसी की शास्त्रकारों ने अन्यत्र ऋतम्भरा, प्रज्ञा, भूमा आदि नामों से चर्चा की है । यह शब्द सामान्य व्यवहार में काम आने वाली बुद्धि के लिए नहीं आया है । इस सामान्य व्यवहार में काम आने वाली बुद्धि का विकास तो सामान्य उपायों से भी सम्भव है । चतुरता, कुशलता एवं जानकारी बढ़ाने का काम शिक्षा के द्वारा, स्कूलों के माध्यम से भी पूरा हो जाता है । प्रज्ञा इससे सर्वथा भिन्न तत्व है । जिस विद्या के आधार पर साधक को आत्मबोध होता है, वह जीवन का महत्त्व, स्वरूप एवं लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त करता है, सत्-असत् का, उचित-अनुचित का, क्षीर-नीर का विवेचन करता है और विवेचनी अन्त:वृत्ति का नाम ही प्रज्ञा है और उसी को गायत्री भी कहा जा सकता है ।

गायत्री उपासना के द्वारा साधक में प्रज्ञा शक्ति का अभिवर्धन होने के साथ-साथ वे विशिष्ट क्षमताएँ भी प्राप्त होती हैं, जिनका वर्णन विद्या के अवगाहन तथा योग तप आदि के साधना-विधान के साथ जुड़ा हुआ है । गायत्री उपासक की आत्मिक पूँजी निरन्तर बढ़ती चली जाती है और यदि वह धैर्य तथा साहसपूर्वक आत्मपरिष्कार करता हुआ अपने मार्ग पर, साधन पथ पर बढ़ता चलता है तो वह एक दिन नर से नारायण के स्तर तक पहुँच कर सिद्ध पुरुषों की-सी स्थिति में जा पहुँचता है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसी तथ्य को उद्घाटित करते हुए कहा गया है—

**योग निद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् ।**
**सिद्धि स्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धियोगिनी ॥**
**विद्याविद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम् ।**
**मेधास्मृति स्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम् ॥**
**वन्द्या पूज्या स्तुतात्वञ्च ब्रह्मार्दनांञ्च सर्वदा ।**
**ब्राह्मण्य रूपा विप्रयाणां तपस्या च तपस्विनाम् ॥**

अर्थात्—आप योग निद्रा रूप योगरूपा, योगदात्री हैं जो कि योगियों को योग प्रदान किया करती हैं । आप सिद्धों को सिद्धियाँ देने वाली हैं । आप सिद्धिश और सिद्धियों की योगिनी हैं । आप विद्वानों की विद्या और बुद्धिमान सत्पुरुषों की बुद्धि हैं । जो प्रतिभा वाले पुरुष हैं उनकी आप मेधा स्मृति और प्रतिभा के स्वरूप वाली हैं । आप ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं द्वारा पूजित हैं । ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व और तपस्वियों में तप आप ही हैं ।

वृहदारण्यक उपनिषद में गायत्री को ब्रह्मविद्या का—वेद विद्या का, परब्रह्म शक्ति का स्वरूप बताया गया है और कहा गया है कि महाशक्ति का आश्रय लेकर साधक ब्रह्मतेज का अधिकारी बनता है तथा वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है जो इस संसार में पाने योग्य है ।

**तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतयसि धामनार्या सं ।**
**प्रियं देवा नायनां धृष्ट देव यजनर्थमसि ॥**
**गायत्र्यस्येकण्दी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यदीन न हि पद्यते नमस्ते तुरीयाय दर्शनाय पदाय परोरजसेऽसा वदो या प्राप्त् ।**

—वृहद ५-१४-७

अर्थात्—हे गायत्री तुम तेज रूप हो, निर्मल प्रकाश रूप हो, अमृत एवं मोक्ष रूप हो, चित्तवृत्तियों का निरोध करने वाली हो, देवों की प्रिय आराध्य हो, देव पूजन का सर्वोत्तम साधन हो । हे गायत्री तुम इस विश्व ब्रह्माण्ड की स्वामिनी होने से एक पदी, वेदविद्या की आधारशिला होने से द्विपदी, समस्त प्राणशक्ति का संचार करने से त्रिपदी और सूर्य मण्डल के अन्तर्गत परम तेजस्वी पुरुषों की आत्मा होने से चतुष्पदी हो । रज से परे हे भगवती श्रद्धालु साधक सदा तुम्हारी उपासना करते हैं ।

गायत्री मंजरी में कहा गया है—

**भूलोकस्यास्य गायत्री कामधेनुर्मता बुधैः ।**
**लोक आश्रायणे नामुं सर्व मेधाधि गच्छति ॥**

अर्थात्—विद्वानों ने गायत्री को भूलोक की कामधेनु माना है । उसका आश्रय लेकर हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं ।

**गायत्र्या सर्व संसिद्धिर्द्विजानां श्रुति समंता ।**

वेद वर्णित सारी सिद्धियाँ गायत्री उपासना से मिल सकती हैं ।

गरुड़ पुराण में कहा गया है—

**यद्यत्स्पृश्यति हस्तेन यच्च पश्यतिचक्षुषा ।**
**पूतं भवति तत् सर्व गायत्र्याय न परं विदुः ॥**

अर्थात्—जिस जिसका हाथ स्पर्श करता है और जो जो नेत्र से देखता है वह समीपूत हो जाता है । गायत्री से परे अन्य कुछ भी नहीं है । यह गायत्री सर्वोपरि शिरोमणि मन्त्र है ।

सन्ध्या भाष्य में गायत्री को "सर्वात्म प्रतिपादकोऽय गायत्री मन्त्र" अर्थात् गायत्री को सर्वत्र आत्मा को प्रखर करने वाला मन्त्र कहा गया है । आत्मिक प्रगति के लिए, आत्मबल को प्रखर बनाने के लिए गायत्री महाशक्ति किस प्रकार काम करती है ? यह प्रज्ञातत्व के महत्त्व से

समझा जा सकता है । प्रज्ञाशक्ति को संक्षेप में वह आलोक कहा जा सकता है जो साधक के पथ को निरन्तर प्रकाशित और उसके बल को अहर्निश प्रदीप्त रखता है। इस शक्ति को कर्षित करने में गायत्री मन्त्र के समतुल्य और उपासना नहीं है । इसलिए गायत्री को आत्मिक प्रगति के पथ पर आरूढ़ करने और गति देने वाली सर्वोपरि उपासना कहा जा सकता है ।

## अभियान साधना के नियम

कहा जा चुका है कि अभियान साधना उन साधकों के लिए है जो अपने सामान्य उपासना क्रम का स्तर बढ़ाकर, उसे ऊँचा उठाकर और अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हों । एक-दो, तीन माला का जप और ध्यान आरम्भिक कक्षा है । यह उपासना आरम्भ करते समय साधक से कहा जाता है कि मन लगने न लगने पर भी ज्यों-ज्यों इस अभ्यास को जारी रखा जाये, समय न मिले तो मानसिक जप किसी भी समय किया जा सकता है । लेकिन इतना ध्यान रखना चाहिए कि वह सब नियमित हो । यदि प्रयत्न किया जाय तो ऐसा समय आसानी से निश्चित किया जा सकता है कि उस समय अवकाश रहे और उपासना नियमित रूप से चल सके ।

आरम्भिक कक्षा से आगे बढ़कर उच्च कक्षा में प्रवेश के लिए ही अभियान साधना का उपक्रम है । तितिक्षा तप आदि नियमानुशासनों का नियमित रूप से पालन हो सके तो अच्छा ही है । पर जिन नियमों का अभ्यास ही नहीं है उसके लिए आरम्भ छोटे रूप में किया जाना चाहिए और इसी के लिए सप्ताह में एक दिन इन व्रत-नियमों के पालन की बात कही गई है । पूरी दिनचर्या ही अनुशासित नियमबद्ध और तप परायण बन सके तो कहना ही क्या ? लक्ष्य वही रखना चाहिए । गुरुवार को अनुष्ठान नियमों का पालन करना इसीलिए आवश्यक रखा गया है कि साधक ये नियमादि याद रखे तथा उनकी प्रेरणा, दिशा निरन्तर नियमित रूप से प्राप्त करता रहे । इन्हें सदैव पालन करना निषिद्ध नहीं है । सप्ताह में एक दिन इस चर्या का पालन न्यूनतम को आवश्यक समझते हुए निर्धारित किया है ।

सर्वविदित है कि अनुष्ठानों में आहार-विहार के दोनों पक्षों पर नियन्त्रण, संयम करना पड़ता है । भोजन में पूरे या अधूरे उपवास की रीति नीति का यथासम्भव समावेश, ब्रह्मचर्य का पालन, अपनी सेवाएँ आप करने का प्रावधान है । तितिक्षा का अभ्यास करने के लिए भूमिशयन जैसी कठोरताएँ अपनानी पड़ती हैं । इस तरह के और भी कितने ही तप-साधन, व्रत अनुशासन हैं जो ध्यान जैसे सामान्य उपासनाक्रम को सशक्त एवं प्रभावोत्पादक बनाने में समर्थ हैं । अभियान-साधना में भी इस प्रकार की कठोरताओं का यथासम्भव पालन करना चाहिए । इसी उद्देश्य से गुरुवार का दिन संयम साधना के लिए निर्धारित है ताकि साधक को अपनी जीवन नीति का स्मरण ही नहीं अभ्यास भी बना रहे ।

अभियान साधकों को गुरुवार के दिन प्रमुखत: तीन नियमों का पालन करना होता है उपवास, मौन और ब्रह्मचर्य । इन तीनों का जितनी ही कड़ाई के साथ पालन किया जाय उतना ही उत्तम है । उपवास में हो सके तो दूध, छाछ, रस जैसे पेय पदार्थ ही लिए जायें तो सर्वोत्तम है । किन्तु इससे काम न चले तो शाकाहार भी लिया जा सकता है । इतना भी कठिन पड़े तो एक समय भोजन किया जा सकता है । उस एक समय के भोजन में अस्वाद व्रत का पालन अनिवार्य रूप से करना चाहिए । नमक और शक्कर दोनों में से एक भी न लिया जाय ।

यह स्वाद संयम जिह्वा संयम का एक पक्ष है । इसका दूसरा पक्ष है सन्तुलित और सुसंस्कृत भाषण । इसके लिए पुराने अभ्यास को रोकने और नया अभ्यास आरम्भ करने का मध्यम उपाय मौन है । पूरे दिन मौन रखना तो कामकाजी व्यक्ति के लिए कठिन पड़ता है पर प्रात:काल अथवा जब भी सुविधा हो दो घण्टे की मौन साधना बिना किसी अड़चन के की जा सकती है । जितने समय मौन रहा जाय, वह समय मनन, चिन्तन में लगाया जाय । मनन का अर्थ है—आत्मचिन्तन, अपनी वर्तमान स्थिति का आलोचक की दृष्टि से विवेचन । इस विवेचन से अपने भीतर जो दोष, दुर्गुण दिखाई दें, जो आदतें अनुपयुक्त जान पड़ें, उनके निराकरण की योजना बनाना तथा जिन सत्प्रवृत्तियों का अपने में अभाव है, उनके अभिवर्धन की योजना बनाना इसी का नाम चिन्तन है । अपना आत्म विवेचन मनन है और त्रुटियों के निराकरण तथा सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन की योजना बनाना चिन्तन कहा जा सकता है । इन्हीं दो कार्यों में चित्त को मौन की अवधि में व्यस्त रहना चाहिए । स्मरण रखा जाय कि मौन का अर्थ मात्र चुपचाप बैठे रहना नहीं है । इस अवधि को एकान्त में बिताना चाहिए । मुँह से कुछ न बोलकर जुबान बन्द रखकर भी इशारेबाजी की जाती है

तो उससे मौन का प्रयोजन पूरा नहीं होता । यह आत्मश्लाघा तो मौन न रखने से भी बुरी है ।

जिह्वा की तरह ही जननेन्द्रिय पर भी अंकुश रखना आवश्यक है । क्रीड़ा, विनोद के सभी क्रिया-कलापों में यह सबसे ज्यादा महँगा खेल है । जीवनी शक्ति से खिलवाड़ करने वाली इस आदत से जितना छुटकारा पाया जा सके उतना अच्छा है । गुरुवार को ब्रह्मचर्य से रहने का नियम इसीलिए है कि इस संयम का महत्त्व समझा जाय और न केवल यौन क्रिया से वरन् कामुक चिन्तन से भी मन को विरत रखने का यथासम्भव प्रयत्न किया जाय । ब्रह्मचर्य में शारीरिक संयम जितना महत्त्वपूर्ण है, अश्लील वासनाओं और विचारों पर अंकुश रखना उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । यही तथ्य अपने आपको समझाने के लिए ही गुरुवार को ब्रह्मचर्य का पालन प्रतीक रूप से अपनाया जाता है । स्वाद, संभाषण और वासना पर नियन्त्रण की आवश्यकता अनुभव करने की दृष्टि से ही अस्वाद, मौन, ब्रह्मचर्य के तीन नियम बनाये गये हैं । अभियान साधना करने वाले साधक को गुरुवार के दिन तो करना ही चाहिए, ध्यान यह भी रखना चाहिए, इन संयम का प्रतिदिन, आजीवन पालन करने का अधिक से अधिक साधन जुटाया जाय और अधिक कदम बढ़ाये जा सकें उसके लिए प्रयत्नशील रहा जाय ।

## अभियान साधना और संयम

इन्द्रिय संयम तपश्चर्या का आरम्भ है, अन्त नहीं । अपनी शक्तियों के अपव्यय को रोककर उन्हें आत्मिक विकास की दिशा में नियोजित करना ही तपश्चर्या का मूल उद्देश्य है और स्मरण रखा जाना चाहिए कि रंसना, बकवाद तथा यौन लिप्सा के कारण जीवनी-शक्ति का अस्सी प्रतिशत भाग नष्ट होता है । यदि इन छिद्रों को बन्द कर दिया जाय तो जीवन की प्रवृत्ति स्वत: ही शुभ से अशुभ की ओर अग्रसर होने लगेगी । इन तीन मुख्य छिद्रों को बन्द कर देने पर अशुभ दृष्टि, विलासी जीवन तथा अन्य इन्द्रिय लिप्साओं को नियन्त्रित कर पाना अपेक्षाकृत बहुत आसान हो जायेगा ।

फिर भी यह नहीं समझ लेना चाहिए कि संयम से तात्पर्य उपवास, मौन और ब्रह्मचर्य भर ही है । उसकी परिधि और साधना क्षेत्र बहुत व्यापक है तथा उसमें सभी प्रकार के अपव्ययों को रोकने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, इन्द्रिय संयम उनमें से एक है । मनोनिग्रह उसका दूसरा पक्ष है । मनोनिग्रह अर्थात् चिन्तन को अभीष्ट प्रयोजनों में नियोजित करना और अवांछनीय विचारों को आते ही भगा देना ।

अभियान साधना में सभी स्तर के संयम पर जोर दिया गया है । जैसे समय संयम अर्थात् सोने से लेकर जागने तक एक भी क्षण आलस्य या प्रमाद में बर्बाद न करना । श्रम सन्तुलन को बुद्धिमत्तापूर्वक बनाए रहना । धन का संयम अर्थात् उचित और न्याय, नीतिपूर्वक उपार्जन करना तथा कमाई को आवश्यक प्रयोजनों में ही व्यय करना । यही चारों संयम मिलकर जीवन साधना को तपश्चर्या का समग्र रूप बनाते हैं । इन्द्रिय संयम उनमें प्रथम है । अभियान साधना में निरत साधकों का लक्ष्य प्रथम चरण की चिह्न पूजा को ही सब कुछ नहीं मान बैठना चाहिए वरन् समग्र संयम की तपश्चर्या को साधना का आवश्यक अंग मानकर चलना चाहिए तथा इन उपचारों के सहारे संयमशीलता अपनाने की व्यावहारिक रूपरेखा निर्मित की जाय ।

## साधना की पूर्णाहुति

गायत्री और यज्ञ का अनिवार्य सम्बन्ध है । यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है । गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी कहा गया है तो यज्ञ को संस्कृति का पिता । भारतीय धर्मानुयायियों के जीवन में यज्ञ का बड़ा महत्त्व है । कोई भी कार्यक्रम बिना यज्ञ के पूरा नहीं होता । साधनाओं में तो हवन और भी अनिवार्य है । जितने भी पाठ, पुरश्चरण, जप, साधन किए जाते हैं वे चाहे वेदोक्त हों चाहे तान्त्रिक उनमें किसी न किसी रूप में यज्ञ, हवन अवश्य करना पड़ता है । प्रत्येक कथा, कीर्तन, व्रत, उपवास, पर्व, त्यौहार, उत्सव, उद्यापन सभी में यज्ञ अवश्य करना पड़ता है । इस प्रकार गायत्री उपासना में भी हवन आवश्यक है । अनुष्ठान या पुरश्चरण में जप से दसवां भाग हवन करने का विधान है । यदि इतना न बन पड़े तो शतांश (सौवां भाग) हवन करना चाहिए । गायत्री उपासना के साथ यज्ञ का युग्म बनता है । गायत्री को माता और यज्ञ को पिता माना गया है । इन्हीं दोनों के संयोग से मनुष्य का आध्यात्मिक जन्म होता है, जिसे द्विजत्व कहते हैं । द्विज का अर्थ है दूसरा जन्म । जैसे अपने शरीर को जन्म देने वाले माता, पिता की सेवा पूजा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार गायत्री माता और

यज्ञ पिता की पूजा भी प्रत्येक द्विज का आवश्यक धर्म कर्त्तव्य है ।

यह नहीं सोचना चाहिए कि सामान्य और नियमित उपासना क्रम में यज्ञं की कोई आवश्यकता नहीं है । यज्ञ को प्रत्येक व्यक्ति का आवश्यक नित्य कर्म माना गया है। यह बात अलग है कि लोग उसका महत्त्व एवं विधान भूल गये हैं और केवल चिह्न पूजा करके काम चला लेते हैं । घरों में स्त्रियाँ किसी रूप में यज्ञ की चिह्न पूजा करती हैं । त्यौहारों या पर्वों पर अग्नि को जिमाने या अज्ञारी करने का कृत्य प्रचलित है । थोड़ी-सी अग्नि को लेकर, घी डालकर उसे प्रज्वलित करना और उस पर पकवान के छोटे-छोटे ग्रास चढ़ाना तथा फिर अग्नि से जल की परिक्रमा करा देना, यही प्रक्रिया प्रत्येक घर में पर्व एवं त्यौहारों पर सम्पन्न होते देखी जा सकती है । शास्त्रों में बलिवैश्व का नित्य विधान है । प्रतिदिन भोजन बनने के बाद बलिवैश्व के लिए अग्नि में आहुति देनी होती है ।

इस प्रकार यज्ञ को कहीं भी अनावश्क नहीं माना गया है, बल्कि उसे तो और भी आवश्यक अनिवार्य बताया गया है । अस्तु अभियान साधना में निरत साधनों को अपने अनुष्ठान की पूर्णाहुति यज्ञ से करनी चाहिए और फिर अगला अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए । यज्ञ छोटा करना हो तो उसमें अपने परिवार के लोगों को सम्मिलित किया जा सकता है और एक कुण्ड का अग्निहोत्र किया जा सकता है । सब लोगों द्वारा मिलकर की गई २४०० आहुतियाँ देने से भी काम चल सकता है । बड़ा रूप देना हो तो पड़ोसी सम्बन्धी मित्रों को भी सम्मिलित करके पाँच कुण्डी आयोजन का रूप दिया जा सकता है । उस हवन में सम्मिलित आहुतियाँ पाँच हजार भी हो सकती हैं । अलग से प्रबन्ध न करना हो तो किसी बड़े सामूहिक आयोजन में भी पूर्णाहुति का नारियल चढ़ाया जा सकता है ।

वस्तुतः अभियान साधना एक प्रकार का अनुष्ठान ही है, जो एक वर्ष की अवधि में पूरा होता है । अवधि लम्बी होने से उसमें अनुशासन की सफलताएँ रखी गई हैं । सामान्य साधक इसे बिना किसी कठिनाई के सरलता-पूर्वक पूर्ण कर सकते हैं । पूर्णाहुति के अवसर पर ब्रह्मभोज के रूप में अर्थदान का भी माहात्म्य है । मात्र शारीरिक और मानसिक श्रम ही पर्याप्त नहीं, उसके साथ अर्थदान भी आवश्यक है । यज्ञ के रूप में कुछ पैसा खर्च होता है, कुछ ब्रह्मभोज के रूप में करना चाहिए । वर्तमान परिस्थितियों में ब्रह्मदान ही ब्रह्मभोज का विकल्प हो सकता है । ब्रह्मदान अर्थात् गायत्री साहित्य का सत्पात्रों का प्रचार के रूप में वितरण । इसके लिए कुछ राशि श्रद्धापूर्वक संकल्पित करनी चाहिए । प्रसाद वितरण में मिठाई बाँटने की अपेक्षा ज्ञान सामग्री देने की व्यवस्था अधिक उपयुक्त है ।

## प्रातः सायं उपासना

एक घण्टे में गायत्री मन्त्र की प्रायः ग्यारह मालाओं का जप सामान्य गति से पूरा हो जाता है । किन्हीं की गति कम भी हो सकती है और किन्हीं की ज्यादा, पर औसत गति यही मानी जा सकती है । इस प्रकार पन्द्रह माला जपने में लगभग डेढ़ घण्टा समय लगना चाहिए । यह सारा समय प्रातःकाल ही लग सके तो अधिक अच्छा है, अन्यथा इसे प्रातः सायं में दो बार भी पूरा किया जा सकता है । सायंकाल से तात्पर्य सूर्य अस्त होने का समय ही नहीं उसके बाद में रात को सोते समय भी समझना चाहिए। काम पर लगने से पहले सुबह और काम से निवृत्त होने के बाद रात्रि को ही प्रायः समय मिलता है । यही दोनों समय उपासना के लिए सुविधाजनक हैं । अधिक रात्रि बीत जाने पर मुँह बन्द रखकर मानसिक जप द्वारा प्रातःकाल में बची हुई शेष मालाएँ पूर्ण की जा सकती हैं । प्रयत्न यही करना चाहिए अधिकांश जप संख्या प्रातःकाल में पूर्ण हो जाये । इसके लिए एक घण्टा सुबह और आधा घण्टा रात्रि में अथवा सवा घण्टा सुबह और पन्द्रह मिनट रात्रि में, इस प्रकार समय निर्धारित किया जा सकता है ।

जप के समय गायत्री माता की छवि का अथवा निराकार साधक सविता देवता का मध्य भाग में ध्यान करे और भावना करे कि उसका दिव्य प्रकाश, स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर में प्रवेश कर उन्हें ज्योतिर्मय बना रहा है । उपासना के समय मन को पूरी तरह इष्ट छवि पर केन्द्रित रखना चाहिए, उसे इधर-उधर भटकने नहीं देना चाहिए और न ही दूसरे विचारों को मनःक्षेत्र में प्रविष्ट होने देना चाहिए ।

इस प्रकार आत्म-कल्याण और आत्मोत्थान का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए की गई गायत्री साधना, अन्य साधनाओं की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। गायत्री साधना की विशेषता यह है कि इसके पीछे अगणित साधकों का तप बल छिपा हुआ है और साधक सूक्ष्म जगत के माध्यम से अनायास ही उनका सहयोग प्राप्त कर लेता है और सफलता की ओर अग्रसर होने

लगता है । गायत्री साधना अपरा प्रकृति को पराप्रकृति में रूपांतरित करने के विज्ञान पर आधारित है । मनुष्य की पाशविक वृत्तियों के स्थान पर ईश्वरीय सत् शक्ति को प्रतिष्ठित करना ही अध्यात्म विज्ञान का कार्य है । तुच्छ को महान्, ससीम को असीम, अणु को विभु, बद्ध को मुक्त और पशु को देवत्व के स्तर तक पहुँचना ही साधना का मुख्य उद्देश्य गायत्री के माध्यम से भली-भाँति निरापद ढंग से पूरा होता है ।

पिछले जमाने में धार्मिक जगत में विकृतियों के बढ़ जाने तथा विज्ञान-जगत में नये-नये चमत्कार दृष्टिगोचर होने के कारण लोगों में अध्यात्म तथा ईश्वर पर अनास्था का भाव विशेष रूप से उत्पन्न हो गया था । कितने ही नव-शिक्षित व्यक्ति तो इसे मात्र अन्धविश्वास मानकर इसको बुद्धिहीनता का चिह्न मानने लगे थे । पर अब विज्ञान के चरम सीमा पर पहुँच जाने के पश्चात् भी संसार की गतिविधियों में कोई आशाजनक कल्याणकारी लक्षण न देखकर उनकी विचारधारा बदलने लगी है । अब यह अनुमान किया जा रहा है कि संसार में केवल भौतिक-पक्ष ही सब कुछ नहीं है वरन् अध्यात्म-पक्ष को मान्यता मिलने से ही मनुष्य वास्तविक मानवता के समीप पहुँच सकेगा। गायत्री-साधना सर्वजनीन, सुगम, स्पष्ट और सरल है । इसका आश्रय लेकर हम अध्यात्म मार्ग में उल्लेखनीय प्रगति कर सकते हैं और मानवता के लक्ष्य को अपेक्षाकृत न्यून प्रयास से ही प्राप्त कर सकते हैं ।

## गायत्री की प्रतीक पूजा

गायत्री की प्रतिमा अर्वाचीन है या पुरातन ? इस प्रश्न का सामान्य उत्तर यही दिया जा सकता है कि "पुरातन" । प्रश्नकर्ता कोई पुरातन पन्थी मालूम देते हैं, जो पुरातन होने पर इसे मान्यता देने और अर्वाचीन होने पर उसे अमान्य ठहराने के इच्छुक प्रतीत होते हैं । पर वस्तुत: बात ऐसी है नहीं । सभी प्रतिमाएँ स्थापना के समय अर्वाचीन कहलाती हैं । चारों धाम, द्वादश ज्योतिर्लिंग, सप्त पुरी, शक्तिपीठ हिन्दू धर्म के प्रधान तीर्थ एवं देवालय हैं । उनमें से कोई भी अनादि नहीं है । समय-समय पर उनकी स्थापना होती रहती है । जब वे विनिर्मित हुए अर्वाचीन थे बाद में पुरातन कहलाए जाने लगे । इसमें कभी विवाद नहीं खड़ा हुआ । एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य की प्रतिमा सर्वथा नवीन गढ़ी गई थी पर वह पुरातन स्थापनाओं की तुलना में किसी भी प्रकार कम समर्थ सिद्ध नहीं हुई ।

जहाँ तक गायत्री की प्रतिमा का सम्बन्ध है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से भी पुरातन है । देवी भागवत पुराण सनातन धर्म का मान्य ग्रन्थ है । उसमें अनेक खण्डों और अध्यायों में गायत्री का देवी रूप में वर्णन है । उनके प्रत्यंगों, वाहनों, आयुधों का विस्तृत वर्णन और उनकी पूजा का सांगोपांग विधान है ।

आद्य शंकराचार्य कृत गायत्री पुरश्चरण पद्धति में भी पुरश्चरण प्रक्रिया में गायत्री के साकार स्वरूप की स्थापना, पूजा प्रक्रिया और ध्यान-धारणा का विधान है । इसके अतिरिक्त त्रिकाल संध्या के नाम से अनेकों पुस्तकें उपलब्ध हैं । वे पृथक्-पृथक् वेदानुयायियों के लिए लिखी गई हैं । जैसे सामवेदीय-सन्ध्या, यजुर्वेदीय-सन्ध्या आदि । इनमें दिये गये मन्त्रों में भिन्नता पाई जाती है । पर गायत्री का साकार ध्यान सभी में समान रूप से है । प्रात: हंसरूढ़ा ब्राह्मी । मध्याह्न गरुड़ रूढ़ा वैष्णवी । सायं वृषभ शाम्भवी । इन्हीं को सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती भी कहा गया है । अन्य पुराणों में भी गायत्री के साकार स्वरूप से सम्बन्धित कथाएँ और पूजा विधान है । इस प्रकार उसे अब की तुलना में पुरातन प्रतिपादन ही कहा जा सकता है । यों जब कभी इनकी कल्पना, स्थापना हुई होगी तब वे अर्वाचीन भी रही होंगी पर इससे साधक की श्रद्धा में, कर्मकाण्डों की प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं पड़ा । किसी ने अमान्य नहीं ठहराया । अपने समय में भी प्रसिद्ध सन्तोषी माता का असंख्यों की श्रद्धा भाजन वैष्णोदेवी का, दतिया के पीताम्बरापीठ का मान तथा महत्त्व कम नहीं हुआ । प्राचीन अर्वाचीन का विवाद कभी आरम्भ नहीं हुआ ।

गायत्री की प्रतिमाओं का जहाँ तक सम्बन्ध है, वे भी चिर-पुरातन काल से बनती आई हैं । राम, कृष्ण, शंकर, दुर्गा की तुलना में ब्रह्मा के मन्दिर कम हैं । पर जहाँ कहीं भी हैं वहाँ ब्राह्मी शक्ति गायत्री की भी स्थापना है । यह शक्ति अध्यात्म प्रयोजनों में गायत्री और भौतिक प्रयोजनों में सावित्री बन जाती है । एक होते हुए भी द्विधा है ।

ब्रह्मा की, सूर्य की, इन्द्र की, वरुण की, नवग्रह की उपासना पिछले दिनों कम रही है । इसलिए इन देवताओं के देवालय भी कम हैं । इतने पर भी उनका अभाव नहीं है । तीर्थों में प्रमुखता लिए हुए पुष्कर तीर्थ के शिखर पर गायत्री का अति पुरातन मन्दिर है । गुजरात में खेड़ ब्रह्मा—ब्रह्मा तीर्थ है । वहाँ गायत्री की प्रतिमा की भी स्थापना है । ऐसे-ऐसे अनेकों देवालय विद्यमान हैं, जिन्हें

शताब्दियों पुराना कहा जा सकता है । मथुरा में किशोरी रमण कालेज के मोड़ पर गायत्री टीला है । उस पर पुरातन गायत्री मन्दिर है । निकट ही एक गुफा भी है, जिसमें किन्हीं गायत्री उपासक सन्त ने साधना की थी और सिद्धि प्राप्त की थी । इस प्रकार प्राय: सभी तीर्थों एवं धर्मस्थानों में कहीं न कहीं छोटे-बड़े गायत्री प्रतिमा प्रतीक पाए जायेंगे ।

जबसे रंगीन छपाई का आविष्कार हुआ है, तभी से चित्र प्रकाशक गायत्री की साकार छवियाँ छापते हैं । मूर्तिकार भी गायत्री की प्रतिमायें गढ़ते रहते हैं । ऐसी दशा में यह कहना उचित नहीं कि गायत्री की साकार छवि पहले नहीं थी । किसी ने इन्हीं दिनों बनाई है । यदि ऐसा होता तो भी विवाद की गुंजाइश नहीं थी, कारण कि दैवी शक्तियों को अलंकारिक रूप से साकार प्रतिमाओं के रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा आधुनिक नहीं है उसे भी मानवी चेतना विज्ञान को ध्यान में रखते हुए विनिर्मित किया गया है । निराकार मान्यता और साकार पूजा के दोनों ही पक्ष समानान्तर रूप से चलते रहे हैं । भारतीय संस्कृति उदारवादी संस्कृति है । उसमें समन्वय-सहानुभूति के तत्व आदि अन्त तक भरे पड़े हैं । तभी उसकी गोदी में आस्तिक, नास्तिक, साकारवादी, निराकारवादी अपने ढंग से पलते और मिलजुलकर शान्ति से रह सके हैं ।

## भगवती गायत्री के अनेक मुख

गायत्री माता की कागज पर छपी एवं प्रतिमा रूप में बनी आकृतियों में कई प्रकार की भिन्नताएँ पाई जाती हैं और उनके कारण सामान्य साधक के मन में असमंजस उत्पन्न होता है कि गायत्री माता एक है या अनेक । यदि एक है तो उनकी विभिन्न आकृतियों की प्रतिमाएँ क्यों हैं ?

एकमुखी, हंसारूढ़ा, पुस्तक कमण्डल धारिणी ब्रह्म गायत्री की छवि प्रतिमाएँ गायत्री तपोभूमि युग निर्माण योजना द्वारा प्रसारित होती हैं । यह गायत्री माता की आद्य शंकराचार्य प्रतिपादित तीन प्रतिमाओं में से सर्व-प्रथम—सर्व प्रधान है । त्रिकाल संध्या में तीन आकृतियों में गायत्री ध्यानों का उल्लेख है । प्रात: ब्राह्मी, मध्याह्न वैष्णवी, सायंकाल शांभवी । उनकी संगति ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र के साथ मिलाई गई है और उन्हीं से मिलती-जुलती नारी आकृति में गायत्री को चित्रित किया गया है । प्रात: हंसा-रूढ़, मध्याह्न गुरुड़ारूढ़ और सायं वृषभारूढ़ हैं । यही वाहन ब्रह्मा, विष्णु, महेश के हैं ।

सम्भवत: स्तोत्र रत्नाकर अन्य स्तुति ग्रन्थों में पंचमुखी, दसभुजी गायत्री का आकलन है । "मुक्ता विद्रूम, हेम नील धवले ........ स्तवन में उनके आभूषणों और आयुधों का वर्णन है । यही छवि मुद्रण कला के माध्यम से पिछले दिनों प्रचलित होने लगी और उसी प्रकार की प्रतिमाएँ बनने लगीं जबकि अधिक प्राचीन और प्रामाणिक प्रतिपादन के आधार पर ब्राह्मी, वैष्णवी और शांभवी इन तीन आकृतियों की गायत्री प्रतिमाएँ होती तो अधिक समीचीन होता ।

एक और विवाद यह है कि गायत्री मन्त्र में सविता देव का स्तवन है । उन्हीं से सद्बुद्धि की प्रेरणा के लिए अभ्यर्थना की गई है । ऐसी दशा में यदि प्रतिमा बननी चाहिए थी तो वह पुरुषाकृति सविता देवता की होनी चाहिए थी अथवा मात्र सूर्य मण्डल के रूप में उसकी ध्यान धारणा की जानी चाहिए थी । 'धीमहि' शब्द में धारण करने—ध्यान कराने का संकेत है । अनेकों गायत्री भाष्य कर्ताओं ने धीमहि की व्याख्या करते हुए ध्यान प्रक्रिया का उल्लेख किया है ।

गायत्री मन्त्र है । मन्त्र को छन्द भी कहते हैं । मन्त्र और छन्द दोनों ही पुल्लिग हैं । ऐसी दशा में पुरुषाकृति की तुक अधिक बैठती है । ऐसा प्रतिपादन एक पक्ष का है ।

दूसरे पक्ष का कथन है कि गायत्री शब्द ई का ज्ञान स्त्रीलिंग है । गायत्री का उल्लेख शास्त्रों में वेदमाता विश्व माता के रूप में हुआ है । माता नारी ही हो सकती है । फिर ब्राह्मी, वैष्णवी, शांभवी के रूप में ही उसका ध्यान करने का निर्देश है । यह तीनों ही आकृतियाँ नारी रूप में हैं । अस्तु उसका नारी रूप ही उचित है ।

पुराणों में गायत्री का ध्यान अनुष्ठान, अनुग्रह एवं दर्शन प्रकटीकरण की अनेकों कथा-गाथाओं का वर्णन है, उन सब में गायत्री को भगवती के रूप में ही अंकित किया गया है । स्त्रीलिंग में ही उनके समस्त स्तवनों में प्रसंगों में भाषा का प्रयोग हुआ है । देवी भागवत में गायत्री की महिमा और कथा गाथा का सबसे अधिक उल्लेख है । उसमें सर्वत्र भगवती के रूप में ही समस्त वर्णन किए गये हैं । उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर

गायत्री की विवेचना है उनमें भी स्त्री वाचक प्रतिपादन ही भरे पड़े हैं ।

तांत्रिक प्रसंगों में गायत्री के २४ अक्षरों में चौबीस देवताओं का समावेश किया गया है और उनमें से प्रत्येक की अलग-अलग देवी गायत्री है । चौबीसों देवताओं की चौबीसों गायत्री पृथक्-पृथक् आकृति की बनाई गई हैं । वे सब इन देवताओं की आकृति से मिलती-जुलती स्त्री स्वरूप में हैं ।

इतने प्रकार की भिन्नताओं के रहते, किसको अपनाया जाय ? किसकी पूजा-प्रतिष्ठा की जाय ? यह असमंजस सामान्य साधक के सामने प्रस्तुत होना स्वाभाविक है । मोटा उत्तर तो यही हो सकता है कि भगवान का कोई लिंग आकार नहीं । वे व्यक्ति नहीं शक्ति हैं । चूँकि हम मनुष्य हैं और हमारी चेतना मनुष्य शरीर में ही पूरी तरह रम गई है इसलिए किसी दैवी शक्ति का आकार बनाते समय हम मनुष्याकृति के आधार पर ही अपना चिन्तन नियोजित कर सकते हैं । यदि हम मनुष्य न होकर पशु पक्षी आदि होते तो सम्भवतः ईश्वर को भी अपना सजातीय ही कल्पित, प्रतिपादित करते । ईश्वर सबका है, सब प्राणियों का है इसलिए हर प्राणी को उसे अपना सजातीय मानने और अपनी ही आकृति का कल्पित करने का पूरा-पूरा अधिकार है । हम अपने प्रिय खाद्य-पदार्थों का भोग ईश्वर को लगाते हैं । पर यदि अपने को अन्य किसी प्राणी की योनि में रहकर भगवद् शक्ति करनी पड़ती तो निश्चयपूर्वक वही भोग लगाना पड़ता जो अपने आपको उपलब्ध होता है या प्रिय लगता है । ईश्वर को मनुष्याकृति में मानना भी तात्विक नहीं सापेक्ष—लाक्षणिक है—वस्तुतः ईश्वर की वैसी आकृति है नहीं जैसी कि हम विभिन्न देवी-देवताओं या अवतारों के रूप में मानते हैं । यह सब तो अपनी आस्थाओं का प्रतिपादन भर है ।

अनेक धर्म सम्प्रदायों में ईश्वर की भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियों की कल्पनाएँ की गई हैं । उनकी छवि, भाषा, रुचि, एक-दूसरे से पृथक् हैं । ऐसी दशा में या तो ये ईश्वर अलग-अलग सम्प्रदायों के अनुसार अनेकों होने चाहिए या फिर यह माना जायेगा कि भक्तजनों ने अपनी-अपनी स्थिति से मिलते-जुलते आकार-प्रकार की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना की है ।

यही बात लिंग के सम्बन्ध में भी है । प्राणियों में लिंग भेद होता है शक्तियाँ व्यापक होती हैं वे शरीर धारण करेंगी तो एकदेशीय हो जायेंगी और फिर उस सीमा से बाहर उनका कार्यक्षेत्र रह न सकेगा । पंचतत्वों की वरुण, इन्द्र, मरुत, अग्नि अनन्त रूपों में प्रतिमाएँ मिलती हैं । वे व्यापक होने से शरीर धारी नहीं हो सकते तो भी उनके प्रति श्रद्धा समर्पण करने एवं भावनात्मक सम्बन्ध बनाने की दृष्टि से प्रतिमाओं की स्थापना की गई है ।

ध्यान, धारणा एवं श्रद्धा अभिव्यक्ति को चरितार्थ करने के लिए किसी न किसी रूप में प्रतिमा बनानी पड़ती है । निराकारवादी भी प्रकाश बिन्दु का ध्यान करते हैं । यह भी साकार स्थापना है । मुसलमानों में हजयात्रा में संगे असवद का बोसा लेते—काबा की तरफ मुँह करके नमाज पढ़ते ताजिये निकालते देखे जाते हैं । ईसाई धर्म में क्रूस चिह्न तथा ईसा मरियम को प्रतिमाओं के प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति की जाती है । राष्ट्रीय-झण्डे का सम्मान भी प्रकारान्तर में मूर्ति पूजा है । इसमें विवाद का कोई प्रसंग नहीं है । निराकार की अभ्यर्थना का व्यावहारिक स्वरूप बिना किसी प्रतीक के बन सकना सम्भव नहीं है ।

चेतना के विभिन्न घटकों के बीच घनिष्ठता स्थापित करने वाला एक ही तत्व है—प्रेम । इसी आधार पर पृथकता-एकता में परिणत होती है । यह वही चुम्बकत्व है जो दूरवर्ती को घसीटकर परस्पर सटा देने की स्थिति उत्पन्न करता है । मित्रता के विभिन्न रूपों में प्रेम तत्व ही काम करता है । सम्बन्धी, कुटुम्बी, मित्र इसी सूत्र में बँधे होते हैं । सन्तान और अभिभावकों के बीच, पति-पत्नी के बीच तथा अन्यान्य स्नेही जनों के बीच यही श्रृंखला एक-दूसरे को मजबूती के साथ बाँधती है । यहाँ तक कि जड़ पदार्थों का संग्रह सुधार एवं संरक्षण भी इसी आधार पर बन पड़ता है । जीव और ईश्वर के बीच घनिष्ठता एकता उत्पन्न करने के लिए भी प्रेमतत्व ही एकमात्र अवलम्ब है । इसी के सहारे भक्त और भगवान के बीच एकता स्थापित होती है । दोनों के समन्वय से जीवन लक्ष्य की पूर्ति—अपूर्णता की पूर्णता में परिणति—मुक्ति एवं सिद्धि की प्राप्ति संभव होती है ।

भक्ति किस प्रकार, किस आधार पर सम्भव हो सकती है ? इसके लिए किसी आकृति का, किसी रिश्तेदारी का बनाया जाना आवश्यक है । अन्यथा प्रेम करते बन ही नहीं पड़ेगा । हवा, सर्दी, गर्मी आदि पदार्थों से अथवा सत्य, न्याय आदि गुणों से प्रेम बन पड़ना सम्भव ही नहीं है । प्रेम की सघनता सजातीय और

आत्मीय के साथ ही हो सकती है । इन मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ईश्वर के साथ किसी घनिष्ठ सम्बन्धी जैसी पारिवारिकता भी स्थापित करनी होती है । पितु, मातु, सहायक, स्वामि, सखा जैसी कोई वरिष्ठ आत्मीयता भगवान के साथ आबद्ध करता है । ध्यान धारण में उस निरन्तर के भावाभ्यास को अधिकाधिक सघन करते-करते अन्ततः उस स्थिति में जा पहुँचता है जिसे एकता-एकात्मता-अद्वैत सिद्धि कहते हैं । समर्पण, विसर्जन, विलय, समापन, समन्वय, शरणागति इसी स्थिति का नाम है । भक्त की शरणागति का आरम्भ वेदान्त प्रतिपादित अद्वैत में समापन होता है । उस स्तर पर पहुँचकर दोनों संयुक्त हो जाते हैं । दोनों की स्थिति और सामर्थ्य एक जैसी हो जाती है । नाले का नदी में, पत्नी का पति में, ईंधन का आग में, बूँद का समुद्र में, पानी के दूध में मिलने की तरह आत्मा का परमात्मा में लय होता है तो जीव अपने आपको सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य स्थिति में अनुभव करता है ।

क्षुद्रता को पूर्णता में विसर्जित करने, अपूर्णता को पूर्णता में परिणत करने और आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए जिस भक्ति, भावना एवं योग साधना की आवश्यकता है उसमें निराकार ईश्वर को साकार मानने की, मान्यता की प्रतिमा गढ़ने की आवश्यकता होती है । उसी साधना प्रयोजन के लिए ईश्वर की प्रतिमा अभीष्ट होती है और अपनी मान्यता के अनुरूप उसे इष्टदेव के रूप में प्रतिष्ठापित किया जाता है । यही है इष्ट निर्माण और निर्धारण का तत्वज्ञान, जिसे समझ लेने के बाद गायत्री माता की अथवा किसी अन्य देवता की प्रतिमा की वास्तविकता का रहस्य भली प्रकार समझ में आ जाता है । जो इस तथ्य को जान लेता है उसे देव प्रतिमाओं की चित्र-विचित्र आकृतियों एवं भिन्नताओं के कारण किसी असमंजस में पड़ने की आवश्यकता नहीं होती ।

लोक व्यवहार में 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव.........,' की कोई संगति नहीं बैठती । जो माता है वही पिता कैसे बने ? और उसी को भ्राता या सखा कैसे कहा जाय ? यह अनबूझ पहेली है । लौकिक दृष्टि से इसका कोई उत्तर नहीं बन पड़ेगा । चन्द्रमा को अंग्रेजी में स्त्रीलिंग और हिन्दी में पुल्लिग कहा जाता है । उसे उभयलिंगी कैसे माना जाय ? एक मान्यता सही है तो दूसरी गलत हुई ? दोनों में से किसे सही कहा जाय यह निर्णय कौन करे ? आत्मा, अग्नि, विद्युत्, पवन आदि को कहीं पुल्लिग और कहीं स्त्रीलिंग कहा जाता है । पृथ्वी स्त्रीलिंग है और भूमण्डल पुल्लिग—दोनों में अन्तर क्या है ? बिजली गिरी और वज्रपात हुआ इसके लिंगभेद का निर्णय कैसे हो ?

भगवान की ऋतम्भरा प्रज्ञा शक्ति गायत्री है । प्रभु का परम अनुग्रह यदि किसी के ऊपर होगा तो उसे यह उपहार वरदान रूप में मिलेगा । इस उपलब्धि के पश्चात् फिर कोई कठिनाई एवं समस्या शेष रह ही नहीं जाती । आत्मा और परमात्मा आदान-प्रदान की वास्तविकता इसी कसौटी पर कसकर जानी जाती है कि प्रज्ञा तत्व का आत्मानुभूति का अनुदान कितनी मात्रा में मिला । गायत्री का अवतरण अन्तःकरण के गहन अन्तराल में उच्चस्तरीय श्रद्धा, निष्ठा एवं प्रज्ञा के रूप में होता है । यही है उसका वास्तविक स्वरूप । इसे अनुभूति एवं आस्था स्तर का कहा जा सकता है । इसी तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करना हो तो शरीर में सत्कर्म, मन में सद्विचार और अन्तःकरण में सद्भाव की प्रेरक पराशक्ति को गायत्री कह सकते हैं । चिन्तन में वह उत्कृष्टता और कर्त्तव्य में आदर्शवादिता के रूप में प्रकट परिलक्षित होती हुई देखी जा सकती है । गायत्री माता का साक्षात्कार इसी रूप में होता है । उसके परम अनुग्रह की अनुभूति इसी प्रकार होती है । जिसे यह वरदान मिल सका उसे सच्चे अर्थों में सिद्ध पुरुष होने का सौभाग्य मिल जाता है । गायत्री को कामधेनु कहा गया है । जो उसका पयपान करता है वह भीतर और बाहर से दैवी विभूतियों और दिव्य सम्पदाओं से ओत-प्रोत दृष्टिगोचर होता है ।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए जो ध्यान धारणा की जाती है उसमें ऋतम्भरा प्रज्ञा की गायत्री माता की प्रतिमा का निर्धारण अभीष्ट होता है । इस अभ्यास के बिना प्रगति कठिन पड़ती है । अस्तु प्रस्तुत अनेक प्रतिमाओं में से एक का चुनाव कर लेना ही उपयुक्त है । पंचमुखी गायत्री में जीवात्मा के पाँच श[illegible] स्रोतों का समावेश है उन्हीं का इन पाँच मुखों में समावेश है । अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश, इन पाँचों में समाई हुई दिव्य शक्ति पंचमुखी है । पाँच तत्व, पाँच प्राण, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच तत्व इन्हीं सबको मिलाकर हमारा प्राण शरीर बना है । यही है पंचमुखी गायत्री का सांकेतिक एवं अलंकारिक तत्व दर्शन । पाँच गुनी गायत्री का ध्यान करना हो तो प्राण शरीर में संव्याप्त सत्ता के विराट रूप की दार्शनिक झाँकी

साथ-साथ ही ५ प्रज्ञा चक्षुओं से करनी चाहिए और इस पराशक्ति के प्रकटीकरण के लिए अभीष्ट तपश्चर्या की साधना का संकल्प करना चाहिए ।

चौबीस देवताओं को चौबीस गायत्रियों में से चुना जाय ? यह अपने ढंग की विचित्र उलझन है । इसी प्रकार तीन देवियों के तीन आकार-प्रकारों का अलग-अलग से ध्यान किया जायेगा तो फिर कोई चित्र अन्तःचेतना पर स्थिर न हो सकेगा । सत्‌चित आनन्द— सत्यं-शिवं-सुन्दरम् उत्पादन, अभिवर्धन और सृजन की विविध परब्रह्म की तीन दिव्य धाराएँ हैं । उनका स्वरूप और उपयोग समझने के लिए प्रातः मध्याह्न और सायंकाल की तीन देवियों के स्वरूप में तत्वज्ञान का सुबोध शिक्षण अलकांरिक छवि चित्रण किया गया है ।

जीव और ब्रह्म के बीच एकत्व की स्थापना के लिए की जाने वाली ध्यान धरणा में एक ही सुनिश्चित प्रतीक प्रतिमा होनी चाहिए । वह कौतुक कौतूहल जैसी चित्र-विचित्र न होकर सीधीसादी मानवी आकृति की रहने पर ही बात बनती है । मात्र भाव उदय करने के लिए आवश्यक है कि उसके लिए माता की स्वाभाविक आकृति को इष्ट बनाया जाय । बहुत से मुख, बहुत से हाथ-पाँव होने पर सहज स्नेह उत्पन्न करने में कितनी भारी कठिनाई पड़ती है इसे कोई भी ध्यान परायण व्यक्ति सहज ही अनुभव कर सकता है । एक प्रकार की सौम्य स्वाभाविक आकृति को ध्यान के लिए निश्चित कर लेना, उसे बार-बार न बदलना ही श्रेयस्कर है । परम्परागत मतभेदों के समाधान का कोई उपाय नहीं । किसे सच माना जाय, किसे झुठलाया जाय ? इसका पंचफैसला असम्भव है । मान्यतावादी अपनी-अपनी बात पर असाधारण बल देते और दूसरे पक्ष को झुठलाते हैं । ऐसी दशा में अपने विवेक को ही निर्णायक मानना होगा । इतने से भी काम न चले तो अपने साधना मार्गदर्शक के निर्णय को भी प्रामाणिक मानकर चला जा सकता है । हर हालत में संकल्प-विकल्प की असमंजस की स्थिति का तो अन्त होना ही चाहिए । शंकाशील मन में सुनिश्चित श्रद्धा की स्थापना में भारी कठिनाई उत्पन्न होती है ।

गायत्री माता की आकृति प्रतिमाओं के सम्बन्ध में निजी गम्भीर चिन्तन, मन्थन और इस विद्या के पारंगत मनीषियों, साधकों एवं सिद्ध पुरुषों के परामर्श के आधार पर हमारा सुनिश्चित निर्धारण एक ही है कि एकमुखी, हंस वाहिनी, पुस्तक कमण्डलु धारिणी, कमलासन स्थित, आकृति ही सर्वश्रेष्ठ है । जीवित और दिवंगत ब्रह्म परायणों का शास्त्रों के अभिमतों का समन्वय करके अपने देवात्मा मार्गदर्शक के निर्देश पर हमने अपनी साधना के लिए इसी आकृति की प्रतिमा का निर्धारण किया है और इसी की प्रतिष्ठापना के लिए जोर देते रहते हैं ।

गायत्री परिवार के आरम्भ से ही जिस ब्रह्म गायत्री की छवि को मान्यता दी गई है उसके पीछे कितनी ही उच्च भावनाओं को विकसित, कार्यान्वित करने की प्रेरणा है । नव यौवना नारी को मातृ बुद्धि से देखना और वैसी ही श्रद्धा जमाकर दृष्टि परिष्कृत करना अपने आप में एक महान साधना है, जो प्रस्तुत आकृति को आधार बनाकर चलने से ही पूरी होती है । अनेक मुख, अनेक भुजाएँ रहने पर मानवी माता के समतुल्य भाव उठ नहीं सकते पुस्तक का अर्थ है—स्वाध्याय मनन चिन्तन । जल कमण्डलु का अर्थ है—स्नेह सौजन्य, सहकार, संयम, सन्तोष । कमलासन—कमल पुष्पवत्, कोमलता, सुषमा, सुगन्ध, सत्समर्पण । राहजंस—स्वच्छ कलेवर, नीर, क्षीर, विवेक, मोती चुनना, सौम्य प्रकृति, परमहंस स्तर । यह सारी सद्‌भाव सम्पदा गायत्री माता की प्रतिमा की ध्यान धारणा के साथ ही साधक की चेतना पर अमृतधारी मेघ माला की तरह बरसने लगती है ।

प्रेम की उत्कृष्टता में मातृभक्ति से बढ़कर और कोई आधार है नहीं । माता, पिता और गुरु इन तीनों देवों में माता को ही प्रथम और प्रमुख माना गया है । भगवान की उपासना में मातृ भक्ति को आधार मानकर चलना, आत्मभाव स्थापनाओं की तुलना में अधिक प्रेरणाप्रद और अधिक फलप्रद सिद्धि है ।

## गायत्री मन्त्र को प्राथमिकता क्यों ?

गायत्री और सावित्री में प्राथमिकता किसकी ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए उत्तर देना पड़ेगा । अन्न, जल और वायु को जीवन का आधार माना जाता है । प्राथमिकता वायु की है। उसके बिना कुछ मिनट में ही दम घुट जाता है इसलिए सांस को एक मिनट में कई बार लेना पड़ता है । इसके बाद जल का नम्बर आता है । एक-एक, दो-दो घण्टे बाद पानी पीना पड़ता है और दिन भर में एक सुराही पानी पी लिया जाता है । अन्न का नम्बर उसके बाद का है । उसे दो बार करने में ही तृप्ति हो जाती है ।

वर्णमाला की पुस्तकें सबसे अधिक बिकती हैं । छात्र भी प्रथम कक्षा के ही अधिक होते हैं । एम. ए. में विद्यार्थी भी कम रह जाते हैं और उस पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी कम बिकती हैं । स्नातकोत्तर कॉलेज भी कम और दूर-दूर होते हैं । चूँकि अक्षरज्ञान की सबसे प्रथम आवश्यकता होती है इसके बाद ही गाड़ी आगे बढ़ती है । गायत्री को इसी प्रकार की प्राथमिकता दी गयी है और उसे हर किसी के लिए आवश्यक बताया गया है । उससे जी चुराने वाले की भर्त्सना भी की गयी है ।

गायत्री सुमति की, सन्मति की प्रतीक है । उसकी आवश्यकता सर्वप्रथम है । छोटे से लेकर बड़े कामों तक में उसकी जरूरत पड़ती है । अभाव रहने पर हाथों में आई चीज चली जाती है । कमाना तो दूर, जो पास पल्ले बँधा उसे भी नासमझ गँवा बैठते हैं । सम्पदा पूर्वजों की छोड़ी हुई भी हाथ लगे, तो भी वह नासमझी के कारण हजार रास्ते बनाकर निकल जाती है । कमाने में भी अधिक रखवाली की जरूरत पड़ती है । इन दोनों ही प्रयोजनों में समझदारी की आवश्यकता है । न उसके बिना कमाया जा सकता है न खाया ।

रामायणकार का कथन है कि 'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥' और भी एक स्थान पर आया है—'जाको प्रभु दारुण दुख देहीं । ताकी मति पहले हरि लेहीं ॥' संस्कृत में एक श्लोक आता है कि देवता किसी की रक्षा के लिए उसके पीछे-पीछे लाठी लिए नहीं फिरते, वरन् ऐसी समझ देते हैं जिसके सहारे वह सुरक्षा और सफलता का लाभ ले सके । निश्चय ही सम्पत्ति की तुलना में समझदारी की आवश्यकता कहीं अधिक है । तभी तो बच्चों को अन्न, वस्त्र की व्यवस्था के उपरान्त उन्हें पढ़ाने का ही प्रबन्ध किया जाता है ।

ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि उत्पादन प्रसंग में उन्हें सर्वप्रथम आकाशवाणी द्वारा तप करके मेधा और प्रज्ञा प्राप्त करने में लगते देखा जाता है । उसके उपरान्त योजना बनती और साधन सामग्री की, सावित्री की आवश्यकता पड़ती देखी जाती है । इस प्रकार प्राथमिकता गायत्री की ही रही ।

गायत्री अर्थात् समझदारी । सावित्री अर्थात् क्षमता । समझदारी होने पर ही मनुष्य सम्पदा उपार्जित करने और उसका सदुपयोग कर सकने में सक्षम होता है । नासमझ के हाथों सम्पदा सौंप दी जाय तो वह रास्ते में ही गाँठ कटा बैठेगा और रोकथाम करने पर जान गँवा बैठेगा । इसके विपरीत जेब में कुछ भी न हो, पर विद्या का भण्डार भरा हो तो वह कहीं भी पेट भर लेगा और जहाँ जायेगा वहीं सम्मानित होगा । सरकार ने भी प्राथमिक कक्षाओं की फीस माफ कर रखी है, जबकि कॉलेज की पढ़ाई में विद्यार्थी को बहुत खर्च करना पड़ता है । प्राइमरी स्कूलों की संख्या भी सर्वाधिक है । गायत्री को मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता समझा गया है । इसलिए दिन में तीन बार उसका सन्ध्यावन्दन करने के लिए कहा गया है । न्यूनतम एक बार थोड़ी बहुत उपासना करना तो अनिवार्य ही माना गया है चाहे वह बिना किसी विधि विधान के किसी भी स्थिति में मानसिक रूप से ही कर ली जाय ।

निरक्षरों को उपहासास्पद माना जाता है और तिरस्कृत भी किया जाता है । आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करने वालों के लिए गायत्री उपासना साक्षरता की तरह आवश्यक मानी गयी है । न करने वालों की कड़ी भर्त्सना की गयी है । उन्हें धर्मानुष्ठान करने तक के अधिकार से वंचित करने की धमकी दी गयी है । उन्हें शूद्र-गँवार तक कहा गया है । गायत्री सर्वसाधारण की साधना है । उसकी ज़ानकारी प्राचीन काल में विद्याध्ययन के साथ ही करा दी जाती थी । पाठशाला में प्रवेश करते समय पुरातन काल में गुरुमन्त्र के रूप में गायत्री को रटाया जाता था और उसकी प्रतिमा सदा साथ रखने के लिए जनेऊ पहनाया जाता था । इसमें वर्णभेद की कोई बात नहीं थी । वंशभेद या लिंगभेद के कारण किसी को भी इससे वंचित नहीं किया जाता था । सद्बुद्धि की देवी को प्राथमिकता देने में कौन इन्कार करेगा ? इसी दृष्टि से लोगों को आकर्षित करने के लिए उसके बड़े-बड़े महात्म्य भी बताये गये हैं ।

वर्तमान परिस्थितियों में सद्बुद्धि की देवी अपनाने के लिए व्यापक प्रचार किया गया कि लोग दुर्बुद्धि के कारण जो अनेकानेक संकटों में फँसते और पग-पग पर ठोकरें खाते देखे जाते हैं, उनसे बचाव हो सके । लोग अपनी समझदारी की जाँच पड़ताल करते रहें । उसका महत्त्व समझें और जहाँ, जब, जितनी कमी दिखाई पड़े उसे सँभालने की चेष्टा करें । नासमझी को ही समस्त संकटों का मूलभूत कारण समझें और समझदारी को पूरी तत्परता के साथ अपनाएँ । गायत्री को अपनाने के निर्धारण में यही रहस्य छिपा हुआ है ।

सृष्टि के सभी प्राणी निरोग रहते और दुर्घटना के अतिरिक्त कभी अकाल मृत्यु नहीं मरते । एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो जिह्वा और जननेन्द्रिय का असंयम बरत कर खोखला, दुर्बल और बीमार पड़ता रहता है और असमय ही बेमौत मरता है ।

विचारों का सदुपयोग करने वाला सहज ही हँसती-हँसती जिन्दगी जी सकता है । पर दुर्बुद्धिवश चिन्तन क्षेत्र में अनेकों विकृतियाँ भर लेता है और चिन्ता, निराशा, भय, उद्वेग आदि से संत्रस्त रहता है । मानसिक संतुलन गँवाकर उद्धत, उच्छृंखल, आवेशग्रस्त रहता है । खुद कुढ़ता और सम्बन्धित लोगों को कुढ़ाता है ।

अर्थव्यवस्था के बारे में भी यही बात है । आजीविका के अनुरूप बजट न बनाने वाले, अपव्ययी सदा अर्थचिन्ता में डूबे रहते हैं । न अपनी योग्यता बढ़ाते हैं, न कठोर श्रम में दिलचस्पी लेते हैं, न खर्च घटाते हैं । ऐसी दशा में दरिद्री, ऋणी रहना स्वाभाविक है ।

पारिवारिक तालमेल न बिठा पाने, परिजनों को कुसंस्कारी बनाते चलने, उन्हें आलसी और अस्त-व्यस्त रखने, अनुशासन न सिखाने, ढेरों बच्चे पैदा करने वालों का कलह से सदा एक-दूसरे के प्रति मन मुटाव बना रहता है । ऐसे बाहर से एक और भीतर से अनेक रहने वाले परिवार सहयोग के अभाव में अस्त-व्यस्तता ही उत्पन्न करते रहते हैं ।

नशेबाजी जैसे दुर्व्यसन, बालविवाह, दहेज, मृतकभोज, भिक्षा व्यवसाय, जातिगत ऊँच-नीच, पर्दा प्रथा जैसे महारोगों, घातक कुप्रचलनों का शिकार समुदाय निरन्तर नीचे ही गिरेगा, उसे ऊँचा उठने का कभी अवसर न मिलेगा । अन्धविश्वास अपने आप में इतने खर्चीले और मतिभ्रम पैदा करने वाले होते हैं कि अकारण ही मनुष्य पतन, पराभव के गर्त में गिरता और भूलों पर भूलें करता है । ऐसे मनुष्य न स्वयं चैन से बैठते हैं, न दूसरों को बैठने देते हैं ।

धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र की भ्रान्तियाँ और भी बढ़-चढ़कर हैं । ईश्वर तुल्य सद्गुणी बनने का सीधा-सादा उद्देश्य छोड़कर लोग देवी-देवताओं की पूजा-पत्री का चारा-दाना डालकर फुसलाने और सहज ही मनोकामनाएँ पूर्ण कराने की फिराक में रहते हैं । इसके लिए पशुबलि, नरबलि करने तक में नहीं चूकते ।

इस प्रकार की भ्रान्तियाँ ही हैं जो मनुष्य जैसे सुविधा साधनों से सम्पन्न जीव को भी नारकीय यन्त्रणाओं में घेरे रहती हैं । कुकर्मी बनते और दूसरों को बनाते हैं । यह अँधेरे में भटकने जैसी स्थिति बहुसंख्यक लोगों की बनी हुई है । इसी से बचने के लिए अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार पर नये सिरे से विचार करने और उन्हें दूरदर्शी विवेकशीलता की कसौटी पर कसने की प्रेरणा गायत्री मन्त्र देता है । इसलिए उसकी महिमा गाते-गाते ऋषि मुनि और शास्त्रकार थकते नहीं हैं ।

## उपासना सम्बन्धी भ्रान्तियाँ और उनका निवारण

तान्त्रिक, अघोरी एवं कापालिक स्तर की आसुरी वाममार्गी साधनाओं में भावनाओं का नहीं, क्रियाओं का महत्त्व माना जाता है । उनमें चरित्र का नहीं, दुस्साहस के रूप में विकसित किये जाने वाले मनोबल मात्र का चमत्कार है । मशीनों में भावना नहीं क्रिया होती है । इस क्रिया शक्ति को ही जड़-पदार्थों में सन्निहित, कार्यरत पाया जाता है । तान्त्रिक साधनाओं में शरीरगत, मनोगत विशिष्ट शक्तियों को उभारने वाली उत्तेजनायें उत्पन्न की जाती हैं और उफान का बिना नैतिक-अनैतिक विचार किये मनचाहे उपचारों में प्रयोग किया जाता है । मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि तन्त्र प्रयोग के सभी प्रहार लक्ष्य आसुरी अनैतिक हैं । उस स्तर की शक्तियों का उपार्जन सृष्टा ने कठिन एवं दुरूह रखा है, साथ ही उस क्षेत्र में प्रवेश करना भी खतरे से खाली नहीं रखा है ।

बिजली भौतिक शक्ति है, उससे कई काम तो होते हैं, पर साथ ही तनिक-सी असावधानी से प्राणघातक संकट भी आ खड़ा होता है । बन्दूक चलाने वाले जानते हैं कि गोली छूटते समय पीछे की ओर झटका भी लगता है । अणु विस्फोट से ऊर्जा तो उत्पन्न होती है, पर साथ ही विकिरण का सर्वनाशी खतरा भी जुड़ा रहता है । आतिशबाजी का खेल खेलने, हिंस्र पशुओं का शिकार खेलने वाले कई बार खतरा उठाते देखे गये हैं । भौतिक शक्तियाँ सभी ऐसी हैं, उनमें क्षमा का कोई नियम नहीं है । साँप सपेरे पर भी हमला बोलता है । दाँव लगने पर सरकस के हिंस्र पशु अपने पालनकर्त्ता की ही बोटी-बोटी नोंच डालते हैं । मशीनों की चपेट में आने पर उनके स्वामी-संचालक भी हाथ-पैर कटाते, जान गँवाते देखे गये हैं । भौतिक क्षेत्र में क्रिया ही प्रधान है । सही-गलत प्रयोग का वहाँ हाथों-हाथ प्रतिफल मिलता है ।

भावना क्षेत्र उससे सर्वथा भिन्न है । उसमें उच्चस्तरीय आस्थाओं, श्रद्धा और सम्वेदनाओं का साम्राज्य है । वहाँ उपचारों का मूल्य कानी कौड़ी और स्नेह-सौजन्य का मूल्य पर्वत के समान है । छोटा बच्चा माता को हर दृष्टि से हैरान ही करता है और एक भी शिष्टाचार का पालन नहीं करता, फिर वात्सल्य एवं ममत्व की सघनता के कारण माँ बच्चे के बीच जो आत्मीयता पाई जाती है, वह देखते ही बनती है । बालक के प्रायः सारे ही व्यवहार अनगढ़, असभ्य जैसे होते हैं, फिर भी माता उनके कारण कभी तनिक भी खीजती नहीं पाई जाती । गोदी में चढ़ने के लिए हाथ बढ़ाना, आँख मिलने पर मुस्करा देना भर बालक का ऐसा कृत्य है, जिसके बदले माता अपना सब कुछ लुटाने के लिए तैयार रहती है । दक्षिणमार्गी उपासना मार्ग के साधक और साध्य के इसी प्रकार के भाव-भरे आदान-प्रदान चलते हैं । उनमें कर्मकाण्डों का अधूरापन या व्यतिक्रम कोई खास बाधा नहीं डालता । उचित तो यही है कि हर वर्ग स्तर के लोग नियम-मर्यादाओं के परिपालन में सतर्कता बरतें और सही तरीका ही अपनाएँ ।

वैदिकी, दक्षिणमार्गी भक्ति परम्परा भाव प्रधान है । उसमें भी यों क्रिया-कृत्यों का, कर्मकाण्डों का आश्रय तो लिया जाता है, पर उतनी चिन्ता की आवश्यकता नहीं पड़ती, जितनी कि तान्त्रिक उपक्रमों में तनिक-सा व्यतिरेक उत्पन्न होने पर प्राण संकट आ उपस्थित होने की स्थिति उत्पन्न होती है । यही वैदिकी और तान्त्रिकी साधनाओं का अन्तर है । वैदिकी देव साधनाओं में भूल, व्यतिरेक का दुष्परिणाम अधिक से अधिक इतना हो सकता है कि जितने सत्परिणाम की आशा की जानी चाहिये, उससे कम मिले या विलम्ब लगे । उलटकर हानि होने की तो किसी प्रकार आशंका नहीं की जा सकती ।

प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि को शुद्ध राम नाम तक उच्चारण करना न आया और वे उल्टा नाम अर्थात् 'राम' के स्थान पर 'मरा' जपते रहे । इतने पर भी सिद्ध पुरुष बन गये । उच्चारण की भूल से कोई अनिष्ट नहीं हुआ वरन् श्रद्धा की उत्कृष्टता उस औंधे-सीधे उपचार के सहारे ऊँची उठती चली गयी और पर्वत के मूर्धन्य शिखर पर जा पहुँची । अशिक्षित एवं अनगढ़ भक्तजनों की ऐसी विशालकाय सेना है जो निर्धारित सम्भावनाओं के सम्बन्ध में अपरिचित एवं अनभ्यस्त रहे । अपनी अनगढ़ स्थिति में भी वे उच्चस्तरीय उपलब्धियों को हस्तगत करने में सफल रहे । ऐसे, भक्तजनों में शबरी, कुब्जा जैसी अनगढ़ नारियाँ और कबीर, रैदास, नामदेव जैसे स्वल्प शिक्षितों की लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है, जो विधि-विधान की प्रवीणता से नहीं वरन् भाव-श्रद्धा के सहारे चरम लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हुए । शास्त्र विधि को देखते हुए उनकी पूजा पद्धति में निश्चय ही त्रुटियाँ रही होंगी, पर उस व्यवधान ने कहीं किसी प्रकार का संकट उत्पन्न नहीं किया । सामन्तवाद के दिनों मध्यकाल में दुर्गा, भैरव जैसे तान्त्रिक देवी-देवताओं की मान्यता का दौर रहा है । उन दिनों हर किसी को शत्रु को परास्त करके स्वयं सत्ताधीश बनने की बेचैनी थी । इसके लिए आक्रमणकारी-आतंकवादी नीति तो वे अपनाते ही थे, साथ ही यह प्रयत्न भी करते थे कि अध्यात्म क्षेत्र से भी उनके कृत्यों में कुछ सहारा मिल सके । ऐसे लोगों के लिये आसुरी तन्त्र मार्ग ही उपयोगी पड़ता है । असुर परम्परा में उसी का प्रचलन भी रहा है । जो अपनी तृष्णा पूर्ति के लिए आसुरी साधना के क्षेत्र में उतरते थे, उन्हें क्रिया-कृत्यों के बारे में अत्यधिक सतर्क रहना पड़ता था अन्यथा दुधारी तलवार उलटकर अपना ही अंग-भंग कर सकती थी । उस स्थिति में कृत्यों में सावधानी को प्राथमिकता मिलती थी और मिलनी भी चाहिए थी । इसीलिए यजमान लोग हर काम में प्रवीण पण्डितों की ही नियुक्ति करते थे । पुरश्चरण प्रक्रिया आद्योपान्त ऐसी है जिसे निष्णात पण्डित ही, उच्चारण एवं कृत्य की दृष्टि से सही रीति से सम्पन्न कर सकते हैं । उन दिनों हर प्रयोक्ता पर यह भय छाया रहता था कि कहीं क्रिया-कृत्यों में भूलचूक न रह जाय, अन्यथा लाभ के स्थान पर उल्टे विग्रह का सामना करना होगा और लेने के देने पड़ जायेंगे । इस भय के वातावरण में उस स्तर के सभी उपचार प्रवीण पण्डितों की सहायता से ही सम्पन्न करने पड़ते थे । यहाँ तक कि साधारण अग्निहोत्र में भी उन्हें आगे रखे बिना किसी को कुछ करने का साहस नहीं होता था ।

मध्यकाल के अन्धकार युग में जब प्रचलन तान्त्रिक उपचारों का ही हो गया और 'मद्य, मांस च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च' के पंच-मकार ही उपासना क्षेत्र के अधिष्ठाता बन गये, तब उस व्यापक अनाचार को निरस्त करने के लिए भगवान बुद्ध का अवतरण हुआ और उन्होंने उस अनाचार की धज्जियाँ उड़ाईं । उन्हीं दिनों की बात है कि पुरोहित वर्ग ने अपनी विशिष्टता सिद्ध करने तथा

अर्थ-उपार्जन का नया स्रोत उभारने के लिए उस मान्यता का परिपूर्ण समर्थन किया कि विधि-विधान में राई-रत्ती भूल हो जाने पर भी देवता रुष्ट हो जाते हैं और फिर कर्त्ता से उलट कर बदला लेते हैं । यह मान्यता योजनाबद्ध ढंग से फैलाई गयी । उसके समर्थन में बहुत कुछ कहा एवं लिखा गया ।

यह मान्यता तान्त्रिक उपचारों के क्षेत्र तक ही फैलनी और सीमित रहनी चाहिए थी, पर दुर्भाग्य उसने वैदिकी, दक्षिण मार्गी, दैवी साधना उपासना के क्षेत्र पर भी आक्रमण बोल दिया । इतना ही नहीं, उसे भी बेतरह अपने चंगुल में फँसा लिया । दैनिक उपासना जैसे नित्य कर्मों के सम्बन्ध में भी यह शंका की जाने लगी कि कहीं भूल होने पर अनर्थ न हो जाय और इष्टदेव उस भूल से रुष्ट होकर उल्टे आक्रमण पर न उतर आयें ।

यह भयाक्रान्त आशंका ऐसे अवसरों पर स्पष्टतया प्रगट होती है, जब किसी उपासक को सामान्य कारणों से किसी कठिनाई, असफलता या विपत्ति का सामना करना पड़ता है । उसका शंका-शंकित मन सर्वप्रथम इसी बात में उलझता है कि हो न हो यह पूजा उपचार में कोई भूल-त्रुटि रहने के कारण उत्पन्न हुआ अनर्थ है । ऐसी दशा में उसकी मन:स्थिति विचित्र होती है । गर्म दूध न घूँटते बनता है, न उगलते । करते रहें, तो प्रस्तुत कठिनाई के और भी बढ़ जाने की आशंका है । छोड़ते हैं, तो देवता के और भी अधिक रुष्ट होकर उग्र आक्रमण करने का भय है । ऐसी दशा में एक ओर कुआँ दूसरी ओर खाई देखकर उपासना के मार्ग पर बढ़ने वाला यही सोचता है कि क्यों इस व्यर्थ के झंझट में फँसें । भविष्य के लिए वह इस जंजाल से किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाने भर की बात ही सोचता है ।

उपर्युक्त भ्रान्ति क्रमशः मनों में इतनी गहरी उतरती गयी है कि अध्यात्म तत्व ज्ञान से अपरिचित भावुक भक्त जनों में से कितने ही जीवन क्रम में कोई कठिनाई या व्यवधान आते ही यह सोचने लगते हैं कि उनकी पूजा विधि या तो गलत है या फिर उसमें कोई भूल रह गयी है । इसी कारण उन्हें कठिनाई या असफलता का सामना करना पड़ रहा है ।

वास्तविकता ऐसी होती नहीं । सात्विक उपासनाएँ ही प्रज्ञा परिवार के लोग करते हैं । न तो कोई तान्त्रिक विधान उन्हें बताया गया है और न उस मार्ग को अपनाने के लिए प्रोत्साहन दिया गया है । वे जो कुछ करते हैं, वह विशुद्ध रूप से सतोगुणी, दैवी एवं आध्यात्मिक प्रकृति का है । उसमें कहीं ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है कि कृत्यों में भूल होने से किसी विपत्ति या विग्रह की आशंका हो । अधिक से अधिक इतना ही हो सकता है कि अविधि पूर्वक करने से लाभ उससे कम मिले जितना कि मिलना चाहिए था । उल्टा परिणाम तो कभी भी किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता । इस सन्दर्भ में गीता ने दो टूक स्पष्टीकरण किया है—

**नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।**
**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥**

*गीता—२-४०*

अर्थात्—उस उपक्रम का न तो उल्टा परिणाम निकलता है और न वह सर्वथा निरर्थक ही जाती है । उसे थोड़ी मात्रा में करने पर भी संकटों से मुक्ति मिलती है ।

भगवान का नाम, उपासना का उपक्रम एक ही परिणाम उत्पन्न कर सकता है और वह है कषाय-कल्मषों के कारण उत्पन्न होने वाले त्रासों से परित्राण । उल्टा उपद्रव खड़ा करने की उसकी प्रकृति ही नहीं है । उसके कारण किसी प्रकार का संकट उत्पन्न होने की आशंका तो करनी ही नहीं चाहिये । माता न तो कभी आहत कर सकती है और न वैसा सोच ही सकती है । धरती माता, गौ माता, प्रकृति माता की सहज प्रकृति स्नेह करने, सहायता करने एवं सुविधा साधन उपलब्ध कराने की है । वे छेड़खानी करने पर अधिक से अधिक इतना ही कर सकती हैं कि सहयोग से हाथ खींच लें । पतन, पराभव के षड्यन्त्र अपने ही आँचल की छाया में पलने वालों के विरुद्ध वे कर ही नहीं सकतीं । साधना, उपासना की भक्ति भी ऐसी ही है । उसका आश्रय लेने पर कष्ट घटते हैं बढ़ते नहीं ।

अचिन्त्य चिन्तन से अपना ही अहित होता है । क्रोध, ईर्ष्या, चिन्ता, भय, आशंका जैसे मनोविकार धारणकर्त्ता का ही सर्वनाश करते हैं । जिनके विरुद्ध दुर्भाव रखे जाते हैं, उनका अहित तो कदाचित ही स्वल्प मात्रा में हो पाता है । आपत्तियों का कारण आमतौर से मनुष्य के अब के या पिछले विभ्रम दोष, दुर्गुण या कुकृत्य ही होते हैं । दण्ड का तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य भविष्य में अधिक सावधानी बरते और अधिक सही, सक्षम रहे । प्रकृति प्रकोप से भी कोई प्रतिकूलताएँ भुगतनी पड़ें तो उनका तात्पर्य भी आग में पकाने, खराद पर चढ़ाकर चमकीला बनाने, धार रखकर पैना करने जैसा

होता है । प्रखर और प्रतिभावान बनने वालों में से प्रत्येक को प्रतिकूलताओं से जूझकर ही अपने को अधिक समर्थ, सक्रिय बनाने का लाभ उपलब्ध हुआ है । ऐसे ही अनेक कारण दण्डात्मक, सुधारात्मक प्रस्तुत कठिनाइयों के हो सकते हैं । विश्व परिस्थितियों का प्रवाह अपने ढंग से चलता है, उससे भी प्रतिकूलता उत्पन्न होती रहती है । वातावरण का प्रभाव भी कई बार निर्दोषों को भी गेहूँ के साथ घुन पिस जाने की तरह हैरान करता रहता है । आसुरी तत्व भी बिना कारण-अकारण का विचार किए ऐसे ही भले-बुरे का भेद-भाव किए बिना अपने कत्लेआम का शिकार बनाते रहते हैं । ऐसे-ऐसे अनेकों कारण मनुष्य के सामने आती रहने वाली कठिनाइयों एवं विपत्तियों के हो सकते हैं । उन सब का विचार किए बिना समस्त आगत कठिनाइयों का दोष अपनी छुट-पुट की उपासना के मत्थे मढ़ देना सर्वथा अनुचित है ।

लोगों में एक बहुत बुरी आदत यह पाई जाती है कि अपनी कठिनाइयों का कारण किसी दूसरे का कसूर सोचकर सस्ते में अपना मन हल्का करते रहते हैं । अमुक ने जादू टोना करके हमें या हमारे परिवार को हैरानी में डाल दिया है । ऐसा सोचते रहने वाले और निर्दोष पड़ोसियों पर अकारण ही दुर्भाव थोपते रहने वालों की कमी नहीं । भूत-पलीतों और ग्रह-नक्षत्रों पर ऐसे ही इल्जाम लगाने वालों की मूर्ख मण्डली के सदस्य लाखों नहीं करोड़ों होंगे । भाग्य को कोसने वाले, हस्तरेखाओं के रचयिताओं पर अन्याय का दोष लगाने वाले किसी से पीछे नहीं । माँ-बाप ने अमुक कमी न रखी होती, जैसे सोचते-कहते हुए असंख्यों पाए जाते हैं । ऐसे ही भ्रम जंजाल में फँसने वाले वे लोग हैं, जो अपनी कठिनाइयों के ऐसे असंख्यों कारणों में से एक का भी विचार नहीं करते, जिनके निज के दोष-दुर्गुणों पर भटकाव, अनाचार एवं अचिन्त्य चिन्तन का पर्दाफाश होता है । सरलता इसी में प्रतीत होती है कि क्यों न उपासना जैसे किसी ऐसे माध्यम को दोषी ठहरा दिया जाय, जो सामने खड़ा होकर अपनी सफाई देने और झूँठे इल्जाम के बदले गाल पर तमाचा जड़ने की स्थिति में नहीं है ।

अवांछनीय दोषारोपण से अपनी आत्मा कलुषित होती है । आत्म-निरीक्षण और आत्म-सुधार का अवसर हाथ से निकलता है । प्रतिरोधों से जूझने की सामर्थ्य कुण्ठित होती है । जब देवता या भगवान ही विपत्ति बरसाने के कारण हैं, तो उनसे जूझने की प्रतिकार चेतना कोई किस प्रकार उभारे । ऐसी मनःस्थिति में हताश होकर आँसू बहाते रहने या जिस पर दोष थोपा गया है, उसे कोसते रहने के अतिरिक्त और कोई चारा ही शेष नहीं रह जाता । यह मनःस्थिति मनुष्य का भविष्य अन्धकारमय बनाने वाली सिद्ध हो सकती है ।

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि उपासना की सफलता में कर्मकाण्ड का महत्त्व दस प्रतिशत है और सघन श्रद्धा की भूमिका नव्वे प्रतिशत होती है । यदि श्रद्धा डगमगाने लगे, तो समझना चाहिए कि अब यहाँ श्रद्धा के पैर जमने जैसी कोई सम्भावना रह नहीं गयी । जो तन्त्र विनय वन्दन का प्रतिफल अनिष्ट के रूप में उत्पन्न कर सकता है, वह निश्चय ही निकृष्ट स्तर का, घिनौना होना चाहिए । उसका आश्रय लेने पर आए दिन ऐसे ही उपद्रव खड़े होने का भय बना रहेगा । प्रत्यक्ष है कि भय, अनिश्चितता और दुष्टता की आशंका मन में उठने लगे तो फिर उस केन्द्र पर श्रद्धा-विश्वास का, भक्ति-भावना का, स्नेह-समर्पण का कोई आधार बन नहीं सकता । यदि आस्था सुदृढ़ न हुई तो फिर कोई श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्मकाण्डों वाली उपासना भी किसी के लिए किसी भी परिमाण में फलप्रद नहीं हो सकती । उसमें लगाया हुआ श्रम निष्फल ही नहीं जायेगा वरन् असफलता जन्य आक्रोश के कारण नास्तिकता में परिणत होता चला जायेगा । ऐसे लोगों में से तो वे लोग कहीं अच्छे, जो उपासना करते ही नहीं । उन्हें कम से कम असंतोष, आक्रोश एवं नास्तिकता के गर्त में जा गिरने का अनर्थ तो नहीं अपनाना पड़ता । इस प्रकार वे नफा भले ही न कमाएँ, अकारण घाटा होने का संकट नहीं सहते ।

किसी की उपासना करनी हो, तो उसके प्रयोजन, परिणाम की आशा इतनी ही करनी चाहिए कि इससे अपने आत्म-परिष्कार में सहायता मिलेगी । सत्प्रवृत्ति-संवर्धन का द्वार खुलेगा और विकसित व्यक्तित्व के सहारे सुसंस्कारी व्यक्तियों को जिस प्रकार आत्म-सन्तोष जन सहयोग एवं देवी अनुग्रह मिलता रहता है, हमें भी मिलेगा । इससे एक कदम और बढ़ना हो और लाभ-हानि का अनुमान लगाना हो तो यही मान्यता सघन बनानी चाहिए कि उपासना से लाभ बढ़ सकते हैं । उसका भौतिक परिणाम भी संकटों को पूरी तरह समाप्त करने में समर्थ न होने पर भी उसके बोझ को हल्का तो अवश्य ही करता है । आगत संकट दस किलो भारी हो तो उपासना के आधार पर उपलब्ध हुए मनोबल के कारण आधा तिहाई ही रह जाएगा ।

प्रतिकूलता और उपासना की संगति बिठाने की तत्वत: आवश्यकता है नहीं, क्योंकि दोनों के क्षेत्र सर्वथा भिन्न हैं । प्रतिकूलता और अनुकूलता आमतौर से व्यक्ति की कौशल-कुशलता पर निर्भर रहती है, जबकि उपासना से अन्त:क्षेत्र की सत्प्रवृत्तियों को उभारने और व्यक्तित्व में सुसंस्कारिता के समावेश का अवसर मिलता है । कुशलता-प्रतिभा पर सांसारिक सफलता-सुविधा की न्यूनाधिकता निर्भर है, जबकि उपासना मनुष्य के दृष्टिकोण, चरित्र, सम्मान एवं कार्यक्षेत्र में उत्कृष्टता का समावेश करती है । ऐसी दशा में एक-दूसरे को जोड़ने की बात सर्वथा अनुपयुक्त है । फिर भी प्रचलित भ्रम मान्यताओं के अनुरूप यदि उपासना के भौतिक लाभ-हानि की संगति जोड़े बिना काम न चले तो फिर दो दृष्टिकोण अपनाने चाहिए । सफलताओं का श्रेय उपासना को दिया जाय और असफलताओं का दोष अपने प्रारब्ध-पुरुषार्थ में कमी रहना मानकर अपने ऊपर ओढ़ा जाय । इस मापदण्ड को अपनाकर ही श्रद्धा को जीवन्त रखा जा सकता है और आत्मिक प्रगति का द्वार खुला रह सकता है । विकृत चिन्तन से तो सब प्रकार अहित ही अहित है । सफलताओं के लाभ का श्रेय अपने को और जो कठिनाई जिस कारण से उत्पन्न हैं, उन सबका दोष उपासना पर थोप देने का परिणाम एक ही होगा—अपनी रही-सही श्रद्धा की समाप्ति—आत्मिक प्रगति में भावी सम्भावनाओं की इतिश्री । इसी को 'अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना' कह सकते हैं । भ्रान्त धारणा से लाभ तो कुछ नहीं मिला, हानि का, असंतोष का कुहासा और घिर गया, इसे दोहरी मूर्खता के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ।

बुरी परिस्थितियों का दोष उपासना जैसे उत्कृष्ट अवलम्बन पर थोपना जिस प्रकार अनर्गल है, उसी प्रकार यह भी अनुचित है कि उपासना को एक रिश्वत की तरह प्रस्तुत करते देवी-देवताओं को ललचाया जाय । हमारा अमुक काम हो जायेगा, तो इतनी राशि पूजा में खर्च करेंगे । इतना जप-अनुष्ठान करेंगे । यह शर्तबद्ध प्रलोभन है । दूसरे शब्दों में यह रिश्वत पेशगी भी दी जा सकती है और बाद में भी । अमुक मनोरथ पूरा होने की शर्त पर पेशगी बाद में पूजा का प्रलोभन किसी को भी प्रस्तुत नहीं करना चाहिए । इसे दैवी शक्तियाँ अपनी अवमानना सोच सकती हैं, जैसे कि रिश्वत देने की पेशबन्दी करने वालों के साथ कई प्रखरता सम्पन्न न्यायाधीश करते हैं । रिश्वत लेना और देना दोनों ही जुर्म हैं । इसी प्रकार लाभ उपार्जित करने के लिए अमुक पूजा उपचार करने की पेशबन्दी करना भक्त की, भक्ति की और भगवान की दुर्भाग्यपूर्ण दुर्गति के समान ही समझी जायेगी । उपासना करने वाले स्मरण रखें, इस पुनीत अवलम्बन का स्तर न गिराएँ भले ही वे उसे करें या न करें । पूजा न करना उतना बुरा नहीं जितना कि उसको सड़ी नालियों में घसीट-घसीट कर दुर्दशा एवं बदनाम करना ।

● ● ●

# स्त्रियों की गायत्री साधना व अधिकार

## स्त्रियों का गायत्री पर अधिकार

गायत्री जीवन को भव्य बनाने वाली विद्या है । उसकी उपासना से शुद्धि और आत्मा में सतोगुणी प्रकाश की वृद्धि होती है, जिससे विद्या, बुद्धि, दया, करुणा, प्रेम, उदारता, शौर्य, साहस और पवित्रता आदि की वृद्धि होती है । अत: प्रत्येक वर्ग के स्त्री-पुरुष को आत्मिक प्रगति और व्यक्तित्व के विकास हेतु गायत्री उपासना करनी चाहिए, परन्तु पिछले सैकड़ों वर्षों से महिलाओं को गायत्री उपासना के लिए प्रतिबन्धित किया जाता रहा है । मध्यकाल में देश में जो आध्यात्मिक अन्धकार युग रहा उससे अनेक ऐसी निराधार मान्यताएँ उठ खड़ी हुईं जिनके लिए न कोई विवाद था न बहाना । गायत्री उपासना से इसी युग में नारी जाति को प्रतिबन्धित किया गया । कालान्तर में कुछ स्वार्थी तत्वों ने ऐसे श्लोक भी गढ़ लिए जो वैदिक मान्यताओं का प्रतिवाद करते हैं, पर यथार्थ तो यथार्थ ही है । थोड़ी-सी विवेक बुद्धि से भी वस्तुस्थिति को भली प्रकार हृदयंगम किया जा सकता है ।

यह एक तथ्य है कि भारतवर्ष में सदा से स्त्रियों का समुचित मान रहा है । उन्हें पुरुष की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता रहा है । स्त्रियों को बहुधा 'देवी' सम्बोधन से सम्बोधित किया जाता है । नाम के पीछे उसकी जन्मजाति उपाधि 'देवी' प्राय: जुड़ी रहती है । शाँति देवी, गंगा देवी, दया देवी आदि देवी पर नाम कन्याओं के रखे जाते हैं । जैसे पुरुष बी. ए. शास्त्री, साहित्यरत्न आदि उपाधियाँ उत्तीर्ण करने पर अपने नाम के पीछे उस पदवी को लिखते हैं, वैसे ही कन्यायें अपने जन्मजात ईश्वर की प्रदत्तदैवी गुणों, दैवी विचारों, दिव्य विशेषताओं के कारण अलंकृत होती हैं ।

देवताओं और महापुरुषों के साथ उपनी अर्धांगनियों के नाम भी जुड़े हुए हैं सीताराम, राधेश्याम, गौरी शंकर, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश, माया ब्रह्म, सावित्री-सत्यवान आदि नामों में नारी को पहला और नर का दूसरा स्थान है। पतिव्रता, दया, करुणा, सेवा, सहानुभूति, स्नेह वात्सल्य, उदारता, भक्ति-भावना आदि आदि गुणों में नारी को नर की अपेक्षा सभी विचारवानों को बढ़ा चढ़ा माना है।

इसलिये धार्मिक, आध्यात्मिक और ईश्वर प्राप्ति सम्बन्धी कार्यों में नारी का सर्वत्र स्वागत किया गया है और उसे उसकी महानता के अनुकूल प्रतिष्ठा दी गई है । वेदों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के मन्त्र दृष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक ऋषिकाएँ भी हैं । ईश्वरीय-ज्ञान वेद महान आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है और उनने उन मन्त्रों को प्रकट किया । इस प्रकार जिन पर वेद प्रगट हुए उन मन्त्र दृष्टाओं को 'ऋषि' कहते हैं । ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुये हैं, वरन् अनेक नारियाँ भी हुई हैं । ईश्वर ने नारियों के अन्त:करण में भी उसी प्रकार वेद-ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्त:करण में, क्योंकि प्रभु के लिए दोनों ही संतान समान हैं । महान् दयालु, न्यायकारी और निष्पक्ष प्रभु भला अपनी ही सन्तान में नर नारी का पक्षपात करके अनुचित भेद-भाव कैसे कर सकते हैं ।

ऋग्वेद १० ।८५ के सम्पूर्ण मन्त्रों की ऋषि "सूर्या सावित्री" हैं । ऋषि का अर्थ निरुक्त में इस प्रकार किया है "ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्शेति । ऋषियो मन्त्र दृष्टार: ।" अर्थात् मन्त्रों का दृष्टा उनके रहस्यों को समझकर प्रचार करने वाला ऋषि होता है ।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म देवता के २४ अध्याय में इस प्रकार है :—

**धोषा गाधा विश्व वारा, अपालोपनिषन्निषत् ।**
**ब्रह्म जाया जहुर्नाम अगस्त्य स्वसादिति ॥ ८४॥**
**इन्द्राणी चेन्द्र माता च सरमा च सरमा रोमशोर्वशीं।**
**लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती ॥८५ ॥**
**श्रीर्लक्ष्मी: सार्पराज्ञी वाकश्रद्धा मेधाचदक्षिणा ।**
**रात्रि सूर्या च सावित्री ब्रह्म वादिन्य ईरिता: ॥८६ ॥**

अर्थात्—घोषा, गोधा, विश्व, वारा, अपाला उपनिषत, जुहु, अदिति इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी हैं ।

ऋग्वेद के १०-१, ४, १०-३९, १०-४०, ८-९१, १०-९५, १०-१०७, १०-१०९, १०-१५४, १०-१५९, १०-१८९, ५-२८, ८-९१ आदि सूक्तों की मन्त्र दृष्टा यह ऋषिकाएँ हैं ।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि स्त्रियां भी पुरुषों की तरह यज्ञ करतीं और कराती थीं । वे

यज्ञ विद्या और ब्रह्म-विद्या में पारंगत थीं । कई नारियाँ तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति का मार्ग-दर्शन करती थीं ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का वर्णन विस्तार पूर्वक आता है ।

**......तं त्रयो वेदा अन्य सृज्यन्त अथह सीतां सावित्री सोम राजान चक्र मे तस्या उहत्रीन वेदान प्रददौ ।**

*—तैत्तिरीय. २ /३ /१०*

इस मन्त्र में बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता सावित्री को तीन वेद दिये ।

मनु की पुत्री 'इड़ा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १-१-४ में उसे 'यज्ञान्काशिनी' बताया है । यज्ञान्काशिनी का अर्थ सायणाचार्य ने 'यज्ञ तत्व प्रकाशन समर्था' किया है । इड़ा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—



**साऽव्रवीदिड़ा मनुम् । तथावाऽहं तवाग्नि माधात्यामि । यथा प्रजथा पशुभिमिथुनैजनिष्यसे । प्रत्यस्मिलोकेस्थास्यसि । अमि सुवर्ग लोकं जेष्यसीति ।**

*—तैत्तिरीय ब्रा. १ /४*

इड़ा ने मनु से कहा—तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हें पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग प्राप्त हो ।

प्राचीन काल में स्त्रियाँ ग्रहस्थाश्रम चलाने वाली भी थीं और ब्रह्म परायण भी । वे दोनों ही अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में कार्य करती थीं । जो ग्रहस्थ-संचालन करती थीं उन्हें 'सद्योवधू' कहते थे और जो वेदाध्ययन, ब्रह्म उपासना आदि के परमार्थिक कार्यों में प्रवृत्त रहती थीं, उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहते थे । ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू के कार्यक्रम तो अलग-अलग थे, पर उनके मौलिक धर्माधिकारों में कोई अन्तर न था देखिये—

**द्विविधा स्त्रियों ब्रह्म वादिन्यः सद्योवध्वश्च । पत्र ब्रह्मवादिनी नामुपयानाम् । अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृह भिक्षाचर्या च । सद्यावधूनां तूपस्यते विवाहेकाले विदुपनयनं कृत्वा विवाह कार्यः ।**

*—हरीत धर्म सूत्र २१ /२० /२४*

ब्रह्म-वादिनी और सद्योवधू ये दो स्त्रियाँ होती हैं । इनमें से ब्रह्म-वादिनी यज्ञोपवीत, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन तथा स्वगृह में भिक्षा करती हैं । सद्योवधुओं का भी यज्ञोपवीत आवश्यक है । वह विवाह काल उपस्थित होने पर करा देते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवलक्य ऋषि की धर्मपत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी कहा है—

**तयार्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूवः ।**

अर्थात्—मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी । ब्रह्मवादिनी का अर्थ बृहदारण्यक उपनिषद् का भाष्य करते हुए श्री शंकराचार्य जी ने "ब्रह्म वादन शीला" किया है । ब्रह्म का अर्थ है—वेद । ब्रह्मवादक शीला अर्थात् वेद का प्रवचन करने वाली ।

यदि ब्रह्म का अर्थ ईश्वर लिया जाय तो भी ब्रह्म प्राप्ति, बिना वेद ज्ञान से नहीं हो सकती । इसलिए ब्रह्म को वही जान सकता है जो वेद पढ़ता है । देखिये—

**ना वेद विन्मनुते तं वृहन्तम् । तैत्तरीय.**
**एवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।**

*—वृहदारण्यक ४ /४ /२२*

जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप, स्वाध्याय, योग, द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते थे, वैसे ही कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी रहकर आत्म निर्माण एवं परमार्थ का सम्पादन करती थीं ।

पूर्वकाल में अनेक सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारिणी हुई हैं । जिनकी प्रतिभा और विद्वता की चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी । महाभारत में ऐसी अनेक ब्रह्मचारिणियों का वर्णन आता है ।

**भरद्वाजस्य दुहिता रूपेण प्रतिमा भुमि ।**
**श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥**

*—महाभारत शल्य पर्व ४८ /२*

भरद्वाज की श्रुतावली नामक कन्या थी, जो ब्रह्मचारिणी थी । कुमारी के साथ-साथ ब्रह्मचारिणी शब्द लगाने का तात्पर्य यह है कि वह अविवाहित और वेदाध्ययन करने वाली थी ।

**अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमार ब्रह्मचारिणी ।**
**योग युक्तादिवं माता, तपः सिद्धा तपस्विनी ॥**

*—महाभारत शल्य पर्व ५४ /६*

योग सिद्धि को प्राप्त कुमार अवस्था से ही वेदाध्ययन करने वाली तपस्विनी, सिद्धा नाम की ब्राह्मणी मुक्ति को प्राप्त हुई ।

**बभूव श्रीमती राजन् शांडिल्य महात्मनः ।**
**सुता धृत वता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ॥**
**साधु तप्त्वा तपो घोरे दुश्चरं स्त्री जनेन ह ।**
**गता स्वर्ग माहाभाग देव ब्राह्मणो पूजिता ॥**

*—महा भा. शल्य ५४ /९*

महात्मा शांडिल्य की पुत्री 'श्रीमती थी, जिसने व्रतों को धारण किया । वेदाध्ययन में निरंतर प्रवृत्त थी । अत्यन्त कठिन तप करके वह देवि ब्राह्मणों से पूजित हुई और स्वर्ग सिधारी ।

**अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेद पारगा ।**
**अधीत्य सकलान् वेदान लेभेऽसन्देह मक्षयम् ॥**

*—महा भा. उद्योग पर्व १०९ /१८*

शिवा नामक ब्राह्मणी वेदों में पारंगत थीं, उसने सब वेदों को पढ़ कर मोक्षपद प्राप्त किया ।

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२० में 'सुलभा' नामक ब्रह्मवादिनी सन्यासी का वर्णन है, जिसने राजा जनक के साथ शास्त्रार्थ किया था । इसी अध्याय के श्लोक ८२ में सुलभा ने अपना परिचय देते हुए कहा है—

**प्रधानो नाम राजर्षि व्यक्तं ते श्रोत मागतः ।**
**कुल तस्य समुत्पन्ना सुलभां नाम विद्धिमाम् ॥**
**साहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे ।**
**विनीता मोक्ष धर्मेषु धराम्येका मुनिब्रतम् ॥**

*—महा.शान्ति पर्व ३२० /८२*

मैं सुप्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ । अपने अनुरूप पति न मिलने से मैंने गुरुओं से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके सन्यास ग्रहण किया है ।

पाण्डव-पत्नी द्रोपदी की विद्वता का वर्णन करते हुए श्री आचार्य आनन्दतीर्थ (माध्वाचार्य) जी ने 'महाभारत निर्णय, में लिखा है:—

**वेदाश्वप्युत्तम स्त्रीभिः कृष्णाद्याभिरिहा खिलाः ।**

अर्थात् उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रोपदी) की वेद पढ़ने चाहिए ।

**तेभ्यादधाह कन्ये द्वे, वपुनां धारिणी स्वधा ।**
**उभे तौ ब्रह्म वादिन्यौ, ज्ञान विज्ञान पारगे ॥**

*—भागवत् ४ /१ /६४*

"स्वधा की दो पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम वपुना और धारणी थे । वे दोनों ही ज्ञान और विज्ञानपूर्ण पारंगत तथा ब्रह्मवादिनी थीं ।"

विष्णु पुराण १ ।१० और १८ ।१९ में मार्कण्डेय पुराण अ. ५२ में भी इस प्रकार ब्रह्मवादिनी (वेद और ब्रह्म का उपदेश करने वाली) महिलाओं का वर्णन है ।

**सततं मूर्ति मन्तश्च वेदश्चत्वार एव च ।**
**सन्ति यस्याश्च जिव्हाग्रे साच वेदवतीस्मृता ॥**

*—ब्रह्म वैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड १४ /६५*

उसे चारों वेद कण्ठाग्र थे, इसलिए उसे वेदवती कहा जाता था ।

इस प्रकार की नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी ब्रह्मवादिनी नारियाँ अगणित थीं । इन अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाली कन्याएँ दीर्घकाल तक ब्रह्मचारिणी रहकर वेद शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त विवाह करती थी तभी उनकी सन्तान संसार में उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह यशस्वी पुरुषार्थी और कीर्तिमान होती थीं । धर्म-ग्रन्थ का स्पष्ट आदेश है कि कन्या ब्रह्मचारिणी रहने के उपरान्त विवाह करे ।

**ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम् ।**

*—अथर्व ११ /६ /१८*

अर्थात् कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई उसके द्वारा उपयुक्त पति को प्राप्त करती है ।

ब्रह्मचर्य केवल अविवाहित रहने को ही नहीं कहते हैं। ब्रह्मचारी वह है, जो संयमपूर्वक वेद की प्राप्ति में निरत है । देखिये:—

**स्वीकरोति यदा वेदं, चरेद् वेद व्रतानिव ।**
**ब्रह्मचारी भवत्तावद् ऊर्ध्व स्नातो गृही भवेत् ॥**

*—दक्षस्मृति*

अर्थात् जब वेद को अर्थ सहित पढ़ता है और उसके लिये व्रतों को ग्रहण करता है तब ब्रह्मचारी कहलाता है उसके पश्चात् विद्वान बनकर गृहस्थ में प्रवेश करता है ।

अथर्व वेद ११ । ७ ।१७ की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है:—

**"ब्रह्मचर्येण ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थ माचर्यम् ।"**

अर्थात् ब्रह्म वेदः का अर्थ है । उस वेद के अध्ययन के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं वे ब्रह्मचर्य हैं । इसी सूक्ति के प्रथम मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने लिखा है—

**"ब्रह्माणि वेदात्यकेऽध्येयेतव्ये वा चिरितुंशीलयस्य तथोक्तः"**

अर्थात् ब्रह्मचारी वह है, जो वेद के अध्ययन में विशेष रूप से संलग्न है ।

महर्षि गार्ग्यायणाचार्य ने प्रणववाद में कहा है—

**"ब्रह्मचारिणां च ब्रह्मचारिणीभिः सह विवाह प्रशस्यो भवति ।"**

अर्थात् ब्रह्मचारियों का विवाह ब्रह्मचारिणियों से ही होना उचित है, क्योंकि ज्ञान और विद्या आदि की दृष्टि से दोनों के समान रहने पर ही वह सुखी और सन्तुष्ट रह सकते हैं । महाभारत में भी इसी बात की पुष्टि की गई है ।

**ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतन् ।**
**तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्ट विपुष्टयोः ॥**

—*महाभारत १ ।१३१ ।१९*

जिनका वित्त एवं ज्ञान समान है उनमें मित्रता और विवाह उचित है, न्यूनाधिक में नहीं ।

ऋग्वेद १ ।१ ।५ का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है—

याः कन्या यागंच्वतुर्विशति वर्ष मायुस्तावद् ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रिय तथा सांगोपांग वेद विद्या अधीयते ता मनुष्य जाति भूषिका भवन्ति ।

अर्थात् जो कन्या २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक सांगोपांग वेद विद्याओं को पढ़ती हैं, वे मनुष्य जाति को शोभित करती हैं ।

ऋग्वेद ५ । ६२ ।११ ने भाष्य में महर्षि ने लिखा है :—

ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध कीर्ति सत्पुरुषं सुशीलं शुभ गुण रूप समन्वितं प्रीति मन्तं पति ग्रहीतुं मिच्छेत् तथैव ब्रह्मचर्यापि स्वसदृशीमेव ब्रह्मचारिणी स्त्रिय गृहणीयात् ।

अर्थ—ब्रह्मचारिणी स्त्री कीर्तिवान, सुशील, सत्पुरुष, गुणवान, रूपवान, प्रेमी-स्वभाव के पति की इच्छा करे, वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने समान ब्रह्मचारिणी (वेद और ईश्वर की ज्ञाता) स्त्री को ग्रहण करे ।

जब विद्याध्ययन करने के लिए कन्याओं को पुरुषों की ही भांति सुविधा थी, तभी इस देश की नारियां गार्गी और मैत्रेयी की तरह विदुषी होती थीं । याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि को एक नारी ने शास्त्रार्थ में विचलित कर दिया था और उनने हैरान होकर उसे धमकी देते हुए कहा था—'अधिक प्रश्न मत करो अन्यथा तुम्हारा अकल्याण होगा ।'

इसी प्रकार शंकराचार्यजी को भारती देवी के साथ शास्त्रार्थ करना पड़ा था । उस भारती देवी नामक महिला ने शंकराचार्य जी से ऐसा अद्भुत शास्त्रार्थ किया था कि बड़े-बड़े विद्वान भी अचम्भित रह गये थे । उनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शंकराचार्य को निरुत्तर होकर एक मास की मोहलत मांगनी पड़ी थी ।

शंकर-दिग्विजय में भारतीदेवी के सम्बन्ध में लिखा है:—

**सर्वाणि शास्त्राणि षडगं वेदान्,**
**काव्यादि कान् वेत्ति परञ्च सर्वम् ।**
**तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र वाला,**
**तस्मादभूच्चित्र पदं जनानाम् ।**

—*शंकर-दिग्विजय ३ ।१६*

भारतीयदेवी सर्वशास्त्र तथा अंगों सहित सब वेदों और काव्यों को जानती थी । उससे बढ़कर श्रेष्ठ और विद्वान स्त्री और न थी ।

आज जिस प्रकार स्त्रियों के शास्त्राध्ययन पर रोक लगाई जाती है, यदि उस समय भी ऐसे ही प्रतिबन्ध होते तो याज्ञवल्क और शंकराचार्य से टक्कर लेने वाली स्त्रियाँ किस प्रकार हो सकती थीं ? प्राचीन काल में अध्ययन की सभी नर-नारियों को समान सुविधा थी ।

स्त्रियों के यज्ञ का ब्रह्मा बनने तथा उपाध्याय एवं आचार्य होने के प्रमाण मौजूद हैं । ऋग्वेद में नारी का सम्बोधन करके कहा गया है कि तू उत्तम आचरण द्वारा 'ब्रह्मा' का पद प्राप्त कर सकती है ।

**अथः पश्यस्व मोपार सन्तरा पादकौ हर ।**
**मा ते कशप्लकौदृशन् स्त्री हि ब्रह्मा विभूविथ ॥**

—*ऋग्वेद ८ ।३३*

अर्थात् हे नारी ! तुम नीचे देखकर चलो । व्यर्थ में इधर-उधर की वस्तुओं तथा व्यक्तियों को मत देखती रहो । अपने पैरों को सावधानी तथा सभ्यता से रक्खो । वस्त्र इस प्रकार पहनो कि लज्जा के अंग ढके रहें । इस प्रकार उचित आचरण करती हुई तुम निश्चय ही ब्रह्मा की पदवी पाने योग्य बन सकती हो ।

अब यह देखना कि ब्रह्मा का पद कितना उच्च है और उसे किस योग्यता का मनुष्य प्राप्त कर सकता है ?

**ब्रह्मा वाऋत्विजाम्भिषक्तमः ।**

—*शतपथ १ ।७ ।४ ।१९*

अर्थात् ब्रह्मा ऋत्विजों की त्रुटियों को दूर करने वाला होने से सब पुरोहितों से ऊंचा है ।

**तस्याद्यो ब्रह्मानिष्ठः स्यात् तं ब्रह्माचं कुर्वीत ।**

*—गोपथ उत्तरार्थ १ ।३*

अर्थात् जो सबसे अधिक ब्रह्मनिष्ठ (परमेश्वर और वेदों का ज्ञाता हो) उसे ब्रह्मा बनाना चाहिये ।

**अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्ययेति ।**

*—एतरेव ५ ।३३*

ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों विद्याओं के प्रतिपादक वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा बन सकता है ।

**अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इत्यनया,**
**त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् ।**

*—शतपथ ११ ।५ ।८७*

वेदों के पूर्व ज्ञान (त्रिविध विद्या) से ही मनुष्य ब्रह्मा पद के योग्य बनता है ।

व्याकरण शास्त्र के कतिपय स्थलों पर ऐसे उल्लेख हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वेद का अध्ययन अध्यापन भी स्त्रियों का कार्यक्षेत्र रहा है । देखिये—

"इङञ्च" ३ ।३ ।२१ के महाभाष्य में लिखा है :—

**"उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी उपाध्याय"**

अर्थात् जिसके पास आकर कन्याएँ वेद के एक भाग तथा वेदांगों का अध्ययन कर, वह उपाध्यायी या उपाध्याया कहलाती हैं ।

मनु ने भी उपाध्याया के लक्षण यही बताये हैं:-

**एक देशं तु वेदस्य वेदांगा यपि वा पुनः ।**
**योऽध्यापयति तृत्यर्थम् उपाध्यायः स उच्यते ॥२ ॥१४१**

जो वेद के एक देश या वेदांगों को पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहा जाता है और भी देखिये :—

**'आचार्यादणत्वं ।' अष्टाध्यायो** ४ । ३ । २ । ४९

इस सूत्र पर सिद्धांत कौमुदी में कहा गया है—

**'आचार्यस्य स्त्री आचार्यानो पुंयोग इत्येव आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ।'**

अर्थात् जो स्त्री वेदों का प्रवचन करने वाली हो, उसे आचार्या कहते हैं ।

आचार्य के लक्षण मनुजी ने इस प्रकार बताये हैं—

**उपनीय तु यः शिष्य वेदमध्यापयेद् द्विजः ।**
**संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥**

जो शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके कल्प सहित रहस्य सहित वेद पढ़ाता है, उसे आचार्य कहते हैं ।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं. शिवदत्त शर्मा ने सिद्धान्तकौमुदी का संपादन करते हुए इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए लिखा है—

**'—इति वचनेनापि स्त्रीणां वेदाध्यायनाधिकारो-ध्वनितः ।**

अर्थात् इससे स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार विदित होता है ।

उपरोक्त प्रमाणों को देखते हुए पाठक यह विचार करें कि 'स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं है' कहना कहाँ तक उचित है ?

## क्या स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं ?

गायत्री मन्त्र का स्त्रियों को अधिकार है या नहीं ? यह कोई स्वतन्त्र प्रश्न नहीं है । अलग से कहीं ऐसा विधि-निषेध नहीं कि स्त्रियाँ गायत्री जपें या न जपें । यह प्रश्न इसलिये उठता है कि-यह कहा जाता है कि स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं है । चूँकि गायत्री भी वेद-मन्त्र है, इसलिये अन्य मन्त्रों की भाँति उसके उच्चारण का भी अधिकार नहीं होना चाहिए ।

स्त्रियों को वेदाधिकारी न होने का प्रतिबन्ध वेदों में नहीं है । वेदों में तो ऐसे कितने ही मन्त्र हैं, जो स्त्रियों द्वारा ही उच्चारण होते हैं । उन मन्त्रों में स्त्रीलिंग की क्रियाएँ हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों द्वारा ही प्रयोग होने के लिए हैं । देखिये :—

**"उदसौ सूर्यो अगाद् उदयं मातको भगः अहं,**
**तद्विद वला पतिमभ्य साक्षि विषा सहि ।**
**अहं केतु रह मूर्धाहमुग्रा बिवाचनी,**
**ममेदनु कृतुं पतिः सेहा नाया उपाचरेत् ॥"**
**"मम पुत्रा शत्रुहणेऽथे मे दुहिता विराट् ।**
**उताहमस्ति सं जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥"**

*—ऋग्वेद १० ।१५९ ।२,३*

अर्थ—सूर्योदय के साथ-साथ मेरा सौभाग्य बढ़े । मैं पतिदेव को प्राप्त करूँ । विरोधियों को पराजित करने वाली और सहनशीला बनूं । मैं वेदज्ञान को सुनने वाली बनूं । मैं तेजस्विनी और प्रभावशली वक्ता बनूं । पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान व धर्म के अनुकूल कार्य करें । मेरे पुत्र भीतरी व बाहरी शत्रुओं को नष्ट करें । मेरी पुत्री

अपने सद्गुणों के कारण प्रकाशवान हों । मैं अपने कार्यों से पतिदेव के उज्ज्वल यश बढ़ाऊं ।

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पति वेदनम् ।**
**उर्वास्कमिव बन्धनादितो मुक्षिय मामुतः ॥**

*—यजु. ३ /६०*

अर्थात् हम कुमारियाँ उत्तम पतियों को प्राप्त कराने वाले परमात्मा का स्मरण करती हुई यज्ञ करती हैं, जो हमें इस पितृ-कुल से तो छुड़ा दे, किन्तु पति कुल से कभी वियोग न कराये ।

**आशा सान्त सौमनसं प्रजा भौभाग्यं रयिम् ।**
**अग्नि रनुब्रता भूत्वा सन्नह्ये सुकृतायकम् ॥**

*—अथर्व १४ /२ /५२*

वधू कहती है कि मैं यज्ञादि शुभ अनुष्ठानों के लिये शुभ वस्त्र पहिनती हूँ । सदा सौभाग्य, आनन्द, धन तथा सन्तान की कामना करती हुई मैं सदा प्रसन्न रहूँगी ।

**वेदोऽसवित्तिरसि वेद सेत्वा वेदामे विन्द विदेय ।**
**धृतवन्तं कुलायिनं रास्यस्पोषं सहस्त्रिणम् ।**
**वेदोवाजं ददातु मे वेदीवीर ददातु मे ।**

*—काठक संहिता ५ /४ /२३*

आप वेद हैं, सब श्रेष्ठ गुणों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले हैं । ज्ञान-लाभ के लिए आपको भली प्रकार प्राप्त करूँ । वेद मुझे तेजस्वी, कुल को उत्तम बनाने वाला ऐश्वर्य बढ़ाने वाला ज्ञान दे । वेद मुझे वीर श्रेष्ठ सन्तान दें ।

विवाह के समय वर-वधू दोनों सम्मिलित रूप से मन्त्र उच्चारण करते हैं—

**समजन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानिनौ ।**
**संमातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ।**

*ऋग्वेद १० /८५ /४७*

अर्थात् सब विद्वान लोग यह जान लें कि हम दोनों के हृदय जल की तरह परस्पर प्रेम पूर्वक मिले रहेंगे । विश्व नियंता परमात्मा तथा विदुषी देवियां हम दोनों के प्रेम को स्थिर बनाने में सहायता करें ।

स्त्री के मुख से वेद-मन्त्रों के उच्चारण के लिए असंख्यों प्रमाण भरे पड़े हैं । शतपथ ब्राह्मण १४ /१४ /१६ में पत्नी द्वारा यजुर्वेद के ३३ । २७ मन्त्र तष्ट्र मन्तस्वा सयेम.......' इस मन्त्र को पत्नी द्वारा उच्चारण करने का विधान है । शतपथ के १ /९ /२ /२ /१ तथा १ /९ /१ /२२,२३ में स्त्रियों द्वारा यजुर्वेदः के २३ /२३, २५, २७, २९ मन्त्रों के उच्चारण का आदेश है ।

तैत्तिरीय संहिता के १ /१ /१० 'सुप्रजसस्त्वी वयं' आदि मन्त्रों को स्त्री द्वारा बुलवाने का आदेश है ।

आश्वलायन गृह्य सूत्र १ /९ के "पाणि ग्रह्यादि गृह्य.....' में भी इसी प्रकार यजमान की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी पुत्र अथवा कन्या को यज्ञ करने का आदेश है ।

काठक गृह्य सूत्र ३ । १ । ३० एवं २७ /३ में स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन, मन्त्रोच्चारण एवं वैदिक कर्मकाण्ड करने का प्रतिपादन है । लौगाक्षि गृह्य सूत्र की २५वीं काण्डिका में भी ऐसे ही प्रमाण मौजूद हैं ।

पारस्कर गृह्य सूत्र १ । ५ /१,२ के अनुसार विवाह के समय कन्या लाजा होम के मन्त्रों को स्वयं पढ़ती है । सूर्य-दर्शन के समय भी वह यजुर्वेद के ३६ /२४ मन्त्र, 'तच्चक्षर्देव हितं.....' को स्वयं ही उच्चारण करती है । विवाह के समय 'समज्जन' करते समय वर-वधू दोनों साथ-साथ "अर्थ नौ समञ्जयति...." इस ऋग्वेद १० । ८५ /४८ के मन्त्र को पढ़ते हैं ।

ताड्य ब्राह्मण ५ /६ /८ में यज्ञ में स्त्रियों को वीणा लेकर सात वेद के मन्त्रों का गान करने का आदेश है तथा ५ /६ /१५ में स्त्रियों को कलश उठाकर वेद मन्त्रों का गान करते हुए परिक्रमा करने का विधान है ।

ऐतरेय ५-५-२९ में कुमारी गन्धर्व गृहता का उपाख्यान है, जिसमें कन्या के यज्ञ एवं वेदाधिकार का स्पष्टीकरण होता है ।

द्रात्यायन श्रौत्र सूत्र १ /१ । ७ यथा ४ /१ /२२ तथा /१० /१३ तथा ६ /६ /३ तथा २६ /४ /१३ तथा २६ /७ /२८ तथा २६ /७ /१ तथा २० /६ /१२,१३ आदि में ऐसे स्पष्ट आदेश हैं कि अमुक वेद मन्त्रों का उच्चारण स्त्री करे ।

लाट्यायन श्रौत सूत्र में पत्नी को सस्वर सामवेद के मन्त्रों के गायन का विधान है ।

शांखायन श्रौत सूत्र के १ /१२,१३ में तथा आश्वलायन श्रौत सूत १ /११ /१ में इसी प्रकार के वेंद मन्त्रोच्चारण के आदेश हैं अन्त्र ब्राह्मण के १ /२,३ में कन्या द्वारा वेद-मन्त्र के उच्चारण की आज्ञा है ।

नीचे के मन्त्रों में वधू को वेद-परायण होने के लिए कितना आदेश दिया हुआ है—

**ब्रह्म परं युज्यतां ब्रह्म पूर्व ब्रह्मान्ततो मध्यतो**
**ब्रह्म सर्वतः अनाव्याधां देव पुरां प्रपद्य शिवा**
**स्योना पतिलोके विराज !**

*अथर्व १४ /१ /६४*

हे वधू ! तेरे आगे, पीछे, मध्य तथा अन्त में सर्वत्र वेद विषयक ज्ञान रहें । वेद ज्ञान को प्राप्त करके तदनुसार तू अपना जीवन बना । मंगलमयी सुखदायिनी एवं स्वस्थ होकर पति के घर में विराज और उपने सद्गुणों से प्रकाशवान हो ।

**कुलायिनी घृतवर्ती पुरन्धिः स्योमे सीद सदने**
**पृथव्याः । अभित्वा रुद्रा वसवो गृणन्तु इमा**
**ब्रह्म पीपिहि सौभगाय अश्विनाध्वर्य**
**सादयतामिहित्वा ।**

*यजु. १४ /२*

हे कुलवती स्त्री ! तू घृत आदि पौष्टिक पदार्थों का उचित उपयोग करने वाली, तेजस्विनी, बुद्धिमती, सत्कर्म करने वाली होकर सुखपूर्वक रह । तू ऐसी गुणवती और विदुषी बन कि रुद्र और वसु भी तेरी प्रशंसा करें । सौभाग्य की प्राप्ति के लिये इन वेद मन्त्र के अमृत का बार-बार भली प्रकार पान कर । विद्वान तुझे शिक्षा देकर इस प्रकार की उच्च स्थिति पर प्रतिष्ठित करावें ।

यह सर्व विदित है कि यज्ञ बिना वेद मन्त्रों के नहीं होता और यज्ञ में पति पत्नी दोनों का सम्मिलित रहना आवश्यक है । रामचन्द्र जी ने सीता की अनुपस्थिति में सोने की प्रतिमा रख कर यज्ञ किया था । ब्रह्माजी को भी सावित्री की अनुपस्थिति में द्वितीय पत्नी को वरण करना पड़ा था, क्योंकि यज्ञ की पूर्ति के लिये पत्नी की उपस्थिति आवश्यकीय है । जब स्त्री यज्ञ करती है, तो उसे वेदाधिकार न होने की बात किस प्रकार कही जा सकती है ? देखिये—

**यज्ञो वा एष योऽपत्नीकः ।**

*—तैत्तिरीय सं. २ /२ /२ /६*

अर्थात् बिना पत्नी के यज्ञ नहीं होता ।

**अथो अर्धोव एष आत्मनः यत् पत्नी ।**

*—तैत्तिरीय सं. ३ /३ /३ /५*

अर्थात्—पत्नी पति की अर्धांगिनी है अतः उसके बिना यज्ञ अपूर्ण है ।

**या दाम्पति समनसा सुनुत आ व धावतः ।**
**देवासो नित्ययाऽशिरा ।**

*—ऋग्वेद ८ /३१ /५१*

हे विद्वानों ! जो पति-पत्नी एक मन होकर यज्ञ करते हैं और ईश्वर की उपासना करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ।

**वित्वा ततस्रे मिथुनो अवस्यवः**
**यद गव्यन्ता द्वाजना समूहसि ।**

*—ऋग्वेद २ /११ /६*

हे परमात्मन् ! तेरे निमित्त यजमान पत्नी समेत यज्ञ करते हैं तू उन दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति कराता है । अतएव वे मिल कर यज्ञ करते हैं ।

**अग्नि होत्रस्य शुश्रुषा सन्ध्योपासान मेव**
**कार्य पत्न्वा प्रतिदिनं बलि कर्म च नैत्यिकम् ।**

*—स्मृति रत्न*

पत्नी प्रतिदिन अग्निहोत्र, सन्ध्योपासन, बलि वैश्य आदि नित्य कर्म करे ।

यदि पुरुष न हो तो स्त्री को अकेली भी यज्ञ करने का अधिकार है । देखिए:—

**होमे कर्तारः स्वयं त्वस्यासम्भवे पत्नादयः ।**

*—गदाधराचार्य*

होम करने में पहले स्वयं यजमान का स्थान है । वह न हो तो पत्नी पत्र आदि करें ।

**पत्नी कुमारः पुत्री वा शिष्यो वाऽपि यथाक्रमम् ।**
**पूर्व पूर्वस्य चाभावे विद्वध्याद्युत्तरोत्तर ॥**

*—प्रयोग रत्नस्मृति*

**यजमानः प्रधानस्यात् पत्नी पुत्रश्च कन्यका ।**
**ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भाता भागिनेयः सुत पतिः ॥**

*—स्मृत्यर्थ सार*

उपरोक्त दोनों श्लोकों का भावार्थ यह है कि यदि यजमान हवन के समय किसी कारण उपस्थित न हो सके तो उसकी पत्नी, पुत्र, कन्या, शिष्य, गुरु, भाई आदि कर लेवें ।

**आहुरप्युत्तमस्त्रीणाम् अधिकारं तु वैदिके ।**
**यथोर्वशी यमी चैव शय्याद्याश्च तथाऽपराः ॥**

*—व्योम संहिता*

श्रेष्ठ स्त्रियों को वेद का अध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने का वैसे ही अधिकार है जैसे कि उर्वशी, यमी, शची आदि ऋषिकाओं को प्राप्त था ।

**अग्निहोत्रस्य शुश्रूया सन्ध्योपासन मेव च ।**

*—स्मृति रत्न (कुल्लू भट्ट)*

इस श्लोक में स्त्रियों को यज्ञोपवीत एवम् संध्योपासन का प्रत्यक्ष विधान है ।

**या स्त्री भर्ता वियुक्तापि स्वाचारे संयुता शुभा ।**
**साच मन्त्रान् प्रगृह्णातु व भर्त्री तदनुज्ञया ॥**

*—भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ /१३ /६२-६३*

उत्तम आचरण वाली विधवा स्त्री वेद मन्त्रों को ग्रहण करे और सधवा स्त्री अपने पति की अनुमति से मन्त्रों को ग्रहण करे ।

**यथाधिकारः श्रौतेषु योषितां कर्म सुश्रुतः ।**
**एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्माणि ब्रह्म वादिताम् ॥**

*—यमस्मृति*

जिस प्रकार स्त्रियों को वेद के कर्मों में अधिकार है वैसे ही ब्रह्म विद्या प्राप्त करने का भी उन्हें अधिकार है ।

**कात्यायनी च मैत्रेयी गार्गी वाचक्नवी तथा ।**
**एवमाद्य बिदुर्ब्रह्म तस्मात् स्त्री ब्रह्मविद् भवेद् ॥**

*—अस्य बामीय भाष्यम्*

जैसे कात्यायनी, मैत्रेयी, वाचक्नवी, गार्गी आदि ब्रह्म (वेद और ईश्वर) को जानने वाली थीं, वैसे ही सब स्त्रियों को ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

बाल्मीकि रामायण में कौशिल्या, कैकेयी, सीता, तारा आदि नारियों द्वारा वेद मन्त्रों का उच्चारण, अग्निहोत्र, संध्योपासन का वर्णन आता है ।

**संध्याकाल मनः श्यामा ध्रुव मेष्यति जानकी ।**
**नदी चेमां शुभ जलां सन्ध्यार्थे वर वर्णिनी ।**

*—बा. रा. ५ /१५ /४८*

सायंकाल के समय सीता इन उत्तम जल वाली नदी के तट पर सन्ध्या करने अवश्य आवेगी ।

**वैदेही शोक सन्तप्ता हुताशन मुपागतम् ।**

*बाल्मीकि सुन्दर ५३ /२३*

अर्थात्—तब शोक सन्तप्त सीताजी ने हवन किया ।

**"तदा सुमन्त्र मंत्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ।"**

वेद मन्त्रों को जानने वाली कैकेयी ने सुमन्त से कहा ।

**सा क्षौभ वसना हृष्टा, नित्यं व्रत परायणा ।**
**अग्नि जुहोतिस्य तदा मन्त्र वित्कृत मंगला ॥**

*—बा. रामायण २ /२० /१५*

वेद मन्त्रों को जानने वाली, व्रत परायण, प्रसन्न मुख, सुवेशी कौशल्या मंगलपूर्वक अग्निहोत्र कर रही थी ।

**तःस्वत्ययनं कृत्वा मंत्रविद् विजयैषिणी ।**

*—बा. रामायण ४ /१६ /१२*

तब मन्त्रों को जानने वाली तारा ने अपने पति बाली की विजय के लिए स्वस्ति वाचन के मन्त्रों का पाठ करके अन्तःपुर में प्रवेश किया ।

गायत्री मन्त्र के अधिकार के सम्बन्ध में तो ऋषियों ने और भी स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है, नीचे के दो स्मृति प्रमाण देखिये जिनमें स्त्रियों को गायत्री उपासना का विधान किया गया है ।

**पुराकल्पेतु नारीणां मौञ्जीबन्धन मिष्यते ।**
**अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा ॥**

*—यमस्मृति*

प्राचीन समय में स्त्रियों को मौञ्जी बन्धन, वेदों का पढ़ना तथा गायत्री का उपदेश इष्ट था ।

**मनसा भर्तुरभिचारे निरांत्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जनाऽघ शयीत ऊर्ध्वं निरात्रादप्सु निमग्नायाः सार्विव्यिष्ट शतेन शिरोभि र्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते ।**

*—वाशिष्ठ स्मृति २१ /७*

यदि स्त्री के मन में पति के प्रति दुर्भाव आवे तो उस पाप का प्रायश्चित करने के साथ १०८ मन्त्र गायत्री के जपने से वह पवित्र होती है ।

इतने पर भी यदि कोई यह कहे कि स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं तो उसे दुराग्रह या कुसंस्कार ही कहना चाहिए ।

## नारी पर प्रतिबन्ध और लांछन क्यों ?

गायत्री उपासना का अर्थ है ईश्वर को माता मानकर उसकी गोदी में चढ़ना । संसार में जितने सम्बन्ध हैं, रिश्ते हैं, उन सबमें माता का रिश्ता अधिक प्रेम पूर्ण, अधिक घनिष्ठ है । प्रभु को जिस दृष्टि से हम देखते हैं, हमारी भावना के अनुरूप वे वैसे ही प्रत्युत्तर देते हैं । जब ईश्वर की गोदी में जीव मातृभावना के साथ चढ़ता है, तो निश्चय ही उधर से वात्सल्य पूर्ण उत्तर मिलता है ।

स्नेह, वात्सल्य, करुणा, दया, ममता, उदारता, कोमलता आदि तत्व नारी में नर की अपेक्षा स्वभावतः होते हैं ब्रह्म का अर्ध वामांग, ब्राह्मी तत्व, अधिक कोमल, आकर्षक एवं शीघ्र द्रवीभूत होने वाला है । इसीलिये अनादि काल से ऋषि लोग ईश्वर की मातृ भावना के साथ उपासना करते रहे हैं और उन्होंने प्रत्येक भारतीय

धर्मावलम्बी को इसी सुख साध्य, सरल एवं शीघ्र सफल होने वाली साधना-प्रणाली को अपनाने को आदेश दिया है । गायत्री उपासना प्रत्येक भारतीय का धार्मिक नित्य कर्म है । सन्ध्यावन्दन किसी पद्धति से किया जाय उसमें गायत्री का होना आवश्यक है । विशेष लौकिक या पारलौकिक प्रयोजन के लिये विशेष रूप से गायत्री की उपासना की जाती है, पर उतना न हो सके तो, नित्य कर्म की साधना तो दैनिक कर्तव्य है, उसे न करने से धार्मिक कर्तव्यों की उपेक्षा करने का दोष लगता है ।

कन्या और पुत्र दोनों ही माता की प्राणप्रिय सन्तान हैं। ईश्वर को नर और नारी दोनों दुलारे हैं । कोई भी और न्यायशील माता-पिता अपने बालकों में इसलिये भेदभाव नहीं करते कि वे कन्या हैं या पुत्र हैं । ईश्वर ने धार्मिक कर्तव्यों एवं आत्म कल्याण के साधनों को नर और नारी दोनों को ही सुविधा दी है । यह समता न्याय और निष्पक्षता की दृष्टि से उचित है, तर्क और प्रमाणों से सिद्ध है । इस सीधे तथ्य में कोई विघ्न डालना असंगत ही होगा ।

मनुष्य की समझ बड़ी विचित्र है, उसमें कभी-कभी ऐसी बातें भी घुस जाती हैं, जो सर्वथा अनुचित एवं अनावश्यक होती हैं । प्राचीन काल में नारी जाति का समुचित सम्मान रहा पर एक समय ऐसा भी आया जब स्त्री जाति को सामूहिक रूप से हेय, पतित, त्याज्य, पातकी, अनाधिकारी घृणित ठहराया गया उस विचारधारा ने नारी के मनुष्योचित अधिकारों पर आक्रमण किया और पुरुष की श्रेष्ठता एवं सुविधा का पोषण करने के लिये उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगाकर शक्तिहीन, साहसहीन, विद्याहीन बनाकर इतना लुंज-पुंज कर दिया कि बेचारी समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकना तो दूर आत्म-रक्षा के लिये भी दूसरों की मोहताज हो गई । आज भारतीय नारी, पालतू पशु-पक्षियों जैसी स्थिति में पहुँच गई है । इसका कारण वह उलटी समझ ही है, जो मध्यकाल के सामन्तशाही अहंकार के साथ उत्पन्न हुई थी । प्राचीनकाल में भारतीय नारी सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समकक्ष थी । रथ के दोनों पहिये ठीक होने से समाज की गाड़ी उत्तमता से चल रही थी, पर अब तो पहिया क्षत-विक्षत हो जाने से दूसरा पहिया भी लड़खड़ा गया है । अयोग्य नारी समाज का भार नरक को ढोना पड़ रहा है । इस अव्यवस्था ने हमारे देश और जाति को कितनी क्षति पहुँचाई है, उसकी कल्पना करना भी कष्टसाध्य है ।

मध्यकालीन अन्धकार युग की कितनी ही बुराइयों को सुधारने के लिए विवेकशील और दूरदर्शी महापुरुष प्रयत्नशील हैं यह प्रसन्नता की बात है । विज्ञ पुरुष यह अनुभव करने लगे हैं कि मध्यकालीन संकीर्णता की लोह श्रृंखला से नारी को न खोला गया तो हमारा राष्ट्र प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता है । पूर्वकाल में नारी जिस स्थिति में थी, उसी स्थिति में पुन: पहुँचाने से हमारा आधा अंग विकसित हो सकेगा और तभी हमारा सर्वांगीण विकास हो सकेगा । इन शुभ प्रयत्न में मध्यकालीन कुसंस्कारों से रूढ़ियों का अन्धानुकरण करना ही धर्म समझ बैठने वाली विचारधारा अब भी रोड़े अटकाने से नहीं चूकती ।

ईश्वर-भक्ति गायत्री की उपासना तक के बारे में यह कहा जाता है कि इसका स्त्रियों का अधिकार नहीं । इसके लिये कई पुस्तकों के श्लोक भी प्रयुक्त किये जाते हैं, जिनमें यह कहा गया है कि—स्त्रियाँ वेद मंत्रों को न पढ़ें, न सुनें, क्योंकि गायत्री भी वेद मन्त्र है, इसलिए स्त्रियाँ उसे न अपनावें । इन प्रमाणों से हमें कोई विरोध नहीं, क्योंकि एक काल भारतवर्ष में ऐसा बीता है, जब नारी को निकृष्ट कोटि के जीव की तरह समझा गया है । योरोप में तो उस समय यह मान्यता थी कि घास-पात की तरह स्त्रियों में भी 'आत्मा' नहीं होती । यहाँ भी उनसे मिलती-जुलती ही मान्यता बना ली गई थी । कहा जाता था कि—

**'निरिन्द्रियाह्य मन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ।**

अर्थात्—स्त्रियों के इन्द्रियाँ नहीं होतीं । वे मंत्र रहिता, असत्य स्वरूपिणी एवम् घृणित हैं । स्त्री का ढोल, गँवार, शूद्र और पशु की तरह पिटने योग्य ठहराने वाले विचार का कहना था कि—

**'पोश्चल्याच्चल चित्ताच्च नै स्नेह्याच्च स्वभावतः ।**
**रक्षिता यत्र तोऽवीह भर्तृष्वेता यिकुर्वते ।'**

अर्थात्—स्त्रियाँ स्वभावतः ही अभिचारिणी, चंचल चित्त, प्रेम शून्य होती हैं । उनकी बड़ी होशियारी के साथ देखभाल रखनी चाहिए ।

**विश्वास पात्रं न किमस्ति नारी ।**
**द्वारं किमेकं नरकस्य नारी ॥**
**विज्ञान्महा विज्ञतमोऽस्ति कोवा ।**
**नार्या पिशाच्या न च वंचितोयः ॥**

**प्रश्न**—विश्वास करने योग्य कौन नहीं है ? **उत्तर**—नारी । **प्रश्न**—नरक का एकमात्र द्वार क्या ? **उत्तर**—नारी । **प्रश्न**—बुद्धिमान कौन है ? **उत्तर**—जो नारी रूपी पिशाचनी से नहीं ठगा गया ।

जब स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता फैली हुई हो तो उन्हें वेद-शास्त्रों से, धर्म-कर्तव्यों से ज्ञान-उपार्जन से वंचित रहने का प्रतिबन्ध लगाया गया हो तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है । इस प्रकार के प्रतिबन्ध सूचक अनेक श्लोक उपलब्ध भी होते हैं ।

**स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रियी न श्रुति गोचरा ।**

*—भागवत*

अर्थात्—स्त्रियों, शूद्रों और नीच ब्राह्मणों को वेद सुनने का अधिकार नहीं है ।

**अमंत्रिका तुकार्येयु स्त्रीणामावृद शेषतः ।**
**संस्कारार्थ शरीरस्य यथा काले यथा क्रमम् ॥**

*—मनु. २/६६*

अर्थात्—स्त्रियों के जातकर्मादि सब संस्कार बिना वेद मन्त्रों के करने चाहिये ।

**नन्वेव सति स्त्री शूद्र सहिताः सर्वे वेदाधिकारिणः ।"**

*—सायण*

स्त्री और शूद्रों को वेद का अधिकार नहीं है ।

**"वेदेऽनधिकरात्"**

*—शंकराचार्य*

स्त्रियाँ वेद की अधिकारिणी नहीं ।

**"अध्ययन रहितया स्त्रिया तदनुष्ठान मशक्य त्वात् तस्मान् पुंस एवोपथानादिकम् ।"**

*—माधवाचार्य*

स्त्री अध्ययन रहिता होने के कारण यज्ञ में मन्त्रोच्चारण नहीं कर सकती इसलिए केवल पुरुष मन्त्र पाठ करें ।

**'स्त्री शूद्रौ ना धीयताम् ।'**

**अर्थ**—स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें ।

**न वै कन्या न युवतिः ।**

**अर्थ**—न कन्या पढ़े न स्त्री पढ़े ।

इस प्रकार की स्त्रियों को धर्म ज्ञान, ईश्वर उपासना और आत्म-कल्याण से रोकने वाले प्रतिबन्धों को कई भोले मनुष्य 'सनातन' मान लेते हैं और उनका समर्थन करने लगते हैं ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के प्रतिबन्ध कहीं नहीं हैं, वरन् उससे तो सर्वत्र नारी की महानता का वर्णन है और उसे भी पुरुष जैसे ही सब धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं । यह प्रतिबन्ध तो कुल काल तक कुछ व्यक्तियों की एक सनक से प्रमाण मात्र हैं । ऐसे लोगों ने धर्म ग्रन्थों में जहाँ तहाँ अनर्गल श्लोक ठूँस कर अपनी सनक को ऋषि प्रणीत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ।

भगवान् मनु ने नारी जाति की महानता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हुए लिखा है :—

**प्रजनार्थ महाभागाः पूजार्हा गृह दीप्तयः ।**
**स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चनः ।**

*—मनु. ९/२६*

**अपत्यं धर्म कार्याणि शुश्रूषा रति रुत्तमा ।**
**दारा धीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥**

*—मनु. ९/२८*

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।**
**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वातत्राफलाः क्रियाः ॥**

*—मनु. ३/५६*

अर्थात् स्त्रियां पूजा के योग्य हैं, महाभाग हैं, घर की दीप्ति हैं कल्याणकारिणी हैं । धर्म-कार्यों की सहायिका हैं। स्त्रियों के आधीन ही स्वर्ग है । जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों का तिरस्कार होता है वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं ।

जिन मनु भगवान की श्रद्धा नारी जाति के प्रति इतनी उच्चकोटि की थी, उन्हीं के ग्रन्थ में यत्र तत्र स्त्रियों की भरपेट निन्दा और उनकी धार्मिक सुविधा का निषेध है मनु जैसे महापुरुष ऐसी परस्पर विरोधी बातें नहीं लिख सकते । निश्चय ही उनके ग्रन्थों में पीछे वाले लोगों ने मिलावट की है । इस मिलावट के प्रमाण भी मिलते हैं । देखिये—

**मान्या कापि मनुस्मृति स्तदुचिता व्याख्यापि मेधातिथेः ।**
**सा लुप्तैव विधेर्वशात्क्वचिदपि प्राप्यं न तत्पुस्तकम् ॥**
**क्षोणीन्द्रो मदन सहारण सुतो देशान्तरादाह तै ।**
**जीर्णोद्धार मचीकरत् तत् इतस्ततपुस्तकैर्लेखितैः ॥**

**——मेधातिथिरचित मनुभाष्य सहितमनुस्मृते रुपोद्घात्**

अर्थात् प्राचीन काल में कोई प्रामाणिक मनुस्मृति थी और उसकी मेधातिथि ने उचित व्याख्या की थी । दुर्भाग्यवश वह पुस्तक लुप्त हो गई । कहीं प्राप्त न हो सकी, तब राजा मदन ने इधर-उधर की पुस्तकों से उसका जीर्णोद्धार कराया ।

केवल मनुस्मृति तक यह घोटाला सीमित नहीं है वरन् अन्य ग्रन्थों में भी ऐसी भी मिलावट की गई है और अपनी मनमानी को शास्त्र विरुद्ध होते हुए भी 'शास्त्र वचन' सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है ।

**दैत्याः सर्वे विप्र कुलेषु भूत्वा, कलौ युगे भारते षट् सहस्त्रयाम ।**
**निष्कास्य कांश्चिन्नवनिर्मितानां निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम् ।**

*—गरुणपुराण ब्रह्म. १ /५९*

राक्षस लोग कलियुग में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होकर महाभारत के छै हजार श्लोकों में से अनेक श्लोकों को निकाल देंगे और उनके स्थान पर नये कृत्रिम श्लोक धरकर प्रक्षेप कर देंगे । यही बात माधवाचार्यजी ने इस प्रकार कही है—

**क्वचिद् ग्रन्थानि प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि ।**
**कुर्युःक्वचिच्च व्यत्यासं प्रमादात् क्वचिदन्यथा ।।**
**अनुत्सन्नाः अपि ग्रन्था व्याकुला इति सर्वशः ।**

स्वार्थी लोग कहीं ग्रन्थों के वचनों को प्रक्षिप्त कर देते हैं कहीं निकाल देते हैं, कहीं जान-बूझकर, कहीं प्रमाद से उन्हें बदल देते हैं, इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थ में अस्त-व्यस्त हो गये हैं ।

जिन दिनों यह मिलावट की जा रही थी, उन दिनों भी विचारवान् विद्वानों ने इस गड़बड़ी का डटकर विरोध किया था महर्षि हारीत ने इन स्त्री-द्वेष ऊल-जलूल उक्तियों का घोर विरोध करते हुए क्हा था कि—

**न शूद्र समाः स्त्रियः । नाहि शूद्र योनौ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसास्त्रियः संस्कार्याः**

*—हारीत*

स्त्रियां शूद्रों के समान नहीं हो सकतीं । शूद्र-योनि से भला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है ? स्त्रियों को वेद द्वारा संस्कृत करना चाहिये ।

नर और नारी एक ही रथ के दो पहिये हैं, एक ही मुख के दो नेत्र हैं । एक के बिना दूसरा अपूर्ण है । दोनों अर्द्धांगों के मिलने से एक पूर्ण अंग बनता है । मानव प्राणी के अविछिन्न दो भागों में इस प्रकार की असमानता, द्विधा, नीच ऊंच की भावना पैदा करना भारतीय धर्म में सदा नर नारी को एक और अविछिन्न अंग माना है ।

**यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।**

*—मनु. ९ /१३०*

आत्मा के समान ही सन्तान है । जैसा पुत्र वैसी ही कन्या दोनों समान हैं ।

**एतवानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ।**
**विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यों भर्ता सास्मृतांगना ।।**

*—मनु. ९ /४५*

पुरुष अकेला नहीं होता, किन्तु स्वयं पत्नी और सन्तान मिलकर पुरुष बनता है ।

**"अथो अर्द्धो वा एष आत्मानः यत् पत्नी ।"**

अर्थ पत्नी पुरुष का आधा अंग है ।

ऐसी दशा में यह उचित नहीं कि नारी को प्रभु की वाणी वेद-ज्ञान से वन्चित रखा जाय । अन्य मन्त्रों की तरह गायत्री का भी उसे पूरा अधिकार है । ईश्वर की हम नारी के रूप में, गायत्री के रूप में उपासना करें और फिर नारी जाति को ही घ्रणित, पतित, अस्पर्शा, अनाधिकारिणी ठहरावें, यह कहां तक उचित है इस पर हमें स्वयं ही विचार करना चाहिए ।

वेद ज्ञान सबके लिए है, नर नारी सभी के लिये है । ईश्वर अपनी संतान को जो संदेश देता है, उसे सुनने पर प्रतिबन्ध लगाना ईश्वर के प्रति द्रोह करना है । वेद भगवान् स्वयं कहते हैं :—

**समानो मंत्रः समिति समानी समानं मनः सह**
**चित्त मेषाम् । समानं मन्त्र मभि मन्त्रेये वः**
**सामने न वो हविर्षा जुहोमि ।**

*ऋग्वेद १० /१९१ /३*

अर्थ—हे समस्त नर-नारियों ! तुम्हारे लिये ये मंत्र समान रूप से दिये गये हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो । तुम्हारी सभाएँ सबके लिये समान रूप से खुली हुई हों । तुम्हारा मन और चित्त समान तथा मिला हुआ हो । मैं तुम्हें समान रूप से मन्त्रों का उपदेश करता और समान रूप से ग्रहण करने योग्य पदार्थ देता हूँ ।

## मालवीय जी द्वारा निर्णय

स्त्रियों को वेद-मन्त्रों का अधिकार है या नहीं, इस प्रश्न को लेकर काशी के पण्डितों में पर्याप्त विवाद हो

चुका है । हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में कुमारी कल्याणी नामक छात्रा वेद कक्षा में प्रवृष्ट होना चाहती थी, पर प्रचलित मान्यता के आधार पर विश्वविद्यालय ने उसे दाखिल करने से इन्कार कर दिया । अधिकारियों का कथन था कि शास्त्रों में स्त्रियों को वेदमन्त्रों का अधिकार नहीं दिया गया है ।

इस विषय को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में बहुत दिन विवाद चला । वेदाधिकार के समर्थन में "सार्वदेशिक" पत्र ने कई लेख छापे और विरोध में काशी के "सिद्धान्त" पत्र में कई लेख प्रकाशित हुये । आर्य समाज की ओर से एक डेपूटेशन हिन्दू विश्वविद्यालय के अधिकारियों से मिला । देश भर में इस प्रश्न को लेकर काफी चर्चा हुई ।

अन्त में विश्वविद्यालय ने महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की जिसमें अनेक धार्मिक विद्वान सम्मिलित किये गये कमेटी ने इस सम्बन्ध में शास्त्रों का गम्भीर विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला कि स्त्रियों को भी पुरुषों ही की भांति वेदाधिकार है । इस निर्णय की घोषणा २२ अगस्त, १९४६ को सनातन धर्म के प्राण समझे जाने वाले महामना मालवीयजी ने की । तदनुसार कुमारी कल्याणी देवी को हिन्दू विश्वविद्यालय की वेद-कक्षा में दाखिल कर लिया गया और शास्त्रीय आधार पर निर्णय किया गया कि विश्वविद्यालय में स्त्रियों के वेदाध्ययन पर कोई प्रतिबंध न रहेगा । स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति वेद पढ़ सकेंगी ।

महामना मालवीयजी तथा उनके सहयोगी अन्य विद्वानों पर कोई सनातन धर्म विरोधी होने का सन्देह नहीं कर सकता । सनातन धर्म में उनकी अवस्था प्रसिद्ध है । ऐसे लोगों द्वारा इस प्रश्न को सुलझा दिये जाने पर भी जो लोग गढ़े मुर्दे उखाड़ते हैं और कहते हैं कि स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं है, उनकी बुद्धि के लिये क्या कहा जाय ? समझ में नहीं आता ।

पं. मदनमोहनजी मालवीय सनातन धर्म के प्राण थे । उनकी शास्त्रज्ञता, विद्वता, दूरदर्शिता एवं धार्मिक दृढ़ता असंदिग्ध थी । ऐसे महापंडित ने अन्य अनेकों प्रामाणिक विद्वानों के परामर्श से स्त्रियों के वेदाधिकार को स्वीकार किया है । उस निर्णय पर भी जो लोग सन्देह करते हैं, उनकी हठधर्मी को दूर करना स्वयं ब्रह्माजी के लिए भी कठिन है ।

## स्त्रियाँ अनधिकारिणी नहीं हैं

पिछले पृष्ठों पर शास्त्रों के आधार पर जो, प्रमाण उपस्थित किये गये हैं, पाठक उनमें से हरेक पर विचार करें । हर विचारवान को यह सहज ही प्रतीत हो जायगा कि वेद शास्त्रों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जो धार्मिक कार्यों के लिये सद्ज्ञान उपार्जन के लिये, वेद शास्त्रों का श्रवण मनन करने के लिये रोकता हो । हिन्दू धर्म वैज्ञानिक धर्म है, विश्व धर्म है । इसमें ऐसी विचारधारा के लिये कोई स्थान नहीं है, जो स्त्रियों को धर्म, ईश्वर, वेद, विद्या आदि के उत्तम मार्ग से रोककर उन्हें अवतन अवस्था में पड़े रहने के लिये विवश करे । प्राणिमात्र पर अनन्त दया एवं करुणा रखने वाले ऋषि मुनि ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते, जो ईश्वरीय ज्ञान-वेद से स्त्रियों को वंचित रखकर उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने से रोकें । हिन्दू धर्म अत्यधिक उदार है । विशेषत: स्त्रियों के लिए तो उसमें बहुत ही आदर, श्रद्धा एवं उच्च स्थान है । ऐसी दशा में यह कैसे हो सकता है कि गायत्री उपासना जैसे उत्तम कार्य के लिए उन्हें अयोग्य घोषित किया जाय ।

जहाँ तहाँ दस पाँच ऐसे भी श्लोक मिलते हैं जो स्त्रियों को वेद शास्त्र पढ़ने से रोकते हैं । पण्डित समाज में उन पर विशेष ध्यान दिया गया है । प्रारम्भ में बहुत समय तक हमारी भी ऐसी ही मान्यता रही कि स्त्रियाँ वेद न पढ़ें । परन्तु जैसे-जैसे शास्त्रीय खोज में अधिक गहरा प्रवेश करने का अवसर मिला, वैसे-वैसे पता चला कि वे प्रतिबन्ध श्लोक 'मध्यकालीन' सामन्तवादी मान्यता के प्रतिनिधि हैं । उसी समय में इस प्रकार के श्लोक मिलाकर ग्रन्थों में मिला दिये गये हैं । सत्य सनातन वेदोक्त भारतीय धर्म को वास्तविक विचारधारा, स्त्रियों पर कोई बन्धन नहीं लगाती । उसमें पुरुषों की भाँति ही स्त्रियों को भी, ईश्वर उपासना एवम् वेद शास्त्रों का आश्रय लेकर आत्म लाभ करने की पूरी-पूरी सुविधा है ।

प्रतिष्ठित गण्यमान्य विद्वानों की भी ऐसी ही सम्मति है । साधना और योग की प्राचीन परम्पराओं के जानकार महात्माओं का कथन भी यही है कि स्त्रियाँ सदा से गायत्री की अधिकारिणी रही हैं । स्वर्गीय महामना मालवीय जी सनातन धर्म के प्राण थे पहले उनके हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को वेद पढ़ने की रोक थी, पर जब उन्होंने विशेष रूप से पण्डित मण्डली के सहयोग से इस सम्बन्ध में स्वयं खोज की तो वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शास्त्रों

में स्त्रियों के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है उन्होंने रूढ़िवादी लोगों के विरोध की रत्तीभर भी परवाह न करते हुए हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को वेद पढ़ने की खुली व्यवस्था कर दी ।

अब भी कोई महानुभाव यह कहते रहते हैं कि—'स्त्रियों को वेद या गायत्री का अधिकार नहीं है ।' ऐसे लोगों की आँखें खोलने के लिये असंख्य प्रमाणों में से कुछ थोड़े से प्रमाण इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये हैं। सम्भव है जानकारी के अभाव में किसी को विरोध रहा हो। दुराग्रह से कभी किसी विवाद का अन्त नहीं होता । अपनी ही बात को सत्य सिद्ध करने के लिए हठ ठानना अशोभनीय है । विवेकवान् व्यक्तियों का सदा यह सिद्धान्त रहता है कि 'जो सत्य सो हमारा ।' अविवेकी मनुष्य 'जो हमारा सो सत्य' सिद्ध करने के लिए वितण्डा खड़ा करते हैं ।

विचारवान् व्यक्तियों को अपने आप से एकान्त स्थान में बैठकर यह प्रश्न करने चाहिये : (१) यदि स्त्रियों को गायत्री या वेद मन्त्रों का अधिकार नहीं तो प्राचीन काल में स्त्रियाँ वेदों की मन्त्र दृष्टा-ऋषिकाएँ—क्यों हुई ? (२) यदि वेद की वे अधिकारिणी नहीं तो यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों तथा षोडस संस्कारों में उन्हें सम्मिलित क्यों किया जाता है ? (३) विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों के मुख से वेद मन्त्रों का उच्चारण क्यों कराया जाता है ? (४) बिना वेद मन्त्रों के नित्य सन्ध्या और हवन स्त्रियां कैसे कर सकती हैं ? (५) यदि स्त्रियाँ अनाधिकारिणी थीं तो अनुसूया, अहिल्या, अरुन्धती, मैत्रेयी, मदालसा आदि अगणित स्त्रियां वेद शास्त्रों में पारंगत कैसे थीं ? (६) ज्ञान, धर्म और उपासना के स्वाभाविक अधिकारों से नारियों को वंचित करना क्या अन्याय एवं पक्षपाती नहीं है ? (७) क्या नारी को आध्यात्मिक दृष्टि से अयोग्य ठहराकर उनसे उत्पन्न होने वाली सन्तान धार्मिक हो सकती है ? (८) जब स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी है, तो आधा अंग आधिकारी आधा अधिकारी किस प्रकार रहा ?

इन प्रश्नों पर विचार करने से हर एक निष्पक्ष व्यक्ति की अन्तरात्मा ही उत्तर देगी कि स्त्रियों पर धार्मिक अयोग्यता का प्रतिबन्ध लगाना किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं हो सकता । उन्हें भी गायत्री आदि मंत्रों का पुरुषों की भांति ही अधिकार होना चाहिये । हम स्वयं भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं । हमें ऐसी पचासों स्त्रियों का परिचय है, जिनने श्रद्धापूर्वक वेदमाता गायत्री की उपासना की है और पुरुषों के ही समान सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त किया है । कई बार तो उन्हें पुरुषों से भी अधिक एवं शीघ्र सफलताएँ मिलीं । कन्याएं उत्तम घर वर प्राप्त करने में, सधवाएँ पति का सुख सौभाग्य एवं सु-सन्तति के सम्बन्ध में और विधवाएं संयम तथा धर्म उपार्जन में आशाजनक सफल हुई हैं ।

आत्मा न स्त्री है न पुरुष । वह विशुद्ध ब्रह्म ज्योति की चिनगारी है । आत्मिक प्रकाश प्राप्त करने के लिये जैसे पुरुष को किसी गुरु या पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है, वैसे ही स्त्री को भी होती है । तात्पर्य यह है कि साधना क्षेत्र में पुरुष स्त्री का भेद नहीं । साधक 'आत्मा' है । उन्हें अपने को पुरुष स्त्री न समझकर आत्मा समझना चाहिए । साधना क्षेत्र में सभी आत्माएं समान हैं । लिंग भेद के कारण कोई अयोग्यता उन पर नहीं थोपी जानी चाहिये ।

पुरुष की अपेक्षा स्वभावत: स्त्री में धार्मिक तत्वों की मात्रा अधिक होती है । पुरुषों पर बुरे वातावरण एवं व्यवहार की छाया पड़ती है, जिससे बुराइयां अधिक हो जाती हैं, आर्थिक संघर्ष में रहने के कारण चोरी, बेईमानी आदि के अवसर भी उनके सामने आते रहते हैं पर स्त्रियों का कार्य क्षेत्र बड़ा सरल सीधा और सात्विक है । घर में उन्हें जो कार्य करना पड़ता है उसमें सेवा की मात्रा ही अधिक रहती है । वे स्वयं आत्म-निग्रह करती हैं, कष्ट सहती हैं, पर बच्चों के प्रति, पतिदेव के प्रति, सास-ससुर, देवर-जेठ आदि सभी के प्रति अपने व्यवहार को सौम्य, सहृदय, सेवापूर्ण, उदार, शिष्ट एवं सहिष्णु रखती हैं । उनकी दिनचर्या सतोगुणी होती है, जिनके कारण उनकी अन्तरात्मा पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र रहती है। चोरी, हत्या, ठगी, धूर्तता, शोषण, निष्ठुरता, व्यसन, अहंकार, असंतम, असत्य आदि दुर्गुण पुरुष में ही प्रधानत: पाये जाते हैं स्त्रियों में इस प्रकार के पाप बहुत ही कम देखने में आते हैं यों फैशनपरस्ती, अशिष्टता, कर्कशता श्रम से जी चुराना आदि छोटी-छोटी बुराइयाँ अब स्त्रियों में भी बढ़ने लगी हैं, परन्तु पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ निस्सन्देह अनेक गुनी अधिक सद्गुणी हैं, उनकी बुराइयां अपेक्षाकृत बहुत ही सीमित हैं ।

ऐसी स्थिति में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में धार्मिक प्रवृत्ति का अधिक होना स्वाभाविक ही है उनकी मनोभूमि में धर्म का बीजांकुर अधिक जल्दी जमता और

फलता-फूलता अवकाश रहने के कारण वे घर में पूजा आराधना की नियमित व्यवस्था भी कर सकती हैं । अपने बच्चों पर धार्मिक संस्कार अधिक अच्छी तरह से डाल सकती हैं । इन सब बातों को देखते हुए महिलाओं को धार्मिक साधना के लिये उत्साहित करने की आवश्यकता है । इसके विपरीत उन्हें नीच, अनाधिकारिणी, शूद्रा आदि कहकर उसके मार्ग में रोड़े खड़ा करना, निरुत्साहित करना किस प्रकार उचित है, यह समझ में नहीं आता ।

महिलाओं को वेद-शास्त्र अपनाने एवं गायत्री-साधना करने के असंख्य प्रमाण धर्म-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं, उनकी ओर आँखें बन्द करके, किन्हीं दो-चार प्रक्षिप्त श्लोकों को पकड़ बैठना और उन्हीं के आधार पर स्त्रियों को अनाधिकारिणी ठहराना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है । धर्म की ओर एक तो वैसे ही किसी की प्रवृत्ति नहीं है, फिर किसी को उत्साह और सुविधा हो तो उसे अनाधिकारी घोषित करके ज्ञान और उपासना का रास्ता बन्द कर देना कोई विवेकशीलता नहीं है ।

हमने भली प्रकार खोज, विचार, मनन और अन्वेषण करके यह पूरी तरह विश्वास कर लिया है कि स्त्रियों को पुरुषों की भांति ही गायत्री का अधिकार है । वे भी पुरुषों की ही भांति माता की गोदी में चढ़ने की, उसका अञ्चल पकड़ने की, उसका पयपान करने की पूर्ण अधिकारिणी हैं । उन्हें सब प्रकार का संकोच छोड़ कर प्रसन्नतापूर्वक गायत्री उपासना करनी चाहिए, इससे उनके भव-बन्धन कटेंगे, जन्म-मरण की फाँसी से छूटेंगी, जीवन-मुक्ति और स्वर्गीय शान्ति की अधिकारिणीं बनेंगी। साथ ही अपने पुण्य प्रताप से अपने परिजनों के स्वास्थ्य सौभाग्य वैभव एवम् सुख सन्तोष में दिन-दिन वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकेंगी । गायत्री को अपनाने वाली देवियां सच्चे अर्थों में देवी बनती हैं, उनके अनेक दिव्य गुणों का प्रकाश होता है तदनुसार वे सर्वत्र उसी आदर को प्राप्त करती हैं, जो उनका ईश्वर जन्मजात अधिकार है ।

## स्त्रियों की गायत्री साधना

कई व्यक्तियों की दृष्टि में स्त्रियों को गायत्री उपासना नहीं करनी चाहिए । उनके लिए शास्त्रों में गायत्री उपासना पर प्रतिबन्ध लगाया हुआ है । जहाँ तहाँ दस पाँच ऐसे श्लोक मिलते भी हैं । जिनमें स्त्रियों को वेद शास्त्र पढ़ने और गायत्री उपासना करने से रोका गया है । पण्डित समाज उन्हीं पर विशेष जोर देकर कहते हैं कि स्त्रियों को गायत्री जप और वेदशास्त्रों का अध्ययन नहीं करना चाहिए । लेकिन शास्त्रीय खोजों में अधिक गहरा प्रवेश किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि वे प्रतिबन्धक श्लोक मध्यकालीन सामन्तवादी मान्यता के प्रतिनिधि हैं । उसी समय में इस प्रकार श्लोक बना कर ग्रन्थों में मिला दिये गये । सत्य, सनातन, वेदोक्त भारतीय धर्म की वास्तविक विचारधारा ही स्त्रियों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं उसमें पुरुषों की भाँति ही स्त्रियों को भी ईश्वर उपासना एवं ईश्वर का आश्रय लेकर आत्म लाभ प्राप्त करने की पूरी-पूरी सुविधा है ।

पुरुषों की ही भांति स्त्रियां भी गायत्री उपासना से लाभान्वित हो सकती हैं । कई आध्यात्मिक तत्ववेत्ताओं का यह कहना है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को गायत्री उपासना का लाभ अधिक मिलता है क्योंकि माता को स्वभावतः पुत्र की अपेक्षा कन्या का अधिक ध्यान रहता है, वह अपनी पुत्रियों के लिये अधिक उदारता का परिचय देती है ।

प्राचीन काल में अनेक महिलाएँ उच्चकोटि की साधिकाएँ हुई हैं । अध्यात्म कार्य में वे पुरुषों से कभी भी पीछे नहीं रही हैं । नारी का तप ही उसकी कुक्षि से महान् आत्माओं को प्रसव करने में समर्थ होता है । तपस्विनी अदिति ने वामन भगवान को जन्म दिया । कौशिल्या की गोदी में राम खेले । देवकी ने कृष्ण चन्द्र को जन्म दिया, रोहिणी और यशोदा के आँगन में उन्हें बाल क्रीड़ा करनी पड़ी । समस्त देवताओं की जननी अदिति माता है ! भगवती कात्यायिनी असुरों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हुईं । माता शतरूपा के गर्भ से मानव प्राणी का उद्‌भव हुआ है । ब्रह्मवादिनी घोषा काक्षीवान ऋषि की कन्या थी, उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था । तप करके उन्होंने अश्विनीकुमार देवता को प्रसन्न किया और निरोगिता एवं विद्या का विपुल भण्डार प्राप्त किया । महर्षि कर्दम की धर्मपत्नी देवहूति ने तपस्वी जीवन बिताकर भगवान कपिल को जन्म दिया । महर्षि मेधातिथि की कन्या अरुन्धती ने तापसारण्य वन में तप करके वशिष्ठ जैसे योगी को अपने पति रूप में पाया और वे सशरीर अजर-अमर बनीं ।

महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न ब्रह्मवादिनी महाविदुषी विश्ववारा ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के द्वितीय अनुवाद के अट्‌ठाईसवें षट ऋकों की मन्त्र द्रष्टा हैं । उन्होंने अपनी तपस्या के बल से ऋषि पद पाया था । तपस्विनी अपाला

पतिगृह में असाध्य रोग में ग्रसित हो गईं तो उन्होंने तप करके इन्द्र को प्रसन्न किया और खोया हुआ स्वास्थ्य तथा ब्रह्म-ज्ञान पाया । यह अपाला भी ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ९१वें सूक्त की १ से ७ तक की ऋचाओं की द्रष्टा हैं । सती तपती की आयु बहुत बड़ी हो गई थी, उनका विवाह न हो सका था । तपती की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं नारायण ने उनसे विवाह किया । अभृण ऋषि, की कन्या वाक् प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी हुई है । ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल में १२५वें देवी सूक्त के आठ मन्त्रों की ऋषि यह वाक्देवी ही हैं । ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५ सूक्त की ऋचाओं की ऋषि होने का श्रेय ब्रह्मवादिनी सूर्या को प्राप्त है । बड़े रोमों वाली भावभव्य ऋषि की धर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी रोमेशा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२६वें सूक्त की सात ऋचाओं की द्रष्टा ऋषि हुई हैं । वृहदारण्यक उपनिषद् में वचक्नु ऋषि की पुत्री गार्गी और याज्ञवल्क्य के शास्त्रार्थ का विस्तृत वर्णन है । महातपस्विनी गार्गी ने राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के छक्के छुड़ा दिये थे । ब्रह्मज्ञानिनी सुलभा ने राजा जनक जैसे तत्वज्ञानी की अनेक भ्रान्तियों का निवारण किया था । राजा आसंग की पत्नी शाश्वती ऋग्वेद के आठवें मण्डल के प्रथम सूक्त की ३४वीं ऋचा की ऋषि हैं । इसी प्रकार उशिज इसी मण्डल के ११६ से १२१वें तक के मन्त्रों की ऋषि हैं । दशम सूत्र की ऋषि ब्रह्मवादिनी ममता हैं ।

कई व्यक्ति कहते हैं कि—"स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं, क्योंकि गायत्री वेद मन्त्र है । वेद मन्त्र स्त्रियों को नहीं पढ़ने चाहिए ।" ऐसे लोग तनिक विचार करने का कष्ट करें कि यदि स्त्रियों को वेद का अधिकार न होता तो वेद मन्त्रों की द्रष्टा, व्याख्याता, विशेषज्ञा, अधिपति यह उपरोक्त स्त्रियाँ किस प्रकार रही होतीं ? प्राचीन काल में घोषा, गोघा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत, जुहू, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपा-मुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि अनेकों ब्रह्मवादिनी वेद व्याख्याता हुई हैं ।

मनु की पुत्री 'इड़ा' नामक एक महिला का वर्णन है जो 'यज्ञान् काशिनी' उपाधि से विभूषित थी । उसने अपने पिता तक के लिए यज्ञ कराये थे । भारद्वाज की पुत्री श्रुतावती, तपस्विनी सिद्धा, शांडिल्य की पुत्री श्रीमती, वेद विद् शिवा, ब्रह्मवादिनी सुलभा, स्वधा की पुत्रियां वद्युना और धारिणी आदि अनेक वेदज्ञ महिलाओं का वर्णन महाभारत में है । यदि उन्हें वेदों का अधिकार न होता तो किस प्रकार वे वेदज्ञ होतीं । शंकर दिग्विजय में भारती देवी नामक एक ऐसी महिला का वर्णन है जिसने शास्त्रार्थ में शंकराचार्य के दांत खट्टे कर दिये थे ।

विवाहादि संस्कारों में स्त्री को अपने मुख से अनेक वेद मन्त्र उच्चारण करने पड़ते हैं । यज्ञों में स्त्रियाँ सदा पति के साथ रहती हैं । स्त्री के बिना यज्ञ सफल नहीं होता। रामचन्द्रजी को सोने की सीता बनाकर यज्ञ पूर्ण करना पड़ा था । यज्ञ बिना वेद मन्त्रों के होते नहीं, यदि स्त्रियों को वेद का अधिकार न होता तो उन्हें यज्ञ में सम्मिलित होने का अथवा विवाहादि संस्कारों में मन्त्रोच्चारण का विधान किस प्रकार होता ?

व्योम संहिता में कहा गया है कि—"स्त्रियों को वेद का अध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने का वैसा ही अधिकार है जैसे कि उर्वशी, यमी, शची, आदि को प्राप्त था ।" यम स्मृति में लिखा है—"स्त्रियों को वैदिक कर्म-काण्डों की भाँति ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का भी अधिकार है । वाल्मीकि रामायण में कौशिल्या, कैकेयी, सीता, तारा आदि नारियों द्वारा स्वयं सन्ध्या, हवन करने तथा स्वस्तिवाचन आदि वेद मन्त्रों का पाठ करने का वर्णन है । वशिष्ठ स्मृति में कहा गया है कि—"यदि स्त्री के मन में पति के प्रति दुर्भाव आवे तो उस पाप का पश्चाताप करने के लिए १०८ गायत्री मन्त्र जपने से वह पवित्र होती है ।"

मध्यकाल के मुसलमानी अन्धकार युग में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ, रूढ़ियाँ, बुराइयाँ हमारे समाज में फैलीं अथवा यों कहिए कि हिन्दू जाति को सब प्रकार छिन्न-भिन्न करने के लिए विधर्मियों द्वारा फैलवाई गईं । ग्रन्थों और प्राचीन पुस्तकों में यहाँ तक ऐसे श्लोक मिलाये और ठूंसे गए जिनसे भारतीय संस्कृति की अविच्छिन विचारधारा खण्ड-खण्ड हो जाय । ऐसी ही भ्रान्तियों में एक विचारधारा यह है कि स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं है । इस सम्बन्ध में कुछ टूटे-फूटे श्लोक भी जहाँ-तहाँ से निकाल कर बताये जाते हैं पर वे भारतीय संस्कृति के अनादि प्रवाह के प्रतिकूल होने के कारण मान्य नहीं ठहरते ।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में पहले स्त्रियों को वेद नहीं पढ़ाया जाता था । जब इस सम्बन्ध में पुनर्विचार की आवश्यकता हुई तो सनातन धर्म के कर्णधार महामना पं. मदनमोहनजी मालवीय ने देश के उच्चकोटि के पण्डितों

की एक समिति नियुक्त की, जिसको यह कार्य सौंपा गया कि वह शास्त्रों के आधार पर यह खोज करे कि स्त्रियों को वेद मन्त्रों का अधिकार है या नहीं । कमेटी ने लम्बे समय तक भारी खोज की और २२ अगस्त सन् १९४६ को उस समिति की रिपोर्ट के आधार पर मालवीयजी ने घोषणा की कि स्त्रियों को भी पुरुषों की ही भाँति वेद पढ़ने का अधिकार है । तब से हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को भी पुरुषों की भांति वेद पढ़ाये जाते हैं ।

गायत्री ईश्वर की सर्वोत्तम प्रार्थना है । वेद भगवान की अमृतमयी वाणी है । ऐसे उपयोगी तत्व से स्त्रियों का वंचित रखा जाना न्याय के, विवेक के, तथा भारतीय संस्कृति की मूलभूत भावना के प्रतिकूल है । इसलिये इस प्रकार के भ्रमों में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्राचीन काल की भाँति आज भी असंख्यों भारतीय महिलायें ऐसी हैं जो गायत्री मन्त्र द्वारा उपासना करती हैं, और उसके महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक और सांसारिक लाभों को प्राप्त करती हैं ।

अध्यात्म साधना के पथ पर अग्रसर महिलाओं ने भूत काल में आत्म-शक्ति संचित की है । अब भी वह राज मार्ग वैसा ही खुला हुआ है और इस दिशा में कदम उठाकर श्रद्धावान महिलाएँ वैसा ही तप-तेज प्राप्त कर सकती हैं ।

सावित्री ने अपने तपोबल से अपने पति सत्यवान का प्राण यमराज के हाथ में से वापिस लौटा लिया । शाण्डली ने अपने पति की मृत्यु हो जाने पर अपने तपोबल से सूर्य का निकलना ही रोक दिया था, जिससे भयभीत होकर देवताओं को उनके पति को जीवित करना ही पड़ा । नल की स्त्री दमयन्ती को सताने वाला व्याध उसके शाप से वहीं जल कर भस्म हो गया था । मदालसा जैसी माताएँ अपने आत्म बल से अपने पुत्रों को अत्यन्त ही उच्चकोटि के महापुरुष बनाने में समर्थ होती थीं । सुकन्या ने अपने तपोबल से अश्विनी कुमार देवताओं को प्रसन्न करके अपने वृद्ध पति च्यवन को तरुण बना लिया था । वैशालनी, बेहुला, चिन्ता, शैव्या, कांतिमयी, पिंगला, सुनीति, सुरमा, सीमन्तिनी, धर्मव्रता, शीला आदि महिलाओं के आत्मबल की कथाएँ घर-घर में प्रसिद्ध हैं ।

महषि अंगिरा जब अपने उग्र स्वभाव को शान्त करने के लिए अग्नि तप कर रहे थे, तब उनकी पत्नी ने अपने तपोबल से नदी रूप धारण करके उन्हें शान्त किया। श्रुतावती के तप से प्रसन्न होकर इन्द्रदेव उन्हें वरदान देने आये थे । गान्धारी के नेत्रों में इतना तेज था कि एक बार दृष्टिपात करने मात्र से उसके पुत्र दुर्योधन का शरीर बज्र, समान हो गया था । जहाँ दुर्योधन ने लँगोटी पहन रखी थी, केवल वही अंग कमजोर रहा और वही उसकी मृत्यु का कारण बना । अहिल्या, द्रौपदी, तारा, आदि की आत्म-शक्ति प्रसिद्ध है । कुन्ती ने गायत्री मन्त्र से सूर्य को प्रसन्न करके कुमारी अवस्था में ही कर्ण को जन्म दिया था ।

उपासना मनुष्य के समस्त पापों को नष्ट करती है । अनेक वेश्याएँ तक सच्ची साधना से परमपद की अधिकारिणी हुई हैं । जीवन्ती नगर की गणिका सुमध्य, रत्न-मुकुट, कान्हू पाला, चिन्तामणि, अम्बपाली आदि का पिछला जीवन कलुषित रहा था, पर वे अन्त में अच्छी श्रद्धा के कारण योगियों को मिलने वाली सद्गति की अधिकारिणी हुई ।

पुरुषों की ही भाँति स्त्रियों को भी गायत्री उपासना के लाभों से लाभान्वित होने का सौभाग्य मिलता है । वे आत्मबल का तप तेज एकत्रित करके योगी और तपस्वियों की भाँति अनेक आत्मिक विशेषताओं एवं विभूतियों से विभूषित हो सकती हैं । अपने जन्म जन्मान्तरों के पाप तापों एवं कषाय कल्मषों से पिण्ड छुड़ाकर भवबन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकती हैं । कठिन साधनाओं को विरक्त भाव से बनों और जंगलों में पुरुष को कर सकते हैं पर स्त्रियों के लिये न तो उतनी सुविधा होती है और न आवश्यकता ही । वे गायत्री महामन्त्र की शरण लेकर अपनी आत्मा को परम पवित्र बनाती हुई एक ही जीवन में परम पद की अधिकारिणी बन सकती हैं । गृहस्थ में रहते हुए तपस्वियों की परिस्थिति को पहुँचना गायत्री उपासना द्वारा ही सुलभ और सम्भव होता है ।

आत्म-कल्याण के साथ-साथ सुमति, एकता, सद्बुद्धि एवं सद्भाव का भी लाभ गायत्री द्वारा मिलता है । सबसे पहले यह गुण साधिका में बढ़ते हैं । चिड़चिड़े स्वभाव की, क्रोधी, असहिष्णु, कलह प्रिय, मन ही मन कुढ़ते रहने की आदत वाली महिलाओं ने भी जब गायत्री उपासना आरम्भ की है तो उनके स्वभाव में आश्चर्य-जनक परिवर्तन हुआ है । थोड़े ही दिनों में वे तुनकने, झुँझलाने या रूठने की प्रवृत्ति छोड़कर हँस-मुख, प्रसन्नचित्त और मधुर स्वभाव वाली बन गईं । जो छोटे दृष्टिकोण के कारण दूसरों की जरा-जरा सी गलती पर या अपने स्वार्थ

को तनिक सी ठेस पहुँचने पर कलह और संघर्ष खड़ा किये रहती थीं, जिनके मन में परिवार के साथ इकट्ठा रहने की अपेक्षा अलग चूल्हा रखने की बात सदा भरी रहती थी, वे उपासना के बाद इस रहस्य को समझीं कि एकता, प्रेमभाव, सुमति तथा मिल जुल कर रहने में कितने लाभ हैं । फिर उन्होंने "क्षमा करो और भूल जाओ, अपनी सुविधा को दूसरों की भलाई के ऊपर न्यौछावर करो" की आध्यात्मिक रीति अपनाई और जो परिवार बिखरते हुए दिखाई पड़ रहे थे वे पहले की अपेक्षा भी अधिक मजबूती के साथ एकता के सूत्र में बँध गये ।

जो स्त्रियाँ बात-बात में अपने दुर्भाव का रोना रोया करती थीं, दूसरों पर नाना प्रकार के दोषारोपण किया करती थीं, और अपने को अत्याचारग्रस्त मानकर सदा दुखी रहती थीं, उनकी अनेकों बार गायत्री उपासना से मति पलटी है । उन्होंने आत्म-चिन्तन किया है, अपनी भूलों को पहचाना है, अपने स्वभाव, कार्यक्रम और दृष्टिकोण में गलतियाँ पाई हैं और उसमें सुधार करके अपने में ऐसा परिवर्तन किया है, कि उन्हें वे ही परिजन जो कुछ समय पहले स्वार्थी, अन्यायी, दुष्ट दिखाई पड़ते थे, फिर भले मनुष्य दीखने लगे । अपना स्वभाव एवं दृष्टिकोण बदलते ही दूसरों का व्यवहार भी बदल गया और इस प्रकार सहज ही शान्तिमय वातावरण उत्पन्न हो गया ।

गायत्री उपासना से सद्‌बुद्धि बढ़ती है और कुबुद्धि के कारण जो नाना प्रकार की कठिनाइयाँ, समस्याएँ उलझनें पैदा होती रहती हैं वे सहज ही समाप्त हो जाती हैं । जो सुधार गाली गलौज, मारपीट, ताड़ना, असहयोग आदि से सम्भव नहीं वह गायत्री उपासना से सद्बुद्धि बढ़ने के कारण बड़ी सुविधापूर्वक हो जाता है । मन में शान्ति और सुमति हो तो शरीरगत अनेक रोग दूर होते हैं । अव्यवस्थित और अनियमित आहार विहार के कारण ही प्रायः बीमारियाँ होती हैं । सद्बुद्धि बढ़ने से मनुष्य के विचार और कार्य संयम, नियम, स्वच्छता, नियमितता और व्यवस्थामय होने लगते हैं । फलस्वरूप बीमारियों की जड़ ही कट जाती है । डाक्टरों और वैद्यों के लम्बे चौड़े बिल, रोगी को शारीरिक कष्ट तथा घर वालों को परेशानी यह तीनों ही झंझट गायत्री उपासक के घर से टलते देखे गये हैं ।

गायत्री उपासना के घर में एक परम सात्विक एवं सौम्य वातावरण बनता है । उस वातावरण का प्रभाव घर के प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है । स्त्रियाँ अपने घर में गायत्री माता की छवि (चित्र) या प्रतिमा स्थापित करती हैं और उनकी पूजा उपासना करती हैं । उस घर में सुमति और सद्बुद्धि का एक प्रवाह दौड़ जाता है । जैसे घर में बदबू या सुगंध फैली हुई हो तो उसका अनुभव हर एक को होता है, उसी प्रकार इस आध्यात्मिक वायुमंडल का प्रभाव उस घर के बालकों पर, तरुणों पर, वृद्धों पर, महिलाओं पर समान रूप से पड़ता है और उनके स्वभावों और विचारों में सात्विक परिवर्तन होता है । ऐसे घरों में से क्लेश, कलह, द्वेष, दुर्भाव, मनोमालिन्य निकल जाता है और जो कोई कुमार्ग पर पैर बढ़ा रहे थे, वे अपना पैर पीछे लौटा लेते हैं ।

पतियों का सुधार स्त्रियाँ गायत्री उपासना द्वारा कर सकती हैं । इस तपस्या से अनेकों स्त्रियों ने अपनी पतियों के बुरे स्वभावों और बुरे आचरणों को सुधारा है । उनके झगड़ालू, रूखे, निष्ठुर स्वभाव को बदल कर मधुर भाषी, सहानुभूति, सद्‌भाव, एवं स्नेह वाला बनाया है । उनकी कुसंगति छुड़ाने एवं व्यभिचार आदि की बुराइयों से बचाने में भी स्त्रियाँ गायत्री उपासना को रामबाण की तरह प्रयोग कर सकती हैं । जो सुहागिन होते हुए भी विधवाओं की तरह जीवन यापन करती थीं, उन्होंने माता की कृपा से अपने जीवन उद्यान में आशा की नई फुलवारी खिलते देखी है । पति का ही नहीं उन्हें दोनों कुलों का आदर प्राप्त हुआ है । गायत्री माता की शरण पड़ने वाली स्त्रियाँ इस प्रकार से सुबुद्धि जन्य अनेक लाभों से लाभान्वित होती देखी गई हैं ।

गायत्री उपासना करने वाली स्त्रियों के पेट में जो सन्तान होती है उस पर माता के विचारों का बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ता है । उसमें विद्या, बुद्धि, विवेक, तेज, प्रतिभा, सदाचार आदि गुणों की कमी नहीं रहती । माताएँ बालकों को दूध पिलाते समय यदि मन ही मन गायत्री मन्त्र जपती रहें, तो वह दूध बालक के शरीर और मन को शुद्ध बनाने के लिए अमृत रूप हो जाता है । बच्चों को निरोग, हँसमुख, सुन्दर, तेजस्वी, बुद्धिमान, गुणवान और दीर्घजीवी बनाने में माताएँ गायत्री महामन्त्र से आशाजनक लाभ उठा सकती हैं ।

कई बार प्रारब्ध के कठोर विधान बड़े कठिन होते हैं, उनका पूर्ण रूप से हटाना सरल नहीं होता, तो भी उनमें गायत्री उपासना से सुधार अवश्य होता है । प्रायः सभी परिवारों पर समयानुसार बुरे दिनों और अशुभ घड़ियों की

कुदशा आती है । ऐसे संकटों एवं अनिष्टों की भयंकरता कम करने के लिए स्त्रियाँ गायत्री माता की शरण ले सकती हैं । घर का अर्थ संकट, दारिद्र, राजदण्ड का भय, मुकदमा, रोग, शत्रु भय आदि आपत्तियाँ जब सिर पर मंडरा रही हों तो इस महामन्त्र की सहायता से बहुत सहारा मिलता है । सन्तान का न होना, होकर मर जाना, केवल कन्याएँ ही होना, गर्भपात होते रहना आदि व्यथाओं में बहुधा पूर्व जन्मों के अशुभ संस्कार कारण होते हैं, तो भी उनका निवारण गायत्री द्वारा होना असम्भव नहीं । जिन घरों में भूत, प्रेत का प्रकोप रहता है, वहाँ यदि गायत्री की पूजा होने लगे, तो किसी प्रेत पिशाच का ठहरना वहाँ नहीं हो सकता । किसी तान्त्रिक, ओझा आदि ने अपने ऊपर या अपने बालकों के ऊपर कोई कुप्रयोग किया हो, तो उसका अनिष्ट भी गायत्री माता की कृपा से शान्त हो जाता है ।

विधवाओं के लिए गायत्री साधना का बहुत भारी महत्व है । वे आत्म संयम, सदाचार, विवेक, ब्रह्मचर्य पालन, इन्द्रिय निग्रह एवं मन को वश में करने के लिए गायत्री साधना को ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रयोग कर सकती हैं। जिस दिन से वे यह साधना आरम्भ करती हैं उसी दिन से मन में शान्ति, स्थिरता, सद्बुद्धि और आत्मसंयम की भावना पैदा होती है । वैधव्य उनके लिए तप साधना जैसा शान्तिदायक बन जाता है । वे ऐसी आत्मशान्ति प्राप्त करती हैं जिसकी तुलना में सधवा रहने का सुख भी नितान्त तुच्छ दिखाई पड़ता है ।

कुमारी कन्याएँ अपने विवाहित जीवन में सब प्रकार की सुख शान्ति प्राप्त करने के लिए भगवती की उपासना कर सकती हैं । सधवा बहिनों को अपने पति, पुत्र तथा दोनों कुलों को सुखी समृद्ध, स्वस्थ, सम्पन्न एवं दीर्घजीवी बनाने के लिए गायत्री उपासना करनी चाहिए । इसी प्रकार अन्य कठिनाइयों के निवारण एवं सुख-शान्ति की वृद्धि के लिए भगवती का आश्रय लेना सब प्रकार मंगलमय होता है ।

महिलाओं को अशुद्धि तथा प्रसव काल के सूतक में गायत्री उपासना विधिपूर्वक नहीं करना चाहिये । मानसिक स्मरण और ध्यान ही ऐसी स्थिति में करना उचित है । जिन्हें पूरा मन्त्र याद न हो सके वे "ऊँ भूर्भुवः स्वः" इस पञ्चाक्षरी गायत्री का जप करके भी काम चला सकती हैं । गायत्री चालीसा का पाठ स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी है । गायत्री मन्त्र, माता का चित्र या मूर्ति घर में स्थापित करके उसका नित्य पूजन अर्चन होता रहे, तो यह पारिवारिक सुख, शान्ति सद्बुद्धि एवं सद्गति के लिये सब प्रकार उत्तम है । गायत्री माता का आश्रय लेना स्त्रियों के लिए सब प्रकार उत्तम है । पिता की अपेक्षा माता अपनी कन्या पर अधिक प्यार करती है । गायत्री माता परम कल्याणमयी है, उनका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण है । अपनी गोदी में चढ़ने वाली किसी पुत्री को वे निराश नहीं करतीं ।

## देवियों की गायत्री उपासना

प्राचीन काल में गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा, अनुसुय्या, अरुन्धती, देवयानी, अहिल्या, कुन्ती, सतरूपा, वृन्दा, मन्दोदरि तारा, द्रोपदी, दमयन्ती, गौमती, अपाला, सुलभा, शावती, उशिजा, सावित्री, लोपामुद्रा, प्रतिशेयी, वैशालिनी, बेहुला, सुनीति, शकुंतला, पिंगला, जरुत्कार, रोहिणी, भद्रा, विदुला, गाँधारी, अञ्जनि, शर्मिठा, सीता, देवहूति, पार्वती, अदिति, शची, सत्यवती, सुकन्या, मैव्या आदि महासतियां वेदज्ञ और गायत्री की उपासक रही हैं । उन्होंने गायत्री शक्ति की उपासना द्वारा अपनी आत्मा को समुन्नत बनाया था और योगिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं । उन्होंने सधवा और गृहस्थ रहकर सावित्री की आराधना में सफलता प्राप्त की थी । इन देवियों का विस्तृत वृतांत उनकी साधनाओं और सिद्धियों का वर्णन करना इस छोटी पुस्तक में सम्भव नहीं है । जिन्होंने भारतीय पुराण इतिहासों को पढ़ा है वे जानते हैं कि उपरोक्त देवियां विद्वता, साहस, शक्ति, शौर्य, दूरदर्शिता, नीति, धर्म, साधना, आत्मोन्नति आदि पराक्रमों में अपने ढंग की अनौखी जाज्वल्यमान तारकाएँ थीं । उन्होंने समय-समय पर ऐसे चमत्कार उपस्थित किये हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य में रह जाना पड़ता है ।

प्राचीन काल में सावित्री ने एक वर्ष तक गायत्री-तप करके वह शक्ति प्राप्त की थी जिससे वह अपने सत्पति सत्यवान के प्राणों को यमराज से लौटा सकी । दमयन्ती का तप ही था जिनके कारण कुचेष्टा करने का प्रयत्न करने वाले व्याघ को भस्म कर दिया था । गान्धारी आँखों से पट्टी बाँध कर ऐसा तप करती थी, जिससे उसके नेत्रों में वह शक्ति उत्पन्न हो गई थी कि उसे दृष्टिपात मात्र से दुर्योधन का शरीर अभेद्य हो गया था । जिस ज़ंघा पर उसने लज्जावश कपड़ा डाल लिया था, वही कच्ची रह गई थी और उसी पर प्रहार करके भीम ने दुर्योधन को

मारा था । अनुसूया के तप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नन्हे बालक बना लिया था । सती शाण्डली के तपोबल ने सूर्य का रथ रोक दिया था । सुकन्या की तपस्या से जीर्ण-शीर्ण च्यवन ऋषि तरुण हो गये थे । स्त्रियों की तपश्चर्या का इतिहास पुरुषों से कम शानदार नहीं है । यह स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष सभी के लिए तप का प्रमुख मार्ग गायत्री ही है ।

वर्तमान समय में भी अनेक नारियों की गायत्री साधना का हमें भली भांति परिचय है और यह भी पता है कि इसके द्वारा उन्होंने कितनी बड़ी मात्रा में आत्मिक और सांसारिक सुख-शान्ति की प्राप्ति की है ।

एक सुप्रसिद्ध इन्जीनियर की धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमप्यारी देवी को अनेकों प्रकार की पारिवारिक कठिनाइयों में होकर गुजरना पड़ा है, उनने अनेक संकटों के समय गायत्री का आश्रय लिया और विषम स्थितियों से छुटकारा पाया है ।

दिल्ली के एक अत्यन्त उच्च परिवार की सुशिक्षित देवी श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ बी. ए. गायत्री की अनन्य साधिका हैं । इन्होंने इस साधना द्वारा बीमारों की पीड़ा दूर कर देने में विशेष सफलता प्राप्त की है । दर्द से बेचैन रोगी उनके अभिमंत्रित हस्त स्पर्श से आराम अनुभव करता है । इन्हें गायत्री में इतनी तन्मयता है कि सोते हुये भी जप अपने आप होता रहता है ।

नागीना के एक प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्री की धर्मपत्नी श्रीमती मेधावती देवी को बचपन में गायत्री-साधना के लिए अपने पिताजी से प्रोत्साहन मिला था, तब से अब तक वे इस साधना को बड़े प्रेम-पूर्वक चला रही हैं । कई चिन्ताजनक अवसरों पर गायत्री की कृपा से उनकी मनोकामना पूर्ण हुई है ।

शिलोंग की एक सती साध्वी देवी श्रीमती गुणवन्ती देवी के पतिदेव की मृत्यु २० वर्ष की आयु में हो गई थी गोदी में १ ॥ वर्ष का पुत्र था । उनको तथा उनके स्वसुर को इस मृत्यु का भारी आघात लगा और दोनों ही शोक से पीड़ित होकर अस्थिपिंजर मात्र रह गये । एक दिन एक ज्ञानी ने उनके स्वसुर को गायत्री-जप का उपदेश दिया । शोक निवारणार्थ वे उस जप को करने लगे । कुछ दिन बाद गुणवन्ती देवी को स्वप्न में एक तपस्वनी ने दर्शन दिये और कहा, किसी प्रकार की चिन्ता न करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी मेरा नाम गायत्री है । कभी आवश्यकता हुआ करे तो मेरा स्मरण किया करो । स्वप्न टूटने पर दूसरे ही दिन से उन्होंने गायत्री-साधना आरम्भ कर दी । पिछले १३ वर्षों में अनेक आपत्तियाँ उन पर आईं और वे सब टल गईं । अब उनका बालक १९ साल का होकर बी. ए. में पढ़ रहा है । ४० रू. मासिक की सरकारी छात्र-वृत्ति मिलती है और ७५ रू. के ट्यूशन कर लेता है । परिवार का काम ठीक प्रकार चल रहा है । गायत्री पर उन्हें अनन्य श्रद्धा है ।

हैदराबाद [सिंध] की श्रीमती विमलादेवी की सास बड़ी कर्कश स्वभाव की थी और पतिदेव शराब, वेश्या-गमन आदि बुरी लतों में डूबे रहते थे । बेचारी देवी को आये दिन सास तथा पति की गाली गलौज तथा मारपीट का सामना करना पड़ता था । इससे वे दुखी रहतीं और कभी-कभी आत्महत्या की बात सोचतीं । विमला की बुआ ने उसे विपत्ति निवारणी गायत्री माता की उपासना करने की शिक्षा दी । वह करने लगी । फल आशातीत हुआ । थोड़े ही दिनों में सास और पति का स्वभाव आश्चर्यजनक रीति में बदल गया । एक दिन पति को बड़ा भयंकर स्वप्न हुआ कि उसके कुकर्मों के लिये कोई देवदूत उसे मृत्यु तुल्य कष्ट दे रहे हैं । जब स्वप्न टूटे तो उस भय का आतंक कई महीने उन पर रहा और उसी दिन से स्वभाव सीधा हो गया । अब वह परिवार पूर्ण प्रसन्न और सन्तुष्ट है । विमला का सुदृढ़ विश्वास है कि उसके घर को आनन्दमय बनाने वाली गायत्री ही है । वर्षो से उनका नियम है कि जप बिना भोजन नहीं करतीं ।

बारीसाल (बंगाल) के उच्च अफसर की धर्मपत्नी श्रीमती हेमलता चटर्जी को तेतीस वर्ष की आयु तक कोई सन्तान न हुई, उनके पतिदेव तथा घर के अन्य व्यक्ति इससे बड़े दुखी रहते थे और कभी-कभी उनके पति का दूसरा विवाह होने की चर्चा होती थी । हेमलता को सबसे अधिक मानसिक कष्ट रहता था और उन्हें मूर्छा का रोग हो गया था । किसी साधक ने उन्हें गायत्री साधना की विधि बताई, वे श्रद्धापूर्वक उपासना करने लगीं । ईश्वर कृपा से एक वर्ष बाद उनके कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम गायत्री रखा गया । इसके बाद दो-दो वर्षों के अन्तर से दो पुत्र और हुए । तीनों बालक स्वस्थ हैं । इस परिवार में गायत्री की बड़ी मानता है ।

जैसलमेर की श्रीमती गोगन बाई के १६ वर्ष की आयु में हिस्टेरिया (मृगी) के दौरे आते थे । आठ वर्षों से वे इस रोग से बहुत दुखी थीं । उन्हें उपवास पूर्वक

गायत्री जप करने की विधि बताई गई । अन्न त्याग कर वे फल और दूध पर निर्वाह करने लगीं और भक्तिपूर्वक गायत्री की आराधना करने लगीं । चार मास के भीतर उनका आठ वर्ष पुराना मृगी रोग दूर हो गया ।

गुजरानवाला की सुन्दरी बाई को पहले कंठमाला रोग था, वह थोड़ा अच्छा हुआ तो प्रदर रोग भयंकर रूप से हो गया । हर घड़ी लाल पीला पानी बहता रहता । कई साल इस प्रकार बीमार पड़े रहने के कारण उनका शरीर अस्थि मात्र रह गया था । चमड़ा और हड्डियों के बीच मांस का नाम भी दिखाई न पड़ता था, आंख गड्ढे में धँस गई थीं, घर के लोग उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे थे । ऐसी स्थिति में उन्हें एक पड़ौसिन ब्राह्मणी ने बताया कि गायत्री माता तरण तारिणी है, उनका ध्यान करो । सुन्दरी बाई के मन में बात जँच गई । वे चारपाई पर पड़े-पड़े जप करने लगीं । ईश्वर की कृपा से वे धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगीं । ईश्वर की कृपा से वे बिलकुल निरोग हो गईं । दो वर्ष बाद उनके पुत्र उत्पन्न हुआ जो भला चंगा और स्वस्थ है ।

गोदावरी जिले की बसंती देवी को भूतोन्माद था । भूत प्रेत उनके सिर पर चढ़े रहते थे । १२ वर्ष की आयु में वे बिल्कुल बुढ़िया हो गई थीं । उनके पिता इस व्याधि से अपनी पुत्री को छुटकारा दिलाने के लिए काफी खर्च और परेशानी उठा चुके थे पर कोई लाभ नहीं होता था, अंत में उन्होंने गायत्री पुरश्चरण कराया और उससे लड़की की व्याधि दूर हो गई ।

भार्थू के डाक्टर राजाराम शर्मा की पुत्री सावित्रीदेवी गायत्री की श्रद्धालु उपासक है । उसने देहात में रहकर आयुर्वेद का उच्च अध्ययन किया और परीक्षा के दिनों में बीमार पड़ जाने पर भी आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई ।

कानपुर के पं. अयोध्या प्रसाद दीक्षित की धर्मपत्नी शान्तिदेवी मिडिल पास थी । ११ वर्ष तक पढ़ाई छोड़कर परिवार के झन्झटों में लगी रहीं । एक वर्ष अचानक उनने मैट्रिक का फार्म भर दिया और गायत्री उपासना के बल से थोड़ी सी ही तैयारी में उत्तीर्ण हो गईं ।

बालापुर की सावित्रीदेवी दुबे नामक एक महिला के पति की मृत्यु अठारह वर्ष की आयु में ही हो गई थी । वे अत्यधिक शोकग्रस्त रहती थीं सूख-सूखकर कांटा हो गई थीं । एक दिन उनके पति ने स्वप्न में उनसे कहा कि तुम गायत्री-उपासना किया करो जिससे मेरी आत्मा को सद्गति मिलेगी और तुम्हारा वैधव्य परम शान्तिपूर्वक व्यतीत हो जायेगा । उनने पति की आज्ञानुसार वैसा ही किया, अतः परिवार में रहते हुए भी उच्च कोटि के महात्मा की स्थिति प्राप्त हुई । वह जो बात जवान से कह देती थी वह सत्य होकर रहती थी ।

कटक जिले के रामपुर ग्राम में एक लुहार की कन्या सोनीबाई को स्वप्न में नित्य और जाग्रत अवस्था में कभी-कभी गायत्री के दर्शन होते हैं । वह ऐसी भविष्य-वाणियां करती हैं जो प्रायः ठीक ही उतरती हैं ।

मुरीदपुर की संतोषकुमारी बचपन में बड़ी मन्दबुद्धि थी । उनके पिता ने उनको पढ़ाने के लिये बहुत प्रयत्न किये पर सफलता न मिली । भाग्योदय समझकर सब लोग चुप हो गये । विवाह हुआ, विवाह के चार वर्ष बाद ही वह विधवा हो गई । वैधव्य को काटने के लिये उसने गायत्री की आराधना आरम्भ कर दी । एक रात को स्वप्न में गायत्री ने दर्शन दिये और कहा, मैंने तेरी बुद्धि तीक्ष्ण कर दी है, विद्या पढ़, तेरा जीवन सफल होगा । दूसरे दिन से उसे पढ़ने में उत्साह आया, बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण हो गई । कुछ ही वर्षों में मैट्रिक पास कर लिया और अब वे स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बड़ी तत्परता से लगी हुई हैं ।

रंगपुर बंगाल की श्रीमती सरला चौधरी के कई बच्चे मर चुके थे । एक भी बच्चा जीवित न रहने से वे बहुत दुःखी थीं । उन्हें गायत्री साधना बताई गई, जिसको अपनाकर उन्होंने तीन पुत्रों की माता कहलाने का सुख पाया ।

टिहरी की एक अध्यापिका गुलाबदेवी को प्रसवकाल में मृत्युतुल्य कष्ट होता था । एक बार उन्होंने गायत्री की प्रशंसा सुनी और उसे अपनाकर साधना करने लगी, तब से उन्हें चार प्रसव और हुए, जो सभी सुखपूर्वक हो गये ।

मुलतान की सुन्दरीबाई स्वयं बहुत कमजोर थीं । उनके बच्चे भी कमजोर थे और उनमें से कोई न कोई बीमार पड़ा रहता था । अपनी दुर्बलता और बच्चों की बीमारी से रोना-झीखना उन्हें बड़ा कष्टकर होता था । इस विपत्ति से उन्हें गायत्री ने छुड़ाया । पीछे वे सपरिवार स्वस्थ रहने लगी ।

उदयपुर की एक मारवाड़ी महिला ज्ञानवती रंग-रूप की अधिक सुन्दर न होने के कारण पति को प्रिय न थी पति का व्यवहार उनसे सदा रूखा, कर्कश, उपेक्षापूर्ण रहता था और घर रहते हुए भी परदेश के समान दोनों में

बिलगाव रहता था । ज्ञानवती की मौसी ने गायत्री का पूजन और रविवार का व्रत रखने का उपाय बताया । वह तपश्चर्या निरर्थक नहीं गई । साधिका को आगे चलकर पति का प्रेम प्राप्त हुआ और उसका दाम्पति जीवन सुखमय बीता ।

भीलवाड़ा प्रान्त में एक सरमणी नामक एक स्त्री बड़ी क्रूर तान्त्रिक थी । उसे वहां के लोग डाकिन समझते थे । एक वयोवृद्ध सन्यासी ने उसे गायत्री की दीक्षा दी । तब से उसने सब छोड़ भगवान की भक्ति में चित्त लगाया और साधु जीवन व्यतीत करने लगी ।

बहरामपुर के पास एक कुमारी कन्या गुफा बना कर दस वर्ष की आयु से तपस्या कर रही है । उसकी आयु इस समय चालीस वर्ष की है । चेहरे का तेज ऐसा है कि आँखें झपक जाती हैं । उनके दर्शनों के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं । देवी का इष्ट गायत्री है । वह सदा गायत्री का जप करती रहती है ।

मीराबाई, सहजोबाई, रन्तिवती, लीलावती, दयाबाई, अहिल्याबाई, ससूबाई, मुक्ताबाई, प्रभृति अनेकों ईश्वर भक्त, वैरागिनी हुई हैं, जिनका जीवन विरक्त और परमार्थपूर्ण रहा । इनमें से कइयों ने गायत्री की उपासना करके अपने भक्ति भाव और वैराग्य को बढ़ाया था ।

इस प्रकार अनेकों देवियां इस श्रेष्ठ साधना से अपनी आध्यात्मिक उन्नति करती आई हैं और सांसारिक सुख समृद्धि की प्राप्ति एवं आपत्तियों से छुटकारा पाने की प्रसन्नता का अनुभव कर रही हैं । विधवा बहिनों के लिए तो गायत्री-साधना एक सर्वोत्तम तपश्चर्या है । इससे उनके मानसिक विकार शांत होते हैं, इन्द्रियों का शमन होता है, शोक-वियोग की जलन बुझती है, बुद्धि में सात्विकता आती है, चित्त ईश्वर की ओर लगता है । नम्रता, सेवा, शील, सदाचार, निरालस्यता, सादगी धर्मरुचि, स्वाध्याय-प्रियता, आस्तिकता एवं परमार्थ-परायणता के तत्व बढ़ते हैं । गायत्री-साधना की तपश्चर्या का आश्रय लेकर अनेक ऐसी बाल-विधवाओं ने अपना जीवन सतीसाध्वी जैसा बिताया है, जिसकी कम आयु को देख कर अनेक आशंकाएँ की जाती थीं । जब ऐसी बहनों को गायत्री में तन्मयता होने लगती है तो वे वैधव्य दुख को भूल जाती है और अपने को तपस्विनी साध्वी ब्रह्मवादिनी, उज्ज्वल चरित्र, पवित्र आत्मा अनुभव करती हैं । ब्रह्मचर्य तो उनका जीवन सहचर बन कर रहता है ।

स्त्री और पुरुष, नर और नारी दोनों ही वर्ग वेदमाता गायत्री के कन्या पुत्र हैं । दोनों ही आंखों के दो तारे हैं । वे किसी से भेदभाव नहीं करतीं । माता को पुत्र से भी कन्या अधिक प्यारी होती है । वेद माता गायत्री की साधना पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये अधिक सरल और अधिक शीघ्र फलदायिनी है ।

## भूल का सुधारना अनिवार्य

समाज के उत्थान और पतन के जो परिवर्तन हुए हैं उनमें प्रत्यक्ष रूप से पुरुष का ही हस्तक्षेप दिखाई देता है किन्तु यदि गइराई तक विचार करें तो मालूम होगा कि पुरुष केवल ध्वंसात्मक परिवर्तन कर सकता है । अब तक उसे जितनी रचनात्मक प्रेरणायें मिली हैं वह नारी ने ही दी हैं । नारी ही बच्चे का—बच्चे से भावी प्रजा और समाज का निर्माण करती है क्रिया की दृष्टि से बालक पुरुष की अनुकृति हो सकता है किन्तु भावात्मक दृष्टि से वह सदैव नारी की प्रतिकृति होता है । किसी देश और समाज की महिलायें जितनी उदात्त, शिक्षित और भव्य विचारों वाली होंगी वह समाज भी उतना ही भव्य और प्रकाशवान होगा ।

गायत्री जीवन को भव्य बनाने वाली विद्या है । उसकी उपासना से बुद्धि, और आत्मा में सतोगुणी प्रकाश की वृद्धि होती है उससे विद्या, दया, करुणा, प्रेम, उदारता, शौर्य, साहस और पवित्रता आदि गुणों की वृद्धि होती है जो मातायें इन गुणों में पारंगत होती हैं उनके बच्चे भी वैसे ही बनते हैं इसलिए जब हम उदात्त और भव्य समाज की कल्पना में दैवी प्रकाश गायत्री तत्व का आह्वान करते हैं तो उसकी आवश्यकता महिलाओं के लिए अधिक होती है । फिर यदि उन्हें उस प्रकाश से वन्वित रखा जाये तो कौन बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो समाज का शान्ति और समृद्धि की आशा करेगा । जड़ को जल से वन्चित रखकर वृक्ष के फलने की आशा नहीं की जा सकती उसी प्रकार नारी शक्ति को दैवी प्रकाश से वन्चित रखकर समर्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती । इसलिए नारियों की गायत्री उपासना सम्बन्धी भ्रान्तियों का परिहार होना ही चाहिए । इन प्रतिबन्धों को समाप्त कर उसे समान रूप से उस वेदी पर प्रतिष्ठित करने में न तो भय करना चाहिये न भ्रान्ति फैलानी चाहिये, जिससे वे भी लोक-कल्याण और आत्म-निर्माण का लक्ष्य पूरा कर सकें ।

● ● ●

# गायत्री से विश्वव्यापी संकट का समाधान

## गायत्री और विश्वव्यापी संकट

आपत्तियाँ और कठिनाइयाँ एक अध्यापक की तरह आती हैं । लापरवाह और आलसी प्रमादी लड़के अध्यापक से पिटते, अपमानित होते और क्रोध सहते हैं, किन्तु परिश्रमी एवं कर्तव्यपरायण विद्यार्थी उसी अध्यापक द्वारा प्रशंसित होते, प्यार प्राप्त करते, ज्ञानवान बनते, पुरस्कृत होते एवं उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं । अध्यापक एक ही है पर दो प्रकृति के छात्र उससे दो प्रकार की परस्पर विरोधी अनुभूतियाँ प्राप्त करते हैं । विपत्ति भी ऐसा ही अध्यापक है जिसका कार्य कठोर है, वह कड़ी परीक्षा लेता है पर उद्देश्य उसका अशुभ नहीं होता । वह शुभ लक्ष की पूर्ति के लिए ही आता है ।

व्यक्तिगत जीवन में, सामाजिक जीवन में, सार्वभौम जीवन में, जब कभी विपत्तियाँ आती हैं, वह मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक, सार्वभौम अशुभ कर्मों का ही फल होती हैं । यह अशुभ कर्म जितनी बड़ी मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं विपत्ति भी उतनी ही बड़ी बन जाती है । ग्रह दशा तो एक अनुकूल अवसर मात्र है । वर्षा ऋतु में दाद, खाज, छाजन, फोड़े, फुन्सी, मलेरिया, दस्त, हैजा आदि रोगों की बढ़ोत्तरी होती है उसका कारण यह नहीं है कि वर्षा में यह रोग बरसते हैं, वरन् यह है कि शरीर के अन्दर जो विष बहुत दिनों से एकत्रित हो रहा था उसके निकलने के लिए फूट पड़ने के लिए एक यह अनुकूल अवसर आ गया । जिसके शरीर में संचित विष न हो उसके लिए वर्षा ऋतु में भी बीमार होने का कोई खतरा नहीं रहता । बसन्त ऋतु में बहुधा पेड़-पौधे फूलते हैं पर फूलते वे ही हैं जो खाद पानी पाकर परिपुष्ट हो गये हैं, जो पौधे अपना स्वाभाविक विकास नहीं कर सके, खाद पानी नहीं प्राप्त कर सके वे बसन्त ऋतु आने पर भी फूलने से वंचित ही रह जाते हैं ।

ग्रह दशाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है, वह एक अनुकूल अवसर मात्र है । नहर में भरा हुआ पानी कहीं कुलावा लगा देने से उसमें होकर बाहर निकलने लगता है पर निकलेगा तभी जब नहर में पानी भरा हो । पानी न हो, नहर सूखी पड़ी हो तो कितने ही कुलावे लगा देने पर भी पानी खेतों में नहीं पहुँचता । एक ही राशि के अनेक व्यक्तियों पर एक ही समय एक ही ग्रह की शुभ-अशुभ दशाएँ आती हैं पर सभी को समान रूप से दुख-सुख नहीं मिलते । कारण यह है कि उन व्यक्तियों के शुभ अशुभ संचित कर्मों की मात्रा में अन्तर होता है । ग्रह दशा अपनी ओर से अकारण किसी को त्रास या पुरस्कार नहीं देती । यदि ऐसा हुआ होता तो ईश्वर की, ग्रह देवताओं की सदाशयता, श्रेष्ठता, समदर्शिता एवं न्यायशीलता स्थिर न रहती । तब तो इन ग्रह देवताओं को अकारण दुख देते रहने वाले राक्षस या मूर्खतावश बिना पात्र-कुपात्र का भेद किये सुख उलीचते फिरने वाले पागल कहा जाता । वस्तुतः ग्रह देवताओं की ऐसी हीन स्थिति नहीं है । उनके लिए सभी प्राणी समान हैं । सभी पर वे देवता होने के कारण दया ही करते हैं ।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आगामी पाँच वर्ष घोर अनिष्ट के दिखाई पड़ रहे हैं । यह भयंकरता कितनी होगी, इसका माप यह है कि मनुष्य जाति के सामूहिक दुष्कर्म जितने अधिक होंगे उतना ही त्रास संसार को सहना पड़ेगा । यह वर्ष तो उन अशुभ कर्मों के फूट पड़ने का अनुकूल अवसर मात्र है । इस दृष्टि से हम मनुष्य जाति के वर्तमानकालीन तथा निकट भूतकाल के अशुभ कर्मों पर दृष्टि डालते हैं तो लगता है कि व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता, संयमशीलता, उदारता, क्षमा, भ्रातृभाव, सेवा एवं त्याग की सत्प्रवृत्तियों को एक कोने में उठा कर रख दिया गया है और लोगों ने कानूनी तथा गैर कानूनी शोषण, अपहरण, अन्याय, उत्पीड़न, छल, असत्य, स्वार्थ, परिग्रह एवं दुष्टता की अति कर दी है । लोगों के व्यक्तिगत जीवन में स्वार्थ का बोलबाला है । दूसरों के लिए आत्म-त्याग करने की बात कोई सोचता तक नहीं- सबकी गरदन काट कर केवल अपना ही पेट बड़ा कर लेने की धुन हर एक पर सवार हो रही है । श्रेष्ठता और सन्मार्ग की ओर नहीं वासना और तृष्णा की ओर हरएक की आँखें लगी हुई हैं ।

सूक्ष्म दृष्टि से, आध्यात्मिक दिव्य दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आसुरी विचारों एवं कर्मों ने आकाश को बुरी तरह तमसाच्छिन्न कर रखा है, इन काली घटाओं को जब भी बरसने का अवसर मिलेगा गजब ही ढा देने की परिस्थिति पैदा कर देंगी । दूरदर्शी तत्व वेत्ता लोग अदृश्य के इन्हीं शुभ-अशुभ जमघटों को देखकर भले-बुरे भविष्य की भविष्यवाणियाँ किया करते हैं । ग्रह

दशा को उस भविष्य दर्शन के जानने में एक सहायक दुर्वीन माना जा सकता है । उनकी स्थिति का गणित करके वही काम निकाला जाता है जो बढ़िया दुर्वीन लगाकर क्षितिज पर बहुत दूर उड़ती हुई किसी चीज को देखा जा सकता है ।

इसमें सन्देह नहीं कि मानव जाति के सामूहिक दुष्कर्म जिस तेजी से बढ़ रहे हैं, उसी तेजी से बढ़ते रहे, उनकी रोकथाम न हुई तो विश्व संहार की वैसी ही दुर्घटना अगले वर्षों में हो सकती है जैसी कि इन भविष्यवाणियों में बताई गई है । साथ ही हमारा निजी अभिमत यह भी है कि यह भयंकरता अभी उस स्थिति को नहीं पहुँची है जिसे शान्त करने में मानवीय प्रयत्न सर्वथा असफल सिद्ध हों । इस महा भयंकर प्रलयंकर विपत्ति को जिसके सन्मुख आ खड़े होने पर करोड़ों मनुष्यों की प्राणि हानि तथा अपार धन सम्पदा की हानि हुए बिना न रहेगी, यदि प्रबल प्रयत्न किये जायँ तो अभी भी टाला जा सकता है ।

यह प्रबल प्रयत्न यह हों कि मनुष्यों के मस्तिष्क जो आज संग्रह, स्वार्थपरता, अनीति, तृष्णा एवं वासना में बुरी तरह व्यस्त हो रहे हैं, इन्हें अपरिग्रह त्याग, सेवा, परमार्थ, न्याय, समता, नीति, उदारता, सत्य, प्रेम एवं संयम की ओर मोड़ा जाय । जन-साधारण का मनः क्षेत्र जब कुविचारों से छुटकारा पाकर सद्विचारों और सद्भावों की ओर मुड़ता है तो लोगों के जीवन में सत्कर्मों की , आदर्श एवं अनुकरणीय आचरणों की अभिवृद्धि होती है । इस प्रकार का सामूहिक सदाचार सूक्ष्म आकाश में एक प्रकार की ऐसी दिव्य सुगन्धि भर देता है जिसके फलस्वरूप दैवी आशीर्वाद एवं सुख-शान्ति की सतयुगी वर्षा होने लगती है । लोग अनेक आपत्तियों एवं कष्टों से छुटकारा पाकर ईश्वर प्रदत्त सुख सौभाग्यों का अनायास ही प्रचुर सौभाग्य प्राप्त करते हैं ।

मानव मस्तिष्क को सामूहिक रूप से कुमार्ग पर से हटाकर सन्मार्ग पर चलाने की प्रवृत्ति पैदा करने के लिए केवल 'उपदेश' करना काफी नहीं है । श्रेष्ठ चरित्र के ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों की, इसके लिए आवश्यकता है जिनका व्यक्तिगत चरित्र एवं कार्यक्रम एक जीता जागता प्रवचन हो, जो वाणी से ही नहीं अपने उदाहरण से जनता पर प्रभाव डालते हों । भौतिकवाद से आध्यात्मवाद की ओर जन-साधारण का मस्तिष्क मोड़ कर आकाश में छाये हुए अनिष्टकारी दूषित वातावरण को हम शान्त कर सकते हैं । पर यह मोड़ कैसे आवे ? कैसे आत्मत्यागी लोग जन नेतृत्व के लिए निकलें ? कैसे जनता में वह प्रवृत्ति पैदा हो कि धर्म चर्चा को एक कौतूहल मात्र समझने की अपेक्षा जीवन का एक ठोस तथ्य समझे ? यह एक विकट समस्या है । इसका हल बाह्य जगत में नहीं अन्तर्जगत में है । ऋषि-महर्षियों का लाखों वर्षों तक परीक्षित आध्यात्म विज्ञान ही इन समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सकता है । इतिहास साक्षी है कि लोक मानस में मोड़ देने के लिए ऋषियों ने समय-समय पर विशाल शक्तिशाली धर्मानुष्ठान किये हैं और उनका सुदूरवर्ती भूखंडों के मानव प्राणियों पर आश्चर्यजनक एवं व्यापक प्रभाव हुआ है । आज उस सबकी भी भारी आवश्यकता है ।

आपत्तियाँ आ रही हैं—अति निकट आ पहुँची हैं वे एक निष्ठुर किन्तु सुयोग्य अध्यापक की तरह सामने उपस्थित हो रही हैं । यदि हम आलसी और उद्दण्ड विद्यार्थी साबित हुए, अपनी दुष्प्रवृत्तियों पर ही अड़े रहे तो बुरी तरह पिटना पड़ेगा । जो भविष्यवाणियाँ, चेतावनियाँ विज्ञ व्यक्ति दे चुके हैं, दे रहे हैं, वे अक्षरशः सत्य होकर रहेंगी । परन्तु यदि उस ग्रह दश रूपी विद्वान् अध्यापक से लाभ उठाया गया, उसके शासन का सम्मान करके अपनी मनोदशा मोड़ली, सत्प्रवृत्तियों की ओर चल पड़े तो न केवल इस भयंकर विपत्ति की घड़ी को टाला जा सकेगा वरन् एक नये स्वर्ग युग का सूत्रपात भी हो जायगा । समय की कठोर चेतावनी सामने उपस्थित है, यदि हम उसे सुन समझ सकें तो अपने आपको मोड़ लेंगे, बदल लेंगे और इस भयंकर भविष्य की दुर्घटना से अपने को ही नहीं असंख्यों अन्य निरह प्राणियों की भी रक्षा कर सकेंगे । यदि उपेक्षा और आलस्य ही हमारे अवलम्बन रहे, वासना और तृष्णा से विरत न हो सके तो गूलर के फल में रहने वाले भुनगों की तरह कराल काल की दाढ़ों से शीघ्र ही चबा लिए जायेंगे । यह समस्या हमारी बुद्धिमत्ता के लिए एक प्रकार की चुनौती है, जिसमें यह सिद्ध हो जायगा कि हम इतने कुसमय में भी तुच्छ स्वार्थों से लिपटे रहकर अपना तथा सबका सर्वनाश होने देना पसन्द करते हैं, या जागरूक होकर सामूहिक सुरक्षा के लिए कटिबद्ध होते हैं ।

२१वीं सदी की गंगोत्री शांति कुंज, एक जागरूक लौह सत्ता की तरह विश्वशांति के मोर्चे पर जूझ रही है । जागरूक प्रहरी की भाँति यह संस्था इस घनघोर अंधेरे की

घड़ी में मशाल जलाकर आकाश में उमड़ती हुई प्रलयंकर घटाओं को दिखा रही है । उसकी चेतावनी का बिगुल बजाते रहना जारी कर दिया है ताकि कुम्भकर्णी निद्रा में पड़े हुए लोग करवट बदलें, अपना भला-बुरा सोचें और वह करें जो बुद्धिमान लोग आपत्ति की घड़ी आने पर किया करते हैं ।

शांति के अन्य मोर्चों पर लोग अपने-अपने ढंग से काम कर रहे हैं । विज्ञान के मोर्चे पर वैज्ञानिक लोग एक ओर अणुबम, उदविजन बम, कीटाणु बम, दूरमारक राकेट आदि बनाने तथा उनसे बचाव के उपाय खोजने में रात-दिन एक कर रहे हैं । औद्योगिक मोर्चे पर अर्थशास्त्री तथा धनाधिप लोग विशालकाय उद्योग-धन्धे लगाने पर जुटे हुए हैं । विकास मोर्चे पर सरकारी पंचवर्षीय योजनायें द्रुति गति से कार्यान्वित हो रही हैं । राजनीतिक मोर्चे पर विभिन्न देशों के राज्याधिकारी अपने-अपने ढंग से विश्व-विजय या विश्व-शांति की बात सोचते हुए नाना विधि षड़यन्त्रों के जाल बुन रहे हैं । विभिन्न मोर्चों पर विभिन्न कार्यों की हलचल हो रही है, पर इन सबको मिलाकर भी, जो मोर्चा भारी पड़ता है उस सद्भावना, मानवता, नैतिकता, सच्चरित्र, उत्कृष्टता, आदर्शवादिता एवं साधना तथा तपस्या पूर्ण धर्मानुष्ठानों के आयोजन का मोर्चा सर्वथा सूना पड़ा है । यह मोर्चा यदि इसी प्रकार सूना पड़ा रहा तो अन्य सब मोर्चों पर लगी हुई भारी जन-शक्ति और सम्पदा निरर्थक सिद्ध होगी । खेद की बात है कि जिस आध्यात्मिक मोर्चे की गति-विधि पर वास्तविक सुख-शांति निर्भर है उसकी ओर सामान्य जनता की अभिरुचि नहीं और जो तथाकथित धर्मध्वंजी लोग हैं वे अपना-अपना सम्प्रदाय चलाने, अखाड़ा जमाने, पैर पुजाने, चेला मूड़ने के गोरखधन्धे में लगे हुए हैं । उन्हें इतनी फुर्सत नहीं कि इस आड़े समय में जन-कल्याण के लिए कुछ त्याग करने, कष्ट सहने और जनता का धर्म नेतृत्व करने के कठिन कार्य को अपने कन्धे पर लेने की तत्परता दिखावें ।

इन परिस्थितियों में गायत्री-परिवार के सदस्यों को बहुत कुछ करना है । इस आड़े वक्त में कुछ कर गुजरने और मर मिटने की जिम्मेदारी उनके कन्धों पर आ गयी है। निकट भविष्य में उन्हें जन-मानस को बदलने के लिए नैतिकता, मानवता, कर्तव्य-परायणता एवं सद्भावना की स्थापना के लिए देश-व्यापी कार्य करना होगा ।

इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि लोगों की दृष्टि में इस महान तथ्य की उपयोगिता आ जाय तो वे लोग जिनके ऊपर गृहस्थ की नाम मात्र की जिम्मेदारियाँ रह गई हैं, नाती-पोतों का मोह छोड़कर इस कार्य में जुट जायें तो वानप्रस्थ, संन्यास की प्राचीन मर्यादाओं का पालन करने के साथ-साथ सच्चे अर्थों में जीवन को सफल बना सकते हैं । वे सद्गृहस्थ जो अपने दैनिक काम-काज से थोड़ा वक्त बचा सकते हैं अपने निकटवर्ती क्षेत्र में बहुत भारी काम कर सकते हैं ।

"भजन करके मुक्ति प्राप्त करने" में लगे हुए और अनुष्ठान करके ऋद्धि-सिद्धि उपलब्ध करने के स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण को थोड़े समय के लिए बदल दिया जाना चाहिए । अब कुछ समय के लिये कम से कम ५ साल के लिए विश्वशांति के लिए निस्वार्थ धर्म-प्रचार ही सभी देश प्रेमियों-धर्म प्रेमियों का लक्ष्य होना चाहिए, क्योंकि इन दिनों जो घोर अशांति आकाश में छाई हुई है उसके कारण इन दिनों न किसी को मुक्ति सम्भव है और न ऋद्धि-सिद्धियाँ ही । उसके लिए जो सूक्ष्म वातावरण की अनुकूलता होनी चाहिए वह इन दिनों बिलकुल ही नहीं है, इसलिए उन असफल होने वाले प्रयत्नों में समय गमाने की अपेक्षा, वह कार्य करना चाहिए जिस पर अपनी, अपने परिवार की, ग्राम-नगर की देश-समाज की एवं समस्त संसार की सुख-शांति निर्भर है । पाँच साल तक एक लाख धर्म-प्रचारक यदि विश्व-शांति के मोर्चे पर अपना आत्मदान करते हुए कटिबद्ध होकर अड़ जावें तो अणु बमों का मुँह मोड़ सकते हैं । विध्वंसकारी घनघोर घटाओं से इन्द्र-बज्र की तरह टकराकर उन्हें पीछे हटा सकते हैं । प्राचीन काल में इन्द्रबज्र एक दधीचि ऋषि की हड्डियों से बन गया था । आज मोर्चा कड़ा है, फिर दधीचि जैसी हड्डियाँ भी नहीं हैं, आज एक लाख आत्म-दानी मिलकर ही उस आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं ।

इतने बड़े राष्ट्र में एक लाख धर्म-प्रचारक पाँच वर्ष के लिए आत्मदानी बनकर विश्व-शांति के मोर्चे पर अड़ जाने के लिए तैयार न होंगे ऐसा विश्वास नहीं होता । इस आवश्यकता की पूर्ति अखण्ड-ज्योति, युग निर्माण योजना-गायत्री-परिवार द्वारा हो जाय तो यह संस्था अपना सिर ऊँचा उठा सकने, सीना तान कर खड़े होने और एक अत्यन्त भयानक कुसमय को अपनी टक्कर से उलट देने में समर्थ हो सकती है । गायत्री-परिवार लाखों-करोड़ों

जीवन्त धर्म-प्रचारकों की एक सेना खड़ी करके एक सुदृढ़ प्रकाश स्तंभ के रूप में खड़ा है, आज समय का तकाजा इसी प्रकार का है । देखें इसका साथ देने के लिए कौन-कौन तैयार होता है ।

कुसमय के जगत-भेदी नगाड़े बज रहे हैं, सर्वनाश की बेला में, कुत्ते की मौत मरने की अपेक्षा, आइये हम लोग विश्व शांति के लिए, युग-निर्माण के लिए, मानवता की सेवा के लिए, धर्म-स्थापना के लिए, भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए कुछ कार्य करें । यह करना ही उचित है, इसी में बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और जीवन की सफलता भी सन्निहित है ।

[संसार के ऊपर महानाश की काली घटाएँ छा रही हैं और किसी भी समय वे हरी-भरी पृथ्वी को श्मशान के रूप में परिणित कर सकती हैं । इस बात को आज दो-चार व्यक्ति ही नहीं कह रहे हैं वरन् छोटे-बड़े, विद्वान-मूर्ख, गरीब-अमीर सभी के मुँह यही बात सुनाई पड़ रही है । ज्योतिषि, अध्यात्म विद्या, परामनोविज्ञानी एवं धर्मशास्त्रों के ज्ञाता भी इसका समर्थन कर रहे हैं । नीचे हम ज्योतिष-शास्त्र के मत से इस काल की उस भयंकरता के विषय में कुछ विचार पाठकों की जानकारी के लिए दे रहे हैं, जो पिछले ही दिनों बीत चुकी हैं ।]

अमरीका की वैदेशिक राजनीति के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बयान जिसे 'आइजनहोवर सिद्धान्त' भी कहा जाता है ता. ५ जनवरी, १९५७ को अमरीका की शासन सभा के सम्मिलित अधिवेशन के सम्मुख दिया गया था। इसमें स्वेज नहर की घटना से उत्पन्न तनातनी को कम करने तथा मध्य पूर्व की कम्यूनिज्म के प्रभाव से रक्षा करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव किये गये थे और कांग्रेस से उन पर तुरन्त विचार करने का आग्रह किया गया था । यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रेसीडेण्ट की यह योजना राहु शनि योग के बाद ही घोषित की गई थी, और इसी योग के फलस्वरूप स्वेज का संघर्ष उत्पन्न हुआ था । प्रेसीडेण्ट का उपरोक्त बयान रूस के लिये एक चेतावनी के रूप में था कि वह भ्रम में पड़कर कोई 'गलती' न करे। इतिहास अपने को दुहराता रहता है जिसके परिणाम-स्वरूप राष्ट्रों का उत्थान, वृद्धि, विकास होकर वे संसार में प्रमुख स्थान पा जाते हैं और इसके बाद अपने अहंकार और लालच के फलस्वरूप नष्ट-भ्रष्ट होकर सर्वनाश के गर्भ में फेंक दिये जाते हैं । इस दृष्टि से अमरीका और रूस इस नियम के अपवाद नहीं माने जा सकते । इस प्रकार की घटनायें आकाश स्थित ग्रहों के योग और उनकी कुदृष्टि के फल से उत्पन्न होती हैं, और उनका प्रभाव जिस प्रकार व्यक्तियों पर पड़ता है उसी प्रकार राष्ट्रों पर भी पड़ता है । आजकल कुछ बड़े राज-पुरुष सदैव संसार की शांति को स्थिर रखने की बात किया करते हैं और इस संघर्षग्रस्त जगत में राम-राज्य की स्थापना करना चाहते हैं । पर वे इस बात को भूल जाते हैं कि बड़े-बड़े युगों में जो समय व्यतीत हुआ है उनमें पृथ्वी पर कभी दो-चार सौ वर्ष के पीछे भी शांति नहीं रही । यह सब घटनाएँ ग्रहों के प्रभाव से होती हैं, जिसको मिटा सकने में राजनीतिज्ञ समर्थ नहीं हो सकते ।

अगर हम अमरीका के इतिहास पर ध्यान दें तो हमको ग्रहों की प्रबलता का प्रमाण प्रत्यक्ष रूप से मिल सकता है । सन् १९१४ से आरम्भ होने वाले प्रथम योरोपियन महायुद्ध में अमरीका सम्मिलित नहीं हुआ, और १९१७ तक उसे भरोसा रहा कि वह निष्पक्ष ही रह सकेगा, पर उसे विवश होकर युद्ध में भाग लेना पड़ा । फिर उसे आशा हुई कि युद्ध में विजय प्राप्त करके वह स्थायी और 'प्रजातंत्र' के अनुकूल शांति की स्थापना कर सकेगा । इस उद्देश्य की पूर्ति में विजय तो प्राप्त हुई पर शांति न हो सकी । प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने पर अमरीका ने विश्वास किया कि अगर भविष्य में दूसरा युद्ध हुआ तो वह उससे अलग ही रहेगा । पर जब अवसर आया तो फिर उसका इरादा पूरा न हो सका । द्वितीय महासमर के दरम्यान उसने आशा की कि नाजी और फैसिस्ट दलों की पराजय हो जाने पर संसार में न्याय और स्थायी शांति का युग आ सकेगा । इस बार भी विजय तो मिल गई पर शांति के दर्शन न हो सके । दो महायुद्धों में सफलता प्राप्त करके भी विभिन्न राष्ट्र तीसरे महायुद्ध की सम्भावना पर विचार कर रहे हैं । इन राष्ट्रों की नीति का निर्धारण करने वालों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि इस समय जो 'शीतयुद्ध' चल रहा है वह धीरे-धीरे गर्म होकर अंत में उबलने लगेगा । इन बातों से प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ये राजपुरुष नहीं जानते कि किस प्रकार युद्ध को रोका जा सकता है और युद्ध के पश्चात् किस प्रकार शांति की जा सकती है । वे संभवत: एक यही बात जानते हैं कि किस प्रकार कलह को जारी रखा जा सकता है । अगर ऐसा न होता तो क्या कारण है कि ये लोग एक स्थान पर बैठकर कठिनाइयों का हल नहीं निकाल सकते, विशेषत: जबकि

वे जानते हैं कि अगर कलह जारी रहेगा तो उसका अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा कि तीसरे महायुद्ध की ज्वाला भड़क उठेगी, जो पिछले युद्ध से कहीं अधिक नाशकारी और भयंकर होगी । विभिन्न राष्ट्र युद्धों के ऐसे चक्र में फँसे हैं कि उससे नवीन युद्धों की उत्पत्ति होती रहती है, जो पूर्ववर्ती युद्ध की अपेक्षा अधिक बर्बरतापूर्ण होते हैं । ज्योतिषशास्त्र के रहस्यों को जानने वाले भली प्रकार समझते हैं कि युद्धों का चक्र एक विशेष नियमानुसार चलता है, जिसका घनिष्ठ सम्बन्ध ग्रहों के प्रभाव से होता है ।

पिछले लगभग सौ वर्षों में होने वाले ग्रहों के मुख्य-मुख्य योगों पर अगर हम ध्यान दें तो मालूम होता है कि उनके प्रभाव से बराबर शांति में बाधा डालने वाली शक्तियों की उत्पत्ति होती रही है । अभाग्यवश राजनीतिज्ञों ने करोड़ों व्यक्तियों के जीवन और स्वार्थों से सम्बन्ध रखने वाले प्रभावशाली निर्णय ऐसे अवसरों पर किये जबकि ग्रहों का प्रभाव बहुत विपरीत और हानिकारक था । इसी का परिणाम यह हुआ कि हमने इन सौ वर्षों में बड़ी-बड़ी आदर्श और आशापूर्ण योजनाओं को असफल और नष्ट-भ्रष्ट होते देखा है । अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन की निष्पक्षता की घोषणा, उनके १४ सिद्धान्त, लीग आफ नेशंस का विधान, वाशिंगटन की निशस्त्रीकरण संधि और कीलाग पैक्ट, डावेस प्लान, यंगप्लान, हूवर की संसार को पुनर्निर्माण की योजना, स्टिमसन-योजना, प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट की 'क्वारनटाइनस्पीच' और चार स्वाधीनताओं की घोषणा, हुल के १७ सिद्धान्त, अटलांटिक चार्टर, याल्टा की घोषणा, राष्ट्र-संघ (यू. एन. ओ.) की स्थापना, टूमेन की घोषणा, भारतवर्ष का विभाजन, कश्मीर की समस्या, भारतवर्ष में भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण, आइजनहोवर की घोषणा आदि सैकड़ों इसके उदाहरण सामने मौजूद हैं । इन असफलताओं का मुख्य कारण ग्रहों से ही सम्बन्धित है । इनका कारण भौतिक परिस्थितियाँ नहीं हैं, लेकिन हमारे मस्तिष्क-स्वभाव और विचार हैं और इनका आधार कान्फ्रेंसों में निर्णय करने वाले राजनीतिज्ञों के ग्रहों पर होता है । उदाहरण के लिए 'लीग आफ नेशंस' की कुण्डली को देखिये । इंग्लैंड के शासक-ग्रह मंगल ने वर्सेलीज की संधि कान्फ्रेंस में उपस्थित समस्त राजनीतिज्ञों पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसमें इंग्लैंड की बात को ही सफलता मिली और उसके प्रभाव से 'लीग आफ नेशंस' की नीति का विकास ऐसे मार्ग से हुआ जिसका परिणाम द्वितीय विश्वव्यापी महायुद्ध के रूप में प्रकट हुआ । 'लीग' की उत्तराधिकारिणी यू. एन. ओ. की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है, क्योंकि उसका जन्म भी ग्रहों के ऐसे ही प्रतिकूल प्रभाव में हुआ है ।

बड़े राष्ट्रों में युद्ध तभी हो सकते हैं जबकि ग्रह-दशा बहुत खास तरह की हो । जब शनि, राहु और मंगल एक से केन्द्र में हों और जिस राशि या नक्षत्र-मण्डल में हों वह भी विशेष रूप से उत्तेजना पैदा करने वाला हो, तब ऐसी घटना सम्भव होती है । अगर प्रथम महायुद्ध के समय की ग्रह दशा पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि उस समय राहु, बृहस्पति और मंगल, केतु द्विरद दशा में थे, शनि और मंगल एक केन्द्र में थे और राहु-शनि एक से त्रिकोण में थे । इसी प्रकार अगर द्वितीय महासमर के समय की ग्रह-दशा का निरीक्षण किया जाय तो उस अवसर पर भी ग्रहों की स्थिति बड़े भय की थी । प्रजातंत्र का शक्तिशाली ग्रह शनि, मेष राशि और अश्विनी नक्षत्र में केतु के साथ योग में था, जिस पर मंगल की पूर्ण दृष्टि पड़ रही थी । वृहस्पति और शनि द्विरद दशा में थे और राहु-वृहस्पति षष्ठाष्टक (एक दूसरे से ६ और ८ अंशों पर) थे । इस प्रकार संसार के प्रसिद्ध युद्ध प्रभावशाली ग्रह दशा में ही लड़ गये हैं ।

जब हम १९५९ की ग्रह-दशा पर विचार करते हैं तो मालूम पड़ता है कि अगस्त के अन्त में शनि, मंगल और राहु एक केन्द्र की स्थिति में गये थे । शनि और मंगल की दृष्टि एक दूसरे पर थी और राहु, मंगल के सहयोग में था । राहु पर भी शनि की दृष्टि थी । वृहस्पति, वृश्चिक राशि में था और शनि के साथ उसकी द्विरद दशा चल रही थी । इस ग्रह दशा के प्रभाव से संसार के बड़े राष्ट्रों में तनातनी बढ़ी थी और राष्ट्रसंघ ने आवश्यकता के वशीभूत होकर नैतिकता को त्याग दिया था । राष्ट्रों के बीच झगड़ों और फूट में वृद्धि हुई थी और परिस्थिति संकटजनक हो गयी थी । असली संकट तो सन् १९६२ में आया था ।

सन् १९६२ की ५ फरवरी को केवल सूर्य ग्रहण ही नहीं पड़ा था, वरन् आठ ग्रह एक साथ इकट्ठे हो गये थे । ये आठ ग्रह थे—सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि और केतु । यह योग वास्तव में बड़ा शक्तिशाली होता है और भयंकर फल उत्पन्न करता है । उस दिन

प्रात: ५ ॥ बजे ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी कि सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र और केतु—ये सब धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित थे, जिनका स्वामी मंगल था यह योग भारतीय स्वतन्त्रता की कुण्डली के ९वें घर पाकिस्तान १०वें घर, अमरीका के ८वें घर और रूस के १२वें घर से सम्बन्धित था । इन आठ ग्रहों का मकर राशि में —जिसका स्वामी शनि था योग होना बड़ा भयजनक था। इस अवसर पर रूस-अमरीका दोनों ने केवल धमकी और शक्ति प्रदर्शन ही न हीं किये थे वरन् विश्वव्यापी संग्राम के लिए तैयार होकर मैदान में उतर आये । उस समय कम्यूनिज्म और पश्चिमी प्रजातन्त्रवाद का शक्ति परीक्षण चल रहा था और यह सोचा जा रहा था कि इसके परिणामस्वरूप अधिकांश में 'आक्रामक कम्यूनिज्म' का अन्त हो जायगा । संसार में बहुत अधिक जन-संहार होगा । पर चूँकि मकर एक 'चर-राशि' है इसलिए यह संघर्ष बहुत लम्बे समय तक नहीं चला । ग्रहों के प्रभाव से बड़ी शीघ्रता से प्रहार भी हुआ, नाश भी शीघ्रता से हुआ और युद्ध का अन्त भी शीघ्र ही आ गया । निश्चय ही संसार को एक महान संकट का सामना करना पड़ा था और राज-पुरुष मंगल के प्रभाव को रोकने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुए थे। आज भी विश्व में लगभग वैसी ही परिस्थितियाँ विद्यमान हैं । अगर व्यक्ति अभी से भविष्य को जानकर सावधान हो जायें और राजनैतिक जोश को काबू में रखें तो हानि कम हो सकती है । भारत को अपनी रक्षा की तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए और कट्टरवाद, पूँजीवाद के खतरे को समझकर अपनी वैदेशिक नीति का तदनुसार संशोधन करना चाहिये । ज्योतिष की निगाह से इस बात का तो भय नहीं जान पड़ता कि अणु अस्त्रों का प्रयोग होने से समस्त मानव-जाति नष्ट हो जायेगी । कुछ राजनीतिज्ञ बहुत ही भयभीत होकर यह ख्याल कर रहे हैं कि परमाणु युद्ध या नक्षत्र युद्ध 'स्टार वार' के कारण संसार नष्ट हो जायगा और इसलिये वे बराबर अहिंसा की महिमा संसार को सुनाते रहते हैं । पर वे यह नहीं समझते कि अगर अहिंसा के ख्याल से बुरे सिद्धान्तों के साथ समझौता कर लिया जाय तो वह अहिंसा भी निकम्मी हो जाती है और उसकी नैतिक-शक्ति लोप हो जाती है । तीसरे महायुद्ध के बाद भी मनुष्य जाति का अस्तित्व रहेगा । ऐसे अवसर पर ईश्वर और प्रकृति मनुष्य की गलती से रक्षा का कोई मार्ग निकाल ही देते हैं ।

उस समय भी यह माना जा रहा था कि यह आठ ग्रहों का योग रूस और अमरीका के युद्ध का ही कारण नहीं बनेगा, वरन् इसके प्रभाव से जनता को और भी अनेकों तरह से कष्ट उठाना पड़ेगा जैसे अन्न का अभाव, चोरों और अग्नि-काण्डों का भय, शासकों का अन्त, अकाल और दैनिक जीवन में अव्यवस्था । बहुत कुछ अंशों में तब हुआ भी यही था । बराह मिहिर ने लिखा है कि "जब मंगल का संयोग सूर्य ग्रहण से होता है तो दुनियाँ में तरह-तरह के कष्ट होते हैं ।" इस प्रकार श्री लक्ष्मण सूरि के 'दैवज्ञ विलास' नामक प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है कि जब शनि मकर राशि में आता है तो उसके फल से वर्षा की अधिकता, महामारी का प्रकोप और यवनों का नाश (दशार्णदेशे यवनाश्च नष्टः) आदि घटनायें होती हैं। इससे कुछ ऐसा अनुमान भी लगाया गया था कि युद्ध का आरम्भ मध्य पूर्व की किसी समस्या पर होगा । लक्ष्मण सूरि यह भी कहते हैं कि "जब शनि धन राशि में प्रवेश करते हैं तो पंजाब, कुरु, कोसल (यू. पी.), कश्मीर, कलिंग (उड़ीसा) और बंग (बंगाल) में बड़े संकट उत्पन्न होते हैं"—

**मंदेस्थिते धन्विनि वृष्टिहानि स्याध्भूपतन्ति कलहेनचार्धम् ।**
**पांचाल, काशी कुरु कोसलाश्च काश्मीर कलिंग बंग ॥**

भारत की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह अनुमान होता है कि राष्ट्रीय हित को इस कारण हानि पहुँचेगी क्योंकि नेतागण देश की भलाई के बजाय व्यक्तिगत प्रतियोगिता और झगड़ों पर ज्यादा ध्यान देंगे। प्रस्तुत परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने वाले भयंकर खतरे का ख्याल करके हमारे नेताओं को राष्ट्र की समस्याओं का ऐसा रचनात्मक हल खोजना चाहिये, जो संसार की वास्तविक परिस्थितियों और हमारी प्राचीन संस्कृति के अनुकूल हो । हमारी विदेशियों की तरफ झुकी हुई शंकास्पद प्रवृत्तियों पर पुन: विचार करना चाहिये । सन् १९६२ में मकर राशि में एकत्रित होने वाला अभूतपूर्व शक्तियों के योग से स्पष्ट था कि सन् १९६२ 'भाग्य निर्णायक वर्ष' होगा । अमरीका रूस की योजनाओं को पहले से ही समझ कर 'पहली चोट' करेगा। पर मकर राशि में वृहस्पति के रहने के कारण—यद्यपि उसकी शक्ति क्षीण होगी—संघर्ष का वेग हलका पड़ जायगा और शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो

जायगी । बराह मिहिर के मतानुसार वृहस्पति का योग किसी भी रूप में क्यों न हो वह शुभ ही होता है, जैसे कि "जलती हुई आग पर पानी डाल दिया जाय ।"

उपरोक्त बातों पर विचार करने से यह तथ्य सामने आता है कि इन दिनों भी अदृश्य जगत में कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ विनिर्मित हो रही हैं जो बताती हैं कि सन् ९५ से २००० तक का समय संसार के लिए वास्तव में बड़े संकट का है । प्रकृति स्वयं बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ उत्पन्न करेंगी, विशेष रूप से जैसे भूमि का धँस जाना, पृथ्वी में बड़ी दरारें पड़ना, भयंकर भूकम्प, समुद्री लहर और अन्य दुर्घटनाएँ । उस समय मनुष्य इनको रोकने में सर्वथा असमर्थ होगा । पूर्व और पश्चिम में भयंकर संघर्ष होने लगेगा । ज्योतिष द्वारा ऐसी घटनाओं की पहले से चेतावनी ही दी जा सकती है । यह सत्य है कि घटनाओं का होना रोका नहीं जा सकता, पर उचित उपाय करने से आपत्ति और कष्टों में कमी की जा सकती है ।

इन दिनों भी रूस और अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों में जो प्रतियोगिता का भाव दिखलाई पड़ता है वह मार्क्स, लेनिन या स्टालिन के समय से आरम्भ नहीं हुआ है और सोवियत शासन का अन्त अथवा पराजय हो जाने पर भी यह प्रतियोगिता मिट नहीं सकती । संसार में संस्कृतियों तथ आदर्शों की भिन्नता अति प्राचीन काल से पाई जाती है । तो भी संसार की भलाई के लिए शक्तियों का सन्तुलन रहना चाहिए और उनका प्रभाव-क्षेत्र पृथक-पृथक स्वीकार किया जाना चाहिए । सच्ची बात तो यह है कि विभिन्न प्रकार के ग्रहों के प्रभाव के कारण विभिन्न देश एक बनकर नहीं रह सकते ।

## बाइबिल की भविष्यवाणियाँ

भारतवर्ष के सिद्ध महात्माओं की तरह विदेशों के अध्यात्मवेत्ताओं ने भी भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भविष्यवाणियाँ की हैं । ऐसी बातें कुछ अंशों में सभी मजहबों में पाई जाती हैं, पर ईसामसीह के एक शिष्य महात्मा जान ने भविष्य का वर्णन जैसी स्पष्टता से किया है वैसा दूसरी जगह देखने में नहीं आता । उनको योग-दृष्टि प्राप्त थी और उन्होंने सैकड़ों-हजारों वर्ष बाद होने वाली घटनाओं का ऐसा वर्णन किया है जैसे कि वे उनके सामने ही हो रही हों । उनकी भविष्यवाणी का महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक है कि जिन ईसाई देशों में ये घटनाएँ होनी वाली हैं, वे स्वयं वहीं के निवासी थे और उन्होंने विशेष रूप से ईसाई धर्म के अनुयायियों का भविष्य ही लिखा है । इस दृष्टि से वर्तमान परिस्थिति में इन भविष्यवाणियों की जानकारी प्राप्त करना विशेष रूप से महत्व रखता है ।

ईसाइयों की 'बाइबिल' के 'ओल्ड हेस्टामेंट' नामक विभाग में यहूदियों का भविष्य दिया गया है जो उस समय मिस्र, पैलेस्टाइन आदि में निवास कर रहे थे और जिनको निरन्तर शत्रुओं का सामना करना पड़ रहा था । बाइबिल में लिखा है कि "ईश्वर ने यहूदियों को हुक्म दिया था कि अगर वे उसके आदेशानुसार चलेंगे तो सुखी और मालदार बनेंगे । इसके विपरीत अगर वे उलटे रास्ते पर चले तो उनको सख्त सजा दी जायगी । अगर वे इससे भी न सुधरे तो परमात्मा उनके शहरों को वीरान कर देगा, उनके दुश्मन वहाँ रहने लगेंगे और यहूदियों को बिना घर-बार के संसार भर में भटकना पड़ेगा । आखिर में जब भटकते हुए और तकलीफ पाते उनको सात समय (सेविन टाइम्स) हो जायगा तो परमात्मा उनकी फिर खबर लेगा और उनको इकट्ठा करके फिर उनके मुल्क में बसायेगा ।"

यहूदियों के रहने की पुरानी भूमि पैलस्टाइन का मुल्क है । वहीं पर उनका एकमात्र और परम पवित्र धार्मिक स्थान जरुशलम है । जिस प्रकार संसार भर के मुसलमान एकमात्र मक्का को तीर्थ मानते हैं और दुनियाँ के कोने-कोने से उसकी यात्रा को जाते हैं, उसी प्रकार यहूदी भी सब प्रकार की कठिनाइयाँ सहकर हजारों कोस से जरुशलम की यात्रा करने आते हैं । यह देश कितने ही समय से टर्की के कब्जे में था और उसमें अरब लोग बस गये थे । सन् १९१४ के महायुद्ध के पश्चात् यह अंग्रेजों के अधिकार में आ गया और मित्र राष्ट्रों की सलाह से वहाँ यहूदियों को बसाने का निश्चय किया गया । यद्यपि अरब लोगों ने इस बात का घोर विरोध किया और वर्षों तक लड़ाई-झगड़े भी होते रहे, तो भी अभी तक दस-पन्द्रह लाख यहूदी वहाँ बस चुके हैं और सन् १९४९ से पैलेस्टाइन के एक भाग में 'इसराईल' के नास से उनका राष्ट्र भी कायम हो गया है । हाल ही से 'इसराईल' ने मिस्र पर हमला किया था जिसके फल से विश्वव्यापी महायुद्ध की आशंका उत्पन्न हो गई थी ।

वास्तव में पैलेस्टाइन में यहूदियों का फिर से बसना और उनका एक राष्ट्र बन जाना एक अनोखी घटना है, क्योंकि बाइबिल में टर्की के साम्राज्य के नष्ट होकर यहूदी

राष्ट्र की स्थापना का वर्णन बहुत स्पष्ट रूप से किया गया है और पिछले कई सौ वर्षों में सैकड़ों बड़ी-बड़ी पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी जा चुकी हैं जिनमें बाइबिल की भविष्यवाणियों में दृढ़ विश्वास प्रकट करते हुए यह कहा गया है कि 'सात-समय' समाप्त होने पर टर्की का साम्राज्य नष्ट होकर यहूदी पैलेस्टाइन में अवश्य बसाये जायेंगे । जो पाठक चाहें ईसाइयों के किसी भी पुस्तकालय में ऐसी पुस्तक स्वयं देख सकते हैं ।

'सात समय' के समाप्त होने के अवसर पर यहूदियों के पैलेस्टाइन में बसने की भविष्यवाणी के साथ ही बाइबिल में और भी भविष्यवाणियाँ दी गई हैं जिनमें सबसे बड़े संसार व्यापी युद्ध का वर्णन किया गया है, जिसके फल से मानव जाति का एक बड़ा अंश नष्ट हो जायगा । इसी अवसर पर अनेक प्रकार के ईश्वरीय कोप—जैसे प्लेग, अकाल, भूचाल आदि के आने की बात भी लिखी है । अब चूँकि इनमें से टर्की की खिलाफत का अन्त और पैलेस्टाइन में यहूदियों के बसने की बात सामने आ चुकी हैं, इसलिये शीघ्र ही अन्य बातों के होने की संभावना असंगत नहीं है ।

बाइबिल की भविष्यवाणियों की व्याख्या करने वालों ने 'सात समय' का अर्थ सात वर्ष बताया है । पर यह भी कहा है कि भविष्यवाणी का एक दिन एक वर्ष के बराबर माना जाता है । इस हिसाब से जिस समय भविष्यवाणी कीं गई थी उससे ३६५ × ७ = २५५५ वर्ष बाद इन घटनाओं के होने की संभावना है । यहूदियों का जन्म ईसा से ५८ वर्ष पहले आरम्भ हुआ था और इस हिसाब से सन् १९६६ में 'सात समय' की अवधि पूरी हो गयी थी । कुछ व्याख्याकारों ने ईसाइयों के प्राचीन सन् के ३६० दिन का होने से सन् १९३१ में ही 'सात समय' की म्याद पूरी मानी है । कुछ भी हो एक ढाई हजार वर्ष पुरानी भविष्यवाणी के पूरे होने में ३०-३५ साल का अन्तर कोई महत्व नहीं रखता । हम तो इसी बात से इस भविष्यवाणी के महत्व को बहुत अधिक समझते हैं कि इतनी पुरानी भविष्यवाणी के अनुसार वर्तमान समय में वास्तव में ऐसे महायुद्ध की संभावना उत्पन्न हो चुकी है जिससे मानव जाति का प्राय: सर्वनाश हो जाना संभव है ।

(१) 'सात समय' का जमाना जब समाप्त होने को आयेगा उस समय संसार की कैसी दशा होगी इस सम्बन्ध में लिखा है—"उस समय चारों तरफ लड़ाइयाँ होने लगेंगी और लड़ाई की अफवाहें सुनाई देने लगेंगी । एक मुल्क दूसरे मुल्क के खिलाफ खड़ा होगा और एक सल्तनत दूसरी सन्तनत के । उस समय अकाल पड़ेंगे, महामारी फैलेगी और जगह-जगह भूकम्प आयेंगे । यह हालत शुरू में होगी और इसके बाद इससे कहीं ज्यादा कष्ट भोगने पड़ेंगे ।"

(२) बाइबिल की भविष्यवाणियों में 'सात ट्रम्पेट्स' का वर्णन भी विशेष रूप से महत्व का है । उसके मतानुसार जब पृथ्वी के निवासी घोर पाप करने लगेंगे तो ईश्वर की तरफ से उनको जो दण्ड दिया जायगा उसी का वर्णन इन 'सात ट्रम्पेट्स' में किया गया है । इनका वर्णन प्राकृतिक दुर्घटनाओं के रूप में किया गया है, पर कितने ही ईसाई धर्म के विद्वानों ने यह भी कहा है कि उनका मतलब राजनैतिक हलचल और नाशकारी घटनाओं से है। जो कुछ भी हो पाठक बाइबिल के मूल शब्दों को देखें—

"जब पहला फरिश्ता अपना ट्रम्पेट (बिगुल) बजायेगा तो पृथ्वी पर बरफ का तूफान आयेगा और आग तथा खून की वारिश होगी । इससे पेड़ों का एक तिहाई भाग जल जायगा और तमाम हरी घास जल जायगी ।"

"जब दूसरा फरिश्ता 'ट्रम्पेट' बजायेगा तो एक बहुत बड़ा जलता हुआ पहाड़ समुद्र में गिरेगा और इससे समुद्र का एक तिहाई हिस्सा खून हो जायगा । समुद्र में रहने वाले जीवित प्राणियों में से एक तिहाई मर जायेंगे और एक तिहाई जहाज नष्ट हो जायेंगे ।"

"जब तीसरा फरिश्ता 'ट्रम्पेट' बजायेगा तो एक बहुत बड़ा तारा गिरेगा, जो दीपक की तरह प्रकाशित होगा । यह नदियों और पानी के स्रोतों के एक तिहाई भाग पर पड़ेगा । इस तारे का नाम 'वार्मवुड' होगा । इससे जल स्रोतों का एक तिहाई भाग 'वार्मवुड' हो जायगा । यह पानी जहरीला होगा, जिसके पीने से बहुसंख्यक आदमी मर जायेंगे ।"

इसी प्रकार अगले 'ट्रम्पेट्स' के बजने पर दुनियाँ में रहने वालों को दूसरी तरह की तकलीफें सहनी पड़ेंगी । चौथे ट्रम्पेट से सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश घट जायगा । पाँचवे से मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने वाले टिड्डियों के आकार के जानवर पृथ्वी के भीतर से निकलेंगे और छठे से आग और धुआँ से मरने वाले सवार उत्पन्न होंगे । जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं इन भविष्यवाणियों में अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया गया है, जैसा कि

प्राचीन काल में प्राय: नियम था । उदाहरण के लिए टिड्डियों के आकार के जानवरों से हवाई जहाजों और आग तथा धुआँ से मारने वाले सवारों से तोपों और मशीनगनों का अर्थ समझ सकते हैं । इसी प्रकार समुद्र और पृथ्वी पर पहाड़ तथा तारा गिरने का अर्थ स्पष्ट ही एटम बम और हाईड्रोजन बम के फेंके जाने से माना जा सकता है जो सचमुच ही पानी तथा खाने-पीने की सभी चीजों को जहरीली अथवा मारने वाला बना देते हैं ।

(३) बाईबिल में अकाल का जैसा भीषण चित्र खींचा गया है, वह भविष्यवाणी की निगाह से ही नहीं, वरन् प्रभावशाली लेखनशैली की दृष्टि से भी ध्यान देने योग्य है। वैसे अकाल हमेशा ही पड़ा करते हैं, पर युद्ध के समय उनका रूप और भी भयंकर हो जाता है । उस समय खेती-बारी करने वाले और उपयोगी वस्तुओं के बनाने वाले लाखों मजबूत आदमी फौज में भरती कर लिए जाते हैं जिससे पैदावार स्वयंमेव कम हो जाती है । फिर लड़ने वाली असंख्यों सेना के पीछे हर रोज लाखों मन अनाज और दूसरी खाने-पीने की वस्तुओं की आवश्यकता होती है । इसके सिवाय दोनों ओर की फौजों में से जो दुश्मन के देश के भीतर घुस जाती है वह खेती-बारी और व्यापार की मण्डियों तथा बाजारों को नष्ट-भ्रष्ट करती चलती है, इससे अकाल और भी भयंकर रूप धारण कर लेता है । फिर आगामी युद्ध में तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि एटम बमों के कारण खाने-पीने के समस्त पदार्थों में रेडियो एक्टिविटी का ऐसा घातक प्रभाव पड़ेगा कि जो कोई उनको व्यवहार में लायेगा वह दस-बीस दिन में ही देह के भीतरी अंगों के गल जाने से मर जायगा । इसलिए अगर युद्ध के समय लोगों को सबसे अधिक भयंकर अकाल का सामना करना पड़े तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । बाइबिल में अकाल का वर्णन करते हुए लिखा है—

"जब तीसरी मुहर खोली जायगी तो उससे एक काले रंग का घोड़ा निकलेगा और उस पर जो सवार होगा उसके हाथ में एक तराजू होगी । वह घोषणा करेगा कि एक पैमाना गेहूँ का दाम एक सिक्का और तीन पैमाना जौ का एक सिक्का होगा ।" फिर आगे चलकर लिखा है—"लोगों के चेहरे कोयले की तरह काले हो जायेंगे । वे गलियों में मारे-मारे फिरेंगे । उनकी खाल हड्डियों से अलग होकर लटक पड़ेगी और शरीर सूखकर लकड़ी की तरह हो जायेगा । जो लोग तलवार से मारे जाते हैं वे उन भूख से मरने वालों की वनिस्वत् सुख में रहेंगे ।"

बाइबिल के ईसायाह विभाग में लिखा है—"देखो ईश्वर ने पृथ्वी को उजाड़ बना दिया और वह सुनसान पड़ी है । इस भयंकर अकाल के वक्त जो हाल किसानों का होगा वही जमींदार का होगा, जो हाल कर्जदार का होगा वही साहूकार का होगा, जो हाल भिखारी का होगा वही दाता का होगा । तामाम खेत सूख जायेंगे और बर्बाद हो जायेंगे । पृथ्वी पर से चैन और आराम उठ जायेगा और चारों तरफ रंज ही रंज दिखलाई पड़ेगा । अनगिनती मनुष्य इस भयंकर काल में मरेंगे और पृथ्वी पर थोड़े ही आदमी बचेंगे । बड़े-बड़े शहर उजाड़ हो जायेंगे और घरों में ताले पड़े होंगे । सड़कों पर कोई आदमी न दिखाई देगा, क्योंकि ईश्वर ने ऐसी ही आज्ञा दी है ।"

(४) इन भयंकर घटनाओं के जमाने में दूसरी बहुत-सी आपत्तियों के साथ एक महाभयंकर भूकम्प के आने की बात भी बाइबिल में लिखी है । अनुमान से मालूम होता है कि इसका आशय प्राकृतिक भूकम्प के बजाय राजनीतिक और सामाजिक क्रांति से ही है । भविष्यवाणी के शब्द इस प्रकार हैं—

"जब वह छठी मुहर को खोलेगा तो एक महा भयंकर भूकम्प आयेगा । सूरज बालों से बने कम्बल की तरह दिखलाई देने लगेगा । आकाश के तारे टूटकर जमीन पर गिरने लगेंगे । आकाश कागज के गोल पुलिन्दे की तरह फटकर दो हिस्सों में अलग-अलग हो जायगा । तमाम पहाड़ व टापू अपनी जगह से हट जायेंगे। दुनियाँ के बादशाह, बड़े आदमी, अमीर लोग, बड़े-बड़े सरदार और अधिकारी लोग सब कोई खोहों और पहाड़ की गुफाओं में छिपने लगेंगे । वे उन पहाड़ों और चट्टानों से कहेंगे कि हमारे ऊपर गिर पड़ो और हमको उस न्यायकर्त्ता परमेश्वर के रोष से बचाओ ।"

पाठक अगर विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट जान पड़ेगा कि ऐसी घटना राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल के समय में हो सकती है । प्राकृतिक भूकम्प के अवसर पर तो अमीर और गरीब सब एक साथ मरते हैं । पर इस भविष्यवाणी में केवल अमीर और बड़े-बड़े लोगों के नष्ट होने का वर्णन है, उससे प्रकट होता है कि

यह कोई राजनीतिक और सामाजिक भूकम्प ही हो सकता है । ऐसी अवस्था रूस, पोलैंड, रूमानियाँ आदि में पूँजीवाद का नाश होकर साम्यवाद स्थापित होते और पुनः बिखरते समय देखी जा चुकी है ।

(५) "जब चौथा फरिश्ता अपना 'वायल' सूर्य पर डालेगा तो उसकी गर्मी इतनी बढ़ जायगी कि यह मनुष्यों को भून डाले । भयंकर गर्मी से व्याकुल होकर लोग परमेश्वर को गालियाँ देने लगेंगे कि उसने कैसी व्याधियाँ उत्पन्न की हैं ।"

इसकी व्याख्या करते हुए एक विद्वान ने लिखा है कि "इस समय मनुष्य जाति की दुर्गति चोटी पर पहुँच जायगी। जल, थल, सूर्य आदि जो जीवन के मुख्य आधार हैं वे ही सब मनुष्यों को उनके पाप-कर्मों का फल देने लगेंगे । कुछ दिन पहले जो लोग ऐश-आराम में मस्त पड़े होंगे, वे सब निरन्तर रोते, चिल्लाते और शोक करते ही दिखलाई पड़ेंगे । इस समय कितने ही दिन तक सूर्य पृथ्वी के ऊपर इतनी अधिक गर्म और जलाने वाली किरणें डालेगा कि मनुष्यों को अपने घर भट्टी की तरह जान पड़ने लगेंगे । तीसरे महायुद्ध में जब एटम और हाइड्रोजन बमों का प्रयोग होगा तब ऐसी हालत प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगी, क्योंकि उनका तेज और गर्मी से सूर्य के सदृश्य ही होती है और उसके द्वारा मनुष्य और जीवित प्राणी ही नहीं पत्थर और मिट्टी भी जलकर धुआँ के रूप में हो जाते हैं ।

(६) भावी महायुद्ध का नीचे लिखा वर्णन भी बड़ा रोमांचकारी है । भविष्यवाणी के कर्त्ता को ध्यान की अवस्था में निम्नलिखित दृश्य दिखलाई पड़ा—

"मुझे दिखाई पड़ा कि एक फरिश्ता सूर्य के प्रकाश में खड़ा है और कह रहा है कि आसमान में उड़ने वाले पक्षियो ! इकट्ठे होकर आओ और ईश्वर के दिये हुए भोजन में शमिल हो । इसमें, तुमको बड़े-बड़े बादशाहों, राजाओं, कप्तान, ताकतवर मनुष्यों, घोड़ों और उन पर बैठने वालों और सब प्रकार के बड़े और ऊँचे दर्जे के मनुष्यों का माँस खाने को मिलेगा ।"

(७) बाइबिल के भविष्य वर्णन का अन्त नीचे लिखी भविष्यवाणी से होता है । भविष्यदर्शी महात्मा जान ने ध्यानावस्था में देखा—

"मैंने एक फरिश्ते को आसमान से आते देखा । उसने शैतान को बाँधकर अथाह गड्ढे में फेंक दिया और उसे बन्द कर दिया । इसके बाद एक हजार वर्ष तक पृथ्वी पर सतयुग (मिलैनियम) रहेगा ।"

इसकी व्याख्या करने वाले एक विद्वान ने लिखा है कि "इन सात वर्षों की महा भयंकर घटनाओं में संसार की पूर्ण रूप से कायापलट हो जायगी । लड़ाई और महामारियों से करोड़ों व्यक्ति खत्म हो जायेंगे और बड़े-बड़े शहर सुनसान दिखाई पड़ेंगे । इसके बाद जब पृथ्वी की शासन-व्यवस्था धार्मिक और नैतिक विचारों के सन्त पुरुष करने लगेंगे तो लोगों की सब तकलीफें मिट जायेंगी । उस समय लोग ईश्वरीय नियमों के अनुसार रहने लगेंगे और पाप तथा स्वार्थ के भावों को छोड़ देंगे । तब फौजी और जहाजी बेड़ों का नाम भी न रहेगा और लोग तलवारों को तोड़कर हल का फार बना लेंगे । एक देश के निवासी दूसरे देश वालों से झगड़ा न करेंगे और युद्ध सदा के लिए बन्द हो जायगा । जंगल के खूँखार जानवर भी शान्त बन जायेंगे । कोई मनुष्य छोटी उम्र में न मरेगा । इस युग में हकूमत केवल उन्हीं लोगों के हाथ में रहेगी जिनका चरित्र शुद्ध तथा पवित्र होगा, जो नम्र, विनयशील और गरीबों को पसन्द करने वाले होंगे ।"

अभी तक अनेक लोग इन भविष्यवाणियों की बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखी मानते थे पर अब परमाणु शस्त्रों के 'स्टार वार' के बनाने वाले वैज्ञानिक स्वयं जो कुछ कह रहे हैं, उनसे इन बातों की सच्चाई में संदेह करने की कोई गुंजायश नहीं रह जाती । जापान में होने वाले 'विश्व-शान्ति सम्मेलन' में इंग्लैण्ड के प्रोफेसर रोटवाल्ट ने कहा था कि "अमरीका और रूस के बीच यदि पूरे पैमाने पर युद्ध हुआ तो उसमें जल्दी से जल्दी सब तरह के बमों का प्रयोग किया जायगा । उस समय तक दूर मारक यन्त्र इतने शक्तिशाली हो जायेंगे कि उनके द्वारा संसार के किसी भी भाग पर बम फेंके जा सकेंगे । युद्ध आरंभ हो जाने पर दोनों पक्ष ऐसे आयुधों से तुरन्त ही अधिक से अधिक बम फेंकेंगे । उस समय वे यह प्रतीक्षा करते नहीं रहेंगे कि दूसरा पक्ष कितने और कैसे बम फेंकता है । उस समय अनुमान से प्रत्येक पक्ष के पास २० 'मेगाटन' वाले १००० बम होंगे । यदि इन बमों का विस्फोट अमरीका में हो तो वहाँ की लाखों वर्ग मील भूमि तुरन्त नष्ट हो जायेगी और करोड़ों आदमी उसी समय मर जायेंगे । पर इन बमों से होने वाली हानि केवल अमरीका और रूस तक ही सीमित नहीं रहेगी । बमों से निकलने वाला 'विकिरण पदार्थ' इन दोनों देशों के बाहर

अन्य देशों पर भी गिरेगा और उससे करोड़ों व्यक्ति रक्त-श्वेतता, ल्यूकोमिया (हड्डियों का कैंसर) और प्रजनन शक्ति (सन्तानोत्पत्ति की शक्ति) को क्षति पहुँचाने वाले रोगों से पीड़ित हो जायेंगे ।" बाइबिल की भविष्यवाणी में भी लिखा है कि "जो लोग इस समय में हथियारों द्वारा तुरन्त मर जायेंगे वे फिर भी बड़े भाग्यशाली होंगे, क्योंकि जिन लोगों पर इन रोगों का प्रकोप होगा उनको गल-सड़कर तड़फ-तड़फ कर जान देनी पड़ेगी ।"

अनेक पाठक इस बात पर आश्चर्य करेंगे कि इन बमों की सर्वनाशी शक्ति का पता लग जाने पर भी अमरीका और रूस जैसे विद्या और विज्ञान में बढ़े-चढ़े देश अपने हाथों से अपना नाश करने की तैयारी क्यों कर रहे हैं ? क्यों वे ऐसे अस्त्र-शस्त्र बना रहे हैं जिनसे दुनियाँ की बर्बादी होने के साथ-साथ उनका तो सर्वनाश ही हो जायगा ? इसका सच्चा कारण यह है कि "विनाश काले विपरीत बुद्धि ।" अब ये लोग खोज करते-करते शक्ति की चरम-सीमा पर पहुँच गये हैं, और वही शक्ति इनका नाश करने का साधन बनेगी । दूसरी बात यह भी है कि ऐसे समय में प्रत्येक देश यही कल्पना किया करता है कि वह दूसरे को मारकर स्वयं थोड़ी बहुत हानि उठाकर बच जायगा । इसलिये अमरीका से ऐसे आविष्कारों के होने की खबर आ रही है कि जिनके द्वारा शत्रु द्वारा फेंके गये अणु-बमों को मार्ग में ही नष्ट किया जा सके । कल्पनायें तो तरह-तरह की की जा रही हैं, पर अन्त में इसका परिणाम किसी के लिये शुभ हो सके ऐसा प्रतीत नहीं होता ।

इस भयंकर परिस्थिति में मानव जाति को भयंकर आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा । महायुद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष, दुष्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि, अस्थिरता, अव्यवस्था, अराजकता जैसी अनेक विपत्तियाँ संसार के सामने अनेक रूपों में उपस्थित होंगी, जिसके फलस्वरूप अपार धन जन की हानि होने की संभावना है । संसार के एक तिहाई मनुष्य इन विपत्तियों की चक्की से पिस जावें तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ।

वास्तविक संध्या काल वह होता है जिस समय सूर्य बिलकुल उदय या अस्त हो । यह समय प्राय: ५-५ मिनट का प्रात: समय होता है । वास्तविक संध्या काल ५-५ मिनट होने पर भी व्यावहारिक संध्या एक-एक घण्टे की मानी जाती है । चन्द्र, सूर्य ग्रहण के वास्तविक काल से बहुत पहले और बहुत पीछे तक सूतक काल रहता है । इसी प्रकार सन् ६२ में जिस महा भयंकर कुयोग की सूचना ज्योतिषियों ने दी थी, और जिसके कारण संसार में प्रलयकाल का दृश्य दिखलाई पड़ने की आशंका व्यक्त की थी और कहा था कि उसका वास्तविक समय यों १६ जनवरी से १२ फरवरी तक २६ दिन का है, पर इसका पूर्व एवं पर काल ५-५ वर्ष आरम्भ तथा अन्त में रहेगा । सन् ५७ से वह अशुभ कुचक्र आरम्भ होता है और उसकी समाप्ति सन् ६७ तक चलेगी । इस प्रकार इस कुचक्र को एक प्रकार से १० वर्ष का माना गया था ।

लेकिन वर्तमान समय की इन कठिनाइयों को पाठक स्वतः अनुभव कर रहे होंगे । इन दिनों भी संसार कम विपत्तियों में से नहीं गुजर रहा है । जगह-जगह नदियों की बाढ़ें, कहीं वर्षा का भारी अभाव, रेल दुर्घटनाएँ, डाकुओं के भयंकर उपद्रव, सर्वत्र बेहिसाब बढ़ती हुई पार्टीबन्दी, व्यापक गुण्डागर्दी, वर्ग संघर्ष, प्रान्तीयता, आतंकवाद, भाषावाद और साम्प्रदायिकता का नग्न नृत्य, मुद्रास्फीति, चोरबाजारी, रिश्वतखोरी, तस्करशाही, अन्न की कमी, बढ़ती हुई महँगाई, सरकारी कर्मचारियों की हड़तालें, राजनैतिक पार्टियों की अखाड़ेबाजी, जनता की क्रय-शक्ति घटने और सरकारी प्रतिबन्ध बढ़ने से व्यापार में गतिरोध, व्यापक असंतोष का बोलबाला हो रहा है । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने नये प्रकार के शिकन्जे और दावपेच तैयार करके पहले से भी भयंकर रूप में प्रकट हो रही हैं । युद्ध की चिनगारियाँ एशिया, योरोप, अफ्रीका के विशाल भूखण्डों में अनेकों स्थानों पर सुलग रही हैं, थोड़ा सा भी अवसर आने पर वे दावानल का रूप धारण कर सकती हैं। अणुबम, उद्जन बम, मिसाइल्स आदि सर्व संहारी अस्त्र मानव सभ्यता को मटियामेट कर देने और धरती को प्राणी-विहीन बना देने के लिए चुनौती के रूप में खड़े हुए हैं । इन अस्त्रों के परीक्षण मात्र से विश्व का वातावरण भयंकर रूप से विषाक्त होता चला जा रहा है और उसके कारण जगह-जगह इनफ्ल्यूऐंजा आदि बीमारियाँ फैल रही हैं और सर्दी, गर्मी, वर्षा के मौसमों का सन्तुलन बिगड़ रहा है । जो बालक इन दिनों उत्पन्न हो रहे हैं उनके मनः संस्थान क्रोध, द्वेष, अवज्ञा और उच्छृङ्खलता से भरे हुए आ रहे हैं । यह दुर्भाग्य आगे और भी बुरे रूप में उपस्थित होगा जब बालक विकलांग, अन्धे, गूँगे, बहरे, अपाहिज और पागल जैसी स्थिति में पैदा होकर धरती पर भू-भार की तरह जीवन व्यतीत करेंगे और केंसर, राजयक्ष्मा,

आस्थि शोथ आदि भयंकर रोगों की यातनाओं से तड़प-तड़प कर प्राण देंगे । अणुबमों के परीक्षण से उत्पन्न हुई आकाश-व्यापी रेडियो सक्रियता से इस प्रकार के अनेक उपद्रव खड़े हो रहे हैं और आगे होंगे ।

जन साधारण के मन: क्षेत्र में एक विचित्र प्रकार का उच्चाटन हो रहा है । किसी ठोस एवं गम्भीर कार्य पर किसी का मन नहीं लग रहा है । वासना, तृष्णा, ईर्ष्या, उद्वेग, कलह, प्रतिहिंसा, असहिष्णुता की अग्नि से लोगों के हृदय बेहिसाब जल रहे हैं । इस प्रकार की स्वस्थ मनोभूमि के व्यक्तियों के द्वारा जो क्रियाएँ हो रही हैं वे भी गड़बड़ी से भरी हुई, अशान्ति उत्पादक एवं दुखदायी ही सिद्ध होती हैं । आज की परिस्थितियों का सही चित्रण यही है । इन विषम परिस्थितियों के बीच हमारे अनेकों सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक सत्प्रयत्न जो जनता को सुखी बनाने एवं शांति स्थापना के लिए किये जा रहे हैं एक प्रकार से निष्फल हो रहे हैं ।

रुद्र का तीसरा नेत्र खुलने की सम्भावना है । उसे देवता लोग विनयावनत होकर उन सर्वान्तर्यामी की पार्थना करके शांत कर सकते हैं । संसार को जला डालने वाली भयंकर दावानल के शोले जो उठ रहे हैं और विकराल सर्वनाश का जो दृश्य उपस्थित करने वाले हैं उन्हें शान्त करने के लिए एक प्रचण्ड वरुणास्त्र की आवश्यकता है । दुनियाँ हाइड्रोजन बम बनाने में लगी हुई है । पर उससे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को शमन करने की शक्ति किसी में नहीं है । यह कार्य इन ऋषियों में भूमि भारतवर्ष में ही हो सकता है । यहाँ से संसार को शांति प्रदान करने वाली अमृत निर्झरिणी सदा से ही बहाई जाती रही है । इस समय जिस वरुणास्त्र की इन सम्भावित आपत्तियों को टालने की, इनका प्रतिरोध करने की इनसे समस्त मानव जाति को बनाने की क्षमता किसी में है तो वह इस ऋषि भूमि भारतवर्ष में ही है । अन्य देश आग्नेयास्त्र बना रहे हैं । वरुणास्त्र इन अग्नियों को शान्त करने वाला शान्ति वर्षा अस्त्र, जिससे करोड़ों प्राणियों के धन-जन की रक्षा हो सके केवल भारत ही बना सकता है और बना रहा है ।

शान्तिकुंज द्वारा आयोजित आश्वमेधिक यज्ञ श्रृंखला एवं प्रज्ञा पुरश्चरण वस्तुत: एक आध्यात्मिक वरुणास्त्र है । एक-एक हाइड्रोजन बम बनाने में लाखों-करोड़ों रुपये की लागत आती है और भारी श्रम एवं साधन सामिग्री जुटानी पड़ती है । इस वरुणास्त्र के बनाने में धन की, मशीनों की, वस्तुओं की तो आवश्यकता नहीं है पर श्रम अवश्य चाहिये और वह श्रम भी अश्रद्धालु लोगों का नहीं, उनका जिनका हृदय धर्म-भावनाओं से परिपूर्ण हो । रावण को मारने के लिए त्रेता में एक घड़े की आकृति का महाबम बना था, उसमें ऋषियों ने अपने रक्त-बिन्दु भरे थे, उसे खेत में गाढ़ा गया था और उससे सीता-शक्ति का प्रादुर्भाव होकर दसों दिशाओं में विजय दुन्दुभी बजाने वाली असुरता का विनाश हुआ था । त्रेता में जिस प्रकार अपना रक्त-बिन्दु देकर शान्ति बम बना रहे थे उसी प्रकार का प्रयत्न गायत्री परिवार द्वारा आश्वमेधिक प्रयुक्त भी किया जा रहा है । इसके प्रभाव से अभी जो दैवी प्रकोप की सर्वसंहारकारी असुरता की विभीषिका जो किलकारियाँ भर रही हैं वह शान्त हो सकती है, समाप्त हो सकती है ।

गायत्री-परिवार के हर सदस्य से यह आशा की जाती है कि मानव जाति की सुख, शांति एवं सुरक्षा के लिए उन्हें कुछ करना ही चाहिए । थोड़ा समय और श्रम देकर हममें से प्रत्येक व्यक्ति गायत्री-उपासना का कुछ नियमित संकल्प लेकर अश्वमेधिक अनुष्ठान का भागीदार बन सकता है । चूँकि यह सामूहिक संकल्प है इसलिए इसमें अकेले-अकेले कुछ जप-तप कर लेने से काम न चलेगा । अपने निकटवर्ती धर्म-प्रवृत्ति के लोगों को इस मार्ग की प्रेरंणा देकर उन्हें एक संगठन-सूत्र में सम्बद्ध करके इस महाअनुष्ठान में लगाया जा सकता है । विवेकवान् धर्म-प्रेमियों से हमारा आग्रहपूर्वक अनुरोध है कि वे समय की भयंकरता का देखते हुए उसके शमन के लिए कुछ धर्म-कर्तव्य पालन करने को कटिबद्ध हों ।

## समस्त उलझनों का एकमात्र हल-गायत्री

अनेक बार ऐसा देखने में आता है कि एक मनुष्य किसी मंत्र की उपासना करता है, और मन में ऐसा विचार करता है कि इसे किसी को बतलाना नहीं चाहिये । ऐसा व्यक्ति न तो अपना भला कर सकता है और न दूसरों का । क्योंकि ऐसे व्यवहार से मन में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होता और इसके कारण मंत्र का गौरव और प्रभाव अपने आप समाप्त हो जाता है । यह सत्य है कि बिना अधिकार के मंत्र नहीं दिया जा सकता, पर अधिकारी जान कर भी ईर्ष्यावश मंत्र देने में आनाकानी करना ठीक नहीं । मंत्र का साधन करने वाला और दूसरे से साधन कराने वाला

उदार चित्त का, पूर्ण श्रद्धा वाला होना चाहिये । व्यक्तिगत अभ्युदय की इच्छा रखते हुये यह भी समझ रखना चाहिये कि समष्टि में ही व्यक्ति समाया हुआ है । ऐसा समझने वाला अपने साथ संसार का भी भला कर सकता है ।

गायत्री मंत्र का जप यज्ञोपवीत धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति थोड़े बहुत अंशों में करता ही है । पर इस मंत्र में क्या बतलाया गया है ? इसका ख्याल बहुत कम लोग करते हैं । आजकल तो प्रत्येक गुरु यज्ञोपवीत के साथ गायत्री मंत्र देता है और कह देता है कि अब बिना नागा जप करते रहना । दुख की बात है कि अधिकांश में गुरुओं को भी मंत्र का अर्थ नहीं आता । इसका नतीजा यह होता है कि मंत्र दीक्षा लेने और यज्ञोपवीत धारण करने वाला व्यक्ति यह तो नहीं समझता कि "यह हमारा धर्म है अतः श्रद्धापूर्वक इसका पालन करना चाहिये ।" इसके विपरीत वह यह सोचता है कि "यह हमारी परम्परा है ।" इसलिये यज्ञोपवीत और दीक्षा में सैकड़ों रुपया खर्च कर देने पर भी, वे थोड़े समय बाद उसे भुला देते हैं ।

इस प्रकार का जप, जप नहीं कहलाता । यह तो संस्कृत की एक पंक्ति को पढ़ लेना मात्र है । आज के अर्थ युग में मनुष्य केवल द्रव्य के लिये जप करने या कराने की अभिलाषा करता है । वह सोचता है कि मैं ऐसा कौन सा जप करूँ कि जिससे लक्ष्मी मुझे मनमाना धन दे दें । पर वह यह नहीं सोचता है कि समस्त जपों के मूल में गायत्री जप ही मौजूद रहा है । कोई भी अनुष्ठान करना हो या प्रायश्चित में यह गायत्री माता का जप ही किया जाता है । इसी से प्रकट होता है कि गायत्री का गौरव सर्वाधिक है आश्चर्य है कि इस तथ्य को जानने पर भी द्रव्य के लिये इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं । यदि किसी ने वेदाभ्यास न किया हो, शास्त्र और पुराण न बांचे हों, तो भी यदि गायत्री जप में तुम्हारी सच्ची श्रद्धा होगी, तो वह गायत्री का जप सब वस्तुओं को प्राप्त करा देगा । महर्षि व्यासजी ने कहा है—

**यथा मधु ये पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद रसात् पयः ।**
**एवं हि सर्व वेदानां गायत्री सार मुच्यते ॥**

"जिस प्रकार पुष्पों का सार शहद, दूध का घी, और सब रसों का सार दूध है वैसे ही सब वेदों का सार गायत्री है ।"

कहा जाता है कि श्री कृष्ण के लिये अर्जुन में ऐसी तल्लीनता का भाव था कि जब अर्जुन सो जाता तो उसके साँस में भी श्री कृष्ण का शब्द सुनाई पड़ता था । इसी प्रकार गायत्री का जप भी ऐसा होना चाहिये कि रोम-रोम और श्वांस-श्वांस में उसी की रट लगी रहे । जिस प्रकार औषधि शारीरिक व्याधि को दूर करती है वैसे ही इस प्रकार किया हुआ गायत्री जप समस्त मानसिक और शारीरिक व्याधियों को दूर करने वाला होता है । पर जब तक ऐसा न होने लगे तब तक हमें धैर्यपूर्वक उसमें लगा रहना चाहिये ।

जप करने वाला व्यक्ति धैर्यवान् न हो तो उसका चित्त एकाग्र नहीं हो सकता, और जब तक एकाग्रता न हो तब तक जप जैसा होना चाहिये वैसा नहीं हो पाता । संकटों के दुर्ग में फंसे हुए जगत के तरने का उपाय गायत्री मंत्र ही है । जब तक इसका अनुभव नहीं किया जाता तब तक इसके अस्तित्व का पता भी नहीं चलता । पर यदि हम गायत्री के किसी सच्चे भक्त का उपदेश ग्रहण करलें, तो हम भी इस मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं ।

गायत्री मंत्र यह एक व्यक्ति का नहीं पर समष्टि (समाज) के कल्याण का साधन करने वाला मंत्र है । इसलिये सामुदायिक हित का ध्यान रखकर इस मंत्र का जप करने से जितना लाभ हो सकता है उतना लाभ व्यक्तिगत हित की भावना रखने से नहीं हो सकता । इस जप का महत्व समझ लेने के बाद यदि हम अन्य मनुष्यों को इसके करने की प्रेरणा करें तो उनके जप का कुछ फल भी हमको प्राप्त होता है । अगर बहुत से लोग इस तरफ ध्यान दें और इस प्रकार एक दूसरे को जप करने की प्रेरणा देते चले जायें तो एक दिन समस्त संसार में धर्म का अभ्युदय हो सकता है ।

आज मनुष्यों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएँ उपस्थित हैं, अनेक गुत्थियां उलझी हुई हैं, हर एक उलझन ऐसी विषम है कि उसकी परेशानी से सब कोई चिन्ताग्रस्त एवं दुखी हो रहा है ।

इन कठिनाइयों को हल करने के लिए नाना प्रकार के उपाय काम में लाये जा रहे हैं पर सफलता की कोई आशा किरण दिखाई नहीं पड़ती ।

समस्त कठिनाइयों, व्यथाओं और वेदनाओं का एक ही कारण है और उनके निवारण का उपाय भी एक ही है । काँटा चुभना दर्द का कारण है तो उसे निकाल देना ही दर्द से छुटकारा पाने का उपाय है । मनोवृत्तियों का संकुचित, स्वार्थ ग्रस्त, हो जाना ही उलझनों का कारण है । संसार में तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती जब

तक कि मनुष्य का अन्तः करण परमार्थ की ओर न झुके, सात्विकता, धार्मिकता उदारता को न अपनावे ।

गायत्री सात्विकता की प्रतीक है । गायत्री भक्त होने का अर्थ है जीवन को सतोगुणी, धार्मिक बनाने का लक्ष स्थिर करना । गायत्री उपासना का अर्थ है—उन आध्यात्मिक उपचारों को अवलम्बन करना जो अन्तःकरण में सतोगुणी परमार्थ भावना का बीजारोपण करते हैं । गायत्री का आश्रय लेने का तात्पर्य बुद्धि को उस सात्विकता की गोद में डाल देना है जो मनुष्य के समस्त विचारों, गुणों स्वभावों और आचरणों को दिव्य तत्वों से परिपूर्ण कर देती है । इस प्रक्रिया को अन्तःस्तल में गहराई तक प्रतिष्ठित करने से मनुष्य उस स्थिति में पहुँच जाता है जिससे कि उसके सामने कोई उलझन शेष नहीं रहती । आइए, अब जीवन की प्रमुख समस्याओं पर विचार करें और देखें कि गायत्री रूपी सद्बुद्धि को अपना लेने पर वे किस प्रकार सुलझ सकती हैं ।

(१) विश्व युद्ध की घटाएँ आकाश में घुमड़ रही हैं । कह नहीं सकते कि किस क्षण विस्फोट हो जाय और परमाणु बम दुनियां को तहस-नहस कर दें, इन युद्धों का कारण साम्राज्यवादी लालसाएँ ही हैं । एक देश दूसरे देश पर अपना प्रभुत्व जमाने, उसका शोषण करने की मनोवृत्ति को छोड़ दें, और न्याय पर दृढ़ रहे तो इन युद्धों का कोई कारण नहीं रह जाता ।

यदि आज विश्व राजनीति में गायत्री प्रतिपादित 'न्याय' का समावेश हो जाय तो युद्ध की तैयारी पर जो शक्ति लगी हुई है वह रचनात्मक कार्यों में लग कर जीवन की सुविधाओं को बढ़ावें । और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आधार पर विश्व बन्धुत्व के प्रेम भाव का समुचित विकास हो सकता है । महायुद्ध की आशंका से आज समस्त संसार संत्रस्त हैं इस त्रास को कूटनीतिक माथा पच्ची से नहीं, गायत्री की निर्मल भावनाओं द्वारा सुलझाया जा सकता है ।

(२) विश्व युद्ध के बाद दूसरी समस्या खाद्य पदार्थों की कमी की है । कुछ देशों को छोड़ कर प्रायः सर्वत्र अन्न की कमी पड़ रही है । सिंचाई, रासायनिक खाद, वैज्ञानिक यंत्रों आदि की सुविधा बढ़ा कर अधिक अन्न उपजाने का प्रयत्न किया जा रहा है । इससे कुछ तात्कालिक सुधार भले ही हो जाय पर स्थायी सुधार न होगा । क्योंकि जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही है उसकी पूर्ति करने लायक शक्ति पृथ्वी में नहीं है । विशेषज्ञों का कहना है कि कृषि योग्य सारी जमीन पर वैज्ञानिक कृषि कर लेने से भी सिर्फ इतनी उपज बढ़ सकती है जो आगामी चालीस वर्षों तक लोगों का पेट भर सके । इसके बाद फिर भुखमरी फैलेगी ।

इस प्रश्न का एकमात्र हल सन्तान निग्रह है । सभी बुद्धिमान एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि संतान पैदा करना रोका जाय । इसके लिए गर्भपात, औषधियाँ, रबड़ की थैली आदि उपाय काम में लाये जा रहे हैं । पर इनका परिणाम और भी भयंकर होगा । अनैतिकता एवं व्यभिचार में वृद्धि होने से रहे बचे स्वास्थ और भी नष्ट हो जायेंगे । सन्तान निग्रह का सर्वश्रेष्ठ उपाय ब्रह्मचर्य है। जो तभी संभव है अब गायत्री भावना के अनुरूप नारी के प्रति विकार दृष्टि को त्याग कर पूज्य भाव स्थापित किया जाय । इससे खाद्य संकट की समस्या हल होगी, जन-संख्या की वृद्धि रुकेगी, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सुधरेगा । गायत्री की साप्ताहिक उपवास साधना को यदि समर्थ लोग अपना लें तो आज की आवश्यकता पूरी हो जाय और विदेशों से एक दाना भी अन्न न मँगाना पड़े ।

(३) तीसरी व्यापक कठिनाई अनैतिकता की है । ठगी, विश्वासघात, वचन भंग, खुदगर्जी, बे मुरब्वती, अहंकार, पर पीड़न, कर्तव्य त्याग की बुराइयां बेतरह बढ़ रही हैं । सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, धर्म प्रचारक, नेता, मजदूर आदि सभी वर्गों में इस प्रकार की दूषित मनोवृत्ति बढ़ रही है । अविश्वास, असंतोष और आशंका से हर एक का मन भारी हो रहा है ।

इस स्थिति को कानून, पुलिस, फौज या सरकार नहीं सुधार सकती । जब अन्तरात्मा ईश्वरीय वाणी जाग्रत होकर धर्म भावना, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, त्याग, प्रेम और सेवा की भावना पैदा करेगी तभी व्यापक अनैतिकता की दुखदायक स्थिति का अन्त होगा, यह परिवर्तन गायत्री की आत्म विज्ञान सम्मत प्रकृया द्वारा सुगमतापूर्वक संभव हो सकता है ।

पाप, अनाचार, कुकर्म एवं दुर्बुद्धि के कारण ही मनुष्य नाना प्रकार के दुख भोगता है । जब जड़ कट जाती है, पापवृत्ति में परिवर्तन हो जाता है तो नाना प्रकार के दैविक, दैहिक, भौतिक दुखों से मानव जाति को सहज ही छुटकारा मिल जाता है । कलह, संघर्ष, द्वेष के बीज स्वार्थपरता में है । जहाँ परमार्थिक दृष्टिकोण होगा वहाँ प्रेम गंगा की शान्तिदायक निर्मल धारा प्रवाहित होगी ।

(४) भ्रान्ति, अविद्या, अन्ध परम्परा, अदूरदर्शिता, लोलुपता, संकुचित दृष्टि को "कुबुद्धि" कहते हैं । सुशिक्षित और चतुर समझे जाने वाले लोग भी इस कुबुद्धि में ग्रसित रहते हैं फलस्वरूप उन्हें अकारण अनेक प्रकार के त्रास प्राप्त होते हैं । आज के युग में सन्तान न होना एक ईश्वरीय वरदान है पर लोग इसमें भी दुख मानते हैं । कुरीतियों का अन्धानुकरण करने के लिए धन न मिलने पर दुख होता है । परिजनों की मृत्यु पर ऐसा शोक करते हैं मानों कोई अनहोनी घटना घटी हो । धन की कामना में ही व्यस्त रहना, जीवन के अन्य अंगों का विकास न करना, विलासिता, फिजूलखर्ची, व्यसन, फैशनपरस्ती आदि में डूबे रहना लोग अपनी बुद्धिमानी समझते हैं ।

गायत्री रूपी सद्बुद्धि जिस मस्तिष्क में प्रवेश करती है, वह अन्धानुकरण करना छोड़ कर हर प्रश्न पर मौलिक विचार करता है, वह उन चिन्ता, शोक, दुख आदि से छुटकारा पा लेता है जो कुबुद्धि की भ्रान्त धारणाओं के कारण मिलते हैं । संसार में आधे से अधिक दुख कुबुद्धि के कारण हैं, उन्हें गायत्री की सद्बुद्धि जब हटा देती है तो मनुष्य सरलता, शान्ति, सन्तोष और प्रसन्नता से परिपूर्ण रहने लगता है ।

(५) बीमारी और कमजोरी आज घर-घर में घुसी हुई है । इसका कारण आहार-विहार का असंयम है । पशु पक्षी प्रकृति को आदर्श मानकर चलते हैं और निरोग रहते हैं । प्रकृति के आदेशों का उल्लंघन करने से ही मनुष्य बीमार पड़ता है । कमजोर होता है और जल्दी मर जाता है ।

गायत्री मंत्र की शिक्षा में आहार विहार का संयम और प्राकृतिक जीवन की विशेष प्रेरणा है । सादगी और सात्विकता के ढाँचे में ढली हुई जीवनचर्या निरोगता की प्रामाणिक गारन्टी है ।

चिड़चिड़ापन, आलस्य, लापरवाही, अनुदारता, अहंकार, कटुभाषण, निराशा, चिन्ता, आवेश, द्वेष आदि मानसिक बीमारियों से आन्तरिक स्वास्थ्य खोखला हो जाता है और व्यावहारिक जीवन में पग-पग पर ठोकरें लगती हैं । गायत्री साधना मनुष्य के स्वभाव में सात्विक परिवर्तन करती है, सद्गुण बढ़ाती है, फलस्वरूप मानसिक अस्वस्थता नष्ट होकर मनोबल बढ़ता है और उसके द्वारा अनेकों लाभ प्राप्त होते रहते हैं ।

(६) आन्तरिक निर्बलता, एक ऐसी व्यक्तिगत कमी है जिसके कारण मनुष्य इच्छा करते हुए अपनी त्रुटियों के कारण कुछ कर नहीं पाता । मानव तत्व का पूर्ण विकास कुछ ऐसे तथ्यों पर निर्भर है जो बहुधा अपने हाथ में नहीं होते । सूक्ष्म शरीर में उसकी जड़ें होने के कारण ऐसा मानना पड़ता है कि अमुक विशेषताओं से, भाग्य ने या भगवान् ने हमें वंचित कर रखा है । गायत्री साधना का प्रवेश सूक्ष्म शरीर के उस भाग तक हो जाता है जहां भाग्य को फेरने वाली कुंजी छिपी रहती है ।

गायत्री साधना के फलस्वरूप सूक्ष्म शरीर के कुछ गुप्त कोषों, चक्रों, गुच्छकों, ग्रंथियों का विकास होता है जिसके कारण दिव्य शक्तियों का बढ़ना अपने आप शुरू हो जाता है । बुद्धि की तीव्रता, शरीर की स्वस्थता, सत्पुरुषों की मित्रता, व्यावसायिक सफलता, कीर्ति, प्रतिष्ठा, पारिवारिक सुख शान्ति, सुसन्तति, व्याधियों से निवृत्ति, शत्रुता का निवारण, अनेकों लाभ अनायास ही मिलने लगते हैं । कारण यह है कि आत्म बल बढ़ने से, दिव्य शक्तियां, विकसित होने से, गुण कर्म स्वभाव में आशाजनक परिवर्तन हो जाने से, अनेक ज्ञात एवं अज्ञात बाधाएँ हट जाती हैं और ऐसे सूक्ष्म तत्व अपने में बढ़ जाते हैं जो दिन-दिन उन्नति की ओर ले जाते हैं ।

राज शासन पर जनता की कठिनाइयों का जितना उत्तरदायित्व है उससे कहीं अधिक जनता की मनोवृत्तियों पर है । जनता प्रतिमा है, राज्य उसकी छाया है । जनता की प्रबल इच्छा के प्रतिकूल कोई राज्य जम नहीं सकता, इसलिए हमें जड़ को सींचना चाहिए । जन-साधारण का चरित्र ऊँचा उठा कर, उनकी मनोदशा में श्रेष्ठ तत्वों को बढ़ाकर, सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्देशीय, देशीय, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं को सुलझाया जा सकता है । केवल कानून या सरकार में हेर फेर कर देने से स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता ।

मानव जीवन की जितनी भी गुत्थियाँ उलझी पड़ी हैं उन सब को गायत्री रूपी सद्बुद्धि, सात्विकता एवं सत्प्रवृत्ति को अपनाने से सुलझाया जा सकता है ।

## नियति के परिवर्तन में अध्यात्म शक्ति का उपयोग

धरती की व्यवस्था सम्भालने का उत्तरदायित्व सृष्टा ने मनुष्य को सौंपा है । साथ ही उसे इतना समर्थ शरीर

तन्त्र दिया है कि वह न केवल जीवधारियों के लिए सुख शान्ति बनाये रहे वरन् ब्रह्माण्ड में संव्याप्त अदृश्य शक्तियों को भी अनुकूल रहने के लिए सहमत रख सके । अपने उस उत्तरदायित्व में व्यतिरेक करके जब मनुष्य अनाचार और उद्दंडता बरतता है, चिन्तन को भ्रष्ट और आचरण को दुष्ट बनाता है तो उसकी प्रतिक्रिया अदृश्य जगत का सन्तुलन बिगाड़ती है और विपत्तियों का विक्षोभ उत्पन्न करती है । दैवी प्रकोप प्रत्यक्ष में लगते तो ऐसे हैं मानो अदृश्य द्वारा मनमानी की जा रही है । किन्तु अदृश्य और प्रत्यक्ष को जो जानते हैं उनका स्पष्ट मत है कि पानी में पत्थर फेंकने और छींटे उठाने की जिम्मेदारी उन लड़कों की है जो तालाब के एक कोने पर बैठे शरारत करते रहते हैं । तालाब अकारण उछलने लगे और अपने जलचर परिवार के लिए संकट उत्पन्न करे ऐसी बात है नहीं, प्रतीत भले ही होती हो ।

इन दिनों उभरने वाले प्रकृति प्रकोपों का सिलसिला अगले दिनों घटेगा नहीं बढ़ेगा । इस आशंका से सभी चिन्तित हैं । भय अकारण है या सकारण इसका अन्वेषण करने पर कितने ही तथ्य सामने आते हैं और अशुभ सम्भावना की पुष्टि करते हैं । आणविक विस्फोटों के कारण बढ़ता हुआ विकिरण, विषाक्त ईंधन से उत्पन्न वायु प्रदूषण पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे प्रायः ४००० उपग्रहों के कारण सुरक्षा परतों में विक्षोभ ऊर्जा के बढ़ते उपयोग से गर्मी का बढ़ना और उसके कारण हिम प्रदेशों का असन्तुलित रीति से पिघलना भूगर्भ से खनिज सम्पदा निचोड़ लेने पर उसका खोखला एवं ठण्डा होते जाना आदि कितने ही कारण हैं जो धरती के भीतरी सतही और बाहरी वातावरण में विक्षोभ उत्पन्न करते देखे जा सकते हैं । इन्हें मनुष्य की प्रकृति के साथ उद्धत छेड़खानी कह सकते हैं । छेड़ने पर तो चींटी भी काटती है फिर नियति क्यों चूकने लगी ।

अध्यात्म विज्ञान का प्रतिपादन है कि प्रकृति ही सब कुछ नहीं है उससे भी ऊपर एक चेतन सत्ता है, जिसको प्राणियों के साथ व्यवहारं करने की विधि को 'नियति' कहते हैं । दिव्यदर्शी इस नियति को ही प्रधानता देते हैं, और प्रकृति के सन्तुलन को बनाने बिगाड़ने में इसी को उत्तरदायी मानते हैं । उनका कहना है कि प्रकृति से भौतिक छेड़खानी करने पर दैवी प्रकोप बरसना एक पक्ष तो है पर वही सब कुछ नहीं है । उससे भी बड़ी बात है मानवी चिन्तन और चरित्र से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया जो प्रकृति की नियामक सत्ता 'नियति' पर प्रभाव डालती है । अनाचरण से नियति की अन्तरात्मा क्षुब्ध होती है फलतः उसका प्रकृति कलेवर भी आक्रोश का-आवेश का-परिचय देता है । दैवी प्रकोपों के मूल में जितना दोष प्रकृति व्यवस्था को उद्धत रूप से छेड़खानी करने का है उससे भी अधिक भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण का आश्रय लेने वाली मानवी निकृष्टता का है । नियति उसी से रुष्ट होती है और उसी के फलस्वरूप दृश्य एवं अदृश्य विपत्तियाँ, समस्याएँ तथा विभीषिकाएँ उभरती-त्रास देती हैं ।

अन्तरिक्ष विज्ञानी इन दिनों सौर-मण्डल तथा उससे ऊपर के ब्रह्माण्ड क्षेत्र का पर्यवेक्षण करते हैं, तो कहते हैं पृथ्वी के लिए यह परिस्थितियाँ संकटापन्न हैं । सभी जानते हैं कि पृथ्वी की अपनी निज की जितनी शक्ति और सम्पदा है उसे उससे कहीं अधिक अनुदान लेकर अपना गुजारा करना पड़ता है । सौर ऊर्जा उसका प्राण है । इसके अतिरिक्त अन्य ग्रहों से आने वाले ब्रह्माण्डीय अनुदान उसे उपलब्ध होते हैं । ऊपर के वातावरण की छलनी में छनकर ध्रुवों के माध्यम से जो सम्पदा धरती को प्राप्त होती है उसी से उसका गौरव एवं वैभव इस स्तर तक पहुँचा है । ऐसी परिस्थितियाँ न हों तो वह भी सौर-मण्डल के अन्य सदस्यों की तरह बुध की तरह आग-बबूला होकर प्लेटो की तरह हिमपिण्ड बनकर शुक्र की तरह विषाक्त बादलों से आच्छादित रहकर निस्तब्ध श्मशान की तरह अन्तरिक्ष के एक कोने में पड़ी अपने दुर्भाग्य का रोना रो रही होती ।

अन्तरिक्ष विज्ञानी अपनी गहरी जाँच पड़ताल से पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मध्य चले आ रहे आदान-प्रदान में विक्षेप व्यवधान होता देखते हैं । सूर्य पर इन्हीं दिनों ऐसे 'कलंक' उभरने वाले हैं जो महान देवता को ही बदनाम नहीं करेंगे । अपनी चपेट में धरती वासियों को त्रास देंगे । उन्मादी, रोगी, अपराधी स्वयं तो कष्ट सहते ही हैं उसके स्वजन सम्बन्धी भी तरह-तरह के कष्ट और ताने सहते हैं । पृथ्वी सूर्य से लाभ भी सर्वोपरि उठाती है तो हानि भी उसी को उठानी पड़ती है । अर्धांगिनी को पति के वैभव का जहाँ श्रेय मिलता है वहाँ से रोगी होने पर उपचार का तथा मरने पर वैधव्य का भार भी सहना पड़ता है । सूर्य की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों ने समय-समय पर पृथ्वी को हँसाया, रुलाया है । अगले दिनों जो व्यतिरेक उत्पन्न होगा उससे उसके पदार्थ, वैभव

एवं प्राणि परिवार को भी असन्तुलन सहना, त्रास विग्रह का सामना करना पड़े तो इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है । इस सन्दर्भ में अन्तरिक्ष विज्ञानी मनुष्य समाज को भावी कठिनाइयों से सचेत करते हैं तो उसमें यथार्थता भी है और बुद्धिमत्ता भी ।

सन् ८१ से उभरने वाले सौर कलंकों की वृहस्पति के अत्यधिक विक्षुब्ध होने की १६ फरवरी को होने वाले असाधारण सूर्य ग्रहण की प्रतिक्रियाएँ फलित ज्योतिषी अपने ढंग से और खगोल विज्ञानी अपने ढंग से व्यक्त करते हैं । दोनों के कारण पृथक हैं पर निष्कर्ष एक । अगले दिनों की विभीषिकाओं का भविष्य कथन दोनों ही करते हैं । भविष्य कथन की बात चल पड़े तो यहीं यह भी समझ लेना चाहिए कि सूक्ष्मदर्शी अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न ऐसे लोग भी इस धरती पर कभी-कभी देखने को मिलते हैं जिनमें अदृश्य दर्शन की क्षमता है । ऐसे लोगों को जो अनुभूतियाँ होती हैं उनमें ग्रह गणित नहीं दिव्य दर्शन की अद्भुत विशेषता ही कारणभूत होती है । इनकी भविष्यवाणियों में कदाचित ही कभी कोई असम्बद्ध बैठती हो । ऐसे लोगों की एक श्रृंखला है जिनमें कई जीवित हैं, कई दिवंगत हो चुके । इनने अपने भविष्य कथन में प्रधानतया दो तथ्य प्रस्तुत किये हैं—इन दिनों अवांछनीयता एवं विपत्तियों का बढ़ना और कुछ समय उपरान्त स्वर्गीय सुख शान्ति का सृजन होना । इसे वे युग परिवर्तन की प्रसव पीड़ा बताते हैं जिसमें कष्ट सहन और सन्तान लाभ की कटु मधुर विसंगति जुड़ी होती है । प्रामाणिक भविष्य कथनों के विस्तृत विवेचन का सारांश इतना ही है ।

दुःखद परिस्थितियों का काल क्या होगा ? और सुखद सम्भावनाएँ कब उत्पन्न होंगी ? इस संदर्भ में सूक्ष्मदर्शियों के कथन लगभग एक ही अवधि तक अपने निष्कर्षों को केन्द्रित करते हैं । सन् १९८० से २००० तक के समय को अधिक कष्टकारक पाया जायगा और २००० के बाद की परिस्थितियों में सन्तोष की साँस लेने और उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में आश्वस्त होने का अवसर मिलेगा ।

उपरोक्त पर्यवेक्षण से जिस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है वह निकट भविष्य की अशुभ आशंकाएँ और जो सम्भावनाओं का चित्र सामने आता है । इससे किसी को भी आतंकित या भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है । ऐसी हड़बड़ी तो विपत्ति को और भी कई गुना बढ़ा सकती है । कठिन समय का एक ही तकाजा है धैर्य और साहस बनाये रहना, मनोबल न गिरने देना, साथ ही आशंकाओं को निरस्त करने वाले प्रयासों का निर्धारण करके उनकी पूर्ति में जुट जाना । हमारे लिए यही उचित है कि भौतिक और आत्मिक स्तर पर ऐसा प्रबल पुरुषार्थ सँजोये जिनसे रुष्ट नियति को मना लेने और क्रुद्ध प्रकृति को शान्त करने का अवसर मिल सके । रोग अपनी जगह है और उपचार अपनी जगह । विपत्ति अपना काम करती है और रोकथाम के लिए बरते गये पुरुषार्थ का अपना महत्व है । विषम बेला में यही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है कि आतंकित होने की मनःस्थिति उत्पन्न न होने दी जाय साथ ही प्रचण्ड पुरुषार्थ को सँजोकर असम्भव को सम्भव बनाया जाय । विपत्ति का परोक्ष वरदान यही हो सकता है कि वह सजुझारू साहस और प्रबल पराक्रम उभारे । ध्वंस को सृजन से ही निरस्त किया जा सकता है । आग को पानी से ही बुझाया जा सकता है ।

अशुभ आशंकाएँ एवं दुःखद सम्भावनाएँ किनको, कितना किस प्रकार त्रास देंगी । इसका ऊहापोह करने की अपेक्षा यह सोचना उत्तम है कि उन्हें निरस्त करने के लिए क्या कुछ असम्भव है ? यदि है तो उसे बड़े साधनों की अपेक्षा किये बिना उसके लिए जुट पड़ने का साहस है । सृजनात्मक साहस बड़ी बात है । टिटहरी का समुद्र पाटने का, जटायु का रावण से लड़ने का और गिलहरी का राम समर्थन में अपना योगदान प्रस्तुत करना ऐसे उदाहरण हैं जिनमें तुच्छ प्राणियों से भी समर्थ मनुष्य को प्राणवान मार्गदर्शन मिल सकता है । आवश्यक नहीं कि विपत्ति की आशंका से ही सृजन साहस संजोया जाय । उज्ज्वल भविष्य की संरचना अपने आप में एक महान लक्ष्य है जिसे बिना किसी विपत्ति या आशंका के रहते हुए भी पुण्य पुरुषार्थ के सहारे सामान्य परिस्थितियों में भी आरम्भ किया जा सकता है । गायत्री का अवलम्बन लेकर आगे बढ़ने में स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही सध जाते हैं ।

गायत्री महामंत्र पर सभी ऋषियों के पृथक-पृथक भाष्य हैं । कोई भी मुनि मनीषी ऐसे नहीं हैं जिनने इस समुद्र में अपनी-अपनी सूझबूझ के अनुरूप मणि माणिक्य खोज न निकाले हों । यही बात ऋषियों के कृत्यों के सम्बन्ध में है । उनने अपनी रुचि के काम चुने हैं । चरक ने वनौषधि, सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा, नागार्जुन ने रसायन, विश्वकर्मा ने शिल्प, द्रोणाचार्य ने धनुर्वेद, व्यास ने

साहित्य सृजन, कण्व ने अणु विज्ञान, भागीरथ ने खनिज विज्ञान, गौतम ने दर्शन, याज्ञवल्क्य ने यज्ञ विद्या आदि का अन्वेषण किया था । यों गायत्री विद्या के निष्णात पारंगत विश्वामित्र माने जाते हैं किन्तु वस्तुत: वे उपरोक्त सभी विधाओं के अधिष्ठाता माने जाते हैं ।

ऋषि परिवार की समस्त विद्याएँ इन दिनों एकीभूत होकर विश्वामित्र में ही समा गई हैं । उन्हें प्रज्ञा कहते हैं ऋषि प्रणाली के सम्मिलन को युग के अनुरूप इस ज्ञान विज्ञान प्रक्रिया को प्रज्ञा तन्त्र कहते हैं । समय की आवश्यकता के अनुरूप प्रज्ञा तन्त्र को प्रज्ञा अभियान नाम दिया गया है । उसकी कार्य पद्धति को एक शब्द में प्रज्ञा आन्दोलन विचार क्रान्ति कहा जाता है । इसका सूत्र संचालन इन दिनों शान्तिकुंज हरिद्वार से चलता है । इसे गायत्री परिकर या गायत्री परिवार भी कहा जाता है ।

इस तन्त्र के द्वारा जन-जन को नित्य कर्म की तरह इन आध्यात्मिक अनुशासनों का अभ्यास कराया जा रहा है । धार्मिक नित्य नियत की तरह शिखा सूत्र का धारण और न्यूनतम एक माला गायत्री जप का नियमित अथवा मानसिक जप करने के लिए कहा गया है और यज्ञ प्रचलन को बलि वैश्व पंचयज्ञ गौ ग्रास आदि नाम दिये गये हैं । इसी का नैमित्तिक स्वरूप वार्षिक होलिका आयोजन एवं विभिन्न पर्व त्योहारों संस्कारों के रूप में सम्पन्न होता है । जात कर्म, यज्ञोपवीत, विवाह, अंत्येष्टि में यज्ञ अनिवार्य है। इस प्रकार पिछले दिनों भी किसी न किसी प्रकार चिन्ह पूजा की तरह गायत्री और यज्ञ का प्रचलन कार्यान्वित होता रहा है ।

अब उसे विधिवत कार्यान्वित किया जा रहा है । गायत्री परिवार आन्दोलन के अन्तर्गत दीक्षा, उपनयन समेत गायत्री उपासना का व्यापक प्रचलन चला है और विस्मृत यज्ञ विद्या को संक्षिप्त हवन विधि के रूप में प्रत्येक शिक्षित को अवगत अभ्यस्त कराया गया है । यह नित्य नियम का विधान परिचय है । गायत्री परिवार द्वारा इससे प्राय: पच्चीस लाख व्यक्तियों को दीक्षित अभ्यस्त कराया गया है । संकल्प इसी प्रक्रिया को सौ गुना कर देने का है। अर्थात् पच्चीस करोड़ गायत्री उपासक बनाने का । यज्ञ प्रक्रिया अधिक अस्त-व्यस्त है । इसे वार्षिक यज्ञ के रूप में होलिका उत्सव पर और दोनों नवरात्रियों पर दुर्गाअष्टमी तथा रामनवमी पर विधिवत सम्पन्न करते रहने का विधान है । गायत्री परिवार के इस प्रयास को भी उत्साहवर्धक सफलता मिली । संकल्प बड़ा है । भारत में सात लाख गाँव हैं । हर गाँव पीछे एक यज्ञ विधिवत होता रहे यह निर्धारण किया गया है । विश्वास किया गया है कि यह निश्चय ही होकर रहेगा । इतना बन पड़े तो समझना चाहिये कि प्रज्ञा युग के अवतरण के लिए व्रत धारण किया गया है उसका प्रथम चरण पूरा हुआ ।

उपरोक्त पंक्तियों में आध्यात्मिक नित्य कर्म की चर्चा हुई । अब नैमित्तिक विशिष्ट प्रयोजन का निर्धारण आरम्भ होता है । नैमित्तिक अर्थात् प्रयोजन विशेष के लिए किया गया विशेष कृत्य । वह समय समस्याओं आपत्तियों से भरा हुआ है । इसमें कितने ही संकटों से जूझना है और कितने ही नव जीवन प्रदान करने वाले निर्धारणों का संचार करना है । व्यापक समस्याओं के निराकरण के लिए बड़े व्यापक कदम उठाने पड़ते हैं । देवासुर संग्राम में सभी देवताओं की थोड़ी-थोड़ी शक्ति एकत्रित करके उस एकीकरण का समग्र स्वरूप दुर्गावतरण के रूप में हुआ था । ऋषियों का शक्तियों का संचय रक्त घट के रूप में करके सीता का अवतरण से लंका काल के असुरों का निराकरण संभव हुआ था । ऐसे ही सामूहिक शक्ति संचरण अन्य समय पर भी होते रहे हैं । उन यज्ञों के रीछ वानर बाल याजक थे । अभी-अभी कुछ समय पूर्व बुद्ध के परिव्राजक और गाँधी के सत्याग्रही भूमिका निभा कर चुके हैं । महान प्रयोजन महान कृत्यों से ही सम्पन्न होते हैं । उनमें सामूहिकता का समावेश करना पड़ता है । विगत स्वतन्त्रता संग्राम की पूर्ति में जहाँ स्वतन्त्रता सेनानियों का त्याग बलिदान काम आया वहाँ अध्यात्म क्षेत्र के शक्तिकुंज, अरविन्द घोष, महर्षि रमण, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहंस जैसों की आध्यात्मिक साधना भी कम काम नहीं आई । भौतिक पराक्रम और साधन का महत्व कम नहीं है, किन्तु सामूहिक समवेत होकर एक मन एक जुट होकर समुद्र मंथन की तरह प्राणप्रण से जुट पड़ें और वह करें जो देव मानवों को करना चाहिए तो इसकी परिणित निश्चित रूप ऐसे ही होगी जिससे इसी धरती पर स्वर्ग का सारा सरंजाम उतर आये, पुरातन काल में बौद्धों के संघाराम विहार-चैत्य ऐसे ही बने थे । आश्रमों तीर्थों का स्वरूप भी ऐसा ही था । मिल-जुल कर वे न केवल आरण्यक परम्परा के अनुसार विचार मंथन करते थे वरन् साधना आयोजनों के भी स्थानीय और व्यापक निरूपण करते थे ।

प्रज्ञा युग के अवतरण में हमें उन सभी पुरातन परम्पराओं को नव जीवन प्रदान करना है । इस समय प्रस्तुत समस्याएँ ऐसी हैं जिनका निराकरण विचार

विनिमय अथवा कथन श्रवण भर से न होगा । वरन् ऐसी शक्ति का अर्जन करना होगा जो वृत्रासुर से टक्कर मारने वाली भूमिका सम्पन्न कर सके । ऐसी साधना एकाकी भी हो सकती है और सामूहिक भी । आवश्यकता दोनों की है । निवारण निराकरण की भी और सज्जनता, सर्वोदय की भी । इन उभय पक्षीय प्रयोजनों का संयोजन करने के लिए ऋषि तपस्वी भी चाहिए और मुनि मनस्वी भी । इन दोनों का संयोग सम्मेलन ही उन प्रयोजनों की पूर्ति कर सकेगा जिनकी आज महती आवश्यकता है ।

पिछले दिनों कई बार ऐसे विपत्ति भरे अवसर आये हैं जिनके निवारण के लिए योजनाबद्ध संकट निवारण आयोजन करने पड़े और वे अपने प्रयोजन की पूर्ति में पूरी तरह सफल हुए । एक बार बंगला देश के शरणार्थियों की समस्या सामने आई थी । प्राय: एक करोड़ शरणार्थी बंगाली भारत में घुस पड़े थे । उन्हें वापिस लौटाने का अनुरोध अस्वीकार कर दिया गया । उलटे मुस्लिम बंगाल सरकार ने आक्रमण की धमकी दी और उसकी हिमायत पर अमेरिका के अणु आयुधों से भरे जहाज भारत की सीमा पर आ जुटे । भय का वातावरण आतंक की तरह छाया था । फिर भी भारत ने बहादुरी दिखाई । परिस्थिति का सामना किया और भारतीय सेना की सहायता से मुजीबुर्रहमान जीते और पाकिस्तानियों को परास्त करके अपनी सरकार बनाने में समर्थ हुए । शरणार्थियों की समस्या सरल हुई । अमेरिकी जहाज भी वापिस लौट गये । इसे भारत की अप्रत्याशित विजय माना गया ।

विदित है कि उन दिनों गायत्री परिवार के २४ लाख परिजनों ने एक संयुक्त पुरश्चरण किया था । इसमें निर्धारित जप और नियमित यज्ञ का आयोजन चलाया । जानकारों ने इसे गायत्री द्वारा उत्पादित विराट महाशक्ति का अद्‌भुत चमत्कार माना ।

एक बार भटका हुआ अमेरिकी उपग्रह स्काई लैब नियन्त्रण से बाहर हो गया और उस समय घोषणा की गयी कि वह भारत भूमि पर गिर सकता है । सर्वत्र भय और आतंक छा गया । आश्वासन के लिए अमेरिका सरकार ने क्षति पूर्ति करना स्वीकार किया । अन्तरिक्षयान अत्यधिक बड़ा था और उसके द्वारा विनाश भी बहुत हो सकता था । इन दिनों भी गायत्री परिवार ने एक बड़ा अनुष्ठान सामूहिक रूप से किया । उस प्रार्थना प्रयास की प्रेरणा पर अनेकों देशों के गिरजा घरों में भी प्रार्थना हुई । फलत: वह पथ भ्रष्ट उपग्रह आस्ट्रेलिया के एक ऐसे वीरान क्षेत्र में गिरा जहाँ किसी ने कल्पना तक नहीं की थी । किसी को कोई हानि नहीं हुई । उसे भी समूचे गायत्री परिवार ने आध्यात्मिक शक्ति का एक चमत्कार माना, जिन दिनों भारत में आपात स्थिति लगी थी और अराजकता का माहौल बन रहा था, अनेकों प्रकार की आशंकाएँ छाई हुई थीं । इससे जन जीवन संत्रस्त हो रहा था । उन दिनों भी गायत्री परिवार ने एक सामूहिक अनुष्ठान किया । फलत: परिस्थितियाँ साधारण बन गईं ।

उपरोक्त तीनों पुरश्चरणों से बढ़कर गायत्री परिवार का एक नया पुरश्चरण चला रहा है । उसका उद्देश्य पाकिस्तान की आक्रामक तैयारियाँ, काश्मीर में उलट फेर, असम की उलझन, साम्प्रदायिक विद्वेष में फैली हुई अराजकता का समाधान करना है । उपरोक्त चारों ही समस्याएँ बारूद के ढेर की तरह हैं । उन पर कहीं से भी एक चिनगारी गिर सकती है और अप्रत्याशित संकट खड़े कर सकती है । जलते अलाव पर हाथ सेंकने के लिए पड़ोसी अपने-अपने ढंग से कुचक्र रच रहे हैं । इनमें से कोई एक मिलकर झगड़े या कई एक साथ मिलकर दुरभि संधि रच लें तो क्या परिस्थिति हो सकती है इसका अनुमान लगाने भर से धड़कन तेज होती है । महाविनाश का समय दीखता है । इनके निवारण के लिए गायत्री परिवार का जो शामक पुरश्चरण चल रहा है वह पिछले सभी अनुष्ठानों की संयुक्त शक्ति से बढ़कर है ।

श्री लंका की तमिल समस्या, बंगला देश की सीमा झंझट, प्रान्तीय सरकारों की उथल-पुथल सिर दर्द बन कर रह रही हैं । समाचार-पत्र पढ़ने वाले जानते हैं कि ईरान-इराक-इसरायल-लेबनान-चीन-वियतनाम का झंझट किसी भी दिन विस्फोट बनकर प्रकट हो सकता है । इसके अतिरिक्त अमेरिका की सर्वनाशी महाप्रलय जैसी महायुद्ध की तैयारियाँ खेल खिलौना नहीं हैं । वे अरबों रुपया प्रतिदिन इसलिए खर्च कर रहे हैं कि एक दूसरे के अस्तित्व को धरती पर से मिटा दें ।

युद्ध जो दूर दीखता है पर इतनी निकट है और अपने देश से इतना अधिक सम्बन्धित एवं जुड़ा है कि योद्धाओं से लेकर निरीह निर्दोषों तक का अस्तित्व मिटा दे । युद्ध के अतिरिक्त महँगाई, बीमारी, अपराधी प्रवृत्ति, दुर्भिक्ष, प्रकृति प्रकोप स्तर के संकट इतने बड़े हैं कि जीवित रहते

हुए भी मनुष्य अपने को मृत्यु के निकट देखता और आशंकाओं से आतंकित बना रहता है । इस प्रकार जीवित रहने वाले अपने को मौत से गई गुजरी स्थिति में पाते हैं ।

इन संकटों से किस प्रकार त्राण पाया जायेगा, यह एक बड़ा सवाल है । राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, बुद्धिजीवी वैज्ञानिक सभी अपने-अपने ढंग से सोचते और राहत ढूँढ़ते हैं, पर सभी अपने को असहाय अनुभव करते हैं । विवेकशीलता एक ही केन्द्र पर केन्द्रित होती है कि इतने बड़े संकट का निवारण करने के लिए उतना ही बड़ा उपाय उपचार होना चाहिए । निश्चय ही वह एक ही है अध्यात्म शक्ति का उत्पादन और उसका संकट के सामने प्रयोग उपचार । इन दिनों गायत्री परिवार का सारा ध्यान इसी पर केन्द्रित है और जो कुछ संभव है सो प्राण पण से किया जा रहा है । गायत्री का ब्रह्मास्त्र संधान किया जा चुका है । यों तो प्रस्तुत समय की सबसे विषम सामयिक समस्या है अदृश्य वातावरण में भरती जा रही विषाक्तता की । विकिरण प्रदूषण का भयावह स्वरूप सर्वविदित है। यही नहीं, मानवी चिन्तन की निकृष्टता और दुष्कृत्यों ने प्रकृति को भी विक्षुब्ध बना दिया है । फलत: वह गत एक दशक से अनेकानेक प्रकार के प्रकोप बरसा रही है । भविष्य में इस क्षेत्र में और भी भयावह संकटों की सम्भावना विज्ञजन बताते हैं । असन्तुलित मौसम, अतिवृष्टि, भूकम्प, अनावृष्टि, महामारी, भूस्खलन, तूफान जैसे संकट प्रकृति प्रकोप स्तर के ही हैं । अपराधों, सामूहिक बलात्कारों वधू-दहन जैसे प्रकरणों की वृद्धि दुर्बुद्धिजन्य दुरभि सन्धि ही है । इन सभी के निराकरण में प्रत्यक्ष प्रयास अपने-अपने स्तर पर चलने चाहिए ।

महाप्रज्ञा का-त्रिपदा गायत्री का स्वरूप युग शक्ति के रूप में है । कम अक्षरों में सारगर्भित धर्मशास्त्र तत्वदर्शन के रूप में यह अनादिकाल से उच्चारित किया जा रहा है बुद्धि के आह्वान से भरा मन्त्र है । व्यक्ति के अन्तराल में उतरने पर उसकी त्रिविधि शक्तियाँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर को प्रभावित करती हैं । साधक को मनस्वी, ओजस्वी और तेजस्वी बनाती हैं । दूरदर्शी विचारणा और आदर्शवादी आस्था की परिपक्वता में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है । जब यही शिक्षा विश्व व्यवस्था के क्षेत्र में लागू की जाती है तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना समष्टिगत रूप में कूट-कूटकर भर देती है । इस सम्बन्ध में शास्त्रों-आप्त वचनों का अभिमत तो है ही, आधुनिक काल के मनीषी भी ऐसा मन्तव्य व्यक्त करते रहे हैं ।

आर्थर कोस्लर अपने विवादास्पद रूप में काफी ख्याति प्राप्त फिजिसिस्ट रहे हैं । जीवन के मध्यकाल में वे साम्यवादी से लेकर उसके आलोचक के रूप में बहुचर्चित रहे लेकिन अन्तिम वर्षों में पूर्वार्त्त गुह्यवाद अध्यात्म की ओर उनका रुझान काफी बढ़ गया था । विशेषकर गायत्री मंत्र की शक्ति का उन्होंने एक वैज्ञानिक चिन्तक दार्शनिक की दृष्टि से विवेचन किया और उसे असीम ऊर्जा का स्रोत माना । 'द योगी एण्ड कमिसार', "रुट्स|ऑफ कॉइन्सीडेन्स", "इनसाइट एण्ड आउटलुक", "गॉड दैट फेल्ड", "डार्कनेस एटनून", "व्रिक्स टू बैबेल" जैसी अनेकानेक पुस्तकों के कारण ख्याति प्राप्त इस चिन्तक ने गायत्री मन्त्र पर विशेष अध्ययन किया था और इसके उच्चारण में निहित असीम सामर्थ्य की जानकारी पाश्चात्य समुदाय को देने का प्रयास भी किया ।

युद्धोन्माद से बढ़ते विश्वव्यापी तनाव की सम्भावना को सामने रखते हुए उन्होंने कहा था कि वे इस महाविनाश को देखना नहीं चाहेंगे, इसके पूर्व ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देंगे । भारत के विषय में उन्होंने कहा कि इस राष्ट्र को जो अध्यात्म सम्पदा का धनी है, आयुध निर्माण-संग्रह से दूर ही रहना चाहिए । क्योंकि उसके पास गायत्री मन्त्र के रूप में एक विज्ञान सम्मत ऊर्जा शक्ति है । यदि भारतवासी एक साथ इस मन्त्र का उच्चारण आरम्भ करें तो इससे उद्भुत ऊर्जा आणविक विभीषिका को टाल सकती है । समूह शक्ति के साथ जुड़ी इस मन्त्र के अर्थ की विशिष्टता तथा छन्द के रूप में शब्द ऊर्जा का गुंथन सारे विश्व को सम्भावनाओं से मुक्त कर सकता है ।

यह एक ऐसे मनीषी का मत है जो अब इस धरती पर नहीं है पर जिसके चिन्तन ने विश्व मानस पर एक अमिट छाप छोड़ी है । सामूहिक उपासना का जो स्वरूप उन्होंने महाप्रज्ञा के अनुष्ठान के रूप में अनुमोदित किया है, वह प्रज्ञा परिजनों द्वारा आरम्भ किया जा चुका । नैष्ठिक साधना के रूप में तो युग सन्धि की उपासना साथ चल ही रही है । जन-मानस में आद्य शक्ति के युग शक्ति के रूप में बदलने की सम्भावना को साकार होते देखने में अब कोई संशय नहीं रहना चाहिए ।

युग निर्माण परिजनों का देव परिवार प्रस्तुत विषम बेला में नियति की चुनौती को लेकर सामने आया है ।

हर बसन्त पर उसे अभिनव प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं और परिवर्तन की महान प्रक्रिया सम्पन्न करने के लिए क्रमिक जिम्मेदारियाँ उनके कंधों पर लदती रही हैं । सन् १९८० के बसन्त पर उसे प्रकृति और नियति की विभीषिकाओं से जूझने तथा उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए जुटने के दुहरे उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं । इसे लंका दहन और रामराज्य स्थापना के लिए अंगद, हनुमान द्वारा निभाई गई दुहरी भूमिका समझा जा सकता है ।

इस भूमिका का स्वरूप है सन् १९८० से आरम्भ होकर सन् २००० तक चलने वाली बीस वर्षीय युग परिवर्तन योजना । इसे चार पंच वर्षीय योजनाओं में विभाजित किया गया है । विरामों पर ठहरते हुए एक-एक बाद दूसरा कदम उठाना ही उपयुक्त होता है । एक-एक मोर्चा जीतते हुए एक-एक सीढ़ी पर कदम बढ़ाते हुए समग्र सफलता के लक्ष्य तक पहुँचना ही उपयुक्त है । बसन्त अपना अध्यात्म वर्ष है । इसे प्रेरणा पर्व के रूप में मनाया जाता रहा है । इस बार उसमें आपत्तिकालीन परिस्थितियों के अनुरूप साहसिक कार्यक्रमों का नियोजन हुआ है ।

सन् ८० से सन् २००० तक चलने वाली चार पंचवर्षीय युग परिवर्तन योजना में पाँच कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित करने और उन्हें सुदृढ़ परिपक्व बनाने का सन्देश सामने आया है ।

उसके पाँच कार्यक्रम इस प्रकार हैं—

**(१) जाग्रत आत्माओं की विशिष्ट उपासना**

(अ) नित्य नियमित रूप से गायत्री मन्त्र की न्यूनतम पाँच मालाओं का जप, साथ में प्रातःकाल उगते सूर्य का ध्यान । उस आलोक से स्थूल शरीर में सत्कर्मों की-सूक्ष्म शरीर में-सद्विचारों की-कारण शरीर में सद्भावों की क्रमिक अभिवृद्धि ।

(ब) **दिवाली से होली तक प्रातः ५॥ बजे और होली से दिवाली तक ४॥ बजे पन्द्रह मिनट चलने वाली** प्राण आकर्षण की विशेष साधना । गहर सांस खींचते हुए उसके साथ हिमालय के प्रेषित विशेष प्राण प्रवाह को खींचना और अपने कण-कण में उसे धारण करना ।

(स) **रात्रि को ८॥ बजे पूरे २० वर्ष तक चलने** वाली पन्द्रह मिनट की नियति सन्तुलन साधना । सांस भीतर खींचना । इड़ा मार्ग से मूलाधार तक प्राण का ले जाना । प्राण और कुण्डलिनी का मन्थन । उत्पन्न ऊर्जा का सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरंध्र तक लाना और वहाँ से अनन्त अन्तरिक्ष में नियति सन्तुलन के लिए बखेर देना । श्वांस को पिंगला मार्ग से निकाल देना । फिर पिंगला से खींचकर इड़ा से निकालने के साथ ही प्राण प्रयोग दुहराना ।

ध्यान धारणा के माध्यम से देव प्राण को अपने में आकर्षित एवं अवधारित किया जाता है । साथ ही उस अनुदान में अपना प्राण योगदान मिलाकर अनन्त अन्तरिक्ष में नियति अनुकूल बनाने के उद्देश्य से बखेर दिया जाता है । यह जाग्रत आत्माओं की व्यक्तिगत साधना देखते हुए सामूहिक सम्भव महान आत्म-शक्ति का उद्भव करते हैं । इसकी विशेषता नियत समय का परिपालन आवश्यक है । घड़ी की सहायता से ही यह सम्भव हो सकता है । **यों इसे किया तो आगे-पीछे भी जा सकता है, पर तब उसका लाभ व्यक्तिगत ही रह जायगा । यह विश्व-शान्ति की सामूहिक साधना तभी बनेगी जब अधिकाधिक व्यक्ति एक ही समय, एक ही भावना से, एक निष्ठ होकर समष्टि शक्ति उत्पन्न करने की दृष्टि से उसे सम्पन्न करें ।**

**(२) जीवन साधना**

जाग्रत आत्माओं को इसका नियमित शुभारम्भ 'आहार' की सात्विकता और 'विहार' की शालीनता की दृष्टि से कुछ संकल्प करते हुए करना चाहिए । व्रत चाहे छोटा-सा ही है, पर उसका परिपालन संकल्प पूर्वक समग्र निष्ठा के साथ किया जाय ।

आहार में सात्विक पदार्थ ही सम्मिलित रखे जायें । राजसी और तामसी वर्ग के घटाने और हटाने का प्रयत्न करें । मद्य, मांस से बचें । अनीति उपार्जित एवं अनुपयुक्त वातावरण में पकाया, अवांछनीय व्यक्तियों द्वारा परोसा हुआ न हो ।

बिहार में यथासम्भव ब्रह्मचर्य पर अधिक ध्यान दिया जाय । वस्त्र, आभूषण शृंगार आदि उपकरणों में सादगी बरती जाय । आलस्य और अपव्यय छोड़ें । अशिष्टता न बरतें । अनीति न अपनायें । स्वार्थ को सीमित और परमार्थ को विकसित करें ।

**(३) सामूहिक साधना**

गायत्री यज्ञों की सामूहिक साधना का क्रम नियमित रूप से जारी रखा जाय । हर पूर्णिमा को मासिक यज्ञ हो। सभी जाग्रत आत्माएँ अपने साथियों समेत

सम्मिलित हों । बसन्त पर्व, गायत्री जयन्ती, गुरु पूर्णिमा को अखण्ड जप किया जाय । समाप्ति पर यज्ञ । दोनों नवरात्रियों में नौ-नौ दिन के सामूहिक अनुष्ठान सम्पन्न किये जायें ।

**(४) सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन**

यह कार्य परिवारों में धार्मिक वातावरण बनाने से आरम्भ किया जाय । पंचशीलों का परिपालन, पांच आहुति का बलि वैश्व । नियमित नमन बन्दन । कथा प्रसंग स्वाध्याय की अनिवार्यता । जन्म दिन संस्कारों का प्रचलन । शाखा संगठनों के माध्यम से सृजनात्मक प्रवृत्तियों के सामूहिक प्रयास ज्ञान यज्ञ के लिए सुनिश्चित अंशदान ।

**(५) दुष्प्रवृत्ति निराकरण**

वैयक्तिक कषाय-कल्मषों और सामाजिक अवांछनीय प्रचलनों के उन्मूलन का प्रयास । मूढ़ मान्यताओं और भ्रष्ट परम्पराओं का उन्मूलन । मानवी मर्यादा को घटाने वाले आचरणों का असहयोग एवं विरोध ।

उपरोक्त पाँच कार्यक्रम ऐसे हैं जिन्हें अपनाने के लिए निरन्तर कहा जाता रहा है । उनका परिपालन भी किसी न किसी रूप में होता है । युग परिवर्तन की इन पंचवर्षीय योजनाओं में विशेषता यह रहेगी कि सभी जाग्रत आत्माएँ इनका परिपालन शिथिलता, उपेक्षा के साथ नहीं वरन् सुदृढ़ निष्ठा के साथ सम्पन्न करेंगी । शिथिलता एवं प्रमाद नहीं बरतेंगी । इन पाँचों कार्यक्रमों को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जायगा । अपने सम्पर्क क्षेत्र में इन पाँचों प्रवृत्तियों के बीजारोपण एवं सिंचन का परिपूर्ण प्रयत्न किया जायगा । चुनाव के दिनों में प्रत्याशी जिस प्रकार वोट माँगने के लिए घर-घर जाते और जन-जन से भावभरा आग्रह करते हैं वही नीति जाग्रत आत्माओं द्वारा अपने समूचे सम्पर्क क्षेत्र में अपनाई जायगी । आजीविका उपार्जन की तरह ही इन कार्यों को वास्तविक लाभ एवं श्रेष्ठतम परमार्थ मान कर पूरा किया जाता रहेगा ।

यह तथ्य सभी को ध्यान रहना चाहिए कि अन्तरक्षीय शक्तियां जिस प्रकार पृथ्वी को, उसकी परिस्थितियों को तथा प्राणियों को प्रभावित करती हैं । ठीक उसी प्रकार प्राणवान आत्माएँ अपनी आत्मशक्ति से प्रकृति और नियति को प्रभावित और परिवर्तित करने में समर्थ हो सकती हैं । तरह-तरह के यन्त्र प्रकृति को प्रभावित करते हैं । मनुष्य एक ऐसा यन्त्र है जिसमें वे सभी यन्त्र फिट हैं जो प्रकृति को प्रभावित एवं परिवर्तित कर सकें ।

भावी अशुभ सम्भावनाओं को निरस्त करने के लिए अपने देव परिजनों को उसी तत्परता से कटिबद्ध होना चाहिए जैसे कि वे बंगला देश की गड़बड़ी, चीनी आक्रमण, पाकिस्तानी हमला, आपत्तिकालीन, स्काईलैब आदि की विपत्तियों के निवारण सफलतापूर्वक कर चुके । अब की बार आशंकाएँ बढ़ी हैं इसलिए हमारे सुरक्षा प्रयास भी बढ़े-चढ़े होने चाहिए । उसी का प्रारूप इस बसन्त पर्व के अवसर पर प्रस्तुत किया गया और उसमें परिपूर्ण सहयोग देने के लिए समस्त देव परिजनों को आमंत्रित किया गया है ।

● ● ●

गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि ८.१

# सामूहिक धर्मानुष्ठानों की अभूतपूर्व प्रक्रिया

## अदृश्य के परिशोधन में धर्मानुष्ठानों की भूमिका

वृक्ष का तना आँखों से दीखता है पर उसमें जीवन संचार करने वाली जड़ें जमीन में नीचे दबी होती हैं, दीखती नहीं । मनुष्य का शरीर दीखता है, प्राण नहीं । परिस्थितियों का आँकलन होता है पर उनके पीछे कठ-पुतली के धागों जैसा सूत्र संचालन करने वाली मनः-स्थिति का समझने-समझाने की ओर ध्यान ही नहीं जाता। यही बात दृश्यमान भली-बुरी परिस्थितियों के सम्बन्ध में भी है । अनुकूलता और प्रतिकूलता से सम्बन्धित घटनायें—हलचलें—समस्यायें दृष्टिगोचर होती हैं और आमतौर से उनके उपचार साम, दाम, दण्ड, भेद के आधार पर सोचे, खोजे और कार्यान्वित किये जाते रहते हैं । यह उचित भी है और आवश्यक भी, किन्तु इतने भर को पर्याप्त नहीं माना जाना चाहिए ।

निशाने पर गोली लगती है और बन्दूक उसे चलाती है । इस प्रत्यक्ष के पीछे चलाने वाले का अभ्यास और साहस भी परोक्ष रूप से काम करता है उसके अभाव में कारतूस और बन्दूक सब प्रकार ठीक होने पर भी काम बनता नहीं । पौष्टिक आहार और कारगर औषधि उपचार की महिमा अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं पर पाचन तन्त्र का सही होना भी कम आवश्यक नहीं । यहाँ भी प्रत्यक्ष की तुलना में परोक्ष की गरिमा कम नहीं आँकी जा सकती । अच्छी पौध लगाने से ही बगीचा खड़ा नहीं हो जाता, भूमि की उर्वरता, मौसम की अनुकूलता तथा माली की कुशलता भी उसके लिए आवश्यक है । अच्छे विद्यालय की भर्ती और सुयोग्य अध्यापक की नियुक्ति से ही कोई विद्वान नहीं हो जाता इसमें छात्र की लगन और मेधा अपनी भूमिका निभाती है ।

व्यक्ति और समाज के सम्मुख प्रतिकूलताओं, कठिनाइयों, समस्याओं के समाधान के निराकरण और अभिवर्धन के कडुये—मीठे उपचार करने और साधन जुटाने होते हैं । प्रताड़ना और सहायता अपना-अपना काम करती हैं । इतने पर भी परोक्ष वातावरण की अनुकूलता-प्रतिकूलता की सफलता-असफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है । विज्ञजन उस सम्बन्ध में भी आवश्यक ध्यान रखते हैं । फसल उगाने के लिए वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा करते हैं अथवा अन्य उपायों से खेत को नम रखने का प्रबन्ध करते हैं । परोक्ष के सम्बन्ध में उपेक्षा बरतने से काम चलता नहीं । साधनों की तरह पराक्रम का भी—परिस्थितियों की तरह भावनाओं का भी ध्यान रखना होता है । परोक्ष भी प्रत्यक्ष से कम महत्वपूर्ण नहीं है । महत्वपूर्ण प्रसंगों के सम्बन्ध में तो यह और भी अधिक आवश्यक है । युग परिवर्तन जैसे व्यापक और विशद् प्रयोजनों में प्रत्यक्ष से भी अधिक परोक्ष का योगदान रहता है ।

रावण के आसुरी आतंक का निवारण करने के लिए लंका काण्ड महायुद्ध होने, लंकादहन से लेकर सेतुबन्ध बाँधने तक की बात सर्वविदित है । युद्ध में भयंकर रक्तपात हुआ था और अन्ततः राम को विजय का श्रेय मिला था । सीता वापस लौटी और राज्याभिषेक का उत्सव हुआ था । रामचरित्र के ज्ञाता उस प्रसंग को भली भाँति जानते हैं । समझा जाता है कि इतने भर से ही तात्कालीन समस्या का समाधान हो गया होगा। सुख चैन की परिस्थितियाँ बन गयी होंगी ।

तत्कालीन तत्वदर्शियों ने एकत्रित होकर यह निष्कर्ष निकाला था कि अदृश्य में संव्याप्त विषाक्तता ने उन दिनों लंका से लेकर, चित्रकूट, पंचवटी तक अगणित असुरों को उपजाया और आतंक बढ़ाया था । उसका अदृश्य घटाटोप लंका विजय के उपरान्त भी यथावत् बना हुआ था । कुछ ही समय के उपरान्त उसी दुःखद घटनाक्रम की फिर पुनरावृत्ति होती कुछ के मर जाने पर रक्तबीज की तरह नये असुर उत्पन्न होते और नये उपद्रव खड़े करते । इसलिए राम विजय को पर्याप्त न माना जाय, अदृश्य का परिशोधन भी किया जाय । इनके लिए जिन अध्यात्म उपचारों की आवश्यकता थी उनकी विज्ञजनों द्वारा व्यवस्था बनाई गयी थी । दस अश्वमेध यज्ञों की योजना बनी और सम्पन्न हुयी थी । काशी का दशाश्वमेध घाट, भगवान राम के द्वारा सम्पन्न हुयी अदृश्य परिशोधन की उस मात्र श्रृंखला की अभी भी साक्षी प्रस्तुत करता है ।

जड़ बनी रहने पर टहनी कटने से भी कुछ बनता नहीं । जड़ें नयी कौंपलें उगाती रहती हैं । प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ ही दिन बाद दूसरा विश्वयुद्ध और भी

भयंकर रूप से लड़ा गया । दूसरे के बाद तीसरे की तैयारी तथा विनाश विभीषिका और भी बढ़ी-चढ़ी है । चम्बल क्षेत्र के डाकू निपटते ही नहीं । कितने ही पकड़े गये, कितने मरे, कितनों ने आत्म-समर्पण किये पर वह आतंक अपने स्थान पर यथावत् विद्यमान है । सभी जानते हैं कि स्वच्छता का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण सड़न से अगणित मक्खी-मच्छर पैदा होते रहते हैं । मलेरिया विभाग के अधिकारी मच्छर मारने के लिए अपने तोप तमंचों का भरपूर प्रयोग करते हैं । टनों डी. डी. टी. की बमबारी होती है किन्तु मच्छर हैं जो टस से मस नहीं होते। वरन् और भी अधिक ढीठ बनते जाते हैं । उनने अपनी प्रकृति ही विष भक्षण की बना ली है । स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष उपचार ही सब कुछ नहीं है । उसके लिए गन्दगी और नमी का भी निराकरण करना होगा । पत्ते तोड़ने की अपेक्षा अधिक अच्छा यह है कि जड़ पर कुल्हाड़ा चलाया जाय ।

लंका विजय और रामराज्य स्थापना के बीच दस अश्वमेधों की श्रृंखला यह बताती है कि वातावरण में छाई हुयी विषाक्तता का निराकरण और अदृश्य जगत में देवत्व का अभिवर्धन एक ऐसा आयोजन था जिसे महायुद्ध और महासृजन की मध्यवर्ती कड़ी कहा जा सकता है । दो पहियों के बीच में वह धुरी आँखों से ओझल रहने पर भी कम आवश्यक नहीं होती ।

कृष्णावतार के समय भी इसी उपक्रम की पुनरावृत्ति हुयी । कंस, दुर्योधन, जरासंध, शिशुपाल जैसों से निपटने के लिए श्रीकृष्ण ने ध्वंस लीला रची । महाभारत युद्ध भी लड़ा गया । पाण्डव जीते । इसके उपरान्त परीक्षित के नेतृत्व में द्वापर में सतयुग की झलक दिखाने तथा संगठित राष्ट्र को चक्रवर्ती आवश्यकता पूर्ण करने की व्यवस्था बनी । महाभारत का तात्पर्य था विशाल भारत। उस लक्ष्य की पूर्ति भली प्रकार हुयी । तत्कालीन भारत का नक्शा समूचे जम्बू द्वीप के साथ गुंथा हुआ दीखता है।

यह ध्वंस और सृजन की उभयपक्षीय प्रक्रिया हुयी । इतना बन पड़ने पर भी अदृश्य जगत में भरी हुयी विषाक्तता का निराकरण आवश्यक था अन्यथा कुछ ही समय उपरान्त उस अनाचार की पुनरावृत्ति होने लगती । नये कंस, दुर्योधन उपजते और नये महाभारत की आवश्यकता पड़ती । भगवान कृष्ण ने उस परोक्ष समस्या का निराकरण आवश्यक समझा और प्रख्यात राजसूय यज्ञ के रूप में वातावरण परिशोधन का अध्यात्म उपचार नियोजित किया । उससे कुछ तो काम चला पर अधूरापन रह जाने के कारण कुछ ही समय उपरान्त परीक्षित पुत्र जन्मेजय ने नाग यज्ञ के नाम से विष परिशोधन का दूसरा अध्यात्म उपचार सम्पन्न किया ।

भगवान राम और भगवान कृष्ण द्वारा नियोजित उपरोक्त दो घटनायें सर्वविदित हैं । पुरातन इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि समय-समय पर ऐसे ही अनेक उपचार सम्पन्न होते रहे हैं । पीछे तो उनकी एक क्रमबद्ध व्यवस्था परिपाटी ही बन गयी ताकि कूड़े का ढेर जमा होने पर सफाई करने की अपेक्षा साथ की साथ बुहारी लगती, धुलाई होती और फिनायल छिड़की जाती रहे ।

विशेष पर्वों, विशेष तीर्थों में धर्मानुष्ठान होते रहने की परम्परा उसी उद्देश्य के निमित्त बनी और चली । तीन-तीन वर्ष बाद हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक कुम्भ आयोजन ऐसे ही हैं जिनमें साधनात्मक उपचार और ज्ञान यज्ञ की उभयपक्षीय व्यवस्था साथ-साथ चलती थी । प्रस्तुत समस्याओं पर मूर्धन्य मनीषियों द्वारा गम्भीर विचार विनिमय करके किन्हीं निर्णय निष्कर्मों पर पहुँचा जाता था । बड़ी संख्या में धर्मप्रेमी उस अवसर पर उपस्थित होते थे और विद्वज्जनों के निर्धारणों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व कन्धे पर लेकर प्रयाण करते थे । ऐसे ही बड़े सम्मेलन आयोजन बुद्ध काल में भी संघारामों के माध्यम से सम्पन्न होते थे । उनमें उन सभी देश क्षेत्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे, जिनमें बौद्ध धर्म का प्रचार पहुँच पाया था ।

बड़े और केन्द्रीय बाजपेय यज्ञों को छोटे क्षेत्रीय एवं स्थानीय धर्म समारोहों में बाँटा गया । उनके लिए तिथि, समय, स्थान बार-बार बदलने के स्थान पर यह उचित समझा गया कि किसी पर्व पर किसी तीर्थ में ऐसे आयोजन हर वर्ष होते रहे । उनका क्रम निरन्तर जारी रहे। इस विकेन्द्रीकरण का सबसे बड़ा लाभ यह समझा गया कि समीपवर्ती धर्म प्रेमी उनमें सरलतापूर्वक पहुँच सकें जबकि दूरवर्ती बड़े आयोजनों में उनका पहुँच सकना समय साध्य, श्रम साध्य और व्यय साध्य होने के कारण कठिन असुविधाजनक पड़ता । इन दिनों भी अनेकानेक तीर्थों में नियत पर्वों पर हर साल धार्मिक मेले होते हैं । यद्यपि आज उनका रूप विकृत उपहासास्पद जैसा हो गया है और वे मनोरंजक व्यवस्थापक मेले ठेलों में अधिक कुछ रह नहीं गये हैं तो भी अतीत के उद्देश्यों की झाँकी

किसी न किसी रूप में मिलती है । खण्डहरों को देखकर भी यह अनुमान लगता है कि वहाँ कभी कितने भव्य भवन खड़े रहे होंगे ।

इन दिनों के धार्मिक मेले कभी क्षेत्रीय आयोजन थे जिनमें साधना यज्ञ और ज्ञानयज्ञ का समान समन्वय रहा तो था । प्रज्ञा अभियान द्वारा उस पुरातन परम्परा का नये रूप में जीर्णोद्धार करने का प्रयत्न किया है । गायत्री यज्ञ और युग निर्माण सम्मेलन की संयुक्त समारोह प्रक्रिया बहुत समय से चल रही है । इसका शुभारम्भ स्वरूप निर्धारण सन् ५७ में गायत्री तपोभूमि मथुरा में सम्पन्न हुये सहस्र कुण्डीय गायत्री महायज्ञ से सम्पन्न हुआ था । उस अवसर पर देश के कोने-कोने से प्राय: चार लाख की संख्या में धर्म क्षेत्र की मूर्धन्य प्रतिभायें एकत्रित की गयी थीं और उनके प्रभाव सहयोग से धर्मतन्त्र से लोकशिक्षण का प्रयोग देशव्यापी बनाया गया था । जो अब बढ़ते-बढ़ते समस्त संसार में युगान्तरीय चेतना का आलोक वितरण कर रहा है । मत्स्यावतार की तरह उसकी प्रगति देखते ही बनती है ।

इन दिनों वाणी अत्यधिक मुखर हुयी है । उसके पीछे ऊर्जा का नियोजन करने वाली साधना उपेक्षा के गर्त में गिर पड़ी है । यही कारण है कि जहाँ देखा जाय वहाँ छोटे बड़े जन समारोहों में मात्र गीत प्रवचन भर की उछल-कूद होती रहती है । प्रचारात्मक, उत्तेजनात्मक प्रयोजन ही इनके सहारे पूर्ण होता है । भावनात्मक आध्यात्मिक-अदृश्य को प्रभावित करने वाले—प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने वाले धर्मानुष्ठानों का समन्वय भी रहना चाहिए यह तथ्य विस्मृत हो जाने के कारण विभिन्न संस्थायें अपने-अपने वार्षिकोत्सव गीत मंगल के साथ धूमधाम से सम्पन्न करती रहती हैं । राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक संस्थाओं के छोटे-बड़े समारोह आये दिन देखने को मिलते रहते हैं । पर इस प्रचलन के पीछे काम करने वाली—भावनात्मक, श्रद्धासिक्त वातावरण बनाने वाली प्रक्रिया के दर्शन नहीं होते जिसे कभी सामूहिक धर्मानुष्ठान कहा और अत्यधिक महत्व दिया जाता था । प्राचीन काल के सतयुगी प्रचलनों के पीछे तत्कालीन समाज व्यवस्था तो प्रत्यक्ष थी ही । परोक्ष रूप में उन धर्मानुष्ठानों सहित सम्पन्न होने वाले ज्ञान यज्ञों का भी कम महत्व न था जिन्हें बाजपेय यज्ञ कहा जाता था । जिनका जनमानस के परिष्कार और अदृश्य वातावरण के अनुकूलन में असाधारण योगदान रहता था । प्रज्ञा पुरश्चरण आयोजनों के माध्यम से अब उस अस्त-व्यस्त पराक्रम को नये सिरे से पुनर्जीवित किया जा रहा है । प्रस्तुत विपन्नताओं के समाधान में उनका असाधारण योगदान होगा, यह सुनिश्चित है ।

## सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा अदृश्य का परिशोधन

परोक्ष वातावरण जब कुपित होता है, तो उसका परिणाम प्रत्यक्ष जगत में स्पष्ट परिलक्षित होने लगता है । आयुर्वेद के मर्मज्ञ जानते हैं कि शरीर में जब बात, पित्त, कफ, सन्तुलन बिगड़ जाता है, तो वह बुखार, खाँसी, सन्निपात जैसी भाँति-भाँति की बीमारियों के रूप में सामने आता है । इसका उपचार भी वे उस समीकरण को सही करके ही पूरा करने में सफल हो पाते हैं । यदि औषधियाँ व्याधि के अनुरूप न दी जायँ, तो रोग का जड़-मूल से नष्ट कर पाना उनके लिए असंभव हो जाता है ।

वर्तमान समय में आये दिन घटित होने वाली विभीषिकाओं के बारे में भी ऐसा ही समझा जाना चाहिए । दुर्भिक्ष, भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट, महामारी, सूखा, सौर कलंकों की श्रृंखला और उनका अवांछनीय प्रभाव यह सब उसी क्रिया की प्रतिक्रिया है, जो परोक्ष जगत में समायी विषाक्तता के रूप में समय-समय पर प्रकट होती रहती है । चोट जब तक नासूर नहीं बनती तब तक वह दबी पड़ी रहती है, किन्तु ज्योंही वह समय की एक विशेष सीमा-रेखा को पार करती है, विष के रूप में समाया मवाद शरीर फोड़ कर प्रत्यक्ष हो जाता है ।

इन दिनों मनुष्य की गतिविधियाँ कुछ ऐसी बन पड़ रही हैं, जो श्रेष्ठता को बढ़ावा न देकर दुष्टता और भ्रष्टता को ही गतिमान बनाने में लगी हुई हैं । यदि इसके मूल में समाये कारणों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो इसका हेतु एक ही दृष्टिगोचर होगा-चिन्तन की विकृति थोड़े साधन में संतोष न कर पाने का दुर्भाग्य । प्राचीन समय में न तो आज जैसी साधन-सुविधा थी और न विश्व के एक कोने से दूसरे कोने में क्षणमात्र में पहुँचने का उपाय-उपचार । फिर भी लोग आज के 'तथाकथित विकसित युग से अधिक शान्ति और संतोषपूर्वक जीवन

बिताते देखे जाते थे । उनमें न तब अवांछनीय आकांक्षा थी, और न आज जैसी महत्वाकांक्षा । इसी महत्वाकांक्षा ने मनुष्य को साधन-सुविधाओं की दिशा में प्रवृत्त किया और जो नहीं किया जाना चाहिए उसे भी कर गुजरने के लिए प्रोत्साहित किया । यहाँ महत्वाकांक्षा से तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि मनुष्य में यह होनी ही नहीं चाहिए । यह उन्नति-प्रगति का एक आवश्यक अंग है । मनुष्य जीवन में इसका सर्वाधिक और सर्वोपरि महत्व है । इसका होना नितान्त आवश्यक है, किन्तु शर्त एक ही है कि यह महत्वाकांक्षा ओछी न हो, वरन् उच्च आदर्शों के प्रति हो, अपने जीवन में ग्रहण-धारण करने से सम्बन्धित हो, साथ ही साथ उसमें सर्वोन्नति की भावना भी निहित हो। यदि आरम्भ से मनुष्य में उन्नति करने की महत्वाकांक्षा न रही होती, तो आज वह इस विकसित सभ्यता को जन्म दे सकने में नितान्त असमर्थ होता । पर महत्वाकांक्षा की यह आकांक्षा सर्वग्राही सर्वभक्षी तब सिद्ध होने लगती है, जब वह आकाश-कुसुम खिलाने की बात सोचने और करने लग जाता है ।

आज यही हो रहा है । औद्योगीकरण के अन्तर्गत कल कारखाने पूरे संसार में इस कदर इतनी तेजी से वृद्धि कर रहे हैं कि जितना मनुष्य को उनसे लाभ नहीं मिल पा रहा है, उससे अनेक गुना अधिक हानि उठानी पड़ रही है। इससे न सिर्फ हवा, अपितु मिट्टी, पानी और सूक्ष्म जगत बेहिसाब विषाक्त होते जा रहे हैं । जनंसख्या का विस्फोट भी बरसाती उद्भिजों की तरह इस भाँति विस्तार करता जा रहा है कि मनुष्य को रहने के लिए धरती की कमी महसूस होने लगी । इस स्थिति में उसने वातावरण को शुद्ध बनाने वाले जंगलों का भी सफाया करना आरम्भ कर दिया । वर्षों से चले आ रहे इस अभियान के कारण आज संसार भर में यह स्थिति है कि अब जंगल पहले की तुलना में इतने थोड़े रह गये हैं कि वातावरण संशोधन की प्रक्रिया पूरी करने में वे सर्वथा अक्षम साबित हो रहे हैं । बात यहीं तक सीमित होती, तो किसी हद तक संतोष की साँस ली जा सकती थी, किन्तु जब आत्मघाती सरंजाम दिन दूनी रात चौगुनी की दर से बढ़ते ही चले जायँ और उसके निराकरण के उपाय-उपचार नहीं के बराबर हों, तो फिर शरीर में जगह-जगह घाव के उपजने और पीड़ा दायक त्रास की अनुभूति कराने जैसे ही दृश्य यत्र-तत्र-सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगते हैं । इन दिनों की बाढ़, बीमारी एवम् इसी प्रकार के अन्यान्य प्रकृति प्रकोपों के सूक्ष्म जगत का ऐसा ही उपक्रम समझा जाना चाहिए ।

इस बिन्दु पर एक ही प्रश्न उठता है कि उल्टी सोच के कारण जो उल्टे कदम उठ पड़े, इससे परोक्ष जगत को जो अपरिमित हानि हुई, उसकी भरपाई कैसे की जाय ? उसका निराकरण क्या हो ? इस सम्बन्ध में एक ही बात कही जा सकती है कि सूक्ष्म स्तर की विषाक्तता को प्रदूषण को सूक्ष्म स्तर के प्रयोग द्वारा ही ठीक किया जा सकता है । स्थूल प्रयोगों द्वारा ऐसा कर पाना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है । विश्व के कितने ही देशों में वातावरण में बढ़ती कार्बन डाइऑक्साइड को ऑक्सीजन में बदलने की कितनी ही मशीनें बनीं और इसी से सम्बन्धित अनेकानेक प्रकार के प्रयोग-परीक्षण हुए और हो रहे हैं, पर इतने से ही परोक्ष जगत में समायी विषाक्तता को सही कर देने का दावा नहीं किया जा सकता । यह तो एक प्रकार के प्रदूषण का संशोधन हुआ, मगर अदृश्य जगत में एकमात्र प्रदूषण यही तो नहीं है । उसमें वैचारिक असुरता से लेकर न जाने कैसी-कैसी कितनी विषाक्तता भरी पड़ी है जिसका निवारण, निराकरण अध्यात्म स्तर के इन्द्रवज्र जैसे विशाल प्रयोगों से ही सम्भव है । गायत्री अखण्ड जप के विश्वव्यापी कार्यक्रम में इसी स्तर के महान उपचार हैं जिनसे कम में अदृश्य जगत को शुद्ध कर पाना सरल नहीं ।

ज्ञातव्य है कि महत्वपूर्ण कार्यों और प्रयत्नों के लिए संयुक्त शक्ति का जुटाना आवश्यक होता है । भौतिक क्षेत्र में तो ऐसा ही हो सकता है कि तोप का एक गोला सौ गोलियों जितना काम कर दे पर अध्यात्म क्षेत्र में वैसा नहीं है । एक बड़े बल्व के जलने की अपेक्षा यहाँ सौ दीपकों का महत्व अधिक माना जाता है । यों भौतिक क्षेत्र में भी छोटी-छोटी इकाइयों से मिलकर एक बड़ी संरचना बनने की बात को सर्वथा नकारा भी नहीं जा सकता । तिनकों के मिलने से एक मजबूत रस्सी बनती है । कई सींक मिल कर बुहारी बनाती हैं । सभी जानते हैं कि छोटी-छोटी ईंटों का योग न हो, तो भव्य भवन का बनना कदापि सम्भव नहीं है ।

मनुष्य में शरीर और प्राण दोनों हैं । शरीर में बल और प्राण में जीवन रहता है । शरीर की संयुक्त शक्ति जितनी बनती है, उसकी क्षमता से एक यंत्र मानव बन सकता है, किन्तु हर व्यक्ति की जो अपनी-अपनी सूझ व जीवट होती है, उसका भी तो महत्व है । इसलिए सेना में अधिकाधिक सुयोग्य सैनिकों की आवश्यकता पड़ती है। अस्त्र-शस्त्रों की न्यूनाधिकता उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी

कि सैनिकों का कौशल, साहस और पराक्रम । यह जीवन्तों की विशेषताएँ हैं । इसलिए प्रीतिभोजों व जुलूसों, उत्सव-आयोजनों में जनशक्ति के सहारे शोभा बनती है । एक-दो सेनापति, धनाढ्य विद्वान, नेता को विराजमान कर देने से न जुलूस बनता है, न समारोह । भौतिक क्षेत्र में एक और एक मिल कर दो ही होते हैं, पर अध्यात्म जगत में बात नितान्त इससे भिन्न होती हैं, वहाँ एक-एक मिल कर ग्यारह बनने का ही सिद्धान्त काम करता है । मुसाफिरखानों की भीड़ में एक स्वभाव एक शिक्षण एक लक्ष्य वाले सैनिकों की संयुक्त शक्ति कैसा गजब ढाती है, यह किसी से छिपा नहीं है ।

यह सामूहिक बल का परिणाम है । सूर्य की किरणें तो सभी जगह बिखरी पड़ी रहती हैं, पर इस स्थिति में वह सामान्य आभा-ऊर्जा ही संसार को दे पाती हैं किन्तु उन्हीं किरणों को जब आतिशी शीशे के माध्यम से पुंजीभूत करके किसी लक्ष्य पर संधान किया जाता है, तो परिणति आग के गोले के रूप में सामने आती है । सैनिक जब किसी पुल के ऊपर से होकर गुजरते हैं, तो कप्तान की ओर से उन्हें यह निर्देश मिलता है कि वे कदम मिला कर न चलें । इससे उत्पन्न कम्पन के संयुक्त प्रभाव से पुल टूटने का खतरा रहता है ।

साधना क्षेत्र में यों होती तो व्यक्तिगत एवं एकान्तिक साधनाएँ भी हैं, पर उनका लक्ष्य, प्रयोजन एवं सामर्थ्य सीमित होने के कारण साधक तक ही उसका लाभ परिमित होकर रह जाता है । सर्वजनीन समाधान एवं संवर्धन के लिए यदि कोई बड़ा कदम उठाने की आवश्यकता हुई है, तो सदा समन्वित सहयोगी प्रयत्नों की आवश्यकता समझी और पूरी की गई है, प्राचीन समय में राजतंत्र द्वारा राजसूय यज्ञ व धर्मतंत्र द्वारा बाजपेय यज्ञ ऐसे ही प्रयोजनों के व्यापक निराकरण के लिए आयोजित किये जाते थे । उन्हें समारोह, सम्मेलन, आयोजन, संवर्धन सह प्रयत्न की भी संज्ञा दी जा सकती है । जो काम विद्वान मंडली या दो-चार तपस्वी एवं शासक वर्ग अपने सीमित पराक्रम से सम्पन्न नहीं कर सकते थे, उसे मध्यवर्ती भावनाशीलों की संयुक्त शक्ति से सम्पन्न कर लिया जाता था ।

उन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अदृश्य जगत के परिशोधन एवं परिमार्जन हेतु बड़े पैमाने पर गायत्री मंत्र का ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान स्थान-स्थान पर आयोजित करने की इन्हीं दिनों आवश्यकता अनुभव की गई है । इसमें तीन दिवसीय सामूहिक व अखण्ड गायत्री मंत्रोच्चार का भावनापूर्वक श्रीगणेश का प्रावधान है । इससे उत्सर्जित होने वाली प्रचण्ड शब्द एवं भाव शक्ति न सिर्फ परोक्ष की असुरता को निरस्त करने में प्रभावी भूमिका सम्पन्न करेगी, अपितु स्थूल जगत में देवत्वपूर्ण वातावरण विनिर्मित करने में भी एक बड़ा प्रयोजन सिद्ध कर सकेगी । इस प्रकार इस एक ही उपचार से साँप के मरने और लाठी नहीं टूटने के दोनों उद्देश्य साथ-साथ पूरे हो सकेंगे । इससे जहाँ तक एक ओर विषाक्तता के घटने-मिटने से विषधर की तरह फन फैलाये और कालकूट उगलते विक्षुब्ध प्रकृति का शमन सहज संभव होगा, वहीं दूसरी ओर धरती की प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदल कर वातावरण को सतयुगी बनाने में मदद मिलेगी । यह संघ शक्ति का प्रभाव है ।

सर्वविदित है कि जब सीता के अवतरण की ऋषियों को आवश्यकता अनुभव हुई, तो ऋषि—रक्त की एक-एक बूँद एक घड़े में इकट्ठी की गई । इसमें समायी दुर्धर्ष प्राण—ऊर्जा से जो शक्ति उद्भूत हुई वह सीता कहलायी । यदि केवल रक्त जैसे उपादान कारण से ही सीता का उद्भव सहज संभव होता, तो संभवतः ऋषि अपने में से किसी एक का गला काट कर खून एकत्रित कर उस प्रयोजन की पूर्ति कर लेते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि रक्त के साथ-साथ उसमें उस प्रचण्ड प्राण-चेतना को वे कैसे डाल पाते, जिससे सीता का अवतरण होना था । यह कार्य एक-एक बूँद रक्त के रूप में एकत्रित प्राण-चेतना ही सम्पादित कर सकती थी । इसीलिए ऐसा किया गया ।

आज इसी स्तर का सूक्ष्म प्राण-चेतना के एकत्रीकरण की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जिसे पुरश्चरण तथा ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान स्तर के सूक्ष्म व महान आध्यात्मिक प्रयोग ही संभव कर सकते हैं । स्थूल उपचारों से ऐसा शक्य नहीं हो, सकता । इंजन की टंकी पानी से भरी तो रहती है, पर वह इंजन चला कहाँ पाता है, किन्तु उसी जल को जब भट्टी में तपा कर भाप के रूप में सूक्ष्मीकृत कर उसे एक पतली नली से गुजारा जाता है, तो प्रतिफल चमत्कार जैसा सामने आता है । इससे न सिर्फ इंजन खिसकने लगता है, वरन् अपने पीछे जुड़े सैकड़ों डिब्बों को भी खींचने घसीटने लगता है । यह सूक्ष्म का प्रभाव परिणाम है । ऐसे ही सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा अदृश्य जगत का परिशोधन संभव है ।

# सामूहिक आध्यात्मिक पुरुषार्थ की प्रभावोत्पादकता

वैदिक संस्कृति संज्ञान सूक्तों के माध्यम से सबको सामूहिकता का-संघबद्ध रचनात्मक प्रयासों का संदेश देती आयी है । ऋषि कहते हैं **"सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् । देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।"** अर्थात्—सभी धर्म में निरत व्यक्ति एक साथ रहें एक ही बात बोलें जिनका मन से अर्थ भी एक हो। सभी निज विरोध का त्याग कर वही कर्म करें जो देवों को शोभनीय है । **"समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चिन्तमेषाम्"** अर्थात्—"हम सब के मंत्र एक समान हों, अंतःकरण, विचार व आकांक्षाएँ भी समान हों" इस माध्यम से ऋषिगण एक ही तथ्य पर जोर देते हैं कि श्रेष्ठता की दिशा में प्रयासरत व्यक्तियों के मन, अंतःकरण, वृत्तियों तथा बोले गए उच्चारित शुभेच्छा मंत्र भी एक रूप हों तो उसका अति व्यापक प्रभाव अदृश्य जगत पर पड़ता है ।

यह भावना कि धर्म प्रधान कृत्यों की संघबद्धता द्वारा विश्व-चेतना तक को प्रभावित किया जा सकता है, आदि काल से ऋषिगणों की रही है । आज की पर्यावरण संकट व सूक्ष्म जगत की घुटन भरी प्रदूषण जन्य दैवी आपदाओं में देव संस्कृति एक महत्त्वपूर्ण सूत्र अदृश्य जगत के परिशोधन के निमित्त देती है । आदिकाल से ही हमारे पूर्वज ऋषिगणों की मान्यता रही है कि वातावरण जिसमें हम रहते हैं, चेतनात्मक है । उसका सम्बन्ध प्राण-प्रवाह के स्तर से है । ऐसी मान्यता है कि सतयुग में ऐसा अदृश्य प्राण-प्रवाह चलता था जिससे व्यक्तियों की भावना, मान्यता प्रभावित होती थी । इसी कारण उनके गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता भरी होती थी । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शवादिता का समावेश रहता था । मानवी पुरुषार्थ का भी इस में योगदान रहता था, पर इस प्रयोजन को सफल बनाने में अदृश्य वातावरण की भूमिका—अनुकूलता का भी भारी योगदान रहता था । परिस्थितियाँ मनःस्थिति के आधार पर इतने बड़े करवट लेती है कि उसे भाग्य विधान, ईश्वरेच्छा जैसा नाम देना होता है । इसलिये अदृश्य जगत में संव्याप्त वायुमण्डल की तरह ही उसका दूसरा पक्ष वातावरण भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता ।

इन दिनों बढ़ती विषाक्तता एवं उससे वायुमण्डल तथा वातावरण दोनों के ही प्रभावित होने की चर्चा बड़े विस्तार से समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं में आती रहती है । इसका गम्भीर पर्यवेक्षण करें तो ज्ञात होता है कि इनका मूल कारण प्रचलन-प्रवाह तक ही नहीं है । इसकी जड़ें अदृश्य वातावरण में बड़ी गहराई तक दृष्टिगोचर होती हैं । दुश्चिन्तन की भरमार से विषाक्त अदृश्य वातावरण और इससे फिर लोक-मानव में असुरता-निकृष्टता का बढ़ना । यह एक ऐसा कुचक्र है जो एक बार चल पड़ने पर फिर टूटने का नाम नहीं लेता । लोक चिन्तन व प्रवाह का अदृश्य वातावरण से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ।

इस कुचक्र को संघबद्ध प्रयासों द्वारा तोड़ना ही होगा। परमात्मा की तरह आत्मा को भी अपना उत्तरदायित्व निभाना होगा । अवतार प्रकरण की सूक्ष्म प्रक्रिया अपने स्थान पर है लेकिन सुधार प्रयोजन का दूसरा पक्ष मनुष्यकृत है जिसे जाग्रत व्यक्ति आपत्ति धर्म की तरह अपनाते और स्रष्टा के प्रयोजन में हाथ बँटाते हैं। उन्हें अध्यात्म उपचारों का आश्रय लेना पड़ता है । विशालकाय सामूहिक धर्मानुष्ठान प्रायः इसी प्रयोजन के लिए किये जाते हैं ।

लंका विजय में असुरों का संहार तो हुआ पर अदृश्य वातावरण में विषाक्तता भरी होने के कारण लगा कि सामयिक समाधान भर पर्याप्त नहीं, अदृश्य का भी संशोधन होना चाहिए । श्रीराम ने दस अश्वमेधों का नियोजन इसी निमित्त किया । कुरुक्षेत्र में महाभारत विजय के उपरान्त कंस, दुर्योधन, जरासंध से तो पीछा छूटा पर अदृश्य की विषाक्तता यथावत् रहने से स्थायी समाधान न सूझा । अन्ततः अध्यात्म उपचार का आश्रय लिया गया एवं विशालकाय राजसूय यज्ञ की भी ऐसी ही अध्यात्मपरक योजना बनाई गई ।

सामूहिक धर्मानुष्ठानों से अदृश्य वातावरण की संशुद्धि के और भी अगणित प्रमाण-उदाहरण इतिहास पुराणों में भरे पड़े हैं । आसुरी सत्ता से भयभीत देवगणों को रक्षा का आश्वासन ऋषिरक्त के संचय से बनी सीता के माध्यम से मिला था । इसी प्रकार देवता जब संयुक्त रूप से प्रजापति के पास पहुँचे एक स्वर से प्रार्थना की तो महाकाली प्रकट हुई जिन्होंने असुरों का संहार किया । संघ शक्ति की ही यह परिणति थी । जिस समय राम-रावण युद्ध हो रहा था, अगणित अयोध्यावासी मौन धर्मानुष्ठानरत थे ताकि अनय परास्त हो, नीति की विजय

हो । ये सभी उदाहरण सामूहिकता के माध्यम से वातावरण को संशोधित करने के घटनाक्रमों पर लागू होते हैं ।

सामूहिकता में असाधारण शक्ति है । दो निर्जीव वस्तुएँ मिलकर एक+एक-दो ही बनती हैं जबकि प्राणवानों की एकात्मकता कई गुना हो जाती है । तिनके-तिनके मिलकर रस्सा बँटने, धागों के बुन जाने से कपड़ा बनने, ईंटों से इमारत, बूँदों से समुद्र तथा सीकों से बुहारी बनने के उदाहरण यही बताते हैं कि मिलकर एक हो जाने की परिणति कितनी महान होती है । एक लय-ताल से जब संघात किया जाता है तो बड़ी विस्फोटक परिणति की सम्भावनाएँ दृश्यमान होने लगती हैं । तालबद्ध ढंग से परेड करती फौज ध्वनि-शक्ति द्वारा पुल तोड़ सकती है तथा एक छोटा-सा पेण्डुलम निरन्तर संघात से गर्डर तोड़कर भवन धराशायी कर सकता है । समूहबद्ध ढंग से की गयी प्रार्थना में वह प्रभाव है जो वातावरण के प्रवाह को बदल-उलटकर असम्भव को भी सम्भव बना सकता है । आज जो परिस्थितियाँ हैं, वे न रहकर सतयुग के अरुणोदय जैसी स्वर्गीय परिस्थितियाँ उभर सकें, जैसी दिव्यदर्शियों ने अपने भविष्य कथन में व्यक्त की हैं, तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए ।

मानव निर्मित वातावरण की जहाँ चर्चा की जा रही है, वहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अवसर आने पर इसकी भूमिका बड़ी विशिष्ट होती है । एक चिंतन एक प्रयास जब आँधी की तरह चलता है, सारे वातावरण को हिलाकर रख देता है । इसका एक उदाहरण 'युद्धोन्माद', "मॉब मेन्टलिटी" के रूप में देखा जा सकता है । ऐसी स्थिति में दिमाग पर मात्र लड़ने का आवेश छाया होता है। हवा में तेजी और गर्मी कुछ ऐसी होती है जिसके कारण सामान्य व्यक्ति भी सम्मोहित होकर, असामान्य पुरुषार्थ करते देखे जाते हैं ।

महात्मा गाँधी का सत्याग्रह आन्दोलन दाण्डी यात्रा मानव निर्मित प्रवाह का एक स्वरूप है । अगणित व्यक्ति स्वेच्छा से जेल गए । मस्ती के इस जुग में अनेकों शहीद हो गए । स्वतन्त्रता इस आँधी प्रवाह की परिणति थी । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय विंस्टन चर्चिल ने हाथ की ऊँगलियों से अंग्रेजी का 'वी' (V) बनाते हुए एक नया नारा दिया था—"वी फॉर विक्ट्री ।" इस नारे ने जनसाधारण का आत्मबल ऐसा बढ़ाया कि अन्ततः जीत नाजीवाद से संघर्ष करने वाली समूह शक्ति की ही हुई ।

नियाग्रा जल प्रपात के बारे में अमरीका की जन-जातियों में यह मान्यता संव्याप्त है कि जिस दिन यह झरना बन्द हो गया, प्रलय आ जाएगी । योगवश इसी सदी में एक बार हिम ग्लेशियर के नदी के उद्गम स्रोत पर जम जाने से कुछ घण्टों के लिए झरने से पानी गिरना बन्द हो गया । विश्व के सबसे बड़े प्रपात के थम जाने से सारा अमरीकन समुदाय अनायास ही शंकित हो उठा । सारे राष्ट्र में चर्चों में घण्टियाँ बजने लगीं एवं सामूहिक प्रार्थनाएँ की जाने लगीं । कुछ ही घण्टों में वह प्रपात फिर बहने लगा । पर्यावरण विशेषज्ञों का कथन है कि सामान्यतः ऐसा होता नहीं (ग्लेशियर का जमना) । परन्तु होने पर इतना शीघ्र पूरे प्रवाह से नदी का शीत ऋतु में भी बह निकलना अपने आप में अविज्ञात रहस्य है । स्कायलैब के गिरने व सारे विश्व में उसके गिरने से होने वाली क्षति से आशंकित जनसाधारण द्वारा प्रार्थना व उसके समुद्र पर गिरकर नष्ट होने का वर्णन तो अभी-अभी का ही है ।

मुस्लिमों की नमाज का एक सुनिश्चित समय होता है। अजान का समय होते ही जो व्यक्ति जहाँ भी है, तुरन्त अपनी उपासना का शुभारम्भ कर देता है । ईसाई रविवार प्रातः एकत्र होते हैं तथा चर्च में सामूहिक प्रार्थना करते हैं । मिलिट्री की 'रिट्रीट' जब भी होती है, जो व्यक्ति जहाँ होता है वहीं सावधान मुद्रा में खड़ा हो जाता है । ये सारे उदाहरण एक समय एवं सामूहिकता की शक्ति की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए बताए जा रहे हैं ।

प्रज्ञा अभियान द्वारा प्रणीत युगसंधि महापुरश्चरण कई विशेषताएँ लिए हुए है । अगणित व्यक्तियों की प्राण ऊर्जा, एक-सा चिन्तन, शब्द शक्ति की अपरिमित क्षमता एक समय-एक साथ जप ध्यान तथा महाप्रज्ञा की प्रेरणा का चिन्तन-इन सभी का प्रज्ञा पुरश्चरण में समावेश है । साधक पाँच मिनट तक सूर्योदय के साथ ही गायत्री मन्त्र का मौन जप करते हैं । अन्तरिक्ष में परिशोधन हेतु आहुतियों का यह परोक्ष यज्ञ है । जितना अधिक उच्चारण इस मन्त्र का सृष्टि के आदि से अभी तक हुआ है उतना किसी का नहीं हुआ । शब्द शक्ति ओंकार गुंजन के रूप में समग्र अन्तरिक्ष में संव्याप्त है । ऐसी स्थिति में उच्चारित मन्त्र की शक्ति का प्रभाव द्विगुणित हो जाता है। समधर्मी कम्पन परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते ही हैं ।

शब्द शक्ति सूक्ष्म मानव शरीर तथा परोक्ष अन्तरिक्षीय संसार को प्रभावित करने वाली एक समर्थ ऊर्जा शक्ति है । यह जीभ से नहीं, मन व अन्त:करण से निकलती है । लोक प्रवाह को निकृष्टता से उलटकर उत्कृष्टता की ओर मोड़ने के लिए उच्चस्तरीय शब्द सामर्थ्य चाहिए । साधक स्तर की उत्कृष्ट जीवनचर्या वाले मांत्रिक जब एक साथ पुरश्चरण सम्पादित करते हैं तो ऋषि कल्प महामानवों जैसी वातावरण को आमूलचूल बदल देने की सामर्थ्य विकसित होने लगती है तप-पूत उच्चारण ही मन्त्र जाप है । सदाशयता को संघबद्ध करने और एक दिशा में चल पड़ने की व्यवस्था बनाने के लिए इस जप का सामूहिक अनुष्ठान स्वरूप ही आदर्श है । श्रुति ने आदेश भी दिया है "सहस्र सा कर्मचत्" अर्थात्—"हे पुरुषो ! तुम सभी सहस्रों मिलकर देवार्चन करो ।" वस्तुत: सामवेद और ऋग्वेद की समस्त ऋचाएँ सामूहिक गान ही तो हैं ।

लोहे का लम्बा गार्डर, सीमेन्ट का एक बड़ा पिलर अकेला एक व्यक्ति नहीं उठा पाता । जब कई व्यक्ति मिलकर "हईशा" के निनाद के साथ जोर लगाते हैं तो वे उसे उठाकर खड़ा कर देते हैं । बड़े-बड़े भवन इससे बन जाते हैं । लेकिन जब यही शब्द शक्ति शुभ कामना का चिन्तन के लिए एक साथ कई व्यक्तियों द्वारा उच्चारित होती है, एक सी तरंगें जन्म लेती हैं और बदले में शुभ विचारों की वर्षा ऊपर से करती हैं । "धियो यो न: प्रचोदयात्" "अग्नेनय सुपथा राये अस्मान्" "आनो भद्रा, कृणवो यन्तु विश्वत:" इन सभी मन्त्रों में सारे समूह के लिए श्रेष्ठ विचारों की-सन्मार्ग पर चलने की भारी प्रार्थना की गयी है । एक सी भाव लहरें एक ही चित्त वृत्ति को जन्म देती हैं । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक फ्रिक्वेन्सी पर तरंगें उत्पन्न होने पर वे अप्रत्याशित परिवर्तन लाती हैं । अल्ट्रासोनिक तरंगों से रोगों का निदान व चिकित्सा की जाने लगी है । माइक्रोवेव्स से न केवल सम्पर्क वरन् ऊर्जा उत्पन्न करने में भी सफलता मिली है । गायत्री मन्त्र की विशेषता उसे यह स्तर प्रदान करती है जिससे वह सामूहिक उच्चारण के माध्यम से अन्तरिक्ष को मथने में समर्थ हो सके । "सिम्पेथेटिक वाइब्रेशन" के सिद्धान्त पर आधारित यह प्रक्रिया "लाइटनिंग" (तड़ित विद्युत) जैसी सामर्थ्य रखती है ।

वैज्ञानिकों का कथन है कि शब्द शक्ति से इलेक्ट्रोमैग्नेटिक लहरें उत्पन्न होती हैं जो स्नायु प्रवाह पर वांछित प्रभाव डालकर उनकी सक्रियता ही नहीं बढ़ातीं वरन् विकृत चिन्तन को रोकती व मनोविकार मिटाती हैं । एक अन्य निष्कर्ष के अनुसार संसार के पचास व्यक्ति यदि एकसाथ एक शब्द का तीन घण्टे तक उच्चारण करें तो उससे छह हजार खरब वाट विद्युत शक्ति पैदा होगी । सारे विश्व में इससे घण्टों तक प्रकाश किया जा सकता है ।

ऋषियों ने शब्द शक्ति की शोध उच्चस्तर पर की थी और उन्होंने पाया था कि सामर्थ्य के इस महान भाण्डागार को लोकहित के लिये बहुत ही उपयुक्त रीति से प्रयोग में लाया जा सकता है । अस्तु उन्होंने इस दिशा में लाखों वर्षों तक अथक श्रम किया और जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं उनसे मानवजाति का महान हित साधा । आज हम उस महान विज्ञान को भुला बैठे और मणिहीन सर्प की तरह अध:पतित स्थिति में जा पहुँचे । नवजागरण की इस पुण्य बेला में हमें अपने वर्चस्व का मूल स्रोत पुन: खोजना और उपलब्ध करना होगा । वह स्रोत एक ही है—'शब्द' । शास्त्रकार ने 'शब्दो वै ब्रह्म' शब्द को ब्रह्म कहा है । ब्रह्म में, परमात्मा में, जो कला, जो विभूति, जो महत्ता विद्यमान है वे सभी शब्द शक्ति का उच्चस्तरीय उपयोग है । इसका उपयोग यदि हम जान सकें तो नि:सन्देह सच्चे ज्ञानी, सच्चे विज्ञानी बन सकते हैं ।

गायत्री महामंत्र, समस्त मन्त्र शास्त्र का प्राण, बीज, उद्गम एवं मर्म है । आगम और निगम-वेद और तन्त्र के अन्तर्गत जितने भी तांत्रिक प्रयोग हैं उन सब को गायत्री बीज शक्ति का पल्लव-परिकर ही मानना चाहिये । मन्त्र विद्या का भाण्डागार है-वेद और उनका उद्भव वेदमाता-विश्वमाता, गायत्री महाशक्ति के द्वारा हुआ है । इस अनुपम, अद्भुत-अनन्त और प्रमेय विभूति का सामूहिक धर्मानुष्ठान के रूप में विज्ञान सम्मत प्रयोग कर हम देव संस्कृति का स्वर्णिम अतीत वापस ला सकते हैं । वैदिक संस्कृति के प्रत्येक निर्धारण के मूल में विज्ञान सम्मत चिंतन है । यदि संघबद्ध आध्यात्मिक पुरुषार्थ इस माध्यम से सम्पन्न हो सके तो सतयुग की वापसी संभव है, इसमें संदेह नहीं ।

## सामूहिक साधना के अनिवार्य आधार

आनन्द, सन्तोष और उल्लास का प्रमुख आधार है समष्टि-सहयोग । व्यक्तिवादी भले ही छीन-झपट,

हिस्सामार तरीकों से कुछ आगे निकल जाये पर असुरक्षा और आत्महीनता उसे भीतर ही भीतर उद्विग्न, अशान्त बनाये रखती है । जीवन का वास्तविक आनन्द सामूहिकता में ही है । समूहगत आत्मीयता की आनन्दानुभूति अनुपम है । वह अनूठी सम्पदा है, जो व्यक्ति-जीवन को बहुत अधिक समृद्ध बना देती है ।

यों सामूहिकता का अभ्यास स्वयं में एक साधना है। समूह-जीवन में व्यक्ति का अहं गलता है । असाधारण उपलब्धियों के लिये अकेले का ज्ञान और अकेले की क्षमता अपर्याप्त होती है । सामूहिक सद्भाव के विस्तार के बिना बड़ी उपलब्धियाँ सम्भव नहीं होतीं ।

फिर सामूहिक-साधना के तो लाभ अगणित हैं । क्योंकि वह एक ही लक्ष्य और एक ही प्रक्रिया से जुड़ी रहती है । करोड़ों दिशाओं में बिखर-फैल रही सूर्य की किरणें जब एक ही केन्द्र में एकत्र की जाती हैं, तो वे सौर-ऊर्जा के अनूठे चमत्कार कर दिखाती हैं । छोटी से छोटी और साधारण प्रकाश धारा एक-एक क्षण में लाखों फोटान कण उत्सर्जित करती रहती हैं । इस से रोशनी और चमक के सिवाय और कुछ भी नहीं प्राप्त होता । परन्तु जब ये ही फोटान कण कदम मिलाकर कुछ करने के लिये समूहबद्ध, अनुशासित हो जाते हैं, तो वे लेसर-किरणें बनकर निकलते हैं । उस समय उनकी तेजी और ताकत लाखों-करोड़ों गुना बढ़ जाती है । वे चट्टानों, इस्पात और औद्योगिक हीरों में भी छेद कर सकती हैं ।

स्पष्ट है कि सामूहिक साधना से उसके घटकों की सम्मिलित शक्ति भर ही नहीं एकत्र होती, अपितु नयी शक्ति भी प्राप्त होती है । हजार सैनिक जब कदम मिलाकर साथ-साथ चलते हैं तो उससे उत्पन्न प्रवाह-तरंगें किसी पुल पर जो प्रभाव डालती हैं, वह अकेले सैनिक की गति के प्रभाव को हजार गुना बना देने से नहीं उत्पन्न कर सकता । एक सैनिक की चाल से पुल पर जो हलचल होती है एक बड़े भारवाही ट्रक के गुजरने पर उससे हजार गुनी अधिक हलचल होती है, बोझ हजार गुना पड़ता है । किन्तु उससे पुल के दरकने-टूटने का खतरा नहीं रहता । जब कि हजार सैनिकों के लय-बद्ध कदम ताल से यह खतरा रहता है । इस प्रकार सैनिकों की सामूहिक गति-साधना पुल पर एक नया प्रभाव डालती है । निश्चित अनुपात में हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनाते हैं, परन्तु पानी के कुछ गुण इन दोनों के गुणों के आधार पर नहीं जाने जा सकते । तात्विक दृष्टि से दोनों ही गैसें हैं, पानी में इनके गुण धर्म रहते भी हैं । कुछ नये गुण भी आ जाते हैं । इसी प्रकार भिन्न-भिन्न रुचियों के व्यक्ति सामूहिक रूप से कुछ नये गुणों, नई विशेषताओं को जन्म दे सकते हैं । एक परमाणु के भौतिक रासायनिक विश्लेषण के द्वारा वे सब गुण नहीं दिखाई पड़ते जो उन्हें परमाणुओं की बड़ी संख्या के सम्पुन्जन से बनी किसी वस्तु में होते हैं । भारतीय नैयायिकों का मत रहा है कि किसी अवयवी में ऐसे गुण भी हो सकते हैं, जो उसके अवयवों में नहीं पाये जाते । अवयवीवादी मनोवैज्ञानिकों (गेस्टाल्ट साइकालाजिस्ट्स) की भी यह मान्यता है । सामूहिक साधना से भी ऐसे ही नये गुण नयी शक्तियाँ प्रकट होती हैं । यह तो सभी जानते हैं कि अकेले डरने वाले व्यक्ति भी समूह में निर्भीक हो जाते हैं दब्बू उग्र हो जाते और संकोची दीखने वाले वाचाल विनोदी हो जाते तक देखे गये हैं ।

सामूहिक साधना के कुछ निश्चित आधार एवं नियम हैं उन्हें बनाये रखने और निभाने पर ही समूह-साधना सम्भव है । सर्वोपरि आवश्यकता तो लक्ष्य की एकरूपता की है । लक्ष्य की स्पष्ट समझ और समानता न रही, तो समूह-बोध नहीं पैदा होगा । तब वैसे समूह को भीड़ ही कहा जा सकता है । भीड़ द्वारा सामूहिक साधना सम्भव नहीं क्योंकि उसमें साधना की अनुभूतियों और उपलब्धियों का आदान-प्रदान नहीं हो सकता । जहाँ लक्ष्य एक नहीं, वहाँ समूह के घटक व्यक्तियों का विकास साधना की दिशा में सहायक नहीं बन सकता । उनकी जानकारी और उनके विवरण एक दूसरे के काम के न होंगे । एक लड़की का नारी वर्णन और विवरण किसी दर्जी के लिए पर्याप्त है वह उस लड़की के सम्भावित वर के किसी काम का नहीं क्योंकि दर्जी का लक्ष्य है उसी लड़की के लिये कपड़े सीना जब कि सम्भावित वर का लक्ष्य है सहजीवन । किसी मकान की सीमेंट के प्लास्टर वाली दीवार चतुर्भुज के प्रकार की है, यह जानकारी उसके मकान के ग्राहक को सन्तुष्ट नहीं कर सकती । वह तो जानना चाहेगा कि दीवार जर्जर है मजबूत, ऊबड़-खाबड़ है या चिकनी । एक रसायन शास्त्री किसी युद्ध के जो ब्योरे नोट करेगा, जो इतिहासकार के किसी काम के नहीं होंगे । यदि कोई शरीर-शास्त्री टवाल के किसी खेल का वर्णन खिलाड़ियों के अंगों की स्थितियाँ बतलाते हुए करे,

तो वह आँखों देखा हाल सुनने वाले रेडियो-श्रोताओं के किसी काम का वर्णन सिद्ध न होगा । यों, अपनी-अपनी जगह दर्जी रसायनशास्त्री, शरीर शास्त्री सभी की जानकारियाँ महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं । पर भिन्न लक्ष्य वालों के लिये वे काम की नहीं हैं । इसीलिये सामूहिक साधना की पहली शर्त है समान लक्ष्य ।

इसी प्रकार सच्चाई, आत्मीयता, दायित्व, भावना, और जिम्मेदारियों का बँटवारा, मर्यादा तथा नियमों का पालन यानी अनुशासन के बिना सामूहिक साधना सफल नहीं हो सकती ।

जिम्मेदारी की भावना न हुई, तो उपेक्षा और बहाने-बाजी का क्रम चल पड़ता है । तब साधना का क्रम लड़खड़ाने लगता है । उसका प्रयोजन पूरा होना असम्भव हो जाता है । संगठन बिखरने लगता है और छिद्रान्वेषण दोष-दर्शन ही साधना बन जाता है ।

किसी भी संगठित अभियान में काम का बँटवारा आवश्यक होता है । सामूहिक कार्य के अपने अंश को स्वीकार कर उसमें जुट पड़ने की प्रवृत्ति सामूहिक साधना का अनिवार्य अंग है ।

यदि अपने-अपने दायित्व को स्वीकार कर लिया जाय और उसमें तल्लीन हो जाया जाय तो विविधता गुण और शक्ति बन जाती है । सामूहिक साधना का अर्थ अनुभूति और गुण-शक्ति की विविधता का अभाव नहीं है । उद्यान के रंग-बिरंगे फूल उसके सामूहिक स्वरूप को निखारते ही हैं, घटाते नहीं । प्रसिद्ध फूलों की घाटी में हर प्रकार के फूलों का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, अपना अलग क्षेत्र है, अलग निखार है, अलग प्रभाव है, किन्तु इसके कारण उसे फूलों की घाटियाँ नहीं घाटी ही कहा जाता है । सामूहिक साधना में निरत प्रत्येक साधना की अनुभूतियों और विशेषताओं की भिन्नता से उसकी विविधता ही बढ़ती है, विलगाव नहीं बढ़ता । विलगाव लक्ष्य की भिन्नता या सच्चाई के अभाव से बढ़ता है ।

सामूहिकता की रट से सामूहिकता नहीं आती । वह आती है उसके प्रखर बोध से । जहाँ सच्ची आत्मीयता नहीं, वहाँ सामूहिक साधना का स्वरूप नहीं उभर सकता ।

हर साधक स्वयं को एक ही मशीन के भिन्न-भिन्न कलपुर्जों में से एक समझे, इस भाव बोध को अन्तश्चेतना को गहराई से आँकता, सुदृढ़ करता चला जाय, तभी सामूहिक साधना के सत्परिणाम सम्भव हैं । एक ही विशाल वृक्ष की टहनियाँ और पत्ते खुद को समझे बिना समूह-साधना का कोई रूप ही नहीं बनेगा । जिसमें समूहचेतना ही न उदित हो सकी, उसमें समष्टि चेतना के उदय की कोई भी सम्भावना नहीं है ।

सामूहिक साधना के सत्परिणाम विपुल हैं, प्रचुर हैं । वह एक व्यवहृत विज्ञान है, 'एप्लायड साइन्स' है । उन लाभों को प्राप्त करने के लिए उसके आवश्यक आधारों को समझना स्थिर रखना और शक्तिशाली बनाये रहना आवश्यक है ।

## गायत्री महापुरश्चरण द्वारा युग अवतरण की साधना

युग परिवर्तन की घड़ी सन्निकट है । व्यक्ति में दुष्टता और समाज में दुष्टता जिस तूफानी गति से बढ़ रही है उसे देखते हुए सर्वनाश की विभीषिका सामने खड़ी प्रतीत होती है । किन्तु ऐसे ही विषम असन्तुलन को समय-समय पर सुधारने-सँभालने के लिए सृष्टा की प्रतिज्ञा भी तो जीवित है । अपनी इस अनुपम कलाकृति, विश्व वसुधा, को नियन्ता ने बड़े अरमानों के साथ बनाया है । संकटों की घड़ी आने पर उसका अवतरण होता है और असन्तुलन फिर सन्तुलन में बदल जाता है । अधर्म को निरस्त और धर्म को आश्वस्त करने वाली ईश्वरीय सत्ता आज की संकटापन्न विषम बेला में उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए अपनी अवतरण प्रक्रिया को फिर सम्पन्न करने वाली है ।

अपने युग का असुर है—आस्था संकट । दुर्बुद्धि और दुर्भावना का अभिशाप ही सर्वभक्षी संकट उत्पन्न कर रहा है । इसका निराकरण सदाशयता की अधिष्ठात्री ऋतम्भरा प्रज्ञा ही कर सकती है । परिस्थितियों के अनुरूप भगवान के अवतारों का क्रम रहा है । आज का धर्म निकृष्ट चिन्तन के रूप में ही ताण्डव नृत्य कर रहा है उसका निवारण महिषासुर मर्दिनी अपने युग की आवश्यकता के अनुरूप युग शक्ति गायत्री बन कर करेगी । प्रज्ञावतार ही अपने युग का गंगावतरण है जिसके द्वारा सगर-सुतों का ताप मिटने और उज्ज्वल भविष्य की हरीतिमा लहलहाने की परिपूर्ण संभावना है ।

युग निर्माण योजना को नव सृजन के मोर्चे पर जूझते हुए पूरे २५ वर्ष हो गये । इस बीच बहुत कुछ है उस पर हर्ष मनाने और जो करने के लिए पड़ा है उसके लिए

उत्साह प्राप्त करने के उद्देश्य से यह वर्ष रजत जयन्ती वर्ष के रूप में मनाया जाता रहा है पच्चीस वर्ष होने पर रजत जयन्ती मनाने की परिपाटी को इस युगान्तरीय चेतना के लिए भी प्रयुक्त किया जा रहा है । यह मिशन की शानदार गतिविधियों का पच्चीसवाँ वर्ष है । इस अवसर पर हर्षोल्लास मनाया जाना स्वाभाविक है । अध्यात्म अभियान का हर्षोत्सव किसी प्रचण्ड धर्मानुष्ठान के रूप में ही हो सकता था । वह हो भी रहा है ।

युग निर्माण योजना के रजत जयन्ती वर्ष में तीन कार्यक्रम हाथ में लिये गये थे । (१) युग शक्ति गायत्री का आलोक विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाने के लिए उसका विविध भाषाओं में प्रकाशन (२) जन जागरण में लिए घर-घर जाने और जन सम्पर्क साधने वाले परिव्राजकों का एक सुगठित समुदाय गठित करना (३) वातावरण के अनुकूलन के लिए गायत्री महापुरश्चरण के रूप में एक अति सामर्थ्यवान धर्मानुष्ठान का आयोजन करना ।

तीसरे कार्यक्रम गायत्री महापुरश्चरण के सन्दर्भ में इस अध्याय में विशेष जानकारी प्रस्तुत की गई है प्रस्तुत संकल्प के अन्तर्गत २४०० करोड़ गायत्री जप विभिन्न स्थानों पर नैष्ठिक उपासकों द्वारा किये जा रहे हैं । जप संख्या के अनुपात से गायत्री यज्ञ में आहुतियाँ दी जावेंगी। अपने युग का यह महानतम धर्मानुष्ठान है उसके सत्परिणाम दूरगामी होंगे । पुरश्चरण के भागीदार प्रतिभावान व्यक्तित्व और समर्थ आत्मबल प्राप्त करेंगे। वातावरण में दैवी तत्वों की अभिवृद्धि से विश्व कल्याण की सम्भावना बढ़ेगी । जन समाज में इससे सत्प्रवृत्तियों का ऐसा प्रवाह उत्पन्न होगा जिससे सर्वतोंन्मुखी सुख शान्ति की सम्भावना निरन्तर बढ़ती चली जाय ।

प्रस्तुत महापुरश्चरण में असंख्य लोग सम्मिलित हो रहे हैं और सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किये जा रहे हैं । उन सबको यह जानना आवश्यक है कि गायत्री महामंत्र क्या है ? पुरश्चरण की क्या उपयोगिता है ? सामूहिक यज्ञ आयोजनों की क्यों आवश्यकता है ? जो भागीदार बनना चाहें उन्हें उपासना क्रिया विदित होना चाहिए आदि अनेक जिज्ञासाओं का समाधान इस अध्याय में दिया गया है । पुराने परिचित लोगों को उस विषय की जानकारी पहले से भी है किन्तु महापुरश्चरण में लाखों व्यक्ति नये भागीदार बने हैं और कितने ही सम्मिलित होने वाले हैं । उन सबको नवागन्तुकों की तरह सब कुछ नये सिरे से ही जानना-समझना होगा ।

# वेदमाता-देवमाता भगवती गायत्री

### भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों का अनन्त भण्डार

गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । उसे वेदमाता-देवमाता एवं विश्वमाता माना गया है । वेदों से लेकर धर्म शास्त्रों तक का समस्त दिव्य ज्ञान गायत्री के बीजाक्षरों का ही विस्तार है । योग साधना और तपश्चर्या की शक्ति धाराएँ गायत्री के हिमालय से ही प्रकटी हैं । उसकी साधना के सत्परिणाम अमृत-पारस-कल्पवृक्ष-कामधेनु और ब्रह्मानन्द बताये गये हैं । पाँच प्रमुख देवताओं के यही पाँच वरदान हैं । इसी रहस्य के कारण उसका एक स्वरूप पाँच मुख वाला भी चित्रित किया जाता है । भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों के अनन्त भण्डार इस महाशक्ति के अन्तराल में छिपे पड़े हैं । साधना से सिद्धि का सिद्धान्त विधिवत् गायत्री साधना से प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो सकता है। सांसारिक संकटों में भी गायत्री उपासना वरदान की तरह सिद्ध होती है । आद्य शक्ति गायत्री माता का अंचल पकड़ने वाला कभी निराश नहीं हुआ ।

गायत्री मंत्र में चौबीस अक्षर हैं । तत्वज्ञानियों ने इन अक्षरों में बीज रूप में विद्यमान उन शक्तियों को पहचाना जिन्हें चौबीस अवतार, चौबीस ऋषि, चौबीस शक्तियाँ तथा चौबीस सिद्धियाँ कहा जाता है । देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि इसी उपासना के सहारे उच्च पदासीन हुये हैं । 'अरोरणीयान महतो महीयान'—यही महाशक्ति है । छोटे से छोटा चौबीस अक्षर का कलेवर, उसमें ज्ञान और विज्ञान का सम्पूर्ण भाण्डागार भरा हुआ है । सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं जो गायत्री में न हो । उसकी उच्च स्तरीय साधनायें कठिन और विशिष्ट भी हैं पर साथ ही सरल भी इतनी हैं कि उन्हें हर कोई हर स्थिति में बड़ी सरलता और सुविधाओं के साथ सम्पन्न कर सकता है । इसी से उसे

गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि ८.१२

सार्वजनीन और सार्वभौम माना गया । नर-नारी, बाल-वृद्ध बिना किसी जाति व सम्प्रदाय भेद के उसकी आराधना प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं और अपनी श्रद्धा के अनुरूप लाभ उठा सकते हैं ।

गायत्री के ही चार चरणों की व्याख्या स्वरूप चार वेद बने हैं, इसलिये गायत्री को वेदमाता कहते हैं । ज्ञान की विवेचना में ही अन्य शास्त्र पुराण रचे गये हैं । भारतीय तत्व दर्शन और ज्ञान-विज्ञान गायत्री बीज से ही उत्पन्न हैं । इसी की उपासना आराधना के सहारे प्राचीन भारत के महान नागरिक देवोपम बने थे, अतएव गायत्री को देव माता भी कहा गया ।

गायत्री को आत्म शक्ति, ब्रह्म विद्या कहा गया है और उसकी अमृत कलश से उपमा दी गई । आत्म-कल्याण और ईश्वर दर्शन का अवलम्बन और मार्ग दर्शन गायत्री मन्त्र में ओत-प्रोत हैं । उसे अपनाने वाले साधक अमृत पान करते हैं और देवताओं की तरह सच्चे अर्थों में अजर-अमर हो जाते हैं । गायत्री को अमृत कलश इसीलिए कहा गया है ।

गायत्री का चौथा नाम कामधेनु और पाँचवाँ ब्रह्मास्त्र है । कामधेनु अर्थात् माता की तरह परिपोषण करने वाली, प्रगति और समृद्धि के अजस्त्र वरदान देने वाली । ब्रह्मास्त्र अर्थात् वह अस्त्र जिसके प्रहार से पतन, संकट और विघ्न चूर-चूर होते चले जायँ । जिसने सही रीति से गायत्री का अवलम्बन लिया है उसने अथर्ववेद की उस साक्षी रिचा को अक्षरशः सही पाया है जिसमें उस महाशक्ति को दीर्घजीवन प्राण, पराक्रम, सुसंतति, सहयोगी परिवार, निर्मल, यश, साधना, वैभव तथा ब्रह्मवर्चस आत्मबल का वरदान बताया गया है ।

सद्ज्ञान की अधिष्ठात्री-प्रत्यक्ष ऋतम्भरा प्रज्ञा-गायत्री के २४ अक्षरों में मानवी चिन्तन और चरित्र को उच्चस्तरीय बनाये रहने वाला सारा तत्व विद्यमान है । इस महाशक्ति की साधना में योगाभ्यास और तपश्चर्या के वे समस्त आधार, संकेत और विधान मौजदू हैं जिनके सहारे साधनकर्ता को ऋद्धि-सिद्धियों का समुचित लाभ मिल सकता है । आत्मिक प्रगति की दोनों उच्च भूमिकायें-स्वर्ग और मुक्ति को पाने के लिए गायत्री तत्वज्ञान का अवलम्बन अनुपम है ।

प्रत्येक धर्म परायण को गायत्री का अवलम्बन आवश्यक ठहराया गया है । भारतीय धर्मानुसार नित्य उपासना का विधान "संध्या वन्दन" कहलाता है, संध्या विधान में गायत्री का स्थान वैसा ही है जैसा कि शरीर में मेरुदण्ड का । भारतीय धर्म के दो प्रतीक चिन्ह हैं, एक शिखा दूसरा सूत्र (यज्ञोपवीत) ये दोनों ही गायत्री की प्रतिमायें हैं । शिर के सर्वोच्च शिखर पर गायत्री की ज्ञान ध्वजा फहराने और कन्धे पर गायत्री के नौ शब्द, नौ धागे बनाकर, तीन व्याहृतियों को तीन ग्रन्थियों का रूप देकर यज्ञोपवीत के रूप में कन्धे पर धारण करने का अनुशासन है । मस्तिष्क ज्ञान का और शरीर कर्म का आधार है । दोनों पर ही शिखा और सूत्र के रूप में गायत्री की प्रतिष्ठापना की गई है अर्थात् इन दोनों का उपयोग संचालन इन्हीं २४ अक्षरों में सन्निहित प्रेरणाओं के अनुरूप करने का निर्देश आर्ष ग्रन्थों और आप्त वचनों में किया गया है । शास्त्रों में "गुरु मंत्र" नाम गायत्री को ही दिया गया है । विद्याप्रारम्भ—वेदारम्भ-उपनयन आदि संस्कारों में गायत्री के आधार पर ही दीक्षा दी जाती है । अन्य मन्त्रों को देव मन्त्र, साधना मन्त्र, सम्प्रदाय मन्त्र आदि तो कहा जा सकता है, पर अनादि 'गुरु मन्त्र' गायत्री को ही कहा गया है । भगवान राम को गुरु वशिष्ठ ने, एवं भगवान कृष्ण को संदीपन ऋषि ने यही गुरु-मन्त्र दिया था । महर्षि विश्वामित्र द्वारा राम को बला और अतिबला शक्तियाँ इसी साधना के माध्यम से प्राप्त हुई थीं । स्वयं विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि इसी के प्रभाव से बने थे ।

भगवान मनु का कथन है-गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई मन्त्र नहीं है । जो मनुष्य नियमित रूप से तीन वर्ष तक गायत्री का जप करता है, वह ईश्वर को प्राप्त करता है । जो द्विज दोनों सन्ध्याओं में गायत्री जपता है वह वेद पढ़ने के फल को प्राप्त करता है । अन्य कोई साधना करे या न करे केवल गायत्री जप से ही सिद्धि पा सकता है । नित्य एक हजार जप करने वाला पापों से वैसे ही छूट जाता है जैसे केंचुली से सर्प छूट जाता है । जो द्विज गायत्री की उपासना नहीं करता वह निन्दा का पात्र है ।

शंख ऋषि का मत है—नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री ही है । उससे उत्तम वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी पर कोई नहीं है । गायत्री का ज्ञाता निःसन्देह स्वर्ग को प्राप्त करता है ।

महर्षि व्यास जी कहते हैं—जिस प्रकार पुष्पों का सार शहद, दूध का सार घृत है उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है । सिद्ध की हुई गायत्री कामधेनु के समान है । गंगा शरीर के पापों को निर्मल करती है । गायत्री

रूपी ब्रह्म गंगा से आत्मा पवित्र होती है । जो गायत्री छोड़कर अन्य उपासनायें करता है, वह पक्वान्न छोड़कर भिक्षा माँगने वाले के समान मूर्ख है । काम्य सफलता तथा तप की सिद्धि के लिए गायत्री से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है ।

भारद्वाज ऋषि कहते हैं—ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप करते हैं । वह ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली है । अनुचित काम करने वालों के दुर्गुण गायत्री के कारण छूट जाते हैं गायत्री से रहित व्यक्ति शूद्र से भी अपवित्र है ।

नारद जी की उक्ति है गायत्री भक्ति का ही रूप है, जहाँ भक्ति रूपा गायत्री है वहाँ श्री नारायण का निवास होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए ।

याज्ञवल्क्य ने उसे "सर्वकाम धुक कहा है अर्थात् ऐसी कोई इच्छा नहीं जो गायत्री की उपासना से पूर्ण न हो।"

वशिष्ठ जी का मत है—मन्दमति, कुमार्गगामी और अस्थिर मति भी गायत्री के प्रभाव से उच्चपद को प्राप्त करते हैं । फिर सद्गति होना निश्चित है । जो पवित्रता और स्थिरता पूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं वे आत्मलाभ करते हैं ।

गौतम ऋषि का मत है—योग का मूल आधार गायत्री है । गायत्री से ही सम्पूर्ण योगों की साधना होती है ।

महर्षि उद्दालक कहते हैं गायत्री में परमात्मा का प्रचण्ड तेज भरा हुआ है । जो इस तेज को धारण करता है उसका वैभव अतुलनीय हो जाता है ।

देवगुरु बृहस्पति जी का मत है—देवत्व और अमृतत्व की आदि जननी गायत्री है । इसे प्राप्त करने के पश्चात् और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता ।

शृंगी ऋषि की उक्ति है—ज्ञान विज्ञान का आदि स्रोत गायत्री ही है । उससे अधिक संसार में और कुछ नहीं है ।

उपरोक्त अभिमतों से मिलते-जुलते अंभिमत प्रायः सभी ऋषियों के हैं । इनसे स्पष्ट है कि कोई भी ऋषि अन्य विषयों में चाहे आपस का मतभेद रखते हों पर गायत्री के बारे में उन सब में समान श्रद्धा थी और वे सभी अपनी उपासना में उसका प्रथम स्थान रखते थे । शास्त्रों में, धर्म ग्रन्थों में, स्मृतियों में, पुराणों में गायत्री की महिमा तथा साधना पर प्रकाश डालने वाले सहस्त्रों श्लोक भरे पड़े हैं । इन सबका संग्रह किया जाय तो एक बड़ा गायत्री पुराण ही बन सकता है ।

वर्तमान शताब्दी के आध्यात्मिक महापुरुषों ने भी गायत्री के महत्व को उसी प्रकार स्वीकार किया है जैसा कि प्राचीन काल के तत्वदर्शी ऋषियों ने किया था । आज का युग बुद्धि और तर्क का, प्रत्यक्षवाद का युग है ।

महात्मा गाँधी कहते हैं -"गायत्री मन्त्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्माओं की उन्नति के लिए उपयोगी है । गायत्री का स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किया हुआ जप आपत्ति काल के संकटों को दूर करने का प्रभाव रखता है ।"

लोकमान्य तिलक कहा करते थे—"जिस बहुमुखी दासता के बन्धनों में भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है उसका अन्त राजनीतिक संघर्ष करने मात्र से न हो जायगा, उसके लिए आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न करना होगा, जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले । गायत्री मन्त्र में यही भावना विद्यमान है ।"

महामना मदनमोहन मालवीय जी ने कहा था—"ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिये हैं उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री ऐसा है जिससे बुद्धि पवित्र होती है । ईश्वर का प्रकाश आत्मा में आता है । इस प्रकाश से असंख्य आत्माओं को भव बन्धनों से त्राण मिला है । गायत्री में ईश्वर परायणता में श्रद्धा उत्पन्न करने की शक्ति है । साथ ही वह भौतिक अभावों को दूर करती है। जो ब्राह्मण गायत्री जप नहीं करता वह अपने कर्त्तव्य धर्म छोड़ने का अपराधी है ।"

रवीन्द्र नाथ टैगोर कहते हैं—"भारतवर्ष को जगाने वाला जो मन्त्र है वह इतना सरल है कि एक श्वास में उसका उच्चारण किया जा सकता है वह है गायत्री मन्त्र ! इस पुनीत मन्त्र का अभ्यास करने में किसी प्रकार के तार्किक ऊहापोह, किसी प्रकार के मतभेद अथवा किसी प्रकार के बखेड़े की गुंजायश नहीं है ।"

योगी अरविन्द घोष ने कई जगह गायत्री जप करने का निर्देश दिया है । उन्होंने बताया है कि गायत्री में ऐसी शक्ति सन्निहित है जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है । उन्होंने कई लोगों को साधना के तौर पर गायत्री का जप बताया है ।

इन उपाख्यानों में वेद उपनिषदों से लेकर मनीषियों तक ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति की अन्तः भूमिका को परिष्कृत कर उसे सुखी समुन्नत बनाने के सारे तत्व गायत्री में विद्यमान हैं । एकांगी प्रगति कभी चिरस्थायी नहीं हो सकती यह गायत्री महामन्त्र की अद्वितीय विशेषता है । स्वार्थ के साथ परमार्थ, लोक के साथ पारलौकिक कल्याण का योग ही परिपूर्ण कहा जा सकता है यह भारी शिक्षायें गायत्री उपासना में सन्निहित हैं । व्यक्ति के उत्कर्ष के साथ-साथ सारे समाज और विश्व का अभ्युत्थान ही परमात्मा को अभीष्ट है उस प्रक्रिया को गायत्री उपासना पूर्ण करती है इस दृष्टि से सामूहिक पुरश्चरणों की महत्ता हजार गुनी अधिक हो जाती है । गायत्री परिवार द्वारा देश व्यापी स्तर पर भारी संख्या में गायत्री मन्त्र जप तथा मन्त्र लेखन के महापुरश्चरण चल रहे हैं । वे, एक-एक अँगुली लगाकर ग्वाल बालों द्वारा गोवर्धन उठा देने की तरह युग की विभीषिकाओं, संकटों के पहाड़ को उठाकर फेंक देंगे और स्थायी सुख-शान्ति की परिस्थितियों को जन्म देंगे कोई भी दूरदर्शी विवेक की आँखों से यह तथ्य स्पष्ट देख सकता है ।

अपने युग की परिस्थितियाँ अपने ढंग की अनोखी हैं। इनमें न तो कंस और रावण की तरह आक्रमण उत्पीड़न है और न दुर्भिक्ष, दुर्घटना, जैसा कोई दैवी संकट । फिर भी स्थिति की विपन्नता ऐतिहासिक महा-संकटों की तुलना में कहीं अधिक भयानक है । विपत्ति का नया स्वरूप है—आस्था संकट ने मानवी अन्तराल में ऐसी मान्यताओं ने जड़ जमाली है जिन्हें आदर्शों के प्रति अनास्था कह सकते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता पर आधारित विलासी अहम्मन्यता ही आज जन-जन की आराध्य बन गई है । लोभ और मोह की ललक दावानल की तरह बढ़ रही है और अपनी लपटों में उस सबको लपेट रही है जिसे मानवी गरिमा के रूप में देखा और जाना जाता रहा है ।

इन परिस्थितियों को मनुष्य कृत सामान्य प्रयत्न कदाचित ही सँभाल सकते हैं । प्रगति के लिए प्रयत्नशील नेतृत्व ने हर मोर्चे पर असफलता अनुभव की है और निराशा व्यक्त की है । ऐसे असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने का महान कार्य स्रष्टा की सूक्ष्म चेतना और दिव्य प्रेरणा ही सम्पन्न कर सकती है । यही कार्य इन दिनों हो रहा है । समय की आवश्यकता के अनुरूप महाकाल की प्रचण्ड हलचलें युग अवतार का उद्देश्य पूरा करने के लिए क्रमशः अधिकाधिक प्रखर होती चली जा रही हैं ।

अपने युग का महादैत्य आस्था-संकट है । वह जन मानस की गहरी परतों तक प्रवेश पाने में सफल हो गया है । इतनी गहराई तक भौतिक उपाय उपचारों का प्रवेश नहीं हो सकता है । दल-दल में फँसे हाथी को चतुर हाथी ही अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे बाहर निकाल पाते हैं । अनास्था के निराकरण में भावश्रद्धा की प्रखरता ही समर्थ हो सकती है इसलिए इस बार युग अवतार ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में हो रहा है । गायत्री महाशक्ति का अवतरण ही अपने युग में आस्था संकट को दूर करने का एक मात्र आधार हो सकता था यह महापुरश्चरण उसी आवश्यकता को पूर्ण करेंगे इसमें भाग लेने का सौभाग्य असाधारण है । यह छोटे आज के साधक इस साधना के पुण्य प्रताप से कल महामानवों की उच्च स्थिति तक पहुँचेंगे व्यक्ति-गत जीवन की सुख-शान्ति का लाभ तो उन्हें ब्याज में मिलेगा ।

## गायत्री साधना के तीन चरण

### शरीर, मन और आत्मा को बलवान बनाने की प्रक्रिया

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है । त्रिपदा अर्थात् तीन पद—चरण वाली । तीन शरीर, तीन लोक, तीन गुण, त्रैत ब्रह्म, तीन देव, तीन शक्ति, तीन काल के रूप में इस त्रिपदा शक्ति का विस्तार माना और विवेचन किया जाता है । इसके तीन फल हैं—अमृत, पारस और कल्पवृक्ष । त्रिपदा के यह तीन अनुग्रह—तीन वरदान तत्वदर्शियों ने बताये हैं । भौतिक सम्पत्तियाँ और आत्मिक विभूतियाँ इन तीनों के ही अन्तर्गत आ जाती हैं । आयु, प्राण, प्रज्ञा, पशु, कीर्ति, द्रव्य और ब्रह्मवर्चस् के जो सात प्रतिफल अथर्ववेद में बताये गये हैं वे सब भी इस अमृत पारस, कल्प वृक्ष की परिधि गणना में ही समा जाते हैं ।

आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक क्षेत्र की, सुविधा समृद्धियों का संवर्धन और अभाव-अवरोधों का निराकरण ही हर किसी को अभीष्ट होता है । सारी सुविधाओं की गणना इसी परिधि में की जा सकती है । कठिनाइयों के नाम रूप का विस्तार कितना ही बड़ा क्यों न हो वस्तुतः वे सब इन्हीं आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही आती हैं । इन सभी के

समाधांन का अमृत पारस और कल्पवृक्ष का अलंकारिक नामकरण किया गया है । गायत्री माता के अनुग्रह से यह तीनों ही विभूतियाँ उपलब्ध होने की बात शास्त्रकार ने कही है । सुसम्पन्न, सुसंस्कृत मनुष्यों को देवता कहा गया है । देवत्व आकृति के साथ नहीं प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ है । गुण, कर्म स्वभाव से उसकी परख होती है । देवताओं का निवास-स्थल स्वर्ग लोक कहा गया है । इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि जहाँ देवता निवास करते हैं वहाँ स्वर्गीय वातावरण बन जाता है ।

गायत्री को स्वर्गलोक की अधिष्ठात्री कहा गया है । उसका एक नाम कामधेनु भी है । कामधेनु का पयपान करने से देवताओं को देवत्व की प्राप्ति होती है देवताओं के सुख साधनों के स्रोत तीन हैं—(१) अमृत (२) पारस (३) कल्पवृक्ष । अमृत के आधार पर उन्हें आध्यात्मिक, पारस के आधार पर उन्हें आधिभौतिक और कल्प वृक्ष के आधार पर आधिदैविक सम्पदाओं की उपलब्धि होती है। त्रिपदा गायत्री की तात्विक उपासना में इन तीनों ही दिव्य वरदानों को—स्वर्गीय अनुदानों को प्राप्त कर सकना सम्भव बताया गया है ।

अमृत का अर्थ है वह पदार्थ जिसे पीने वाला अजर-अमर बनता है । बुढ़ापा और मृत्यु उसे छोड़कर चली जाती है । नव यौवन सदा बना रहता है तथा आनन्द उल्लास से अन्त:करण सदा पुलकित-हुलसित बना रहता है । कहा जाता है कि यह अमृत देव लोक में है । उसे देवता पीते हैं और वह लाभ प्राप्त करते हैं जो स्वर्ग लोक के निवासियों में, दिव्य शरीर धारियों में पाये जाते हैं । अमृत पदार्थ का अस्तित्व प्राणि जगत में तो नहीं ही पाया गया है । यहाँ हर वस्तु जन्मती, बढ़ती और बदलती है । बढ़ने के क्रम में ही जवानी के बाद बुढ़ापे का पल्ला बँधा है । जीर्णता को दुबारा ढालना ही परिवर्तन है, इसी को मरण कहते हैं । यह स्वाभाविक सृष्टि क्रम है ।

बुढ़ाता और मरता तो शरीर है । जब अपने को शरीर से भिन्न आत्मा मान लिया तो फिर अजर-अमर होने की अनुभूति सुनिश्चित हो जाती है । पुराने कपड़े बदल कर नये पहनने में तो बच्चे तक मोद मनाते हैं, फिर मृत्यु का भय आत्म-ज्ञानी को कैसे होगा ? आत्मा तो आदि काल से अन्त तक प्रौढ़ ही रहती है उसके लिए न कभी बचपन है और न बुढ़ापा । दु:ख और अभाव भी शरीर को ही कष्ट देते हैं । गायत्री उपासना में अमृतत्व की उपलब्धि की प्रेरणा, दिशा एवं सुविधा प्राप्त होती है इसलिए उसे कामधेनु कहा गया है कामधेनु का दूध भी अमृत का ही स्वरूप माना गया है । देवता उसे पीते और धन्य बनते हैं । उसे पीने से दुर्भावनायें आक्रमण नहीं करतीं, ईर्ष्या, द्वेष, रोष, प्रतिशोध के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते । फलतः आकांक्षाओं की अशान्ति से सदा बचे रहते हैं । हर घड़ी मस्ती छाई रहती है । उल्लास समेटते और उसमें बखेरते हुए उन्हें देखा जा सकता है ।

यह अमृतत्व और देवत्व एक ही बात है । देवताओं को मुनष्य की अपेक्षा अधिक समर्थ, सम्पन्न और सन्तुष्ट माना जाता है । दे देने की आकांक्षा रखना, देते रहना देवताओं का धर्म है । आत्मज्ञान का अमतृत्व पीने वाले व्यक्ति उपयोग के लिए लालायित नहीं रहते । जो प्राप्त होता है उसे अपने से अधिक जरूरतमन्द को बाँटते रहते हैं । इस कारण स्वल्प रहते हुए भी आत्मा तो अपने आप में परिपूर्ण है उसे न किसी वस्तु की आवश्यकता है और न आकांक्षा । इसकी सही अर्थों में अनुभूति हो सके तो फिर चेहरे पर सदा तृप्ति और शांति ही छाई रहेगी । ऐसे लोग जीवन मुक्त कहलाते हैं । पृथ्वी के देवता समझे जाते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र में स्वर्गिक वातावरण उत्पन्न करते हैं । अमृतत्व की उपलब्धि के यही लक्षण हैं।

पारस उस पत्थर का नाम है जिसे छूने से लोहे जैसी काली-कलूटी, कुरूप और सस्ती धातु स्वर्ण बन जाती है । अर्थात् सुन्दर, बहुमूल्य, कीमती, चमकदार धातु। तथाकथित पारस का अस्तित्व संदिग्ध है । अभी उसके कहीं पाये जाने का प्रमाण नहीं मिला है । किन्तु अध्यात्म क्षेत्र का पारस 'पुरुषार्थ' के रूप में बहुत पहले से ही इस संसार में विद्यमान है । उसका सम्पर्क साधने वाले गई गुजरी स्थिति को पार करके द्रुत गति से आगे बढ़ते हैं और उन्नति के उच्च्व शिखर पर पहुँचते हैं ।

पुरुषार्थ का प्रथम चरण मानसिक है । उसे संकल्प, साहस, उत्साह, आशा, उमंग आदि सृजनात्मक अन्त:क्षमताओं के रूप में जाना जाता है । उसी का दूसरा चरण वह है जिसे तत्परता और तन्मयता के रूप में आँखों से प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । आलस्य और प्रमाद ही पिछड़ेपन का अभिशाप लादने वाले दुष्ट दैत्य हैं वे जिस पर चढ़ते हैं उसे सदा दरिद्रता, आत्म हीनता और तिरस्कार भरा पिछड़ा जीवन जीना पड़ता है । आलस्य, प्रमाद के उपरान्त तीसरा असुर है असंयम ।

पुरुषार्थ रूपी पारस जिसकी अन्तःभूमिका में उतरता है वह अपनी इन मलीनताओं को लात मारकर भगा देने के लिए संकल्प पूर्वक उठ खड़ा होता है । छाई हुई जड़ता को-अर्ध मूर्छित जैसी मनः स्थिति को झकझोर कर रख देता है । नये सिरे से जीवनचर्या बनाता है और आदर्शों का अभिनव निर्माण करता है । यह कायाकल्प जिस आन्तरिक पुरुषार्थ के सहारे सम्भव होता है उस उत्कृष्टतावादी प्रगतिशील सत्साहस को प्रचण्ड संकल्प बल को पारस कहा गया है । इसका जहाँ उदय होगा रुग्णता, दुर्बलता, दरिद्रता, उदासी, अवमानना की लानतें सिर पर पैर रखकर भागती दिखाई पड़ेंगी ।

गायत्री का शब्दार्थ है प्राण का त्राण करने वाली । 'गय' कहते हैं प्राण को और त्री कहते हैं त्राण करने वाली को । प्राण अर्थात् पुरुषार्थ । जब आन्तरिक साहस और व्यावहारिक परिश्रम का समन्वय उच्चस्तरीय उद्देश्यों के लिए जुट जाता है तो उस समन्वय के परिणाम हर क्षेत्र में चमत्कार जैसे दिखाई पड़ते हैं । पारस का महत्त्व इसलिए है कि वह लोहे की तुच्छता को सोने की महानता में बदल देता है । आत्मिक पारस पुरुषार्थ भी ठीक वही भूमिका सम्पन्न करता है । गायत्री उपासना से जो प्रकाश मिलता और साहस जगता है उसे देखते हुए उस कायाकल्प को पारस की प्राप्ति कहा जाय तो उसमें अलंकारिता तो है पर अत्युक्ति तनिक भी नहीं ।

परिष्कृत व्यक्तित्व को कल्पवृक्ष के समतुल्य माना गया है । कल्पवृक्ष स्वर्ग में है । कहा जाता है उसके नीचे बैठकर जो भी कामना की जाती है पूर्ण होती है । यह अलंकारिक रूप से परिष्कृत व्यक्तित्व का ही वर्णन है । गायत्री को सद्बुद्धि की देवी कहा गया है । यदि उसकी वास्तविक रूप में साधना की जा सके तो ईश्वर के दरबार में साधक को सद्बुद्धि का वरदान मिलता है । इस वरदान का प्रथम प्रभाव परिष्कृत व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है । जिसे इतनी सफलता मिल गई, समझना चाहिए उसे कल्पवृक्ष की छाया में बैठने और आप्तकाम होने का सौभाग्य मिल गया । देवता आप्तकाम कहलाते हैं उनकी सभी कामनायें पूर्ण रहती हैं । उन्हें अभाव जन्य कभी कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता । इसी स्थिति को कल्पवृक्ष की सिद्धि कहा गया है ।

मनुष्य जीवन की आवश्यकतायें बहुत स्वल्प हैं । उसका पेट छोटा और हाथ तथा मस्तिष्क का मिला-जुला उत्पादन इतना अधिक है कि थोड़े से समय एवं श्रम से शारीरिक आवश्यकतायें सहज ही पूरी होती रह सकती हैं । 'औसत् भारतीय' का निर्वाह स्तर स्वीकार हो और प्रस्तुत परिवार का उचित परिपोषण ही पर्याप्त माना जाय तो आवश्यक कामनाओं का बोझा सिर पर न चढ़ेगा और न उन्हें पूरा करने के लिए उचित-अनुचित रास्ते अपनाने एवं निरन्तर चिन्तित रहने की आवश्यकता पड़ेगी । यों आवश्यकतायें तो मानवी पुरुषार्थ से अत्यन्त सरलता पूर्वक पूरी होती रहती हैं । निरर्थक कामनायें बढ़ाते चलना और उनको तुर्त-फुर्त पूरी करने के लिए व्याकुल रहना, यही है मनोकामनाओं का जंजाल जिसके लिए अनगढ़ लोग निरन्तर आकुल-व्याकुल रहते और देवी देवताओं के सामने नाक रगड़ते देखे जाते हैं । देव-बुद्धि के देवता लोग इस जंजाल से बचते हैं । सद्बुद्धि का आश्रय लेकर वे अपनी कामनाओं को सीमित करते और जो उचित है उनकी पूर्ति प्रबल पुरुषार्थ के सहारे सरलता पूर्वक करते रहते हैं । ऐसी दशा में उनका 'आप्त काम' बने रहना—कल्पवृक्ष की छाया तले निवास करने जैसा आनन्द लेना सहज स्वाभाविक है । संक्षेप में सद्बुद्धि को ही कल्पवृक्ष समझा जाना चाहिए । गायत्री उपासना का मूल प्रयोजन वही है । उसका अनुग्रह जो जितनी मात्रा में प्राप्त कर लेता है वह उतनी मात्रा में पारस, अमृत, और कल्पवृक्ष के तीनों अध्यात्म लाभों को प्राप्त करके इसी धरती पर देव जीवन जीता और शरीर रहते ही स्वर्ग तथा मुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है ।

# गायत्री महामंत्र की अपरिमित शक्ति

### चौबीस अक्षरों में सन्निहित अमृत उपनिषद्

सन् १९२३ में जर्मन विज्ञान सभा के तत्वावधान में कुछ ऐसे मनुष्य आकृति यन्त्र बनाये गये थे जो देखने में बिलकुल मनुष्य जैसे लगते थे । वे चलते, दौड़ते, खड़े होते, बैठते और मुड़ने में ठीक फौजी सैनिकों की समता करते थे । इतना ही नहीं वे कुछ प्रश्नों का सही उत्तर भी देते थे । बन्दूक का सही निशाना साधते थे । उनकी यह सारी गतिविधियाँ निर्देशक द्वारा उच्चारण किये गये शब्दों पर निर्धारित रहती थीं । बर्लिन की विज्ञान प्रदर्शनी में उन्हें जन-साधारण को दिखाया गया था और बताया गया था कि शब्द में वह क्षमा मौजूद है कि वह इन यन्त्र मानवों को इच्छानुसार कार्य करने के लिए तत्पर कर सकें ।

ऋषियों ने शब्द शक्ति की शोध उच्च स्तर पर की थी और उन्होंने पाया था कि सामर्थ्य के इस महान भाण्डागार को लोक हित के लिए बहुत ही उपयुक्त रीति से प्रयोग में लाया जा सकता है । अस्तु उन्होंने इस दिशा में लाखों वर्षों तक अधिक श्रम किया और जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं उनसे मानव जाति का महान हित साधा । आजकल जिस प्रकार विविध यन्त्रों से सुखसुविधा के विभिन्न प्रयोजन और उपकरण प्राप्त किये जाते हैं—उसी तरह प्राचीन काल में मन्त्रों द्वारा वह सब कुछ प्राप्त किया जाता था जो मानवीय सुख-शान्ति एवं प्रगति-समृद्धि के लिए आवश्यक है ।

गायत्री महामन्त्र के जप से उत्पन्न पराध्वनि सार वातावरण के परमाणुओं को कँपा देने की शक्ति से ओत-प्रोत है । इस महामन्त्र की अपार शक्ति का सम्पूर्ण लाभ किसी को मिल जाये तो वह सृष्टि की समस्त शक्तियों का स्वामी बन सकता है । उसके लिये तो कठिन तांत्रिक साधनायें भी अभीष्ट हो सकती हैं । सामान्य गायत्री महामन्त्र में जिस "धी" तत्व की प्रार्थना की गई है उसी को भली-भाँति आत्मसात किया जा सके तो मनुष्य भूसुर और देवता हो सकता है ।

शब्दों की दृष्टि से इस महामन्त्र का भावार्थ अति सरल है । ऊँकार ईश्वर का स्वेच्चरित सर्वश्रेष्ठ नाम माना गया है । प्रत्येक वेद मन्त्र के सम्मानार्थ सर्वप्रथम ऊँकार लगाये जाने की परम्परा भी है । गायत्री मन्त्र में ऊँकार का प्रयोग इसी दृष्टि से हुआ है ।

'भूः भुवः स्वः' यह तीन लोक हैं । यों उन्हें पृथ्वी, पाताल और स्वर्गमध्यम ऊपर-नीचे-के रूप में भी जाना जाता है । पर अध्यात्म प्रयोजनों में भूः स्थूल शरीर के लिए—भुवः सूक्ष्म शरीर के लिए और स्वः कारण शरीर के लिए प्रयुक्त होता है । बाह्य जगत और अन्तर्जगत के तीनों लोकों में ऊँकार अर्थात् परमेश्वर संव्याप्त है । व्याहतियों में इसी तथ्य का प्रतिपादन है । इसमें विशाल विश्व को, विराट् ब्रह्म के रूप में देखने की वही मान्यता है जिसे भगवान ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाते हुए हृदयंगम कराया था । ईश्वर के सर्वव्यापी होने की भावना यदि ठीक तरह हृदयंगम हो सके तो फिर न तो छिपकर दुष्कर्म कर सकना बन पड़ेगा और न किसी पदार्थ का दुरुपयोग या किसी प्राणी से दुर्व्यवहार करते बन पड़ेगा । ऊँ और व्याहतियों का समन्वित शीर्ष भाग इसी अर्थ और इसी प्रकाश को प्रकट करता है ।

तत् अर्थात् वह । सवितु—प्रकाश और ऊर्जा से—ज्ञान और वर्चस् से ओत-प्रोत परमेश्वर । वरेण्यं—श्रेष्ठ । भर्गः तेजस्वी, विनाशक ।—देव—दिव्य इन चार शब्दों में परब्रह्म परमात्मा के उन गुणों का वर्णन है जिन्हें अपनाने का प्रयत्न करना हर अध्यात्मवादी के लिए, हर आत्मिक प्रगति के आकांक्षी के लिए नितान्त आवश्यक है ।

सविता—प्रातःकालीन स्वर्णिम सूर्य को कहते हैं । यह परमेश्वर की स्वनिर्मित प्रतिमा है । उससे बाह्य जगत में प्रकाश और अन्तर्जगत में सद्ज्ञान का अभिवर्षण होता है। सूर्य से गर्मी—ऊर्जा बाह्य जगत को मिलती है । सत्संकल्प और सत् साहस से भरी हुई आत्म-शक्ति का अनुदान अन्तर्जगत को मिलता है । सविता शब्द का गायत्री मन्त्र में सर्वप्रथम उल्लेख इसी दृष्टि से हुआ है कि साधक को प्रज्ञावान और शक्तिवान बनाने के लिए अथक पुरुषार्थ करना चाहिए ।

वरेण्यं—श्रेष्ठ चुनने योग्य—स्वीकार करने योग्य—वरिष्ठ । इस संसार में उत्कृष्ट—निकृष्ट भला-बुरा सब कुछ विद्यमान है । उसमें से जो श्रेष्ठ है उसी को स्वीकार करना चाहिए । हंस जिस प्रकार नीर-क्षीर का विवेक करता है मोती ही चुनता है उसी प्रकार हमारा चयन मात्र उत्कृष्टता का ही होना चाहिए । निकृष्टता का तिरस्कार, बहिष्कार करना ही उचित है । आकर्षक और हितकर में से किसका चयन करें इसी प्रश्न पर प्रायः भयंकर भूल होती रहती है । तात्कालिक लाभ के लिए दूरगामी हित साधन की उपेक्षा की जाती है । यह भूल न होने देने की ओर गायत्री मन्त्र में संकेत है और कहा गया है कि नीतिनिर्धारण करते एवं कदम उठाते समय हजार बार ठोक बजाकर देख लिया जाय कि वह वरेण्य है या नहीं । औचित्य, न्याय, हित का सम्मिश्रण है या नहीं ।

भर्ग शब्द तेजस्विता का बोधक है । इसमें प्रतिभा, साहसिकता, तत्परता, तन्मयता जैसे तत्वों का समावेश है। क्रिया में ओजस्-विचारणा से तेजस् और भावनाओं से वर्चस् का आभास जिस दिव्य तत्व के आधार पर मिलता है उसे भर्ग कहते हैं । भर्ग में एक भाव भूनने—नष्ट करने का भी है । अवांछनीयता, अनैतिकता, मूढ़ मान्यता जैसी दुष्प्रवत्तियाँ छाई रहें तो मनुष्य माया और पतन के दल-दल में फँसा ही रहेगा इनसे छुटकारा पाने के लिए ऐसी प्रखरता का उद्‌भव होना चाहिए जो

अन्तर के कषायों और भीतर के कल्मषों से लोहा लेने में शौर्य पराक्रम का परिचय देती रहे । भर्ग तत्व की विशिष्टता ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी और तपस्वी लोगों में देखी जाती है । इसी का सम्पादन करके प्रगति के पथ पर बढ़ चलना सम्भव हो सकता है ।

परमेश्वर के अनन्त नाम हैं और इच्छानुसार नये रखे जा सकते हैं । किन्तु आत्मिक प्रगति के लिए जिन चार विशिष्टताओं की नितान्त आवश्यकता है; उनके बोधक तत्वों का समावेश गायत्री मन्त्र में हुआ है । सविता, वरेण्यं, भर्ग के उपरान्त चौथी विभूतिमत्ता का नाम है 'देव' । देवताओं की गरिमा महिमा के सम्बन्ध में मोटी मान्यता और कल्पना प्राय: सभी को होती है । वे सुन्दर होते हैं, सदा युवक रहते हैं, उन्हें किसी बात की कमी नहीं पड़ती प्रसन्न रहते हैं । उनमें दिव्य गुण कर्म स्वभाव होते हैं । दूसरों की सहायता करते हैं, उनका निवास ऊँचाई पर होता है, जिस क्षेत्र में रहते हैं वह स्वर्ग कहलाता है, असुरता से वे सदा जूझते रहते हैं । प्राय: इन्हीं विशेषताओं से युक्त स्वर्ग लोक के निवासी देवता माने जाते हैं । मानवी प्रगति की अगली सीढ़ी देवत्व की है । पशुता के पाताल से वह ऊपर उठ आया । इन दिनों पृथ्वी के धरातल पर मनुष्य के कलेवर तक आ गया । इसे सार्थक बनाते ही उसका प्रवेश देव-कक्षा में होता है । ईश्वर को "देव" शब्द से सम्बोधन करने में यह आत्म-शिक्षण है कि हम परमात्म देव के भक्त बनें और देवत्व की विशेषता में उनका अनुसरण-अनुगमन करें ।

धीमहि शब्द का अर्थ है—धारण करना । आदर्शों को व्यवहार में, उतारना ही उनकी धारणा है । कल्पनायें करते रहने—कहने सुनने मात्र में उलझे रहने से कुछ बनने वाला नहीं है । परिणाम ही क्रिया उत्पन्न करता है । क्रियावान ही सच्चा ज्ञानवान माना जाता है । उसी को सद्ज्ञान का सत्परिणाम उपलब्ध होता है जो चिन्तन को क्रिया में परिणत करने का साहस दिखाता है । अनुशासन की साहसिकता को प्रखर बनाने के लिए ही विविध योग साधनायें और तपश्चर्यायें सम्पन्न की जाती हैं ।

गायत्री के अन्तिम तृतीय चरण धियो यौन: प्रचोदयात् के अन्तर्गत परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह साधक अकेले ही नहीं वरन् समस्त जन-समुदाय में प्राणि मात्र में धी तत्व की—सद्बुद्धि की प्रेरणा करें । न: हम सबको और धिय: बुद्धियों को कहते हैं यहाँ एक व्यक्ति की बुद्धि सुधर जाने को अपर्याप्त माना गया है । यह सुधार व्यापक रूप से हो तभी काम चलेगा। बहुमत दुर्बद्धि ग्रस्तों का बना रहा तो एकाकी सज्जनता मात्र से कोई बड़ा प्रयोजन पूरा न हो सकेगा । राक्षसों की लंका में अकेला विभीषण तो किसी प्रकार अपना निर्वाह ही कर सका था । सच तो यह है कि दुष्टता के वातावरण में एकाकी सज्जनता भी घनी-घटाओं से घिरे चन्द्रमा की तरह धूमिल ही बनी रहती है ।

प्रचोदयात् शब्द से प्रेरणा का अनुरोध है । वस्तुत: यही ईश्वरीय अनुग्रह करने का केन्द्र बिन्दु भी है । प्रेरणा का तात्पर्य है अन्त:करण में प्रबल आकांक्षा की उत्पत्ति । यह समूचे व्यक्तित्व का सारतत्व है । अन्त:प्रेरणा का अनुसरण मन:संस्थान करता है । मन के निर्देश पर शरीर काम करता है । क्रिया का परिणाम सम्पत्ति और परिस्थिति के रूप में सामने आता है । तद्नुसार सुख-दु:ख के वे स्वरूप सामने आते हैं जिन्हें पाने या हटाने के लिए मनुष्य इच्छा करता है । इच्छा की पूर्ति होने न होने में सहायक बाधक और कोई नहीं, अन्त:करण की प्रेरणा का स्तर ही आधारभूत कारण होता है । जिसका भविष्य उज्जवल होता है उसके अन्त:क्षेत्र में सदुद्देश्य के प्रति आस्था और सत्कर्म के प्रति तत्परता उत्पन्न होगी यही है—बीज की वृक्ष में परिणति । यही है संक्षेप में गायत्री मन्त्र का अर्थ और तात्पर्य । जो उसका पालन कर सकेगा वह उन सभी लाभों से लाभान्वित होगा जो गायत्री उपासना के सन्दर्भ में शास्त्रकारों और ऋषियों ने बताये समझाये हैं । गायत्री महापुरश्चरण की वर्तमान श्रृंखला तो इस तथ्य का आलोक विस्तार मात्र है ।

## महापुरश्चरणों का विशिष्ट उद्देश्य

### सामूहिकता की महाशक्ति को जानें-पहिचानें और वरण करें

साधन को शक्ति देने के लिए उसमें सामूहिकता का समावेश अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है । एकाकी भजन, एकाकी परिणाम ही उत्पन्न कर सकता है किन्तु सामूहिक साधना का प्रभाव दूसरों को प्रकाश, प्रोत्साहन एवं अनुकरण की उमंगें प्रदान करता है । वातावरण में उपयोगी प्रवाह उत्पन्न करता है । अपना निज का लाभ भी अपेक्षाकृत अधिक ही सम्पादित होता है । एकाकी यात्रायें काटे नहीं कटतीं पर यदि उनमें कई लोगों का समूह जुड़ जाता है तो साथ-साथ ही हँसते-बोलते,

खाते-पीते, गीत-गाते रास्ते में कितना आनन्द आता है यह कोई भी तीर्थयात्री अच्छी तरह समझ सकता है, सुरक्षा सहायता से अनेक लाभ तो उसमें अनायास रहते ही हैं ।

रामायण, भागवत, गीता पाठ आदि अनेकों लोग करते ही रहते हैं पर उसी उपचार को सब लोग एक स्थान पर बैठ कर एक संयुक्त संकल्प के अन्तर्गत, योजनाबद्ध होकर करें तो उसका नाम पारायण हो जाता है । रामायण पारायण, गीता पारायण, भागवत पारायण आदि की विधि व्यवस्था देखने में ही उत्साहवर्धक और आकर्षक नहीं लगती वरन् उसका प्रभाव भी पाठ करने वालों से लेकर उस वातावरण में बैठने वालों तक पर होता है । सूक्ष्म जगत की हलचल भी उससे प्रभावित होती है । अखण्ड पाठ, कीर्तन, सहगान, सहपाठ आदि के धर्मानुष्ठान भी इसी दृष्टि से किये जाते हैं । होली-श्रावणी जैसे पर्व, विवाह, यज्ञोपवीत जैसे उत्सव, सहभोज, प्रीतिभोज आदि के पीछे भी यह सामूहिकता के उभार की दृष्टि ही प्रधान रूप से काम करती है ।

मनुष्यों की एक दिशा में प्रवाहित होने वाली मानसिक धारायें जब मिलती हैं तो उनका सूक्ष्म जगत में एक प्रवाह बन जाता है । यही उपक्रम सामूहिक धर्मानुष्ठानों, पर्वों पर एकत्रित जन-समूह से भी सम्भव है । उस संयुक्त भावशक्ति से जो तरंगें उत्पन्न होती हैं वे अपने साथ अनेकों को साथ लेकर आँधी की तरह आसमान में उड़ती दिखाई पड़ती हैं । सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि जन-समुदाय की भावभरी मनःस्थिति जब कभी एकत्रित होती है तो उसकी प्रतिक्रियायें असाधारण प्रतिफल एकत्र करती हैं । पुलों पर चलते समय मिलिट्री के जवानों को कदम न मिलाने का निर्देश है, क्योंकि सामूहिक ताल की शक्ति से पुल ध्वस्त हो सकते हैं। होली के अवसरों पर सामूहिक गायनों से निर्जन एकान्त स्थल भी प्रफुल्लता से ओत-प्रोत हो उठते हैं । प्रस्तुत महापुरश्चरणों से ब्रह्माण्ड में व्याप्त कुसंस्कारों के शमन और शक्ति आकर्षण की एक ऐसी विज्ञान सम्मत प्रक्रिया उत्पन्न होगी जिससे निकटवर्ती समय में ही मानवीय प्रगति और उसकी सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ खिंचती हुई चली आयेंगी । वस्तुतः युग की अपनी कोई सत्ता नहीं है वह मात्र घटनाओं का अच्छे-बुरे सामूहिक आचरण का इतिहास होता है । यदि वह संस्कार आकर्षित किये जा सकें तो युग परिवर्तन की आवश्यकता स्वचालित प्रक्रिया की तरह अपने आप पूर्ण होती चली जायेगी । अवतारों ने इसी सत्य को पहचाना था—यह कहें-अथवा उन्होंने सही समय पर अवतार लिया यह दोनों तथ्य एक ही हैं । ज्योतिषविज्ञान की दृष्टि से यही प्रज्ञावतार का समय है अतएव प्रस्तुत प्रेरणाओं को लोक मंगल की सनातन परम्परा का ही अंग मानना चाहिये ।

इन दिनों जो यज्ञों की व्यवस्थायें देश भर में हो रही हैं । उनका कोई पृथक अस्तित्व नहीं है वे इस पुरश्चरण का अंग मात्र हैं । जप का दशांश हवन करने का विधान है । साधना विज्ञान के इसी पक्ष का स्पर्श कर २५ कुण्डीय यज्ञों की श्रृंखला चलाई गई है । इन्हें महापुरश्चरणों का स्थानीय समापन समझना चाहिये । प्रधानता महापुरश्चरण की ही है अतएव उसमें अधिक से अधिक लोगों को अधिक समय देकर सम्मिलित होने की प्रेरणा दी जानी चाहिये । यह अंक जिन हाथों में पहुँचे उन्हें तो इसे युगान्तर सत्ता का प्रत्यक्ष आमंत्रण मानकर उसमें सम्मिलित होना चाहिये ।

गायत्री और यज्ञ का युग्म है । दोनों की प्रकृति और प्रेरणा एक जैसी है । दोनों का प्रवाह एक ही दिशा धारा में बहता है । गायत्री को माता और यज्ञ को पिता कहा गया है । दोनों में एकरूपता तो नहीं है पर एकता आवश्यक है । दोनों को एक प्राण दो शरीर कहा जा सकता है । गायत्री उपासना में भी एकाकीपन नहीं है । उसका स्वरूप और प्रयोग इस महामन्त्र के "नः" शब्द में छिपा हुआ है । नः का अर्थ होता है—"हम सब" सद्‌बुद्धि की सविता देवता से याचना करते समय साधक अपना उद्देश्य स्पष्ट करता है और कहता है कि यह अनुदान मुझ अकेले को देने से काम न चलेगा । बात तो तभी बनेगी जब यह अनुकम्पा हर किसी को प्राप्त हो । जिस तरह परिवार का मुखिया—स्वस्थ हो पर शेष घर वाले बीमार हों तो मुखिया की स्वास्थ्य सुरक्षा भी उसे किसी तरह की सुख-शान्ति प्रदान न कर सकेगी विश्व व्यवस्था भी ऐसी ही है जिसमें सुख-सुविधायें परस्पर विभक्त होनी चाहिये । इस तरह की भावनायें अपने आप में ही प्रसन्नतादायक होती हैं व्यवहार आनन्द की तो कल्पना कठिन है ।

यज्ञ विशुद्ध रूप से सामूहिक विधि व्यवस्था है । उसमें होता, यजमान, यजमान पत्नी, ब्रह्मा, आचार्य, अध्वर्यु, उद्‌गाता आदि की प्रमुखता रहती है । इसके अतिरिक्त स्वस्तिवाचन, देव पूजन, पूर्णाहुति, भस्म धारण, घृत-अवधाण, क्षमाप्रार्थना, आरती, प्रदक्षिणा आदि में

अनेकानेक अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित होते हैं । जलयात्रा से लेकर कुण्ड मण्डप निर्माण तक की अनेक क्रिया-प्रतिक्रियाएँ तथा प्रयुक्त होने वाली अनेकानेक वस्तुयें ऐसी हैं जिन्हें एक व्यक्ति के बलबूते पर नहीं सँजोया जा सकता है । उस पूरी प्रक्रिया में आदि से अन्त तक सामूहिकता का ही समावेश है । वह पुण्यकृत समूचे वायु-मण्डल का—वातावरण का परिशोधन करने के लिये किया जाता है । अपनी परिश्रम की कमाई को अग्निहोत्र के माध्यम से वायुभूत बनाकर जन-कल्याण के लिये बिखेर देना यही तो यज्ञ है । इसमें लोकहित ही प्रधान है । जहाँ परमार्थ होगा वहाँ प्रकारान्तर से स्वार्थ तो बिना प्रयत्न के ही सधता चला जायेगा ।

महाराष्ट्र में यों गणेशचतुर्थी को हर वर्ष जहाँ-तहाँ पूजा पाठ तो होते थे और घरों में गणेश प्रतिमा की अभ्यर्थना भी होती थी पर उसका वैसा रूप कहीं नहीं था कि संगठित प्रयासों का आश्रय लिया जाय । लोग एकत्रित होकर अपनी संयुक्त शक्ति का अनुभव करें । ऐसी अनुभूति यदि हो सके तो जन शक्ति को जाग्रत होने पर दिशा विशेष में चल पड़ने का अवसर मिल सकता है । लोकमान्य तिलक ने जन मनोविज्ञान के सूक्ष्म तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान परिस्थितियों में जन-जागरण का उपयुक्त उपाय यही हो सकता है कि गणेश पर्व की प्राचीन परम्परा को नये आधार पर गठित किया जाय और उस धर्मोत्सव के माध्यम से लोक चेतना में ऐसा उभार लाया जाय जो स्वतन्त्रता संग्राम के लिए अभीष्ट भूमिका तैयार करने का माध्यम बन सके ।

तिलक ने गणेश उत्सव का नये सिरे से संचालन किया उसमें प्रगतिशीलता और संगठन के नये तत्वों का समावेश किया । वे आयोजन थे तो धर्मोत्सव ही पर उनमें रूढ़िवादी हुल्लड़ भर मच जाने जैसी निरर्थकता नहीं थी । समय शक्ति और साधनों का अपव्यय न होने देकर उत्पन्न हुए उभार को भविष्य के लिए आशा का संचार करने वाली दिशा में नियोजित किया गया । फलतः सारा महाराष्ट्र उन उत्सवों के माध्यम से साहस भरी तरंगों से अनुप्राणित हो उठा । उन दिनों तो यह सब एक धर्मोन्माद सा लगता था पर जिन्होंने उस आन्दोलन का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है उनने यही निष्कर्ष निकाला है कि स्वतन्त्रता संग्राम में महाराष्ट्र की जो अग्रगामी शानदार परम्परा रही है उसमें गणेशोत्सव के प्रचलन ने ही प्राण भरे थे । धर्म के प्रति गहन आस्था और देश के प्रति मर मिटने का पराक्रम इन उत्सवों के ही बीजांकुरों से फूट पड़ा था ।

संयुक्त बंगाल की राष्ट्रीय जागरूकता के प्रति देश पर मर मिटने की भावना संस्कृति के प्रति सघन आस्था का कारण और इतिहास जो ढूँढ़ना चाहता है, उन्हें, वहाँ के दुर्गा पूजा समारोह के कारण उत्पन्न उभार की प्रतिक्रिया समझनी होगी । देखने में दुर्गा पूजा एक धार्मिक आवेश जैसा प्रतीत होता है और लगता है इसमें किसी देवी-देवता के प्रति भक्ति की भावना हलचल मचाती है । किन्तु यह भूल नहीं जाना चाहिए कि सामूहिकता के साथ भाव-प्रवाह जब भी जुड़ते हैं तो सम्बद्ध व्यक्तियों पर ही नहीं उस क्षेत्र के वातावरण पर भी छाप छोड़ते हैं । यह छाप उस प्रवाह की दिशाधारा के अनुरूप भली या बुरी दोनों ही प्रकार की हो सकती है । कहना न होगा कि दुर्गा पूजा की पृष्ठभूमि ने स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में उस समुदाय के द्वारा किये गये महान कृत्यों में परोक्ष रूप से भारी योगदान दिया है ।

कोई यह कहने की धृष्टता तो नहीं कर सकता कि किसी क्षेत्र, वर्ग या देश में विशिष्टताएँ भर देने का श्रेय मात्र धार्मिक आयोजनों को ही है पर इसमें संदेह नहीं कि यदि वे सुनियोजित हों और उनके पीछे कोई उच्चस्तरीय दिशा धारा जुड़ी हुई हो तो उसका प्रभाव सामान्य न होकर असामान्य ही होता है । गुजरात का उदाहरण सामने है । उस प्रान्त की धर्मपरायणता असाधारण है । मुसलमानों में बोहरा समाज और हिन्दुओं में स्वामी नारायण सम्प्रदाय, बल्लभ कुल गोसाई सम्प्रदाय आर्थिक दृष्टि से इतने समृद्ध हैं कि उनकी तुलना में मध्यकाल के सुसम्पन्न राजा-महाराजा भी हल्के पड़ते हैं । गाँधी, दयानन्द, नरसी मेहता, सुदामा जैसे मूर्धन्य सन्त उसी भूमि में उपजे । धार्मिकता को जीवित रखने में उस प्रान्त में अपने ढंग से की जाने वाली अम्बा आराधना का विशेष महत्व है जो महिला समाज में गरवा के नाम से प्रसिद्ध है । लाखों नर-नारी उन आयोजनों से भावभरी प्रेरणा प्राप्त करते हैं । फलतः पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन पर उसका असाधारण प्रभाव पड़ता है । गुजरात की धार्मिकता की विशेषता पर यदि शोध की जा सके तो प्रतीत होगा कि वैसा वातावरण बनाने में लोक मानस तैयार करने में इस अम्बा आराधना का असाधारण महत्व है ।

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में राम भक्ति का, रामायण का प्रचलन बहुत है । इन क्षेत्रों में जहाँ धार्मिक संस्कार पाये जाते हैं उनमें रामलीला आयोजन से उत्पन्न प्रभाव को नगण्य नहीं ठहराया जा सकता । जिन प्रान्तों में कृष्ण भक्ति का प्रचलन अधिक है उनमें कथा-वाचकों और सम्प्रदायों की भी भूमिका रही है । रासलीला मंडलियों ने उस भक्ति भावना के लिए जो क्षेत्र तैयार किया है उसे स्वल्प नहीं कहा जा सकता है ।

प्रदर्शनों की उपयोगिता को देखते हुए समाज के मूर्धन्य व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप जन समाज को आकर्षित करने के लिए उनके सरअंजाम खड़े करते हैं। एक-एक दिन के उत्सव जयन्तियों के रूप में अनेकों मनाये जाते हैं । शिवरात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी रामनवमी, महावीर जयन्ती, नानक जयन्ती आदि की अपने देश में धूम रहती है । संसार में अपने-अपने सम्प्रदाओं के संगठनों के प्रवर्तकों की जयन्तियाँ भी समारोह पूर्वक मनती रहती हैं। पौराणिक गाथाओं की स्मृतियों में प्रचलित समारोह भी अनेकों हैं । दिवाली, बसन्त पंचमी, होली, विजयादशमी, गीता जयन्ती आदि को घटना प्रधान कहा जा सकता है । श्रावणी गुरु पूर्णिमा आदि के पीछे इतिहास नहीं उपयोगी प्रेरणा विद्यमान हैं । परम्परागत सभी उत्सव आयोजनों के पीछे उद्देश्य एक ही है—लोक मानस का उत्साह उभारा जाय और उसे उपयोगी दिशाधारा में नियोजित किया जाय ।

नवरात्रि पर्व की गरिमा धर्म और संस्कृति के आरम्भ काल से मानी जाती रही है । उसे आत्मोत्कर्ष की साधना का विशिष्ट अवसर कहा गया है । भारतीय उपासना पद्धति में सर्वप्रथम स्थान गायत्री महाशक्ति का है । आगम और निगम सम्प्रदायों के आत्मवादी और भौतिकवादी साधक उसी के सहारे दक्षिण-मार्गी, वाम-मार्गी वैदिक और तांत्रिक उपासनाएँ करते रहे हैं । अतीत की वापसी के लिए आरम्भ किये गये पुनर्जीवन, पुनर्निर्माण अभियान में भी उसी पुण्य परम्परा की पुनरावृत्ति करनी होगी । आत्मिक प्रगति के लिए किये जाने वाले साधनात्मक पुरुषार्थ में गायत्री उपासना को स्थान देने, दिलाने का प्रबल प्रयत्न करना होगा ।

बिखराव और भिन्नता की दृष्टि से खान-पान, पहनाव-उढ़ाव जैसे लोक व्यवहार में अन्तर रह सकता है किन्तु दर्शन तो हर हालत में एक ही रहना चाहिए । दार्शनिक बिलगाव रहने पर व्यवहार की एकता अति कठिन हो जाती है । धर्मों के प्रयत्न भी चिरकाल में चल रहे हैं पर उनका प्रतिफल अभी परस्पर सहिष्णुता तक की स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकता है । आये दिन भीतरी बिलगाव के बाहरी लक्षण विग्रह के रूप में उभरते रहते हैं। भारतीयता के अनुयायियों को तत्व दर्शन की एकता बनाये रखने के लिए प्रथम प्रयत्न करना चाहिए । यह कार्य उपासना की धुरी गायत्री को सर्वजनीन बनाकर ही किया जा सकता है । 'एकता' नवयुग का लक्ष्य है । यह एकता उपासना क्षेत्र से आरम्भ की जा सकती है । उसका परिणाम इतना तो तुरन्त ही होगा कि अपने देश में सर्वत्र फैला पड़ा साम्प्रदायिक बिलगाव बहुत हद तक समेटा जा सके ।

रजत जयन्ती वर्ष में युग शक्ति गायत्री का अवतरण तथा उस महाशक्ति की अभ्यर्थना में प्रारम्भ की गई—महापुरश्चरणों की इस श्रृंखला के पीछे यही सिद्धान्त कार्य करते हैं । यह कोई नई परम्परा नहीं है वरन् आर्षपरम्परा का ही एक असाधारण प्रयोग है जिसके माध्यम से स्रष्टा जगत को धर्मनिष्ठ और स्वर्ग तुल्य बनाने का अपना संकल्प भी पूर्ण करने जा रहे हैं साथ ही इस देश और यहाँ के जातीय जीवन में एक अभिनव सामर्थ्य भी पैदा करने का प्रयोजन पूर्ण कर रहे हैं । इसे ब्रह्मवेला का ईश्वरीय निनाद समझा जाये और इस महान् प्रयोजन की पूर्ति में सम्पूर्ण निष्ठा के साथ जुटा जाय तो यह स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों से कर्म त्याग और बलिदान की बात नहीं होगी । पराधीनता के पाप से मुक्ति दिलाना एक महत्वपूर्ण कार्य था, भग्न राष्ट्र का पुनर्निर्माण उससे भी बड़ा कार्य है । दैवी अनुग्रह उसके लिए स्वयं आ प्रस्तुत हुआ है अब अपनी-अपनी बात है कि उसे प्राप्त करने का पुरुषार्थ कौन लोग करते हैं और कौन लोग अमृत वर्षा के समय भी औंधे मुँह पड़े पात्र की तरह इस अलभ्य अवसर से चूककर रह जाते हैं ।

महापुरश्चरण श्रृंखला का आयोजन वातावरण में सूक्ष्म परिवर्तन के लिए, प्रज्ञावतार के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि निर्मित करने के लिए किया जा रहा है । कहना नहीं होगा कि यह अवतरण परिवर्तन सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी बदलाव प्रस्तुत करेगा । व्यक्तिगत रूप से हम स्वयं भी उस परिवर्तन प्रक्रिया में सहयोगी और भागीदार बनें इसके लिए अपने विकारों और दुष्प्रवृत्तियों का शोधन करें । महापुरश्चरण और गायत्री यज्ञ के साथ देव दक्षिणा का क्रम इसीलिए जोड़कर रखा गया है ।

गायत्री यज्ञ में आह्वान की गई देव शक्तियों का सत्कार करने और अनुग्रह पाने के लिए देव दक्षिणा को आवश्यक माना गया है । देव दक्षिणा के दो पक्ष हैं ।

(१) प्रस्तुत जीवन क्रम में घुसी हुई अनैतिकताओं, अवांछनीयताओं में से कुछ का परित्याग ।

(२) सत्कर्म, सद्ज्ञान और सद्भाव बढ़ाने वाली सत्प्रवृत्तियों में से कुछ का अभिवर्धन ।

इस प्रकार का संकल्प ही धर्मानुष्ठान की सफल पूर्णाहुति मानी जाती है और उससे सुनिश्चित रूप से देव अनुग्रह प्राप्त होता है ।

प्रस्तुत गायत्री महायज्ञ में सम्मिलित होने वालों को जिन दुष्प्रवृत्तियों को छोड़ना है और जिन सत्प्रवृत्तियों को अपनाना है उनकी सामान्य जानकारी नीचे दी गई है । जो त्यागनी अपनानी हों उनका पूरा उल्लेख अपने हाथ से लिखकर किया जाय और नीचे अपना पूरा पता तथा विवरण लिखा जाय । यह दक्षिणा पूर्णाहुति के अवसर पर गायत्री माता के चरणों पर प्रस्तुत की जाय ।

(१) जो दुष्प्रवृत्ति छोड़ी (२) जो सत्प्रवृत्ति अपनाई (३) देव दक्षिणा प्रस्तुत कर्ता (४) पूरा नाम (५) पूरा पता (६) शिक्षा (७) जन्म तिथि (८) व्यवसाय (९) जाति गोत्र ।

## त्यागने योग्य दुष्प्रवृत्तियाँ

(१) चोरी, बेईमानी, छल, मुनाफाखोरी, हराम की कमाई, मुफ्त खोरी आदि अनीतियों से दूर रहना, अनीति से उपार्जित धन का उपयोग न करना ।

(२) माँसाहार तथा मारे हुए पशुओं के चमड़े का प्रयोग बन्द करना ।

(३) पशुबलि, अथवा दूसरों को कष्ट पहुँचाकर अपना भला करने की प्रवृत्ति छोड़ना ।

(४) विवाहों में वर पक्ष द्वारा दहेज लेने तथा कन्या पक्ष द्वारा दहेज जेवर चढ़ाने का आग्रह न करना ।

(५) विवाहों की धूम-धाम में धन की बर्वादी न करना ।

(६) नशे (तम्बाकू, शराब, भाँग, गाँजा अफीम आदि) का त्याग ।

(७) गाली-गलौज एवं कटु भाषण का त्याग ।

(८) अन्न की बर्वादी और जूठन छोड़ने की आदत का त्याग ।

(९) जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच, छूत-छात न मानना ।

(१०) पर्दा प्रथा का त्याग किसी को पर्दा करने के लिए बाध्य न करना, स्वयं पर्दा न करना ।

(११) महिलाओं एवं लड़कियों के साथ पुरुषों और लड़कों की तुलना में भेदभाव या पक्षपात न करना ।

## अपनाने योग्य सत्प्रवृत्तियाँ

(१) कम से कम दस मिनट नित्य नियमित गायत्री उपासना ।

(२) घर में अपने से बड़ों का नियमित अभिवादन करना ।

(३) छोटों के सम्मान का ध्यान रखना, उनसे तू करके न बोलना ।

(४) अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहना तथा उनका पूरी शक्ति से पालन करना ।

(५) परिश्रमशीलता का अभ्यास बनाना किसी काम को छोटा न समझना ।

(६) नियमित स्वाध्याय—जीवन को सही दिशा देने वाला सत्साहित्य कम से कम आधा घण्टा नित्य स्वयं पढ़ना या सुनना ।

(७) भारतीय संस्कृति के प्रतीक शिक्षा एवं यज्ञोपवीत का महत्व समझना उन्हें निष्ठापूर्वक धारण करना दूसरों को प्रेरणा देना ।

(८) सादगी का जीवन जीना—औसत भारतीय स्तर के रहन-सहन के अनुरूप विचार एवं अभ्यास बनाना उसमें गौरव का अनुभव करना ।

(९) ज्ञान-यज्ञ सद्विचारों के प्रसार के लिए कम से कम दस पैसा धन और एक घण्टा समय प्रतिदिन बचाकर सही ढंग से खर्च करना ।

(१०) परिवार में सामूहिक उपासना, प्रार्थना, आरती आदि का क्रम प्रारम्भ करना ।

(११) प्रतिवर्ष अपना जन्मदिन सामूहिक रूप से यज्ञीय वातावरण में मनाना तथा जीवन की सार्थकता के लिए व्रतशील जीवन क्रम बनाना ।

(१२) समाज के प्रति, अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूकता, समाज में सद्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयासों में उत्साह भरा योगदान देना ।

# युग साधना में निष्ठा का समावेश

आत्मिक समर्थता और सफलता इस बात पर निर्भर है कि साधक की निष्ठा किस स्तर की बन पड़ी । उपासनात्मक कर्मकाण्डों के कलेवर और निष्ठा को उसके अन्तरंग को प्राण शक्ति कहा जाता है । साधना की सिद्धि इसी एक तथ्य पर निर्भर है कि उसे कितनी गहन निष्ठा के साथ अपनाया गया । यों जब तब, ज्यों-त्यों करके कुछ न कुछ भजन-पूजन करते रहने में भी हर्ज नहीं, उतने से भी रुचि बदलती है और प्रवाह बनता है, पर इस तथ्य को भुलाया नहीं जाना चाहिए कि वाण की बेधक शक्ति इस बात पर निर्भर रहती है कि धुनष की प्रत्यंचा को कितना खींचा जा सका और लक्ष्य वेध में कितने एकाग्र मनोयोग का उपयोग किया गया । आत्मिक सफलताओं का रहस्य एक ही है कि 'निष्ठा'का महत्व कितना समझा गया और उसे कितनी गम्भीरतापूर्वक अपनाया गया । कर्मकाण्ड तो उपचार भर है । चमत्कार तो निष्ठा की प्रखरता एवं परिपक्वता ही दिखाती है ।

युग संधि महापुरश्चरण को लक्ष्य समष्टिगत सन्तुलन को बनाने एवं अदृश्य वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न करने की जानकारी सभी को है । उसे विशिष्ट आत्माओं द्वारा सम्पन्न किया गया इस युग का अभूतपूर्व सहकारी धर्मानुष्ठान समझा जा सकता है और यह विश्वास किया जा सकता है कि इस माध्यम से सूक्ष्म अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुई अदृश्य ऊर्जा प्रस्तुत परिस्थितियों को बदलने में असाधारण भूमिका सम्पन्न करके रहेगी । युग परिवर्तन की सम्भावना कोटि-कोटि मानवों को उज्जवल भविष्य का आश्वासन दे सकने में समर्थ है ।

यह सर्वजनीन सार्वभौम हित साधन की—सृष्टि सन्तुलन की—अवतारी प्रक्रिया की चर्चा हुई । अब साधकों के निजी लाभ पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वे भी इस प्रक्रिया को अपनाकर कम लाभ में न रहेंगे । 'निष्ठा' की उपलब्धि इतनी महान है कि उसे पारसमणि की, कामधेनु की उपमा देने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। आदर्शवादिता के प्रति अगाध श्रद्धा और उन्हें क्रियान्वित कर सकने की साहसिकता को 'निष्ठा' कहते हैं। प्रकारान्तर से यही देवत्व है । भौतिक और आत्मिक सिद्धियों का भाण्डागार इसी भाव गरिमा के अन्तराल में छिपा रहता है जो अन्तराल के उस मर्मस्थल को जगाने की समर्थता को ही कुण्डलिनी जागरण कहते हैं । यह उपलब्धि जिसने हस्तगत कर ली उसके लिए संसार में ऐसा कुछ शेष नहीं रह जाता तो इस उपलब्धि के बदले सम्भव न हो सके ।

संसार में अनेक प्रगति क्षेत्र हैं । उन सब में निष्ठा की प्रखरता ही जीतती है । यहाँ तक कि भौतिक सफलताओं में ही दृढ़ निश्चयी, पराक्रमी और साहसी ही सफल होते हैं । शेष तो ऐसे ही असमंजस के पिछड़ेपन से ग्रसित न रहकर किसी प्रकार जिन्दगी के दिन काटते रहते हैं । भौतिक क्षेत्र में तो कई बार छम और भाग्य भी काम दे जाता है और कुछ तत्कालिक सफलताएँ सामने ला खड़ी करता है भले ही सत्परिणाम उत्पन्न करने एवं स्थिर रहने योग्य न बन सके । यह अपवाद आत्मिक क्षेत्र में नहीं देखे जाते । उसमें ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी ही सफल होते हैं । यह तीनों ही विभूतियाँ 'निष्ठा' की ही परिणितियाँ मानी जाती हैं ।

युग सन्धि महापुरश्चरण की भागीदार सामान्य स्तर का पूजा-पाठ करते रहने वालों को नहीं वरन् 'नैष्ठिकों' को मिली है । आस्था को परिपक्व करने के लिए उन्हें कई आदर्शवादी अनुशासन पालने के लिए वचनबद्ध किया गया है । गुरुवार को अस्वाद, ब्रह्मचर्य, एवं मौन की व्रतशीलता है साथ ही यह भी अनुबंध है कि पाँच माला या आधा घण्टे का जप ध्यान खाने तक न सही सोने तक तो पूरा कर ही लिया जाय । व्यतिरेक व्यस्तता से नहीं मनःस्थिति की दुर्बलता एवं बहानेबाजी से ही होता रहता है । आपत्ति कालीन अपवाद तो यदा-कदा ही आते हैं और उनमें आगे चलकर छूटी हुई उपासना को पूरा कर लेने की सुविधा भी है । पर निष्ठा के अभाव में लड़खड़ाने वाले अन्तराल में तो नियमित पूजा-पाठ तक नहीं बन पड़ता । फिर व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने वाले जिस आन्तरिक पराक्रम की आवश्यकता है वह तो बनेगा ही कैसे ? ऐसी मनोभूमि के लोग ही असफलता का रोना रोते और उसका कारण यहाँ—वहाँ—ढूँढ़ते रहते हैं । जब कि निष्ठा का अभाव ही अशक्तता के रूप में असफलता का एकमात्र निमित्त कारण है ।

अगले दिनों मनस्वी प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ेगी । तेजस्वी व्यक्तित्व ही बड़े कार्यों का भार वहन कर सकेंगे । उनका उत्पादन इन्हीं दिनों आवश्यक है ।

देवत्व की प्रगति में तपश्चर्या ही माध्यम बनती है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझा गया कि निष्ठा का अभ्यास कराया जाय । युग सन्धि महापुरश्चरण का जहाँ एक समष्टिगत उत्कर्ष एक उद्देश्य है वहाँ दूसरा यह भी है कि निष्ठावान् महामानवों की पीढ़ी उत्पन्न करने के लिए उन्हें सर्वप्रथम उपासनात्मक अभ्यास सौंपा जाय। तद्नुसार एक लाख साधकों द्वारा प्रतिदिन ४० करोड़ गायत्री जप के युग पुरश्चरण की योजना बनाई गई है । यहाँ यह स्मरणीय है कि इसमें मात्र उन्हीं को लिया गया है जो निष्ठा को परिपक्व करने वाले अनुबन्धों का कड़ाई से पालन कर सके । यही कारण है इस युग साधना के साधक "नैष्ठिक" कहलाते हैं । निष्ठा से उत्पन्न ऊर्जा ही आत्मकल्याण और लोकनिर्माण के उभय पक्षीय प्रयोजन पूरे कर पाती है । युग सृजन में यह मानवी निष्ठा ही दिव्य ऊर्जा के रूप में परिणित होगी । व्यष्टि में देवत्व के उदय और समष्टि में स्वर्गीय वातावरण की आशा, अपेक्षा इसी आधार पर की गई है कि निष्ठावानों का समुदाय सृजन शिल्पियों के रूप में भागीरथ, हनुमान, अर्जुन जैसे पराक्रम प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होंगे और समय की आवश्यकता पूरी करेंगे ।

उपासना में अधिकाधिक निष्ठा का समावेश, युग साधकों की साधना प्रखरता बनाने के लिए अनिवार्य समझा जाना चाहिए । निष्ठा का जितना ही समावेश हो सकेगा, नैष्ठिक उपासकों द्वारा चलाये जाने वाले युग सन्धि महापुरश्चरण के सत्परिणाम उसी अनुपात में फलित होंगे ।

युग पुरश्चरण की नैष्ठिक साधना के अतिरिक्त सामान्य जनों को गायत्री उपासना में प्रवृत्त करने का उत्तरदायित्व भी युग साधकों को सौंपा गया है । सामान्य उपासक एकदम तो युग पुरश्चरण जैसी निष्ठ प्रधान साधनाओं में संलग्न नहीं हो सकते । उन्हें क्रमशः ही नैष्ठिक उपासना की ओर अग्रसर किया जा सकता है । अस्तु, आरम्भ में जिन्हें अभ्यास नहीं है और जो नये-नये ही गायत्री उपासना में संलग्न हो रहे है उनके लिए ऐसा सरल मार्ग प्रस्तुत किया गया है जिन्हें वे एकाकी प्रयासों से अस्तु किन्हीं भी परिस्थितियों में करते रह सकते हैं ।

'नियमित उपासना' में समय एवं संख्या का बन्धन तो नहीं है, पर नियमितता को जीवन्त रखने के लिए इतना तो करना ही होगा कि जो भी करना हो उसे संकल्पपूर्वक तथा नियमित रूप से किया जाय । अस्त-व्यस्तता अश्रद्धा की परिचायक है । निष्ठा में अनुशासन जुड़ा हुआ है । भले ही न्यूनतम मात्रा में उपासना की जाय, पर उसमें ढील-पोल नहीं चलनी चाहिए ।

शारीरिक नित्य कर्मों की तरह मानसिक स्वस्थता बनाये रखने के लिए उपासना का अवलम्बन आवश्यक है। समय का अभाव या अन्य कोई कारण हो तो न्यूनतम उपासना पाँच मिनट की भी हो सकती है । एक माला जप में प्रायः इतना ही समय लगता है । स्नान की असुविधा हो तो मौन मानसिक जप किसी भी स्थिति में एवं किसी भी समय किया जा सकता है । जप के साथ ध्यान आवश्यक है । युग पुरश्चरण में शक्ति संचार की उच्चस्तरीय ध्यान धारणा का समावेश है । पाँच मिनट की न्यूनतम गायत्री जप उपासना में प्रकाश मंडल के अन्तर्गत महाप्रज्ञा का—गायत्री माता का—ध्यान किया जाना चाहिए । प्रातःकाल का स्वर्णिम सूर्य—उसकी दिव्य किरणों का साधक की काया में प्रवेश—स्थूल शरीर काय कलेवर में सत्पुरुषार्थ—सूक्ष्म शरीर—ज्ञान संस्थान में सद्ज्ञान का—कारण शरीर-अन्तःकरण में सद्भाव के रूप में सविता प्रकाश में अनुभूति । यही है वह सरलतम ध्यान जो पाँच मिनट की नित्य जप साधना करने के रूप में चलता रह सकता है ।

यह सरलतम साधना समय, स्थान, स्नान आदि के अनुबन्धों से तो मुक्त रखी गई है, पर निष्ठा को जीवन्त बनाये रखने के लिए इतना अनुशासन तो उसमें भी रखा गया है कि खाने या सोने से पूर्व उसे कर ही लिया जाय। इतनी नियमितता बनी रहने से भी उस निष्ठा का परिपोषण होता रहेगा जो उपासनात्मक कर्मकाण्डों में जीवन प्राण मानी जाती है । अस्त-व्यस्त रखने पर तो स्वास्थ्य, साधना, शिक्षा, व्यवसाय आदि किसी में भी सफलता नहीं मिलती फिर उपासना को ही उस स्थिति में फलवती होने का अवसर कैसे मिल सकता है ?

इस न्यूनतम किन्तु नियमित साधना को अपनाने के लिए प्रज्ञा युग के प्रत्येक व्यक्ति को कहने एवं सहमत करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए । प्रज्ञा पुत्रों का सम्पर्क जिनसे भी उन्हें आत्मिक पुरुषार्थ और प्रकारान्तर से वातावरण अनुकूलन में योगदान के लिए तथ्य समझाते हुए अनुरोध किया जाय तो कोई कारण नहीं कि इस पाँच मिनट जितने सरलतम पुरुषार्थ को अपनाने पर इनकार ही होता चले । कितनों से ही कहने पर कुछ तो अवश्य ही सहमत होंगे । जिनके अन्तराल में सुसंस्कारिता के

बीजांकुर होंगे । उन्हें इस आधार पर उपलब्ध होने वाली युग चेतना से लाभान्वित होने का सहज ही उत्साह उभरेगा । अपेक्षा की जानी चाहिए कि यह अनुरोध टाला कम और अपनाया अधिक जायगा ।

नैष्ठिक साधकों को यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि उपासना के अखाड़े में बलिष्ठता का—निष्ठा का—अभ्यास करना होता है, पर उस उपार्जित सामर्थ्य को इतने छोटे क्षेत्र में कैद नहीं रखा जाता । पहलवान दंगल पछाड़ते और दूसरे प्रकार के पराक्रम प्रस्तुत करते हैं । ठीक यही बात नैष्ठिक साधकों के सम्बन्ध में भी है । वे निर्धारण, जप संख्या एवं व्रतशीलता का उपक्रम चलाते हुए उपासना क्षेत्र के प्रयोगकर्त्ता तो समझे जा सकते हैं । पर बात इतने भर से बनती नहीं । बढ़ना और आगे पड़ता है । गाड़ी एक पहिये से नहीं दो से चलती है । ताली एक नहीं दो हाथ से बजती है । संतानोत्पादन एक नहीं नर-नारी का युग्म करता है । प्रगति पथ की लम्बी यात्रा एक पैर से नहीं दोनों सही होने पर ही बन पड़ती है । उपासक को साधक भी बनना पड़ता है । उत्कृष्ट चिन्तन के साथ आदर्श कर्तृत्व आवश्यक है । देवत्व के पक्षधर मात्र अपने को सन्त, सज्जन बना कर ही नहीं रह जाते वरन् उन्हें लोकमण्डल की साधना में निरत रहकर सुसंस्कारिता परिपक्व करनी होती है । एकांगी अभिरुचि रखने वाले पूजा परायणों की असफलता का एकमात्र कारण यही होता है कि वे परमार्थ परायणता में रुचि नहीं लेते और लोकमंगल को अपनी संचित संकीर्णता के कारण स्वार्थ सिद्धि के लिए आवश्यक न मानकर उसमें निरत बने रहते हैं । यदि यह अपूर्णता बाधक न रहे तो काने, लँगड़े जैसी कुरूपता और अर्धांग पक्षाघात से पीड़ितों जैसी असमर्थताजन्य असफलता का सामना क्यों करना पड़े ? उपासना का दूसरा पक्ष है—साधना । एक पंख से पक्षी नहीं उड़ता, इसी प्रकार लोककल्याण के लिए तत्पर हुए बिना किसी को भी आत्मकल्याण का लाभ मिल नहीं सकता । इस सच्चाई को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही श्रेयस्कर रहेगा ।

युग सन्धि पुरश्चरण के नैष्ठिक भागीदारों का शुभारम्भ तो पूजा, उपासना के अमुक विधि-विधान पूरे करने से ही कराया गया है, पर उन्हें उतने छोटे दायरे तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए । मात्र वातावरण संशोधन का उपक्रम ही पर्याप्त नहीं, युग सृजन में हमारा प्रत्यक्ष योगदान भी सम्मिलित रहना चाहिए और पराक्रम भरे अनुदान की माँग को थोड़ी-सी पूजा-पत्री को पर्याप्त मानकर अनसुनी नहीं करना चाहिए । युग पुरश्चरण के नैष्ठिक उपासकों को यह भी समझने की आवश्यकता है कि महाप्रज्ञा की आराधना में इन दिनों नव-सृजन के निमित्त भाव भरे अनुदानों को भी सम्मिलित्त रखने की आवश्यकता है ।

## प्रज्ञा पुरश्चरण की परोक्ष पृष्ठभूमि

महत्वपूर्ण कार्यों और प्रयत्नों के लिए संयुक्त शक्ति का जुटाना आवश्यक होता है । भौतिक क्षेत्र में तो ऐसा ही हो सकता है कि तोप का एक बड़ा गोला सौ गोलियों जितना काम कर दे, किन्तु अध्यात्म क्षेत्र में वैसा नहीं है । एक बड़ी मशाल की अपेक्षा यहाँ सौ दीपकों का महत्व अधिक माना जाता है । यों भौतिक क्षेत्र में भी छोटी-छोटी इकाइयाँ मिलकर एक बड़ी संरचना बनने की बात को सर्वथा नकारा भी नहीं जा सकता । रुई का एक गट्ठा मरोड़ कर वैसा मजबूत रस्सा या कोड़ा नहीं बन सकता जैसा कि पतले धागों के संयोग से बनता है । सभी जानते हैं कि ईंटों से चुनकर मकान बनते हैं । कणों के सम्मिश्रण से पदार्थों की रचना होती है । चक्रवात की तुलना में हवा के छोटे-छोटे झोंके सन्तुलन बिठाते हैं । ज्वार-भाटों पर नहीं समुद्र की शोभा व्यवस्था सामान्य लहरों पर टिकी हुई है ।

मनुष्य में शरीर और प्राण दोनों हैं । शरीर में बल और प्राण में जीवन रहता है । शरीर की संयुक्त शक्ति जितनी बनती है उसकी समता से एक यन्त्र मानव बन सकता है । किन्तु हर व्यक्ति की जो अपनी-अपनी सूझ-बूझ जीवट होती है उसका भी तो महत्व है । इसलिए सेना में अधिकाधिक सुयोग्य सैनिकों की आवश्यकता पड़ती है । अस्त्र-शस्त्रों की न्यूनाधिकता उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी कि सैनिकों का कौशल, साहस और पराक्रम । यह जीवन्तों की विशेषताएँ हैं । इसलिए प्रीतिभोजों में, जुलूसों में, उत्सव आयोजनों में जन-शक्ति के सहारे शोभा बनती है । एक दो सेनापति, नेता, विद्वान, धनाढ्य को विराजमान कर देने से न जुलूस बनता है न समारोह । व्यक्ति की प्राण शक्ति की अपनी गरिमा है । उसका गणित अलग है । एक और एक मिलकर जड़पदार्थ दो होते हैं पर जीवन्तों के विषय में एक और एक मिलकर [illegible]

होती है । भावनात्मक मिलन का अपना महत्व है । मुसाफिरखानों की भीड़ में भावनात्मक एकता न होने से उसका महत्व भले ही नहीं पर एक स्वभाव, एक शिक्षण, एक लक्ष्य वाले सैनिकों की संयुक्त शक्ति कैसा गजब ढाती है, यह किसी से छिपा नहीं है । शरीर संरचना छोटे जीवाणुओं और अवयवों के संयुक्त समन्वय से ही बनती है ।

अदृश्य परिशोधन की सामयिक आवश्यकता पूरी करने के लिए आदर्शवादी भावनाशीलों की संयुक्त सामर्थ्यशीलों की संयुक्त सामर्थ्य सदा अपेक्षित रही है । उसका कोई और विकल्प नहीं हो सकता है। सीता अवतरण के लिए ऋषियों का एक-एक बूँद रक्त संग्रह करके वह घड़ा भरा गया था । जिसे हल चलाते समय जनक ने सीता समेत खेत में पड़ा पाया था । यह प्रयोजन एक व्यक्ति का सिर काटकर रक्त से घड़ा भर लेने से पूरा नहीं हो सकता था । उससे प्राणवानों की संयुक्त शक्ति वाला उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था । यह बात दुर्गा अवतरण के सम्बन्ध में भी है । सभी देवताओं की संयुक्त शक्ति से प्रजापति ने महाकाली की संरचना की थी । इन्द्र कुबेर जैसे एक दो वरिष्ठों को मिला देने भर से वह कार्य पूरा नहीं हो सकता था ।

एक प्रकृति की अनेक प्राणवान् इकाइयों को एक लक्ष्य के लिए नियोजित कर देने कितनी प्रचंड शक्ति उत्पन्न होती है, उसे सभी विज्ञजन भली-भाँति जानते हैं । प्रजापति ने ऋषि रक्त की बूँद-बूँद संग्रह करके घड़ा भरने का इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए परामर्श दिया था । दुर्गावतरण में देवताओं की थोड़ी-थोड़ी शक्ति का संग्रह करने का प्रबन्ध स्वयं भी इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए किया था ।

राम लक्ष्मण में बल कम न था । समुद्र को सुखा देने वाले वाण के धनी रावण को भी मार सकते थे । पर्वत उखाड़ने वाले हनुमान लंका को भी पानी में डुबा सकते थे, किन्तु यह पर्याप्त न समझा गया । व्यवस्था यह बनी कि अधिक संख्या में रीछ, बानरों की उमंगों का संचय करके समन्वित प्राण शक्ति का उद्भव किया जाय । यह महत्वपूर्ण कार्यों के लिए नीति निर्धारण भी है, साथ ही प्राणवानों की संयुक्त शक्ति से उत्पन्न होने वाली प्रचण्ड क्षमता का रहस्योद्घाटन भी । भगवान कृष्ण क्या नहीं कर सकते थे जरासन्ध और शिशुपाल की तरह वे कौरवों से भी अकेले निपट सकते थे, पर महाभारत में उन्होंने बड़े प्रयत्न से पाण्डवों के पक्ष में विश्व भर से सैन्य सहयोग जुटाया । इतना ही नहीं उन्होंने गोवर्धन तक ग्वाल-ग्वालों की समन्वय शक्ति से उठा सकने का प्रदर्शन किया । यों वे उठा तो अकेले भी सकते थे ।

परशुराम के एकाकी प्रयत्नों का नगण्य परिणाम देखते हुए बुद्ध ने दूसरी नीति अपनाई । यों दोनों के सामने एक ही जैसी समस्या थी । बुद्ध भी भगवान थे । परशुराम तीन कला के और बुद्ध बीस कला के । फरसा वे भी उठा सकते थे, पर वे महान एवं व्यापक प्रयोजनों के लिए प्राणवानों की संयुक्त शक्ति का प्रयोग करने के पक्ष में रहे और उनने चीवरधारी श्रवण परिव्राजक स्तर के नर-नारियों की एक विश्ववाहिनी खड़ी की । विश्व के कोने-कोने में पहुँचने का कार्य इसी प्रकार हो सका । शंकर दिग्विजय की तरह वे अकेले ही दौड़ धूप करने की निरर्थकता को भी समझते थे अतएव उन्होंने गहराई तक सोचने और दूरगामी परिणाम उत्पन्न कर सकने वाले निष्कर्ष निकाले ।

प्राचीन काल में राजाओं के मल्लयुद्धों में थोड़े से लोग ही हार जीत का फैसला कर लेते थे, और राज्य बदल जाते थे । गाँधी और अंग्रेज के बीच मल्लयुद्ध नहीं रचा गया । जन-जागरण, जन-समर्थन, जन-सहयोग की संयुक्त जन शक्ति को उभारा गया और उस तूफान के सामने सूर्य समर्थ समझी जाने वाली सत्ता भी टिक न सकी । गाँधी की जीत का रहस्य इतना ही है कि उन्होंने देश के मणि मुक्तकों—साहसियों को कोने-कोने से ढूँढ़ निकाला और उनको एक जुट बनाकर इतना बड़ा शक्ति पुँज एकत्रित किया, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध में जीतने वाले ब्रिटिश साम्राज्य को बुरी तरह पछाड़ कर रख दिया।

अवांछनीयताओं से लोहा लेने के लिए ही नहीं सृजन प्रयोजनों के लिए भी संयुक्त प्राण शक्ति का, समय-समय पर प्रयोग होता रहा है । भगवान बुद्ध के समय में एक लड़की ने जन-जन की कसक जगाने का व्रत लिया और उस आधार पर दुर्भिक्ष पीड़ित बालकों की प्राण रक्षा का ऐतिहासिक कार्य कर दिखाया । समुद्र का पुल बाँधने में रीछ, वानरों के तनिक-तनिक से सहयोग से कितना बड़ा काम बन पड़ा, यह सर्वविदित है । देवर्षि नारद जन-जागरण के लिए निरन्तर परिभ्रमण करते थे । सूत जी शौनिकों को स्थान-स्थान पर एकत्रित करके प्रयत्नरत होने का प्रशिक्षण देते थे । ऋषि प्रणीत तीर्थ

धामों और बुद्धकालीन बिहार संघारामों में सदाशयता की संयुक्त शक्ति को एकत्रित एवं प्रशिक्षित किया जाता था। भूत काल के महान इतिहास की—भारत की सांस्कृतिक गरिमा की—पृष्ठभूमि इसी आधार पर विनिर्मित हो सकी ।

साधना क्षेत्र में यों होती तो व्यक्तिगत एवं एकान्तिक साधनाएँ भी हैं पर उनका लक्ष्य प्रयोजन एवं लाभकर्ता तक ही सीमित रहता है । सर्वजनीन समाधान एवं संवर्धन के लिए यदि कोई बड़ा कदम उठाने की आवश्यकता हुई है तो सदा समन्वित सहयोगी प्रयत्नों की आवश्यकता समझी और पूरी की गई है । राजतन्त्र द्वारा राजसूय यज्ञ और धर्मतन्त्र द्वारा बाजपेय यज्ञ ऐसे ही प्रयोजनों के लिए आयोजित किये जाते थे । उन्हें समारोह, सम्मेलन, संवर्धन, सह प्रयत्न की भी संज्ञा दी जा सकती है । जो काम विद्वान मण्डली या तपस्वी परिकर एवं शासक वर्ग अपने सीमित पराक्रम से सम्पन्न नहीं कर सकता था उसे मध्यवर्ती भावनाशीलों की संयुक्त से भली प्रकार सम्पन्न कर लिया जाता था ।

बड़े वजन उठाने या धकेलने वाले मजदूर एक साथ हल्ला बोलकर संयुक्त बल लगाने के सिद्धान्त को भली प्रकार समझते हैं । इसी आधार पर वे कठिन कार्य सम्पन्न करते हैं । संयुक्त बल एक साथ लगाने का क्रम न बने तो फिर बड़े भार वाले चट्टान को इधर से उधर ले पहुँचना और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता है । संयुक्त शक्ति के ऐसे प्रमाण परिचय छप्पर उठाने, आग बुझाने जैसे छोटे-मोटे कार्यों में आये दिन दृष्टिगोचर होते रहते हैं ।

तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रज्ञा पुरश्चरण की सामयिक परिस्थिति से निपटने के लिए योजना बनी है। इसका समय और विधान तो तनिक-सा है । सूर्योदय से पूर्व पाँच मिनट मानसिक गायत्री जप और उसका अदृश्य परिशोधन के लिए संकल्प ।" इसे किसी विधान प्रतिबन्ध उपकरण आदि से सर्वथा मुक्त रखा गया है । जो प्रज्ञा परिजन जहाँ भी जिस भी स्थिति में हों नियत समय पर पुरश्चरण की निर्धारित प्रक्रिया को पूरा कर लें। देखने-सुनने में यह प्रयोग बुहत छोटा और महत्वहीन-सा लगता है, पर बात ऐसी है नहीं । उसमें एक वर्ग, एक लक्ष्य, एक विधान, एक समय के चार तथ्यों का एक साथ समावेश हो जाने से जिस संयुक्त प्राणशक्ति का उद्‌भव होता है उसके प्रयोग-परिणाम की प्रतिक्रिया निश्चित रूप से असाधारण होनी चाहिए । समय, श्रम, लक्ष्य एव उपक्रम के बिखराव से महत्वपूर्ण शक्ति स्रोत भी विच्छृं-खलित बने रहते हैं । विखराव में सामर्थ्य का कितना अपव्यय होता है और उसके केन्द्रीकरण से उत्पन्न चमत्कार कितने प्रचण्ड होते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है । सूर्य किरणें पृथ्वी पर पड़ती और छितराती रहने के कारण मात्र गर्मी रोशनी भर उत्पन्न करती हैं । यदि एक इंच परिधि की सूर्य किरणें आतिशी शीशे के द्वारा एकत्रित कर ली जाएँ तो देखते-देखते चिनगारियाँ उठने लगेंगी और उनके दावानल बनने में देर न लगेगी ।

तनिक-सी भाप के केन्द्रीकरण द्वारा प्रेशर कुकर से लेकर विशालकाय बायलर प्रचण्ड सामर्थ्य का परिचय देते देखे गये हैं । वर्षा का बिखरा जल जहाँ-तहाँ बहता रहता है, पर जब वह किसी नदी नाले में एकत्रित होकर एक दिशा पकड़ता है तो उसे हाथी तक बहा ले जाने वाले प्रवाह का रौद्र रूप धारण करते देखा गया है । बिखरी हुई ढेरों बारूद को जलाने पर भक से उड़ती देखी गई है, किन्तु यदि उसकी तनिक-सी मात्रा एक कारतूस में बन्द करके छोटी नली वाली बन्दूक द्वारा चला दी जाय तो सिंह के आर-पार निकलने, कड़े लक्ष्य बेधने में सफल होती है । विचारों की एकाग्रता से उत्पन्न होने वाली ध्यान शक्ति का महत्व योगी जन भली प्रकार समझते हैं।

देव-दानव संघर्ष में देवताओं के बार-बार हारने और असुरों के बार-बार जीतने के पीछे कारण ढूँढ़ा जाय तो बिखराव और एकत्रीकरण के भिन्न परिणामों का प्रमाण परिचय स्पष्टतः सामने आ खड़ा होता है । देवता हर दृष्टि से वरिष्ठ और समर्थ होते हुए भी इसलिए हारते रहे कि उन्होंने संयुक्त शक्ति विकसित करने की आवश्यकता नहीं समझी और अपनी ढपली, अपना राग बजाते रहे । जबकि दैत्यों ने गठन का महत्व समझा और गिरोह बनाकर हमला किया । इस एक ही विशेषता के कारण वे जीते, यद्यपि वे हर दृष्टि से देवताओं की तुलना में पिछड़े हुए थे ।

धर्मशीलों की संकल्प शक्ति का एकत्रीकरण और उसका सामयिक समस्या के समाधान में उपयोग, यह है एक महत्वपूर्ण आधार जिसके कारण प्रज्ञा पुरश्चरण से परिणामों की आशा की गई है जो प्रस्तुत विपन्नता से विश्व-व्यवस्था को उवार सकें ।

# वातावरण परिशोधन हेतु समष्टिगत प्रज्ञा पुरश्चरण साधना

जिस प्रकार मनुष्य में शरीर और प्राण दो के तत्व हैं उसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ का दृश्यमान स्वरूप और अदृश्य गुण होते हैं । जड़ के भीतर चेतन भी काम करता है । पदार्थ दीखता है उसका प्राण अदृश्य रहता है । स्थूल जगत के भीतर सूक्ष्म अदृश्य जगत है जो प्राय: आकाश में भरा रहता है । यह दृश्य की तुलना में अदृश्य असंख्य गुना शक्तिशाली होता है ।

वायुमण्डल की शुद्धता, अशुद्धता का प्रभाव प्राणियों के शरीरों, वनस्पतियों और मौसमों पर पड़ता है । वातावरण चेतनात्मक होता है । उससे चेतन प्राणियों के चिन्तन और चरित्र पर प्रभाव पड़ता है । गुण कर्म, स्वभाव को यों मनुष्य अपने प्रयत्नों से—परिवार एवम् सम्पर्क प्रभाव से बनाता बिगाड़ता है । पर इस तथ्य को भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि उसमें अदृश्य वातावरण की भी अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

वातावरण चेतनात्मक है । उसका प्राण प्रवाह के स्तर से सम्बन्ध है । सतयुग में ऐसा अदृश्य प्राण प्रवाह चलता था जिससे व्यक्तियों की भावना, मान्यता और आकांक्षा प्रभावित होती थीं । गुण-कर्म-स्वभाव में उत्कृष्टता भरी रहती थी । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शवादिता का परिपूर्ण समावेश रहता था । यों इस दिशा में मानवी प्रयत्न भी चलते थे पर उन्हें सफल बनाने में अदृश्य वातावरण की भूमिका अनुकूलता का भी भारी योगदान रहता था ।

इन दिनों अदृश्य जगत के दोनों ही पक्ष अपने-अपने ढंग की विषाक्तता से भरते जा रहे हैं । धुआँ, कोलाहल, विकिरण की अवांछनीय अभिवृद्धि से शरीरों, खाद्य पदार्थों के लिए अनेकानेक प्रकार के भँवर खड़े हो रहे हैं और खण्ड प्रलय जैसी विभीषिका सामने खड़ी दिखती है । भय और आतंक से संसार भर में असुरक्षा, अनिश्चितता की आशंका संव्याप्त है । दूसरा परोक्ष पक्ष और भी बुरी स्थिति में है । लोकमानस में संकीर्ण स्वार्थपरता, विलासिता, निष्ठुरता, प्रवंचना, उच्छृंखलता जैसे आसुरी तत्व अनायास ही भरते जा रहे हैं । कुछ समय पूर्व लोग परिस्थितिवश अपराध करते थे अब परिस्थिति नहीं मन:स्थिति कारण बन गई है । गम्भीर पर्यवेक्षण करने पर यह खोट प्रचलन प्रवाह तक सीमित नहीं रहता उसकी जड़ अदृश्य वातावरण में विषाक्तता उत्पन्न करती है और विषाक्त वातावरण से लोकमानस में असुरता निकृष्टता बढ़ती भरती चली जाती है । यह एक कुचक्र है जो एक बार चल पड़ने पर टूटने का नाम नहीं लेता । अन्तरिक्ष में ग्रह उपग्रह जब एक बार एक कक्षा पर घूमने लगें तो फिर वे समयानुसार भरने पर ही विराम लेते हैं । मुर्गी से अण्डा—अण्डा से मुर्गी । बीज से वृक्ष-वृक्ष से बीज । नर से नारी—नारी से नर । समुद्र से वर्षा-वर्षा से समुद्र की तरह एक गति चक्र है । जो अपनी धुरी पर घूमने लगता है । अदृश्य वातावरण से लोकमानस और लोकमानस से अदृश्य वातावरण का भी अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ।

इस कुचक्र को तोड़ने के लिए परमात्मा की तरह आत्मा को भी अपना उत्तदायित्व निभाना पड़ता है । सृजन निभाना पड़ता है । सृजन सन्तुलन लड़खड़ाने पर सृजेता अवतार लेते और अनियन्त्रित स्थिति को नियन्त्रण में लाने के लिए प्राणवान प्रवाह उत्पन्न करते हैं । यह अवतार प्रकरण की सूक्ष्म प्रक्रिया का परिचय हुआ । इस सुधार प्रयोजन का दूसरा पथ मनुष्य कृत है जिसे जाग्रत आत्माएँ ऐसी विषम बेला में आपत्ति धर्म की तरह अपनाती और स्रष्टा के प्रयोजन में हाथ बँटाती हैं उन्हें अध्यात्म उपचारों का आश्रय लेना पड़ता है । विशालकाय सामूहिक धर्मानुष्ठान प्राय: इससे प्रयोजन के लिए किये जाते हैं ।

इस सन्दर्भ में इतिहास की कुछ घटनाएँ दृष्टव्य हैं । लंका विजय में असुर तो मरे पर अदृश्य वातावरण में विषाक्तता भरी रहने से लक्ष्य का सामयिक समाधान हुआ, अदृश्य का संशोधन भी होना चाहिए । इसके लिए भगवान राम ने दश अश्वमेधों का नियोजन किया । कुरुक्षेत्र में महाभारत संग्राम के उपरान्त कंस, दुर्योधन, जरासन्ध से तो पीछा छूटा पर अदृश्य में विषाक्तता भरे रहने से स्थायी समाधान नहीं दिखाई पड़ा । इसके लिए आध्यात्म उपचार का आश्रय लिया गया और विशाल रूप में राजसूय यज्ञ की योजना बनायी गयी ।

सामूहिक धर्मानुष्ठानों से अदृश्य वातावरण की संशुद्धि के और भी अगणित प्रमाण उदाहरण इतिहास पुराणों में भरे पड़े हैं । अनेक ऋषियों के रक्त संचय से घड़ा भर गया था । उससे सीता जन्मी और तमिस्रा की

स्थिति बदली । देवता असुरों से जब भी हारे तब अपनी विश्रृंखलता की समस्या लेकर संयुक्त रूप से प्रजापति के पास गये । एक स्वर में बोले । ऐसी ही पुकार सुनी भी जाती है । प्रजापति ने उन्हीं की थोड़ी-थोड़ी शक्ति एकत्रित करके दुर्गा को सृजा और उसने देखते-देखते संकट को निरस्त कर दिया । इन कथाओं में प्रकारान्तर से इस सिद्धांत का प्रतिपादन है कि देवमानवों को संयुक्त रूप से अध्यात्म पुरुषार्थ करके, अदृश्य वातावरण की प्रतिकूलता का शमन करके, समाधान करके अनुकूलता उत्पन्न करनी चाहिए ।

अध्यात्म उपचारों में यज्ञ मूर्धन्य है । उसके दो पक्ष हैं । एक मन्त्रोच्चार दूसरा हव्य पदार्थों का यजन । दोनों के मिलने से ही समग्र अग्निहोत्र बनता है । प्रज्ञा अभियान द्वारा आरम्भ किये गये प्रज्ञा पुरश्चरण में इन दोनों पक्षों का समान समावेश है । प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक को कहा गया है कि वे इस युग अनुष्ठान को सम्पन्न करने में उत्साहपूर्वक भाग लें और अपने क्षेत्र से उसमें भागीदार बनाने के लिए नये लोगों को ढूँढ़े । उन्हें अवगत और सहमत करने की प्रक्रिया चलायें ताकि वस्तु स्थिति के समझने के उपरान्त नये भागीदार मिलने में कोई अवरोध न रहे ।

प्रज्ञा पुरश्चरण का स्वरूप एवम् कार्यक्रम इस प्रकार है:—

(१) सूर्योदय के समय जो, जहाँ, जैसी भी स्थिति में है अपना सामान्य काम-काज रोक कर आँखें बन्द करके, हाथ जोड़कर पाँच मिनट गायत्री मन्त्र का मानसिक जप करें । सविता सूर्य का ध्यान करें । समय पूरा होने पर उस उपचार की परिणति को अदृश्य आकाश में वातावरण शोधन के लिए उछाल देने का मानसिक संकल्प करें ।

(२) महीने में एक बार एक स्थान पर सभी प्रज्ञा पुरश्चरण रत भागीदार एकत्रित हों और 'प्रज्ञा यज्ञ' का आयोजन सम्पन्न करें । यह गाँव या मुहल्ले का हो सकता है । एक दिन पूर्णिमा का अथवा महीने का अन्तिम अवकाश दिन को रखा जा सकता है ।

प्रज्ञा यज्ञ का स्वरूप यह है—पाँच घृत दीपक प्रज्ज्वलित किये जायँ पाँच-पाँच अगरबत्तियों के पाँच गुच्छक जलाये जायें । उन्हें एक चौक पर गायत्री चित्र के साथ प्रतिष्ठित किया जाय । यह सभी मिल-जुलकर चौबीस बार गायत्री मन्त्रोच्चार करें । यह कृत्य प्रायः पन्द्रह मिनट में सम्पन्न हो जाता है । प्रज्ञा परिजनों की संख्या २४ लाख है । पाँच मिनट में १०० गायत्री मन्त्र जपे जा सकते हैं । इस प्रकार प्रतिदिन २४ करोड़ जप हो जाता है । पूर्ण लक्ष्य १२५ करोड़ जप प्रतिदिन का है । हर विचारशील परिजन को प्रज्ञा पुरश्चरण में भागीदार बनायें तो यह लक्ष्य देखते-देखते पूरा हो सकता है ।

सामूहिकता में असाधारण शक्ति है । निर्जीव वस्तुएँ एक और एक मिलाकर दो ही होती हैं । किन्तु प्राणवानों की एकात्मकता एक और एक मिलाकर ग्यारह बनने जैसा—नया सिद्धान्त खड़ा होता है । प्रस्तुत पुरश्चरण में सवा करोड़ व्यक्तियों की श्रद्धा-भाव का समन्वय बहुत बड़ा तथ्य है । हर व्यक्ति का सौ जप होने से भी एक समय, एक उद्देश्य, एक विधान तथा एक लक्ष्य का समन्वय होने से चमत्कारी परिणति उत्पन्न होने की बात सुनिश्चित है । जप संख्या तो हर व्यक्ति से कई-कई घण्टे जप कराने से कम मनुष्यों द्वारा भी पूरी हो सकती है । पर अधिक लोगों का अधिक श्रद्धा और सर्वथा निस्वार्थ भाव से-अवैतनिक रूप से किया गया जप साधन कहीं अधिक उत्कृष्ट एवम् प्रभावी सिद्ध होता है । परोक्ष जगत के संशोधन हेतु प्रज्ञायोग उपक्रम में ऐसी समष्टिगत अनुष्ठान साधना का अपना अलग ही महत्व है ।

## प्रज्ञा पुरश्चरण: सार्वभौम अध्यात्म उपचार

युगसंधि के इस तृतीय वर्ष में प्रज्ञा पुरश्चरण का अभिनव प्रयोग किया गया है । इसमें सूर्योदय के समय सभी प्रज्ञा परिजनों को पाँच मिनट मौन, मानसिक जप-सविता के प्रकाश का ध्यान करने के लिए कहा गया है । कर चुकने पर इस प्रयत्न का पुण्य फल अदृश्य वातावरण में आन्तरिक परिशोधन के लिए बखेर देने की भावना करने के लिए कहा गया है । नियत समय पर जो जिस भी स्थिति में—जहाँ भी हो वहीं, उस प्रक्रिया को सम्पन्न करले । इसमें किसी उपचार, उपकरण, स्थान, स्नान आदि का प्रतिबन्ध नहीं है । नियत समय की बात ही प्रमुख है । सामूहिक प्रयत्न के साथ-साथ यदि नियत समय, नियत विधान और नियत दृष्टिकोण का समावेश होता है तो यह छोटा-सा, थोड़ा-सा उपक्रम भी संयुक्त शक्ति के आधार पर चमत्कारी परिणति उत्पन्न कर सकता है ।

प्रज्ञा परिजनों की संख्या इन दिनों प्राय: चौबीस लाख है । पाँच मिनट में प्राय: १०० मन्त्रों का जप हो जाता है । इस प्रकार उपरोक्त अनुष्ठान के अन्तर्गत हर दिन २४ करोड़ जप पाँच मिनट के अन्दर सम्पन्न होता रहेगा । धीमे-धीमे किसी कार्य का होना एक बात है और पूरी शक्ति लगाकर एक ही बार झटके जैसा प्रहार करने का परिणाम सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है ।

वर्तमान प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक से कहा जाता है कि वे इस योजना को स्वयं तो तत्काल आरम्भ करें ही साथ ही पाँच अन्य व्यक्तियों को भी इसमें सम्मिलित करने का प्रयत्न करें । अपने घर परिवार के सम्पर्क परिचय के लोगों को यदि इस प्रयास की समुचित जानकारी दी जा सके और परिणति के फलस्वरूप वैयक्तिक और सामूहिक सत्परिणामों का आभास कराया जा सके तो किसी को भी पाँच नये साथी—भागीदार—बनाने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार और प्रयत्न आरम्भ होते-होते वर्तमान चौबीस लाख परिजनों के प्रयत्न से लगभग सवा करोड़ साधक भागीदार बनेंगे और दैनिक जप २४ करोड़ से बढ़कर १२० करोड़ के लगभग हो जायगा । अदृश्य में संव्याप्त विनाश विभीषिका को देखते हुए इस लक्ष्य को अभी और भी बढ़ाना पड़ेगा । किन्तु सन् ८३ के लिए इतना ही लक्ष्य निर्धारित किया गया था कि एक करोड़ व्यक्तियों द्वारा १२० करोड़ जप नित्य नियमित रूप से युगसंधि को वेला में सम्पन्न होता रहे ।

प्रातःकाल पाँच मिनट की मौन साधना किस माह में कब की जाय, इसके लिए यहाँ हरिद्वार के स्थानीय समय के अनुसार हर माह का औसत सूर्योदय काल दिया जा रहा है । भारत में ही कलकत्ता, दिल्ली, भुज के समय में अक्षाँस अन्तर के कारण काफी फर्क है । परिजन अपने यहाँ का सूर्योदय काल पता लगाकर तदनुसार क्रम बना सकते हैं । जहाँ-जहाँ सूर्योदय के समय जप किया जा रहा होगा, वहाँ सतत यह 'सायंकाल' गतिशील होगा। इसलिए समय का फेर बदल हो सकता है । हरिद्वार के अनुसार जुलाई माह में सूर्योदय ५ बजकर ११ मिनट, अगस्त में-५ बजकर २७ मिनट, सितम्बर में-५ बजकर ४१ मिनट, अक्टूबर में-५ बजकर ५६ मिनट, नवम्बर में-६ बजकर १६ मिनट तथा दिसम्बर में-६ बजकर ३७ मिनट है ।

इस अभूतपूर्व प्रज्ञा पुरश्चरण का अगला चरण है मासिक रूप में प्रज्ञायज्ञ का सम्पन्न होना । तिथि पूर्णिमा या महीने का अन्तिम रविवार या जो भी दिन सुविधा का पड़ता हो रखा जा सकता है । उसमें पुरश्चरण में सम्मिलित होने वाले सभी परिजन सम्मिलित होते रहें । सर्व सुलभ जप प्रक्रिया की तरह प्रज्ञा पुरश्चरण के अन्तर्गत सम्पन्न होने वाले प्रज्ञायज्ञ भी उतने ही सरल रखे गये हैं । ताकि हर स्थिति और हर स्तर का व्यक्ति उसमें बिना किसी प्रकार से अड़चन अनुभव किये सम्मिलित हो सके । खर्च भी अधिक न हो, समय भी कम लगे और विधि-विधान की जटिलता में भी न उलझना पड़े ।

पाँच दीपक उनके बीच-बीच में पाँच-पाँच अगरबत्तियों का गुच्छक एक पंक्ति में सजाकर किसी चौकी पर रख दिये जायँ । उपस्थित लोग सात-सात कतार लगाकर बैठें । सबका पवित्रीकरण सिंचन किया जाय । सर्वदेव नमस्कार एवं स्वस्तिवाचन बोला जाय । फिर सब २४ बार एक साथ सस्वर गायत्री मन्त्र बोलें । स्वस्तिवाचन बोलने में कठिनाई हो तो उसे छोड़ा भी जा सकता है । इतने भर में प्रज्ञायज्ञ का निर्धारित स्वरूप सम्पन्न हो जाता है ।

यह कर्मकाण्ड पन्द्रह मिनट में सम्पन्न हो जाता है । इसके साथ-साथ ज्ञानयज्ञ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । पन्द्रह मिनट तक युग संगीत । एक घण्टा प्रज्ञा प्रवचन । इस प्रकार पूरे दो घण्टे में समूचा यज्ञ कार्यक्रम समाप्त हो जाता है । युग संगीत मिशन की पत्रिकाओं एवं गीत पुस्तकों में छपते रहते हैं । ये उन्हीं में से चयन कर लेना चाहिए ।

प्रज्ञा प्रवचन के लिए यह निर्धारित किया गया है कि व्यक्ति विशेष अपने व्यक्तिगत विचारों की टाँग न अड़ायें । प्रज्ञा प्रवाह से उपस्थित लोगों को अवगत भर करायें । इसके लिए मिशन की पत्रिकाओं के लेखों में से वे चुने जा सकते हैं जो उपस्थित समुदाय की मनः स्थिति को देखते हुए अनुकूल पड़ते हों । एक घण्टे में १२ से १६ पृष्ठ पढ़कर सुनाये जा सकते हैं । इतने में कई लेखों का समावेश हो जाता है । एक-एक करके कई व्यक्ति कई लेख सुनायें तो विविधता का भी रसास्वादन होता रहेगा । यही है समूची दो घण्टे की प्रज्ञायज्ञ प्रक्रिया जो न केवल प्रज्ञा पुरश्चरण के मासिक यज्ञ में वरन् अन्यान्य अवसरों पर जन्म दिवसोत्सव आदि पर भी अपनायी जा सकती है । भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न प्रकार की बोलियाँ

बोलें और आत्मश्लाघा के लिए अपने विचार थोपें इसकी अपेक्षा यही अधिक उपयुक्त है कि गोमुख गंगोत्री का जल श्रद्धापूर्वक पान किया जाय, भले ही यह चुल्लूभर ही क्यों न हो । प्रज्ञा अभियान के लेख और फोल्डर पुस्तिकाओं के लेखों को सरस भावाभिव्यक्ति के साथ सुना देना चाहिए ।

जहाँ-जहाँ नियमित रूप से प्रज्ञा पुरश्चरण चल पड़े वहाँ उसका कीर्ति स्तंभ—स्वाध्याय मण्डल स्थापना के रूप में खड़ा किया जाय । महान व्यक्ति और महान घटनाओं के स्मारक संसार भर में अगणित स्थानों पर बने हुए हैं । जो इमारतें नहीं बना सकते वे पत्थर का चबूतरा भर बना देते हैं । पेड़ लगाने-साँड़ छोड़ने जैसे सरल कृत्यों द्वारा भी इन आवश्यकताओं की पूर्ति करली जाती है । अयोध्या, मथुरा, पोरबंदर, राजघाट, श्रावस्ती, साँची, सारनाथ, जैसे न सही । नालन्दा, तक्षशिला की अनुकृति न बन सके न सही, छोटे रूप में स्वाध्याय मंडल प्रज्ञान संस्थान के कीर्ति स्तम्भ के रूप में प्रज्ञा पुरश्चरण का दृश्यमान ध्वजारोहण किया जा सकता है । यह बिना निजी इमारत के प्रज्ञा संस्थान छोटे रूप में प्रायः उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जिन्हें इमारतों वाले प्रज्ञापीठ बड़े रूप में सम्पन्न कर रहे हैं । स्वाध्याय मंडल नाम तो उनके प्रमुख और प्रारम्भिक कृत्य का सूचक है वस्तुतः हर स्वाध्याय मण्डल को प्रकारान्तर से प्रज्ञा अवतार के—प्रज्ञा अभियान के सभी निर्धारणों की सामर्थ्य के अनुरूप कार्यान्वित करना होगा ।

स्मरण रहे प्रज्ञा पुरश्चरण सार्वभौम—सर्वजनीन है । इसे किसी धर्म सम्प्रदाय की बपौती नहीं बनने दिया गया है । उसकी सभी प्रक्रियाएँ युग परिवर्तन के लक्ष्य के अनुरूप रखी गई हैं । प्रज्ञायज्ञ एवं प्रज्ञा संस्थान में कहीं भी सम्प्रदाय विशेष की गन्ध नहीं आती । गायत्री मन्त्र के उच्चारण में जहाँ असुविधा या साम्प्रदायिक गतिरोध उत्पन्न होता हो वहाँ उसके स्थान पर मात्र 'ॐ' कार की ध्वनि का भी प्रयोग हो सकता है । यह गायत्री का बीज मन्त्र है । शब्द या अक्षर न होकर अनादि काल से प्रकृति के अन्तराल में चल रहे नाद ब्रह्म का अवलंबन मात्र है । गायत्री के स्थान पर जहाँ असुविधा हो वहाँ ऊँकार के ध्यान गुन्जन का भी जप एवं यज्ञ में प्रयोग कर अनुष्ठान सम्पन्न किया जा सकता है ।

# रश्मि-रथी की किरणें फूट पड़ीं

**अन्धकार में रहें या प्रकाश में—निर्णय स्वयं करें**

वेदमाता का रूप धारण करके गायत्री महाशक्ति ने इस धरती पर अपने प्रथम अवतरण का परिचय दिया । मनुष्य को जिस ज्ञान और विज्ञान की आवश्यकता थी वह उसके इस उद्गम स्रोत से पाया । जब अधिक समझने की जिज्ञासा हुई तो गायत्री के शीर्ष और तीन चरण—इन चारों खण्ड विभाजनों की सुविस्तृत व्याख्या, विवेचना करने के लिए चार वेदों का प्रकटीकरण हुआ ।

गायत्री महाशक्ति का अवतरण वेदमाता के रूप में हुआ उसकी प्रखरता और परिपक्वता का परिचय देव माता के रूप में सामने आया । ऋतम्भरा-प्रजा की अन्तराल में प्रतिष्ठापना विचारणा का स्तर उस ऊँचाई तक जा पहुँचता है जिसे ब्रह्मलोक कहते हैं । शरीर पर मनःचेतना का परिपूर्ण नियन्त्रण है । जैसा सोचा जाता है वैसा कर्म अनायास ही होने लगता है । उत्कृष्ट चिन्तन की परिणति आदर्श कर्तृत्व में होनी ही चाहिए । गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता के धनी व्यक्ति ही देवता कहलाते हैं । मान्यता है कि देवताओं का निवास स्वर्ग में होता है । इसका स्पष्टीकरण इतना ही है कि जहाँ श्रेष्ठ व्यक्ति रहते हैं वहाँ उनके आचरण व्यवहार से वातावरण में स्वर्गीय सुख-शान्ति दृष्टिगोचर होती है । सज्जनता की सहज परिणति, समृद्धि और प्रगति में होती है । उसके फलस्वरूप सन्तोष और आनन्द की मनःस्थिति एवं परिस्थिति सर्वत्र बिखरी दिखाई पड़ती है । इसी वस्तु-स्थिति को पौराणिक भाषा में देवताओं का निवास स्वर्ग में होने की बात कही जाती रही है ।

गायत्री को प्रखरता की स्थिति में देवमाता कहा गया है । इस प्रदिपादन में उचित निर्धारण है । सृष्टि का आदिकाल का वेदमाता स्वरूप-प्रगति के मध्यकाल में 'देवमाता' बन गया । इतिहासकार इसी युग का वर्णन सतयुग के नाम से करते हैं । उसे देवयुग भी कहा जा सकता है । उन दिनों भारत के नागरिक संसार भर में जन संख्या के आधार पर तैंतीस कोटि देवता माने जाते थे । उनके उच्च स्तरीय व्यक्तित्व सहज ही यह लोक सम्मान अर्जित कर रहे थे । उन दिनों की परिस्थितियाँ इतनी सुसम्पन्न और सुखद थीं कि इस समृद्धि से लदी हुई भारत भूमि को संसार भर में एक स्वर से स्वर्गादपि गरीयसी कहा जाता था । भारत को जगद्गुरु और

चक्रवर्ती शासक कहलाने का श्रेय उन्हीं दिनों मिला था । उन्होंने अपनी उत्कृष्टा को समस्त संसार में बखेरा था फलत: कृतज्ञता के भाव भरे उपहार इन देशवासियों को मिलते थे । इन्हीं दिनों की भारतीय संस्कृति देव संस्कृति कही जाती थी । उस गौरव भरे अतीत की चर्चा करते हुए इस गई गुजरी स्थिति में भी हमारा मस्तक सहज ही ऊँचा हो जाता है । गायत्री तत्वज्ञान का व्यवहार में समावेश होने की स्थिति का निरूपण करते हुए इसका नाम देवमाता उचित ही दिया गया ।

अवतरण और अभिवर्धन की दोनों कक्षायें पार करके अब गायत्री महाशक्ति को विश्वमाता बनने की सुविस्तृत भूमिका निभानी पड़ रही है । इसे प्रौढ़ता और परिपूर्ण प्रचण्डता की स्थिति कह सकते हैं । दुर्गा अवतरण की प्रौढ़ता उन दिनों थी जब उनने महिषासुर, मधुकैटभ, शुंभ निशुंभ, रक्त बीज आदि दुर्दान्त दैत्यों के साथ रोमांचकारी युद्ध करके उन्हें परास्त किया था । गायत्री की प्रस्तुत युगान्तरीय चेतना को इसी स्तर का समझा जाना चाहिए । विचार क्रान्ति के रूप में उसके दावानल जैसे विस्तार को इन्हीं दिनों प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

सामयिक परिस्थितियों की विषमता भयावह है । आन्तरिक विकृतियों ने मानवी गरिमा की जड़ें काटकर रख दी हैं । नीति का परित्याग करके लिप्सा ग्रस्त मनुष्य वह करने लगा है जो उसके लिए हर दृष्टि से अशोभनीय है । उत्कृष्टता के उत्तरदायित्वों का परित्याग करके निष्कृष्टता अपनाने वाले शीर्षस्थ मनुष्य ने सामूहिक आत्म-हत्या जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करली हैं । प्रगति के नाम पर दीखने वाले चकाचौंध से बुद्धि भ्रम तो अवश्य होता है पर वस्तु स्थिति यह है कि हम पतन के गर्त में गिरते और दुर्गति के अनेकानेक त्रास सहते हुए मौत के दिन पूरे कर रहे हैं । लगता है प्रलय जैसा महाविनाश किसी भी दिन वज्रपात की तरह सिर पर टूटने ही वाला है । सर्वत्र आतंक छाया हुआ है । भावी आशंकाओं से जन-मानस बुरी तरह भयभीत हो रहा है ।

स्रष्टा का अपनी बहुमूल्य कलाकृति इस विश्व वसुधा से असाधारण लगाव है । इसीलिए तो जब कभी लोक चेतना पर भ्रष्टता की काली घटायें छाई हैं तभी उन्हें हटाने के लिए, सन्तुलन बनाने के लिए भगवान के अवतार होते रहे हैं । "यदा यदाहि धर्मस्य------" का आश्वासन भूतकाल में उचित अवसर पर पूरा किया जाता रहा है । इन दिनों भी उसी की पुनरावृत्ति हो रही है । लोकमानस में घुसी दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन करने के लिए इस बार उसका स्वरूप ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही हो सकता था। व्यापक क्षेत्र का परिशोधन—जन-मानस का परिष्कार—करने के लिए जिस दिव्य चेतना का अवतरण ऊँचे लोकों से धरती पर इन दिनों हो रहा है उसे युग शक्ति गायत्री कहा गया है । उसकी भूमिका विश्वमाता जैसी है । उज्जवल भविष्य के निर्माण में उसी का आलोक काम करेगा । नव-निर्माण के लिए इन दिनों जिस प्रचण्ड आत्म शक्ति की आवश्यकता अनुभव की जा रही है उनका दिव्य अनुदान संत्रस्त मानवता को युग शक्ति गायत्री के रूप में ही मिलने जा रहा है । व्यक्ति और समाज की समस्याओं का चिरस्थायी समाधान इसी माध्यम से सम्भव होगा ।

भूतकाल में सम्भव है उस महाशक्ति को सम्प्रदाय, जाति, लिंग आदि के घेरे में प्रतिबन्धित किया गया हो । पर अब अगले दिनों वैसा संभव नहीं । दीपक कैद हो सकता है सूरज नहीं । युग गायत्री पर किसी धर्म, देश का अनुबन्ध नहीं होगा वह सार्वभौम-सर्वजनीन, और सर्वसुलभ होगी । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्शों का पालन करने के लिए विश्व मानव को आगे घसीटने और ऊँचा उछालने वाली दिव्य शक्ति को सुन्दर संसार बनाने का उपक्रम पूरा करना है । इसलिए उसकी व्यापकता को देखते हुए युग शक्ति के नाम से सम्बोधन किया जाना वस्तुस्थिति का ही परिचायक माना जायगा । अवांछनीययता का ध्वंस और शालीनता का संवर्धन करने की दोनों ही विशेषतायें गायत्री मंत्र में मौजूद हैं । उसके तत्वज्ञान और विधि-विधान में वे तत्व भरे पड़े हैं जिनके सहारे नये संसार का भौतिक एवं आत्मिक पुनरुत्थान भली प्रकार किया जा सके । विश्व शान्ति और विश्व समृद्धि का उभय पक्षीय प्रयोजन जिस दिव्य चेतना के माध्यम से इन दिनों हो रहा है उसे विश्वमाता ही कहा जायेगा ।

हमने अपना सारा जीवन उन्हीं महाशक्ति की शोध, साधना और प्रकाश विस्तार में लगाया है । उपासना विज्ञान की जानकारी ही नहीं दी अपितु उन शंका-कुशंकाओं का निवारण भी किया है जो प्राय: साधकों के सम्मुख विघ्न बन कर खड़ी होती हैं और प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर देती हैं । गायत्री महाविज्ञान के अब तक लगभग बीस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं यह इस तथ्य

का प्रमाण है कि इस महाशक्ति का परिचय, आश्रय और प्रकाश अब तक लाखों व्यक्तियों तक पहुँच चुका "युग शक्ति गायत्री" और उसका कई भाषाओं में प्रकाशन इस संख्या को करोड़ों तक पहुँचाएगा । युग परिवर्तन के लिये जिस शक्ति की आवश्यकता होती है उसके लिये सामान्य उपासना की अपेक्षा पुरश्चरणों का विधान है । पुरश्चरण व्यक्तिगत भी होते हैं किन्तु सामूहिक का महत्व असंख्य गुना अधिक होता है । इस देश और जाति के साथ-साथ समूचे विश्व को सर्वनाश की विभीषिका से बचाने के लिए एक ऐसे महापुरश्चरण की आवश्यकता थी जिसकी शक्ति तरंगें ब्रह्माण्ड को चीरती हुई चली जाएँ और युग परिवर्तन के सूत्र संस्कार ढूँढ़कर उन्हें धरती पर उतार लाएँ ।

इन दिनों जो गायत्री महापुरश्चरण चल रहे हैं यह उसी अभियान के अंश हैं कोटि-कोटि जनों की आस्थाएँ उसमें सम्मिलित होती जा रही हैं उसे महाशक्ति का सान्निध्य सौभाग्य जिसे भी मिले उसे अपने आपको परमात्मा का, देवमाता गायत्री का कृपा पात्र ही समझना चाहिये ।

## वातावरण-संस्कारित करने में यज्ञों की भूमिका

**गायत्री महापुरश्चरण के साथ गायत्री महायज्ञ के यजमान और होता बनें**

इन दिनों जब भी किसी बुराई की ओर किसी का ध्यान आकर्षित किया जाता है तो पहला उत्तर होता है यह तो सभी ओर हो रहा है, अश्लीलता चारों ओर व्याप्त है, अनैतिकता, बेईमानी का सर्वत्र बोलबाला है । मिलावट का रोग इतना व्यापक हुआ है कि शायद ही किसी ग्राहक का किसी दुकानदार पर विश्वास रहा हो, वातावरण इसी का नाम है । यह सच है कि मनुष्य में वातावरण को प्रभावित करने की क्षमता है पर झूठ यह भी नहीं कि जनसामान्य उसी ढाँचे में ढलता चला जाता है जैसा वातावरण होता है ।

वायु शोधन से भी अधिक लाभ वातावरण के परिष्कार का होता है । वायु की शुद्धता का स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है । वातावरण से व्यक्तित्व का हर पक्ष प्रभावित होता है । उससे चिन्तन को दिशा मिलती है । सर्दी, गर्मी, वर्षा का वातावरण पर प्रभाव पड़ता है और उससे परिस्थितियों में भारी अन्तर देखा जाता है । ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म वातावरण में भी उत्कृष्टता के तत्वों का अनुपात बढ़ सके तो लोक प्रवाह को उपयुक्तता की दिशा धारा में ले चलना कुछ अधिक कठिन न रह जायगा। हवा के रुख पर नाव की गति सहज ही तेजी पकड़ती है । उज्ज्वल भविष्य की संरचना में जिस प्रकार का वातावरण अभीष्ट है उसे बनाने में गायत्री यज्ञों की शृंखला से अति महत्वपूर्ण अनुकूलता उत्पन्न हो सकती है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर युग निर्माण परिवार की इस महा पुरश्चरण अभियान की जप-तप साधना के साथ यज्ञीय परम्परा में अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं । निश्चय ही वातावरण के परिशोधन में इस संयुक्त साधना का असाधारण प्रतिफल होगा । देवताओं की संयुक्त साधना से दुर्गा का अवतरण हुआ था और ऋषियों के रक्त संचय से सीता प्रकटी थी । प्रस्तुत गायत्री महापुरश्चरण की संयुक्त सामर्थ्य से युग शक्ति गायत्री का ऋतम्भरा प्रज्ञा का अवतरण और भी अधिक निकट आ सकेगा ।

युग अवतरण की इस पुनीत बेला में जाग्रत आत्माओं को प्रभात काल में उत्पन्न होने वाली व्यापक चेतना की तरह अपनी श्रद्धा जीवन्त होने का परिचय देना चाहिए । इन प्रयासों में—युग साधना के रूप में प्रस्तुत गायत्री महापुरश्चरण में भागीदार होना चाहिए । जितना सम्भव हो सके उतना जप इस सामूहिक धर्मानुष्ठान में सम्मिलित करना चाहिए । जिन्हें व्यस्तता-अस्वस्थता जैसी असुविधाओं के कारण नियमित जप करते न बन पड़े वे गायत्री मन्त्र लेखन कर सकते हैं । उसमें समय या स्थान का प्रतिबन्ध नहीं है ।

फल तो एकाकी उपासना का भी होता है पर संयुक्त साधना में सम्मिलित रहने का प्रभाव-परिणाम और भी अधिक होता है । विशाल सेना का अंग बने हुए सैनिक का साहस एवं बल प्रभाव जितना होता है उतना एकाकी रहने पर नहीं हो सकता । तागे मिलने से रस्सी और सींकें मिलने से बुहारी बनने की बात सभी जानते हैं । सामूहिक साधना भी उसी प्रकार अधिक फलप्रद होती है । सहगान कीर्तन, रामायण परायण, भागवत पाठ, यज्ञ आयोजन तीर्थयात्रा आदि साधनाएँ सामूहिक ही होती हैं और उनका प्रतिफल भी अधिक होता है । प्रस्तुत गायत्री

महापुरश्चरण से सूक्ष्म वातावरण में देव तत्वों की मात्रा अधिक बढ़ने से विश्व कल्याण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी, साथ ही साधकों को भी इस संयुक्त प्रयास का अधिक लाभ उपलब्ध होगा ।

महापुरश्चरणों के साथ यज्ञ का युग्म सोने में सुगन्ध, चन्दन में पुष्प और ईख में फल की तरह पुण्यदायक माना गया है । गायत्री उपासना के साथ यज्ञ को भी भारतीय संस्कृति में अनिवार्य माना गया है । गायत्री को भारतीय जननी, यज्ञ को पिता माना है । माता-पिता दोनों का आश्रय अंचल आशीर्वाद प्राप्त करने वाली संतानों की सुख समुन्नति की भाँति इन दो महाशक्तियों के अनुग्रह से प्राप्त होने वाले पुण्य फल की कल्पना सहज ही की जा सकती है । सूक्ष्मदर्शी महापुरुषों ने युग परिवर्तन के साथ-साथ निकट भविष्य में मानवीय गरिमा के अत्यन्त उज्ज्वल पक्ष की भविष्यवाणी की है । भारतवर्ष के बारे में तो दुनियाँ भर की अतीन्द्रिय दृष्टियों ने यह स्वीकार किया है कि यह देश भविष्य में अमेरिका, रूस से बढ़ कर समृद्ध देश होगा । यह अनायास ही नहीं होगा। उसके पीछे ऐसे ही सामूहिक पुण्यों को पूँजी संगृहीत होगी ।

महापुरश्चरण के भागीदारों को एक ही देव परिवार का सदस्य माना है । देव प्रवृत्तियों के सम्वर्धन के लिए उनमें से सभी को नियमित उपासना तथा चीनी या गुड़ और घी लगा कर भोजन से पूर्व ५ आहुतियों का बलि वैश्व यज्ञ अवश्य प्रारम्भ करना चाहिये । इस तरह हमारे घरों में प्रतिष्ठित संस्कृति की जननी और जनक—भगवती गायत्री और यज्ञ भगवान की प्रतिष्ठा होगी । देखने में यह अति लघु कदम है किन्तु उसका वातावरण के परिवर्तन—युग-परिवर्तन में असाधारण योगदान रहेगा । इस ओर आपका कदम आज से अभी से उठना और आगे बढ़ना चाहिये । इसमें व्यक्तिगत हित भी है और परमार्थ भी । इन देववृत्तियों का अभिवर्धन और दुष्प्रवृत्तियों के परिशोधन का शुभारम्भ व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन से ही आरम्भ करना चाहिए ।

## देखने में छोटा किन्तु परिणाम की दृष्टि से महान प्रयोग

पृष्ठभूमि सुदृढ़ हो तो छोटे साधन भी बड़े चमत्कार प्रस्तुत कर सकते हैं । अंगद ने रावण की सभा में पैर जमाकर समस्त असुरों को उसे उखाड़ने की चुनौती दी थी । यह अंगद का पराक्रम नहीं, राम का समर्थन था । जस्ते का तनिक सा टुकड़ा गोली बनकर इसलिए लक्ष्य वेध करता है कि उसके पीछे बन्दूक में उत्पन्न हुई प्रचण्ड शक्ति काम करती है । इसके बिना वह गोली बच्चों के खेल-खिलवाड़ से अधिक और कोई प्रयोजन पूरा नहीं कर सकती । योगियों का अभिमन्त्रित जल या भस्म से होने वाले चमत्कारों के पीछे उसे पानी या राख की नहीं योगियों की सामर्थ्य काम करती है । प्रज्ञा पुरश्चरण का विधान तनिक-सा ही कर्मकाण्ड के हल्का-फुलके होने के कारण किसी को यह सन्देह नहीं करना चाहिए कि इतने भर से क्या प्रयोजन सधेगा । देखना उस पृष्ठभूमि को है, जिसके कारण इस प्रयोग के असाधारण परिणाम की आशा एवं घोषणा की गई है ।

प्रज्ञा परिवार से इन दिनों प्रायः बीस लाख व्यक्ति सम्बद्ध हैं । उनका चिन्तन, विश्वास, स्वभाव एवं निर्धारण एक निश्चित दिशा में प्रवाहित अग्रसर होता है । इतने लोगों द्वारा नियत समय पर नियत विधान एक विश्वास के आधार पर किया गया साधना उपचार यदि चमत्कारी परिणाम उत्पन्न करता है तो उसमें सन्देह की गुंजायश नहीं होनी चाहिए ।

किसी बड़े पुल पर से यदि सैनिकों की एक टुकड़ी कदम से कदम मिलाकर इस प्रकार चले कि उनकी ध्वनि तालबद्ध होकर उठे तो इतने भर से वह पुल धराशायी हो सकता है । संगीत यन्त्र साधारण रीति से बजता और मनोरंजन करता रहता है किन्तु यदि उसके ताल स्वर क्रमबद्ध कर दिये जायँ तो दीपक राग-मेघ मल्हार, मृग सम्मोहन जैसे चमत्कृत करने वाले परिणाम सामने आ सकते हैं । रोग निवारण में, दूध बढ़ाने में, पौधे बढ़ाने में, प्रजनन सुधारने में इन दिनों संगीत के अद्भुत परिणाम सामने आये हैं । उन शोध प्रयोजनों से यह निष्कर्ष निकला है कि स्वर और ताल की क्रमबद्धता से ध्वनि प्रवाह को सामर्थ्य स्रोत के रूप में विकसित किया जा सकता है ।

मन्त्र विज्ञान के आधार पर उत्पन्न होती परिणतियों का कारण स्वर विज्ञान में खोजा जा सकता है । उनके साम गान के आधार पर और विज्ञानी परोक्ष विधा के आधार पर असाधारण प्रभाव परिणाम उत्पन्न करते थे । उन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रज्ञा पुरश्चरण की छोटी-सी सर्वसुलभ साधना को महत्वपूर्ण बनाया गया है। गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षर जब एक समय में, एक साथ, एक प्रकार, एक प्रयोजन के लिए ध्वनित होंगे, तो उसमें सामूहिकता की प्राणशक्ति का आश्चर्यजनक

समावेश होगा । बीस लाख व्यक्तियों की प्राण-ऊर्जा जब तालबद्ध, समयबद्ध, क्रमबद्ध, अनुशासन बद्ध, विधान बद्ध होकर निस्तृत होगी तो उसके आशातीत परिणामों की अपेक्षा करने में तनिक भी अतिवाद नहीं है ।

उपासना, विज्ञान के रहस्य वेत्ता एक समय पर एक प्रक्रिया के क्रियान्वित होने की परिणति का अनुमान ही नहीं अनुभव भी प्रस्तुत करते रहे हैं कि मन्त्र शक्ति की पृष्ठभूमि में इस एकता, एकरूपता, एक समय निर्धारण का कम महत्व नहीं है । भारतीय धर्म में प्रात: सायँ-सूर्योदय और सूर्यास्त का समय संध्या काल बताया गया है । इस समय के संध्या वन्दन को अन्य समयों की अपेक्षा कहीं अधिक सत्परिणाम प्रस्तुत करने वाला बताया गया है । इस्लाम धर्म में नमाज के मन्त्रों का जितना महत्व है, उतना ही उस प्रक्रिया का नियत समय पर करने का भी अनुशासन है । मस्जिदों में अजान दी जाती है । मन्दिरों में शंख ध्वनि होती है, ताकि नियत समय पर सभी साधक अपनी विधान प्रक्रिया सम्पन्न करें। गिरजाघरों में भी नियत समय पर 'प्रेयर' के लिए उपस्थित होने का अनुशासन है । इसके लिए घन्टे बजते हैं और घड़ी से नियत विधान का परिपालन होता है । तभी महत्वपूर्ण धर्मों में अपने-अपने ढंग से उपासना कृत्यों को नियत समय पर सम्पन्न करने का अनुशासन है, उसके निर्वाह का कठोर निर्धारण भी ।

अस्त-व्यस्त ढंग से की गई महत्वपूर्ण उपासना भी निरर्थक चली जाती है, जबकि निर्धारित अनुशासन का परिपालन सामान्य विधि-विधानों को भी अद्भुत परिणति उत्पन्न करते देखा गया है । इस सन्दर्भ में न केवल समय का वरन् विधान की एकरूपता का भी अपना महत्व है । जीवन्त धर्मों में उपासनात्मक एकरूपता को बहुत महत्व दिया गया है । उनमें एक मन्त्र, एक विधान, एक अनुगमन पर बहुत जोर दिया गया है । एक विच्छृंखलित हिन्दू धर्म ही है । जिसमें साम्प्रदायिक विभ्रमों ने सब कुछ अस्त-व्यस्त अव्यवस्थित करके रख दिया है । धार्मिक क्षेत्र की इस अराजकता को दूर करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । अन्यथा विपरीत के रहते साधना विधानों का सत्परिणाम न तो व्यक्ति विशेष को मिल सकता और न उससे अदृश्य वातावरण-अदृश्य जगत पर कोई कारगर प्रभाव पड़ सकेगा । फलत: वह प्रयास एक प्रकार से निरर्थक जैसा बनकर रह जायेगा ।

इन विश्व संकट के दिनों जबकि अध्यात्म उपचारों का आश्रय लिया जा रहा है, समय, विधान, एवं अनुशासन की समस्वरता पर ध्यान केन्द्रित करने की विशेष रूप से आवश्यकता है । यह सार्वभौम प्रश्न है । इस ओर साधना क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए । अन्य धर्मों की तुलना में सिकुड़ते हुए हिन्दू धर्म की विच्छृंखलता अधिक चिन्ताजनक है । न केवल इस समुदाय को सम्भाला, सुधारा जाना चाहिए वरन् विश्व के समस्त धर्मप्रेमियों, आस्तिकों, उपासना प्रिय लोगों को यह समझाया जाना चाहिए कि उपासना में भावना का, विधान का जितना महत्व है उससे अनुशासन पालन की गरिमा किसी भी प्रकार कम नहीं । इस सन्दर्भ में असावधानी बरती गई तो चिन्ह-पूजा भर चलती रहेगी, जिन तीक्ष्ण परिणामों की आशा की गई है उस सम्बन्ध में निराश ही रहना पड़ेगा ।

इस विश्व संकट के दिनों में ५०० करोड़ मनुष्यों में से प्रत्येक को युग साधना के रूप में—प्रज्ञा पुरश्चरण की भागीदारी ग्रहण करने के लिए कहा और सहमत किया जाना है । यह प्रयत्न न तो हिन्दू धर्मानुयायियों तक सीमित है और न परिणामों को उन्हीं लोगों तक रहना है । ऐसी दशा में प्रज्ञा पुरश्चरण को सार्वजनीन ही समझा जाना चाहिए । गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में यह रहस्य समझा और समझाना जाना चाहिए कि वह किसी सम्प्रदाय विशेष की पूजा पत्री नहीं है वरन् उसके अक्षरों में ध्वनि विज्ञान के ऐसे रहस्यों का भी समावेश है, जिससे साधक की सत्ता में उपयोगी तरंगें उत्पन्न होती हैं और समूचे अदृश्य जगत में विषाक्तता को निरस्त करने की सशक्त प्रक्रिया विनिर्मित होती है । साथ ही अन्तरिक्ष में देव-तत्वों के अभिवर्धन-परिपोषण का ऐसा प्रमाण बन पड़ता है जैसा कि किसान और माली फसल उद्यान के निमित्त अपनाया करते हैं ।

सृष्टि के आदि से लेकर अद्यावधि गायत्री मन्त्र की जितनी आवृत्तियाँ हुई हैं, उतनी और किसी उपासना प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाले शब्द गुच्छक की नहीं । सृष्टि में अनेकों विभूतियाँ हैं, उनमें से एक गायत्री भी है । उसका शब्द गुंथन इस प्रकार हुआ है, जो भावार्थ और सामर्थ्य की दृष्टि से विलक्षण है । उससे व्यक्ति और

समाज को सुसम्पन्न, सुसंस्कृत एवं समृद्ध बनाने वाले अनेकानेक रहस्यमय तत्वों का समावेश है । त्रिपदा के तीन चरणों में समझदारी, ईमानदारी और जिम्मेदारी के सिद्धान्त की साँगोपांग विवेचना भरी पड़ी है । विश्व का यह सबसे छोटा किन्तु सबसे सारगर्भित धर्मशास्त्र तत्व-दर्शन एवं अध्यात्म विज्ञान है । सतयुगी विश्व व्यवस्था के समस्त सूत्र संकेत इसमें बीज रूप में कूट-कूटकर भरे हुए हैं । इसे नवयुग का संविधान कहें तो भी अत्युक्ति न होगी । नई दुनिया का प्रज्ञा युग का जब भी ढाँचा खड़ा होगा तब उसका संविधान बनाने के लिए इसी चिर पुरातन एवं नित नवीन बीज मन्त्र का आश्रय लेना पड़ेगा। ज्ञान और विज्ञान की दोनों धाराएँ इसमें समान रूप से समाहित हैं । उपासना की दृष्टि से उसके दोनों ही प्रभाव प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं । साधक के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर का परिशोधन, परिष्कार करने की व्यक्तिगत जितनी सामर्थ्य इसमें है उतनी कदाचित ही किसी अन्य उपासना आधार से मिल सके । साथ ही इस शब्द प्रवाह के साथ जुड़ी हुई सामर्थ्य अदृश्य जगत में अन्तरिक्ष में भरी विषाक्तताओं का निराकरण कर सकने में भी समर्थ है ।

ऐसे ही अनेक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए गायत्री को पुरातन काल की तरह भविष्य में भी विश्व मानव की समग्र प्रगति में सहायक माना जायेगा । समय रहते उसका ज्ञान विज्ञान जन साधारण को समझना और समझाया जाना चाहिए । सामयिक आवश्यकताओं की दृष्टि से उसे तात्कालिक उपचार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

इन दिनों की प्रत्यक्ष विभीषिकाओं के पीछे अदृश्य जगत का परिमार्जन आवश्यक हो गया है । इसके लिए गायत्री मन्त्र के शब्द बेधी वाण का—नाद ब्रह्म का आश्रय लेना आवश्यक है । प्रज्ञा अनुष्ठान की सुनियोजित अत्यधिक व्यापक योजना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाई गई है और उसमें गायत्री मन्त्र को हर दृष्टि से उपयुक्त पाकर आधार बनाया गया है ।

एक समय में, एक विधान अनुशासन सहित एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए यदि बीस लाख व्यक्तियों द्वारा अध्यात्म उपक्रम अपनाया जाता है तो उसका प्रतिफल भी आयोजन के अनुरूप ही होना चाहिए । भूतकाल में भी ऐसा ही होता रहा है । देवताओं पर जब-जब विपत्ति आई है और वे अपने निजी प्रयत्नों द्वारा उसे टालने में असफल रहे हैं । तब-तब वे एकत्रित होकर विधाता के पास गये हैं । एक स्वर में बोले—एक प्रयास के लिए सहमत हुए और एक अनुशासन के अन्तर्गत काम करने के लिए सहमत हुए हैं । त्राण उन्हें इससे कम में मिला भी नहीं और मिल भी नहीं सकता था । एक दो शक्ति कितनी ही प्रखर क्यों न हो, रहेगी अकेली ही । अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता वाली कहावत यों लागू तो अनेक प्रसंगों पर होती है, पर सामूहिक विपत्ति के टालने के सन्दर्भ में तो यह एक प्रकार से अनिवार्य ही हो जाता है कि सज्जनों की संयुक्त शक्ति विकसित करने का सरंजाम जुटाया जाय ।

समय संकट से जूझने के लिए अध्यात्म उपचार के रूप में जहाँ प्रज्ञा पुरश्चरण का आयोजन है, उसका एक सामान्य लाभ यह भी है कि समय की पाबन्दी और नियत समय पर नियत काम करने की आदत का नये सिरे से शुभारम्भ होगा । कार्य चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक स्वार्थ के हों या परमार्थ के—हर प्रसंग के समय, कार्य और अनुशासन का तालमेल बिठा सकने की प्रवृत्ति ऐसी है जिससे सफलताओं के सुनिश्चित आधार खड़े होते है । असफलताओं के अन्यान्य कारणों में प्रमुख मनुष्य को स्वभावगत अस्त-व्यस्तता है, उसे सुधारने, बदलने से भी प्रज्ञा पुरश्चरण का बहुत बड़ा प्रयोजन सम्भव हो सकेगा ।

## नव सृजन की अनुपम अध्यात्म-साधना

दृश्यमान स्थूल शरीर के अतिरिक्त अदृश्य स्तर के दो शरीर और भी हैं, जिन्हें सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर कहते हैं । सूक्ष्म में दूरदर्शिता का और कारण में भाव-संवेदना का निवास है । इन क्षेत्रों को उनकी आवश्यकताएँ उपलब्ध होती रहें, तो आरोग्य सन्तुलन उनमें भी बना रहेगा । इन पर प्रभाव तो स्वाध्याय सत्संग का भी पड़ता है, पर यदि निर्धारित साधन उपचार भी अपनाए जा सकें तो और भी अच्छा । इनका समावेश रहने से उपरोक्त दोनों केन्द्रों में प्रगति की और भी अधिक संभावना रहती है । सूक्ष्म शरीर के लिए जप और कारण शरीर के लिए ध्यान प्रक्रिया का, अनुभवी साधना विज्ञानियों ने निर्धारण किया है ।

जप प्रयोजन के लिए मत-मतान्तरों के अपने-अपने नियम और निर्धारण हैं, पर यदि सार्वभौम स्तर पर

निरीक्षण-परीक्षण किया जाय, तो गायत्री महामन्त्र सर्वजनीन स्तर का बैठता है । उसकी जप पुनरावृत्ति करने पर व्यक्तियों में संयमित स्तर की प्रतिभा उभरती है साथ ही अदृश्य वातावरण में भी प्रेरणाप्रद तत्वों का बाहुल्य बन पड़ता है । न्यूनतम १०८ मन्त्रों की एक माला जप ली जाय, तो अन्तराल में ज्ञान जैसी स्फूर्ति का अनुभव होता है । अधिक जिससे जितना बन पड़े उतना ही अधिक लाभदायक रहेगा । अच्छा तो यही कि नित्य कर्म से, स्नानादि से निवृत होकर शुद्ध स्थान पर बैठकर जल और अग्नि की साक्षी में उसे सम्पन्न किया जाय । पूजा की चौकी पर छोटा जल कलश और अगरबत्ती जलाकर वातावरण को अधिक अनुकूल बना लिया जाय, पर जिनके लिए ऐसी स्वच्छता अपनाने में कठिनाई पड़ती हो, वे बिना स्नान किए भी मौन मानसिक जप कर सकते हैं । एक माला जपने में प्राय: पाँच मिनट लगते हैं । इतना समय निकालते रहना किन्हीं उत्साही श्रद्धालुओं के लिए कठिन नहीं पड़ना चाहिए । इस प्रयास के आधार पर सूक्ष्म शरीर में पायी जाने वाली चौबीस ग्रन्थियाँ जाग्रत होती हैं और उस आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार होता है । मेधा निखरती और प्रतिभा उभरती है।

कारण शरीर की गहराई तक पहुँचने के लिए ध्यान-धारणा अपनाने की आवश्यकता पड़ती है । यों कई लोग अपने-अपने इष्ट देवों का भी ध्यान करते हैं । पर आप्त अनुभवी जनों के प्रतिपादन और निजी प्रयोग से यह जाना जा सकता है कि प्रात: कालीन सूर्य का ध्यान सर्वोत्तम है । बन पड़े तो प्रात: के उदीयमान सूर्य के प्रत्यक्ष दर्शन भी किये जा सकते हैं और जल अर्घ्य भी चढ़ाया जा सकता है, पर जिन्हें नियत समय पर किसी बड़ी अड़चन के कारण प्रत्यक्ष दर्शन न बन पड़े, तो वे मानसिक ध्यान भी उसी स्तर का कर सकते हैं ।

प्रभात कालीन अरुणाभ सविता का ध्यान-दर्शन करने के साथ-साथ यह धारणा भी करनी चाहिए कि दिव्य केन्द्र से नि:सृत होने वाली किरणें साधक के प्रत्यक्ष शरीर में सूक्ष्म शरीर में और कारण शरीर में प्रवेश कर रही हैं । उन तीनों ही संस्थानों में प्रकाश भर रही हैं, साथ ही ऊर्जा, उष्णता और आभा स्तर की तेजस्विता का समावेश कर रही हैं । स्थूल शरीर में ओजस, सूक्ष्म शरीर में तेजस् और कारण शरीर में वर्चस् का उभार आ रहा है । अपने रोम-रोम में, कण-कण में, सविता की ऊर्जा-आभा ओत-प्रोत हो रही है । व्यक्तित्व ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी बन रहा है । सविता और साधक, आग और ईंधन की तरह परस्पर एकीभूत हो रहे हैं । आदान-प्रदान का, समर्पण और अनुग्रह का उपक्रम अनवरत रूप से चल रहा है । यह दैनिक साधना है, यह जिनसे जितनी श्रद्धा और तत्परता के साथ बन पड़े, वे इसे नित्य कर्म के एक अविच्छिन्न अंग के रूप में करते रहें ।

यह युग संधि की बेला है । इक्कीसवीं सदी के आगमन से पूर्व तक बीसवीं सदी चलेगी । यह अन्तिम चरण कितनी ही उथल-पुथल से भरा हुआ होगा । इसमें प्रसव पीड़ा जैसी अनुभूति भी हो सकती है और नवजात शिशु के आगमन का उत्साहवर्धक समाचार भी मिल सकता है । जन्म और मरण के आदि और अन्त वाले अवसर भी ऐसी ही उथल-पुथल भरे होते हैं ।

रात्रि का समापन और प्रभात का आगमन संध्याकाल कहलाता है । उसमें साधारण क्रिया-प्रक्रिया की अपेक्षा हर किसी को कुछ नये स्तर का क्रिया-कलाप अपनाना पड़ता है । युग संधि में भी शान्ति कुंज की एक बारह वर्षीय योजना बनी है । इसमें दो वर्ष बीत चुके हैं। दस वर्ष शेष हैं । इस अवधि में एक आध्यात्मिक सामूहिक अनुष्ठान आरंभ किया गया है- हर दिन २४ करोड़ गायत्री जप करने का । दूसरों के लिए यह लक्ष्य हिमालय जैसा भारी प्रतीत हो सकता है, पर अपने २४ लाख परिजन यदि एक माला गायत्री जप और सविता के ध्यान में पाँच-दस मिनट लगाते रहें, तो इतने भर से संकल्पित साधना भली प्रकार से पूरी होती रहेगी ।

प्रचार-विस्तार का क्रम तेजी से चल रहा है । इस साधना की पूर्णाहुतियाँ १९९५ तथा २००० में होंगी, जिनमें न्यूनतम एक-एक करोड़ व्यक्ति सम्मिलित होंगे । इन सबको, इस प्रथम चरण की पूर्णाहुतियाँ करके अगले नये सोपान में और भी अधिक श्रद्धा-संवेदना के, उत्साह एवं साहस के साथ प्रवेश करना होगा । इसलिए दो पूर्णाहुतियों के आयोजन की योजना बनी है, यदि इतने लोगों का एकत्रीकरण एक जगह न बन सका, तो उसे मिशन द्वारा संचालित २४ सौ प्रज्ञा केन्द्रों में विभाजित भी किया जा सकता है । पूर्णाहुति की इस विशालता का लक्ष्य यथावत् रहेगा, पर उसे एक या अनेक स्थानों पर सम्पन्न करने की बात अवसर आने पर परिस्थितियों के अनुरूप ही निश्चित होगी ।

सामूहिकता की शक्ति से सभी परिचित हैं । भव्य भवन, असंख्य ईंटों से मिलकर बनते हैं । अनेक धागे मिलकर कपड़ा बनता है । तिनकों को बटकर मजबूत रस्से बनते हैं । सैनिकों का समुदाय मिलकर समर्थ सेना का रूप धारण करता है । मधुमक्खियाँ मिल-जुल कर ही छत्ता बनाती हैं । देवताओं की संयुक्त शक्ति से देवी दुर्गा का अवतरण संभव हुआ था । ऋषि रक्त से घड़ा भर जाने पर उससे असुर निकन्दनी सीता का उद्‌भव हुआ था । अणुओं से मिलकर यह दृश्य जगत विनिर्मित हुआ है । नव-अणु के अवतरण में भी बुद्ध के परिव्राजकों एवं गाँधी के सत्याग्रहियों जैसा संगठन अभीष्ट होगा ।

युगसंधि महापुरश्चरण को नव युग की ज्ञान गंगा को धरती पर अवतरित करने वाली सम्मिलित स्तर की भगीरथ साधना कहा जा सकता है । उसे लघु से विभु बनाने में मत्स्यावतार जैसी भूमिका भी तो निबाहनी है । इसलिए देव मानवों को एक छत्र-छाया में एकत्रित करना अनिवार्य हो गया है । इस संदर्भ में सन् १९५८ में एक सहस्त्र कुण्डी गायत्री महायज्ञ का प्रथम प्रयोग गायत्री तपोभूमि मथुरा में हो चुका है । युग निर्माण योजना की सुविस्तृत रूप-रेखा उसी अवसर पर बनी थी और तब से लेकर अब तक की अवधि में उसने नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों में आश्चर्यजनक समझी जाने वाली क्रिया-प्रक्रिया सम्पन्न की है । एक जोरदार धक्का भर इंजन देता है, तो डिब्बे उसी ठोकर के कारण दूर तक पटरी पर दौड़ते चले जाते हैं । अभी सन् १९९० से २००० तक प्राय: दस वर्ष शेष हैं । इस अवधि में इतनी समर्थता अर्जित कर ली जायेगी कि पूर्णाहुति के रूप में मारी गई जोरदार ठोकर इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य का प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभव करा सके ।

## प्रज्ञा पुरश्चरण की प्रभावी क्रिया पद्धति

युग पुरश्चरण को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) सामूहिक जप परक साधना (२) धर्मानुष्ठानों का उपक्रम (३) जन-मानस के परिष्कार हेतु ज्ञानयज्ञ । इस त्रिविध समन्वय को प्रकारान्तर से त्रिवेणी संगम की उपमा दी जा सकती है । जिसका माहात्म्य बताते हुए रामायणकार ने कायाकल्प होने की बात जोर देकर कही है । कायाकल्प में कौए के कोयल और बगुले के हंस हो जाने का उल्लेख अलंकारिक है वस्तुत: उसे अशुभ के शुभ में बदल जाने की प्रक्रिया कहा जा सकता है । शरीर तो क्या बदलते हैं किन्तु मन:स्थिति के परिवर्तन से परिस्थिति में आमूलचल परिवर्तन होना सम्भव है । "काया-कल्प" शब्द वस्तुत: ऐसे ही प्रसंगों में प्रयुक्त होता है ।

सामूहिक गायत्री जप साधना की चर्चा पिछले पृष्ठों पर हो चुकी है । सूर्योदय के समय हर धर्मप्रेमी को पाँच मिनट मौन मानसिक गायत्री जप करना चाहिए, साथ में सविता के प्रकाश का ध्यान । समय पूरा होते ही उसका प्रतिफल अदृश्य वातावरण के परिशोधन हेतु अन्तरिक्ष में बिखेर देने का संकल्प । संक्षेप में इतनी-सी संक्षिप्त में साधना ही प्रज्ञा पुरश्चरण का वैयक्तिक साधना कृत्य है । जिसे कहीं भी किसी भी स्थिति में उतने समय साधारण काम-काज रोककर किया जा सकता है । समय का अनुशासन इसका महत्वपूर्ण पक्ष है । एकता, एकरूपता, एकाग्रता, लक्ष्य की एकात्मता ही इस प्रसंग से जुड़े हुए महत्वपूर्ण तथ्य हैं जो विस्तार की दृष्टि से स्वल्प होते हुए भी चिनगारी की तरह महान परिणाम प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हो सकते हैं ।

इस ऐतिहासिक उपक्रम का दूसरा पक्ष है—धर्मानुष्ठान । इसे सामूहिक कृत्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना है । सर्वविदित है कि गायत्री का युग्म यज्ञ है। दोनों को भारत की देव संस्कृति का माता-पिता कहा गया है । एकाकी अपूर्णता दूसरे से सम्पूर्ण होती है । दोनों परस्पर पूरक हैं । इसलिए गायत्री साधक किसी न किसी रूप में यज्ञ द्वारा उसे समग्र बनाते हैं । जो साधन नहीं जुटा सकते वे दशांश जप अधिक करके भी उसकी प्रतीक पूजा करते हैं । आवश्यकता और अनिवार्यता सभी अनुभव करते हैं, यह दूसरी बात है कि साधन न बन पड़ने पर उसका वैकल्पिक प्रतीक जिस-तिस प्रकार से सम्पन्न कर लिया जाय ।

जिस प्रकार प्रस्तुत पुरश्चरण में जप को केन्द्रित न करके विकेन्द्रित किया गया है उसी प्रकार इसका यज्ञ कृत्य भी एक बड़े आयोजन के रूप में सम्पन्न न करके विकेन्द्रित रखा गया है । सभी क्षेत्र प्रदेशों को इस दिव्य ऊर्जा से अनुप्राणित करना जो है । चूँकि अधिकाधिक व्यक्ति सरलतापूर्वक सम्मिलित हो सकें इसी दृष्टि से पाँच मिनट जितना स्वल्प समय और अनुबन्धों से रहित निर्धारण प्रस्तुत किया गया है ।

साधारणतया एक महीने में प्रज्ञा पुरश्चरण के भागीदार एक महीने में एक बार एक स्थान पर एकत्रित होकर प्रज्ञा यज्ञ सम्पन्न कर लिया करें, ऐसी व्यवस्था बनाई जानी चाहिए इससे एक स्थान के लोग इतना अनुभव कर सकेंगे कि उनका परिवार कितना बढ़ रहा है और उसमें कितने नये पुराने परिजन सम्मिलित हो सके हैं । अधिकों को देखकर अधिक उत्साह बढ़ना स्वाभाविक है । जन मनोविज्ञान का यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अधिक लोग—बड़े लोग—जिसे करते हैं उसका अनुकरण सामान्य जन अनायास ही करने लगते हैं । रामलीला समाप्त होने के बाद छोटे बालकों को उसके प्रमुख पात्र के मुखौटे लगाये—गदा धनुष फटकारते देखा जा सकता है । यह अनुकरण प्रवृत्ति है जिसे सामान्य जन सहज ही अपनाते रहते हैं । सिरगेट, पान, चाय आदि का प्रचलन उनकी उपयोगिता के कारण नहीं वरन् अनुकरण प्रिय प्रवृत्ति के कारण है । जुलूसों में एकत्रित जन समुदाय स्वयं उस माहौल में उत्तेजित होता है और दर्शकों पर अपना प्रभाव छोड़ता है । विचार क्रान्ति अभियान में घटनापरक कम और चिन्तन की उथल-पुथल को प्रमुख माना गया है ।

यह महाभारत जिस धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में लड़ा जा रहा है उसे जनमानस का चिन्तन क्षेत्र ही कहा जा सकता है । इसकी रणनीति में अधिक लोगों का अधिक सहयोग एक बहुत बड़ा आधार है । प्रज्ञा पुरश्चरण में अध्यात्म तत्वज्ञान के उच्चस्तरीय अवलम्बनों के अतिरिक्त उसमें अधिकाधिक लोगों का अधिकाधिक सहयोग अर्जित करना भी ध्यान में रखा गया ।

प्रसंग प्रज्ञा पुरश्चरण के दूसरे पक्ष धर्मानुष्ठान का यज्ञ आयोजन का चल रहा था । इसके लिए ऐसी ही सरल प्रक्रिया अपनानी होगी जिसको अपना सकना हर स्तर वालों के लिए सम्भव हो सके ।

पाँच छोटे-छोटे घृत दीप—पाँच-पाँच अगरबत्तियों के पाँच गुच्छक एक सुसज्जित चौकी पर प्रतिष्ठित कर देने से यज्ञ का दृश्य रूप बन जाता है । घृत और सुगन्धित द्रव्य अग्नि और समिधा यह वस्तुएँ यज्ञ में प्रमुख होती हैं । उपरोक्त विधि में इन सभी का सहज समन्वय हो जाता है । अगरबत्ती के हवन द्रव्य, उसमें लगी हुई लकड़ी की समिधा दीपक से घृताहुति की प्रतीक बन जाता है । इस स्थापना के पीछे गायत्री मन्त्र का चित्र प्रतिष्ठित करना चाहिए । चौबीस आहुति का न्यूनतम विधान गायत्री यज्ञों में होता है । यह कार्य उपस्थित करके सम्पन्न करना चाहिए । सभी उपस्थित लोगों के सिर पर चन्दन की एक बूँद लगाकर उन्हें यजमान भागीदार माना जा सकता है । यह अत्यन्त छोटा निर्धारण ऐसा है जिसे कहीं भी किसी भी स्तर के लोगों द्वारा सहज सम्पन्न किया जा सकता है । यज्ञ की समाप्ति पर यदि प्रसाद वितरण की आवश्यकता समझी जाय तो जल, शक्कर और तुलसी दल के सम्मिश्रण से बना हुआ अभिमन्त्रित जल इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त समझा जा सकता है ।

प्रज्ञा पुरश्चरण के साथ इतना छोटा ही यज्ञ आयोजन कृत्य जोड़ा गया है । बड़े यज्ञ करने हों तो उन्हें फिर कभी करना चाहिए । इस सन्दर्भ में जो भी निर्धारण हो वे सर्वत्र एक जैसे हों । पाँच मिनट का जप ही सर्वत्र एक जैसा चले । जिन्हें अधिक जप करना हो वे उसके लिए स्वतन्त्र है, पर अन्य समय उसे करें । इस प्रक्रिया में पाँच मिनट का ही अनुशासन पालें । इसी प्रकार प्रज्ञा अभियान का जो स्वरूप निर्धारित किया गया है उसे उसी रूप में कार्यान्वित किया जाय, ताकि विश्वव्यापी एकता—एकरूपता अक्षुण्ण बनी रहे । नमाज का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप, विधान, समय एक जैसा है । गिरजाघरों के प्रेयर के सम्बन्ध में भी यही बात है । प्रज्ञा पुरश्चरण की जप तथा यज्ञ विधा सर्वत्र एक जैसी होनी चाहिए । सरलता इसलिए रखी गई है कि सभी धर्मों के सदस्य उसे गले उतारने अपनाने में कठिनाई अनुभव न करें । यों एकता, एकरूपता लाने के लिए सभी मतावलम्बियों को थोड़ा-थोड़ा तो झुकना ही पड़ेगा । अपनी ही अड़ पर अकड़े रहने वाले हठवादियों के सम्बन्ध में कोई इलाज उपचार नहीं । उनकी उपेक्षा करके हमें समन्वयवादी भावना उभारनी है जो आगे चलकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" के प्रचलन में सहायक सिद्ध हो सके । एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म, एक व्यवस्था के आधार पर जब प्रज्ञा युग की सभी स्थापनाओं को प्रचलन में उतारना है तो समन्वयवादी नीति अपनाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । एकात्म अनुशासन का लक्ष्य सामने रखकर प्रज्ञा पुरश्चरण के जप और यज्ञ पक्षों में सरलतम बनाया गया है और इतना लचीला रखा गया है कि उसे दुराग्रहियों को छोड़कर अन्य किसी के लिए अपनाने में कोई कठिनाई दृष्टिगोचर न हो ।

एक अन्य विकल्प यह है कि गायत्री मन्त्र याद होने में किसी को कोई कठिनाई पड़े तो वे 'ॐ' के उच्चारण की विधि अपना सकते हैं । 'ॐ' कार अक्षर ही नहीं ध्वनि भी है। अक्षरों के साथ भाषा, धर्म, सम्प्रदाय आदि के मतभेद जुड़ सकते हैं किन्तु जब विशुद्ध ध्वनि के रूप में उसे समझा अपनाया जाय तो किसी को कोई आपत्ति या कठिनाई नहीं होनी चाहिए । कठिनाई उच्चारण सम्बन्धी, पूरा मन्त्र याद करने में मात्रा ज्ञान सम्बन्धी अड़चन या मस्तिष्कीय अदक्षता बाधक हो सकती है । साम्प्रदायिक हठवादिता गायत्री के सार्वभौम सर्वजनीन स्वरूप को स्वीकारने में बाधक भी हो सकती है, विग्रह भी प्रस्तुत कर सकती है । उन्हें गायत्री को हिन्दू धर्म के साथ जुड़े होने संस्कृत भाषा में सजे होने—के कारण विरानापन लग सकता है । ऐसी संकीर्णता के रहते हुए भी 'ऊँ' कार की ध्वनि से किसी को 'एलर्जी' नहीं होनी चाहिए । वह किसी भाषा या धर्म से सम्बन्धित नहीं है । प्रकृति के अन्तराल में अनादि काल से चली आ रही एक झंकार मात्र है । घड़ियाल पर घण्टे की चोट पड़ने से जिस प्रकार झन-झनाहट, छर-छराहट भरे कम्पन निसृत होते हैं और उसी प्रकार 'प्रकृति और पुरुष'—'माया और ब्रह्म' का निरन्तर चलने वाला घड़ी के पेण्डुलम जैसा उपक्रम ऊँ कार है । उसे सृष्टि का सूत्र संचालक शब्द प्रवाह एवं अनादि ऊर्जा स्रोत कह सकते हैं । वह ज्ञान और विज्ञान का अविच्छिन्न स्रोत है ।

गायत्री ऊँकार की है । इसलिए उसे आरम्भ में ही जोड़ दिया गया है । अ + उ + म् से भूःर्भुव स्वः । भूः से 'तत्सवितुरेण्यं' । भुवः से 'भर्गो देवस्य धीमहि' । स्वः से 'धियो योनः प्रचोदयात्' का शब्द विस्तार हुआ है । ऊँकार को बीज और गायत्री को वृक्ष कहा गया है । इसलिए जहाँ गायत्री की समग्र अवधारणा किसी कारण कठिन जान पड़ती हो वहाँ उसके स्थान पर मात्र ऊँकार ध्वन्यात्मक मानसिक जप किया जा सकता है । यह निरक्षरों और बालकों के लिए भी सम्भव है । भाषा ज्ञान सम्बन्धी कठिनाई भी इसमें बाधक नहीं होती । साम्प्रदायिक विग्रह की भी इसमें गुंजायश नहीं है ।

इतने पर भी वह स्मरण रखने योग्य है कि गायत्री का शब्द गुंथन समग्र और ऊर्जा का पुञ्ज है । उसकी पूर्णता और क्षमता को नकारा नहीं जा सकता । उसके स्थान पर ऊँकार से काम चलना आपत्ति धर्म जैसा है । उसे गायत्री का स्थानापन्न नहीं बनाया जा सकता । जहाँ पूर्ण गायत्री जप में कोई अड़चन नहीं है वहाँ उसी का उपयोग करना चाहिए । अभ्यास सम्बन्धी कठिनाई को सरल बनाने और परिपूर्ण गायत्री का ज्ञान अभ्यास कराने के प्रयासों में किसी प्रकार की शिथिलता भी नहीं आने देनी चाहिए । लेकिन जहाँ प्रारम्भ ऊँकार गुंजन से करने की बात बनती हो वहाँ मनाही भी नहीं है । शुभारम्भ तो हो, परिणति निश्चित ही फलदात्री होगी । जप और यज्ञ के इस युग्म का प्रचलन अब प्रज्ञा धर्मानुष्ठान का प्राण मानते हुए सभी परिजनों को जुट ही जाना चाहिए ।

● ● ●

# गायत्री की युगान्तरीय चेतना

## युग शक्ति के रूप में गायत्री चेतना का अरुणोदय

यों मनुष्य के पास प्रत्यक्ष सामर्थ्यों की कमी नहीं है और उनका सदुपयोग करके उसे वह अपने तथा दूसरों के लिए बहुत कुछ करता है, किन्तु उसकी असीम सामर्थ्य को देखना हो तो मानवी चेतना के अन्तराल में प्रवेश करना होगा । व्यक्ति की महिमा को बाहर भी देखा जा सकता है पर गरिमा का पता चलाना हो तो अन्तरंग ही टटोलना पड़ेगा । इस अन्तरंग को समझने, उसे परिष्कृत एवं समर्थ बनाने, जागृत अन्तःक्षमता का सदुपयोग कर सकने के विज्ञान को ही ब्रह्मविद्या कहते हैं । ब्रह्मविद्या के विशाल कलेवर का बीज सूत्र गायत्री को समझा जा सकता है । प्रकारान्तर से गायत्री को मानवी गरिमा के अन्तराल में प्रवेश पा सकने वाली और वहाँ जो रहस्यमय है उसे प्रत्यक्ष में उखाड़ लाने की सामर्थ्य को गायत्री कह सकते हैं । नवयुग के सृजन में सर्वोपरि उपयोग इसी दिव्य शक्ति का होगा ।

मनुष्य की बहिरंग सत्ता को भी कई तरह की सामर्थ्य प्राप्त हैं पर वे सभी सीमित होती हैं और अस्थिर भी । सामान्यतया सम्पत्ति, बलिष्ठता, शिक्षा, प्रतिभा, पद, अधिकार जैसे साधन ही वैभव गिने जाते हैं और इन्हीं के सहारे कई तरह की सफलतायें भी सम्पादित की जांती हैं। इतने पर भी इनका परिमाण सीमित ही रहता है और इनके सहारे व्यक्तिगत वैभव सीमित मात्रा में ही उपलब्ध किया जा सकता है । भौतिक सफलताएँ मात्र अपने पुरुषार्थ और साधनों के सहारे ही नहीं मिल जातीं वरन् उनके लिए दूसरों की सहायता और परिस्थितियों की अनुकूलता पर भी निर्भर रहना पड़ता है । यदि बाहरी अवरोध उठ खड़ें हों, परिस्थितियाँ प्रतिकूलता की दिशा में उलट पड़ीं तो साधन और कौशल अपंग बन कर रह जाते हैं और असफलता का मुँह देखना पड़ता है । आत्मशक्ति के साथ जुड़ा हुआ वर्चस, भौतिक साधनों की तुलना में अत्यधिक होना सुनिश्चित है । उसमें न तो असीमता का बन्धन है न ही स्वल्पता का असन्तोष । उस क्षेत्र में प्रचुरता असीम है । आत्मा का सम्बन्ध सूत्र परमात्मा के साथ जुड़ा होने के कारण आवश्यकतानुसार उस स्रोत से बहुत कुछ-सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है ।

कुएँ में सीमित पानी भरा रहता है पर खींचने पर जो कमी पड़ती है उसे भूमिगत जल स्रोत सहज ही पूरी करते रहते हैं । चिंगारी छोटी होती है पर ईंधन जैसे साधन मिलते ही उसे दावानल का विकराल रूप धारण करने में देर नहीं लगती । व्यापक अग्नि-तत्व का सहयोग मिलने का ही यह चमत्कार है । नदी की धारा सीमित होती है उसमें थोड़ा सा ही जल बहता है पर हिमालय जैसे विशाल जल स्रोत के साथ तारतम्य जुड़ा होने के कारण वह अविछिन्न रूप से प्रवाहित ही बनी रहती है जब कि पोखर का पानी अपने तक ही सीमित रहने के कारण उपयोगकर्ताओं का, धूप-हवा का दबाव सह नहीं पाता और जल्दी ही सूखकर समाप्त हो जाता है । भौतिक सामर्थ्य की तुलना पोखर के पानी से की जा सकती है और आत्मिक शक्तियों को हिमालय से निकलने वाली नदियों के समतुल्य समझा जा सकता है ।

भौतिक पदार्थ परिवर्तनशील हैं । इस जगत का सारा क्रम ही उतार-चढ़ाव के गतिचक्र पर परिभ्रमण करता है । यहाँ अणु से लेकर सूर्य तक सभी गतिशील हैं। वे चलते, बढ़ते और बदलते हैं । स्थिरता दिखती भर है वस्तुतः है नहीं । पदार्थ का स्वभाव ही परिवर्तन है । जन्म और मरण से कोई भी बच नहीं सकता । इसी प्रकार स्थिरता के लिए भी कहीं कोई गुंजायश नहीं है । शरीर शैशव से यौवन तक बढ़ता तो है पर वृद्धता और मरण भी उतने ही सुनिश्चित हैं । शिक्षा और अनुभव के सहारे बुद्धि वैभव बढ़ता है परन्तु यह भी निश्चित है कि आयु वार्द्धिक्य के साथ-साथ स्मरण शक्ति लेकर कल्पना और निर्णय के काम आने वाले बुद्धि संस्थान के सभी घटक अशक्त होते चले जाते हैं । एक समय ऐसा आता है जब एक समय का बुद्धिमान दूसरे समय गतिहीन माना जाता है और 'लठियाने' से तिरस्कार का भाजन बनता है । वृद्धावस्था की आवश्यकता और रुग्णता से तो सभी परिचित हैं । बुद्धि बल की तरह इन्द्रिय बल भी ढलान के दिन आने पर क्रमशः घटता ही चला जाता है । विभूतियाँ दुर्बल का साथ छोड़ देती हैं । तब पद अधिकार को हस्तगत किये रहना तो दूर गृहपति का पद भी नाम मात्र के लिए ही रह जाता है । परिवार का संचालन कमाऊ लोगों के साथ में चला जाता है । किसी समय का गृहपति इन परिस्थितियों में मूक दर्शक और कुछ करने बदलने में अपने को असहाय ही अनुभव करता है ।

राजनैतिक क्षेत्र में बूढ़े नेताओं को हटाने का जो आन्दोलन चल रहा है उसके पीछे यह अशक्तता के तत्त्व ही काम करते दिखाई पड़ते हैं ।

साधनों का भी यही हाल है । धन उपार्जन से मिलने वाली सफलताएँ बढ़े हुए खर्च के छेद से होकर टपकती रहती हैं और संग्रह का भंडार अपूर्ण ही बना रहता है फिर उपार्जन की कमी एवं खर्च की वृद्धि के असन्तुलन भी आते ही रहते हैं । न तो अमीरी स्थिर है न गरीबी । ऐसी दशा में धन के आधार पर बनने वाली योजनायें भी अस्त-व्यस्त बनी रहती हैं । अर्थ साधनों के उपयोगकर्ता यदि प्रमादी या दुर्बुद्धिग्रस्त हुए तो सम्पत्ति का दुरुपयोग होता है और उससे उलट कर विग्रह और संकट ही उठ खड़ा होता है ।

प्रत्यक्ष सब कुछ दीखने वाले भौतिक साधनों की समीपता, अस्थिरता, अनिश्चितता को देखते हुए उनके द्वारा जो सफलताएँ मिलती हैं उन्हें भाग्योदय जैसी आकस्मिकता ही माना जा सकता है । सांसारिक सफलताओं तक के सम्बन्ध में उनके सहारे अभीष्ट मनोरथ पूरा हो सकने की आशा भर लगाई जा सकती है विश्वास नहीं किया जा सकता । जब सामान्य प्रयोजनों तक के सम्बन्ध में इतना असमंजस है, तो युग-परिवर्तन जैसे कल्पनातीत विस्तार वाले, असमीम शक्ति-साधनों की आवश्यकता वाले महान कार्य को उस आधार पर कैसे सम्पन्न किया जा सकता है । इतिहास साक्षी है कि हर दृष्टि से समर्थ समझी जाने वाली सत्ताएँ अपने सम्प्रदाय को व्यापक बनाने जैसा छोटा मनोरथ पूरा न कर सकीं ।

इस्लाम और क्रिश्चयानिटी के विस्तार के लिए आतुर सत्ताधारी हर सम्भव उपाय अपनाने पर भी बहुत थोड़ी सफलता पा सके हैं । ऐसी दशा में यह सोचना हास्यास्पद ही होगा कि भौतिक साधनों के बल-बूते शालीनता का विश्वव्यापी वातावरण बनाया जा सकना शक्य है । अधिनायकवादियों ने अपने देशों की समूची शक्ति-सामर्थ्य मुट्ठी में करके द्रुतगति परिवर्तन के जो सपने देखे थे उनकी आंशिक पूर्ति भी नहीं हो पायी है । जर्मनी, इटली, रूस, चीन आदि में साधनों के आधार पर परिवर्तन के प्रयोग बड़े पैमाने पर हुए हैं । उचित से लेकर अनुचित तक सब कुछ उस महत्त्वाकाँक्षा के लिए बरता गया है । पर्यवेक्षक जानते हैं कि इन प्रयत्नों में कितनी सफलता मिली । जो मिली वह कितनी देर ठहर सकी । जो ठहरी हुई है वह कितने समय टिक सकेगी और प्रयोजनों का मनोरथ कितना पूरा कर सकेगी, इसमें अभी भी पूरा-पूरा सन्देह है ।

भौतिक प्रगति के लिए जो प्रयत्न और प्रयोग चलते रहते हैं, जो सरंजाम खड़े होते हैं उनमें प्रचुर परिमाण में शक्ति लगानी पड़ी है । उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, चिकित्सा, शान्ति, सुरक्षा, धर्म-धारणा जैसे कार्यों में कितनी साधन शक्ति लगती है उसका विशाल परिमाण और विस्तार देखते हुए हतप्रभ रह जाना पड़ता है । इतने पर भी शान्ति और प्रगति की समस्या का आंशिक हल ही हो पाता है । साधनों के अभाव का असमंजस सदा ही बना रहता है । योजनाएँ स्थगित होती रहती हैं । जब बाह्य सुविधा संवर्धन का उद्देश्य प्रस्तुत शक्ति साधनों के सहारे पूरा होने में इतनी कठिनाई है तो जन-मानस का परिष्कार और वातावरण के परिवर्तन जैसा विशाल कार्य इतने भर से किस प्रकार पूरा हो सकेगा ? यह ठीक है कि नव-निर्माण के लिए भौतिक साधनों की भी आवश्यकता है और उन्हें जुटाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न करने होंगे, पर उन्हें आधार मानकर नहीं चला जा सकता । कोई भौतिक योजना चाहे वह कितनी ही बड़ी और कितने ही अधिक साधनों पर अवलम्बित क्यों न हो, इतने महान, इतने व्यापक उद्देश्य को पूरा कर सकने में समर्थ हो नहीं सकेगी ।

परिवर्तन व्यक्ति के अन्तराल का होना है, दृष्टिकोण बदला जाना है, आस्थाओं का परिष्कार किया जाना है, और आकांक्षाओं का प्रवाह मोड़ा जाना है, सदाशयता का पक्षधर मनोबल उभारना है, आत्मज्ञान कराना और आत्म गौरव जगाना है । यही युग है परिवर्तन का मूलभूत आधार । आन्तरिक परिष्कार की प्रतिक्रिया ही व्यक्ति को उत्कृष्टता और समाज को श्रेष्ठता के रूप में परिलक्षित होगी । सारे प्रयास पुरुषार्थ अन्तर्जगत से सम्बन्धित हैं । इसलिए साधन भी उसी स्तर के होने चाहिए । सामर्थ्य ऐसी होनी चाहिए जो अभीष्ट प्रयोजन को पूरा कर सकने के उपयुक्त सिद्ध हो सके । निश्चित रूप से यह कार्य आत्म-शक्ति का ही है । उत्पादन और उपयोग उसी का किया जाता है । युग-निर्माण के लिए इसी ऊर्जा का उपार्जन आधारभूत काम समझा जा सकता है । ऐसा काम जिसे करने की आवश्यकता ठीक इन्हीं दिनों है ।

आत्म-शक्ति का उत्पादन जिन यन्त्रों द्वारा—जिन कारखानों में किया जाता है उसे व्यक्ति चेतना ही नाम

दिया जा सकता है । मानवी अन्तःकरण को अणु ऊर्जा उत्पादन केन्द्र के समतुल्य माना जा सकता है । शरीर तो आवरण मात्र है इसकी तुलना आयुध, औजार, वाहन आदि से दी जाती है । उससे कितना कुछ हो सकता है इसे श्रमिक से लेकर पहलवान तक की तुच्छ सफलताओं को देखते हुए जाना जा सकता है । बुद्धि बल इससे ऊँचा है वह भी तथाकथित व्यवहार-कुशल बुद्धिमानों से लेकर शोधकर्त्तओं की सीमा तक पहुँच कर समाप्त हो जाता है । उस आधार पर व्यक्ति की उन्नति और समाज की सुविधा कुछ-न-कुछ तो बढ़ती ही है । पर उतने भर से व्यापक परिवर्तनों की आशा नहीं की जा सकती । पैसा महाशय तो जैसे कुछ हैं वैसे हैं ही । उनके सहारे लम्बी योजनायें बनाने से पहले यह सोचना पड़ता है कि वे जिनके हाथ में रहेंगे उन्हें नैतिक दृष्टि से जीवित भी छोड़ेंगे या नहीं । सार्वजनिक उपयोग में आने से पहले वे प्रयोग कर्त्ताओं को भी लुभाते और उन्हीं में अटक कर रह जाते हैं । लोक मंगल के लिए बची सरकारी योजनाओं के लिए निश्चित की गई धनराशि का कितना अंश अभीष्ट प्रयोजन में लगता है और कितना बिचौलिये हड़प जाते हैं । यह कौतुक हर किसी को पग-पग पर देखने के लिए चलता रहता है । ऐसी दशा में युग निर्माण के लिए उस शक्ति का संचय कर लेने पर भी क्या कुछ प्रयोजन पूरा हो सकेगा इसमें पूरा-पूरा सन्देह है ।

आत्मिक क्षेत्र की योजनाएँ आत्म-शक्ति के उपार्जन और नियोजन से ही संभव हो सकेंगी । मनुष्य के अन्तराल में सन्निहित ज्ञात और अविज्ञात शक्तियों की समर्थता और संभावना असीम है । उसे अनन्त कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी । मनः शास्त्री बताते हैं कि मानवी मस्तिष्क अद्‌भुत है । उसकी सुविस्तृत क्षमता में से अभी तक मात्र ७ प्रतिशत को जाना जा सकता है । इसमें से जो लोग मुश्किल से एक या दो प्रतिशत का उपयोग कर लेते हैं वे मनीषियों और तत्त्व दर्शियों में गिने जाते हैं, पर मनोविज्ञान द्वारा अतिन्डिम क्षमताओं की जो जानकारी मिल रही है उससे पता चलता है कि मानवी मस्तिष्क सचमुच ही जादुई तिलिस्म है उसे आनुमति का पिटारा, विलक्षणताओं का भण्डार बताया जाता रहा है । बात वैसी ही है । मस्तिष्क की मात्र सचेतन परत को उभारने और उपयोग कर सकने में समर्थ व्यक्ति कालिदास, वरदराजाचार्य जैसी भूमिकाएँ निभा सकते हैं । अचेतन परतों का कहना ही क्या ? वे ही व्यक्तित्वों के निर्माण और विकास के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं । वर्तमान और भविष्य की ढलाई इसी टकसाल के अन्तर्गत होती है । कर्म लेख—भाग्य विधान—विधि के अंक चित्रगुप्त का आलेखन कहाँ होता है ? इसका स्पष्ट संकेत मस्तिष्क के सुनियोजित दफ्तर की ओर ही होता है ।

अतीन्द्रिय क्षमताओं को ही ऋद्धियों और सिद्धियों के नाम से जाना जाता है । यह कहीं आसमान से नहीं उतरतीं और न किसी देवी-देवता द्वारा उपहार में दी जाती हैं । वे निश्चित रूप से अपने ही अन्तराल की उत्पत्ति होती हैं । धरती की परतें खोदते जाने और गहरे उतरते जाने पर बहुमूल्य खनिज सम्पदा प्राप्त होती है । समुद्र में गहरी डुबकी लगाकर गोताखोर मोती समेट कर लाते हैं । मानवी अन्तराल भी ऋद्धि-सिद्धियों का अनूठा भण्डार है । परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा में उसकी सभी क्षमताएँ और विशेषताएँ बीज रूप में विद्यमान हैं । अन्तर आकार भर का है सौर मण्डल और अण्ड परिवार की संरचना और गति व्यवस्था में मात्र आकार का ही अन्तर है, तत्त्व और तथ्य दोनों में एक ही स्तर के हैं । समूचा मनुष्य छोटे से शुक्रण्ड में छिपा बैठा होता है । वृक्ष की विशालता और विशेषता बीज के छोटे से कलेवर में भी पायी जाती है । परमात्मा में जो कुछ है वह सब प्रसुप्त रूप से आत्मा के छोटी सत्ता में उसी प्रकार विद्यमान है जैसे विशाल ग्रन्थ के सहस्त्रों पृष्ठ छोटी सी माइक्रोफिल्म पर अंकित कर लिये गये हैं ।

सर्वसमर्थ परमात्मा के छोटे घटक आत्मा की मूर्छना को जागृति में बदल देने की प्रक्रिया अध्यात्म साधना है और अध्यात्म साधना के विभिन्न विधि-विधानों में गायत्री उपासना को ही सर्वश्रेष्ठ और सर्व सुलभ माना गया है । आदि काल से लेकर अद्यावधि उस महा विज्ञान के सम्बन्ध में अनुभवों और प्रयोगों की विशालकाय श्रृंखला जुड़ती चली आयी है । प्रत्येक शोध में उसकी नित नूतन विशेषताएँ उभरती चली आई हैं । प्रत्येक प्रयोग में उसके अभिनव शक्ति स्रोत प्रकट होते रहे हैं ।

व्यक्ति का बहिरंग-भौतिक पक्ष सामान्य है । असामान्य तो उसका अन्तराल ही है । उस रहस्यमय क्षेत्र के विशिष्ट उत्पादनों में गायत्री का कृषि विज्ञान आशा-जनक सफलताएँ प्रस्तुत करता है । नवयुग के व्यक्ति को आत्मिक सम्पदाओं से सुसम्पन्न बनाता है । धरती पर स्वर्ग के अवतरण में आत्मिक विभूतियों की ही

सुसम्पन्नता का विस्तार होगा, भाव संवेदनाओं की उत्कृष्टता ही मनुष्य में स्वत्व का उदय करेगी, और इसी उत्पादन के बलबूते इस संसार में स्वर्गीय परिस्थितियों का बाहुल्य और दिव्य शक्तियों का वर्चस्व स्थापित हो सकेगा । इस कार्य में गायत्री के तत्त्व ज्ञान और साधना विधान का अनुपम योगदान होगा । अस्तु उसे युग शक्ति गायत्री के रूप में समझा और अपनाया जाना उचित ही माना जायगा ।

# युग परिवर्तन में गायत्री महाशक्ति का अवतरण

युग परिवर्तन अपने समय का सुनिश्चित तथ्य है । इस विश्व उद्यान का सृजेता अपनी इस अनुपम कलाकृति को इस तरह नष्ट-भ्रष्ट होने नहीं देना चाहता जिस तरह वह इन दिनों विनाश के गर्त में गिरने के लिए द्रुत गति से बढ़ती जा रही है । मनुष्य उसके वर्चस और वैभव का प्रतीक है । सारा कौशल एकत्रित करके उसे बड़े अरमानों के साथ बनाने वाले ने उसे बनाया है । सामूहिक आत्महत्या के लिए इन दिनों उसकी उतावली चल रही है। बुद्धि वैभव का भस्मासुर संस्कृति की पार्वती को हथियाने और शिव को मिटाने पर उतारू हो रहा हो तो "यदायदाहि धर्मस्य......" का आश्वासन निष्क्रियता नहीं अपनाये रह सकता । सन्तुलन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नियति को अपने नियमन का गति-चक्र चलाना ही था । सो वह इन्हीं दिनों हो रहा है । चर्म-चक्षु ब्रह्ममुहूर्त्त के आगमन का आभास भले ही न लगा सकें किन्तु जिन्हें पूर्वाभास की संवेदन शक्ति उपलब्ध है, वे देखते हैं, निशा बीत गई और ऊषा की मुस्कान में अब बहुत विलम्ब नहीं है ।

नवयुग के अवतरण का तथ्य विवादास्पद प्रसंग नहीं रहा । उसे सुनिश्चित संभावना के रूप में लगभग प्रत्यक्ष ही अनुभव किया जा सकता है । ध्वन्स की शक्तियों का सामना करने के लिए जब सृजन साहसपूर्वक उठ जाय तो सभी जानते हैं कि जीतेगा कौन ? सत्य ही जीतता है असत्य नहीं, इस श्रुति वचन में सृष्टि की शाश्वत परम्परा का समावेश है । अन्धकार का सामंजस्य तभी तक सघन बन रहा है जब तक प्रकाश की किरणें प्रकट नहीं होतीं । जब विश्व चेतना की पुकार तमस् के प्रति अस्वीकृति और ज्योति की ओर गमन करने की आतुरता व्यक्त कर रही हो तो फिर नव प्रभात का अवतरण सुनिश्चित तथ्य ही माना जाना चाहिए ।

युग परिवर्तन में यों सदा ही विकृतियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का संस्थापन होता है, पर रोग और उपचार की मित्रता प्राय: हर बार होती है । अतीत के पूर्व प्रसंगों में दुष्टता की उद्दण्डता ही विनाश के लिए उभरती रही है, फलत: उसे निरस्त करने के लिए शासन-धारी भगवान अवतार लेते रहे हैं । वाराह के दाँत, नृसिंह के नख, परशुराम का फरसा, राम का धनुष, कृष्ण का चक्र, उस प्रसंग में सहज ही स्मरण आते हैं । इस बार दुष्टता नहीं भ्रष्टता का उभार है । उसके लिए बुद्ध की परम्परा ही कारगर हो सकती है । अनय का निराकरण ज्ञान गंगा के स्वर्ग से धरती पर अवतरण की ही पुनरावृत्ति होती है, अगली बार का अवतार ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में होगा । युग चण्डी का साक्षात्कार इन दिनों हम सब इसी रूप में करेंगे । इस बार क्रियागत दुष्टता की जड़ कहीं अधिक गहरी हैं । वे विकार से भरकर आगे बढ़कर आस्थाओं के क्षेत्र तक को पकड़ चुकी हैं । उनकी जटिलता भ्रष्टता के रूप में प्रकटी है । इसका निराकरण अपेक्षाकृत अधिक कठिन है । इसलिए उपचार भी उतना ही प्रखर, उतना ही उच्चस्तरीय है । इस बार का अवतरण युग शक्ति गायत्री के रूप में है । दुष्टता से निपटने के लिए शस्त्र पर्याप्त है, किन्तु भ्रष्टता तो अदृश्य है । वह आकांक्षाओं और आस्थाओं की गहराई में जा घुसती है, उतनी ही गहरी डुबकी लगाकर छिपे चोर को ढूँढ़ निकालना और उलटकर निरस्त करना अपेक्षाकृत अधिक जटिल है । इतना व्यापक, इतना जटिल और इतना कठिन काम भगवती आद्याशक्ति ही कर सकती है । अज्ञान-जन्य अनाचार प्रज्ञान के प्रचण्ड आलोक का उदय हुए बिना और किसी तरह मिट नहीं सकता । इस बार के महान परिवर्तन को सम्पन्न करने के लिए ब्राह्मी शक्ति को स्वयं ही आना पड़ रहा है । पार्षदों से यह काम चलने वाला था नहीं ।

हर महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए शक्ति चाहिए । कोई भी छोटा-बड़ा यन्त्र शक्ति के बिना चलता नहीं । समष्टि तन्त्र की तरह ही व्यक्ति तन्त्र का गतिशील रहना भी शक्ति की मात्रा पर ही निर्भर है । परिवर्तन कृत्यों में तो साधारण की अपेक्षा कहीं अधिक परिमाण में शक्ति की आवश्यकता पड़ती है । ध्वंस और निर्माण दोनों के लिए असाधारण साधन जुटाने होते हैं । संसार के महत्वपूर्ण परिवर्तन के घटनाक्रमों पर दृष्टिपात करने से प्रीतीत होता है कि उनके लिए प्रचुर परिणाम में साधन-शक्ति,

श्रम-शक्ति और चिन्तन का उपयोग हुआ है । सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्रान्तियों को सफल बनाने में समय-समय पर असाधारण सामर्थ्य का उपयोग होता रहा है । यदि वह साधन न जुटते तो लक्ष्य की प्राप्ति हो ही नहीं सकती थी । इस बार का युग परिवर्तन की रण स्थली जिस 'धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' की विस्तृत भूमि में फैली हुई है, उसे लोक मानस कह सकते हैं । परिष्कार और परिवर्तन के सरंजाम इसी परिधि में खड़े किये जाते हैं । सेनापतियों के खेमे उसी भूमि में गढ़ रहे हैं । लक्ष्य जन-मानस का परिष्कार है । प्रस्तुत समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि उनका समाधान बाह्य उपचारों से किसी भी प्रकार संभव न हो सकेगा । चिन्तन का प्रवाह उलटे बिना विनाश की विभीषिका को विलास की संभावना में परिवर्तित किया नहीं जा सकता । चिन्तन की दिशा धारा को सुव्यवस्थित करने वाले दिव्य प्रकार को युगान्तर चेतना कहा जा सकता है । यही युग शक्ति गायत्री है । युग परिवर्तन का उद्गम स्रोत इसी को समझा जाना चाहिए। उसके क्रिया-कलाप अनेकों अवांछनीयता के लिए ध्वंसात्मक और औचित्य के लिए सृजनात्मक क्रियाकलापों में देखे जा सकेंगे ।

यों मोटी दृष्टि से श्रम, साधन और प्रशिक्षण को ही सृजन और परिवर्तन का आधार समझा जाता है, पर जो वास्तविकता को समझते हैं उन्हें यह मानने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती कि मानवी सत्ता का वास्तविक केन्द्र उनकी आस्था आकांक्षाओं में है । आदर्शवादी परिवर्तनों के लिए इसी केन्द्र से उथल-पुथल करनी होती है अन्यथा बाहरी लीपा-पोती मुरझाये पत्तों पर, जल, छिड़कते फिरने की तहर-उपहासास्पद ही बन जाती है । जड़ें सींचने से पत्ते की मुर्दनी दूर हो सकती है और जन मानस के गहरे अन्तराल में आदर्शवादी श्रद्धा का उपयोग करने से ही मनुष्य बदलता है और इस बदलने के फलस्वरूप ही गतिविधियों और परिस्थितियों में चिरस्थायी सुधार दृष्टिगोचर होता है । जिन्हें इस समस्या के समझने का अवसर मिल जायगा उन्हें यह स्वीकार करते देर न लगेगी कि युग परिवर्तन में गायत्री तत्त्व-ज्ञान की, असाधारण भूमिका किस प्रकार हो सकती है । युगदृष्टा मनीषियों ने तथ्य को देखा और सर्वसाधारण को सुझाया कि आस्था क्षेत्र में उपयोगी उभार उत्पन्न करने के लिए अवतरित हुई युगशक्ति गायत्री की प्रतिक्रिया को गंभीरता पूर्वक समझें और श्रद्धापूर्वक अपनायें । समग्र परिवर्तन, बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रांति तीन खण्डों में बंटा हुआ है । इसे त्रिपदा की तीन धाराएँ कहा जा सकता है और इसके समन्वय को त्रिवेणी संगम का नाम दिया जा सकता है ।

जनमानस का परिष्कार युग परिवर्तन का आधारभूत तथ्य है । त्रिवेणी संगम पर स्नान करने का माहात्म्य "काक हों हि पिक बकहु मराला ।" बताया गया है । वह इसी रूप में परिलक्षित होगा । मनुष्य की आकृति तो यथावत बनी रहती है किन्तु प्रकृति बदल जाती है अन्तरंग बदलता हो तो बहिरंग को उलटते देर नहीं लगती । युग शक्ति गायत्री का अवतरण और क्रिया-कलाप इसी रूप में देखा समझा जा सकता है । युग परिवर्तन में इस बार उसी की भूमिका सर्वोपरि होगी । ज्ञान यज्ञ और विचार क्रांति अभियान के रूप में उसी आद्य शक्ति की हलचलों को उभरते हुए देखा जा सकता है ।

गायत्री मंत्र यों सामान्य दृष्टि से देखने पर पूजा उपासना में प्रयुक्त होने वाला हिन्दू धर्म में प्रचलित एक मंत्र मात्र प्रतीत होता है । मोटी दृष्टि से उसकी आकृति और परिधि छोटी मालूम पड़ती है । किन्तु वास्तविकता इससे कहीं अधिक व्यापक है । गायत्री मंत्र ही शक्ति है। उसका प्रत्यक्ष रूप २४ अक्षरों के गुंथन में देखा जा सकता है । भारतीय धर्म का उसे प्राण उद्गम एवं मेरुदण्ड कह सकते हैं । शिखा गायत्री है । यज्ञोपवीत गायत्री है। उसे वेदमाता, देव माता कहा गया है । ब्रह्मविद्या का तत्त्वज्ञान और ब्रह्मवर्चस का तप विधान इसी उद्गम केन्द्र में गंगोत्री यमुनोत्री, की तरह प्रकट प्रस्फुटित होते हैं । भारत का गौरवमय अतीत ऐसे देव मानवों का इतिहास है जो अपनी मातृभूमि को स्वर्गादपि गरीयसी बनाने के अतिरिक्त समस्त विश्व वसुन्धरा को समृद्धियों और विभूतियों से सुसम्पन्न बनाने में यह ही भूमिका निभाते रहे । ऐसे देव-मानवों के अन्तःकरण जिस साँचे में ढलते थे उसे निःसंकोच गायत्री तत्वज्ञान और तपविधान कहा जा सकता है ।

गायत्री महाशक्ति का प्रथम अरुणोदय भारत भूमि पर हुआ, इसके लिए स्वभावतः इसी क्षेत्र में सर्वप्रथम और सर्व अधिक परिमाण में अपना वर्चस्व प्रकट कर सकना अनायास ही संभव हो गया, पर इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उसका सीमा क्षेत्र उतना ही स्वल्प है । जापानी अपने देश में सर्वप्रथम सूर्य का उदय होने की मान्यता बनाये हुए और अपने को सूर्य पुत्र कहते हैं । उनकी मान्यता को बिना आघात पहुँचाये हुए भी यह

प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि भगवान सूर्य जापान तक सीमित नहीं हैं । वे समस्त भूखण्डों को समान रूप से अपने अनुग्रह से लाभान्वित करते हैं । गायत्री को इसी रूप में समझा जाना चाहिए । वेदमाता उसका आरम्भिक रूप है । उसकी व्यापकता देवमाता और विश्वमाता के रूप में देखी जा सकती है ।

## वेद माता, देव माता, विश्व माता

वेदमाता का रूप धारण करके गायत्री महाशक्ति ने इसी धरती पर अपने प्रथम अवतरण का परिचय दिया । मनुष्य को जिस ज्ञान और विज्ञान की आवश्यकता थी वह उसके इस उद्‌गम स्रोत से पाया । जब अधिक समझने की जिज्ञासा हुई तो गायत्री के शीर्ष और तीन चरण—इन चारों खण्ड विभाजनों की सुविस्तृत व्याख्या, विवेचना करने के लिए चार वेदों का प्रकटीकरण हुआ ।

गायत्री महाशक्ति का अवतरण वेदमाता के रूप में हुआ उसकी प्रखरता और परिपक्वता का परिचय देवमाता के रूप में सामने आया । ऋतम्भरा-प्रज्ञा की अन्तराल में प्रतिष्ठापना होने के उपरान्त विचारणा का स्तर उस ऊँचाई तक जा पहुँचता है जिसे ब्रह्मलोक कहते हैं । शरीर पर मनःचेतना का परिपूर्ण नियंत्रण है । जैसा सोचा जाता है वैसा कर्म अनायास ही होने लगता है । उत्कृष्ट चिन्तन की परिणित आदर्श कर्तृत्व में होनी ही चाहिए । गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता के धनी व्यक्ति ही देवता कहलाते हैं । मान्यता है कि देवताओं का निवास स्वर्ग में होता है । इसका स्पष्टीकरण इतना ही है कि जहाँ श्रेष्ठ व्यक्ति रहते हैं वहाँ उनके आचरण व्यवहार से वातावरण में स्वर्गीय सुख-शान्ति दृष्टिगोचार होती है । सज्जनता की सहज परिणति समृद्धि और प्रगति में होती है । उसके फलस्वरूप सन्तोष और आनन्द की मनःस्थिति एवं परिस्थिति सर्वत्र बिखरी दिखाई पड़ती है । इसी वस्तुस्थिति को पौराणिक भाषा में देवताओं का निवास स्वर्ग में होने की बात कही जाती रही है ।

गायत्री को प्रखरता की स्थिति में देवमाता कहा गया, इस प्रतिपादन में उचित निर्धारण है । सृष्टि का आदिकाल का वेदमाता स्वरूप प्रगति के मध्यकाल में 'देवमाता' बन गया । इतिहासकार इसी युग का वर्णन सतयुग के नाम से करते हैं । उसे देवयुग भी कहा जा सकता है । उन दिनों भारत के नागरिक संसार भर में जनसंख्या के आधार पर तेतीस कोटि देवता माने जाते थे । उनके उच्च स्तरीय व्यक्तित्व सहज ही यह लोक सम्मान अर्जित कर रहे थे । उन दिनों की परिस्थितियाँ इतनी सुसम्पन्न् और सुखद थीं कि इस समृद्धि से लदी हुई भारत भूमि को संसार भर में एक स्वर से स्वर्गादपि गरीयसी कहा जाता था । भारत को जगद्‌गुरु और चक्रवर्ती शासक कहलाने का श्रेय उन्हीं दिनों मिला था । उनने अपनी उत्कृष्टता को समस्त संसार में बखेरा था । फलतः कृतज्ञता के भाव भरे उपहार इस देशवासियों को मिलते थे । इन्हीं दिनों की भारतीय संस्कृति देव संस्कृति कही जाती थी । उस गौरव भरे अतीत की चर्चा करते हुए इस गई-गुजरी स्थिति में भी हमारा मस्तक सहज ही ऊँचा हो जाता है । गायत्री तत्त्वज्ञान का व्यवहार में समावेश होने की स्थिति का निरूपण करते हुए इस प्रकटता का नाम देवमाता उचित ही दिया गया ।

अवतरण और अभिवर्धन की दोनों कक्षायें पार करके अब गायत्री महा-शक्ति को विश्वमाता बनने की सुविस्तृत भूमिका निभानी पड़ रही है । इसे प्रौढ़ता और परिपूर्ण प्रचण्डता की स्थिति कह सकते हैं । दुर्गा अवतरण की प्रौढ़ता उन दिनों थी जब उसने महिषासुर, मधुकैटभ, शुंभ-निशुंभ, रक्तबीज आदि दुर्दान्त दैत्यों के साथ रोमान्चकारी युद्ध करके उन्हें परास्त किया था । गायत्री की प्रस्तुत युगान्तरीय चेतना को इसी स्तर का समझा जाना चाहिए । विचार क्रान्ति के रूप में उसके दावानल जैसे विस्तार को इन्हीं दिनों प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

सामयिक परिस्थितियों की विषमता भयावह है । आन्तरिक विकृतियों ने मानवी गरिमा की जड़ें काटकर रख दी हैं । नीति का परित्याग करके लिप्साग्रस्त मनुष्य वह करने लगा है जो उसके लिए हर दृष्टि से अशोभनीय है । उत्कृष्टता के उत्तरदायित्वों का परित्याग करके निकृष्टता अपनाने वाले शीर्षस्थ मनुष्य ने सामूहिक आत्म-हत्या जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करली हैं । प्रगति के नाम पर दीखने वाले चकाचौंध से बुद्धि भ्रम तो अवश्य होता है पर वस्तु स्थिति वह है कि हम पतन के

गर्त में गिरते और दुर्गति के अनेकानेक त्रास सहते हुए मौत के दिन पूरे कर रहे हैं । लगता है प्रलय जैसा महाविनाश किसी भी दिन वज्रपात की तरह सिर पर टूटने ही वाला है । सर्वत्र आतंक छाया हुआ है । भावी आशंकाओं से जन-मानस बुरी तरह भयभीत हो रहा है ।

सृष्टा का अपनी बहुमूल्य कलाकृति इस विश्व वसुधा से असाधारण लगाव है । इसीलिए तो जब कभी लोक चेतना पर भ्रष्टता की काली घटायें छाई हैं तो उन्हें हटाने के लिए, सन्तुलन बनाने के लिए भगवान के अवतार होते रहे हैं । "यदा यदाहि धर्मस्य..........." का आश्वासन भूतकाल में उचित अवसर पर पूरा किया जाता रहा है । इन दिनों भी उसी की पुनरावृत्ति हो रही है । लोकमानस में घुसी दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन करने के लिए इस बार उसका स्वरूप ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही हो सकता था। व्यापक क्षेत्र का परिशोधन—जन-मानस का परिष्कार—करने के लिए जिस दिव्य चेतना का अवतरण ऊँचे लोकों से धरती पर इन दिनों हो रहा है—उसे युग शक्ति गायत्री कहा गया है । उसकी भूमिका विश्वमाता जैसी है । उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में उसी का आलोक काम करेगा । नव-निर्माण के लिए इन दिनों जिस प्रचण्ड आत्म-शक्ति की आवश्यकता अनुभव की जा रही है उनका दिव्य अनुदान संत्रस्त मानवता को युग शक्ति गायत्री के रूप में ही मिलने जा रहा है । व्यक्ति और समाज की समस्याओं का चिरस्थायी समाधान इसी माध्यम से सम्भव होगा ।

भूतकाल में सम्भव है उस महाशक्ति को सम्प्रदाय जाति, लिंग आदि के घेरे में प्रतिबन्धित किया गया हो, पर अब अगले दिनों वैसा सम्भव नहीं । दीपक कैद हो सकता है, सूरज नहीं । युग गायत्री पर किसी धर्म, देश का अनुबन्ध नहीं होगा वह सार्वभौम—सर्वजनीन और सर्वसुलभ होगी । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्शों का पालन करने के लिए विश्व मानव को आगे घसीटने और ऊँचा उछालने वाली दिव्य शक्ति को सुन्दर संसार बनाने का उपक्रम पूरा करना है । इसलिए उसकी व्यापकता को देखते हुए युग शक्ति के नाम से सम्बोधन किया जाना वस्तुस्थिति का ही परिचायक माना जायगा । अवांछनीयता का ध्वंस और शालीनता का संवर्धन करने की दोनों ही विशेषताएँ गायत्री मंत्र में मौजूद हैं । उसके तत्त्वज्ञान और विधि-विधान में वे तत्व भरे पड़े हैं जिनके सहारे नये संसार का भौतिक एवं आत्मिक पुनरुत्थान भली प्रकार किया जा सके । विश्व शान्ति और विश्व समृद्धि का उभय पक्षीय प्रयोजन जिस दिव्य चेतना के माध्यम से इन दिनों हो रहा है उसे विश्वमाता ही कहा जायेगा ।

संस्कृत शब्दावली में गुंथित और उपासना उपचार में प्रयुक्त होने पर भी गायत्री मन्त्र को उतनी परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता, उसका कार्यक्षेत्र और विकास-विस्तार अत्यधिक है । इतना व्यापक कि जिसे मनुष्य की हर समस्या के समाधान और हर सुखद संभावना का साधन मानने में किस विचारशील को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । नवयुग के अवतरण की सुखद संभावनाओं में गायत्री महाशक्ति की भूमिका ही प्रधान रहेगी ।

बीज छोटा सा होता है । उसके अन्तराल में विशाल वृक्ष की समस्त विशेषताएँ सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती हैं। परमाणु तनिक सा होता है पर उसकी अन्तरंग क्षमता और गतिशीलता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । शुक्राणु में पाये जाने वाले गुण सूत्र प्रत्यक्षतः बहुत ही तुच्छ होते हैं पर उनमें महान मानव का अस्तित्व जमा बैठा होता है । गायत्री मन्त्र को भी ऐसी ही उपमा दी जा सकती है । उसका आकार छोटा रहने और उपयोग तनिक सा दीखने पर भी वस्तुतः संभावना इतनी व्यापक है कि उसे नई दुनिया गढ़ देने में समर्थ कहा जा सके ।

ब्राह्मी चेतना की महाशक्ति गायत्री के दो रूप हैं—एक ज्ञान दूसरा विज्ञान । ज्ञान पक्ष को उच्चस्तरीय तत्त्व ज्ञान की ब्रह्मविद्या की, ऋतम्भरा की संज्ञा दी जा सकती है । इसका उपयोग आस्थाओं और आकांक्षाओं को उच्चस्तरीय बनाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण के रूप में किया जा सकता है । ज्ञान यज्ञ, विचार क्रान्ति आदि के बौद्धिक उत्कृष्टता के साधन इसी आधार पर जुटते हैं । लेखनी, वाणी एवं दृश्य, श्रव्य जैसे साधनों का उपयोग इसी निमित्त होता है । स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन की गतिविधियाँ इसी के निमित्त चलती हैं ।

गायत्री का दूसरा पक्ष है विज्ञान । उपासना एवं साधना की अनेकों प्रथा पद्धतियों के रूप में यही विधि विधान बिखरा पड़ा है । मोटे रूप से यह सब ऐसा प्रतीत होता है कि किसी देवी-देवता की अभ्यर्चना करके कुछ मनोवांछित प्राप्त करने के लिए मनुहार करने जैसा है, किन्तु वास्तविकता ऐसी है नहीं । मानवी सत्ता के

अन्तराल में इतनी महान संभावनाएँ और क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में भरी पड़ी हैं कि उन्हें प्रकारान्तर से ब्रह्मचेतना की प्रतिकृति 'टू कापी' कहा जा सके । अन्तराल की प्रसुप्तता ही दरिद्रता है और उसकी जागृति में सम्पन्नता का महासागर लहलहाता देखा जा सकता है । जो उसे जगाने, साधने और सदुपयोग करने में समर्थ हो सकें उन्हें महामानव की संज्ञा दी गयी है । उसने ऐतिहासिक भूमिकाएँ निभायी हैं । स्वयं धन्य बने हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र से जन समुदाय एवं वातावरण को धन्य बनाया है ।

व्यक्ति का शरीर तो प्राय: साढ़े पाँच फुट लम्बे और डेढ़ मन भारी कलेवर के रूप में दीखता है पर उसकी मूल सत्ता, चेतना के गहवर में अन्त:करण में छिपी बैठी है । वहाँ जैसा भी वातावरण होता है उसी में चेतना को निर्वाह करना पड़ता है । फलत: उसका स्वरूप भी वैसा ही बन जाता है । टिड्डे हरी घास में रहने पर हरे रहते हैं और सूखी घास में रहने पर पीले बन जाते हैं । अन्त:करण का स्तर ही, चेतना की उत्कृष्टता और निकृष्टता के लिए उत्तरदायी है । इस अन्तराल के मर्म स्थल का स्पर्श भौतिक उपकरणों से संभव नहीं हो सकता है । उतनी गहराई तक सचेतन उपचार ही पहुँचते हैं । गायत्री महामन्त्र की साधना, उपासना का प्रयोजन यही है । इसी उपाय उपचार को गायत्री महाविज्ञान कहते हैं । प्रसुप्त का जागरण उसका उद्देश्य है । मनुष्य की महानता इन्द्रियातीत है । उसे सुधारने, उभारने, उछालने के तीनों प्रयोजन पूरे करने वाली प्रक्रिया का नाम गायत्री उपासना है, इस विज्ञान पक्ष के सहारे भौतिक प्रगति के अनेकों आधार खड़े होते हैं । ज्ञान यज्ञ के अन्तर्गत चिन्तन और दृष्टिकोण में ऐसा परिष्कार होता है जिसे ऋषि कल्प कहा जा सके । व्यष्टि और समष्टि के दोनों ही पक्षों को समुन्नत बनाने के लिए गायत्री विद्या की उपयोगिता असाधारण है । सामयिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए उसी की भूमिका युग शक्ति के रूप में सम्पन्न होने जा रही है ।

अधर्म के पक्षधर और क्रियाकलापों का नियमन करने और धर्म रक्षा के समर्थन पुनरुत्थान का उद्देश्य लेकर समय-समय पर भगवान के अवतार होते रहे हैं । इसके लिए सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं । अवतार ही यही लीलाएँ हैं । हर अवतार का उद्देश्य तो एक ही रहता है समष्टिगत विकृत मन:स्थिति और विपन्न परिस्थिति का समाधान । इसके लिए अनीति विरोधी और नीति समर्थक गतिविधियों का सुनियोजन ही अवतार का एकमात्र कार्यक्रम होता है । इस कार्यक्रम का स्वरूप क्या हो ? इसका निर्धारण सामयिक समस्याओं के स्वरूप को देखकर निर्धारित होता है । यही कारण है कि ईश्वर अवतरण के लक्ष्य एक रहते हुए भी विभिन्न अवतारों के क्रियाकलापों में अन्तर पाया जाता है । भगवती-सरस्वती का अवतार बौद्धिकता की परिपुष्टि के लिए, शिक्षा के लिए आवश्यक साधन एवं उत्साह साथ लेकर हुआ था । भगवती दुर्गा—सामूहिकता का सहकारिता का, अनीति विरोधी संघर्षशीलता का प्रतिनिधित्व करती हुई धरती पर उतरी थी । सरस्वती की बौद्धिकता एवं दुर्गा की सामाजिकता को क्रान्ति चेतना कहा जा सकता है । तीसरी शक्ति है गायत्री । गायत्री है अन्त:क्षेत्र की आध्यात्मिकता और बाह्य क्षेत्र की नैतिकता । गायत्री-अवतरण के साथ-साथ ही नीति-धर्म एवं आध्यात्म का अवतरण हुआ । वेद के माध्यम से तत्व ज्ञान, अनुशासन और नीति निर्धारण की व्यवस्था चली । लक्ष्मी चेतना पक्ष में नहीं जाती । वे भौतिकता एवं कला की प्रतीक हैं । अस्तु अवतरण प्रसंग में उनका-उनकी लीलाओं का उल्लेख नहीं होता ।

अपने युग की समस्त—विकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक गहरी हैं । उसने मानवी अन्तराल में अनास्था के रूप में जड़ें जमाई हैं, और चिन्तन एवं कर्तृत्व को भ्रष्ट करके रख दिया है । जन मानस का परिष्कार ही वर्तमान आस्था संकट के निराकरण का, समस्त समस्याओं के समाधान का एक मात्र उपाय है । उज्ज्वल भविष्य के आश्चर्यों का यही केन्द्र बिन्दु है । सुधार और उत्थान के अन्यान्य उपचार तो इसी केन्द्र बिन्दु के इर्द-गिर्द परिभ्रमण करते हैं । प्रस्तुत युग क्रान्ति का अनास्थाओं के उन्मूलन और आस्थाओं के आरोपण को लक्ष्य पूरा करने में संलग्न देखा जा सकता है । अपने युग में ब्राह्मी चेतना के अवतरण का यही स्वरूप प्रकट होते हुए देखा जा सकता है ।

अवतार चर्चा में प्राय: नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को श्रेय मिलता रहा है । इसे चर्म चक्षुओं का स्थूल मूल्यांकन कहा जा सकता है । वस्तुत: युग परिवर्तन सूक्ष्म जगत में उठने वाले तूफानी चेतना प्रवाह के रूप में दिव्य लोक से उठते उभरते हैं । उससे प्रभावित होकर अगणित जागृत आत्माएँ कंधे से कंधे मिलाकर अपने-अपने ढंग से उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हैं ।

हर अवतार का यही तात्त्विक स्वरूप है । अगली लाइन में खड़े व्यक्ति का फोटो कैमरे में अधिक साफ आता है । इतने पर भी महत्व और अस्तित्व उस ग्रुप के समस्त सदस्यों का होता है । अवतारों के नाम से प्रख्यात व्यक्तियों को अगली लाइन में खड़े विशेष नेतृत्व भर करने वाले श्रेयाधिकारी कहा जा सकता है । तत्त्वतः अवतार तो सूक्ष्म जगत में कोलाहल मचाने वाली युग चेतना को ही समझा जा सकता है । नौ अवतरण पूरे हुए । दशवाँ अपने समय का अवतार युग शक्ति गायत्री का है । अन्धकार युग का निराकरण और उज्ज्वल भविष्य का शुभारम्भ इसी दिव्य भावना के साथ प्रादुर्भूत होता हुआ हम सब अपने इन्हीं चर्म चक्षुओं से प्रत्यक्ष देख रहे हैं ।

## नवयुग का आगमन और प्रज्ञावतार

निकट भविष्य में ऐसे स्वर्णिम युग की सम्भावना सुनिश्चित है जिसमें मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्गीय वातावरण प्रत्यक्ष देखा जा सकेगा । सृष्टा ने अपने इस विश्व उद्यान को बड़े अरमानों के साथ अपनी सारी कलाकारिता को दाव पर लगाकर सृजा है । वह उसे सहज ही नष्ट नहीं होने दे सकता । पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ ढलान की ओर लुढ़कने वाले पानी की तरह हैं, वे अपने साथ-साथ लोक मानस को भी निकृष्टता के गर्त में गिरने के लिए घसीटती चली जाती हैं और विनाश की विभीषिकायें सामने आ खड़ी होती हैं । इतने पर भी सृष्टा की सजगता बनी ही रहती है और वह अपने प्रबल प्रयत्न से असन्तुलन को सन्तुलन में बदल ही देता है । अबतरण प्रक्रिया इसी को कहते हैं । बढ़े हुए अधर्म का निराकरण और घटे हुए धर्म का अभिवर्धन—यही होता है अवतारों का उद्देश्य । अवतारी शक्तियाँ विकृतियों से जूझती और सत्प्रवृत्तियों को उछालती हुई अपनी जीवन लीला का परिचय देती हैं ।

इन दिनों विनाश की विभीषिकायें काली घटाओं की तरह पूरे आकाश में छाई हुई हैं । आश्चर्य यह है कि साधनों का बाहुल्य होते हुए भी यह सब हो रहा है । विकृतियों के गगनचुम्बी होने के समय आये तो इतिहास में पहले भी हैं पर वे इतने भयानक नहीं हो सके जितने इन दिनों हैं । भूतकाल में असुरों के अत्याचार आक्रमण-परक होते थे । भौतिक साधनों से वे प्रहार करते थे, फलतः अवतार उन्हें उसी स्तर की शक्ति से मरोड़कर रख देते थे । रावण, कंस, हिरण्यकश्यपु, महिषासुर, वृत्रासुर आदि के आक्रमण, अत्याचारों को अवतारों ने अस्त्र-शस्त्र से ही निरस्त किया था । दूसरे प्रकार की विनाश विभीषिकायें अभावों के रूप में सामने आती रहीं हैं । अन्न, जल आदि साधनों के अभाव में नीति और धर्म को तिलांजिल देने वाले लोगों की गतिविधियों को देखकर "विभुक्षितः किन्न करोति पापं" की उक्ति याद आ जाती है । भूखी सर्पिणी अपने ही अण्डे-बच्चों को निगलती देखी गई है । मनुष्य की अधःपतित मनःस्थिति भी ऐसे ही कुकृत्य करती और अपने ही पाप में आप जलती देखी जाती है । ऐसे अवसरों पर अवतारों का क्रियाकलाप अभावों को दूर करने और समृद्धि के स्रोत संचार करने का होता है । भगवती दुर्गा तो असुर निकंदनी कहलाती है, पर सरस्वती और लक्ष्मी तो समृद्धि ही बरसाती हैं । गंगावतरण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । अभाव को दूर करने की प्रक्रिया भी अन्य का ध्वंस करने के समतुल्य है । अवतार सत्ता का यह महत्वूर्ण कार्य रहा है । भारतीय धर्म में दस एवं चौबीस अवतारों की गणना है । संसार भर में उनकी संख्या और भी अधिक है । इनमें से अधिकांश का कार्य अन्याय और अभावों को दूर करने और शान्ति की सुखद सम्भावना उत्पन्न करना ही रहा है ।

अपने युग की परिस्थितियाँ अपने ढंग की अनौखी हैं। इनमें न तो कंस और रावण की तरह आक्रमण उत्पीड़न है और न दुर्भिक्ष, दुर्घटना जैसा कोई दैवी संकट। फिर भी स्थिति की विपन्नता ऐतिहासिक महा संकटों की तुलना में कहीं अधिक भयानक है । विपत्ति का नया स्वरूप है आस्था संकट । मानवी अन्तराल में ऐसी मान्यताओं ने जड़ जमा ली है, जिन्हें आदर्शों के प्रति अनास्था कह सकते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता पर आधारित विलासी अहम्मन्यता ही आज जन-जन की आराध्य बन गई है । लोभ और मोह की ललक दावानल की तरह बढ़ रही है और अपनी लपटों में उस सबको लपेट रही है जिसे मानवी गरिमा के रूप में देखा और जाना जाता रहा है ।

निश्चित ही अपने युग का महादैत्य "आस्था-संकट" है । वह जन-मानस की गहरी परतों तक प्रवेश पाने में सफल हो गया है । इतनी गहराई तक भौतिक उपाय उपचारों का प्रवेश नहीं हो सकता । दलदल में फँसे हाथी को चतुर हाथी ही अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे बाहर

निकाल पाते हैं । अनास्था के निराकरण में भावश्रद्धा की प्रखरता ही समर्थ हो सकती है । इसीलिए इस बार युग अवतार ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में हो रहा है । गायत्री महाशक्ति का अवतरण ही अपने युग के आस्था संकट को दूर करने का एकमात्र आधार हो सकता था । वही हो भी रहा है ।

अब से २५०० वर्ष पूर्व प्रज्ञा अवतरण का एक खण्ड धर्म-चक्र प्रवर्तक के रूप में अपनी इसी अवतारों की क्रीड़ा भूमि में प्रादुर्भूत हुआ था । उसने "बुद्ध शरणं गच्छामि" का उद्घोष किया था । जनमानस को बुद्धि की शरण में जाने की प्रज्ञा का अवलम्बन ग्रहण करने की प्रेरणा दी थी । मूढ़ताओं और दुष्टताओं को उसने एक साथ ललकारा था । विगत का निकटतम अवतार 'बुद्ध' को माना जाता है । उसने अपने समय की आवश्यकता साधनों के अनुरूप एक विशाल क्षेत्र में पूरी की थी । समूचा एशिया महाद्वीप उस आलोक से अनुप्राणित हुआ था । प्रायः ढाई लाख नर-नारियों ने तत्कालीन अवतार प्रक्रिया का सहयोग करने के लिए अपने भावभरे अनुदान प्रस्तुत किये थे । जीवनदानी—चीवरधारी भिक्षुगण भारतभूमि के कोने-कोने में फैले और सुदूर देशों में अनेकानेक असुविधाओं का सामना करते हुए चले गये थे । 'धम्मं शरणं गच्छामि' का मार्गदर्शन उस सृजन सेना ने घर-घर पहुँचाया और जन-जन को पुण्य प्रयोजन का सहभागी बनने के लिए सहमत किया । वह एक बड़ी क्रान्ति थी । शताब्दियों का छाया, कुहासा उसने धोकर साफ किया था । बौद्धिक क्रान्ति के देवता—भगवान बुद्ध को भाव परिष्कार के क्षेत्र में अधिक स्पष्टतापूर्वक देखा जाता है । यों तो सप्त ऋषियों से लेकर अन्यान्य महामानव भी इसी दिशा में बहुत कुछ करते ही रहे हैं ।

बहुधा किसी भयंकर क्षत-विक्षत घायल के लिए जब कई बड़े आपरेशन आवश्यक होते हैं तो कुशल चिकित्सक उस कार्य को एक बार ही निपटा देने की उतावली नहीं करते । बीच-बीच में विराम देकर आपरेशनों की श्रृंखला चलाते हैं । यों आमतौर से तो साधारण घायलों की जोड़-गाँठ एक बार में ही कर दी जाती है, पर अनेक अवयव क्षत-विक्षत हो गये हों तो खण्ड उपचार का सहारा लेने से ही रोगी की प्राण-रक्षा शक्य दीखती है, अन्यथा घायल की सहनशक्ति जवाब दे सकती है और चिकित्सक का एक बार ही सब कुछ कर देने का निर्णय हानिकार सिद्ध हो सकता है । इसलिए 'एक साथ पूरा के स्थान पर थोड़ा-थोड़ा कई बार में, की नीति भी कई बार अधिक उपयोगी समझी जाती है । जन-मानस में गहराई तक घुस पड़ी विकृतियों के निष्कासन के सम्बन्ध में भी महाकाल ने यही नीति अपनायी प्रतीत होती है । प्रथम चरण में बौद्धिक क्रान्ति बुद्ध के नेतृत्व में हुई । अब क्रान्ति—ज्ञान यज्ञ की लाल मशाल के रूप में सम्पादित हो रही है ।

पिछले अन्धकार युग में नैतिक, बौद्धिक, और सामाजिक स्तर की जो भ्रष्टतायें चलती रही हैं उनसे सूक्ष्म जगत का सारा वातावरण अनाचारी प्रदूषण से भर गया है। रेडियो विकरण की तरह इसी का भयावह प्रभाव प्राणियों, पदार्थों—विशेष कर मनुष्यों को प्रभावित कर रहा है । दुष्टता के तत्त्व इन सब को महामारी के विषाणुओं की तरह प्रभावित करते हैं । वातावरण में सर्दी, गर्मी भरी होती है तो उसका प्रभाव सर्वत्र दीखता है । वायु मंडल में बीमारियाँ भर जाती हैं तो भले चंगे आदमी भी रोग-शैय्या पर गिरते और मौत के चंगुल में अनायास ही जा फँसते हैं । बसन्त और वर्षा का प्रभाव वनस्पतियों से लेकर प्राणियों तक की मनःस्थिति पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है । इस परोक्ष वातावरण के अनुरूप ही युगों का नामकरण किया जाता है । युग परिवर्तन का आध्यात्मिक स्वरूप सूक्ष्म जगत में संव्याप्त वातावरण को परिष्कृत करना ही समझा जाना चाहिए । विकृतियाँ जिस क्षेत्र में घुसी हुई हैं सुधार परिवर्तन का लक्ष्य भी उसी में उथल-पुथल एवं सुधार करना हो सकता है । यह कार्य भौतिक उपचारों से नहीं वरन् आत्म शक्ति के प्रचंड प्रयोग से सम्भव है ।

इस समय की परिस्थितियों पर विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि स्थिति बड़ी ही विचित्र और विलक्षण है। भ्रष्ट चिन्तन के कारण उत्पन्न हुए बुद्धिभ्रम ने लोगों के मस्तिष्क को उन्मादी और सनकी जैसा बना दिया है । खीझ और तनाव के कारण लोग पूरे दिन तनावग्रस्त, बेचैन दिखायी देते हैं । इसके अतिरिक्त स्नेह, सौहार्द्र, विश्वास, सहयोग जैसे सद्भाव इसी आग में जलते और जलते चले आ रहे हैं । अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की जो गरिमा बतायी गयी है वह भौतिक साधनों की दृष्टि से भले ही दृष्टिगोचर होती है, परन्तु मन, परिवार, समाज के क्षेत्रों में तो उसकी समाप्ति ही होती जाती है और लगता है कि प्राणियों को सौम्य सरल जीवन का जो आनन्द मिलता है मनुष्य उसे गँवा बैठेगा ।

यही हाल सामाजिक कुरीतियों, राजनैतिक-दुरभिसन्धियों, अन्धपरम्पराओं तथा पारस्परिक व्यवहार में छद्म धूर्तताओं का है । इस तरह की प्रकृर्त्तियाँ जिस तेजी से बढ़ रही हैं उन्हें देखते हुए लगता है कि सहजीवन के आधार नष्ट होते जा रहे हैं और मत्स्य न्याय का—जंगली कानून का बोल बाला होने जा रहा है । बढ़ते हुए अनाचार ने व्यक्तिगत जीवन में सामाजिक-राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में इतनी समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं, जिनके हल मिल नहीं रहे हैं । अणु आयुधों ने इस सुन्दर पृथ्वी का अस्तित्व ही समाप्त करने की तैयारी कर रखी है । द्रुत गति से बढ़ती हुई जनसंख्या महा विनाश की पूर्व सूचना है । रोकथाम के सारे प्रयत्नों को झुठलाती हुई अपराधों की बाढ़ आ रही है और एक से एक घिनौने क्रूर कर्म देखने-सुनने को मिल रहे हैं । सब मिलाकर स्थिति का पर्यवेक्षण किया जाता है तो लगता है कि बाहर से टिपटॉप दीखते हुए भी मानवता की काया क्षय और केन्सर पीड़ित रोगी की तरह मरणासन्न स्थिति की ओर तेजी से बढ़ रही है ।

इन परिस्थितियों को मनुष्यकृत सामान्य प्रयत्न कदाचित ही संभाल सकते हैं । प्रगति के लिए प्रयत्नशील नेतृत्व ने हर मोर्चे पर असफलता अनुभव की है और निराशा व्यक्त की है । ऐसे असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने का महान कार्य सृष्टा की सूक्ष्म चेतना और दिव्य प्रेरणा ही सम्पन्न कर सकती है । यही कार्य इन दिनों हो रहा है । समय की आवश्यकता के अनुरूप महाकाल की प्रचण्ड हलचलें, युग अवतार का उद्देश्य पूरा करने के लिए क्रमशः अधिकाधिक प्रखर होती चली जा रही हैं ।

## युग शक्ति गायत्री का अभिनव अवतरण

नवयुग में मानव समाज की आस्थायें किस स्तर की हों, किन मान्यताओं से अनुप्राणित हों, इसका निर्णय निर्धारण किया जाना चाहिए । मात्र विचार क्षेत्र की अवांछनीयताओं को हटा देना ही पर्याप्त न होगा । मूढ़ मान्यताओं को हटा देने पर जो रिक्तता उत्पन्न होगी उसकी पूर्ति परिष्कृत अवस्थाओं को ही करनी होगी । स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका, सुरक्षा जैसी सुविधायें आवश्यक तो हैं और उनके उपार्जन अभिवर्धन में किसी को कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती, किन्तु इन साधनों तक ही सीमित रह कर किसी समस्या का समाधान नहीं होता, उनका उपयोग करने वाली चेतना का परिष्कृत होना आवश्यक है, अन्यथा बढ़े हुए सुविधा साधन दुष्ट बुद्धि के हाथ में पड़कर नयी समस्यायें और नयी विपत्तियाँ उत्पन्न करेंगे । दुष्ट जब शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ होता है तो क्रूर कर्मों पर उतारू होता है और आततायी जैसा भयंकर बनता है । चतुर और बुद्धिमान होने पर ठगने, सताने के कुचक्र रचता है । धनी होने पर व्यसन और अहंकार के संरजाम जुटाता है और अपने तथा दूसरों के लिए क्लेश-विद्वेष के सरंजाम खड़े करता है । अन्यान्य कला-कौशल गिराने और लुभाने के लिए प्रयुक्त होते हैं । सुरक्षा सामग्री का उपयोग दुर्बलों के उत्पीड़न में होता है ।

अपने युग की सबसे बड़ी विडम्बना एक ही है कि साधन तो बढ़ते गये किन्तु उनका उपयोग करने वाली अन्तःचेतना का स्तर ऊँचा उठाने के स्थान पर उल्टा गिरता चला गया । फलतः बढ़ी हुई समृद्धि उत्थान के लिए प्रयुक्त न हो सकी । आन्तरिक भ्रष्टता ने दुष्टता की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कीं और उनके फलस्वरूप विपत्तियों की सर्वनाशी घटायें घिर आयीं । समृद्धि के साथ शालीनता का गुथा रहना आवश्यक है, अन्यथा प्रगति के नाम पर किया गया श्रम दुर्गति की विभीषिकायें ही उत्पन्न करता चला जायेगा ।

व्यक्तित्व की उत्कृष्टता ही मनुष्य की सबसे बड़ी सफलता और सम्पन्नता है, उसी के आधार पर मनुष्य सुसंस्कृत बनता है । आत्म-सन्तोष, श्रद्धा सम्मान, जन सहयोग एवं दैवी अनुग्रह प्राप्त कर सकने में सफल होता है । यही वह तत्त्व है जिसके सहारे भौतिक जीवन में बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियाँ करतलगत होती हैं । साधनों का सही उपार्जन और सही उपयोग भी उसी आधार पर बन पड़ता है । इसके अभाव में इन्द्र और कुबेर जैसे सुविधा साधन होते हुए भी मनुष्य खिन्न और विपन्न ही बना रहेगा । स्वयं उद्विग्न रहेगा-दुख सहेगा और समीपवर्ती लोगों के लिए संकट एवं विक्षोभ उत्पन्न करता रहेगा ।

अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता व्यक्तित्त्वों की अन्तः भूमिका को अधिक सुसंस्कृत और समुन्नत बनाने की है । यह कार्य समृद्धि संवर्धन से अधिक महत्त्वपूर्ण है । उसकी उपेक्षा की जाती रहेगी तो तथाकथित शीलता पिछड़ेपन से भी अधिक महँगी पड़ेगी। नव युग की सुखद परिस्थितियों की संभावना का मात्र आधार यही है कि व्यक्ति का अन्तराल उत्कृष्ट

बनेगा। दृष्टिकोण में उदारता और चरित्र में शालीनता का समावेश होगा तो निश्चित रूप से वैयक्तिक जीवन क्रम में देवत्व उभरेगा । ऐसे देव मानवों की सामूहिक गतिविधियाँ स्वर्गोपम परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं । मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ण के अवतरण का उपहार लेकर आने वाले नवयुग का सारा ढाँचा ही इस आधार शिला पर खड़ा हुआ है कि व्यक्ति का अन्तराल परिष्कृत होना चाहिए । उसे विवेक चरित्र और व्यवहार की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट होना चाहिए । विकास की सर्वतोमुखी आवश्यकताओं की पूर्ति इसी आधार पर सम्भव है ।

प्रश्न यह उठता है कि अन्तराल का स्पर्श किस उपकरण से किया जाय । उसे सुधारने के लिए क्या उपाय काम में लाया जाय । इस दिशा में अब तक दण्ड का भय, पुरष्कार का प्रलोभन और सज्जनता का प्रशिक्षण यह तीन ही उपाय काम में लाये जाते हैं । किन्तु देखा गया है कि इन तीनों की पहुँच बहुत उथली है उनसे शरीर और मस्तिष्क पर ही थोड़ा सा प्रभाव पड़ता है । वह भी इतना उथला होता है कि अन्तराल में जमी आस्थाओं का स्तर यदि निकृष्टता का अभ्यस्त और कुसंस्कारी बन चुका है तो इन ऊपरी उपचारों का व्यक्तित्व का स्तर बदलने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती । पुलिस, जेल, कठोरता, सम्पन्न कानूनों की कमी नहीं । प्रतिरोध और दण्ड व्यवस्था के लिए भी खर्चीला तन्त्र मौजूद है पर देखा जाता है कि मनुष्य की चतुरता इस पकड़ से बच जाने के अनेकों तरीके निकाल लेती है । सज्जनता के पुरष्कार पाने में देर लगती है और मात्रा भी थोड़ी होती है। धूर्तता सोचती है कि उससे तो कहीं अधिक कमाई छद्म उपायों के सहारे की जा सकती है । इसी प्रकार नीतिमत्ता के पक्ष में किया गया प्रशिक्षण भी एक प्रकार से बेकार ही चला जाता है । देखा यह गया है कि अनीति अपनाने वाले भी नीति के सिद्धान्तों का जोर-शोर से समर्थन करते हैं । करनी कुछ भी हो कथनी में अनाचारों की भर्त्सना और आदर्शों की प्रशंसा ही करते पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि नीति के पथ में उनका मस्तिष्क पहले से ही प्रशिक्षित है । पढ़े को क्या पढ़ाया जाय ? जागते को क्या जगाया जाय ? शरीर पर लगाये गये बन्धन, मन को दी गई सिखावन अन्य प्रयोजनों में भले ही सफल हो सकें, अन्तराल को उत्कृष्टता की दिशा में ले जाने का उद्देश्य बहुत ही सीमित मात्रा में पूरा कर पाते हैं।

मानवी सत्ता का एक अत्यन्त गुप्त और अत्यन्त प्रकट रहस्य यह है कि व्यक्तित्व की जड़ें आस्थाओं के अन्तराल में रहती हैं । कोई क्या है, इसे जानने के लिए उसका शरीर मन और वैभव देखने से कुछ भी काम नहीं चलेगा । स्थिति और सामर्थ्य का मूल्यांकन उसके अन्तराल का स्तर जानने के उपरान्त ही हो सकता है । समूची सामर्थ्य उसी केन्द्र में छिपी पड़ी है । आस्था के अनुरूप आकाँक्षा उठती है । आकाँक्षा की पूर्ति में मस्तिष्क कुशल वकील की तरह बिना उचित अनुचित की जाँच पड़ताल किये पूरी तत्परता के साथ लग जाता है । मन का गुलाम शरीर है । शरीर वफादार नौकर की तरह अपने मालिक मन की आज्ञा का पालन करने में लगा रहता है । यन्त्र अपने चालक का आज्ञानुवर्ती होता है । शरीर की समस्त हलचलें मन के निर्देश का अनुगमन करती हैं । मन आकाँक्षाओं से प्रेरित होता है और आकाँक्षायें आस्थाओं के अनुरूप ही उठती हैं । तथ्यत: आस्थाओं का केन्द्र अन्त:करण ही मानवी सत्ता का सर्वस्व है ।

आस्थाओं का मर्मस्थल अत्यन्त गहरा है । उतनी गहराई तक राजकीय कानून, सामाजिक नियम, तर्क प्रशिक्षण जैसे उपचार यत्किंचित ही पहुँच पाते हैं । आस्थाओं की प्रबल प्रेरणा इन सब आवरणों को तोड़कर रख देती है । ऐसा न होता तो धर्मोपदेशक, धर्म विरोधी आचरण क्यों करते ? लोक सेवा का वरण ओढ़े सत्ताधारी क्यों लोक रहित की गतिविधियों में छद्म रूप से निरत रहते । शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए नियुक्त अधिकारी क्यों गुप्त रूप से अपराधी तत्वों के साथ साँठ-गाँठ रखते । स्पष्ट है कि सारे नियम प्रतिबन्ध, तर्क और आदर्श एक कोने पर रखे जाते हैं और आस्थाओं में घुसी निकृष्टता अपनी विजय दुदुम्भी बजाती रहती है ।

आज की युग विपन्नता के मूल में आस्थाओं का दुर्भिक्ष ही एक मात्र कारण है । इस संकट को कैसे दूर किया जाय जबकि प्रभावशाली समझे जाने वाले उपचार भी उस गहराई तक पहुँचने और आवश्यक परिवर्तन प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते हैं ।

उत्तर एक ही है आस्थाओं के सहारे आस्थाओं का उपचार किया जाय । जंगली हाथी को पालतू हाथी पकड़ कर लाते हैं । काँटे से काँटा निकालते हैं और होम्योपैथी प्रतिपादन के अनुसार विष ही विष की औषधि है ।

उत्कृष्ट आस्थाओं की स्थापना से ही निकृष्ट आस्थाओं का निराकरण होता है । लाठी का जवाब लाठी और घूँसे का जवाब घूँसा वाली उक्ति सर्व विदित है । लोहे को लोहा काटता है । गड्ढे में गिरे हुए को गड्ढे में उतर कर ही निकालना पड़ता है । आस्थाओं में घुसी हुई निकृष्टता का निराकरण उस क्षेत्र में उत्कृष्टता की मान्यतायें स्थापित करने से ही सम्भव है । व्यक्ति को परिष्कृत करने का प्रमुख उपाय यही है ।

उपासना और साधना का उद्देश्य अन्तः क्षेत्र में उच्चस्तरीय श्रद्धा का आरोपण, परिपोषण एवं अभिवर्धन करना है । शरीर से शरीर लड़ते हैं, विचारों से विचार जूझते हैं और आस्थाओं में आस्थायें ही परिवर्तन एवं परिष्कार उत्पन्न करती हैं ।

गायत्री में सन्निहित ब्रह्मविद्या का तत्वज्ञान अन्तःकरण को प्रभावित करके उसमें सत्श्रद्धा का अभिवर्धन करता है । स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन जैसी भाव संवेदनाओं को छू सकने वाला प्रशिक्षण ही अन्तरात्मा को बदलने एवं सुधारने में समर्थ हो सकता है। जीव का ब्रह्म से, आत्मा का परमात्मा से, क्षुद्रता का महानता से, संयोग करा देना ही योग है । योग का तात्पर्य है—सामान्य को असामान्य से, व्यवहार को आदर्श से जोड़ देना । उस उपचार से आस्थाओं के परिष्कार की आवश्यकता भली प्रकार पूरी हो सकती है । युग परिवर्तन चक्र इसी धुरी पर तेजी से घूम रहा है ।

इस परिवर्तन चक्र से जन-जन को अवगत कराया जाना चाहिए और युग शक्ति गायत्री का परिचय, प्रभाव एवं प्रवेश जनमानस के अंतराल तक पहुँचाने के लिए प्रबल प्रयास किये जाने चाहिए । इसके लिए जो भी मानवी पुरुषार्थ किये जायेंगे, उनके पीछे महाकाल की प्रचंड-सामर्थ्य सहयोग और शक्ति की आधारभूत भूमिका निभायेगी । वस्तुतः इस तरह के प्रयासों का स्वरूप भले ही मानवी दिखायी दे, पर वह 'महाकाल' की प्रबल प्रेरणाओं का ही अभिनय होगा जिसके पीछे कठपुतली के खेल में बाजीगर की उंगलियाँ ही परोक्ष रूप से काम करती हैं ।

युग परिवर्तन के लिए प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया को त्रिविध कहा जा सकता है । उसके तीन पक्ष हैं, पहला—तत्वज्ञान, दूसरा—प्रयोग विधान और तीसरा देवत्व का अभ्युत्थान । युग परिवर्तन के संदर्भ में त्रिपदा गायत्री के तीन चरणों का यही त्रिविध कार्यक्रम है ।

"तत्त्वज्ञान" का तात्पर्य है—आत्मशक्ति की विस्मृति और विलुप्त गरिमा से जन-साधारण को परिचित कराना। भौतिक साधनों की तुलना में उसकी विशिष्टता तर्क, प्रमाण और अनुभव के आधार पर स्वीकृत कराना । समस्त समस्याओं का एकमात्र हल और उज्ज्वल भविष्य का प्रधान आधार आत्म-परिष्कार को समझ जाना चाहिए।

"प्रयोग विधान" का अर्थ है गायत्री महाशक्ति के सहारे व्यक्ति के अन्तराल में नव जागृति एवं जीवन्त स्फुरणा का विकसित होना । इसके लिए योगाभ्यास और तप, साधना के छोटे-बड़े साधना-विधानों का अपनाया जाना । नित्य कर्म की साधारण उपासना से लेकर कुण्डलिनी जागरण और पंच कोशों के अनावरण प्रयोग इसी गणना में आते हैं । भौतिक सिद्धियों और आत्मिक ऋद्धियों का क्षेत्र इन्हीं अभ्यासों में सन्निहित है ।

"देवत्व का अभ्युत्थान" युग परिवर्तन की विधि व्यवस्था एवं नवयुग की आचार संहिता का निर्धारण समझा जा सकता है । व्यक्ति की आस्थायें और गतिविधियाँ—समाज की परम्परायें और व्यवस्थायें क्या होंगी ? वर्तमान और भविष्य में क्या अन्तर होगा । इसकी जानकारी एवं तैयारी इसी क्षेत्र में आती है ।

गंगा का अवतरण हिमालय पर हुआ था और उसका विकास विस्तार आर्यावर्त से लेकर गंगा सागर तक हुआ है । गायत्री का अवतरण जन-मानस में होगा । आत्म-साधना हर व्यक्ति को सर्व-प्रमुख और सर्व-सुखद कृत्य प्रतीत होगा । इस मार्ग पर चलने वालों का भीतरी और बाहरी स्वरूप ऐसा बन जायगा, जिसे मनुष्य में देवत्व का उदय कहा जा सकेगा । परिष्कृत व्यक्तियों की सामूहिक गतिविधयों में शालीनता का अधिकाधिक समावेश होगा तो परिस्थितियाँ सहज ही ऐसी बनती चली जायेंगी, जिन्हें धरती पर स्वर्ग के अवतरण की संज्ञा दी जा सके ।

गायत्री मन्त्र यों संस्कृत भाषा का-हिन्दू धर्म में प्रचलित वेद मन्त्र है और इस समुदाय में दैनिक उपासना से लेकर आत्मोत्कर्ष की विशेष साधना तपश्चर्याओं के काम आता है । यह उसका छोटा-सा प्रयोगात्मक परिचय है । वस्तुतः गायत्री आध्यात्म विद्या की त्रिवेणी है, जिसमें प्रकृति के सत, रज-तम, जीव के सत्यं शिवं सुन्दरम् और ब्रह्म के सत चित् आनन्द गुणों की दिव्य धारायें गुथी हुई हैं । उसका तत्त्वज्ञान सार्वभौम है । उसके प्रयोग

सर्वजनीन हैं, उसका आलोक स्वर्गीय-सम्भावनाओं से भरा पूरा है । मार्ग दर्शन में समूची मनुष्य जाति अपने स्वरूप और भाग्य का नया निर्माण करेगी । भाषा, धर्म, देश आदि की समस्त परिधियों को निरस्त करती हुई युग शक्ति गायत्री प्रस्तुत विभीषिकाओं के निवारण में गंगावतरण द्वारा सगर सुतों के पुनरुद्धार जैसी भूमिका सम्पादित करेगी । इस सुनिश्चित तथ्य को हम सब इन्हीं आँखों से देख सकने में समर्थ होंगे ।

युग अवतरण काल की हलचलों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जागृत आत्माओं की उस ईश्वरीय पुण्य प्रयोजन में विशेष भूमिका रही है । युग प्रवाह तो सूक्ष्म होता है । उस आलोक द्वारा अन्तःकरण प्रभावित किये जाते हैं और उमंगें उत्पन्न की जाती हैं । महाकाल की भूमिका उस अवसर पर इतनी ही होती है । उस प्रेरणा को क्रियान्वित करना उनका काम रहता है, जिन्हें जीवित, जागृत, विशिष्ट, महामानव स्तर के कहा जाता है। आदर्शों के लिए बढ़-चढ़ कर त्याग, बलिदान करने वाले महामानव ही देव मानव कहलाते हैं । उन्हीं का दुस्साहस सामान्य जन समुदाय में अनुगमन का उत्साह उत्पन्न करता है । अग्र गमन ही कठिन पड़ता है पीछे चलने वालों का समूह तो साहसिक लोगों को उपलब्ध हो ही जाता है ।

पुराणों में वर्णित अवतार गाथाओं में से प्रायः प्रत्येक के साथ यह प्रसंग जुड़ा हुआ है कि धर्म सन्तुलन बनाने के लिए जब भगवान धरती पर आये तो उनके साथ देव मंडली भी उस महा अभियान में हाथ बटाने के लिए साथ-साथ आयी । देवताओं ने पाण्डवों, रीछ-वानरों आदि के रूप में जन्म लिया और साहसिक धर्म सहयोग का उदाहरण उपस्थित करते हुए जन-मानस का प्रवाह मोड़ा । आज भी ऐसे देव मानवों की—जागृत आत्माओं की—कमी नहीं जो युग अवतरण की इस पुण्य बेला में अपनी भूमिका निभाकर युगगाथा की परम्परा में अपने सहयोग का अध्याय जोड़ेंगे । परिवर्तन की प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए यह उचित भी है और आवश्यक भी ।

## युग परिवर्तन के उपयुक्त वातावरण बनाना होगा

एकाकी प्रयत्न और पुरुषार्थ का भी महत्व है और उसे सम्मानित, प्रोत्साहित किया ही जाना चाहिए । कई बार तो एकाकी प्रयत्न भी इतने प्रचण्ड होते हैं कि वे भी न केवल व्यष्टि सत्ता को वरन् समष्टि सत्ता तक को प्रभावित करने और उलटने तक में बहुत हद तक सफल हो जाते हैं। यों ऐसा यदा-कदा ही अपवाद रूप में होता है पर इससे यह तो पता चलता ही है कि ईश्वर का अंश राजकुमार अपने पिता की समस्त विभूतियाँ साथ लेकर आता है और यदि वह चाहे तो अपनी प्रसुप्ति को जागृति में बदल कर प्रखरता को अपनाकर समष्टि क्षेत्र में भी इतना कुछ कर सकता है जिसे चमत्कारी कहा जा सके । तेजस्वी, मनस्वी, तपस्वी स्तर के व्यक्ति ऐसा ही कुछ कर गुजरते हैं । ऐसी प्रतिभायें महामानवों के रूप में प्रतिष्ठा पाती हैं और अपने असाधारण कर्तृत्व से सामयिक समस्याओं का समाधान करती हैं । अवतारी आत्मायें इसी स्तर की होती हैं । युग नेतृत्व कर सकने की विलक्षणता ही उन्हें भगवान स्तर का श्रेय सम्मान प्रदान करती है । यह व्यक्ति के चरम उत्कर्ष का उल्लेख होगा।

इतने पर भी वातावरण की महत्ता अपने स्थान पर यथावत् ही बनी रहती है । उसके प्रभाव की प्रचण्डता पग-पग पर परिलक्षित होती रहती है और आवश्यकता यह भी बनी रहती है कि किसी प्रकार समूचे वातावरण का अनुकूलन सम्भव बनाया जाय । इसके लिए सुनिश्चित उपचार, सामूहिक साधना को ही जाना और माना जाता रहा है। इन दिनों इन प्रयत्नों को युग शक्ति के उदय उद्‌भव का उद्देश्य पूरा करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है ।

वातावरण का प्रभाव मनुष्यों की आकृति एवं प्रकृति में पाये जाने वाले अन्तर को देखकर जाना जाता है । काले, पीले, सफेद और लाल रंगों की चमड़ी में वातावरण का प्रभाव ही मुख्य है । यह विशेषताएँ रक्तगत मानी जाती हैं, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि चमड़ी को प्रभावित करने वाली रक्तगत विशेषता अन्ततः विभिन्न देशों और क्षेत्रों में पायी जाने वाली जलवायु की भिन्नता से ही सम्बन्धित है । मनुष्यों के छोटे-बड़े आकार देश और क्षेत्रों के हिसाब से होते हैं । पंजाबी और वंगाली के बीच शरीरों की सुदृढ़ता में जो कमी-वेशी रहती है उसमें वातावरण के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । रूस के उजबेकिस्तान प्रान्त में अधिकांश व्यक्ति शतायुष होते हैं । उनके आहार-विहार में, सुविधा-साधनों में कोई खास विशेषता नहीं होती । अन्यत्र रहने वालों की तरह वे भी मोटा-झोटा खाते और औसत जिन्दगी जीते हैं । फिर सारे क्षेत्र में दीर्घायु की परम्परा किस कारण चली आ रही

है ? इसका उत्तर वातावरण की विशेषता को समझने से ही मिल सकता है ।

न केवल शरीरों में वरन् स्वभावों में भी विशेष अन्तर देखा जाता है । यह सूक्ष्म या स्थूल वातावरण का ही प्रभाव है । संस्कृति, सभ्यता आदि की भिन्नतायें इसी आधार पर विभाजित होती हैं कि किस क्षेत्र के लोगों की मान्यता, अभिरुचि एवं आदत किस ढाँचे में ढल गयी है और उन लोगों की विचारणा एवं गतिविधि किस दिशा में प्रवाहित हो रही है । यह प्रवाह सहज ही बदलते भी नहीं, इसलिए उन्हें संस्कृति की भिन्नता के रूप में मान्यता दे दी जाती है और उसका परिपोषण भी होता है । यह विशेषतायें न केवल स्वभावों में वरन् चरित्रों और आदर्शों में भी छलकती दीख पड़ती हैं ।

पशुओं, वनस्पतियों और खनिज पदार्थों तक में वातावरण की भिन्नता के आधार पर उनके स्तर का परिचय मिलता है । एक देश के पशुओं का दूसरे देश वालों की तुलना में न केवल आकृति में अन्तर पड़ जाता है वरन् उनकी श्रम शक्ति, दूध देने आदि की क्षमताओं में भी अन्तर होता है । भेड़ों की ऊन में पायी जाने वाली भिन्नताएँ उन क्षेत्रों के वातावरण से सम्बन्धित होती हैं । पहाड़ी कुत्ते और देशी कुत्तों में काफी प्रकृति भिन्नता आ जाती है । ऋतु प्रभाव सहन करने की क्षमता भी उस क्षेत्र पर छायी रहने वाली सूक्ष्म विशेषताओं से ही सम्बन्धित होती है । सर्दी वाले इलाकों में जन्मे प्राणी सर्दी की और गर्म देशों के निवासी गर्मी की अधिकता को भी शान्तिपूर्वक सहन कर लेते हैं, जबकि भिन्न परिस्थितियों में जन्म लेने वालों के लिए परिवर्तन के साथ तालमेल बिठाना कठिन पड़ता है । तेज वाहनों पर सफर करने वाले अक्सर स्वास्थ में गड़बड़ी पड़ने की शिकायत करते रहते हैं । इसका कारण वातावरण में परिवर्तन की तीव्रता का शरीर की सहन-शक्ति के साथ ठीक तरह तालमेल न बैठ सकना ही होता है ।

जड़ी-बूटियाँ, घास-वनस्पतियाँ फल-फूल आदि के आकार, गन्ध, स्वाद आदि में अन्तर पाया जाता है । विभिन्न क्षेत्र में उत्पन्न हुई औषधियों का नाम रूप एक होने पर भी उनके रसायनों और गुणों में असाधारण अन्तर दीख पड़ता है । पक्षियों से लेकर कीड़े-मकोड़ों तक की आकृति-प्रकृति में अन्तर देखा गया है । साँप, बिच्छू, छिपकली, मकड़ी आदि के विषों में पाया जाने वाला अन्तर यों दीखना तो जातिगत है पर वे जातिगत विशेषताएँ भी मूलतया वातावरण की ही प्रतिक्रिया होती हैं ।

अनेक देशों की परिस्थितियाँ, प्रथाएँ और मान्यताएँ, रुचियाँ और संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । उनमें जो बालक उत्पन्न होते हैं, वे वातावरण के प्रभाव से उसी प्रकार की मनोवृत्ति और प्रकृति अपनाते चले जाते हैं। उनके चिन्तन, स्वभाव और क्रिया-कलाप लगभग वैसे ही होते हैं जैसे कि उस प्रदेश में रहने वाले लोगों के। बहुमत का दबाव पड़ता है तो अल्पमत अनायास ही बहुतों का अनुकरण करने लगता है । समय का प्रभाव, युग का प्रवाह इसी को कहते हैं । सर्दी गर्मी का मौसम बदलने पर प्राणियों के, वनस्पतियों के तथा पदार्थों के रंग-ढंग ही बदल जाते हैं । गतिविधियों में ऋतु के अनुकूल बहुत कुछ परिवर्तन होते हैं ।

विज्ञानवेत्ता जानते हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ विद्यमान है और उत्पन्न, उपलब्ध होता है, वह सब अनायास ही नहीं है और न उस सबको मानवी उपार्जन कह सकते हैं । यहाँ ऐसा बहुत कुछ होता रहता है जिसमें मनुष्य का नहीं वरन् सूक्ष्म शक्तियों का हाथ होता है । सूर्य पर दीखने वाले धब्बे उसकी स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं । उस परिवर्तन का पृथ्वी पर भरी असर पड़ता है । उससे पदार्थों की स्थिति और प्राणियों की परिस्थिति में आश्चर्यजनक हेर-फेर होते हैं । विकिरण, चुम्बकीय तूफान, अन्धड़, चक्रवात किस प्रकार सामान्य परिस्थितियों को असामान्य बनाते हैं, यह सभी जानते हैं । अन्तरिक्षीय अदृश्य शक्ति वर्षा से कई बार धरती पर हिम-युग आये हैं, जल-प्लावन, समुद्री परिवर्तन और खण्ड प्रलय के दृश्य उपस्थित हुए हैं । भविष्य में पृथ्वी के पदार्थों अथवा प्राणियों की स्थिति में कोई असाधारण परिवर्तन हुआ तो उसका निमित्त कारण सामान्य घटना-क्रमों में नहीं वरन् अन्तरिक्षीय अदृश्य हलचलों में ही पाया जायगा । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शीत आधिक्य, महामारी आदि दैविक विपत्तियों में मनुष्य अपने आपको निर्दोष एवं असहाय ही अनुभव करता है ।

व्यक्ति अपने निजी जीवन में सर्वथा स्वतन्त्र और सशक्त है । इतना होते हुए भी विशाल ब्रह्माण्ड में गतिशील हलचलों और परिस्थितियों में उसका स्थान नगण्य है । सिर पर खड़े पानी से लदे बादल तक को वह बरसा नहीं सकता, मौत, बुढ़ापे को रोकने तक में असमर्थ है । परिस्थितियों पर उसका अधिकार नगण्य है ।

प्रवाहों से वह अपना यत्किंचित बचाव ही कर पाता है । सर्दी उसके बूते रुकती नहीं, कपड़े लाद कर, आग तापकर आत्मरक्षा भर में आंशिक सफलता पा लेता है ।

स्पष्ट है कि वातावरण से मनुष्य प्रभावित होता है । अलग-अलग देशों के निवासी अपनी-अपनी परम्पराओं से प्रभावित होते प्रचलित ढर्रे के अन्तर्गत सोचते और जीवनयापन करते हैं । उसमें उनकी भौतिक प्रतिभा का नहीं वातावरण का प्रभाव ही प्रधान रूप से काम करता है।

मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन ही नहीं सामाजिक व्यवस्था भी वातावरण से प्रभावित होती है । सर्दी गर्मी की लहर की तरह कई बार भावनात्मक एवं विचारात्मक लहरें भी उठती हैं और देखते-देखते लगभग सारा समाज उनकी लपेट में आ जाता है । जब कभी युद्धोन्माद आदि उभरते हैं । उन दिनों अधिकांश लोग लड़ने की आवश्यकता अनुभव करते हैं और उसके लिए उतारू से दिखते हैं । एक अजीब सा आवेश छाया रहता है । कहने की आवश्यकता पड़ती है न समझाने की, हवा में तेजी और गर्मी ही कुछ ऐसी होती है जिसके कारण सामान्य मस्तिष्क एक प्रकार से सम्मोहक स्थिति में रहता और प्रवाह में बहता दिखायी पड़ता है । बड़े युद्धोन्माद एवं स्थानीय दंगे, फसादों में वातावरण जिस प्रकार उत्तेजित आंतरिक होता है उसे जन मनोवृत्ति शास्त्र के अध्येता भली प्रकार जानते हैं । युद्धोन्माद की तरह ही समय-समय पर दूसरे सूक्ष्म प्रवाह भी अपने-अपने समय पर उतरते रहे हैं और असंख्य मस्तिष्कों को अपने साथ बहा ले जाने में आँधी तूफान का काम करते रहे हैं ।

प्रजातन्त्र की लहर एक समय चली और उसने राजतन्त्र को संसार भर से उखाड़ फेंकने और उसके स्थान पर जनवादी सरकार बनाने का चमत्कार ही उत्पन्न कर दिया । एक लहर साम्यवाद की उठी, उसने रूस के नेतृत्व में एशिया और योरोप के अनेक देशों को देखते-देखते अपना अनुचर बना लिया । इन दिनों संसार भर के मनुष्यों में से प्रायः आधे लोग साम्यवादी विचाराधारा के पक्ष में सोचते और उसको पूरा या अधूरा समर्थन देते हैं । इन प्रजातन्त्र और साम्यवाद के विचार प्रवाहों को अपने युग की प्रण्ड लहरों में गिन सकते हैं । अनुपयोगी लहरों में से अधिनायकवाद, जातिवाद, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद आदि भी समय-समय पर अपना सिर उठाते और विग्रह उत्पन्न करते रहे हैं । लहर ! लहर ही है । ज्वार भाटा की भयंकरता समुद्र तटवासी समय-समय पर देखते रहते हैं । कई तरह के विचार प्रवाह भी कई बार ऐसे आते हैं जो अपने साथ असंख्यों को समेटते, घसीटकर कहीं से कहीं उठाकर उड़ाकर ले जाते हैं ।

भगवान बुद्ध का धर्म चक्र प्रवर्तन साधन प्रधान नहीं, प्रवाह प्रधान था । साधनों ने प्रवाह उत्पन्न नहीं किया था। प्रवाह ने साधन खड़े कर दिये थे । हर्षवर्धन, अशोक आदि राजाओं ने मिलकर बुद्ध को धर्म प्रचारक नियुक्त नहीं किया था । बुद्ध ने ही हवा गर्म की थी और उसकी गर्मी से लाखों सुविज्ञ सुयोग्य और सुसम्पन्न व्यक्ति अपनी आत्माहुति देते हुए चीवरधारी धर्म सैनिकों की पंक्ति में अनायास ही आ खड़े हुए थे । धर्म प्रवर्तकों में से प्रत्येक ने अपने-अपने समय में अपने-अपने ढंग से वातावरण को गर्म करके अपने समर्थन की भाव तरंगें उत्पन्न की हैं और उस प्रवाह में असंख्य व्यक्ति बहते चले गये हैं । पराधीनता पाश से मुक्त होने वाले देशों में भी आजादी की लहर बही और उसके कारण अनगढ़ ढंग से आन्दोलन फूटे तथा अपने लक्ष्य पर पहुँच कर रहे । अदृश्य और सूक्ष्म वातावरण के तथ्य तथा रहस्य को जो लोग जानते हैं, वे समझते हैं कि इस के प्रवाह कितने सामर्थ्यवान होते हैं । उनकी तूफानी शक्ति की तुलना संसार की और किसी शक्ति से नहीं हो सकती । रामायण काल के वानरों द्वारा जान हथेली पर रखकर जलती आग में कूद पड़ना, जिस प्रवाह की प्रेरणा से सम्भव हुआ, उसका स्वरूप और महत्व यदि समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि जन समुदाय को किसी दिशा विशेष में घसीट ले जाने की सामर्थ्य सूक्ष्म वातावरण में भी इतनी है, जिसे साधनों के सहारे खड़े किये गये आन्दोलनों से कम नहीं अधिक शक्तिवान ही माना जा सकता है ।

जन समर्थन और जन-सहयोग के लिए प्रचार साधनों पर उतना निर्भर नहीं रहा जा सकता जितना कि वातावरण के अनुकूलन पर । सूक्ष्म जगत का प्रवाह यदि सहयोगी बन रहा हो तो अभीष्ट प्रयोजन में सफलता प्राप्त करने की सम्भावना कहीं अधिक बढ़ जाती है । हवा का रुख पीठ पीछे से हो तो जलयानों, वायुयानों से लेकर पैदल यात्रा तक में कितनी सुविधा होती है और मार्ग कितनी जल्दी, कितनी सरलता से पूरा हो जाता है । वातावरण में विषाक्तता छा जाती है तो भयंकर महामारियों का प्रकोप

होता है और देखते-देखते असंख्यों उससे आक्रान्त होते मरते देखे जाते हैं । वातावरण में सर्दी-गर्मी होने से प्राणियों को काँपते देखा जाता है । घर में शोक का वातावरण हो तो असंबद्ध लोग भी उससे प्रभावित होते हैं। मन्दिरों और कसाईघरों के वातावरण का अन्तर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । आध्यातमविद्या में सूक्ष्म जगत का, सूक्ष्म वातावरण का महत्त्व इस संसार के समस्त साधनों से सर्वोपरि माना गया है । युग परिवर्तन के लिए हमें वातावरण के अनुकूलन के लिए आध्यात्म विज्ञान के अनुरूप प्रचण्ड प्रयास करने होंगे ।

## सूक्ष्म वातावरण के अनुकूलन की प्रचण्ड प्रक्रिया

वातावरण से मनुष्य प्रभावित होते हैं, यह सत्य है । इसके साथ यह भी सत्य है प्रखर व्यक्तित्व वातावरण को भी प्रभावित कर लेने की क्षमता रखते हैं । ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी स्तर की प्रतिभाएँ अपनी प्रचण्ड प्राण ऊर्जा से वातावरण को गर्म करती हैं और गर्मी से परिस्थितियों के प्रवाह में असाधारण मोड़ आते और परिवर्तन होते देखे गये हैं । इस तथ्य से भिन्न प्रतीत होने वाला एक और भी सत्य है कि वातावरण से व्यक्ति प्रभावित होता है । समय के प्रभाव में तिनकों और पत्तों की तरह अगणित व्यक्ति बहते चले जाते हैं । आँधी के साथ धूल से लेकर छत, छप्परों तक न जाने क्या-क्या उड़ता चला जाता है । आँधी का रुख जिधर होता है उधर ही पेड़ों की डालियाँ और पौधे की कमरें झुकी दिखायी पड़ती हैं । इसे प्रवाह का दबाव ही कह सकते हैं ।

युग परिवर्तन के दोनों ही पक्ष हैं । तपस्वी व्यक्ति अपनी प्रचण्ड आत्म-शक्ति से वातावरण को प्रभावित करते हैं और अभीष्ट परिवर्तन करते हैं और अभीष्ट परिवर्तन के लिए व्यापक अनुकूलता उत्पन्न करते हैं । दूसरा पक्ष यह है कि विशिष्ट उपायों के द्वारा वातावरण में गर्मी उत्पन्न की जाती है और उस व्यापक प्रखरता के दबाव से सब कुछ सहज ही बदलता चला जाता है । इन दोनों पक्षों में से कौन प्रधान है कौन गौण ? इस पर चर्चा करना व्यर्थ है । हमें यही मानकर चलना होगा कि दोनों ही तथ्य अपने स्थान पर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और दोनों की ही उपयोगिता है । दोनों को परस्पर पूरक भी कह सकते हैं । युग सृजेताओं को इन दोनों के ही परिपोषण में संलग्न रहना है ।

युग परिवर्तन की ऊर्जा उत्पन्न करने वाले व्यक्तित्व का निर्माण तपश्चर्या के माध्यम से ही हो सकता है । भौतिक प्रतिभाओं के धनी भी कई प्रकार की सफलतायें उत्पन्न करते देखे गये हैं, किन्तु वे सभी होते पदार्थ-परक ही हैं । मनुष्य की शारीरिक, बौद्धिक क्षमतायें साधनों की सुविधा-सम्पदायें कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती देखी गयी हैं पर वे सभी होती जागतिक ही हैं । धन के आधार पर विशालकाय भवन और कल कारखाने खड़े किये जा सकते हैं । सुविधा साधन बढ़ाने के कितने ही अन्य आधारों का सरंजाम जुटाया जा सकता है । समस्याओं का सामयिक समाधान करने वाले दबाव भी शक्ति सामर्थ्य के सहारे उत्पन्न किये जाते हैं । विज्ञान, अर्थ-साधन, बुद्धि-कौशल एवं परिश्रम के सहारे सुविधा संवर्धन की व्यवस्था बनती आयी है और यह क्रम भविष्य में भी चलता रहने वाला है । इस दृष्टि से भौतिक साधनों और सामर्थ्यों का महत्व सदा ही स्वीकार किया जाता रहेगा । इतने पर भी यह यथार्थता अपने स्थान पर अटल ही बनी रहेगी कि मनुष्य की अन्तःचेतना का स्पर्श करने—विशेषतः उसे उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर करने की आवश्यकता साधन सामग्री के सहारे पूरी हो नहीं सकती, चेतना मात्र चेतना से ही प्रभावित होती है । उसे प्रशिक्षित और उल्लसित करने के लिए भावनात्मक आधार चाहिए । साधनों से तो मस्तिष्क को प्रभावित और शरीर को उत्तेजित भर किया जा सकता है ।

इतिहास साक्षी है कि आंतरिक उत्कृष्टता के धनी व्यक्तित्वों ने अपनी अन्तः ऊर्जा के सहारे अपने समय के अगणित मनुष्यों को प्रभावित किया है । ईसा, बुद्ध, शंकराचार्य, विवेकानन्द, गाँधी जैसे महामानवों ने अपने अन्तःकरणों को तोड़ा-मरोड़ा और ढाला-गलाया था । सामयिक विकृतियों के सुधारने में उन महान व्यक्तित्वों ने एक प्रकार से चमत्कार उपस्थित करके रख दिया था । एक अग्रगामी के पीछे अनुगामियों के जत्थे गतिशील होते रहे हैं । राणाप्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जैसी हस्तियाँ साधनहीन परिस्थितियों में भी साधन जुटाने में समर्थ होती रही हैं । यह व्यक्ति के अन्तराल में उभरने वाली आत्मशक्ति का वर्चस्व है । नवयुग के अवतरण में उपश्चर्या की ऐसी परम्परा को विकसित किया जाना है—जिसके सहारे आत्मबल के धनी महामानवों की संख्या बढ़ सके । जनमानस को उत्कृष्टता अपनाने के लिए सहमत कर सकना केवल ऐसे ही लोगों का काम

है । स्वार्थों की पूर्ति के लिए उत्तेजित और प्रशिक्षित कर सकना तो भौतिक प्रतिभाओं के लिए भी सरल है, किन्तु आदर्शवादिता को व्यवहार में उतारना और उसके लिए त्याग, बलिदान के लिए प्रबल प्रेरणा दे सकना, तपःपूत आत्माओं के लिए ही सम्भव हो सकता है । युग विकृतियों से जूझने के लिए इन्हीं ऊर्जा-आयुधों की आवश्यकता पड़ेगी । अणु बमों के विस्फोट जैसी प्रचण्डता यदि सृजन प्रयोजनों के लिए अभीष्ट हो तो उसके लिए व्यक्तित्व को तपश्चर्या की शक्ति से सम्पन्न करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है । सृजन के लिए भागीरथों की और ध्वंस के लिए दधीचियों की आवश्यकता पूरी करने का कोई भौतिक विकल्प है नहीं। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए गायत्री उपासना के सामान्य उपचारों से लेकर उच्चतरीय तप साधनों तक का विशालकाय आधार खड़ा किया जा रहा है ।

तथ्यों के जानने वाले जानते हैं कि प्रस्तुत शताब्दी में रचे गये स्वतन्त्रता संग्राम के लिए सूक्ष्म वातावरण में आवश्यक रुचि उत्पन्न करने के लिए योगी अरविन्द जैसे तपस्वियों की कितनी बड़ी पृष्ठभूमि रही है । असहयोग, सत्याग्रह से लेकर "करो और मरो" तक के संघर्षों के लिए अगणित लोगों की—प्राण हथेली पर रखकर बलिदानियों की सेनायें ला खड़े करना एक चमत्कार ही कहा जा सकता है । हजार वर्ष से दबा-कुचला जन-मानस एकाकी इतने आवेश के साथ आत्म गौरव की रक्षा के लिए आतुर हो उठे और संकल्प को पूरा करने के लिए बहुत कुछ कर गुजरे तो उसे अद्भुत ही कहा जायगा । एक ही समय में अनेकों महामानवों का उदय एक साथ हुआ हो ऐसे उदाहरण अन्यत्र ढूँढ़े नहीं मिलते । नेता और योद्धा तो एक साथ कितने ही हो सकते हैं, पर भारत माता ने उन्हीं दिनों ढेरों महामानव उत्पन्न करके रख दिये । इस उत्पादन के पीछे किन्हीं जादूगरों की करामात काम करती देखी जा सकती है । निश्चय ही वह उत्पादन ज्ञात और अविज्ञात तप साधनाओं का ही प्रतिफल था । ऊर्जा उत्पादन के वे स्रोत इन दिनों शिथिल हो गये तो राष्ट्र निर्माण के कार्य में वैसी ही तत्परता का परिचय देने वाली विभूतियों का ढूँढ़ निकालना भी कठिन हो रहा है । तप शक्ति का लोक चेतना को ऊँचा उछालने में कितना बड़ा योगदान हो सकता है । उसे आज नहीं तो कल एक सुनिश्चित तथ्य की तरह समझ सकना हम सभी के लिए सम्भव हो जायगा ।

यह व्यक्ति की आत्म-ऊर्जा को विकसित करने और उसके द्वारा वातावरण को परिष्कृत करने का एक् पक्ष हुआ । युग-परिवर्तन के लिए इन प्रयत्नों में तत्परता-पूर्वक संलग्न रहने की आवश्यकता रहेगी । युग सृजेताओं को उस उपार्जन, उत्पादन के लिए तत्परता-पूर्वक प्रयत्नरत रहना होगा । दूसरा पक्ष है वातावरण को सामूहिक प्रयत्नों से प्रभावित करना और उसके तूफानी प्रवाह में सामान्य-जनों को भी असामान्य भूमिका सम्पादन करने के लिये उत्तेजित करना । यह पक्ष सामूहिक प्रयत्नों से ही सम्पन्न हो सकता है । एकाकी व्यक्तिगत प्रयत्नों से तो कार्य सीमित क्षेत्र में, सीमित मात्रा में और सीमित समय तक के लिए ही सम्पन्न हो सकता है । व्यापक परिमाण में बड़े प्रयत्न चिरस्थायी उद्देश्य के लिए करने हों तो उसके लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होगी जो आध्यात्मिकता की उमंगों से सूक्ष्म जगत को भर सकने में समर्थ हो सकें ।

प्राचीनकाल में यह प्रयोजन सप्त ऋषियों की सुगठित मण्डली द्वारा सम्पन्न होते रहे हैं । उनके शरीर तो अलग-अलग थे पर रहते साथ-साथ थे । जो सोचते थे, जो योजना बनाते थे और जो करते थे उसमें सघन एकता रहती थी । वैसे ही जैसी कि सप्त धातुओं के सम्मिलन से काय-कलेवर का ढाँचा खड़ा होता और गतिशील रहता है। अभी वे आकाश में एक मण्डली के रूप में चमकते और कदम से कदम मिलाकर साथ-साथ चलते हैं । दिवंगत होने पर भी उनकी एकता में कोई शिथिलता नहीं आयी है । सामूहिक सत्प्रयत्नों का मूल्य और महत्व वे भली प्रकार समझते हैं । इसमें किसी प्रकार का व्यतिरेक कभी न आने देने के लिए वे कृत संकल्प हैं ।

देवताओं का सहकार उनकी पूजा के लिए स्थापित की गयी उपचार वेदियों को देखकर जाना जा सकता है । सर्वतोभद्र आदि स्थापनाओं में सह-निवास की उनकी मूल प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । एक ही जल कलश में उन सब का आह्वान और प्रतिष्ठापन सम्पन्न हो जाता है । भगवती दुर्गा तो देवताओं की संघ शक्ति का प्रतीक परिचय ही मानी जाती हैं ।

देव प्रयोजनों में सामूहिकता का ही प्राविधान है । यज्ञ प्रक्रिया सनातन है । देवाराधना के समस्त तत्वों का उसमें समावेश है । प्रत्यक्ष है कि यज्ञ का समूचा क्रियाकलाप सामूहिकता पर अवलम्बित है । ब्रह्मा, आचार्य, अध्वर्यु, उद्गाता, यजमान, ऋत्वक् आदि पदाधिकारियों की मण्डली उसका सूत्र संचालन करती है। आहुति देने वाले, परिक्रमा करने वाले, श्रमदानी, संयोजक, सहयोगी, व्यवस्थापक आदि जितना बड़ा समुदाय होगा आयोजन की उतनी ही बड़ी सफलता मानी जाती है । राजनैतिक उद्देश्यों के लिए राजसूय यज्ञों और धार्मिक उद्देश्यों के लिए बाजपेय यज्ञों की परम्परा रही है। अश्वमेध जैसे आयोजन राजसूय और गायत्री यज्ञ जैसे आयोजन बाजपेय कहलाते रहे हैं । इनमें राजनेताओं एवं धर्मचेताओं को बड़ी संख्या में एकत्रित करके उनकी विचारणाओं एवं गतिविधियों में सामायिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों में एकता, एकरूपता लाने का प्रयोजन पूरा किया जाता रहा है । नैमिषारण्य आदि आरण्यकों में सूत-शौनिक कथा प्रसंगों जैसे विशालकाय ज्ञान-सत्र सम्पन्न होते थे और उनमें हजारों ऋषि आत्मायें श्रद्धापूर्वक भाग लेती थीं ।

कुम्भ जैसे महा पर्वों के समय होने वाले विशालकाय धर्म सम्मेलनों का उद्देश्य भी एक ही था । श्रेष्ठ व्यक्तित्वों का सत्प्रयोजनों के लिए सघन, सहकार और सामूहिक प्रयत्न । कथा-कीर्तन, पर्व-संस्कार, सत्र-सत्संग, परिक्रमा, तीर्थयात्रा जैसे धर्मनुष्ठानों में अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ एक अति महत्वपूर्ण प्रयोजन यह भी सम्मिलित है कि सदाशयता को संघबद्ध होने और एक दिशा धारा में चल पड़ने की व्यवस्था बन सके ।

ऋषियों ने रावणकालीन अनाचार से जूझने के लिए सूक्ष्म शक्ति उत्पन्न करने के लिए सामूहिक आध्यात्म उपचार किया था सबने मिल-जुलकर अपना-अपना रक्त संचय किया और उसे एक घड़े में बन्द करके भूमि में गाड़ दिया । उसी से सीता उत्पन्न हुई और उनकी भूमिका के फलस्वरूप तत्कालीन अनाचारों का निराकरण सम्भव हो सका ।

महत्व तो व्यक्तिगत उपासना का भी है और वैयक्तिक परिष्कार के लिए अलग-अलग एकान्त उपासना की भी आवश्यकता रहती ही है, किन्तु समष्टिगत व्यापक प्रयोजनों के सम्मिलित उपासना के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति भौतिक साधनों से हो सकती है किन्तु सूक्ष्म जगत को प्रभावित करने के लिए अध्यात्म पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है। वह एकाकी तो चलना ही चाहिए पर उसे सामूहिक स्तर का भी बनाया जाना चाहिए ।

आये दिन देखा जाता है कि एकाकी और सम्मिलित शक्ति में कितना अन्तर पड़ता है । बुहारी की अलग-अलग सीकें चाहे हजारों लाखों ही क्यों न हों अलग-अलग रहकर किसी भवन को बुहार न सकेंगी । अलग-अलग रह कर हजारों लाखों धागे परिधान न बन सकेंगे । सीकें सम्मिलित हों तो समर्थ झाड़ू बनेगी । धागे परस्पर गुंथे तो कपड़ा बनेगा और तन ढकेगा । अलग दीपक तो सदा ही जलते हैं, जब वे योजना बद्ध रूप में नियत समय पर पंक्तिबद्ध प्रकाशित होते हैं तो दीपावली का उत्सव दृष्टिगोचर होता है । अलग-अलग रहकर शूरवीर योद्धा भी कोई बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं कर पाते । उनका सम्मिलित स्वरूप—सेना का प्रदर्शन भी प्रभावशाली होता है और पराक्रम भी सफल होता है । सामूहिक और सुगठित उपासना के विशालकाय आयोजन वातावरण को बदलने और सुधारने का सुविस्तृत उद्देश्य पूरा करते हैं । युग-परिवर्तन जैसे महान कार्य में सूक्ष्म जगत का परिशोधन, वातावरण अनुकूलन भी एक बड़ा तथ्य है, इसके लिए युग शक्ति का उदय आवश्यक है । यह सामूहिक उपासना के सुनियोजित सुसंस्कारित साधना अनुष्ठानों से ही सम्भव हो सकता है ।

सूक्ष्म वातावरण का परिशोधन करने के लिए आध्यात्म विज्ञानियों द्वारा कतिपय दिव्य उपचार समय-समय पर किये गये हैं । इसके प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं । रावण काल के विक्षुब्ध वातावरण को समाहित करने का कार्य लंका विजय के उपरान्त भी शेष रह गया था । भगवान राम ने दशाश्वमेध घाट पर दश अश्वमेधों की संकल्प श्रृंखला पूरी की थी । कंस, दुर्योधन, जरासन्ध जैसे असुरों के न रहने पर भी महाभारत काल के विक्षोभ वातावरण में भरे रहे । भगवान कृष्ण ने उनका समाधान आवश्यक समझा और पाण्डवों से राजसूय यज्ञ कराया । महर्षि विश्वामित्र अपने समय की असुरता को दुर्बल बनाने के लिए जो बृहद् यज्ञ रच रहे थे उसका पता असुरों को चल गया और वे ताड़का सुबाहु मारीच के नेतृत्व में उसे नष्ट करने के लिए आक्रमण करने लगे । राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए जाना

पड़ा था । ऐसे समाधान उपचारों में यज्ञ प्रक्रिया का बहुत महत्व रहा है । यज्ञों में अग्निहोत्र की तरह ही जप यज्ञ भी है । अग्निहोत्र में साधन चाहिए पर जप यज्ञ व्यक्तिगत साधना से सम्पन्न हो सकता है । यज्ञ तो सामूहिक होते ही हैं । उसमें होताओं की सम्मिलित साधना का चमत्कार देखने को मिलता है । जप यज्ञ को जब अनेक जपकर्ता संकल्पपूर्वक समाहित होकर करते हैं तो उससे भी सम्मिलित शक्ति उत्पन्न होती है । ऐसी सामूहिक साधनायें पुरश्चरण कहलाती हैं । तपश्चर्यायुक्त सामूहिक संकल्पों के द्वारा विशिष्ट उद्देश्य के लिए किये गये पुरश्चरण भी वातावरण में अभीष्ट अनुकूलता उत्पन्न करते हैं ।

तत्त्वदर्शी ऋषियों ने उपासना विज्ञान के निर्धारण में इस तथ्य का भी ध्यान रखा है कि नियत समय, नियत क्रम, से नियत विधि व्यवस्था और निर्धारित मनोभूमि की व्यवस्था बनाकर उपासना की जाती है और उससे सूक्ष्म जगत का उद्देश्य पूरा होता रहे । सूर्योदय और सूर्यास्त काल को ही संध्या वन्दन के लिए क्यों निर्धारित किया गया ? उसका एक ही उत्तर है कि इससे संयुक्त शक्ति की अत्यन्त प्रभावशाली प्रचण्ड धारा उत्पन्न होती है । किसी भारी वजन को उठाने के लिए मजदूरों की बड़ी संख्या भी अलग-अलग स्तर की खींच-तान करती रहे तो बोझ उठाना, पहिया घुमाना कठिन पड़ता है पर जब एक साथ आवाज के साथ—एक प्रोत्साहन देकर एक जोश उत्पन्न करके 'जोर लगाओ हेईश' जैसे नारे लगाते हुए सब का बल एक ही समय, एक ही कार्य पर नियोजित कर दिया जाता है तो शक्ति का यह केन्द्रीकरण चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करता है और रुकी गाड़ी सहज ही आगे बढ़ जाती है ।

सामूहिक नियोजन के परिणाम पग-पग पर परिलक्षित होते हैं । सैनिकों के कदम मिलाकर चलने से उत्पन्न ताल यों लगती तो साधारण सी है पर उसका वास्तविक प्रभाव तब दिखायी पड़ता है जब वे सैनिक किसी पुल पर कदम मिलाकर चलें । उस पदचाप की आवाज में संयुक्त ताल होने के कारण ध्वनि तरंगों की प्रचण्डता असाधारण बन पड़ती है । उससे पुलों के फट जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है ।

संयुक्त उपासना की प्रचण्ड प्रतिक्रिया का तथ्य तत्त्वदर्शियों के ध्यान में सदा ही रहा है । विभिन्न धर्मों में प्रचलित उपासनाओं को सामूहिकता की श्रृंखला में बाँधा गया है । मुसलमानों की नमाज के समय यही नियम है और उन्हें कड़ाई के साथ पालन करने पर जोर दिया गया है । अन्यान्य धर्मों में भी यह व्यवस्था अपने-अपने ढंग से मौजूद है ।

युग-परिवर्तन के लिए गायत्री उपासना को सामूहिक रूप में नियत समय और नियत क्रम से करने की जो विधि-व्यवस्था एक नियत नियन्त्रण और समर्थ मार्ग-दर्शन में चल रही है, उसे युगशक्ति का प्रचण्ड उत्पादन समझा जा सकता है और उसके आधार पर सूक्ष्म जगत के अदृश्य वातावरण के अनुकूलन की अपेक्षा की जा सकती है ।

युग-परिवर्तन संसार का सबसे बड़ा, सबसे भारी, सबसे व्यापक और सबसे अधिक महत्व का काम है । उसके लिए सामान्य और सीमित नहीं, असामान्य और असीम शक्ति चाहिए । भौतिक साधनों की भी इसके लिए आवश्यकता पड़ेगी पर शक्ति का मूल स्रोत आध्यात्मिक ही होगा । जन-मानस का बदलना विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक क्षेत्र का कार्य है । इसलिए ऊर्जा भी उसी स्तर की चाहिए । वातावरण की उत्कृष्टता-निकृष्टता सामूहिक चिन्तन पर निर्भर रहती है । उसका उत्पादन सामूहिक साधना के प्रचण्ड, सामर्थ्य-सम्पन्न, सामूहिक धर्मानुष्ठानों से ही सम्भव है । हम सब इन दिनों इसी के लिए प्रयत्नशील हैं । आशा की जा सकती है कि इन पुण्य-प्रयत्नों की प्रतिक्रिया युग-परिवर्तन के महान प्रयोजन में अपनी असाधारण भूमिका प्रस्तुत करेगी ।

## गायत्री महाशक्ति से नवयुग की संरचना

नवयुग के अनुरूप सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए तदनुरूप मनःस्थिति का उत्पन्न किया जाना आवश्यक है । कर्म अनायास ही नहीं हो जाते । उसका बीज तत्त्व विचारों में रहता है । बीज अंकुर के रूप में प्रस्फुटित होता है तब कहीं वृक्ष का अस्तित्व प्रकाश में आता है । उज्ज्वल भविष्य की संरचना का स्वरूप धरती पर स्वर्ग के अवतरण जैसा निर्धारित किया गया है । समाज में सत्प्रवृत्तियाँ चल पड़ने और पारस्परिक व्यवहार में शालीनता का समावेश होने पर ही यह सम्भव हो सकेगा । समृद्धि और कुछ नहीं, सदुद्देश्य भरे पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है । प्रगति का अर्थ अधिक उपार्जन ही नहीं

उपलब्धियों का सदुपयोग कर सकने की क्षमता भी है । धरती पर स्वर्ग के अवतरण का अभिप्राय ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है ।

स्पष्ट है कि भली या बुरी परिस्थितियाँ आसमान से नहीं टपकतीं । वे मानवी मन:स्थिति की प्रक्रिया भर होती हैं । सुखद परिस्थितियाँ, अनुकूल साधन-सुविधायें उत्पन्न करनी हों तो चिन्तन और चरित्र को सृजनात्मक सत्प्रयोजनों में लगाने के अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं । व्यक्ति का अन्तराल निकृष्टता की कीचड़ में धँसा रहे तो उसकी विचारणा और क्रियाशक्ति के दोनों ही शक्ति स्रोत विनाश की विभीषिकायें रचते रहेंगे । उनकी दुखद प्रतिक्रिया चित्र-विचित्र समस्याओं और विपत्तियों के रूप में सामने आती रहेगी । प्रगति के क्रम पर किये गये उपचार यत्किंचित् उत्पादन भले ही कर लें पर आन्तरिक निकृष्टता के बने रहने पर न उलझनें सुलझेंगी और न संकट टलेंगे । अन्त:क्षेत्र में भरी हुई दुष्प्रवृत्तियों को साधनों का सहारा मिलने लगा तो वे साँप के दूध पीने पर बढ़ने वाले विष की तरह आत्मघात और परपीड़न के ही सरंजाम खड़े करेंगी ।

धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने की, उज्ज्वल भविष्य के स्वप्नों को साकार बनाने की प्रक्रिया, प्रत्यक्षत: तो बढ़े हुए साधनों और प्रचलन में सुव्यवस्थाओं के रूप में ही दिखायी देगी, पर उसका आधार उथला नहीं गहरा होगा । परिपुष्ट शालीनता ही इतना कुछ कर सकने में समर्थ होगी । इसी को मनुष्य में देवत्व का उदय कहा गया है । नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से सुसंस्कृत व्यक्ति ही देवता कहे जाते हैं। उच्चस्तरीय संकल्प और चरित्र का समन्वय ही प्रतिभा है । प्रतिभा के सहारे प्रतिकूलताओं और अभावों से घिरे रहने पर भी व्यक्ति आगे बढ़ सकता है और महामानवों जैसा श्रेय पा सकता है । वह स्वयं आगे बढ़ सकता है और सम्पर्क के वातावरण तथा समुदाय को ऊँचा उठाता है । युग-निर्माण का लक्ष्य सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है । उसकी पूर्ति मनुष्य में देवस्तर का व्यक्तित्व उत्पन्न करने से ही होगी । इसी बीज से उत्पन्न हुए अंकुर समयानुसार श्रेय सम्भावनाओं के रूप में हरे-भरे लहलहाते और फले-फूले दिखायी देंगे।

तथ्यों को गम्भीरतापूर्वक समझने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि व्यक्तित्वों को परिष्कृत कैसे किया जाय ? इस सम्बन्ध में किये गये तत्व-चिन्तन से यही जाना जा सकेगा कि विचारणा और आस्थाओं के मर्म-स्थल में घुस पड़ने वाली विकृतियों का निराकरण किया जाय । उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों की स्थापना की जाय । जन-मानस का परिष्कार इसी को कहते हैं । धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण का अभियान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए चल रहा है । नये युग की संरचना के आधारभूत तथ्यों का केन्द्र बिन्दु इन्हीं प्रयासों में सन्निहित है । महाकाल की सामयिक प्रेरणा जागृत आत्माओं को इन्हीं गतिविधियों में संलग्न होने के लिए घसीटती, धकेलती दृष्टिगोचर हो रही है ।

प्रचार प्रशिक्षण को विचार विस्तार का माध्यम माना जाता है । जहाँ तक नैतिक शिक्षण का सम्बन्ध है वहाँ उस आधार को उथला ही माना जायगा । जानकारियाँ बढ़ाने और कला-कौशल सिखाने में सामान्य शिक्षण की व्यवस्था कर देने से काम चल जाता है, पर जहाँ तक चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व के परिष्कार का सम्बन्ध है, वहाँ इस उपचार द्वारा कुछ कारगर परिणाम नहीं निकलते दीखते । नैतिकता और आदर्शवादिता की दुहाई देने वाले धर्मोपदेशक, समाज सुधारक, राजनेता, साहित्यकार आदि मूर्धन्य वर्ग के लोगों को भी जब व्यक्तिगत व्यवहार में अनीतिरत देखते हैं तो आश्चर्य होता है । जो लोग दूसरों को सदाचरण की शिक्षा इतने जोर-शोर से देते हैं कि वे स्वयं अपने ही प्रतिपादन के सर्वथा प्रतिकूल आचरण कैसे कर रहे हैं ?

नीति और सदाचरण के सिद्धान्तों का जहाँ तक प्रश्न है । इस सम्बन्ध में सर्व-साधारण को पर्याप्त जानकारी है। यहाँ तक कि प्रसंग आने पर अनाचारी भी सदाचरण पक्ष का ही समर्थन करता है । ऐसी दशा में किंकर्त्तव्य विमूढ़ रह जाना पड़ता है कि प्रचार प्रशिक्षण द्वारा नीति शिक्षा कैसे दी जाय ? जागे हुओं को कैसे जगाया जाय? माने हुए को कैसे मनाया जाय ? प्रचार तन्त्र का उद्देश्य तो जानकारी देना भर है । जिन्हें पहले से ही जानकारी प्राप्त है, उन्हें उन्हीं बातों को बार-बार बताते चलने से पिसे को पीसनें जैसी उपहासास्पद स्थिति ही बनी है । अस्तु मात्र प्रचार-तन्त्र के सहारे मनुष्य में देवत्व उत्पन्न करने वाली आस्थाओं की प्रतिष्ठापना संभव न हो सकेगी । उस स्तर के प्रयासों से कुछ उत्साह भले ही उत्पन्न कर लिया जाय । नीति मत्ता के पक्ष में वाणी और लेखनी से प्रचार कृत्य पहले भी होता था और अब भी हो

रहा है । परिणामों का पर्यवेक्षण करने से निराश ही होना पड़ता है । इतने भर से कोई बड़ा प्रयोजन पूरा हो सकने की आशा बँधती नहीं है ।

गाड़ी यहीं आकर रुक जाती है । भौतिक प्रयत्न मनुष्य के भौतिक स्तर को ही अपनी सामर्थ्य के अनुरूप प्रभावित कर सकते हैं । उनकी पहुँच उस मर्म स्थल तक नहीं है, जिसे अन्तःकरण कहते हैं । देवत्व के अंकुर इसी क्षेत्र में जमते हैं और अनुकूलता मिलने पर उनकी जड़ें इसी भूमि में फैलती हैं । विशाल वृक्षों का अस्तित्व इन्हीं परिस्थितियों में प्रकट और परिपुष्ट होता है । मस्तिष्क को छूने वाला प्रचार भौतिक जानकारियाँ देने के लिए उपयुक्त है । आस्थाओं का क्षेत्र गहरा है और वहाँ कुछ उथल-पुथल करनी हो तो उन्हीं उपकरणों को काम में लाना होगा, जिनकी पहुँच उतनी गहराई तक हो सकती है । स्पष्ट है कि आध्यात्मिकता का आधार अवलम्बन की इस उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है । ब्रह्म-विद्या का तत्व दर्शन आस्थाओं का स्पर्श कर सकता है । संचित कुसंस्कार बड़े ढीठ होते हैं । जन्म-जन्मान्तरों से जड़ जमाये बैठी पशु प्रवृत्तियाँ सहज ही हटती नहीं हैं । एक बार उन्हें काट देने पर भी उनकी भीतरी जड़ें अवसर पाते ही फिर उपज पड़ती हैं । इस क्षेत्र का परिशोधन एक ही उपाय से हो सकता है । वह है तपश्चर्या युक्त आत्मसाधना । मात्र कर्मकाण्डों से ही यह प्रयोजन पूरा नहीं होता । उसके साथ आत्म-शोधन की साहसिक गतिविधियों का जुड़ा रहना आवश्यक है । तप, तितीक्षा को कहते हैं । उपासना में तपश्चर्या का समन्वय कर देने पर जो स्थिति बनती है उसी को साधना कहते हैं । साधना से सिद्धि के तथ्य में इसी सिद्धान्त का समावेश है कि अन्तराल के परिशोधन से महान व्यक्तित्व का निर्माण होता है । मनुष्य में देवत्व के उदय के उपचार और स्वरूप को इसी बिन्दु पर केन्द्रित माना जा सकता है ।

आस्थाओं में निकृष्टता का घुस पड़ना ही वर्तमान युग की समस्त विपन्नताओं का एक मात्र कारण है । उसके निवारण का उपाय आस्थाओं के स्तर को परिष्कृत करने के अतिरिक्त अन्य कोई है नहीं । ब्रह्म-विद्या का तत्त्व ज्ञान तपश्चर्या का आदर्शवादी कष्ट सहन, दोनों को मिला देने से वह आधार बनता है, जो अन्तराल की गहराई तक प्रवेश कर सके । उस क्षेत्र में आवश्यक परिवर्तन परिष्कार इसी माध्यम से सहज संभव हो सकता है । यों अपवाद तो ऐसे भी हैं कि बिना किसी आध्यात्म साधना के कितनों ने तो अपनी उच्च स्तरीय आस्थाएँ जगायीं और परिपक्व बनायीं । सर्व सुलभ सर्वजनीन उपाय एक ही है कि जन-मानस में उच्चस्तरीय आस्थाओं की स्थापना का व्यापक अभियान चलाया जाय । उसका आधार कार्यक्रम उत्कृष्टता के तत्त्व ज्ञान और तप साधना के विधि-विधान के समन्वय से बनाया जाय । प्रस्तुत गायत्री आन्दोलन को इसी दृष्टि से देखा जा सकता है । उसका प्रारूप इन दोनों तथ्यों का समुचित समन्वय करके बनाया गया है । अपेक्षा की जानी चाहिए कि यदि तथ्य को सही रूप से समझा और अपनाया गया तो इसके दूरगामी परिणाम होंगे । मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की साध सँजोये हुए प्रयासों की प्रगति और सफलता का आधार क्या हो सकता है ? क्यों हो सकता है ? इस तथ्य को यदि जन-साधारण द्वारा ठीक तरह समझा जा सके तो वह असमंजस दूर हो जायगा जिसके कारण यह संदेह उत्पन्न होता है । नव निर्माण और गायत्री अभियान की परस्पर संगति बैठती भी है या नहीं ?

सोचा जा सकता है कि गायत्री जप के पूजा कृत्य की बात तो पुरानी है । उसे भजन-पूजन करने वालों में से बहुत जानते मानते भी हैं 'फिर नये अभियान के रूप में इतनी विशालकाय तैयारी नये सिरे से क्यों करनी पड़ रही है ।' यहाँ यह समझना होगा कि प्रचलित परम्परा में मात्र गायत्री मन्त्र के जप का प्रचलन दैव अनुग्रह प्राप्त करने की दृष्टि से करने भर की मान्यता है । सांसारिक मनोकामनाओं की पूर्ति, संकटों की निवृत्ति, परलोक में स्वर्ग मुक्ति के प्रति ऋद्धि-सिद्धियों की चमत्कारिता जैसे छोटे बड़े वैयक्तिक लाभ ही उससे नीचे जाते हैं । भजन पूजन के क्रिया कृत्य प्रायः इन्हीं प्रयोजनों की पूर्ति के लिए किये जाते रहते हैं । सामान्य व्यक्ति इतना ही सोच सकता है और उसका 'प्रिय' इतनी छोटी परिधि तक ही केन्द्रित हो सकता है । इसलिए स्वार्थों की पूर्ति के लिए उसका आधार भी आकर्षक ही लगेगा, किन्तु स्मरण रखने योगय यह भी है कि गायत्री महाशक्ति के विशाल कलेवर का यह एक बहुत छोटा अंश है । उसकी समग्रता वैयक्तिक स्वार्थ पूर्ति की तुच्छ परिधि में समेटी नहीं जा सकती । युग-शक्ति के रूप में गायत्री का परिचय जन-साधारण को कराना होगा और जो कुछ अविदित अनभ्यस्त पड़ा है उस अद्‌भुत को सर्व-साधारण की जानकारी में लाना होगा । यदि ऐसा सम्भव हो सके

तो बुद्धिजीवियों से लेकर मूढ़मति लोगों तक को यह स्वीकार करने में कठिनाई न होगी कि नवयुग अवतरण की सामयिक आवश्यकता की पूर्ति में गायत्री का तत्वज्ञान और शक्ति-संधान किस प्रकार उपयोगी हो सकता है ?

नवयुग के अवतरण की इस प्रभात वेला में क्रान्तिकारी परिवर्तन के सरंजाम खड़े करने के लिए जिस प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता है उसे गायत्री के तत्व दर्शन, विधि-विधान और प्रयोग-उपचार द्वारा पाया जा सकता है । यह तथ्य जन-मानस में पूरी तरह प्रतिष्ठापित कराया जाना चाहिए । स्थिति ऐसी उत्पन्न की जानी चाहिए कि केवल तथ्य को स्वीकारा ही न जाय वरन् अपना सर्वोत्तम, सर्वतोमुखी हित साधन भी इस अवलम्बन को अपनाने में समझा जाय । इस स्थिति को उत्पन्न करना प्रस्तुत गायत्री अभियान का सामाजिक उद्देश्य है । उसे अपनाने से युग-परिवर्तन की चेतनात्मक पृष्ठभूमि बन सकेगी । महा विनाश का संकट टल सकेगा और उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा हो सकेगा ।

युग परिवर्तन में चरित्र-निष्ठा और समाज-निष्ठा को उत्कृष्ट आदर्शवादिता की लोक परम्परा, जन-मान्यता और सर्वजनीन रुचि-आकाँक्षा का रूप देना होगा । इसके लिए एक सर्वतोमुखी संविधान की, आचार शास्त्र की आवश्यकता पड़ेगी । यह ऐसा होना चाहिए कि तर्क और तथ्यों को हर कसौटी पर कसने से यही सिद्ध हो सके । यह ऐसा होना चाहिए जिस पर आप्त पुरुषों के शास्त्रकारों के अनुभव, अभ्यास, प्रतिपादन ही छाप हो, जिसे भूतकाल में प्रयोग-परायणों के द्वारा सही पाया गया । ऐसा बीज-मन्त्र गायत्री के रूप में अनादि काल से उपलब्ध है । उसे संसार का सबसे सारगर्भित धर्म शास्त्र कह सकते हैं । इसमें वैयक्तिक महानता और सामाजिक सद्‌भावना के सारे सूत्र संकेतों का समावेश है । नये युग की वैयक्तिक और सामाजिक मर्यादाओं का निर्माण निर्धारण करने की जब आवश्यकता पड़ेगी तब चिर प्राचीन और चिर नवीन का समन्वय तलाश किया जायगा । अतीत की श्रद्धा और भविष्य की आशा का एकीकरण करते समय प्रखर वर्तमान की संरचना करनी होगी । यह कार्य गायत्री मन्त्र के अक्षरों में सन्निहित सूत्र संकेतों के सहारे जितनी अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं ।

मध्यकालीन अन्धेरगर्दी ने अराजकता उत्पन्न की और सनातन आचार संहिता को अस्त-व्यस्त करके रख दिया । व्यक्ति के चिन्तन और चरित्र को सुसंस्कृत बनाये रखने के लिए ब्रह्मविद्या और धर्मशास्त्र की सुनियोजित परम्परा मानवी उत्कर्ष के आदि काल में ही बनी थी और उसका प्रचलन स्वर्णिम अतीत का आधार बनाये रहा । इसी प्रकार समाज व्यवस्था के लिए नीति शास्त्र और न्याय, अनुशासन का संविधान विद्यमान था । धर्म तंत्र व्यक्तित्वों को देवोपम बनाये रखने के लिए और राजतन्त्र समाज सुव्यवस्था का नियोजन किये रहने के लिए अपनी-अपनी भूमिका निभाते थे और इसी संसार में सुख शान्ति की स्वर्गीय परिस्थितियाँ दसों दिशाओं में बिखरी फिरती थीं । मध्यकाल का स्वेच्छाचार ही देव दानव की तरह अतीत की गौरव गरिमा को उदरस्थ कर गया है । उल्टे को उलटने से ही सीधी स्थिति प्राप्त होती हैं । अनाचार को सदाचार में परिणत करने का महा प्रयास ही युग परिवर्तन है । इसके लिए उन प्राचीन आधारों को ढूँढ़ना होगा जो नवीन परिस्थितियों में भी सही और सार्थक सिद्ध हो सकें । पतन के प्रवाह को उत्थान की दिशा में मोड़-मरोड़ कर रख सकें ।

आज साधनों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी भावनाओं की । समय की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली भावनात्मक सम्पदा का विपुल भण्डार गायत्री मन्त्र के छोटे से कलेवर में विद्यमान देखा जा सकता है । उसमें वैयक्तिक गरिमा को बनाये रहने वाला भावनात्मक आधार मौजूद है । इस आधार को प्राचीनकाल से वेद कहा जाता है । वेद की पुस्तकों में व्यक्तित्व में देवत्व भर देने वाला तत्व दर्शन है । वेद का मूल गायत्री है । इसलिए उसे वेदमाता-देवमाता कहा जाता है । इसे धर्म पक्ष की परिधि कह सकते हैं । दूसरा पक्ष है समाज व्यवस्था-परम्परा एवं जन-अनुशासन । इसकी पृष्ठभूमि भी गायत्री मन्त्र में उसकी व्याख्या परिभाषाओं में मौजूद है । इसी आधार पर उसे विश्व-माता कहा गया है । विश्व की सुख-शान्ति और प्रगति-समृद्धि किस प्रकार अक्षुण्ण रह सकती है, आगे बढ़ सकती है इसका आलोक दर्शन गायत्री मन्त्र में जितनी अच्छी तरह मौजूद है उतना अन्य किसी आधार पर अन्यत्र कहीं पाया जा सकना संभव नहीं है ।

भूतकाल में महामनीषियों द्वारा किये गये प्रयत्नों, प्रतिपादनों और अनुभवों का सूत्र संकेत गायत्री बीज-मन्त्र

के अति संक्षिप्त कलेवर में स्तर रूप से विद्यमान है । उसी पुरातन का नवीन उपयोग इन दिनों विश्व के नव निर्माण का महान प्रयोजन पूरा करने के लिए करना होगा। गायत्री महाशक्ति के अवलंबन से ही इतना बड़ा महान प्रयोजन पूरा हो सकता है । भारतीय संस्कृति की महानता का इतिहास उसकी साक्षी देता और पुष्टि करता है । भारतीय तत्वज्ञान के आधार वेद हैं और वेदों का बीज तत्व गायत्री मन्त्र है । इसी महामन्त्र के चार चरणों से चार वेद बने हैं । उनकी व्याख्या में धर्म और आध्यात्म का विशालकाय कलेवर खड़ा किया गया ।

नवयुग के अवतरण की पुण्य बेला में गायत्री की ज्ञानगंगा को फिर से प्रवाहमान बनाने के लिए इन दिनों भागीरथ प्रयत्न चल रहे हैं । इन्हें अधिक मर्धक, व्यापक और सफल बनाने के लिए जागृत आत्माओं के पुरुषार्थ में अधिक प्रखरता उत्पन्न होनी चाहिए । युग-परिवर्तन के महान कार्य में जिस आध्यात्मिक ऊर्जा का उत्पादन करना पड़ेगा उसके लिए गायत्री सन्निहित तत्त्वज्ञान और साधना-विज्ञान अधिकमर्धक जनमानस की गहराई तक पहुँचाने के लिए इन दिनों तत्परतापूर्वक प्रबल प्रयत्न किये जाने चाहिए । यही युग धर्म है । युग साधना के रूप में गायत्री ही उपने समय की आवश्यकता पूरी करेगी, युग शक्ति के रूप में उसका उदय प्रभातकालीन अरुणोदय के रूप में प्रत्यक्ष देख जा सकता है ।

● ● ●

# देवत्व का अवतरण गायत्री के माध्यम से

नवयुग की प्रधान प्रक्रिया है—'मनुष्य में देवत्व का उदय' । 'दूसरी संभावना' धरती पर स्वर्ग का अवतरण प्रमुख नहीं है उसे प्रतिक्रिया भर कहा जा सकता है । श्रेष्ठ सज्जनों की—समर्थ सत्प्रवृत्तियों की—समन्वित गतिविधियों का परिणाम और परिपाक मंगलमयी परिस्थितियों के रूप में सामने आना ही चाहिए । इन्हीं को धरती पर स्वर्ग का अवतरण कहा गया है । इसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । सक्रियता और सद्भावनाओं का सम्मिश्रण ही दो रंगों को मिला देने से तीसरा रंग बन जाने की तरह सुख-शान्ति भरे वातावरण के रूप में परिलक्षित होता है । सतयुग और राम-राज्य में सुविधाओं की कमी न थी । क्योंकि लोगों के व्यक्तित्व और व्यवहार में उच्चस्तरीय आदर्शवादिता का समावेश था ।

परिस्थितियाँ दृश्यमान तो होती हैं—अनुभव में भी वे आती हैं, पर वस्तुत: उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है । जनमानस के आकाश में जब वर्षा के जल बिन्दु भरे रहते हैं तो उन पर चमकने वाली किरणें इन्द्र धनुष के रूप में प्रतिभाषित होती हैं । वैसा ही नयनाभिराम दीखने वाला, मनमोहक लगने वाला सतयुग के रूप में दृष्टिगोचर होता है । मन:स्थिति की प्रतिक्रिया ही परिस्थिति होती है। मनुष्य में देवत्व का उदय ही प्रधान है । धरती पर स्वर्ग का अवतरण अलग से दीखता भर है इसलिए उसका नाम भी पृथक् देना पड़ता है । तत्वत: दोनों को क्रिया और प्रक्रिया के रूप में अविच्छिन्न ही माना जा सकता है ।

अब पर्यवेक्षण मनुष्य में देवत्व के उदय का किया जाना चाहिए । देवताओं के व्यक्तित्व में अनेकों विशेषताएँ होती हैं । वे सुन्दर होते हैं । तरुण रहते हैं । प्रसन्न दीखते हैं । उदारता बरतते हैं । उनके पास समृद्धियों की कमी नहीं रहती । स्वयं तृप्त रहते हैं और दूसरों को तृप्त करते हैं । ऐसी-ऐसी अनेकों विभूतियों से भरी पूरी सत्ता 'देव' कहलाती है । कल्पना क्षेत्र में ऐसे देवता किसी विशेष लोक में निवास करने वाले अदृश्य प्राणी भी माने जाते हैं और उनकी अभ्यर्थना से अनेकों वरदान मिलने के स्वप्न देखे जाते हैं । इसमें सच्चाई कम और अलंकारिक कल्पना अधिक है । इतने पर भी दैवी सत्ता का अस्तित्व सुनिश्चित है । उसे प्रत्यक्ष देखना हो तो उत्कृष्ट व्यक्तित्वों में उस गरिमा का दर्शन प्रत्यक्ष किया जा सकता है ।

जो विशेषताएँ देवताओं की सत्ता में परिकल्पित की गई हैं लगभग उन्हीं से महामानवों को सुसम्पन्न पाया जाता है । अलंकारिक प्रतिपादन तो थोड़ा-सा ही बचा रहता है । उसमें लाक्षणिकता तो होती है, पर वास्तविकता का अंश भी इतना बढ़ा-चढ़ा होता है कि उस वर्णन को भी मिथ्या नहीं कहा जा सकता है । सदा तरुण और सदा अमर रहने वाली बात काया की दृष्टि से अवास्तविक होते हुए भी चेतना के स्तर को देखते हुए अक्षरश: सही है । उमंगों की दृष्टि से तरुणाई वयोवृद्ध होने पर यथावत् बनी रहती है । शरीरों के बदलते रहने पर भी आत्मा की अमरता का यथार्थ बोध प्रत्येक तत्वज्ञानी को सुनिश्चित रूप से होता रहता है । ब्राह्मणों को 'भूसुर' की पदवी परम्परागत प्रचलन के अनुसार सहज ही मिली है । देवमानवों का ही दूसरा नाम महामानव है । उन्हीं के तीन वर्ग सन्त, सुधारक और शहीदों के रूप में पाये जाते हैं । इन्हीं की यश गाथा का गुणानुवाद कथा पुराणों में—संस्मरण उद्धरणों में—उत्साहपूर्वक कहा और सुना जाता है । ऋषि इसी स्तर के मनुष्यों को कहते हैं । महर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि इनकी श्रेणियाँ हैं । देवात्मा शब्द ऐसे ही महामानवों के लिए प्रयुक्त होता है । चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता तथा व्यवहार में शालीनता और गतिविधियों में आदर्शवादिता भरी रहने के कारण इस समुदाय का जीवित एवं अवसान के उपरान्त निरन्तर वंदन अभिनन्दन होता रहता है । देव पूजन की परम्परा में इसी तथ्य को बार-बार उभारा जाता है । देव प्रतिमाओं की स्थापना और उनकी पूजा अभ्यर्थना के माध्यम से इसी लोक शिक्षण की पुण्य परम्परा को सजीव रखा जाता है कि देवत्व के प्रति साधना श्रद्धा बनाये रहने में ही लोक-कल्याण की समस्त संभावनाएँ सन्निहित हैं ।

जिस नवयुग के आगमन की आशा, अपेक्षा और प्रतीक्षा की जा रही है—जिसे धरती पर स्वर्ग का अवतरण कहा गया है उसे प्रकारान्तर से देव युग कहना भी कोई अत्युक्ति नहीं है । पुराणों में महामानवों को

देवताओं का अवतार सिद्ध करने वाले अनेकों उपाख्यान मौजूद हैं । भगवान जब राम के रूप में अवतार लेकर आये तो रीछ वानरों के रूप में देवताओं ने भी साथ-साथ ही अवतार लिया था । भगवान कृष्ण के साथ पाँच पाण्डवों के रूप में पाँचों प्रमुख देवता सहायक शक्ति बनकर धरती पर आये थे । इतना ही नहीं स्वयं भगवान ने मनुष्य आकृति में ही अनेकों बार अनेकों प्रयोजनों की पूर्ति के लिए अवतार लिये हैं । इन उपाख्यानों के माध्यम से यही तथ्य स्पष्ट होता है कि मानवी काया में देव सत्ता की रीति-नीति का, गतिविधियों का दर्शन हो सकना पूर्णतया शक्य है । किसी समय इस स्वर्गादपि गरीयसी भारत भूमि के तैंतीस कोटि निवासी-नागरिक संसार भर में तैंतीस कोटि देवताओं के नाम से प्रख्यात थे । उन्हें देवोपम श्रद्धा सम्मान धरती के इस छोर से उस ओर तक प्राप्त था । मनुष्य में देवत्व के उदय का यही स्वरूप है ।

सत्कर्म, सद्ज्ञान और सद्भाव की त्रिविधि देव सम्पदा से सम्पन्न मनुष्यों को अध्यात्म की भाषा में देव-मानव कहा जाता रहा है । इतिहासकार उन्हें 'महामानव' नाम देते रहे हैं । जिनमें शरीर एवं साधनों की दृष्टि से समर्थता, बौद्धिक दृष्टि से सजगता और अन्तःकरण की दृष्टि से आत्मभाव की सरस स्नेहशीलता विद्यमान है, उन्हें नर नारायण की संज्ञा दी जाती रही है । उन्हें पुरुष पुरुषोत्तम भी कहते हैं । उत्कृष्टता सम्पन्न नर देह धारी आत्माएँ ही देवात्मा और परमात्मा का परम पद प्राप्त करती हैं ।

नव युग का उत्पादन यही है । स्वर्ग से धरती पर इसी गरिमामयी गंगा का अगले दिनों अवतरण होना है और इसी के लिए भागीरथ तप किया जाना है । यही है अपनी युग्र साधना का स्वरूप जिसमें जागृत आत्माओं को संलग्न होने के लिए महाकाल की प्रबल प्रेरणा हुँकार भर रही है ।

उज्ज्वल भविष्य के सपने प्रायः हर समर्थ क्षेत्र ने अपने-अपने ढंग से संजोये हैं । यह भी सभी को विदित है कि मात्र साधनों का संवर्धन ही सब कुछ नहीं है । व्यक्ति को भी अधिक सुयोग्य और समर्थ बनाना है । इसके लिए विभिन्न स्तर के उपाय भी सोचे-अपनाये जा रहे हैं । स्वास्थ्य संवर्धन की—शिक्षा विस्तार की योजनाएँ इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनती हैं । अर्थ साधनों के सहारे मनुष्य अधिक सुविकसित हो सके यही अर्थ विकास की योजनाओं का लक्ष्य है । समाज सुधारक और सेवा संगठन अपने ढंग से इसी प्रयोजन को लक्ष्य मानकर चल रहे हैं कि दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा प्राप्त करके मनुष्य सत्प्रवृत्तियों से सुसम्पन्न बन सके । धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में सुसंस्कारिता और श्रद्धा के संवर्धन के लिए तत्व ज्ञान और साधन विधान को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास होते रहते हैं । यह सामान्य स्तर की सर्वविदित चेष्टाएँ हैं जिनसे वैयक्तिक उत्थान की आशा की जाती है ।

उच्चस्तरीय स्तर पर इसी प्रयोजन के लिए दूसरे प्रयत्न चल रहे हैं । वैज्ञानिकों का एक वर्ग गुण सूत्रों की सूक्ष्म इकाइयों में हेर-फेर करने और ऐसी सफलता पाने के लिए प्रयत्नशील है जिसके आधार पर नई पीढ़ियों के रूप में अधिक अच्छी फसल हाथ लग सके । पेड़-पौधों के स्वरूप और उनके फल-फूलों को विकसित करने के लिए कलम लगाने जैसी पद्धतियाँ अपनाई गई हैं । पशु प्रजनन के लिए कृत्रिम उपाय सोचे गये हैं और सफल भी हुए हैं । रजवीर्य के स्तर एवं निषेचन क्रम में उलट-पुलट करके वर्तमान लोगों को न सही अगली पीढ़ी की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को अपेक्षाकृत अधिक समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्न चल रहे हैं ।

मनोवैज्ञानिकों के प्रयत्न इससे भी अधिक उच्चस्तरीय हैं । वे व्यक्ति को कार्य-कलेवर और साधन-सामग्री से बहुत आगे की सत्ता मानते हैं और उसका निरूपण 'मनस्' तत्व के रूप में करते हैं । शरीरगत दुर्बलता और रुग्णता के लिए वे मानसिक विकृतियों को ही उत्तरदायी मानते हैं । चिन्तन की अस्तव्यस्तताओं और दृष्टिकोण के कारण मनुष्य का निजी और सामाजिक जीवन कितना दुर्गतिग्रस्त होता है इसके पक्ष में पर्वत जितने प्रमाण मिलते जाते हैं । खिन्नता और उद्विग्नता से ग्रसित रहना परिस्थितियों के कारण नहीं, चिन्तन की अव्यवस्था के कारण ही होता है । मनःशास्त्री पूरा बल देकर कहते हैं कि व्यक्ति को सही सोचने का तरीका समझाने और वातावरण बनाकर उसके लिए अभ्यस्त करने का प्रयत्न ही मानवी कल्याण का प्रधान उपाय है । पैरासाइकालोजी, मैटाफिजिक्स, न्यूरोलॉजी आदि मनोविज्ञान की धाराओं का प्रयोग, प्रतिपादन इसी दृष्टि से चल रहा है कि अगले दिनों व्यक्तित्वों को अधिक समर्थ, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाया जा सके ।

दार्शनिक दृष्टि से भी इस दिशा में कम काम नहीं हुआ है । नीत्से आदि दार्शनिकों द्वारा अतिमानव की कल्पना दी गई, कहा—मनोबल सम्पन्न महत्वाकांक्षाएँ अपनाकर कोई व्यक्ति या वर्ग असाधारण बन सकता है और उस वर्चस्व के आधार पर साधारणों को नियंत्रण में रखने और इच्छित दिशा में चलने के लिए विवश कर सकता है । ऐसे अतिमानवों का समुदाय स्वयं गौरवशाली रह सकता है और जन-समुदाय को अभीष्ट प्रगति की दिशा में घसीटटता, धकेलता, खदेड़ता चल सकता है । इस प्रतिपादन का वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में बड़ा जोर-शोर से प्रचार हुआ । महत्वाकांक्षी लोगों को यह रुचा भी बहुत और उनने इसे कार्यान्वित करने के लिए आतुर प्रयास भी किये । अधिनायकवाद इसी प्रतिपादन की देन है । जर्मनी में इसका प्रयोग राजकीय स्तर पर पूरे जोश-खरोश के साथ हुआ । नाजीवाद उभरा । हिटलर ने इस विचारधारा का अपने देश में पूरी तरह प्रयोग किया और जर्मन नागरिकों को उसी रंग में सरावोर कर दिया । जातीय श्रेष्ठता की मदिरा पीकर एक बड़ा समाज महत्वाकांक्षाओं के उन्माद से इस बुरी तरह आवेश ग्रस्त हो चला कि पड़ौसी देशों को अकारण कुचलते हुए समूचे यूरेशिया को उदरस्थ कर जाने के लिए लोभ संवरण कर सकना सम्भव ही न रहा । प्रथम विश्व युद्ध से लेकर—द्वितीय महायुद्ध तक के रोमांचकारी आक्रमणों में संलग्न जर्मनी की गतिविधियाँ इसी अतिमानववाद की देन थीं । उसे दैत्य दर्शन के सामयिक प्रयोग की संज्ञा दी जा सकती है । यह हवा इटली, रूस, चीन आदि अनेक देशों को न्यूनाधिक रूप से प्रभावित करती रही है और उसके उद्धत प्रदर्शन समय-समय पर सामने आते रहे हैं । दक्षिण अफ्रीका से लेकर अमेरिकी गोरों तक के अनेक समुदाय अपने-अपने ढंग से जातीय श्रेष्ठता का अहमन्यता से बेहिचक उत्पीड़न करते रहे हैं । वर्ग, लिंग, जाति, समाज, राष्ट्र के नाम पुराना सामन्तवाद अब नये फासिज्म का रूप इन्हीं दार्शनिक सिद्धान्तों को उत्साहपूर्वक अपनाने लगा है और उसे तर्क संगत सिद्ध कर रहा है ।

अधिनायकवाद फासिज्म वर्ग विशेष को अतिमानव बनाने की एक दार्शनिक चेष्टा है । उससे उत्पन्न लाभ-हानि का, उचित-अनुचित का विवेचन यहाँ नहीं हो रहा है । इन पंक्तियों में तो इतना ही कहा जा रहा है कि अतिमानव बनाने की उत्तेजनाएँ दर्शनिक क्षेत्र में भी उत्पन्न की जाती रही हैं । मौन वहाँ भी नहीं हैं ।

उपर्युक्त स्तर के सभी प्रयत्न मनुष्य के बहिरंग पक्ष का स्पर्श करते हैं और उसे भौतिक सामर्थ्यो से सुसज्जित करके उसी प्रकार की प्रगति की अपेक्षा करते हैं । विचारणीय यह है कि क्या इन सामर्थ्य साधनों की आज भी कमी है ? अन्तर इतना ही है कि इन दिनों साधन और शक्ति अलग से विद्यमान है, उसी को इन प्रयत्नों के द्वारा शरीर के अन्तर्गत प्राप्त कर लिया जायेगा, इससे क्या बना, लाठी का प्रहार किया जाय या घूँसे का अन्तर थोड़ा-सा ही है । जो कार्य आज लाठी के माध्यम से पूरा होता है, वही कल घूँसे से होने लगा तो भी स्थिति तो लगभग यथावत् ही बनी रही । भौतिक प्रगति आज भी कम कहाँ है ? उसे बाह्य साधनों के सहारे न सही शरीर के अवयवों के माध्यम से उपलब्ध और प्रयुक्त किया जाने लगा तो भी स्थिति में कोई विशेष अन्तर आने वाला नहीं है ।

हमें अतिमानव नहीं अतिमानस चाहिए । दैत्य नहीं हमें देव अपेक्षित हैं । पदार्थों में दैत्य और भावनाओं में देव रहता है । मानवी प्रगति की वास्तविकता उसके अन्तर्जगत को सुसम्पन्न बनाने में है । अन्तःकरण में स्नेहिल सद्भावना उभरे, ममता और करुणा का निर्झर उछले, तो ही समझा जाना चाहिए कि व्यक्ति ने देवत्व की दिशा में चल पड़ने का साहस सँजोया है । चरित्रनिष्ठा, आदर्शवादिता और परमार्थ परायणता की आस्थाएँ जब त्रिवेणी संगम का रूप धारण करें तो समझना चाहिए कि उस देवत्व का आविर्भाव हो चला जिसे अतिमानस की, दैवी अन्तःकरण की संज्ञा दी जा सकती है । योगी अरविन्द के पूर्णयोग प्रतिपादन में यह अतिमानस ही लक्ष्य है । इसी स्तर के व्यक्ति जीवन मुक्त, परमहंस, देव मानव, सिद्ध पुरुष, ऋषि कल्प कहलाते हैं । जीवन लक्ष्य की पूर्णता इसी स्थिति में पहुँचने पर होती है । दैवी शक्तियों के अवतरण जिस भूमि पर होते हैं वह यह अतिमानस का ही कैलास पर्वत है । इसी को क्षीरसागर, मानसरोवर आदि का नाम दिया गया है । गायत्री का

प्राण-प्रिय वाहन राज हंस इसी ब्रह्म लोक में विचरण करता है ।

नव युग का अवतरण इसी अतिमानस के विकास-विस्तार की व्यापक संभावना साथ लेकर अपनी इसी धरती पर प्रकट होने ही वाला है । इसका माध्यम क्या होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में गायत्री महाशक्ति की उदीयमान किरणों का दर्शन किया जा सकता है । चौबीस अक्षरों के शब्द गुंथन से भरा पूरा यह नन्हा-सा मंत्र अपने अन्तराल में ऐसे तत्व, सूत्र और बीज छिपाये हुए है जो मानवी अन्तरात्मा के गहन गह्वर तक अपना प्रभाव पहुँचाता है । पशु को मनुष्य और मनुष्य को देव बनाने की क्षमता उसमें विद्यमान है । गायत्री का तत्वज्ञान उच्चस्तरीय विवेक को जागृत करने की—तृतीय नेत्र—दिव्य दृष्टि खोलने की कुंजी है । उसकी उच्चस्तरीय साधना भागीरथी तप के समतुल्य है । अन्त:करणों की सीपों में गायत्री महाशक्ति की अमृत वर्षा से ऐसे मोती उत्पन्न होंगे जिन्हें नव युग के नर रत्न कहा जा सके । इन दिनों विश्व मानव को अतिमानस को उपलब्ध करने के लिए जिस दिव्य शक्ति की अभ्यर्थना—आराधना करनी पड़ रही है; उसे युग शक्ति गायत्री के नाम से जाना जा सकता है ।

## गायत्री उपासना से व्यक्तित्व का समग्र उत्कर्ष

विकास-क्रम की उपयोगिता तभी है जब वह समग्र और संतुलित हो । शरीर का कोई एक भाग अधिक बड़ा—मोटा, भारी हो जाय और अन्य अंग दुबले-पतले बने रहें तो उससे शोभा नहीं कुरूपता ही बढ़ेगी । उस एकाकी प्रगति को रुग्णता का चिन्ह माना जायेगा । स्वास्थ्य, शिक्षा, सम्पत्ति के साथ-साथ शालीनता का भी समन्वय रहना चाहिए । इनमें से कोई एक पक्ष तो बढ़ चले किन्तु सब पिछड़ी स्थिति में पड़े रहें तो, स्थिति सन्तोषजनक नहीं मानी जायेगी और वह असन्तुलन उपहासास्पद ही समझा जायेगा ।

आत्मिक प्रगति के लिए सद्कर्म, सद्ज्ञान और सद्भाव सम्वर्धन की आवश्यकता रहती है । कर्म, ज्ञान और आस्था के तीनों क्षेत्रों को समुन्नत बनाने का प्रयत्न करते हुए समग्र आत्मिक प्रगति के पथ पर चल सकना सम्भव होता है । इन तीनों का ही तीन तरह अभिवर्धन परिपोषण करा सकने में समर्थ होने के कारण भी गायत्री को त्रिपदा कहा गया है । यों इस नामकरण के और भी कितने ही प्रयोजन हैं ।

शरीर से कर्म, मन से ज्ञान और अन्त:करण से भाव बन पड़ते हैं । इन तीनों ही क्षेत्रों में सक्रियता, सदाशयता एवं सात्विकता की अभिवृद्धि जिस क्रम में होती है, उसी अनुपात से मनुष्य में देवत्व बढ़ता चला जाता है । देवत्व के साथ अनेकानेक ऋद्धियों और सिद्धियों का समुच्चय जुड़ा हुआ रहता है । सर्वतोमुखी प्रगति का आधार गायत्री के त्रिपदा स्वरूप से बनता है । उसकी उपासना में ऐसे ही धकापेल शब्दों की रटन्त भर नहीं होती, वरन् साधक को शरीर, मन एवं अन्त:करण को परिष्कृत करने के भाव भरे उपचार भी करने होते हैं और इसके लिए कितने ही प्रकार के अनुशासन, प्रतिबन्ध अपने ऊपर लादने पड़ते हैं । तपश्चर्या इन्हीं अनुबन्धों को कहते हैं । उपासना में प्रखरता भर जाने का रहस्यमय आधार इन तप अनुशासनों को ही माना गया है ।

शरीर से संयम, मन से ध्यान और अन्त:करण से समर्पण की त्रिविध प्रक्रियाएँ अपनाने से त्रिपदा की समग्र साधना बन पड़ती है ।

उच्चस्तरीय गायत्री उपासक को आहार और विहार का संयम बरतना चाहिए । आहार में सात्विकता का अधिकाधिक समावेश किया जाये । आहार की उत्कृष्टता बढ़े किन्तु मात्रा घटे तो उससे शरीर को स्वास्थ्य सम्वर्धन का और चेतना को देवत्व की अभिवृद्धि का लाभ मिलता है । अस्वाद व्रत पालन से लेकर शाकाहार जैसे उपवास उपक्रमों में आहार का रजोगुण, तमोगुण भी घटता है और पेट और मन पर अनावश्यक भार की तरह लदी रहने वाली उत्तेजना भी शान्त होती है । खाद्य-पदार्थों की प्रकृति सात्विक रहेगी तो फलस्वरूप मन में एकाग्रता, शान्ति एवं सौम्यता की सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ेंगी । अन्न से मन का स्तर बनने की बात सर्वविदित है । आहार संयम से इन्द्रिय निग्रह को मन को वश में करने का—प्रथम चरण माना गया है । उसी प्रकरण में दूसरा चरण ब्रह्मचर्य है । रजवीर्य को जीवनी शक्ति का भण्डार माना गया है। उसका कोष बढ़ता है तो वह पूँजी ओजस्, तेजस् और वर्चस् में परिवर्तित होकर चेतना की उच्चस्तरीय समर्थता बढ़ाती जाती है । ब्रह्मचर्य का स्थूल रूप वीर्य-पात पर नियन्त्रण करने से होता है और सूक्ष्म रूप में नारी के प्रति

पवित्र भावना अपनाने का अभ्यास करना होता है । सूक्ष्म वीर्य का—ओजस् का—क्षरण कुत्सित दृष्टि से होता है । वही वास्तविक व्यभिचार है । नारियों के प्रति कुदृष्टि रखने और अचिन्त्य चिन्तन करने से ओजस् का बुरी तरह क्षरण होता है और आन्तरिक समर्थता घटती है । इस अशक्तता की स्थिति से आत्मिक पुरुषार्थ बन नहीं पड़ता और साधना के जो सत्परिणाम होने चाहिए उन्हें प्राप्त कर सकना कठिन बनता चला जाता है । अस्तु शरीर साधना में संयम बरतना होता है और अनुशासित सुव्यवस्थित दिनचर्या बनाकर कर्मयोगी की तरह जीवनयापन करना होता है । यह त्रिपदा के एक पक्ष की—स्थूल शरीर की—तपश्चर्या समझी जा सकती है ।

दूसरा पक्ष है—मन । इसी संस्थान को सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं । त्रिपदा के द्वितीय चरण की साधना मनोनिग्रह से सम्बन्धित है । इसके लिए 'ध्यान-योग' का अभ्यास करना होता है । ध्यान-योग के दो प्रयोजन हैं—एक मन की अनावश्यक और अवांछनीय भगदड़ को नियन्त्रित करना, एकाग्र होना । इससे बिखराव में नष्ट होने वाली शक्ति का अपव्यय बच सकता है और इस बचत का उपयोग रचनात्मक उपयोगी कार्य में हो सकता है । ध्यान का दूसरा प्रयोग है—मनःशक्ति का प्रगतिशील प्रयोजनों में उपयोग । प्रसुप्त अतीन्द्रिय क्षमताओं को उभारने के लिए एकाग्र मनःशक्ति को ही समर्थ उपकरण की तरह प्रयुक्त किया जाता है । जीवन-लक्ष्य की दिशा धाराएँ प्रायः भौतिक लिप्साओं की बहुलता के कारण विस्मृत जैसी हो जाती हैं । जीवन किसलिए मिला है ? और उस दिव्य अनुदान का उपयोग किन कार्यों में किस प्रकार होना चाहिए, इस प्रसंग पर कदाचित ही कभी गम्भीर मनन-चिन्तन होता है । ध्यान में बहिर्मुखी प्रवृत्तियों को अन्तर्मुखी किया जाता है और अन्तःक्षेत्र की दिव्यता को प्रखर परिष्कृत बनाने का प्रयत्न किया जाता है । उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ध्यान की अनेकों विधियाँ साधकों की मनःस्थिति को देखते हुए बताई-सिखाई जाती हैं । शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की तन्मात्राएँ कान, नेत्र, जिह्वा, नासिका एवं त्वचा की पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित हैं । पाँच तत्वों का प्रतिनिधित्व इन्हीं से होता है । शब्द आकाश से, रूप अग्नि से, रस जल से, गन्ध पृथ्वी से और स्पर्श पवन से सम्बन्धित हैं । इस परिकर के अन्तराल में जो रहस्य छिपे पड़े हैं उन्हें उपलब्ध करने के लिए क्रमशः जपयोग, आकृति ध्यान, तप, संयम, प्राणायाम, सोहम् साधना, क्रियायोग का अभ्यास कराया जाता है । इन पाँच तथ्यों पर आधारित पंचकोशी साधना को ही पंचमुखी गायत्री के नाम से जाना जाता है । यह सारा अभ्यास ध्यान योग के अन्तर्गत ही आता है । मस्तिष्क की सचेतन, अचेतन और उच्चचेतन की तीनों परतों में मानवी चेतना की समस्त विशिष्टताएँ और विभूतियाँ दबी पड़ी हैं उन्हें ढूँढ़ निकालने, परिपक्व करने एवं महान प्रयोगों में लाने की स्थिति उत्पन्न करना ध्यान योग का उद्देश्य है । सूक्ष्म शरीर में गायत्री का प्रयोग करना सामान्य एवं असामान्य मानसिक शक्तियों से लाभान्वित होने का उद्देश्य ध्यान-योग से ही पूरा होता है । गायत्री साधना का द्वितीय पक्ष मनःसंस्थान को भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के उपयुक्त बनाने के लिए है । ध्यान इसी प्रयोजन को पूरा कर सकता है ।

त्रिपदा के तीन चरणों में उपासना के माध्यम से समग्र जीवन विकास के आधारभूत कारणों को परिष्कृत करने की शिक्षा दी गई है । अध्यात्म शास्त्र के अनुसार शरीर के तीन माने गये हैं—(१) स्थूल—रक्त-मांस से बनी हुई प्रत्यक्ष काया, (२) सूक्ष्म—मन, बुद्धि और चित्त की तीन मानसिक परतों का समुच्चय मनःसंस्थान तथा (३) कारण—अन्तःकरण, अन्तर्जगत—आस्थाओं का मर्म स्थल । विकास इन तीनों का ही अपेक्षित है । उन्हें पैर, धड़ और शिर के तीन वर्गों की तरह समझा जा सकता है । समग्र और सन्तुलित विकास के लिए इन तीनों को ही परिपुष्ट बनाया जाना चाहिए । इसी के संकेत गायत्री साधना में सन्निहित हैं । उपासना उपक्रमों का दर्शन और प्रशिक्षण इस उद्देश्य की पूर्ति करता है ।

अन्तःकरण की उत्कृष्टता तीन तथ्यों पर आधारित है। एक आदर्शवादी आस्थाएँ—दूसरी ममता भरी सम्वेदनाएँ—उत्कृष्ट स्तर की आकांक्षाएँ । गायत्री उपासना में शरीरगत तप संयम—आत्मसत्ता की विशिष्टता सम्बन्धी ध्यान के उपरान्त तीसरी महत्वपूर्ण बात रह जाती है—अन्तःकरण की उत्कृष्टता । इसके तीनों ही पक्ष उपासना के अवसर पर प्रयुक्त होने वाली भाव संवेदनाओं के माध्यम से पूरे होते हैं । नारी तत्व के प्रति पवित्रता की श्रेष्ठता को, आस्थाओं को, अन्तराल की गहराई तक जमाने के लिए युवा नारी के रूप में गायत्री माता की प्रतिमा बनी है । आस्थाओं के क्षेत्र में व्यापक भ्रष्टता, कामुकता ही भरी रहती है । चिन्तन क्षेत्र में मर्यादाओं का सबसे अधिक उल्लंघन इसी क्षेत्र में होता

है। युवा नारी की प्रतिमा में पवित्रतम मातृ भाव की स्थापना का अर्थ है चिन्तन क्षेत्र की अभ्यस्त भ्रष्टता के उलट देने का अभ्यास करना । यह अभ्यास इसलिए कराया जाता है कि नारी मात्र के प्रति दृष्टिकोण में पवित्रता की आस्थाएँ परिपक्व हो सकें । इस कठिन मोर्चे को जीतने के उपरान्त अन्यान्य आदर्शवादी आस्थाओं की अन्तराल में प्रतिष्ठापना होते चलना अति सरल हो जाता है । भाव संवेदनाओं की दृष्टि से माता का वात्सल्य ही सर्वोपरि है । प्रेम की उससे ऊँची उत्कृष्टता अन्य किसी मानवी सम्बन्ध में देखी नहीं जा सकती । गायत्री माता के प्रति भक्ति भाव के गहरे सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास में उसके वात्सल्य की अनुभूति का रसास्वादन करना होता है, अपने ऊपर बरसने वाले वात्सल्य की अनुभूति की जाती है । इसके प्रतिदान में साधक अपनी ओर से कृतज्ञता की अभिव्यक्ति अनेकानेक भाव भरी श्रद्धांजलियों के रूप में समर्पित करता है । उपासना काल के भाव संवेदन में एक ओर से वात्सल्य की वर्षा—दूसरी ओर से कृतज्ञता भरा आत्म-समर्पण—इन्हीं दोनों का आदान-प्रदान चलता रहता है ।

आस्थाओं और संवेदनाओं के उपरान्त तीसरा भाव पक्ष है—आकांक्षाओं का । सामान्य जीवन पर वासना, तृष्णा और अहंता की त्रिविधि महत्वाकांक्षाएँ ही छाई रहती हैं और इन्हीं की पूर्ति के लिए चिन्तन एवं श्रम को जुटा रहना पड़ता है । साधक जीवन में आकांक्षाओं का स्तर ऊँचा उठाना पड़ता है । उसका केन्द्र-बिन्दु 'राजहंस' होता है । परमहंस स्थिति पूर्णता में होती है । राजहंस बनाने का प्रयास साधना काल में चलाना होता है । राजहंस गायत्री का वाहन है । अर्थात् त्रिपदा की घनिष्ठता, समीपता एवं अनुकम्पा राजहंस पर लदी रहती है । तात्पर्य यह है कि साधक की आकांक्षाएँ राजहंस स्तर की होनी चाहिए । उस पक्षी के बारे में यह आरोपण है कि वह मोती खाता है, कीड़े नहीं । दूध पीता है, पानी नहीं । इसमें मात्र उत्कृष्टतावादी आकांक्षाओं को ही अपनाने और निकृष्ट अभिलाषाओं का दृढ़तापूर्वक परित्याग करने की दृढ़ता है । मोती ही खाने में चरित्र-निष्ठा का और जल-दूध के मिश्रण को अलग कर देना और श्रेष्ठ अंश ही ग्रहण करना विवेकशीलता को अपनाया जाना है । अध्यात्मवादी की आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ इसी वर्ग की होनी चाहिए । उसकी इच्छाएँ आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के उच्चस्तरीय उद्देश्यों को पूरा कर सकने के लक्ष्य के साथ जुड़ी रहनी चाहिए । नीतिनिष्ठा, परमार्थ-परायणता और विवेक-शीलता का समन्वय जिन आकांक्षाओं में हो रहा है, उन्हें राजहंस स्तर की कहना चाहिए । भक्ति भावना से अन्तराल को भर लेने का माहात्म्य समूचे अध्यात्म शास्त्र में भरा पड़ा है । उसे भावोन्माद, भावुकता का आवेश नहीं समझा जाना चाहिए । ऐसे ज्वार-भाटे तो आये दिन चढ़ते-उतरते रहते हैं । उनमें उमंगें और उचंगें ही उछलती-डूबती रहती हैं । इनकी आत्मिक प्रगति में कोई महत्ता या उपयोगिता नहीं है । आस्थाएँ, संवेदनाएँ और आकांक्षाओं की उत्कृष्टता ही 'भक्ति' का वास्तविक स्वरूप है । गायत्री उपासना में इसी भक्ति भावना को उभारने का अभ्यास किया जाता है । साधना काल का यह अभ्यास व्यावहारिक जीवन में उतरता है तो व्यक्तित्व समग्र उत्कृष्टता के रूप में परिलक्षित होता है । तीनों शरीरों को—चेतना के तीनों प्रकरणों को क्रमिक विकास के पथ पर तेजी से धकेल देना ही त्रिपदा गायत्री की साधना में प्रयुक्त होने वाले तीन विधि-विधानों का उद्देश्य है । एक शब्द में इस पुण्य प्रक्रिया को समग्र आत्म-विकास की प्राणवान प्रयत्नशीलता भी कहा जा सकता है ।

## व्यक्तित्व के विकास में, गायत्री साधना का उपयोग

गायत्री उपासना का दर्शन और विधान व्यक्तित्व के समग्र विकास की आवश्यकता पूरी करता है । इस प्रक्रिया में ज्ञान और कर्म दोनों का समन्वय है । इस उपक्रम को अपनाने वाला उपासना की अवधि में अपने चिन्तन को उच्च स्तर का बनाता है और शरीर को ऐसे क्रिया-कृत्यों में लगाता है जिनसे आदर्शवादिता की ओर अग्रसर होने की भाव भरी प्रेरणा मिलती है ।

न तो मात्र चिन्तन ही पूर्ण है न अकेला कर्म ही । दोनों का पृथक्-पृथक अस्तित्व तो है और उनसे यत्किंचित प्रतिफल भी प्राप्त होता है, पर वह रहता सर्वथा अपूर्ण एवं एकांगी ही है । बिजली के दोनों तार मिलकर ही प्रवाह पैदा करते हैं उसी प्रकार ज्ञान और कर्म का समन्वय ही सत्परिणाम उत्पन्न करता है । गायत्री उपासना में उत्कृष्ट जीवन के लिये अभीष्ट ज्ञान और कर्म का इस प्रकार समन्वय है कि उसे व्यक्तित्व के विकास का ऐसा समग्र शिक्षण कह सकते हैं जिसमें 'चिन्तन' और

'कर्मकाण्ड' का उपयुक्त सन्तुलन बहुत ही दूरदर्शिता के साथ मिलकर रखा गया है ।

उपासना काल में साधक का चिन्तन सर्वथा अन्तर्मुखी रहता है । बाहरी संसार का विचार और कर्म करते-करते ही पूरा समय बीतता है । पूजा पर्व का थोड़ा-सा समय इसके लिए सुरक्षित रखा गया है कि उस अवधि में मात्र अन्तर्मुखी चिन्तन किया जाये और अन्तर्जगत में सम्बन्धित तथ्यों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाये । जब तक इसी प्रयोजन में मन लगा रहता है तब तक साधना में मन लगा समझा जाता है । सन्तोष मिलता है और सत्परिणाम भी मिलता है किन्तु यदि मन थोड़े से समय में भी भौतिक जीवन का—बाह्य संसार का ही चिन्तन करने के लिये दौड़ता रहे तो समझना चाहिए साधना अधूरी रह गई । मनोनिग्रह की आवश्यकता इसीलिए समझी जाती है कि उस अवधि में जो कुछ सोचा और किया जाय वह आत्मिक क्षेत्र से ही सम्बन्धित हो । जितनी देर ऐसा बन पड़ता है, समझा जाता है कि उपासना का उपक्रम ठीक तरह बन पड़ा ।

उपासना एवं पूर्वार्ध (१) स्वाध्याय (२) सत्संग (३) चिन्तन (४) मनन है । इनमें आत्म-समीक्षा, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के सन्दर्भ में विभिन्न समस्याओं का स्वरूप एवं समाधान समझने का प्रयत्न किया जाता है । इसे साधना का तत्वज्ञान एवं दर्शन पक्ष कह सकते हैं । ब्रह्म-विद्या का सारा कलेवर इस प्रशिक्षणिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही खड़ा किया गया है । कथा-प्रवचनों का यही उद्देश्य है ।

उपासना का उत्तरार्ध वह है जिसे कर्मकाण्ड उपचार के साथ सम्पन्न किया जाता है । इसके भी चार चरण हैं—(१) पवित्रीकरण (२) देवपूजन (३) जप (४) ध्यान । प्रायः इन चार वर्गों में ही साधना विधि-विधान आ जाता है । रुचि भिन्नता और परिस्थिति विशेष के कारंण विभिन्न प्रकार के साधन-विधान बनते रहे हैं । पर उन सबको यदि वर्गीकृत करना हो तो चार में उन सबका समावेश हो सकता है ।

पवित्रीकरण में पवित्र नदी सरोवरों का स्नान, शरीर शुद्धि, वस्त्र शुद्धि, उपकरण शुद्धि आदि सम्मिलित हैं । पूजा उपचार आरम्भ करने से पहले आत्म शोधन के लिए मार्जन, आचमन, प्राणायाम, न्यास, अधमर्षण आदि की क्रियाएँ सम्पन्न करनी पड़ती हैं ।

देव पूजन में प्रतिमा पूजन, षोडशोपचार, स्तवन, अभिषेक, आरती, परिक्रमा, मन्दिर दर्शन, सूर्यार्घदान, कलश स्थापन, दीप स्थापन, हवन आदि कृत्यों को गिना जा सकता है ।

जप में मन्त्रों के रूप में जाने वाले शब्द गुच्छकों की रटन, पुनरावृत्ति, कीर्तन, मानसिक जप, सोहम् का अजपा जप, अखण्ड पारायण, ग्रन्थ पाठ आदि की गणना होती है।

ध्यान में बिन्दु योग, लययोग नादयोग, चक्रवेधन, पंचकोश साधना, प्राणयोग, ऋणयोग, बिन्दुयोग आदि वे सभी साधनाएँ आ जाती हैं जिनमें चिन्तन को एक विशिष्ट दिशा धारा में प्रवाहित करना पड़ता है ।

इस प्रकार समग्रयोग के आठ अंग हैं । भगवती साधना में दुर्गा की आठ भुजाओं के रूप में शास्त्रकारों ने इन्हीं का निरूपण किया है ।

देखना यह है कि इन आठों क्रिया-कृत्यों से किस प्रकार व्यक्तित्व का निखार और उभार सम्भव होता है । मनुष्य में देवत्व का उदय करने के लिए इन विधि-विधानों का किस प्रकार—किस मर्मस्थल पर क्या प्रभाव पड़ता है ? सामान्य दृष्टि से यह सभी उपचार जादुई लगते हैं और प्रतीत होता है कि इनमें कोई रहस्यमय प्रक्रिया भरी होगी, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं । साधना विधियों को प्रतीक पूजा कहा गया है । इनके क्रिया-कृत्यों में चिन्तन और कर्तृत्व में उत्कृष्टता की दिशा में मोड़ने की भाव भरी प्रेरणाओं का समावेश है । इन प्रेरणाओं को जितना व्यावहारिक जीवन में उतारा जाता है, उसी अनुपात से अन्तर की दिव्य शक्तियाँ उभरती हैं और उस उभार के अनुरूप, सिद्धियों और विभूतियों के चमत्कारी प्रतिफल सामने आते हैं ।

पवित्रीकरण के अन्तर्गत जल सिंचन, तीन आचमन, न्यास, अधमर्षण प्राणयाम आते हैं, इनमें जल, वायु एवं अंग-स्पर्श के माध्यम से अन्तरंग और बहिरंग की पवित्रता धारण करने के निर्देश हैं । शारीरिक कषाय और मानसिक कल्मष ही आत्मिक प्रगति के प्रमुख अवरोध हैं। उन्हें हटाने, समग्र स्वच्छता अपनाने से अन्तरात्मा में भगवान की अनुकम्पा एवं दिव्य समर्थता का अवतरण सम्भव होता है । यह तथ्य समझाने और अपनाने के लिए पवित्रीकरण के पाँचों उपचार हैं ।

दूसरा उपचार देव पूजन है । इसका तात्पर्य है देवत्व की गरिमा को स्वीकार करना और उसके सम्मुख नतमस्तक होना—पक्षधर बनना । आमतौर से सामान्य जीवन दैत्य उपासक ही रहता है । दैत्य अर्थात् वैभव, सुविधा साधन, लिप्सा-लालसा का तुष्टीकरण । इन्हीं कुचक्र में सारा श्रम और मनोयोग खप जाता है । देवत्व की कल्पना भर भले ही होती रहे, पर उसके परिपोषण के लिए कुछ बच ही नहीं पाता । इस पशु प्रवृत्ति को उलटने का संकल्प ही देव पूजन है । देवता की प्रतिमाओं के पीछे आदर्श ही आदर्श भरे पड़े हैं । प्रतिमाएँ एक प्रकार की पुस्तकें हैं जिनकी आकृतियों और प्रकृतियों के समुच्चय से यही बताया गया है कि देवानुयायी का चरित्र और चिन्तन कैसा होना चाहिए ।

देव पूजन में जो उपचार वस्तुएँ काम आती हैं वे भी सद्‌गुणों का ही प्रतिनिधित्व करती हैं और उन्हें अपनाने वाले पर देव कृपा बरसने का तथ्य प्रकट करती हैं । जल अर्थात् पवित्रता—तरलता । पुष्प अर्थात् कोमलता—सुषमा । चन्दन अर्थात् उदारता, श्रद्धा । दीपक अर्थात् परमार्थ परायणता, प्रकाश, प्रज्ञा । नैवेद्य अर्थात् मधुरता, अंशदान निष्ठा । अर्घ्यदान—श्रेष्ठता के प्रति समर्पण-विसर्जन । देवता के सम्मुख इन उपचारों को पूजा उपकरण के रूप में प्रस्तुत करने का तात्पर्य यह है कि देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए इन सत्प्रवृत्तियों को अपनाने की अनिवार्य शर्त है जिसे करने के लिए सतत प्रयत्न किये ही जाने चाहिए ।

जप का तात्पर्य है—अनवरत और अथक प्रयास एवं अभ्यास की निरन्तर पुनरावृत्ति । आमतौर से एक काम पर से मनुष्य का मन जल्दी ही ऊब जाता है और नवीनता की तलाश होने लगती है । चंचलता की यह वानर वृत्ति महान कार्यों के लिए आवश्यक अध्यवसाय बनने ही नहीं देती । उच्चस्तरीय कार्यों में बाल-क्रीड़ा जैसा कौतुक भी नहीं होता, वे साधारण मनःस्थिति को नीरस ही लगते हैं । इसलिए क्षमता सम्पन्न व्यक्ति भी कोई महत्वपूर्ण कार्य—निरन्तर अध्यवसाय न अपना सकने के कारण कर नहीं पाते । आरम्भ भी करें तो मन की ऊब वैसा करने नहीं देती । इस मोर्चे को वही जीत सकता है जिसने मन जीता हो । कहते हैं कि जो अपने को जीतता है वही दूसरों को—संसार को—जीत पाता है । यहाँ मनोजप की ही चर्चा है । इसका अभ्यास जप के माध्यम से भली प्रकार हो सकता है । एक ही रटना को धैर्यपूर्वक देर तक करते रहने से नवीनता की तलाश के लिए उचक-मचक करने वाली वानर वृत्ति पर अंकुश लगता है और वह प्रवृत्ति जगती है जिसके अनुरूप नीरस दीखने वाले महान कार्यों पर धैर्यपूर्वक चितवृत्तियों को जमाये रहा जा सके । यह चित्त-वृत्तियों का निरोध ही महर्षि पातंजलि के अनुसार योग है । योग साधना का प्रथम चरण जप माना गया है उससे शरीर और मन दोनों को धैर्यपूर्वक अनवरत क्रम से एक ही कार्य को करते रहने का स्वभाव बनता है । महत्वपूर्ण कार्य कर सकने के लिए यह अभ्यास नितान्त आवश्यक है ।

जप के उपरान्त दूसरा चरण है ध्यान । शारीरिक गतिविधियों को जप के द्वारा अध्यवसाय रत रहने के लिए प्रशिक्षित अभ्यस्त किया जाता है । इसका अगला चरण है मन—मस्तिष्क । चिन्तन को एक केन्द्र पर नियोजित किये रहना—एक दिशाधारा में संलग्न रहना—यही है ध्यान धारणा का उद्देश्य । मन में कितनी प्रचण्ड शक्ति भरी पड़ी है किन्तु वह बिखराव से ही अस्त-व्यस्त और नष्ट-भ्रष्ट होती रहती है । यदि एकाग्रता पा सके तो सामान्य स्तर का मनुष्य भी विद्याध्ययन, अनुभव सम्पादन—शोध कार्य—विशिष्ट कला-कौशलों का उपार्जन जैसी चमत्कारी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है । एकाग्रता साधने वाले व्यक्ति ही वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार, योग निष्णात होते देखे गये हैं । सांसारिक प्रयोजनों में भी महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने में एकाग्रता के अभ्यास की ही प्रधान भूमिका रहती है ।

अन्तर्जगत की विभूतियाँ बाह्य जगत की सम्पदाओं से भी अधिक मूल्यवान हैं । समष्टि गत भौतिक सम्पदाएँ जल, थल और आकाश में से निकालनी होती हैं । किन्तु व्यक्ति को विभूतिवान बना सकने के लिए जिन दिव्य उपलब्धियों की आवश्यकता होती है उन्हें अपने भीतर ही खोजा जा सकता है । दृष्टिकोण, मान्यताएँ, आस्थाएँ, इच्छाएँ, आदतें, उमंगें, संवेदनाएँ आदि की भाव सम्पदाएँ ही मिलकर व्यक्तित्व को ढालती हैं और उसी आन्तरिक वैभव के आधार पर मनुष्य का बाह्य जीवन ढलता है । पिछड़ेपन और प्रगतिशीलता का उद्‌गम केन्द्र अन्तःक्षेत्र से ही प्रकट और प्रवाहित होता है । गड़े खजाने की तरह मनुष्य जीवन की वास्तविक और बहुमूल्य सम्पदाएँ उसके अन्तःक्षेत्र में ही भरी पड़ी हैं । इन्हें जानना, खोदना, उभारना और विकसित परिष्कृत करने का विज्ञान ही ध्यान-योग है । ध्यान को अन्तर्जगत के अंधेरे में फेंकी

जाने वाली सर्चलाईट कहा गया है । उस आधार पर उस दिव्य क्षेत्र की स्थिति को जानना और बिखरी पड़ी दिव्य सम्पदाओं को बटोर लाना सम्भव होता है ।

आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास का समुच्चय ही आत्मिक प्राप्ति है । उसी मार्ग पर चलते हुए अपूर्णता की पूर्णता में परिणति और लक्ष्य प्राप्ति में सफलता सम्भव होती है । उस प्रसंग के सारे क्रिया-कलाप अन्तर्जगत में ही करने होते हैं और उनके लिए मानसिक एकाग्रता का प्रखर उपयोग ही कारगर सिद्ध होता है । ध्यान के द्वारा यही चेतनात्मक प्रखरता प्राप्त होती है और इसके द्वारा अन्तर्जगत में उपयोगी परिवर्तन परिष्कार कर सकना सम्भव होता है ।

गायत्री उपासना का उत्तरार्ध आत्म-शोधन, देव-पूजन, जप और ध्यान है—इन चारों का उपयोग आत्म-निर्माण के लिए क्रिया-योग के रूप में किया जाता है । उसे पूर्वार्ध का—स्वाध्याय सत्संग—मनन-चिन्तन का पूरक ही माना जाना चाहिए । व्यक्तित्व के समग्र विकास को ही भौतिक और आत्मिक सम्पदाओं का—ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र माना गया है । उस प्रयोजन की पूर्ति में गायत्री उपासना का तत्वज्ञान और विधि-विधान असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होता है ।

## गायत्री जप और उसकी सामूहिक शक्ति

जप योग की प्रक्रिया आत्म-परिष्कार की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी विज्ञान-संगत और बुद्धि-सम्मत उपाय है । गायत्री उपासना में 'जप' विधान का पक्ष ही सबसे अधिक है । इस धर्मानुष्ठान के अन्य उपचार कृत्यों में तो थोड़ा-सा ही समय लगता है । प्रधानता जप संख्या में लगने वाले समय की ही रहती है ।

जप का मोटा रूप है—निर्धारित मन्त्र की पुनरावृत्ति । रगड़ने, घिसने, पीसने, मांजने, चीरने आदि की क्रियाओं से पदार्थों की स्थिति को बदलना सम्भव होता है । इसे पुनरावृत्ति का ही चमत्कार कह सकते हैं ।

बर्तन माँजने में उन्हें किसी कड़ी और खुरदरी चीज से रगड़ना पड़ता है । घर में झाडू लगानी हो तो झाड़ने की क्रिया में पुनरावृत्ति ही करनी पड़ती है । कपड़े धोने हों तो उन्हें पानी में भिगो कर फचफचाने, पीटने, रगड़ने के रूप में पुनरावृत्ति ही करनी होती है । स्नान करते समय शरीर का मलना-रगड़ना ही स्वच्छता का उद्देश्य पूरा करना है । सफाई के लिए हाथ धोते समय भी यही होता है । जूतों पर पॉलिस करने से लेकर बालों में कंघी करने तक के साधारण कामों में यही करना होता है ।

लकड़ी चीरने में आरी की और धातु काटने में रेती की यही रीति अपनानी पड़ती है । पैरों को पीछे से आगे को निरन्तर उठाते चलने पर ही लम्बी यात्राएँ सम्पन्न होती हैं । चन्दन घिसने, मेंहदी पीसने तथा तेल मालिश में एक ही कृत्य को बार-बार करने का तरीका अपनाया जाता है । आटा गूँथने, रोटी बेलने, दीवारें पोतने, फर्नीचर रंगने जैसे दैनिक कार्यों में पुनरावृत्ति का ही बोलबाला है । एक बार हाथ को इधर से उधर कर देने पर तो उपरोक्त कार्यों में से एक भी सिद्ध नहीं हो सकता । जप प्रक्रिया में इसी सिद्धान्त को चरितार्थ होते देखा जा सकता है । कड़े पत्थर पर रस्सी की रगड़ पड़ने से उस पर गहरे निशान बन जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि कठोर दीखने वाली मनोभूमि पर जप जैसे सुसंस्कारी प्रयोगों का उपयोगी सत्परिणाम उत्पन्न न हो सके ।

मैल छुड़ाने के लिए जितने भी प्रकार हैं उन सब में—रगड़ का सिद्धान्त सर्वत्र क्रियान्वित होते पाया जायेगा । पॉलिस का एक तरीका तो चमकदार रसायनों को ऊपर से पोत देना भी होता है, पर दूसरा तरीका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है—रगड़ने का । धातुओं पर सस्ती और अच्छी पॉलिस उन्हें मात्र रगड़ने भर से पूरी हो जाती है । धातु पॉलिस की मशीनों में प्रायः घिसने का कार्य होता रहता है । संगमरमर और उसके छोटे टुकड़े चिप्स लगा कर मकान बनाये जाते हैं और पत्थर में चिकनाई की सुगढ़ता बढ़ाने के लिए उसकी रगड़ाई, घिसाई पर मशीनों या मजूदरों को लगाया जाता है । यह रगड़ने की पुनरावृत्ति के ही चमत्कार हैं । जप साधना में शरीर और मन के दिव्य संस्थानों को खोद निकालने में भी यही सब होता रहता है । कुआँ खोदने में बार-बार फाबड़े चलते हैं । छैनी और हथौड़ी का कार्य भी लगातार ही चलता है उसके बीच में तनिक-सा विश्राम भर रहता है । ऐसा तो हृदय की धड़कन और फेंफड़े के श्वास-प्रश्वास क्रमशः लगातार चलते रहने पर भी बीच-बीच में तनिक-सा विराम होता रहता है । मांस पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन—रक्त का दौड़ना-लौटना यह सब भी अनवरत क्रम से चलते हैं । घड़ी के पेण्डुलम क्रम की तरह ही शरीर की सारी मशीन पुनरावृत्ति क्रम से उत्पन्न होने वाली शक्ति द्वारा ही परिचालित होती है । जीवन

धारण में आन्तरिक अवयवों की निरन्तर गतिशीलता पुनरावृत्ति के रूप में ही देखी जा सकती है ।

रगड़ने की तरह ही दूसरी क्रिया गतिचक्र की है । उससे भी शक्ति उत्पन्न होती है । मशीनों का चक्कर घूमता है तो उनमें अपने-अपने ढंग की सामर्थ्य उत्पन्न होती है । बिजली की मोटरें, तेल के इन्जन सभी की संरचना गोलाई वाली गति उत्पन्न करने की है । इस गतिशीलता में भी गोलाई स्तर की पुनरावृत्ति ही होती है । ग्रह-नक्षत्र अपनी कक्षाओं में अनवरत गति से दौड़ते और अपने-कक्ष में परिक्रमा करते हैं । इसी से उनमें आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है और उसी के सहारे वे अन्य ग्रह-नक्षत्रों से सम्बन्ध सूत्र बनाकर अधर में लटके रहते हैं । परिक्रमण की शक्ति एवं चुम्बकीय क्षमता प्राप्त करते हैं, उसके बिना उनकी स्थिरता ही संदिग्ध हो जायेगी ।

गोलाई में परिभ्रमण करना समस्त वाहनों में लगे रहने वाले पहियों की चमत्कारी उपलब्धि है । इसके बिना परिवहन और यातायात में काम आने वाले किसी भी यन्त्र का कार्य चल नहीं सकता । धकेल गाड़ी से लेकर रेलगाड़ी तक की सभी मशीनें चक्कर घूमने पर ही चलती हैं । आगे-पीछे वाली रगड़ की तरह गोलाई वाली अग्रगामी गति भी शक्ति उत्पन्न करती है । उसे हर कोई जानता है । मन्त्र जप में शब्द क्रम की पुनरावृत्ति भी होती है और उसका अनवरत क्रम गोलाई वाली गति भी बना देता है, फलतः उस उपाय उपचार से दुहरा लाभ होता है । इस लाभ से मनुष्य को अपने प्रकट और अप्रकट शक्ति संस्थानों को प्रखर बनाने में असाधारण सहायता मिलती है ।

बिजली का पंखा जब तेजी से घूमता है तो उसका एक चक्र बन जाता है, लट्टू घूमता है तो वह खड़ा जैसा घूमता है । जलती बारूद के खिलौने जब तेजी से घूमते हैं तो भी देखने में गोल चक्र जैसा दीखते हैं । पक्षी उड़ाने की 'गोफन' भी जब तेजी से घुमाई जाती है तो लगता है कोई बड़ा पहिया घूम रहा हो । एक कक्षा में अनवरत गति का चलते रहना गति चक्र बनाता है और उससे वही सब काम सम्पन्न हो सकते हैं जो गोलाई में घूमने वाली मशीनों द्वारा सम्भव होते हैं । भगवान कृष्ण का चक्र सुदर्शन असाधारण शक्तिशाली था । पर गति न होने पर तो वह भी एक साधारण-सा धारदार पहिया बनकर कहीं पड़ा रहता होगा । गति की तीव्रता से एक शक्तिशाली स्वतन्त्र इकाई बनकर खड़ी हो जाती है । उसके मध्यवर्ती विरामों का पता भी नहीं चलता । ऊपर से बरसने वाली बूँदें एक छड़ की तरह खड़ी दिखाई देती हैं यद्यपि वे वस्तुतः अलग-अलग ही होती हैं । मन्त्र जप में चलने वाली शब्दों की क्रमबद्ध गतिशीलता न केवल रगड़ का प्रयोजन पूरा करती है वरन् उससे गोलाई जैसी गति भी बनती है और सामर्थ्य का उपयोग व्यक्तित्व की विभिन्न परतों को समुचित एवं परिष्कृत करने के काम आता है । जपकर्ता अनेक लाभों से लाभान्वित होते हैं, इसके पीछे पुनरावृत्ति के कारण उत्पन्न हुई रगड़ एवं गोलाई दोनों ही शक्ति संधान का काम करते हैं ।

पदार्थ विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि समस्त ऊर्जा स्रोतों के अन्तराल के ताप की तरह ही शब्द शक्ति का भी बहुत ऊँचा स्थान है । दोनों की तरंगें होतीं तो भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं, पर उनकी समर्थता किसी से किसी की कम नहीं । बिजली, भाप, तेल, कोयला आदि के ईंधनों के माध्यम से प्रकट होने वाली शक्ति के पीछे जो शक्ति तरंग काम करती है उनमें ताप की तरह समय-समय पर शब्द की शक्ति भी अपनी प्रचण्डता का परिचय देती देखी गई है । किसका उपयोग अधिक होता है किसका कम प्रश्न यह नहीं, वरन् यह है कि क्षमता की दृष्टि से दोनों के स्तर में अन्तर तो नहीं है । इस दृष्टि से विश्व के अन्तराल में काम करने वाली समर्थ तरंगें शब्द शक्ति अपनी सहेलियों में किसी से हलकी नहीं पड़तीं ।

शब्द के साथ चेतना का समावेश हो जाने से उसका स्तर भौतिक क्षेत्र की सामान्य शब्द तरंगों की अपेक्षा अत्यधिक सामर्थ्यवान बन जाता है । फिर उसमें साधक की आस्थाएँ, तपश्चर्याएँ भी अपना योगदान करती हैं । फलतः मन्त्र जप द्वारा उत्पन्न की गई शब्द सामर्थ्य में और भी उच्चस्तरीय धाराएँ जुड़ जाती हैं, फलतः उनका स्तर इतना ऊँचा उठ जाता है कि जिसके प्रभाव को देखते हुए उसे अद्भुत एवं चमत्कारी कहने में कोई संकोच नहीं रह जाता ।

मन्त्रों में गायत्री मन्त्र सर्वोपरि है । उसकी शब्द रचना में अक्षरों का गुंथन ध्वनि विज्ञान के रहस्यमय सिद्धान्तों के आधार पर विनिर्मित किया गया लगता है । अर्थ की दृष्टि से इन २४ अक्षरों में दिव्य चेतना से ऋतम्भरा प्रज्ञा का अन्तःचेतना में अवतरण सम्भव करने के लिए आग्रह अनुरोध भर किया गया है । यह स्तवन

अनुरोध श्रुति साहित्य के अन्य छन्दों में भी मौजूद है । गायत्री की विशिष्टता अर्थ की दृष्टि से अनुपम नहीं कही जा सकती, पर उसका ध्वनि गुंथन ऐसा है जिससे उसकी जप प्रक्रिया असाधारण स्तर के ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करती है । उसके सत्परिणाम न केवल जपकर्ता को मिलते हैं, वरन् वह उन लाभों को अन्यों के लिए स्थानान्तरित कर सकता है । इस जप प्रवाह की प्रक्रिया का समूचे वातावरण पर उपयोगी प्रभाव पड़ने से उसका लाभ समस्त संसार को मनुष्यों एवं अन्यान्य प्राणियों को भी मिलता है ।

सम्पदा, विद्या, बलिष्ठता आदि शक्तियों के बदले जिस प्रकार भौतिक सुविधा साधन खरीदे जाते हैं उसी प्रकार आत्म-शक्ति के द्वारा सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत की अनेकों शक्तियों के जगने एवं काम में लाने की परिस्थिति बनती है । आत्म-शक्ति के उत्पादन अभिवर्धन में सहायक यों और भी कई प्रकार एवं साधन हैं, पर उन सब में सरल तथा प्रभावी उपाय मन्त्र जप का है । उसे समग्र विधि-विधान से—योगाभ्यास एवं तपश्चर्या के सहयोग से किया जा सके तो इसकी प्रतिक्रिया चमत्कारी होती है । उससे आत्म-शक्ति का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है । यही बढ़ी-चढ़ी आत्म-शक्ति का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है । यही बढ़ी-चढ़ी आत्म-शक्ति की मात्रा साधक को सिद्ध पुरुष बनाती है और उसके द्वारा अन्य अनेकों पिछड़े हुए, आगे बढ़ने का—संत्रस्त और संतप्त संकट से उबरने का, अभावग्रस्त सुसम्पन्न बनने का लाभ उठाते हैं ।

एक ही उपक्रम अनेकों स्थानों पर बड़े परिमाण में चलता है तो उसका संयुक्त उपार्जन सारे वातावरण को प्रभावित करता है । बड़े नगरों में घर-घर चूल्हे जलते हैं फलतः उस क्षेत्र में गर्मी अधिक मात्रा में बढ़ी पाई जाती है । औद्योगिक नगरों में जगह-जगह चिमनियाँ जलती हैं, फलतः सबका मिलाजुला धुआँ उस सारे इलाके पर धुँध छाये रखता है । यह प्रदूषण के बुरे उदाहरण हुए । जहाँ पुष्पों की खेती होती है—चन्दन जैसे सुगन्धित उद्यान लगे होते हैं, वह सारा क्षेत्र सुवास से महकता रहता है । यह एक अच्छे उदाहरण हुए । गायत्री जप अनेकों द्वारा—अनेक स्थानों पर किये जाने लगे तो उससे उत्पन्न अध्यात्म ऊर्जा उस क्षेत्र के व्यक्तियों की मनःस्थिति एवं परिस्थिति को प्रभावित करती है । संयुक्त साधना के फलस्वरूप दूर-दूर तक का वातावरण सत्प्रवृत्तियों से भरता है और सुखशान्ति की संभावना बढ़ाता है ।

सामूहिक गायत्री अनुष्ठानों का और भी अधिक पुण्य फल माना गया है । लाभ तो एकाकी—पृथक्-पृथक् प्रयत्नों का भी है, पर संयुक्त प्रयासों के परिणाम तो और भी अद्‌भुत होते हैं । सींकें अलग-अलग रहना और उनकी एक बुहारी बँधने—धागे अलग-अलग रहना और उनका इकट्ठा रस्सा बटने—बूँदों का अलग बिखरना और एक तालाब में जमा होने में कितना अन्तर होता है, इसे हर कोई सहज बुद्धि से जान सकता है । गायत्री उपासकों का एक संकल्प के अन्तर्गत एक संगठन सूत्र में बँध कर संयुक्त साधना का उपक्रम करना हर दृष्टि से हर किसी के लिए कहीं अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होता है । गायत्री परिवार के तत्वावधान में लाखों साधकों द्वारा-दिव्य मार्ग-दर्शन के अन्तर्गत—संयुक्त साधना संकल्प का जो उपक्रम इन दिनों चल रहा है उससे आत्म-शक्ति का प्रचण्ड शक्ति समुच्चय होना प्रत्यक्ष है । इसी संयुक्त साधना शक्ति की महाकाली को महाकाल द्वारा इन दिनों नव-निर्माण के लिए—युग-निर्माण के लिए—प्रयुक्त किया जा रहा है । उसके सत्परिणामों की अपेक्षा आशा और विश्वासपूर्वक की जा सकती है । इन प्रयासों से उज्ज्वल भविष्य की संरचना में महत्वपूर्ण योगदान मिलना निश्चित है ।

सूक्ष्म वातावरण का परिशोधन करने के लिए अध्यात्म विज्ञानियों द्वारा कतिपय दिव्य उपचार समय-समय पर किये गये हैं इसके प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं । रावण काल के विक्षुब्ध वातावरण को समाहित करने का कार्य लंका विजय के उपरान्त भी शेष रह गया था । भगवान राम ने दशाश्वमेध घाट पर दश अश्वमेधों की संकल्प श्रृंखला पूरी की थी । कंस, दुर्योधन, जरासन्ध जैसे असुरों के न रहने पर भी महाभारत काल के विक्षोभ वातावरण में भरे रहे । भगवान कृष्ण ने उनका समाधान आवश्यक समझा और पाण्डवों से राजसूय यज्ञ कराया । महर्षि विश्वामित्र अपने समय की असुरता को दुर्बल बनाने के लिए जो बृहद् यज्ञ रच रहे थे उसका पता असुरों को चल गया और वे ताड़का, सुबाहु, मारीच के नेतृत्व में उसे नष्ट करने के लिए आक्रमण करने लगे । राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए जाना पड़ा था । ऐसे समाधान उपचारों में यज्ञ प्रक्रिया का बहुत महत्व रहा है । यज्ञों में अग्निहोत्र की तरह ही जप-यज्ञ भी है । अग्निहोत्र में साधन चाहिए पर जप-यज्ञ व्यक्तिगत साधनों से भी सम्पन्न हो सकता है । यज्ञ तो

सामूहिक होते ही हैं । उसमें होताओं की सम्मिलित साधना का चमत्कार देखने को मिलता है । जप-यज्ञ को जब अनेक जपकर्त्ता संकल्प पूर्वक समाहित होकर करते हैं तो उससे भी सम्मिलित शक्ति उत्पन्न होती है । ऐसी सामूहिक साधनायें पुरश्चरण कहलाती हैं । तपश्चर्या युक्त सामूहिक संकल्पों के द्वारा विशिष्ट उद्देश्य के लिए किये गये पुरश्चरण भी वातावरण में अभीष्ट अनुकूलता उत्पन्न करते हैं ।

## युग शक्ति का अवतरण और प्रसार विस्तार

गायत्री को युग शक्ति के रूप में अवतरित होते हुए हम सब प्रत्यक्ष देखते हैं । लगता है युग परिवर्तन की आवश्यकता पूरी करने के लिए वह अपनी निरन्तर शाश्वत परम्परा को यथावत् बनाये रहकर भी समय की आवश्यकता पूरी करने वाली कार्य-पद्धति अपना रही है ।

भगवान् को परिस्थितियों के अनुसार अपने अवतारों के स्वरूप और क्रिया-कलाप में हेर-फेर करना पड़ा है । हिरण्याक्ष जब धारती की सम्पदा चुरा कर समुद्र में जा छिपा था तो वाराह रूप बनाने की आवश्यकता पड़ी जिससे उस दस्यु की स्थिति का सामना करना पड़ा । समुद्र मंथन का प्रयोजन पूरा करने के लिए कच्छप का रूप धरना ही उपयुक्त था । हिरण्यकश्यपु को वरदान था कि वह मनुष्य या पशु में किसी के द्वारा न मारा जा सकेगा तो आधा पशु और आधा मनुष्य का विचित्र स्वरूप बनाकर नृसिंह आये और अस्त्र-शस्त्र से न मरने के उसके वरदान को निरस्त करने के लिए नाखूनों को हथियार बनाया । आततायियों से जूझने के लिए परशुराम, मर्यादाओं को स्थापित करने के लिए राम, योग का कर्म प्रधान रूप प्रस्तुत करने के लिए कृष्ण और बौद्धिक क्रान्ति के उद्गाता बुद्ध के रूप में अवतरणों की श्रृंखला का पर्यवेक्षण करने से पता चलता है कि अवतरण प्रक्रिया में जड़ पुनरावृत्ति नहीं है । वरन् आवश्यकतानुसार गतिविधियाँ अपनाने का लचीलापन है । अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना का सन्तुलन लक्ष्य में ही स्थापित है । लीला प्रकरण तो परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहना उचित भी है और आवश्यक भी ।

आज की असुरता का स्वरूप पूर्व कालीन घटना-क्रमों से सर्वथा भिन्न है । भूत काल में असुरता सीधे आक्रमण करती रही है और उसने शस्त्र युद्ध से पराजित किया जा रहा है । अब की बार उसे छद्म नीति अपनाई है और जन-मानस पर अनास्था के रूप में अपना आधिपत्य जमाया है । अनास्था का मोटा अर्थ तो नास्तिकता होता है, पर उसे ईश्वर को न मानने तक सीमित नहीं किया जा सकता । वस्तुतः नास्तिकता का स्वरूप है आदर्शों और मर्यादाओं की अवज्ञा । नीतिनिष्ठा और समाज-निष्ठा का उल्लंघन । मानवी गरिमा की विस्मृति । संक्षेप में इसे उच्चस्तरीय आस्थाओं का ऐसा अभाव कह सकते हैं जिसके कारण आचरण में निकृष्टता की मात्रा बढ़ी ही चली जाती है । आज के संकट का यही स्वरूप है । इसे आस्थाओं का दुर्भिक्ष कह सकते हैं । उत्कृष्टता के प्रति श्रद्धा की प्रौढ़ता ही अन्तःकरण में सद्भाव, मस्तिष्क में सद्ज्ञान और शरीर में सत्कर्म बनकर उभरती है । यदि आस्थाओं में निकृष्टतावादी तत्व घुस पड़ें तो फिर हर क्षेत्र में विकृतियाँ ही भर जायेंगी । आकांक्षाओं का स्तर वैसा होगा जैसा पशुओं और पिशाचों का होता है । विचारणा वैसी उठेगी जैसी कुचक्रियों और अपराधियों में पायी जाती है । कर्म ऐसे बन पड़ेंगे जो पतित और पराजितों से बन पड़ते हैं । आज की समस्त समस्याओं का स्वरूप समझना है, गहराई में उतर कर एक ही तथ्य सामने आता है—आस्थाओं का संकट । सड़ी कीचड़ों से जिस प्रकार चित्र-विचित्र कृमि-कीटक उत्पन्न होते हैं—उसी प्रकार व्यक्ति और समाज के सामने इसी कारण अगणित समस्याएँ और विपत्तियाँ आतीं और आँख-मिचौनी खेलती हैं ।

आस्थाओं के क्षेत्र का युद्ध उसी क्षेत्र में लड़ा जायेगा। वायुयानों की लड़ाई आकाश में—पनडुब्बियों की लड़ाई समुद्र में लड़ी जाती है । थल की लड़ाई में पैदलों और वाहनों का उपयोग होता है । आस्थाओं के क्षेत्र में घुसी असुरता से जूझने के लिये युग अवतार को भी तदनुसार योजना बनानी और कार्य-पद्धति अपनानी पड़ रही है, युग शक्ति गायत्री का कार्यक्षेत्र आस्थाओं का परिशोधन है । इसी को जन-मानस का परिष्कार कहा गया है । विचार क्रान्ति की लाल मशाल में इसी तत्वदर्शन की झाँकी होती है । ज्ञान-यज्ञ का स्वरूप भी यही है । युगान्तरीय चेतना का अवतरण इन दिनों इन्हीं आधारों के सहारे होता है । समस्त भूमण्डल में बसे हुए मानव समाज के अन्तराल में अनास्था के असुर का साम्राज्य छाया दीखता है । शासक का स्वरूप क्षेत्रों की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का होने पर भी आस्था संकट का कुहासा सर्वत्र छाया हुआ है । उसकी सघनता में जहाँ-तहाँ न्यूनाधिकता भले ही रह रही है । अतएव परिष्कार का क्षेत्र भी अति व्यापक है । यह

धर्म युद्ध—सचमुच ही धर्म क्षेत्र में—अन्तःकरण में गहराई में उतर कर लड़ा जाना है । इसी के सरंजाम सर्वत्र खड़े होते दिखाई पड़ रहे हैं, अवतरण चेतना इसी के साँचे और ढाँचे खड़े करने में लगी हुई है । शिल्पी इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रयोजन पूरे करने में इन दिनों जुटे हुए देखे जा सकते हैं । जागृत आत्माओं की गतिविधियाँ इसी एक दिशा में चलती दीख पड़ती हैं।

गायत्री महाशक्ति का उपयोग सामान्य समय में उपासना, आराधना द्वारा आत्म-कल्याण का प्रयोजन पूरा करने—प्रसुप्त शक्तियों को जगा कर बढ़े हुए आत्म-बल का लाभ ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में लेने—जैसा रहता है । किन्तु युग क्रान्ति में स्वभावतः उसका कार्य क्षेत्र बढ़ेगा । अभीष्ट प्रखरता और प्रचण्डता उत्पन्न करने वाले विशिष्ट क्रिया-कलापों का निर्धारण होगा । वैसा ही इन दिनों हो भी रहा है ।

इस सन्दर्भ में गायत्री तत्व-ज्ञान की जानकारी जन-जन को कराया जाना प्रथम चरण है । इसी आधार पर उसकी आवश्यकता, उपयोगिता, क्षमता एवं गरिमा को समझ सकना सम्भव होगा । उपासना के रूप में उसे ठीक तरह अपनाये जाने की बात तो इसके बाद ही बनती है । समुचित जानकारी के अभाव में थोपी गई उपासना में न तो आस्था उत्पन्न होगी और न उसे तन्मयता, तत्परता के साथ अपनाया ही जा सकेगा । जादुई लाभ बताकर तो कुछ समय के लिए किसी को ललचाया भर जा सकता है, पर हथेली पर सरसों न जमने से उस बल-उत्साह को पानी के बबूले की तरह फूटने में भी देर नहीं लगेगी । स्थायित्व तो तथ्य को ठीक तरह समझने के बाद ही आ सकता है । युग शक्ति गायत्री का तत्व-ज्ञान जन-जन को समझाया जाना चाहिए और हर किसी की समझ में यह आना चाहिए कि समस्त समस्याओं का आत्यन्तिक हल वही है जो गायत्री मन्त्र के बीजाक्षरों में कूट-कूट कर भरा हुआ है ।

इस प्रचारात्मक प्रथम चरण की पूर्ति इन दिनों लेखनी और वाणी के माध्यम से हो रही है । उसकी गतिशीलता निरन्तर बढ़ती जा रही है । उस आलोक से व्यापक क्षेत्र को प्रकाशित होने का अवसर मिल रहा है । नगण्य से व्यक्ति इस सन्दर्भ में कितनी बड़ी सफलताएँ प्राप्त कर रहे हैं, उसे देखकर ग्वाल-बालों का गोवर्धन उठाना और रीछ-वानरों का समुद्र पुल बाँधना स्मरण हो आता है । ऐसी चमत्कारी सफलताओं में निश्चित रूप से दैवी इच्छा और सहायता का ही परोक्ष योगदान काम करता रहा है ।

गायत्री उपासना में सामूहिकता का समावेश अपने युग की नवीनता और विशेषता है । सामान्य काल में उसे नित्य नियम के रूप में अथवा विशेष योगाभ्यास के रूप में अपनाया जाता है । यह व्यक्तिगत प्रयोग हुआ । इन दिनों उसमें सामूहिकता का नया प्रयास जुड़ गया है । गायत्री परिवार की संगठन और उसके तत्वावधान—मार्ग दर्शन में चल रही एकरूपता ही नहीं एकात्मता भी जुट रही है । बिखरे हुए मणि-माणिक एक धागे में पिरो कर बहुमूल्य हार बनने जैसा ही यह प्रयोजन है । संघ शक्ति का सामूहिक प्रयासों का महत्व जिन्हें विदित है वे जानते हैं कि इस स्तर के प्रयत्न कितने बहुमूल्य सतपरिणम प्रस्तुत करते हैं । देवताओं की संयुक्त शक्ति से दुर्गावतरण की—ऋषि रक्त के संचय से सीता जन्मने की—समुद्र मंथन की कथाएँ जिन्हें विदित हैं वे जानते हैं कि सदुद्देश्य के लिए मिल-जुलकर किये गये काम कितने प्रभावी होते हैं । यों दुष्ट प्रयोजनों में भी 'गिरोह' बहुत हद तक—बहुत दिनों तक सफल होते रहते हैं ।

गायत्री परिवार द्वारा तत्व-ज्ञान का शिक्षण और उपासना क्रम का अवधारण कराने के लिए व्यक्तिगत क्षेत्र में भी भारी काम किया है और सफलता पाई है । पर उसका उल्लेखनीय प्रयास इस सन्दर्भ की सामूहिक गतिविधियों के रूप में ही किया जा सकता है । साधना स्वर्ग जयन्ती वर्ष में एक लाख नैष्ठिक साधकों ने एक वर्ष की संकल्पित साधना में २४०० करोड़ गायत्री जप सम्पन्न किये । उसके अनेकों ज्ञात और अविज्ञात सत्परिणाम सामने आये । इनमें से बंगला देश की विजय और आपत्तिकालीन स्थिति का अन्त जैसी कई घटनाओं का नाम प्रायः लिया जाता है । गायत्री यज्ञों के आयोजन जहाँ भी होते हैं वहाँ पहले सामूहिक गायत्री पुरश्चरणों के संकल्प लेने और निर्धारित संख्या पूरी करने की व्यवस्था की जाती है । आहुतियाँ इसके बाद पड़ती हैं । सामूहिक जपों की सुनियन्त्रित प्रक्रिया उस परिवार के समस्त सदस्य प्रायः एकरूपता के अनुसार ही चलाते हैं । मथुरा के शत कुण्डी—सहस्र कुण्डी यज्ञों के अवसर पर भी ऐसे ही करोड़ों की संख्या में सामूहिक जप सम्पन्न होते रहे हैं। इस प्रक्रिया के आधार पर प्रत्येक उपासक को सामूहिकता का वैसा ही लाभ मिलता है जैसा कि सेना का हर सदस्य गौरवान्वित होता है । सिपाही अलग-अलग

छितराते रहें तो उनकी क्षमता नगण्य ही बनी रहेगी । सामूहिक जप अनुष्ठानों का प्रभाव जन-मानस को परिष्कृत करने के लिए सूक्ष्म रूप में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है और उससे समग्र वातावरण को विश्व शान्ति के अनुकूल बनाने में भी भारी सहायता मिलती है ।

युग शक्ति गायत्री का व्यक्ति निर्माण की दृष्टि से चल रहे प्रयत्न की अपनी महत्ता है । उसमें सामूहिकता का समावेश हो जाने से सूक्ष्म जगत में ऐसी परिस्थितियाँ बनती हैं जिससे व्यक्ति और समाज के समान रूप से लाभान्वित होने का अवसर मिले । अवतरण प्रक्रिया का तीसरा चरण है—परिवार क्षेत्र में प्रवेश और परिष्कार । इस दिशा में इन दिनों विशिष्ट प्रयत्न चल रहे हैं और उन्हें क्रमबद्ध सुनियोजित किया जा रहा है । गायत्री परिवार के सदस्यों के घरों में यह प्रयास इन्हीं दिनों आरम्भ किया गया है कि उनके यहाँ पूजा कक्ष की विधिवत् प्रतिष्ठापना रहे और परिवार का प्रत्येक सदस्य कम से कम पाँच मिनट नमन वंदन की अभ्यर्थना का नियम निवाहे, काम पर लगने—भोजन करने से पूर्व यह न्यूनतम अभिवन्दन कृत्य कर लेने के लिए छोटे-बड़े सभी को समझाया-मनाया जाये । इतना बन पड़ने के उपरान्त घरों में सामूहिक आरती, प्रार्थना, सहगान का प्रात: सायं या एक बार का क्रम चलाया जाये । रात्रि को कथा-कहानियों के कहने-सुनने की नियमित व्यवस्था बनाई जाये ।

परिवार में आस्थाओं के आरोपण और अभिवर्धन की यह प्राचीन परम्परा को पुर्नजीवित करने वाला अभिनव प्रयास है । परिवारों में भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजन, सज्जा, आतिथ्य, उत्सव आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने का तो ध्यान रहता है, पर यह भुला दिया जाता है कि इस समुदाय में आस्थाओं की उत्कृष्टता भी आवश्यक है । घरों में गायत्री माता की प्रतीक स्थापना-अभ्यर्थना के क्रिया-कृत्यों की उपरोक्त प्रक्रिया इस आवश्यकता को पूरा करती है । इन कृत्यों की दार्शनिक विवेचना करने के नाम पर आध्यात्मिता के वे समस्त सिद्धान्त भली प्रकार समझाये जा सकते हैं जो गायत्री अभियान में सन्निहित हैं । इस प्रकार परिवार का आस्था परक निर्माण उन उपक्रमों के साथ-साथ चलते रहने से ज्ञान और कर्म के समन्वय की विधा बन जाती है और उसके दूरगामी परिणाम उत्पन्न होते हैं ।

इसी सन्दर्भ का एक और उपचार है कि चौके से भोजन परोसना आरम्भ करने से पूर्व बने हुए आहार की पाँच आहुति चूल्हे की अग्नि पर हवन कर दी जायें । गायत्री मन्त्र के साथ दी हुई इन आहुतियों में दो मिनट का समय और एक छदाम का सामान खर्च होता है । भौतिक दृष्टि से उसका कुछ भी मूल्य नहीं, पर तत्व दर्शन और प्रेरणा की दृष्टि से यह भी समझने और समझाने की दृष्टि से बहुत बड़ा आधार है । यज्ञ, भाव जगत का उच्चस्तरीय विज्ञान है । उसमें जीवन को यज्ञमय बनाने और समाज में यज्ञीय परम्पराएँ अपनाये जाने की प्रेरणा है। इस उपक्रम को दैनिक जीवन में स्थान मिलता रहे, उसे आहार से भी अधिक प्राथमिकता मिलती रहे, यह प्रशिक्षण समय-समय पर पूरे परिवार को दिया जाता रहे, उस प्रचलन का प्रतीक इस दैनिक यज्ञ को माना जाता रहे। भारतीय संस्कृति में दैनिक नित्य नियम से संध्या-वन्दन की तरह ही पाँच यज्ञों का विधान है । इनमें पाँच पारिवारिक कर्तव्यों के परिपालन का उद्बोधन है । उस प्राचीन नित्य कर्म का संक्षिप्त यह हो सकता है कि चूल्हे की अग्नि पर पाँच छोटे-छोटे अन्न ग्रासों का हवन किया जाता रहे । हर व्यक्ति यज्ञ भगवान का भोगप्रसाद-यज्ञावशिष्ट ग्रहण करे और उस धर्म भावना को हृदयंगम करे जिसमें यज्ञ से बचा हुआ ही खाने का—सत्प्रयोजन को उपयोग से भी पहले प्राथमिकता देने का—प्रतिपादन किया गया है । गायत्री संस्कृति को जननी और यज्ञ को धर्म पिता कहा गया है । दोनों का प्रतीक पूजन हर घर में चलते रहना चाहिए, इससे युग शक्ति गायत्री का कार्य-क्षेत्र हर परिवार में विस्तृत होता है और परिवार संस्था में आदर्शवादिता के तत्व-दर्शन की जड़ जमाने का अवसर मिलता है ।

परिवार निर्माण में आस्थाओं का आरोपण अति महत्वपूर्ण अंश माना जाना चाहिए । इसके लिए परिवार के हर सदस्य का जन्म-दिवस मनाये जाने की परम्परा चलाई जा रही है । उस अवसर पर हर्षोत्सव रूप में छोटा-सा गायत्री यज्ञ तो अनिवार्य रूप से होता है । साथ ही मनुष्य जीवन का गौरव, उत्तरदायित्व, लक्ष्य और सदुपयोग समझाने के लिए प्रवचन परामर्श रूप से वह सब कुछ कहा जा सकता है जो उत्कृष्टता का जीवन-क्रम में समावेश कराने के लिए कहा जाना आवश्यक है । यह आयोजन पारिवारिक भी है और वैयक्तिक भी । इसलिए उसमें व्यक्ति निर्माण और परिवार निर्माण के सभी

आधार सम्मिलित समझे जा सकते हैं । जिसका जन्म-दिन मनता है उसे न्यूनतम एक सद्‌गुण बढ़ाने और एक दुर्गुण घटाने की भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती है । इसमें धर्म की स्थापना और अधर्म के उन्मूलन वाला अवतरण उद्देश्य झाँकता देखा जा सकता है । षोडस संस्कार और पर्व त्यौहार मनाने की प्रक्रिया को भी यदि गायत्री अभियान से जोड़ लिया जाये तो उसमें व्यक्ति और परिवार को समुन्नत सुसंस्कृत बनाने के समस्त सूत्र बीज रूप से विद्यमान देखे जा सकते हैं । उन्हें विकसित किया जा सके तो कल्पवृक्ष जैसे सज्जनों से हर परिवार भरा-पूरा दीखेगा और वह उद्यान स्वर्ग लोक के चन्दन वन की तुलना करेगा ।

युग शक्ति गायत्री का व्यापक विस्तार गायत्री यज्ञों के माध्यम से होता है । उसमें विज्ञान सम्मत और भाव-संगत ऐसे तथ्य भरे पड़े हैं जो जन-समाज की भौतिक और आत्मिक प्रगति में असाधारण रूप से सहायक होते हैं । गायत्री उत्कृष्टत चिन्तन की अधिष्ठात्री है और यज्ञ आदर्श कर्तृत्व का अधिष्ठाता । दोनों के समन्वय से ऐसा वातावरण बनता है जो व्यक्ति और समाज दोनों के ही लिए परम श्रेयस्कर सिद्ध हो सके । गायत्री परिवार द्वारा युग शक्ति गायत्री के अवतरण का आलोक व्यापक बनाने के लिए इन दिनों इन्हीं उपायों का अवलम्बन लिया गया है । निकट भविष्य में और भी महत्वपूर्ण उपचार हाथ में लिये जायेंगे । गायत्री विद्या का उच्चस्तरीय शिक्षण, प्रयोग और अन्वेषण करने के लिए 'ब्रह्म वर्चस्' आरण्यक की प्रयोगशाला ऐसे आधार खड़ी कर रही है जिससे युग अवतरण के लिए अभीष्ट शक्ति प्रचुर परिणाम में जुटाई जा सके ।

## गायत्री अभियान से व्यक्ति और समाज का अभिनव निर्माण

उपासनाओं में गायत्री साधना का स्थान सर्वोपरि माना जाने का एक कारण यह भी है कि वह अपने आप में समग्र सर्वांग पूर्ण है । अन्य उपासनाओं को मत, सम्प्रदाय एवं परम्परागत मान्यताओं के कारण ख्याति भले ही मिल गई हो पर इनमें समग्रता के तत्व कम ही पाये जाते हैं । दूध तो अन्य पशुओं का भी उपयोगी ही होता है; पर गाय के दूध में लगभग वे ही विशेषताएँ पाई जाती हैं जो नारी के दूध में होती हैं । इसलिए किसी पक्षपात के कारण नहीं, गुणों के कारण ही गौ दुग्ध को प्रमुखता दी जाती है । गायत्री उपासना के सम्बन्ध में भी यही बात है । इसलिए अन्यान्य उपासनाओं में रुचि लेने वाले साधकों तक के लिए शास्त्र का परामर्श यह है कि वे गायत्री उपासना को तो अपनाये ही रहें इसके अतिरिक्त अन्यान्य देवोपासना भी कर सकते हैं ।

भूमि को जोतना तो हर हालत में आवश्यक है । इसके उपरान्त बीज बोने में भिन्नता भी रखी जा सकती है । गायत्री उपासना को भूमि शोधन—आत्म-शोधन का प्रथम प्रयोजन पूर्ण करने वाली माना गया है । धुलाई तो रँगने से पहले की ही जानी चाहिए । रँगते समय यह भी सोचा जा सकता है कि किस रंग से कपड़ें रँगें, धुलाई के सन्दर्भ में कोई मतभेद नहीं, उसकी प्राथमिकता तो सदा ही बनी रहेगी । गायत्री उपासना को मन:संस्थान की आरम्भिक आवश्यकता पूर्ण करने वाली प्रक्रिया माना गया है । यही है उसकी समग्रता और सर्वांगपूर्णता का कारण ।

उपासना का बाह्य स्वरूप ऐसा है जिससे कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि यह किसी देवी-देवता से कुछ याचना करने के लिए गिड़-गिड़ाहट जैसी कोई क्रिया है । साथ ही यह भी भ्रम होता है कि सम्भवत: देवताओं की मनोवृत्ति प्रशंसा और उपहार पाकर प्रसन्न हो जाने और बदले में उपासक का मनचाहा देने लगने जैसी होगी । यह दोनों ही मान्यताएँ भ्रमपूर्ण हैं । तथ्य यह है कि उपासना का उपचार व्यक्तित्व के अन्तराल की गहरी परतों को प्रभावित करता है और भाव संस्थान में उत्कृष्ट तत्वों का आरोपण अभिवर्धन करते हुए साधक की आत्मसत्ता में प्रखरता भर देता है । यह प्रखरता ही मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति है । उसी के आधार पर व्यवहार में शालीनता और कुशलता बढ़ती है । दूसरों की दृष्टि इसी प्रखरता की न्यूनाधिकता के आधार पर किसी का मूल्यांकन करती और उसे महत्व एवं सहयोग प्रदान करती है । उपासना किसी दूसरे की नहीं वस्तुत: अपने ही अन्तराल की की जाती है । भीतर से सन्त उगता है तो बाहर उसका विस्तार सिद्ध रूप में परिलक्षित होता है । संयोग से आत्म-परिष्कार की तथ्यपूर्ण साधना ही उपासना के विभिन्न उपचारों के रूप में दृष्टिगोचर होती

है। इसी प्रयोजन को पूर्ण करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थता युक्त होने के कारण गायत्री विद्या को उपासना क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान दिया गया है ।

दैनिक संध्या-वन्दन तो आत्मोत्कर्ष का नित्य कर्म है। उससे आगे जब उच्चस्तरीय साधनाओं की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो उसमें दो धाराएँ उभरती हैं । इन्हें अन्तराल के हिमालय से निकलने वाली गंगा-यमुना कहा गया है । इनका नाम है—(१) योग (२) तप । इनका समागम जिस बिन्दु पर होता है वहाँ एक नई अव्यक्त एवं अविज्ञात धारा सरस्वती के रूप में प्रकट होती है और तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य प्रत्यक्ष होने लगता है । बिजली के दो तार मिलते ही चिनगारियाँ छूटने लगती हैं। दो रंगों को मिलाने से तीसरा रंग बन जाता है । नर और नारी के संयोग से बालक उत्पन्न होता है । दो के मिलन से तीसरा बनने की बात रसायनशास्त्र के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं । योग और तप की दिव्य धाराओं का मिलन जहाँ भी हो रहा होग वहाँ सिद्धियों की अधिष्ठात्री आत्म-शक्ति का नया उपहार उपलब्ध होगा। गायत्री साधना के द्वारा जिन आत्मिक विभूतियों और भौतिक सिद्धियों के उपलब्ध होने का माहात्म्य बताया गया है उन्हें तत्वतः योग और तप के मिलन से उत्पन्न विशिष्टताएँ एवं सफलताएँ ही कहा जा सकता है ।

योग और तप के क्रिया-कृत्यों को देखने पर यों मोटी दृष्टि आमतौर से भ्रमग्रस्त होती है और उन्हें कोई जादुई खिलवाड़ जैसी कौतूहलवर्धक हरकत मान बैठती है । इन प्रयोजनों के लिए किये जाने वाले कृत्यों को ही सब कुछ समझ लिया जाता है और उन्हें ही सीखने-सिखाने पर सारा ध्यान केन्द्रित किया जाता है । तथ्य को न समझने वाले गहराई तक उतर नहीं पाते और यह जानने में असमर्थ रहते हैं कि योग और तप के नाम से प्रचलित क्रिया-कृत्यों के पीछे तत्व दर्शन क्यों छिपा पड़ा है और उनकी चमत्कारी शक्ति का उद्गम स्रोत कहाँ है ? उथले शारीरिक प्रयत्न ही साधना बनकर रह जाते हैं । फलतः उनकी स्थिति प्राण रहित शरीर जैसी—तेल रहित मोटर जैसी उपहासास्पद बनकर रह जाती है । जो परिणाम कहे-सुने गये थे वे न मिल पाने से उस क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को निराशा ही साथ लगती है । उनका उत्साह कुछ ही दिनों में ठण्डा पड़ जाता है । किन्तु जो वास्तविकता समझते हैं और साधना विज्ञान को आत्म-परिष्कार की सुनिश्चित पद्धति मानते हैं, वे अपने प्रयत्नों में अन्तराल को प्रभावित और परिष्कृत करने का उपक्रम जोड़े रहते हैं । ऐसी समग्र साधना प्रायः निष्फल होती नहीं देखी जाती ।

गायत्री उपासना के योग पक्ष में स्वाध्याय, मनन, चिन्तन एवं ध्यान के आधार पर किये जाने वाले सभी उपचार सम्मिलित हैं जो विचार तन्त्र द्वारा किये जाते हैं और आस्थाओं को प्रभावित करते हैं । तप पक्ष में उन क्रिया-कलापों की गणना होती है जिसमें शरीर के विभिन्न अवयवों को अनभ्यस्त रीति-नीति अपनाने के लिये अभ्यस्त कराया जाता है, इस प्रयत्न को तितीक्षा भी कह सकते हैं ।

संक्षेप में इन दोनों प्रयोजनों के—मन तथा शरीर को उत्कृष्टता का स्तर अपनाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है । साधारणतया पानी की तरह मनुष्य का स्वभाव भी निम्नगामी रहता है । पशु-प्रवृत्तियों का अभ्यास ही जीव की चिरसंचित सम्पदा है । उसी में रमण करने, रस लेने की सहज रुचि रहती है । वासना, तृष्णा और अहंता की खुमारी ही चढ़ी रहती है और उन्हीं में निमग्न रहने की आदत काम करती है । इस स्थिति को उलटने से ही उत्कृष्टता की ओर उभरना, उछलना सम्भव हो सकता है । इन्हीं प्रयोजनों के लिए योग एवं तप की समूची विधि-व्यवस्था, क्रिया-प्रक्रिया, रीति-नीति का निर्माण निर्धारण किया गया है । योग से मनःसंस्थान को और तप से शरीर तंत्र को उच्चस्तरीय गतिविधियों में रुचि और उस प्रकार की गतिविधियों में रस लेने के लिए सहमत कर लेना ही साधना विज्ञान का एकमात्र लक्ष्य है ।

इस प्रयोजन में जिसे जितनी सफलता मिलती है वह उसी अनुपात से दिव्य शक्तियों और सफलताओं से लाभान्वित होने लगता है । देवता अन्तरिक्ष में भी रहते हैं और दैवी शक्तियों का आधिपत्य सूक्ष्म जगत में भी छाया हुआ है, पर उनके साथ सम्पर्क बनाने की क्षमता अपने ही परिष्कृत अन्तःकरण में होती है । इसके बिना और किसी तरह उनसे सम्पर्क साधना सम्भव ही नहीं है । व्यक्तित्व में निकृष्टता के भरे रहने पर दैवी अनुग्रह उपलब्ध होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती । किसी प्रकार किसी को, अन्धे के हाथ बटेर लग भी जाय तो निकृष्टता के द्वारा उसका दुरुपयोग ही होता है । फलतः साधना के बल पर मिली हुई सफलताएँ अपने और दूसरों के लिए हानिकारक ही सिद्ध होती हैं । रावण, कुम्भकरण,

मारीच, सहस्रबाहु, भस्मासुर, हिरण्यकश्यपु, वृत्रासुर आदि दुर्दान्त दस्युओं के उदाहरण सामने हैं । उन्होंने किसी प्रकार साधना से उथली सिद्धियाँ प्राप्त तो कर लीं, पर उनका सदुपयोग न कर पाने के कारण उलटे संकट, विपत्ति एवं अपकीर्ति के ही भागी बन सके । साधना का विज्ञान विशुद्ध रूप से आत्म-विकास की विधि-व्यवस्था से भरा पड़ा है ।

उपासना में चिन्तन को ईश्वर के समीप पहुँचाने एवं घनिष्ठ बनाने के लिए भक्ति भावना को विकसित करना होता है । इस घनिष्ठता को ही योग कहते हैं । मोटे अर्थों में योग का अर्थ होता है—जोड़ना । आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देना ही योग है ।

ध्यान के समय किसी शरीरधारी या प्रकाश प्रतिमा आदि के रूप में भी परमात्मा की धारणा की जाती है । वह एक सामयिक प्रयोजन है । वस्तुतः परमात्मा की अनुभूति अन्तःकरण में एक दिव्य संवेदना के रूप में ही होती है और उस संवेदना की व्याख्या वैयक्तिक उत्कृष्टता एवं सामाजिक उदारता के रूप में ही की जा सकती है । देवताओं की आकृतियाँ भी सद्गुणों के समुच्चय के रूप में ही गढ़ी गई हैं । उनके साथ घनिष्ठता बनाने का तात्पर्य है दैवी गुणों से अपने व्यक्तित्व की गहराई में समाविष्ट करना । जिसकी आस्थाओं में उत्कृष्टता का जितना अधिक समावेश हो सके, समझना चाहिए कि वह उतने ही परिमाण में—भक्ति साधना की—योग साधना की—ईश्वर प्राप्ति की मंजिल पूरी कर ली गई । ईश्वर के ढाँचे में ढल जाना उसके आदेशों का—नीति-मर्यादाओं का—पालन करना ही वह आत्म समर्पण है, जिसे योग दर्शन में अनेक प्रकार से समझाया जाता है । समस्त योग साधनाओं का मूल उद्देश्य एक है कि ईश्वर को—अर्थात् उत्कृष्टता को इतना आत्मसात कर लिया जाये कि व्यक्तित्व में उसी की प्रधानता परिलक्षित होने लगे । उपासना का विवेचन करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि साधक को अपनी चेतना के चारों उपकरणों को—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को उच्चस्तरीय आस्थाओं के रंग में रंग देना पड़ता है । इसका सामान्य विवेचन किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि यह अन्तर्जगत में उत्कृष्टता भर देने और व्यक्ति को आदर्शवादी बनाने का ही एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग है ।

उपासना के विभिन्न क्रिया-कलापों पर—कर्मकाण्डों पर—विधि-विधानों पर—गम्भीर दृष्टि डाली जाये और उनका विवेचन वर्गीकरण किया जाय तो प्रतीत होता है कि वे सभी क्रियाओं के माध्यम से सदाशयता का अन्तःकरण को प्रशिक्षण देने का ही प्रयोजन पूरा करती हैं। दृश्य एवं कृत्य के माध्यम से समझना और समझाना सरल पड़ता है । विभिन्न प्रकार के अभिनय इसी उद्देश्य के लिए होते हैं । बाल कक्षा के शिशुओं को खिलौनों, वस्तुओं एवं दृश्यों के माध्यम से ही ज्ञान वृद्धि का आरम्भ कराया जाता है । बड़े लोगों को भी अनेक प्रकार के प्रदर्शनों एवं अभिनयों के द्वारा किसी जानकारी को हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया जाता है । उपासनात्मक कर्मकाण्डों के पीछे भी इसी उद्देश्य को पूरा करने का उद्देश्य छिपा हुआ है । पूजा उपचार में काम आने वाली अनेक प्रक्रियाएँ प्रकारान्तर से साधक की चेतना पर यही संस्कार डालती हैं कि उसके चिन्तन एवं अभ्यास को आदर्शवादिता की दिशा धारा में ही बहना और बढ़ना चाहिए ।

तप साधना में उन तितीक्षाओं का समावेश है जिनमें ऊँचे उद्देश्यों के लिए शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कष्ट सहना पड़ता है । कर्मफल प्रकृति क्रम एवं दूसरों के व्यवहार में आये दिन अनेकों कष्ट सहने पड़ते हैं किन्तु आदर्शों के प्रतिपालन में जो थोड़ी बहुत कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करने का साहस बन नहीं पड़ता है, जबकि वह उत्कृष्टता का उपार्जन करने के लिए नितान्त आवश्यक है । महानता के मार्ग पर चलने वाले हर व्यक्ति को आदर्शवादी निष्ठा का प्रमाण देने के लिए जीवन भर तरह-तरह की कठिनाइयों से जूझना पड़ा है । इसी कसौटी पर खरे उतरने के उपरान्त ही किसी को श्रेष्ठता का आत्म-सन्तोष और लोक-सम्मान मिल सका है । तप तितीक्षा की साधना में अनेक प्रकार के संयम बरतने पड़ते हैं और सत्प्रयोजनों के लिए बढ़-चढ़कर अंशदान करने पड़ते हैं । विरोध सहने का भी साहस दिखाना पड़ता है । यह समस्त प्रयोग क्रम तप साधना कहलाता है । इसे प्रकारान्तर से आत्मबल के अभिवर्धन का अभ्यास ही कहा जा सकता है ।

तप के दो प्रतिफल बताये हैं—कषाय-कल्मषों का परिशोधन और आत्मबल का अभिवर्धन । तप का शब्दार्थ होता है—तपाना-गरम करना । तपाने से जमीन से निकलने वाली मिट्टी मिली धातुओं का परिशोधन किया जाता है । ताप के प्रभाव से रोग कीटाणुओं को मारने की प्रक्रिया चिकित्सकों द्वारा अपनाई जाती है ।

तपाने से कच्ची मिट्टी पक्की ईंटों के रूप में मजबूत बनती है । तपाने से पानी को भाप के रूप में प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न बनने का अवसर मिलता है । धातुओं को गला कर उपकरण-औजार बनते हैं । भोजन पकाने से लेकर कारखाने चलाने तक में गर्मी की शक्ति ही काम करती है। अपनी भीतर की विशेषताओं एवं विभूतियों के उभारने के लिए भी श्रमशीलता, तन्मयता, उमंग भरी आशा-सुनिश्चित संकल्पशीलता जैसी सद्वृत्तियों को अपनाने से ही काम चलता है । इसी मार्ग पर चलने का अभ्यास तप साधना में करना पड़ता है । प्रकारान्तर से उसे सदुद्देश्यों की पूर्ति में काम आने वाले शौर्य, साहस एवं त्याग, बलिदान का अभ्यास ही कहा जा सकता है ।

उपासनाओं में गायत्री उपासना प्रमुख है । उसके कितने ही प्रयोग एवं प्रकार हैं । इस समस्त समुच्चय का वर्गीकरण, विश्लेषण, विवेचन करने पर दो ही तथ्य सामने आते हैं—मन को योगी और शरीर को तपस्वी बनाना । अर्थात् दोनों को उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता अपनाने के लिए प्रशिक्षित करना—अनुकूल बनाना और रुचि लेने की स्थिति तक पहुँचना । यह व्यक्तित्व में सत्प्रवृत्तियों का समावेश करने की साधना है । भौतिक समृद्धियाँ और आत्मिक विभूतियाँ मिलने का यह समग्र उत्कर्ष ही एकमात्र उपाय है । उपासना की समूची प्रक्रिया इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए तत्वदर्शियों द्वारा विनिर्मित की गई है । भ्रान्तियों में उलझ जाया जाये तो बात दूसरी है, अन्यथा उपासना के तत्व-ज्ञान को सही रूप में समझने और समझाने की व्यवस्था बना सके तो निश्चित रूप में इस दिशा में किया गया परिश्रम हर दृष्टि से—हर किसी के लिए उपयोगी ही सिद्ध होता है । उपासना का वातावरण जहाँ भी बनेगा वहाँ शालीनता की दिशा में अन्तःप्रवृत्तियों के ढलने का और सज्जनता की परम्परा चलने का क्रम निश्चित रूप से चल पड़ेगा ।

कहा जा चुका है कि उपासना विज्ञान में—सर्वांगपूर्ण साधना गायत्री मन्त्र के माध्यम से जैसी अच्छी तरह बन पड़ती है उसे अनुपम ही कहा जा सकता है । इस तत्व-ज्ञान और साधना-विधान को लोक रुचि का अंग बनाया जा सके तो उसकी प्रतिक्रिया व्यक्तित्वों का स्तर उत्कृष्टता की ऊँचाई में उछाल देने जैसा ही हो सकता है । कहना न होगा कि मनःस्थिति के सुधरते ही परिस्थितियाँ सुधरती हैं । व्यक्तियों का समूह ही समाज है । व्यक्तिगत निकृष्टता की परिणति ही अनेकों समस्याओं और विपत्तियों के रूप में सामने आती है । तात्कालिक सुधार के लिए—अन्य उपाय भी हो सकते हैं किन्तु विपन्नता की जड़ काटने का एक ही मार्ग है कि जन-समाज में शालीनता की परम्पराएँ चल पड़ें, पर प्रचलन व्यक्तिगत जीवन में श्रेष्ठता का सम्वर्धन होने से हो हो सकता है । वैयक्तिक श्रेष्ठता बढ़ाने के लिए सुविधा, सम्वर्धन और बौद्धिक प्रशिक्षण की बात सोची जाती है । सो है तो वह भी ठीक किन्तु इन प्रयत्नों में तब तक अधूरापन ही बना रहेगा जब तक कि अन्तःकरण की गहराई में उतर कर आस्थाओं को उत्कृष्ट बनाने को भी अनिवार्य न माना जाये । आस्थारहित सम्पन्नता अन्ततः वैसी ही अनिष्टकर हो सकती है जैसी कि बढ़ती हुई सुविधाएँ और शिक्षा के साथ-साथ बढ़ती हुई विपत्ति की विभीषिका इन दिनों सामने खड़ी है ।

गायत्री का तत्व-ज्ञान और विधि-विधान योग परक चिन्तन और तप परक अभ्यास की भली प्रकार पूर्ति कर देता है । इसका जितना अधिक विस्तार होगा उसी अनुपात से व्यक्ति की श्रेष्ठता और समाज की सुव्यवस्था बढ़ती चली जायेगी । युग परिवर्तन का अभियान इसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए है । मोटी दृष्टि से देखने पर पूजा-पाठ की बात छोटी-सी प्रतीत होती है किन्तु यदि उसकी विशिष्टता और सम्भावना को दूरदृष्टि से देखा जाये तो प्रतीत होगा कि युग समस्याओं के समाधान की-उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की—आवश्यकता पूरी कर सकने की क्षमता आस्थाओं के स्पर्श करने वाली युग क्रान्ति से ही अभीष्ट परिवर्तन सम्भव हो सकेगा । यह समस्त सम्भावनाएँ गायत्री अभियान में पूरी तरह सन्निहित हैं ।

## युग क्रान्ति में गायत्री यज्ञों की भूमिका

गायत्री महाशक्ति के दो रूप हैं—एक परोक्ष व दूसरा प्रत्यक्ष । परोक्ष का तात्पर्य है उसका चिन्तन परक प्रयोग—जप, ध्यान, धारणा और लय । इसे तत्वज्ञान या योगाभ्यास कह सकते हैं । यह प्रयोग अन्तरंग क्षेत्र में होता है । बाहर से तो आम जप भर दिखाई पड़ता है । उसका स्वरूप और प्रभाव साधनाकर्त्ता को ही विदित रहता है । अन्य लोग तो उसे शान्त एकान्त में कुछ कहते हुए ही देख पाते हैं । इसे व्यक्तिगत पक्ष भी कह सकते हैं ।

गायत्री का दूसरा प्रत्यक्ष पक्ष है—यज्ञ । इसका स्वरूप सर्वसाधारण की दृष्टि में आता है । उसमें सामूहिक प्रयत्नों का समावेश रहता है । कृत्य और दृश्य का समावेश रहने से सर्वसाधरण को उसकी हलचलों को देखते हुए कुछ निष्कर्ष निकालने और प्रभाव ग्रहण करने का अवसर मिलता है । उसमें आकर्षण भी रहता है और उत्साह भी । इसलिए उसे प्रचार एवं शिक्षण का माध्यम भी बनाया जा सकता है । यह सारी व्यवस्था समिधा, शाकल्य, यज्ञ पात्र, मण्डप, कुण्ड आदि के सहारे बनती है और पदार्थों द्वारा विनिर्मित की जाती है इसलिए इसे भौतिक भी कह सकते हैं ।

गायत्री और यज्ञ का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। शास्त्रकारों ने गायत्री को धर्म संस्कृति की जननी और यज्ञ को उसका पिता कहा है । दोनों एक-दूसरे के पूरक और अविच्छिन्न माने गये हैं । अनुष्ठानों के विधान में जप के अनुपात से हवन करने—आहुतियाँ देने का भी विधान है । उस विधान की अनिवार्यता है । जो साधनों के अभाव में उसे कर नहीं पायें उनके लिए विकल्प यह है कि जप का दशांश जप अधिक करके उसकी पूर्ति कर लें। यह स्थानापन्न—आपत्ति कालीन व्यवस्था है । मूलतः तो यज्ञ की आवश्यकता अपने स्थान पर यथावत् बनी ही रहती है ।

गायत्री मन्त्र को नित्य कर्म में संध्या वन्दन का मेरुदण्ड माना गया है । भोजन के बाद विद्या का महत्व है। विद्यारम्भ संस्कार के समय गुरु मन्त्र के रूप में गायत्री मन्त्र की ही दीक्षा दी जाती है उसके उपरान्त अध्ययन प्रारम्भ होता है । ऋतम्भरा प्रज्ञा की ध्वजा के रूप में शिर पर शिखा की प्रतिष्ठापना होती है और शरीर से सत्कर्मो की प्रतिज्ञा रूप यज्ञोपवीत धारण किया जाता है । दोनों गायत्री के प्रतीक हैं । यज्ञोपवीत के नौ धागे गायत्री मन्त्र के नौ शब्द—तीन लड़ें, तीन चरण गाँठें, व्याहृतियाँ और प्रणव हैं । सिर पर सद्ज्ञान और कन्धे पर सत्कर्म की प्रेरणा देने का अनुशासन शिखा सूत्र का समुच्चय है । इसे भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रतीक माना गया है । मुण्डन संस्कार में शिखा की स्थापना और उपनयन संस्कार में यज्ञोपवीत की धारणा समारोहपूर्वक की जाती है । इसे मनुष्य जीवन के साथ गायत्री महाशक्ति की प्रतिष्ठापना का शास्त्रीय उपक्रम कहा जा सकता है ।

यज्ञ प्रक्रिया भी ठीक गायत्री साधना की ही तरह आत्मिक प्रगति की आवश्यकता के रूप में स्वीकारी गई है और उसकी विधि-व्यवस्था को प्रायः सभी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परम्पराओं में गूँथा गया है । जन्म से लेकर मरण पर्यन्त षोडस संस्कारों का विधान है । उन सब में यज्ञ अनिवार्य है । विवाह यज्ञाग्नि की साक्षी में ही होता है और मरण के उपरान्त शरीर को चिता बनाकर यज्ञाग्नि में होमा जाता है । समस्त पर्व त्यौहारों में, शुभारम्भ समारोहों में धार्मिक विधान अपनाना हो तो यज्ञ कृत्य के लिए स्थान रखना ही होगा । होली सामूहिक वार्षिक यज्ञ ही है । जिसे चिह्न पूजा के रूप में अभी भी गाँव-गाँव में—गली-मुहल्लों में किसी न किसी तरह सम्पन्न कर ही लिया जाता है । अगरबत्ती और घृत द्वीप जलाकर उनके समन्वय से यज्ञ कृत्य की ही सरल आवश्यकता किसी प्रकार पूरी की जाती है । महिलाएँ देवी-देवताओं की पूजा करते समय अभी भी अंगारे पर लौंग, बताशा, पूड़ी, हलुआ, चढ़ा कर यज्ञ परम्परा को जीवित रखे रहती हैं । भूत भगाने वाले तक उलटा-सीधा कोई न कोई तरीका धूनी जलाने जैसा अपनाते देखे गये हैं । भोजन से पूर्व दैनिक पंच यज्ञों का शास्त्रीय विधान है । उसकी पूर्ति के लिए अभी धर्म परायण व्यक्ति न्यूनतम पाँच आहुतियों का हवन करके तब भोजन ग्रहण करते हैं ।

इस सब पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि गायत्री के चिन्तन और यज्ञ का कृत्य दोनों ही समान रूप से देव संस्कृति के अविच्छिन्न अंग माने जाते रहे हैं और दोनों को समान महत्व मिलता रहा है । सद्ज्ञान और सद्कर्म का समन्वय ही व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाता है इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सद्ज्ञान की अधिष्ठात्री गायत्री और सत्कर्म के प्रतीक प्रतिनिधि यज्ञ को देव संस्कृति के रथ में जुड़े हुए दो पहिये माना गया है ।

सामान्य रूप से वैयक्तिक जप अनुष्ठानों में सर्वत्र हवन होते ही रहते हैं । पर्व, त्यौहारों और शुभारम्भ हर्षोत्सवों में भी उसका आयोजन छोटे या बड़े रूप में होता है । प्राचीन काल में सामयिक समस्याओं का व्यापक रूप से समाधान करने के लिए विज्ञ व्यक्तित्वों के विशालकाय सम्मेलन यज्ञों के नाम से ही नियोजित किये जाते थे । राज समस्याओं का समाधान राजसूय यज्ञों में और धार्मिक समस्याओं का निराकरण वाजपेय यज्ञों के मंच पर होता था । वाजपेय यज्ञों में गायत्री यज्ञ ही प्रमुख है । यों विशेष प्रयोजनों के लिए जिस-तिस देवता की

प्रसन्नता के लिए विष्णु यज्ञ, रुद्र यज्ञ, चण्डी यज्ञ आदि भी होते रहते हैं, पर सामान्य अर्थ में—सर्वजनीन मान्यता और प्राचीन परम्परा के अनुसार यज्ञ का तात्पर्य गायत्री यज्ञ ही समझा जाता है । 'गायत्री यज्ञ' का संक्षिप्त 'यज्ञ' शब्द कह देने मात्र से भी काम चल जाता है ।

युग शक्ति के रूप में गायत्री के अवतरण का एक स्वरूप इस महामन्त्र में सन्निहित तत्व-ज्ञान से जन-साधारण को परिचित कराना और उसकी उपासना को लोकमान्यता दिलाना है । सामूहिक एवं संकल्प सूत्र में जुड़े हुए गायत्री जप अनुष्ठानों की शृंखला को व्यापक बनाया जा रहा है । इन प्रयत्नों में व्यक्तिगत अन्तराल और समूहगत वातावरण के परिष्कार की पूरी सम्भावना है । इसी प्रकार गायत्री यज्ञ अभियान को भी एक व्यापक आन्दोलन का रूप दिया गया है । सामूहिक जप और सामूहिक यज्ञों की आयोजन शृंखला गायत्री परिवार द्वारा चलाई और व्यापक बनाई गई है जो पिछले २५ वर्ष के प्रयास हैं । अब उसे लोक रुचि और अभ्यस्त परम्परा के रूप में मान्यता मिल गई है । इन आयोजनों के साथ अनिवार्य रूप से ज्ञान यज्ञ का लोक-शिक्षण जुड़ा रहता है । बहुधा इसे युगनिर्माण सम्मेलन का नाम दिया जाता है । उसे जन-मानस के परिष्कार के लिए धर्म तन्त्र के माध्यम से किया गया लोक-शिक्षण कह सकते हैं । इन आयोजनों में अंट-संट बकवास करने पर पूरा प्रतिबन्ध रहा है । सुनियोजित गायत्री यज्ञों में इस मर्यादा का पूरी तरह पालन किया जाता है कि उस मंच से गायत्री महाशक्ति के युग अवतरण का स्वरूप और क्रिया-कलाप को ही विज्ञ व्यक्तियों द्वारा समझाया जाये । प्रवचनों की इस मर्यादा का सतर्कता के साथ पालन करने और उद्बोधनकर्ताओं के अपने विषय में अध्ययनशील होने की शर्त रहने का ही प्रभाव है कि गायत्री यज्ञों के माध्यम से युग परिवर्तन के अनुरूप लोक-मानस ढालने में आशातीत सफलता मिली है । भविष्य में इस प्रयास को और भी अधिक व्यापक एवं सरल बनाया जाना है ताकि विचार क्रान्ति का—जन जागृति का—युगान्तरकारी उद्देश्य पूरा हो सके ।

यज्ञ अनुष्ठान में सामूहिक श्रमदान और समस्वर अनुशासन यह दो प्रत्यक्ष तथ्य हैं जिन्हें नवयुग की भौतिक प्रगति के मूलभूत आधार माना जा सकता है । इस कृत्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक इन दो प्रवृत्तियों को पग-पग पर कार्यान्वित होते हुए देखा जा सकता है । सामूहिक जप की अंश गणना में आहुतियों का होना, यज्ञशाला, कुण्ड निर्माण सज्जा, महिलाओं द्वारा जलयात्रा, जूलूस, शोभायात्रा, अनेक कुण्डों पर अनेक होताओं का यजन करना—मिल-जुलकर अर्थ-व्यवस्था बनाना—सहभोज, प्रचार यात्रा आदि सभी कार्य मिल-जुलकर करने होते हैं । एकाकी प्रयत्न में इतने साधन जुटाये जाने कठिन हैं । निजी पैसे से निजी यज्ञ करना हो तो भी यजमान, यजमान पत्नी, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा, आचार्य, दृढ़ पुरुष आदि कितनों की नियुक्ति उसमें करनी होती है । नित्य कर्म की आहुतियाँ भर एकाकी हो सकती हैं अन्यथा प्रत्येक सुनियोजित यज्ञ सामूहिक श्रमदान और मनोयोग जुटाये बिना हो ही नहीं सकता । इस प्रक्रिया में यज्ञ के माध्यम से सामूहिकता का—श्रम प्रतिष्ठा का—लोक-शिक्षण उदाहरण प्रस्तुत करते हुए किया जाता है ।

अस्त-व्यस्तता को निरस्त करने के लिए ब्रह्मा और आचार्य को सतर्कता अधिकारी की तरह नियुक्त किया जाता है । वे बारीकी से देखते हैं कि सर्वत्र स्वच्छता, सजगता और व्यवस्था बनी हुई या नहीं । अपनी पैनी दृष्टि से वे त्रुटियों का पता लगाते हैं और उन्हें तत्काल सुधारते हैं । मन्त्रोच्चारण सस्वर, साथ-साथ बोला जाना—आहुतियाँ सभी हाथों से एक साथ पड़ना—सबकी वेष-भूषा एवं शरीर स्थिति एक जैसी रहना, स्वच्छतापूर्वक यज्ञशाला में प्रवेश करना, घृत अवघ्राण आदि में व्यवस्था, पंक्तिबद्ध परिक्रमा जैसे कार्यों में अनुशासन की ही प्रधानता है । इनके लिए जो नियम बाँधे गये हैं, उनमें अनुशासन के परिपालन पर पूरा ध्यान रखा जाता है । इसे मोटी दृष्टि से देखा जाये तो उसे फौजी परेड जैसी सतर्कता का प्रशिक्षण भी कहा जा सकता है । यह दोनों ही सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनका जन-जीवन में जितना गहरा समावेश होगा उसी अनुपात से व्यक्ति को समुन्नत, सुसंस्कृत बनने का—समाज को सुसम्पन्न, सुदृढ़, सुव्यवस्थित होने का—अवसर मिलता चला जायेगा । प्रगति और शान्ति का यही मार्ग है ।

यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं—(१) दान उदारता, (२) संगति करण, संगठन तथा (३) देव-पूजन, उत्कृष्टता का वरण, समर्थन । इन तीनों सत्प्रवृत्तियों को अपनाया जायेगा वहाँ सज्जनता और महानता के चिह्न उभरते चले जायेंगे और समस्याओं के सुलझते देर न लगेगी । मनुष्य में देवत्व के उदय के लिए इन तीन धाराओं की गंगा, यमुना और सरस्वती की उपमा दी जा सकती है और

उनके संगम को त्रिवेणी कहा जा सकता है । रामायण के अनुसार इस संगम में स्थान अवगाहन करने वालों का आन्तरिक काया-कल्प होता है । रामायण में कहा गया है—

**"मज्जन फल देखिय तत काला ।**
**काक होहिं पिक-वकहु मराला ।।"**

इसी स्तर का आन्तरिक परिष्कार ही युग परिवर्तन का आधार माना गया है । अस्तु यज्ञ की व्याख्या विवेचना करते हुए—उस तत्व ज्ञान का स्वरूप, प्रयोग और परिणाम समझाते हुए यह मार्ग-दर्शन भली प्रकार किया जा सकता है जो युग परिवर्तन की समग्र आवश्यकता को पूरा करने के लिए आवश्यक है । स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों राष्ट्रीय झण्डे के तीन रंगों की व्याख्या करते हुए स्वाधीनता के तीन उद्देश्य और तीन कार्य-क्रम समझाये जाते थे । ठीक उसी प्रकार व्यक्ति परिवार और समाज का, बौद्धिक नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति का, भाव, ज्ञान एवं कर्म के परिष्कार का—सर्वतोमुखी प्रगतिशील लोक-शिक्षण भली प्रकार सम्भव हो सकता हैं । जीवन में यज्ञीय आस्थाएँ और समाज में यज्ञीय परम्परा प्रतिष्ठापना के लिए आवश्यक सभी सूत्र यज्ञ के तत्व-ज्ञान में बीज रूप में मौजूद हैं । धर्म परम्पराओं के आधार पर प्रगतिशीलता का प्रशिक्षण करने की प्रक्रिया कितनी हृदयग्राही और कितनी सफल हो सकती है इसका अनुभव प्राचीन काल की तरह ही इन दिनों भी किया जा सकता है । वही किया भी जा रहा है ।

यज्ञ कृत्य के अन्तर्गत कितने ही छोटे-छोटे विधि-विधान आते हैं । इन सबके पीछे वे सभी दृष्टिकोण सन्निहित हैं जिन्हें अपनाने से व्यक्ति और समाज का—नवयुग का—उत्कृष्टता का सम्पन्न ढाँचा खड़ा किया जाता है । उन सभी कृत्यों की—प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों की—विधि-विधानों की साथ-साथ व्याख्या भी होती चले तो यज्ञ आयोजन से बहुमुखी लोक-शिक्षण की उच्चस्तरीय आवश्यकता भली प्रकार पूरी होती रह सकती है । यज्ञाग्नि के रूप में युग क्रान्ति की प्राणवान प्रतिमा की स्थापना—अभ्यर्थना का भाव-भरा उपक्रम ऐसा है जिसके सहारे जन भावना को अवांछनीयता के उन्मूलन एवं शालीनता के पुनर्जीवन के लिए उभारा और जुटाया जा सकता है ।

यज्ञ का अपना विज्ञान है । उसमें मन्त्र शक्ति का, विशिष्ट शाकल्य का, रहस्यमय विधि-विधान का, संयुक्त सत्प्रयत्नों की परिणति प्रतिक्रिया का सम्मिलित प्रभाव ऐसा होता है जिससे सूक्ष्म जगत में उपयोगी हलचलें होने लगती हैं । इन उद्भूत दिव्य तरंगों के फलस्वरूप रुग्णता का निवारण—मनोविकारों का निराकरण—कुसंस्कारों का उन्मूलन सम्भव होता है । शास्त्रकारों ने यज्ञ से पर्जन्य की उत्पत्ति होने की बात कही है और पर्जन्य को समृद्धि बरसाने वाला कहा गया है । यह मात्र बादलों से पानी बरसने जैसी सामान्य बात नहीं है । पर्जन्य का तात्पर्य है—प्राण वर्षा । प्राण अर्थात् समर्थता । यह जल, वायु, ऊर्जा, पृथ्वी आदि पर आकाश से बरसती है और प्राणियों तथा पदार्थों का स्तर ऊँचा उठाती है । पर्जन्य को सर्वतोमुखी प्रगति का सशक्त आधार माना गया है । यज्ञ प्रक्रिया से उसी की उत्पत्ति और वर्षा होती है । संक्षेप में इसे सूक्ष्म जगत में बनने और बढ़ने वाली उपयोगी अनुकूलन कह सकते हैं । इसी से पर्जन्य को सर्वतोमुखी सुख-शान्ति का आधार माना गया है । यज्ञ इस विभूति का जनक होने के कारण श्रेष्ठतम सत्कर्म माना गया है और उसे यज्ञ पुरुष कह कर दृश्यमान विष्णु का सम्मान दिया गया है ।

मनु ने यज्ञकर्ता के शरीर से ब्राह्मणत्व के उत्पन्न होने की बात कही है । उसी को युग परिवर्तन प्रक्रिया के अन्तर्गत मनुष्य में देवत्व का उदय कहा गया है । पर्जन्य के सहारे बरसने वाली समृद्धि को सतयुगी सुख-शान्ति का उद्गम कहा गया है । यज्ञ प्रक्रिया द्वारा सूक्ष्म जगत का परिशोधन करने और इस प्रयोजन के लिए दिव्य शक्तियों का सहयोग प्राप्त करने का ऐसा आधार बनाया जा सकता है जो सामान्य भौतिक प्रयत्नों से सम्भव नहीं हो सकता । नव-निर्माण के लिए ये आवश्यकता तो भौतिक शक्तियों और साधनों को भी पड़ेगी, पर चूँकि वह सारा क्षेत्र चेतना के परिष्कृत करने का है इसलिए उसमें सूक्ष्म शक्तियों का—देव शक्तियों का उपयोग ही प्रधान भूमिका सम्पादित करेगा । गायत्री यज्ञों से उसी आवश्यकता की पूर्ति होती है ।

प्रस्तुत गायत्री यज्ञों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई प्रक्रिया 'देव दक्षिणा' की है जिसका अर्थ होता है दुष्प्रवृत्तियों के परित्याग और सत्प्रवृत्तियों के ग्रहण का अग्निदेव की साक्षी में लिया गया संकल्प । युग निर्माण योजना द्वारा आयोजित सभी यज्ञों में हवन करने वाले को कुछ न कुछ देव दक्षिणा देनी पड़ती है और उसका संकल्प पत्र भरना होता है । यह दक्षिणा पैसे की नहीं

वरन् आत्मपरिष्कार की होती है, जिसका तात्पर्य है अपनी वर्तमान बुरी आदतों में से कम से कम एक का परित्याग और एक सत्प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न । वैयक्तिक अनैतिकताएँ—प्रचलित मूढ़ मान्यताएँ, सामाजिक कुप्रथाएँ मिलकर दुष्प्रवृत्तियाँ बनती हैं । इनमें से प्रत्येक वर्ग की अवांछनीयता का परित्याग करना और विवेक सम्मत औचित्य को अपनाया जाना, यही है देव दक्षिणा अभियान का प्रयोजन । इसे युग निर्माण का आधार और युग शक्ति के अवतरण का मूलभूत प्रयोजन कहा जा सकता है । धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश, अवतार का एकमात्र उद्देश्य रहा है । गायत्री यज्ञ की पुण्य प्रक्रिया में यों आदि से अन्त तक यही चिन्तन और कर्तृत्व भरा पड़ा है । यज्ञ के देव दक्षिणा पक्ष को तो स्पष्टतया उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्यरत समझा जा सकता है ।

## त्रिपदा गायत्री-ब्रह्म विद्या की त्रिवेणी

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है । त्रिपदा अर्थात् तीन पैरों वाली । उसके तीन चरणों को सत्, रज, तम के—सत्यं शिवं सुन्दरम् के—उत्पादन, अभिवर्धन, परिवर्तन के—ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में अनेकों प्रतिपादनों, उपाख्यानों के माध्यम से शास्त्रकारों ने समझाया है । तीन लोक प्रख्यात हैं—भूः लोक, भुवः लोक, स्वः लोक । इन्हीं को धरती-पाताल और आकाश अथवा स्वर्ग कहते हैं । यह लोक दृश्यमान नहीं अदृश्य हैं । पदार्थ से नहीं चेतना से बने हैं । भूलोक हाड़-मांस की काया को कहते हैं—भुवः लोक विचार संस्थान है और स्वः लोक भाव सम्वेदनाओं का उद्गम अन्तःकरण ।

गायत्री महामन्त्र में सन्निहित भूः भुवः स्वः की व्याहृतियों को गायत्री का मूल माना गया है । इसके त्रिक् का तीन-तीन शब्दों के तीन चरणों में विकास हुआ है । भूः से गायत्री के आठ अक्षर वाले प्रथम चरण का विस्तार हुआ है । तत् सवितु वरेण्यं, इस प्रथम पाद में आठ अक्षर और तीन शब्द हैं । इस प्रकार भुवः शब्द का विस्तार गायत्री के द्वितीय चरण में हुआ है—'भर्गो देवस्य धीमहि' में भी आठ अक्षर और तीन शब्द हैं । तीसरी व्याहृति 'स्वः' है । इससे तीसरा चरण बना । 'धियो योनः प्रचोदयात्' इसमें भी आठ अक्षर और तीन शब्द हैं । यों प्रथम सूत्र ओम् में भी अ-उ-म् तीन अक्षर हैं । उनसे तीन व्याहृतियों की उत्पत्ति मानी गई है ।

बीज में वृक्ष का विशालकाय परिकर छिपा रहता है । शुक्राणु में पूरा मनुष्य छिपा बैठा रहता है । छोटी-सी माइक्रो फिल्म में विशालकाय ग्रन्थ अंकित हो जाता है । परमाणु में एक सौर-मण्डल ही—समूचा ब्रह्माण्ड ही विद्यमान देखा जा सकता है । इसी प्रकार गायत्री मन्त्र में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक तीनों ही क्षेत्र केन्द्रित हैं । इनको सुविकसित बनाने की शिक्षाएँ, प्रेरणाएँ भी भरी पड़ी हैं । साथ ही वे दिव्य शक्तियाँ भी मौजूद हैं जो इन तीनों क्षेत्रों की विभूतियों एवं सम्पदाओं से—ऋद्धियों और सिद्धियों से—परिपूर्ण बना सके ।

त्रिपदा की व्याख्या संसार क्षेत्र में तीन ऋतुएँ—तीन काल—तीन वय के रूप में भी होती है । जल, थल और नभ के रूप में इसकी व्याख्या होती है । चेतना क्षेत्र में त्रिपदा का आलोक मनुष्य को सज्जन, महामानव और देवात्मा बनाता है । इन्हीं को सन्त, ऋषि और अवतार कहते हैं । विभूतियों के क्षेत्र में सरस्वती, लक्ष्मी और काली की चर्चा की जाती है । त्रिवेणी में गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है । रामायण के अनुसार इसमें मज्जन करने वाले "काक होंहि पिक-वकहु मराला" की स्थिति में बदल जाते हैं । आकृति यथावत् रहते हुए भी उनकी प्रकृति में काया-कल्प जैसा अन्तर आ जाता है ।

गायत्री का नाम त्रिपदा क्यों पड़ा ? इसका सुविस्तृत वर्णन इन पंक्तियों में किया जाना कठिन है । उस तत्व-ज्ञान की यथा समय चर्चा की जायेगी । यहाँ तो इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि नवयुग के अवतरण में त्रिपदा की क्या भूमिका हो सकती है ? इस सन्दर्भ में यज्ञोपवीत के स्वरूप की चर्चा करना उचित है—उपनयन को गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा माना गया है । उसके नौ धागे—गायत्री के नौ शब्द हैं । तीन लड़ें—तीन चरण । तीन ग्रन्थियाँ—तीन व्याहृतियाँ । एक प्रणव—बड़ी ब्रह्म ग्रन्थि । देव संस्कृति की आत्मा को यज्ञोपवीत की प्रत्यक्ष प्रतिमा मानकर शरीर रूपी मन्दिर में उसकी धारणा—प्रतिष्ठापना कराई जाती है । कन्धा उत्तरदायित्व का—हृदय भावना का—कलेजा साहस का और पृष्ठ भाग कर्मठता का प्रतीक माना जाता है । इन चारों अवयवों के ऊपर घुमाते हुए यज्ञोपवीत पहना जाता है और समझा जाता है कि इस महामन्त्र में सन्निहित प्रेरणाओं से जीवन-क्रम को पूरी तरह जकड़ दिया गया है ।

तीन लड़ों में शारीरिक, मानसिक और सामाजिक क्षेत्र को समुन्नत बनाने वाले संकेत सूत्र हैं । गायत्री के प्रथम चरण को शारीरिक, दूसरे को मानसिक और तीसरे को सामाजिक सुव्यवस्था का मार्ग-दर्शक कहा जा सकता है । नौ गुण प्रसिद्ध हैं । नौ धागों में उन नौ गुणों का मार्ग दर्शन भरा पड़ा है जो उपरोक्त तीनों ही जीवन पक्षों को समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाते हैं । भूतकाल में भारतीय नागरिक इन नौ गुणों से सुसम्पन्न बनते और देव मानव कहलाते थे । नवयुग का अवतरण उसी सतयुग के अनुरूप होगा । इसलिए आस्थाएँ एवं परम्पराएँ भी प्राचीन काल जैसी ही अपनानी पड़ेंगी । शरीर, मन और अन्तःकरणों को उन्हीं महान् सद्गुणों में ढालना पड़ेगा, जिनकी प्रामाणिकता और उपयोगिता गौरव भरे अतीत में सुनिश्चित रूप से जानी जा चुकी है ।

गुण व्यवहार में प्रयुक्त होते हैं । तत्व दर्शन अन्तराल की आस्थाओं में प्रतिष्ठित रहता है और उसकी प्रेरणा से मनन संस्थान की विचारणा एवं काय कलेवर की गतिविधियाँ काम करती रहती हैं । गायत्री का तत्व दर्शन पक्ष तीन व्याहृतियों में सन्निहित है । भूः को आस्तिकता, भुवः को आध्यात्मिकता एवं स्वः को धार्मिकता कहा गया है । ब्रह्म विद्या का विस्तार इसी क्षेत्र तक सीमित है । उसकी विवेचना में इन्हीं तीन प्रसंगों की चर्चा होती है ।

मार्ग-दर्शन, व्यवहार पक्ष में, यज्ञोपवीत के माध्यम से जिन नौ गुणों की गरिमा समझाई गई है, उन्हें भी तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । शरीर क्षेत्र में—श्रम, व्यवस्था, संयम । मनःक्षेत्र में—विवेक, साहस, स्वावलम्बन । समाज क्षेत्र में—एकता, समता, सहकारिता । इन नौ सूत्रों के आधार पर ही व्यक्ति और समाज के आचार, व्यवहार का निर्धारण होता है । तत्व दर्शन का प्रयोजन आस्थाओं का निर्माण करना है । अध्यात्म आस्थाओं में आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की त्रिवेणी का ऊपर की पंक्तियों में वर्णन हो चुका है ।

आस्थाएँ ही व्यक्तित्व का मूल हैं । उन्हीं का स्तर व्यक्तित्व है । "श्रद्धामयोयं पुरुषः यो यच्छ्रुद्धः स्य एवं सः" की सूक्ति में यही बताया गया है कि व्यक्ति वही है जो उसकी श्रद्धा । श्रद्धा एवं आस्था का उच्चस्तरीय निर्माण ही नवयुग के सूत्रपात का शुभारम्भ है ।

मनुष्य में देवत्व के उदय की प्रक्रिया ही धरती पर स्वर्ग का अवतरण कर सकेगी । नवयुग के यही दो आधार हैं । उन्हें पूरा करने के लिए सर्व प्रथम मनुष्य के व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाना होगा । इसके लिए उसके अस्तित्व का केन्द्र-बिन्दु ही सम्भालना, सुधारना होगा । आस्थाओं का स्तर ऊँचा उठा देना ही वह कार्य है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की उत्कृष्टता और प्रखरता में प्रगति हो सकती है और उसे तेजस्वी एवं यशस्वी बनने के अवसर पग-पग पर मिल सकते हैं ।

कहा जा चुका है कि त्रिपदा के आस्था क्षेत्र में प्रवेश कर पाने पर उसके अन्तःकरण में इन तीन विश्वासों का प्रादुर्भाव एवं परिपाक होने लगता है । गायत्री मन्त्र के व्याहृति भाग को ब्रह्म विद्या कहा गया है । भूः, भुवः और स्वः को त्रयी विद्या के नाम से जाना जाता है । इन तीनों में प्रथम है—आस्तिकता, द्वितीय आध्यात्मिकता और तृतीय धर्मिकता । इन तीनों को भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग के अन्तर्गत भी गिना जाता है । उन्हीं की व्याख्या श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा के रूप में सुविस्तृत विवेचन के साथ होती रहती है । इन समस्त परिचर्चाओं में गायत्री मूलक विद्या को ही व्याख्या, विस्तार समझा जा सकता है ।

आस्तिकता का अर्थ है—ईश्वर विश्वास । ईश्वर विश्वास अर्थात् उसकी न्याय परायणता पर विश्वास—कर्मफल की सुनिश्चितता पर सघन आस्था । भले-बुरे कर्मों का फल मिलने में विलम्ब होने से मनुष्य में सत्कर्मों की सुखद प्रतिक्रिया और कुकर्मों की परिणति दुःखद दुर्गति में होने के तथ्य पर से आस्था डगमगाने लगती है । बाल बुद्धि को विलम्ब असह्य होता है । वह तुर्त बीजारोपण और फुर्त फलदार वृक्ष की अपेक्षा करती है । देर लगते ही बागवानी पर से उसकी रुचि हट जाती है । हथेली पर सरसों न जमे तो बच्चे कृषि विज्ञान को ही चुनौती देने लगते हैं । आस्तिकता के सिद्धान्त ईश्वर को सर्वव्यापी और न्यायकारी होने का विश्वास दिलाते हैं और समझाते हैं कि देर तो होती है, पर अन्धेर नहीं है । इस मान्यता को अपनाने वाला न तो गुप्त पाप कर पाता है और न प्रकट में उसके लिए उसका दुस्साहस उभरता है । पुनर्जन्म-स्वर्ग-नरक की मान्यताएँ भविष्य में कर्मफल मिलने का आश्वासन देती हैं । फलतः आस्तिकता से प्रभावित व्यक्ति की नैतिकता अक्षुण्ण बनी रहती है । व्यक्ति के जीवन परिष्कार में यह एक महती उपलब्धि है । इस विश्वास के कारण पतन के गर्त में गिराने वाले कदम ही लौह शृंखला से जकड़ जाते हैं और भविष्य

अन्धकारमय बनने से बच जाता है । साथ ही सत्प्रयोजनों के प्रति भी उत्साह शिथिल नहीं होने पाता । किसान, विद्यार्थी, व्यापारी आदि सभी अपने परिश्रम का प्रतिफल पाने में मिलने वाली देरी लगते हुए भी विचलित नहीं होते फिर आस्तिकता की आस्था रहते हुए किसी मनुष्य को कर्मफल में विलम्ब होने से अधीरता क्यों होगी ?

परमात्मा और आत्मा के परस्पर मिलने की प्रतिक्रिया बिजली के ठण्डे-गरम तारों के मिलने पर उत्पन्न होने वाली चिनगारियों जैसी होती है । आत्मा में परमात्मा का अवतरण होते ही सद्भावना, सद्विचारणा एवं सत्प्रयत्नों की चिनगारियाँ उछलने लगती हैं । वर्षा ऋतु आने पर सर्वत्र हरियाली उग पड़ने की तरह सत्प्रवृत्तियों से समूचा जीवन क्षेत्र भर जाता है । भक्ति का अर्थ है—प्यार । ईश्वर भक्ति अर्थात् आदर्शों के प्रति अनन्य निष्ठा । ईश्वर भक्ति के माध्यम से किया गया प्रेम भावना के विकास-विस्तार का अभ्यास जब परिपक्व होता है तो प्राणि मात्र के प्रति आत्मीयता की दिव्य संवेदनाएँ विकसित होती हैं । फलतः हर किसी से केवल सद्व्यवहार का आचरण ही बन पड़ता है । ईश्वर के अवतरण प्रसंगों में मनोयोग लगने से यह विश्वास जमता है कि धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश की प्रवृत्ति एकमात्र वह कसौटी है जिसके आधार पर मनुष्य से ईश्वर के अवतरण का अनुपात जाना जा सकता है । इष्टदेव की पूजा-अर्चना का तात्पर्य है—देवत्व की ओर अन्तरात्मा को उन्मुख और अग्रसर करना । किस साँचे में अपने को ढालना है इसका निर्धारण ही इष्टदेव का चयन एवं वरण है । विश्व-व्यापी चेतना में ईश्वर का दर्शन करना—विराट् दर्शन कहलाता है । इसका तात्पर्य है अपने विश्व ब्रह्माण्ड को परमात्मा की प्रत्यक्ष प्रतिमा मानना और प्राणियों के प्रति सदाचरण और पदार्थों के सदुपयोग का निरन्तर ध्यान रखना । ऐसे-ऐसे असंख्यों आस्थापरक लाभ ईश्वर विश्वास के हैं । यदि सही रीति से सही आराधना—सही प्रयोजनों के लिए की जाये तो उसका भरपूर लाभ आस्तिक व्यक्ति को तथा समूचे समाज को मिलना सुनिश्चित है ।

त्रिपदा का दूसरा दार्शनिक चरण है—आध्यात्मिकता। अर्थात्—अपने वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य का ज्ञान । इसका उदय होते ही आत्मावलम्बन एवं आत्मगौरव की अनुभूति होती है । आत्मावलम्बन अर्थात् आत्मनिर्भरता । आत्म-निर्माण का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर ओढ़ना । अपनी परिस्थितियों का कारण मनःस्थिति को मानना और बहिरंग क्षेत्र की प्रगति के लिए प्रयासों का आरम्भ, आत्मिक क्षेत्र में अभीष्ट सत्प्रवृत्तियों को व्यवहार अभ्यास में उतारना । आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण एवं आत्म-विकास के चार अवलम्बन अपना कर आत्मिक प्रगति की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था जुटाई जाती है ।

अपना दृष्टिकोण बदलने से परिस्थितियों के मूल्यांकन और उनसे निपटने के निर्धारण में होती रहने वाली भयंकर भूलों का सिलसिला बन्द हो जाता है । फलतः जीवन-क्रम में ऐसा बदलाव आता है मानो किसी ने काया-कल्प करके रख दिया हो । अपने को दरिद्र, अभावग्रस्त, हेय स्थिति में पड़ा हुआ मानना पूर्णतया सापेक्ष है । सम्पन्नों के साथ तुलना करने पर अपनी स्थिति विपन्नों जैसी लगती है और विपन्नों के साथ तौलने से लगता है अपनी जैसी सम्पन्नता भी बहुत कम भाग्यवानों को मिल पाती है । अपने अभावों को गिनते रहने और दूसरों के अपकारों को सोचते रहने से लगता है नरक में पड़े हैं । आशंकाओं, सन्देहों और कुकल्पनाओं से, मस्तिष्क भरे रहने से हर घड़ी यही लगता रहता है कि विपत्ति के बादल अब टूटे-तब टूटे । संसार दर्पण की तरह है, इसमें प्रायः अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है । अपने गुण, कर्म, स्वभाव की श्रेष्ठता और निकृष्टता ही बाहर का सहयोग और विरोध आमन्त्रित करती रहती है । मनुष्य अपने ही अन्तराल की प्रतिध्वनि चारों ओर गूँजती हुई सुनता है । अपनी ही विकृतियाँ भूत-पिशाच का रूप धारण करके डराती-धमकाती रहती हैं ।

युग परिवर्तन का श्रीगणेश 'हम बदलेंगे युग बदलेगा' के उद्घोष से आरम्भ होता है । इसमें व्यक्ति के बदलने से समाज बदलने की सम्भावना व्यक्त की गई है । मनःस्थिति की प्रतिक्रिया परिस्थिति के रूप में दृष्टिगोचर होने की बात कही गई है । इसे आत्म-निर्माण का अभियान भी कह सकते हैं । आध्यात्मिकता ही आत्मज्ञान है । आत्म-गौरव को अक्षुण्ण रखने वाला चिन्तन और कर्तृत्व बनाये रहने की इसमें प्रेरणा है । आत्मावलम्बन, स्वावलम्बन की अन्तःचेतना को जगाने की दिव्य प्रेरणा भी इसे समझा जा सकता है । त्रिवेणी की

दूसरी धारा इस आध्यात्मिकता की तत्व दृष्टि को ही कहा गया है ।

तीसरी धारा है—धार्मिकता । धर्म-निष्ठा अर्थात् कर्त्तव्यपरायणता है । अपने कृत्यों की, उद्देश्य की ईमानदारी-सम्बन्धित व्यक्ति के प्रति वफादारी और करने की प्रक्रिया में जिम्मेदारी का समावेश किया जाये तो 'कर्म ही पूजा है' का सिद्धान्त अक्षरश: सही सिद्ध हो सकता है । काम करते समय यह ध्यान रखा जाये कि इसमें आदर्शों का हनन एवं नीति-मर्यादाओं का उल्लंघन तो नहीं होता । लोभ-मोह से प्रेरित होकर ऐसा कुछ तो नहीं किया जा रहा है जिसके औचित्य पर उंगली उठाई जा सके । हर कृत्य ऐसा होना चाहए जिससे आत्म-सन्तोष मिलता हो, आत्म-गौरव बढ़ता हो और समाज का हित होता हो । धर्म-मर्यादाओं का निर्धारण मनीषियों द्वारा उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया हो । इनके परिपालन की निष्ठा अपनाई और सुदृढ़ बनाई जानी चाहिए ।

धर्म के दो पक्ष हैं—एक श्रेष्ठता का सम्वर्धन, दूसरा निकृष्टता का निराकरण । स्थापना एवं अभिवर्धन के लिए रचनात्मक प्रयास करने होते हैं और उन्मूलन के लिए असहयोग, विरोध एवं संघर्ष की नीति अपनानी होती है । भगवान के अवतारों में यह संस्थापन और उन्मूलन के दोनों ही तत्वों को समान महत्व दिया गया है । धर्म प्रेमी को जहाँ सदाचरण एवं परमार्थ का आदर्श अपनाना होता है वहाँ अनैतिकता, अवांछनीयता एवं मूढ़ मान्यता के अनाचार का डट कर विरोध भी करना पड़ता है । धर्म धारणा का ही एक अंग धर्म युद्ध भी है ।

अपने शरीर, मन और आत्मा के प्रति, परिवार और समाज के प्रति, ईश्वर और आदर्शों के प्रति, अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों का अविचल भाव से पालन करते रहना धार्मिकता है । ब्रह्म विद्या का—गायत्री तत्व-ज्ञान का तीसरा चरण यही धार्मिकता है । इसे त्रिपदा, त्रिवेणी की तीसरी धारा कहा गया है ।

मानवी आस्थाओं के निर्माण में इन तीनों तथ्यों की प्रतिष्ठापना अन्त:करण में इतनी गहराई तक होनी चाहिए कि वे सघन विश्वासों के रूप में परिलक्षित होने लगें । लक्ष्य और व्यक्तित्व बन जायें । आकांक्षाएँ इन्हीं से प्रेरित हों ।

युग शक्ति गायत्री का तत्व दर्शन इन्हीं तीन धाराओं में प्रवाहित होता है । व्यक्ति और समाज की अभिनव संरचना में आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के तीनों ही तथ्यों का प्रयोग उपयोग करना होगा । जन-मानस का परिष्कार इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति कर सकने योग्य हो सके, यही ध्यान में रखना होगा । गायत्री तत्व ज्ञान में इन्हीं त्रिविध प्रेरणाओं का सघन समावेश है ।

## गायत्री की प्रथम प्रेरणा— श्रम, व्यवस्था और संयम

त्रिपदा गायत्री के तीन पादों में से प्रथम पाद—प्रथम खण्ड आठ अक्षरों का है । उसमें 'तत् सवितुः वरेण्यं, यह तीन शब्द आते हैं । इन्हें शिक्षा की दृष्टि से स्थूल शरीर से सम्बन्धित माना गया है । स्थूल शरीर का तात्पर्य है—हाड़-मांस से बनी हुई—सोने-खाने वाली काया । बाहर से यह चलते-फिरते खिलौने जैसी दीखती है । उसमें सुन्दरता, उपार्जन और रसानुभूति के कई तन्त्र जहाँ-तहाँ जुड़े देखे जा सकते हैं । इसे अन्न, जल, वायु की खुराक देनी पड़ती है, साथ ही मल-मूत्र, पसीना आदि के रूप में निकलते रहने वाले कूड़े-करकट की सफाई करनी होती है । मोटी बुद्धि से स्थूल शरीर का इतना ही स्वरूप और उपयोग दिखाई पड़ता है ।

गहराई में उतरने पर उसमें तीन विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं । इन विशेषताओं के आधार पर ही वे सुविधा-साधन मिलते हैं जिन्हें सम्पत्ति एवं साधन सुविधा के नाम से पुकारा जाता है । भौतिक क्षेत्र की सफलताएँ इसी आधार पर आँकी जाती हैं । इन्हें प्राप्त करने के लिए शरीर के अन्तराल में तीन ऐसे तत्वों का समावेश है जो आम-तौर से प्रसुप्त, अनभ्यस्त और अनगढ़ स्थिति में पड़े रहते हैं । उनकी ओर ध्यान भी नहीं जाता और उनके जागृत करने का प्रयत्न भी नहीं होता । पर यदि उन्हें जगाया, बढ़ाया और स्वभाव में सम्मिलित किया जा सके तो समझना चाहिए कि भौतिक प्रगति का अवरुद्ध मार्ग खुल गया है और भाग्योदय की खोई चाबी हाथ लग गई । इन तीन सद्गुणों का नाम है—(१) श्रम (२) व्यवस्था (३) संयम । इनका महत्व समझा जा सके और शरीर को इनमें रस लेने—आदत के रूप में स्वीकार करने के लिए सहमत किया जा सके तो समझना चाहिए कि आरोग्य, दीर्घजीवन, सौन्दर्य, कौशल एवं उपार्जन जैसी सफलताएँ प्राप्त करने का दैवी वरदान मिल गया । संयम और वैभव एक ही सिक्के के दो पहलू मात्र हैं । ईश्वर ने शरीर रूपी रत्नाकर में जो मणि-माणिक भर दिये हैं उन्हें

शरीर साधना के द्वारा खोजा और पाया जा सकता है । स्थूल शरीर का प्रत्यक्ष देवता अपनी उपासना के लिए जिन उपचारों की अपेक्षा करता है और जिनके प्राप्त होने पर भौतिक प्रगति के अनेक पक्षों का वरदान देता है उनका नाम उपरोक्त पंक्तियों में कहे अनुसार श्रम, व्यवस्था एवं संयम ही कहा जा सकता है ।

व्यक्ति में तत्वत: समर्थता के अगणित आधार भरे पड़े हैं और उनका उपयोग कर सकने वाले अनायास ही वैभववान बनते चले जाते हैं । उन्हें निजी रूप से आरोग्य और सांसारिक रूप से साधनों की कमी नहीं रहती । इन दोनों से वंचित वे रहते हैं जो इन सत्प्रवृत्तियों को अपनाने में आना-कानी करते हैं । आलसी, प्रमादी और असंयमी ही पिछड़ेपन की स्थिति में पड़े रहते हैं और दुर्गति सहते हैं । श्रमशीलता का विरोधी पक्ष आलस है और व्यवस्था का प्रतिफल प्रमाद । अनुशासन और नियन्त्रण का महत्व न समझने वाले असंयमी एवं अपव्ययी कहलाते हैं । आलस्य के कारण उपार्जन नहीं बन पड़ता । प्रमाद के कारण सार-सँभाल नहीं हो सकती और नियन्त्रण का अभ्यास न होने पर जो हाथ में आता है वह या तो व्यर्थ चला जाता है या फिर ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है जिन्हें अनर्थ कहा जा सके । आलस, प्रमाद और असंयम का त्रिवर्ग शरीर पर छाया हुआ प्रत्यक्ष अभिशाप है । उनके रहते किसी की भी प्रगति नहीं हो सकती । कोई भी साधन सम्पन्न नहीं पाया जा सकता है ।

प्रगतिशीलता के इतिहास में हर सफल व्यक्ति में यह तीनों विशेषताएँ अनिवार्य रूप से पाई जाती हैं । वे कठोर परिश्रम करते हैं—बेगार भुगतने की तरह काम नहीं करते वरन् उसमें रस लेते हैं । वे जानते हैं कि लक्ष्मी प्राप्त करने की साधना श्रम बिन्दुओं का अर्घ चढ़ाने से ही बन पड़ती है । आलीस तो साक्षात दरिद्री ही होते हैं । इसी प्रकार प्रगतिशीलों द्वारा व्यवस्था बुद्धि का समुचित विकास किया होता है । वे अपने काम में पूरी तरह जागरूक रहते हैं । शारीरिक तत्परता की तरह किसी काम को समग्र बनाने के लिए तन्मयता भी आवश्यक है । मनोयोग के अभाव में मात्र श्रम का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता, उसकी तुलना अश्व शक्ति की तराजू में तौल कर की जा सकती है । काम में चमत्कार तो तब दिखाई पड़ता है जब उसमें रुचि पूर्ण मनोयोग भी लगता है । तत्परता का अर्थ है—श्रमशीलता और तन्मयता का तात्पर्य है रुचि और उत्साह से भरा-पूरा मनोयोग । जहाँ भी इन दोनों का समन्वय होगा वहीं किये हुए काम का स्तर बहुत बढ़ा-चढ़ा होगा । उसका मूल्यांकन सामान्य परिश्रम की तुलना में कहीं अधिक ऊँचा किया जायेगा । मानसिक जागरूकता और तन्मयता को ही दृश्य रूप में 'व्यवस्था' कहा जाता है । योग्यताओं में सर्वोच्च स्तर व्यवस्था शक्ति का ही है । शासन में इसी को 'ला एण्ड ऑर्डर' कहते हैं । घर, कारखानों में इसी का परिचय सुव्यवस्था के रूप में मिलता है । उपहासास्पद तो आलसी प्रमादी बनते हैं । उन्हीं की तुलना अपंगों और विक्षिप्तों से की जाती है । सम्पत्ति का अर्थ है भौतिक क्षेत्र की सफलता । वह समर्थता के रूप में देखी जा सकती है और उसके फलस्वरूप अभीष्ट पक्ष को उत्साह वर्धक सफलता मिल सकती है । सम्पत्ति का यही आधार है । वैभव इसी आधार पर कमाया जाता है । यह उपार्जन शरीर को श्रमशील और मन को सामने आये काम में पूरा रस लेने का अभ्यस्त बनाने से ही बन पड़ता है । शरीर और मन की तत्परता में जितनी कमी रहेगी उतनी दरिद्रता और असफलता की विपत्ति मनुष्य पर छाई रहेगी । लगता है दुर्भाग्य कहीं ऊपर से उतरता है, पर वस्तुत: वह अपने भीतर का ही अशुभ उत्पादन होता है । आकस्मिक और अप्रत्याशित विपत्तियाँ तो कदाचित ही कहीं-कहीं—कभी-कभी ही दृष्टिगोचर होती हैं ।

वर्षा का पानी आमतौर से जिधर-तिधर बहता हुआ अन्तत: समुद्र में जा पहुँचता और खारी बन जाता है, किन्तु यदि उसे बाँध में बाँध लिया जाये तो सिंचाई से लेकर बिजली बनने तक के अनेकों उपयोगी कार्य उससे पूरे होते हैं । भाप आमतौर से हवा में उड़ती और छितराती रहती है पर थोड़ी-सी भाप का यदि संग्रह और उपयोग किया जा सके तो उससे रेलगाड़ी का इन्जन दौड़ाने जैसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सकते हैं । "छलनी में दुहना और भाग्य को दोष देना" की उक्ति असंयमी लोगों पर लागू होती है ।

इन्द्रिय शक्ति को बर्बाद करते रहने वाले दुर्बल बनते जाते हैं और रुग्ण बनकर रोते-कलपते अकाल मृत्यु के मुँह में जा घुसते हैं । मन:शक्ति को एकाग्र न करने वाले अपने कामों की उपेक्षा करते और निरर्थक कल्पनाओं में उड़ते रहते हैं । फलत: हाथ में लिये काम अधूरे रहते हैं, उपहासास्पद बनते हैं । असफलता-जन्य लज्जा ऐसे ही लोगों को सहनी पड़ती है । अर्थ-शक्ति में अपव्यय के तत्व जुड़ जाने से अच्छी आमदनी भी व्यर्थ की बातों में

नष्ट होती रहती है और दरिद्रता का अभिशाप लदा रहता है । आवश्यक काम सामने आने पर हाथ खाली दीखता है और ऋण लेने अथवा बेईमानी करने का सर्वनाशी कदम उठता है । श्रम-शक्ति को किसी नियत काम पर केन्द्रित न करने वाले ऐसे ही बन्दरों की तरह जिस-तिस काम पर उचक-मचक करते रहते हैं और प्राय: सभी कामों को अधूरा छोड़ देते हैं । ऐसे लोगों से काम कराने की अपेक्षा काम न कराना अधिक अच्छा समझा जाता है । यह समस्त दुष्परिणाम विभिन्न प्रकार के असंयमों के ही हैं । अपव्यय से तो कुबेर का भण्डार भी खाली हो सकता है । श्रम, समय, बल, मन, धन आदि की कितनी उपयोगी समर्थताएँ मनुष्य के पास प्रकृति के अजस्र अनुदान की तरह प्रचुर परिमाण में मिली हुई हैं किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि उन सबकी असंयम में बर्बादी होती रहती है और मनुष्य दीन-दरिद्रों की तरह दु:ख पाता और तिरस्कार सहता रहता है । असंयम को—नियन्त्रण के अभाव का व्यक्तिगत जीवन का अभिशाप ही माना जा सकता है । अनुशासनहीन की स्थिति कितनी दयनीय होती है इसे सभी जानते हैं ।

त्रिपदा गायत्री के प्रथम पाद के तीन शब्दों—"तत्-सवितु:वरेण्यं" का तात्पर्य है वह वरण करने योग्य—अपनाने योग्य सविता । सविता अर्थात् सूर्य । सूर्य से ग्रहण करने योग्य—अपनाने योग्य प्रेरणाएँ क्या-क्या हैं इन्हें सहज चिन्तन से भली-भाँति जाना जा सकता है । सूर्य का अथक श्रम और जागरूक मनोयोग स्पष्ट है । वह अहर्निशि—अनवरत श्रम में संलग्न रहता है । यही वरेण्य है, यही अनुकरणीय और अपनाने योग्य है ।

आत्म संयम, नियमन, नियन्त्रण, आत्मानुशासन की क्रम व्यवस्था सूर्य की गतिविधियों में कूट-कूटकर भरी हुई है । निर्धारित समय पर उदय और अस्त होना—अपनी भ्रमण कक्षा के बाल बराबर भी अन्तर न होने देना, सौर परिवार के ग्रह-उपग्रहों को अपने साथ बाँधे रखना और उन्हें उचित अनुदान देना जैसी रीति-नीति अपनाने वाले सविता के बारे में यही कहा जायेगा कि वे स्वयं अनुशासन में रहते हैं और सम्बद्ध परिवार को अनुशासन में रखते हैं । संयम और अनुशासन लगभग समान स्तर की ही सुव्यवस्था का बोध कराते हैं ।

मानवी संज्ञा की तीन परते हैं—(१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण । इन्हें त्रिपदा गायत्री का क्षेत्र विस्तार कहा गया है । तीन लोक भी यही हैं । प्रथम चरण को स्थूल शरीर की उपमा दी जा सकती है और उसके अन्तर्गत जुड़े हुए तीन शब्दों में श्रम, मनोयोग एवं संयम का संकेत और सन्देश ग्रहण किया जा सकता है ।

इन तीन सत्प्रवृत्तियों को व्यक्तिगत जीवन की प्रगति का आधारभूत कारण माना जा सकता है । समर्थता भले ही भौतिक क्षेत्र की प्राप्त करनी हो, भले ही आत्मिक क्षेत्र की अभीष्ट हो । इन तीनों को अपनाया जाना हर दृष्टि से आवश्यक है । आलस, प्रमाद और असंयम बरतने वाला न तो समृद्ध बन सकता है और न आत्मबल सम्पन्न । दूसरों के सहयोग एवं दैवी अनुग्रह प्राप्त करने से मनोरथ पूरे होने की बात सोची जाये तो भी यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार के अनुदान भी पात्रता के अनुरूप ही मिलते हैं और वह पात्रता शारीरिक क्षेत्र में श्रमशीलता, जागरूकता एवं अनुशासन अपनाये बिना उग ही नहीं सकती । वैयक्तिक, भौतिक प्रगति के लिए स्थूल शरीर की स्थिति को समुन्नत बनाया जाना आवश्यक है और यह उपरोक्त तीन गुणों के संचय अनुपात से ही उपलब्ध होता है ।

युग परिवर्तन से मनुष्य में देवत्व का उदय होगा । इसके लक्षण उसके स्थूल जीवन में उपरोक्त तीन सत्प्रवृत्तियों की बढ़ी-चढ़ी मात्रा के अनुसार ही जाने—आँके जा सकेंगे । समूह व्यवस्था में भी इन्हीं तीन गुणों को सार्वजनिक मान्यता देनी होगी और इन्हें व्यक्ति की उत्कृष्टता का चिह्न मानकर उन्हें लोक-सम्मान प्रदान करना पड़ेगा । नवयुग में श्रमनिष्ठा की सराहना होगी । जागरूक लोगों को सम्मान मिलेगा और अनुशासनप्रिय लोगों को अग्रिम पंक्ति में खड़ा किया जायेगा । वे ही सार्वजनिक नेतृत्व करेंगे । युग क्रान्ति के अनुरूप ढले हुए व्यक्तियों में से प्रत्येक को परिश्रमी, उत्साही और आत्मानुशासित देखा जा सकेगा ।

## गायत्री की द्वितीय प्रेरणा—सद्विवेक, सत्साहस और स्वावलम्बन

त्रिपदा गायत्री का दूसरा पाद है—'भर्गो देवस्य धीमहि' आठ अक्षरों के इस द्वितीय चरण में भी पहले पद की तरह तीन शब्द हैं—'भर्ग: देवस्य धीमहि' । भर्ग

कहते हैं तेजस्वी को, देव, दिव्य, उत्कृष्ट, आदर्श । धीमहि—अन्तरंग में धारण किया जाना-हृदयंगम होना—चेतना में घुल जाना । भावार्थ हुआ—दैवी तेजस्विता का अन्त:करण में घुल जाना ।

दैवी तेजस्विता क्या है ? इसे सद्विवेक, सत्साहस और आत्मगौरव के उत्कृष्ट चिन्तन के साथ समाविष्ट समझा जा सकता है । यह तीनों ही सत्प्रवृत्तियाँ सूक्ष्म शरीर में पाई जाती हैं । सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन संस्थान-विचार क्षेत्र-चिन्तन की परिधि प्रक्रिया । इसे ज्ञान कक्षा भी कह सकते हैं । ये तीनों ही सत्प्रवृत्तियाँ इसी उद्यान में उगती हैं । ये जहाँ भी उगती हैं वह सारा क्षेत्र चन्दन के बगीचे की तरह महकने लगता है ।

लोक-व्यवहार इन दिनों सत्-असत् के परस्पर विरोधी तत्वों में इस कदर घुल गया है कि दूसरों के कथन, अनुकरण एवं प्रथा प्रचलन को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । विवेकपूर्वक इसका पृथक्करण कराना होगा । उचित-अनुचित को अलग करके मात्र उपयोगी को ही ग्रहण करने की दूरदर्शिता अपनानी होगी । इसके बिना जो कुछ चल रहा है उसी ढर्रे पर घूमने लगने से तो सब कुछ गुड़-गोबर ही होता रहेगा । गुड़ खाने के काम आता है और गोबर लीपने के । दोनों को मिला देने से वह मिश्रण किसी काम का नहीं रहता । पूर्णतया निरर्थक बन जाता है, उसे न खाने के काम में लिया जा सकता है और न लीपने के । ठीक इसी प्रकार प्रचलित लोक-व्यवहार में सदाचार और भ्रष्टाचार का ऐसा सम्मिश्रण हो गया है कि उसमें से कुछ भी बेखटके ग्रहण करने योग्य नहीं बच गया है । इन खरे-खोटे सिक्कों के ढेर में ढालने के लिए परख कसौटी का उपयोग किये बिना कोई गति नहीं । यह आवश्यकता रहती तो प्राचीन काल में भी थी, पर आज की विषम परिस्थितियों में तो विवेक के द्वारा परीक्षण पृथक्करण किये बिना और कोई चारा है ही नहीं ।

गायत्री का वाहन है—राजहंस । राजहंस की विशेषता है—नीर-क्षीर विवेक । दूध और पानी के सम्मिश्रण में से पानी को पृथक् करके मात्र दूध को ही ग्रहण करना । इसी प्रकार उसका एक और सहज स्वभाव माना जाता है, मात्र मोती ही चुगना—कीड़े-मकोड़े जैसी तुच्छ वस्तुओं को प्राण संकट आने पर भी ग्रहण न करना । गायत्री माता का वाहन राजहंस वस्तुत: विवेक का ही अलंकारिक चित्रण है । पक्षी वर्ग की इस आकृति को देखकर यही आदर्श अपनाया जाना चाहिए कि विवेकशीलता अपनाई जायेगी । अनुचित को त्यागा और उचित को ग्रहण किया जायेगा । विवेक की कसौटी है—दूरदर्शिता । अदूरदर्शी तात्कालिक लाभ को ही प्रधानता देते हैं, भले ही उससे उनका भविष्य अन्धकारमय ही क्यों न होता हो । दूरदर्शी आज की कठिनाई सहकर भी कल का उज्ज्वल निर्माण करते हैं । किसान, विद्यार्थी, शिल्पी, कलाकार, श्रमिक, व्यवसायी, योगी सभी को आरम्भ में कठिनाई सहने और हानि उठाने का मनोबल जुटाना पड़ता है तभी उनका भविष्य उज्ज्वल बन पाता है । अदूरदर्शी पुस्तकें और बीज बेचकर भी सिनेमा देख सकते हैं और भविष्य को अन्धकारमय बनाने का जोखिम उठा सकते हैं ।

आज व्यक्ति और समाज के सामने जो अगणित समस्याएँ और विपत्तियाँ मुँह बाये खड़ी हैं उनके मूल में अदूरदर्शिता ही उपद्रवों का सृजन करती देखी जा सकती है । स्वार्थ पर परमार्थ को निछावर किया जा रहा है । आस्थाओं का संकट, चरित्र का पतन और उदारता का अभाव ही विश्व संकट के रूप में मानवी अस्तित्व को चुनौती दे रहा है । साधनों का बाहुल्य रहने पर भी मनुष्य को जिन सर्वभक्षी विभीषिकाओं का सामना करना पड़ रहा है उसे दृष्टिकोण में निकृष्टता का समावेश ही कहा जायेगा । स्थिति को बदलने के लिए जनमानस का परिष्कार ही एकमात्र उपाय है । युग-निर्माण मिशन की लाल मशाल की ज्योति इसी उद्देश्य के लिए जलाई गई है । ज्ञान-यज्ञ का धर्मानुष्ठान इसी प्रयोजन के लिए है । विचार क्रान्ति अभियान के अन्तर्गत बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के लिए प्रचण्ड प्रयास चल रहा है । इस सुविस्तृत क्रिया-कलाप को संक्षेप में विवेकशीलता की अभिनव प्राण प्रतिष्ठा ही कहा जा सकता है । प्रियजनों के परामर्श एवं प्रस्तुत प्रचलनों के प्रभाव को निरस्त करके मात्र औचित्य को ही अपनाना । यही सत्याग्रह है । इसी को विवेक की अभ्यर्थना कह सकते हैं । सत्य के सही स्वरूप को समझना एवं उसे परिस्थितियों के अनुरूप सही रीति से अपनाना विवेक के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है । अन्यथा सत्य की अदूरदर्शी पकड़ कई बार असत्य से भी अधिक हानिकारक हो सकती है । इसी से विवेक को सत्य का पिता माना गया है और उसका माहात्म्य भी इसी आधार पर अधिक माना गया है । गायत्री को ऋतम्भरा प्रज्ञा,

ब्रह्म-विद्या आदि नामों से भी पुकारा जाता है । उसका सरल तात्पर्य आदर्शवादी विवेकशीलता ही समझा जा सकता है ।

सूक्ष्म शरीर की—मन:संस्थान की दूसरी गौरवशाली विशेषता है—सत्साहस । सद्विवेक के आधार पर किये गये निर्णय इसी आधार पर क्रियान्वित होते हैं । पानी का स्वभाव नीचे की ओर ढुलकना है । मन के संचित कुसंस्कार भी सहज स्वभाव निकृष्टता की ओर ललचाते और दुष्प्रवृत्तियों के खड्ड में गिरने के लिए उकसाते हैं । उत्कृष्टता की ऊँचाई पर चढ़ने के लिए अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होती है । कुएँ से पानी निकालने के लिए, बोझा ऊपर चढ़ाने के लिए, गेंद को ऊपर उछालने के लिए, ऐसा अतिरिक्त मनोबल चाहिए जो आदर्शवादिता अपनाने के लिए प्रचण्ड साहस का परिचय दे सके । श्रेष्ठता की गतिविधियाँ अपनाने का न तो अपने को अभ्यास अनुभव होता है और न स्वजनों का प्रोत्साहन । समाज में वैसा प्रचलन भी नहीं है । हर दिशा में संकीर्ण स्वार्थपरता की नीति अपनाने का ही परामर्श, मार्ग-दर्शन मिलता है । ऐसी दशा में श्रेष्ठता का मार्ग अपनाने के लिए एकाकी साहस ही जुटाना होता है और 'अकेला चलोरे' का संकल्प करना पड़ता है । इस दिशा में चलते हुए स्वजनों और परिचितों का व्यंग, उपहास, असहयोग ही नहीं विरोध भी सहना होता है । वे इस प्रकार की साहसिकता को मूर्खता, अव्यावहारिकता और घाटा देने वाली भूल के रूप में देखते हैं और अपने सहज मोह एवं अभ्यस्त प्रचलन के आधार पर ऐसी हिम्मत को अनुचित मानते हैं । फलत: वे निरन्तर बाधा ही पहुँचाते रहते हैं । दुर्बल मन:स्थिति रहने पर यह अवरोध देर तक सहन नहीं होता और आदर्शवादी उत्साह धीरे-धीरे ठण्डा होते-होते समाप्त ही हो जाता है ।

व्यक्ति में देवत्व का उदय और समाज में स्वर्गीय वातावरण का निर्माण आदर्शवादी सिद्धान्तों की चर्चा करते रहने से नहीं उसे जीवन दर्शन के रूप में अपनाने और व्यवहार में उतारने से ही सम्भव है । इसके लिए ऐसी साहसिकता उभरनी चाहिए जो उत्कृष्टता के मार्ग पर चलते हुए पग-पग पर आने वाले अवरोधों से जूझ सके। एकाकी पर्वतारोहण का संकल्प लेने वालों की तरह शौर्य और पराक्रम का परिचय दे सके । महामानवों को यही रीति-नीति अपनानी पड़ी है । व्यक्तित्व में आदर्शवादिता का बीजारोपण और अभिवर्धन सत्साहस के बिना सम्भव ही नहीं हो सकता । इस आवश्यकता को पूरा किये बिना उस नवयुग के अवतरण की आशा नहीं की जा सकती जिसमें देव समाज की—उज्ज्वल भविष्य की अपेक्षा की गई है ।

इन दिनों व्यक्तिगत अभिरुचियाँ एवं सामाजिक गतिविधियाँ जिस दिशा में बह रही हैं उन्हें उल्टे बिना सर्वभक्षी विभीषिकाओं से, सामूहिक आत्म-हत्या जैसे महाविनाश से—बच सकना सम्भव नहीं । प्रवाह को उलटने के लिए ऐसी सामर्थ्य चाहिए जैसी पानी की धारा को चीरते हुए उलटी चल सकने वाली मछली में होती है। व्यक्ति की आदतें सुधारनी होंगी—उसकी आस्थाएँ बदलनी होंगी—प्रचलनों को उलटना पड़ेगा । यह कार्य टूटे बर्तनों को आग में गलाकर नये साँचे में ढालने जैसा कठिन है । इसके लिए प्रचण्ड प्राण ऊर्जा चाहिए । यह कहाँ से आये ? निश्चय ही यह प्रयोजन सत्साहस अपनाने से ही पूरा हो सकता है । वैयक्तिक और सामूहिक क्षेत्रों में ऐसी साहसिकता उभारने अपनाने की आवश्यकता पड़ेगी जो अभ्यस्त अवांछनीयता के झाड़-झंखाड़ उखाड़ने और उसके स्थान पर कल्प-वृक्षों का उद्यान लगाने जैसा दुहरे पराक्रम का परिचय दे सके । नये समाज का निर्माण युग का परिवर्तन अवलम्बन को अपनाये बिना और किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता ।

गायत्री मन्त्र के द्वितीय चरण में इसी सत्साहस का आलोक भरा पड़ा है । देवत्व का भर्ग धारण करने की प्रेरणा प्रकारान्तर से आदर्शवादी सत्साहस अपनाने का शौर्य प्रदान करती है । इस सत्प्रवृत्ति को अपनाने से ही वे सुधारात्मक और रचनात्मक कार्य बन पड़ेंगे जिन्हें नव-निर्माण के लिए खड़ा करने और विस्तृत बनाने की आवश्यकता है । देवत्व शब्द की ध्वनि है—मनुष्य के दृष्टिकोण और क्रिया-कलाप में आदर्शवादिता का कूट-कूटकर भर जाना । इसका आधार एक ही हो सकता है—आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान । उत्कृष्टता को आत्म-गौरव का प्रश्न बना लेने पर ही किसी के लिए ऐसा साहस कर सकना सम्भव हो सकता है कि अनुचित मार्ग पर चलने से प्राप्त होने वाले लाभों को अस्वीकार कर सके । कठिनाइयों को झेलते हुए भी चरित्रनिष्ठा के मार्ग पर चलते ही रहने की हिम्मत दिखा सके ।

गायत्री मन्त्र के दूसरे चरण में तीन प्रेरणाएँ सन्निहित हैं । सद्विवेक-सत्साहस के अतिरिक्त तीसरी प्रेरणा है स्वावलम्बन । इसे आत्म-गौरव की रक्षा भी कह सकते

हैं। मनुष्य ईश्वर का राजकुमार है, उसे अपने पिता के राज्य की सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व सम्भालना है और इसके लिए नितान्त आवश्यक उत्कृष्टता को अपनाये रहना है । जागरूक प्रहरी, उद्यान के माली, सुरक्षा सेनापति, सृजन संलग्न शिल्पी, प्राण संकट से उबारने वाले चिकित्सक, राज्याधिकारी, न्यायाधीश जैसे महत्वपूर्ण पदों पर आसीन विशिष्ट व्यक्तियों को, जिस प्रकार अपने उत्तरदायित्व का—पद के गौरव का—ध्यान रखना पड़ता है वैसी ही हर मनुष्य को अपनी जन्म-जात गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रहने का प्रयास प्राण-प्रण से करना चाहिए । ईश्वर ने मानव जीवन जैसी महान धरोहर इसीलिए दी है कि उसका सुदपयोग कर व्यक्तिगत अपूर्णता को पूर्णता में बदला जा सके । विश्व उद्यान को सुविकसित बनाने के महान प्रयोजन में सृष्टा का हाथ बँटाया जा सके । सृष्टि के अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य को जो अतिरिक्त सुविधाएँ मिली हैं उनका यही प्रयोजन है । बुद्धि और वैभव इसीलिए नहीं मिला है कि उससे लोभ और मोह जैसे तुच्छ प्रयोजनों की ललक बढ़ाने और उसी कुचक्र में उलझे रहने की विडम्बना से उसे समाप्त कर दिया जाय ।

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है । वह स्वयं ही अपना मित्र और शत्रु है । आत्म-नियन्त्रण की परिपूर्ण क्षमता उसमें विद्यमान है । इसका सदुपयोग करके वह अपने व्यक्तित्व को इतना शक्तिशाली बना सकता है कि कठिनाइयों का निराकरण और सुविधाओं के सम्वर्धन में कोई बाधा शेष न रहे । आत्म-बोध की महिमा अध्यात्म शास्त्रों में विस्तारपूर्वक गाई गई है इसे स्वावलम्बन एवं आत्म-निर्माण ही कह सकते हैं । गायत्री के द्वितीय चरण में इसी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा है ।

## गायत्री की तृतीय प्रेरणा—एकता, समता, सहकारिता

गायत्री मन्त्र का तीसरा चरण है—धियो यो नः प्रचोदयात् । धी—सद्बुद्धि, प्रज्ञा । यो—समता । नः—हम सब, सहकारिता । इन तीनों ही विशेषताओं की प्रचण्ड प्रेरणा के लिए दिव्य शक्ति से प्रार्थना की गई है । संक्षिप्त में यह है—तीसरे चरण का सार और प्रकाश, जिसे इस तत्व-ज्ञान के समर्थक प्रयोग की दृष्टि से (१) एकता (२) समता (३) सहकारिता कह सकते हैं । धियः शब्द में जिस सद्बुद्धि की गरिमा बताई गई है उसका व्यावहारिक स्वरूप आत्मीयता या एकता ही हो सकता है। वसुधैव कुटुम्बकम् का—आत्मवत् सर्वभूतेषु का—दर्शन जिस मान्यता और रीति-नीति में चरितार्थ होता है उसे एकता ही कहना चाहिए ।

शरीर शक्ति के सदुपयोग की शिक्षा गायत्री के प्रथम चरण में सन्निहित सिद्धान्तों पर अवलम्बित है । इसे समृद्धि सम्वर्धक कर्मयोग कहना चाहिए । दूसरे चरण में मानसिक क्षमता के अभिवर्धन और उसकी श्रेष्ठता के लिए नियोजन करने के सिद्धान्तों का समावेश है । इसे ज्ञानयोग कह सकते हैं । गायत्री का तीसरा चरण है—भक्तियोग । भक्ति अर्थात् प्रेम । प्रेम अर्थात् करुणा, आत्मीयता, उदारता, सेवा । इसी दर्शन को समाज निष्ठा कहते हैं । इसी विश्व को विराट् ब्रह्म की मान्यता देकर लोक-मंडल की साधना को ईश्वर भक्ति का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप बताया गया है । कृष्ण ने अर्जुन और यशोदा को—राम ने काकभुसुंडि और कौशिल्या को इसी विराट् का दर्शन कराया था । ईश्वर भक्ति का दर्शन परमार्थ परायणता की ही पृष्ठभूमि बनाता है ।

समाज निर्माण के, विश्व निर्माण के, युग परिवर्तन के तीन आदर्श ऐसे हैं, जिन्हें गौरवास्पद अतीत की तरह उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए अनिवार्य रूप से अपनाना पड़ेगा । इन तीनों सिद्धान्तों का स्वरूप और प्रयोग जन-जन को समझाना चाहिए । गायत्री तत्व-ज्ञान का समाज रचना पक्ष इन्हीं आदर्शों के साथ जुड़ा हुआ माना जाना चाहिए । एकता, समता और सहकारिता का दर्शन ही नव-निर्माण प्रयोजनों का आधार होना चाहिए ।

एकता का तात्पर्य है विभिन्नताओं और पृथकताओं का यथासम्भव घटाते जाने के लिए प्रयत्न आरम्भ करना और उस स्थिति तक जा पहुँचना जिसमें कौटुम्बिक एकता को बनाये रहने वाले समस्त प्रमुख सूत्रों का समावेश रह सके । इन दिनों देश, भाषा एवं धर्म की भिन्नता मानवी आत्मीयता, एकता एवं विचारणा में भारी व्यवधान उत्पन्न करती है । प्रयत्न यह होना चाहिए कि यह वर्ग विभेद घटता चला जाये और हर व्यक्ति विश्व नागरिकता का आनन्द एवं लाभ भली प्रकार प्राप्त कर सके । एकता का अभिप्राय यही है ।

एकता धर्म की भी होती है । धर्म का तात्पर्य है नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं का परिपालन—इसे

कर्तव्य-पालन भी कह सकते हैं । धर्म का समूचा कलेवर इसी दृष्टि से बना है और उसका उपयोग सर्वजनीन एवं सार्वभौम है । धर्म-शास्त्र के अन्तर्गत आने वाली आचार संहिता का तत्वदर्शियों द्वारा इसी उद्देश्य के लिए निर्माण किया गया है । मूलतः धर्म की व्याख्या में प्रवृत्तियों का ही वर्णन, विवेचन और प्रतिपादन होता रहा है ।

धर्म की छाया में साम्प्रदायिकता की कट्टरता अलग से बनती और पनपती चली आई है । यह वस्तुतः देश की, जाति विशेष की परम्पराओं, परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समय-समय पर स्थानीय सुधारकों द्वारा गढ़ी जाती रही है । ऐसे सुधार सामयिक एवं स्थानीय समस्याओं का ही समाधान करते हैं । उनसे एक सीमित क्षेत्र एवं वर्ग की कठिनाइयों का ही हल निकलता है । समय बीतने पर समाज में अन्य विकृतियाँ उठ खड़ी होती हैं और उनका हल दूसरे ढंग से निकालना पड़ता है । इन्हीं विधि-विधानों को 'सम्प्रदाय' कहते हैं । वे प्रतिपादन शाश्वत नहीं होते हैं । इन सम्प्रदायों की छोटी परिधि में ही नित नये सुधारक उत्पन्न होते रहते हैं और अपने पूर्ववर्तियों की कही बातों में उलट-पुलट करते रहते हैं ।

साम्प्रदायिक विधि-विधानों की सामयिक उपयोगिता भले ही रही है, उनके संस्थापकों का उद्देश्य कितना ही ऊँचा क्यों न रहा हो, पर वे जब कट्टरता का रूप धारण कर लेते हैं तो अपनी मान्यताओं को पूर्ण सत्य और अन्य मान्यताओं को पूर्ण मिथ्या मानने लगते हैं । इतना ही नहीं दूसरों को अपना अनुयायी बनाने के लिए दबाव भी डालते हैं । यह दबाव कई बार इतने अनैतिक होते हैं कि उनसे धर्म की आत्मा ही काँप उठती है । साम्प्रदायिक विद्वेष ने अपने सम्प्रदाय में दूसरों को दीक्षित करने के प्रयास में से कितने अनर्थ किये हैं, इसे इतिहास के रक्त रंजित पृष्ठ पढ़ कर कोई भी विचारशील व्यक्ति आँसू ही बहा सकता है और उन्हें मानवी प्रगति में बाधक तक कह सकता है ।

जो हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि दार्शनिक विचार भिन्नता के लिए गुन्जायश रहते हुए भी नवयुग में साम्प्रदायिक संकीर्णता के लिए स्थान नहीं रहेगा । वैयक्तिक आचार-संहिता और सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण समूची मानव जाति की सुविधा और शालीनता को दृष्टि में रखकर करना होगा । यह निर्धारण सार्वभौम ही हो सकता है । इसलिए समस्त विश्व का एक धर्म भी बन कर रहेगा । विश्व निर्माण में एक राष्ट्र, एक भाषा और एक धर्म की तीनों ही आवश्यकताएँ पूरी करनी होंगी । वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श यदि व्यवहार में उतारना हो तो इन त्रिविध एकताओं को लक्ष्य मानकर चलना और उसके लिए प्रबल प्रयास करना आवश्यक हो जायेगा ।

विश्व निर्माण का प्रथम पक्ष एकता और दूसरा समता है । समता में जाति, लिंग और अर्थ की त्रिविध समताओं को समावेश है । इन दिनों वंश के आधार पर जातियाँ बनी हुई हैं और हर जाति अपने साथ पृथकता की कट्टरता जोड़े हुए है । अपनी जाति के लोग अपने लगते हैं और दूसरी जाति के बिराने । इतना ही नहीं—अपने लोगों के साथ पक्षपात और पराये लोगों के साथ अनाचार बरतते हुए भी संकोच नहीं होता । रोटी-बेटी से लेकर अन्य प्रकार के आदान-प्रदान भी अपनी-अपनी जाति की परिधि में चलाने को प्राथमिकता दी जाती है । इस वंशगत संकीर्णता का परिणाम संसार भर में जाति विद्वेष के रूप में अनेकों प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न करते देखा जा सकता है । गोरे और काले का, सवर्ण और असवर्ण का भेद कितनी विषमता उत्पन्न करता है और उससे न्याय एवं औचित्य का कितना हनन होता है इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । भारत में तो चुनावों तक में इस जातिवादी संकीर्णता का बोलबाला है । विवाह-शादियाँ इसी कट्टरता के कारण एक समस्या बन गई हैं । समूचा सामाजिक ढाँचा ही इस जातिगत कट्टरता से चरमरा गया है । वंश विद्वेष के दुष्परिणामों ने भयंकर समस्याएँ रचकर खड़ी कर दी हैं । अपने देश में छूत-अछूत से लेकर जातियों और उपजातियों के बीच पाई जाने वाली पृथकता और नीच-ऊँच की भावना एक प्रकार से सामाजिक अराजकता, पृथकता एवं विषाक्तता का ही वातावरण उत्पन्न करती चली जा रही है । इसे घटाने और मिटाने पर ही नवयुग की आधारशिला रखी जा सकेगी ।

जातिगत विषमता की तरह ही लिंगगत असमता भी दुर्भाग्यपूर्ण है । नर और नारी के बीच बरते जाने वाले भेद-भाव को पग-पग पर देखा जा सकता है । कन्या और पुत्र का अन्तर—पर्दा प्रथा, दहेज—बलात् वैधव्य, घर की सीमा बन्धन, पत्नी परित्याग जैसे अनेक रीति-रिवाज ऐसे हैं जिनमें स्पष्ट ही नारी को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है । पुरुष को जो अधिकार प्राप्त हैं

वे उसे नहीं मिल रहे हैं । उसकी स्थिति मनुष्य और पशु के मध्यवर्ती जैसी समझी जा सकती है । सभ्य समाज का समर्थ नागरिक की स्थिति में रहने का अवसर उसके हाथ से छीन लिया गया है और नर की क्रीत दासी जैसी भूमिका उसे निभानी पड़ रही है । आज तो इस स्थिति का समर्थन कितने ही सामन्तवादी तर्कों के आधार पर किया जाता है और इसके प्रतिपादन में धर्म तक की दुहाई दी जाती है । पर विवेक और न्याय की आत्मा इस स्थिति को असह्य बताती है । नवयुग में नर और नारी के सम्बन्ध स्नेह, सौहार्द्र और आदान-प्रदान के आधार पर मधुरतम बनेंगे उसमें वर्तमान शोषण के लिए कोई स्थान न रहेगा ।

एकता और समता की ही तरह नवयुग का तीसरा आदर्श है—सहकारिता, उसे संघबद्धता एवं सामूहिकता भी कह सकते हैं । व्यक्ति को संकीर्ण स्वार्थों की परिपोषण की आपाधापी नहीं करनी चाहिए वरन् अपने को समाज के एक छोटी इकाई भर मानकर सार्वजनिक हित की प्रधानता देनी चाहिए । मिल-जुलकर रहना ही कौटुम्बिकता है । सिद्धान्त पीछे परिवार तक सीमित न रखकर व्यापक बनना चाहिए । आर्थिक क्षेत्र की सहकारिता के लाभ इन दिनों अधिक अच्छी तरह समझा रहे हैं और छोटे-बड़े संस्थान, व्यवसाय इसी आधार पर खड़े किये जा रहे हैं । सरकारी तन्त्र भी उन्हें प्रोत्साहन और सुविधा देता है । संस्थाओं का गठन इसी आधार पर होता है । संयुक्त परिवारों की प्रथा तो इसका जीता जागता स्वरूप है । साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ, लोकसेवी महामानव इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करने और उसके लिए अपना आदर्श उपस्थित करने में लगे रहते हैं । जन-साधारण के सामने यह सम्मानीय देव पुरुष यह उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि व्यक्तिगत स्वार्थ को सामूहिक स्वार्थ के लिये उत्सर्ग किया जाना चाहिए ।

विचारशील वर्ग में कम्यून-परिपाटी—लार्जर फैमिली—प्रयोगों के सम्बन्ध में बहुत चर्चा होती है और उसके लिये आधार सोचे और खड़े किये जाते हैं । भविष्य में व्यक्तिवाद को समूहवाद में परिवर्तित करने के लिये सहकारिता की सामूहिक प्रवृत्ति को ही क्रियान्वित करना होगा । विश्व बन्धुत्व का—विश्व नागरिकता का—सिद्धान्त सहकारिता की प्रवृत्ति अपनाने पर ही सम्भव हो सकेगा । सहकारिता वैयक्तिक उत्कर्ष का और सामाजिक प्रगति का आधारभूत सिद्धान्त है । संकीर्ण स्वार्थपरता से ही समस्त दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं और अपराधों, आक्रमणों की बाढ़ आती हैं । सामूहिकता में एक-दूसरे के सहयोगी रहने, उदार व्यवहार करने का आदर्श अपनाना पड़ता है । इस तत्व दर्शन से प्रगति और शान्ति की सम्भावनाएँ होंगी ।

नवयुग में अवतरण के अनुकूल समाज संरचना के लिए अनेकों प्रकार के अनेकानेक रचनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रम अपनाने पड़ेंगे, पर उन सबके मूल में एकता, समता और सहकारिता की तीन प्रवृत्तियाँ ही प्रमुख हैं । इन्हीं की पूर्ति के लिये उन गतिविधियों का निर्धारण करना होगा जो नवयुग की सुखद सम्भावनाओं को साकार कर सकती है ।

## महाप्रज्ञा का तत्वदर्शन जन-जन तक पहुँचे

गायत्री को आद्यशक्ति कहते हैं । उससे पहले इस संसार में और कुछ नहीं था । पुराण कथन के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में सर्वत्र जल भरा था । विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, उसके पुष्प पर ब्रह्मा जी अकेले बैठे हुए थे । असमंजस में पड़े थे, अब क्या सोचूँ ? और क्या करूँ ? इतने में आकाशवाणी से गायत्री महामंत्र का उद्घोष हुआ । कहा गया कि इस आदि शक्ति का सौ वर्ष तक तप कीजिए, उससे कर्तव्य बुद्धि की महाप्रज्ञा और साधन जुटाने की प्रचंड शक्ति उपलब्ध होगी । ब्रह्माजी ने वैसा ही किया । उन्हें कर्तव्यबोध के निमित गायत्री का दर्शन हुआ । सृष्टि सृजन का उद्देश्य जाना । पर इसके लिए शक्ति और साधनों की आवश्यकता थी । उसकी पूर्ति के लिए आद्यशक्ति दूसरे सावित्री के रूप में भी प्रकट हुई । पंचमुखी सावित्री एवं उससे पाँच तत्व, पाँच प्राण उत्पन्न हुए और जड़ चेतन सृष्टि बनकर खड़ी हो गई ।

इसके उपरान्त व्रह्मा जी ने गायत्री के रहस्य की चार मुखों से चार वेदों के रूप में विवेचना की । उससे शास्त्र, उपनिषदों, दर्शन, पुराण आदि का तत्व-ज्ञान के रूप प्रकटीकरण हुआ ।

इसके उपरान्त गायत्री के एक-एक अक्षर से प्रचण्ड सत्ताओं का प्रकटीकरण हुआ । २४ अक्षरों से २४ अवतार, २४ देवता, २४ ऋषि, २४ चक्रवर्ती प्रकट हुए । उन सबने मिलकर सृष्टि की समस्त साधन सामग्री उत्पन्न

की । इन सबने गायत्री महामंत्र उपासना की और उसी के कारण उपलब्ध सामर्थ्य उपासना की और उसी के कारण उपलब्ध सामर्थ्य से सृष्टि का विकास और संचालन करने लगे । वह क्रम अब तक चला आता है । जब कभी जिस किसी को कोई महत्वपूर्ण कदम उठाना पड़ता है तब-तब मनीषी-मुनि, ऋषिगण आवश्यक क्षमता की उपलब्धि के लिए इसी महाशक्ति का आश्रय लेते और अपने मनोरथ पूरे करते हैं।

शास्त्रों में गायत्री को देव संस्कृति की माता और यज्ञ को तत्व-ज्ञान का पिता कहा गया है । दोनों का परस्पर संयोग है । आग और ईंधन के समन्वय से ज्वाला प्रकट और प्रचण्ड होती है । उसी प्रकार गायत्री साधना के साथ यज्ञ प्रक्रिया का समन्वय हो जाने से वे चमत्कार उत्पन्न होते हैं जिन्हें ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ, स्वर्ग, मुक्ति, शान्ति, समृद्धि आदि के नाम से जाना जाता है ।

यज्ञ में कुछ जलाया जाता है । नष्ट किया जाता है, ऐसा नहीं सोचना चाहिए, वरन् वस्तुतः होम द्रव्य को मन्त्र शक्ति और अग्नि ऊँचाई के समन्वय से उन्हें सुविस्तृत किया जाता है । इससे इन तीनों की शक्ति असंख्य गुनी हो जाती है और जो भी उसके सम्पर्क में आते हैं, असंख्य गुना लाभ उठाते हैं । इसलिए जहाँ कहीं गायत्री की आराधना होती है, वहाँ उसके साथ यज्ञ को भी जोड़े रखने की व्यवस्था की जाती है । माता और पिता दोनों का परिपूजन साथ-साथ हो जाता है ।

प्राचीन इतिहास को पढ़ते हैं तो गायत्री की अपारशक्ति के अनेकानेक उल्लेख मिलते हैं । जहाँ भी यह ऊर्जा प्रकट हुई है वहीं उसका परिणाम ऐसा देखने को मिलता रहा है जिसे अनुपम अद्भुत कहा जा सके । संकटों के निवारण, अभ्युदय के संसाधन और लोक-परलोक को श्रेय उत्कर्ष से भरा-पूरा इसके माध्यम से बनाया गया है ।

ऋषियों ने हर देव संस्कृति के अनुयायी को इन दोनों का दैनिक जीवन में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में समन्वय किये रहने का आदेश दिया है । सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री महाप्रज्ञा को सिर के किले पर ध्वजा के रूप में शिखा बनाकर स्थापित किया जाता है । यज्ञ से पवित्र किया हुआ प्रतीक सूत्र यज्ञोपवीत के रूप में कंधे पर धारण किया जाता है । गायत्री के तीन चरण और नौ शब्द ही यज्ञोपवीत में तीन लड़ी और नौ धागों के रूप में विनिर्मित किये गये हैं और हर शरीर को देवालय बनाकर इन दोनों को प्रतीक रूप में धारण किये रहने, इनका पूजन-अभिनन्दन करने का निर्देश दिया है । जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं । सभी में यज्ञ कर्म प्रधान होते हैं । जब शरीर का अन्त होता है तो भी उसे यज्ञ पिता की गोदी चिता में सुला दिया जाता है । नई फसल पकती है तो उसे खाने से पूर्व कच्चे अन्न का ही होली के रूप में नवान्न— यज्ञ किया जाता है । विवाह की वेदी पर भी यज्ञ की साक्षी में दो आत्माएँ जन्म भर के लिए एक साथ जुड़ती हैं । दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि देव संस्कृति के इन रहस्यों और क्रियाकलापों को हम भूलते जा रहे हैं और उनकी चिह्न पूजा मात्र शेष रह गई है । होली के अवसर पर कूड़ा-कचरा एकत्रित करके जला दिया जाता है । पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को तो भी अधिक स्मरण है । पुरुष चोटी नहीं रखते तो बहुतसी महिलाएँ दोनों के बदले की दो चोटी बना लेती हैं । पर्व-त्यौहारों के अवसर पर चूल्हे से अग्नि निकाल कर उस पर लोग बताशा आदि जला कर अग्निहोत्र की चिह्नपूजा कर देती हैं । पुत्रों की अपेक्षा पुत्रियाँ अपने माता-पिता के प्रति अधिक स्नेहसिक्त और भावपूर्ण रहती हैं । इसका प्रमाण गायत्री और यज्ञ के प्रति महिलाओं में अधिक श्रद्धा अभी भी पाई जाती है जब कि कई निष्ठुर यह भी कहते सुने जाते हैं कि माता-पिता की गोद में खेलने का पुत्रों को ही अधिकार है बेटियों को नहीं । वे महिलाओं के साथ-साथ यज्ञ और गायत्री की उपेक्षा अवज्ञा करने तक की धृष्टता करते हैं ।

जब गायत्री यज्ञ और भारतीय धर्मतत्वज्ञान परस्पर इस प्रकार अविछिन्न रूप में जुड़े हुए हैं और उनकी आराधना को नित्य कर्म बताया गया है । प्राचीनकाल के सभी महामानव उसी उपासना को अपनाते रहे हैं तो आश्चर्य लगता है कि आज क्यों इनकी इतनी अवज्ञा हो रही है ? सद्बुद्धि और सत्कर्म की अवहेलना सर्वत्र क्यों होती दिखाई देती है ? लोग अपने आध्यात्मिक माता-पिता तक को क्यों भूलते जा रहे हैं ? जो माता-पिता का स्वरूप, व्यवहार और नमन तक भुला दे, उसे अपने समाज में बुरा कहा जाता है । सद्ज्ञान रूपी गायत्री और सत्कर्म रूपी यज्ञ की अवहेलना करने का ही परिणाम है कि सर्वत्र 'आस्था संकट' जैसा दुर्भिक्ष फैल रहा है । इसी अभाव के कारण, लोग अपना शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक संतुलन गँवा बैठे हैं । बुद्धि, विज्ञान और व्यवसाय कौशल में पूर्वजों

की तुलना में कहीं आगे बढ़ जाने पर भी दुख-दारिद्र के, शोक-संताप के संकट सह रहे हैं ।

कितनों को ही इन पारस, अमृत और कल्पवृक्ष जैसे चमत्कारी रहस्यों पर विश्वास नहीं होता । भूतकाल के इतिहास पर विश्वास नहीं करते । शास्त्र के उल्लेख और आप्त वचनों पर विश्वास नहीं करते और गायत्री उपासना का, यज्ञों के आयोजन का जब प्रसंग आता है तब नाक-भौं सिकोड़ते, उसकी उपेक्षा अवज्ञा करते देखे जाते हैं । बहु प्रचलन आज ऐसा ही दृष्टिगोचर होता है । विचारणीय है कि हीरों को टूटे काँच में फेंक देने जैसी दुर्गति आज किस कारण हुई ।

गंभीरतापूर्वक विचार करने पर एक ही कारण प्रतीत होता है कि जो महिमा और माहात्म्य बताया गया है वह प्रत्यक्ष होता दृष्टिगोचर नहीं होता । कई पूजा-पाठ के प्रेमी गायत्री उपासना करते हैं, पर उनकी भौतिक और आत्मिक स्थिति में कोई उत्साहवर्धक परिवर्तन होता दिखाई नहीं पड़ता । उलटे भाग्यवादी, परावलम्बी, आलसी, प्रमादी जैसे बन जाते हैं । इस प्रत्यक्ष को देखना ही यह संशय उपजाता है कि जब इतने लोगों को कोई कहने लायक लाभ नहीं मिले तो हमें ही क्या हाथ लगने वाला है । यह असमंजस और अविश्वास ही बड़ा कारण है जिससे उस पुरातन परम्परा का लोप जैसा होता चला जाता है ।

अधिक चिन्ता की बात इसलिए है कि वर्तमान की विनाशकारी विभीषिकाओं का अदृश्य दर्शियों ने एक ही समाधान सुझाया है कि अगले दिनों वर्तमान संकटों का समाधान महाप्रज्ञा का आश्रय लेने से ही निकलेगा । दुर्बुद्धि का कारण विकृत हुई मनःस्थिति ने ही परिस्थितियों को विनाशकारी बनाया है और आतंक का वातावरण उत्पन्न हुआ है । उसका निराकरण निदान के अनुरूप उपचार से ही संभव होगा । यदि प्रस्तुत संकटों से उबरना है तो दूरदर्शी विवेकशीलता का महाप्रज्ञा का ही आश्रय लेना होगा । उलटी परिस्थितियों को उलट कर ही सीधा किया जायेगा । प्रज्ञा युग का उज्जवल भविष्य ही आज की विपन्नताओं से त्राण दिला सकेगा ।

इस के लिए किन्हीं विशिष्ट आत्माओं को तो अपनी अस्थियों से बज्र बनाने वाला दधीचि जैसा भगीरथ स्तर का, तप भी करना पड़ेगा, सूक्ष्म जगत में करना भी पड़ रहा है । पर काम इतने से भी नहीं चलेगा । असंख्य प्राणों की ऊर्जा के समन्वय से उत्पन्न होने वाली महाशक्ति के उत्पादन का विशिष्ट प्रयत्न भी करना होगा । देवताओं की थोड़ी-थोड़ी शक्ति एकत्रित करके प्रज्ञापति ने महिषमर्दिनी दुर्गा को अवतरित किया था । त्रेता में ऋषियों ने थोड़ा-थोड़ा रक्त संचय करके रक्त घट भरा था और उससे उस सीता का जन्म हुआ जिसके कारण त्रैलोक्य को कँपा देने वाली लंकेश की असुरता का उन्मूलन संभव हुआ था । ऐसे ही प्रसंग और भी इतिहास में अनेकों हैं । बुद्ध के परिव्राजक, ईसा के पुरोहित, चाणक्य के धर्माचार्य, गाँधी के सत्याग्रही आदि की सामुदायिक शक्ति कलेक्टिव कांशसनेस से ही वे कार्य संभव हुए जो आरंभ में असंभव दीखते थे । महाप्रयोजनों के लिए जनशक्ति को साथ लेकर चलना पड़ा है । इन दिनों युग परिवर्तन की वेला में एक-दो तपस्वी ही सब कुछ प्रयोजन पूरा न कर सकेंगे । उनके पीछे विशाल जनशक्ति का समर्थन और सहयोग भी चाहिए ।

युग अवतरण के लिए जो प्रज्ञा तप विश्वव्यापी बनने जा रहा है उसमें अग्रगमन मार्ग-दर्शन कुछ का हो तो हर्ज नहीं पर इसके अतिरिक्त इस अध्यात्म ऊर्जा उत्पादन में अनेकों का असाधारण सहयोग चाहिए । कुछ तो हो भी रहा है, २४० करोड़ गायत्री मंत्रों का जप एवं युग सन्धि महापुरश्चरण व्यक्तियों के सहयोग से ही चल रहा है । इतने से आरंभिक संतोष तो किया जा सकता है, पर यह पर्याप्त नहीं है । इसके लिए लाखों से काम नहीं चलेगा करोड़ों सहकर्मी चाहिए । पर यह सब हो कैसे ? अधिकांश लोग तो ऐसे हैं जो इस महाशक्ति के तत्व-ज्ञान तक पर विश्वास नहीं करते, उसके रहस्य तो दूर अर्थ तक को नहीं समझते । ऐसी दशा में यह कैसे आशा की जाये कि प्रज्ञा प्रवाह को प्रचण्ड तूफान उत्पन्न करने में अपना सहयोग देने वाले करोड़ों लोग उत्पन्न हो जायेंगे वह भी इतने कम समय में जिसे भविष्य के लिए नहीं टाला जा सकता । चूकने पर तो सर्वनाश के अतिरिक्त और कुछ बनेगा ही नहीं । इसके लिए जो करना है उसे युद्ध स्तर पर तूफानी गति से ही करना पड़ेगा । इसके लिए असंख्य लोगों की श्रद्धा जगानी पड़ेगी । यह कार्य मात्र लेखनी और वाणी द्वारा प्रचार कार्य करते रहने की मंथर गति से भी नहीं हो सकता । इसके लिए ऐसा प्रत्यक्ष उदाहरण सामने रखना होगा जिसे अविश्वासी से अविश्वासी तक अपनी कसौटियों पर कसने के उपरान्त खरा पा सकें । ऐसा ही तप पुरुषार्थ मिशन के सूत्र

संचालक पूज्य गुरुदेव द्वारा अपनी पैंसठ वर्ष की तप साधना में किया गया । वह क्रम अभी भी दूसरे रूप में चल रहा है ।

गायत्री सचमुच महाशक्ति है । उसका अवलम्बन लेने से एक साधारण व्यक्ति भी महामानव स्तर के पुरुषार्थ सम्पन्न कर दिखा सकता है । सद्बुद्धि विस्तार, सौहार्द्र की भावना का प्रसार ही आज के समय की माँग है । गायत्री की शब्द-शक्ति की चेतना का ईंधन कह सकते हैं। समष्टिगत चेतना को जगाने के लिए इस महाशक्ति का ही आश्रय लेना होगा । इस तथ्य को भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए । देव संस्कृति ही अगले दिनों विश्व संस्कृति के रूप में व्यापक विस्तृत होगी, एवं नवयुग का नेतृत्व करेगी । इसके दोनों ही स्तम्भों गायत्री एवं यज्ञ के तत्वदर्शन को जन-जन तक पहुँचाया जाना प्रस्तुत समय की सबसे बड़ी सेवा है ।

## युग शक्ति गायत्री का अवतरण अभिप्राय

हम जिस युग में जी रहे हैं उसमें सुविधाओं और साधनों की प्रचुर मात्रा विद्यमान है । विज्ञान और टेक्नालॉजी के द्रुत विकास के साथ-साथ मानवीय वैभव में व्यापक अभिवृद्धि हुई । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी सामग्री के अम्बार लगते जा रहे हैं । किन्तु इसे युग की सबसे बड़ी विडम्बना ही कहा जायेगा कि साधनों की इस बढ़ोत्तरी के साथ उनका उपयोग करने वाली अन्तःचेतना का स्तर ऊँचा उठने की अपेक्षा उलटा गिरता चला जा रहा है । पतन इस स्थिति तक आ गया है जहाँ से सर्वनाश की विभीषिकायें स्पष्ट दिखाई देने लगी हैं । इतने पर भी ध्यान समृद्धि की ओर ही लगा हुआ है । मानवीय अन्तःकरण को, अस्थाओं, अकांक्षाओं, प्रथा-परम्पराओं, रीति-नीति और गतिविधियों को ऊर्ध्वगामी बनाने की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है ।

स्वास्थ्य, शिक्षा, उपार्जन और सुरक्षा व्यवस्था मानवीय प्रगति के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी कहे जा सकते हैं किन्तु यदि यह साधन दुष्ट बुद्धि के हाथों में पड़ जाते हैं तो वह प्रगति ही विनाश का कारण बन जाती है । आज की स्थिति यह है कि सारा समाज तृष्णा और अहंता, इन्द्रिय सुखों की अतृप्त लालसा में डूबा पड़ा है । उनकी पूर्ति सामान्य तरीकों से हो नहीं सकती । ईमानदारी और परिश्रम के सहारे निर्वाह योग्य आजीविका उपलब्ध की जा सकती है, पर जब थोड़े समय में अपार सुख की कामना हर किसी को सता रही हो तो भ्रष्टता और दुष्टता का बढ़ना निश्चित हो जाता है । आज स्थिति यही है । दूसरों की बात पीछे की है न्याय और विकास के अधिकारी ही, "मेंड़ ने खेत खाया" की क्रूरता में लिप्त दिखाई देते हैं तो जन-सामान्य की तो कल्पना कठिन ही कठिन है ।

बढ़ती हुई हिंसा, अपराध और समस्यायें इतनी जटिल हो गई हैं कि उसके भयंकर परिणामों की कल्पना करने से भी हृदय सिहर उठता है । छोटे-छोटे बच्चों, अबोध महिलाओं तक के साथ भी दुष्टता बरतने से लोग बाज न आये तो उसे दुर्बुद्धि की पराकाष्ठा समझनी चाहिए । आज का बुद्धिमान कहा जाने वाला समाज इन बुराइयों में आकण्ठ डूबा हुआ है । अतएव इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता व्यक्तियों की अन्तःभूमिका को सुसंस्कृत और समुन्नत बनाने की हो गई है । उसकी उपेक्षा की गई तो आज की प्रगति कल के पिछड़ेपन से भी महँगी पड़ेगी । मनुष्य का अन्तराल उत्कृष्ट बनाया जा सके तो स्वल्प साधनों में भी सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ विकसित हो सकती हैं । दृष्टिकोण में उदारता, चरित्र में शालीनता और व्यवहार में नैतिकता का समावेश रहे तो अभावग्रस्त स्थिति में भी मनुष्य स्वर्गीय परिस्थितियों का आनन्द लेता रह सकता है । यही वह जिम्मेदारी है जिसे पूरा किया जाना आज की सबसे बड़ी साधना कही जा सकती है ।

दण्ड, पुरस्कार, प्रलोभन और सज्जनता का प्रशिक्षण यह तीन प्रयोग पिछले दिनों मानवीय दृष्टिकोणों को सुधारने के उद्देश्य से किये जाते रहे हैं । किन्तु उनकी पहुँच शरीर और मस्तिष्क तक तो किसी तरह हो जाती है, पर आस्थायें निकृष्ट स्तर की होने के कारण वे मनुष्य को देर तक आदर्शवादी बनाये रखने में सफल नहीं हो पाये । कानूनी प्रक्रियायें इतनी लचर हैं कि अधिकांश अपराधी तत्व बच निकलते हैं । इस तरह दण्ड का भय जाता रहा, पुरस्कार की मात्रा कहीं भी हो सीमित हो सकती है, पर लालसाओं की बाढ़ असीम हो तो भी लोग दुष्कर्म के लिए ही उतावले होंगे । सज्जनता का प्रशिक्षण करने वाले लोग जब स्वयं ही ओट से शिकार करते दिखाई देते हैं तो रही सही सज्जनता भी बालू के ढेर की तरह थोड़े से प्रलोभन में ढह कर रह जाती है । अव्यवस्था रोकने के सारे के सारे आधार धरे के धरे रह जाते हैं और अवाँछनीयतायें उसी गति से बढ़ती हुई चली जाती हैं ।

मनुष्य का जीवन उसकी आस्थाओं से प्रेरित होकर बढ़ता है । यदि आस्थायें निकृष्ट हुईं तो व्यक्ति अधोगामी प्रवृत्तियों में जकड़ा रहेगा । मन आकांक्षाओं का दास है तो शरीर मन का । स्पष्टतः आस्थाओं के अनुरूप जीवन क्रम सुनिश्चित होता है । मनुष्य भला बुरा जो कुछ भी करता है उसकी मूलभूत प्रेरणा उसे अपनी आकांक्षाओं से ही मिलती है, आस्थायें संस्कार जन्य होती हैं । राजकीय कानून, सामाजिक नियम तर्क और प्रवचन प्रशिक्षण उन्हें बहुत सीमित मात्रा में ही प्रभावित कर पाते हैं, पर मानवीय विश्वास मोड़े जा सकें, तो व्यक्ति बाल्मीकि, अंगुलिमाल, सदनकसाई, गणिका और अजामील की तरह से परिवर्तित होकर दुष्ट से महान् सन्तों की श्रेणी में जा खड़े हो सकते हैं ।

आस्थाओं में परिवर्तन के लिए आस्थाओं का प्रतिरोपण ही कार्य कर सकता है । अत्यधिक ब्रह्मचर्यस् सम्पन्न महापुरुषों द्वारा पैदा किया गया वातावरण भी इस कार्य में सहायक होता है, पर उस तरह की उपासना और साधना के द्वारा ही अन्तःकरण में उच्चस्तरीय श्रद्धा का आरोपण, परिपोषण और अभिवर्धन करके मनुष्य जीवन की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को सृजन प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जा सकता है । अन्तःकरण परिवर्तित किया जा सके तो सामान्य जीवन के क्रिया-कलाप स्वतः बदल जाते हैं ।

आस्थाओं के पुर्निर्माण का एक अन्य उपाय भी है जिसे तप कहते हैं । उपासना वर्ग के सभी कलेवर वस्तुतः इस तप के ही उपादान हैं, पर इस पद्धति में शरीर को अनेक कष्ट पूर्ण तितीक्षाओं से, मन को विरोधी परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है । इस तरह मनुष्य का दृष्टिकोण उदार, उदात्त और विशाल बनता है । शोषण, उत्पीड़न और भ्रष्टता की प्रतिक्रियाओं की स्वतः अनुभूति इसी से होती है और उस स्थिति में मनुष्य स्वयं ही उनसे दूर भागता है । स्पष्ट है कि ऐसे समाज बुराइयों से बचे हुए होंगे, साधन सुविधाओं की सार्थकता भी ऐसे ही समाज में सिद्ध होती है ।

ईसा, बुद्ध, शंकराचार्य, विवेकानन्द, गान्धी जैसे महामानवों ने जो भी सफलतायें मानवीय समाज को संस्कारित करने में पाईं उनका कारण अपनी प्रखर आत्मशक्ति द्वारा उस समय के जनमानस को भौतिक लालसाओं से हटाकर उन्हें अन्तर्मुखी बनाना रहा है । मानवीय दृष्टिकोण में जब तक भौतिक जीवन के सुखों की चाह प्रबल रूप से छायी रहती है तब तक वह समूचे ब्रह्माण्ड को अत्यन्त विलक्षण संरचना—मनुष्य शरीर की आध्यात्मिक सत्ता की बात ही नहीं सोच पाता । मृत्यु के बारे में हर कोई जानता है कि उसे टाले चला जाना आज तक किसी के लिए भी संभव नहीं हुआ तो भी कितने लोग हैं जो उसके लिए तैयारी करते हैं । जीवन की अमरता के विश्वास को लोग शारीरिक अमरता के भ्रम में फँसा कर यों ही निरर्थक गँवाते रहते हैं और मनुष्य शरीर पाने जैसा स्वर्ण अवसर हाथ से चला जाता है, थोड़े से लोग इस बात को समझते हैं तो सन्त और महात्मा हो जाते हैं । अधिसंख्य जनमानस को इस अध्यात्म के प्रकाश में लाया जा सके तो स्वभावतः लोगों की उद्यत लालसाओं की बाढ़ को रोका जा सकता है । उसके लिए किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति को तप करना पड़ता है । तप का अर्थ मात्र जप, ध्यान, आसन, प्राणायाम ही नहीं है यह भी उस प्रक्रिया के धार्मिक अंग हैं, उसका व्यवहार पक्ष भी हैं जिसमें अपनी तृष्णा, अहंता से, असीम साधन एकत्र करने, अधिकतम भोग भोगने, अपने को बड़ा सिद्ध करने की प्रवाह वाले जीवन क्रम को तोड़-मरोड़ कर सादगी, सज्जनता, मितव्ययिता, निरहंकारिता का जीवन जीना पड़ता है । अपने लिए साधनों का संचयन न होते देख उस स्थिति में अपने ही कहलाने वालों का बैर-विरोध उपहास-तिरष्कार भी सहना पड़ता है तब जाकर कहीं आत्मिक लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । इतिहास साक्षी है जब-जब जनमानस इस तरह आध्यात्मवादी आदर्शों से प्रेरित हुआ, लोक व्यवहार में तब-तब स्नेह, मधुरता, भ्रातृ भाव, कर्तव्यनिष्ठा, उच्च नैतिकता, ईमानदारी और चरित्र निष्ठा का विकास हुआ, सामाजिक जीवन की सुख-शान्ति और सुव्यवस्था ऐसे ही युगों में अक्षुण्ण रहती आई है । यदि आज के युग में भी भौतिकतावादी मान्यताओं, आकांक्षाओं और आस्थाओं को बदल कर अनमें आध्यात्मिक तत्वों को समाविष्ट किया जा सके तो इन दिनों दिखाई देने वाली चरित्रहीनता, सामाजिक भ्रष्टता और रीति-नीति में छाई स्वार्थपरता को पूरी तरह हटाया और मिटाया जा सकता है ।

भगवान् राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसामसीह, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द प्रभृति महापुरुषों की कार्य-पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न दिखाई देते हुए भी उनका दर्शन एक ही रहा है । आस्थाओं में मोड़—दृष्टिकोण में परिवर्तन—मान्यताओं में आदर्शवादिता का समावेश । कार्यशैली

सब की अपनी-अपनी तरह की रही है । पर उन सब का उद्देश्य जनमानस को संस्कारित करना ही रहा है ।

इस युग में न तो धार्मिक विकृतियों का संशोधन मुख्य प्रश्न है और न ही भौतिक जीवन का प्रशिक्षण । वस्तुतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वह प्रथा-परम्पराएँ हों, चाहे रीति-रिवाज, वेष-भूषा, खान-पान और मान-मर्यादायें, सर्वत्र अविवेक ही वह प्रमुख राक्षस घुस बैठा है, जिसके वशवर्ती होकर मनुष्य जाति भ्रष्ट, अनैतिक और बर्बर होती चली जा रही है । स्पष्ट है कि आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है मनुष्य के विचारों में सद्विवेक की स्थापना । विचारों का गुरु दीपक लेकर जागृत हो जाये तो अज्ञानान्धकार में भटकने वाली प्रवृत्तियों का भटकाव स्वतः ही रुक सकता है । युग-निर्माण योजना ने यही कार्य, यही उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर उठाया है और पिछले २५ वर्षो से इस दिशा में अत्यधिक तेजी से बढ़ता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा है ।

गायत्री उपासना को सद्ज्ञान, सद्विवेक की उपासना भी कहा जाता है । गायत्री महामन्त्र के २४ अक्षरों में बीज रूप से वे सभी तत्व ओत-प्रोत हैं जो उपासक के हृदय अन्तःकरण में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्वस्थ, समर्थ और विवेकपूर्ण बनाने वाला प्रकाश जागृत करते हैं । अनेक तरह की दार्शनिक मान्यताओं के रहते हुए भी गायत्री उपासना, तत्व-ज्ञान के प्रति आदिकाल से ही ऋषि मनीषी सभी एक मत रहे हैं । जितने भी अवतार हुए हैं उन सब ने उपासना के रूप में आद्यशक्ति भगवती गायत्री को ही इष्टदेव चुना है । उसके पीछे इस दर्शन का प्रतिपादन ही रहा । मनुष्य जाति की समस्याओं का निराकरण एकमात्र विवेक और सद्ज्ञान से ही सम्भव है। इस युग में जब कि असुरता ने मानवीय बुद्धि को ही पूरी तरह आच्छादित कर रखा है तब तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो जाती है । इसी कारण युग परिवर्तन के लिए गायत्री अभियान को चुना गया । युग शक्ति गायत्री के अवतरण का अभीष्ट भी यही है ।

गायत्री उपासना में तप-साधना के वे सभी तत्व विद्यमान हैं जिनके आधार पर लोगों की आस्थायें बदलती हैं, जनमानस का परिष्कार होता है, जीवन को सचेतन बनाने वाली प्राण ऊर्जा विकसित होती है और मानवीय सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ मुखरित होती हैं । गायत्री को त्रिपदा भी कहा गया है, जिसका एक अर्थ यह भी होता है कि इस उपासना से मनुष्य अभाव, अशक्ति और अज्ञान से मुक्ति पाता है । शरीर, समाज और लोक व्यवहार में क्या उचित है, क्या अनुचित, इस बात को सीखता है, तदनुसार अपना जीवनक्रम निर्धारित करता है । दुःख के यही तीन कारण हैं, इन्हीं तीनों चरणों की भ्रष्टता ही मनुष्य को पतित करती है, यदि वह व्यवस्थित हो जाते हैं तो फिर उस कोलाहल, अशान्ति और सर्वनाश की विभीषिका से स्वतः ही बचा जा सकता है । इस प्रयोग को प्राचीनकाल में सर्वाधिक सफलता मिली थी । इसलिए मनीषियों ने एक मत से गायत्री उपासना को राष्ट्रीय उपासना के रूप में स्वीकार किया था। अन्य किसी उपासना के बारे में मतभेद रहे होंगे पर गायत्री उपासना और तत्व-ज्ञान का निर्विवाद स्वरूप लोग आज भी स्वीकारते हैं । यदि कहीं कोई मतभेद झलकता है तो वह मात्र प्रयुक्तीकरण में हो सकता है, उसकी महत्ता उपयोगिता के बारे में कहीं कोई विवाद नहीं ।

आज के युग की तो सब से पहली आवश्यकता ही वह प्रज्ञा है जिसका मूलाधार गायत्री है । इस महामन्त्र के २४ अक्षरों में सिद्धि, सामर्थ्य और ज्ञान-विज्ञान के अनन्त बीज विद्यमान हैं । उसकी शिक्षायें प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारक हैं । लोक और परलोक दोनों को स्वस्थ, संतुलित और सामन्जस्यपूर्ण बनाती हैं । ऐसी कोई दूसरी तप साधना है नहीं । यह कोई जादू या चमत्कार नहीं अपितु शब्द-शक्ति, भावशक्ति का प्रत्यक्ष विज्ञान है । जिसे श्रद्धा, अश्रद्धालु, तार्किक, अविवेकी कोई भी अपनाकर अपने बिगड़े स्वरूप को सुधार और सुधरे को अधिक सँवार कर स्वर्गीय परिस्थितियाँ विनिर्मित कर सकता है, अपने लिए भी संसार के लिए भी ।

इसीलिए युगान्तर चेतना के अभ्युदय के साथ-साथ युग शक्ति गायत्री का अवतरण हुआ । संस्कृति के अन्य उपादानों के समान ही यह विज्ञान भी अन्धकार में खोया पड़ा था । एक तो व्याख्यायें, विज्ञान और प्रतिपादन मिलते ही नहीं थे जो मिलते भी थे, वे इतने उलझे शास्त्रीय पद्धति में थे कि जन-साधारण उसे समझ ही नहीं सकता था । यदि किसी को बात समझ में आ भी सकती थी तो स्वार्थी तत्वों ने इस महान् तत्व-ज्ञान को भी इस तरह बन्दी बना लिया था कि हर कोई उसके अवगाहन का, उपासना का साहस ही नहीं कर सकता है । गायत्री केवल ब्राह्मणों के लिए, स्त्रियाँ प्रतिबन्धित हैं, यह कान में कहा जाने वाला मन्त्र है, गायत्री शापग्रस्त है, ऐसी न जाने कितनी मूढ़मान्यताओं ने उपयोगी हीरे को जंग लगा दिया था ।

पिछले तीस वर्षों से अथक परिश्रम अनवरत लगन और कठोर साहस के साथ उस अन्धकार को काटा गया। गायत्री उपासना को इतना स्पष्ट किया गया जिससे वह शिक्षित-अशिक्षित, आस्तिक-नास्तिक, स्त्री-पुरुष, स्वस्थ-बीमार सभी की श्रद्धा का पात्र बनी । शास्त्रीय प्रतिपादनों का संकलन करना उन्हें, सामान्य हिन्दी भाषा में जन सुलभ बनाना, प्रकाशित करना, उस विधान का मार्गदर्शन स्वयं चलकर और संरक्षण देकर दूसरों को भी अग्रसर करने का दायित्व बहुत बड़ा था, पर उसे पूरा किया गया । गायत्री महाविज्ञान के अब तक बीसियों संस्करण निकल चुके हैं और वह गायत्री महाविद्या के "इन्साइक्लोपीडिया" बन गये हैं । छोटे-छोटे ट्रैक्टों के माध्यम से भी इस ब्रह्मविद्या का उद्घाटन और प्रसार जन-जन तक किया गया । इस तरह युग शक्ति गायत्री अवतरण का एक महान कार्य पूरा हुआ, एक ऐसा सुव्यवस्थित आधार तैयार है जिस पर चलते हुए मानवता चिरकाल तक जीवित रहने की आशा कर सकती है, देवत्व धरती पर उतरने और स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने को समुद्यत हो सकता है । गायत्री युग-निर्माण का मूल आधार है । अतएव उसे युग शक्ति कहा गया । यह अवतरण इस देश के इतिहास में सौभाग्य सूर्य का उदय कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी । अभी एक चरण पूरा हुआ है अगले चरण उससे भी महत्वपूर्ण हैं, वे जब प्रकाश में आयेंगे तो लोग भारतीय तत्वदर्शन की गरिमा पर आश्चर्यचकित और चमत्कृत हुए बिना न रहेंगे । "युगशक्ति गायत्री पत्रिका" का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण कदम है, उसके दूरगामी प्रतिफल सामने आयेंगे तो लोग दाँतों तले उँगली दबाये बिना नहीं रह सकेंगे ।

## आद्य शक्ति गायत्री की युग शक्ति में परिणति

आद्य शक्ति गायत्री अब युग शक्ति बनने जा रही है। प्रायः इस महामन्त्र का उपयोग अन्तराल के सुधार परिष्कार हेतु किया जाता है । व्यक्तित्व को पवित्र और प्रखर बनाने में उसकी शिक्षा का असाधारण उपयोग है । इतने कम अक्षरों का-इतना छोटा-इतना सार गर्भित धर्म शास्त्र, तत्व दर्शन संसार में कहीं कोई दूसरा है नहीं । उसके एक-एक अक्षर में जीवन के हर क्षेत्र में प्रयुक्त हो सकने योग्य ऐसा सद्ज्ञान भरा पड़ा है जिससे अध्यात्म चिन्तन और धर्म व्यवहार के दोनों ही पक्ष सधते हैं । गायत्री को त्रिवेणी कहा गया है—आस्तिकता, अध्यात्मिकता और धार्मिकता रूपी तीन धाराओं का उसके तीन चरणों में समावेश हुआ है ।

ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग का—सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का, सत्-चित्त-आनन्द का जैसा संगम त्रिपदा से हुआ है वैसा उदात्त चिन्तन से सम्बन्धित प्रतिपादन अन्यत्र नहीं देखा जा सकता । आत्म विज्ञान के क्षेत्र में उतरने पर उसकी त्रिविधि शक्तियाँ स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों को प्रभावित कर सकने की क्षमता से सम्पन्न हैं । उपासना, साधना और आराधना के रूप में उसका उपयोग प्रतिभा, प्रखरता और अभिवर्धन के लिए किया जाता है । साधक को ओजस्वी, मनस्वी और तेजस्वी बनने का अवसर मिलता है । अलंकारिक भाषा में त्रिपदा के तीन चरण—ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र के रूप में सरस्वती-लक्ष्मी-काली के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । तुलसीदास जी ने जिस त्रिवेणी संगम में स्नान करने का माहात्म्य 'काक होंहि पिक बकहुँ मराला' के रूप में वर्णन किया है, उसे उसी आध्यात्मिक संगम के रूप में समझना चाहिए, जिसे त्रिपदा गायत्री कहते हैं । सिद्धि और स्वर्ग मुक्ति को इस महाशक्ति के अवगाहन से मिलने का माहात्म्य जिन्होंने बताया है, उन्होंने साथ-साथ यह भी कहा है कि शालीनतावादी क्रिया-प्रक्रिया-दूरदर्शी विचारणा और आदर्शवादी आस्था की परिपक्वता इसी लोक में रहने वाले मनुष्यों में देवत्व का उदय कर सकती है । गायत्री को अमृत, पारस और कल्प वृक्ष इसी दृष्टि से कहा गया है कि उसके अवगाहन से मानवी सत्ता की तीनों परतें, चेतना, अचेतन और सुपर चेतन की मन-बुद्धि-चित्त की तीनों ही स्थितियाँ प्रभावित होती तथा निखरती हैं । फलतः इन तीनों विभूतियों से लाभान्वित होने में कोई संदेह नहीं रह जाता ।

नित्य कर्म में गायत्री को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया गया है । शास्त्रोक्त विधि में त्रिकाल संध्या करने पर उसका समावेश करना अनिवार्य है । शिखा को ज्ञान केन्द्र मस्तिष्क की ध्वजा कहा गया है और सूत्र-यज्ञोपवीत के नौ धागों को उसमें सम्मिलित नौ अनुशासनों को कन्धे पर कर्म कौशल क्षेत्र का अंकुश माना गया है । गायत्री गुरुमंत्र है, जिसे देव संस्कृति में प्रवेश पाते समय सर्व-प्रथम दिया और पढ़ाया जाता है ।

यह गायत्री का व्यक्तित्व जीवन में व्यवहार हुआ । विश्व व्यवस्था में समाज संरचना में भी महत्वपूर्ण प्रेरणा

और दिशा दे सकने की क्षमता उसमें विद्यमान है । गायत्री सार्वभौम है । सर्वजनीन है । उस पर किसी देश, धर्म, समाज, संस्कृति का एकाधिकार नहीं है । उसमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त कूट-कूट कर भरा है । साथ ही दूरदर्शी विवेकशीलता की कसौटी पर प्रत्येक प्रचलन से परामर्श को कसते रहने का निर्देश है ।

गायत्री का वाहन हंस इसी तथ्य का प्रकटीकरण करता है कि 'नीर क्षीर विवेक' की क्षमता रखी जाये और इस कसौटी पर बिना नवीन-पुरातन का पक्षपात किये प्रत्येक प्रतिपादन को जागरूकतापूर्वक कसा जाये । महाप्रज्ञा का तात्पर्य ही यह है कि सत्य और तथ्य की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही किसी कथन-प्रचलन को मान्यता दें । तात्कालिक लाभ में लुभाने वाली दुर्बुद्धि का परित्याग करते हुए दूरदर्शी विवेक के सहारे मात्र मोती ही चुना जाये, औचित्य ही अपनाया जाये । यही है हँस निर्धारण जिसे मनुष्यों में से राज हँस, परम हँस स्तर के व्यक्ति अपनांते और कृतकृत्य होते हैं ।

अगला समय प्रज्ञा युग होगा । उसमें विवेक के सहारे ही सब कुछ सोचा, परखा और अपनाया जायेगा । प्रचलित कूड़े-कबाड़े में से मानव गरिमा के उपयुक्त आदर्शवादी शालीनता की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही वे तथ्य अपनाये जायेंगे जो आने वाले समय, नियम व अनुशासन के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकें । इन २४ अक्षरों में व्यक्ति और समाज से सम्बन्धित सभी तथ्यों का स्पर्श करने वाले सिद्धान्त विद्यमान हैं । इन्हें क्रमबद्ध संजोकर भावी संसार की आचार संहिता बन सकती है । विश्व व्यवस्था का संविधान बनाना हो तो उसके लिए सभी आवश्यक सूत्र गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में हैं । उनकी विवेचना इस प्रकार की जा सकती है कि उसे सार्वभौम धर्म जैसी मान्यता मिल सके ।

अगले दिनों बिखराव निरस्त करना होगा और मानवी गतिविधियों को एक दिशा धारा में बहने के लिए दबाया जायेगा । बौद्धिक, वैज्ञानिक और आर्थिक प्रगति ने सुविधा संवर्धन के साथ-साथ अगणित समस्याओं का घटाटोप संकट खड़ा किया है । इनका समाधान एकता, समता, शुचिता के त्रिविधि सिद्धान्तों को सर्वमान्य बनाने में ही संभव है । एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म धारण के आधार पर ही नवीन विश्व का अभिनव निर्धारण होगा । उसकी रीति-नीति क्या हो ? दिशा धारा क्या रहे, इसका सूत्र संकेत अन्यत्र कहीं ढूँढ़ना न पड़ेगा । दूरदर्शी तत्व दर्शियों ने उसे गायत्री बीज मंत्र में 'गागर में सागर' की तरह भर दिया है । उपासना क्षेत्र में भी किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता पड़ेगी । तब सर्व श्रेष्ठ का चुनाव करने पर महाप्रज्ञा को स्थान बड़ी सरलतापूर्वक मिल सकता है ।

धर्म सम्प्रदायों के वर्तमान जंजाल में से उबारने के लिए इसी राज मार्ग को अपनाया जा सकता है । भूमि सीमा और जाति वर्ग के नाम पर बँटने वाली मनुष्य जाति को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के एक सूत्र में बाँध कर उस केन्द्र पर लाया जाना है जिसमें सभी हिल-मिल कर रह सकें, मिल-बाँट कर खा सकें और हलकी-फुलकी हँसाती जिन्दगी जी सकें । ऐसा प्रज्ञा युग लाने में महाप्रज्ञा गायत्री की असाधारण भूमिका होगी । वह एक नये सद्ज्ञान को जन्म देगी जिसके सहारे जन-जन का चिन्तन-चरित्र एवं व्यवहार उत्कृष्ट आदर्शवादिता का पक्षधर बन सके । इसी प्रकार वह एक नये विज्ञान को भी जन्म देगी जिसमें मानवी सत्ता के अंग अवयवों में सन्निहित अजस्र ऊर्जा भण्डार का नव युग के अनुरूप साधन-सुविधा तथा गौरव-गरिमा का समुचित उत्पादन कर सके । आत्मविज्ञान में ये सभी संभावनाएँ विद्यमान हैं । उसमें वाक्, प्राण तथा संकल्प की तीन धाराएँ— प्रस्तुत भौतिकी के ताप, शब्द और प्रकाश माध्यमों की तरह अनन्त वैभव के स्रोत उद्गम विद्यमान जो हैं ।

इन दिनों सबसे विषम सामयिक समस्या है अदृश्य वातावरण में भरती जा रही विषाक्तता की । विकिरण, प्रदूषण की भयावहता सर्व विदित है । इसके अतिरिक्त मानवी चिन्तन की धृष्ठता और व्यवहार की दुष्टता ने प्रकृति को बेतरह रुष्ट कर दिया है । वह अभी भी अनेकानेक प्रकोप बरसाती है । भविष्य में उस क्षेत्र में और भी भयावह संकट उतरने की आशंका है । अति-वृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, तूफान, भूकम्भ, महामारी जैसे संकट प्रकृति प्रकोप स्तर के गिने जाते हैं । अन्त:विग्रहों अपराधों की वृद्धि, दुर्बुद्धि जन्य, दुरभिसंधि ही गिनी जाती है। लिप्सा और अहंता का समन्वय ही गृह युद्ध, सीमा युद्ध एवं महायुद्ध खड़े करता है । यह आशंका सम्भावनाएँ सामने ही मुँह बाये खड़ी हैं । इनके निराकरण में प्रत्यक्ष प्रयत्नों का उपयोग तो होना ही चाहिए । राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली विपन्नताओं का सूझं-बूझ और पराक्रम पूर्वक समाधान खोजा ही जाना चाहिए । उपचार प्रक्रिया

के लिए प्रयत्न रत रहना ही चाहिए किन्तु साथ ही एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है कि इतना करने पर भी अदृश्य दबावों का कुचक्र ऐसा है, जिसका निराकरण किए बिना भौतिक प्रयास उपचारों से भी गुत्थी पूरी तरह सुलझने वाली नहीं है । इसके लिए कुछ ऐसा भी करना होगा जिससे संव्याप्त विषाक्तता का परिमार्जन हो सके । यह प्रयोजन अध्यात्म उपचारों की सहायता से पूरे हो सकते हैं ।

रावण राज्य समाप्त होने पर भी अदृश्य में संव्यात असुरता समाप्त नहीं हुई । तब भगवान राम को दस अश्वमधों की श्रृंखला चलानी पड़ी थी । महाभारत के उपरान्त भी अदृश्य क्षेत्र की विषाक्तता निरस्त न हुई तो भगवान कृष्ण ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया । यह दोनों ही धर्मानुष्ठान उसी प्रकार अनेकानेकों के सहयोग से सम्पन्न हुए जैसे कि लंका युद्ध और महाभारत अगणित योद्धाओं के पराक्रम से अनेकानेक आयुधों के आधार पर लड़े गये । इससे पूर्व भी प्रत्येक अवतार के समय ऐसे ही सामूहिक धर्मानुष्ठान हुए हैं । सीता जन्म के लिए ऋषि रक्त संचय से घड़ा भरने की और देवताओं की संयुक्त शक्ति से दुर्गा अवतरण की कथा विदित है । गिरि गोवर्धन को उठाने और समुद्र सेतु बाँधने में भी उच्चस्तरीय आत्माओं के संयुक्त प्रयास को कार्यान्वित किया गया था । अन्यान्य अवतारों के समय भी आगे या पीछे ऐसे ही धर्मानुष्ठानों की आवश्यकता पड़ी है और वह तत्कालीन ऋषियों द्वारा पूरी की गई है । विश्वामित्र का नरमेध यज्ञ और वाजिस्रवा का सर्वमेघ यज्ञ उसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं ।

प्रस्तुत युग समस्याओं के समाधान में भी ऐसे ही संयुक्त अनुष्ठान की आवश्यकता पड़ी है । इसके लिए नैष्ठिक उपासकों का बीस वर्षीय गायत्री अनुष्ठान पहले से ही चल रहा है । समस्या की गम्भीरता को देखते हुए दबाव और भी अधिक बढ़ाये जाने की आवश्यकता है । महाप्रज्ञा को अदृश्य वातावरण के परिशोधन में प्रयुक्त करने में तत्वदर्शियों का ध्यान अधिकाधिक मात्रा में केन्द्रित हो रहा है । इस दिशा में अभी और भी बड़े कदम उठने की आवश्यकता पड़ रही है । तदनुसार एक नया निर्धारण यह किया गया है 'कि प्रज्ञा परिवार के बीस लाख परिजन प्रातः सूर्योदय के समय जिस भी स्थिति में हों उसी में सब काम छोड़कर पाँच मिनट गायत्री मन्त्र का मौन मानसिक जप करें, साथ ही सविता का ध्यान भी । संकल्प करें कि इस प्रयास से उद्भूत शक्ति अनन्त अन्तरिक्ष में बिखरेगी और संव्याप्त विषाक्तता का परिशोधन निराकरण सम्पन्न करेगी ।

जो, जहाँ, जिस भी स्थिति में है, जूते उतार कर आँखें बन्द करके यह ध्यान जप सम्पन्न करे । सूर्योदय का समय हर देश-प्रान्त का अलग-अलग होता है जो स्थानीय पंचांगों से जाना जा सकता है । जिनके पास घड़ियाँ हों वे उसके सहारे समय जान लें । जहाँ वैसा प्रबन्ध नहीं है वहाँ मुर्गे की बाँग जैसी मसजिद के अजान मन्दिर के शंख जैसी ध्वनि किसी केन्द्र स्थान पर शंख विगुल आदि बजा कर इस शुभारम्भ की घोषणा की जा सकती है । प्रज्ञा परिजन इस साधना में स्वयं तो सम्मिलित हों ही । साथ ही यह भी प्रयत्न करें कि उसके परिवार तथा सम्पर्क के लोग भी इस न्यूनतम साधना को अपनायें । इसमें स्नान, पूजा, उपचार, स्थान आदि का भी प्रतिबन्ध न होने से वह सर्व-साधारण के लिए अति सरल भी है । थोड़ा प्रयत्न करने पर इसमें सम्मिलित होने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँच सकती है ।

प्रज्ञा परिजनों की संख्या इन दिनों प्रायः बीस लाख है । पाँच मिनट में न्यूनतम जप साठ मंत्रों का हो जाता है । बीस लाख को पचास के गुणा कर देने पर यह संख्या बारह करोड़ हो जाती है । लक्ष्य चौबीस करोड़ प्रतिदिन का है । इसके लिए ठीक दूने युग साधकों की आवश्यकता पड़ेगी । वर्तमान परिजनों में से प्रत्येक अपने हिस्से का एक और जो नागा करेंगे उनके बदले का एक-इस प्रकार दो और नये ऐसे युग साधक उत्पन्न करें जो प्रातः काल पाँच मिनट की उपरोक्त साधना में संकल्प पूर्वक सम्मिलित हों । जो व्रत लें, उसे निभायें । इसका विवरण रखने का उत्तरदायित्व स्वाध्याय मण्डल के संचालक को सौंपा जाये । जो किसी के द्वारा न करने की स्थिति से अवगत रहे और उस कमी की पूर्ति अन्य लोगों से कराता रहे । इस प्रयोजन के लिए वही इतने लोगों से उपरोक्त युग साधना कराने का उत्तरदायित्व उठाये । उनका एक कर्तव्य यह भी है कि अपने सम्पर्क क्षेत्र की जप संख्या की मासिक जानकारी शान्ति कुंज हरिद्वार पहुँचाते रहें जिससे यह पता चलता रहे कि प्रतिदिन चौबीस करोड़ जप के निर्धारण में कितनी कमी पड़ रही है या उसकी किस क्षेत्र में कितनी पूर्ति हो रही है ।

सामूहिकता की शक्ति भौतिक क्षेत्र में बहुत कारगर होती है और उसका प्रतिफल हाथों हाथ देखने को मिलता है, बुहारी, रस्सा, सेना, संयुक्त परिवार, झुण्ड, गिरोह संगठन आदि उदाहरण यह बताते हैं । आतिशी शीशे पर केन्द्रित सूर्य किरणों का चमत्कार तत्काल आग लगने के रूप में सभी ने देखा है । प्रज्ञा परिजानों की उपरोक्त संयुक्त साधना, परिस्थितियों के सुधार परिष्कार में असाधारण भूमिका सम्पन्न करेगी । सिपाहियों की टुकड़ी यदि कदम मिला कर एक ध्वनि उत्पन्न करे तो जिस लोहे के पुल पर से वह चल रही है, वह धंसक या गिर सकता है । पायल की क्रमबद्ध आवाज हाल की छत को गिरा सकती है । यह संयुक्त शब्द-शक्ति का चमत्कार है । प्रज्ञा परिजन एक मन से एक उद्देश्य से, एक प्रक्रिया अपनाकर एक समय में एक निर्धारण के अनुरूप साधना करें तो वह थोड़ी-छोटी होते हुए भी इतना बड़ा प्रयोजन पूरा कर सकती है जिससे विकृतियों और विषाक्तताओं का निराकरण हो सके और उसके स्थान पर उज्ज्वल भविष्य का—प्रज्ञा युग के अवतरण का—सुनिश्चित आधार खड़ा हो सके ।

इस विशिष्ट साधना का महत्व सभी प्रज्ञा परिजन गम्भीरतापूर्वक समझें और उसे कार्यान्वित करने में अपनी जागरूकता एवं तत्परता का परिचय दें । आद्यशक्ति गायत्री को युग शक्ति के रूप में विकसित करने का ठीक यही समय है ।

## सारे वातावरण को ही गायत्रीमय बनाना होगा

मानवीय आस्थाओं में प्रविष्ट अवांछनीयता कीं जड़ों को काटने, निकाल बाहर करने तथा उनके स्थान पर प्रकाशपूर्ण धारणाओं, सद्विचार, सद्कर्म और मानवीय संवेदनाओं की स्थापना के लिये जिस महाशक्ति के अवतरण की आवश्यकता पड़ा करती है; उसका अवतरण इस युग में गायत्री के रूप में हुआ । पिछले दिनों जो भी अवतार हुए उन्हें व्यक्त से लड़ना पड़ा, वह कार्य अपेक्षाकृत सुगम था । किन्तु इस युग में जबकि असुरता ने मनों में, मानवीय आस्थाओं में आधिपत्य जमा लिया हो वैसी ही प्रकाशपूर्ण और प्रखर सत्ता की आवश्यकता थी जो भावनाओं की गहराई में उतर कर कार्य कर सके । उसके लिए गायत्री ही समर्थ थी सो ब्राह्मी चेतना के रूप में उसका प्रादुर्भाव युग की एक अलौकिक घटना मानी जानी चाहिये ।

शक्तियों का प्रकट होना एक बात है, उनकी सक्रियता और युग को प्रभावित करना सर्वथा दूसरी बात। इस प्रयोजन को चिरकाल से देव-आत्मायें पूरा करती आई हैं । गायत्री महाशक्ति को व्यापक बनाने के लिये युग सैनिकों की कुमुक पुरी तरह सन्नद्ध, हर मोर्चे पर लड़ने को तैयार खड़ी है । यह अलग बात है कि मायावी असुर से कैसे लड़ा जाये, यह समझ में नहीं आता । उसके लिये बार-बार भार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है, बार-बार मोह-भंग की और सैनिकों में शौर्य भर कर उन्हें अग्रिम मोर्चों में भेजने की आवश्यकता पड़ती है । वही इन दिनों किया जा रहा है । गायत्री उपासना के व्यापक विस्तार की जैसी सम्भावनाएँ इन दिनों विकसित हुई हैं उन पर कोई भी संतोष ही अनुभव कर सकता है ।

किन्तु इतने मात्र से बात बनती नहीं । सृष्टि बहुत बड़ी है । ९० करोड़ आबादी का तो अपना ही देश है इसमें लाख-दो लाख व्यक्तियों तक यह सन्देश पहुँच भी जाये तो उससे युग परिवर्तन की तो आशा और अपेक्षा नहीं की जा सकती ? अभी तक देश के ही सम्पूर्ण प्रान्तों में यह प्रकाश नहीं पहुँचाया जा सका । जबकि कल्पना सारे विश्व को गायत्रीमय बनाने की करते हैं । ऐसी स्थिति में एक बार सारे वातावरण को इस तरह मथ डालने की आवश्यकता पड़ेगी जिस तरह श्रीराम ने रावण से युद्ध, श्रीकृष्ण ने महाभारत और धर्मचक्र प्रवर्तन के समय भगवान बुद्ध ने सारे वातावरण को ही आन्दोलित करके रख दिया था । उस तरह से एक-सी विचारधारा और आदर्शनिष्ठा के संस्कारों से ओत-प्रोत वातावरण से ही वह शक्ति व प्रेरणाएँ प्रकीर्ण हो सकेंगी; जो चिरकाल तक मानवीय आस्थाओं में शान्ति और प्रसन्नता के, सहयोग और सहकारिता के, धर्म-नीति और सदाचार के रंग भरती रहेंगीं ।

वातावरण की महत्ता हर कोई जानता है । सेब कुल्लू मनाली घाटियों में ही उम्दा किस्म के होते हैं यों उनकी पैदावार अन्यत्र भी होती है, पर वैसा शानदार फल दूसरी जगह नहीं बन पड़ता । भुसावल के केले की ही पौध किसी अन्य स्थान पर लगाकर भी वैसा ही केले का फल बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं लिया जा सका । बरार की कपास के से रेशे दूसरी जगह उपलब्ध नहीं हों पाते । लखनऊ के खरबूजों की सी सुन्दरता और मिठास सब

कहीं नहीं मिलती । यह वातावरण की अनुकूलता का परिणाम है । प्रस्तुत युग को विवेकपूर्ण, सद्गुणी और सदाचारी बनाने के लिये वातावरण में उस तरह की गरिमा भरनी आवश्यक होगी जो न केवल इस देश अपितु समूचे विश्व को मानवीय आस्थाओं के प्रति निष्ठावान बनाये रखे ।

वातावरण का प्रभाव पेड़-पौधों और वृक्ष-वनस्पतियों तक ही सीमित रहता हो सो बात नहीं । किसी को बताया न जाये और अज्ञात श्मशान घाट में खड़ा कर दिया जाये तो अनायास भय लगने लगता है । पशुओं को दिनभर उनके मालिक एक स्थान से दूसरे स्थान लाते ले जाते रहते हैं, पर यदि कोई कसाई उन्हें वध-गृह की ओर ले चलने लगता है तो पशुओं को उनके रोंगटे खड़े हो जाने जैसी स्थिति में भयभीत पाया गया है । इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि जब श्रवणकुमार अपने माता-पिता को लेकर मय देश में पहुँचे तो उनकी सारी पितृभक्ति तिरोहित हो गई, उसने न केवल माता-पिता को काँवर से उतार दिया अपितु उन्हें भला-बुरा भी सुनाया । सूक्ष्मदर्शी ऋषि श्रवण कुमार के माता-पिता ने कहा हम पैदल चलते हैं, पर तुम रहो साथ ही । मय देश की सीमा पार होते ही श्रवण विलख उठा । उसे समझ नहीं आ रहा था ऐसी भूल क्यों हो गई । पिता ने बताया—वत्स ! यहाँ के अधिपति मय ने अपने माता-पिता को बन्दीगृह में डालकर कठोर यातनायें दीं, इस प्रदेश में माता-पिता को सम्मान और सत्कार देने की परम्परा नहीं है, वह संस्कार यहाँ के वातावरण में छाये रहते हैं, यह उसी का दुष्परिणाम था, तुम्हारा दोष नहीं ।

हिमालय क्षेत्र चिरकाल से ही इस देश का तपोस्थल रहा है । ऋषियों, महर्षियों से लेकर भगवान राम तक ने उत्तराखण्ड में रहकर तप साधनायें सम्पन्न कीं । उन संस्कारों का ही प्रतिफल है कि आज भी इस प्रदेश में पहुँचने वालों में श्रद्धा और भक्ति भावनायें उमड़ पड़ती हैं। इस प्रान्त के निवासी मैदानी क्षेत्र की अपेक्षा अब भी बड़े ईमानदार पाये जाते हैं । वातावरण का प्रभाव न केवल शरीर, स्वास्थ्य, खानपान और वेषभूषा को प्रभावित करता है अपितु उसके सूक्ष्म संस्कारों में मनुष्यों के विचार और भावनायें बदल डालने की भी जबर्दस्त शक्ति है । डा. आस्कर ब्रोनलर ने १९४८ में प्रकाशित अपने एक लेख "ब्रेन रेडिएशन" में इस तथ्य पर विस्तृत प्रकाश डालते हुये लिखा है कि किसी क्षेत्र के लोगों में एक ही तरह के विचारों में अटूट निष्ठा हो तो उनके मस्तिष्कों से होने वाले "मस्तिष्कीय विकिरण" की सघन तरंगें वहाँ छा जाती हैं और चिरकाल तक बनी रहती हैं । रूसी वैज्ञानिकों ने एक ऐसा "हीट कैमरा" बनाया है जो किसी स्थान पर अपराध करके भाग गये अपराधी द्वारा उस समय अपने शरीर से छोड़ी हुई ऊर्जा के आधार पर उसका वास्तविक फोटो तैयार कर देता है । वैज्ञानिक उस समय की उसकी मन:स्थिति को अध्ययन करने के लिये भी यन्त्र विकसित करने में लगे हैं, उससे अपराधी की योजनाओं के चिन्तन का भी सही स्वरूप सामने लाना सम्भव हो जायेगा जिससे अपराधी कहाँ गया है यह सब तुरन्त पता चल जायेगा । यह अनुसंधान भी उसी तथ्य को प्रकट करते और बताते हैं कि एक बार किसी वातावरण को शक्तिशाली आत्म-शक्ति—भावनाओं से मथ दिया जाये तो वहाँ चिरकाल तक लोगों को प्रभावित करती रहने वाली परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं । इन दिनों सारे समाज, सारे वातावरण में अनीति, बेईमानी, चरित्रहीनता, तृष्णा, लिप्सा और क्षुद्र अहंकार का जो विष समा गया है उसे धोने के लिये यज्ञ और गायत्री के व्यापक विस्तार की क्रान्ति खड़ी करनी पड़ेगी । युग शक्ति गायत्री के अवतरण का यही मूलभूत उद्देश्य है जिसे इस युग की जागृत आत्माओं को अपना कर्तव्य समझ कर पूरा करना है ।

सामूहिक कीर्तन, सामूहिक भजन और सामूहिक अनुष्ठानों के पीछे यही सिद्धान्त कार्य करता है । एकाकी उपासना के व्यक्ति का अपना बाह्याभ्यंतर प्रभावित हो सकता है, अधिक से अधिक परिवार वालों, पड़ोसियों तक भी प्रेरणायें प्रवाहित की जा सकती हैं, पर व्यापक रूप से जनशक्ति को दिशा और प्रकाश देना होता है तो उन्हें सामूहिक रूप देना पड़ता है । गायत्री मंत्र में "योन:" शब्द आता है, उसका अर्थ होता है हम अकेले नहीं हम सब । इसकी संगति भी सामूहिक अनुष्ठान से ही बैठती है । सामूहिक रूप से साधे और सम्पन्न किये गये गायत्री अनुष्ठानों में सारे वातावरण को आन्दोलित कर देने और एक इच्छित दिशा में बदल डालने की शक्ति होती है । यह एक तथ्य है कि वातावरण में मनुष्य ढलता और बनता है, पर झूठ यह भी नहीं है कि मनुष्य द्वारा भी वातावरण ढाले और बनाये जाते हैं । जिनसे चिरकाल तक प्रवाहित होते रहने वाले संस्कारों की, विचारों की विलक्षण फौज न जाने ब्रह्माण्ड के किस कोने से दौड़ती

हुई आती और बादलों की तरह आच्छादित हो जाती है । गायत्री उपासना में असत् से सत्, अन्धकार में प्रकाश और अज्ञान में ज्ञान की स्थापना की विलक्षण शक्ति है । एकाकी साधना द्वारा वह साधक को लाभान्वित करती है तो सामूहिक अनुष्ठानों द्वारा उससे सारा समाज, राष्ट्र और युग प्रभावित होता है इस अकाट्य सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता ।

सामूहिक प्रार्थनायें सारे वातावरण को हिला देने की सामर्थ्य रखती हैं । युद्ध और संकट के समय प्रायः प्रत्येक देश में सामूहिक प्रार्थनायें आयोजित होती हैं । मुसलमानों में नियत दिन नियत समय पर सामूहिक नमाज के पीछे भी यही सिद्धान्त कार्य करता है । १३वें अपोलो (चन्द्र यात्रा) अभियान के समय अन्तरिक्षयानों में आई गड़बड़ी से जब तीनों यात्रियों का जीवन संकट में पड़ा तब पृथ्वी वासियों की सामूहिक प्रार्थना ही उनके लिए ढाल बनी और वे सकुशल धरती पर लौटे ।

युग परिवर्तन के लिए दुष्टता, असुरता, अधर्म और आडम्बरों से लड़ने के लिए जिस महान् शक्ति की आवश्यकता हो सकती है; वह दुर्गा से कम नहीं हो सकती, दुर्गा सामूहिकता का प्रतीक है । इस दृष्टि से भी गायत्री का विस्तार व्यापक क्षेत्र में होना आवश्यक था । इसीलिए इस योजना के आधार के रूप में गायत्री तत्व-ज्ञान पर इतना जोर दिया गया । क्रमशः कदम उठाते हुए उस स्थिति तक पहुँचना संभव हो सका है जहाँ से सारे राष्ट्र को एक समुदाय में ढाला जा सके । इससे जो वातावरण विनिर्मित होगा, जो अन्तर्क्रान्ति उठ खड़ी होगी वह अन्तःकरणों में छाये हुये अज्ञान, अन्धकार, अशक्ति और दरिद्रता को नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगी । जब तक यह मूढ़तायें रहती हैं; मानवीय संवेदना का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पायेगा अतएव सृजन प्रक्रिया के पूर्व की यह विचार मंथन प्रक्रिया आवश्यक मानी गई है ।

गायत्री मंत्र सामान्य दृष्टि से देखने में यों पूजा-उपासना में प्रचलित एक प्रार्थना जैसा लगता है जिसमें परमात्मा से सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है किन्तु शब्द शक्ति के ज्ञाता जानते हैं कि इस महामंत्र के २४ अक्षर २४ महान् शक्तियों के ऐसे मर्म स्थल बीज और शक्ति कोष हैं जो सारे ब्रह्माण्ड में हलचल मचा देने की शक्ति से ओत-प्रोत हैं । गायत्री उपासना के प्रति जन आस्था का भी अभाव नहीं है । पिछले दिनों कुछ स्वार्थी तत्वों ने इस महाविद्या को अपनी जन्म जात विरासत और अपने वंशधरों की सम्पत्ति समझ कर इस तरह की भ्रान्तियाँ गढ़ीं जिनसे लोगों में आस्था तो बनी रहे पर उसकी व्यक्तिगत स्तर पर कोई न तो शोध कर सके न उससे लाभान्वित हो सके । इससे उन्होंने स्वयं तो गंवाया ही राष्ट्र का बड़ा भारी अहित किया । प्राण चेतना से परिपूर्ण राष्ट्र अपनी गरिमा, अपना ओज, अपनी तेजस्विता खोता चला गया । बात-बात में दूसरों का परावलम्बन देख कर विश्वास नहीं होता, क्या यह वही पराक्रमी देश है जिसने साधनों के अभाव में भी हिमालय की छाती फाड़ करके गंगाजी को निकाल लाने का महान् तप सम्पन्न कर दिखाया था । गायत्री उपासना चिरकाल से इस देश को शक्ति सामर्थ्य प्रदान करती रही है, इस युग के लिए तो वह संजीवनी बुटी की तरह है । इसलिए उसके अवतरण का जोरदार स्वागत किया जाना चाहिए । एक बार यदि वातावरण को संस्कारित कर लिया गया तो उससे राष्ट्र और विश्व को संयत, स्वस्थ और समर्थ देवभावनाओं से ओत-प्रोत रखने का गति चक्र आप ही चल पड़ेगा । यह जिम्मेदारी उन जागृत आत्माओं पर आती है; जिनकी विवेक-बुद्धि वस्तु-स्थिति को पहचान सकने में समर्थ है, जिनमें अन्धविश्वास, रूढ़िवादी मान्यताओं और परम्पराओं से लड़ पड़ने का साहस है । एक बार उस कारागृह से मुक्ति मिल गई तो फिर सर्वशक्तिमान माता के अनुग्रह अनुदानों से लाभान्वित होते रहने की परम्परा चिरकाल तक चलती रहेगी । राष्ट्र को हरा-भरा सुखी-समुन्नत बनाने वाले सभी तत्व गायत्री में विद्यमान हैं । आवश्यकता मात्र उसे घर-घर जन-जन तक पहुँचाने और लोगों के हठात् इस महाशक्ति के सम्पर्क में आने के लिए प्रेरित करने की है । वही इन दिनों किया जाना है ।

यह आवश्यकता नहीं कि जो इस पुण्य प्रयोजन में जुटें वे उतने उच्च स्तर के साधक और निष्णात हों ही । युग सत्ता ने वह परिस्थितियाँ स्वयं विनिर्मित कर दी हैं प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, संरक्षण सभी कुछ उपलब्ध है, गायत्री उपासना, दर्शन, कर्मकाण्ड, नियमोपनियमों, विज्ञान आदि सभी पक्षों पर विभिन्न प्रकार की पुस्तकों-पत्रिकाओं द्वारा प्रचुर मात्रा में प्रकाश डाला गया, डाला जा रहा है । लोगों को उसके सम्पर्क में लाने भर की बात है । यह कार्य कोई भी थोड़ा-सा समय लगा कर भी पूरा कर सकता है ।

व्यक्ति मूलतः दो भागों में विभक्त है । एक उसका बहिरंग, कवच ढाँचा, खोखला, जिसे शरीर कहते हैं ।

दूसरा उसकी चेतना, प्राण गति, तत्परता, इच्छायें, आकांक्षायें, भावनायें । यह भी जानते हैं कि इनमें महत्व दूसरे अन्तरंग कलेवर का ही है तो भी ९० प्रतिशत लोग जीवन के बहिरंग क्षेत्र को ही सजाने सँवारने में लगे रहते हैं । अन्तरंग की उपेक्षा होती रहती है । व्यक्ति के स्वार्थी, कुटिल, अनाचारी होने और विश्व में सर्वत्र अव्यवस्था, अशान्ति फैलाने के पीछे वही शारीरिक सुखों के प्रति आसक्ति, तृष्णा और भोगवादी वृत्ति है । भावनायें बुरी तरह मसली कुचली जाती रहती हैं । न्याय का, सच्चाई का, नैतिकता का, मनुष्यता का गला घुटता रहता है । अपराधों में वृद्धि उसी का परिणाम है । आलस्य, प्रमाद, परावलम्बन भी उस अन्तरंग के परिष्कार का अभाव ही है और कुछ नहीं । गायत्री को "प्राणों के उत्कर्ष" की भी साधना कहते हैं । इस उपासना से अन्तरंग गतिवान होता है, उसमें छायी मलीनता, अन्धकार, अविवेक दूर भागते हैं । सृष्टि का यथार्थ अभिव्यक्त होने-से मनुष्य करने योग्य करता है और सोचने योग्य सोचता है । भावनाओं में देवत्व का विकास और कर्तृत्व में शुचिता व पवित्रता का दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं । जहाँ लोगों की भावनायें शुद्ध और पवित्र होंगी वहाँ के समाज में सर्वत्र शान्ति, सुव्यवस्था, प्रसन्नता और सन्तोष भरे जीवन की निर्झरिणी प्रवाहित हो रही होगी । गायत्री को देवताओं की माता, वेद माता इसीलिये कहते हैं । उससे ज्ञान की समृद्धि, पवित्रता का विस्तार और सक्रियता की अभिवृद्धि होती है । सांसारिक सुख-शान्ति और प्रगति के यही तीन आधार हैं; जो गायत्री से पूरे होते हैं । इस विज्ञान का एक पक्ष लूले-लँगड़े रूप में विद्यमान है, उसका विज्ञान पक्ष बहुत अधिक शक्तिशाली और समर्थ है । वह इन दिनों अभिव्यक्त हो रहा है । इस प्रकाश को सम्पूर्ण शक्ति लगा कर घर-घर पहुँचाया जाय और इस युग के वातावरण को चिन्तन, उपासना और यज्ञों के विस्तार द्वारा गायत्री मय बनाया जा सके तो युग शक्ति का यह अवतरण सफल और सार्थक हो कर रहेगा । उससे इस देश और विश्व को चिरकाल तक स्वस्थ, स्वच्छ और समर्थ बनाये रखने वाली ऊष्मा का प्रस्फुटन सम्भव होगा । इसे अपना पुनीत कर्तव्य मानकर प्रत्येक उस व्यक्ति को, जिसे युग शक्ति गायत्री का सम्पर्क सान्निध्य मिला है, दूसरों तक पहुँचाने के लिए हृदय अन्तःकरण से कटिबद्ध होना पड़ेगा । इतना किया जा सका तो इस महान् सत्ता का अवतरण सफल और सार्थक होकर ही रहेगा ।

धरती पर युगांतरीय चेतना के रूप में गायत्री महाशक्ति का अभिनव अवतरण होते हुए देखा तो चिरकाल से जा रहा है । जन-मानस में परोक्ष प्रेरणा से उसके प्रति सहज आकर्षण बढ़ा है । गायत्री परिवार के प्रयत्नों को भी उसके लिए यत्किंचित श्रेय मिल सकता है किन्तु तथ्य यह है कि ज्ञानगंगा का अवतरण दैवी प्रेरणा से ही हो रहा है ।

● ● ●

# पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन
## समग्र वाङ्मय

*परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचार-सार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह इस समय वाङ्मय के खण्डों में है । इनके नाम इस प्रकार हैं:-*

१. परिचयात्मक खण्ड ( इसमें सारे वाङ्मय का समग्र परिचय, आराध्य सत्ता की जीवन-गाथा, लीला प्रसंग, अनुभूतियाँ, मिशन की आधारभूत स्थापनाओं से लेकर भविष्य की संकल्पनाओं का विवरण है । इसे विश्वकोश के 'प्रोपीडिया' स्तर की रचना व 'बायोग्राफी' का समन्वित रूप कहा जा सकता है।)
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जागृति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री की साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आधार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म, परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान और विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ ( सतयुग की वापसी )
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत् एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों व कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विभिन्न आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृतिः इतिहास के कीर्त्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने?
४८. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
४९. युग निर्माण-दर्शन-स्वरूप व कार्यक्रम
५०. इक्कीसवीं सदी-नारी सदी
५१. यत्र नार्यस्तु पूजन्ते, रमन्ते तत्र देवता
५२. समाज का मेरुदण्ड : सशक्त परिवार तंत्र
५३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नव निर्माण
५४. शिक्षा एवं दीक्षा
५५. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग
५६. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५७. प्रेरणा प्रद दृष्टान्त
५८. अमृत कण
५९. ऋषि चिन्तन
६०. पूज्यवर की अमृतवाणी-१
६१. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
६२. पूज्यवर की अमृतवाणी-३
६३. पूज्यवर की अमृतवाणी-४
६४. विचार-सार एवं सूक्तियाँ-१
६५. काव्य सुधा
६६. युग निमंत्रण
६७. मधु संचय
६८. जीवन संगीत
६९. अपनों से अपनी बात
७०. सृजन शिल्पियों के लिए मार्गदर्शक सूत्र ।



कुल सत्तर खण्डों में युग ऋषि का यद्यपि समग्र लेखन, वक्तृत्व एवं कृतृत्व समाता नहीं है तथापि, अपनी ओर से महत्वपूर्ण सभी अंशों को इसमें लेने का प्रयास किया गया है ।

हर निमिष उनका साथ रहा । अंतिम बीस वर्ष शांतिकुंज हरिद्वार या सूक्ष्म शरीर से हिमालय में बीते । ऋषि परम्परा का बीजारोपण, सिद्ध तीर्थ गायत्री तीर्थ का निर्माण एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के लिए संकल्पित ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान व समर्थक साहित्य का लेखन इसी अवधि में हुआ । जीवन भर उनने लिखा, हर विषय को स्पर्श किया एवं जीवन मूरि की तरह भाव-संवेदना को अनुप्राणित करने वाली अपनी लेखनी साधना की । स्वयं के बारे में वे कहते थे- ''न हम अखबार नवीस हैं, न बुक सेलर, हम तो युगदृष्टा हैं । हमारे ये विचार, क्रांति के बीज हैं । ये फैल गए तो सारी विश्व-वसुधा को हिलाकर रख देंगे ।''

गद्य ही नहीं, पद्य पर भी उनकी उतनी ही पकड़ थी । हजारों को प्रेरित कर उनने सृजनात्मक काव्य लिखवाया। लेखनी उनकी पत्रों के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को बदलती चली गयी । प्रायः श्रेष्ठ लेखक, श्रेष्ठ वक्ता नहीं होते । किन्तु उनकी ओजस्वी अमृतवाणी ने लाखों का कायाकल्प कर दिया । उनके उद्बोधनों को, जो उनने भारत के कोने-कोने व मथुरा-हरिद्वार की पावन भूमि में दिए, इस वाङ्मय में देने का प्रयास किया गया है । करुणा छलकाती उनकी वाणी, अंतः को स्पर्श करती हुई जीवन-शैली बदलने को प्रेरित रहती प्रतीत होती है।

सत्तर खण्डों में जो पाँच-पाँच सौ पृष्ठ के हैं, प्रायः वह सब कुछ समा गया है, जो ऋषि युग्म के माध्यम से प्रकट हुआ । जो कमियाँ हैं, वह संपादन मण्डल की हैं । जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह सब उसी गुरु-सत्ता का है, उन्हीं का है, उन्हीं को समर्पित है ।


सामवेद
AKHANDA JYOTI
प्रज्ञा अभियान